RNI/MPHIN/2013/61414

ISSN 2278-0327
Peer Reviewed
Refereed Journal

UGC Care Listed

ज्योतिर्वेद - प्रस्थानम्

संस्कृत वाङ्मय की शोधपत्रिका - संस्कृत छात्रों की मार्गदर्शिका

दशम वर्ष, षष्ठ अंक

जनवरी - फरवरी 2022

आज़ादी का अमृत महोत्सव



भारतीय ज्योतिषम्

₹ 30

ISSN 2278 - 0327

RNI/MPHIN/2013/61414
UGC Care Listed

Bi - Monthly
Peer Reviewed
Refereed Journal

Bharatiya Jyotisham
पर्येति भावयन् लोकान्

ज्योतिर्वेद-प्रस्थानम्

संस्कृत वाङ्मय की शोधपत्रिका-संस्कृत छात्रों की मार्गदर्शिका

प्रधान सम्पादक

प्रो. पी.वी.बी. सुब्रह्मण्यम्

कार्यकारी सम्पादक

अविनाश उपाध्याय

सम्पादक

डॉ. रोहित पचौरी

डॉ. रविन्द्र प्रसाद उनियाल

ज्ञान सहयोग

पिडपर्ति पूर्णय्या विज्ञान ट्रष्ट चैन्नै

Jyotirveda-Prasthanam is printed & published by
Smt P V N B Srilakshmi
on behalf of
Bharatiya jyotisham
L-108, Sant Asharam Nagar Phase - 3, Laharpur, Bhopal - 462043
Editor - DR. ROHIT PACHORI*

ISSN 2278 - 0327

पुनरीक्षण समिति

प्रो. विद्यानन्द झा
पूर्वप्राचार्य-केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय
भोपाल परिसर, भोपाल

प्रो. क्षेत्रवासी पण्डा
अध्यक्ष-तुलनात्मक भाषा एवं संस्कृति विभाग
बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल

प्रो. भारतभूषण मिश्र
निदेशक- केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय
क.जे.सौमेया विद्यापीठ, मुम्बई

प्रो. हंसधर झा
अध्यक्ष - ज्योतिषविभाग
केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, भोपाल परिसर

प्रो. सनन्दन कुमार त्रिपाठी
अध्यक्ष - साहित्यविभाग
केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, भोपाल परिसर

प्रो. श्रीगोविन्द पाण्डेय
आचार्य- शिक्षाशास्त्रविभाग
केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, भोपाल परिसर

डॉ. अशोक थपलियाल
अध्यक्ष - वास्तुविभाग
श्रीलालबहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

प्रकाशक

भारतीय ज्योतिषम्

एल - 108, **संत आशाराम नगर,**
फेज - 3, **लहारपुर,**
भोपाल - 462043, **मध्यप्रदेश**
Web : www.bharatiyajyotisham.com
E.mail : bharatiyajyotisham@gmail.com
Mob : 9752529724, 9039804102

सम्पादकीय

इस समय पूरे विश्व में एक धारा प्रवहित है। एक नया प्रयोग अकस्मात् सबके सामने आया है। उसी का नाम है भारतीय ज्ञान व्यवस्था। अनेक वर्षों से संस्कृत के नाम से तथा वैदिक साहित्य के नाम से विभिन्न प्रकार के चिन्तन तथा उस चिन्तन का प्रतिफल स्वरूप आभासित परिणाम पर स्थान-स्थान पर चर्चा की शृंखला जारी है। किन्तु उस पूरी धारा को अब एक नया नाम दिया गया है। प्रत्येक प्रयास को उसी धारा से जोड़ने का प्रयास स्थान-स्थान पर देखने को मिल रहा है। आधुनिक काल में परम्परा का अंश खोजने का कार्य चल रहा है। महत्त्व उस विषय को दिया जा रहा है जो प्राचीन के आधार पर आधुनिक को और आधुनिक किया जा सके।

शास्त्र चिन्तन में भी परिवर्तन लाने का प्रयास किया जा रहा है। जिन स्थानों पर परम्परागत धारा चलाने तथा रक्षा करने का संकल्प लिया जाता है तथा जिन स्थानों पर शास्त्र रक्षण उद्देश्य के रूप में प्रबोधित किया जाता है, उन स्थानों में भी अब सूचीबद्ध शास्त्र प्रणाली प्रारम्भ करने की बात की जा रहा है। फलस्वरूप आने वाले समय में सब सभी विषयों के ज्ञाता रहेंगे तथा गम्भीर शास्त्रीय ज्ञान का सर्वत्र ही अभाव रहेगा। अब एक व्याकरण के छात्र को महाभाष्य पढ़ना अनिवार्य नहीं है। महाभाष्य में कौन कौन से विषय है उनका बिन्दुवार ज्ञान मात्र पर्याप्त है।

प्रकाशन की दुनिया में भी यहीं स्थिति है। प्राय: जो पत्र लेखन करते हैं वे भी अपने पत्र को दोबारा नहीं पढ़ते हैं या सोचते हैं। लेखन परम्परा में एक व्यक्ति एक क्षेत्र को तथा उस क्षेत्र से सम्बन्धित कुछ विषयों को लेकर क्रमश: लेखन कार्य कर सकता है, किन्तु शृंखला बद्ध उस रचना का भी अब आभास मात्र ही रह गया है। अन्तर्विषयक लेखन तथा अन्तर्विषयक चिन्तन शास्त्राध्ययन के उद्देश्यों को पूर्ण करने में सहयोगी सिद्ध हो सकते हैं। वास्तविक उद्देश्यों की पूर्ति भी अन्तर्विषयक अध्ययन से ही सम्भव है। वर्तमान में प्रचलित भारतीय ज्ञान व्यवस्था नामक धारा में प्रवाहित होने का अवसर भी उस अन्तर्विषयक अध्ययन से ही प्राप्त हो सकता है। उस धारा से अलग रहने की कोई चेष्टा अध्येता को नैराश्य की ओर ले जा सकता है।

अन्तर्विषयक लेखों को ज्योतिर्वेद-प्रस्थानम् प्रारम्भ से ही समर्थन कर रही है। ज्योतिर्वेद शब्द का जिस अर्थ में यहाँ पर प्रयोग किया जा रहा है वही इस आशय को पुष्ट करता है। वैदिक वाङ्मय को सार्थक बनाने वाले अंगों का वर्गीकरण उद्देश्य पूर्ति के लिये तथा सौलभ्य के लिये किया गया है। यह वर्गीकरण एक शाखा वा अंग तक सीमित होने का बोध कभी नहीं करता है। एक मात्र अंग तक सीमित चिन्तन वैदिक उद्देश्यों की ओर अग्रेसर होने में प्रथम तथा मुख्य अवरोध है। अपने प्रकाशन में एक दशाब्द समय को पूर्ण करने के अवसर में ज्योतिर्वेद-प्रस्थानम् की ओर से लेखकों के लिये यह ही सन्देश है कि यह समय अन्तर्विषयक चिन्तन का है तथा पिछले एक दशाब्द से इसी संकल्प के साथ यह पत्रिका प्रकाशित हो रही है।

पत्रिका से सम्बन्धित सभी पद अवैतनिक है। पत्रिका में प्रकाशित लेखों से प्रकाशक को सहमत होना अनिवार्य नहीं है। किसी भी प्रकार के विवाद का समाधान भोपाल न्यायालय से ही स्वीकार्य है। शोधलेख आमन्त्रित है। पूर्वप्रकाशित लेख अनुमत नहीं है। लेख से सम्बन्धित विवादों का दायित्व लेखक का ही होगा। लेख को स्वीकार व अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार प्रकाशक को है।

ISSN 2278 - 0327

विषय-सूची

क्र.	लेख विषय	लेखक	पृ.सं.
1.	अद्वैत-वेदान्त व आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में चेतन-तत्त्व सम्बन्धी विचारों का तुलनात्मक विवेचन	डॉ. देवेन्द्र सिंह राजपूत	06
2.	वैदिक काल में जल संरक्षण	डॉ. लता देवी	11
3.	ऋग्वेद में निहित सामाजिक मूल्य	डॉ. सिन्धु सुमन	17
4.	कालिदास के काव्यों में न्याय एवं दण्ड के सिद्धांत	डॉ. पङ्कजा घई कौशिक	21
5.	जैनदर्शन-वाङ्मय में वास्तुविद्या एक आयाम	डॉ. रविन्द्र प्रसाद उनियाल	24
6.	ब्राह्मण ग्रन्थों में आग्नेय सृष्टि प्रक्रिया	डॉ. हनुमान मिश्र	28
7.	शिशुपालवध में वन्यजीव	डॉ. जी.एल. पाटीदार, झमकलाल भील	31
8.	'अचः परस्मिन् पूर्वविधौ' सूत्रविमर्श	भैरुसिंह मीना	34
9.	भारतीय संस्कृति में वर्णित कर्त्तव्यों का वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन	डॉ. मेघराज मीणा	38
10.	शब्दशक्तिप्रकाशिका के अनुसार आख्यात का स्वरूप विवेचन	डॉ. सन्तु सिंह	44
11.	तर्क का स्वरूप एवं जैनदर्शन	प्रीति यादव	46
12.	वेदों में आत्मप्रबन्धन की अवधारणा	सोमवीर	50
13.	आयुर्वेद में मर्म-विज्ञान की उपादेयता	पूजा कुमारी	54
14.	यूनानी दर्शन में ईश्वर की अवधारणा	डॉ. श्री भगवान	58
15.	शतपथ ब्राह्मण में इतिहास और पुराण का विश्लेषण	बनास कुमारी मीणा	61
16.	द्विवेदी एवं तिलक युग में हिन्दी समाचार पत्र	डॉ. आशा यादव	68
17.	आत्म-साक्षात्कार के विचार में आध्यात्मिक जीवन की प्रासंगिकता	डॉ. सोमनाथ दास	74
18.	भारत में बेरोजगारी की समस्या	डॉ. हरेश नारायण पाण्डेय	78
19.	भूजल संरक्षण जागरूकता की प्रासंगिकता : वर्तमान सन्दर्भ में	डॉ. राजेश सिंह, डॉ. आशुतोष सिंह	82
20.	अब्दुल बिस्मिल्लाह की कहानियों में हिन्दू-मुस्लिम समाज : साम्य-वैषम्य	मोहित, डॉ. संजीव कुमार	90
21.	महाभारत में पर्यावरण चेतना एवं संरक्षण	हितेश मीना	93
22.	फौजी मेहर सिंह के साँगों में स्त्री-स्वर	रितु रानी, प्रो. (डॉ.) आशा सहारण	96
23.	राजस्थान में पंचायतीराज चुनाव एवं शैक्षणिक योग्यताएं	मांगी लाल	99
24.	स्वयं सहायता समूह एवं बैंक सम्बद्धता	सुरेन्द्र नारायण पाण्डेय	103
25.	स्वामी श्रद्धानंद जी के शैक्षिक विचार तथा नई शिक्षा नीति 2020 में उनके विचारों की प्रासंगिकता	अर्चना, डॉ. आशा यादव	110
26.	पद्मपुराण का काल निर्धारण	कृष्ण कुमार, डॉ. श्रीभगवान	115
27.	चन्द्रकान्ता के कथा साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन	अजय कुमार, डॉ. शिवानी शर्मा, डॉ. राजेश कुमार शर्मा	119
28.	किसान आंदोलन में खाप पंचायतों की भूमिका	प्रदीप	123
29.	डॉ. महेश 'दिवाकर' के मुक्तक काव्य में सामाजिक कुप्रथा 'दहेज' का चित्रण	पूनम, डॉ. संजीव कुमार	129
30.	वास्तुपूजन विचार	विवेकशील पाठक	132
31.	रामायणकालीन भारतीय राजनीतिक व्यवस्था	नीतेश	136
32.	मूल-भारोपीय भाषा का स्रोत : वैदिक संस्कृत	राकेश शर्मा	139
33.	शिक्षा के रचनात्मक परिप्रेक्ष्य में फ्लिप कक्षा सन्दर्भित अधिगम अन्तराल की उपादेयता	अमिता कुमारी, डॉ. विनीता सिंह गोपालकृष्णन्	142
34.	वीतरागस्तोत्र में वर्णित केवली के अतिशयों की विवेचना	साध्वी मननप्रिया श्री	147
35.	'हिमाचलदर्शनम्' नामक महाकाव्य में वर्णित देव-देवालयों का विवेचन	कु. शुभम दीक्षित	152
36.	पेरिस समझौता और भारत का विकासशील देशों की ओर कूटनीति : स्वरूप और संभावनाएं	डॉ. प्रणव कुमार	156

ISSN 2278 - 0327

37. नियमित विद्यार्थियों की व्यावसायिक रुचियों का अध्ययन	संजीव कुमार, डॉ.सुनीता मुर्डिया	160
38. शैक्षिक अभिवृत्ति उपकरण का निर्माण एवं मानकीकरण	डॉ. सुरेन्द्र पाल, विपिन तेवतिया	167
39. रामायण में चित्रित भारतीय संस्कृति का उदात्त स्वरूप	संगीता सिंह	171
40. संस्कृत नीतिशास्त्रों में मंत्रिमंडल की अवधारणा	अंजू देवी, प्रो. (डॉ.) सुनीता सैनी	175
41. शिक्षा में योग की अवधारणा	राजू	178
42. एजाज रसूल बेगम (संविधान सभा में पहुंचने वाली एकमात्र मुस्लिम महिला)	सविता, डॉ. आशा यादव	182
43. स्वास्थ्य की गांधीय अवधारणा	डॉ. मिथिलेश कुमार तिवारी	186
44. दलित अस्मिता की राजनीति में प्रतीकों और नारों का समाजशास्त्रीय महत्व : एक अवलोकन	डॉ. पारिजात प्रधान	192
45. ललितबिस्तर – अपाणिनी शब्द का एक शानदार उदाहरण	प्रवीर सरकार	196
46. 'रेत समाधि' उपन्यास में चित्रित नारी की सामाजिक संघर्ष चेतना	सोनिया	199
47. संस्कृतशिक्षण हेतु तन्त्रयुक्तियों का रचनावादी निहितार्थ	डॉ. नितिन कुमार जैन, प्रदीप कुमार	205
48. भारत में सतत विकास की आवश्यकता एवं रणनीति	रवींद्र कुमार, सुलेमान	209
49. राजतरङ्गिणी में प्रयुक्त अकारादि कृदन्त संज्ञापदों का व्याकरणशास्त्रीय विमर्श	राजय कुमार देवांगन	217
50. दक्खिनी हिन्दी : इतिहास एवं साहित्य	डॉ. विशेष कुमार राय	221
51. गीता में सांस्कृतिक मूल्यों की शाश्वत धारा	डॉ. रामचन्द्र	227
52. राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा के विविध आयाम	डॉ. हनुमान प्रसाद चौधरी	229
53. वर्तमान स्थिति में श्वसन तंत्र पर पड़ रहा प्रभाव और योग द्वारा उपचार	सुनील कुमार, डॉ. अनुराग सचान	233
54. हिंदू नैतिकता के स्रोत की तलाश में श्रुति और स्मृति	डॉ. नसीरुद्दीन मंडल	236
55. पण्डित महोर सिंह का हरियाणा के लोक संगीत में योगदान	डॉ. मुकेश, योगेश कुमार	241
56. भोपाल गैस त्रासदी का यथार्थ और मंजूर एहतेशाम का कथा साहित्य	रविना काद्यान, डॉ. संजीव कुमार	245
57. कहानी साहित्य और समकालीन समाज	जुविन इयासमिन	247
58. संस्कृत नाटकों की उपलब्ध परम्परा	संजय कुमार मिश्र	253
59. भारतीय जीवन शैली वैश्विक आकर्षण का केन्द्र	चौटि शिवानन्द	258
60. 'छत्रपतिसाम्राज्यम्' में समाज एवं संस्कृति	अनु कुमारी	263
61. बालशिक्षा	डॉ. डम्बरुधर पति	267
62. वेद और विज्ञान	डॉ. रजनीश	270
63. राजी सेठ के 'गमे-हयात ने मारा' कहानी संग्रह में नारी की मनोदशा	अमित चहल	272
64. अनुसूचित जनजाति तथा गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों के स्व-प्रत्यय का तुलनात्मक अध्ययन	अनिता सिंह, डॉ. माधवी पांडे	275
65. हिंसा और दहशत की चादर तले : 'हमारा शहर उस बरस'	डॉ. देविना अक्षयवर	278
66. किशोरावस्था की छात्राओं की समस्याओं पर उनके विद्यालयीन वातावरण के प्रभाव का अध्ययन	डॉ. माधवी पांडे, कुसुम सिंह	282
67. आपस्तम्बधर्मसूत्र में स्त्रियों के अधिकार	डॉ. सरिता शर्मा	286
68. रक्षात्मक युक्तियों का प्रयोग करने वाले उच्चतर माध्यमिक स्तर के सामान्य छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि का अध्ययन	अवनीश कुमार पांडे, डॉ. अनामिका श्रीवास्तव	290
69. कालिदास साहित्य में सौन्दर्य चेतना : अभिज्ञानशाकुन्तलम् के सन्दर्भ में	राजेन्द्र प्रसाद मिश्रा	294
70. वैदिक साहित्य में वर्णित धर्म का स्वरूप	प्रो. विनय कुमार विद्यालंकार,आरती चौधरी	298
71. उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विज्ञान एवं कला संकाय के विद्यार्थियों की पर्यावरण के प्रति जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन	कुमार गौरव, प्रो., (डॉ.) मोहन सिंह पंवार	303
72. सुधा अरोड़ा के कहानी संग्रह 'काला शुक्रवार' में सामाजिक समस्या	सविता हुड्डा, डॉ. संजीव कुमार	307
73. उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले सामाजिक कारकों का अध्ययन	उमा चौरसिया, डॉ. एन.के. कौशिक	310
74. मराठी-हिंदी क्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. आम्रपाल शेंदरे	315

75. मनुस्मृतिकालीन समाज में महिलाओं के स्थान	सुव्रत गायेन	324
76. ईश्वर प्रणिधान-ईश्वर प्राप्ति का सरल मार्ग	अनुज कुमार, डॉ. मनोज कुमार टाक	329
77. वैश्विक परिप्रेक्ष्य में गाँधी की महत्ता एवं प्रासंगिकता	अरुण कुमार	334
78. स्वामी विवेकानंद के सामाजिक एवं शैक्षिक चिंतन का विश्लेषणात्मक अध्ययन	बृजभूषण राय, डॉ. आशीष कुमार बाजपेयी	339
79. 21 वीं सदी में महर्षि पतंजलि के क्रियायोग की महत्ता	नेहा बिष्ट, डॉ. भावना श्रीवास्तव	344
80. वेदों मे पर्यावरण शोधन हेतु यज्ञ का महत्व : एक विवेचनात्मक अध्ययन	उमा साह चौधरी, डॉ. मलिक राजेंद्र प्रताप	347
81. मानव जीवन में पुरुषार्थ और आध्यात्मिक विकास का सम्बन्ध	शक्ति सिंह , डॉ. विकास आर्य, डॉ. अरुण कुमार सिंह	350
82. स्वास्थ्य रक्षण में योग का महत्व	सूरज सिंह, डॉ. मलिक राजेन्द्र प्रताप	355
83. उच्चतर माध्यमिक स्तर के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन	राकेश कुमार, प्रो., (डॉ.) मोहन सिंह पंवार	358
84. भारत-श्रीलंका संबंध एवं चीन हित	नवीन कुमार	362
85. व्यक्तित्व एवं मानसिक स्वास्थ्य पर कोविड-19 महामारी की प्रतीति	डॉ. योगेन्द्र बाबू, डॉ. हरीश पाण्डेय	366
86. सामान्य एवं श्रवण बाधित छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. अनामिका श्रीवास्तव, अवनीश कुमार पांडे	372
87. मनोविकारों के परिप्रेक्ष्य में योग का अध्ययन	प्रकाश चन्द्र शर्मा, प्रो.(डॉ.) सरस्वती काला	376
88. साहित्य और समाज का अंत:संबंध	किरण चौधरी	379
89. शासकीय एवं अशासकीय माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन	कुसुम सिंह, डॉ. माधवी पांडे	385
90. गणेश पाइन: एक रहस्यवादी चित्रकार	शोभना	390
91. उच्चतर माध्यमिक स्तर की बालिकाओं की शिक्षा पर प्रभाव डालने वाले आर्थिक कारकों का विश्लेषणात्मक अध्ययन	डॉ. एन.के. कौशिक, उमा चौरसिया	392
92. ग्रामीण किशोरियों के व्यक्तित्व विकास पर अध्ययन	प्रेरणा, प्रो.(डॉ.) सरस्वती काला	399
93. मानव जीवन में प्राकृतिक चिकित्सा का महत्व	सुनीता रावल, डॉ. मलिक राजेंद्र प्रताप	402
94. महिलाओं में पी.सी.ओ.डी. पर एक्यूप्रेशर के प्रभाव का अध्ययन	अर्चना दुबे, प्रो.(डॉ.) सरस्वती काला	406
95. व्याकरणिक प्रकृति एवं प्रत्यय का दार्शनिक विमर्श	डॉ. लेखराम दन्नाना	411
96. पंचसन्ध्य:	डॉ. सुमन कुमारी	414
97. दलितोत्थान में लोहिया समग्र ग्राम विकास योजना का प्रभाव	डॉ. वरुण कुमार उपाध्याय	419
98. वामनावतार की यथार्थता	डॉ. सुनीति आर्या	428
99. शासकीय एवं अशासकीय माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन	श्यामल कुमार यादव, प्रो., (डॉ.) मोहन सिंह पंवार	430
100. मनुष्य जीवन में कर्मयोग का महत्व	डॉ.भावना श्रीवास्तव, विजयलक्ष्मी	434
101. अष्टांग योग क्या जीवन की हर समस्या का समाधान है?	सुनील कुमार, डॉ. मनोज टाक	441
102. महिलाओं के मानसिक स्वास्थ्य पर योगासन, प्राणायाम और ध्यान का परिणाम	डॉ. जिज्ञेश बी. पटेल	444
103. विदिशा जिले के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र में स्थित पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों व शिक्षिकाओं की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन	सत्यम शर्मा, डॉ. एन.के. कौशिक	447
104. प्रतापविजय नाटक एवं खण्डकाव्य की राष्ट्रभावनापरक सूक्तियों की समीक्षा	डॉ. मुरली धर पालीवाल	452
105. कक्षा 11वीं में अध्ययनरत वाणिज्य एवं कला संकाय के विद्यार्थियों की पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन	प्रो., (डॉ.) मोहन सिंह पंवार, कुमार गौरव	456
106. भास के प्रतिमा नाटक में परिलक्षित हुआ पर्यावरण का विचार	डॉ. अर्णव पात्र	460
107. विश्वग्राम की परिकल्पना में अनुवाद की प्रासंगिकता	डॉ. एच.ए. हुनगुंद	462
108. नव्यनैयायिक परम्परा में आचार्य जगदीशतर्कालंकार एवं उनका योगदान	डॉ. संजय कुमार दुबे	464
109. श्रव्यकाव्य में स्तोत्रकाव्य : एक अध्ययन	रंजेश्वर झा	469
110. स्कन्दपुराणान्तर्गत अवन्ती-खण्ड में प्रयुक्त संयुक्त क्रिया-रूप	डॉ. आशा, विकास कुमार	473

ISSN 2278 - 0327

अद्वैत-वेदान्त व आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में चेतन-तत्त्व सम्बन्धी विचारों का तुलनात्मक विवेचन

डॉ. देवेन्द्र सिंह राजपूत
सहायक आचार्य, देशबन्धु महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

सारांश –

मनुष्य स्वभावत: चिन्तक एवं उत्सुक होने के कारण चिरकाल से ही इस ब्रह्माण्ड के रहस्यों एवं जीवन-मृत्यु से सम्बन्धित विषयों को जानने का प्रयास करता रहा है। भारतीय चिन्तन परम्परा में वैदिक काल से ही ऋषि-महर्षि, तत्त्ववेत्ता, वैज्ञानिक एवं मनीषी अपने गहन चिन्तन के माध्यम से यह जानने का प्रयास कर रहे हैं कि ब्रह्माण्ड की सम्पूर्ण व्यवस्था का व्यवस्थापक कौन है? वह कौनसा तत्त्व है जो कण-कण में व्याप्त है? ज्ञान का सर्वोच्च स्रोत है? इन्हीं जिज्ञासाओं के अन्वेषण के द्वारा मनीषियों ने यह जाना कि चेतना ही एक मात्र ऐसा तत्त्व है जो सर्वव्याप्त है, उसकी सत्ता त्रिकालाबाधित है और वह समस्त जगत व ब्रह्माण्ड का आदि कारण है। चेतना के अभाव में कोई भी ज्ञान प्रक्रिया सम्भव नहीं है। विज्ञान जगत् की भी सबसे बडी समस्या यही है कि इस ब्रह्माण्ड का संचालक कौन है, समस्त क्रियाओं की प्रेरक शक्ति का आदि स्रोत क्या है? इस सम्बन्ध में आधुनिक वैज्ञानिकों ने अनेक सिद्धान्त गढे। उन सिद्धान्तों का अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि वे उपनिषदों के चिन्तन से पूर्णतया प्रभावित रहे हैं। आधुनिक वैज्ञान भी ब्रह्माण्ड सम्बन्धी समस्त क्रियाकलापों के मूल में एक ही मूल स्रोत (चेतन तत्त्व) को स्वीकार करता है। अद्वैत वेदान्त में वर्णित प्रमाता चैतन्यस्वरूप है। चैतन्य का ज्ञान प्राप्त करने वाला भी ब्रह्म का अंश ही है। अत: वेदान्त का विषय ब्रह्मविद्या का अधिकारी प्रमाता ही हो सकता है वह चेतन तत्त्व ही होगा। Swami Jitatmananda ने अपनी पुस्तक Holistic Science and Vedanta में कहा है इस वैश्विक प्रक्रिया (cosmic process) का व्यवस्थापक व नियन्ता एकमात्र चेतन तत्त्व शिव है। ब्रह्माण्ड की प्रत्येक क्रिया का नियन्ता और ज्ञाता वह अन्तर्यामी है।

केनोपनिषद् में हमारी समस्त ऐन्द्रिय शक्तियों के प्रकाशक व प्रेरक के रूप में चेतन तत्त्व का वर्णन किया है। आत्मा में ही सभी इन्द्रियों के प्रकाशन, नियन्त्रण की शक्ति है, वही श्रोत्र का श्रोत्र, मन का भी मन, वाणी का भी वाणी, प्राण का भी प्राण व चक्षु का भी चक्षु है। वेदान्त के विचार में सृष्टि के कण-कण में चेतना व्याप्त है। जगदीश चन्द्र बोस ने भी 10 मई, 1901 ई0 को विज्ञान जगत् के सामने यह सिद्ध किया कि मनुष्य (Human), धातु (Metal), पौधा (Plant) तीनों में चेतना होती है। वेदान्त के विचार के अनुरूप पर्यावरण वैज्ञानिक आर्ने नैस भी प्रकृति (जीव) व स्व (चेतना) दोनों को एक ही मानते हैं। इनके अनुसार प्रकृति के सभी पदार्थों में अन्तर्सम्बन्ध और अन्तर्निर्भरता है। आधुनिक भौतिकी में ऊर्जा का विचार चेतना से सम्बद्ध है। जगत् ब्रह्म (Energy) की ही अभिव्यक्ति है। वेदान्त दर्शन चेतना को सर्वव्यापी, व्यापक मानता है। इसका स्वरूप इन्द्रिय, मन आदि के द्वारा जानना असंभव है। इसे महारहस्य कहा है, वैज्ञानिक भी सत्ता के विषय में निश्चित नहीं हैं। इस प्रकार प्रस्तुत शोध पत्र में यह बताने का प्रयास किया गया है कि भौतिक पदार्थों द्वारा उस चेतन तत्त्व को व्यक्त नहीं कर सकते, बल्कि भौतिक पदार्थों के मूल में चेतन तत्त्व ही है। इसी विचार से आधुनिक वैज्ञानिकों को विज्ञान जगत् की अनेक समस्याओं का समाधान ढूंढने के लिए एक नई प्रेरणा मिली।

पारिभाषिक शब्द –

ब्रह्म, आत्मा, चेतन-तत्त्व, Consciousness, Ecological-Self, Energy, Unified-field, OMNIJECTIVE.

भूमिका –

मनुष्य स्वभावत: चेतनस्वरूप, चिन्तनशील व जिज्ञासु प्रवृत्ति का प्राणी है। इसी प्रवृत्ति के कारण ही वह चिरकाल से इस जगत् व सम्पूर्ण सृष्टि के रहस्योद्घाटन की ओर सतत प्रयासरत रहा है। इस ब्रह्माण्ड का सृष्टा व नियन्ता कौन है? सृष्टि में विद्यमान पदार्थों

के व्यवहार का सिद्धान्त क्या है ? ब्रह्माण्ड की सर्वोच्च शक्ति कौन है ? ये सभी जिज्ञासाएँ व प्रश्न लम्बे समय से विचार-विमर्श के केन्द्र बिन्दु रहे हैं। इस ब्रह्माण्ड में समस्त जड़ व चेतन पदार्थों का व्यवहार परिलक्षित होता है। भारतीय ज्ञान परम्परा में वैदिक वाङ्मय से ही इन गूढ़ विषयों पर ऋषियों व मनीषियों ने गहन चिन्तन किया है। चेतना ही एक मात्र ऐसा तत्त्व है जो सर्वव्याप्त है, चेतना के अभाव में कोई भी ज्ञान प्रक्रिया सम्भव नहीं है।

विज्ञान जगत् ने भी विगत कई सदियों में इस जगत् के पदार्थों, तत्त्वों, उनके आपसी सम्बन्ध व व्यवहार के अध्ययन द्वारा एक अच्छी प्रगति की है। इसी सम्बन्ध में वह आज नैनो कणों तक की अपनी खोज को साकार कर सका है। किन्तु समस्त वैज्ञानिक खोजों के मूल में सबसे बड़ी चुनौति यह है कि उस मूल तत्त्व का अन्वेषण करना और पता लगाना जो कि समस्त पदार्थों व घटनाओं का आदि कारण है। अन्य शब्दों में कहें तो विज्ञान कि यह समस्या दार्शनिक समस्या है। आधुनिक वैज्ञानिक यह जानने का प्रयास कर रहे हैं कि इस जगत् में प्राण-शक्ति (Consciousness) का मूल आधार क्या है ? इस ब्रह्माण्ड व ब्रह्माण्डीय घटनाओं का संचालक कौन है, समस्त क्रियाओं की प्रेरक शक्ति कौन है ? ऐसे अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं जिनमें आधुनिक वैज्ञानिकों ने उपनिषदों से प्रभावित होकर ब्रह्माण्ड सम्बन्धी समस्त क्रियाकलापों तथा वैज्ञानिक प्रक्रिया के मूल में एक ही चेतन तत्त्व को स्वीकार किया है। इस शोधपत्र का उद्देश्य औपनिषदिक परम्परा व अद्वैत वेदान्त दर्शन के चेतना सम्बन्धी विचारों को अभिव्यक्त करते हुए आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा इस सम्बन्ध में प्रकट किए गए विचारों का अध्ययन एवं परस्पर विश्लेषण करना है।

उपनिषद् दर्शन एवं अद्वैत-वेदान्त परम्परा में चेतन-तत्त्व सम्बन्धी विचार -

वेदान्त दर्शन के अनुसार ब्रह्मतत्त्व (आत्मतत्त्व) का ज्ञान ही परम कोटि का ज्ञान है। ब्रह्म चेतनस्वरूप है - सच्चिदानन्द है। ब्रह्म ही एकमात्र सत् है, चैतन्य है, आनन्द स्वरूप है।[1] ब्रह्म (आत्मा) चैतन्य है, जड नहीं है, वह समस्त जगत् का प्रकाशक है और स्वयं प्रकाशमान है।[2] परमब्रह्म ज्ञानों में सर्वोत्कृष्ट ज्ञान है, अत: ब्रह्म का निरूपण चैतन्यरूप से किया जा सकता है। चेतन तत्त्व विज्ञान स्वरूप है।[3]

अद्वैत वेदान्त में वर्णित प्रमाता चैतन्यस्वरूप है। चैतन्य का ज्ञान प्राप्त करने वाला भी ब्रह्म का अंश ही है।[4] यहां प्रमाता को साधन चतुष्टय से सम्पन्न बताया गया है।[5] अत: वेदान्त का विषय ब्रह्मविद्या का अधिकारी प्रमाता ही हो सकता है वह चेतन तत्त्व ही होगा।

अद्वैत वेदान्त में ब्रह्माण्ड के संचालक, व्यस्थापक के रूप में चेतनतत्त्व ब्रह्म की सत्ता कारण रूप में स्वीकार्य है। सृष्टिकर्त्ता को सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति व संहार का पूर्ण ज्ञान है। वह अपनी इच्छा से स्वयं को जगत् रूप में प्रकट करता है, इसके लिये उसने तप किया।[6] वह ब्रह्म इसी में अनुप्रविष्ट हो गया। सृष्टि के संचालन में उस ब्रह्म का तप ज्ञानमय है, बिना ज्ञान के वह व्यवस्थापक नहीं हो सकता।[7] वह शुद्ध चेतना की अवस्था में अपनी शक्ति माया से एकीभूत होकर सृष्टि का कारणस्वरूप है।[8] वही माया के माध्यम से जगत् के रूप में स्वयं को अभिव्यक्त करता है।

अद्वैत वेदान्त परम्परा में चेतना को अन्तर्यामी कहा गया है। बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा है कि- जो समस्त भूतों के अन्तर्गत रहकर उनका नियमन करता है, वह तत्त्व आत्मा ही है जिसे अन्तर्यामी या अमृतत्त्व कहते हैं। चेतना ही वह तत्त्व है जो समस्त भूतों का ज्ञान रखते हुये उनका नियन्ता भी है।[9] उस परम चेतन तत्त्व ने सृष्टि की, तदनन्तर वह इसी में प्रवेश कर गया।[10]

Swami Jitatmananda ने अपनी पुस्तक Holistic Science and Vedanta में कहा है इस वैश्विक प्रक्रिया (cosmic process) का व्यवस्थापक व नियन्ता एकमात्र चेतन तत्त्व शिव है। ब्रह्माण्ड की प्रत्येक क्रिया का नियन्ता और ज्ञाता वह अन्तर्यामी है।[11]

केनोपनिषद् में प्रेरक के रूप में चेतन तत्त्व पर महती चर्चा हुई है। ज्ञान ही चित्त शुद्धि व अमृतत्त्व प्राप्ति का एकमात्र साधन है।[12] हमारा समस्त ज्ञान अन्त:करण (इन्द्रिय, मन, बुद्धि) के द्वारा होता है। मन आदि अचेतन पदार्थ भी किससे इच्छित व प्रेरित होकर वह अपने अपने विषयों से चेतन की भांति अन्वित देखे जाते हैं ?[13] इस सम्बन्ध में किसी चेतन अधिष्ठाता से ही उनका अन्वय होता है। आत्मा में ही सभी इन्द्रियों के प्रकाशन, नियन्त्रण की शक्ति है, वही श्रोत्र का श्रोत्र, मन का भी मन, वाणी का भी वाणी, प्राण का भी प्राण व चक्षु का भी चक्षु है।[14]

उपनिषदों में वाक् तत्त्व के मूल में चेतना को ही कहा गया है। वाक् को ब्रह्म (चेतना) कहा है।[15] हमारी उच्चारण प्रक्रिया में ध्वनि शुद्ध चैतन्य (स्व) की इच्छा से ही अभिव्यक्त होती है।[16] वाणी के प्रत्येक व्यापार (cognition process) का जो प्रेरक है, साथ ही समस्त बोधों में जो जाना जाता है वह चेतना ही है।[17] अत: वाणी का समस्त व्यापार ब्रह्म द्वारा प्रकाशित होता है, किन्तु वह ब्रह्म वाणी से प्रकाशित नहीं हो सकता।

समस्त वेदान्त वाङ्मय का मुख्य प्रतिपाद्य है ब्रह्मात्मैक्य। जीव वस्तुतः ब्रह्म ही है। वेदान्त के विचार में सृष्टि के कण-कण में चेतना व्याप्त है।[18]

आधुनिक विज्ञान सम्मत चेतन-तत्त्व (Consciousness) सम्बन्धी विचार -

भौतिकी के नोबेल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिक जगदीश चन्द्र बोस ने 10 मई, 1901 ई0 को विज्ञान जगत् के सामने यह सिद्ध किया कि मनुष्य (Human), धातु (Metal), पौधा (Plant) तीनों में चेतना (Consciousness) होती है। विज्ञान जगत् में आगे चलकर यह विचार गहन पारिस्थितिकीय अध्ययन के रूप में सामने आया। 1870 ई0 नार्वे के पर्यावरण वैज्ञानिक आर्ने नैस (Arne Naess) ने अपने चिन्तन में पाया कि प्रकृति के सभी पदार्थों में अन्तर्सम्बन्ध और अन्तर्निर्भरता है। आर्ने नैस ने चेतना को Ecological - Self कहा। इस तथ्य का वर्णन Fritjof Capra ने अपनी पुस्तक में इस प्रकार किया है -

"Care flows naturally if the 'self' is widened and deepened so that protection of free nature is felt and conceived as protection of ourselves... just as we need no morals to make us breathe... (so) if your 'self' in the wide sense embraces another being, you need no moral exhortation to show care...you care for yourself without feeling any moral pressure to do it.... If really is like it is experienced by the ecological self, our behaviour naturally and beautifully follows norms of strict environmental ethics."[19]

इसी सम्बन्ध में वेदान्त के विचार के अनुरूप आर्ने नैस भी प्रकृति (जीव) व स्व (चेतना) दोनों को एक ही मानते हैं, इनकी एकरूपता को इस प्रकार उद्घाटित करते हैं -

"Within the context of deep ecology, the view that values are inherent in all of living nature is grounded in the deep ecological or spiritual, experience that nature and the self are one. This expansion of the self all the way to the identification with nature is the grounding of deep ecology, as Arne Naess clearly recognizes."[20]

आधुनिक भौतिकी में ऊर्जा का सिद्धान्त एक महत्त्वपूर्ण विचार है। आइन्सटाइन के सूत्र $E=mc^2$ के अनुसार भौतिक पदार्थ चेतन तत्त्व (ऊर्जा) में परिवर्तनीय है। ऊर्जा नियत, अपरिवर्तनशील एवं निरन्तर है। पदार्थों का रूप परिवर्तित होता है किन्तु ब्रह्माण्ड में ऊर्जा की मात्रा निश्चित है, उसमें परिवर्तन नहीं होता। यह 'ऊर्जा का सिद्धान्त' औपनिषदिक चेतन-तत्त्व के विचार से सम्बद्ध है। आइन्सटाइन ने भी स्वीकारा है कि व्यवस्थित ज्ञान के बिना ब्रह्माण्ड का अस्तित्व सम्भव नहीं है। अतः सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म (Energy) की ही अभिव्यक्ति है। स्वामी जीतात्मानन्द ने भी इस तथ्य को उद्घाटित करते हुए कहा है -

Energy (Shakti) and Consciousness (Chit) are one: this is the basic finding of Vedanta.....can you separate the fire from its burning power? You can't. Neither can you ....separate Brahman from Shakti.....Energy is the expression of Will and willing comes only when there is a Consciousness behind it.[21]

इस ऊर्जा का स्रोत चेतन तत्त्व ही है -

Energy comes from Consciousness..... Consciousness is the root of all Energy.[22]

Energy -

(1) Pure Consciousness, casual state (शुद्ध चैतन्य ब्रह्म)

(2) Functional Consciousness (माया से युक्त ब्रह्म)

इस Energy को ही Unified Field कहते हैं, जहाँ से सृष्टि का आरम्भ माना जाता है। Erwin Schrodinger के अनुसार nified Field के सिद्धान्त का बीज भी उपनिषदों में है।[23]

अद्वैत-वेदान्त में अद्वैत तत्त्व की ही सत्ता है -

एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म।[24]

आधुनिक वैज्ञानिकों ने इसे nified Field अर्थात् सभी शक्तियों का केन्द्र कहा है, यही Energy है अर्थात् चेतना का पुँज है।

Michael talbolt ने सत्ता को परिभाषित करने के लिये OMNIJECTIVE व OMNICIENT शब्दों का प्रयोग किया-

To describe this phenomena Michael talbolt in his recent book Mysticism and new physics uses the word 'omnijective' Realities like electron the subatomic world have always an 'omnijective' existence for the Physicists, that is, the objective reality is inextricably

connected with subjective Consciousness of the scientist.25

अद्वैत-वेदान्त भी चेतना को सर्वव्यापी एवं व्यापक मानता है।[26] इसका स्वरूप इन्द्रिय, मन आदि के द्वारा जानना असंभव है।[27] इसे महारहस्य कहा है, वैज्ञानिक भी सत्ता के विषय में निश्चित नहीं हैं। इसी सन्दर्भ में हाइजेनबर्ग ने 'Theory of Uncertainty' नामक सिद्धान्त दिया।

मैक्स प्लांक भी सत्ता (चेतना) के सम्बन्ध में अद्वैत-वेदान्त के विचारों से प्रभावित हैं, यथा -

In answer to the question "Do you think that Consciousness can be explained in terms matter and its law?" Max Plank answered that 'He did not'.....Everything that we talk about, Everything that we regard as existing postulates Consciousness.[28]

अतएव जब हम उपनिषदों में निहित आत्मा, ब्रह्मा व चेतन-तत्त्व सम्बन्धी गूढतम चिन्तन का अध्ययन करते हैं और आधुनिक विज्ञान के सिद्धान्तों व वैज्ञानिकों द्वारा स्वीकार की गई बातों का परस्पर तुलनात्मक अध्ययन व विश्लेषण करते हैं तो पाते हैं कि इस ब्रह्माण्ड के मूल में दोनों ही परम्पराओं में गहन चिन्तन मिलता है। चूँकि भारत-भूमि सदा से ही ज्ञान-विज्ञान और चिन्तन का केन्द्र रही है अत: जिन सिद्धान्तों को गढ़ने का प्रयास आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा किया जा रहा है वे सिद्धान्त हजारों वर्ष पूर्व हमारे वैदिक व औपनिषदिक चिन्तन में प्राप्त होते हैं।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि समस्त सृष्टि जो कि भौतिक पदार्थों से समन्वित है। इन जड़ पदार्थों द्वारा उस चेतन-तत्त्व को व्यक्त व प्रकाशित नहीं किया जा सकता। इन सभी भौतिक पदार्थों के मूल में चेतन-तत्त्व ही है। इसी विचार से आधुनिक वैज्ञानिकों को विज्ञान जगत् की अनेक समस्याओं का समाधान ढूंढने के लिए एक नई प्रेरणा मिली।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

1. ईशादि नौ उपनिषद्, शंकराचार्य, गीताप्रेस, गोरखपुर, द्वितीय संस्करण, सं. 2060.
2. वेदान्तसार, सदानन्द, डॉ. राकेश शास्त्री, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2004.
3. Capra, Fritjof, 1996, The Web of Life 'A New Synthesis of Mind and Matter from the author of the Tao of Physics, Harper Collins Publishers.
4. Jitatmanand, Swami, 1993, Holistic Science and Vedanta, Bharitiya Vidya Bhavan, Bombay.
5. Jitatmanand, Swami, 2006, Modern Physics and Vedanta, Bharitiya Vidya Bhavan, Bombay.
6. Naess, Arne, Ecology, Community and Lifestyle, outline of An Ecology, Cambridge University Press, 1989.

सन्दर्भ -

1. सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। (तैत्तिरीयोपनिषद् 2/1/1)
2. तदेव ज्योतिषां ज्योति। (बृहदारण्यकोपनिषद् 4/4/16)
   तस्य भाषा सर्वमिदं विभाति। (कठोपनिषद् 1/15)
3. विज्ञानमानन्दं ब्रह्म। (बृहदारण्यकोपनिषद् 3/9/28)
   प्रज्ञानं ब्रह्म। (ऐतरेयोपनिषद् 5/3)
4. विषयो जीवब्रह्मैक्यं शुद्धचैतन्यं प्रमेयं तत्रैव वेदान्तानां तात्पर्यात्। (वेदान्तसार, पृष्ठ संख्या 70)
5. अधिकारी तु विधिवदधीत.....
   .....नितान्तनिर्मलस्वान्त: साधनचतुष्टयसम्पन्न: प्रमाता। (वेदान्तसार, पृष्ठ संख्या 24)
6. सोऽकामयत। बहु स्यां प्रजायेयेति। स तपोऽतप्यत।
   .....तत्सृष्टवा तदेवानुप्राविशत्। (तैत्तिरीयोपनिषद् 2/6/1)
7. यस्य ज्ञानमयं तप:। (मुण्डकोपनिषद् 1/1/8)
8. आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न पर: किञ्चनास। (नासदीयसूक्त, 2)
9. य: पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं य: पृथिवीमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृत:॥
10. तत्सृष्टवा तदेवानुप्राविशत्। (तैत्तिरीयोपनिषद् 2/6/1)
11. Creation is the appearance of name and form on the infinite Brahman, which is of the nature of Absolute Existence – Consciousness – Bliss. (Holistic Science and Vedanta, p.28)
12. विद्यया विन्दतेऽमृतम्।(केनोपनिषद् 2/4)
13. केनेषितं पतति प्रेषितं मन:। केन प्राण: प्रथम: प्रैति युक्त:। केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षु: श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति ॥ (केनोपनिषद् 1/1)
14. श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणश्चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीरा: प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥

(केनोपनिषद् 1/2)
15. वाग्वै सम्राट् परमं ब्रह्म। (बृहदारण्यकोपनिषद् 4.1)
16. यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥
(केनोपनिषद् 1/4)
17. प्रतिबोधविदितं मतममृतत्वं हि विन्दते।
(केनोपनिषद् 2/4)
18. सर्वं खल्विदं ब्रह्म। (छान्दोग्योपनिषद् 3/19/1)
19. Capra, Fritjof, Deep Ecology - A new paradigm, The Web of Life, P.12
20. Capra, Fritjof, Deep Ecology- A new paradigm, The Web of Life, P.11
21. Jitatmanand, Swami, Holistic Science and Vedanta, p.28
22. Ramakrishna Mission, Philosophy and Science : An E&ploratory Approach to Consciousness, p. 335
23. Schrodinger, Erwin, What is life, p.169
24. छान्दोग्योपनिषद् (6/2/1)
25. Jitatmanand, Swami, Modern Physics and Vedanta, p.41
26. एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥
(श्वेताश्वतरोपनिषद् 6/11)
27. नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुसा।
(कठोपनिषद् 6/12)
28. Jitatmanand, Swami, Modern Physics and Vedanta, p.45

ISSN 2278 - 0327

वैदिक काल में जल संरक्षण

डॉ. लता देवी
सहायक आचार्य
संस्कृत-विभाग
हिमाचल प्रदेश विश्व विद्यालय, शिमला

संक्षेपिका

जीवन का आधारभूत जल सृष्टि की उत्पत्ति का मूल कारण है अत: सृष्टि के प्रत्येक प्राणी के जीवन का आधार जल है। पञ्चमहाभूतों से हमारा शरीर निर्मित है जिसमें एक तत्त्व जल है जल न केवल मनुष्य के जीवन का आधार है अपितु इस पृथ्वी पर विद्यमान जीव - जन्तु, पशु - पक्षी, पेड़-पौधें, वनस्पतियों आदि की स्थिति का मूल कारण है। वैदिक साहित्य में जल के महत्त्व, गुण, स्वरूप, संवर्धन व संरक्षण का विस्तृत वर्णन किया गया है तथा इसके औषधीय गुणों का भी व्याख्यान किया गया है। जल न केवल जीवन प्रदान करने वाला है अपितु प्रत्येक जीव की आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला महत्त्वपूर्ण तत्त्व है।

वैदिक साहित्य में जल संरक्षण से सम्बंधित अनेक मन्त्र उपलब्ध होते हैं जिसके कारण आधार पर ज्ञात होता है कि वैदिक काल में भी जल संरक्षण के लिए प्रयास किए जाते थे। जल संरक्षण से सम्बंधित प्रस्तुत विषय वस्तु में सर्वप्रथम जल संरक्षण का अर्थ तत्पश्चात् जल जीवन का आधार, जल संरक्षण की आवश्यकता, उपाय, जल संरक्षण के उद्देश्य, विभिन्न धर्मों से जल के सम्बन्ध की व्याख्या की गई है तथा अन्त में निष्कर्ष दिया गया है।

जल ही जीवन है और जल संरक्षण बहुत आवश्यक है। वैदिक युग से लेकर आधुनिक वैज्ञानिक युग में भी जल संरक्षण के महत्त्व को नजर अंदाज नहीं किया गया है। क्योंकि मानव जीवन का आधार-स्तंभ जल ही है, जो मनुष्य के अस्तित्व को बचाता है। जल के महत्त्व को वैदिक कालावधि से लेकर आज तक सभी ने एक मत से स्वीकार किया है। वैसे तो मानव जीवन परमात्मा निर्मित सभी तत्त्वों पर आश्रित है, किंतु उसमें जल तत्त्व का अपना मुख्य विशिष्ट स्थान होता है। प्राचीन काल से लेकर अठारहवीं शताब्दी तक देश के विभिन्न भागों में जल संरक्षण के विभिन्न संरचनाओं का उपयोग किया गया इनका निर्माण एवं पुनर्निर्माण भी हुआ।

जल का आधारभूत संपूर्ण मानव सृष्टि है। पौराणिक मान्यताओं के अनुसार जल की उत्पत्ति नर से हुई है। उसका प्राचीन नाम नारहै, वह नार में ही निवास करता है, अत: उस नर को नारायण कहते हैं।[1]

अप: एव संसर्जादौ तासु वीर्थ्यमथा सृजत्।
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवा।।

सब के आदि में जल की ही सृष्टि थी और उन्हीं जलों में वीर्य का सृजन किया था। ये जलनार इस नाम से कहे गये हैं और ये जल नर की सन्तति है। वह नार में हर निवास करता है। यथा -

अयन तस्य ता: पूर्वं तेन नारायण: स्मृत: ।
हिरण्यवर्णमभवत्तदन्तमुदकेशयम् ।।

ये ही जल सबसे पूर्व उस परम पुरुष नर के निवास का स्थल था और इसी कारण से उनका नाम नारायण हो गया है। उसके अन्दर जल में शयन करने वाले हिरण्यवर्ण हुए थे।[2] जल की सुरक्षा आदि काल से ही हमारे महान् पूर्वजों, ऋषियों, देवताओं, वैदिक संतों द्वारा की जाती रही है। ऋग्वेद में इन्द्र देव के द्वारा जल संरक्षण का वर्णन मिलता है।[3]

अपामतिष्ठध्दरूणाद्वरं तयोऽन्तर्वृत्रस्य जठरेषु पर्वत: ।
अभीमिन्द्रो नद्यो वव्रिणा हिता विश्वा अनुष्ठा: प्रवणेषु जिघ्नते ।।

अर्थात् जलप्रवाहों को रोकने वाले पर्वत रूप वृत्र ने अपने उदर में जलों को स्थिर कर लिया, जिससे तमिस्त्रा व्याप्त हुई। तब इन्द्रदेव ने वृत्र द्वारा रोके हुए जलप्रवाहों को मुक्त करके नीचे की ओर बहाया।[3] जलप्रवाहों को संरक्षण प्रदान करने के निमित्त इन्द्रदेव अपने बल को बढ़ाकर जलों में पर्वत की भाँति अविचल स्थिर हो गये।

यजुर्वेद में जल यज्ञ के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। औषधि के रूप में जल का वर्णन आया है जिसकी स्तुति सभी प्रकार के

रोगों के नाश के लिए की गई है।

शं नो देवीरभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये।
शं योरभि स्त्रवन्तु नः।।

अर्थात् दिव्य जल हम सब के लिए अभीष्ट फलदायक तथा तृप्तिदायक बने। वह हमारे रोगों के शमन तथा अनिष्ट हटाने के लिए बरसता रहे, इस प्रकार सब प्रकार से कल्याण करें।[4] स्वच्छ शुद्ध जल का सेवन करके रोगों का नाश होता है। अशुद्ध जल के पान से शरीर में तरह-तरह के विकारों का आगमन होगा। पृथ्वी पर जल भिन्न-भिन्न रूप में प्राप्त होता है। इन्द्र का वज्र इन्द्र के उपासकों के लिए मधुर जल प्रदान करता है। पृथ्वी पर प्रवाहित जल सभी प्रकार के पोषक तत्त्वों में विद्यमान है। सामवेद में जल के भिन्न-भिन्न रूपों का वर्णन मिलता है।

चक्रं यदस्याप्स्वा निषत्तमुतो तदस्यमै मध्विच्चछद्यात्।
पृथिव्यामतिषितं यदूधः पयो गोष्वदधा ओषधीषु।।

अर्थात् अंतरिक्ष में दैदीप्यमान इन्द्र का वज्र उपासकों के लिए मधुर जल प्रेरित करता है। पृथ्वी पर प्रवाहमान वही जल गायों में दूध के रूप में और वनस्पतियों में पोषक रस के रूप में विद्यमान है।[5] जल संरक्षण हेतु वेदों में वर्षा के जल तथा बहते हुए जल के महत्त्व को विशेषतः प्रकट किया गया है। अथर्ववेद का कहना है कि ऐसे वार्षिकी जलों में पोषण सामर्थ्य होता है।

अपामह दिव्यानामयां स्त्रोतस्यानाम्।
उपामह प्रमेजनेऽश्वा भवथ वाणिनः।।

अर्थात् हे मनुष्यों! आकाश में बरसने वाले स्त्रोतों से निकलने वाले, फैले हुए जलों में पोषण सामर्थ्य होता है। यह तुम निश्चय रूप से जानो तथा इनसे वेगवान् व बलवान् पुरुष बन जाओ।[6]

जल संरक्षण का अर्थ

जल संरक्षण का अर्थ है जल के प्रयोग को घटाना, सफाई, निर्माण एवं कृषि आदि के लिए अपशिष्ट जल का पुनः चक्रण करना। मानव अपने स्वास्थ्य, सुविधा, दिखावा व विलासिता को दिखाने के लिए अमूल्य जल की बर्बादी करने से नहीं चूकता है।

नारद पुराण में मानव कल्याण के लिए लगभग सभी विषय हैं पर उसमें जलसंचय और संरक्षण के लिए तो स्पष्ट निर्देश हैं। यथा –

तड़ाग कारयेद्यस्तु स्वयमेवापरेण वा ।
वक्तु तत्पुण्यसख्यान नालह वर्षशतायुपा ।।

अर्थात् जो स्वयं किसी तालाब आदि जलाशय का निर्माण कराता है या करता है उसका इतना अधिक पुण्य होता है कि उसकी गणना सौ वर्ष की पूरी लम्बी आयु में भी नहीं की जा सकती है।[7] नारद पुराण जल दान को महादान घोषित करता है।

अन्नतोयसम दान न भूत न भविष्यति।।

अन्न का दान और जल का दान जैसा दान न आज तक कोई दान हुआ औरन भविष्य में होगा।

जल जीवन का आधार

सृष्टि के प्रारम्भ से ही जनमानस में जल का विशेष महत्त्व रहा है। भारतीय संस्कृति में जल को जीवन का आधार माना गया है। जीवन के उद्भव और विकास का आधार होने के कारण ही जल को सदैव सहेजने की परम्परा रही है। अथर्ववेद में रोग निवारण तथा अनिष्ट दूर करने के लिए जल से प्रार्थना की गई है –

शं नो देवीरभिष्टयऽ आपो भवन्तु पीतये।
शं योरभिस्त्रवन्तु नः।।

अर्थात् दैवीगुणों से युक्त आपः (जल) हमारे लिए हर प्रकार से कल्याणकारी एवं प्रसन्नतादायक हो। वह आकांक्षाओं की पूर्ति करके आरोग्य प्रदान करें।[8] अर्थात् हमारा रोग निवारण और अनिष्ट दूर करने के लिए बहता रहे।

जल मानव जीवन के लिए अति आवश्यक है। बिना भोजन किये मानव केवल जलपान करके जीवित रह सकता है। जल ही हमारे जीवन का आधार है। जल का कार्य प्राण है। जल के संरक्षण के लिए संकोच नहीं करना चाहिए।

षोडशकलः सोम्य पुरुषः पञ्चदशाहानि माशीः काममपः।
पिबापोमयः प्राणा न पिबतो विच्छेत्स्यत इति।।

हे सौम्य ! पुरुष का मन सोलह कला वाला होता है। तू पन्द्रह दिन भोजन न कर। प्राण जल से होता है, अतः तू इच्छानुसार जल पीते रहना।[9] जल चक्र के विषय में वायु पुराण के मन्वन्तर कथन में बतलाया गया है। सूर्य की किरणों द्वारा समुद्र से जल वाष्प करके बादलों का निर्माण होता है, और बादल जल के रूप में समस्त पृथ्वी को सिंचित करता है और वही जल पुनः समुद्र में मिलता है।

आदित्यरश्मिभिः पीतं जलमभ्रेषु तिष्टति ।
पुनः पतति तद्भूमौ तेन पूर्य्यन्ति चार्णवाः ।।

अर्थात् सूर्य के द्वारा पीया हुआ यह जल मेघों में स्थित हो जाता है फिर वही जल यहाँ पर भूमि में पड़ता है जिससे समुद्र भर जाया करते हैं।[10]

जल संरक्षण की आवश्यकता

जल संरक्षण का अर्थ पानी की बर्बादी तथा प्रदूषण को रोकने से है। जल संरक्षण एक अनिवार्य आवश्यकता है क्योंकि वर्षाजल हर समय उपलब्ध नहीं रहता। अत: जल का संरक्षण अति आवश्यक है। यदि हमारे देश में वर्षाजल के रूप में प्राप्त जल संग्रहण करें तो जल संकट पर कुछ हद तक लगाम लगा सकते हैं। देश के 11 मिलियन ऐसे कुएँ हैं, जिनकी संरचना पानी के पुनर्भरण के अनुकूल है। यदि मानसून अच्छा रहता है तो इनमें 25–30 मिलियन पानी का पुनर्भरण हो सकता है। इस प्रकार जल संरक्षण की आवश्यकता स्वयं सिद्ध हो जाती है क्योंकि जल ही संपूर्ण प्राणी जगत का आधार है तथापि जल संरक्षण की आवश्यकता निम्न कारणों से है –

1) जल का समुचित वितरण एवं उपयोग सुनिश्चित करना।
2) शुद्ध जल की निरंतर हो रही कमी को पूरा करना।
3) भावी पीढ़ियों के लिये जल की उपलब्धता सुनिश्चित करना।[11]

जल के वेदानुसार अनेक नाम हैं उनमें से एक अथर्ववेद में उदकनाम की संज्ञादी गई है।

एको वो देवीऽप्यतिष्ठत् स्यन्दमाना यथावशम् ।
उदानिषुर्महीरिति तस्मादुदकमुच्यते।।

हे आवश्यकतानुसार बहने वाले जल तत्त्व ! एक (श्रेष्ठ) देवता आपके अधिष्ठाता हुए। देव संयोग से महान् ऊर्ध्वश्वास (ऊर्ध्वगति) के कारण आपका नाम उदक हुआ।[12]

श्री मद्वराहमिहिराचार्य द्वारा रचित बृहत्संहिता में जल का (स्वाद, रंग इत्यादि) वर्णन मिलता है।

एकेन वर्णेन रसेन चाम्भश्चयुतं नभस्तो वसुधाविशेषात्।
नानारसत्वं बहुवर्णतां च गतं परीक्ष्यं क्षितितुल्यमेव।।

आकाश से वर्षा होने पर सब जल एक ही रंग और एक ही स्वाद का गिरता है, वह भूमि की विशेषता से अनेक रंग और स्वाद का हो जाता है उसकी परीक्षा भूमि के तुल्य ही करनी चाहिए अर्थात् जैसी भूमि होगी वैसा ही जल होगा।[13]

इस धरा पर प्रकृति देन जल, सुखदायक, जीवनाधार व रक्षक हैं। ऋषि मेघातिथि काण्व कहते हैं –

अप्स्वऽन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये देवा भवत वाजिन:।।

अर्थात् जल में अमृतोपय गुण हैं, जल में औषधीय गुण हैं। हे देवों ! ऐसे जल की प्रशंसा से आप उत्साह प्राप्त करें।[14] गीता में भी कहा है कि जल पृथिवी रूपी माँ के गर्भ में पड़े बीज रूप से अन्न धान्य आदि सम्पदा को जन्म देती है, क्योंकि प्राणी अन्न के आश्रय से जीवन पाता है और अन्न मधुर जल की वर्षा पर निर्भर है तथा वर्षा लाने का कारण मात्र यज्ञ है।

अन्नाद् भवन्ति भूतानि, पर्यन्यादन्नसम्भव:।
यज्ञाद् भवति पर्जन्यो, यज्ञ: कर्मसमुद्भव:।।

अग्नि में विधिपूर्वक दी हुई आहुति सूर्य में स्थित होती है, सूर्य से वृष्टि होती है, वृष्टि से अन्न होता है और अन्न से प्रजा उत्पन्न होती है।[15] वर्तमान में तीव्र गति से जल को हानि पहुंचाई जा रही है और बदले में आर्थिक भुगतान का विकल्प सुझाया जा रहा है जो पूर्णत: अनुचित है। इससे शुद्ध जल तो प्राप्त नहीं किया जा सकता। जबकि जल संरक्षण हेतु जलाशयों एवं बाँधों के निर्माण पर पौराणिक विचारधारा वैज्ञानिक ही नहीं समयानुकूल है।[16]

जल संरक्षण के उपाय

भारत के विभिन्न क्षेत्रों में जल संरक्षण एवं प्रबन्धन की तकनीकें विकसित की गई हैं जो उस स्थान की विशेषताओं के अनुरूप हैं। जैसे खुले स्थानों में वर्षाजल संग्रहण की व्यवस्था की गई है। नदी या अन्य धाराओं एवं उनके जल का संग्रहण, बाढ़ के पानी का संग्रहण, पहाड़ी एवं ढलान वाले क्षेत्रों में जहाँ बहुत सारी धारायें उपलब्ध हैं वहाँ से एवं नदियों में से जल को नहरों द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में पहुँचाया जाता है। शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में नहरों का इस्तेमाल कर नदियों एवं धाराओं के जल को एक संग्रहण टैंक तक पहुँचाया जाता है साथ ही वहाँ वर्षाजल संग्रहण की व्यवस्था भी की जाती है । बाढ़ वाले क्षेत्रों में विभिन्न संरचनाएँ विकसित की जाती हैं जिनके द्वारा बाढ़ के पानी को इकट्ठा किया जाता है। समुद्री किनारों पर जहाँ नदियों एवं अन्य मीठे पानी के स्त्रोतों में खारा पानी मिलने की संभावना बहुत होती है वहाँ खारे पानी को मीठे पानी तक न पहुँचने की व्यवस्थाएँ की गई हैं। जहाँ भूमिगत जलस्त्रोत उपलब्ध हों वहाँ कुएँ एवं अन्य व्यवस्थाएँ की गई हैं ताकि जल की व्यवस्था की जा सके।

प्राकृतिक या अन्य स्त्रोतों से उत्पन्न अवांछित बाहरी पदार्थों के कारण जलदूषित हो जाता है वह विषाकता एवं सामान्य स्तर से कम ऑक्सीजन के कारण जीवों के लिए हानिकारक हो जाता है तथा संक्रामक रोगों को फैलाने में सहायक होता है। जल जीवन का प्रमुख साधन है। यह पृथ्वी का लगभग 71 प्रतिशत भाग घेरे हुए है। पृथ्वी का अधिकतर जल समुद्री है, जो खारा होने के कारण पीने लायक नहीं है। पृथ्वी पर जितना पानी है, उसका केवल 3 प्रतिशत जल ही शुद्ध है। जिस पर सारा संसार निर्भर है।[17]

जल का संरक्षण तथा शुद्धि वेदों में यज्ञ द्वारा बतलाई

गयी है। सूर्य की किरणों में जल समाहित है –

अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह ता नो हिन्वन्त्वध्वरम्।।

अर्थात् जो ये जल सूर्य में समाहित है अथवा जिन जलों के साथ सूर्य का सानिध्य है, ऐसे वे पवित्र जल यज्ञ को उपलब्ध हों।[18] जल के बिना यज्ञ पूर्ण नहीं हो सकता।

यजुर्वेद में जलप्रदूषित करणार्थ मना किया गया हैमा आपोहिंसीः जल को नष्ट मत करो, हानि मत पहुँचाओ।[19] इस कथन से जल को शुद्ध रखने के साथ उसको समाप्त न करने की बात स्पष्ट प्रतीत होती है।

ऋग्वेद में जलाशयों के जल संरक्षणार्थ खड़े वृक्षों को काटने से इन्कार किया गया है। यदर्णसं मोषथा वृक्षजलकिनारे खड़े वृक्षों को मत उखाड़ो।[20] वैदिक युग में जलसंरक्षण की प्रथा प्रचलित थी। वेदों में जल संरक्षणार्थ उपलब्ध निर्देशों और उपदेशानुसार हमें जल का उचित प्रयोग करते हुए उसे संरक्षित करना चाहिए। जल के संरक्षण के लिए जल संग्रहालय, कूप, बावड़ी आदि बनाने चाहिए। वेदों में तथा पुराणों में इसका वर्णन मिलता है। ऋग्वेद में वर्णन –

शरस्य चिदार्चत्कस्यावतादा नीचादुच्चा चक्रथुः पातवे वाः।
शयवे चित्रासत्या शचीभिर्जसुरये स्तर्यं पिप्यथुर्गाम।।

हे सत्यपालक अश्विनी कुमारों ! प्यास से पीड़ित ऋचत्क के पुत्र शर के पीने हेतु आप दोनों जलस्तर को गहरे कुएँ से ऊपर ले आये। आप दोनों ने अपने सामर्थ्यों से अत्यन्त कृषकाय शंयु ऋषि के निर्मित वन्ध्या गाय को दूधारू बना दिया।[21]

नारद पुराण में कूप, बावड़ी बनाने के फल का वर्णन मिलता है।

कूपे पादफल ज्ञेय वाप्या पद्माकरोन्मितम्।
वापीशतगुण प्रोक्त कुल्याया भूपते फलम्।।

कूप के निर्माण कराने पर चौथाई फल मिला करता है। बावड़ी बनवाने वाले पुरुष को दश खर्च गुना फल प्राप्त हुआ करता है। बावड़ी से भी सौ गुना पुण्य नहर बनवाने वाले राजा को प्राप्त हुआ करता है।[22] दूषित जल को स्वच्छ करने का उल्लेख बृहत्संहिता में मिलता है।

अञ्जनमुस्तोशीरैः सराजकोशातकामलचूर्णैः।
कतकफलसमायुक्तैर्योगः कूपे प्रदातव्यः।।

अंजन (सुरमा), मोथा, खस, राजकोशातकी, आमले और कतक इन सब का चूर्ण कूपमें डालें।[23]

कलुषं कटुकं लवणं विरसं सलिलं यदि वा शुभगन्धि भवेत्।
तदनेन भवत्यमलं सुरसं सुसुगन्धि गुणैरपरैश्च युतम्।।

जो जल गदला, कड़वा, खारा, बेस्वाद या दुर्गन्धदार हो तो वह इस चूर्ण के डालने से निर्मल, मीठा, सुगन्ध और भी कई उत्तम गुणों से युक्त हो जाता है।[24]

सामाजिक जीवन में लोग तालाब, बावड़ी और कुएं सहित अन्य जलस्त्रोत के निर्माण को धार्मिक कृत्य समझते थे। यह परोक्ष रूप से उनके द्वारा जल के महत्त्व का स्वीकरण था। लेकिन बदलते दौर में व्यक्ति केन्द्रित समाज की अवधारणा बढ़ी है। अब लोग समाज से अधिक स्वयं की चिंता करते हैं।

जल संरक्षण के उद्देश्य

भारत एक विकासशील देश है, जिसका क्षेत्र विशाल है, जटिल स्थलाकृति है, परिवर्तनशील जलवायु है और एक बड़ी आबादी है। देश में पानी की वजह से अस्थिर कृषि उत्पादन एक समस्या है। भारत एक कृषि प्रधान देश है, इसके आर्थिक तथा सांस्कृतिक विकास के लिए जल संरक्षण अति आवश्यक है।

वेद में जल को औषधि के रूप में माना गया है। सभी औषधियाँ जल से ही उत्पन्न होती हैं। अथर्ववेद में जल को औषधि रूप में माना गया है –

ईशाना वर्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम् । अपो याचामि भेषजम् ।।

अर्थात् व्याधि निवारक दिव्य गुण वाले जल का हम आवाहन करते हैं। वह हमें सुख–समृद्धि प्रदान करें। उस औषधि रूप जल से हम प्रार्थना करते हैं।[25] चरक संहिता में जल के विषय में कहा है कि–

शीतंशुचिशिवंमृष्टं विमलं लघुषड्गुणम्।
प्रकृत्यादिव्यमुदकं भ्रष्टंपात्रमपेक्षते।।

आकाश का जलस्वभाव से ही शीतल, स्वच्छ, शुभ, शुद्ध, निर्मल, हल्का, मधुरादि संपन्न होता है। पृथ्वी पर गिर जाने से जैसे स्थान में गिरे वैसे गुण वाला हो जाता है।[26] मत्स्यपुराण में जल की उत्पत्ति तथा गुणों का वर्णन मिलता है –

आकाशविकृतेर्वायुः शब्दस्पर्शगुणोऽभवत्।
वायोश्च स्पर्शत मात्रातेजश्चाविरभूतत्।।

आकाश की विकृति से वायु की समुत्पत्ति होती है और इस वायु के शब्द और स्पर्श ये ही विशेष गुण हुआ करते हैं। वायु के स्पर्श तन्मात्रा से शब्द गुण के स्वरूप वाला तेज प्रादुर्भूत हुआ करता है। इस तेज में शब्द के अतिरिक्त स्पर्श और रूप के भी दो गुण होते हैं।[27] यथा –

त्रिगुण तद्विकारेण तनछब्दस्पर्शरूपवत्।
तेजोविकाराद भवद्वारि राजैवचतुर्गुणम्।।

अर्थात् ऐसे यह तीन गुणों वाला होता है। तेज के विकार

से जल की उत्पत्ति होती है। इस जल में हे राजन् ! चार गुण रूप, रस, तेज, स्पर्श होते हैं।[28] हमारे अन्दर जो दोष, रोग बीज, मल अपवित्रता, आम, अपचित अन्नदोष होंगे, उन सबको बाहर बहा देता है और आन्तरिक शुद्धता करता है। यह जल चिकित्सा करके रोगों को भी दूर कर देता है। मनुष्य इसी कारण हृष्ट-पुष्ट होता है। दोष, रोगबीज और मलों को दूर करने का ही नाम शुद्ध और पवित्र होना है। इसी से निरोग होकरमनुष्य बलवान् तथा दीर्घायु होता है।[29]

जल का सम्बन्ध

जीवन से ही नहीं अपितु संसार की प्रत्येक वस्तु से जल का सम्बन्ध है। जल आस्था का प्रतीक है। नदियों, सरोवरों, झीलों आदि की उत्पत्ति, विकास और अन्त की अवस्थाएं मनुष्य अपने जीवन काल में ही देख लेता है। विभिन्न धर्मों में जल का सम्बन्ध या महत्त्व इस प्रकार है -

हिन्दू धर्म में जल

सनातन परंपरा के अनुसार पंचभूत तत्त्वों में से जल को देवता के रूप में स्वीकार किया गया है। हिन्दू धर्म में गंगाजल को बहुत ही पवित्र माना गया है। गंगा नदी को माता का दर्जा दिया गया है। परम्परा के अनुसार हर धार्मिक अनुष्ठान में गंगाजल का प्रयोग होता है।

सिक्ख परंपरा में जल

सिक्ख परंपरा में जल को अत्यंत पवित्र माना जाता है। गुरू गोबिंद जी ने जब पंजप्यारों के लिए अमृत तैयार किया था तो उसमें जल को भी महत्त्वपूर्ण तत्त्व बताया गया था। ज्यादातर गुरुद्वारों में एक पवित्र सरोवर अवश्य होता है।

इस्लाम में जल

इस्लाम धर्म में आब-ए-जमजम को बहुत ही पवित्र जल माना जाता है। जब लोग मक्का-मदीना जाते हैं तो वहाँ से आब-ए-जमजम का पानी जरूर लेकर आते हैं। इस पानी को पवित्रता के साथ संभालकर रखा जाता है।

ईसाई धर्म में जल

ईसाई धर्म में भी जल का बहुत महत्त्व माना गया है। बप्तिस्मा ईसाई धर्म का बहुत ही महत्त्वपूर्ण संस्कार है। बप्तिस्मा संस्कार शिशुओं के लिए किया जाता है और इसमें जल का प्रयोग किया जाता है। ईसाई धर्म में होली वॉटर को पवित्र माना गया है । लोग गिरिजाघर में जाने पर इस जल को अपने माथे से लगाते हैं। जीवन से ही नहीं हर धर्म से जल का सम्बन्ध बहुत गहराई से है। आस्था का प्रतीक जल माना गया है। जल की महत्त्वता को मनुष्य बहुत अच्छी तरह से जानता है।

निष्कर्ष

जल ही जीवन है इसका यह अर्थ है कि जहाँ पानी होता है वहाँ जीवन होता है। पूरे ब्रह्माण्ड में पृथ्वी पर ही जल पाया गया है। यह जल हमें प्रकृति के द्वारा दिया गया है तो हमें इसका सम्मान करना चाहिए ना कि इसका व्यर्थ इस्तेमाल करना चाहिए। मनुष्य, जानवरों, पेड़-पौधों सभी के जीवन में जल का उपयोग होता है, जल के बिना जीवन असंभव है।

जल जीवों के अस्तित्व के लिए महत्त्वपूर्ण है। यहां तक कि जब पानी प्राकृतिक रूप से रिसायकल होता है, जिसके कारण पृथ्वी पर ताजे पानी की मात्रा तेजी से घट रही है। यह सब इन्सानों की लापरवाही की वजह से हुआ है।

हम दिनभर जल का उपयोग करते हैं। हम इसे जितना इस्तेमाल करते हैं उससे ज्यादा बर्बाद कर देते हैं। यह उच्च समय है जब हमें पानी का बुद्धिमानी से उपयोग करना चाहिए और इसे प्रदूषित करने वाली गतिविधियों को सीमित करना चाहिए।

हमें पानी का संरक्षण करना चाहिए अन्यथा आने वाले समय में हमारे लिए पृथ्वी पर जीवित रहना मुश्किल हो जाएगा। पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने और एक ऐसा वातावरण बनाने के लिए पानी आवश्यक है जो हमारे जीवित रहने के लिए उपयुक्त हो। यह पीने, खाना पकाने, सफाई, खेतों की सिंचाई और अन्य विभिन्न गतिविधियों के लिए भी आवश्यक है। हमें पानी को बचाने और इसका सही इस्तेमाल करने की जरूरत है। जल संकट की समस्या कोई ऐसी समस्या नहीं है जो मात्र एक दिन में ही उत्पन्न हो गई हो, बल्कि धीरे-धीरे उत्पन्न हुई इस समस्या ने आज विकराल रूप धारण कर लिया है। जल संकट का अर्थ केवल इतना ही नहीं है कि सतत् दोहन के कारण भूजल स्तर लगातार गिर रहा है, बल्कि जल में शामिल होता घातक रासायनिक प्रदूषण, फिजूलखर्ची की आदत जैसे अनेक कारक हैं, जो सभी लोगों को आसानी से प्राप्त हो सकने वाले जल की प्राप्यता के मार्ग में बाधाएँ खड़ी कर रहे हैं।

सन्दर्भ सूची -

1. ब्रह्मपुराण (प्रथम खण्ड), पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, 1.38, पृष्ठ - 40
2. ब्रह्मपुराण (प्रथम खण्ड), पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, 1.39, पृष्ठ - 40
3. ऋग्वेद संहिता (भाग-1) (मण्डल1-2), पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, 1.62.6, पृष्ठ - 88

4. यजुर्वेद संहिता, पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, 36.12, पृष्ठ - 36.2
5. सामवेद संहिता, पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, 3.12.9, पृष्ठ - 3.18
6. अथर्ववेद भाष्यम्, स्वामी दयानन्द सरस्वती, 19.1.4, पृष्ठ - 298
7. नारद पुराण (प्रथम खण्ड), पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, 12.54, पृष्ठ - 252
8. अथर्ववेद संहिता (भाग-1),पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, 1.6.1, पृष्ठ - 5
9. 108 उपनिषद् (ज्ञान खण्ड), पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, 6.7.1, पृष्ठ - 241
10. वायु पुराण (द्वितीय खण्ड), पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, 32.57, पृष्ठ - 384
11. https://hindi.indiawaterportal.org
12. अथर्ववेद संहिता (भाग-1), पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, 3.13.4,पृष्ठ - 16
13. बृहत्संहिता (वराहमिहिराचार्य), बलदेव प्रसाद मिश्र, 54.2, पृष्ठ - 256
14. ऋग्वेदसंहिता (भाग-1), पं. श्रीराम शर्मा, 01.23.19, पृष्ठ - 27
15. श्रीमद्भगवद्गीता (शांकरभाष्य), हरिकृष्णदास गोयन्दका, 3.14,पृष्ठ - 90
16. पुराणों में पर्यावरण शिक्षा, अंजली श्रीवास्तव, पृष्ठ - 74
17. https://www.ugtabharat.com
18. ऋग्वेदसंहिता (भाग-1), पं. श्रीराम शर्मा, 1.23.17, पृष्ठ - 26
19. यजुर्वेद संहिता, पं. श्रीरामशर्मा आचार्य, 6.22, पृष्ठ - 6.5
20. ऋग्वेदसंहिता (द्वितीय खण्ड), श्रीराम शर्मा आचार्य, 5.54.6, पृष्ठ - 751
21. ऋग्वेदसंहिता (भाग-1), पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, 1.116.22, पृष्ठ - 172
22. नारद पुराण (प्रथम खण्ड), पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, 13.14, पृष्ठ - 262
23. बृहत्संहिता (वराहमिहिराचार्य), बलदेव प्रसाद मिश्र, 54.121, पृष्ठ - 273
24. बृहत्संहिता (वराहमिहिराचार्य), बलदेव प्रसाद मिश्र, 54.122,पृष्ठ - 274
25. अथर्ववेद संहिता (भाग-1), पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, 1.5.4,पृष्ठ - 5
26. चरक संहिता (प्रथम भाग), राम प्रसादवैद्योपध्याय, 27.192,पृष्ठ - 350
27. मत्स्य पुराण (प्रथम खण्ड), श्रीरामशर्मा आचार्य, 3.24,पृष्ठ - 18
28. वही, 3.25,पृष्ठ -18, 19
29. यजुर्वेद में पर्यावरण, डॉ. उपेन्द्र कुमार त्रिपाठी, पृष्ठ - 111

ISSN 2278 - 0327

ऋग्वेद में निहित सामाजिक मूल्य

डॉ. सिन्धु सुमन
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
राजेन्द्र मिश्र महाविद्यालय
भूपेन्द्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा, बिहार

शोध-सार:-

हमारे प्राचीन मूल्यों की शाश्वत प्रकृति और विश्वसनीयता स्वयंसिद्ध है। ये सार्वकालिक है। सामाजिक मूल्यों ने समाज के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। सामाजिक मूल्य समाज की वह आधार-भूमि है जिस पर सभ्यता और संस्कृति का सुन्दर महल प्रतिष्ठित होता है। चिरकाल से पथ-प्रदर्शन करते शाश्वत मूल्य आज क्षरण के कगार पर हैं। सत्य, अहिंसा, प्रेम, सदाचार, परोपकार, आदि सनातन मूल्यों को विकसित करने की आज महती आवश्यकता है जिससे राष्ट्र अपना आदर्श पुन: प्राप्त कर सके। ऋग्वेद हमें दया, परोपकार, सहिष्णुता, सदाचार, क्षमा, स्नेह, सत्य आदि मूल्यों की सीख देती है। वह मानवीय गरिमा और अस्मिता के साथ परिवार, समाज और राष्ट्र के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करती है। ऋग्वेद के व्यवहारोपयोगी सामाजिक मूल्य को अपनाकर समाज में शांति व व्यवस्था कायम होगी। इसी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए मैंने ऋग्वेद में निहित सामाजिक मूल्यों का विवेचन किया है। जब तक मानव-सभ्यता एवं संस्कृति का अस्तित्व रहेगा, सामाजिक मूल्यों की उपयोगिता भी बराबर बनी रहेगी।

बीज शब्द: शाश्वत मूल्य, विश्वबंधुत्व, कल्याण, कर्मशीलता, यश मूल्य, मानवीय गरिमा।

सामाजिक मूल्य किसी भी समाज के मेरूदण्ड होते हैं। इसके अभाव में समाज का ढांचा खड़ा नहीं रह सकता है। प्रत्येक समाज एवं प्रत्येक संस्कृति के कतिपय मापदण्ड होते हैं। समाज में रहने वाला प्रत्येक प्राणी इन मापदण्डों को मानने के लिए बाध्य रहता है, ताकि एक नैतिक व्यवस्था बनी रहे। प्रारम्भ में ये प्रतिमान व्यक्तिगत जीवन में उद्भव होते हैं, कालान्तर में ये सामाजिक जीवन में व्याप्त होकर व्यापक रूप ग्रहण कर लेते हैं और समाज के जीवन मूल्य बन जाते हैं। सामाजिक मूल्यों का हमारे जगत से सदैव समबन्ध रहा है तथा भविष्य में भी लगातार रहेगा। जब तक मानव सभ्यता एवं संस्कृति का अस्तित्व रहेगा, मानव मूल्यों की उपयोगिता भी बराबर बनी रहेगी। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जब शिक्षा की गुणवत्ता का निरन्तर ह्रास होता जा रहा है शिक्षा मूल्यविहीन होती जा रही है। हमारा देश व उसके नागरिक पश्चिमी देशों की आँधी में उड़े जा रहे हैं, हमारी संस्कृति, सभ्यता, आचार-विचार का पतन होता जा रहा है। हमारे देश का मूल आधार यहाँ के बच्चों में आने वाले संस्कार व मूल्य है, जिसका निरन्तर ह्रास होता जा रहा है। इन परिस्थितियों के निर्माण की जिम्मेदारी शिक्षा व्यवस्था की है, यहाँ की शिक्षा व्यवस्था अपने पुराने रीति-रिवाजों को बदल कर पश्चिमीकरण की तरफ बढ़ रही है। आज अति भौतिकता से त्रस्त मानव स्वयं अपने आप ही मायाजाल में उलझता हुआ मानवता की रक्षा के लिए त्राहि-त्राहि करने को विवश हो चला है। अत: इन सब परिस्थितियों को ध्यान में रखकर हमारे देश की शिक्षण व्यवस्था में सामाजिक मूल्यों का सन्निवेश आवश्यक है। अत: समाज को ऋग्वेद में बताए गए सामाजिक मूल्यों की शिक्षा को आत्मसात करना चाहिए।

वेद दुनिया के लगभग सबसे पुराने लिखित दस्तावेज हैं। वेद ही हिन्दू धर्म के सर्वोच्च और सर्वोपरि धर्मग्रन्थ है। सामान्य भाषा में वेद का अर्थ है - ''ज्ञान'' वेद शब्द संस्कृत के विद् शब्द से निर्मित है अर्थात् इस एकमात्र शब्द में ही सभी प्रकार का ज्ञान समाहित है। प्राचीन भारतीय ऋषि जिन्हें मंत्रद्दष्टा कहा गया है, उन्हें मंत्रों के गूढ़ रहस्यों को जान कर, समझ कर, मनन कर उनकी अनुभूति कर उस ज्ञान को जिन ग्रंथों में संकलित कर संसार के समक्ष प्रस्तुत किया वो प्राचीन ग्रंथ ''वेद'' कहलाये। अखिल विश्व की संपूर्ण भाषाओं में प्रथम द्रष्टव्य देववाणी का पवित्र ग्रन्थ ऋग्वेद सबसे पहला वेद है। जिसमें 1028 ऋचाएँ (मंत्र) और 10 मंडल (अध्याय) हैं। ऋग्वेद के प्रत्येक सूक्त में भारत की धरती ओर इसके भौगोलिक वातावरण की खुशबू विद्यामान है। वस्तुत: भारत की हवा में ही आध्यात्मिकता है, जिसे

समाज विकास के प्रत्येक चरण में महसूस किया जा सकता है। अत: आज सामाजिक मूल्यों को बचाने के लिए मूल्य शिक्षा के शिक्षण की आवश्यकता है। देश के कर्णधारों ने नई शिक्षा नीति में इस ओर अपेक्षित ध्यान दिया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में मूल्यों के बारे में कहा गया है – ''हमारा समाज सांस्कृतिक दृष्टि से बहुलवादी है, इसलिए ऐसे सार्वभौमिक तथा शाश्वत मूल्यों का विकास किया जाना चाहिए जो हमारे लोगों को एकता की ओर उन्मुख करे। इससे मजहबी उन्माद, अन्धविश्वास, रूढ़िवादिता समाप्त होंगे।''[1] नई शिक्षा नीति में मूल्यों के गिरते स्तर पर चिन्ता करते हुए ''मूल्य परक शिक्षा'' पर विशेष बल दिया गया है। शिक्षा में गुणात्मक सुधार के लिए भी मूल्यों से समन्वित दृष्टिकोण की आवश्यकता है। दार्शनिक दृष्टि से सामाजिक मूल्यों के अनवरत शोध एवं परीक्षण का नाम ही शिक्षा है। अत: सामाजिक मूल्यों की शिक्षा की आवश्यकता अपरिहार्य है। ऋग्वेद के माध्यम से बताए गए सामाजिक मूल्यों के विवेचन की वर्तमान में महती आवश्यकता है। इनके माध्यम से वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त भ्रन्तियों को दूर किया जा सकता है। अत: इसी आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुए ऋग्वेद में बताए गए सामाजिक मूल्यों का विवेचन अभीष्ट है। ऋग्वेद में बताए गए सामाजिक मूल्यों में निम्नांकित नौ मूल्यों को विचारणीय माना गया है –

(1) हित (2) योगक्षेम (3) बंधुत्व
(4) स्वस्ति (5) वाक् (6) विनय
(7) पुरुषकार (8) अभय (9) यशस्

सामाजिक मूल्यों के अंतर्गत आने वाले उक्त मूल्यों को ऋग्वेद के सूक्तों के अनुसार क्रमश: स्पष्ट किया जा रहा है –

हित –

हित अर्थात् कल्याण साध्यगतमूल्य के रूप में ऋग्वेद में बहुचर्चित है। ऋग्वेद हमें यह शिक्षा देती है कि हितकर कार्य करने से व्यक्ति माहन यशस्वी बन जाता है तथा उसके कार्यों के कारण उसका नाम सदैव के लिए अमर हो जाता है। मनुष्य को चाहिए कि वह हित के अवसर को हाथ से न जाने दें। ऋग्वेद के मंडल 1-10 में कई ऐसे श्लोक हैं –

तं त्वा मदाय घृष्वय ३ लोककृत्नुमीमहे।
तव प्रशस्तयो मही:।।[2]

संसार के कल्याण की इच्छा से शत्रुओं का संहार करने वाले है सोमदेव! हम आनन्दवृद्धि के लिए महान स्त्रोतों से आपकी स्तुति करते हैं।

आगे कहते हैं- हे सोमदेव! आप हमें तेजस्विता प्रदान करें। सभी स्वर्गोपम सुख और सौभाग्य देते हुए आप हमारा कल्याण करें। हे सोमदेव! आप हमें बल और यज्ञीय कर्त्तव्य पालन करने की शक्ति प्रदान करें तथा शत्रुपक्ष को पराजित करके हमारा कल्याण करें। हे श्रेष्ठ शस्त्रधारी सोमदेव! लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के धन से आप हमें संपन्न करें, जिससे हम सुख को प्राप्त करें। इसी तरह –

तव कृत्वा तवोतिभिर्ज्योक्पश्येम सूर्यम्।
अथ नो वस्यसस्कृधि।।[3]

हे सोमदेव! आपके द्वारा प्रदत्त सद्ज्ञान से एवं आपके संरक्षण से युक्त हम बहुत वर्षों तक सूर्यदर्शन से लाभान्वित हो, आप हमारा मंगल करें। यहाँ सब का स्वामी, तेजस्वी, बलशाली शब्द 'सोम' सबको पवित्र और संतुष्ट करता है।

पवमानो अभि स्पृधो विशो राजेव सीदति।
यदीमृण्वन्ति वेधस:।।[4]

याज्ञिकों की प्रेरणा से संस्कारित सोमदेव, राजा की भाँति प्रजा की रक्षा तथा शत्रुओं का संहार करने के लिए तैयार होते हैं।

योगक्षेम –

'' अलभ्यलाभो योग: स्यात्
क्षेमो लब्धस्य पालनम्।।''[5]

अर्थात् अप्राप्य वस्तु की प्राप्ति योग और उस प्राप्त की रक्षा क्षेम है। मनुष्य का योगक्षेम परिवार के स्वामी, ग्राम के अग्रणी और समाज के नेता पर है। यह दायित्व पहले मुख्यत: राजा और आज राज्य वहन करता है। प्रथम प्रजा का भक्षक और द्वितीय जनता का शोषक भी हो सकता है। उसमें नित्ययुक्त पुरुष के योगक्षेम का वहन स्वयं भगवान करते हैं।

वर्तमान में गलत मार्ग का चयन करके लोग योग का ही प्रयास करते हैं। परन्तु क्षेम का उदाहरण कहीं नहीं देखा जाता, आवश्यकता इस बात की है कि हम प्राचीन संस्कृति के मूल्यों का अनुशरण करते हुए सही मार्ग से अप्राप्त को प्राप्त करने का प्रयास करें तथा जो प्राप्त हो जाए उसकी रक्षा करने का प्रयास निरंतर करते रहें, यही उक्त प्रकरण की सार्थकता है। ऋग्वेद में कहा गया है कि –

'' दुरितानि परासुव यद्भद्रं तन्न आसुव।'' [6]

अर्थात् हे प्रभो! अनिष्ट दूर हो, भद्र विचार चारों ओर से आएँ। भद्र की यही भावना आदिकाव्य रामायण के 'भद्रं ते' में प्रतिबिम्बित होती है। अन्य की हित कामना 'भद्रं ते' भारतीय जीवन का एक लोकपरक मूल्य है। दु:ख और सुख का संबंध अन्योन्याश्रित है। अत: स्वार्थ की प्रवृति का त्याग कर मनुष्य को

दूसरों की कुशलता हेतु प्रयासरत् रहना चाहिए।

बन्धुत्व –

ऋग्वेद के पृथिवीसूक्त में कहा गया है –

''*माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः*''[7]

अर्थात् भूमि मेरी माता है, मैं भूमि का पुत्र हूँ। इस दृष्टि से धरती माता के सभी पुत्र भ्रातृत्व–बंधुत्व में बँधे हुए हैं। इसका विकास विश्वबंधुत्व है। हमारे प्राचीन धर्म ग्रन्थों में कहा भी गया है – ''*वधुधैव कुटुम्बकम्*।'' यह भावना वर्ण, जाति, देश, काल, लिंग आदि भेदों का अतिक्रमण कर बंधु, बांधव, संगी, साथी व भाई के रूप में प्रसारित हो गई है। यथा –''*न कालस्यास्ति बन्धुत्वम्*''। बन्धु का सम्बन्ध किसी काल विशेष की अपेक्षा नहीं करता। मन में सौहार्द उत्पन्न होते ही 'बन्धु' प्रकट होता है। ऋग्वेद में जनता के सम्मुख भारतीय संस्कृति के अनुरूप भ्रातृत्व का आदर्श प्रस्तुत किया है। भारतीयों का भाईचारा अद्वितीय है। संपूर्ण विश्व साहित्य में ऐसा सहोदर मिलना दुर्लभ है। वर्तमान का भारतीय समाज उक्त भावनाओं को भूल गया है। वर्तमान की भ्रमित जनता के लिए ऋग्वेद का भ्रातृप्रेम अमृत का काम कर सकता है, आवश्यकता सिर्फ उक्त गुणों को जीवन में अपनाने की है।

स्वस्ति (मंगल) –

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषाविश्ववेदाः
स्वस्तिनस्तार्क्ष्योऽरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्द्धधातु।।[8]

यह स्वस्तिवाचन मांगलिक कार्य पर प्रत्येक गृह में उच्चरित होता है। यहाँ स्वस्ति, समष्टिगत कल्याण कामना की सूचक है जिसमें व्यष्टि का हित स्वतः समाहित है।

हमारी संस्कृति में खलों की निन्दा व सज्जनों के मंगल की कामना करने की परम्परा रही है, जिसकी वर्तमान में महती आवश्यकता है। हमारे साहित्य में आत्मीयजनों की मंगलकामना की परम्परा हमेशा से ही चली आ रही है, मांगल्य हमारे साहित्य का अभिन्न अंग है। समाज का हर व्यक्ति यदि परिजनों के लिए मंगलकामना करने लग जाए तो कहीं भी विषाद की स्थिति नहीं रहेगी एवं समाज राष्ट्र में रिश्तों को सम्मान मिलेगा। जब तक मनुष्य के मन में पर–पीड़ा का अनुभव करने की क्षमता का विकास न होगा तब तक विश्वबन्धुत्व की भावना को पोषण नहीं मिलेगा, क्योंकि चराचर जगत के प्रत्येक प्राणी को अपने समान समझना, उसके सुख–दुःख व दैन्य को अपना समझकर सहानुभूति की मंगल भावना रखना लोक कल्याण का मूल मन्त्र है। ऋग्वेद में वर्णित मंगल की कामना को व्यवहार में लाने से मानव जाति के दुःखों का नाश संभव है। मंगल की कामना मन में रखने से व्यक्ति का दूसरों के साथ–साथ स्वयं का भी भला ही होता है।

वाक् (वाणी) –

अभिव्यक्ति का विकास के क्रम में सुगमतम साधन वाक् है। वाक् कला से मंडित व्यक्ति वाक्यज्ञ, वाग्मी, वाक्यविशारद आदि विशेषणों से पूजित होता है। वाक्, सामाजिक जीवन का साधनगत मूल्य है। यह कला समस्त परिषद् को क्षण भर में मन्त्र मुग्ध कर सकती है और वक्ता तत्काल ख्यातिलाभ प्राप्त करता है। ऋग्वेद में ''*ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम*'' अर्थात् ब्रह्म को वाक् तत्व का आधार कहा गया है।[9] पुराण में ये ब्रह्माणी, सरस्वती, महाशक्ति के रूप में संपूज्य हैं। वेद में कई स्थलों पर इसकी महिमा का गुणगान है यथा – ''जो मेरा साक्षात्कार करता है, मुझको अनुप्राणित करता है, मेरे वचन सुनता है, वह अन्न का उपभोग करता है। देव और मनुष्य मेरी उपासना करते हैं। मेरा आश्रय लेते हैं, मेरा उपयोग करते हैं। मैं दया दृष्टि से जिसे चाहता हूँ उसे उग्र बनाता हूँ, ब्रह्म बना देता हूँ, उसे ऋषि और प्रतिभाशाली बना देता हूँ।''[10]

समाज में स्नेह, शांति और सेवाभाव उत्पन्न करने के लिए वाक् एक सूक्ष्म उपकरण है जिसकी साधना मन और क्रिया के साथ इसके सामञ्जस्य में सिद्ध होती है। इसका एक सर्ववशीकरण गुण है, माधुर्य – ''*यद् वदामि मधुमत् तद्वदामि*।'' इससे हमें यह शिक्षा मिलती है कि वाणी मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ आभूषण है। अतः इसका प्रयोग प्रत्येक परिस्थिति में माधुर्यपूर्ण रीति से ही करना चाहिए। ऐसा करने से शत्रु भी मित्रवत् व्यवहार करने को मजबूर हो जाते हैं।

पुरुषकार (उद्योग):–

कर्म साधना द्वारा साध्यप्राप्ति का उद्योग पुरुषकार है। पुरुष यहाँ शौर्य और उत्साहजनित क्रिया का वाचक पुरुषार्थ है। यह दैव पर भरोसा न कर आत्मबल पर विश्वास करता है और अनवरत् कर्मशीलता के साथ उद्देश्य की प्राप्ति करता है। भय व नैराश्य की छाया से यह सदा दूर रहता है। पुरुषकार, उद्योग या पुरुषार्थ लोकजीवन का साधनगत मूल्य है। व्यक्ति इस मूल्य की साधना द्वारा अन्ततः विपदाओं पर विजय प्राप्त करता है। इसकी उपस्थिति से राष्ट्र का मनोबल महान् संकट में भी अडिग रहता है। इससे यह शिक्षा मिलती है कि मनुष्य को विपत्ति में अपना धैर्य नहीं खोना चाहिए तथा लक्ष्य प्राप्ति हेतु निरन्तर प्रयास करना चाहिए ऐसा करने पर सफलता निश्चित प्राप्त होती है। वर्तमान में लोग बिना–श्रम किए बहुत कुछ पाना चाहते हैं तथा नहीं प्राप्त होने की स्थिति में भाग्य को कोसते हैं, जो कि निराधार व अनुचित है। प्रत्येक

भारतीय ''*कर्मण्यवाधिकारस्ते*'' के विषय में जानता है परंतु उसका व्यवहार में प्रयोग नहीं करता। ऋग्वेद हमें धैर्यपूर्वक उत्तरोत्तर सोत्साह आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है।

अभय –

वैदिक ऋषियों ने भय से त्राण पाने के लिए अभय की याचना की है –

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरो यः।
अभयं नक्तं अभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु।।[11]

मनुष्य निर्भय और शान्तिपूर्ण वातावरण में जीवन बिताना चाहता है इसलिए प्राण में अभय की ज्योति का जागृत रहना अनिवार्य है। यह शूर धर्म है। वीर इसका अवलम्ब कर अमरत्व प्राप्त करता है।

अभय साधनागत मूल्य है जिसका साध्य है दुरित का क्षय एवं जीवन में सर्वभूतों में सुख का सम्पादन। इससे यह निर्देश मिलता है कि मनुष्य को सज्जन की भाँति शास्त्रोक्त नीति पर चलकर दूसरों को अभय प्रदान करने वाला बनना चाहिए, न कि दुर्जन की तरह दूसरों को भय देने वाला। वर्तमान में संसार के अनेक देश दुर्जनों की नीति का अनुशरण कर रहें हैं, जो कि विनाश का सूचक है।

यश –

लोकमुख से अपने सुकृत की प्रशंसा का अपेक्षाकृत स्थायीरूप यश है। देश काल की सीमा से साधारणतः आबद्ध यह व्यक्ति की महानता के अनुरूप अपना क्षेत्र निर्मित करता है। इसकी प्राप्ति के लिए असामान्य प्रतिभा अनिवार्य है।

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये
सद्यः परनिर्वृत्तये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे।।[12]

अर्थात् काव्य रचना का परमोद्देश्य यश व धन की प्राप्ति, व्यवहार ज्ञान, अमंगल का नाश, प्रियतमा के समान मधुर उपदेश एवं तुरन्त पाठक को ज्ञान प्रदान करने वाला होता है। उक्त लक्षणों से ऋग्वेद परिपूरित है। इस प्रकार मम्मट ने यश की मूल्यार्हता प्रतिपादित की है। वैदिक ऋषि यशस्तम होने की कामना करते हैं–

यशा इन्द्रो यशा अग्निर्यशाः सोमो अजायत।
यशा विश्वस्य भूतस्याहमस्मि यशस्तमः।।[13]

अर्थात् इन्द्र यशस्वी थे, अग्नि यशस्वी थे, यशस्वी सोम उत्पन्न हुआ। समस्त भूतों में मैं यशस्वी, अतिशय यशस्वी हूँ। यशोयुक्त यशस्वी इन्द्र को हम यशः पूर्ण नमस्कार करें। हमें इन्द्र प्रेरित राष्ट्र दो। दान में हम यशस्वी बनें। यश का मुख्य हेतु दान है, धन का, समय का, आयु का दान। बिना त्याग भावना के सात्विक दान संभव नहीं होता है।

मनुष्य के गुण, कर्म आदि साधन हैं और यश प्राप्ति उत्तम जीवन का एक राशिभूत फल है। वर्तमान में लोग यश प्राप्ति हेतु निंदनीय मार्ग का चयन करते हैं तथा उनकी नजर में जिस यश की प्राप्ति होती है वह हमारी संस्कृति के अनुसार घोर पाप व अपयश है। अतः ऋग्वेद में वर्णित यश मूल्य के महत्व को समझकर सन्मार्ग पर चलते हुए उसकी प्राप्ति का प्रयास किया जाए।

निष्कर्ष –

ऋग्वेद में सामाजिक मूल्यों की अभिव्यक्ति लौकिक व्यवहार के रूप में हुई है। ऋग्वेद ने समस्त मानव जाति के उत्थान का मार्ग प्रशस्त किया है। इन्होंने पात्रों को हमारे जीवन ओर जगत के बीच प्रतिष्ठित करके उनके मांगलिक आदर्शों को हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है, जिसका अनुगमन कर हम आदर्श जीवन की दिशा में प्रयत्नशील हो सकते हैं। इस प्रकार व्यक्ति, समाज व राष्ट्र की दृष्टि से ऋग्वेद का ज्ञान वर्तमान समय में भी बहुत उपयोगी है, अतः ऋग्वेद के माध्यम से सामाजिक मूल्यों का अध्ययन सामाजिक जीवन संघर्षों का सामना करने की क्षमता उत्पन्न करने हेतु एवं समाज में व्याप्त बुराईयों के निराकरण हेतु वर्तमान समय में भी प्रासंगिक एवं उपयोगी तथा समसामयिक माना जा सकता है।

संदर्भ सूची

1. त्यागी, गुरूसरन दास/पी.डी. पाठक; शिक्षा के सिद्धान्त, श्री विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 2020, पृष्ठ- 415
2. आचार्य, श्री राम शर्मा, ऋग्वेद संहिता, भाग-4, मंडल 1-10, पृष्ठ- 17
3. वही, पृष्ठ- 18
4. वही, पृष्ठ- 30
5. याज्ञवल्क्य स्मृति, अध्याय-1, श्लोक सं.- 100
6. ऋग्वेद - सूक्त 5, मण्डल-82, मन्त्र सं.- 5
7. ऋग्वेद - पृथिवीसूक्त, प्रथम मण्डल, मन्त्र सं.- 12
8. रूद्राष्टाध्यायी, द्वितीयोध्याय, मन्त्र सं.- 16
9. ऋग्वेद - मण्डल 1, सूक्त 164, मन्त्र सं.- 35
10. ऋग्वेद - मण्डल 10, सूक्त 125, मनत्र सं.- 1-8
11. ऋग्वेद - मण्डल 19, सूक्त 15, मन्त्र सं.- 6
12. मम्मट - काव्यप्रकाश, प्रथमोल्लास
13. ऋग्वेद - मण्डल 6, सूक्त 39, मन्त्र सं.- 3

ISSN 2278 - 0327

कालिदास के काव्यों में न्याय एवं दण्ड के सिद्धांत

डॉ. पङ्कजा घई कौशिक
सहाचार्या, संस्कृतविभाग
लेडी श्रीराम महिला महाविद्यालय

सारांश–

संस्कृत काव्य परंपरा में कवि कालिदास का नाम किसी परिचय की अपेक्षा नहीं रखता। कालिदास के काव्यों का विश्लेषण काव्य सौंदर्य, प्रेम प्रसंग, प्रकृति की उत्कट छटा आदि के आधार पर अधिक हुआ है। कालिदास के काव्य प्रमुख रूप से लौकिक काव्य हैं जिनमें तत्कालीन समाज की विभिन्न संस्थाओं का दिग्दर्शन हो जाता है। विधि एवं न्याय प्रत्येक समाज की अत्यंत प्रमुख संस्था होती है। सामाजिक गतिविधियों और राज्य की सुचारू कार्यवाही के संचालन के लिए न्याय व्यवस्था अपरिहार्य है। कालिदास ने अपने काव्यों को रमणीय बनाने के साथ-साथ अपने काल के समाज और उसकी महत्वपूर्ण संस्थाओं का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष वर्णन भी कर दिया है। इस शोध पत्र में कालिदास की रचनाओं में उपस्थित न्याय प्रक्रिया एवं दंड व्यवस्था के कतिपय सिद्धांतों का अन्वेषण कर कालिदास के वैधानिक चिंतन का विश्लेषण किया गया है।

संस्कृत साहित्य के मूर्धन्य कवि कालिदास प्रणय के ही नहीं अपितु उन्होंने विधि एवं न्याय संबंधी सिद्धांतों को अपने कार्यों में प्रस्तुत कर अपनी तीक्ष्ण व्यवहारिक मेधा का परिचय देते हैं। कालिदास का मत है कि विभिन्न प्रकार के अनाचार न्याय के उद्भूत होने के मुख्य कारण हैं। समाज में न्याय एवं दंड का पालन करने हेतु राजा की आवश्यकता है। [1]

न्याय के स्रोत

कालिदास मुख्य रूप से श्रुति (वेद) एवं स्मृति (धर्मशास्त्र) को न्याय स्थापित करने का स्रोत मानते हैं। श्रुति और स्मृति में श्रुति की प्राथमिकता बताते हैं अर्थात् कालिदास के अनुसार समाज में अर्थमूलक (Civil cases) और दंडमूलक (Criminal cases) विवादों के लिए प्राथमिकता वैदिक नियमों की रहती थी और स्मृतियों के उन्हीं सिद्धांतों का अनुसरण होता था जो श्रुति आधारित होते थे।[2] धर्मशास्त्रकार मनु एवं याज्ञवल्क्य ने भी इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। याज्ञवल्क्य स्मृति में मिताक्षराकार ने कालिदास के इसी मत को प्रतिपादित किया है।[3] परंतु कालिदास की न्याय की अवधारणा केवल श्रुति एवं स्मृति पर ही नहीं आधारित है, वे लोकनीति को भी न्याय का आधार मानते हैं जैसा कि मनु ने अखिल वेद, स्मृति, सज्जन व्यक्ति का आचरण और आत्म तुष्टि को न्याय अर्थात् धर्म का मूल माना है,[4] कालिदास भी संदेह की स्थिति में अंत: करण प्रवृत्ति को भी प्रमाण रूप स्वीकार करते हैं।[5] यहां संभवत: कालिदास मनु के ही सिद्धांत को भिन्न रूप से प्रस्तुत करते हैं। उल्लेखनीय है कि कालिदास मनु को एक महान विधिकर्ता मानते हैं।

न्यायप्रक्रिया एवं दंड व्यवस्था के कतिपय विशिष्ट सिद्धांत–

राजा सर्वोच्च न्यायाधीश

धर्मशास्त्रीय विद्वानों की भांति कालिदास भी मानते हैं कि सभी प्रकार के विवादों को सुलझाने का प्रमुख दायित्व राजा का है। राजा कुमार्ग पर चलने वालों को नियंत्रित करने के लिए आत्तदंड धारण करते हैं।[6] वस्तुत: कालिदास ने न्याय अर्थात् दंड को राजा के एक अंग के रूप में निरूपित किया है। रघुवंश में उक्त है कि उस दण्डवान् राजा की देह से दंड (न्याय) पृथक् नहीं है।[7] अतएव राजा ही सर्वोच्च न्यायाधीश है जो व्यवहार आसन पर आसीन है। धर्मशास्त्रीय ग्रंथों में उल्लिखित है कि राजा अकेले ही न्याय कार्य संपन्न नहीं कर सकता अत: उचित न्याय कार्य व्यवस्था के लिए सहायक न्यायाधीशों की सहायता अपेक्षित है। रघुवंश में राजा के सहायक रूप में 'धर्मस्थ' का उल्लेख मिलता है कि राजा धर्मस्थ सहायक के साथ स्वयं ही अर्थी एवं प्रत्यर्थी के व्यवहारों का तंद्रा रहित होकर अवधान करें तथा तत्संबंधी संशयों को दूर करें।[8] ध्यातव्य है कि कौटिल्य अर्थशास्त्र के तृतीय अधिकरण [9] में न्याय वेत्ता के लिए धर्मस्थ शब्द का प्रयोग हुआ है यह वही पद है जिसके लिए धर्मशास्त्रीय ग्रंथों में सामान्यत: प्राड्विवाक अथवा धर्माध्यक्ष शब्दों का प्रयोग हुआ है।[10] इसके

अतिरिक्त अभिज्ञानशाकुंतलम् के छठे अंक में उल्लेख है कि राजा नागरिकों के मामलों की जांच करने का आदेश 'न्यायमंत्री' को देता है। मंत्री के दिए हुए निर्णय को परिवर्तित करने का अधिकार राजा को था ऐसा संकेत छठे अंक में प्राप्त होता है।[11] मालविकाग्निमित्रम् में भी न्याय प्रक्रिया में राजा के साथ अन्य सहयोगियों की आवश्यकता बताई गई है।[12] ऐसा उल्लेख कौटिल्य अर्थशास्त्र एवं शुक्र नीति जैसे राजनीतिक ग्रंथों में भी प्राप्त होता है।[13]

न्याय प्रक्रिया

यद्यपि कालिदास की रचनाओं में न्यायालय की प्रक्रिया का साक्षात् चित्रण नहीं मिलता परंतु परोक्ष उल्लेख मिलते हैं यथा विभिन्न प्रसंगों में दिए गए दंड के आधार पर यह कहा जा सकता है कि न्यायिक प्रक्रिया होती थी और उस स्थान को राजकुल अथवा गोपुरद्वार कहा जाता था।[14] राजा ही विवादों को सुनता था और निर्णय लेता था।[15]

अपराध एवं दंड व्यवस्था

कालिदास के अनुसार विधि का उल्लंघन अपराध है और वह अपराध कड़े दंड का कारण बनता है कालिदास ने दंड का प्रयोजन भी बताया है। मनुष्य एवं परिस्थितियों को नियंत्रित करने के लिए न्याय एवं दंड की आवश्यकता है ऐसा उल्लेख रघुवंश में मिलता है।[16] कालिदास साहित्य में शाप के रूप में दंड देखने को मिलता है शाप रूपी दंड का उल्लेख विक्रमोर्वशीयम् और मेघदूतम् में सर्वोत्तम ढंग से उपलब्ध होता है। मेघदूतम में शापरूपी दंड का कारण कर्तव्य के प्रति प्रमाद है। जैसे प्राचीन धर्मशास्त्रीय ग्रंथों में समान न्याय की अवधारणा नहीं मिलती अपितु अपराध के अनुसार दंड निर्धारित करने का सिद्धांत मिलता है उसी प्रकार कालिदास ने भी रघुवंशम् में यथापराधदंडानाम् का सिद्धांत देकर दंड की व्याख्या की है। ध्यातव्य है कि कौटिल्य अर्थशास्त्र में विभिन्न आचार्यों के दंड संबंधी मतों को उद्धृत करते हुए कौटिल्य ने भी यथापराधदण्ड: का विधान किया है।[17] कालिदास यह भी मानते हैं कि अपराधी पर किसी प्रकार की दया न करते हुए उसे दंडित अवश्य करना चाहिए।[18]

विविध प्रकार के दंड

हस्तबंध– अपराधी के पकड़े जाने के बाद अपराधी के हाथ पीठ के पीछे बांध दिए जाने का उल्लेख अभिज्ञानशाकुंतलम् तथा मालविकाग्निमित्रम् में प्राप्त होता है इस प्रकार के दंड को निगड कहा गया है।[19]

प्रताड़ना– बंधक अपराधियों की प्रताड़ना आरक्षकों के द्वारा की जाती थी। प्रताड़ना का उद्देश्य अपराध को स्वीकार करना अथवा चोरी की हुई वस्तुओं को प्राप्त करना था।[20]

अपशब्द– अपराधी को हतोत्साहित करने के लिए विभिन्न प्रकार के अपशब्द बोले जाने का विधान प्राप्त होता है।[21]

मृत्यु दंड कालिदास साहित्य में दो प्रकार के मृत्युदंडों का उल्लेख मिलता है गृध्रबलि और शुन अर्थात् कुत्ता के आगे छोड़ना।[22] अभिज्ञानशाकुंतलम् में यह दंड वस्तुत: चौर कर्म के लिए निर्धारित किया गया है। यह कहीं स्पष्ट नहीं होता कि यह दंड मात्र भय उत्पन्न करने के लिए थे अथवा यथार्थ में इनका प्रयोग होता था। अपराधी को वध पुष्पों से सुसज्जित करने का उल्लेख मिलता है संभवत: यह मृत्यु से पहले उसकी इच्छा पूर्ण करने की प्रक्रिया हो। वस्तुत: रघुवंशम् में '*न खरो न च भूयसा मृदु:*' कहकर कालिदास राजा को अपराध के लिए दंड का निश्चय करते समय मध्य मार्ग का अनुसरण करने का आदेश देते हैं ।

कारागृह

बंदियों, अपराधियों को निगृहीत कर रखने के स्थान के लिए कारागृह और पातालवासम् शब्दों का प्रयोग रघुवंश में मिलता है। मालविकाग्निमित्रम् में रनिवास के अंदर ही निग्रहण का उल्लेख है। कौटिल्य अर्थशास्त्र में पुरुष एवं स्त्रियों के लिए पृथक् कारागृह का वर्णन मिलता है परंतु रनिवास में कारागृह का कहीं उल्लेख नहीं किया गया। इसी प्रकार कारागृह संबंधी विषय में कालिदास का सिद्धांत मनु के सिद्धांत से भी पृथक् हो जाता है क्योंकि मनु अंत:कारागृह का उल्लेख नहीं करते अपितु नियम देते हैं कि कारागृह का मुख राजमार्ग की ओर हो।

निष्कर्ष

कालिदास साहित्य में प्राप्त होने वाले न्यायिक एवं दंड व्यवस्था के सिद्धांतों से स्पष्ट होता है कि कालिदास अपने पूर्व आचार्यों द्वारा प्रतिपादित न्यायिक सिद्धांतों का अनुसरण करते हैं। ऊपर जिन सिद्धांतों का वर्णन किया गया है उनमें पूर्व आचार्यों के सिद्धांतों का प्रभाव दिखाई देता है। इस विषय में प्रोफेसर सत्यपाल नारंग ने अपना मत दिया है कि 'कालिदास सामाजिक धार्मिक विषयों के लिए मानव धर्म शास्त्र के सिद्धांतों को आधार बनाते हैं और राजनैतिक एवं वैधानिक विषयों के लिए कौटिल्य के सिद्धांतों का अनुसरण करते हैं।'[23]

सन्दर्भ सूची –

1. विशीर्णतल्पाट्टशतो निवेश: पर्यस्शाल: प्रभुणा विना में रघुवंशम् 16.11
2. श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्। रघुवंशम् 2

3. एतेषां विरोधे पूर्वपूर्वस्य बलीयस्त्वम्।
याज्ञवल्क्य स्मृति 1.9
4. वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च।।
मनुस्मृति।2.6
5. अभिज्ञानशाकुंतलम् प्रथम अंक
6. नियमसि कुमार्गप्रस्थितानात्तदण्डः।
अभिज्ञानशाकुंतलम् 5.8
7. तस्यदण्डवतो दण्डःस्वदेहान्न व्यशिष्यत ।
रघुवंशम् 17.62
8. स धर्मस्थसखः शश्वदर्थिप्रत्यर्थिनां स्वयम् ।
ददर्श संशयच्छेद्यान् व्यवहारानतन्द्रितः।।
रघुवंशम् 17.39
9. कौटिल्य अर्थशास्त्र 3.1
10. काणे, पाण्डुरंगवामन- History of Dharma Shastra volume 3 पृ 269
11. ननु गर्भः पित्र्यंरिक्थमर्हति।
अभिज्ञानशाकुंतलम् अंक 6
12. सर्वज्ञस्याप्येकाकिनो निर्णयाभ्युपगमनो दोषाय।
मालविकाग्निमित्रम् प्रथम अंक
13. नैकःपश्येच्च कार्याणि वादिनोः शृणुयाद्वचः।
शुक्रनीतिसार 4.5
14. इमं गोपुरद्वारमप्रमत्तौ प्रतिपालयताम्।
अभिज्ञानशाकुंतलम् अंक 6
15. यावदङ्गुलीयकं यथागमनं भर्तुनिर्वेद्य ततःशासनम् ।
प्रतीक्ष्य निष्क्रमामि ।
अभिज्ञान शाकुंतलम् प्रथम अंक
16. रघुवंशम् 1.25
17. यथार्थदण्डःपूज्यः।
कौटिल्य अर्थशास्त्र 1.4
18. अलमत्र घृणा अपराधी शासनीयः।
विक्रमोर्वशीयम् पंचम अंक
19. पश्चाद्बद्धपुरुषम्।
अभिज्ञानशाकुंतलम् षष्ठ अंक
निगडापद्यौ।
मालविकाग्निमित्रम्
20. अभिज्ञानशाकुंतलम्- षष्ठ अंक
21. अभिज्ञानशाकुंतलम्- षष्ठ अंक
22. गृध्रबलिर्भविष्यसि शुनो मुखं वा द्रक्ष्यसि।
अभिज्ञानशाकुंतलम्- षष्ठ अंक
23. नारंग,सत्यपाल- 'Juridical Studies in Kalidas' पृ 5

ISSN 2278 - 0327

जैनदर्शन-वाङ्मय में वास्तुविद्या एक आयाम

(जैन-दर्शन के आलोक में वास्तुविद्या एक परिचयात्मक अध्ययन)

डॉ. रविन्द्र प्रसाद उनियाल
सहायकाध्यापक (वास्तुज्योतिषविभाग)
केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, भोपाल परिसर

प्रस्तावना

भारतीय साहित्य का स्थान विश्वसाहित्य में सर्वोत्कृष्ट और व्यापक है। इसकी प्रामाणिकता और प्राचीनता सर्वमान्य है। भारतीय साहित्य की सर्वोत्कृष्टता और व्यापकता का प्रमाण इसकी विविध साहित्यिक सम्पदा स्वरूप शाखाओं जैसे हिन्दू, बौद्ध, जैन आदि से सुस्पष्ट है। इन शाखाओं में जैन साहित्यिक परम्परा का अपना स्थान है। जहां दर्शन साहित्य, व्याकरण, गणित, ज्योतिष, वास्तु, शिक्षा, योग, आदि विविध शास्त्रों के ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। इनमें वास्तुशास्त्र का अपना विशिष्ट स्थान है। वर्तमान में वास्तुविद्या का महत्व और उपयोगिता इस बात से स्पष्ट ही है कि ब्रह्मा के द्वारा चारों वेदों में अथर्ववेद के उपवेद को स्थापत्य वेद के रूप में स्थापित किया गया। जो सर्वविदित है। जैन वाङ्मय का अध्ययन करने से पता चलता है कि जैन साहित्य में भी वास्तुविद्या के विषय पर्याप्त रूप में वर्णित हैं। जैन परम्परा में प्राचीन काल से ही मन्दिर तथा भवनों का निर्माण वास्तुशास्त्र के अनुसार ही होता आया है। श्रवणवेलगोला, खजुराहो, पालीताना, रणकपुर आदि हजारों मंदिरों में वैज्ञानिक रीति से वास्तु का प्रयोग विश्व को अचम्भित कर देने वाला है। जैनधर्म में भगवान् ऋषभदेव को ही वास्तुविध का प्रथम उपदेष्टा माना जाता है।[1] जिन्हें आदिनाथ, आदिब्रह्मा, प्रजापति, वृषभ, पुरुदेव, आदिसूनु और बृहद्देव आदि नामों से भी जाना जाता है। इन्होंने ही युगारम्भ में प्रजा को कृषि, वाणिज्य, वास्तु-शिल्प आदि विभिप कर्मों की शिक्षा दी थी।

प्रस्तुत लेख के माध्यम से जैन वाङ्मय में वास्तुविद्या एक आयाम है। साथ ही जैनधर्म में वास्तुशास्त्र का स्वरूप क्या है? जैन साहित्य में वास्तुकला और उसकी ग्रन्थसम्पदा, वास्तु की आचार्य परम्परा, जैन प्रतिमाओं के निर्माण का विज्ञान आदि विषयों का प्रतिपादन किया गया है।

वास्तु शब्द 'वस्' धातु से निवास अर्थ में व्युत्पन्न हुआ है तथा यह निवास योग्य भूखण्ड तथा गृह का बोधक है।[2] वेदों में सुवास्तु गृह के अर्थ में[3] और अवास्तु गृहाभाव[4] के लिये प्रयुक्त हुआ है।

जैन प्रतिमाओं के पूजन और प्रतिष्ठा हेतु जैन मन्दिरों के निर्माण की विधियां जैन ग्रन्थों में पर्याप्त रूप में मिलती हैं। जिनमें आचार्य वसुबिन्दु आसाध्र, नेमिचन्द्र, हस्तिमल्ल, नरेन्द्रदेव, माघनन्दि, कुमुदचन्द्र, राजकीर्ति आदि के प्रकाशित अप्रकाशित प्रतिष्ठा ग्रन्थों में भी उपलब्ध है।

जैन साहित्य में वास्तुकला

जैन ग्रन्थों का अवलोकन करने पर पता चलता है कि वास्तुविद्या का वर्णन जैनाचार्यों ने कितना अधिक किया है इसका कारण यह है कि जैन वास्तु कला जैन सम्प्रदाय में अपने आप में एक अलग परम्परा है। जो नवीन प्राचीन जैन मन्दिरों में स्पष्ट देखी जा सकती है। फिर भी जैन शैली के मन्दिर सनातन मन्दिरों से अत्यध्कि साम्यता रखते हैं परिणाम स्वरूप जैनाचार्यों ने वास्तुविद्या का वर्णन जैन साहित्य में समय समय पर किया। और वास्तुकला विषयक विभिन्न ग्रन्थों का भी प्रणयन किया। अवलोकन से पता चलता कि जैनसाहित्य में वास्तुविद्या से सम्बद्ध आचार्यों और उनके द्वारा प्रणीत ग्रन्थों की एक विस्तृत सूची प्राप्त होती है।

जैन पुराणों तथा करणानुयोग के प्राय: सभी ग्रन्थों से वास्तु विद्या और शिल्पशास्त्र पर विशद प्रकाश पड़ता है। त्रिलोक, मध्यलोक, जम्बूद्वीप, मेरू, समवशरण आदि की रचना पर सहस्त्रों गाथायें और श्लोक हैं। इसी क्रम में 'लोयविभाग' करणानुयोग का प्राचीन किन्तु अनुपलब्ध ग्रन्थ है। जिसका संस्कृत रूपान्तरण 'लोक-विभाग' के नाम से मुनि सिंहसूरि ने लगभग 11वीं शती में किया था। एक और अनुपलब्ध ग्रन्थ हैं- 'ज्योतिषकरण्डक' जो कि 'सूर्यप्रज्ञप्ति' नामक प्राचीन ग्रन्थ पर आधरित है। जिस पर आचार्य पादलिप्त सूरि(5वीं शती) की प्रकरण टीका तथा आचार्य मलयगिरि की टीका उपलब्ध होती है। आचार्य यति वृषभ द्वारा रचित 'तिलोयपण्णत्ती' नामक ग्रन्थ उपलब्ध ग्रन्थों में सर्वाध्कि

विस्तृत व्यवहारिक और सूचना प्रधान कहा जा सकता है। जिसका परवर्ती आचार्यों द्वारा खूब अनुसरण भी किया गया। इस ग्रन्थ में नागरियों के विस्तृत वर्णन के अतिरिक्त राजभवन, मंदिर, आवासगृह, प्रवेशद्वार, जलाशय, परकोटा, गुफा, स्तूप, बाजार, मानस्तम्भ, मेरू, प्रासाद आदि की लम्बाई-चौड़ाई, ऊँचाई-गहराई, नाप-जोख आदि भी सूक्ष्म मान के साथ वर्णित किये गये हैं। तीर्थंकर के समवशरण का वर्णन तो और भी विस्तार से है। आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती का 'त्रिलोकसार' (11वीं शती) आचार्य पद्मनन्दि का 'जंबुद्दीपण्णत्ती' आदि भी उल्लेखनीय है। पांचवी शती के आचार्य पादलिप्त सूरि की 'निर्वाणकलिका' दसवीं शदी के उत्तरार्द्ध के आचार्य वीरनन्दी द्वितीय की 'शिल्पसंहिता' और आचार्य इन्द्रनन्दि का 'प्रतिष्ठापाठ' 11वीं शती के आचार्य ब्रह्मदेव का 'प्रतिष्ठा-तिलक' 12वीं शती के ही पंडित आशाध्र का 'प्रतिष्ठा-सारोद्धार' और ठक्कुर फेरु का 'वत्थु-सार-परायण' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। वास्तुविद्या के लिये पुराण साहित्य का योगदान भी कम नहीं है। जिसका उल्लेख जिनसेन ने हरिवंशपुराण (783) में विस्तार से किया है। इनके अतिरिक्त काव्य, नाटक, चम्पू आदि ग्रन्थों में वास्तु विद्या से सम्बन्धित नगरों, जिनालयों, राजप्रासादों, जलाशयों, प्रवेशद्वारों आवासगृहों आदि का वर्णन प्राप्त होता है।

जैन ग्रन्थों में वास्तुविद्या का वर्णन विशेषत: जिन मन्दिरों के निर्माण के लिये ही किया गया मिलता है। जैसा कि प्रतिष्ठासारोद्धार में भी स्पष्ट उल्लेख मिलता है-

जैनं चैत्यालयं चैत्यामुत निर्मापयन् शुभम्।
वाम्ान स्वस्य नृपादेश्च, वास्तुशास्त्रां न लंघयेत्।।[5]

जैन मन्दिर में देवकुलिका क्रम-

वास्तु के अनुसार जिन प्रासादों की अपनी निर्माण परम्परा है। निर्माण किस तरह करना चाहिये इसके लिये विधान इस प्रकार है- जिन प्रासादों के चारों तरफ बहत्तर, बावन अथवा चौबीस देवकुलिकायें स्थित हों, और जैन मन्दिरों के बांयी और दांयी तरफ सत्तरह-सत्तरह, पीछे के भाग में नौ और आगे आठ-ऐसे इक्यावन देवकुलिका और एक मुख्य प्रासाद मिलकर कुल बावन संख्या से युक्त स्थान जिनालय कहा जाता है। जिन प्रसाद के बांयी ओर और दाहिनी ओर पच्चीस पच्चीस, पीछे की ओर ग्यारह और आगे की ओर दस ऐसे इकहत्तर देवकुलिका और एक मुख्य प्रासाद मिलकर कुल बहत्तर अवयव सहित जिनालय कहा जाता है। मुख्य जिन प्रासाद के आगे, दाहिनी और बांयी ओर-ऐसे तीन दिशा में आठ-आठ देवकुलिका बनाने से कुल चौबीस जिनालय कहा जाता है। ये सब देवकुलिकायें जगती के प्रान्त भाग [6] में स्थापित की जाती हैं।

जैन वास्तुकला में प्रतिमा निर्माण का विज्ञान

'प्रतिष्ठापाठ' में आचार्य जयसेन ने प्रतिमा निर्माण के मानकों का वर्णन करते हुये सुन्दर पद्यों में लिखा है कि- किस प्रकार की प्रतिमा की पूज्य है। सुन्दर सभी अंगोपांगों से युक्त सुंदर, मनोहर, कायोत्सर्ग, अथवा पद्मासन दिगम्बर, युवावस्था सहित शान्तिभाव युक्त, हृदय, पर श्रीवत्स चिह्न सहित नख केश हीन पाषाण य अन्य धातु रचित, समचतुरस्त्रा संस्थान एवं वैराग्यमय प्रतिमा पूज्य होती है-

संस्थान सुन्दर मनोहर रूपमूर्ध्व-
प्रालम्बितं ह्यवसनं कमलासनं च।
नान्यासनेन परिकल्पितमीशबिम्बम्-
अर्हं विधेप्रथितमार्यमतीप्रपन्नै:।।
बद्धत्वबाल्यरहितांगमुपेतशान्ति-
श्रीवृक्षभूषित मुखं नखकेशहीनम्।।
सद्धातुचित्राह्रषदां समसूत्रभागं-
वैराग्यभूषितमुखं तपसि प्रशक्तम्।।[7]

प्रतिमा निर्माण के मानक-

जैन वास्तु कला में प्रतिमा का निर्माण बहुत ही सुन्दर और वैज्ञानिक ढंग से सूक्ष्ममान के साथ किये जाने का वर्णन है। जिसमें निम्नलिखित चक्र के द्वारा स्पष्ट किया है यहां प्रतिमा का कायोत्सर्ग के मानक में प्रथम नवताल आचार्य वसुनन्दि कृत प्रतिष्ठापाठ में तथा द्वितीय आचार्य नेमिचन्द्र व आचार्य सोमदेव के यशस्तिलकचम्पू के प्रमाण से लिया गया है। बारह अंगुल का एक ताल होता है जिसे वितस्ति या मुख कहा जाता है। अंगुल को भाग भी कहा जाता है इस प्रकार की नवताल प्रतिमा का निर्माण वर्तमान में जयपुर के वास्तुकारों द्वारा निम्नलिखित तय मानकों पर किया जाता है-

प्रतिमा के अवयव	मुख	ग्रीवा	ग्रीवा से हृदय	हृदय से नाभि तक	नाभि से लिंग तक	लिंग से घुटना तक	गोड़ा (घुटना)	गोड़ा (घुटना) से गुल्फ तक	गुल्फ	कुल
नवताल	12	4	12	12	12	24	4	24	4	**108**
दशताल	13	4	13	13	13	27	4	27	4	**120**

आचार्य वराहमिहिर की ज्योतिषशास्त्रीय ग्रन्थ बृहत्संहिता में जैन प्रतिमाओं के लाञ्छनों अर्थात् जैन प्रतिमाओं की विशेषताओं का सुन्दर आभास मिलता है-

आजानुबाहुः श्रीवत्साङ्कः प्रशान्तमूर्तिश्च।
दिग्वासास्तरुणो रूपवांश्च कार्योऽर्हतां देवः।।[8]

अर्थात् तीर्थंकर विशेष की प्रतिमा में लम्बे लटकते हुये हाथ, श्रीवत्स-लाञ्छन, प्रशान्तमूर्ति, नग्नशरीर, तरूणावस्था-ये पञ्च सामान्य विशेषतायें हैं।

भारत के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र में 'सूत्रधार मण्डन' के काल में जैन धर्म का बड़ा प्रभाव था और जैन मन्दिरों के निर्माण का प्रचार भी बहुत अधिक था। रूपमण्डन[9] के अनुसार जैन तीर्थंकर की प्रतिमा के आवश्यक तत्व निम्न प्रकार से प्राप्त होतें हैं-

1. तीन छत्र
2. तोरणयुक्त तीन रथिकायें
3. अशोक द्रुम और पत्र
4. देव दुन्दुभि
5. असुर, गज, सिंह आदि से विभूषित सिंहासन
6. अष्टपरिकर
7. गो सिंह आदि से अलंकृत वाहिका या यक्ष
8. तोरण और रथिकाओं पर ब्रह्मा, विष्णु, चण्डिका, जिन, गौरी, गणेश आदि देवों की प्रतिमा।

मूर्ति को सामान्य रूप से उसके सभी अवयव जैसे-वाहन, आयुध, मुद्रा, अलंकरण और भुजाओं की संख्या के सहित निर्मित किया जाता है।[10] जिस वाहन य वस्तु पर किसी आकृति को बैठा या खड़ा कर दिखाया जाता है, उसे आसन वास्तु कहते हैं। हिन्दु व जैन मूर्तियों को चौकी, सिंहासन, पद्मपत्र, सुमेरू, कमल, पशु, गज, (मृग, व्याघ, वृषभ, महिष, मृग, मेढ़ा, शूकर, गध, शार्दूल आदि) पक्षी (मयूर, हंस, गरुड़, उलूक, आदि) जलचर (मकर, मीन, कच्छप) चर्मासन, पुष्प, चर्म, आदि पर बैठी य खड़ी दिखाई जाती है।[11]

देवों के गुण और शक्तियों को प्रदर्शित करने के लिये प्रतिमाओं में हाथों की संख्याओं को बढ़ा कर उनमें विभिन्न तत्सम्बद्ध चिन्हों को दर्शाया जाता है। शक्ति को प्रदर्शित करने वाले चिन्हों में आयुध प्रमुख हैं शिल्पशास्त्र में आयुधों की संख्या 36 बताई गई है। यथा- चक्र, त्रिशूल, वज्र, धनुष, कृपाण, गदा, अंकुश, बाण, छुरी, दण्ड, शक्ति, नोकदार तलवार, मूशल, परशु (फरसा), भाला (कुन्त), रिष्टिका (कटारा), खट्वांग (मूठदार दण्ड), भुशुण्डि (छोटा नोकदार दण्ड), कर्तिका (कैंची), कपाल, सूची (सूजा), खेट (ढाल), पाश (फंदा), सर्प, हल, मुग्दर, शंख, श्रृंग (बजाने वाला), घण्टा, खोपड़ी, माला, पुस्तक, कमण्डल, कमल, पान-पत्र, योगमुद्रा।[12]

चतुर्विंशति तीर्थंकरों की प्रतिमाओं में साम्यता होने पर भी उनके लाञ्छनों (जिनों के वे विशिष्ट चिन्ह जिसके आधार पर जिनों को पहचाना जाता है), शासन देवता, देवी (यक्ष-यक्षणी), केवल वृक्ष, चामरधरिणी के आधार पर अलग अलग समझा जा सकता है जैन धर्म के सभी तीर्थंकरों की महिमा समान होने पर भी मुद्रायें समान नही हैं ऋषभनाथ, नेमिनाथ और महावीर इन तीनों की आसनमुद्रायें कमलासन हैं। इन्हें इसी मुद्रा में कैवल्य की प्राप्ति हुई थी।[13] जिस तीर्थंकर को जिस मुद्रा में कैवल्य प्राप्ति हुई प्रतिमोत्सर्ग में उस मुद्रा का प्रर्दशन आवश्यक है।

जैन साहित्य के अवलोकन और अध्ययन से स्पष्ट होता है कि जैन साहित्य में जीवनोपयोगी ही नहीं अपितु ज्ञान-विज्ञान और मोक्ष सम्बिन्धित विविध सामग्री तो उपलब्ध है ही साथ ही वास्तुशास्त्र की सामग्री भी पर्याप्त रूप में जैन ग्रन्थों में यत्र-तत्र उपलब्ध है। जिसके उद्घाटन की आवश्यकता आज भारतीय समाज के लिये ही नहीं अपितु विश्वभर में जीवमात्र के कल्याण के लिये अत्यन्त आवश्यक हैं।

निष्कर्ष-

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि वास्तुविद्या जैन वाङ्मय में एक प्रमुख आयाम है। जिसमें प्राचीन काल से ही वास्तुशास्त्र का उन्नत स्वरूप प्राप्त होता है। तथा जैन साहित्य में वास्तुकला और उसकी ग्रन्थ सम्पदा भी पर्याप्त सम्पन्न और समृद्ध रही है। जैन आचार्यों द्वारा समय-समय पर अपने साहित्य में वास्तुविद्या का पर्याप्त उल्लेख किया गया मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल से ही जैन प्रतिमाओं के निर्माण को कलात्मकता के साथ-साथ अति सूक्ष्म और वैज्ञानिक ढंग से प्रतिपादित किया जाता रहा है। जिसके उदाहरण आज भी श्रवणवेलगोला, खजुराहो, पालीताना, रणकपुर, आदि हजारों मंदिरों के रूप में वैज्ञानिक रीति से वास्तुसम्मत प्राप्त होते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. वत्थु-विज्ज, गोपीलाल अमर, कुन्दकुन्द भारती, नई दिल्ली 1996. प्र. सं.
2. वास्तुशास्त्र विमर्श पंचम पुष्प, श्रीलालबहादुरशास्त्री राष्ट्रिय संस्कृतविद्यापीठम्, नईदिल्ली-16
3. संस्कृत वाङ्मय का इतिहास, खण्ड-3, प्रकाशन उत्तर प्रदेश

संस्कृत संस्थान, लखनऊ
4. जैनमूर्ति प्रतिष्ठा का लक्ष्य-पं. गुलाबचन्द्र 'पुष्प' टीकमगढ़।
5. मूर्तिपूजा एवं मूर्ति प्रतिष्ठा, पं. नाथूलाल जैन, शास्त्री इन्दौर।
6. जैनदर्शन-मीमांसा, जैनदर्शन विभागीय शोधपत्रिका, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थान, भोपाल परिसर,
7. रूपमण्डनम्।
8. वृहत्संहिता वास्तुप्रकरण- आचार्य वराहमिहिर प्रणीत, व्याख्याकार पं अच्युतान्द झा।
9. भारतीय मूर्तिकला, अग्रवाल गिरिराज किशोर एवं वास्तुशास्त्र विमर्श, पंचम पुष्प।
10. भारतीय वास्तुकला, शुक्ल द्विजेन्द्रनाथ उद्धृत वास्तुशास्त्र विमर्श, पंचम पुष्प,
11. भारतीय वास्तुशास्त्रा (प्रतिमा विज्ञान)- शुक्ल डी.एन.।

सन्दर्भ सूची -

1. वास्तुशास्त्रविमर्श, पंचम पुष्प, पृ.सं.34
2. वाचस्पत्यम्- भाग-6, पृ.सं.-888, हलायुध्-पृ.सं.-606, अमरकोश-2.2.19
3. ऋग्वेद- 8,19,35
4. अथर्ववेद -12,7,7
5. प्रतिष्ठासारोद्धार श्लोक सं-10
6. द्विसप्तत्या द्विबाणैर्वा चतुर्विंशतितोऽपि वा।
   जिनालये चतुर्दिक्षु सहितं जिनमन्दिरम्।।
   (प्रा. गम. अ.2, पद्य-23, पृ.31-32)
7. प्रतिष्ठापाठ, पृ.सं.-388
8. रूपमण्डनम्, भूमिका पृ.सं.-44-45
9. छत्रात्रायं जिनस्यैव रथिकाभिस्त्रिभिर्यता।।
   अशोकद्रुमपत्रैश्च देवदुन्दुभि वदकैः।
   संहासनमसुराद्योगजसिंहा विभूषिताः।।
   मध्ये च कूर्मचक्रं च तत्पार्श्वयोश्च यक्षिणी।
   द्वितालविस्तराः कार्या बहिः परिकरस्य तु।।
   दैर्घ्यैं तु प्रतिमा तुल्या तयोरूर्ध्वे तु तोरणम्।
   वाहिका बाह्यपक्षे तु गोसिंहरलंकृता।
   कर्तव्याद्वारशाखा च तत्तन्मूर्तिगसंयुता।
   तोरणं पञ्चधा प्रोक्तं रथिकार्यं च देवताः।
   ललितं चेतिकाकारं त्रिरथं बलितोदरम्।
   श्री पुञ्जपञ्चरथिकं सप्तावा नन्दर्वधनम्।।
   रथिकायां भवद्ब्रह्मा विष्णुरीशश्च चण्डिका।
   जिनगोरी गणेशश्च स्वे स्वे स्थाने सुखावहाः।
   रूपमण्डनम् अ.6, श्लोक-33-39 पृ.सं.212-213
10. ए.आफ हि. आ.पृ..17 उद्धृत वास्तुशास्त्रविमर्श, पंचम पुष्प, पृ.सं-95
11. अग्रवाल गिरिराज किशोर- भारतीय मूर्तिकला, पृ.सं..88, उद्धृत वास्तुशास्त्रविमर्श, पंचम पुष्प, पृ.सं.-95
12. शुक्ल द्विजेन्द्रनाथ-भारतीय वास्तुकला पृ.सं.233, उद्धृत वास्तुशास्त्रविमर्श, पंचम पुष्प, पृ.सं.95
13. शुक्ल, डी.एन. भारतीय वास्तुशास्त्र (प्रतिमा विज्ञान) पृ.सं..313-315

ISSN 2278 - 0327

ब्राह्मण ग्रन्थों में आग्नेय सृष्टि प्रक्रिया

डॉ. हनुमान मिश्र
सह-आचार्य
श्रीला०ब०शा० रा०स०वि०, नई दिल्ली

वेद भारतीय साहित्य का वह स्वरूप है जिसमें समस्त ज्ञान का भाण्डागार एवं समस्त विद्याओं का मूल बीज सन्निहित है। कुछ भी इस प्रकार का ज्ञेय नहीं है जिसका मूल बीज वेद में उपलब्ध न हो। अपने अन्तश्चक्षुओं के द्वारा ज्ञान का साक्षात् करने वाले ऋषियों से अनुभूत अध्यात्मशास्त्र आदि के तत्त्वों के विस्तृत शब्दराशि का नाम वेद है।

वेद सर्वप्रथम ऋषियों के हृदय में अवतरित हुए थे। लोक कल्याण हेतु परमेश्वर ने वेदों का प्रकाश किया था। स्वयं वेद इस बात का प्रमाण है कि वेद उसी परमेश्वर की वाणी है।

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत: ऋच: सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत।।[1]

अनेक विचारक विश्वसाहित्य में भारतीय साहित्य की श्रेष्ठता का एकमात्र कारण वैदिक साहित्य को ही मानते हैं। विंटरनिट्ज ने Indischen Literature के प्रथम भाग में कहा है – 'भारतीय वाङ्मय के प्राचीनतम संग्रह के रूप में प्रथम ऋग्वेद का स्थान है।'

वैदिक वाङ्मय की परम्परा में संहिताओं के पश्चात् ब्राह्मण साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है। संहिता के मन्त्रों की यागिक दृष्टि व्याख्या जिन ग्रन्थों में की गयी है, उन्हें ब्राह्मण कहते है। ब्रह्म शब्द के अनेक अर्थ है जिनमें मन्त्र तथा यज्ञ विशिष्ट अर्थ रखते हैं। आपस्तम्ब ने मन्त्र और ब्राह्मण दोनों को वेद कहा है –

मन्त्रब्राह्मणात्को वेद:।[2]

मन्त्रों के समूह का नाम संहिता है अर्थात् जिसमें स्तुति, यज्ञ, गेय, एवं रक्षा विषयक मन्त्रों का संकलन होता है ऐसे मन्त्र समूह को संहिता कहते हैं। मन्त्र का पर्याय ब्रह्म है[3] और ब्रह्म या मन्त्रों के व्याख्यान भूत ग्रन्थ का नाम ब्राह्मण है। ब्राह्मण शब्द की निष्पत्ति तद्धितार्थक अण् प्रत्यय के योग से हुई है जिसका अर्थ यज्ञ अर्थात् जिसमें मन्त्रों एवं अनेक विनियोगों की व्याख्या निहित होती है, उसे ब्राह्मण कहते हैं। यज्ञ अर्थात् ब्रह्म का प्रतिपादन करने के कारण भी इसे ब्राह्मण नाम से अभिहित किया जाता है। ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रमुख विवेच्य विषय यज्ञ है। अत: ब्राह्मण यज्ञ का भी पर्याय है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में वेद की व्याख्याओं के साथ-साथ इसमें अनेक आख्यान एवं सृष्टि विषयक चर्चा हुई है। ब्राह्मण ग्रन्थों में अग्नि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक प्रमाण उपलब्ध होते हैं। ऋग्वेद में भी सर्वप्रथम जिस देवता की अवधारणा है वह अग्नि है। अग्नि को देवताओं में अग्रगण्य एवं देवताओं का ऋत्विज् भी माना जाता है –

'अग्निमिळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजं होतारं रत्नधातमम्'।[4]

सृष्टि के आदि में स्थित एकमात्र प्रजापति के बहुल होने के कामना के अनन्तर ही अग्नि की उत्पत्ति स्वीकार की गयी है–

'प्रजापतेरधि देवताऽअसृज्यन्ताग्नि:।'[5]

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार हिरण्यगर्भ के भीतर स्थित प्रजापति ने सर्वप्रथम जिस वस्तु को उत्पन्न किया, वही अग्नि कहलाया– *'अथ यो गर्भोऽन्तरासीत् । वैतमग्निरित्या चक्षते'*।[6]

सम्भवत: इसी कारण अग्नि को प्राजापत्य भी कहते है। सर्वप्रथम प्रजापति ने अग्नि को रोहिणी नक्षत्र से उत्पन्न किया, जैसा कि तैत्तिरीय ब्राह्मण में कथित है –

प्रजापति: रोहिण्यामग्निमसृजत।[7]

जैमिनीब्राह्मण के अनुसार प्रजोत्पत्ति के प्रसङ्ग में प्रजापति ने अग्नि को अपने मुख से उत्पन्न किया–

प्रजापति: प्रजा असृजत् । सोऽग्निमपि असिसृक्षत।[8]

क्योंकि अग्नि ही प्रजाओं का मुख होता है। *आग्नेयोंदेवत्या तस्माद् उ मुखं प्रजानाम।*[9] एक अन्य प्रसङ्ग में कथित है कि प्रजापति ने तीनों लोकों का सृजन कर उसे तपाया तथा अग्नि को पृथिवी से ऊपर उठाया। त्रीणि शुक्राण्य उदायण अग्नि पृथिव्या।[10] इसी से अग्नि का स्वर्गस्थ होना ज्ञातव्य है। तैत्तिरीय आरण्यक के अनुसार अग्नि की उत्पत्ति प्रजापति के मुख से हुई है– *मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च*।[11]

यह अग्नि उत्पन्न होकर दीप्त नहीं हुआ। अत: प्रजापति ने इसे चमकने के लिए साम-मन्त्रों से फूँका तथा इस अदीप्त अग्नि ने दीप्त होने के लिये स्वयं छन्दों को देखा –

अग्नि सृष्टोनोददीप्यत। तं प्रजापतिरेवेन साम्नोपाधमत्स उददीप्यत्।[12]

अग्नि का एक नाम जातवेदस् भी है। ऋग्वेदीय ब्राह्मण ग्रन्थों में दो अरिणयों के घर्षण से अथवा मन्थन से अग्नि की उत्पत्ति बतलायी गयी है।

द्युलोक में यदि सूर्य तथा चन्द्रमा प्रमुख हैं तथा अन्तरिक्ष में इन्द्र हैं, तब पृथिवी पर अग्नि की प्रमुखता है। अग्नि ही वह पार्थिव देव है, जिसकी देवों के सांसारिक कव्य के केन्द्र यज्ञाग्नि के मूर्तिकरण रूप में स्वभावत: सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। वैदिक देवों में इन्द्र के पश्चात् अग्नि का ही प्रमुख स्थान है। ऐतरेय ब्राह्मण में भी कथित है कि मनुष्यों द्वारा प्रज्वलित होने के कारण अग्नि पार्थिव है –

इमं हि मनुष्या इधतेऽग्निमेव तदस्यिन् लोक आयातयत्।[13]

किन्तु वहीं इसे स्वर्गस्थानीय भी कहा गया है, क्योंकि वहाँ देवताओं द्वारा इसका प्रज्वलित होना स्वीकार किया गया है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में अग्नि का त्रिधा जन्म स्वीकारा गया है। इस सन्दर्भ में यजुर्वेद का एक मन्त्र दर्शनीय है, जहाँ एक ही साथ अग्नि के तीनों जन्मों का वर्णन हैं सर्वप्रथम अग्नि यज्ञ में प्राणवायु से उत्पन्न हुई, द्वितीयत: जब गर्भ अथवा अण्ड हिरण्यगर्भ अथवा पुरुषगर्भ था। इस अग्नि का तृतीय जन्म आप: से हुआ अर्थात् समुद्ररूपी तृतीय यज्ञ में अग्नि बडवानल के रूप में उत्पन्न हुआ । यही अग्नि का तृतीय जन्म है –

दिवस्परिप्रथमं यज्ञे प्राणो वै दिव०। यदेनमदोद्वितीयं पुरुषो–विधोऽजनयत् तृतीयमप्स्विति यदेनमदस् तृतीयम् अद्भ्योऽजनयत्।[14]

अग्नि को त्रिवृत् अग्नि भी कहा जाता है। त्रिवृत् का सामान्य अर्थ तीन प्रकार का होता है, अर्थात् अग्नि के तीन स्वरूप होते हैं। इस सन्दर्भ में शतपथ ब्राह्मण में एक मिथक है कि जब अग्नि देवताओं से मनुष्यों के पास आया, तब उसने अपने शरीर के तीन रूपों को रखा। अग्नि ने अपने पवमानस्वरूप को पृथिवी लोक पर रखा, पावकरूप को अन्तरिक्ष में तथा शुचिरूप को द्युलोक में रखा। अग्नि के इस रहस्य को ऋषि लोग समझ गये कि यह अपने सम्पूर्ण आत्मा के साथ नहीं आया – *स एतांस्तिस्रस्तनुरेषु० तदाऽऋषय: प्रतिबुबुधिरे* [15]

अत: यही अग्नि का त्रिवृत् रूप है।

अग्नि के इस रूप को स्पष्टीकरण ऋषियों द्वारा प्रयुक्त आहुति विधानों से और अधिक हो जाता है। चूँकि प्राण पवमान होता है, अत: वह 'अग्नि पवमान' के लिये आहुति में निकालता है तथा यजमान में प्राण धारण कराता है, अत: वह उस यजमान में अन्न को धारण कराता है। यह आहुति अन्न (प्राण) की ही होती है–

स वाऽअग्नये। प्राणमेवास्मिन्नेतद्यद्धाति। [16]

द्वितीय बार अग्नि पावक के लिए आहुति देता है। चूँकि अन्न ही पावक है, अत: वह उस यजमान में अन्न को धारण कराता है – *अथाग्नये पावकाय। पावकमन्नमेवास्मिन्नतेतद्दधाति।*[17]

तृतीय बार वह ऋषि शुचि अग्नि के लिये आहुति देता है। यह शुचि ही वीर्य है अग्नि की ज्वालाएँ हि यजमान में वीर्य (पराक्रम) की स्थापना कराती है –

अथाग्नये शुचये निर्वपति। वीर्यमेवास्मिन्नेतद्दधाति।[18]

इन्हीं तीन अग्नियों को जैमिनीय ब्राह्मण में भूपति: भुवनपति: तथा भूतानां पति: आदि संज्ञाओं से जाना गया है। [19]

प्रजापति द्वारा उत्पन्न होकर अग्नि सृष्टिकर्ता के रूप में दृष्ट होता है, यहाँ तक कि यह समस्त सृष्टि का ईश है। अग्नि को सृष्टिकारी वीर्य का संग्रह करने वाला भी कहा गया है – *अग्निर्वैरेतोधा:। रेतएवतद्दधाति*। [20] शतपथ ब्राह्मण में कथित है कि देवताओं ने अग्नि के द्वारा त्वचा शरीर के चारों तरफ लिपटा क्योंकि अग्नि मिथुन (जोडे) का जनक अथवा कर्त्ता है इस प्रक्रिया से देव सन्तान युक्त हुए। यजमान भी इसी का अनुकरण करते हैं। अग्नि भी प्रजापति की भाँति प्रजाओं का जनयिता है। यही नहीं अन्य देवताओं का भी उत्पादक है क्योंकि देवता लोग कोई भी हवि अपने अग्निमुख द्वारा ही प्राप्त करते हैं – *तेऽग्निनैव त्वचं विपत्याङ्क्यन्त कर्ता प्रजनयिता*। [21] अग्नि को प्रजापति भी कहा गया है। इसलिए चातुर्मास्य इष्टि का पुरोडाश अग्नि के लिये होता है।

अग्नि को भुव: भी कहा जाता है, क्योंकि उस अग्नि से ही प्रत्येक वस्तुएँ सत्य के अधिकार क्षेत्र में आयी। *अग्निर्वै देवतानां मुखं प्रजनयिता प्रजापतिस्तस्मादाग्नेयो भवति*।[22] अग्नि द्वारा अनेक वस्तुएँ सृष्ट हुई। अग्नि अन्य देवताओं का भी उद्भव स्थान है। शतपथ ब्राह्मण इस बात की पुष्टि करता है– *अयं पुरो भुव। सर्वं भवति।*[23] सूर्य को भी अग्नि से उत्पन्न बतलाया गया है – *इदम् अग्नी सिध्यतेऽग्निर्वै देवयोनि*। [24] वह सूर्य सांयकाल उस अग्नि रूपी योनि में ही छिप जाता है। यह अग्नि एकत् द्वित् तथा त्रित् आदि देवताओं की सृष्टि के लिए भी उत्तरदायी है।

यज्ञ की इच्छा करने वाला यजमान सर्वप्रथम पुरोहित को नियुक्त करता है। तदनन्तर देव मेरे अन्न का उपभोक्ता होवें, इस उद्देश्य से कथित अन्न के स्वर्ग तक ले जाने वाली अग्नियों को स्थापित करता है। इस प्रकार पुरोहित उस यज्ञ का आहवनीयाग्नि होता है। स्त्री गार्हपत्याग्नि तथा पुत्र दाक्षिणाग्नि होता है। ये अग्नियाँ

विघ्ननाशक शान्तनु होकर पुरोहित से अर्चित तथा यजमान से प्रसन्न होकर हविष् को स्वर्ग तक ले जाती है। परिणामस्वरूप वह यजमान के लिये क्षत्र, बल,राष्ट्र तथा प्रजा देने वाला होता है। वह पुरोहित जो अग्नि वैश्वानर है, उसमें पाँच विघ्नकारक शक्तियाँ होती हैं। जैसे समुद्र भूमि को घेर कर सुरक्षित रखता है, उसी प्रकार वह प्रजा को घेर कर उसे सुरक्षित रखता है। *अग्नेर्वा आदित्यो जायते*। [25] अग्नि का इतना व्यापक स्वरूप है कि उसे रुद्र तथा इन्द्र अथवा यज्ञ की संज्ञा देना अप्रासङ्गिक नहीं होगा। रुद्र तो प्रत्यक्षत: अग्नि का ही रूप है। अग्नि जब रुद्र स्वरूप यज्ञ चिति में रश्मिभूत हुआ, तब वह प्रजापति द्वारा उत्पन्न होकर स्वयं रुद्र का उत्पादक बन गया तथा उस रुद्र ने अग्नि का रूप धारण कर लिया। *अग्निर्वाऽएष वैश्वानर: परिगृह्य तिष्ठति समुद्र इव भूमि*।[26] अग्नि और इन्द्र का भी अन्योन्याश्रित होना ब्राह्मण ग्रन्थों से पुष्ट होता है। इन्द्र, सूर्य (अग्नि) सदृश है। जब कि वायु अग्नि की अपनी महत्ता है, अर्थात् वायु भी अग्नि का रूप है- *अथैतानमग्निचित्यायां। देवानामशान्त: संचितो भवति*। [27] देवताओं तक द्रव्यादि पहुँचाने की क्रिया गुण के कारण अग्नि को भरत कहा जाता है – *वायुर्वा अग्ने- स्वो महिमा*।[28] यज्ञ के सन्दर्भ में तो अग्नि महत्त्वपूर्ण देवता है। अग्नि के बिना यज्ञ सम्पादित हो ही नहीं सकता है। यज्ञ के सन्दर्भ में तो अग्नि को स्वर्ग की प्राप्ति होती है। इस प्रकार यज्ञ को अग्नि माना जा सकता है। यज्ञ की सम्पन्नता से ही देवताओं को स्वर्ग की प्राप्ति होती है। इस प्रकार यज्ञ को अग्नि माना जा सकता है। देवता अग्नि के द्वारा ही अग्नि में यज्ञ सम्पन्न करते हैं। आदित्य और अंगिरा भी इसी प्रक्रिया से सम्पन्न होकर स्वर्ग में स्थित हुए- *अग्निर्वैभरत: स वै देवेभ्यो हव्यं भरति*। [29]

इस प्रकार आग्नेय सृष्टि पर समग्र दृष्टि डालने से स्पष्ट होता है कि यह अग्नि सम्पूर्ण विश्व का देवता है यह अग्नि देव पत्नियों से भी सम्बन्ध रखता है –

देवास्तेऽग्रेऽग्निनाग्निमयजन्त ते स्वर्ग लोकम आयन्न। [30]

यह अग्नि का अति सूक्ष्म रूप है। इस अग्नि का एक रूप वैश्वानर भी है। विश का सामान्य अर्थ प्रजा होता है, अर्थात् वह प्रजापति है, पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युरूपी तीन विषयों के तीन नरों या प्राणों की जो समष्टि है, उसी को वैदिक संज्ञा में वैश्वानर कहा जाता है। यह जठरस्थ अग्नि वैश्वानर ही है, क्योंकि गीता में भी भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है हे अर्जुन! मैं वैश्वानर होकर प्राणियों के शरीर में स्थित रहता हूँ तथा इनके खाद्य अन्नों को पचाता हूँ। यह वैश्वानर अग्नि पार्थिव अग्नियों की नाभि है । पर्वतों, वृक्षों तथा मनुष्य आदि में फैली हुई नानाविध अग्नियाँ उसमें उसी प्रकार स्थित है, जिस प्रकार सूर्य में रश्मियाँ। वैश्वानर का अनेक रूपों में विभक्त होना ही देवों द्वारा इनका विभिन्न रूपों में उत्पादन करना है।

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रित।
प्राणापानसमायुक्त: पचाम्यन्नं चतुर्विधम्॥ [31]

सूर्य से सम्बन्धित होने के कारण वैश्वानर को स्व: भी कहा जाता है – *स्वर्यते सत्यशुष्माय पूर्वी वैश्वनारायनृतमाय यह्वी:*।[32] इस प्रकार अग्नि सभी देवताओं में अग्रगण्य है तथा इसीलिये इन्हें देवताओं का अधिपति भी कहा जाता है।

सन्दर्भ सूची –

1. ऋक् – 10/90/9 ।
2. आपस्तम्ब परिभाषा-31 ।
3. शतपथ ब्राह्मण-7-1-1-5 ।
4. ऋ०-1-1-1 ।
5. शत०ब्रा०- 11-1-6-14।
6. शत०ब्रा०- 6-1-1-11
7. तै०ब्रा०-1-1-2-2।
8. जै०ब्रा०-1-73 ।
9. जै०ब्रा०-1-63 ।
10. जै०ब्रा०-1-357 ।
11. तै.आ. -3-12 ।
12. ताण्ड्यब्राह्मण -13-3-22 ।
13. ऐतरेय ब्राह्मण ।
14. शतपथ ब्राह्मण 6-7-4-3 ।
15. शतपथ ब्राह्मण 2-2-1-14 ।
16. शतपथ ब्राह्मण 2-2-1-6 ।
17. शतपथ ब्राह्मण 2-2-1-7 ।
18. शतपथ ब्राह्मण 2-2-1-8 ।
19. जैमिनीय ब्राह्मण -2-41 ।
20. तैत्तिरीय ब्राह्मण 3-7-3-7 ।
21. शतपथ ब्राह्मण – 3-4-3-4 ।
22. शतपथ ब्राह्मण – 2-5-1-8 ।
23. शतपथ ब्राह्मण – 8-1-1-4 ।
24. ऐतरेय ब्राह्मण – 4-5 ।
25. ऐतरेय ब्राह्मण – 40-5 ।
26. ऐतरेय ब्राह्मण – 8-25-8
27. कौषितकि ब्राह्मण – 19-4।
28. कौषितकि ब्राह्मण -3-3 ।
29. कौषितकि ब्राह्मण – 3-2 ।
30. ऐतरेय ब्राह्मण -1-16 ।
31. गीता -15-14 ।
32. ऋक् सं०- 1-59-4 ।

ISSN 2278 - 0327

शिशुपालवध में वन्यजीव

डॉ. जी.एल. पाटीदार
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर(राज.)

झमकलाल भील
शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

शोध सारांश

महाकवि माघ पण्डित परंपरा के मूर्धन्य ख्यातनाम विद्वान् रहें है। अपनी कृति शिशुपालवध में जीव-जगत् के सम्पूर्ण व्यावहारिक पक्षों का दिग्दर्शन कराया है। महाकवि माघ ने शिशुपालवध महाकाव्य में वर्णित वन्यजीव की स्थिति, वन्यजीव का स्वरूप, वन्य जीवों का महत्त्व एवं वन्य जीवों का मानव जनजीवन में योगदान एवं प्रभाव को महाकाव्य के कथा-प्रसंगों के कई उद्धरणों में अभिव्यक्त किया है, जिसमें कवि प्रकृति की सुन्दरता के साथ-साथ प्रकृति में विचरण करने वाले जल, पृथ्वी, वायु और आकाश के विभिन्न जीवों के महत्त्व को बताया है। जीवों के प्रति दया, करुणा, प्रेम भाव को भी कई प्रसंगों में प्रकट किया है। इस आलेख में यहाँ पर महाकवि माघ के दृष्टिकोण से वन्यजीवों के महत्त्व को प्रतिपादित किया जा रहा है, जो मानव जीवन की बुनियाद हैं। वन और वन्यजीव के बिना मानव अस्तित्व कायम नहीं रह सकता है। इस भूमा पृथ्वी पर हर जीव की अपनी महत्ता है, उसी को बताने का एक अल्पप्रयास है।

प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य के काव्यकारों में कवि माघ को सर्वश्रेष्ठ कवि माना जाता है। क्योंकि उनकी रचनाओं में भारतीय संस्कृति के प्राण तत्त्व मिलते हैं। कवि माघ ने भारवि की प्रतिद्वन्दिता में ही महाकाव्य की रचना की है लेकिन भारवि से आगे निकल गये। इनकी एक मात्र कृति शिशुपालवधम् जिसे महाकाव्य भी कहा जाता है वृहत्त्रयी में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है इसकी महत्ता के विषय में कहा है कि *'मेघे माघे गतं वयः'* इसलिए माघ विद्वानों के बीच पण्डित कवि के रूप में प्रसिद्ध हुए। महाकवि माघ का प्रकृति प्रेम एवं रक्षण के क्षेत्र में भी महान् योगदान था।

यद्यपि कवि माघ ने सरोवर, वन, उपवन, पर्वत, नदी, वृक्ष, सन्ध्या, प्रातः, रात्रि, अन्धकार आदि प्रकृति के विभिन्न रूपों का चित्रण उद्दीपन के रूप में किया। तथा उसी प्रकार कवि माघ ने वनों और वन्यजीवों का प्रत्यक्ष संरक्षण भी किया है।

कवि माघ ने शिशुपालवधम् महाकाव्य के माध्यम से स्पष्ट किया है कि वन्य जनजीवन के प्रति व्यक्तियों के भाव सरल व अहिंसावादी थे। कवि की कल्पना शक्ति इतनी तेज थी कि वन में विचरण करने वाले प्रत्येक सूक्ष्म से सूक्ष्म जीव का बारीकी से आत्मिक भाव प्रकट किया है। कवि ने वन्यजीवों का ध्यान रखते हुए उनकी दिनचर्या उनका खान-पान, उनका प्रेम, वन में रहने की स्थिति कठिनाई आदि का गहराई से वर्णन किया है। जिसको पढ़कर कोई भी पाठक उस में डूब जाता है। इसमें कवि ने पशु, पक्षी, मनुष्य, हाथी, घोड़े, चीतल, गेंडा, गाय, बैल, शेर, बाघ, मगर, मछली, तोते, मोर, कोयल, भँवरे, मधुमक्खी आदि का सजीव और हृदयस्पर्शी वर्णन किया गया है।

शिशुपालवध में वन्यजीव

शिशुपाल महाभारत कालीन चेदी राज्य का स्वामी था। महाभारत में चेदी जनपद के निवासियों के लिए पर्व के तिरसठवें अध्याय में लिखा है। शिशुपाल की राज्यव्यवस्था अच्छी थी और चेदी जनपद के लोग सदाचार को महत्त्व देते थे। विदर्भराज की रुक्मणी का विवाह श्रीकृष्ण से होने पर शिशुपाल श्रीकृष्ण को दुश्मन समझने लगा तभी से कृष्ण के सम्मान के जलन से शिशुपाल कृष्ण को गाली देने लगा। एक सौ एक गाली देने पर कृष्ण ने सुदर्शन चक्र चलाकर शिशुपाल का वध कर दिया।

महाकवि माघ कृत शिशुपालवधम् महाकाव्य का बहत्त्रयी काव्यों में अद्वितीय स्थान है। कवि को वन्यजीवों का अच्छा ज्ञान था। उन्होंने हाथी, घोड़े, ऊट, सांडों आदि का यथावत वर्णन किया। यहाँ पर हाथी का सुंदर वर्णन किया है, जैसे-

गण्डूषमुज्झितवता पयसः सरोषं,
नागेन लब्धपरवारणमारूतेन ।
अम्भोधिरोधसि पृथुप्रतिमानभाग-
रूद्धोरुदन्तमुसलप्रसरं निपेते ।।[1]

कवि ने वन्यजीवों के प्रति दया, अलगाव, स्नेह के भाव जागृत किये है। इसी प्रकार कवि ने हिरण की विशेषता को स्पष्ट किया है।

पिशङ्गमौञ्जौयुजमर्जुनच्छविं वसानमेणाजिनमञ्जनद्युति।
सुवर्णसूत्राकलिताधराम्बरां विडम्बयन्तं शितिवाससस्तनुम्।।[2]

महाकवि ने कृष्ण मृग चर्म को धारण करते हुए रावण की वीरता का वर्णन हिरण से किया है। इसी प्रकार कवि माघ ने वन्यजीवों को स्पष्ट करते हुए बताया है कि–

जगाद वदनच्छद्मपद्मपर्यन्तपातिनः।
नयन्मधुलिहः श्वैत्यमुदग्रदशनांशुभिः।।[3]

महाकवि माघ ने बलराम के कमलरूपी मुख के चारों ओर भ्रमरों के घूमने की स्थिति को स्पष्ट किया है। इस प्रकार यहाँ भौरों का दिग्दर्शन दिखाया है। आगे कवि ने मयूर पंखों के चूर्ण से भूमि को सोने के समान बताया गया है।

श्यामारुणैर्वारणदानतोयैरालोडिताः काञ्चनभूपरागाः।
आनेमिमग्नैः शितिकण्ठपिच्छक्षोदद्युतश्चुक्षुदिरे रथौघैः।।[4]

कवि वन्यजीवों का वर्णन करते हुए बता रहे है कि हाथियों के मधजल से मयूर पंखों के चूर्ण से भूमी सोने की तरह दिखती है। इसी प्रकार वन्यजीवों के संरक्षण में वन्य जनजीवन के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कवि ने बताया है कि– मानव बसेरों से दूर जो जीव–जन्तु, वनों, पर्वतों पर, जल में, आकाश में तथा रेगिस्तान में रहकर जीवन–यापन करते है। वन्य जीव मानव जीवन के अभिन्न अंग है, उनका संरक्षण हमारा परम धर्म है।

गोपानसीषु क्षणमास्यितानामालम्बिभिश्चन्द्रकिणां कलापैः।
हरिन्मणिश्यामतृणाभिरामैर्गृहिणीधराए नीध्रैरिव यत्र रेजुः।।[5]

द्वारकापुरी में बैठे मयूरों के समूह से महल श्यामवर्ण के समान लग रहा है। इसी प्रकार पक्षियों के प्रति के भाव को स्पष्ट किया है–

छायां निजस्त्रीचटुलालसानां मदेन किञ्चिच्चटुलालसानाम् ।
कुर्वाणमुत्पिञ्जलजातपत्रैर्विहङ्गमानां जलजातपत्रैः।।[6]

अर्थात् अपनी–अपनी स्त्रियों की प्रियोक्तियों को सुनने के लिए चंचल, उत्सुक हंस आदि पक्षियों के ऊपर पिंजड़े बने हुए है। इसी प्रकार कवि ने रैवतक पर्वत पर वन्यजीवों के प्रति भाव प्रकट किये है। आगे और भी यथा–

विभिन्नवर्णा गुरुडाग्रजेन सूर्यस्यरथ्याः परितः स्मरन्तया।
रत्नैः पुनर्यत्र रुचा रुचं स्वामानिन्यिरे वंशकरीरनीलैः।।[7]
यत्रोज्झिताभिर्मुहुरम्बुवाहैः समुन्नमद्भिर्न समुन्नमद्भिः।
वनं बबाधे विषपावकोत्था विपन्नगानामविपन्नगानाम्।।[8]

इस प्रकार कवि माघ ने घोड़ों के स्वरूप को स्पष्ट किया है। इसी प्रकार कवि ने जलाशयों में जीवों का वर्णन किया है–

कुशेशयैरत्र जलाशयोषिता मुदा रमन्ते कलभा विकस्वरैः
प्रगीयते सिद्धगणैश्च योषितामुदारमन्ते कलभाविकस्वरैः।।[9]

रैवतक पर्वत पर रहने वाले वन्य जीवों में हाथी के बच्चों से आनन्द क्रीडा करने के स्वरूप को स्पष्ट किया है। इसी प्रकार कवि माघ ने रेंगने वाले वन्य जीवों के स्वरूप को भी स्पष्ट किया है। ओर भी–

भग्नो निवासोऽयमिहास्य पुष्पैः सदानतो येन विषाणिनाऽगः।
तीव्राणि तेनोज्झति कोपितोऽसौ सदानतोयेन विषाणि नागः ।।[10]

कवि माघ बता रहे है कि वृक्षों के फूलों के भार से नमित मदजलस्त्रावी सर्पों के निवास स्थान पर स्थित हाथी और विषैले सर्प एक साथ रहते है।

इसी प्रकार कवि ने रेगिस्तान में रहने वाले ऊँटों की स्वाभाविक क्रियाओं एवं उनके अंगों का वर्णन किया है, जैसे–

बिभ्राणमायतिमतीमवृथा शिरोधि,
प्रत्यग्रतामतिरसामधिकं दधन्ति ।
लोग्राष्टमौष्ट्रकमुदग्रमुखं तरुणा–
मभ्रंलिहानि लिलिहेः नवपल्लवानि ।।[11]

यथा–

मेदस्विनः सरभसोपगतानभीकान्,
भङ्क्त्वा परानन्डुहो मुहुराहवेन ।
ऊर्जस्वलेन सुरभीरनु निःसपत्नं,
जग्मे जयोद्धुरविशालविषाणमुक्ष्णा ।।[12]

इस प्रकार कवि माघ ने रैवतक पर्वत पर रहने वाले बलिष्ठ बैलों की विशेषता का वर्णन किया है।

जलदपङ्क्तिरनर्तयदुन्मदं कलविलापि कलापिकदम्बकम्।
कृतसमार्जनमर्दलमण्डलध्वनिजया निजया स्वनसम्पदा।।[13]

इस श्लोक के माध्यम से कवि माघ ने मोर के नाचने के मधुर ध्वनि को स्पष्ट कर वन्याजीवों के प्रति प्रेम प्रकट किया है।

स्मितसरोरुहनेत्रसरोजलामतिसिताङ्गविहङ्गहसद्दिवम् ।
अकलयन् मुदितामिव सर्वतः स शरदं शरदन्तुरदिङ्मुखाम्।।[14]

कवि वन्य जीवों के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए बता रहे है कि शरद ऋतु में हंसों की तरह सफेद नायिका की सौन्दर्यता को स्पष्ट किया है।

कुटजानि वीक्ष्य शिखिभिः शिखरीन्द्रं समयावनौ घनमदभ्रमराणि।
गगनं च गीतनिनदस्य गिरोच्चैः समया वनौघनमदभ्रमराणि।।[15]

कवि कह रहे है कि रैवतक पर्वत पर मेघों की सौन्दर्यता

को देखकर तोते और कोयल अपनी वाणी में गीत गाने लगे।

कुर्वन्तमित्यतिभरेण नगानवाचः,
पुष्पैर्विराममलिनां च न गानवाचः।
श्रीमान् समस्तमनुसानु गिरौ विहर्तुं,
बिभ्रत्यचोदि स मयूरगिरा विहर्तुम्।।[16]

अर्थात् रैवतक पर्वत पर सभी ऋतुओं को धारण करते हुए समस्त वन्यजीवों के साथ भ्रमर, मोर, कोयल, तोता, खच्चर, हाथी, घोड़े, सर्प, बैल, बकरी, भेडिये, शेर, गाय आदि समस्त वन्यजीवों ने भगवान् श्रीकृष्ण से आग्रह किया कि आप इसी पर्वत पर निवास करें। ऐसी विनती सभी ने की। इस प्रकार वन्यजीवों का उत्कृष्ट वर्णन महाकवि माघ ने अपने महाकाव्य में किया है।

निष्कर्षः-

महाकवि माघ ने शिशुपालवधम् महाकाव्य में समस्त वन्यजीवों का सजीव एवं मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। महाकवि ने वन्य आश्रम, वन्य जीवों की दशा, वन्य जीवों स्थिति-परिस्थिति, वन्य जीवों के स्वरूप तथा वन्य जीवों के महत्त्व को स्पष्ट भी किया है। वन्य जीवों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि कवि माघ की कल्पना शक्ति संस्कृत के सभी कवियों से उत्कृष्ट मानी जाती है। कवि ने वन्यजीवों के प्रति प्रेम भाव एवं आत्मिक भाव को अभिव्यक्त एवं स्पष्ट शब्दों में उद्धृत किया है।

शिशुपालवध में महाकवि माघ ने नभचर, थलचर, एवं जलचर सभी प्रकार के वन्यजीवों का वर्णन किया है। शिशुपालवधम् महाकाव्य में वन्यजीवों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि प्राचीन समय में मनुष्य के साथ सुन्दर वन्यजीव रहते थे। जिसमें हिरण, मोर, मोरनी, तोते, कबूतर, हंस, भ्रमर, गाय, हाथी, घोड़े, ऊँट, सांड, हंस, सर्प, बेल, कोयल आदि रहते थे और ये जीव वन के वातावरण ओर सुन्दर बना देते थे। मानव का वन्यजीवों से अटूट सम्बन्ध है, प्रकृति में समस्त जीवों के संतुलन में ही मानव जीवन सुरक्षित है। आओ हम भी इन वन्यजीवों की रक्षा में सम्मिलित हो, भगवान् जीवमात्र की रक्षा करें इसी भाव के साथ सब का कल्याण हो, अस्तु अलम् ।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

1. शिशुपालवधम् : महाकवि माघ, व्याख्याकार श्रीपण्डित हरगोविन्द शास्त्री, चौखम्बा विद्याभवन पोश्शबाश्शनंश 1069 वाराणसी, 2003
2. शिशुपालवधम् : महाकवि माघ, व्याख्याकार डॉ. गजानन शास्त्री मुसलगाँवकर, चौखम्बा संस्कृत भवन ग्रन्थमाला, चौक, वाराणसी, 1998

सन्दर्भ-

1. शिशुपालवधम् (महाकवि माघ)- 5/36
2. शिशुपालवधम् (महाकवि माघ)- 1/6
3. शिशुपालवधम् (महाकवि माघ)- 2/21
4. शिशुपालवधम् (महाकवि माघ)- 3/27
5. शिशुपालवधम् (महाकवि माघ)- 3/49
6. शिशुपालवधम् (महाकवि माघ)- 4/6
7. शिशुपालवधम् (महाकवि माघ)- 4/14
8. शिशुपालवधनम् (महाकवि माघ)- 4/15
9. शिशुपालवधम् (महाकवि माघ)- 4/33
10. शिशुपालवधम् (महाकवि माघ)- 4/63
11. शिशुपालवधम् (महाकवि माघ)- 5/65
12. शिशुपालवधम् (महाकवि माघ)- 5/64
13. शिशुपालवधम् (महाकवि माघ)- 6/31
14. शिशुपालवधम् (महाकवि माघ)- 6/54
15. शिशुपालवधम् (महाकवि माघ)- 6/73
16. शिशुपालवधम् (महाकवि माघ)- 6/79

ISSN 2278 - 0327

'अचः परस्मिन् पूर्वविधौ' सूत्रविमर्श

(व्याकरणसिद्धान्तसुधानिधि के सम्बन्ध में)

भैरुसिंह मीना

शोधार्थी, जे.एन.यू, नई दिल्ली

यह त्रिपदात्मक अतिदेशविधायक सूत्र है। प्रथम पद 'अचः' यह षष्ठी-एकवचन, द्वितीय पद 'परस्मिन्' यह सप्तमी एकवचन तथा तृतीयपद 'पूर्वविधौ' यह सप्तमी-एकवचनम् है। *स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ* सूत्र के द्वारा *स्थानिवत्* तथा *आदेश* इन दो पदों की अनुवृत्ति अचः परस्मिन् सूत्र में आती है। *स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ* में *अनल्विधौ* इस निषेधांश के द्वारा अल्विधि में स्थानिवद्भाव का निषेध हो जाने के कारण अल्विधि में स्थानिवद्भाव करने के लिए प्रकृत सूत्र का आविर्भाव हुआ है[1]। सूत्रार्थ- *परनिमित्तोऽजादेशः स्थानिवत्स्यात् तस्मात् पूर्वत्वेन दृष्टस्य दृष्टाद्वा निमित्तात् विधौ कर्तव्ये*।[2] अर्थात् पर को निमित्त मानकर होने वाला अजादेश स्थानिवत् होता है।

सूत्र में अच् ग्रहण का प्रयोजन- इसका प्रमाण *विश्नः* तथा *प्रश्नः* इत्यादि प्रयोगों में तुक् आगम का वारण होता है अन्यथा विच्छ धातु से *यजयाचयतविच्छप्रच्छ*[3]....सूत्र के द्वारा नङ् प्रत्यय करने पर '*विच्छ न*' इस दशा में '*च्छ्वोः शूडनुनासिके च*'[4] सूत्र के द्वारा छकार के स्थान में शकार करने पर तथा शकार परनिमित्तक होने के कारण स्थानिवद्भाव होने के कारण छे च सूत्र के द्वारा तुगागम की आपत्ति होगी। अतः तद्वारणार्थ सूत्र में *अचः* पद का ग्रहण किया है। अजादेश ही स्थानिवत् होता है। शकारादि हलादेश है अतः स्थानिवद्भाव नहीं होगा।

परस्मिन् पद ग्रहण प्रयोजन- इसका प्रमाण *युवजानिः* प्रयोग है। *युवतिः जाया यस्य स* इत्यर्थ में युवति शब्द को पुंवद्भाव होने पर नकार का लोप कर,'युव जाया' इस अवस्था में *जायायाः निङ्*[5] के द्वारा निङादेश करने पर *ङिच्च* सूत्र के द्वारा आदेश अन्तिम वर्ण के स्थान पर होने के कारण आकार को नि करने पर 'युवजाय् नि' इस अवस्था में *लोपो व्योर्वलि*[6] सूत्र के द्वारा यकार का लोप होता है। इस सूत्र के द्वारा परनिमित्तक अजादेश ही स्थानिवत् होता है। अतः निङ् आदेश परनिमित्तक न होने के कारण स्थानिवत् नहीं होता है। अतः कोई आपत्ति नहीं है।

पूर्वविधौ पद का प्रयोजन- इसका प्रमाण *नैधेयः* प्रयोग है। नि पूर्वक धा धातु से *उपसर्गे घोः किः*[7] सूत्र के द्वारा 'कि' प्रत्यय,'नि धा कि' इस अवस्था में अनुबन्ध लोप तथा *आतो लोप इटि च*[8] सूत्र के द्वारा आकार का लोप करने पर निधि शब्द से *इतश्चानिञः*[9] सूत्र के द्वारा ढक् प्रत्यय होता है तथा *आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्*[10] सूत्र के द्वारा एयादेश तथा *तद्धितेष्वचामादेः*[11] सूत्र के द्वारा आदि अच् को वृद्धि तथा भसंज्ञा तथा इकार का *यस्येति च*[12] के द्वारा लोप करने पर नैधेयः प्रयोग निष्पन्न होता है। पूर्वविधौ पद के अभाव में आकारलोप के स्थानिवद्भाव हो जाने के कारण प्रातिपदिक तीन अच् वाला हो जायेगा। अतः दो अच् वाला न हो सकने के कारण ढक् प्रत्यय नहीं हो पायेगा। अतः पूर्वविधौ पद रखना ही सार्थक है।

सूत्रस्थ *पूर्वविधौ* पद में *पूर्वस्य विधिः पूर्वविधिः तस्मिन् पूर्वविधौ* इस प्रकार षष्ठ्यन्त तथा *पूर्वस्माद् विधिः पूर्वविधिः तस्मिन् पूर्वविधौ* इस प्रकार पञ्चम्यन्त के द्वारा भी विग्रह का प्रदर्शन किया गया है।

पूर्वविधौ पद में षष्ठी समास का प्रयोजन-इसका प्रयोजन '*वव्रश्च*' प्रयोग है। यहाँ पर '*ओव्रश्चू*' छेदने धातु से 'लिट्' 'तिप्' 'णल्' करने पर तथा *लिटि धातोरनभ्यासस्य*[13] सूत्र के द्वारा द्वित्व करने पर 'व्रश्च् व्रश्च् अ' इस दशा में *लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्*[14] सूत्र के द्वारा अभ्यास को सम्प्रसारण करने पर तथा *हलादिः शेषः*[15] के द्वारा हलादिशेष करने पर '*वृ व्रश्च् अ*' इस दशा में '*उरत्*' सूत्र के द्वारा अभ्याससंज्ञक 'ऋ' वर्ण के स्थान पर 'अ' आदेश तथा *उरण् रपरः*[16] की सहायता से रपर करने पर 'अर्' आदेश हो जाता है तथा पुनः हलादि शेष करने पर वव्रश्च प्रयोग सिद्ध होता है। यहाँ पर अभ्यास 'वकार' को पुनः सम्प्रसारण प्राप्त होने पर 'अकार' को स्थानिवद्भाव करने पर सम्प्रसारण ऋकार के आने के कारण *न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम्*[17] के द्वारा सम्प्रसारण का निषेध हो जाता है। इस प्रकार *पूर्वस्य विधिः पूर्वविधिः* इस प्रकार समास करने में प्रमाण *वव्रश्च*

प्रयोग है।

पूर्वविधौ पद में पञ्चमी समास का प्रयोजन–इसका प्रमाण *तन्वन्ती* प्रयोग है। यहाँ पर 'तनु' विस्तारे धातु से लट् लकार में 'झि' प्रत्यय लाने पर तथा *झोऽन्तः* सूत्र के द्वारा अन्तादेश करने पर 'तन् अन्ति' इस दशा में *तनादिकृञ्भ्य उः* [18] सूत्र के द्वारा उ विकरण करने पर 'तन् उ अन्ति' इस अवस्था में *सार्वधातुकमपित्*[19] सूत्र के द्वारा अन्ति आदेश के ङित् होने के कारण *क्ङिति च* [20] के द्वारा गुण का निषेध हो जाने के कारण इको यणचि सूत्र के द्वारा यणादेश होकर तन्वन्ति प्रयोग बनता है। यहाँ पर *आर्धधातुकस्येड्वलादेः* [21] सूत्र के द्वारा प्राप्त वकार को इट् का आगम यणादेश के स्थानिवद्भाव होने के कारण वारित हो जाता है।

पूर्वविधौ पद में पञ्चमी तत्पुरुष समास स्वीकारने में दोष– यदि पूर्वविधौ में पञ्चमीतत्पुरुष समास का आश्रय लिया जाता तो विगणय्य रूप की सिद्धि नहीं होगी। वि पूर्वक गणसंख्याने धातु से णिच् प्रत्यय, *समानकर्तृकयोः पूर्वकाले* [22] सूत्र से क्त्वा प्रत्यय, *समासेऽनञ् पूर्वे क्त्वो ल्यप्* [23] सूत्र के द्वारा क्त्वा के स्थान पर ल्यबादेश तथा *अतो लोपः* [24] सूत्र के द्वारा अकार का लोप करने पर 'वि गण् इ य्' इस दशा में *ल्यपि लघुपूर्वात्* [25] सूत्र के द्वारा णि को अय् आदेश करने पर 'विगणय्य' रूप सिद्ध होता है किन्तु यदि सूत्र में पञ्चमी समास का आश्रय लेते हैं तो अल् लोप के स्थानिवद्भाव होने के कारण लघुपूर्वत्वाभाव होने के कारण णि के स्थान में अयादेश नहीं होगा। आरम्भसामर्थ्यात् हो जायेगा इस प्रकार नहीं कह सकते है। *अनुगमय्य* इत्यादि मित् प्रयोगों मे सूत्र चरितार्थ है। अतः पञ्चमी तत्पुरुष समास का आश्रय लेने पर दोष तदवस्थ ही है।

दोष का वारण– *पूर्वस्माद्विधि* में स्थानिवद्भाव नित्य नहीं है। इसमें *प्रमाण निष्ठायां सेटि* [26] सूत्र है। निष्ठायां सेटि सूत्र में सेटि पद अनिट्की व्यावृत्ति के लिये नहीं है क्योंकि णिजन्तधातु के अनेकाच् होने के कारण *एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्* [27] सूत्र के द्वारा निषेध संभव नहीं है। अतः कालावधारणार्थ सेटि ग्रहण किया गया है। इट् कर देने पर ही 'णि' का लोप होगा न कि उससे पहले। यदि इससे पहले भी णि लोप माना जाये तो कारितम् प्रयोग में णि का लोप होने पर *एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्* के द्वारा इट् का निषेध हो जायेगा।अतः तद्वारणार्थ सेटि पद हो जायेगा। पूर्वस्माद्विधि में स्थानिवद्भाव करने पर णिच् के द्वारा व्यवधान होने के कारण निषेध की प्राप्ति नहीं होती है। इस प्रकार सेट् ग्रहण पञ्चमी समास की अनित्यता का ज्ञापन करता है इसीलिये *अन्तः* [28] इस सूत्र की व्याख्या में आचार्य हरदत्त ने कहा है–*अनित्यः पूर्वस्माद्विधौ स्थानिवद्भावः निष्ठायां सेटि इति सेड्ग्रहणात्*। इस प्रकार विगणय्य प्रयोग में कोई दोष नहीं है।

विधिग्रहण प्रयोजन –विधि पद के अभाव में समास न होने के कारण *पूर्वस्य विधिः पूर्वविधिः तथा पूर्वस्माद् विधिः पूर्वविधिः* इस प्रकार के दो अर्थों का लाभ नहीं हो पायेगा। अतः इन दोनों प्रकारों के समास का लाभ लेने के लिये विधि ग्रहण करना अनिवार्य है।

आशङ्का–सूत्र में विधि ग्रहण करने का कोई प्रयोजन नहीं है। *अचः परस्मिन् पूर्वस्य* इतना ही सूत्र कहना चाहिये। पूर्वस्य में षष्ठी विभक्ति सम्बन्ध सामान्य में है। सम्बन्ध दो प्रकार का है कार्यित्वेन तथा निमित्तत्वेन। इस प्रकार सूत्र में विधि ग्रहण के विना भी समासद्वयलाभ के लिये विधि ग्रहण अनावश्यक ही है।

समाधानम् –सूत्र में विधिग्रहण योगविभाग के लिये है। पूर्व विधि में स्थानिवद् भाव होता ही है। इस प्रकार नियम बनाने पर स्वाश्रय में कार्य की प्रवृत्ति नहीं होती है अथवा योगविभाग स्वीकार नहीं करते है। विधिग्रहण सामर्थ्य से विधि मात्र में स्थानिवद्भाव होगा। शास्त्रीय कार्य में तथा अशास्त्रीय कार्य में। इस प्रकार पटयति प्रयोग में वृद्ध्यभाव सिद्ध होता है। विधिग्रहण करने के कारण पूर्व की विधि में ही स्थानिवद्भाव होता है न कि पूर्वपरनिमित्तक विधि में। इस प्रकार ईयतुःमें दोष नहीं होता है। अन्यथा इण् धातु से लिट् तस् तथा अतुस् आदेश करने पर ई अतुस् इस अवस्था में *इणो यण्*[29] सूत्र के द्वारा यणादेश करने पर *द्विर्वचनेऽचि* [30] सूत्र के द्वारा रूपातिदेश करने पर ई ई अतुस् अवस्था में वर्णमात्रनिमित्तक विधि होने के कारण अन्तरङ्ग होने से सवर्णदीर्घ होने पर ईतुः इस प्रकार के अनिष्ट रूप की आपत्ति होने लगती। इस प्रकार पूर्वविधि में ही स्थानिवद्भाव होता है। न कि पूर्वपरनिमित्तकविधि में। इस प्रकार नियम के लिये सूत्र में विधिग्रहण किया गया है।

शङ्का– वैयाकरणः प्रयोग में यकार के पूर्व में स्थानिवद्भाव के द्वारा अच् पर में आने के कारण *एचोऽयवायावः* [31] सूत्र के द्वारा आयादेश की प्राप्ति होने लगेगी।

समाधान– इस सूत्र में स्थानी, आदेश, निमित्त इन तीनों का सन्निधान सम्भव होने पर ही स्थानी की अपेक्षा पूर्वत्व स्वीकार किया जाता है। आदेश की अपेक्षा तथा निमित्त की अपेक्षा पूर्वत्व स्वीकार नहीं किया जाता है। इसीलिये *अचः पूर्वत्वविज्ञानादैचोः सिद्धम्* यह भाष्यकथन सङ्गत होता है। इसका अर्थ है–अनादिष्ट अच् से पूर्व विधि के प्रति ही स्थानिवद्भाव होता है। वैयाकरणः प्रयोग में तो ऐकार आदिष्ट अच् से पूर्व है। अतः वहाँ पर स्थानिवद्भाव करने पर अयादेश का प्रसङ्ग नहीं होता है।

विशेष–स्थानिद्वारक अनादिष्ट अच् से पूर्वविधि का आश्रय सर्वत्र नहीं किया जाता है अपितु क्वचित् ही आश्रय लिया जाता है। इसमें

न पदान्तद्विर्वचनवरेयलोप.[32].....सूत्र का भाष्य ही प्रमाण है। वहाँ पर यलोप का उदाहरण- *ब्राह्मणकण्डूतिः* तथा *क्षत्रियकण्डूतिः* प्रयोग दिया है। कण्डू धातु से *कण्ड्वादिभ्यो यक्*[33] से यक् प्रत्यय करने पर 'कण्डू य' इस अवस्था में *क्तिच् तौ च संज्ञायाम्*[34] सूत्र के द्वारा क्तिच् प्रत्यय करने पर तथा अनुबन्ध लोप करने पर 'कण्डूय ति' इस अवस्था में *अतो लोपः*[35] के द्वारा यकारोत्तरवर्ति अकार का लोप तथा *लोपो व्योर्वलि* सूत्र के द्वारा यकार का लोप करने पर कण्डूतिः प्रयोग सिद्ध होता है। यहाँ पर अल्लोप के स्थानिवद्भाव करने पर उकार के स्थान पर *अचि श्नुधातुभ्रुवां*[36].... सूत्र के द्वारा उवङादेश की प्राप्ति होने लगती है किन्तु उवङादेश की प्रवृत्ति नहीं होती है। उवङादेश करने पर भी *च्छ्वोः शूडनुनासिके च*[37] के द्वारा ऊठ् की सिद्धि होने के कारण। ऊठ् करने पर तो अनादिष्ट अच् से पूर्व न होने के कारण स्थानिवद्भाव की प्राप्ति नहीं है। इसी भाष्य प्रमाण से स्थानिद्वारक अनादिष्ट अच् से पूर्वत्व का आश्रय अनित्य है यह ज्ञापित होता है। न पदान्तसूत्र की उद्योतटीका में सब स्पष्ट है।

इस सूत्र में पूर्वत्व व्यवहित तथा अव्यवहित दोनों प्रकार का इष्ट है। सूत्र में पूर्वस्य पद ग्रहण सामर्थ्यात् *तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य* की उपस्थिति नहीं होती है। इसी प्रकार स्वरविधि में स्थानिवद्भाव का निषेध भी सङ्गत होता है। चिकीर्षकः प्रयोग में सन्प्रत्ययान्त चिकीर्ष धातु से *ण्वुल्तृचौ*[38] सूत्र के द्वारा ण्वुल् प्रत्यय करने पर 'चिकीर्ष वु' इस अवस्था में *युवोरनाकौ*[39] सूत्र के द्वारा अक आदेश तथा अतो लोपः के द्वारा अकार का लोप करने पर चिकीर्षकः प्रयोग सिद्ध होता है। यहाँ पर सन् के अकार की अपेक्षा ईकार में रेफ तथा षकार दो वर्णों का व्यवधान है। यहाँ पर *स्वरविधौ व्यञ्जनमविद्यमानवत्*[40] परिभाषा के रहने पर भी स्थानिवद्भाव होता है।

वार्णादङ्गं बलीयः परिभाषा का विचार -इस सूत्र की व्याख्या के प्रसङ्ग में ग्रन्थकार ने *वार्णादाङ्गं बलीयः*[41] परिभाषा की प्रवृत्ति करायी है। सूत्र में अचः किम् के प्रसङ्ग में विश्नः तथा प्रश्नः प्रत्युदाहरण दिये है। विश्नः तथा प्रश्नः प्रयोग में छकार के स्थान में विधीयमान शकार आदेश परनिमित्तक है। अतः स्थानिवद्भाव के पश्चात् छे च से तुक् प्राप्त होता है। अचः ग्रहण करने पर स्थानिवद्भाव नहीं होता है। अन्तरङ्गत्वात् 'विच्छ् न' इस अवस्था में तुक् की आशङ्का करते हुये *वार्णादाङ्गं बलीयः* के द्वारा शकारादेश होगा ऐसा नहीं कहना चाहिये। जहाँ पर एक ही निमित्त को मानकर युगपत् वार्ण तथा आङ्गकार्य की प्राप्ति होती है वहीं पर वार्णादाङ्गं बलीयः परिभाषा की प्रवृत्ति होती है। यहाँ पर शादेश का निमित्त नङ् है तथा तुक् का निमित्त छ है। अतः समानाश्रय न होने के कारण *वार्णादङ्गं बलीयः* परिभाषा की प्रवृत्ति नहीं होती है। इसमें *ज्ञापक अभ्यासस्यासवर्णे*[42] सूत्र का असवर्णग्रहण है। यह परिभाषा अनित्य है। इसमें प्रमाण *च्छ्वोः शूडनुनासिके च* सूत्र में तुक् का ग्रहण है।

अकृतव्यूहाः पाणिनीयाः[43] **परिभाषा विचार** -

निमित्तं विनाशोन्मुखं दृष्ट्वा तत्प्रयुक्तं कार्यं न कुर्वन्ति अर्थात् निमित्त यदि भविष्यत्काल में विनाशी हो तो तत्प्रयुक्त कार्य नहीं होता है। इसमें ज्ञापक *समर्थानां प्रथमाद्वा*[44] सूत्र में समर्थ पद है।

नागेशमत -आचार्य नागेश ने *अकृतव्यूहाः पाणिनीयाः* परिभाषा का खण्डन करते हुये कहा है कि भाष्य में यह परिभाषा प्राप्त नहीं होती है। *समर्थानां प्रथमाद्वा* सूत्र में समर्थ ग्रहण तो विषुणः प्रयोग में अकृत सन्धि प्रयुक्त प्रकृति से प्रत्यय विधान करने के लिये चरितार्थ है। इस प्रकार वहुत प्रमाणों के द्वारा इस परिभाषा का खण्डन किया है।

नाजानान्तर्ये बहिष्ट्वप्रक्लृप्तिः परिभाषा विचार -आचार्य विश्वेश्वर ने *अचः परस्मिन् पूर्वविधौ* सूत्र में पूर्वविधौ पद के विचारप्रसङ्ग में इस परिभाषा का निरूपण किया है। पूर्वविधौ इति किम्। ऐसा प्रतिपादन करके नैधेयः प्रयोग प्रयोजन के रूप में दिया है। कि प्रत्ययान्त निधिशब्द से *इतश्चानिञः*[45] सूत्र के द्वारा ढक् प्रत्यय होता है। यहाँ पर *आतो लोप इटि च*[46] सूत्र के द्वारा विधीयमान आकार के स्थानिवद्भाव होने के कारण तीन अच् का हो जाने के कारण ढक् प्रत्यय की अनापत्ति के प्रसङ्ग में आशङ्का करते हैं। जिसका आशय इस प्रकार है। नि धा इ (कि) इस अवस्था में *आतो लोप इटि च* के द्वारा आकार का लोप होता है। परनिमित्तिक आकार का लोप होने के कारण स्थानिवद्भाव होने के कारण त्रयच्क हो जाने से *इतश्चानिञः* के द्वारा ढक् प्रत्यय की प्राप्ति नहीं होगी।

इस प्रसङ्ग में *असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे*[47] परिभाषा के द्वारा ही वारणसम्भव हो जायेगा पूर्वविधि पद व्यर्थ है क्योंकि *आतो लोप इटि च बहिर्भूतप्रत्ययनिमित्तक* होने के कारण बहिरङ्ग है। असिद्ध होने के कारण इसका स्थानिवद्भाव नहीं होगा। अतः ढक् प्रत्यय की अनापत्ति का दोष नहीं है। *असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे परिभाषा का निषेध नाजानन्तर्ये बहिष्ट्वप्रक्लृप्तिः*[48] परिभाषा के द्वारा हो जायेगा। अतः नाजानन्तर्ये परिभाषा का अवतरण ग्रन्थ में किया है।

नाजानन्तर्ये .... परिभाषार्थ-अच् निष्ठ अन्य आनन्तर्य निमित्तक अन्तरङ्ग कार्य की कर्तव्यता में बहिरङ्ग कार्य असिद्ध नहीं होता है। आशय- अन्तरङ्ग कार्य बलवान् होता है। अतः अन्तरङ्ग कार्य की

दृष्टि में बहिरङ्ग कार्य असिद्ध होता है। किन्तु सर्वत्र ऐसा नहीं है अत: *असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे* की अपवादभूता परिभाषा है। इस परिभाषा के निष्कर्ष रूप में नागेश ने कहा है कि *असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे* परिभाषा को अनित्य मानने से सारे प्रयोगों की सिद्धि हो जायेगी। अत: *नाजानन्तर्ये* परिभाषा *अच: परस्मिन् पूर्वविधौ* सूत्र के भाष्य में भाष्यकार ने केवल एकबार ही इसका आश्रय लिया है।

इस प्रकार सुधानिधिकार ने इस सूत्र में वार्णादाङ्गं बलीय:, अकृतव्यूहा: पाणिनीया:, नाजानन्तर्ये बहिष्ट्वप्रक्लृप्ति: इन तीन परिभाषाओं का उपन्यास किया है।

समीक्षा –इस सूत्र की व्याख्या प्राय: शब्दकौस्तुभ ग्रन्थ के अनुसार ही है। सर्वप्रथम *स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ* सूत्र के द्वारा ही सिद्ध है प्रस्तुत सूत्र अल्विध्यर्थ है। तत्पश्चात् अच् ग्रहण का विचार किया है। इस प्रसङ्ग में विश्न: तथा प्रश्न: प्रयोगों की सिद्धि में *वार्णादाङ्गं बलीय:* परिभाषा का निरूपण, परिभाषा में ज्ञापक तथा परिभाषार्थ वर्णन। *तदनन्तरअकृतव्यूहा: पाणिनीया:* परिभाषा का वर्णन इसके अनित्यत्व में प्रमाण। *वार्णादाङ्गम्* इस परिभाषा के अनित्यत्व का प्रतिपादन, *वार्णादाङ्गम्* परिभाषा में समानाश्रयत्व का विचार। परस्मिन् पद का विचार, *नाजानन्तर्ये .....*परिभाषार्थविचार किया गया है। पूर्वविधौ पद के विचारप्रसङ्ग में पञ्चमीसमास के आश्रय में दोष का प्रदर्शन तथा वारण। सूत्र में विधिग्रहण का प्रयोजन। स्थान्यादेशनिमित्त के मध्य में स्थानी की दृष्टि में पूर्वत्व का प्रतिपादन। व्यवहित तथा अव्यवहित पूर्वत्व का स्वीकरण इस प्रकार अनेक अंशों की व्याख्या आचार्य विश्वेश्वरसूरि ने विशेष रूप से इस सूत्र के प्रसङ्ग में की है।

सन्दर्भग्रन्थसूची–

1. अष्टाध्यायी(विस्तृत हिन्दी व्याख्यासहित), सं. शर्मा, पं. ईश्वरचन्द्र, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली:110007
2. व्याकरणसिद्धान्तसुधानिधि (प्रथम भाग), विश्वेश्वर सूरी, सं. सत्यप्रकाशदुबे, राजस्थान पत्रिका, जोधपुर:1995
3. व्याकरणमहाभाष्य(प्रदीपोद्योत संस्कृत, भावबोधिनी हिन्दी व्याख्यासहित), त्रिपाठी, जयशंकरलाल, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली:110007
4. मीमांसक, युधिष्ठिर,संस्कृतव्याकरणशास्त्र का इतिहास, रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ, हरयाण:2000
5. शास्त्री, भीमसेन,लघुसिद्धान्तकौमुदी, भैमी प्रकाशन, दिल्ली:2005
6. अमरकोष,अमरसिंह, सं शिवदत्तदाधिमथ, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2011

सन्दर्भ सूची –

1.अल्विध्यर्थमिदम्। व्याकरणसिद्धान्तसुधानिधि पृ.163
2.व्याकरणसिद्धान्तसुधानिधि पृ.संख्या415
3.पाणिनिसूत्रम् 3.3.90
4.पाणिनिसूत्रम् 6.4.19
5.पाणिनिसूत्रम् 5.4.134
6.पाणिनिसूत्रम् 6.1.66
7.पाणिनिसूत्रम् 3.3.92
8.पाणिनिसूत्रम् 6.4.64
9.पाणिनिसूत्रम् 4.1.122
10.पाणिनिसूत्रम् 7.1.2
11.पाणिनिसूत्रम् 7.2.117
12.पाणिनिसूत्रम् 6.4.148
13.पाणिनिसूत्रम् 6.1.8
14.पाणिनिसूत्रम् 6.1.17
15.पाणिनिसूत्रम् 7.4.60
16.पाणिनिसूत्रम् 1.1.51
17.पाणिनिसूत्रम् 6.1.37
18.पाणिनिसूत्रम् 3.1.79
19.पाणिनिसूत्रम् 1.2.4
20.पाणिनिसूत्रम् 1.1.5
21.पाणिनिसूत्रम् 7.2.35
22.पाणिनिसूत्रम् 3.4.21
23.पाणिनिसूत्रम् 7.1.37
24.पाणिनिसूत्रम् 6.4.48
25.पाणिनिसूत्रम् 6.4.56
26.पाणिनिसूत्रम् 6.4.52
27.पाणिनिसूत्रम् 7.2.10
28.पाणिनिसूत्रम् 6.2.92
29.पाणिनिसूत्रम् 6.4.81
30.पाणिनिसूत्रम् 1.1.59
31.पाणिनिसूत्रम् 6.1.78
32.पाणिनिसूत्रम् 1.1.58
33.पाणिनिसूत्रम् 3.1.27
34.पाणिनिसूत्रम् 3.3.174
35.पाणिनिसूत्रम् 6.4.48
36.पाणिनिसूत्रम् 6.4.77
37.पाणिनिसूत्रम् 6.4.19
38.पाणिनिसूत्रम् 3.1.133
39.पाणिनिसूत्रम् 7.1.1
40.परिभाषेन्दुशेखर: परिभाषासंख्या 80
41.परिभाषेन्दुशेखर: परिभाषासंख्या 55
42.पाणिनिसूत्रम् 6.4.78
43.परिभाषेन्दुशेखर: परिभाषासंख्या 56
44.पाणिनिसूत्रम् 4.1.82
45.पाणिनिसूत्रम् 4.1.122
46.पाणिनिसूत्रम् 6.4.64
47.परिभाषेन्दुशेखर: परिभाषासंख्या50
48.परिभाषेन्दुशेखर: परिभाषासंख्या51

ISSN 2278 - 0327

भारतीय संस्कृति में वर्णित कर्त्तव्यों का वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन

डॉ. मेघराज मीणा
सहायक आचार्य, शिवाजी कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

मानव के लौकिक-पारलैकिक सर्वाभ्युदय के अनुकूल आचार-विचार ही संस्कृति है। 'संस्कृति' शब्द परिष्कृत या परिमार्जित करने के भाव का भी सूचक है। संस्कृति के प्रभाव से ही मनुष्य या समाज ऐसे कार्यों में प्रवृत्त होता है, जिसमें सामाजिक, साहित्यिक, कलात्मक, राजनीतिक और वैज्ञानिक क्षेत्रों में उन्नति हुई है। व्यक्ति और समाज की अपने उत्तरदायित्त्व और कर्त्तव्य के प्रति सजगता में इसकी अभिव्यक्ति परिलक्षित होती है। भारतीय संस्कृति समस्त अस्तित्वयुक्त समाहित सत्य व कल्याणयुक्त चेतनतत्त्व की चिरन्तन अनुभूति से परिपूर्ण है। भारतीय सांस्कृतिक व्यवस्था विश्व की प्राचीनतम सांस्कृतिक व्यवस्थाओं में से एक है। यह विश्व-बन्धुत्व की भावना से ओतप्रोत समदर्शी वैदिक ऋषियों के अनुभवों पर आधारित है । हमारी संस्कृति की विशेषता है कि इसमें भौतिकता की अपेक्षा आध्यात्मिक चिन्तन, प्रेय की अपेक्षा श्रेय मार्ग एवं सर्वजनहिताय व सर्वजनसुखाय पर अधिक बल दिया गया है । यहां भोग के स्थान पर योग, मानव-कल्याण, त्याग, तपस्या और तपोवन की प्रधानता रही है । भारतीय संस्कृति में अधिकारों की अपेक्षा कर्त्तव्यों पर अधिक बल दिया है। अत: यहाँ कर्मप्रधान संस्कृति रही है।

भारतीय सांस्कृतिक व्यवस्था के केन्द्र में व्यक्ति न होकर समाज है, इसीलिए यहां व्यक्ति के अधिकारों की तुलना में कर्त्तव्यों को प्राथमिकता दी है। समाज में यदि सभी व्यक्ति अपने-अपने कर्त्तव्यों का निष्ठापूर्वक पालन करें तो सामाजिक व्यवस्था व्यवस्थित रूप से संचालित होती रहेगी और सभी के अधिकार भी बाधित नहीं होंगे। वर्तमान समय में कर्तव्यों की अपेक्षा अधिकारों की माँग का अधिक प्रचलन है।

भारतीय संस्कृति में कर्त्तव्यों के लिए 'धर्म' शब्द का भी प्रयोग किया गया है जैसे राजा का धर्म है राज्य का समुचित विधि से संचालन करना व प्रजा की रक्षा करना, गृहस्थ का धर्म है नित्य पञ्चमहायज्ञ का सम्पादन कर गहस्थ जीवन के उत्तरदायित्वों का निर्वहन करना, ब्रह्मचारी का धर्म है शिक्षा उपार्जित करना, गुरु का धर्म है नि:स्वार्थ भाव से शिक्षा देना, पिता का धर्म है अपनी सन्तान का पालन पोषण करना इत्यादि।

वर्णाश्रम व्यवस्था भारतीय जीवन सरणि का अभिन्न पहलू है। वर्णाश्रम व्यवस्था का मूल आधार है गुण आधारित 'कर्म सिद्धान्त'। गुण व कर्म के आधार पर चातुर्वर्ण व्यवस्था थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों से अपेक्षा की जाती थी कि वे अपने वर्णगत धर्म अर्थात् कर्त्तव्यों का पालन करें ।

ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास आश्रमों का विभाजन भी अवस्थानुसार कर्त्तव्य निर्वाह के लिए ही किया गया था ।

1. वैदिक साहित्य में कर्त्तव्य की अवधारणा -

वैदिक समाज में मनुष्य के सदाचारी, व्यवस्थित व कर्त्तव्य के प्रति जागरुक होने के प्रमाण मिले हैं। वैदिक काल में सम्पूर्ण व्यवस्था के संदर्भ में 'ऋत' की अवधारणा महत्त्वपूर्ण है जिसमें सृष्टि के सभी प्राणियों के लिए कर्त्तव्य निर्धारित थे। यह व्यवस्था शाश्वत और अपरिवर्तनीय थी। इसका संरक्षक वरूण देवता को माना गया है जो सभी प्राणियों को अपने-अपने कर्मों में संलग्न रखते हैं। इसका पालन करना अनिवार्य था एवं इसे व्यापक रूप देने और अनुकरणीय बनाने के लिए देवताओं के लिए भी इसका विधान था। इसका पालन न करने पर दण्ड का विधान था। ऋग्वेद में उल्लिखित है कि जिस शक्ति से सभी स्व-कर्त्तव्य में रत रहते हैं वह 'ऋत' की शक्ति है, जो समग्र विश्व, समाज, व्यक्ति, जीव-जन्तु एवं दैवी शक्तियों का आधार है।[1] 'ऋत' सत्य और धर्म का रूप धारण करने में कर्त्तव्य का पर्याय हो गया । वस्तुत: यह नियमों की संहिता थी जो किसी सर्वोच्च शक्ति के द्वारा निर्मित न होकर स्वयं सर्वोच्च शक्ति थी। उसी के द्वारा आकाश, दिव और अन्तरिक्ष का संचालन एवं नियंत्रण रहता था।[2] इसी के कारण निर्बल-सबल में सुरक्षा की स्थिति बनी रहती है और किसी के अधिकारों का उल्लंघन नहीं होता है।[3] यह एक नैतिक

नियम संहिता थी जो राजा के अभाव में भी सार्वकालिक सक्रिय थी।

राष्ट्र के अङ्ग के रूप में राजा, मन्त्रीपरिषद्, विद्वत्परिषद्, सेनापति, कोषाध्यक्ष, ग्रामिणी एवं सामान्य नागरिक सभी के कर्त्तव्य निर्धारित थे। राज्यारोहण के समय राजा को उसके कर्त्तव्यों का स्मरण कराते हुए कहा गया है कि तुझे यह राष्ट्र दिया जाता है, तू संचालक और नियामक है, तू ध्रुव और धारण करने वाला या कर्त्तव्य-पालक है, तुझे यह राज्य कृषि के लिए, क्षेम के लिए, सम्पन्नता के लिए एवं पोषण के लिए दिया जाता है।[4] निर्वाचित राजा नागरिकों के समक्ष प्रतिज्ञा करता था कि रात्रि में मेरा जन्म हुआ है और रात्रि में ही मरूँ, यदि मैं तुम्हे पीड़ित करता हूँ तो मैं अपने समस्त शुभ कर्म, स्वर्ग, जीवन और वंश से वंचित हो जाऊँ।[5] अत: वह राष्ट्र, भूमि, प्रजाजनों के प्रति विनम्र भाव से अपने कर्त्तव्यों के निर्वहन की प्रतिज्ञा करता था ।

वैदिक सामाजिक व्यवस्था में परिवार के मुखिया का कर्त्तव्य था स्त्रियों को शिक्षा दिलाना। इसीलिए शिक्षित स्त्रियों ब्रह्मचरिणि व सद्यवाहा के प्रमाण मिलते हैं। कन्या का विवाह ब्रह्मचर्यावस्था समाप्त कर लेने के बाद ही करना चाहिए।[6] विवाहोपरान्त वही स्त्री सफल हो सकती है जिसे ब्रह्मचर्य काल में भलीभाँति शिक्षित किया गया हो।[7] पुरुष का भी कर्त्तव्य था कि वह स्त्री को अभिव्यक्ति का अधिकार दे, हनन न करे और उसे प्रोत्साहित करे। पति पत्नी से कहता है कि हे कल्याणी! तुम साधिकार 'विदथ' में वक्तव्य दोगी।[8]

ऋग्वेद के में राष्ट्र की अर्थव्यवस्था के प्रति कर्त्तव्य का भाव अभिव्यक्ति है। यहाँ अनुचित कार्यों से प्राप्त की निंदा करते हुए एक जुँआरी से कहा गया है कि – हे मनुष्य, जुआ मत खेल, कृषि कर्म (जैसे शुद्धकर्म) कर, और उस परिश्रम से जो धन उपलब्ध हो, उसमें प्रसन्न रह। यहाँ विधिसम्मत व सन्तोष युक्त वृत्ति से धन कमाकर राष्ट्र के हित के लिए समय का सदुपयोग करने के भाव द्वारा उसमें कर्त्तव्य बोध का भाव जगाया गया है।

वैदिक समाज समत्व का पोषण था। आर्यजनों के सांस्कृतिक जीवन में एकरूपता थी। उनकी सांसारिक वस्तुओं के प्रति उपभोक्तावादी या संग्रह करने की प्रवृत्ति नहीं थी बल्कि त्यागपूर्वक उपभोग की प्रवृत्ति थी। ईशावास्योपनिषद् में कहा है कि किसी के धन का स्वार्थवश उपभोग नहीं करना चाहिए, स्वयं के धन से ही सन्तोषजनक वृत्ति करनी चाहिए।[9] इस भावना के मूल में अधिकारों की रक्षा का एवं समत्वभाव का संकेत है क्योंकि त्यागपूर्वक उपयोग से समाज के वंचित लोगों को भी संसाधन प्राप्त हो सकेंगे। संसाधनों के प्रति कर्त्तव्य के विषय में कहते हैं कि 'हे मातृभूमि ! मैं तेरे जिस स्थल को खोदूं वह शीघ्र ही भर जाये। तेरे मर्मस्थल को और हृदय को हिंसित न करूँ '।[10] तात्पर्य है कि संसाधनों का दोहन इस प्रकार करें कि उनकी उर्वरक शक्ति नष्ट न हो एवं धारणीय विकास द्वारा आगामी पीड़ी के लिए भी संसाधन बचें रहें।

अथर्ववेद के एक मन्त्र में मानवतावादी दृष्टि और विश्व बन्धुत्व के निदर्शन होते हैं नैतिक कर्त्तव्य को दर्शाते हैं। सभी को मानवमात्र के प्रति, चाहे उसे जानते हो या नहीं जानते हो, सद्भावना रखनी चाहिए।[11]

2. परवर्ती साहित्य में कर्त्तव्य की अवधारणा –

शब्दकल्पद्रुम में 'कर्त्तव्य' शब्द की व्युत्पत्ति बताते हुए अर्थ किया है कि जो करने योग्य हो।[12] वैदिक साहित्य में कर्त्तव्यों के जिन आधारों का दर्शन होता है रामायण, महाभारत, गीता धर्मसूत्र व स्मृति ग्रन्थों में भी कर्त्तव्य का सम्बन्ध धर्म, आचार, सदाचार, नैतिकता आदि से है। इन्हीं भावों से युक्त कर्त्तव्य के गर्भ में ही दूसरे के अधिकार और स्वयं के अधिकार सन्निविष्ट रहते हैं। धर्मसूत्रों ने इसी बात पर इतना बल दिया है कि इसका प्रतिपाद्य विधि (करणीय कर्म) और निषेध (अकरणीय कर्म) है। और इसका आधार मनुष्य न होकर सम्पूर्ण पृथिवी है।

मनुष्य ने समाज के संचालन के लिए प्रबुद्ध नागरिकों की सहमति से एक दैनिक आचार की व्यवस्था स्थापित की है जिसे पौरुषेयी व्यवस्था या समय (सामयाचारिक धर्म) कहते है । इस सामाजिक व्यवस्था तथा इसके विकास के फलस्वरूप राज्य की अवधारणा, न्याय तथा सुरक्षा की अवधारणा विकसित हुई । इनके परिणामस्वरूप सामाजिकों के कर्त्तव्य निर्धारित किये गये । समाज में रहने वाले व्यक्तियों का आचरण कैसा हो तथा इस आचरण का समाज व राष्ट्र की प्रगति में क्या योगदान हो ? इसी आधार पर प्रबुद्धजनों ने विभिन्न धर्मों (नियमों/कर्त्तव्यों) का सृजन किया । इसे आचार संहिता (Code of Conduct) कहा जाता है। यद्यपि इस व्यवस्था में धर्मज्ञ (प्रबुद्ध नागरिक) प्रमाण हैं परन्तु सामान्य मनुष्य को कर्त्तव्य के संदर्भ में अंधानुकरण नहीं करना चाहिए क्योंकि मनुष्य में स्वाभाविक दुर्बलता होती है । कर्मों के सम्बन्ध में उसे स्वविवेक का आश्रय लेना चाहिए । आपस्तम्ब धर्मसूत्रकार ने ऐसा विधान किया है ।[13]

श्रौतसूत्रों, गृह्यसूत्रों, स्मृतियों, इतिहास, पुराणादि में के समय समाज में मनुष्य वर्ग का विभाजन विभिन्न आधार पर था । अनेक संघों, राज्यों आदि संस्थाओं के अनेक नियम तथा परम्पराएँ थी ।

इनकी विविधता और व्यापकता के कारण धर्मसूत्रों ने विशाल काल-कलेवर को समेटते हुए नियम-संहिता प्रस्तुत की । इस समय में कर्त्तव्यों का विभाजन इन आधारों पर किया जा सकता है:-

2.1 राजनैतिक कर्त्तव्य -

इस समय में शासन व्यवस्था का प्रमुख आधार धर्म था । चूँकि शासन से ही व्यक्तियों, जीवों, सामाजिक संस्थाओं तथा उनके कर्त्तव्यों और अधिकारों की रक्षा सम्भव होती है । इसीलिए शासन पद्धति में धर्म का ही समावेश था । यहाँ आवश्यक था कि राजा कर्त्तव्य का समुचित रीति से निर्वहन करे। व्यक्ति के राजनीतिक कर्त्तव्यों में राजा के कर्त्तव्य और नागरिकों के शासन के प्रति कर्त्तव्य सम्मिलित हैं । राजनैतिक कर्त्तव्यों को दो भागों में विभक्त कर देख सकते हैं पहला राजा के कर्त्तव्य जो कि ऐच्छिक थे व दूसरे नागरिकों के शासन के प्रति कर्त्तव्य जो कि अनिवार्य कहे गए हैं । राजा का मूल कर्त्तव्य था प्रजा की रक्षा करना क्योंकि राजा प्रजा के सुख में सुखी और दु:ख में दु:खी होने का अनुभव करता था ।[14] शासन का संचालन, समाज में सुख, शान्ति एवं अभय की स्थापना, नागरिकों के अधिकारों की रक्षा तथा न्याय-व्यवस्था को सुनिश्चित करना राजा के प्रमुख कर्त्तव्य थे । कौटिल्य के अनुसार 'राजा चारों वर्णों और आश्रमों के आचार की रक्षा करें और कर्त्तव्य विमुख जनों को स्वकर्त्तव्य में रत करे ।'[15] 'यदि प्रव्रज्या लिए हुए संन्यासी भी मिथ्याचारी हो तो राजा उन्हें दण्ड देकर कर्त्तव्य-पथ पर ले आये । एक कल्याणकारी राज्य की स्थापना के लिए वर्णाश्रम धर्म की स्थापना आवश्यक थी ।'[16] वसिष्ठ के अनुसार प्राणियों का पालन करना राजा का स्वधर्म है, इसका सम्यक् अनुष्ठान करने पर राजा को सिद्धि प्राप्त होती है ।[17] राजा को असहाय, नपुंसक, विकलांग, वृद्ध, पागल व्यक्तियों और गर्भवती स्त्रियों की सहायता करनी चाहिए । इसके साथ यह भी उत्तरदायित्व है कि वह युद्ध में काम आये या वीरगति प्राप्त सैनिकों की स्त्रियों का भरण-पोषण करे । धर्मसूत्रकार गौतम के अनुसार समस्त प्राणियों की रक्षा करना, वर्णाश्रम व्यवस्था की रक्षा और पतित जनों को श्रेष्ठ मार्ग पर चलने की प्रेरणा देना राजा के कर्त्तव्य हैं ।[18] राजा भरण-पोषण करने में असमर्थ नागरिकों का, राज्य की ओर से कर मुक्त लोगों का तथा आर्थिक सहायता की अपेक्षा रखने वाले लोकोपकार में रत वैद्यादिकों का भरण-पोषण करे ।[19]

वस्तुत: राष्ट्र व समाज का प्रमुख होने के कारण राजा नागरिकों द्वारा अनुकरणीय था। समस्त राज्य उसी के द्वारा पालित व शासित था । गौतम के अनुसार चारों वर्णों के लोगों, वृक्षादि बढ़ने एवं घटने वाले, लुप्त चेतना वाले स्थावर पदार्थों, पशु आदि चलने वाले जीवों, उड़ने वाले पक्षियों और सरकने वाले सर्पों का जीवन राजा पर आश्रित होता है।[20] इसीलिए इनकी रक्षा, लालनपालन स्वरूप राजा के उत्तरदायित्वों का पर गहन चर्चा मिलती है ।

दूसरी चर्चा मिलती है नागरिकों के शासन के प्रति कर्त्तव्य पर। राज्य के सुचारू रूप से संचालन व आर्थिक क्रियाकलापों की समुचित व्यवस्था के संदर्भ में कर-प्रणाली का विधान था । कर-व्यवस्था से नागरिकों की शासन में भागीदारी होती थी एवं यह अनिवार्य कर्त्तव्य भी था । कृषकों के लिए नियम था कि वे उपज का दसवाँ, आठवाँ या छठा भाग राजा को कर के रूप में दें।[21] कर देने वाले व्यापारियों के लिए यह नियम था कि वे कर के अतिरिक्त भी प्रतिमास अपनी विक्रय की एक वस्तु कम मूल्य पर राजा को अर्पित करें।[22]

2.2 सामाजिक कर्त्तव्य -

समाज में गृहस्थ का सर्वाधिक महत्त्व था क्योंकि अन्य सभी प्रकार के नागरिक गृहस्थ का आश्रय लेकर ही रहते हैं । समाज की आधारशिला गृहस्थ ही था । इस आश्रम में अनेक सामाजिक कर्त्तव्यों का निर्वहन करना होता था यथा - वर्णगत स्वधर्म का पालन, अतिथि-सत्कार, जीविकोपार्जन करना, शास्त्रोक्त विधि से पत्नी ग्रहण करना, अपनी पत्नी में ही अनुरक्त रहना, उसी से सन्तान उत्पन्न करना, सम्बन्धियों के प्रति अपने कर्त्तव्यों को निभाना, दु:खी, रोगी, निर्धन, विद्याध्ययनरत व्यक्तियों की सहायता करना, ऋणों से उऋण होना, यज्ञ करना, दान देना, श्राद्ध कर्म, नित्य एवं नैमित्तिक कर्मों को करना तथा संयमित जीवन व्यतीत करना इत्यादि ।[23]

समावर्तन संस्कार के अवसर पर व्यक्ति को सामाजिक कर्त्तव्यों का उपदेश दिया जाता था । जिसमें आचार्य द्वारा स्नातक को अपने कर्त्तव्यों से विमुख न होने, समाज में प्रवेश करने तथा उन्नति करने का उपदेश देते थे जिसको हृदयङ्गम कर स्नातक एक श्रेष्ठ सामाजिक व्यक्ति बन राष्ट्र व समाज के विकास में अपना योगदान दे सकता था ।[24] गौतम के अनुसार स्नातक सामाजिक जीवन का प्रवेशार्थी है । वह विधिविहित विधान का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन कर, भविष्य के उच्चतम उत्तरदायित्व को वहन कर, आदर्श रूप से स्वकर्त्तव्य का पालन करता हुआ स्वयं का, समाज और राष्ट्र का हित सम्पादित करता है ।[25]

गृहस्थ के कर्त्तव्यों को मुख्यतया दो भागों में विभक्त किया

जा सकता है: (1) सांस्कृतिक कर्त्तव्य व (2) सामान्य कर्त्तव्य । सांस्कृतिक कर्त्तव्यों में पञ्च-महायज्ञ, दैनिक यज्ञ एवं ऋण-त्रय प्रमुख हैं । पञ्च-महायज्ञों में नैतिकता, आध्यात्मिकता, प्रगतिशीलता एवं आतिथ्य का भाव परिलक्षित होता है । गृहस्थों के लिए इनका सम्पादन करना श्रेष्ठ बताया गया है । ऋण-त्रय (ऋषि ऋण, देव ऋण, पितृ ऋण) की अवधारणा आश्रम व्यवस्था का आधार थी। इनमें उन व्यक्तियों के प्रति कर्त्तव्य पूर्ण करना होता था जिनसें कुछ प्राप्त हुआ हैं । ऋणों से उऋण (मुक्त) होने के लिए अधिकारों की अपेक्षा कर्त्तव्यों पर ही ध्यान दिया जाता था । इन ऋणों से मुक्ति के मूल में भाव यह था कि समाज से लाभ उठाने वाले व्यक्ति अपने देवों, पितरों, पूर्वजों, ऋषियों आदि के प्रति श्रद्धावनत और विनीत रहें तथा कुल और समाज के प्रति उत्सर्जित होकर सदाशयता का दृष्टिकोण रखें । आचार्य जैमिनी के मत में इन ऋणों से मुक्ति पाना मनुष्य का ऐच्छिक नहीं, अपितु अनिवार्य कर्त्तव्य था ।[26]

सामान्य कर्त्तव्यों का भी निरूपण किया गया है जिनमें प्रमुख हैं - अतिथि सत्कार, पारिवारिक जनों के परस्पर कर्त्तव्य, अन्याश्रमों के प्रति कर्त्तव्य, प्रकृति के प्रति कर्त्तव्य, राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य इत्यादि । माता-पिता का आदर व उनके आदेश की पालना संतानों के लिए एक अनिवार्य कर्त्तव्य माना गया है । किसी भी स्थिति में माता से अनुचित व्यवहार नहीं करना चाहिए ।[27] आपस्तम्ब एवं बौधायन ने माता के पतित होने पर भी पुत्र के द्वारा उसकी सेवा परम कर्त्तव्य माना है क्योंकि माता ही पुत्र के सारे कार्य करती है।[28] आधुनिक काल में संतानों के कर्त्तव्यों से विमुख होने का ही परिणाम वृद्धाश्रम हैं । सभी नागरिकों को स्त्री की रक्षा करने का प्रयत्न करना चाहिए ।[29] आज भोगवादी दृष्टिकोण के कारण विश्व में महिलाओं की सुरक्षा की दृष्टि से स्थिति अच्छी नहीं है । इस संदर्भ में प्राचीन काल में बनाया गया यह कर्त्तव्य आज भी व्यावहारिक है । शिक्षा प्रणाली में गुरुकुल व्यवस्था थी जिसमें बालक को आरम्भ से ही समाज का एक कर्त्तव्यनिष्ठ एवं सदाचारयुक्त नागरिक बनाने का प्रयास किया जाता था । धर्मशास्त्रों में विद्यार्थी का कर्त्तव्य वर्णित है कि को आचार्य और स्वयं के पोषण के लिए प्रात: एवं सायंकाल गृहस्थों से भिक्षा माँग कर लानी चाहिए ।[30] जिसका उद्देश्य था व्यक्ति के मन से 'अहं' की भावना समाप्त करना था । साथ ही यह भाव प्रतिष्ठित करना था कि उसका पालन-पोषण समाज की कृपा से ही हुआ है, अत: समाज का ऋण चुकाना भी उसका कर्त्तव्य है । इससे व्यक्ति स्वयं केन्द्रित न होकर समाजकेन्द्रित होता था । वर्तमान समय में शिक्षा का उद्देश्य केवल पुस्तकों का ज्ञान करना रह गया है, विद्यालय ज्ञान और आचार का केन्द्र न रहकर व्यापार के केन्द्र बनते जा रहे हैं जबकि प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति विद्यार्थियों में उच्च मानवीय मूल्य, स्वावलम्बन, आत्मनियन्त्रण, त्याग तथा सहिष्णुता का पाठ पढ़ाकर उनका चारित्रिक नैतिक व विकास करते थे । विद्या का त्याग न करना भी सभी नागरिकों का कर्त्तव्य था ।[31] देश की उन्नति में शिक्षा एक महत्त्वपूर्ण पहलू है एवं आज सभी राष्ट्र इस दिशा में सार्थक प्रयत्न कर रहे हैं ।

इसी क्रम में 'प्रकृति के प्रति भी कर्त्तव्यों' को महत्त्व दिया गया था क्योंकि प्रकृति की गोद में ही सभी प्राणियों व मनुष्यों का सर्वांगीण विकास व लालन-पालन होता है । प्राकृतिक पर्यावरण नदी, जलाशयों को स्वच्छ रखना सभी का उत्तरदायित्त्व बताया गया है । गौतम ने वायु और जल जैसे प्राकृतिक तत्त्वों को शुद्ध रखने को अनिवार्य कर्त्तव्य बताते हुए कहा है कि वायु, अग्नि, ब्राह्मण, सूर्य, जल, देवता, गौ की ओर मुख करके मल, मूत्र का त्याग न करें और न ही थूकें और न ही उच्छिष्ट फेकें ।[32] आपस्तम्ब का भी यही विचार है ।[33] इनकी शुद्धता के विचार का महत्त्व इतना था कि इन तत्त्वों की ओर पैर भी न फैलाए ।[34] जल में थूकना और मल-मूत्र त्यागना वर्जित था ।[35] वसिष्ठ ने भी कहा है कि मनुष्य को नदी, सार्वजनिक मार्ग, बीज बोया हुआ खेत, चरागाह आदि को दूषित नहीं करना चाहिए।[36] वृक्षों, पर्वतों, नदियों आदि को चेतन मानते हुए राज्य का नागरिक माना हैं । प्रकृति तो सनातन काल से ही निरन्तन अपने कर्तव्य करती आ रही है । कर्त्तव्यों में शिथिलता तो मनुष्य ही करता है, इसीलिए प्रकृति के प्रति कर्त्तव्यों का विधान मनुष्य के लिए ही है । गौतम के अनुसार वानप्रस्थी को भी अपने आप गिरे हुए औषधियों और वृक्ष एवं लताओं के पत्तों, फल, फूल, मूल, शाखा आदि को ग्रहण करना चाहिए ।[37] तोड़कर ग्रहण नहीं करना चाहिए । वृक्षों में भी चेतन तत्त्व मानते हुए पर्यावरण को शुद्ध रखने का कर्त्तव्य है। वृक्ष काटने पर दण्डात्मक व्यवस्था थी । यदि फलदार वृक्ष मनुष्य की जीविका का साधन हो, कोंपलों से युक्त हो तो उस वृक्ष की शाखा और तना अथवा सम्पूर्ण वृक्ष को काट देने पर क्रमश: बीस, चालीस और अस्सी पणों का दण्ड होता है।[38]

3. भारतीय संस्कृति में वर्णित कर्त्तव्यों की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता -

वर्तमान समय में उपभोक्तावादी प्रवृत्ति के कारण अधिकारों की मांग पर अत्यधिक बल दिया गया है। कर्त्तव्यों को भी अधिकारों के समान प्राथमिकता देने वाला समाज ही दीर्घकालिक

दृष्टि से सुखी और समृद्ध हो सकता है । प्राचीन भारत के सुखी और समृद्ध होने का एक कारण यह भी रहा है कि यहां कर्त्तव्यों (कर्म) पर सदैव बल दिया है । कर्त्तव्यच्युत होने और उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रभाव का ही परिणाम है कि आज गंगा - यमुना जैसी पवित्र नदियां कारखानों का कचरा ढोने वाली नालियों में परिवर्तित होती जा रही हैं । जंगल और जंगली जीवों को बर्बर तरीके से नष्ट किया जा रहा है । पर्यावरणीय प्रदूषण से उत्पन्न भूमण्डलीय तापन के परिणाम स्वरूप हिम पिघल रही है जिससे समुद्र का जल स्तर बढ रहा है जो कि पृथ्वी के अस्तित्व के लिये ही खतरा है । ऐसे में प्रत्येक व्यक्ति को, प्रत्येक राष्ट्र को, प्रत्येक समाज को अपना कर्त्तव्य समझना होगा और आवश्यकताओं को सीमित करना होगा तभी एक सुखी और समृद्ध विश्व की कल्पना की जा सकती है ।

भारतीय संस्कृति सदैव ही कर्म प्रधान रही है। श्रीमदभगवदगीता के द्वितीय अध्याय में भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा- 'तेरा कर्म में अधिकार है, फल में नहीं । यदि कर्मफल में तेरी तृष्णा होगी तो तू कर्मफल प्राप्ति का कारण होगा। अत: इस प्रकार तू कर्मफल प्राप्ति का कारण मत बन' ।[39] वर्तमान में भारतीय संविधान में उल्लिखित मूल कर्त्तव्यों में भी हम भारतीय संस्कृति में वर्णित कर्त्तव्यों का प्रतिबिम्ब देख सकते हैं । मूल कर्त्तव्यों में भी राजनैतिक कर्त्तव्य, सामाजिक कर्त्तव्य, सांस्कृतिक कर्त्तव्य, आर्थिक कर्त्तव्य इस प्रकार का वर्गीकरण है जो कि हमारे प्राचीन ग्रन्थों से साम्य रखता है । अत: भारतीय चिन्तन में कर्त्तव्यों पर विशद व विहंगम दृष्टि से विचार विमर्श किया गया है। राष्ट्र, समाज, वर्ग, आम नागरिक सभी के कर्त्तव्यों को निर्धारित किया गया ताकि सामाजिक व्यवस्था निर्बाध रूप से चलती रहे एवं ये सभी कर्त्तव्य व्यक्ति को उसके अधिकारों की पूर्वपीठीका का कार्य करते रहे हैं ।

4. संदर्भ ग्रन्थ-सूची -

1. ऋग्वेद संहिता, सायण भाष्य सहित, अनु. पं. रामगोविन्द त्रिवेदी, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2003.
2. ऐतरेय ब्राह्मण, सायणाचार्यकृत वेदार्थप्रकाश भाष्य सहित, सं. सुधाकर मालवीय, प्राच्य भारतीय ग्रन्थमाला-14, वाराणसी, 1980.
3. शतपथ ब्राह्मण, सं. पं. चिन्नास्वामी शास्त्री, काशी संस्कृत ग्रन्थमाला-127, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, वि. सं. 2040.
4. श्रीमद् भागवतम्, के. टी. पाण्डुरङ्गी (सम्पादक), द्वैत वेदान्त स्टडीज एण्ड रिसर्च फाउण्डेशन, बंगलौर, 2000.
5. गौत्तम धर्मसूत्र, मस्करि-भाष्य सहित, डा. वेदमित्रा, वेदमित्रा एण्ड सन्स, नई दिल्ली, 1969.
6. गौत्तमधर्मसूत्राणि, मिताक्षरावृत्ति सहितानि, गौत्तम, व्याख्याकार डा. उमेशचन्द्र पाण्डेय, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी,चतुर्थ संस्करण,वि. सं. 2061
7. आपस्तम्ब-धर्मसूत्रम्, आपस्तम्ब, व्याख्याकार डा. उमेशचन्द्र पाण्डेय, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी,वि. सं. 2063.
8. आपस्तम्ब-धर्मसूत्रम्, आपस्तम्ब, हरदत्तकृत उज्ज्वलावृत्ति सहित, हिन्दी अनु. डा. नरेन्द्र कुमार आचार्य, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, 2010.
9. वशिष्ठधर्मसूत्रम्, बॉम्बे संस्कृत एण्ड सीरीज, बम्बई, 1995.
10. विष्णु धर्मसूत्र (स्मृति), अंग्रेजी अनु. जूलियस जॉली, सेक्रेड बुक आफ दि ईस्ट, भाग-7, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1965.
11. याज्ञवल्क्यस्मृति, मिताक्षरा की टीका सहित, हिन्दी व्या. पं. दुर्गाधर झा, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, 2002.
12. कौटिलीयमर्थशास्त्रम्, वाचस्पति गैरोला (सम्पादक), चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2003.
13. त्रिपाठी, हरिहरनाथ, प्राचीन भारत में राज्य और न्यायपालिका, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1965.
14. पाण्डेय, डा. उदयशंकर, प्राचीन भारत की राजव्यवस्था वैदिक एवं स्मृतिकालीन, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 1995.
15. गुप्त, देवेन्द्र कुमार, सूत्र साहित्य में वर्णित भारतीय समाज एवं संस्कृति, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 2010.
16. कलम, के. एल., भारतीय राजनीतिक चिन्तक, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर, 1997.
17. ओझा, श्रीकृष्ण, भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्व, आदर्श प्रकाशन, जयपुर ।

सन्दर्भ सूची -

1. ऋतेन ऋतं धरूणं धारयन्त यज्ञस्य शाके परमे व्योमन् ।
   दिवो धर्मन्धरुणे सेदुषो नृञ्जातैरजाताँ अभि ये ननक्षु: ॥
   ऋ. 5.15.2
2. यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छतीति प्राणाद्वा एष उदेति प्राणेऽस्तमेति तं दिवाश्चक्रिरे धर्म स एव अद्य स उ श्व इति ।
   बृह. उप. 1.5.23
3. अथोऽबलीयान् बलीयासमाशंसन्ते धर्मेण यथा राज्ञैव ।
   बृह. उप. 1.4.14
4. इयं ते राट् ।.....यन्तासि यमनो ध्रुवोऽसि धरुण: ।

कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा ॥ शत. ब्रा. 5.2.1.25

5. याञ्च रात्रीमजायेहं याञ्च प्रेतास्मि तदुभयमन्तरेणेष्टापूर्त्तं मे लोकं सुकृतमायुः प्रजां वृञ्जीथा यदि ते द्रुह्येमिति । ऐतरेय ब्राह्मण, 8.15
6. उपयाम गृहीतोऽस्यादित्येभ्यस्त्वा विष्ण उरूगायैष ते सोमस्तं रक्षस्व मा त्वा दभन् । यजु. 8.1
7. ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् । अथर्व. 11.15.18
8. वंशिनी त्वं विदथमावदासि । ऋ. 10.85.26
9. ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥
ईशावास्योपनिषद्, 1
10. यत्ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु ।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम् ॥ अथर्व. 12.1.35
11. याँश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि । अथर्व. 17.17
12. कर्त्तव्यं (कृ+तव्य) करणीयम् । करणयोग्यम् । कार्य्यम् । इति व्याकरणम् । कर्त्तव्यः, त्रि, (कर्त्तुं योग्यं कर्त्तुं उचितं वा । यद्वा अवश्यं करणीयं यत् तत् कर्त्तव्यमिति स्मृतम् ।) कृ+ योग्याद्यर्थे तव्यः । शब्दकल्पद्रुम, द्वितीय भाग, पृ. 43
13. दृष्टो धर्मव्यतिक्रमस्साहसं च पूर्वेषाम् । तेषां तेजोविशेषेण प्रत्यवायो न विद्यते । तदन्वीक्ष्य प्रयुञ्जानस्सीदत्यवरः । आप. धर्म. 2.13.7-9
14. प्रजासुखे सुखी राजा तदुःखे यश्च दुखितः ।
स कीर्तियुक्तो लोकेस्मिन्प्रेत्य स्वर्गे महीयते ॥
विष्णु धर्मसूत्र, 3.98
15. चतुर्वर्णाश्रमस्यायं लोकस्याचाररक्षणात् ।
नश्यतां सर्वधर्माणां राजधर्मप्रवर्तकः ॥ अर्थशास्त्र, 3.1
16. प्रव्रज्यासु वृथाचारान् राजा दण्डेन वारयेत् । अर्थशास्त्र, 3.16
17. स्वधर्मो राज्ञः पालनं भूतानां तस्यानुष्ठानात्सिद्धिः ।
वसि. धर्म. 19.1
18. राज्ञोऽधिकं रक्षणं सर्वभूतानाम् । न्यायदण्डत्वम् ।
गौ. धर्म. 2.1.7-8
तथा वर्णाश्रमांश्च न्यायतोऽभिरक्षेत् । चलतश्चैतान्स्वधर्मे स्थापयेत् ।
गौ. धर्म. 2.2.9-1
19. निरुत्साहांश्चाब्राह्मणान् । अकरांश्च । उपकुर्वाणांश्च ।
गौ. धर्म. 2.1.10-12
20. तयोश्चतुर्विधस्य मनुष्यजातस्यान्तः संज्ञानां चलनपतनसर्पणा-नामायत्तं जीवनम् । गौ. धर्म., 1.8.2
21. राज्ञो बलिदानं कर्षकैर्दशममष्टमं षष्ठं वा । गौ. धर्म., 2.1.24
22. पण्यं वणिग्भिरर्थापचयेन देयम् । गौ. धर्म., 2.1.35
23. सूत्र साहित्य में वर्णित भारतीय समाज एवं संस्कृति, देवेन्द्र कुमार गुप्त, पृ. 105
24. सत्यं वद । धर्मं चर । स्वाध्यायान्मा प्रमदः । आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सी । सत्यान्न प्रमदितव्यम् । ....मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्य देवो भव । अतिथिदेवो भव । यान्यनवद्यानि कर्माणि । तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि ।.... तैत्तिरीयोपनिषद्, 1.11
25. स विधिपूर्वकं स्नात्वा भार्यामधिगम्य यथोक्तान्गृहस्थ-धर्मान्प्रयुञ्जान इमानि व्रतान्यनुकर्षेत् ।
गौ. धर्म. 1.9.1
26. जैमिनी सूत्र, 6.2.31
27. न कर्हिचिन्मातापित्रोरवृत्तिः । गौ. धर्म., 3.3.15
28. माता पुत्रत्वस्य भूयांसि कर्मण्यारभते तस्यां शुश्रुषा नित्या पतितायामपि । न तु धर्मसन्निवापः स्यात् ।
आप. धर्म. 1.10.28.9-10
29. आप. धर्म. 1.4.14.28 पर टीका ।
30. अग्नीन्धनभैक्षचरणे । गौ. धर्म. 1.2.12
सर्वं लाभमाहरन् गुरवे सायं प्रातरमत्रेण भिक्षाचर्यं चरेद्भिक्षमाणोऽन्येत्राऽपपात्रेभ्योऽभिशस्ताच्च ।
आप. धर्म. 1.1.3.25
31. सर्वेषामनूत्सर्गो विद्यायाः । आप. धर्म. 2.9.21.4
32. न वाय्वग्निविप्रादित्यापो देवता गाश्च प्रति पश्यन्वा मूत्रपुरीषामेध्यान्व्युदस्येत् । गौ. धर्म. 1.9.13
33. अग्निमादित्यमपो ब्राह्मणं गां देवताश्चाऽभिमुखो मूत्रपुरीषोः कर्म वर्जयेत् । आप. धर्म. 1.11.30.23
34. अग्निमादित्यमपो ब्राह्मणं गां देवताद्वारं प्रति पादं च शक्तिविषये नाऽभिप्रसारयीत । आप. धर्म. 1.11.30.25
35. अप्सु च । तथाष्ठेवनमैथुनयोः कर्माऽप्सु वर्जयेत् । आप. धर्म. 1.11.30.21-22
36. न नद्यां मेहनं कुर्यान् न पथि न च भस्मनि ।
न गोमये न वा कृष्टे नोप्ते क्षेत्रे न शाद्वले ॥ वसि. धर्म. 6.12
37. नाविप्रयुक्तमोषधिवनस्पतीनामङ्गमुपाददीत । गौ. धर्म. 1.3.19
38. प्ररोहिशाखिनां शाखास्कन्दसर्वविदारणे ।
उपजीव्य द्रुमाणां च विंशतेर्द्विगुणो दमः ॥ याज्ञ. 2.227
39. कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूमा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥
श्रीमद्भगवद्गीता, 2.47

ISSN 2278 - 0327

शब्दशक्तिप्रकाशिका के अनुसार आख्यात का स्वरूप विवेचन

डॉ. सन्तु सिंह
सहायक अध्यापक, संस्कृत विभाग
बाँकुडा विश्वविद्यालय, पश्चिमवङ्ग

भूमिका – हम जानते हैं कि इस दुनिया में हर तरह का ज्ञान मुख्य रूप से वाक्यों के रूप में दिया जाता है। वाक्य को वाक्यात्मक रूप से जुड़े शब्दों के समूह के रूप में परिभाषित किया गया है। वाक्य में क्रिया सबसे महत्वपूर्ण है। संस्कृत भाषा में क्रिया शब्द में आम तौर पर दो भाग होते हैं, जैसे कि धातु और प्रत्यय। मीमांसक, नैयायिक और वैयाकरण के मत में 'अख्यात' शब्द के अर्थ के संबंध में बहुत अंतर है। मीमांसक और तर्कशास्त्री दोनों का तर्क है कि आख्यात शब्द केवल तिङ् प्रत्यय को दर्शाता है। व्याकरणविदों के बीच एक खंड का तर्क है कि केवल मूल का अर्थ आख्यात से है जबकि दूसरा खंड यह आग्रह करता है कि मूल और प्रत्यय दोनों को एक साथ (तिङन्त) को अख्यात कहा जाना चाहिये। यास्क से बहुत पहले, ऐसा प्रतीत होता है कि शाकटायन, गार्ग्य आदि वैयाकरणों ने आख्यात शब्द का प्रयोग 'धातु' के अर्थ में किया था। शाकटायन का मत निरुक्तकार यास्क ने ऐसा उद्धृत किया है – *सर्वाणि नामान्याख्यातजातानीति शाकटायनः।*[1] यास्क ने शाकपुणि को यह कहते हुए उद्धृत किया कि अग्नि शब्द तीन अख्यातों से बना है। यहाँ आख्यात शब्द निःसंदेह धातु का पर्यायवाची है। ऋषि यास्क ने निरुक्त में आख्यात को परिभाषित करते हुये कहा – *भावप्रधानमाख्यातम्।*[2] इस का अर्थ है आख्यात एक शब्द जिसका प्राथमिक अर्थ व्यापार है। मीमांसक के अनुसार, आख्यात शब्द केवल प्रत्यय तिङ् को दर्शाता है। मीमांसक बोलता है यास्क द्वारा दी गई परिभाषा के अनुसार भावना प्राथमिक है। और इस भावना को तिङ् प्रत्यय द्वारा निरूपित किया जाता है। इसलिए तिङ् प्रत्यय को आख्यात कहा जाता है। वैयाकरण के मत में तिङन्त पद में ही 'भावप्रधानम् आख्यातम्' यह नियम लागू होता। अतः तिङन्तपद ही आख्यातवाच्य है। लेकिन नैयायिक मत में आख्यात शब्द केवल तिङ् प्रत्यय को दर्शाता है। नैयायिकों से नव्यनैयायिक जगदीश तर्कालङ्कार का आख्यातविषयक मत यहां पर प्रस्तुत किया जाता है।

जगदीशकृत आख्यात का प्रथम लक्षण –

जगदीश तर्कालङ्कार शब्दशक्तिप्रकाशिका ग्रन्थ का आख्यात-प्रकरण में आख्यात का स्वरूप विवेचन किया हैं। तर्कालङ्कार ने तिङ् रूप आख्यात का लक्षण इस प्रकार किया है –

स्वेतरप्रथमान्तस्य नाम्नोऽर्थे बोधनक्षमाः।
प्रत्ययाः स्वार्थसंख्यायास्तिङो दशविधाश्च ताः।।[3]

स्वभिन्न प्रथमाप्रकृतिक प्रातिपादिक के अर्थ में स्वार्थ संख्या का ज्ञान के प्रति समर्थ प्रत्यय हि तिङ् है। लक्षणस्थ स्व–पद से अभिमत लक्ष्य को ही लेना अर्थात् यहाँ पर तिङ् को समझना चाहिये। अतः कारिका का अर्थ जगदीश ने इस प्रकार किया है – *स्वभिन्नप्रथमान्तस्य नाम्नः अर्थे स्वार्थसंख्याबोधं प्रति समर्थाः प्रत्ययास्तिङउच्यन्ते।*[4] जैसे 'रामः पचति' इस वाक्य का शाब्दबोध है – *एकत्वावच्छिन्नः पाकानुकूलकृतिमान् रामः।* यहाँ पर राम प्रातिपदिक के अर्थ ही विशेष्य है और तिङ्बोध्य एकत्वा संख्या प्रकार है। अतः *एकत्वावच्छिन्नः पाकानुकूलकृतिमान् रामः* इस बोध को हम इस प्रकार भी व्यक्त कर सकते हैं– *स्वभिन्नप्रत्यतान्त–नामार्थविशेष्यक स्वार्थसंख्याप्रकारकान्वयबोध ।* इस प्रकार बोध का जनक है तिङ् प्रत्यय और जनकतावच्छेदक है तिङ्त्व। अतः कारिका का अर्थ इस प्रकार टीकाकार ने किया है– *स्वभिन्न प्रत्यान्तनामार्थधर्मिकस्वार्थसंख्याप्रकारकान्वयबोधजनकता–वच्छेदकप्रकारताश्रयानुपूर्वीमत् –प्रत्ययत्वं तिङ्त्वम् इति पर्यवसितम्।*[5]

आख्यात के प्रथम लक्षण में अतिव्याप्त्यादिदोष विचार –

तिङ्रूप आख्यात के लक्षण में यदि स्वभिन्नार्थक स्वेतर पद नहीं दिया जाये तो प्रथमा विभक्ति सुबादि में अतिव्याप्त हो जायेगा। क्योंकि स्वेतर पद के विना लक्षणार्थ होगा स्वभिन्न प्रथमाप्रकृतिक प्रातिपादिक के अर्थ में स्वार्थ संख्या का ज्ञान के प्रति समर्थ प्रत्यय ही तिङ् है। ऐसा अर्थ आने पर प्रथमा विभक्ति में तिङ्रूप आख्यात का लक्षण अव्याप्त होता है क्योंकि प्रथमा विभक्त प्रथमान्त प्रातिपदिक के अर्थ के साथ स्वार्थ संख्या बोधिका होता है। इस अतिव्याप्ति के निवारण करने कि लिये आख्यात का लक्षण में स्वभिन्नार्थक स्वेतर पद देना चाहियें। फलतः प्रथमा विभक्ति प्रथमान्त प्रातिपदिक के अर्थ के साथ स्वार्थ संख्या बोधिका होने पर भी स्वभिन्न प्रथमा प्रकृत्यर्थ की बोधिका नहीं होती है। अतः लक्षण

की अतिव्याप्ति नहीं होती। चैत्रस्तथा इत्यादि स्थलों में तथा पद यद्यपि स्वार्थैकत्व का बोधक है तथापि कोई दोष नहीं। क्योंकि तथा पद निपात है, प्रत्यय नहीं। इस सन्दर्भ में जगदीश की उक्ति ऐसी है – *प्रथमा तु प्रथमान्तस्य नाम्नः अर्थे स्वार्थसंख्याबोधिकापि न स्वेतरप्रथमान्तस्येति तद्व्युदासः। चैत्रस्तथा इत्यादौ स्वार्थैकत्वबोधकः अपि तथादिनिपातो न प्रत्ययः।*[6]

प्रथम लक्षण परित्याग का निमित्त कथन –

मत्स्यण्डी फाणितं खण्डविकारौ, देवो विप्रश्च विबुधौ इत्यादि स्थलों में स्वप्रकृत्यर्थभिन्न मत्स्यण्डी प्रभृति में सुप् प्रत्यय भी द्वित्वादि के बोधक है। उन स्थलों में एतौ खण्डविकारवाचकौ, एतौ विबुधशब्दप्रतिपाद्यौ इत्याकारक शाब्दबोध होता है। अतः विकारादिपदोत्तर सुबर्थ द्वित्व का स्वभिन्न प्रथमान्तपदोपस्थाप्य मत्स्यण्डी तथा देवादि पद सुप् में अतिव्याप्त हो जायेगा।

जगदीशकृत आख्यात का द्वितीय लक्षण –

उन दोषों को दूर करने के लिये पूर्वोक्त लक्षणा का परित्याग कर दूसरा लक्षण करती है जगदीश तर्कालङ्कार –

स्वेतरार्थयुतस्वार्थावच्छिन्नार्थविशेष्यके।
शाब्दे स्वरूपायोग्यो वा प्रत्ययस्तिङिति स्मृतः।।[7]

कारिकार्थ है – स्वभिन्न अर्थ से युक्त ओर स्वार्थाविच्छिन्नार्थ विशेष्यक शाब्दबोध के प्रति स्वरूपायोग्य प्रत्यय को तिङ् कहते है। सभी तिबादि प्रत्यय पदार्थान्तरविशिष्ट स्वार्थावच्छिन्नावगाहि शाब्दबोध के प्रति स्वरूपायोग्य होते है। उपर्युक्त द्वितीय लक्षण भी युक्तियुक्त नहीं है। कारण यह है कि इस द्वितीय लक्षण में असम्भव दोष आपतित होता है।

आख्यात का तृतीय लक्षण –

द्वितीय लक्षण का दोष को दूर करने के लिए तीसरा लक्षण करते है। तीसरा लक्षण है –

धात्वर्थेन विशिष्टस्य विधेयत्वेन बोधने।
समर्थऋ स्वार्थयत्नस्य शब्दो वाख्यातमुच्यते।।[8]

कारिका का अर्थ है– जो शब्द धात्वर्थावच्छिन्न स्वार्थयत्नविधेयक अन्वयबोध के प्रति सक्षम होता है उसे तिङ् कहते है।

आख्यात का तृतीय लक्षण में अतिव्याप्तिदोष विचार –

उपर्युक्त लक्षण में यदि स्वार्थ पद का निवेश न किया जाये तो चैत्रः पचति इत्यादि स्थलों में प्रातिपदिक और धातु में आख्यात लक्षण की अतिव्याप्ति हो जायेगी। कारण यह है कि चैत्रः पचति इत्यादि स्थलों मे प्रातिपदिक और धातु धात्वर्थावच्छिन्न यत्न का विधेय रूप से बोध कराता है। परन्तु लक्षण में स्वार्थ पद का निवेश करने से आख्यातलक्षण का कहीं पर भी अतिव्याप्ति नहीं होती। स्वार्थ पद का लक्षण में निवेश करने से अर्थ होता है जो शब्द धात्वर्थावच्छिन्न स्वार्थयत्नविधेयक अन्वयबोध के प्रति सक्षम होता है उसे तिङ् कहते हैं। अतः अतिव्याप्ति दोष नहीं होता है। क्योंकि चैत्रः पचति इत्यादि स्थलों में प्रातिपदिक और धातु धात्वर्थावच्छिन्न यत्न का विधेय रूप से बोध कराता है, स्वार्थ का नहीं। पुनश्च, चैत्रः पाचकः इत्यादि स्थलों मे धात्वर्थविशेषित यत्न विधेय नहीं है, अपितु कर्ता ही विधेय है। कारण यह है कि कृत् प्रत्यय धर्मी का ही वाचक होता है। अन्यथा पाचको भुङ्क्ते इत्यादि वाक्य अयोग्य तथा गुणः पाचकः इत्यादि वाक्य योग्य होने लगेगा, क्योंकि पाक कृति में भोजन सम्भव नहीं है। इस विचार को ऐसे जगदीश तर्कालङ्कार ने उपस्थापित किया है –

धात्वर्थावच्छिन्नस्वार्थयत्नविधेयताकान्वयबोधसमर्थः शब्दो वाख्यातं तदेव च तिङित्यर्थाल्लभ्यते, तिङाख्यातयोः पर्यायत्वात्। पाकश्चैत्रस्येत्यादौ नामार्थेनैव विशिष्टस्य स्वार्थकर्तृत्वस्याभिधायकः षष्ठ्यादिको न तु धात्वर्थेन विशिष्टस्य। चैत्रः पचतीत्यादौ धात्वर्थावच्छिन्नस्य यत्नस्य विधेयतया बोधकावपि नामधातू न स्वार्थस्य। चैत्रः पाचक इत्यादौ तु धात्वर्थविशेषितस्य यत्नस्य न विधेयत्वं किन्तु कर्तुरेव, कृतां धर्मिशक्तत्वादन्यथा पाचको भुङ्क्ते इत्यादिकमयोग्यं स्यात्, स्याच्च गुणः पाचक इत्यादिकं योग्यमिति, प्रातिपदिकार्थयोः प्रयत्नचैत्रयोर्भेदेनान्वयस्याव्युत्पन्नतया कृदर्थ-कृतश्चैत्रादावन्वयायोगाच्च।[9]

ग्रन्थपञ्जी–

1. निरुक्तम्, सम्पा. तारकनाथ अधिकारी, संस्कृत बुक् डिपो, 2019, पुनर्मुद्रित, कलिकाता।
2. व्युत्पत्तिवाद, सम्पा. ड. सच्चिदानन्द मिश्र, भारतीय विद्या प्रकाशन, 2001, प्रथम संस्करण, वाराणसी।
3. शब्दशक्तिप्रकाशिका, सम्पा. दुण्डिराजशास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वि.सं. 2059 तृतीय संस्करण, वाराणसी।
4. शब्दशक्तिप्रकाशिका (प्रथम भाग), सम्पा. महामहोपाध्याय गुरुचरणदेवशर्मा, कलिकात्ता विश्वविद्यालय, 1914, प्रथम संस्करण, कलिकाता।

सन्दर्भ सूची –

1. निरुक्त, 57 पृष्ठाङ्क में
2. निरुक्त, 51 पृष्ठाङ्क में
3. शब्दशक्तिप्रकाशिका, 390 पृष्ठाङ्क में
4. शब्दशक्तिप्रकाशिका, 390 पृष्ठाङ्क में
5. शब्दशक्तिप्रकाशिका, 390 पृष्ठाङ्क में
6. शब्दशक्तिप्रकाशिका, 390 पृष्ठाङ्क में
7. शब्दशक्तिप्रकाशिका, 394 पृष्ठाङ्क में
8. शब्दशक्तिप्रकाशिका, 395 पृष्ठाङ्क में
9. शब्दशक्तिप्रकाशिका, 395 पृष्ठाङ्क में

ISSN 2278 - 0327

तर्क का स्वरूप एवं जैनदर्शन

प्रीति यादव
पीएच.डी., शोधच्छात्रा
संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सारांश

भारतीय दर्शन परम्परा तर्क को प्रमाण अथवा ज्ञान-प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंग मानती है। न्याय-दर्शन जहाँ तर्क को स्वतंत्र पदार्थ के रूप में स्वीकार करता है वहीं वैशेषिक इसे ज्ञान-प्रक्रिया में सहायक मानता है। न्याय-वैशेषिक तर्क को प्रमाण का उपकारक मानते हैं तो सांख्य इसे ऊह (विचार) के रूप में स्वीकार करता है। आस्तिक दर्शन तर्क को स्वतंत्र प्रमाण के रूप में स्थापित नहीं करते। इसका श्रेय मात्र जैन दार्शनिकों को जाता है। भट्ट अकलङ्क आदि जैनाचार्यों ने तर्क को परोक्ष प्रमाण के भेद के अन्तर्गत स्वतंत्र प्रमाण स्वीकार किया है, जिसकी सिद्धि के लिए उन्होंने अनेक विचार प्रस्तुत किए हैं। जैन दार्शनिकों के द्वारा प्रतिपादित तर्क की प्रामाण्यता एवं उसकी उपादेयता का विवेचन करना प्रस्तुत शोधपत्र का अभिधेय है।

विषय-प्रवेश

भारतीय दर्शन परम्परा में तर्क को एक प्रमुख विषय के रूप में प्रतिपादित किया गया है। जब किसी वस्तु के सम्बन्ध में संशय उत्पन्न होता है तो उसके यथार्थ ज्ञान के लिए तर्क का आश्रय लिया जाता है। 'तर्क' शब्द सामान्यतया खण्डन, तर्क-वितर्क, (वाद-विवाद) या शास्त्रार्थ के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

पाणिनीय व्याकरण के अनुसार, दीप्त्यर्थक तर्क्[1] धातु से भाव अर्थ में घञ्[2] प्रत्यय करके तर्क शब्द निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है प्रकाशित करना। अर्थात् किसी विषय के ज्ञान को प्रकाशित करने वाली क्रिया की सिद्धि तर्क है। तर्क शब्द में अनुस्यूत घञ् प्रत्यय को यदि करण अर्थ[3] में स्वीकार किया जाए तो तर्क शब्द का अर्थ होगा- ऐसा साधन जिसके माध्यम से विषय के वास्तविक स्वरूप के ज्ञान का प्रकाशन होता है वह तर्क है।

शब्दकल्पद्रुम तथा वाचस्पत्यम् शब्दकोशों के अन्तर्गत तर्क् धातु को आकांक्षा तथा वितर्क अर्थों में भी स्वीकार किया गया है तदनुसार तर्क का अर्थ होगा- जिसके द्वारा विषय के प्रति आकांक्षा उत्पन्न की जाए अथवा वाद-विवाद किया जाए वह तर्क है।

व्याकरण शास्त्र के पूरक निरुक्त की प्रक्रिया को आधार बनाकर यदि विचार किया जाए तो तर्क शब्द 'कृती छेदने'[4] धातु के वर्ण-विपर्यय या व्युत्क्रमण या पुनर्व्यवस्थापन से निष्पन्न होता है, जो 'काटने' के अर्थ में प्रयुक्त है। इस प्रकार 'तर्क' किसी के मत को काटने या खण्डित करने का साधन है। इसलिए विद्वानों ने 'तर्क' को वाद-विवाद की एक कला के रूप में स्वीकार किया है।

भारतीय दर्शन परम्परा में तर्क

भारतीय प्रमाणशास्त्र के ग्रन्थों में 'तर्क' एक पारिभाषिक शब्द के रूप में प्रयुक्त हुआ है। तर्क विषयक चर्चा न्याय ग्रन्थों में प्रचुर मात्रा में प्राप्त होती है। न्याय दर्शन में तर्क को सोलह पदार्थों के अन्तर्गत परिगणित किया है, जहाँ उसको प्रमाण न मानकर प्रमाण का उपकारक माना है। न्यायसूत्रकार गौतममुनि ने प्रमाणादि सोलह पदार्थों के तत्त्वज्ञान से नि:श्रेयस की सिद्धि स्वीकार की है। इन सोलह पदार्थों में आठवें पदार्थ के रूप में 'तर्क' को परिगणित किया गया है।

'*प्रमाण-प्रमेय-संशय-प्रयोजन-दृष्टान्त-सिद्धान्त-अवयव-तर्क-निर्णय-वाद .....तत्त्वज्ञानान्नि:श्रेयसाधिगम:।*'[5]

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि जीवन के परम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु तर्क रूपी पदार्थ का ज्ञान नितान्त आवश्यक है।

आचार्य गौतम के अनुसार अज्ञात अर्थ का वास्तविक ज्ञान करने के लिए कारणों की उत्पत्ति से जो ऊह किया जाता है वह तर्क है।

'*अविज्ञाततत्त्वेऽर्थे कारणोपपत्तितस्तत्त्वज्ञानार्थमूहस्तर्क:।*'[6]

न्यायसूत्रकार ने 'तर्क' को एक विचार (ऊह) के रूप में परिभाषित किया है। किसी वस्तु के विषय में संदेहास्पद स्थिति उत्पन्न होने पर या एक धर्मी में दो धर्मों का संशय होने पर, किस धर्म में प्रमाण प्रवृत्ति होगी तथा किस धर्म का निराकरण होगा,

इस प्रकार का मानस व्यापार जो ज्ञानरूप ऊह या सम्भावनात्मक विचार है वही तर्क है।

'*स्थाणुर्वा पुरुषो वेति*' इस प्रकार की स्थिति में जिस वस्तु का धर्म अज्ञात होता है तर्क उस वस्तु के अनिष्टप्रसङ्ग को बताते हुए, उसके वास्तविक धर्म को प्रकाशित करता है। अन्य शब्दों में कहा जाए तो तर्क किसी पदार्थ के यथार्थ ज्ञान के लिए प्रमाण का निर्देश करने वाला तथा उस ज्ञान के निश्चित स्वरूप के निर्धारण हेतु किये जाने वाला विचार है। जिस वस्तु का सामान्य स्वरूप तो हमें ज्ञात है किन्तु तात्त्विक स्वरूप रूपी वास्तविक ज्ञान से हम अनभिज्ञ हैं, उस वस्तु के सजातीय-विजातीय से भिन्न सन्देह और भ्रान्ति से रहित वास्तविक स्वरूप के ज्ञान के लिए तर्क की आवश्यकता होती है। इस प्रक्रिया में सर्वप्रथम जिज्ञासा होने पर विरुद्ध धर्म के आरोप के कारण यह ऐसा होगा या वैसा होगा, इस प्रकार का जब सन्देह होता है तब प्रमाण की उपपत्ति या सम्भावना से जो ऊह अर्थात् इस पक्ष में प्रमाण सम्भव हो सकता या दूसरे पक्ष में, इस प्रकार का जो विचार है उसे 'तर्क' कहा गया है।

तर्क की विषयभूत वस्तु का ज्ञान उस वस्तु के सामान्य धर्मों पर आधारित जानना चाहिए। जब वस्तु सर्वथा ज्ञात अथवा अज्ञात होती है वहाँ तर्क की कोई भूमिका नहीं रहती।

महर्षि गौतम ने तर्क को स्वतन्त्र पदार्थ के रूप में स्वीकार किया है। उन्होंने इसे न तो प्रमाणों के अन्तर्गत परिगणित किया है और न ही इसे कोई अन्य प्रमाण माना है। क्योंकि तर्क प्रमाणों का उपकारक बनकर उन्हें तत्त्वज्ञान का सामर्थ्य प्रदान करता है अत: वह प्रमाण नहीं है। तर्क अर्थ का निश्चायक नहीं होता, उसका निश्चायक तो प्रमाणमात्र ही है। इसी कारण तर्क को पृथक् प्रमाण नहीं माना गया है। यद्यपि तर्क प्रमाण नहीं है किन्तु प्रमाणों के विषय का विभाग करने से यह प्रमाणों का अनुग्राहक है।

'*युक्तायुक्तविचार: इदं युक्तमिदमयुक्तमिति। प्रमाणविषय-विभागात्तु प्रमाणानामनुग्राहक: य: प्रमाणानां विषयस्तं विभजते।*'[7]

जयन्तभट्ट ने न्यायमञ्जरी में यह माना है कि सामान्यतया तर्क धर्मिन् के विषय में एक काल्पनिक भावना है, जो अनुकूल न्याय के कारण उत्पन्न होती है तथा एक सम्भव विकल्प के पक्ष में पर्यवसित होती है। तर्क उस सम्भावित विकल्प को दृढ़ कर संशय का निवारण करता है तथा प्रमाण का मार्ग प्रशस्त कर कार्य को सरल करता है, जिससे प्रमाता अथवा जिज्ञासु वस्तु के वास्तविक स्वरूप रूपी निर्णय तक पहुँच सके।

'*अविज्ञाततत्त्वे- सामान्यतो ज्ञाते धर्मिणी एकपक्षानुकूलकारण-दर्शनात् तस्मिन् सम्भावनाप्रत्यय भावितव्यतावभास: तदितरपक्ष-शैथिल्यापादनेन तद्ग्राहकं प्रमाणम् अनुगृह्णत- सुखं प्रवर्तयन् तत्त्वज्ञानार्थम् ऊहस्तर्क इति।।*'[8]

इस प्रकार तर्क विषयक चर्चा न्याय दर्शन तथा दार्शनिक ग्रन्थों में निरन्तर होती रही है। न्याय दर्शन में इसकी परिभाषा तथा परिभाषाओं का परिष्कार भी निरन्तर होता रहा। 'तर्क' को तर्कसंग्रहकार अन्नमभट्ट ने परिभाषित करते हुए कहा है-

'*व्याप्यारोपेण व्यापकारोपस्तर्क:*'[9]

अर्थात् व्याप्य के आरोप से व्यापक के आरोप को तर्क कहते हैं। उदाहरण के रूप में यदि कोई व्यक्ति पर्वत पर धूम देखता है किन्तु उसे पर्वत पर वह्नि की सत्ता के विषय में संशय होता है तो वह तर्क का आश्रय लेता है कि यदि पर्वत पर वह्नि का अभाव है तो पर्वत धूमवान नहीं होता, परन्तु उस व्यक्ति का तर्क से प्राप्त धूमाभाव का ज्ञान प्रत्यक्ष से बाधित है।

इस प्रकार का मानसिक चिन्तन रूपी तर्क ही प्रमाण से प्राप्त ज्ञान को प्रबल करता है। नव्य नैयायिकों की इस दृष्टि ने तर्क को प्रमाणशास्त्र की संकल्पना में सम्मिलित कर लिया।

सांख्यदर्शन में ईश्वरकृष्ण ने अष्ट सिद्धियों में ऊह की गणना की है - *ऊह: शब्दोऽध्ययनम्।*[10]

सांख्यतत्त्वकौमुदीकार वाचस्पति मिश्र ने ऊह के लिए 'तर्क' शब्द का प्रयोग किया है -

'*ऊह: तर्क आगमाविरोधिन्यायेनागमार्थ-परीक्षणम्।*
परीक्षणञ्च संशयपूर्वपक्षनिराकरणेनोत्तरपक्षव्यवस्थापनम्।।'[11]

अर्थात् आगम की अविरोधी युक्तियों से आगमार्थ (श्रुत्यर्थ) का परीक्षण करना तर्क (ऊह) है। यद्यपि इस कथन से तर्क का प्रामाण्य सिद्ध होता है किन्तु सांख्याचार्यों ने भी इसे किसी प्रमाण के रूप में ग्रहण नहीं किया है। कुछ इसी प्रकार की दृष्टि मनुस्मृति में आचार्य मनु के इस श्लोक में परिलक्षित होती है -

आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राविरोधिना।
यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मं वेद नेतर:।।[12]

मनु ने इस शब्द का प्रयोग तर्क-वितर्क के अर्थ में किया है अर्थात् वास्तविक सत्य को वही जानता है, जो वेदाविरोधी तर्क की सहायता से इस पर विचार करता है। कठोपनिषद् में तर्क पद अनुमान का बोधक है - '*नैषा तर्केण मतिरापनेया*'[13] अर्थात् परम ज्ञान की प्राप्ति तर्क के आधार पर नहीं की जा सकती।

इस प्रकार तर्क अनुमान से किसी न किसी रूप से सम्बद्ध है तथा ज्ञान प्रक्रिया का साधक है यह स्पष्ट होता है।

जैनदर्शन में तर्क का स्वरूप

जैन दार्शनिकों की तर्क-मीमांसा भारतीय दर्शन परम्पराओं

को जैन-न्याय का अनूठा अवदान है। जैन ज्ञान-मीमांसा का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि यह अन्य सभी भारतीय दर्शनों की ज्ञान-मीमांसा से भिन्न, गहन व गम्भीर है। उन्होंने प्रमाण को प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से विभाजित किया है। परोक्ष प्रमाण विशद नहीं होता तथा वह प्रत्यक्षादि प्रमाणों के आश्रित होता है। जैनदार्शनिक भट्ट अकलङ्क ने जैन-न्याय को सुव्यवस्थित करते हुए परोक्ष के 5 भेदों का उल्लेख किया है- स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान, आगम। परोक्ष के भेदों के रूप में तर्क, स्मृति, प्रत्यभिज्ञान का उल्लेख आचार्य भट्ट अकलङ्क से पूर्व जैन-न्याय ग्रन्थों में प्राप्त नहीं होता।

स्मृति, प्रत्यभिज्ञान एवं तर्क की स्वतन्त्र प्रमाण के रूप में प्रतिष्ठा का श्रेय केवल और केवल जैन दार्शनिकों को जाता है। वे इसे परोक्ष के भेद के रूप में स्वीकार भी करते हैं तथा युक्तिपूर्वक उसकी स्थापना भी करते हैं। सर्वप्रथम आचार्य उमास्वाति के ग्रन्थ तत्त्वार्थसूत्र में मतिज्ञान के पर्यायार्थक के रूप में 'चिन्ता' शब्द का प्रयोग हुआ - *मति: स्मृति: संज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम्*।[14]

'चिन्ता' को ही आगे चलकर आचार्य भट्ट अकलङ्क ने अपने न्याय ग्रन्थों में तर्क प्रमाण के रूप में प्रतिष्ठित किया है -

संज्ञा चिन्तायाः तर्कस्य। चिन्ता अभिनिबोधस्य अनुमानादेः।[15]

उन्होंने न केवल तर्क को प्रमाण माना अपितु उसे प्रत्याभिज्ञान प्रमाण का फल तथा अनुमान को तर्क के फलरूप में स्वीकार किया। अष्टशती में आचार्य भट्ट अकलङ्क ने लिङ्गलिङ्गि सम्बन्ध ज्ञान को भी अनुमान प्रमाण की भांति प्रमाण स्वीकार किया है। लिङ्गलिङ्गि सम्बन्ध ज्ञान से आचार्य का अभिप्राय तर्कप्रमाण से है।

जैनाचार्य विद्यानन्द तर्क को परोक्ष प्रमाण के भेद के रूप में स्वीकार करते हैं, जो व्याप्ति का ग्राहक है। प्रत्यक्ष और अनुपलंभ जिसमें सहकारी कारण है अर्थात् धूम जो प्रत्यक्ष है तथा अग्नि जो अनुपलंभ है उन दोनों के सम्बन्ध को ग्रहण करने वाला मतिज्ञान का विशेष (भेद) रूप तर्क ज्ञान है। *प्रत्यक्षानुपलम्भसहकारिणो मतिज्ञानविशेषपरोक्षतर्क..... ।*[16]

आचार्य अकलङ्क ने भी प्रत्यक्ष एवं अनुपलम्भ से होने वाले सम्भव प्रत्यय को तर्क कहा है- *सम्भवप्रत्ययस्तर्कः प्रत्यक्षानुपलम्भतः*।[17] अर्थात् सम्भव-प्रत्यय व्याप्तिग्राहक ज्ञान ही है, जो साकल्य से अविनाभाव सम्बन्ध का ग्रहण करता है।

आचार्य विद्यानन्द तर्क के स्वरूप को और अधिक स्पष्ट करते हुए लिखते हैं- *'यावन् कश्चिद्धूमः स सर्वः पावकजन्मैवापावकजन्मा वा न भवति सकलदेशकालव्याप्त्या साध्यसाधनसम्बद्धोहापोहलक्षणो हि तर्कः प्रमाणायि- तव्यः*।'[18]

अर्थात् जितना भी धूम है वह सब अग्नि से उत्पन्न होता हैं। अग्नि के अभाव में धूम उत्पन्न नहीं होता। इस प्रकार सकल देश एवं सकल काल की व्याप्ति से साध्य एवं साधन के सम्बन्ध का जो ऊहापोह ज्ञान होता है, वह तर्क है। तर्क का अन्य नाम ऊह भी है। अकलङ्क ने पूर्वाचार्यों का अनुसरण करते हुए 'चिन्ता' शब्द का प्रयोग किया है।

जैनाचार्य विद्यानन्द तर्क को न ही प्रत्यक्ष का विषय मानते हैं और न ही अन्य दार्शनिकों की भांति उसे अनुमान में समाहित करते हैं। उनके अनुसार प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा वस्तु का साकल्य से ज्ञान सम्भव नहीं है क्योंकि वह सन्निहित-निकटवर्ती विषय को ही ग्रहण करता है और यदि अनुमान को व्याप्ति का ग्राहक मानने लगे तो अनवस्था का प्रसंग आ जाएगा क्योंकि व्याप्ति ही अनुमान प्रमाण का हेतु है उसके लिए भी प्रमाणान्तर की अपेक्षा हो जाएगी। व्याप्ति को ग्रहण कराने वाला अनुमान भी व्याप्ति ग्रहण पूर्वक ही होता है। तब वह पूर्व की व्याप्ति भी अनुमानान्तर की अपेक्षा रखेगी अतः कहीं पर भी अवस्थान नहीं हो सकेगा।

' न खलु परेषां प्रत्यक्षमग्निधूमयोः क्षणभंगसद्भावयोर्वा साकल्येन व्याप्तिं प्रति समर्थम्, अविचारकत्वात्सन्निहितविषयत्वाच्च।'[19]

' न चानुमानमनवस्थानुषङ्गात्' [20]

प्रत्यक्षादि प्रमाणों के द्वारा साकल्य से व्याप्ति का अग्रहण होने के कारण ही जैन दार्शनिकों ने तर्क नामक एक अन्य प्रमाण की स्थापना की है। अष्टसहस्त्रीकार का कथन है कि ज्ञान के आवरण एवं वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम विशेष से ही तर्कज्ञान उत्पन्न होता है। वह तर्क 'जो भी धूम है वह अग्निजन्य है उससे अतिरिक्त किसी से जन्य नहीं है' इस प्रकार शब्द योजना सहित परामर्शात्मक एवं कालत्रयवर्ती साध्य-साधन व्यक्ति विशेष को विषय करने वाला होने से व्याप्ति को ग्रहण करने के प्रति समर्थ है और जिस प्रकार उसका प्रत्यक्ष व्याप्ति पूर्वक नहीं होता वैसे तर्कज्ञान प्रत्यक्ष के समान व्याप्ति के ग्रहणपूर्वक नहीं होता। वह भिन्न अनुमान एवं तर्क की अपेक्षा भी नहीं रखता अतः इसमें अनवस्था का प्रसंग भी उत्पन्न नहीं होता है।

'शब्दयोजनासहितपरामर्शात्मकत्वात्कालत्रयवर्तिसाध्यसाधनव्यक्ति-विषयत्वाच्च व्याप्तिं प्रति समर्थत्वात्।' [21]

इस प्रकार अनेकान्तवादी जैन दर्शन में तर्क नामक प्रमाण से व्याप्ति रूप सम्बन्ध की व्यवस्था बन जाती है, जो परोक्ष प्रमाण का ही भेद है। *परोक्षान्तर्भाविना नस्तर्केण सम्बन्धो व्यवतिष्ठते*।[22]

यदि तर्क को प्रमाण न स्वीकारा जाए तो अनुमान प्रमाण

तर्क की अपेक्षा रखता है क्योंकि तर्क से ही अविनाभाव सम्बन्ध का साकल्य से निर्धारण होता हैं। तर्क के अभाव में अनुमान प्रमाण नहीं हो सकता इसलिए वस्तुबल से तर्क भी प्रमाण है।

सत्यप्यन्वयविज्ञाने स तर्कपरिनिष्ठत:
अविनाभावसम्बन्ध: साकल्येनावधार्यते
सहदृष्टैश्च धर्मैस्तन्न विना तस्य संभव:
इति तर्कमपेक्षेत नियमनैव लैङ्गिकम्
तस्माद् वस्तुबलादेव प्रमाणं मतिपूर्वकम्।।[23]

तर्क की प्रवृत्ति के सम्बन्ध में आचार्य विद्यानन्द कहते हैं कि प्रत्यक्ष एवं अनुपलब्ध से उत्पन्न होने के कारण प्रत्यक्ष की भांति तर्क भी स्वगतयोग्यता से ही अपने विषय में प्रवृत्त होता है। आचार्य विद्यानन्द तर्क को साकल्य से व्याप्तिज्ञान का ग्राहक, कथञ्चित अग्रहीतग्राही तथा अविसंवाद एवं समारोप का व्यवच्छेदक होने से इसे प्रमाण मानते हैं।

'स च साकल्येन साध्येसाधनसम्बन्धस्तर्कादेवेति प्रमाणं तर्क: स्वार्थधिगमफलत्वात् समारोपव्यवच्छेदकत्वात्संवादकत्वाच्चानु-मानादिवत्।।'[24]

संवादक होने से तर्कज्ञान प्रमाण है। तर्क के द्वारा ज्ञात साध्य एवं साधन का व्याप्तिसम्बन्ध अर्थक्रिया में अविसंवादी होता है। समारोप का व्यवच्छेदक होने से भी तर्क का अनुमान प्रमाण की भांति प्रामाण्य सिद्ध है। साध्य एवं साधन के सम्बन्ध में किसी भी प्रमाता को कभी समारोप हो तो उसका तर्क के द्वारा व्यवच्छेद हो जाता है।' *समारोपव्यवच्छेदात्स्वार्थे तर्कस्य मानता*'[25]

निष्कर्ष

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि तर्क के लिए ऊह या ऊहा पद का प्रयोग दर्शन परम्परा में प्राय: देखा जाता है। न्याय दर्शन हो या सांख्य ऊह पद के संकेत से तर्क की चर्चा होती रही है। आचार्य पाणिनि ने भी धातुपाठ के अन्तर्गत ऊह को तर्क का पर्याय कहा है- 'ऊह वितर्के'। जैन दर्शन अथवा जैन-न्याय ने उस मानसिक व्यापार (ऊह) तर्क को ऐसे प्रमाण के रूप में प्रतिष्ठित किया है जिससे ज्ञान होता है। अकलङ्क से पूर्व जैनदर्शन में मतिज्ञान के भेद ईहा के लिए आगमों में ऊहा एवं तर्क शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है, किन्तु आचार्य भट्ट अकलङ्क के द्वारा ऊहा अथवा तर्क को परोक्ष प्रमाण के रूप में प्रतिष्ठित करने के पश्चात् ईहा के लिए ऊह या ऊहा शब्द का प्रयोग समाप्त होने लगा। प्राचीन कोशकारों द्वारा तर्क्धातु को आकांक्षा (ईहा) अर्थ में स्वीकार करना भी इसी ओर इंगित करता है। परवर्ती आचार्य हेमचन्द्र ने दोनों में स्पष्ट भेद को प्रतिपादित करते हुए अपने ग्रन्थ प्रमाणमीमांसा में कहा है कि तर्क परोक्ष प्रमाण का भेद है जो साध्य एवं साधन की त्रैकालिक व्याप्ति का ग्रहण करता है जबकि ईहा ज्ञान वर्तमानकालिक विषयों का ग्रहण करता है तथा ईहा प्रत्यक्ष प्रमाण का भेद है।

सन्दर्भ-

1. तर्क, भासार्थे। चुरादि.
2. भावे। अष्टाध्यायी 3/3/18
3. अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्। अष्टाध्यायी 3/3/19
4. कृती, छेदने। तुदादि.
5. न्यायसूत्र 1/1/1
6. न्यायसूत्र 1/1/40
7. न्यायवार्त्तिक, न्यायसूत्र 1/1/1
8. न्यायमञ्जरी, एकादशमाह्निकम्, तृतीयो भाग:
9. तर्कसंग्रह, अयथार्थानुभव-प्रसङ्ग
10. सांख्यकारिका, 51
11. सांख्यतत्त्वकौमुदी, 51
12. मनुस्मृति, 12/106
13. कठोपनिषद्, 1/2/9
14. तत्त्वार्थसूत्र, 1/13
15. लघीयस्त्रयवृत्ति, अकलङ्कग्रन्थत्रय, पृ.5
16. अष्टसहस्री, भाग 1, पृ.424
17. प्रमाणसंग्रह:, 12
18. प्रमाणपरीक्षा, पृ.44-45
19. अष्टसहस्री, प्रथम परिच्छेद, पृ.423
20. अष्टसहस्री, प्रथम परिच्छेद, पृ.424
21. अष्टसहस्री, प्रथम परिच्छेद, पृ.425
22. अष्टसहस्री, प्रथम परिच्छेद, पृ.424
23. न्यायविनिश्चय, 329-331
24. अष्टसहस्री, प्रथम परिच्छेद, पृ.428
25. तत्त्वार्थश्लोकवार्त्तिक, 1.13.98

ISSN 2278 - 0327

वेदों में आत्मप्रबन्धन की अवधारणा

सोमवीर
शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग
पतंजलि विश्वविद्यालय, हरिद्वार

सारांश

वर्तमान में प्रचलित प्रबन्धन विषयक अवधारणा आर्थिक दृष्टिकोण पर आधारित है, जो कि प्रबन्धन को संकुचित और छोटे दायरे में बाँधती है। प्रबन्धन शब्द में जुड़ा हुआ प्र उपसर्ग बन्धन की प्रकर्षता को सिद्ध करता है। इसके द्वारा जीवन की प्रत्येक क्रिया में बन्धन अर्थात् संयमन को लागू किया जा सकता है। जब यह प्रबन्धन आत्मा के साथ जुड़ता है तो यह आत्मप्रबन्धन बन जाता है। यह आत्मप्रबन्धन मूलत: सृष्टि के आदि से ही भगवती श्रुति की पवित्र परम्परा से संचालित है। प्रस्तुत लेख में वेदमन्त्रों में निहित आत्मप्रबन्धन की अवधारणा को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

विषय प्रवेश

वर्तमान समय की पठन-पाठन व्यवस्था में प्रबन्धन एक प्रचलित पाठ्यक्रम के रूप में सर्वविदित है। इस प्रबन्धन का मूल उत्स कहाँ है इस प्रश्न के समक्ष आते ही समस्त विद्याओं के मूल ग्रन्थ वेदों की ओर कठिनिकाग्र भाव से दृष्टि जाती है। सर्वविद्याओं व सर्वकलाओं का मूलभूत वेद है तो प्रबन्धन कला का मूल भी वेदों में ही होना चाहिए। इस विचार से प्रस्तुत लेख में प्रवृत्ति हुई है। वर्तमान में प्रबन्धन का जो पाठ पढ़ाया जा रहा है उसमें तज्ज्ञ विद्वानों ने प्रबन्धन को एक सांगठनिक व्यवस्था, अनेक दृष्टि वाला ज्ञान, एक विज्ञान, एक कला तथा एक प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत किया है।[1] यद्यपि ये पृथक्-पृथक् मत हैं किन्तु मेरे विचार से इन सभी का एकीकृत रूप प्रबन्धन है। यह प्रक्रिया भी है, विज्ञान भी है, कला भी है और सांगठनिक व्यवस्था भी है। सभी क्रियाएँ प्रबन्धन के अन्तर्गत समाहित हैं।

प्रचलित प्रबन्धन में मुख्य दृष्टिकोण आर्थिक रखा गया है, जिसमें प्रबन्धन के द्वारा उद्योग कम्पनी अथवा समिति में व्यवस्थित रूप से लाभ होता रहे। वस्तुत: यह प्रबन्धन का बहुत ही संकुचित और छोटा अर्थ है। प्रबन्धन शब्द में जुड़ा हुआ प्र उपसर्ग बन्धन की प्रकर्षता को सिद्ध करता है। इसके द्वारा जीवन की प्रत्येक क्रिया में बन्धन अर्थात् संयमन को लागू किया जाता है। जगत् का एक-एक कण, एक-एक परमाणु, एक-एक वृक्ष वनस्पति सब कुछ प्रबन्धन से सिद्ध हुआ है। बरगद के नन्हें से बीज से विशाल वटवृक्ष की उत्पत्ति प्रबन्धन के द्वारा ही सम्भव हो सकी है। एक ही क्यारी में लगाए गये टमाटर, मिर्च, मूली और गाजर एक जैसा पानी और एक जैसा उर्वरक पाकर भी भिन्न-भिन्न प्रकृति वाले हैं, यह प्रबन्धन से ही सिद्ध है। गाय हरी घास खाती है उसी में से उसका खून लाल रंग का और दूध सफेद रंग का बनता है, यह प्रबन्धन से ही सिद्ध हो सकता है। 29.58 किलोमीटर प्रति सेकेंड की गति से भगवान् भास्कर की परिक्रमा करने वाली धरती सदियों से ऐसे ही चल रही है। यह सब बिना प्रबन्धन के होना कैसे सम्भव है? इसलिए प्रबन्धन एक व्यापक क्रिया है जो जगत् की प्राय: प्रत्येक क्रिया में समाहित है। प्रबन्धन के बिना गोल धरती पर ऊपर भरा हुआ पानी धरती के ऊपर नीचे होने पर भी कभी गिरता नहीं, यह प्रबन्धन का ही परिणाम है। जगत् में जितनी भी व्यवस्थाएँ चलायमान हैं जिनके पीछे कार्य करता हुआ कर्त्ता दृष्टिगोचर नहीं होता, वे सब प्रबन्धन के परिणामस्वरूप ही चलायमान है। अत: प्रबन्धन क्रिया सार्वत्रिक, सार्वकालिक, सार्वजनीन तथा सार्वभौम है। इसको इसी रूप में स्वीकार करना चाहिए। केवल अर्थ जगत् से जोड़ने से इसका महत्त्व कम हो जाता है।

यह प्रबन्धन जब आत्मा के साथ जुड़ जाता है तो यह आत्मप्रबन्धन बन जाता है। आत्मप्रबन्धन शब्द आत्मा और प्रबन्धन शब्दों का तृतीया विभक्त्यन्त और सप्तमी विभक्त्यन्त समासों के द्वारा सिद्ध होता है। आत्मना प्रबन्धनम् आत्मप्रबन्धनम्, आत्मनि वा प्रबन्धनम् आत्मप्रबन्धनम् = आत्मा के द्वारा अपने अन्त:करण और बाह्यकरण रूपी दस इन्द्रियों का प्रबन्धन करना अर्थात् संयमन करके अपने कार्य के लिए नियोजित करना तथा उन्हें दुर्गुणों, दुर्व्यसनों से हटाकर सद्गुणों से जोड़ना इस आत्मप्रबन्धन का अर्थ है। सप्तमी विभक्त्यन्त समास में आत्म शब्द का अर्थ

परम आत्मा है। परमात्मा में आत्मा को लगाकर अपने आप पर संयम करके परमसत्ता से संयुक्त होना आत्मप्रबन्धन है।

यह आत्मप्रबन्धन मूलत: सृष्टि के आदि से ही भगवती श्रुति की पवित्र परम्परा से संचालित है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने लिखा है कि वेदों का मुख्य प्रयोजन ईश्वर में ही है तथा सामान्य रूप से वेद जगद्व्यवहार अथवा कर्मकाण्ड को कहते हैं। ईश्वर सभी पदार्थों में प्रधान है अत: वेदों का प्रधान तात्पर्य ईश्वर में ही है।[2] इसलिए आत्मनि प्रबन्धनम् वेद का मुख्य वक्तव्य है और यह प्रबन्धन आत्मा के द्वारा अपने साधनोपसाधनों बुद्धि, मन आदि पर प्रबन्धन करने से होता है। यजुर्वेद में लिखा है कि 'मन और बुद्धि को विपश्चित् ज्ञानस्वरूप, स्तुत्य और महान् सविता देवता में युक्त किया जाता है।'[3] यहीं पर कहा गया है कि 'तत्त्व के लिए मन और बुद्धियों को सविता देवता के साथ युक्त करते हुए अग्नि से ज्योति का चयन करके पृथिवी में धारण करना चाहिए।'[4] इन मन्त्रों से यह सिद्ध होता है कि मन और बुद्धि को ईश्वर के साथ जोड़कर उनको संयमित करके आत्मा को आत्मा में प्रबन्धित करना चाहिए। यजुर्वेद में ही कहा गया है कि अच्छा सारथी 'रथ पर बैठकर घोड़ों को सामने की ओर जहाँ चाहता है वहीं लेकर जाता है।'[5] यह एक रूपक है जिसमें कहा गया है कि हमारा शरीर एक रथ है, इस रथ में आत्मा रथी है, बुद्धि इसका सारथी है। इन्द्रिय रूपी घोड़ों पर मन की लगाम लगाकर अच्छा सारथी उन्हें जहाँ-जहाँ चाहता है वहाँ ले जाता है। किन्तु वही सारथी जब दूषित हो जाता है तब घोड़ें उसको जहाँ चाहते हैं वहाँ लेकर जाते हैं। घोड़े घास ढूँढ़ते हैं अर्थात् इन्द्रियाँ विषयों की ओर प्रवृत्त होती हैं, अगर उन्हें लगाम से न रोका जाए तो वे रथी को गन्तव्य की ओर न ले जाकर अपने विषयों की ओर ले जाती हैं। अत: उनका प्रबन्धन करना अत्यन्त आवश्यक है। प्रबन्धन के ये सूत्र भगवती श्रुति में सृष्टि के आदि से विद्यमान हैं।

ऋग्वेद के एक मन्त्र में कहा गया है कि 'वह परमात्मा जड़ और जङ्गम सभी का ईशान अर्थात् शासन करने वाला है। बुद्धिपूर्वक कृत्य करके ही उसका सेवन किया जा सकता है। दु:खों से त्राण के लिए हम उसे ही पुकारते हैं, जिससे कि वह पोषणकर्त्ता प्रभु हमारे धर्मादि ऐश्वर्य की वृद्धि के लिए होवे। वह रक्षा करने वाला प्रभु हमारे लिए निर्बाध रूप से कल्याण की प्राप्ति कराये।'[6] यहीं पर एक अन्य मन्त्र में इन्द्रियों के संयम के विषय में वर्णित है कि- हम कानों से भद्र वचन ही सुनें हम याजक बनें और आँखों से भद्र ही देखें। अपने दृढ़ अङ्गों के साथ सन्तुष्ट रहते हुए और उस प्रभु की स्तुति करते हुए अपने शरीरों से जो भी आयु प्राप्त करें वह देवहित में समर्पित हो जाए।[7] ऋग्वेद के एक अन्य मन्त्र में कहा गया है कि अग्नि स्वरूप परमेश्वर यदि मैं तुम हो जाऊँ और तुम मैं हो जाओ तो आपके आशीर्वाद पूर्ण हो जाए।[8] इस मन्त्र में जीव और ईश्वर की एकरूपता का वर्णन किया गया है। जब जीवात्मा उस प्रभु की आज्ञा में समर्पित हो जाता है तब जैसे प्रभु आनन्द स्वरूप है वैसे यह जीव भी ईश्वर के आनन्द स्वरूप में मग्न हो जाता है। आत्मा में प्रबन्धन का इससे उत्तम उदाहरण और कोई नहीं हो सकता।

यजुर्वेद में कहा गया है कि- हे मनुष्य तू उसी को नहीं जानता जिसने इस सारे जगत् को उत्पन्न किया है। तुम्हारे अन्तर्मन में कुछ ओर ही हो गया है। तुम अज्ञान से प्रावृत हो, जल्पी (गप्पी) हो, अपने प्राणों की तृप्ति में ही दिन रात लगे रहते हो और व्यर्थ चीजों की प्रशंसा करते रहते हो।[9] जो व्यक्ति अविद्यान्धकार से घिरा हुआ है, जो अपनी ही प्रशंसा करता है वह अपने मार्ग से च्युत हो जाता है। जीवन के लक्ष्य से भटककर वह दर-दर ठोकरें खाता हुआ जगज्जाल में ही फंसा रहता है। अत: इन चारों दोषों को आत्मप्रबन्धन द्वारा दूर करने का प्रयत्न व्यक्ति को सदैव करते रहना चाहिए। ये चार दोष देखने में साधारण लगते हैं किन्तु वास्तव में व्यक्ति को पतन के गर्त में ले जाने वाले होते हैं। अविद्या सारे दु:खों का मूल है, आत्मप्रबन्धन के द्वारा इस पिशाची अविद्या का नाश करके अहंमन्यता और अहंकार का त्याग करें। केवल प्राणों का ही पोषण न करें बल्कि आत्माहारभूत तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान को जीवन में धारण कर प्रशंसनीय परमात्मा का ही गुण गाता हुआ उसी में अपने आप का प्रबन्धन करे। इसके अतिरिक्त कल्याण का कोई मार्ग नहीं है।

अथर्ववेद के एक मन्त्र में मन के प्रबन्धन को सूचित करते हुए कहा है- 'प्रचेता व्यक्ति को सदैव कहना चाहिए कि ऐ मेरे मन के पाप तू यहाँ से भाग जा, क्यों व्यर्थ की चीजों की प्रशंसा करता है। तू यहाँ से जा मैं तुझे नहीं चाहता। वृक्षों में जा, वनों में जा, गायों में जा परन्तु मेरे पास पाप की भावना लेकर मत आ।'[10]

अथर्ववेद के ही एक पूरे सूक्त में जहाँ देवता के रूप में मन आदि को प्रस्तुत किया गया है वहाँ आत्मा के द्वारा सम्पूर्ण तन्त्र को ही प्रबन्धित करने का बहुत मनोरम वर्णन है। मन, चित्त, बुद्धि, चित्ति = प्रज्ञान, मति, श्रुत और सुन्दर दृष्टि के लिए हम सकल उत्तम सामग्री से परमात्मा का स्मरण करें। अपान, व्यान और भूरि धारणशील प्राण और बुद्धि के लिए हम सकल उत्तम सामग्री से प्रभु का यजन करें।[11] उक्त दोनों मन्त्रों में मन, बुद्धि तथा प्राण आदि के प्रबन्धन के लिए परमेश्वर की उपासना की

प्रेरणा है। अपने इस तन्त्र को आत्मप्रबन्धन के माध्यम से संयमित करके ईश्वरार्पित कर देना यह आत्मप्रबन्धन का उच्चतम शिखर है। ये मन्त्र उपलक्षण मात्र हैं ऐसे अनेक मन्त्र चारों वेद संहिताओं में यत्र तत्र सर्वत्र सुशोभित हैं, जो मानव जीवन की सफलता के निर्देशक और प्रेरक हैं।

यजुर्वेद का शिवसंकल्प सूक्त सुन्दर उपमा के साथ मन की प्रशंसा तथा स्तुति करते हुए इन्द्रियों और मन के प्रबन्धन का सुन्दर विवेचन प्रस्तुत करता है। वहाँ कहा गया है कि- जो मन जागते समय दूर-दूर तक जाता है वही मन सोते समय उसी प्रकार ही गति करता है। विषयों की प्रकाशक इन्द्रियों का एकमात्र प्रकाश वह मेरा मन शिवसंकल्प वाला होवे।[12] जैसे गीता अथवा अन्य ग्रन्थों में लिखा हुआ कि- मन अत्यन्त चंचल है, प्रमाथी है, बलवान् है इसको रोकना वायु के समान दुष्कर है[13] उस प्रकार से वेद में नहीं है। वेद ने मन के ऊपर दोषारोपण नहीं किया है बल्कि उसकी प्रशंसा की है तथा उसके लिए प्रार्थना की है। क्योंकि मन में संकल्प के साथ विकल्प भी आ सकते हैं इसलिए उसमें शिवसंकल्प के लिए प्रार्थना की गई है। मन शिवसंकल्प वाला हो तो कल्याणकारी है। यही अशिवसंकल्प वाला हो जाए तो विनाशकारी भी है। अत: आत्मप्रबन्धन के माध्यम से इसका सदुपयोग करते हुए लक्ष्य की प्राप्ति करनी चाहिए। इस सूक्त में कहा है कि- जो मन के ऊपर नियन्त्रण करने वाले मनीषी लोग हैं वे इसी मन से यज्ञीय कर्मों को भी सम्पन्न करते हैं। यह मन अपूर्व है, सारी प्रजाओं के अन्त: में विद्यमान है, यह पूजनीय है, ऐसा मन शिवसंकल्प वाला होवे।[14]

शिवसंकल्प सूक्त के तृतीय मन्त्र में मन के अलग-अलग स्तर बताये गये हैं। इसमें मन को प्रज्ञान, चेत, धृति, ज्योति, अमृत और प्रजाओं के मध्य में विद्यमान कहा गया है। एक दार्शनिक पक्ष भी इस मन्त्र में प्रस्तुत है कि जब तक इन्द्रियों के साथ मन संयुक्त नहीं होता तब तक इन्द्रियाँ सर्वथा अकिंचित्कर ही होती हैं। मन्त्र में कहा है कि जिसके बिना कुछ भी कार्य नहीं किया जाता है वह मेरा मन शिवसंकल्प वाला होवे।[15] मन की शक्ति और सामर्थ्य बताते हुए यहाँ वर्णन है कि जैसे रथ की नाभि में अरे जुड़े रहते हैं उसी प्रकार से इस मन में ऋक् लक्षण वाले, यजु: लक्षण वाले और सामलक्षण वाले चारों वेदों के मन्त्र प्रतिष्ठित हैं। जिस मन में सारी प्रजाओं का चित्त ओत हैं वह मेरा मन शिवसंकल्प वाला होवे।[16] आज का विज्ञान सन्देश के संग्रह के लिए KB, MB, GB, TB आदि माप का निर्माण कर चुका है। इन सभी की मिलाकर जितनी शक्ति है उससे भी कहीं ज्यादा शक्ति हमारे इस सूक्ष्म मन में है। वह मेरा मन जो जन्म-जन्मान्तरों के संस्कारों का भार उठाये हुए हैं वह सदैव शिवसंकल्प वाला ही होवे।

पहले लिखे जा चुके के समान यहाँ भी रथी और रथ का रूपक प्रस्तुत किया गया है। यहाँ कहा गया है कि- जैसे उत्तम सारथी घोड़ों को लगाम के द्वारा श्रेष्ठ पथ पर ले जाता है उसी प्रकार मन इन्द्रिय रूपी घोड़ों पर लगाम लगाकर उन्हें उत्तम रास्तों पर ले जाता है। यदि सारथी ठीक नहीं होता तो घोड़े भी सही रास्ते पर नहीं चलते हैं। यह मन हृदय में प्रतिष्ठित है निरन्तर वेगवान् है ऐसा मेरा मन शिवसंकल्प वाला होवे।[17]

प्रस्तुत प्रमाणों के आधार पर नि:संकोच कह सकते हैं कि वेदों में आत्मप्रबन्धन के श्रेष्ठतम मार्ग दर्शाये गये हैं। जीवात्मा के जितने भी कार्यकारी तन्त्र हैं सभी के पृथक्-पृथक् प्रबन्धन का वर्णन यहाँ है। यह भी तथ्य है कि जिस जीवन में आत्मप्रबन्धन नहीं होता वह जीवन-जीवन भी नहीं होता। जीवन से जीवन-धन की प्राप्ति हो जाए तो जीवन धन्य हो जाए। इसके लिए परम आत्मा में जीवात्मा का प्रबन्धन परमावश्यक है। जिसको मनोरम ढंग से वेद के मन्त्रों में प्रस्तुत किया गया है।

सन्दर्भ सूची-

1. प्रबन्ध अवधारणाएँ एवं संगठनात्मक व्यवहार, आर.सी. अग्रवाल, पृष्ठ सं. 11-13
2. तत्रापीश्वरानुभवो मुख्योऽस्ति। अत्रैव सर्वेषां वेदानां तात्पर्यमस्तीश्वरस्य खलु सर्वेभ्य: पदार्थेभ्य: प्रधानत्वात्। ऋग्वेदादि, भाष्य भूमिका, वेदविषय विवेचन
3. युञ्जते मनऽउत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चित:। वि होत्रा दधे वयुनाविदेकऽइन्मही देवस्य सवितु: परिष्टुति:।। यजुर्वेद, 11/4
4. युञ्जान: प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धिय:। अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्याऽअध्याभरत्।। यजुर्वेद, 11/1
5. रथे तिष्ठन्नयति वाजिन: पुरो यत्र-यत्र कायमते सुषारथि:। अभीशूनां महिमानं पनायत मन: पश्चादनु यच्छन्ति रश्मय:।। यजुर्वेद, 29/43
6. तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियंजिन्वमवसे हूमहे वयम्। पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्ध: स्वस्तये।। ऋग्वेद, 1/89/5
7. भद्रं कर्णेभि: शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्रा:। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायु:।। ऋग्वेद, 1/89/8
8. यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं वा घा स्या अहम्। स्युष्टे सत्या इहाशिष:।।

ऋग्वेद, 8/44/23

9. न तं विदाथ यऽइमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृपऽउक्थशासश्चरन्ति।।
यजुर्वेद, 7/31

10. परोपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि।
परेहि न त्वा कामये वृक्षां वनानि सं चर गृहेषु गोषु मे मनः।
अथर्ववेद, 6/45/1

11. मनसि चेतसे धिय आकूतय उत चित्तये।
मत्यै श्रुताय चक्षसे विधेम हविषा वयम्।।
अपानाय व्यानाय प्राणाय भूरिधायसे।
सरस्वत्या उरुव्यचे विधेम हविषा वयम्।।
अथर्ववेद, 6/41/1-2

12. यज्जाग्रतो दूरमुदैति तदु सुप्तस्य तथैवेति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।
यजुर्वेद, 34/1

13. चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।।
श्रीमद्भगवद्गीता, 6/34

14. येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्त प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।
यजुर्वेद, 34/2

15. यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।
यजुर्वेद, 34/3

16. यस्मिन्नृचः साम यजूँषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।
यजुर्वेद, 34/5

17. सुसारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।
यजुर्वेद, 34/6

ISSN 2278 - 0327

आयुर्वेद में मर्म-विज्ञान की उपादेयता

पूजा कुमारी
शोधच्छात्रा (PH.D.) SSIS, (JNU)
जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-110067

भारतीय ज्ञान परम्परा में वेद एक ऐसा अपौरुषेय ज्ञान का सागर है जो आदि से अब तक चला आ रहा है। प्राचीन ऋषियों के चिन्तन मनन के पश्चात् वेद रूपी अमृतत्व की प्राप्ति हुई, जिसे चार संहिताओं में विभजित किया गया:- ऋक्, यजु:, साम और अथर्व।

अथर्ववेद के अन्तर्गत तन्त्र विद्या के साथ-साथ आयुर्वेदीय व्याधि चिकित्सा पद्धति का वर्णन भी परिलक्षित होता है। '*आयुषो वेद: आयुर्वेद:*' अर्थात् आयु सम्बन्धी वेद को आयुर्वेद कहते है, कहा भी गया है '*आयुरस्मिन्विद्यते अनेन वाऽआयुर्विन्द्यत्यायुर्वेद:*'[1] अर्थात् आयुर्वेद (आयु: + वेद = आयुर्वेद) का अर्थ है जीवन से सम्बन्धित ज्ञान तथा दीर्घायु की चर्चा जिस शास्त्र में हो वह आयुर्वेद है। आयुर्वेद में वर्णित है-

हिताहितं सुखं दु:खमायुस्तस्य हिताहितम्।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुवेद: स उच्यते॥ [2]

अर्थात् हितायु-अहितायु, सुखायु-दु:खायु, आयु का मान एवं उनके लक्षणों का वर्णन जिस शास्त्र में होता है उसे आयुर्वेद कहते हैं। आयुर्वेदीय ग्रन्थकार आचार्य सुश्रुत प्राचीन भारत के महान चिकित्साशास्त्री एवं शल्यचिकित्सक थे। इनको शल्यचिकित्सा का जनक भी कहा जाता है। उन्होनें आयुर्वेदीय ग्रन्थ 'सुश्रुतसंहिता' की रचना की। सुश्रुत संहिता को भारतीय चिकित्सा पद्धति में विशेष स्थान प्राप्त है। इसमें शल्यचिकित्सा पद्धति का विस्तृत रूप से वर्णन है। इसके साथ ही सुश्रुत संहिता में मर्मचिकित्सा पद्धति का सूक्ष्म रूप से वर्णन है जिसकी स्वास्थ्य रक्षण में विशेष उपादेयता है।

वेद प्राचीन काल से ही मानव सभ्यता के प्रकाश स्तम्भ रहे हैं। वेद की परम्परा में रूद्र को प्रथम वैद्य स्वीकार किया गया है। यजुर्वेद में कहा गया है-'प्रथमो दैव्यो भिषक्'[3] तथा इसी प्रकार ऋग्वेद में भी वर्णित है कि '*भिषक्तमं त्वां भिषजा शृणोमि*'[4] और आयुर्वेद ग्रन्थों की परम्परा में ब्रह्मा को आयुर्वेद का प्रथम उपदेशककर्त्ता कहा गया है। अथर्ववेद ही आयुर्वेद का मूल आधार है, इसका आयुर्वैदिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें आयुर्वेद के सभी अङ्गों एवं उपाङ्गों का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। अथर्ववेद में आयुर्वेद से सम्बन्धित विषय उपलब्ध हैं- वैद्य के गुण, कर्म, भिषज, भैषज्य, दीर्घायुष्य, प्राण-चिकित्सा, शल्य-चिकित्सा, रोगनाशक, विभिन्न मणियां, जल-चिकित्सा, सूर्य-चिकित्सा तथा विविध औषधियों के नाम, गुण तथा कर्म आदि प्राप्त होते है।[5] अथर्ववेद में आयुर्वैदिक मर्म चिकित्सा पद्धति का वर्णन प्राप्त होता है।

आथर्वणीराङरसी देवी मनुष्यजा उता।
औषधय: प्रजायन्ते यदा त्वं प्राणं जिन्वसि॥ [6]

आयुर्वेद में मर्मचिकित्सा को चार भागों में विभक्त किया गया है-आथर्वणी, आङ्गिरसी, दैवी तथा मनुष्यजा। वैदिक आयुर्वैदिक पद्धति के अनुसार मनुष्य को ब्रह्म मुहुर्त में उठकर सिद्धासन में बैठकर, मूलाधार बन्ध लगाकर किञ्चित् समय तक मृत्युञ्जय प्राणायाम करने से शरीर के मर्म स्थानों में नवीनतम ऊर्जा का संचार होता है।

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्,
उर्वारुकमिव बन्धनात् मृत्योर्मुक्षीयमामृतात्। [7]

स्वास्थ्य रक्षण :- आयुर्वेदीय शास्त्रों में स्वास्थ्य रक्षण के लिये स्वास्थ्य व्रत का वर्णन किया गया है जिसको धारण करके मनुष्य उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति कर सकता है और व्याधियों से निजात पा सकता है। W.H.O. के अनुसार एक स्वस्थ मनुष्य को परिभाषित करते हुए कहा गया है- जो मनुष्य मानसिक, शारीरिक और सामाजिक रूप से पूर्णत: स्वस्थ होता है। आयुर्वेद में आचार्य सुश्रुत ने पूर्ण स्वास्थ्य के लक्षणों को परिभाषित किया है-

समदोष: समाग्निश्च समधातुमलक्रिया।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमना:स्वस्थ इत्यभिधीयते॥[8]

अर्थात् स्वस्थ पुरुष वह है जिसके तीनों दोष (वात, पित्त, कफ) सम हों, जिसकी धातुएँ, अग्नि, व्यापार सम हो तथा मल (स्वेद, मूत्र, पुरीष) का उचित मात्रा व समय से निष्कासन हो और मन, इन्द्रियां प्रसन्न हों तो आत्मा स्वत: ही प्रसन्न रहेगी।

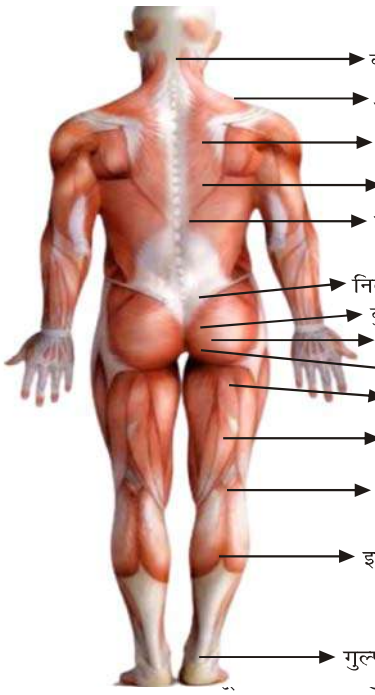
अच्छे स्वास्थ्य की कल्पना ही समग्र स्वास्थ्य है, जिसके

अन्तर्गत शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक तथा सामाजिक स्वास्थ्य आदि को सम्मिलित किया गया है। समग्र स्वास्थ्य रक्षण के लिये मनुष्य को अपनी दिनचर्या, रात्रिचर्या तथा ऋतुचर्या को समुचित रूप से नियमित रखना आवश्यक है क्योंकि मनुष्य का शरीर वातावरण के अनुसार परिवर्तित होता रहता है।

ब्राह्मो मुहुर्त उत्तिष्ठेत् स्वस्थो रक्षार्थमायुष:। [9]

स्वस्थ (नीरोग) स्त्री-पुरुष को अपनी आयु (सुखायु -हितायु) की रक्षा करने के लिये प्रात: काल ब्रह्म मुहूर्त में उठकर धर्म और अर्थ का चिन्तन करना चाहिये तथा शरीर के रोग और उनके कारणों पर विचार करना चाहिये। दिनचर्या के साथ ही स्वस्थ मनुष्य को दिन की मध्यचर्या, सन्ध्याचर्या और रात्रिचर्या का नियमित रूप से पालन करना चाहिये। आयुर्वेद में आचार्यों नें आहार, निद्रा एवं ब्रह्मचर्य तीन स्तम्भों को रात्रिचर्या में समाहित किया है। स्वस्थ मनुष्य को दिनचर्या और रात्रिचर्या के साथ ही षड् ऋतुओं के अनुकूल आहार-विहार का सेवन करना चाहिये। जो मनुष्य दिनचर्या, रात्रिचर्या और ऋतुचर्या का नियमित रूप से पालन नहीं करता, वह मनुष्य शारीरिक-मानसिक रोगों से ग्रस्त हो जाता है।

मर्मपरिचय:-



में मर्म चिकित्सा संवेदनशील मानवीय
ति ही मर्म चिकित्सा का उद्देश्य मर्म
गिक ज्ञान के द्वारा सभी को प्रशिक्षित
ज्ञान आयुर्वेद के चिकित्सकों के
सिक उपचार की विधि के रूप में
यूनानी, होम्योपैथी, सिद्ध, योग,
न्य पम्परागत चिकित्सा पद्धतियों
ना से बहुत अधिक लाभान्वित हो
मर्म चिकित्सा के माध्यम से स्वस्थ
संकल्प को पूर्ण किया जा सकता
स्य स्वास्थ्यरक्षणम्' के उद्देश्य की
कित्सा तुरन्त कार्यकारी एवं सद्य:
छ ही समय में ठीक कर देती है। इस
-प्रसार के साथ दक्षिणी-पूर्वी एशिया
पर, एक्युपंचर आदि अनेक विधाओं
का विकास हुआ।

मर्म का शाब्दिक अर्थ स्वरूप, तत्त्व, सार, सन्धि स्थान एवं जीवस्थान से है। आयुर्वेद मे मर्मों का सामान्य लक्षण 'मरण कारित्वान्मर्म' अर्थात् मृत्यु का कारण होने से इन्हें मर्म कहते हैं। 'मारयन्तीति मर्माणि'[10] अर्थात् शरीर के वे विशिष्ट भाग जिन पर आघात करने अथवा चोट लगने से मृत्यु सम्भव है उन्हें मर्म कहते हैं। इन स्थानों पर आघात होने से जीव की तुरन्त मृत्यु होने से इन भागों को Vital parts भी कहते हैं। यथोक्तम्-

सन्निपात: सिरास्नायु सन्धिमांसास्थिसम्भव:।
मर्माणि तेषु तिष्ठन्ति प्राणा: खलु विशेषत:॥ [11]

मर्मभेद

महर्षि सुश्रुत के अनुसार सुश्रुत संहिता में मर्म के भेद हैं:- *सप्तोत्तरं मर्मशतम्। तानि मर्माणि पञ्चारमकाणि भवन्ति। तद्यथा - मांसमर्माणि, सिरामर्माणि, स्नायुमर्माणि, अस्थिर्माणि सन्धिमर्माणि चेति। न खलु मांस-सिरास्नाय्वस्थि-सन्धिप्यतिरेकाणान्यानि मर्माणि भवन्ति, यस्मात्नोपलभ्यन्ते।* [12]

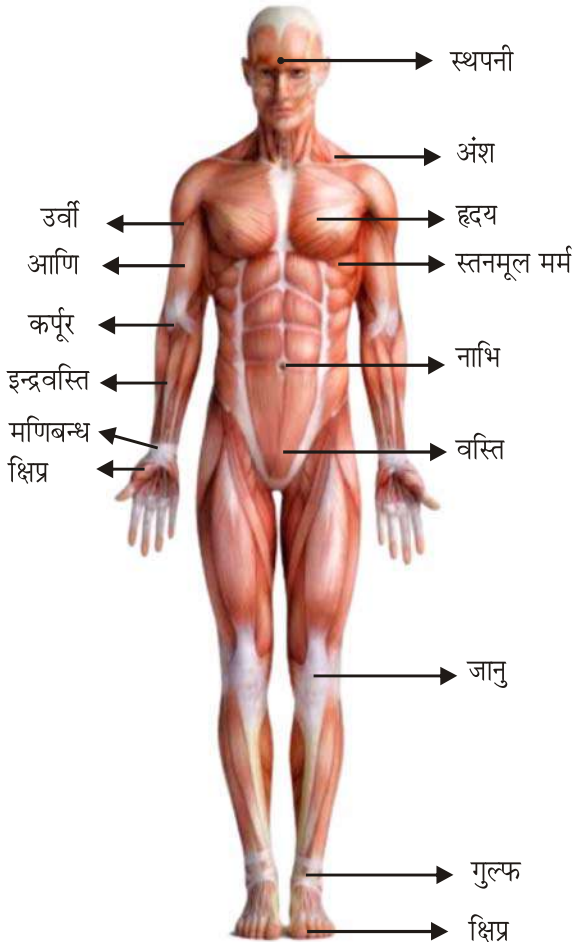
मनुष्य के शरीर में 107 मर्म स्थान, 700 सिरायें, 300 अस्थियां, 400 स्नायु, 500 मांसपेशियां और 210 सन्धियाँ होती हैं। मर्म के भेदों का वर्गीकरण-

- भौतिक गुणों के आधार पर मर्म के प्रकार-
  1.आग्नेय 2.वायव्य 3.सौम्य 4.सौम्याग्नेय
- धातु भेद के आधार पर मर्म के प्रकार-

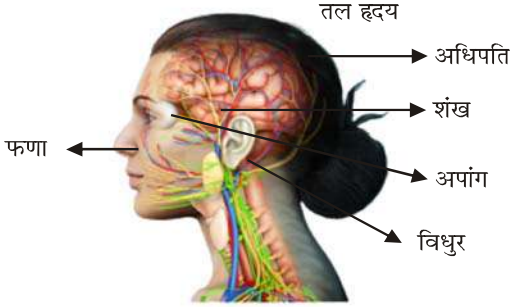
1.माँस मर्म 2.सिरा मर्म 3.स्नायु मर्म 4.अस्थि मर्म 5.सन्धि मर्म

- प्रभाव के आधार पर मर्म के प्रकार-

1.सद्य: प्राणहर 2.विशल्यहन 3.वैकल्यकर 4.रुजाकर







मर्म विज्ञान की उपादेयता

आयुर्वेद में मर्म चिकित्सकों के अनुसार शल्यकर्ता को शल्य कर्म मर्मों को बचाकर करना चाहिये क्योंकि शरीर में मर्म स्थानों पर अभिघात होने पर मृत्यु होने की सम्भावना होती है। अत: मर्मों पर आघात होने से प्राणी को अत्यधिक पीड़ा होती है यथा–

छेदभेदाभिघातेभ्यो दहनाद्दारणादपि।
उपघातं विजानीयान्मर्मणा तुल्यलक्षणम्॥[13]

मर्मों के समीप छेदन, भेदन, चोट लगने, जलने, फटने या दारण होने पर उससे उत्पन्न लक्षण मर्मोपघात सदृश होता है। श्रृंगाटक, अधिपति, शंख, कण्ठशिरा, गुदा, हृदय, वस्ति तथा नाभि ये मुख्यत: सद्य: प्राणहर मर्म हैं जिन पर आघात होते ही तुरन्त मृत्यु होती है।

प्रयोजनं चास्य स्वस्थ्यस्य स्वास्थ्यरक्षणस्यातुरस्य विकारं प्रशमनं च।[14]

आयुर्वेद का मुख्य प्रयोजन व्याधि से पीड़ित मनुष्य को व्याधि से मुक्त करना और स्वस्थ मनुष्य के स्वास्थ्य की रक्षा करना। मर्म चिकित्सा को नियमित रूप से करने से हृदय की कार्य क्षमता बढ जाती है। जिससे अधिक मात्रा में हृदय से रक्त सम्पूर्ण शरीर में नियमित रूप से प्रवाहित होता है और रक्त में प्राण वायु में वृद्धि होती है। शरीर में रक्त कोशिकाओं के बढ़ने से रक्त की प्राणवायु वहन करने की क्षमता अधिक हो जाती है। मर्म चिकित्सा से रक्त में कोलेस्ट्राल की मात्रा कम होने लगती है तथा दिल का दौरा पड़ने की सम्भावना लगभग नगण्य हो जाती है। इसके साथ ही रक्तचाप की गति शरीर मे नियमित रूप से बनी रहती है और मधुमेह एवं पैरलाइज जैसी व्याधियों से मुक्ति पाई जा सकती है।

गर्भावस्था में मर्म की उपादेयता

मर्म चिकित्सा गर्भावस्था में माता और गर्भस्थ शिशु के लिए मर्मों को उपचारित करना अत्यन्त लाभदायक है। जिससे गर्भस्थ शिशु को विभिन्न प्रकार की जन्मजात विकृतियों को उत्पन्न होने से रोका जा सकता है।

दोषाभिघातैर्गर्भिण्या यो यो भाग: प्रपीड्यते।
स स भाग: शिशोस्तस्य गर्भस्थस्य प्रपीड्यते॥[15]

रोग निवृत्ति मे मर्म चिकित्सा

रोग निवृत्ति के लिये प्रत्येक व्यक्ति को मर्म विज्ञान विशेषज्ञ के निर्देशन में मर्म विज्ञान का सांगोपांग प्रायोगिक ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। अत्यधिक रोगावस्था में मर्म चिकित्सा को प्रभावित अंग से सुदूरवर्ती मर्म स्थानों से प्रारम्भ करना चाहिये उसके पश्चात् प्रभावित अंग की चिकित्सा करनी चाहिये।

निष्कर्ष– विश्व की सबसे प्राचीन रोग प्रतिरक्षण, रोग निवारण

की पद्धति आयुर्वेद की मर्म चिकित्सा पद्धति है। मर्म चिकित्सा का ज्ञान प्रत्येक व्यक्ति को होना चाहिये क्योंकि मर्म स्थानों का ज्ञान होने पर ही हम स्वयं को तथा अपने सम्पर्क में आने वाले मनुष्यों को अनेक प्रकार की व्याधियों से बचाया जा सकता है। मनुष्य के शरीर में स्थित रोग निवारण क्षमता को पहचान कर उसे मर्म चिकित्सा द्वारा उपचारित करके स्वास्थ्य रक्षण करना है। वर्तमान समय में वैदिक अथवा आर्युवेदिक चिकित्सा पद्धति की अपेक्षा आधुनिक चिकित्सा (एलोपैथी) को अधिक महत्व दिया जाता है अत: प्राचीन चिकित्सा पद्धति की प्रायोगिकता एवं महत्ता को प्रकाश में लाना तथा इसकी उपादेयता को बनाये रखना।

सन्दर्भ सूची -

1. सुश्रुत सं. 1/14
2. चरक सं. 1/41
3. यजुर्वेद 21/14/15
4. ऋग्वेद 2/33/13
5. वेदामृतभाग 11, अथर्ववेद सुभाषितावली 229
6. अथर्ववेद 11/4/16
7. यजुर्वेद 3/60, ऋक्-7/59/12
8. सुश्रुत सं. 15/41
9. च.सू. 5,7,8
10. सु.चि. 24
11. अ.सु. 1
12. सु.सं. 6/6
13. सु.सं. 6/41
14. चरक सं 1/12
15. सु.सं. 3/19

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- अथर्ववेद संहिता, सं0-पं0 श्री राम शर्मा आचार्य, ब्रह्मवर्चस्, शान्तिकुन्ज, हरिद्वार, 2002
- अष्टांगहृदयम्, वाग्भट्ट 'विद्योतिनी' भाषाटीका परिशिष्टसहित, कविराज अत्रिदेव गुप्ता, चौखम्बा प्रकाशन, 1996
- आचार्य बालकृष्ण, आयुर्वेद सिद्धान्त रहस्य, दिव्य प्रकाशन, उत्तराखण्ड, 2007
- उपाध्याय, गोविन्द प्रसाद, आयुर्वेद में रोगी-रोग परीक्षा पद्धति, चौखम्बा आयुर्विज्ञान ग्रन्थमाला, वाराणसी,2007
- चरकसंहिता, श्रीमदग्निवेशेन प्रणीता चरकदृढाभ्यां प्रतिसंस्कृता सविमर्शविद्योदिनी हिन्दीव्याख्योपेता, पं.काशीनाथ पाण्डेय, डॉ. गोरखनाथ चतुर्वेदी, चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी, 2001
- द्विवेदी, कपिलदेव, वेदों में आयुर्वेद, विश्व भारती अनुसन्धान परिषद्, ज्ञानपुर, 2001
- द्विवेदी, लक्ष्मीधर, आयुर्वेद के मूल सिद्धान्त एवं उनकी उपादेयता, कालिदास अकादमी, वाराणसी, 1991
- पाण्डेय, त्रिलोकी नाथ, मन के रोग एवं उनकी आयुर्वैदिक चिकित्सा, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2003
- मिश्र, श्रीगुलराजशर्मा, आयुर्वेद-प्रकाश, चौखम्बा अकादमी, वाराणसी
- मिश्रा, डॉ. सन्तोष कुमार, मानसिक स्वास्थ्य परिचर्चा, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, 2010
- वैदिक साहित्य में शल्य चिकित्सा: एक अध्ययन, डॉ. रामजीत विश्वकर्मा, राहुल प्रकाशन, वाराणसी, 1986
- शर्मा, प्रियव्रत, आयुर्वेद का इतिहास, चौखम्बा ओरियन्टालिया, द्वितीय संस्करण, वाराणसी, 1981
- शिवमुनि, निरोग होने का अद्भुत उपाय, अखिल भूमण्डलीय सर्वशिरोमणि मुनिसमाज, गोरखपुर, 2000
- सुश्रुतसंहिता, आयुर्वेदतत्त्वसंदीपिका हिन्दीव्याख्या, प्रथम भाग, डॉ. अम्बिकादत्तशास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी,2002
- सुश्रुतसंहिता, सुश्रुतविमर्शिनी-हिन्दीव्याख्या समन्वित; डॉ. अनन्तराम शर्मा,चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी,2002

कोश ग्रन्थ एवं विश्वकोश

- Ayurvedic Dictionary, A.P. singh,1st Edition 2006
- Encyclopedia of Ayurvedic formulation, compiled by vaidya Nagin Das, chagan Lal shah, B.jai publication, pvt. Ltd, New Delhi.
- Encyclopedia of Indian philosophy, vol. I-II, Karl H.Potter, Motilal Banarasidass, Delhi,1995
- Oxford English-Hindi Dictionary,Oxford University press, London, 2007
- Sanskrit-English Dictionary, Monier Williams, Motilal Banarasidass publishers, Delhi, 1993
- The Ayurveda Encyclopedia; Natural secrets to healing, Prevention & longevity, Swami Sada Shiva Tirtha, Ayurveda Holistic Centre press.

- Ayurvedic Dictionary, A.P. singh,1st Edition 2006
- Encyclopedia of Ayurvedic formulation, compiled by vaidya Nagin Das, chagan Lal shah, B.jai publication, pvt. Ltd, New Delhi.
- Encyclopedia of Indian philosophy, vol. I-II, Karl H.Potter, Motilal Banarasidass, Delhi,1995
- Oxford English-Hindi Dictionary,Oxford University press, London, 2007
- Sanskrit-English Dictionary, Monier Williams, Motilal Banarasidass publishers, Delhi, 1993
- The Ayurveda Encyclopedia; Natural secrets to healing, Prevention & longevity, Swami Sada Shiva Tirtha, Ayurveda Holistic Centre press.

- संस्कृत हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनरसीदास, दिल्ली, 1989, पुनर्मुद्रण

अन्तर्जालीय स्रोत

- https://shodhganga.inflibnet.ac.in/
- https://www.mohfw.gov.in/

ISSN 2278 - 0327

यूनानी दर्शन में ईश्वर की अवधारणा

डॉ. श्री भगवान
सहायक प्रोफेसर, संस्कृत, पालि एवं प्राकृत विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

1. सुकरात (Socrates 470-399 ई.पू.)

यूनान के महान दार्शनिक सुकरात का जन्म 470 ई. पूर्व में एथेन्स के एक निर्धन परिवार में हुआ।[1] सुकरात ने कोई व्यवस्थित दर्शन नहीं दिया और उनके विचारों के सम्बन्ध में जो कुछ जानकारी है, वह जेनोफ्रफन की पुस्तक 'मेमोरेवीलिया' और प्लेटो के 'डाइलॉगस' से प्राप्त हुई है। प्लेटो और जेनोफ्रफन दोनों सुकरात के शिष्य थे।[2]

सुकरात का दर्शन मानव केन्द्रित था। उनका विश्वास था कि विवेक जगत् की समस्त वस्तुओं में निहित प्रयोजन व क्रम को समझने में सक्षम है, इसलिए वह ज्ञान एवं शुभ में अन्तर नहीं मानते हैं। उनके अनुसार ज्ञान ही शिव है और अज्ञान ही अशिव या पाप है। सम्भवत: सुकरात ने प्रथम बार नैतिकता को निरपेक्ष व आकारगत माना और उसे धर्म के आवरण से बाहर निकालकर पूर्णरूप से प्रज्ञान का विषय बनाया।[3]

सुकरात की द्वन्द्वात्मक पद्धति - सुकरात ने दर्शन की पद्धति 'द्वन्द्वात्मक तर्क (Dialectial Reasoning) की है। यह प्रश्नोत्तर की पद्धति है। वे वाद-विाद के अत्यन्त प्रेमी थे। उनका यह वाद-विवाद शुष्क या व्यर्थ का वाद-विवाद नहीं था बल्कि वाद-विवाद तत्त्वबोध के लिए था। यह पद्धति मुख्यत: निषेधात्मक है क्योंकि इसके द्वारा अन्धविश्वासों और अनुपयुक्त मान्यताओं का खण्डन किया जाता है।[4]

सुकरात की यह संदेहात्मक पद्धति सोफ्रिफस्टों की संशयात्मक पद्धति से भिन्न है क्योंकि सोफ्रिफस्टो का संशय स्थाई था जबकि सुकरात का सन्देह अस्थायी। वह ज्ञान प्राप्ति की प्रक्रिया में प्रारम्भिक चरण मात्रा है।[5]

सुकरात के दार्शनिक सम्प्रदाय

1. सिनिक्स सम्प्रदाय (Cynic School)- इस सम्प्रदाय में विश्व नागरिकता का प्रतिपादन किया। मनुष्य एक ग्राम, राज्य या राष्ट्र का नागरिक होकर समस्त विश्व का नागरिक है।

2. सैरेनेक्स सम्प्रदाय (Cyrenaic School)- इस सम्प्रदाय में सुखवाद - सुख ही मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य है; चार्वाक दर्शन के अनुरूप।

3. मेगारी सम्प्रदाय (Megarian School)- 'सत् ही शुभ है।' ईश्वर, सृष्टिकर्त्ता, शिव, शुभ, सत् आदि एक ही सत्ता के विविध नाम है। यह जगत् असत् है, क्योंकि यहाँ विविधता एवं नानात्व है। परम सत् एक ही है, वह शुभ है। मेगारी सम्प्रदाय यह विचार भारतीय दर्शन में अद्वैत वेदान्त के समान है। अद्वैत वेदान्ती जगत् को मिथ्या एवं ब्रह्म को सत् मानते है।

इनके मूर्ख शत्रुओं ने इस पर नास्तिकता आदि का अपवाद लगाया और इसके नगर के शासकों ने इसको विष द्वारा वध की आज्ञा दी।

2. प्लेटो (Plato 427-347 ई. पू.)- यूरोप के इस महान् दार्शनिक का जन्म एथेन्स के एक कुलीन तन्त्रीय परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम एरिस्टन एवं माता का नाम पेरक्टियन था। प्लेटो का प्रथम नाम 'ऐरिस्टाक्लीज' था।[6] दर्शन का अभ्यास इसको केटिलस और सुकरात से हुआ। यह बड़ा गणितज्ञ भी था। इसके ग्रन्थ प्राय: संवाद के आधार में लिखे गए है। ऐसे 35 संवाद और 13 पत्र प्लेटो के ज्ञात हैं। इन ग्रन्थों में सुकरात मुख्य वक्ता बनाया गया है। इनके दर्शन के प्राय: चार विभाग है -

1. उपक्रम विभाग
2. तर्क विभाग
3. विज्ञान विभाग
4. आचार विभाग[7],

प्लेटो का परमात्मा सम्बन्धी विवेचन -प्लेटो ने विभिन्न संवादों में ईश्वर का उल्लेख एक सृष्टिकर्त्ता अथवा विश्व के वास्तुकार के रूप में किया है। उन्होंने भी विभिन्न स्थानों पर ईश्वर का उल्लेख इस रूप में किया गया है कि जैसे वह कोई व्यक्ति हो।[8]

दर्शन के क्षेत्र में ईश्वर के प्रत्यय को प्रविष्ट कराने का श्रेय सर्वप्रथम प्लेटो को है।[9] उसके मस्तिष्क में इस सिद्धान्त का जो स्वरूप बना, वह यह था कि परमात्मा एक जीवन्त आत्मा है, जो शुभ है। उसका विश्वास था कि उसमें इतनी बातें हैं जिन्हें शुद्ध वैज्ञानिक तर्क के आधार पर सिद्ध किया जा सकता है।

प्रारम्भिक दार्शनिकों का परमात्मा शब्द से जो अभिप्राय था, उससे यह सर्वथा भिन्न है। 'एनेक्जिमेण्डर' तथा 'जेनोफ्रफनीय' ने लोक अथवा जगत् को देवता कहा, परन्तु इसे अधिक से अधिक सर्वेश्वरवाद का एक रूप माना जा सकता है, जैसा कि 'पार्मोनीडीज' भी मानता था। प्लेटो ने ईश्वर और शिव तत्त्व में भेद माना है। ईश्वर सगुण है, शिव तत्त्व निर्गुण। ईश्वर अपर है, शिव तत्त्व पर।

ईश्वर सृष्टि का निमित्त कारण और नियन्ता है, शिवत्व ईश्वर का भी पिता है।[10] प्लेटो अनेक विज्ञान स्वीकार करता है, परन्तु उसने एक सर्वोच्च विज्ञान को भी स्वीकार किया है। इस सर्वोच्च विज्ञान को ही प्लेटो ने शिवरूप[11] आता है। प्लेटो के ईश्वर को हम निश्चित रूपेण व्यक्तिक ईश्वर (Personal God) कह सकते हैं। क्योंकि यह जीवित आत्म में स्थित बुद्धित्व है।

प्लेटो के मन्तव्यानुसार 'सर्वोच्च विज्ञान' और सृष्टि में शिव तत्त्व अन्तर्यामी है और वह इस सबसे पार अनिर्वचनीय भी है। समस्त ज्योति उसी से आती है। वही सृष्टि का मुख्य उद्देश्य अथवा लक्ष्य है। वह ईश्वर का भी ईश्वर और विज्ञानों का भी विज्ञान है। इस सृष्टि से ईश्वर और विज्ञान भिन्न नहीं है और विज्ञानों को ईश्वर के बाहर नहीं माना जा सकता।

प्लेटो का यह शिव तत्त्व एक साथ 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्' है। यह सत् चित् आनन्द है।[12]

'टिमियस' में वह कहता है – ''इस विश्व के सृष्टा तथा पिता का पता लगाना कठिन है तथा यदि उसका पता लग भी जाए तो सभी लोगों के समक्ष उसके सम्बन्ध में कुछ कहना असम्भव है।''[13]

निष्कर्ष– प्लेटो का ईश्वर 'आकार' नहीं, वरन् एक आत्मा है। वह श्रेष्ठ गतियों का आत्म प्रर्वतक संचालक है। शुभ कोई आत्मा नहीं वरन् यह ईश्वर से स्वतन्त्र और उससे भी परे है, क्योंकि शुभ वह संवाद है, जिससे जगत् को ढ़ाला जाता है। यह भी निश्चित है कि ईश्वर ही एकमात्र आत्मा प्रवर्तित संचालक नहीं है, वरन् संचालकों में सर्वश्रेष्ठ है। इसमें सन्देह नहीं कि 'टिमियस' में उल्लिखित अधीनस्थ देवता उस संवाद के पुराख्यान (Mythology) के अन्तर्गत आते है, तथा प्लेटो नि:संदेह एकेश्वरवादी (Monothoist) था।

3. अरस्तु (Aristotle 384-322 ई. पू.)

अरस्तू प्लेटो का शिष्य था। यह स्टेजिरा नगर के वैद्य निकोमेक्स का पुत्र था। मेसिडन के राजा, प्रसिद्ध सिकन्दर के अध्यापक का कार्य कुछ वर्ष तक इसने किया। एथेन्स नगर के लीकियम के बागों में यह अध्यापन किया करता था। ऐसा कोई दर्शन या विज्ञान का विषय प्राचीन समयों में नहीं ज्ञात था, जिस पर इन्होंने कुछ न लिखा हो। न्यायशास्त्र का यूरोप में उपक्रम इन्हीं ने किया। दार्शनिक विषय को इसने प्रथम दर्शन के नाम से व्यवहृत किया है। इसमें ईश्वर जगत् आदि सामान्य विषयों का प्रपंच है।[14]

अरस्तू ईश्वर को 'योगदर्शन' की तरह किसी 'पुरुष विशेष' के रूप में स्वीकार नहीं करता, वरन् सूक्ष्म मानता है।[15]

अरस्तू के ईश्वर को प्रो. रास (Ross) महोदय ने भी अन्तर्यामी कहा हैं, किन्तु अरस्तू के अनुसार ईश्वर के अन्तर्यामित्व का अभिप्राय कुछ भिन्न है। प्रो. रास (Ross) अरस्तू के ईश्वर के अन्तर्यामित्व सम्बन्धी विचार को स्पष्ट करते हुए जगत् में उसके (ईश्वर के) कर्त्तव्य का रूप देखता है।[16]

अरस्तू के दर्शन में ईश्वर की तुलना सेना के 'कप्तान' से भी की गई है, जिसकी आज्ञा का पालन करना सेना का कर्त्तव्य है।

अरस्तू ने दो सत्ताएं स्वीकार की है। प्रथम – स्वरूप अथवा विज्ञान, द्वितीय – जड़ अथवा द्रव।

इस प्रतिपल अस्थिर जगत् की समस्त वस्तुएं इन्हीं दोनों के संयोग से बनी है। विश्व की विभिन्नता भी इन्हीं दोनों के विभिन्न प्रकार के संयोग एवं समागम का परिणाम है।[17]

अरस्तू के सामर्थ्य और वास्तविकता के विवेचन से पता चलता है कि वास्तविक रूप में सामर्थ्य ईश्वर में है। प्रकृति का समस्त प्रयत्न अपनी समस्त सामर्थ्य को वास्तविकता में परिणत करके ईश्वर को ही प्राप्त करने का है।[18]

अरस्तू ईश्वर को विकास की पराकाष्ठा के रूप में देखने का पक्षधर है।[19] उसका विचार है कि जगत् विकास की श्रृंखला है, विकास के विभिन्न स्तर हैं। अरस्तू ने ईश्वर को जगत् का स्वरूप, निमित्त एवं लक्ष्य कारण माना है। ईश्वर केवल शुद्ध सत्ता भाव है।

1. जगत् का स्वरूप– अरस्तू कहता है कि ईश्वर जगत् का स्वरूप कारण है। ईश्वर शुद्ध स्वरूप है। स्वरूप कारण वह कारण है जिसके अनुसार किसी वस्तु की रचना होती है। जगत् के निर्माण के लिए ईश्वर एक आदर्श स्वरूप है। जगत् की वस्तुओं का निर्माण जड़ तत्त्व से हुआ है, परन्तु उनका निर्माण ईश्वर को आदर्श अथवा स्वरूप मानकर हुआ है।

2. निमित्त कारण – अरस्तू ईश्वर को जगत् के निमित्त कारण के रूप में निरूपित करते हुए कहते हैं कि गति द्वारा विकास होता है। गति देने वाले को निमित्त कारण कहते हैं। गति देने वाले का चेतन होना अत्यावश्यक है। अरस्तू के विचार से ईश्वर स्वरूप मात्र एवं चेतन है और जगत् की समस्त वस्तुओं की गति अथवा परिणाम का प्रवर्तक भी है।[20]

3. लक्ष्य कारण– जगत् के विकास की प्रक्रिया का लक्ष्य कारण ईश्वर है। अरस्तू के अनुसार ईश्वर वह आदर्श है, जिसमें

जगत् के समस्त गुणों और विशेषताओं की पूर्ण अभिव्यक्ति है। संसार में जो कमी अथवा अभाव दृष्टिगोचर होते है, यदि उन्हें पूर्ण कर दिया जाए, तो ईश्वर बन जाएगा। ईश्वर संसार की गति का साध्य है। यह साध्य होते हुए भी स्वयं सिद्ध है।[21]

अरस्तू ईश्वर को आनन्द स्वरूप भी स्वीकार करते है। ईश्वर पूर्ण है, विकास का चरम बिन्दु है, अत: ईश्वर का आनन्द स्वरूप होना स्वाभाविक ही है।

ईश्वर में अरस्तू जीवन का भी आरोप करते है, क्योंकि उनके विचार से जीवन ही चिन्तन की वास्तविकता है, लेकिन वह ईश्वर को मनुष्य की भांति नहीं मानता।[22]

4. प्लोटिनस (Plotinus) - इन्होंने प्लेटो से अत्यधिक प्रभावित होकर अपने दर्शन की स्थापना की थी। इनका जन्म मिस्र (Egupt) में हुआ था। यह एमोनियस सेकस (Ammonius Saccus) के शिष्य थे, जिन्हें प्लेटो के नवीन मत का संस्थापक माना जाता है।[23]

ईश्वर सम्बन्धी विचार - प्लोटिनस के अनुसार समग्र सत्ता अपने आप में एक है, निरपेक्ष रूप है, यही शुभ (Good) है, यही ईश्वर है। यह शुद्ध सत् है जो निर्गुण निराकार है। यह अन्तर्यामी भी है (Immanent) और परात्पर (Transcendent) भी है। यह एक ऐसा कारण है, जिससे सब कुछ निर्गमित (Emanate) होता है।[24]

प्लोटिनस के दर्शन का उत्थान ईश्वर से है और कैवल्य मुक्ति अर्थात् ईश्वर स्वरूप हो जाना ही इसका उद्देश्य है। इसलिए ईश्वर का स्वरूप, संसार का ईश्वर से अविर्भाव, इस संसार का ईश्वर में लय और मुक्ति का स्वरूप ये चार मुख्य विषय प्लोटिनस के प्रतिपाद्य है।[25]

(क) ईश्वर का स्वरूप- कार्य से कारण और प्रमेय से प्रमाता अवश्य भिन्न है। इसलिए प्लोटिनस के अनुसार ईश्वर अप्रमेय, अनन्त, निराकार और अनिर्वचनीय है, क्योंकि प्रमेय साकार आदि पदार्थ तो उसके कार्य है। परमेश्वर अशरीर अमनस्क, कृति और विकृति से रहित है। सब भेद ज्ञाता, ज्ञेय आदि रूप सांसारिक है। शुद्ध, निराकार, सत् और असत् दोनों से पर, प्रमाण और प्रमेय से अतिरिक्त, ईश्वर का उपपादन पहले पहल प्लोटिनस ने यूरोप में किया।

(ख) संसार का ईश्वर से अविर्भाव एवं ईश्वर में ही लय

प्लोटिनस के अनुसार जैसे पूर्ण समुद्र की लाखों तरंगे है और जैसे प्रकाशमय सूर्य की असंख्य किरणें है, वैसे ही एक ईश्वर की यह सब सृष्टि है। वस्तुत: सृष्टि क्यों हुई और इसका ईश्वर से क्या सम्बन्ध है। यह कहा नहीं जा सकता। सृष्टि को ईश्वर की छाया या प्रतिबिम्ब समझना चाहिए। महत् (Logos) ईश्वर की प्रथम सृष्टि है। इस महत् से जीवात्मा आदि का आविर्भाव प्लोटिनस ने बताया है।

(ग) मुक्ति का स्वरूप- प्लोटिनस के अनुसार चित्तशुद्धि (Kalharsis) मुक्ति का प्रथम उपाय है। सामाजिक, नैतिक आदि कार्य अपरिहार्य है। शारीरिक कर्म सबको करना ही पड़ता है। बाह्य प्रत्यक्ष से वस्तु की छाया मात्रा विदित होती है। तर्क से कुछ वस्तु का अधिक परिचय होता है पर बाह्य प्रत्यक्ष और तर्क, दोनों ही से बढ़कर आन्तर अनुभव है। यह आन्तर अनुभव या ध्यान केवल महत् तक पहुँचा सकता है। इसके भी ऊपर समाधि (Extasis) की अवस्था है, जिसमें ज्ञाता और ज्ञेय का भेद सर्वथा लुप्त हो जाता है। इसी को असंप्रज्ञात समाधि कहते है, जिसमें पहुँचने पर दिव्य ज्ञान की ज्योति स्वयं प्रकाशित हो जाती है। प्लोटिनस अन्तिम मुख्य यूनानी दार्शनिक हैं।

सन्दर्भ-

1. पाश्चात्य दर्शन की ऐतिहासिक विवेचना - सोहनराज तातेड़, पृ. 31
2. वही, पृ. 33
3. पाश्चात्य दर्शन - रूपाली श्रीवास्तव, पृ. 20-21
4. वही, पृ. 22
5. पाश्चात्य दर्शन - रूपाली श्रीवास्तव, पृ. 23
6. पा.दर्शन - रूपाली श्रीवास्तव, पृ. 29
7. यूरोपीय दर्शन - रामावतार, पृ.11
8,. पा. दर्शन - रूपाली श्रीवास्तव, पृ. 37
9. Greek Philosopy - John Bernet, P. 356
10, पाश्चात्य दर्शन का समस्यात्मक विवेचन - पृ. 186
11. Outlines of the History of Greek, Philosophy - 'Zeller', 133-134
12. पाश्चात्य दर्शन - डॉ. चन्द्रधर शर्मा, पृ. 35
13. वही, पृ. 36
14. यूरोपीय दर्शन - रामावतार शर्मा, पृ. 10
15. Aristotale - Ross, P. 185
16. A Critical History Greek Philosophy, P. 288
17. Aristotale - Ross, P. 185
18. पाश्चात्य दर्शन - चन्द्रधर शर्मा, 70
19. यूरोपीय दर्शन - रामावतार शर्मा, पृ. 11
20. पाश्चात्य दर्शनों का इतिहास - डॉ. गुलाबराय, पृ. 12
21. यूरोपीय दर्शन - रामावतार शर्मा, पृ. 12
22. पाश्चात्य दर्शन - चन्द्रधर शर्मा पृ. 70
23. पाश्चात्य दर्शन - रूपाली श्रीवास्तव, पृ. 89
24. वही, पृ. 90
25. यूरोपीय दर्शन - रामावतार शर्मा, पृ. 23

ISSN 2278 - 0327

शतपथ ब्राह्मण में इतिहास और पुराण का विश्लेषण

बनास कुमारी मीणा
शोधच्छात्रा (PH.D.) SSIS(JNU),
जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय नई दिल्ली-110067

वैश्विक वाङ्मय की प्राचीन और निरन्तर प्रगतिमान परम्परा में प्रथम ज्ञान-ग्रन्थ के रूप में वेद सदैव प्रतिष्ठित है। कारण कि अनादिकाल से ही ये तत्त्वज्ञान के मौलिक स्रोत रहे हैं। अनेकार्थता विद्धातु के अनेकविध अर्थो से ही स्पष्ट है, यथा- विद्ज्ञाने, विद्विचारणे, विद्सत्तायाम्, विद् लाभे। व्युत्पत्तिपरक दृष्टि से भी यहीं निश्चित होता है कि एक ऐसा दीप्तिपुंज, जो अपनी दिव्य आभा से स्वयं भी भासित होता है और समस्त वाङ्मय को प्रकाशित करता है। वहीं आचार्य सायण के अनुसार- *इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोर-लौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः*।[1]

उपर्युक्त पर्यायवाची नामों के देखने से स्पष्ट होता है कि जैसे-जैसे मन्त्रात्मक-संहितात्मक तथा मन्त्रब्राह्मणात्मक धारणा का विकास होता गया है वैसे-वैसे वेद व्यापक अर्थ का द्योतक बनता गया। वैदिक वाङ्मय के चार भाग माने गए हैं- मन्त्र या संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद्।

ब्राह्मण शब्द की निष्पत्ति 'बट्' वर्धने धातु से हुई है। जिसका अर्थवर्द्धन, विस्तार, वितानऔरयज्ञहोताहै। ब्राह्मण शब्द के तीन अर्थ है- मन्त्र, यज्ञतथारहस्य। मीमांसा दर्शन के भाष्य में शबरस्वामी ने ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रतिपाद्य विषयों की संख्या दस बताई है। जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

हेतुर्निर्वचनं निन्दा प्रशंसा संशयो विधिः।
परक्रिया पुराकल्पो व्यवधारण-कल्पना।
उपमानं दशैते तु विधयो ब्राह्मणस्य वै॥ [2]

उपर्युक्त दस प्रकार की पद्धतियों और विधि तथा अर्थवाद के द्वारा ब्राह्मण ग्रन्थ वैदिक संहिताओं की आदिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। शुक्ल यजुर्वेद में शतपथ ब्राह्मण की चर्चा की गई जो इस प्रकार से बताए गयी है-

शतपथ ब्राह्मण का परिचय -

शतपथ ब्राह्मण में शतपथ पद की संज्ञा पर विचार करने पर दो प्रमुख आधार दृष्टिगोचर होते हैं-

1. शतपथ ब्राह्मण का एक सौ अध्यायों में विभाजन।
2. 'शतपथ' पद का अर्थ गूढ़ार्थ-ज्ञान के अन्नत पथ।

महर्षि कात्यायन ने शतपथ ब्राह्मण के ग्यारह विषयों का प्रतिपादन किया है-'*विधिर्निन्दा-प्रशंसाध्यात्ममधि देवतमाधिभूतमनुवचनं प्रकृतिः पुराकल्पः सृष्टिरिति ब्राह्मणम्*'[3]। (अर्थात् विधि, निन्दा, प्रशंसा, आध्यात्म, अभियज्ञ, अधिदैवत, अधिभूत, अनुवचन, प्रकृति, पुराकल्प, सृष्टि आदि ये सब शतपथ ब्राह्मण के प्रमुख विषय हैं)। आचार्य वाचस्पति के अनुसार शतपथ ब्राह्मण के प्रमुख विषय है-

नैरूक्त्यं यस्य मंत्रस्य विनियोगः प्रयोजनम्।
प्रतिष्ठानं विधिश्चैव ब्राह्मणम् तदिहोच्यते।
इत्येवं याज्ञवल्क्यस्य ब्राह्मणस्य तु लक्षणम्।[4]

अतः शतपथ ब्राह्मण के ये सभी विषय हैं जिनके द्वारा वेद विषयक विषयों की व्याख्या विस्तार पूर्वक की गयी है। वेदों में निहित विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, अनुव्याख्यान तथा व्याख्यान को ही विस्तारपूर्वक यहाँ समझाया गया है।

शतपथ ब्राह्मण का आंग्ल भाषा में अनुवाद जूलियस एगलिङ्ग महोदय ने किया है उन्होंने शतपथ का नामकरण बताते हुए लिखा है कि '*शतध्याय वत्वात्शतपथत्वम्*।'[5]-*"The Brahmana of the Vajasaneyins bears the name of Shatpatha that is the Brahmana 'of a hundred paths,' because it consists of a hundred lectures (Adhyayas)."* मैक्डोनल ने शतपथ ब्राह्मण के 100अध्याय को शतपथ की संज्ञा दी है-

"Shatpath Brahmana off the hundred Pathas" is called because it consists of one hundred lectures (Adhyays). [6]

इतिहास-इतिहास शब्द का प्रयोग मुख्य रूप से दो अर्थों में किया जाता है-

1. प्राचीन अथवा विगत काल की घटनाएँ
2. दूसरा उन घटनाओं के विषय में धारणाएँ

इति+ह+आस: व्युत्पत्ति में इतिहास शब्द का तात्पर्य हुआ- यह निश्चित था। अर्थात् परमात्मा से प्राप्त उपाख्यान समूह। सामान्यत: इतिहास के विषय में प्रचलित धारणा यही है कि रामायण में महाभारत जो हमारे आदि काव्यग्रन्थ है, वही इतिहास हैं। इसी तथ्यों को समझाते हुए शतपथब्राह्मण में पुरुरवा-उर्वशी आदि को दृष्टांत दिया गया है,जो वेदों में वर्णित है। साथ ही इतिहास की घटना भी बताया गया है, इसी प्रकार के अनेक उदाहरण यहाँ प्राप्त होते हैं जिन्हें क्रम से उद्धरण द्वारा समझाया जाएगा। शतपथब्राह्मण के प्रमुख ऐतिहासिक आख्यानों का विवरण इस प्रकार यहाँ उद्धृत किया जा रहा है-

वृत्रासुराख्यान-(1/3/4-5)

'वृत्रो ह वा इदं सर्वं.....एताभ्यामुत्पुनाति।' [7]

अर्थात् वृत्रासुर द्यावापृथिवी के मध्यस्थ भाग को चारों ओर से आवृत कर लेट गया। सबका आवरण करने के कारण इसका नाम वृत्र पड़ा। इन्द्र के द्वारा इसका वध किया गया। वृत्रासुर मारे जाने के कारण दुर्गन्धित-सा पड़ा रहा। उसके मृत शरीर से जलधाराएँ निकलने लगी। कुछ जलधाराएँ ऐसी भी थीं जो दुर्गन्धरहित होकर बहने लगी। इस पवित्र जल को दर्भ नाम से जाना जाने लगा। इन दर्भों से पवित्र किये गये जल यज्ञ भूमि के प्रक्षालन में काम लिया जाता है।

त्रिशीर्षा विश्वरूप कथा- (1/2/3/1-5)

चतुर्धा विहितो ह....पशुर्ह वा एष आलभ्यते यत् पुरोडाश:।[8]

अर्थात् प्राचीन काल में अग्नि के चार प्रकार का विधानों के बारे बताया गया था। सबसे पहले अग्निहोत्र कीअग्नि का धारण किया गया। वह मनुष्यों के प्रमादवश के कारण समाप्त हो गई। इसी प्रकार द्वितीय, तृतीय प्रकार की अग्नि भी वरण के पश्चात् धीरे-धीरे नष्ट हो गई। अन्त में चतुर्थ प्रकार का अग्नि विनाश के भय से जलों में जाकर छिप गया। देवताओं ने उसके गोपनीय स्थान को ढूँढ कर अग्नि को बाहर निकाल लिया। जिससे अग्नि ने देवों पर क्रुद्ध होकर जलों में ही ष्ठीवन किया। अग्नि के द्वारा ष्ठीवन किये जाने पर जल से तीन देवता प्रकट हुये। जिनका नामाकरण-एकत, द्वित तथा त्रित था। जिस प्रकार राजकार्य में राजा के सहयोगी ब्राह्मण होते है उसी प्रकार ये तीनों देव इन्द्र के साथ रहने लगे। इन्द्र ने तीन सिर वाले त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप की हत्या के समय इन देवों का पूर्ण सहयोग प्राप्त किया था। इसीलिए त्रित देव ने इन्द्र को इस हिंसा के पाप से मुक्त रखने के लिए असुर का वध स्वयं ने कर दिया।

देवासुर पृथिवी विभाजन कथा-

देवाश्च वाऽसुराश्च।.....सपत्नान्य एवमेतद्वेद: ॥7॥[9]

प्रजापति की दोनों सन्तानें (देवासुर) आपस में प्रतिस्पर्धा करती आई हैं। देवों को परास्तकर असुरों ने समस्त पृथिवी पर अधिकार करना चाहा। वृषभ के चर्म से पूर्व से पश्चिम की ओरविभाजन आरम्भ किया। विभाजन प्रसंग को सुनकर देव भी पृथिवी का भाग प्राप्त करने के लिये यज्ञरूप विष्णु को पुरस्कृत कर चल दिये। असुरों के समीप जाकर कहा- हमारा भी इस पृथिवीमें भाग निकालो, ईर्ष्यालु दानवों ने विष्णु के शयन स्थान के बराबर भूमि देने की बात कही। वामन विष्णु के समान अत्यल्प भाग पाकर भी देव व्याकुल नहीं हुये। उन्होंने यज्ञ विष्णु कोचारों ओर से छन्दों से घेर लिया। इस प्रकार वेद मन्त्रों से यज्ञ को बोध कर अग्न्याधान कियापरिणामस्वरूप देवों ने समस्त भूमि पर अधिकार पा लिया। अग्न्याधान से पृथिवी के अधिकतमभाग को अधिकृत करने के कारण ही अग्नि-कुण्ड को वेदि नाम दिया गया।

राहूगण माधव कथा-(1/4/1/10-14)

'विदेघो ह माधवोऽग्निं.....वैश्वानरेणेति' ॥14॥[10]

मधु का पुत्र माधव विदेह का राजा था। वह वैश्वानर अग्नि को मुख में लिये हुये था। राहूगण उसका पुरोहित था। गौतम राहूगण जो भी बात करता था राजा उसकी स्वीकृति नहीं देता था। वैश्वानर अग्नि के मुख से निकलने के भय से अपना मुख बन्द किये थे। पुरोहित ने उस अग्निको बाहर निकालने के लिये अनेकों ऋचाओं का पाठ किया किन्तु विदेह माधव नहीं बोला। *'घृतस्नवीमहे'* ऋचा में प्रयुक्त घृत का नाम सुनते ही वैश्वानर अग्नि मुख से प्रज्वलित होता हुआ निकला। विशाल क्षेत्रों का दहन करता हुआ राजा और गौतम के साथ आगे बढ़ता चला गया। उत्तरीय पर्वत की ओर बहने वाली सदानीरा नदी को प्रदहन यात्रा नहीं पार कर सकी। प्राचीनकाल से लेकर आज भी उस क्षेत्र को ब्राह्मण अक्षेत्रतर (वास करने के अयोग्य)समझकर पार नहीं करते थे।

वाणी और मन का संवाद-(1/4/5/8-13)

अथातो मनश्चैव वाचश्च.....देवताया एते सम्भूता: ॥13॥[11]

एक बार मन और वाणी में 'मैं बड़ा हूँ','मैं बड़ी हूँ' ऐसा विवाद छिड़ गया। मन ने अपने महत्त्व के विषय में तर्क देते हुये कहा- 'तू मुझसे अज्ञात विषय नहीं बोल सकती, अत:मैं ही बड़ा हूँ।' वाणी ने अपनी महत्ता का कारण बताया- 'जो कुछ तुम जानते हो उसका भावप्रकाशन में ही करती हूँ, अत: मैं तुझसे श्रेष्ठ हूँ।' दोनों न्यायार्थ प्रजापति के पास पहुंचे। प्रजापति ने कहा-तू मन के विचारों के अनुसार बोलती है। छोटे-बड़ों का अनुसरण करती हैं। अत: मन तुझसे बड़ा है। अत्यन्त अपमानित-सी हुई वाणी का गर्भ गिर गया। वह गिरा हुआ वाणी का गर्भ देवों ने चमड़े में

छिपाकर रख दिया। उसी से अत्रि का जन्म हुआ। अत्रि वाली स्त्री को आत्रेयी कहते हैं। आत्रेयी से बात करने वाला व्यक्ति भी दोषी कहा जाता है।

प्रयाजानुमन्त्रण सम्बन्धित देवासुर कथा-(1/5/4/6-16)

देवाश्च वा असुराश्चोभये.....यं च वयं द्विष्मः इति ब्रूयात् ॥13॥ [12]

प्रजापति की दोनों सन्तानें देव और दानव परस्पर झगड़ा करने लगे। दण्ड और धनुषादि शास्त्रों से जीतने का प्रयास किया किन्तु विजयी नहीं हुये। पराजित होकर बोले-अब हम लोग वाणी के द्वारा विजय पाने की चेष्टा करेंगे। हमारे द्वारा प्रयुक्त पुल्लिग संख्या का उत्तर जो स्त्रीलिंग मिथुन संख्या से न दे सकेगा, वह पराजित समझा जायेगा। देवों के पक्ष से इन्द्र ने कहा-'मेरा एक' विपक्षियों ने उत्तर दिया 'हमारी एक' इस प्रकार एक और एक मिलकर मिथुन जोड़ा बन जाता है। चार संख्या तक तो दोनों पक्षों के संख्या प्रयोग से युगल बनते रहे,किन्तु इन्द्र के मेरे 'पाँच' कहने पर असुर जोड़ा नहीं बना सके क्योंकि स्त्रीलिंग-पुल्लिग दोनों 'पंच-पंच' समान रूप से बनते हैं। अतः पराजित असुरों को सभी लौकिक पदार्थों से वञ्चितकर दिया गया।

मनु-मत्स्य कथा-(1/8/1/1-6)

'मनवे ह वै प्रातः.....मनुरेवैकः परिशिश्रिये ॥6॥ [13]

प्रातःकाल मानव जाति के पूर्वज मनु महाराज सेवकों द्वारा लाये जल से मुँह धोने लगे। सहसा एक मछली उनके हाथ में आ गई। उसने मनु से कहा-तुम मेरा लालन-पालन करो। मैं तुम्हें आने वाली भयंकर बाढ़ से पार उतार दूंगी। मनु ने द्वारा उसके लालन-पालन का स्वरूप पूछने पर मछली ने कहा-'छोटी अवस्था में मुझे घड़े में पालना, क्योंकि बड़ी मछलियाँ छोटी मछलियों को खा जाती हैं। बड़ी हो जाने पर मुझे समुद्र में ले जाना।' शीघ्र बढ़ने का स्वभाव होने से वह मछली बड़ी हो गई। उसने मनु से बाढ़ आने के समय नाव लेकर आने को कहा। निर्देशानुसार मनु यथा समय नाव ले आये। उसके सींग में नाव का फन्दा डालकर उत्तर की ओर पर्वत की ओर मनु को लेकर दौड़ गई। वहाँ पहुँचकर वृक्ष में नाव को बाँध दिया। मनु पर्वत पर बैठ गये। पानी के धीरे-धीरे नीचे उतर जाने पर वह भी उतर आये। इस घटना के बाद मनु ने प्रजा की समृद्धि कामना से घी, दधि, मस्तु और अमिक्षा का पाक यज्ञ के नाम से हवन किया। उसी वर्ष एक गाती हुई प्रसन्न वदना स्त्री का जन्म हुआ। मित्र-वरुण देवों ने उस पर अधिकार जमाना चाहा, किन्तु उसने स्पष्ट कहा-मैं मनु के पाक-यज्ञ से उत्पन्न हुई हूँ, अतः उन्हीं की पुत्री हूँ तुम्हारी नहीं हो सकती। मनु के पास जाकर भी यही बात कही। मनु ने सन्तान वृद्धि के लिये प्रयाज और अनुयाज के मध्य भाग में मछली को भी स्थान दिया। ईश्वर भक्ति के साथ कठोर श्रम भी करते रहे।

बार्हस्पत्य शंयु कथा-(1/9/1/24-28)

'अथ शंयोराह। शंयह.....शं चतुष्पद इति'॥28॥[14]

बृहस्पति का पुत्र शंयु था। वह यज्ञ का समापन करना जानता था। जब शंयु देवलोक में चला गया तब मनुष्यों से अज्ञात होने के कारण समापन विधि समाप्त-सी हो गई। मनुष्यों ने ऋषियों के सहयोग से यज्ञ संस्था (समापन विधि) को खोज निकाला जिसे बृहस्पति के पुत्रशंयु जानते थे। शंयु की यज्ञ संस्था होने से इसे आज भी शंयु वाक् कहते हैं। इसे प्राप्त करके ही हमारा यज्ञ इस लोक में भेषज तुल्य बन जाता है। द्विपद और चतुष्पद सभी सर्वत्र शान्ति और मंगल का अनुभव करते हैं। इस कथा में बृहस्पति पुत्र शंयु का स्वरूप ही विचारणीय है। ज्ञान-विज्ञान के प्रदाताव्यक्तित्व को वैदिक साहित्य में बृहस्पति देव कहा गया है। शंयु बृहस्पति के पुत्र हैं। आलंकारिकभाषा में भगवद्-भक्तिरस पूर्ण कर वैराग्य ही शंयु है।

योषा वा इयं वाक् कथा-(3/2/1/18-28)

अथ कृष्णविषाणां सिचिवध्नीते.....भूत्वैतस्मात् मिथुनात् ॥28॥ [15]

प्रजापति के पुत्र देव और असुर अपने पिता का दायभाग लेने पहुँचे। देवों ने मन को लिया असुरों ने वाणी को। यज्ञ-प्रेमी देवों ने यज्ञ को मांगा और असुरों ने वाक् को चुना। देवों ने यज्ञपुरुष से 'योषा वै वाक्' वाणी का आवाहन करने को कहा किन्तु वह शस्त्र के अग्रभाग से आविद्ध हुई-सी खड़ी रही। पर्णविहीन वृक्ष के समान केवल शिरश्चालन मात्र से उत्तर दिया। देवों ने पुनः स्त्री तुल्य वाणी को तत्काल बुलाने का आदेश यज्ञदेव का दिया। उसके आने परदेवताओं ने अनुष्टुप् छन्द से वाणी द्वारा हवन किया और असुरों को वाग्बल से विरहित करदिया। वे 'अरयः अरयः' कहने में तो असमर्थ रहे 'हेलवः, हेलवः' कहते हुये लोक में पराजित हुये क्योंकि सन्दिग्ध अपभ्रंश वचन मलेच्छ है। यज्ञ ने वाणी से संगत होकर इन्द्र को उत्पन्न किया। यह महावीर्यावाक् कहीं मुझ जैसे अन्य अपत्य को उत्पन्न न करे'', अतः इन्द्र ने उसे स्वहस्त से आवेष्टन कर यज्ञ के शिर पर स्थापित किया। यज्ञ कृष्ण रूप कृष्णाजिन है तथावाग्योनि ही कृष्णविषाणा है। कृष्णाजिन से भिन्न है। इन्हीं दोनों ने पुत्र इन्द्र को जन्म दिया।

सौपर्ण काद्रव व्याख्यान कथा-(3/6/2/1-7)

विजामानो हैवास्य धिष्ण्याः.....सौपर्णी काद्रवमिति ॥7॥[16]

धुलोक में सोम था। देवों ने यज्ञार्थ सोम की कामना की। उन्होंने दो माया रूप स्त्रियों कीसृष्टि की। वे थीं सुपर्णी और कद्रु। वाणी सुपर्णी और पृथिवी कद्रु है। दोनों में विवाद हुआ-जो हम दोनों में से दूर का देख सके वही विजयी होगा। सुपर्णी ने सलिल के पार श्वेत अश्व कोस्थाणु का सेवन करते हुये देखा। कद्रु ने और आगे सूक्ष्मदर्शन कर बताया कि अश्व का पुच्छस्थाणु में संलग्न है। वायु के द्वारा हिलाते हुये उसे मैं देख रही हूँ। सुपर्णी ने स्वयं जाकर देखा कद्रु का वचन सत्य था। वह विजयिनी होकर देवों के लिये स्वर्ग में सुनहरी कुशों से आच्छन्न सोमको ले आई। वे कुश क्षुर की धारा के समान तीक्ष्ण थे। गन्धर्व उस सोम की रक्षा कर रहे थे।गायत्री की शक्ति से सुपर्णी ने दीक्षा तप-रूपी कुशों को काटकर सोम प्राप्त किया और देवों काप्रोर्थन कर दिया और वह उनके ऋण से मुक्त हुई। इसी प्रकार यजमान भी देवयज्ञ में सोमाहुतिदेकर देव-ऋण से मुक्त होता है।

पुरुरवा-उर्वशी कथा-(11/5/1/1-9)

उर्वशी हाप्सरा: पुरुरवसमैडं.....न वै स्त्रैणं सख्यमस्ति । पुनर्गृहानिहि'।9 ॥ [17]

इस संवाद सूक्त का वर्णन यजुर्वेद (5/2) तथा ऋग्वेद (10/95)में भी है इसमें पुरुरवा व उर्वशी के प्रेम विवाह का वर्णन प्राप्त होता है। उर्वशी अप्सरा शापवश मानुष भाव को प्राप्त हुई। वह इडा के पुत्र पुरुरवा राजा के प्रति इसभूलोक में कामासक्त हुई और उर्वशी ने पुरुरवा से तीन प्रतिज्ञायाँ की थीं।उर्वशी के पूर्वोक्त तीन सङ्कल्पों में से यह एक समय भंग हुआ। वह तत्काल ही 'मैं पुन: आती हूँ' ऐसा कहकर तिरोभूत हो गई। उसके छिप जाने से अत्यन्त व्याकुल राजाकुरुक्षेत्र के समीप उसे पाने के लिये विचरण करने लगा। समीप के एक सरोवर में उर्वशी अपनीअप्सरा सखियों के साथ जलचारी पक्षि-विशेष बनकर जल क्रीड़ा कर रही थी। पुरुरवा को देखकर उसने अपनी सखियों को उसका परिचय दिया। उर्वशी सहित वे अप्सरायें राजा केसमक्ष प्रकट हुई। उसको वियोगाकुल होकर उससे करुण आत्मनिवेदन करते हुये कहा-'हेकठोर हृदय वाली उर्वशी! तू ठहर जा। मेरे साथ पूर्ववत् मधुरालाप कर मुझे शान्ति दे,' किन्तु अप्सरा ने उसके प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुये उत्तर दिया-'हे राजन्! तुम्हारे द्वारा मेरे साथसमय भंग किये जाने के कारण मैं अब तुम्हारे लिये वायु के समान दुष्प्राप्य बन चुकी हूँ। सूर्योदयहोने पर आगे आगे जाने वाली उषा के समान दूर जा चुकी हूँ।' निराश होकर दु:खी राजा घरलौट आया।

च्यवन-अश्विनीआख्यान-

चतुर्थ काण्ड में च्यवन ऋषि का वार्धक्य और सुकन्या द्वारा अश्विनौ(चिकित्सक) द्वारा उसे फिर से युवक बनाने का वृतान्त वर्णित है। अन्य शतपथ ब्राह्मण में अन्य ऐतिहासिक आख्यान भी प्राप्त होते है। जैसे-धीर शातपर्णेय महाशाल जाबाल संवाद -(10/3/3/1), वरुण वे भृगु आख्यान-(11/6/1/1-13), इन्द्र व नमुची वध आख्यान-(11/7/3/1-4), आरुणी व श्वेतकेतु आख्यान आदि का वर्णन प्राप्त होआ है इसी प्रकार पुराण का वर्णन भी प्राप्त होता है।

पुराण का लक्षण-

'पुराणंसर्वशास्त्राणां प्रथम ब्राह्मण स्मृतम्' निरुक्त में यास्क ने पुराण की उत्पत्ति-पुरानवं भवति अर्थात् जो प्राचीन होकर नवीन रूप में बना रहे। वैदिक इतिहास वह पुराण का सम्बन्ध एक दूसरे के पूरक है।

पुराण का लक्षण-

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरित चेति पुराणं पंचलक्षणम्।। [18]

पुराण में सृष्टि-प्रक्रिया का वर्णन प्राप्त होता है।

मनु एवं श्रद्धा तथा जल-प्लावन आख्यान-

प्रजापतिर्वाऽइदमग्रऽआसीत्.....तस्मात्पुरुषात्तमादापो जायन्ते।। [19]

शतपथ ब्राह्मण-ग्रन्थ के द्वितीय काण्ड में ही स्पष्ट निर्देश किया गया है कि सर्वप्रथम प्रजापति ही था -'प्रजापतिर्ह वाऽइदमग्रऽ एक एवास।' [20] अर्थात् प्रजापति सभी देवों में सर्वप्रमुख स्थान पर प्रतिष्ठित है। सृष्टि के आदि में वे ही विराजमान थे उसकी इच्छा के परिणामस्वरूप ही सृष्टि की उत्पत्ति हुई। प्रजा की कामना से उसने श्रम व तप से यज्ञ का सम्पादन किया-'प्रजापतिर्ह वाऽएतेनाने यज्ञेनेजे[21] अर्थात् प्रजापति ने प्रजा के कामना के साथ अपने को बहुत्व हो जाने के लिए पशु,जीव-जंतु आदि के उत्पत्ति की इच्छा से उसने सृष्टयुत्पत्ति के कामना की,इसीलिए प्रजापति ही सृष्टि उत्पत्ति के मुख्य कारक हैं तथा देव तथा असुर दोनों उसीकी सन्तानें हैं -

देवाश्च वाऽअसुराश्च। उभये प्राजापत्या:'। [22]

इससे यह स्पष्ट होता है कि यह दृश्यमान जगत् रूप कार्य, कारण रूप प्रजापति की क्रिया के परिणामस्वरूप है। अत: शतपथ-ब्राह्मण में इतिहास के साथ-साथ यज्ञिय परिप्रेक्ष्य में, सृष्टयुत्पत्ति, मन्त्र, श्लोक व सूत्र आदि का व्याख्यानों के आयामों का परिपोषक है। शतपथ ब्राह्मण-ग्रन्थ मेंप्रजापति को सृष्टि के प्रमुख कारक के रूप में बताया गया है।

यजुर्वेद में प्रजापति सृष्टि के सृजनकर्त्ता के रूप में निरूपित है-'यस्मान्न जात: परोऽअन्यो अस्ति य आविवेश भुवनानि विश्वा।[23] प्रजापति सम्पूर्ण दृश्य एवं अदृश्यमान जगत् के सर्जनहार हैं। शतपथ-

ब्राह्मण में उपलब्ध सृष्टि-उत्पत्ति विषयक है-

प्रजनयिता स प्रजापतिः[24] अर्थात् प्रजापति ने सर्वप्रथम अग्नि को उत्पन्न किया, *प्रजननं प्रजापतिः*[25] अर्थात् प्रजापतिका अर्थ ही उत्पत्ति करने वाला है। *प्रजापतिना प्रजनयित्रैताः प्रजाः प्राजनयत*[26] इस उक्ति में स्पष्ट किया गया है कि संवत्सर प्रजापति ही प्रजा का उत्पादक है। जिसको उसने उत्पन्न व सर्जन किया उसी को सृष्टि कहा जाता है इसी कारण सदृश उक्तियाँ उक्त तथ्य की ही पोषक हैं। निरुक्त में भी प्रजापति को पालन-कर्ता के रूप में बताया है - प्रजानां पाता वा पालयिता वा।[27]

मनु के द्वारा सृष्टि-उत्पत्ति-

सोऽर्चच्छाम्यंश्चचार प्रजाकामः.....सास्मै सर्वा समार्ध्यत ॥10॥[28]

अर्थात् झष मछली ने मनु को जल प्रलय से नाव के माध्यम से बचा लिया,जल प्रलय के समय सब कुछ जलमग्न होगया था। एकमात्र मनु ही बच पाए थे जिन्होंने फिर से सृष्टि का निर्माण किया था उसे उत्पत्ति क्रम को यह बताया गया है- मनु को मछली जल से बचा करा पहाड़ पर ले आयी तथा वृक्ष में नाव को बाँध दिया। मनु वहीं पर जलस्तर नीचा होने का इंतज़ार करता रहा। इसके पश्चात् उसने सन्तान की इच्छा से पूजा और श्रम किया। मनु के द्वारा पाकयज्ञ औरघी, दही, मट्ठा भी जलों में चढ़ाया। यज्ञ के स्वरूप एक वर्ष में एक स्त्री उत्पन्न हुई। उसने कहा मैं आशी हूँ। तू मेरा प्रयोग कर। यहाँ सृष्टि उत्पत्ति के विषय में चर्चा की गयी है- जिसमें मनुदुहिता कहती है तू यज्ञ में मेरा प्रयोग कर जिससे बहुत-से पशुओंऔर सन्तानवाला होगा। जो कुछ चीज तू मेरे द्वारा माँगेगा वह सब तुझको मिलेगी।वह प्रजा की कामना से उसी के द्वारा उसी के कथनानुसार पूजा और श्रम करता रहा। जिससे उसे इच्छानुसार प्रजा की प्राप्ति हुई, इसलिए आज जो सृष्टि है, वह मनु की सन्तान है। जो कोई चीज उसके द्वारा माँगी वह सब उसकोमिल गई। इसप्रकार सृष्टि के उत्पत्ति सम्पन्न हुई।

प्रजापति के द्वारा सृष्टि-उत्पत्ति-

1. *भूरिति वै प्रजापतिः .....तद्यदरक्षंस्तस्माद्रक्षांसि ॥15॥*[29]

शतपथ ब्राह्मण के प्रथम काण्ड के आठवें अध्याय के प्रथम ब्राह्मण में सृष्टि उत्पत्ति के विषय में कहा गया है कि प्रजापति ने सर्वप्रथम सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति भू, भुवः तथा स्वः के माध्यम से की है। कि-'भू' से ब्राह्मण, 'भूवः' से क्षत्रिय और 'स्वः' से वैश्य। उसी प्रकार आत्मा, प्रजा तथा पशुओं का सर्जन किया- 'भू' से आत्मा को, 'भुवः' से प्रजा को और 'स्वः' से पशुओं को उत्पन्न किया। अतः यहाँ पर प्रजापति ने सृष्टि का सर्जन के भुर्भवः स्वः मुख्य तत्त्वों से किया है। प्रजापति ने इन तीनों तत्त्वों के द्वारा ही सम्पूर्ण चराचर जगत् की उत्पत्ति की है।

2. *प्रतापतिर्ह वाऽइदमग्रऽएक .....समुद्रोऽथेयमेव-पृथिव्यास्तावः ॥1॥*[30]

यहाँ प्रजापति द्वारा अग्नि के माध्यम से सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में चर्चा की गयी है। यहाँ पहले एक प्रजापति ही था उसने सोचा कि यज्ञ के द्वारा देवों की उत्पत्ति की जाए, देवों में जो वीर हैं वे उत्पन्न हुए, अर्थात् अग्नि, वायु और सूर्य। इन तीनों देवों ने कहा, 'हम प्रजापति के पीछे हुए हैं। अब हम प्रजा उत्पन्न करें जो हमारेपीछे हो।' उन्होंने एक घेरा घेरकर गायत्री से हिङ्कार छोड़कर प्रार्थना की । जिससे उन्होंने घेरा वह समुद्र था और पृथिवी आस्ताव (अर्थात् प्रार्थना की) जगह हो गई। इस प्रकार सम्पूर्ण पृथिवी की उत्पत्ति सम्भव हो पाई।

3. *प्रजापतिः प्रजा असृजत।.....मनो वाक्प्राणश्चक्षुः श्रोत्रम् ॥4॥*[31]

प्रजापति ने प्रजाओं का सृजन किया। उसने ऊपर के प्राणों से देवों को उत्पन्न किया तथा नीचे के प्राणों से मनुष्यों को उत्पन्न किया। इस प्रजापति का आधा भाग मर्त्य था, और आधा अमृत। मर्त्य भाग मृत्यु से डरकर पृथिवी में मिट्टी और जल रूप में छिप गया। अन्त में उसे बाहर निकाला गया जिसमें मृत्यु व अमृत तत्वों ने मिलकर इस सृष्टि में मनुष्य का निर्माण किया। जिसमें पाँच अंग मर्त्य (मरने वाले)थे-लोम, त्वचा, मांस, हड्डी, मज्जा। और पाँच अंग अमर थे-मन, वाक्, प्राण, चक्षु, श्रोत्र। जिसमें प्राण की आहुति से प्रजापति ने मनुष्य की उत्पत्ति की।

4. *प्रजापतिर्वाऽइदमग्रऽआसीत्।.....तस्मात्पुरुषात्तमादापो जायन्ते ॥3॥*[32]

अर्थात् प्रजापति ही सृष्टि में पहले से विद्यमान था। उसने चाहा कि मैं बहुत हो जाऊँ, मैं उत्पन्न करके सृष्टि का निर्माण करूँ। उसने श्रम किया,उसने तप किया। उस श्रम और तप से तपे हुए से आप (जल) उत्पन्न हुए। उस प्रजापति से सर्वप्रथम जल उत्पन्न होता है और इसी जल के द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति शतपथ ब्राह्मण के छठें काण्ड में बतायी गयी है।

हिरण्यगर्भ से सृष्टि उत्पत्ति की प्रक्रिया-

असद्वाऽइदमग्रऽआसीत्।.....वैव गीते वा रमते ॥15॥[33]

शतपथ ब्राह्मण के छठे अध्याय प्रथम अध्याय के प्रथम-द्वितीय अध्याय में हिरण्यगर्भ से सृष्टि उत्पत्ति की प्रक्रिया को समझाया गया है। इस प्रजापति पुरुष ने चाहा, 'मैं बहुत हो जाऊँ',

'मैं प्रजा को उत्पन्न कर। उसनेश्रम व तप किया। इस हिरण्यगर्भ भीतर से गर्म होने के कारण सर्वप्रथम अग्नि उत्पन्न हुई। सबमें अग्रणीय होने के कारण इसका नाम अग्नि हुआ। जो अश्रु गिरा उसी अश्रु को ही अश्व कहते हैं। जो रेंका (अरसत्) वह रासभ हुआ, उसके पश्चात् जो कपाल में रस लगा उस से अज (बकरी)की उत्पत्ति हुई। जो कपाल था वह पृथिवी हुई। अब उसने चाहा 'इन जलों से इस पृथिवी को बनाऊँ।' उसने रसों को दबाकर जलों में डालदिया। जो रस उसमें से बहा वह कूर्म हुआ। यह सब पृथिवी 'आप' रूप हो गई। उसने चाहा 'मैं और बनूँ।' उसने श्रम किया और तप तपा। उस श्रान्त और तप्त सेफेन उठा। उसने जाना कि यह तो बहुत्व हो रहा है, मैं और श्रम करूँ। इस श्रान्त और तप्त से मिट्टी, कीचड़, रेह, रेत, शर्करा, पत्थर, लोहा, सोना, ओषधि, वनस्पति बने। इन सबसे पृथिवी ने अपने आप को आच्छादित कर लिया है। यह सम्पूर्ण जगह फैल गई (अप्रथयत्) इसलिए इसका नाम पृथिवी हुआ। उसने अपने को पूर्ण जानकर गाया, जिससे गायत्री छन्द की उत्पत्ति हुई।

जल द्वारा सृष्टि उत्पत्ति-

आपो ह वाऽइदमग्रे सलिलमेवास।.....मैतद्यत्संवत्सर इति।[34]

शतपथ ब्राह्मण के ग्याहरवें काण्ड के प्रथम अध्याय के छठें ब्राह्मण में सृष्टि की उत्पत्ति जल से बतायी गयी है। सृष्टि के रचना से पूर्व सर्वत्र जल 'सलिल' ही विद्यमान था। सृष्टि की चाहत से उन्होंने प्रजा उत्पन्न करने की सोची। इसीलिए उन्होंने श्रम किया, तप किया। उनके तप करने के परिणामस्वरूप हिरण्मय अण्डा उत्पन्न हुआ। उस समयकोई दिन-रात, महीना व संवत्सर न था। यह हिरण्मय अण्डा संवत्सर तक तैरता रहा। तब संवत्सर में हिरण्मय पिण्ड से पुरुष उत्पन्न हुआ। वह प्रजापति साल-भर में हुआ था। इसलिए स्त्री या गौ या घोड़ी आज भी साल-भर में बच्चा देती है, क्योंकि उसने इस हिरण्मय अण्डे को तोड़ा। साल-भर पीछे जब उसने बोलने की इच्छा की। उसने तीन शब्द कहे भू,भुवः व स्वः कहा जिसमें 'भू' से पृथिवी, 'भुवः' से अन्तरिक्ष तथा 'स्वः' से द्यौ लोक उत्पन्न हुआ। इसलिए बच्चा साल-भर में बोलने की इच्छा करता है क्योंकि प्रजापति ने साल-भर में बोलने की इच्छा की थी। उस प्रजापति ने पहले एकाक्षरी या दो अक्षरी शब्द कहे थे। इसलिए बच्चा जब पहले बोलता है। तो एक या दो अक्षर ही बोलता है। ये पांच अक्षर भूः भुवः स्वः से पाँच ऋतुएँ उत्पन्न की। इसलिए वर्ष में पांच ऋतु आती है। इन उत्पन्न लोकों के ऊपर प्रजापति साल-भर में खड़ा हुआ। इसलिए बच्चा साल-भर में खड़ा होने लगता है। क्योंकि साल-भर में ही प्रजापति खड़ा हुआ था। अतः जिस प्रकार प्रजापति को स्रजा गया उसी प्रकार आज जीवों की सृष्टि होती है। वह सन्तान की इच्छा से अर्चना, तप तथा श्रम करता रहा। उसने अपने में ही प्रजा-उत्पत्ति की, शक्ति धारण की। प्रजापति ने स्वयं के मुख से देव उत्पन्न किये। देवों को सृजकर उसके लिए प्रकाश हो गया उससे उसने दिन उत्पन्न किया। देव द्यौ लोक में चले गए। और प्रजापति के नीचे के प्राण से असुर उत्पन्न हुए उनके उत्पन्न होते ही पृथिवी अन्धकार-सा छा गया। असुरों को उत्पन्न करके जो उसे अन्धेरा मिला उससे उसने रात उत्पन्न की। इस प्रकार दिन और रात हुए।

प्रजापतिर्वाऽइदमऽआसीत्।.....पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौः।[35]

पहले अकेला प्रजापति था। उसने चाहा कि मैं सन्तान वाला हो जाऊँ। उसने श्रम किया, तप किया। उसके श्रम और तप से तीन लोक उत्पन्न हुए-पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ।

स यथोर्णवाभिस्तन्तुनोच्चरेत्।.....सत्यं तेषामेषसत्यम् ॥2 3॥[36]

यहाँ दृष्टान्त के माध्यम से बताया गया है कि जैसे मकड़ी स्वयं अपने से ही जाल का निर्माण करती है। अग्नि से छोटी-छोटी चिंगारियाँ निकलती है, उसी प्रकार इस आत्मा से सब प्राण, सब लोक, सब इन्द्रियाँ (देव), सब भूत आदि निकलते हैं। ये सभी तत्त्व कही बाहर से न आकर अपने परमतत्त्व से निःश्वसित ही उत्पन्न होते है।

प्रजापतिर्ह वाऽएतेनाग्रे यज्ञेनेते।.....यज्ञेन यजते तस्माद्वाऽएतेन यजेत।।2।।[37]

प्रजापति ने पहले प्रजा की कामना से यह यज्ञ किया। उसने सोचा-'मैं बहुत प्रजा और पशुओं से युक्त हो जाऊँ, उसने सोचा कि मुझे श्री मिले, यशस्वी प्राप्त हो, अन्न पचानेवाला हो जाऊँ'॥1॥ जो उत्पन्न हुआ उसका नाम दक्ष था। उसने यज्ञ किया और इस यज्ञ से उस प्रजापति ने जो सन्तान उत्पन्न की, जो श्री और विभूति प्राप्त की। इस प्रकार प्रजापति की इच्छा से ही सृष्टि की उत्पत्ति सम्भव हो पायी।

वंशों का वर्णन-

'अथ वंशः। समानमा.....ब्रह्मस्वयम्भु ब्रह्मणे नमः'॥9॥[38]

शतपथ ब्राह्मण में यहाँ सभी आचार्यों की वंशावली के बारे में बताया गया है। यहाँ पर जो वंशावली बतायी गयी है उसमें ब्रह्म से सांजीवीपुत्र तक का वर्णन किया गया है। सांजीवीपुत्र नेमाण्डूकायनि से, माण्डूकायनि ने माण्डव्य से, माण्डव्य ने कौत्स से, कौत्स ने माहित्थि से, माहित्थि ने वामकक्षायण से, वामकक्षायण ने वात्स्य से, वात्स्य ने शाण्डिल्य से, शाण्डिल्य ने कुश्रि से, कुश्रि ने यज्ञवचस्

राजस्तम्बायन से, यज्ञवचस् राजस्तम्बायन ने तुर कावषेय से, तुर कावषेय ने प्रजापति से,प्रजापति ने ब्रह्म से। ब्रह्म स्वयंभु है। इसलिए उस ब्रह्म को नमस्कार हो।

अथ वंश:। तदिदं वयंशौर्पणाय्याछौर्पणाय्यो.....ब्रह्म स्वयम्भु ब्रह्मणे नम: ॥28॥ [39]

यहाँ वंशों का क्रम बताया गया है सबसे पहले शौर्पणाय्य थे। शोषणाप्यगौतम के द्वारा, गौतमवात्स्य के द्वारा, वात्स्य पाराशर्य के द्वारा, पाराशर्यसांकृत्य भारद्वाज के द्वारा, भारद्वाज औदवाहि शाण्डिल्य के द्वारा,शाण्डिल्य वैजवाप गौतम के द्वारा, गौतम वैजपायन वैष्टपुरेय के द्वारा, वैष्टपुरेयशाण्डिल्य रोहिणायन के द्वारा, ...सनारु सनातन के द्वारा, सनातनसनग के द्वारा,सनगपरमेष्ठी के द्वारा, परमेष्ठी ब्रह्म स्वयं के द्वारा इस प्रकार यहाँ वंश का विस्तार से विवेचन किया गया है। [40]

यहाँ निष्कर्षत: कहा गया है कि इतिहास और पुराण का जो वर्णन प्राप्त होता है, उन सभी का दृष्टान्त शतपथ ब्राह्मण में परिलक्षित है। इस प्रकार से यहाँ इतिहास और पुराण को विस्तार से चर्चा की गयी है और जिसमें शतपथ ब्राह्मण के चौदह अध्यायों में इतिहास व पुराण के बारे में जो भी व्याख्या की गए है उसे विस्तार से यहाँ बताने की कोशिश की गयी है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची-

- माध्यन्दिन शाखीयम् शतपथ-ब्राह्मणम्, ब्रजबिहारी चौबे, भारतीय विद्या प्रकाशन,दिल्ली, 1989
- शतपथ ब्राह्मण, गङ्गाप्रसाद उपाध्याय, महालक्ष्मी पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली,1970
- (माध्यन्दिन) शतपथ-ब्राह्मण, सत्यप्रकाश सरस्वती, रत्नकुमारी पब्लिशर्स, नईदिल्ली, 1969
- शतपथ ब्राह्मण, पं0 श्री चन्द्रधर शर्मा, अच्युत ग्रन्थमाला, काशी, संवत्-1944
- शतपथ-ब्राह्मण, स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती (हिन्दी व्याख्या) दयानन्द संस्थान,नई दिल्ली, 1973
- शतपथ-ब्राह्मण, पं0 भगवद्दत्त कृत हिन्दी भाष्य, प्रणव प्रकाशन, पंजाबी बाग,दिल्ली, 1965
- माध्यन्दिन-शतपथब्राह्मणम्, सायणाचार्यविरचित वेदार्थ-प्रकाशाख्यसमेतम्, (दोभाग) हिन्दी व्याख्याकार एवं संपादक, प्रो0 युगल किशोर मिश्र, सम्पूर्णानन्द-संस्कृत- विश्वविद्यालय, वाराणसी, 2004
- Eggeling, Julius, The Satapatha-Brahma?a : English Translationaccording to the te&t of the Madhyandina School, (secondreprint), Motilal Banarasidass, Delhi, 1966.
- शतपथ-ब्राह्मण में आचार, डॉ0 मीरा रानी रावत, परिमल पब्लिकेशन दिल्ली,(प्रथम संस्करण) 2009
- वैदिक व्याख्या पद्धति में शतपथ ब्राह्मण का योगदान, डॉ. पुष्पा सिंह, जे0पी0 पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, (प्रथम संस्करण), 2005

सन्दर्भ सूची -

1. तै.भा.भू. सम्पा.बलदेव उपाध्याय,पृ2
2. मीमांसा सूत्र, शाबर भाष्य 2/18
3. मिश्र,माध्यांदिन-शतपथब्राह्मणम् (प्रथमो भाग:), भूमिका, पृ.-36
4. मिश्र,माध्यांदिन-शतपथब्राह्मणम् (प्रथमो भाग:), भूमिका, पृ.-37
5. मिश्र,युगलकिशोर, माध्यंदिन-शतपथ-ब्राह्मणम् (प्रथमोभाग:) भूमिका पृ-31,शतपथ-ब्राह्मण, भूमिका, एगलिंग द्वारा सम्पादित एवं ऑक्सफोर्डसे मुद्रित,पृ.-80
6. Macdonell,A.A.,History of Sanskrit Literature,p.212
7. श.ब्रा.1।1।3।5
8. श.ब्रा.1/2/3/1-5
9. श.ब्रा.
10. श.ब्रा.1/4/1/10-14
11. श.ब्रा.1/4/5/8-13
12. श.ब्रा.1/5/4/6-16
13. श.ब्रा.1/8/1
14. श.ब्रा.1/9/1/24-28
15. श.ब्रा.3/2/1/18-28
16. श.ब्रा.3/6/2/15-26
17. श.ब्रा.11/5/1/1-17
18. वा. पु. 4/10
19. श.ब्रा.2/2/2/19
20. श.ब्रा.2/2/4/1
21. श.ब्रा.2/4/4/1
22. श.ब्रा.1/2/5/1
23. यजु.8/36
24. श.ब्रा.3/9/1/6
25. श.ब्रा.5/1/3/10
26. श.ब्रा.8/4/3/20
27. निरु.10/42
28. श.ब्रा.1/8/1/7-10
29. श.ब्रा.2/1/4/11-14
30. श.ब्रा. 2/2/4/1-11
31. श.ब्रा.10/1/3/1-4
32. श.ब्रा.6/1/3/1-2
33. श.ब्रा.6/1/1/1-15
34. श.ब्रा.11/1/6/1-12
35. श.ब्रा.11/5/8/1
36. श.ब्रा.14/5/1/23
37. श.ब्रा.2/4/4/1-2
38. श.ब्रा.10/6/5.9
39. श.ब्रा.14/7/3/26-28
40. श.ब्रा.(भाग-3)पृ.-499

ISSN 2278 - 0327

द्विवेदी एवं तिलक युग में हिन्दी समाचार पत्र

डॉ. आशा यादव
एसो. प्रो., विभागाध्यक्ष इतिहास विभाग
एम. एम. (पी. जी.) कॉलेज, मोदीनगर, गाजियाबाद (उ. प्र.)

बीसवी सदी के प्रथम दो दशक (1900-1920 ई0) हिन्दी साहित्य में द्विवेदी युग-महावीर प्रसाद द्विवेदी-के नाम से प्रसिद्ध है। इस युग की हिन्दी पत्रकारिता का मूलस्वर साहित्यिक होते हुए भी अंग्रेजी सरकार के प्रति प्रहारात्मक एवं राष्ट्रभक्ति से परिपूर्ण था।[1] इसी समय बालगंगाधर तिलक के दृढ़ संकल्प का प्रभाव पत्रकारिता पर भी पड़ा। पहले के पत्रकार जहाँ राष्ट्रीय चेतना के बीच राजभक्ति का पुट देना आवश्यक समझते थे, वहाँ इस युग की भूमिका राजभक्ति के विज्ञापन से पूर्णतया पृथक ही रही। तिलक ने न केवल देश के लक्ष्य की प्रतिच्छाया उपस्थित की, अपितु उसके भावों के स्वयं प्रतीक बने गये।[2] इसलिए इस युग को तिलक युग के नाम से भी जाना जाता है।

द्विवेदीयुगीन हिन्दी पत्रकारिता का शुभारंम्भ 1900 में इलाहाबाद से प्रकाशित मासिक पत्रिका 'सरस्वती' से हुआ। उच्चस्तर की आधुनिक पत्रकारिता का उन्नयन 'सरस्वती' द्वारा ही हुआ।[3] अनेक हिन्दी पत्रों का प्रकाशन हुआ जिनमें तत्कालीन राजनीतिक जीवन को स्पर्श करने वाली रचनायें थी। 'सुदर्शन' काशी से, 'राजपूत' एवं 'स्वदेश बाँधव' आगरा से, 'क्षत्रिय हितैषी' एवं 'वेद प्रकाश' मेरठ से तथा 'हितवार्ता', 'मनोरंजन' आदि साप्ताहिक पत्र भी बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक दो दशकों में प्रकाशित हुए।[4] इस युग की राजनीतिक धारा जो स्वदेशी आन्दोलन के रूप में पूरे देश में वह रही थी के प्रति राष्ट्रीय चेतना को उत्तेजित करती हुई 'सरस्वती' की निम्न पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं- ''*अपना बोया आप ही खावें, अपना कपड़ा आप बनावें*।''[5]

अत: द्विवेदीयुगीन हिन्दी पत्रकारिता ने हिन्दी साहित्य के विकास के साथ ही राजनीतिक चेतना के निर्माण में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया।[6] इस युग में राजनीतिक पत्रों, साहित्यक पत्रों एवं अनेक सामाजिक-धार्मिक पत्रों को अलग-अलग करने की प्रवृत्ति भी प्रकट हुई। राजनीति के क्षेत्र में स्वराज्य आन्दोलन की उग्रता बढ़ाने में हिन्दी के पत्रों ने बढ़कर योगदान दिया। पत्रों के लेखन में तो गति आई ही, उनका स्तर भी बढ़ा।[7]

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में लार्ड कर्जन ने भारतीय विचारधारा को विघटित करने का हर सम्भव प्रयत्न किया क्योंकि विदेशी शासन के प्रति असन्तोष जगाने के लिए बंगाल में प्रयत्न हो रहे थे। अत: लार्ड कर्जन ने बंगाल को दो भागों में बाँट दिया जिससे उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में राष्ट्रीय असन्तोष की जो अग्नि सुलग रही थी वह बंग-भंग योजना के परिणामस्वरूप वृहद् जनान्दोलन के रूप में भड़क उठी। 1905 में जापान की विजय ने सम्पूर्ण भारत, विशेषत: बंगाल को नई शक्ति एवं प्रेरणा प्रदान की।[8] बंग-भंग विरोधी आन्दोलन देशव्यापी हुआ। इसके अन्तर्गत विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार एवं सत्याग्रह राष्ट्रीय आन्दोलन का एक नया चरण ही बन गया। महाराष्ट्र में इसका नेतृत्व गर्मदलीय लोकमान्य तिलक कर रहे थे एवं बंगाल में विपिनचन्द्रपाल, श्री अरविन्द घोष एवं श्री रविन्द्रनाथ ठाकुर।[9] देशभक्ति की एक नई धारणा मूर्त हुई। आन्दोलन की प्रक्रिया गहरी और देशव्यापी हुई। स्वतंत्रता सेनानियों का वंदेमातरम् युद्धनाद बन गया। पूरे देश में उत्तेजना की लहर दौड़ गई और स्वदेशी आन्दोलन की गति निरन्तर तेज होती गई। स्वदेशी वस्त्र भंडार खुलने लगे। आन्दोलन की व्यापकता ने पूरे देश को प्रभावित किया।[10]

अत: बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक वर्ष लार्ड कर्जन के प्रतिगामी शासन एवं कुकृत्यों के लिए प्रसिद्ध है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में लार्ड कर्जन का प्रतिक्रियावादी शासनकाल (1899-1905) एक महान सीमा चिन्ह को अंकित करता है।[11] लार्ड कर्जन के शासनकाल में ही 1898 के ऐक्ट में समाचारपत्रों की आलोचना के सम्बन्ध में जिन बातों को अपराध बतलाया गया था, उसमें यह भी जोड़ दिया गया कि ऐसी समालोचनाएँ जिनमें विधि-निर्मित सत्ता अथवा सरकार के प्रति अनास्था अथवा घृणा हो, दंडनीय है।[12]

इस दमन नीति के कारण नवजागृत चेतना भी सचमुच व्यापक, विस्तृत एवं गहरी होती गई। लोकमान्य का ''स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है'' का नारा देश भर में गूँज उठा।[13] इस समय अपने

राजनीतिक विचरों को सामान्य जनता तक पहुँचाने में तिलक ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। तिलक के प्रभाव से राजनीतिक दर्शन की प्रस्तुति क्रान्तिकारी एवं आतंकवादी आंदोलन के रूप में हुई क्रान्तिकारियों द्वारा स्थापित ''अनुशीलन समिति'' ने मार्च 1906 में ''युगान्तर'' नामक पत्र निकाला।[14] कालान्तर में ''संध्या'', ''नवशक्ति'', एवं ''वन्देमातरम्'' जैसे क्रान्तिकारी पत्रों का प्रकाशन बंगाल से, क्रान्तिकारियों ने किया। इन पत्रों द्वारा क्रान्तिकारी आतंकवाद का प्रचार किया गया तथा जनता को धार्मिक व राजनीतिक शिक्षा देकर क्रान्ति करने के लिए प्रोत्साहित किया गया।[15] 1907 में अम्बिका प्रसाद वाजपेयी ने कलकत्ता से ''नृसिंह'' मासिक निकाला जो उग्र राजनीतिक विचारधारा का समर्थक था।[16] देशकाल की उग्र राजनीतिक धारा के प्रवाह में इलाहाबाद से 1907 में ही पं0 मदनमोहन मालवीय का साप्ताहिक पत्र ''अभ्युदय'' प्रकाशित हुआ।[17] ''अभ्युदय'' की स्थापना ऐसे समय में हुई जब मालवीय जी गंगातट पर हिन्दु विश्वविद्यालय स्थापित करने का स्वप्न साकार करना चाहते थे।[18] विश्वविद्यालय स्थापति करने की भावना, अपने राजनैतिक तथा सांस्कृतिक विचारों को प्रचारित करने[19] व कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में नरमदल की नीतियों के विरोध के कारण तथा नरमदल की नीतियों को प्रमुखता देने हेतु ही उन्होंने ''अभ्युदय'' का प्रकाशन किया।[20] ''अभ्युदय'' का प्रथम अंक 1907 में बसन्त पंचमी को प्रकाशित हुआ।[21] इस पत्र का नामकरण पं0 बालकृष्ण भट्ट ने किया था।[22] ''अभ्युदय'' संस्कृत भाषा का शब्द है अत: उच्चारण में कठिन प्रतीत हुआ,[23] किन्तु उच्चारण के साथ नाम की भी सार्थकता थी। आर्थिक कठिनाईयों के बीच रहते हुए भी मालवीयजी ने दो वर्ष तक इसका सम्पादन किया।[24] पंडित शिवनाथ शर्मा के सम्पादकत्व में ''आनन्द'' और गोपालखत्री का ''नागरी प्रचारक'' लखनऊ से और पंडित कृषिराम का ''भारतभूमि'' मुरादाबाद से 1907 में ही प्रकाशित हुए। 1908 में कालांकाकर से ''सम्राट'' नामक दैनिक एवं इलाहाबाद से 'भारतवासी'' साप्ताहिक प्रकाशित हुए।[25] पं0 सुन्दरलाल ने इलाहाबाद से 1909 में कर्मयोगी का प्रकाशन किया। यह पत्र भी उग्र विचारों का समर्थक था। इसी वर्ष ''सनातन धर्म'' साप्ताहिक एवं ''भारतोदय'' नामक पत्र भी प्रकाशित हुए।[26]

क्रान्तिकारियों द्वारा स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु प्रारम्भ हिसांपरक राजनीतिक धारा ने जहाँ देश में नवीन चेतना का सृजन किया, वहीं ब्रिटिश सरकार को चौकन्ना भी कर दिया। फलस्वरूप सरकारी दमनचक्र की प्रक्रिया तेज हो गई और सरकार द्वारा दमन के लिये विभिन्न प्रकार के राजकीय कानूनों की रचना हुई। भारतीय पत्रकारिता की स्वाधीनता पर आघात करने वाले दो कानून-1908 में ''न्यूजपेपर्स ऐक्ट'' इन साइटमेंट टू अर्फेसेज'' और 1910 में ''इंडियन प्रेस ऐक्ट'', पास किए गए।[27] इन कानूनों ने समाचारपत्रों की स्वतंत्रता पर बड़ा आघात किया। ''कर्मयोगी'' और ''हिन्दी प्रदीप'' का प्रकाशन बन्द हो गया।[28] 1910 में कुछ पत्रों का प्रकाशन भी हुआ यथा- ''नवजीवन'' काशी से, ''प्रजाबंधु'' मथुरा से और ''सुधांशु'' आगरा से तथा 1912 में राजामहेन्द्र प्रताप का ''प्रेम'' वृन्दावन से प्रकाशित हुआ। यद्यपि इन पत्रों का जीवनकाल अल्प ही रहा, फिर भी ये पत्र हिन्दीपत्रकारिता को सरकारी दमननीति के समक्ष चुनौती के रूप में प्रतिष्ठापित करते हैं।[29] 1913 में कानपुर से गणेशशंकर विद्यार्थी द्वारा साप्ताहिक ''प्रताप'' का प्रकाशन हिन्दी पत्रकारिता और भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में एक ऐतिहासिक घटना है।[30] विद्यार्थी जी के पत्र का उद्देश्य था देश के स्वाभिमान तथा देश को स्वतन्त्रता दिलाने के लिए सर्वस्व नौछावर करने वाले कार्यकर्ता पैदा करना।[31] ''प्रताप'' से ही भगतसिंह को प्रेरणा मिली। रामप्रसाद बिस्मिल, चन्द्रशेखर आजाद, भगतसिंह आदि क्रान्तिकारी नेताओं का इसने निरन्तर पोषण किया। किसानों का पक्ष-पोषण करने के कारण विद्यार्थी जी को कारावास की सजा भी मिली फिर भी वह लिखते रहे।[32]

प्रथम विश्वयुद्ध :-

प्रथम विश्वयुद्ध के प्रारम्भ होने पर देश में जो राजनीतिक प्रतिक्रिया हुई उसका प्रभाव पत्रों पर भी पड़ा। युद्धकाल के समाचारों को जानने क सामान्य-जन की उत्कंठा ने हिन्दी भाषी क्षेत्रों की हिन्दी पत्रकारिता पर व्यापक उत्तरदायित्व का बोझ डाल दिया। इस समय हिन्दी के अनेक उच्चकोटि के राजनीतिक साप्ताहिक पत्रों का प्रकाशन हुआ। यद्यपि इसी समय ''भारत रक्षा अधिनियम'' जैसे कानूनों द्वारा ब्रिटिश सरकार द्वारा समाचारपत्रों की स्वतंत्रता की सीमा को और संकुचित कर दिया गया। दमनात्मक कार्यवाहियों के बावजूद पत्रों का विकास निरन्तर होता रहा। युद्धकाल के दौरान प्रकाशित हुए दो पत्र ''अवधवासी'' और ''हिन्दी केसरी'' उल्लेखनीय है।[33] इसी वर्ष बनारस से ''हिन्दी केसरी[34] व ''अवध केसरी'' प्रकाशित हुए जो सार्वजनिक हित के पत्र थे।[35]

1915 में राजनीतिक दृष्टि से उल्लेखनीय कोई पत्र प्रकाशित नहीं हुआ परन्तु युद्ध की निरन्तर माँग के फलस्वरूप साप्ताहिक ''अभ्युदय'' का दैनिक संस्करण प्रकाशित हुआ।[36]

काशी के पुराने साप्ताहिक ''भारत जीवन'' का स्वरूप भी कुछ दिनों के लिए दैनिक रूप में हो गया।[37] इसी समय क्षेत्रीय पत्र भी प्रकाशित हुए, ये थे- 1916-18 में मथुरा से ''मथुरा-

समाचार''गोरखपुर से ''ज्ञान-शक्ति'' और 1917-18 में बिजनौर से ''निर्बल-शक्ति'', हाथरस से ''भारतबन्धु'', अल्मौड़ा से ''शक्ति'' उरई से ''उत्साह'', मथुरा से ''मथुरागजट'', आगरा से ''सत्यवादी'' और काशी से द्विदैनिक ''सूर्य''। कालान्तर में इन पत्रों ने स्वतंत्रता संग्राम के परिपेक्ष्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।[38] मेरठ से ''देवनागर'' और काशी से ''प्रहलाद'' पत्र का प्रकाशन हुआ।[39] इस काल की पत्रकारिता ने जहाँ राजनीतिक जागरण को नेतृत्व प्रदान किया वहीं बौद्धिक मानसिकता को भी प्रतिबिम्बित किया।

गाँधीयुग:-

प्रथम विश्वयुद्ध के समाप्त होते ही भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के नये युग का सूत्रपात हुआ जिसका नेतृत्व युग पुरुष महात्मा गाँधी के हाथों में था। इस युग ही हिन्दी पत्रकारिता को अनेक दुरूह मार्गों से गुजरना पड़ा किन्तु यह भी सत्य है कि इस समय उसने हिन्दी पत्रकारिता स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए राष्ट्रीयता और स्वतंत्रता के मंत्र का निरन्तर उद्घोष किया। फलस्वरूप जनता का असन्तोष राजनीतिक आन्दोलन का रूप धारण करने लगा।[40]

जिस समय पूरे देश में 1918 की रौलेट कमेटी[41] की रिर्पोट ने देश के राजनीतिक वातावरण को उत्तेजित किया, ऐसे ही राजनीतिक वातावरण में, जबकि भारतीय राजनीति सुधार और संशोधनों का मार्ग त्यागकर स्वातंत्र्य युद्ध का शंखनाद करने जा रहे थे, युग पुरुष महात्मा गाँधी का भारतीय राजनीति के रंगमंच पर आर्विभाव हुआ। स्वातंत्रय युद्ध के इस दौर में आन्दोलन के प्रमुख नेता थे गाँधी और गाँधीवाद इसका दर्शन था।[42] 1915 में इन्हें सरकार की ओर से ''केसर-ए-हिन्द'' स्वर्ण पदक भी प्राप्त हुआ था। 1919 तक वे सरकार के साथ सहयोग के पक्ष में थे।[43] परन्तु 1919 के रौलेट बिल से उन्हें अत्यन्त पीड़ा पहुँची। वे इसे राष्ट्रीय अपमान का प्रतीक समझते थे। अत: उन्हें सरकार से निराशा मिली। उदारवादी और उग्रवादी- दोनों ही ने रौलेट रिर्पोट और उसकी व्यवस्थाओं का तीव्र विरोध किया। अत: गाँधी जी भी सरकार से असहयोग करने को तैयार हो गए।[44] उनके नेतृत्व में रौलेट बिल विरोधी जनाक्रोश सत्याग्रह आन्दोलन के रूप में पूरे देश में फैल गया। सरकारी जन विरोधी नीति, दमन के दामन और स्वतंत्रता के महत्व का प्रचार पत्र-पत्रिकाओं का लक्ष्य बन गया। गाँधी जी स्वयं भी सिद्धहस्त पत्रकार थे। उन्होंने ''हरिजन'' एवं ''नवजीवन'' का प्रकाशन करके राष्ट्रीय आन्दोलन में सहयोग दिया। इन पत्रों में छपा एक-एक शब्द राष्ट्र के लिए आदर्श सिद्धान्त बन गया।[45]

1919 के प्रारम्भ में महात्मागाँधी ने ''सत्याग्रह सभा'' की स्थापना की और 27 फरवरी 1919 को सत्याग्रह प्रण जारी किय जिसमें उन्होंने रौलेट विधेयक को अन्यायपूर्ण, स्वतंत्रता व न्याय के सिद्धान्तों का विध्वसैंक तथा नागरिकों के मूलभूत अधिकारों पर कुठाराघात बताया।[46] सक्रिय विरोध हेतु उन्होंने सत्याग्रह आन्दोलन के प्रारम्भिक चरण में सरकारी कानूनों की अवज्ञा हेतु निषिद्ध पुस्तकों की बिक्री एवं बिना रजिस्ट्रेशन के समाचारपत्रों के प्रकाशन का सुझाव दिया।[47] उन्होंने बिना रजिस्ट्रेशन के ''सत्याग्रह'' नामक पत्र का प्रकाशन किया। पत्र के प्रथम अंक (7 अप्रैल 1919) में उन्होंने सत्याग्रह केन्द्र पर हस्तलिखित बिना रजिस्ट्रेशन के समाचारपत्रों की आवश्यकता पर जोर दिया था।[48] इस प्रकार महात्मा गाँधी ने पत्रों को वैचारिक क्रान्ति का माध्यम बनाया।[49]

इस प्रकार महात्मा गाँधी के अविर्भाव के फलस्वरूप स्वतंत्रता संग्राम को नई दिशा मिली। ब्रिटिश सरकार के कार्यों एवं नीतियों की कटु आलोचना एवं भर्त्सना करके लोक भावना को उत्तेजित करने में पत्रों ने अविस्मरणीय भूमिका निभाई।[50] जनमत के व्यापक विरोध के बावजूद सरकार ने रौलेट विधेयकों को कानून रूप देने के लिए फरवरी 1919 में केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में प्रस्तुत कर दिया और 21 मार्च से यह लागू हो गया। गाँधी जी ने देश के विभिन्न भागों का दौरा किया और भारतवासियों को हड़ताल करने को कहा।[51] पत्रों पर भी इस घोषणा का प्रभाव पड़ा। गाँधीयुग में हिन्दी पत्रकारिता को स्वर देने वाले प्रमुख राजनीतिक केन्द्र कानपुर, इलाहाबाद, अल्मोड़ा, गढ़वाल, हाथरस, मथुरा, आगरा, बिजनौर, गोरखपुर, वाराणसी, लखनऊ और उरई (जालौन) थे।[52]

1919 में माखनलाल चतुर्वेदी ने जबलपुर से ''कर्मवीर'' नामक साप्ताहिक पत्र निकाला जो कुछ दिन बाद 1920 में खंडवा से निकला। उसके सम्पादकीय में अंग्रेजों के विरूद्ध आग बरसती थी। व्यापक राष्ट्रीय संवेदना एवं शाश्वत मूल्यों को विद्रोह के स्तरपर समन्वित करने की चेष्टा से ''कर्मवीर'' पत्रों की एक विराट उपलब्धि कहा जा सकता है।[53] ''कर्मवीर'' से प्रभावित होकर आगरकर जी ने राष्ट्रीय पत्र ''स्वराज्य'' निकाला। इसी समय दिल्ली से ''विजय'' नामक साप्ताहिक भी निकला।[54]

सन् 1919 में ही इलाहाबाद से ''भविष्य'' प्रकाशित हुआ। 7 फरवरी 1919 में इसका सम्पादन पं0 सुन्दर लाल ने किया।[55] प्रकाशन के समय ही इससे 1500 रूपये की जमानत माँगी गई परन्तु इसक निकलने के कुछ ही महीनों बाद उक्त धनराशि जब्त कर ली गई और 5000 रूपये की पुन: जमानत माँगी गई।[56] इसी समय अल्मोड़ा से पं0 ब्रदीदत्त पांडे ने ''शक्ति'' का प्रकाशन किया।

यह भी उग्र राजनीतिक विचारधारा का साप्ताहिक पत्र था। 1918 में प्रकाशन से पूर्व इससे 1000 रूपये की जमानत सरकार ने ली। विभिन्न अवसरों पर इसकी रचनाऐं सरकार के लिए कष्टदायी होती थी।[57] अप्रैल 1919 में स्वदेशी की भावना से ओत-प्रोत ''स्वदेश'' (उत्तर प्रदेश) का प्रकाशन हुआ। उग्र विचारों के कारण ''स्वदेश'' जन्म से मृत्यु तक सरकार का कोप भोजन बना रहा। प्रकाशन से पूर्व ही उससे 500 रूपये की जमानत माँगी गई थी।[58] प्रकाशन के समय ही इसकी प्रसार संख्या 1100 हो गई थी।[59] इसके उग्र विचारों का प्रभाव देश में ही नहीं अपितु विदेशों में रह रहे भारतीयों पर भी था इसीलिए इसकी प्रतियाँ उनके द्वारा मँगवाई जाती थी।[60]

1919 में अंग्रेजी शासन के विरूद्ध जो आन्दोलन हुए उनकी जानकारी के लिए हिन्दीभाषी क्षेत्रों में स्वाभाविक रूप से उत्सुकता बढ़ी। अतएव सरकारी प्रतिबंधों के बावजूद हिन्दीपत्रों की संख्या में वृद्धि हुई। प्रमुख मासिकों में थे- ''संसार'' (कानपुर), किसान (फतेहपुर), ''सेवा'' (प्रयाग), ''हिमालय'' (रानीखेत), अल्मोड़ा।[61] स्वार्थ एवं हिन्दी ''मनोरंजन''। ''स्वार्थ'' के प्रथम सम्पादक पं0 जीवनशंकर याज्ञिक थे। हिन्दी में अपने स्वर का यह प्रथम पत्र था। इसका लक्ष्य जातीय जागृति उत्पन्न करना था।[62]

1920 में देश की राजनीति में युगान्तकारी परिवर्तन आया। खिलाफत, पंजाब के अत्याचारों एवं अपर्याप्त सुधारों के कारण तथा जनता में फैले असन्तोष के कारण कांग्रेस द्वारा गाँधीजी के नेतृत्व में अहिंसात्मक असहयोग की नीति को स्वीकृत किया गया। ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध प्रभावयुक्त, सामूहिक एवं सीधी कार्यवाही के लिए व्यग्र जनता को इस कार्यक्रम ने आन्दोलन का नया शस्त्र प्रदान किया। इस समय अमृतसर के गाँधी विरोधी भी परिवर्तित परिस्थितियों में उनके पक्षधर बन गये थे।[63] सन् 1920 देशी की राजनीति के साथ-साथ हिन्दी पत्रकारिता के विकासकी दृष्टि से भी अत्यधिक उल्लेखनीय वर्ष रहा है।[64] गाँधीवादी आन्दोलन ने क्षेत्रीय पत्रकारिता को भी प्रभावित किया। फलस्वरूप इस समय विभिन्न भाषाओं में अनेक पत्र प्रकाशित हुए जिन पर गाँधीवादी विचारों का प्रभाव था और जो सत्याग्रह आन्दोलन के प्रति समर्पित थे।[65] ''संसार'' एवं ''प्रताप'' (कानपुर)[66] एवं ''हिन्दी मनोरंजन'' के सम्पादकों पर सरकारी प्रहार हुआ और उनसे 500 रूपये की जमानत माँगी गई।[67] 1919 में सरकारी कोप दृष्टि का शिकार होने के कारण साप्ताहिक ''भविष्य'' का प्रकाशन बन्द हो गया किन्तु 14 मई सन् 1920 से दैनिक ''भविष्य'' का प्रकाशन सार्वजनिक प्रेस इलाहाबाद से हुआ। इसके सम्पादक पं0 सुन्दरलाल थे। इसके शीर्षक आकर्षित करने वाले एवं भाषा सरकार के प्रति निन्दात्मक होती थी।[68] भारतीय राष्ट्रीयता के इस नवजागरण काल में 5 सितम्बर 1920 को शिवप्रसाद गुप्त ने दैनिक ''आज'' का प्रकाशन किया। इस पत्र को निकालने का उद्देश्य यह था कि ''आज'' को लन्दन के ''टाइम्स'' जैसा प्रभावशाली पत्र बनाया जा सके।[69] हिन्दी पत्रकारिता को उन्नत एवं विकसित करने, उसके आदर्श स्वरूप की प्रतिष्ठा करने एवं स्वातंत्रता् संग्राम के महायज्ञ में पुण्याहुति देने में ''आज'' ने एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।[70] ''आज'' का प्रकाशन हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास में एक युगान्तकारी घटना थी।[71] ''आज'' के आरम्भिक सम्पादक श्री श्रीप्रकाश एवं स्व0 बाबूराव पराडकर थे। श्री श्रीप्रकाश जहाँ गाँधीवादी आदर्शों के प्रतीक थे, वहीं पराड़कर जी पत्रकारिता की क्रान्तिकारी गतिविधियों से सम्बद्ध थे।[72]

1920 में ही कानपुर से दैनिक ''वर्तमान'' का प्रकाशन हुआ। इसके सम्पादक कानपुर के प्रख्यात स्वतन्त्रता सैनानी प0 रमाशंकर अवस्थी थे।[73] सरकारी सूत्रों के अनुसार ''वर्तमान'' का प्रकाशन 22 अक्टूबर 1920 को पंडित रमाशंकर अवस्थी ने असहयोग आन्दोलन को व्यापक समर्थन देने हेतु किया था। उग्रवादी लेखों के कारण इसे सरकार द्वारा उग्रवादी पत्रों की सूची में रखा गया था।[74] यद्यपि ''वर्तमान'' अभावग्रस्त परिस्थितियों में प्रकाशित हुआ परन्तु उसने राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति स्वयं को समर्पित कर दिया। जमानत, चेतावनी, अंकों की जब्ती से लेकर कारावास तक की विपदाएं उसे झेलनी पड़ी। जन्म से मृत्यु तक सरकार की दमन नीति का शिकार होना पड़ा।[75] 1920 में ही कानपुर से एक और दैनिक पत्र ''लोकमत'' का प्रकाशन हुआ।[76] 21 अक्टूबर 1920 के साप्ताहिक ''साहस'' का प्रकाशन झाँसी से हुआ। इसके सम्पादक श्री रामेश्वर प्रसाद शर्मा थे। उग्र विचारों व असहयोग इस पत्र को प्रकाशन से पूर्व एक हजार रूपये की जमानत माँगी गई।[77] इसके लेखों में सकरार के कार्यों एवं नीतियों की कटु आलोचनाएँ प्रकाशित होती थी।[78] साप्ताहिक ''श्रद्धा'' का प्रकाशन 24 अप्रैल 1920 को बिजनौर से हुआ। यह भी सरकार की उग्रपत्रों की सूची में था।[79] 1920 में ही राजनीतिक दृष्टि से उल्लेखनीय अन्य साप्ताहिकों में ''सुधाकर'' (आगरा), ''हिन्दुस्तानी अखबार'' (प्रयाग) ''अंहिसा'' (वाराणसी) प्रकाशित हुए।[80]

राजनीतिक जागृति के फलस्वरूप इस वर्ष जहाँ पत्रों के प्रकाशन में नई जागृति आई वहीं उनकी प्रसार संख्या में भी वृद्धि हुई।[81] उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि भारत में आधुनिक पत्रकारिता का जन्म अठाहरवीं शताब्दी के अन्तिम चरण अर्थात् 1780 में कलकत्ता से हुआ था व इसी के साथ ही ब्रिटिश शासकों की

भारतीय पत्रकारिता के प्रति दमनकारी कार्य-वाहियाँ भी प्रारम्भ हो गई थी।[82] परन्तु राजामोहनराय, श्यामसुन्दर सेन, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि प्रबुद्ध भारतीयों ने इन अवरोधों के मध्य संघर्ष करते हुए भारतीय पत्रकारिता को नींव को न केवल आधार प्रदान किए अपितु उसके विकास को राष्ट्रीय विकास से सम्बद्ध भी किया। हिन्दी पत्रकारिता का शुभारम्भ ''उदन्तमार्तण्ड'' (पंडित जुगल किशोर शुक्ल) के प्रकाशन से हुआ। 1857 के पूर्व तक हिन्दी पत्रकारिता का विकास संकुचित रहा। क्रान्ति के बाद के पत्रों में स्वातन्त्राकांक्षा की प्रबल भावना निहित थी।[83] इसके पश्चात् हिन्दी पत्रकारिता भारतेन्दु, द्विवेदी एवं तिलक युग में प्रविष्ट हुई। अनेक कठिनाई, सरकारी कानूनों एवं अग्रेजी पत्रों द्वारा सरकारी समर्थन के बावजूद स्वंतत्रता की भावना से प्रेरित हिन्दी पत्रकारिता अपने उद्देश्यों से विचलित हुए बिना निरन्तर देश सेवा करती रही। इसलिए 1920 में हिन्दी पत्रकारिता अपने चरमोत्कर्ष पर थी।[84]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ब्रह्मानन्द, भारतीय स्वतंत्रता आंदोलनऔर उत्तर प्रदेश की हिन्दी पत्रकारिता, पुष्ठ -43।
2. गोडबोले, नारायण वासुदेव, मराठी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 19
3. भटनागर, रामरतन , द राइज एंड ग्रौथ ऑफहिन्दी जर्नलिज्म
4. 1. ब्रहमानन्द, पृष्ठ -43
   2. व्यास, लक्ष्मीशंकर, हिन्दी पत्रकारिता के युग निर्माता,
5. 'सरस्वती', जुलाई-1903
6. ब्रह्मानन्द, पृष्ठ -51
7. पूर्वोक्त, पृष्ठ -51
8. पूर्वोक्त, पृष्ठ-42
9. भानावत, संजीव, प्रैस कानून और पत्रकारिता, पृष्ठ -27
10. ब्रह्मानन्द, पृष्ठ-42
11. पूर्वोक्त, पृष्ठ-41
12. सिंह, गुरूमुख निहाल सिंह, लैंड मार्क्स इन इंडियन कॉस्टीट्यूशनल एंड नेशनल डेवलेपमैंट, 2003-1, पृष्ठ-125,126
13. ब्रहमानन्द, पृष्ठ-44
14. मजूमदार, आर. सी. स्ट्रगल फार फ्रीडम (हिस्ट्र एंड कल्चर ऑफदि इंडियन पिपुल)
15. चक्रवर्ती, तारिणीशंकर, भारत में सशस्त्र क्रांति की भूमिका, पृष्ठ-125-40
16. 1. जोशी , बी. वी., पृष्ठ-139
    2. व्यास लक्ष्मीशंकर, महामना मालवीय और हिन्दी पत्रकारिता, पृष्ठ-64
17. भटनागर, रामरतन, पृष्ठ-24, 28
18. चतुर्वेदी, सीताराम, पंडित मदन मोहन मालवीय, पृष्ठ-21
19. 1. लाल, मुकुट बिहारी, महामना मदन मोहन मालवीय: जीवन और नेतृत्व, पृष्ठ-298
    2. व्यास, लक्ष्मीशंकर, पृष्ठ-63
20. परमानन्द, महामना मदन मोहन मालवीय:, पृष्ठ-72
21. 1. अभ्युदय, 23 जनवरी 1926, पृष्ठ-1, कॉलम-3
    2. अभ्युदय, 18 दिसम्बर 1926, पृष्ठ-2, कॉलम-3
    3. लाल, मुकुटबिहारी, पृष्ठ-293-94
    4. परमानन्द, पृष्ठ-72
    5. व्यास, लक्ष्मीशंकर, पृष्ठ-11
    6. भटनागर, रामरतन, पृष्ठ-25
    7. वयास, सुनीत, मदन मोहन मालवीय, पृष्ठ-50
    8. साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', 4 जनवरी, 1987, पृष्ठ-53
22. 1. व्यास, लक्ष्मीशंकर, पृष्ठ-8
    2. परमानन्द, पृष्ठ-72
23. 'अभ्युदय' नाम के सम्बन्ध में मदन मोहन मालवीय जी का कहना था कि जब भारतीय अंगेजी एवं फारसी के बड़े कठिन शब्दो को शुद्ध रीति से उचारण करने में प्रशंसा पा सकते है, तो उन्हे संस्कृत के इस कोमल शब्द के उच्चारण में बहुत समय तक कठिनाई मालूम न होगी।-व्यास, लक्ष्मीशंकर, पृष्ठ-6
24. बसन्त पंचमी को प्रारम्भ होने वाले -अभ्युदय' पत्र के प्रथम अंक में मदन मोहन मालवीय जी ने अभ्युदय शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा'' यह शब्द सुखमय, कल्याणमय और उपदेशमय है।''
    मालवीय जी के स्पष्ट किया कि पृथ्वी मंडल पर जितने पर्वत है उनमें सबसे ऊँचा नगाधिराज हिमालय है। हमारी अभिलाषा है कि हमारे देश का अभ्युदय भी उतना ऊँचा हो''
    1. व्यास, लक्ष्मीशंकर, पृष्ठ-6,7
    2. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 4 जनवरी 1987, पृष्ठ-53
    3. द्विवेदी कृष्णकान्त, भारतीय पुनर्जागरण एवं मदन मोहन मालवीय, पृष्ठ-13,14
25. वाजपेयी, अम्बिका प्रसाद, समाचार पत्रो का इतिहास, पृष्ठ-250, 259
26. 1. ब्रह्मानन्द, पृष्ठ-48
    2. व्यास लक्ष्मीशंकर, पृष्ठ-56
27. प्रथम कानून समाचार पत्रों द्वारा हिंसा को उत्तेजना प्रदान करने वालों से सम्बद्ध था, इसमें प्रकाशन पर रोक का प्रावधान था। दूसरे कानून की सीमाएँ अधिक व्यापक थी। पत्र में सरकार के प्रति घृणा फैलाने पर 5000 रूपये की जमानत, प्रेस जब्ती, पुनः नई जमानत माँगने का प्रावधान था।
    1. नटराजन, एस हिस्ट्री ऑफदि प्रेस इन इण्डिया, पृष्ठ-357-65
    2. वार्न्स, मारग्रेट, दि इण्डिन प्रेस, पृष्ठ-439-41
28. केर, जेम्स कैम्पबेल, पोलिटिकल 'ट्रबुल्स' इन इण्डिया, पृष्ठ-374
29. ब्रह्मानंद, पृष्ठ-50
30. 'प्रताप' के प्रथम, अंक में उसकी नीति को स्पष्ट किया गया-''आज अपने हृदय में नई-नई आशाओं को धारण करके और अपने उद्देश्यों पर पूर्ण विश्वास रखकर 'प्रताप' कर्मक्षेत्र में आता है। समस्त मानव-जाति का कल्याण हमारा परमोद्देश्य है और इस उद्देश्य की प्राप्ति का एक बहुत बड़ा और बहुत जरूरी साधन हम भारत की उन्नति को समझते है।
    -शास्त्री, देवव्रत, गणेशशंकर विद्यार्थी, पृष्ठ-118,19
31. कल्याण, परमोद्देश्य है।
32. जोशी, बी.बी., हिन्दी पत्रिकाओं में राष्ट्रीय काव्य चेतना पृष्ठ-41
33. ब्रह्मानंद पृष्ठ-52
34. 1907 में लोकमान्य तिलक के 'केसरी' (अंग्रेजी) से प्रभावित होकर पं0 माधव सप्रे ने हिन्दी भाषा में नागपुर ''हिन्दी केसरी'' पत्र निकाला। 1908 में तिलक 'केसरी' के लेखो के कारण 1909 में यह पत्र बन्द हो गया। बनारस का 'हिन्दी केसरी' उसी का प्रतिरूप था। ब्रह्मानंद पृष्ठ-52
35. वाजपेयी, अम्बिका प्रसाद, पृष्ठ-277

36. 1. ब्रह्मानंद पृष्ठ-52
    2. 1915 में ही 'अभ्युदय' से 2 हजार रूपये की जमानत माँगी गई थी किन्तु उसने जमा नही कराई। सरकार को अपनी आज्ञा वापस लेनी पड़ी।
    - भटनागर, रामरतन , पृष्ठ-275
    - परमानन्द पृष्ठ-44
    - अभ्युदय, 19 सितम्बर 1930 , पृष्ठ-1, कॉलम-1
37. भटनागर, रामरतन , पृष्ठ-271
38. मेमोरेंडम आन न्यूजपेपर्स, यू0पी0 1918 , पृष्ठ-2,3 (उ0 प्र0) अभिलेखागार, उद्धृत- ब्रह्मानंद, पृष्ठ-52
39. ब्रह्मानंद, पृष्ठ-52
40. 1. पूर्वोक्त, पृष्ठ-52
    2. व्यास, लक्ष्मीशंकर, पृष्ठ-82
41. 'सेडीशन कमेटी' या रोलेट-कमेटी' 1917 के अन्त में भारत सरकार द्वारा ब्रिटिश विचारपति सर एस. ए. टी. रौलेट की अध्यक्षता में गठित की गई थी।-सिंह, जी.एन. पृष्ठ-327,328
42. ब्रह्मानन्द, पृष्ठ-65
43. रोलाँ, रोमा, महात्मा गाँधी, पृष्ठ-13
44. लावेट, सर बर्नी, हिस्ट्री आफॅद इण्डिन नेशनलिस्ट मूवमेन्ट, पृष्ठ-196
45. 1. ब्रह्मानन्द, पृष्ठ-66
    2. व्यास, लक्ष्मीशंकर, पृष्ठ-72
46. तेन्दुलकर, डी. जी. महात्मा: लाइफऑफमोहनदास कर्मचन्द्र गाँधी, खण्ड-2 पृष्ठ-240-41
47. पूर्वोक्त, पृष्ठ-242, 43
48. पूर्वोक्त, पृष्ठ-249
49. उन्होने 'इण्डिन ओपिनियन' जैसे प्रसिद्ध पत्र का सम्पादन भी किया। -राव, एम., चिलपथ, दि प्रेस इन इण्डिया, पृष्ठ-144
50. ब्रह्मानंद, पृष्ठ-72
51. कारखानीस, शरद, इण्डिन पालिटिक्स एंड द रोल ऑफदि प्रेस पृष्ठ-66
52. ब्रह्मानंद, पृष्ठ-66
53. जोशी , बी. बी. पृष्ठ-141
54. पूर्वोक्त, पृष्ठ-141-42
55. मेमोरेंडम आन न्यूज पेपर्स यू.पी. 1919
    द्रष्टव्य-होम पुलिस (ए) फा. 740/1921, पृष्ठ-3 (उ0 प्र0 अभिलेखागार)
56. होम पुलिस (ए) फा0 740/1921, पृष्ठ-10 (उ0 प्र0 अभिलेखागार) उद्धृत-ब्रह्मानंद पृष्ठ-68
57. होम पुलिस (ए) फा0 274/1921, पृष्ठ-453 (उ0 प्र0 अभिलेखागार) उद्धृत-ब्रह्मानंद पृष्ठ-69
58. 1. 'स्वदेश', 6 अप्रैल 1919 (प्रोमोपहार अंक)
    2. होम पुलिस (ए) फा0 274/1919, पृष्ठ-559 एवं होम पुलिस (ए) फा. 270/1921, पृष्ठ-11, (उ0 प्र0 अभिलेखागार) उद्धृत ब्रह्मानंद पृष्ठ-71
59. होम पुलिस (ए) फा. 274/1919, पृष्ठ-559, (उ0 प्र0 अभिलेखागार) उद्धृत ब्रह्मानंद पृष्ठ-71
60. वैदिक, वेद प्रताप, पृष्ठ-133
61. वाजपेयी, अम्बिका प्रसाद, पृष्ठ-291,292
62. 1. 'स्वार्थ' वर्ष-1, खण्ड-1, पृष्ठ-सम्पादकीय
    2. ब्रहमानन्द पृष्ठ-60
63. 1. नारद, कैलाश, पृष्ठ-73
    2. कारखनीस, शरद, पृष्ठ-66
64. भटनागर, रामरतन, पृष्ठ-357
65. नटराजन, एस. , पृष्ठ-190,191
66. होम पुलिस (ए) फा. 274/1919, पृष्ठ-389, (उ0 प्र0 अभिलेखागार) उद्धृत ब्रह्मानंद पृष्ठ-80
67. 1. होम पुलिस (ए) फा. 274/1919, पृष्ठ-278, एवं फा. 79/1920 पृष्ठ-61 (उ0 प्र0 अभिलेखागार)उद्धृत ब्रह्मानंद पृष्ठ-80
    2. कारखानीस, शरद, पृष्ठ-66
68. होम पुलिस (ए) फा. 274/1919, पृष्ठ-26,27 (उ0 प्र0 अभिलेखागार) उद्धृत ब्रह्मानंद पृष्ठ-78
69. बार्न्स, एस. पृष्ठ-347
70. तिवारी, रामचन्द्र , पत्रकारिता के विभिन्न रूप, पृष्ठ-48
71. पत्र के प्रथम अंक में प्रकाशित पत्र के नीति विषयक सिद्धान्तो की घोषणा द्रष्टव्य है-
    'हमारा उद्देश्य अपने देश के लिए सर्व प्रकार से स्वतंत्र्य उपार्जन है। हम हर बात में स्वतंत्र होना चाहते है। हमारा लक्ष्य यह है कि हम अपने देश का गौरव बढ़ाये, अपने देशवासियों मे स्वाभिमान का संचार करे। उनको ऐसा बनाये कि भारतीय होने का उन्हे अभिमान हो, संकोच नहीं। यह स्वाभिमान स्वतंत्रता देवी की उपासना से मिलता हे।
    - 'आज', 5 सितम्बर 1920, सम्पादकीय
    2. ब्रह्मानन्द, पृष्ठ-85
72. 1. व्यास, लक्ष्मीशंकर, पृष्ठ-34,35
    2. तिवारी- रामचन्द्र- पृष्ठ-48
73. होम पुलिस (ए) फा. 740/1921, पृष्ठ-24, (उ0 प्र0 अभिलेखागार) उद्धृत ब्रह्मानंद पृष्ठ-86
74. पूर्वोक्त, पृष्ठ-26, ब्रह्मानंद पृष्ठ-86
75. ब्रहमानन्द पृष्ठ-88
76. 1. वाजपेयी, अम्बिका प्रसाद, पृष्ठ-293
    2. परन्तु इसका विवरण अन्यत्र नही मिलता है। हाँ, लखनऊ में 'लोकमत' की सूचना सरकारी पत्रों में है, जो दो हजार रूपये की जमानत न दे पाने के कारण प्रकाशित न हो सका-ब्रहमानन्द, पृष्ठ-88
77. होम पुलिस (ए) फा. 740/1921, पृष्ठ-20, (उ0 प्र0 अभिलेखागार) उद्धृत ब्रह्मानंद पृष्ठ-89
78. ब्रहमानन्द, पृष्ठ-89
79. होम पुलिस (ए) फा0 740/1921, पृष्ठ-24, (उ0 प्र0 अभिलेखागार) उद्धृत ब्रह्मानंद पृष्ठ-89
80. पूर्वोक्त, पृष्ठ-89
81. दैनिक ''आज'' और ''भविष्य '' की प्रसार संख्या दो-दो हजार तथा ''प्रताप'' और ''वर्तमान'' की तीन-तीन हजार प्रसार संख्या थी। साप्ताहिकों में ''प्रताप'', 'हिन्दी केसरी', 'स्वदेश', 'उत्साह', 'अवधवासी' आदि पत्रों की संख्या में भी वृद्धि हुई।
    होम पुलिस (ए) फा. 740/1921, पृष्ठ-22, (उ0 प्र0 अभिलेखागार) उद्धृत ब्रह्मानंद पृष्ठ-89
82. भानावत, संजीव, पृष्ठ-1
83. व्यास, लक्ष्मीशंकर, पृष्ठ-26,29
84. ब्रह्मानंद, पृष्ठ-104

ISSN 2278 - 0327

आत्म-साक्षात्कार के विचार में आध्यात्मिक जीवन की प्रासंगिकता

डॉ. सोमनाथ दास
सहकारी आचार्य, संस्कृत विभाग
आशुतोष कॉलेज, कलिकाता -700026 (प.व)

मानवता मानव जीवन की आधारशिलाओं में से एक है। 'मनुष्य बनना सीखना' का विषय उतना आसान नहीं है, जितना कि यह प्रतीत होता है। लेकिन व्यवस्थित तरीके से हो सकता है। इसलिए, इस विषय पर बहुत ही कुशल तरीके से संपर्क करना आवश्यक है। यदि सत्यं शिवं सुंदरम् की स्थापित अवधारणा को दूर तक फैलाना चाहते हैं या यदि वे स्वयं को आध्यात्मिक जीवन से जोड़ना चाहते हैं, तो उन्हें मानव जीवन के आंतरिक और बाह्य विकास में सक्रिय होना चाहिए। जब समग्र विकास प्राप्त हो जाता है, तो जो प्रवाह देखा जाता है वह प्रकट होता रहता है और हमें विकास की दिशा में ले जाता है। यद्यपि 'आत्म-साक्षात्कार' की यह धारणा विशुद्ध रूप से व्यक्तिगत चरमोत्कर्ष पर बनी है, विषय का संदर्भ, अर्थात् अवतार, सार्वभौमिकता का संकेत है। इसलिए, आध्यात्मिक जीवन में जीवन की भावना को विकसित करना सबसे अच्छा है।

किसी विषय के दायरे का विश्लेषण करने के लिए, पहले विषय को समझना आवश्यक है। अगर कोई विषय दिल से आसानी से समझ में आता है या अगर विषय को दिल में जगह मिल जाती है तो वह बोधगम्य हो जाता है। भावनाएं मानव इंटीरियर को विकसित करने के लिए गठबंधन करती हैं। आध्यात्मिक जीवन में ईश्वरीय विचार का मूल्य अथाह है। भावनाएं मानव मानसिक दृष्टिकोण या ध्यान संबंधी विचारों के विकास में भी भूमिका निभाती हैं। जब हम बड़े क्षेत्रों में डूबे होते हैं, तब भी हम उस विषय के साथ एक बोधगम्य संबंध विकसित करते हैं। इसलिए कोई विषय जितना हमारे साथ जुड़ा होगा, हमारे साथ उसकी स्वीकार्यता उतनी ही बढ़ेगी। इस मामले में एक सुधारात्मक संदर्भ और प्रासंगिक लाना। जब किसी विषय का संबंध सांस्कृतिक बाढ़ के भीतर बनता है, तो उसकी दिशा और चौड़ाई दूर-दूर तक फैल जाती है। यदि मन में प्रकट आंतरिक चेतना को सही तरीके से उत्तेजित किया जा सकता है, तो ध्यान की भावना को सही तरीके से विकसित करना संभव हो जाता है। हमारे विचारों और दिमागों में और जब हम कुछ ठीक करने के बारे में सोचते हैं, तब भी हम भावना के द्वार पर होते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं है, कभी-कभी हम अनुभव के संचय में अपना अनुभव पाते हैं। आधुनिक संदर्भ में, ईमानदार महसूस करना बहुत प्रासंगिक है।

आध्यात्मिक जीवन पर ध्यान केंद्रित करने का पहला और सबसे महत्वपूर्ण प्रयास भावनात्मक विकास करना है। विचार - इस मुद्दे को मजबूत करने की जरूरत है ताकि कोई बाधा इसे छू न सके या यह कहा जा सकता है कि जब हम मुश्किल समय में होते हैं या जब कोई बुरा समय हमें घेर लेता है, तो उस जगह का विचार और मोक्ष हमारी मदद के लिए आना चाहिए। जिस तरह हम तकनीक में महारत हासिल करके समृद्धि प्राप्त कर सकते हैं, उसी तरह हम इंद्रियों पर और अपने भीतर महारत हासिल करके इसे बढ़ाने का प्रयास करते हैं। हम यह भी जानते हैं कि कभी-कभी हमारे अंदर बुरे विचार उत्पन्न हो जाते हैं या विचारों का संरचनात्मक रूप हमारे सामने ठीक से प्रकट नहीं हो पाता है, जिसके परिणामस्वरूप बाधाएँ हमारे भीतर मौजूद प्रतीत होती हैं। ऐसे में हमें काफी परेशानियों का सामना करना पड़ता है। फिर जब मैं सटीक कारण का निरीक्षण करने गया, तो मैंने देखा कि भावना में पूर्णता नहीं देखी गई। अत: विचार की भावना का विकास आध्यात्मिक जीवन में, अर्थात् जीवन के सही तरीके में समान रूप से उपयोगी है। हमारा विकास तभी संभव होगा जब हम उदारता, मानवता और अहिंसा को जगह देंगे। हमें यह याद रखना चाहिए कि हम इस दुनिया में बेहतरी के लिए आए हैं। इसके बारे में हम सभी को सोचना होगा। हमें सबके साथ जाना है। हम कभी भेदभाव नहीं चाहते।

उस वैदिक सभ्यता के आरंभ से ही हम परम सत्य की

खोज में रहे हैं। कभी वह हीरे के रूप में हमारे सामने प्रकट होता है तो कभी वह प्रकाश के रूप में प्रकट होता है। सत्य का रूप जो भी हो, वह शाश्वत है। जब हम अपने आप को आध्यात्मिक विचार में विसर्जित करते हैं, तो हमें सत्य की प्रकृति का पता लगाना होता है या सत्य को अनुभूति की कुंजी के रूप में मानना पड़ता है। जीवन में सत्य का मूल्य अनंत है। यदि कोई सत्य की खोज में नौसिखिया है, यदि वह अपने मन और दिमाग में सत्य का सम्मान करता है, और अपने आप को असत्य या झूठ से दूर रखता है, तो उसकी सफलता के द्वार जल्द ही खुल जाएंगे। सत्य को मानसिक और मौखिक दोनों रूप से तैयार करना महत्वपूर्ण है। यदि सत्य का मार्ग उसे उपलब्ध हो तो कोई भी बाधा उसे छू नहीं सकती। वह अतीत की खतरनाक जगह से आसानी से छुटकारा पा लेगा। महाभारत – रामायण के युग में और हम सत्य की विजय की घोषणा करते हुए देखते हैं। यदि हम विभिन्न धर्मशास्त्रीय शास्त्रों पर ध्यान दें, तो हम उस स्थान पर समान प्रतिबिंब पाएंगे, इसलिए हमें हर समय सत्यं शिवं सुंदरम् की स्थापना करनी है।

एकता की भावना लोगों को बेहतर दिशा में आगे बढ़ना सिखाती है। हम अनादि काल से एकता की छवि को देखते आ रहे हैं। एकता का विचार इतना प्रबल है कि अगर हम इस विचार के अधीन हैं, तो हम एक पल के लिए भी अलग होने के बारे में नहीं सोच पाएंगे। एकता की भावना वर्तमान संदर्भ में प्रासंगिक है। आध्यात्मिक जीवन का मार्ग इतनी आसानी से उपलब्ध नहीं है। इसलिए, यदि कोई अपने आप को आध्यात्मिक जीवन के मार्ग में संलग्न करता है, तो उसे अपने आप को एक महान विचार के अधीन करना होगा। और इस बड़े विचार में सफल होने के लिए, हम एकेश्वरवाद का मार्ग मुख्य सहायक के रूप में पाते हैं। कहने की जरूरत नहीं है कि इस एकता की अभिव्यक्ति हमें धार्मिक, सांस्कृतिक और विभिन्न मतभेदों को छूने की अनुमति नहीं देती है। फलत: राज्य उन्नति करता है। अपने समय से मुनि-ऋषियों और वैदिक मंत्रों में भी हम एकता के प्रतिबिंब का निरीक्षण करते हैं।

सार्वभौमिकता के मंत्र में डूबे रहने और विश्व शब्द से जुड़ने के लिए मनुष्य में चेतना का जागरण आवश्यक है। चेतना की धारा के परिवर्तन से चेतना को व्यक्त करना बहुत महत्वपूर्ण है। जागरूकता पैदा करना वांछनीय है। बहुत बार हम अपने ब्रह्मांड में ऐसी चीजें होते हुए देखते हैं जो शायद वांछनीय नहीं रही हों, कभी-कभी उस विषय की ओर बहती हुई और जीवन में गिरती रहती हैं, इसलिए हम अपनी चेतना को हमेशा जगाए रखेंगे। जागरूकता के परिणामस्वरूप, किसी विषय या किसी चीज़ की बात आने पर ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया बहुत आसान हो जाती है। न ही ज्ञान प्राप्ति के मार्ग में कोई बाधा है। आध्यात्मिक जीवन की अवधारणा तैयार करने के साथ-साथ जागरूकता पैदा करना बहुत जरूरी है। चिंतन के संयोजन से, जब हम ध्यान या खोज पर ध्यान केंद्रित करते हैं, लेकिन चेतना का लगाव बिल्कुल वांछनीय हो जाता है। जागरूकता मन को नियंत्रित करने की क्षमता प्राप्त करती है और आसानी से विभिन्न भेदभावपूर्ण दृष्टिकोणों से खुद को रोक सकती है। इससे इंद्रियों का क्रमिक विकास होता है। मानव मानसिक ध्यान के मामले में, यानी विकास और चेतना के महत्व में बहुत अधिक है। यही कारण है कि महापुरुषों ने धर्म और जाति के बावजूद सभी के बीच जागरूकता की बात की है। किसी विषय को व्यवस्थित करने के बाद उसे अनुशासित नियमों की बाढ़ में डाल दिया जाए तो विषय का विचार मजबूत हो जाता है। जब हम आध्यात्मिक जीवन पर ध्यान केंद्रित करते हैं, तो हम देखते हैं कि जीवन की भावना संयम के इर्द-गिर्द बनती है। यदि जीवन को संयम से पोषित किया जा सकता है, तो जीवन के मूल्य की अवधारणा को भी बहुत खूबसूरती से विकसित होते देखा जाता है। अराजकता कभी भी जीवन को समृद्धि और कल्याण की ओर नहीं ले जा सकती है, इसलिए सबसे पहले व्यवस्था की जरूरत है। एक व्यक्ति जितना व्यवस्थित भक्ति में डूबा रह सकता है, वह जीवन की पवित्रता और परिपूर्णता का आनंद ले सकता है। तो अगर हम अपने जीवन में संयम के साथ आगे बढ़ते हैं, तो हमें कभी भी भटकना नहीं है। इस प्रकार आध्यात्मिक जीवन के क्षेत्र में ध्यान, चिंतन और विचारों का विकास विषय के बारे में मजबूत विचारों को जन्म देता है। इस विकासात्मक सन्दर्भ के फलस्वरूप मानवीय चिंतन के पहलुओं को बहुत ही सुन्दर ढंग से फलते-फूलते देखा जाता है। नतीजतन, मानव सह-अस्तित्व के पहलुओं को अच्छी तरह से विकसित किया गया है। आत्मज्ञान के मामले में मानवीय चिंतन की जरूरत है। इस संबंध में ज्ञान की पद्धति को प्रकट करने का पहलू भी उल्लेखनीय है। इसलिए ज्ञान की प्राप्ति, सृजन और अनावरण का पहलू और आध्यात्मिक जीवन का निर्माण बहुत महत्वपूर्ण है। जितना अधिक व्यक्ति स्वयं को जानता है, उतना ही वह स्वयं को जानने में सक्षम होगा। यह एक सामान्य प्रथा है। विभिन्न शास्त्रों, आत्मकथात्मक उपन्यासों से हमें मूल्यों के विभिन्न पहलू मिलते हैं। यदि आध्यात्मिक जीवन के विभिन्न आधारों को ठीक से तैयार

किया जाए, तो जीवन का मार्ग मजबूत और मजबूत हो जाता है। हम इस जीवन में कई ज्ञान प्राप्त करने के लिए नौसिखिए हैं। लेकिन सबसे बढ़कर आत्मज्ञान की जरूरत है। यदि हम हमेशा आत्म-ज्ञान के रहस्योद्घाटन की ओर देख सकते हैं, तो ज्ञान का अभ्यास और बहु कल्याण प्राप्त होगा। इसलिए, छात्रों के लिए अपने छात्र दिनों से आत्म-जागरूकता की भावना विकसित करना महत्वपूर्ण है।

भारत अनादि काल से आध्यात्मिक शक्ति के मामले में सबसे आगे रहा है। भारत और अन्य देश इस आध्यात्मिक शक्ति के आगे झुक रहे हैं। यदि एक नेक इंसान अपने काम में नौसिखिया बनना चाहता है और अपने प्रयासों में सफलता के द्वार तक पहुँचना चाहता है, अगर उसे इस आध्यात्मिक शक्ति के बारे में बताया जा सकता है, तो शायद उसकी राह आसान हो जाएगी। उस समय हम देखते हैं कि आध्यात्मिक शक्ति वह शक्ति है जो कई विचारकों की गतिविधियों और कार्यों में प्रकट होती है। यदि इस आध्यात्मिक शक्ति का मानव जीवन में कभी अनावरण हो सके तो समाज में उसकी एक अलग पहचान बन जाएगी। दरअसल हम सब इसी ऊर्जा की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं। अवचेतन मन को समझ में नहीं आता है कि हम अपने जीवन को अचेतन चादर के अंधेरे में ले जाने के लिए इस ऊर्जा पर कब निर्भर हैं। यदि मानव जीवन में इस ऊर्जा का प्रभाव हमारे हृदय के बीज से अंकुरित नहीं होता, तो हम कभी भी अच्छे कर्म नहीं कर पाते।

एक स्वस्थ सामान्य मनुष्य में सदैव एक ही दिव्य शक्ति होती है। इस दैवीय शक्ति के कारण मनुष्य अपने ही क्षेत्र में है। ऐसे में उसकी सभी गतिविधियाँ एक आध्यात्मिक शक्ति के आधार पर संचालित की जा रही हैं। इसके उदाहरण के रूप में हमने श्रीमद्भगवत गीता में कई बार उल्लेख किया है, जहां भगवान् कृष्ण ने अर्जुन के माध्यम से सभी मनुष्यों को सिखाया है कि मेरी कृपा के बिना कोई भी कुछ भी नहीं कर सकता है। तो यह कृपा मानव जीवन में एक प्रकार की आध्यात्मिक शक्ति है।

अधिकांश समय निर्जीव बुद्धि वाले लोग इस शक्ति को नहीं बल्कि इस शक्ति को स्वीकार करना चाहते हैं जो लोगों को बेहतर से बेहतर की ओर ले जा सकती है। मनुष्य अपने पिछले जन्म की अच्छाई की शरण में जा रहा है और आत्म शक्ति के प्रभाव में प्रसिद्ध होकर सभी के द्वारा पूजनीय हो रहा है। सभी क्रियाओं के पीछे जो शक्ति छिपी है वह आध्यात्मिक शक्ति के अलावा और कुछ नहीं है।

संसार में जितने भी जीव हैं, उनमें से सबसे उन्नत व्यक्ति है विचारक। कुशल अंत:करण और चेतना को जगाकर और सबके बीच समरसता की छवि स्थापित करके आगे बढ़ने के लिए स्वाभिमानी होना जरूरी है। मानव जीवन में दयालु होना बहुत जरूरी है। यदि हमारा मन जटिलता से भरा है, तो हम किसी के स्वामी नहीं हो सकते, हम वास्तविक मनुष्य नहीं हो सकते। जटिल सोच हमारे दिमाग को संकुचित करती है। संकीर्णता की अभिव्यक्ति के प्रकट होने के बाद हम कभी भी वास्तविक लोगों के रूप में अपनी पहचान नहीं बना पाएंगे। प्रगति के पथ पर एक स्वस्थ सामान्य मानव जीवन जीने के लिए, हमें अपने मन को शुद्ध करना चाहिए। और यह संकीर्णता कभी किसी को प्रेम करना नहीं सिखाती। उदार मन के लोग हमेशा सभी के लिए प्रेम के मार्ग पर चलते हैं। इस उदार मानवीय विचारधारा से अवगत होने के लिए उसे अपने मन को शुद्ध करना होगा। मन की शुद्धि के बिना मनुष्य कभी भी अच्छे कर्मों में नौसिखिया नहीं हो सकता। जिस प्रकार पारदर्शी दर्पण में हमारा प्रतिबिंब दिखाई नहीं देता, उसी प्रकार यदि हम अपने प्रतिबिम्ब दर्पण को सुंदर और पारदर्शी बना सकते हैं, तो हम सभी लोगों को अपने हृदय दर्पण से देख सकते हैं। सच्चा समझदार व्यक्ति आदर्श व्यक्ति बन जाता है। यदि हम भारतीय परंपरा में वैदिक युग की शुरुआत को देखें, तो हम अपने सामने बहुत स्पष्ट रूप से देख सकते हैं कि उस समय मानव मन की पवित्रता कितनी सुंदर और मानवीय थी। मानवता की यह भावना हृदय की पवित्रता से प्रकट होती है। जिस दिन से मनुष्य ने आत्म-साक्षात्कार करना सीख लिया है, उसने चित्रमय दर्पण को धीरे-धीरे रगड़ना सीख लिया है। इसलिए लोग आत्म-साक्षात्कार के हाथ से अपने मन को स्पष्ट करने के प्रयास में आगे बढ़ रहे हैं। वास्तविक आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करने के लिए, लोगों को अपने मन को शुद्ध करना होगा। मनुष्य अपने मन को शुद्ध किए बिना कभी भी कोई अच्छा काम शुरू नहीं कर सकता, और वह कभी भी अच्छे काम के लिए खुद को समर्पित नहीं कर सकता। आत्म-साक्षात्कार विकसित नहीं कर सकता। और जो आत्म-साक्षात्कार की भावना को नहीं जगाता, उसके हृदय में कभी भी सुधार का विचार व्यक्त नहीं होता है। मुझे आत्म-साक्षात्कार के लिए मन की पवित्रता चाहिए।

वैदिक काल से लेकर आज तक मनुष्य धर्म के इस कहावत शब्द का आश्रय लेकर अपने जीवन पथ पर चलता रहा है। क्रिया का दूसरा नाम जीवन है। नौसिखिए बनने के लिए जीवन में कुछ अच्छा करने के लिए उसे प्रयास के माध्यम से इस रास्ते

पर चलना होगा। बिना प्रयास के कोई भी कार्य सिद्ध नहीं हो सकता। आत्म-त्याग करने वाला व्यक्ति जीवन के मुख्य लक्ष्य तक पहुँचने के लिए सदैव अग्रसर रहता है। उनकी मानवीय भावना आत्म-प्रयास से विकसित हुई। मानव जीवन में वास्तविक अंत:करण के पूर्ण होने पर ही कोई व्यक्ति समाज में एक पूर्ण मानव के रूप में जाना जा सकता है, यदि वह अपने हृदय की गहराइयों से कार्य-नैतिकता को जगा सकता है और यदि वह आत्म-प्रयास के हाथ से साकार करने के लिए आगे बढ़ता है यह। वास्तविक मानवीय भावना का जागरण आत्म-प्रयास के कर्म के माध्यम से ही प्रकट होने लगता है। सुधार का विचार उस व्यक्ति का ध्यान कभी नहीं खींचता जो अपने जीवन में प्रयास का कोई निशान नहीं दिखाता है। सार्वभौमिक कल्याण के बारे में सोचने के लिए उसे आत्म-प्रयास के मार्ग का अनुसरण करना चाहिए।

अगर कोई अपने विवेक को कभी नहीं जगाता है, तो किसी भी काम के लिए प्यार और सहानुभूति पूरी तरह से नहीं जाग्रत होती है। मानव जीवन में आत्म-प्रयास की नितांत आवश्यकता है। इस प्रयास के बिना कोई अपने आप को कल्याण जैसी महान विचारधारा के साये में नहीं रख सकता।

सोच विचार मानव जीवन में लोग हमेशा विचारों में ही मग्न रहते हैं। यह बेचैन मानसिकता पूरी तरह से व्यक्ति केंद्रित है। हालाँकि, वैदिक समाज की शुरुआत से, मानव जीवन का विचार निरपेक्ष आत्मा के प्रति समर्पण था। लोगों ने तब सब कुछ समग्र रूप से सोचा। वह अपना जीवन सभी के कल्याण का ध्यान करते हुए व्यतीत करते थे। यह संसार विश्व के कल्याण के लिए चिन्तित रहेगा। आत्म-साक्षात्कार के विचार में आध्यात्मिक जीवन की विचार प्रक्रिया में जिस प्रकार मनुष्य ने अपने आप में आध्यात्मिक ऊर्जा का अस्तित्व खोजना सीख लिया है, वह धीरे-धीरे अपनी प्रगति की सीढ़ी पर आगे बढ़ा है। आध्यात्मिक शक्ति के जागरण के मार्ग पर वैदिक समाज के सार्वजनिक जीवन में भी अच्छी बुद्धि के विचार देखे जाते हैं। लोग तब आत्म-प्रयास के माध्यम से विश्वदृष्टि में नौसिखिए बनने लगे। जब दुनिया भर के लोगों ने सभी के शुभचिंतकों के बारे में सोचना सीख लिया है। विश्व दरबार में भारत के विद्वानों ने आगे बढ़ने का मंत्र सिखाया है।

वे आत्म-साक्षात्कार और आध्यात्मिक विचार में इतने उन्नत हैं कि प्रत्येक मनुष्य भारत की इस शिक्षा का सदैव ऋणी है।

सन्दर्भ सूची :

1. डॉ. चक्रवर्ती, नीरदवरण, भारतीय दर्शन, दत्त पब्लिसर्श, कलकाता।
2. सेन, देवब्रत, भारतीय दर्शन, पश्चिमबङ्ग राज्यपुस्तक पर्षद, कलकाता ।
3. भट्टाचार्य, अमित, भारतीय दर्शनेर रूपरेखा, संस्कृत वुक जितो , कलकाता ।
4. वागची, दीपक कुमार, भारतीय दर्शन, प्रगतिशील प्रकाशक, कलकाता ।
5. सेनगुप्त, प्रमोदवन्धु, नीतिविज्ञान ओ भारतीय दर्शन , व्यानार्जी पब्लिशर्स ।
6. Dasgupta,S,N, A History of Indian Philosophy. Cambridge University Press.

ISSN 2278 - 0327

भारत में बेरोजगारी की समस्या

डॉ. हरेश नारायण पाण्डेय
सहायक प्राध्यापक
समाजशास्त्रीय अध्ययन विभाग
दक्षिण बिहार केंद्रीय विश्वविद्यालय, गया (बिहार)

शोध सार

प्रस्तुत शोध की विवेचना का प्रयास दो प्रमुख भागों में किया गया है। प्रथम भाग में भारत के बेरोजगारी की समस्या, उसके कारणों, प्रकारों तथा परिणामों की व्याख्या की गई है। इसके साथ-साथ इस समस्या के सैद्धांतिक आधारों का भी वर्णन इसी प्रथम भाग में किया गया है। दूसरे भाग में सरकार द्वारा बेरोजगारी के नियंत्रण हेतु उठाए गए प्रयासों, योजनाओं व कार्यक्रमों का वर्णन किया गया है।

प्रमुख शब्द- बेरोजगारी, कारण, प्रकार, कार्यक्रम व योजनाएं

भारत में बेरोजगारी : कारण, प्रकार व परिणाम

आज बेरोजगारी भारतीय समाज की एक बड़ी समस्या है। सभी नागरिकों को उनकी क्षमता व शिक्षा के आधार पर निर्धारित रोजगार मिले यह एक लोकतांत्रिक देश के लिए और भी जरूरी हो जाता है। सभी व्यक्ति को रोजगार हेतु समान अवसर प्राप्त हो यह सब के लिए इस रूप में आवश्यकता है कि वह इससे अपनी प्रस्थिति (स्टेट्स) अर्जित कर सके। समाज में अर्जित प्रस्थिति की प्राप्ति व्यक्ति की योग्यता का सूचक है। वैसे तो व्यक्ति को उसके परिवार, जाति या उम्र से भी प्रदत्त प्रस्थिति की प्राप्ति समाज में होती है पर यह उसकी योग्यता को नहीं दर्शाता है। बेरोजगारी की समस्या हर समाज में इस रूप में बढ़ती गई है कि इसे समाज की बड़ी समस्या मान करके सरकारों ने इसे अपने हाथ में ले लिया। समाज में वह व्यक्ति बेरोजगार कहा जाएगा जिसमें काम करने की निहित क्षमता और इच्छा दोनों होने पर भी उसको वैतनिक काम नहीं मिल पाता है। समाजशास्त्र में बेरोजगारी इस प्रकार से समझा जाता है कि एक व्यक्ति को अपने 15-59 वर्ष के जीवन में उसकी इच्छा के विरुद्ध वैतनिक कार्य से अलग रखा जाता है। वैसे तो भारत में योजना आयोग ने उस व्यक्ति को बेरोजगार बताया है जो एक दिन या एक सप्ताह तक बिना काम के रहता है। आई०एल०ओ० ने उस व्यक्ति को रोजगार युक्त या कार्यरत बताया है जो पांच दिन या एक सप्ताह में 2 दिन या 15 घंटे तक का कार्य करता है। सामान्यतया बेरोजगारी के तीन तत्व माने जाते हैं - व्यक्ति में काम करने की इच्छा, काम करने की क्षमता और काम प्राप्त करने का प्रयास। एक पूर्ण रोजगारी वाले समाज की भी कुछ विशेषताएं होती है। ये विशेषताएं- व्यक्ति को अपनी योग्यता के अनुरूप काम ढूंढने में कम समय लगना, उसे वैतनिक कार्य मिलने का पूर्ण विश्वास हो, समाज में कार्य ढूंढने वालों की संख्या काम के खाली स्थानों की संख्या से ज्यादा हो और कार्य पर्याप्त वेतन पर प्राप्त होता है। हमारे भारत देश में बेरोजगारी की समस्या में चौंकाने वाली स्थिति है। ये आंकड़े वैसे रोजगार कार्यालय में पंजीकृत व्यक्तियों की संख्या को ध्यान में रखकर बनाये जाते हैं। सम्भवत: अभी तक नेशनल सैंपल सर्वे ऑर्गेनाइजेशन (एन०एस०एस०ओ०) और योजना आयोग ने बेरोजगारी के सम्बन्ध में कोई बड़ा सर्वेक्षण नहीं किया है। जो भी बेरोजगारी के आंकड़े उपलब्ध हैं वे अनुमानित ही है। रोजगार पंजीकरण कार्यालय में लोगों का पंजीकरण उनकी स्वेच्छा से होता है। अत: यह लोगों की इच्छा पर निर्भर होता है। यह व्यक्ति की इच्छा भी बहुत से कारणों से प्रभावित होती रहती है। जैसे इनकी सूचनाएं, संगति, कार्य करने वह ढूंढने की इच्छा आदि। इसके साथ-साथ देश के कार्यकारी उम्र के लोगों में से अधिकांशत: नियमित रूप से सेवायुक्त नहीं है। वे अपनी आवश्यकताओं के लिए अपने करीबियों पर निर्भर रहते हैं। भारत के श्रम और रोजगार मंत्रालय की जारी सूचना के आधार पर भारत में 2009 तक कुल 381.52 लाख बेरोजगार है जिसमें सभी शहरी, ग्रामीण, शिक्षित व अशिक्षित व्यक्ति शामिल है। देश में बेरोजगार व्यक्तियों की संख्या 1952 में लगभग 04.3 लाख; 1967 में लगभग 27.4 लाख; 1971 में 50.9 लाख; 1976 में 93.2 लाख; 1981 में 178.3 लाख; 1983 में 219.5 लाख; 1985 में 262.7 लाख; 1987 में 302.4 लाख; 1990 में 346.3 लाख; 1991 में 363.0 लाख; तथा 2012 में यह 1.08 करोड़ थी।

ये आंकड़े भारत के सांख्यिकी एवं कार्यक्रम क्रियान्वयन मंत्रालय के द्वारा संग्रहित है। भारत सरकार के अनुसार 2010 से 2012 में देश में 1.39 करोड़ नए रोजगार सृजित किये गये फिर भी बेरोजगारी में वृद्धि हो रही है। ऐसा इसलिए है कि देश का श्रमिक बल 45.9 करोड़ से बढ़कर 47.29 करोड़ हो गया है। संभवत: इसका प्रमुख कारण जनसंख्या वृद्धि है। वैसे तो ऐसा लग रहा है कि सभी श्रेणियों में बेरोजगारी में कमी आई है। 2004–2005 में गांव में स्त्रियों की बेरोजगारी में तीव्र गति से कमी आई है। शहरी पुरुषों में भी उतरोत्तर यह कमी 2004–2005, 2009–2010, 2011–2012 सालों में दर्ज की गयी है।

औद्योगिक विकास और यांत्रिक निपुणता से व्यक्तियों के भौतिक सुखों में निरंतर वृद्धि हुई है। लोगों का जीवन स्तर बढ़ गया है और सुख–साधनों का जीवन प्रयोग में वृद्धि होती जा रही है। उद्योगों का निरंतर विकास और प्रौद्योगिकी उच्चता से श्रमिकों का विस्थापन, निर्धनता, पुराने निवेशो का विध्वंस, उत्पादों व मंडी का प्रतिबंध, बेरोजगारी आदि के बढ़ने का दूषित चक्र प्रारंभ हो जाता है। वैसे तो प्रौद्योगिकी विकास रोजगार के अवसरों को बढ़ाने का साधन रहा है किंतु समसामयिक दृश्य में यह औद्योगिक बेरोजगारी को बढ़ाते हुये देखा जा रहा है। शैक्षिक बेरोजगारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली का रोजगार परख संबंधों में अधिकतम अभाव होना है। कोठारी कमीशन (1964– 66) का यह मानना है कि वर्तमान में शिक्षा व्यवस्था और सामाजिक राष्ट्रीय विकास लक्ष्यों के प्राप्ति में एक बड़ी चौड़ी खाई बनाती हुई दिखाई देती है। यह शिक्षा व्यवस्था राष्ट्रीय विकास हेतु प्रासंगिक नहीं है। संभवत: यह पाठ्यक्रमों में संशोधन का अभाव, शिक्षकों में निरंतरता व नवीनता की कमी, ट्यूशन और प्रतिस्पर्धी कक्षाओं में वृद्धि, शिक्षा का व्यवसायीकरण आदि वजह से है। भारत में शिक्षा शिक्षित युवाओं व रोजगार प्राप्ति के संबंध अन्य देशों की तुलना में काफी खराब है। जब हम विभिन्न बेरोजगारी अनुभवों को देखते हैं तो यह अविश्वासनीय सा लगता है कि युवाओं में बेरोजगारी औसत 6.8%, स्कूल स्तर पर शिक्षित व उत्तीर्ण युवाओं में 12% लगभग, और स्नातक व परास्नातकों में लगभग 11% बेरोजगारी है। तकनीकी शिक्षा प्राप्त छात्रों में 13% की बेरोजगारी बताई जा रही है। डिप्लोमा धारकों में वह बेरोजगारी लगभग 26 प्रतिशत है। तकनीकी शिक्षा प्राप्त छात्र युवाओं में यह बेरोजगारी सबसे अधिक बताई जा रही है जबकि तकनीकी विकास व उसका प्रयोग बेरोजगारी को रोकने के साधनों में प्रयुक्त किया जा रहा है। कुल मिलाकर के शहरी क्षेत्रों से ग्रामीण क्षेत्रों में पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं में तथा अधिक कुशल युवाओं से सामान्य कुशल युवाओं में अधिक बेरोजगारी दर्ज की गई है। राष्ट्रीय औसत के आधार पर भारत में बेरोजगारी का क्षेत्रीय स्वरूप ऐसा है कि कुछ राज्य जैसे–केरल, उड़ीसा, झारखंड, असम, बंगाल, जम्मू और कश्मीर के शिक्षित बेरोजगारों का स्तर इससे अधिक ऊंचा; तथा गुजरात, कर्नाटक, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र में यह बेरोजगारी राष्ट्रीय बेरोजगारी औसत से कम है। शिक्षित युवाओं में बेरोजगारी की समस्या बहुत बड़ी है। जिससे उनमें क्रोध, कुंठा भावनाओं को भड़काना आदि का व्यापक स्तर पर प्रस्फुटन कई प्रकार के असंतोष, अपराध और आन्दोलनों में देखा जा रहा है। बेरोजगारी के प्रकारों को कुछ इस प्रकार से चक्रीय बेरोजगारी, तकनीकि बेरोजगारी, मौसमी, संरचनात्मक और प्रछन्न बेरोजगारी के रूप में विभाजित किया जा सकता है। संरचनात्मक बेरोजगारी वस्तुत: देश व समाज के पिछड़े आर्थिक विकास का परिणाम माना जा रहा है। इसमें देश की बढ़ती हुयी जनसंख्या और अधिक सहयोगी भूमिका निभा रही है। प्रछन्न बेरोजगारी भी इसी के दबाव का कारण है। प्रछन्न बेरोजागारी एक प्रकार की अल्प बेरोजगारी है जिसका अर्थ यह है कि किसी भी संस्था में आवश्यकता से अधिक मजदूर लगे होते है, बाहर से देखने में ऐसा लगता है कि सभी रोजगार में लगे है पर कुछ लोगों को यदि कार्य से हटा दिया जाए तो उत्पादन पर किसी प्रकार का असर नहीं पड़ता है। भारत में बेरोजगारी के कारण दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली, अपर्याप्त रोजगार के अवसरों का निर्माण, दोषपूर्ण आर्थिक विकास, कृषि का धीमा विकास तथा दोषपूर्ण आर्थिक नियोजन प्रमुख हैं। दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली का अर्थ है कि हमारी अधिकतम शिक्षा रोजगार जनक व रोजगार पूर्ण नहीं है। सभी कॉलेज व विश्वविद्यालयी शिक्षा में तकनीकी व व्यवसायिक ज्ञान तथा प्रशिक्षण का अभाव रहता है। भारत में मैकाले शिक्षा पद्धति रोजगारोन्मुख नहीं है। हमारी अर्थव्यवस्था बढ़ते हुए जनसंख्या अनुपात में रोजगार सृजन करने के दायित्व को पूरा करने में असमर्थ दिखाई देती है क्योंकि हमारी अर्थव्यवस्था मिली–जुली (मिक्सड) प्रवृत्ति वाली है। रोजगार व जनसंख्या का दबाव कृषि क्षेत्र पर बहुत देखने को मिलता है। रोजगार के अवसर इस क्षेत्र में सूखते जा रहे है। सामान्यत: इसका एक कारण तकनीकी कृषि विकास भी है। इससे कृषि क्षेत्र में मौसमी व प्रछन्न बेरोजगारी बढ़ती जा रही है। आर्थिक विकास का दोषपूर्ण नियोजन, सामाजिक गतिशीलता, गांव से शहरों में पलायन और कृषि आधारभूत ढांचे का उचित विकास भी न होना इसके बढ़ोतरी के कारण है। कृषि क्षेत्रों से सम्बंधित बेकार व बंजर भूमि का अनुपयोग; भूमि संरक्षण व सिंचाई के साधनों का अपर्याप्त

विकास; मछली, मुर्गी व सूअर पालन; तथा डेयरी का अनुचित व अपर्याप्त प्रबंधन व विकास संभवत: सभी प्रकार के रोजगार अवसरों के संकुचन और अनुपलब्धता हेतु उत्तरदायी है।

सैद्धांतिक आधारों में आर्थिक और सामाजिक बेरोजगारी का मूल कारण 'मजदूरों की मजदूरी' के विचार को मानते हैं। वस्तुत: जब भी मजदूरों को नौकरी दी जाती उनकी मजदूरी उस समय पहले से ही निश्चित कर दी जाती है। ऐसा इसलिए होता है कि पूजीपतियों या संस्थाओं के पास पूंजी का अभाव रहता है। बहुत लोग बेरोजगारी का उपचार मजदूरी दर को कम करके अधिक मजदूरों को काम देने से मानते हैं। परंतु इससे श्रमिकों को जीवन की तरह-तरह के अभाव, दुख, कष्ट आदि का सामना करना पड़ता है। **जान कींस** (1936) ने भी राष्ट्रीय उत्पाद, रोजगार और उसकी मांग के परस्पर संबंध के आधार पर अपने रोजगार के सिद्धांत को समझाने का प्रयास किया है। कींस यह बताते हैं कि राष्ट्रीय उत्पाद बढ़ने से रोजगार में वृद्धि होती है क्योंकि रोजगार की मांग बढ़ जाती है। किन्तु यहां पर कींस ने कुछ विकृतियों का भी जिक्र किया है। वे कहते हैं कि जब निवेश की तुलना में बचत में वृद्धि हो जाती है तब श्रम व श्रमिकों की मांग में कमी आ जाती है क्योंकि सेवा और वस्तुओं की मांग कम हो जाती है। वह संभवत: इसलिए 'घाटे के बजट' के विचार की प्रस्तुति करके बाजार में क्रय शक्ति और उपभोग दोनों में वृद्धि करने का प्रस्ताव किया था। बाद में बजट घाटे को सर्ववांछनीय औजार के रूप में देखा जाने लगा। कींस (1952) का कहना है कि बचत की इच्छा निवेश को प्रत्यक्ष रूप से कम करती है जिससे उत्पादन कम होता है। यह कमी बेरोजगारी को बढ़ाता है। इसके विपरीत अति उत्पादन भी बेरोजगारी को बढ़ाता है क्योंकि यह वस्तुओं की कीमतों को घटाने के साथ-साथ मजदूरों की संख्या को भी घटाता है। अर्थशास्त्रियों का यह भी कहना है कि मांग और आपूर्ति का असंतुलन भी बेरोजगारी को बढ़ाता है। वस्तुओं की मांग घटने से बाजार में वस्तुओं की कीमत घटती है। अत: मांग घटने से दोनों कीमत और उत्पादन घट जाते है। अंतत: इससे कल-कारखाने बंद हो जाते हैं जो बेरोजगारी को बढ़ाता है क्योंकि यह निवेश को कम करता है। बहुतों का मानना है कि बेरोजगारी आर्थिक ढांचे में विघटन से होती है। कुछ का कहना है कि औद्योगिक समृद्धि के बाद व्यापार चक्र में मंदी आती है जो बेरोजगारी को बढ़ाती है। आर्थिक कारकों के अलावा सामाजिक कारक भी बेरोजगारी के लिए उत्तरदायी है। ये सामाजिक कारक अपमानजनक सामाजिक प्रस्थिति जिसमें कार्य करने वाले के मान- मर्यादा के अनुकूल न होकर के प्रतिकूल होता है; जनसंख्या विस्फोट; दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली; अनुभवहीनता; भौगोलिक गतिहीनता; व्यावसायिक अयोग्यता; स्वास्थ्य व बीमारी; समर्थता व असमर्थता आदि के सम्मिश्रण का उपज बेरोजगारी को बढ़ाता है। बेरोजगारी का परिणाम बढ़ा ही भयावह है क्योंकि यह हर प्रकार के वैयक्तिक, पारिवारिक व सामाजिक विघटन को जन्म देता है। बेरोजगारी का परिणाम वैयक्तिक स्तर पर व्यक्ति की रचना क्षमता में क्षीणता, उदासीनता, अनुशासनहीनता, अपराधिक प्रवृत्तियों का उदय, अविश्वसनीयता आदि दुर्गुणों का विकास व्यक्ति के व्यक्तित्व में होता है। बेरोजगारी के बढ़ने से प्राय: व्यक्तियों में नकारात्मक प्रतिस्पर्धा, अल्प सेवा युक्त रोजगार, अल्प वैतनिक रोजगार, मादक पदार्थों का सेवन, अपराध, आत्महत्या, बुरी संगति का सहारा लेना आदि देखा जाता है। पारिवारिक स्तर पर बेरोजगारी का परिणाम इसके विघटन में देखा जाता है। यह विघटन परिवार के सदस्यों के संबंधों में- पति-पत्नी, माता-पिता, बच्चे आदि; तनाव, मनमुटाव, संघर्ष, लड़ाई-झगड़े आदि का परिणाम है। परिवार के सदस्यों की बेरोजगारी से उनको मान- मर्यादा, इच्छाओं की आपूर्ति, शिक्षा, दवा, दैनिक आवश्यकताओं आदि समस्याओं से निरंतर जूझना पड़ता है। व्यक्तियों की बेरोजगारी सामाजिक विघटन को जन्म देती है। यह सामाजिक विघटन सामाजिक ढांचे के टूटने में दिखता है। यह वस्तुत: सामाजिक संबंधों का टूटना व तनावग्रस्त होना है। यह समाज के सामूहिकता का टूटना, वैयक्तिकता का विकास, अविश्वास का व्यक्ति के बीच बढ़ना, और विश्वास का खत्म होना है।

भारत में बेरोजगारी नियंत्रण के उपाय

भारत सरकार ने बेरोजगारी नियंत्रण का प्रथम उपाय संभवत: 1970-80 के दशक के 1972-73 में चौथी पंचवर्षीय योजना में नगदी कार्यक्रम लागू करके किया। इसके बाद 1977-78 में काम के बदले अनाज कार्यक्रम; 1978-79 में एकीकृत ग्राम विकास कार्यक्रम (आई०आर०डी०पी०); सन् 1980-81 में ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (एन०आर०ई०पी०); सन 1983 में ग्रामीण श्रम रोजगार गारंटी कार्यक्रम (आर०ई०एल०जी०पी०); सन 1989 में जवाहर रोजगार योजना (जे०आर०वाई०); सन् 1993-94 में प्रधानमंत्री रोजगार योजना; 1999 में स्वर्ण जयंती रोजगार योजना; 2000 में प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना; 2001 में सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना; 2003 में जयप्रकाश नारायण गारंटी रोजगार योजना आदि के शुभारम्भ से किया गया। सन् 1993-94 में 73 वें तथा 74 वें संविधान संशोधन के द्वारा दोनों ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में गरीबी निवारण व रोजगार सृजन हेतु त्रिस्तरीय पंचायती राज कानून

लाया गया। सन् 2006 में काम की वैधानिक गारंटी देने वाला रोजगार परक कार्यक्रम मनरेगा आया। इसे पूरे देश में लागू किया गया, साथ- साथ सभी राज्यों को उसकी स्थिति के अनुसार लागू करने की छूट भी दी गई। मनरेगा में प्रमुखत: ग्रामीण क्षेत्रों में निवास कर रहे लोगों की आजीविका वृद्धि के लिए प्रारंभिक वर्षों में न्यूनतम 100 दिनों का रोजगार गारंटी प्रदान करने की बात की गई। जिसको बाद में बढ़ा दिया गया है। इसके पहले सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90) में कुल लगभग 4.9 करोड़ रोजगार को सृजन करने का लक्ष्य बनाया गया। ऐसा कल्पना किया गया कि इस पंचवर्षीय योजना में लगभग रोजगार में 4% की वृद्धि होगी। सन् 1989-90 में जे आर वाई, एन आर आई पी एवं आर एल ई जी पी द्वारा कुल 22.6 लाख कार्य दिवसों के सृजन का उद्देश्य बनाया गया। आई आर डी पी द्वारा 30 लाख कार्य दिवसों के सृजन का उद्देश्य किया गया। इन सभी उपरोक्त रोजगार सृजित योजनाओं को हम देखें तो पाते हैं कि अधिकांश योजनाएं अपने उद्देश्य को पाने में सफल नहीं हो सकी। एनएसएसओ के बेरोजगारी के आंकड़े यह बताते है कि भारत में बेरोजगारी का बढ़ना जारी है। योजना आयोग के एक ताजे सर्वेक्षण में बेरोजगारी का आंकड़ा 4 करोड़ है तथा अन्य गैर सरकारी संस्थाएं इसे 8 से 10 करोड़ बताती हैं। भारत में बेरोजगारी का प्रमुख कारण उत्पादन का केंद्रीकरण है। उदारीकरण व केंद्रीकरण के दौर में विश्व बैंक तथा अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के हस्तक्षेप से देश की आर्थिक नीतियां प्रभावित होती रही हैं। जो बेरोजगारी को कम करने के बजाए इसमें वृद्धि कर रही हैं। इन नई आर्थिक नीतियों का आधार भारी पूंजी निवेश, व्यापार का वैश्वीकरण, निर्यात पर जोर, अधिक मुनाफा कमाने के प्रवृत्ति और व्यवस्था का केन्द्रीकरण रहा है। संभवत: हमारे भारतीय सभ्यता की विशेषताएं जैसे- कृषि व्यवस्था, परंपरागत व्यवसाय, जाति व्यवस्था, उपनिवेशवादी शिक्षा, अधूरे भूमि सुधार, सफेदपोश रोजगार के प्रति अति झुकाव, सरकारी नौकरियों से अधिक लगाव, उद्यमशीलता व जोखिम उठाने की कमी से यहाँ बेरोजगारी अनियंत्रित होती जा रही हैं। देश में करोड़ों युवा बेरोजगार हैं। उनके चेहरों पर चिंता व कुछ ना कर पाने की असहायता झलक रही है। आज बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने हमारे परंपरागत व्यवसायों का नाश कर दिया है। ये परंपरागत व स्वदेशी उद्योग- धंधे जैसे- चिप्स, पापड़, अचार, मुरब्बा, चटनी, पेय व खाद्य उद्योग, शिकंजी बनाने के उद्योग- धंधे आदि है। इसमें पहले से लगे लोग आज बेरोजगार हो गए हैं। अब इसमें लोग जाना नहीं चाहते हैं। बड़े उद्योग धंधों में नवीनीकरण व ऑटोमेशन का आधार अधिक लाभ कमाना है अत: ये प्रत्यक्ष बेरोजगारी को बढ़ावा दे रहे है। विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था इससे तहस-नहस हो रही है। बेरोजगारी दूर करने के उपाय व रुझानों में आर्थिक विकास को तेज करना, बचत व निवेश को प्रोत्साहित करना, जनसंख्या वृद्धि पर तत्काल नियंत्रण, लघु उद्योग का विकास और गैर कृषि आर्थिक गतिविधियों पर ज़ोर, श्रम प्रधान गतिविधियों को प्रोत्साहन देना, उत्पादकता के प्रति सजगता को बढ़ाना, व्यवसायोन्मुख शिक्षा को बढ़ावा देना, आय वितरण में असमानता पर नियंत्रण, नियोजन कार्यालयों का क्षेत्रीय विस्तार और बेरोजगारी बीमा को बढ़ावा देना है। बहुत सी सरकारें देश में रोजगार बढ़ाने व बेरोजगारी की समस्या को दूर करने की बात बढ़- चड़ कर करती रही हैं। अंतत: ये सभी सरकारे विफल रहे हैं। एक आदर्श देश कल्याणकारी राज्य होता है उसका कार्य नागरिकों की मूलभूत आवश्यकताओं, शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, इज्जत भरी जिंदगी, शारीरिक अयोग्यता के विरुद्ध संरक्षण आदि उपलब्ध कराना है। बहुत से विकसित पश्चिमी देश अपने नागरिकों को यह सभी उपलब्ध करा रहे हैं या इसका दवा भी कर रहे हैं। इसी क्रम में वे अपने नागरिकों को उनकी जीवन इच्छा पूर्ति हेतु बेरोजगारी भत्ता व बेरोजगारी बीमा दे रहे हैं। हमारे देश की सरकारें काम का अधिकार अर्थात् हर व्यक्ति को काम की गारंटी देने की बात करते रहे हैं पर क्या आज यह संभव है? अंत में कहा जा सकता है कि भारत में बेरोजगारी की समस्या का निरंतर बढ़ाना जनसंख्या विस्फोट, त्रुटिपूर्ण आर्थिक नीतियां और असंतुलित विकास का परिणाम है। तकनीकी विकास व उसका प्रयोग जहां एक ओर बेरोजगारी की समस्या को नियंत्रित करने हेतु किया जा रहा है वहीं दूसरी ओर यह बेरोजगारी को बढ़ाते हुए देखी जा रही है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- आहूजा, आर. (2016). सामाजिक समस्याएं. नई दिल्ली : रावत पब्लिकेशन.
- शर्मा, जी.एल. (2015). सामाजिक मुद्दे. नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन.
- भारतीय अर्थव्यवस्था. (2013-14). दिल्ली: विकास एनोरोमा प्रकाशन.
- डग्लस एंड एरान. (1931). द प्रॉब्लम ऑफ अनएंप्लॉयमेंट. न्यूयॉर्क: द मैकमिल.
- चंद, ए. (1987). पॉवर्टी एंड अंडरएंप्लॉयमेंट. दिल्ली: ज्ञान पब्लिशिंग हाउस.

ISSN 2278 - 0327

भूजल संरक्षण जागरूकता की प्रासंगिकता : वर्तमान सन्दर्भ में

डॉ. राजेश सिंह
एसो०प्रो०, संस्कृत विभाग
शिवहर्ष किसान पी०जी० कालेज, बस्ती

डॉ. आशुतोष सिंह
असि०प्रो०, शिक्षा शास्त्र (बी०एड०) विभाग
डी०एस० कॉलेज, कटिहार, (पूर्णिया विश्वविद्यालय, बिहार)

जल ही जीवन है। जल के बिना जीव की संरचना सम्भव नहीं है। इस दृष्टि से यह एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण संसाधन है। साधारणतया लोग समझते हैं कि मरूभूमि को छोड़कर सर्वत्र जल की प्रचुरता है अर्थात् पृथ्वी के अन्दर जल का अथाह भण्डार है। इसमें सन्देह नहीं है कि प्रकृति ने हमें अमूल्य उपहार दिये हैं परन्तु उसका सुनियोजित उपयोग करते हुए जल संसाधनों को संरक्षित करने की आवश्यकता है। ''यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे'' जैसे ब्रह्माण्ड में पंचमहाभूत की संकल्पना है, उसी प्रकार मानव शरीर का अस्तित्व क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर के बिना सम्भव नहीं है। पृथ्वी पर मानव के अतिरिक्त सभी प्रकार के प्राणी, पेड़-पौधे एवं अन्यान्य वनस्पतियों का अस्तित्व जल पर ही निर्भर है।[1] परन्तु जल एक सतत् अनन्त नहीं वरन सीमित एवं नाजुक संसाधन है। जल केवल पीने के लिये ही नहीं वरन सिंचाई, विद्युत उत्पादन, मत्स्य पालन, परिवहन उद्योग आदि कई कामों में आता है। अत्यधिक दोहन एवं प्रदूषण के कारण जल नव्य से अनव्यकरणीय संसाधन कोटि में परिणत होने लगा है।[2]

पृथ्वी पर पाये जाने वाले प्रत्येक जीव का जीवन जल पर ही निर्भर होता है। अत: इसकी उपलब्धता नितान्त आवश्यक है। पानी को हम प्रकृति का मुफ्त या नि:शुल्क उपहार समझते हैं, जबकि वस्तुस्थिति यह है कि पानी प्रकृति का मुफ्त नहीं वरन् बहुमूल्य उपहार है।[3] अत: यदि हमने जल का विवेकपूर्ण ढंग से उपयोग एवं संरक्षण नहीं किया तो हमारे अस्तित्व को ही खतरा उत्पन्न हो जायेगा। प्रकृति ने हमें जीवनोपयोगी सभी वस्तुएं पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध कराई हैं परन्तु व्यक्ति की जल के प्रति स्वार्थ की प्रवृत्ति एवं लापरवाही, इस उपहार को युद्ध का कारण बना रही है। आज चिन्ता का विषय है कि साधन सम्पन्न लोग दैनिक जीवन में जल के बेतहाशा दोहन के साथ-साथ जल को मनोरंजन के रूप में दुरूपयोग कर रहे हैं। हमें यह जान लेना चाहिए कि यह एक सीमित संसाधन है साथ ही साथ समूचे जीव जगत् की सम्पदा है। वस्तुत: जल पर प्रत्येक जीव (पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, गरीब एवं अमीर) का अधिकार है।[4] आज शहरी वातावरण एवं साधन सम्पन्न क्षेत्र में रहते हुए हम पानी की कमी का वास्तविक आंकलन नही कर पा रहे हैं।

भूजल परिदृश्य-

जल एक अमूल्य संसाधन है। यह केवल पीने के लिए ही नहीं अपितु सिंचाई, विद्युत उत्पादन, मत्स्य पालन, परिवहन उद्योग आदि कई कामों में प्रयुक्त होता है। इस प्रकार पृथ्वी पर जल मंडल है, उसमें कुल 1,46,00,000 घन किलोमीटर जल है। इसमें से 97 प्रतिषत महासागरों में है जो लवणीय होने के कारण हमारे काम का नहीं है। अन्य 2 प्रतिशत हिमनदी एवं पर्वत शिखरों का आच्छादित करने वाली बर्फ के रूप में है तथा एक प्रतिशत से कम हमारे उपयोग के लिए है। इस न्यूनतम मात्रा में उपलब्ध जल में भी कहीं-कहीं पर गुणवत्ता का प्रश्न चिह्न लग जाता है। इन्हीं स्त्रोतों पर अधिकांश स्थल जीवियों को निर्भर रहना पड़ता है। अत: हमें यह समझना चाहिए कि जल की हर बूंद अनमोल है तथा इसका संचयन एवं संरक्षण समय की महती आवश्यकता है।[5]

विगत लगभग 60 वर्षों से भारत में पानी की उपलब्धता एक तिहाई रह गई है, अर्थात् 1952 के मुकाबले अब 33 प्रतिशत पानी समाप्त हो चुका है। जबकि आबादी 36 करोड़ से बढ़कर 115 करोड़ हो गई है, अर्थात् तीन गुना से भी ज्यादा है। स्थिति यह हो गई है कि हम लगातार भूजल पर निर्भर होते जा रहे हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि भूजल स्तर प्रतिवर्ष एक फीट की गति से नीचे जा रहा है।[6]

आज विकट स्थिति बन चुकी है कि निरंतर पृथ्वी माता की गोद से भू-जल रूपी अमृत निकलते रहने के कारण देश के 5723 में से लगभग 850 ब्लॉक डार्क जोन में आ चुके हैं और यह संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है। कई शहरों में टैंकर ही पानी

की आपूर्ति के एकमात्र साधन बन चुके हैं। देहाती क्षेत्रों में तो स्थिति बड़ी विकट है, वहॉ अधिकांश महिलाएं घर की जल व्यवस्था में अपना बहुत समय एवं धन लगाती है। जल के अंधाधुंध दोहन से जमीन के नीचे के भंडार तो खाली हो ही रहे हैं। नदियाँ भी वर्षा के कुछ माह बाद ही सूख जाती है तथा कई समाप्त होने के कगार पर हैं। वर्ल्ड वाइल्ड लाइफ फंड (**WWF**) के 2007 के प्रतिवेदन के अनुसार नदियों में जल की कमी होने का कारण जलवायु परिवर्तन और पानी का अत्यधिक दोहन है।[7] ऋग्वेद के अनुसार जल सृष्टि के प्रारम्भ से ही है- ''*सलिलं सर्वमाइदम्*''।

भूजल से सम्बंधित मुद्दे-

प्रकृति का सबसे अमूल्य उपहार है वर्षाजल, जो कि विभिन्न कार्यों में उपयोगी है। जल मानव जीवन की मूलभूत आवश्यकता है। प्रकृति प्रदत्त वरदान स्वरूप वर्षा जल को एकत्रित कर उसका उपयोग किसी लाभकारी एवं फलदायी कार्य के लिए करने की पद्धति को वर्षाजल संग्रहण कहते है।[8] इस संग्रहित जल को कृषि, पेयजल, भूगर्भ जल प्रबन्धन, अपशिष्ट जल प्रबन्धन इत्यादि में प्रयोग किया जा सकता है। कतिपय वैश्विक व स्थानीय विचारणीय मुद्दे है-

1- वर्षा जल संग्रहण एवं जल प्रदूषण के प्रति जागरूकता का अभाव
2- भूजल का अति दोहन एवं दुरूपयोग
3- नगरीकरण की वृद्धि एवं औद्योगिकीकरण से जल प्रदूषण
4- जल की महत्ता के प्रति जागरूकता का अभाव

प्राय: वर्षा जल संग्रहण एवं जल प्रदूषण के प्रति जागरूकता का अभाव दृष्टिगोचर होता है। देश में पेयजल की कमी के कारणों का यदि विश्लेषण किया जाए तो उसके प्रमुख कारण होगें-10 बढ़ती जनसंख्या, जलवायु परिवर्तन एवं अनियंत्रित और अनियोजित जल उपयोग। जल संकट से उबरने का सबसे सस्ता, सरल और सहज उपाय है- वर्षा जल संग्रहण। वर्षा जल को एकत्रित एवं संग्रहित करके उसका उपयोग किसी लाभदायी कार्य करने की पद्धति को वर्षाजल संग्रहण कहते हैं। इस संग्रहित जल को हम सिंचाई एवं पेयजल के रूप में प्रयोग में ला सकते है। किसी भी वर्षाजल संग्रहण के तीन घटक होते हैं- पानी को एकत्रित करना, उसे किसी स्थान तक ले जाना एवं उसका संग्रह करना।

विश्व भर में पेयजल की कमी एक संकट बनती जा रही है, उसका कारण जल प्रदूषण एवं पृथ्वी जल के स्तर का लगातार नीचे गिरता जाना।[11] इसके लिए अधिशेष मानसून अपवाह जो बहकर सागर में मिल जाता है, उसका संचालन और पुनर्भरण किया जाना अति आवश्यक है, जिससे भूजल भण्डारण को जल स्तर का संवर्धन हो पाए। अकेले भारत में ही व्यवहार्य भूजल भण्डारण का आंकलन 214 बिलियन घन मी0 (बीसीएम) के रूप में किया गया है, जिसमें से 160 बिलियन घन मी0 (बीसीएम) की पुन: प्राप्ति हो सकती है। इस समस्या का समाधान जल संचयन है। जागरूकता के माध्यम से पशुओं के पीने के पानी की उपलब्धता, फसलों की सिंचाई के विकल्प के रूप में जल संचयन प्रणाली को विश्व व्यापी तौर पर अपनाया जा रहा है।[12] वर्षा जल के संचयन एवं संग्रहण से भारत में कृषि में काफी सहायता मिल सकती है। चूँकि कृषि भारत का एक बहुत महत्वपूर्ण अंग है, जिसमें कि पूरे देश में प्रयोग किए जाने वाले जल में से लगभग 80 प्रतिशत पानी की खपत होती है। इसलिए कृषि में अच्छा जल प्रबन्धन करना भविष्य की दृष्टि से अति आवश्यक है। इससे हमें अच्छी फसल के साथ ही साथ कुल उपज में बढ़ोत्तरी भी होगी। वर्षाजल संग्रहण इसका सबसे उत्तम विकल्प है।

यद्यपि पेयजल मानव जीवन का मूलभूत आवश्यकता है, तथापि जलस्त्रोतों के अनुचित प्रबन्धन के कारण देश के कई भागों में पीने के जल की समस्या काफी गम्भीर बन गई है। भारत वर्ष के लोग सदियों से भविष्य में इस्तेमाल करने की दृष्टि से जल संग्रहित करते आ रहे हैं। किन्तु जब से पानी सीधे हमारे घरों में आने लगा है तब से हम इन पारंपरिक जलस्त्रोतों की उपेक्षा करने लगे है। नगरीय क्षेत्रों में बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण शहर के सभी लोगों को नियंत्रित रूप से जल उपलब्ध कराना शासन के लिए एक कठिन चुनौती बनता जा रहा है। एक भविष्यवाणी के अनुसार ''अगला विश्वयुद्ध का कारण पानी ही होगा'' ये वाक्य सत्य ही होगा यदि जल का प्रबन्धन ठीक प्रकार से नहीं किया गया। प्रकृति हमें भरपूर देती है किन्तु असावधानी होने पर छीन भी लेती है। प्रकृति प्रदत्त जल सम्पदा को महत्व देते हुए उसके वर्षा रूपी उपहार को हमें संरक्षित, संचित और सवंर्धित करना होगा।[13]

विकास के नाम पर सड़कें और इमारतें बनाते समय हम पानी के आवागमन के मार्ग बन्द करते जा रहे हैं। अधिकांश तो तालाब व पोखर बचे नहीं हैं और जो शेष हैं भी उनमें पानी के पहुँचने की मार्ग में विभिन्न प्रकार की बाधाएं खड़ी होती जा रही है। उत्तर प्रदेश में हर वर्ष पृथ्वी जल स्तर 70 सेमी० नीचे जा रहा

है। राजधानी दिल्ली के अलग-अलग क्षेत्रों में भूजल स्तर 50 से 150 सीएम तक नीचे चला गया है। ये सभी स्थितियाँ चिंता जनक हैं। विकास के लिये नए तरीकों को अपनाने में जल के उपयोग हेतु हम यह भूलते जा रहे हैं कि भविष्य के दिनों में पानी आएगा कहाँ से ? लगातार हैण्डपम्प लगवाने से तात्कालिक समस्या तो दूर हो जाएगी परन्तु इसी रास्ते भूजल स्तर के और नीचे चले जाने से एक बड़ी तबाही भी अपने आने का संकेत दे सकती हैं। देष के अलग-अलग हिस्सों में पृथ्वी फटने की लगातार घटनाएँ हमारे इस प्रकृति दोहन का दुष्परिणाम ही है।[14]

प्रकृति जब कुपित होती है तो उसके कोप से जुझने की हमारी सारी तैयारी प्राय: कम पड़ जाती है। बाढ़, सूखा और अकाल इसी की परिणति है। वहीं प्रकृति जब कुछ देना चाहती है तो हमारे हाथ छोटे पड़ जाते है। हम उस उपहार को समेट नहीं पाते। जल-संग्रहण एक ऐसी सफल विधि है जिसके द्वारा हम प्रकृति प्रदत्त जल को एकत्रित कर उसका संग्रहण कर लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

पुरातन काल के समय में देश के जिस हिस्से में जल की जितनी समस्या थी उतने ही पुख्ता इंतजाम भी थे, इसीलिए देश के हर क्षेत्र में पानी के संचयन और सदुपयोग की एक से एक बेहतरीन व्यवस्थाएँ रही हैं। पहले जितने धार्मिक, सामाजिक स्थान विकसित किए गए, सब जगह तालाब या बड़े-बड़े जल-कुण्ड का निर्माण किया गया। यांत्रिक गति से बढ़ती विकास की गति ने प्रकृति से लेने के तो हजारों तर्क बना डाले परन्तु उसे लौटाने की व्यवस्था न तो धार्मिक, सामाजिक और न सरकारी तौर पर ही प्रभावी हो पायी। पुराने समय से वर्षाजल को संग्रह करके उपयोग में लाने की पद्धति विशेष कारगर रही है। पहले लोग बड़े-बड़े मटके जैसे उपकरणों में वर्षा जल को संग्रहित करके उसको विभिन्न कार्य में उपयोग में लाते थे। आज विकास या प्रगति के आगे पुरानी विधि को छोड़कर हम समस्या से ग्रस्त होते जा रहे हैं।[15]

वर्तमान में जल संकट के सम्भावित कारण -

वर्तमान में बढ़ते जल संकट की स्थिति के लिये अनेक कारक प्रभावी हैं, परन्तु अगर हम इनकी पृष्टिभूमि देखें तो पाएंगे कि मानव इसके लिए किसी न किसी स्तर पर जिम्मेदार अवश्य है।[16] निम्न कारकों के कारण जल आज विषम स्थिति में पहुँच गया है ये है-

1- जनसंख्या वृद्धि।
2- वृक्षों की अंधाधुंध कटाई।
3- बढ़ता औद्योगिकीकरण।
4- निरंतर कम होता वर्षा का परिमाण।
5- बढ़ता शहरीकरण।
6- विलासिता, आधुनिकतावादी एवं भोगवादी प्रवृत्ति।
7- स्वार्थी प्रवृत्ति एवं जल के प्रति संवेदनहीनता।
8- भूजल पर बढ़ती निर्भरता एवं अत्यधिक दोहन।
9- जल के अपव्यय की बढ़ती प्रवृत्ति।
10- परम्परागत जल संग्रहण तकनीकों की उपेक्षा।
11- समाज की सरकार पर बढ़ती निर्भरता।
12- कृषि में बढ़ता जल का उपभोग।
13- जल शिक्षा एवं जनजागरूकता का अभाव।

जल का उपयोग प्रत्येक जगह बढ़ता जा रहा है। विश्व की 6 अरब से अधिक जनसंख्या उपयोग करने योग्य कुल जल में से 54 प्रतिशत का उपयोग वर्तमान में कर रही है।[17] अनुमान है कि सन् 2025 तक यह मात्रा 70 प्रतिशत हो जाएगी। इसी प्रकार के ऑकड़े दर्शाते हैं कि प्रति व्यक्ति जल की खपत की दर यदि भविष्य में भी बनी रही तो आगामी 25 वर्षों के दौरान मानव जाति विश्व में कुल उपलब्ध मृदुजल में से 90 प्रतिशत का उपयोग करने लगेगी। ऐसी स्थिति में मात्र 10 प्रतिशत जल ही अन्य जीवों के लिये उपलब्ध होगा।

यदि विश्व स्तर पर दृष्टि डाले तो जल के कुल उपयोग में से 70 प्रतिशत कृषि में 22 प्रतिशत उद्योग में तथा मात्र 8 प्रतिशत घरेलू कार्यों में लगता है। भौगोलिक क्षेत्रों के अनुसार पानी के उपयोग में अन्तर भी पाया जाता है।

हमारे देश में उपलब्ध कुल जल संसाधन की मात्रा को 1953 घन किमी० (अरब घन मीटर) ऑका गया है। इसमें से उपयोग में लाया जा सकने वाला सतही जल 690 घन किमी० तथा भूजल 396 घन किमी० है। इस प्रकार कुल उपलब्ध जल का 1,086 घन किमी० उपयोग में जाए जा सकने योग्य है।[18]

जनसंख्या की तेजी से हो रही वृद्धि के कारण प्रति व्यक्ति जल की उपलब्धता निरंतर कम होती जा रही है। जहाँ सन् 1947 में 5 हजार घन मीटर जल प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष उपलब्ध था वहीं सन 2000 में यह मात्रा घटकर 2 हजार घन मीटर रह गई थी। सन 2025 तक इससे घटकर एक हजार पाँच सौ घनमीटर, जबकि

सन 2050 तक मात्र 1 हजार घन मीटर की सम्भावना है।[19]

सरिणी–1 जनसंख्या तथा जल की उपलब्धता में देश की सम्भावित स्थिति		
वर्ष	जनसंख्या (करोड़ में)	जल की उपलब्धता (घन मीटर प्रतिवर्ष प्रति व्यक्ति)
1947	40	5000
2000	100	2000
2025	139	1500
2050	160	1000

कृषि क्षेत्र में भू-सिंचन के लिये कुल उपलब्ध जल का सर्वाधिक 84 प्रतिशत उपयोग में लाया जाता है। सन् 1950 में कुल सिंचित भूमि का क्षेत्रफल 2.5 करोड़ हेक्टेयर के बराबर था, वहीं पाँच दशक बाद यानी सन् 2000 तक इस क्षेत्र में तीन गुना से अधिक बढ़ोत्तरी हुई। ऐसा आंकलन किया गया है कि घरेलू उद्योग तथा ऊर्जा क्षेत्रों में भविष्य में जल की खपत बढ़ने की सम्भावना है। औद्योगिक क्षेत्र में जहाँ अभी 4.4 प्रतिशत जल की खपत होती है, वहीं सन् 2025 तक यह खपत बढ़कर 11.4 प्रतिशत हो जायेगी। क्योंकि इस समयावधि में इस क्षेत्र में काफी वृद्धि होने की सम्भावना है।

ऊर्जा के क्षेत्र में भी जल की खपत के वर्तमान 3.6 प्रतिशत से बढ़कर 6.76 प्रतिशत हो जाने की सम्भावना है। इसका प्रमुख कारण उद्योगों में वृद्धि के साथ शहरीकरण में वृद्धि होना है। घरेलू उपयोगों के लिये भी जल की खपत वर्तमान 4.4 प्रतिशत से बढ़कर लगभग 5 प्रतिशत हो जाने की सम्भावना है। ऐसी परिस्थिति में इस बढ़ते जल की खपत को पूरी कर पाना सचमुच में एक चुनौती होगी, विशेषकर पेयजल पर तो बहुत ही दबाव पड़ने की सम्भावना है।

क्या हम सभी को पता है कि हमारे जीवन हेतु जल की आवश्यकता कितनी रखी गई है ? अनुमानत: 65 लीटर प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन पानी की आवष्यकता है।[20]

जल प्रदूषण एक गम्भीर समस्या-

मिट्टी से पैदा होने वाली वनस्पति एवं फसलों तथा उनके आधार पर पलने वाले जीव जन्तुओं से मनुष्य को विभिन्न प्रकार के पोषक तत्व (कार्वोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, विटामिन, खनिज) प्राप्त होते हैं। इन्हीं पोषक तत्वों के ग्रहण करने से मनुष्य स्वस्थ रहता है, एवं उसमें कार्य करने हेतु आवश्यक ऊर्जा सुलभ होती है। इन विविध पोषक तत्वों से युक्त भोजन से भी अधिक अनिवार्य है शुद्ध पेयजल। मनुष्य के शरीर का दो-तिहाई भाग जल से निर्मित है। इसके अतिरिक्त जल शरीर में अन्य पोषक तत्वों को गति प्रदान करता है। रक्त का 80 प्रतिशत जल होने से ही शरीर में रक्त संचार सम्भव होता है। इसके अलावा शरीर से पाचन क्रिया के पश्चात बचा हुआ अवशिष्ट पदार्थ भी जल के सहारे ही शरीर से बाहर निकलता है। किसी जहरीले तत्व के शरीर से निष्कासन में भी जल की क्रियाशील ही सहायक होती है। इसलिए शरीर में जल की आवश्यक मात्रा का बने रहना आवश्यक होता है। यदि कुछ ही दिन मनुष्य पानी न पिये तो उसका जीवित रहना असम्भव हो जायेगा। प्राणियों को प्रत्यक्षत: जीवित रखने के अतिरिक्त जीवन के लिए आवश्यक तत्वों के अस्तित्व के लिये भी जल आवश्यक है। बिना जल के वनस्पति एवं किसी अन्य जीव जन्तु का जीवन सम्भव नही है।[21]

वर्ल्ड रिसोर्सेज के अनुसार,[22] कृषिगत, औद्योगिक एवं घरेलू उपभोग में तीव्र वृद्धि के चलते अभी जल प्रदूषण दर बढ़ने की सम्भावना है। सतहगत जलागार-नदियां, झीलें-वर्षा द्वारा आपूर्ति की अपेक्षा निष्कर्षण बहुत अधिक होने के कारण संकुचित हो रहे हैं। जनसंख्या वृद्धि तथा आर्थिक-सामाजिक विकास से विशेषकर औद्योगिक एवं घरेलू उपयोग हेतु जल की माँग में तेजी से वृद्धि हो रही है। राष्ट्रसंघ द्वारा किये गये आंकलन के अनुसार विश्व की एक तिहाई जनसंख्या सामान्य या अधिक जलाभाव से ग्रस्त है। अगले तीस वर्षों में यदि जल वितरण या उपभोग की विद्यमान प्रणाली अपरिवर्तित रही, तो जलाभाव की स्थिति बदतर होगी। 2025 तक विश्व की दो तिहाई जनसंख्या जलाभाव की चपेट में आ जायेगी। जल की माँग में प्रक्षेपित वृद्धि विकासशील देशों में होगी, जहाँ जनसंख्या वृद्धि के साथ कृषिगत एवं औद्योगिक उपयोग हेतु जल की माँग में तीव्र वृद्धि हो रही है।

शुद्ध पेय जलाभाव की स्थिति एवं मानव स्वास्थ्य की दयनीय दशा, विशेषकर तीव्र औद्योगीकरण वाले विकासशील देशों में उपलब्ध जल के प्रदूषण से बदतर होती जा रही है। ऐसे देषों में इयूट्रफिकेनान से लेकर भारी धात्विक प्रदूषण, अम्लीकरण, दीर्घजीवी जैव प्रदूषक (Persistent Organic Pollutant POP) जैसे आधुनिक प्रदूषण की समस्याएं प्रखर हो रही है।[23]

जल प्रदूषण की संकल्पना-

किसी भी तत्व के मौलिक रसायनिक अथवा जैविक विशेषताओं में कोई ऐसा परिवर्तन जो मानव या अन्य प्राणि के लिये हानिकारक हो प्रदूषण कहलाता है। तदनुसार जल की भौतिक रासायनिक अथवा जैविक संरचना में ऐसा परिवर्तन जो मानव अथवा किसी प्राणी की जीवन दशाओं के लिए हानिकारक एवं

अवांछित हो, वह जल प्रदूषण है। ग्रोबका के अनुसार, जल प्रदूषण का अर्थ है मनुष्य द्वारा बहती नदी में ऊर्जा या ऐसे पदार्थ का योग जो जल के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में इतना परिवर्तन कर दे, जिससे वह मानव या किसी प्राणी के स्वास्थ्य के लिये हानिकारक हो जाय, तथा औद्योगिक या सिंचाई कार्यों के लिए उपयोगी न रह जाए, जल प्रदूषण है।[24] इससे यह भी स्पष्ट है कि जल प्रदूषण की संकल्पना बहुत हद तक उसकी संभावित उपयोगिता से जुड़ी हुई है। पीने के लिए अनुपयुक्त जल, नहाने या कपड़े धोने के लिये उपयुक्त हो सकता है। उसी प्रकार नहाने के लिये अनुपयुक्त जल सिंचाई कार्य के लिए उपयुक्त हो सकता है। सिंचाई के लिए अनुपयुक्त जल कारखानों में मशीनों को ठण्डा रखने के काम आ सकता है। अतएव जल प्रदूषण की संकल्पना उपयोगिता सापेक्ष है। इसलिए जल की स्वच्छता स्तर के अनुसार इसे विभिन्न प्रकारों में विभक्त किया जा सकता है जो निम्नवत है।[25]

1- **स्वच्छ जल**- वह जल जिसमें किसी प्रकार के निलम्बित (Suspended) पदार्थों का समावेश न हो।

2- **सुरक्षित जल**- वह जल जो गन्ध रहित, पेय एवं पौष्टिक हो, जिससे किसी प्राणी के स्वास्थ्य पर कोई हानिकारक प्रभाव न पड़े।

3- **संदूषित जल**- ऐसा जल जिसमें सूक्ष्म कीटाणुओं का समावेश हो गया हो या जहरीले रासायनिक पदार्थों का मिश्रण हो गया हो।

4- **प्रदूषित जल**- ऐसा जल जिसमें निलम्बित पदार्थों की उपस्थिति के कारण रंग परिवर्तन हो गया हो तथा दुर्गन्ध उत्पन्न हो गई हो, अर्थात् जिसका न सिर्फ जैविक एवं रासायनिक वरन् भौतिक स्वरूप भी परिवर्तित हो गया हो, प्रदूषित जल है।

अपद्रव्य	उच्चतम सीमा ग्राम/लीटर	अपद्रव्य	उच्चतम सीमा ग्राम/लीटर
कैल्शियम	75.0	जस्ता	5.0
मैग्निशियम	30.0	लोहा	0.1
सल्फेट	200.0	मैगनीज	0.05
क्लोराइड	200.0	ताँबा	00

उक्त तालिका से स्पष्ट है कि जल में ऐसे अपद्रव्यों की उपस्थिति, जिनसे पेयजल प्रदूषित हो जाता है। प्रकृति के अनुसार जल प्रदूषण को निम्न वर्गों में विभक्त किया जाता है। प्रत्येक प्रकार के मापदण्ड तद्नुसार भिन्न-भिन्न है।

क- भौतिक- जब भौतिक पदार्थों धूल गंदगी आदि की उपस्थिति इतनी मात्रा में हो जाय कि उसका रंग गंध स्वाद बदल जाय तो इसे भौतिक प्रदूषण कहते है। जल की कठोरता सिलिका पैमाने पर 5 इकाई से अधिक होने पर प्रदूषण माना जाता है। भौतिक या यांत्रिक प्रदूषण तत्वों से जीवों के शरीर एवं इन्द्रियों पर तनाव बढ़ता है। इनमें निम्न तत्व प्रमुख है। निम्न तालिका से जल प्रदूषण कारक व दुष्प्रभाव का पता लगता है।[26]

प्रदूषक अपद्रव्य	स्रोत	कुप्रभाव
रोग कारक विषाण	मानव मल-मूत्र	विभिन्न प्रकार की ऑत की बीमारियॉ
विषैले रसायन	कारखाने	जलीय जीवों की मृत्यु फसलों को क्षति पशु एवं मानव जीवन को खतरा
अविषाक्त रसायन	कारखाने	जल की भौतिक विशेषताओं में परिवर्तन
ऑक्सीजन क्षरक	मानव एवं पशु मूत्र, नगरीय कचरा तथा उद्योग	मछलियों की मृत्यु, जल में ऑक्सीजन की कमी
ताप (तापीय प्रदषण)	उद्योग विशेषतया विद्यत उत्पादक	उपरोक्त
स्वाद एवं गन्ध परिवर्तन पदार्थ	उद्योग	स्वास्थ्य एवं सौन्दर्य विनाश

ख- रासायनिक- जल में ऐसे रसायनों का मिश्रण जिससे वह पेयजल के रूप में अस्वस्थकर हो जाय, रासायनिक प्रदूषण कहलाता है। वहीं पेयजल अशुद्ध माना जाता है जिसका Ph मान 6.5 से कम या 7.2 से अधिक हो जाय तो जल अत्यधिक हानिकारक माना जाता है।

ग- जैविक- जल में सूक्ष्म वैक्टीरिया एवं विषाणु की उपस्थिति स्वास्थ्य की दृष्टि से अत्यन्त हानिकारक प्रदूषक है। उदाहरण के लिए बेसिल्स कोलाई की अत्यल्प संख्या भी हानिकारक है। उसी प्रकार कोलीफार्म बैक्टीरिया 100 मिली0 में 10 से कम रहने चाहिए।

घ- कायिक प्रदूषण- वह जल जिसमें उपरोक्त किसी भी प्रकार की अपद्रव्य निर्धारित सीमा से अधिक हो अथवा

संयुक्त रूप से उपस्थित होकर मनुष्य या किसी अन्य प्राणी के शरीर में चयापचय प्रक्रिया को बाधित करें, कायिक प्रदूषण कहलाता है।

जल की महत्ता के प्रति जागरूकता अपरिहार्य–

पृथ्वी पर पाये जाने वाले प्रत्येक जीव का जीवन जल पर ही निर्भर होता है। अत: इसकी उपलब्धता नितान्त आवश्यक है। पानी को हम प्रकृति का मुफ्त या नि:शुल्क उपहार समझते हैं, जब वस्तु स्थिति यह है कि पानी प्रकृति का मुफ्त नहीं वरन बहुमूल्य उपहार है। अत: यदि हमने जल का विवेकपूर्ण ढंग से उपयोग एवं संरक्षण नहीं किया तो हमारे अस्तित्व को ही खतरा उत्पन्न हो जाएगा।[27] प्रकृति ने हमें सभी वस्तुएँ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध कराई है। परन्तु व्यक्ति की जल के प्रति स्वार्थ की प्रवृत्ति एवं लापरवाही, इस उपहार को युद्ध का कारण बना रही है। आज चिन्ता का विषय है कि साधन सम्पन्न लोग दैनिक जीवन में जल के बेतहाशा दोहन के साथ–साथ जल का मनोरंजन के रूप में दुरूपयोग कर रहे हैं हमें यह जान लेना चाहिए कि यह एक सीमित संसाधन है एवं समूचे जीव जगत की सम्पदा है। वस्तुत: जल पर प्रत्येक जीव (पेड़–पौधे, पशु–पक्षी, गरीब एवं अमीर) का अधिकार है।[28] आज शहरी वातावरण एवं साधन सम्पन्न क्षेत्र में रहते हुए हम पानी की कमी का वास्तविक आंकलन नही कर पा रहे है।

इक्कीसवाँ सदी की समस्या–

वैज्ञानिकों ने आंकलन किया है कि इक्कीसवीं सदी में जल संकट सबसे गम्भीर संकट के रूप में उभर रहा है।[29] अत: यदि जल का विवेकपूर्ण उपयोग नहीं किया गया और पृथ्वी की कोख को फिर भूजल से नहीं भरा गया, तो आने वाले कुछ ही वर्षों में ही हमें पानी की बूँद–बूँद के लिए तरसना होगा। वर्तमान में, आज सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि जनजागरूकता द्वारा वर्षा का अधिक से अधिक पानी धरती के भीतर पहुँचाया जाए तथा उसका संचय किया जाए। अभी वर्षा के पानी का समुचित संचयन नहीं होने के कारण अधिकांश पानी समुद्र में बहकर जा रहा है। अत: जागरूकता द्वारा महत्ता प्रतिपादित करते हुए इसको रोककर भूजल का पुनर्भरण करना नितांत आवश्यक है।[30]

जल संरक्षण विषयक जनजागरूकता की प्रासंगिकता–

वैश्विक स्तर पर पर्यावरण प्रदूषण, जल प्रदूषण भूजल सतह पर जल की उपलब्धता स्तर में गिरावट, शुद्ध पेयजल की संकटापन्न स्थिति को देखते हुए समय से पहले पूर्ण सचेत होने की आवश्यकता है।[31] जनसंख्या की बेतहासा वृद्धि, शहरीकरण एवं औद्योगीकरण के विकास प्रक्रिया, जल संसाधनों का अधिकाधिक दोहन भावी संकट की ओर क्रमिक रूप से इंगित करता जा रहा है। जल के अभाव में सम्पूर्ण मानव जाति संकट में पड़ जायेगी। प्रकृति के कूपित होने पर विकास विनाश की ओर अग्रसर होता है। सम्पूर्ण वैज्ञानिक विकास ठप्प पड़ जाता है सारे कृत्रिम उपाय अपर्याप्त हो जाते हैं। पर्यावरण के साथ–साथ जल संकट सबसे बड़ा संकट है। भविष्य में जल को लेकर विश्व युद्ध की सम्भावना है। उक्त सम्भावित खतरों से बचाव एवं मानवता की रक्षा हेतु भूजल संरक्षण, वर्षा जल का संचय, जल का अधिकाधिक दोहन या दुरूपयोग को रोकने के लिए परिवार, ग्राम, क्षेत्र, समाज, राज्य, देश व विश्व स्तर पर प्रत्येक व्यक्ति को जागरूक होने की आवश्यकता है। व्यक्तिगत एवं सामूहिक स्तर पर दायित्व या कर्तव्य निर्वहन से किस भी वैश्विक समस्या से निजात सम्भव है। इसी को लक्ष्य करके देश के नागरिक होने के कारण स्वयं के स्तर पर स्थानीय व जनपद स्तर पर भूजल संरक्षण के प्रति जागरूकता एवं प्रचार– प्रसार की प्रासंगिकता है। प्रत्येक नागरिक को जागरूक करने के लिए प्रत्येक स्तर पर जनजागरूकता व प्रचार–प्रसार की आवश्यकता है।[32] सरकारी प्रयास के अन्तर्गत भूजल सेना का गठन भूजल संरक्षण के जनजागरूकता अभियान आंषिक रूप से प्रासंगिक है। इसी क्रम में स्कूली शिक्षा के स्तर पर प्रयास, सुझाव, जागरूकता आदि उपाय भूजल संकट के मुद्दे व समस्याओं के समाधान में सार्थक पहल करेगा। बिना जनमानस के जागरूकता व सहयोग से छोटी या बड़ी किसी भी समस्या का सार्थक समाधान नही हो सकता। इसलिए देष, प्रदेश, जनपद, ग्राम व परिवार के स्तर पर प्रत्येक नागरिक एवं सदस्यों को जागरूकता के माध्यम से भूजल संरक्षण के महत्वाकांक्षी योजना में सफलता मिलेगी। साथ ही साथ भावी भूजल संकट को टाला जा सकता है।

निष्कर्ष–

वैश्विक, पटल पर भूजल सम्बन्धी अनेकानेक प्रश्न पर्यावरण प्रदूषण, जल संरक्षण, जल प्रदूषण, भूजल सतह का अवक्रमण, जल स्तर उपलब्धता में गिरावट, हानिकारक रासायनिक तत्वों की जल में घुलनशीलता के कारण पेयजल की शुद्धता विषयक इत्यादि गम्भीर समस्या बुद्धिजीवियों, भूवैज्ञानिकों, पर्यावरणविदों,

समाजसेवियों एवं चिकित्सकों को चिन्तन-मनन एवं अन्वेषण के लिए निरन्तर प्रेरित एवं सजग कर रही है। वैश्विक स्तर पर व्याप्त मुद्दों एवं समस्याओं से हम अनछुए नहीं रह सकते हैं। आज नहीं तो कल, कम या अधिक अवश्य प्रभावित होगें। ऐसी स्थिति में विश्व, देश, विदेश, प्रदेश, जनपद, परिवार या व्यक्तिगत स्तर पर प्रत्येक व्यक्ति को जागरूक होने की आवश्यकता है। समस्या के कारक-जनसंख्या की अतिशय वृद्धि के कारण आवश्यकताओं में निरंतर वृद्धि, शहरीकरण, औद्योगीकरण के कारण जल का अनियंत्रित दोहन, वर्षा जल का संरक्षित न होना, जल की महत्ता से अनभिज्ञता या जागरूकता का अभाव आदि है।[33]

जल की महत्ता पर सामाजिक स्तर पर पर्याप्त जनजागरूकता, प्रचार-प्रसार अपरिहार्य है। जैसे- जल जीवन है, जल की एक-एक बूँद हमारी प्राण रक्षा कर सकती है। जल एवं जीवन का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। इसी क्रम में सामाजिक स्तर पर जल की आध्यात्मिक महत्ता प्रतिपादित की जानी चाहिए। वैदिक संस्कृति परम्परा में जल को देवता माना गया, किन्तु उसे जल न कहकर आप: या आपोदेवता कहा गया है। ऋग्वेद के प्रथम एवं सप्तम मण्डल के आपो सूक्त में जल की प्रार्थना की गयी है।[34] शास्त्रीय ग्रन्थों में जल की उपयोगिता सर्वविदित है- जल हमारा जीवन है, हमारे जीवन का आधार है। जल के बिना हम अपने अस्तित्व की कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। जल विषयक बहुश्रुत शाश्वत वाक्य या व्युत्पत्ति है '' *जन्मात् लयपर्यन्तं यत् स्थितं तज्जलम्*'' अर्थात् जो वस्तु इस संसार में जल से लेकर उसके समाप्त होने तक मौजूद रहे वही जल कहलाती है। 'ज' अर्थात् जल और 'ल' अर्थात् लय (प्रकृति में लीन हो जाना) इन दोनों क्रियाओं का वाचक जल है। इस प्रकार जल मानवता के लिए प्रकृति या ईश्वर का सबसे बड़ा वरदान है जो हमें भूगर्भ जल के साथ-साथ वर्षा, समुद्रों, पर्वतीय झरनों, नदियों, तालाबों, पोखरों आदि से प्राप्त है। किन्तु हमारी स्वार्थपरता, विकास के अन्धाधुन्ध दौड़, अज्ञानता, या जागरूकता का आभाव हमें संकट ग्रस्त बनाने के लिए अग्रसर कर रहा है।[35]

सरकारी स्तर पर वैज्ञानिकों द्वारा जो उपाय सुझाएँ जा रहे हैं, वे ही संकट से निजात दिलाने में पर्याप्त नहीं हैं। अपितु स्वयंसेवी संगठनों, प्रगतिशील नागरिकों, बुद्धिजीवियों, धर्माचार्यों द्वारा विभिन्न माध्यमों से जल की उपयोगिता पर प्रकाश डाला जाय। संगोष्ठियाँ, आमसभा, वाद-विवाद प्रतियोगिता, रैलियाँ, दूरदूर्शन पर उपयोगिता परक सीरियल एवं अन्यान्य कार्यक्रम द्वारा जनजागरूकता फैलाकर जल संरक्षण के उपायों पर सफलता मिल सकती है। निष्कर्षत: सरकारी प्रयास, नित नवीन अनुसंधान, कानूनी उपायों, सामाजिक एवं आध्यात्मिक सरोकारों द्वारा जनजागरूकता एवं प्रचार-प्रसार ही भूजल संरक्षण के प्रति कारगार उपाय सिद्ध होगा। सामाजिक, धार्मिक एवं सरकारी कानूनी उपायों द्वारा तथा उनके प्रचार-प्रसार द्वारा अनियंत्रित जल दोहन एवं दुरूपयोग, जल प्रदूषण, वर्षाजल संरक्षण, जलभृत भरण, जल सतह के गिरावट को रोकने आदि पर नि:संदेह लक्ष्य की प्राप्ति होगी। भूजल संरक्षण का ज्ञान जन सामान्य को होना आवश्यक है, क्योंकि यदि हम जल संग्रह, संचय व सदुपयोग के प्रति जागरूक नही हुए तो बढ़ती हुई जनसंख्या, शहरी व औद्योगिक विकास, जलवायु परिवर्तन और अनियंत्रित जल प्रयोग हमारे भविष्य के लिए अति घातक सिद्ध हो सकता है। अत: जो वरदान हमें प्रकृति के द्वारा भूजल, वर्षाजल के रूप में प्राप्त है उसे व्यर्थ न जाने देने के बजाय भविष्य के लिए संचित संग्रहित एवं संवर्धित करें इसी में हम सब मानव जाति का कल्याण है।

सर्वेभवन्तु सुखिन:, सर्वे सन्तु निरामया:
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित दु:खभाग्भवेत्।।

संदर्भ संकेत

1. संसाधन भूगोल, प्रो. जगदीश सिंह, अध्यक्ष, भूगोल विभाग, दी.द.उ. विश्वविद्यालय, गोरखपुर।
2. यथोपरि।
3. यथोपरि।
4. यथोपरि।
5. डी.डी. ओझा एवं एच.आर. भट्ट- राजस्थान के भूजल की गुणवत्ता एवं उपलब्धता का अध्ययन।
6. यथोपरि।
7. यथोपरि।
8. रचना मिश्रा तथा अलका निवेदन, लेख, प्रकृति उपहार, वर्षाजल एवं उसका संग्रहण- एक तकनीकी विश्लेषण (अनुसंधान विज्ञान शोध पत्रिका- अक्टूबर 2014)
9. डॉ. राजेश सिंह, (लघु शोध परियोजना, प्रकाशित वर्ष, जून 2018)- भूजल संरक्षण जनजागरूकता एवं प्रचार-प्रसार: जनपद बस्ती एक परिदृश्य।
10- रचना मिश्रा तथा अलका निवेदन, लेख, प्रकृति उपहार,

वर्षाजल एवं उसका संग्रहण- एक तकनीकी विश्लेषण (अनुसंधान विज्ञान शोध पत्रिका- अक्टूबर 2014)
11. उ.प्र. प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, लखनऊ, यू.पी.।
12. भूगर्भ जल विभाग, लखनऊ, उ.प्र.।
13. रचना मिश्रा तथा अलका निवेदन, लेख, प्रकृति उपहार, वर्षाजल एवं उसका संग्रहण- एक तकनीकी विश्लेषण (अनुसंधान विज्ञान शोध पत्रिका- अक्टूबर 2014)
14. यथोपरि।
15. यथोपरि।
16. डी.डी. ओझा एवं एच.आर. भट्ट- राजस्थान के भूजल की गुणवत्ता एवं उपलब्धता का अध्ययन।
17. रघुनाथ एच.एम., ग्राउन्ड वाटर न्यू एज इंटरनेशनल (1998)।
18- संसाधन भूगोल, प्रो. जगदीश सिंह, अध्यक्ष, भूगोल विभाग, दी.द.उ. विश्वविद्यालय, गोरखपुर।
19. डी.डी. ओझा एवं एच.आर. भट्ट- राजस्थान के भूजल की गुणवत्ता एवं उपलब्धता का अध्ययन।
20. यथोपरि।
21. पर्यावरण संविकास, प्रो. जगदीश सिंह, अध्यक्ष, भूगोल विभाग, दी.द.उ. विश्वविद्यालय, गोरखपुर।
22. यथोपरि
23. यथोपरि
24. यथोपरि
25. यथोपरि
26. यथोपरि
27. जिलाधिकारी, बस्ती पत्र पत्रांक- 227/भू.जी.वि.ख.ब./भूजल सेना/2017, दिनांक 10.07.2017।
28. भूगर्भ जल विभाग उ.प्र. के अन्तर्गत भूजल जनजागरूकता एवं प्रचार-प्रसार योजना विषयक पत्र दिनांक 19.05.2017।
29. रचना मिश्रा तथा अलका निवेदन, लेख, प्रकृति उपहार, वर्षाजल एवं उसका संग्रहण- एक तकनीकी विश्लेषण (अनुसंधान विज्ञान शोध पत्रिका- अक्टूबर 2014)
30. भूजल सूचना विवरणिका, जिला बस्ती, उ.प्र.।
31- डॉ. राजेश सिंह, (लघु शोध परियोजना, प्रकाशित वर्ष, जून 2018)- भूजल संरक्षण जनजागरूकता एवं प्रचार-प्रसार: जनपद बस्ती एक परिदृश्य।
32. यथोपरि।
33. दीप्ति सिंह, (रीडर एवं अध्यक्ष, गणित विभाग, महिला महाविद्यालय अमीनाबाद लखनऊ) लेख, भूगर्भ जल संरक्षण, (अनुसंधान विज्ञान शोध पत्रिका-2015)
34. ऋग्वेद मण्डल 1 एवं 7
35. डॉ. राजेश सिंह, (लघु शोध परियोजना, प्रकाशित वर्ष, जून 2018)- भूजल संरक्षण जनजागरूकता एवं प्रचार-प्रसार: जनपद बस्ती एक परिदृश्य।

ISSN 2278 - 0327

अब्दुल बिस्मिल्लाह की कहानियों में हिन्दू-मुस्लिम समाज : साम्य-वैषम्य

मोहित
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

डॉ. संजीव कुमार
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

भूमिका

अब्दुल बिस्मिल्लाह समाज के यथार्थ रचनाकार कहे जाते हैं। इन्होंने तत्कालीन समाज में प्रचलित रीति-रिवाज, धर्म राजनीति, आर्थिक स्थिति, शोषण आदि का वर्णन किया है। इनकी कहानियों में मनुष्य को छोटी-छोटी आवश्यकताओं के लिए कठोर परिश्रम और संघर्ष करते हुए दिखाया है। समाज में हाशिए पर जीवन व्यतीत कर रहे वर्ग को मजबूती से खड़ा होने को प्रेरित करती हैं। लेखक चूंकि मुस्लिम समाज से संबंध रखते हैं इसलिए इनकी कहानियों में अधिकतर मुस्लिम पात्र और परम्पराओं का वर्णन है। किंतु ये हिन्दू समाज से भी बराबर जुड़े रहे जिसका प्रभाव इनकी कहानियों में दिखाई देता है। हिन्दू-मुस्लिम दोनों संप्रदायों से इनकी कहानियाँ जुड़ी हुई हैं। कुछ बिन्दु इन दोनों संप्रदायों में भिन्नता को दर्शाते हैं और कुछ समानता का परिचय देते हैं। यहाँ हमारा मुख्य उद्देश्य इन्हीं दोनों प्रकार के बिन्दुओं पर विचार करना है।

1. हिन्दू-मुस्लिम समाज-साम्य

1.1 वर्ग भेद

प्रत्येक समाज विभिन्न वर्गों में बँटा होता है। ये वर्ग आर्थिक, सामाजिक स्तर पर भिन्नता रखते हैं। हिन्दू-मुस्लिम दोनों ही संप्रदाय अनेक वर्गों में बँटे होते हैं। इनमें कुछ वर्ग स्वयं को उच्च मानते हैं, जिन्हें समाज में प्रधानता प्राप्त होती है। यह वर्ग, निम्न वर्ग का शोषण करता है। निम्न वर्ग को उच्च वर्ग के समान अधिकार नहीं मिलता। इसी कारण इन दोनों वर्गों में संघर्ष की स्थिति बनी रहती है। अब्दुल बिस्मिल्लाह की अनेक कहानियों में हमें दोनों ही संप्रदायों में हो रहा जातिगत भेदभाव दिखाई देता है। इनकी कहानी 'अलिया धोबी और पाव भर गोश्त' कहानी मुस्लिम समाज में व्याप्त भेद-भाव को दर्शाती है। कहानी में चित्रित किया गया है कि मुस्लिम समाज में समानता केवल मस्जिद की चौखट तक सीमित है। इस्लाम में सभी को समान दर्जा देने पर बल दिया गया है, किंतु वास्तव में इसका पालन नहीं किया जाता। समाज अनेक वर्गों में बँटा है। निम्न वर्गीय लोगों को हीन समझा जाता है, उनके साथ दुर्व्यवहार किया जाता है। लेखक की यह कहानी इसी विषय पर बल देती है। 'अलिया' नामक दलित व्यक्ति इसका विरोध करता है। वह अपने वर्ग के लोगों में इस शोषण के विरुद्ध चेतना जाग्रत करता है। ''इस्लाम ने हमें मसावात की नसीहत दी है। मसावत यानी बराबरी। हर आदमी बराबर है। न कोई बड़ा है न कोई छोटा। लेकिन ... बराबरी सिर्फ मस्जिद तक महदूद है। बाहर, समाजी जिंदगी में वही ऊँच- नीच आज तक मौजूद है।''[1] उपर्युक्त कथन मुस्लिम समाज में व्याप्त जातिगत भेदभाव को दर्शाता है। हिन्दू समाज भी इससे अछूता नहीं है। यहाँ भी उच्च वर्ग के लोग निम्न वर्ग के लोगों से घृणा करते हैं, उनका शोषण करते हैं। इस बात को स्पष्ट करने के लिए लेखक की 'सुलह' कहानी को लिया जा सकता है। इसमें 'पंडित रामदीन शुक्ल' नामक उच्च वर्गीय व्यक्ति, 'महादेव' नामक निम्न वर्गीय व्यक्ति के साथ दुर्व्यवहार करता है। उसे मारता-पीटता और गालियाँ देता है। इस कहानी में यह दर्शाया गया है कि उच्च वर्ग, निम्न वर्ग पर अपना अधिकार समझता है। निम्न वर्ग यदि अपने हित का विचार करता है तो उच्च वर्ग द्वारा उसे प्रताड़ित किया जाता है। 'महादेव' अपने साथ हुए दुर्व्यवहार को अनदेखा नहीं करना चाहता। उसका मानना है कि जो आज उसके साथ हुआ वह कल किसी और के साथ होगा। शोषण की यह प्रक्रिया निरंतर चलती रहेगी। वह इसका विरोध करता है, जब प्रशासन भी उसकी सहायता नहीं करता तो वह स्वयं अपने अपमान का बदला लेता है, उस उच्च वर्गीय व्यक्ति को पीटकर। इस कहानी में पुलिस प्रशासन की भ्रष्टता भी उजागर हुई है। अत: लेखक की इन कहानियों में हिन्दू और मुस्लिम दोनों ही संप्रदायों में व्याप्त वर्ग-

भेद को उजागर किया गया है।

1.2 धार्मिक अंधविश्वास

लेखक ने अपनी कहानियों में दोनों ही संप्रदायों में व्याप्त धार्मिक आडंबरों की ओर ध्यान केन्द्रित किया है। मुस्लिम समाज में निर्धन व्यक्ति के लिए भक्ति के मार्ग पर चलना सहज नहीं है। 'मुरीद' कहानी इसका उदाहरण है। कहानी में एक निर्धन बुजुर्ग अपनी आस्था और श्रद्धा की कीमत चुकाता है। वह किसी 'पीर' का श्रद्धावश 'मुरीद' हो जाता है। इन पीरों द्वारा मुरीदों से 'सलामी' ली जाती है। 'सलामी' के रूप में पैसे होते थे। वह निर्धन व्यक्ति जो स्वयं अपना पेट ठीक से नहीं भर सकता, 'पीर' के लिए 'सलामी' के पैसे कहाँ से जुटाता। वह अपना और अपने परिवार का पेट भूखा रख कुछ पैसे बचाकर 'पीर' को 'सलामी' देता है। कहानी में इस परम्परा का विरोध किया गया है। ''मुझे लगता है कि इसके लिए हमारे धार्मिक आडंबर ही पूर्णतया जिम्मेदार हैं। अगर धर्म भलाई के लिए है तो ये पीर साहब लोग निर्धनों से सलामी क्यों लेते हैं।''[2] कहानी में निर्धनता की मार झेलता परिवार दर्शाया गया है। धर्म में व्याप्त आडंबर निर्धन व्यक्ति के शोषण का मुख्य कारण होते हैं। इसी प्रकार हिन्दू समाज में व्याप्त धार्मिक पाखंडों का चित्रण मिलता है। 'पेड़' नामक कहानी में 'बकरीदी' नामक कसाई अनपढ़ और भोला-भाला था। वह धर्म की अधिक जानकारी नहीं रखता। इसी का लाभ उठाकर उसे बहकाया जाता है। एक पंडित द्वारा यह घोषणा करवा दी जाती है कि 'बकरीदी' के घर जो पीपल का पेड़ है उसमें हनुमान जी प्रकट हुए हैं। इस बात को सभी मान भी लेते हैं। 'बकरीदी' सच्चाई से पूर्णत: अनभिज्ञ होता है। वह इस बात पर खुश होता है कि हनुमान जी उसके घर में प्रकट हुए। उसकी इसी भावना के कारण उसे मुस्लिम समाज से बेदखल कर दिया जाता है। तत्पश्चात् हिन्दू 'पंडे-पुजारी' 'बकरीदी' के घर को तोड़कर वहाँ मंदिर बनाने की योजना बनाते हैं। उनके द्वारा बकरीदी को मुस्लिम करार देते हुए यह हिदायत दी जाती है कि अब उसे वहाँ नहीं रहने दिया जाएगा। धर्म के नाम पर हो रहे अत्याचार का भोगी 'बकरीदी' बन जाता है। उसे उसी के घर से बेदखल किया जा रहा था। अंत में वह उस पेड़ को ही काट देता है। वह जान जाता है कि दोनों तरफ धर्म के वास्तविक स्वरूप को भूलकर पाखंडों पर बल दिया जा रहा है।

2. हिन्दू-मुस्लिम समाज-वैषम्य

2.1 नारी की स्थिति

स्त्री का जीवन संघर्ष से भरा होता है। वह सदैव त्याग एवं बलिदान की प्रतिमूर्ति मानी जाती है। प्रत्येक समाज में स्त्री ने पीड़ा और अत्याचार सहा है। समाज के रीति-रिवाज, परम्पराएँ सभी स्त्री के जीवन को ही अधिक प्रभावित करती हैं। हिन्दू समाज में स्त्री अब अपने अधिकारों के प्रति सजग प्रतीत होती है। उनकी शिक्षा पर भी ध्यान दिया जा रहा है। यहाँ अधिकतर औरतें अपने निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र होती हैं। किंतु मुस्लिम समाज में आज भी स्त्री बंदिनी ही है। वह अपनी इच्छा से कोई भी कार्य नहीं कर सकती। घर-परिवार एवं समाज द्वारा उस पर अनेक बंधन लगा दिए जाते हैं। पुरुष उसे जब चाहे तलाक दे देता है। जिससे वह दर-दर भटकने को मजबूर हो जाती है। लेखक की अनेक कहानियाँ मुस्लिम समाज में स्त्री की स्थिति को दर्शाती हैं। लेखक की कहानी 'शत्रु' में बताया गया है कि मुस्लिम स्त्रियों को घर से निकलने की भी स्वतंत्रता नहीं होती, उन्हें सदैव पर्दे में रहना पड़ता है। वे किसी अन्य पुरुष से बात भी नहीं कर सकती। कहानी में 'कल्लू' नामक आदमी की पत्नी के विषय में बताया गया है। उस पर लगाई गई पाबंधियों को दर्शाया गया है। ''गैर मर्दों से तो खैर हँसने-बोलने का सवाल ही नहीं उठता था, कल्लू से भी वह खुलकर हँस-बोल नहीं सकती थी। क्योंकि बड़े मियां ने उसे यह भी बता रखा था कि बुजुर्गों की उपस्थिति में बेटी-बहू को अपने मर्द तक से बातें नहीं करनी चाहिए।''[3] इसके अतिरिक्त यहाँ औरतों का 'तलाक' प्रथा के कारण बहुत यातना झेलती हैं। इसका वर्णन हमें 'तलाक के बाद' और 'अभिनेता' कहानी में मिलता है। 'तलाक के बाद' कहानी में तलाक के अलावा 'हलाला' प्रथा का भी उल्लेख मिलता है। ये प्रथाएँ स्त्री के लिए संकट बन जाती हैं। 'अभिनेता' कहानी में एक पुरुष अनेक विवाह करता है। वह अपनी मर्जी से अनेक विवाह और तलाक करता है। यहाँ स्त्री के जीवन की संघर्षमय स्थिति को दर्शाया गया है। यह कहानी स्त्री को 'तलाक' के कारण पीड़ित होते हुए दिखाती है। इससे स्पष्ट होता है कि मुस्लिम समाज में स्त्री की स्थिति अच्छी नहीं कही जा सकती।

2.2 धार्मिक कट्टरता

मुस्लिम समाज में धार्मिक विवाद अधिक पाए जाते हैं। अन्य संप्रदायों की अपेक्षा यह समाज धर्म के नियमों को कठोरता से धारण करता है। इसमें प्रत्येक मनुष्य के लिए इन नियमों का पालन करना आवश्यक माना जाता है। जिससे ये कट्टरता के भाव धारण कर लेते हैं। मुस्लिम समाज में धर्म के नाम पर मनुष्य पर अनेक पाबंधियाँ लगा दी जाती हैं। इनमें दूसरे धर्म के प्रति सहनशीलता की कमी पाई जाती है। अब्दुल बिस्मिल्लाह की

कहानी 'कैलेंडर' में इसी विषय पर बल दिया गया है। 'अनवर' नामक मुस्लिम पात्र और 'अनीस' नामक हिन्दू पात्र एक साथ रहने के लिए मजबूर हो जाते हैं। 'अनीस' ने दीवार पर एक 'कैलेंडर' लगा रखा था जिस पर भगवान् कृष्ण का चित्र था। 'अनवर' उस कैलेंडर को हटाकर उसके स्थान पर एक नया कैलेंडर लगा देता है जिस पर किसी लड़की को मस्जिद के आगे दुआ माँगते हुए दिखाया है। 'अनीस' को 'अनवर' के कैलेंडर से कोई आपत्ति नहीं थी। उसे 'अनवर' का लाया 'कैलेंडर' भी पसंद आता है। किंतु उसने अपने कैलेंडर को भी पुन: लगा दिया। लेकिन 'अनवर' ने फिर से 'अनीस' के कैलेंडर को हटा दिया। यहाँ इन दोनों पात्रों की मानसिकता प्रदर्शित होती है। ''अनीस के लिए भले ही कैलेंडर सिर्फ दिन-तारीख देने वाला एक कागज भर हो, पर वह अनवर जैसे लोगों के लिए कोई धार्मिक प्रतीक भी हो सकता है।''[4] उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि 'अनवर' की मानसिकता धार्मिक कट्टरता से ग्रस्त थी। इसके अतिरिक्त एक अन्य कहानी 'अलिया धोबी और पाव भर गोश्त' में दोनों संप्रदायों की धार्मिक प्रवृत्ति को दर्शाया गया है। ''सत्यनारायण की कथा में मुसलमान भले न जाते हो, पर मीलाद में हिंदू आया करते थे। कथा की पंजीरी मुसलमान भले न खाते हों, कि यह बुत पर चढ़या गया परसाद है पर मीलाद में बँटने वाली 'सिन्नी' हिन्दू लिया करते।''[5] उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि हिन्दू समाज में मुस्लिम समाज की अपेक्षा धार्मिक कट्टरता नहीं पाई जाती। मुस्लिम समाज में धर्म को सर्वोपरि माना जाता है जिन्हें सामान्य जन जीवन पर थोंप दिया जाता है। इससे सामान्य मनुष्य का जीवन सरल होने की अपेक्षा अधिक उलझ जाता है।

निष्कर्ष

निष्कर्षत: अब्दुल बिस्मिल्लाह की कहानियों में हिन्दू और मुस्लिम दोनों संप्रदायों का उल्लेख किया गया है। मुख्य रूप से मुस्लिम समाज के जीवन और परम्पराओं को दर्शाता है। इन्होंने दोनों संप्रदायों के मध्य पाई जाने वाली समानता और असमानता को दर्शाया है। लेखक ने अपनी कहानियों में छोटी-छोटी घटनाओं को उठाया है जिनका जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। जाति-धर्म के नाम पर हो रहे भेदभाव को उल्लेखित किया है। लेखक का मुख्य उद्देश्य समाज में हो रहे अत्याचार के विरुद्ध मनुष्य को चेताकर उसके विरुद्ध खड़ा करना है। इनकी कहानियों में शोषण के साथ-साथ उसके विरुद्ध विद्रोह की भावना भी दिखाई देती है। लेखक अपनी कहानियों के अंत को निश्चित या निर्धारित नहीं करता। वह अंत निर्धारण का निर्णय स्वयं समाज पर छोड़ देते हैं।

संदर्भ सूची

1. अब्दुल बिस्मिल्लाह, अतिथि देवो भव, पृ. 10-11 प्रकाशक: राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
2. अब्दुल बिस्मिल्लाह, ताकि सनद रहे, पृ. 117
3. वही, पृ. 239
4. अब्दुल बिस्मिल्लाह, शादी का जोकर, पृ. 64
5. अब्दुल बिस्मिल्लाह, अतिथि देवो भव, पृ. 9

ISSN 2278 - 0327

महाभारत में पर्यावरण चेतना एवं संरक्षण

हितेश मीना
शोध छात्र संस्कृत एवं प्राच्य विद्या अध्ययन संस्थान
जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली- 110067

छान्दोग्योपनिषद में महाभारत एवं पुराण को पञ्चम वेद कहा है- '*ऋग्वेदं भगवोऽध्यैमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्*।[1] महाभारत न केवल आख्यान ग्रन्थ है अपितु समग्र संस्कृत वाङ्मय का नवनीतमात्र है। विशेषरूप से वैदिक-लौकिक तथ्य, दर्शन, आख्यान, नीतिशास्त्र, आचारशास्त्र, धर्मशास्त्र, आयुर्वेद आदि विषयों का संग्रहण मिलता है। अतएव विद्वान् कहते भी हैं- '*यन्न भारते, तन्न भारते*'। महाभारत में भी कहा गया है- '*यदिहास्तितदन्यत्रयन्नेहास्तिनतत्क्वचित्*'॥[2] महाभारत के लिए जय, भारत और महाभारत इत्यादि नामों का भी उल्लेख मिलता है। सम्पूर्ण महाकाव्य में 100000 श्लोक हैं, जो 18 पर्वों में निबद्ध है।

भारतीय संस्कृति में प्रकृति और पर्यावरण की अर्चना एवं आराधना की पुण्यभावना सन्निहित है। पर्यावरण प्रकृति पर पूर्ण रूप से निर्भर है। प्रकृति का प्रत्येक कार्य एक स्वाभाविक एवं नियमित प्रणाली का श्रेष्ठ रूप है। इस प्रकृति को विकृत करने का परिणाम ब्रह्माण्ड की परमसत्ता को चुनौती देना है। भारतीय चिन्तन में पर्यावरण-संरक्षण की अवधारणा उतनी ही प्राचीन है, जितना मानव जाति का इतिहास। '*माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः*'[3]- वसुन्धरा जननी है, हम सब उसके पुत्र हैं, अथर्ववेद के भूमिसूक्त के स्रष्टा वैदिक ऋषि ने सहस्रों वर्षों पूर्व उद्घोषित किया था। मनुष्य ही नहीं, हमारे पर्यावरण का हर चर-अचर जीव-जन्तु प्रकृति-चेतना से इस प्रकार जुड़ा है कि बिना पर्यावरणीय सन्तुलन के जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती है।

पर्यावरण-संरक्षण के सन्दर्भ में उन्नीसवीं एवं बीसवीं सदी के चार्ल्स डार्विन, जगदीश चन्द्र वसु एवं राउल फ्रांस जैसे विश्वविख्यात अनुसंधानकर्ताओं ने वनस्पति एवं प्राणिजगत् का गहन अध्ययन करके जो जानकारियाँ प्राप्त की थी, वे सभी जानकारियां ऋषि-मुनियों को प्राचीन काल में ही थी। वैदिक कालीन ऋषि पेड-पौधों में देवत्व का भावना प्रतिष्ठित करके पर्यावरण-संरक्षण हेतु सतत प्रयत्नशील थे।

वैदिक ऋषि प्रार्थना करते हैं, 'पृथ्वी, जल, ओषधि एवं वनस्पतियाँ हमारे लिए शुभ एवं लाभ प्रद हों।' इनके अभाव में मानव जीवन की सुख-शांति की कल्पना ही नहीं कि जा सकती है। महाभारत में मानव एवं उसके पर्यावरण के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध का वर्णन किया गया है। समस्त पर्यावरण में एक ही परमात्मा समान रूप से व्याप्त है। सभी प्राणि उसी से अनुप्राणित है।

महाभारत में प्रकृति संरक्षण से संबंधित विभिन्न वर्णन मिलते हैं। तत्कालीन मानव समुदाय का सम्यक रूप से यह प्रयास रहता था कि उनके आस-पास का वातावरण प्रदूषण से मुक्त हो। महाभारत में स्थान- स्थान पर स्वच्छता, निरोगता, औषधियों का उपयोग, वृक्षारोपण एवं संरक्षण की महत्ता, वायु एवं जल की पवित्रता की आवश्यकता आदि के वर्णन से ज्ञात होता है कि तत्कालीन मानव समाज जानता था कि मानव तभी निरोगी हो सकता है जब वह अपने को प्रकृति- पुत्र स्वीकार कर उसका संरक्षण करते हुए अपना भी पोषण करें। महाभारत वनों का काव्य है। वनों में कथा का पल्लवन हुआ है तथा स्वयं वन पात्रों की भांति अपनी भूमिका प्रस्तुत करते हैं। महाभारत में द्वैतवन, द्वारका वन, उत्तरकुरुवर्ष वन, कदली वन, सौगंधि वन लोद्रवन, भयंकर वन एवं दिव्य वन आदि वन स्थलों का उल्लेख प्राप्त होता है। महाभारत का 'वन पर्व' वनों के अधिकांश पक्षों का अवबोध कराने में सफल रहा है। यह आज मानव समाज को वन संरक्षण की सत्प्रेरणा प्रदान करता है।

पादैः सलिलपानाच्च व्याधीनां चापि दर्शनात्।
व्याधि प्रतिक्रियत्वाच्च च रसनं द्रुमे॥
सुखदुःखयोश्च ग्रहणाच्छिन्नस्य च विरोहणात्।
जीवं पश्यामि वृक्षाणामचैतन्य न विद्यते॥[4]

महाभारत के वन पर्व के अनुसार कुरु जंगल से द्वैतवन में पाण्डव गये थे। कुरु जंगल प्रदेश हस्तिनापुर के उत्तर पश्चिम में स्थित एक वन्य प्रदेश था। महाभारत के अनुसार कुरुओं की राजधानी हस्तिनापुर कुरुजंगल में स्थित थी। आदिपर्व में यह वर्णन है कि द्वैतवन पुष्पों एवं फलों से समृद्ध तथा पुण्यात्मा पुरुषों की निवासस्थली कुरुजंगल के आसपास ही कहीं था। जहाँ अत्यन्त

पवित्र जल से भरा हुआ सरोवर था। यहाँ युधिष्ठिर की सहमति से सभी पाण्डव रहते थे। वस्तुत: द्वैतवन नाम से सरोवर एवं वन दोनों ही विख्यात थे। दोनों की प्रसिद्धि के कारण ही इसका नाम द्वैतवन पड़ा था। यह वन पर्यावरणीय दृष्टि से अत्यन्त उत्तम अनेकानेक वृक्षों, पशुओं एवं पक्षियों से समृद्ध था, यथा–

इदं द्वैतवनं नाम सर: पुण्य जलोचितम् ।
बहुपुष्पफलं रम्यं नानाद्विजनिषेवितम् ।।
तमालतालाम्रमधूकनीपकदम्बसर्जार्जुनकर्णिकारै:।
तपात्यये पुण्यधरैरुपेतं महावनं राष्ट्रपतिर्ददर्श ।।[5]

उस समय जैवविविधता के संरक्षण के लिए जीव–जन्तु भी चैतन्य थे, यथा–

वयं मृगा द्वैतवने हतशिष्टास्तु भारत ।
नोत्सीदेम महाराज क्रियतां वासपर्यय:।।[6]
बीजभूता वयं केचिद् वशिष्टा महामने ।
विविधैमहि राजेन्द्र प्रसादात् ते युधिष्ठिर॥[7]

उस समय पालतु पशुओं के अतिरिक्त वन्य जीवों की भी रक्षा की जाती थी, युधिष्ठिर का कथन है–

ते सत्यमाहु: कर्तव्या दयास्माभिर्वनौकसाम्। [8]

अर्थात् जीवों का कथन सत्य है, अत: हम लोगों को वनवासी हिंसक जीवों पर दया करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त कैरातवन पशु–पक्षियों के मधुर कलरव तथा विविध वनस्पति पुष्पों से युक्त था। शीतल और निर्मल जल से परिपूर्ण मनोहर सरिताओं और सरोवरों से वह वन सुशोभित हो रहा था।

तत्रापश्यद् द्रुमान् फुल्लान् विहगैर्वल्गुनादितवान्।
नदीश्च विपुलावर्ता वैदूर्यविमलप्रभा:।।[9]
हंसकारण्डवोदीता: सारसाभिरुतास्तथा।
पुंस्कोकिलरुताश्चैव क्रौञ्चबर्हिणनादिता:।।[10]
मनोहरवनोपेतास्तस्मिन्नतिरथोऽर्जुन:।
पुण्यशीतामलजला: पश्यन् पीतमनाभवत्॥[11]
नानापुष्पफलोपेतं नानापक्षिनिषेवितम्।
नानामृगगणाकीर्ण सिद्धचारणसेवितम् ।।[12]

महाभारत में जलाशय तथा बगीचे लगाने से लाभ के विषय में कहा गया है कि तालाब खुदवाने से अग्निहोत्र, गोदान तथा कुल का उद्धार करने वाले के समान पुण्य प्राप्त होता है।

वर्षाकाल तडागे तु सलिलं यस्य तिष्ठति।
अग्निहोत्रफलं तस्य फलहुर्मनीषिण:।।[13]
तडागे यस्य गावस्तु पिबन्ति तृषिता जलम्।
मृगपक्षिमनुष्याश्च सोऽश्वमेधफलं लभेत्।।[14]

अर्थात् जिस तालाब में प्यासी गाये पानी पीती है तथा मृग, और मनुष्यो को भी जल सुलभ होता है ऐसा कार्य करने वाला व्यक्ति अश्वमेघ यज्ञ का फल पाता है। महाभारत में जल को दुर्लभ पदार्थ कहा गया है। इसके दान से पुण्य प्राप्त होने का उल्लेख है।

दुर्लभं सलिलं तात विशेषेण परत्र वै।
पानीयस्य प्रदानेन प्रीतिर्भवति शाश्वती।।[15]
पानीयं परमं दानं दानानां मनुरब्रवीत्।
तस्मात् कूपांश्च वापीश्च तडागानि च खानयेत॥[16]

अर्थात् जल का दान सब दानों से बढ़कर है, इसलिए बावड़ी और पोखरे खोदवाने चाहिए। वृक्षारोपण के विषय में महाभारत में कहा गया है कि वृक्षारोपण से मनुष्य की इस लोक में कीर्ति बनी रहती है, और मरने के बाद उसे उत्तम शुभ फल की प्राप्ति होती है। वृक्ष को पुत्ररूप तथा स्वर्ग और अक्षय लोक का प्राप्त कराने वाला कहा गया है।

तस्य पुत्रा भवन्त्येते पादपा नात्र संशय:।
परलोकगत: स्वर्ग लोकांश्चाप्नोति सोऽन्ययान्।।[17]

वृक्ष को मनुष्य ही नहीं वरन् देवगण तथा पितरों को तृप्त करने वाला बताया गया है।

पुष्पै: सुरगणान् वृक्षा: फलैश्चापि तथापितृन्।
छायया चातिथि तात पूजयन्ति महीरुह:।।[18]
वृक्षदं पुत्रवद वृक्षास्तारयन्ति परत्र तु॥[19]

अर्थात् वृक्षगण अपने फूलों से देवताओं की, फलों से पितरों की और छाया से अतिथियों की पूजा करते हैं। *पुष्पिता: फलवन्तश्च तर्पयन्तीह मानवान।* वृक्ष दान को पर लोक में पुत्र के समान तारने (मानने) वाला स्वीकार किया गया है।

महाभारत में वृक्ष को धर्म की दृष्टि से पुत्र तथा पुत्रों के समान इनका पालन करने को कहा गया है।

तस्मात तडागे सद्वृक्षारोप्या: श्रेयोअर्थिना सदा।
पुत्रवत परिपाल्याश्च पुत्रास्ते धर्मत: स्मृता:॥[20]

अर्थात् मनुष्य को खोदवाएं हुए तालाब के किनारे अच्छे–अच्छे वृक्ष लगाएं और उनका पुत्र के समान पालन करें, क्योंकि वे वृक्ष धर्म की दृष्टि से धर्म ही माने गए हैं। महाभारत में सभी प्राणियों के प्रति अहिंसा का भाव रखने को कहा गया है।

अहिंसा सर्वभूतेभ्य: संविभागाश्च भागश:। [21]
नाध्यापयेत् तथोच्छिष्टो नाधीयोत कदाचन।
वाते च पूतिगन्धे च मनसापि न चिन्तयेत्॥ [22]

धार्मिक अनुष्ठानों में पीपल, बड़, आम के पल्लव, कमल, कुंद, अशोक, तुलसी आदि की पूजा–अर्चना लोगों के जीवन से अभिन्न

रूप से जुड़ा हुआ हम पाते हैं। यदि वातावरण स्वच्छ और सुन्दर बनाने में सभी का सहयोग नि:स्वार्थभाव से रहेगा तो पर्यावरण-प्रदूषण की समस्या उत्पन्न ही नहीं होगी। भीष्म जी का कथन द्रष्टव्य है-

तस्मात् तडागे सवृक्षा रोप्या: श्रेयोऽर्थिना सदा।
पुत्रवत् परिपाल्याश्च पुत्रास्ते धर्मत: स्मृता:॥ [23]

कहने का तात्पर्य यह है कि वृक्ष धर्म की दृष्टि से पुत्र के समान माने गए हैं। पर्यावरण-संरक्षण में पशु-पक्षी भी अमूल्य योगदान देते हैं। वशिष्ठ मुनि ने गाय के माहात्म्य को दर्शाया है। गोधन सम्पत्ति के रूप में 'पञ्चगव्य' (दूध, दही, घृत, गोमूत्र और गोबर) का औषधीय महत्त्व है इसकी उपयोगिता आयुर्वेदशास्त्र स्वयं सिद्ध करता है।

निष्कर्ष-इस प्रकार महाकाव्य महाभारत में वर्णित पर्यावरण का जो दृष्टांत दिखाई पड़ता है, उससे चेतना रहित मानव को पर्यावरण अवबोध की शिक्षा मिलती है, जिसको हृदयंगम कर पर्यावरण को संतुलित बनाने में अपनी भूमिका निभा सकता है। प्राचीन काल में मनुष्य जैव- विविधता के महत्व को समझकर उसकी रक्षा के प्रति हमेशा चैतन्य रहता था जिससे पर्यावरण शुद्ध एवं संतुलित रहता था। आज की 'पर्यावरण-चेतना' मानव द्वारा केन्द्रित 'अस्तित्व रक्षा' के लिए उपादान रही है।

प्राकतिक पर्यावरण में सभी कारकों को अन्योन्याश्रित बताया गया है। मानव जीवन के विकास और संरक्षण हेतु आवश्यक उपादानों की निरन्तरता तभी सम्भव है, जब ईशावास्योपनिषद् के अनुसार 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा:' अर्थात् त्याग की भावना से उपभोग किया जाय । पर्यावरण-संरक्षण हमारा नैतिक कर्तव्य है। महाभारत में पर्यावरण चेतना द्वारा पर्यावरण-संरक्षण का जो स्वरूप हमें प्राप्त होता है, वह ऐतिहासिक या तात्कालिक ही नहीं, वैज्ञानिक और शाश्वत है। देर-सबेर मानव को स्वयं को सुरक्षित एवं स्वस्थ रखने के लिए महाभारत के पर्यावरण-चेतना का आश्रय लेना ही पड़ेगा। तभी प्राकृतिक पर्यावरण और मानव दोनों की रक्षा हो सकेगी ।

इस प्रकार से शोधार्थी द्वारा महाभारत जैसे धर्मग्रन्थ में वर्णित पर्यावरणीय चेतना व संरक्षण से सम्बन्धित ज्ञान को वर्तमान समय में आमजन तक शोध-पत्र के रूप में पहुंचाने का प्रयास किया गया है।

सन्दर्भ सूची -

1. छान्दोग्योपनिषद्, 7/1/2
2. महाभारतम्, आदि0 62/53
3. अथर्ववेद, भूमिसुक्त
4. महा0, मोक्षधर्मपर्व 18/1517
5. महा0 वनपर्व 24/17
6. महा0 वनपर्व कैरातवर्णन 158/5
7. महा0 वनपर्व कैरातवर्णन 158/7
8. महा0 वनपर्व कैरातवर्णन 158/12
9. महा0 वनपर्व कैरातवर्णन 38/19
10. महा0 वनपर्व कैरातवर्णन 38/20
11. महा0 वनपर्व कैरातवर्णन 38/21
12. महा0 वनपर्व कैरातवर्णन 38/15
13. महा0अनु0पर्व, दानधर्मपर्व 58/10
14. महा0अनु0पर्व, दानधर्मपर्व 58/17
15. महा0अनु0पर्व, दानधर्मपर्व 58/19
16. महा0अनु0पर्व, दानधर्मपर्व 65/03
17. महा0अनु0पर्व, दानधर्मपर्व 85/27
18. महा0अनु0पर्व, दानधर्मपर्व 85/28
19. महा. अनु. पर्व, दानधर्मपर्व 85/30
20. महा. अनु. पर्व, 85/31
21. महा. अनु. पर्व 60/18
22. महाभारत अनुशासनपर्व 104/71
23. महाभारत भीष्मपर्व गीता 3/14

संदर्भग्रन्थ-सूची

- महाभारत (श्रीमन्महर्षिवेदव्यासप्रणीत) (सम्पूर्ण, छ:भागों में), अनु.-पण्डितरामनारायणशास्त्रीपाण्डेय, गोविन्दभवनकार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर : सं.5; 2026-2044 वि.सं.
- महाभारतसंहिता चिकित्सितपाठात्मिका], 6 चत्वार: भागा:8, भाण्डारकर प्राच्यविद्या -संशोधनमन्दिर, पुण्यपत्तनम् (पूना) : 1871-1974.
- महाभारतसर्वस्वम्, कुबेरनाथशुक्ल, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 221002
- श्रीमन्महाभारतम् (अष्टमखण्ड-श्लोकानुक्रमणिका), नागशरणसिंह, नाग प्रकाशक, जवाहर नगर, दिल्ली, 110007
- श्रीमद्भगवद्गीता, गोरखपुर: गीताप्रेस, सं0 2063
- महाभारत कथा (एतिहासिक और सांस्कृतिक विवेचन), सुभाष विद्यालंकार, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली
- उपाध्याय, बलदेव, संस्कृत-वाङ्मय का वृहद् इतिहास,लखनऊ: उत्तरप्रदेश

कोशग्रन्थ (Dictionary)

- अमरकोश. अमरसिंह. बम्बई: निर्णयसागर प्रेस, 1962.
- आप्टे,वामनशिवराम. संस्कृत हिन्दी शब्दकोश. दिल्ली: मोती लाल बनारसी दास, 1990 विश्वकोष (Encyclopedia)
- Bagde A. B. et.al. - Charak Samhita- Complete Encyclopedia of Ayurvedic Science, Int. J. Ayu. Alt Med., 2013; 1(1):12-20.
- Encyclopedia of Ayurvedic medicinal plants, Neha publishers & Distributors, 2011.
- Joy, Dr.Anil, Encyclopedia of Ayurvedic medicinal plants (CDv).
- Kulkarni, Dr. P.H., The Encyclopedia of Ayurveda, Sri Satguru publications, 2005.
- Tirtha Sada Shiva, The Ayurveda Encyclopedia, first edition, Health Harmony, vst April 2009.

अन्तर्जालीयस्त्रोतांसि -

http://csl.du.ac.in/online/theses-dissertation.htm
http://dsal.uchicago.edu/dictionaries/apte/
http://en.wikipedia.org/wiki/Mahabharata
http://indcat.inflibnet.ac.in/
http://www.sanskrit.jnu.
https://www.worldcat.org/

ISSN 2278 - 0327

फौजी मेहर सिंह के साँगों में स्त्री-स्वर

रितु रानी
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर

प्रो. (डॉ.) आशा सहारण
हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर

शोध लेख सार: –

फौजी मेहर सिंह हरियाणा के मूर्धन्य लोक कवि और स्वतंत्रता सेनानी हैं। उन्होंने अनेक साँगों– अंजना–पवन, सत्यवान–सावित्री, पद्मावत, सरवर–नीर, राजा हरिश्चन्द्र आदि नारी प्रधान साँगों की सृष्टि की है। उनके राजा हरिश्चन्द्र, सुभाषचन्द्र बोस आदि साँगों में भी स्त्री स्वर मुखरित हुआ है। उनके साँगों में पुरुष की अपेक्षा स्त्री को अधिक महत्त्व मिला है। वे जानते हैं कि स्त्री ही सृष्टि का आधार है। वही जननी है, वही संचालिका है। उनके साँगों के स्त्री–पात्र सामाजिक रूप से सबल, सक्षम एवं समर्थ प्रतीत होते हैं। स्त्री अनेक रूपों में उनके साँगों में मुखरित हुई हैं।

मुय शब्दः– स्त्री–स्वर, शोषण, प्रतिभा, पतिव्रता, क्रूरता, कष्ट–सहिष्णु, विद्रोह, जागृति।

फौजी मेहर सिंह हरियाणा के मूर्धन्य एवं प्रतिष्ठित लोक कवि और स्वतंत्रता सेनानी के रूप में प्रसिद्ध हैं। उनके अनेक नारी–प्रधान साँग हैं, जिसमें अंजना–पवन, सत्यवान–सावित्री, चापसिंह, पद्मावत, जगदेव–बीरमती आदि प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त राजा हरिश्चन्द्र, सुभाषचन्द्र बोस आदि साँगों में भी नारी–पात्र सशक्त एवं सबल हैं। इनके नारी–पात्र आधुनिक नारियों के लिए प्रेरणा के स्रोत हैं।

फौजी मेहर सिंह के साँगों में पुरुष की अपेक्षा स्त्री को अधिक महत्त्व मिला है, क्योंकि वे समझते हैं कि स्त्री ही सृष्टि की आधारशिला है। वह जननी एवं संचालिका है। स्त्री के बिना पुरुष की कल्पना करना भी असंभव है। शास्त्रों में भी यही लिखा है कि सृष्टि के सृजन के समय स्रष्टा ब्रह्मा ने सर्वप्रथम स्त्री की ही सृष्टि की। उन्होंने 'अंजना–पवन' नामक साँग की एक रागनी में स्त्री को सृष्टि का आधार बताते हुए लिखा है –

''प्रिया हो संतान बेल दखे, इस तैं बंश चलाया जा।
एक तै दो, दो तै चार न्यू करकै जगत फैलाया जा।
दुनियां आणी जाणी सै दो दिन का खेल खिलाया जा।
बीर–मर्द दुःख–सुख के साथी न्यूए मेल मिलाया जा।
बिना बीर के मर्द अधूरा न्यू करकै नै फेर नार बणी।''[1]

प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने स्त्री को सृष्टि की आधारशिला के रूप में चित्रित किया है, जिसके द्वारा प्रदत्त संस्कारों से ही समाज का निर्माण होता है। वह सतत् रूप से जीवन का विकास करती है। रागनी के माध्यम से बताया गया है कि स्त्री ही वंश–बेल का विस्तार करती है और सृष्टि के सृजन में विशेष भूमिका निभाती है। स्त्री के बिना पुरुष अपना वंश आगे नहीं बढ़ा सकता। दोनों के संयोग से ही सृष्टि का निर्माण होता है।

पुरुष प्रधान समाज में नारी का सदैव शोषण ही हुआ है। बदलती परिस्थितियों में स्त्री की स्थिति बहुत परिवर्तित हुई है। स्त्री को पुरुष द्वारा प्रताड़ित किया जाता रहा है। आज के समाज में भी भ्रूण–हत्या जैसा घिनौना पाप–कर्म होता है और स्त्री को गर्भ में ही मरवा दिया जाता है। समाज में स्त्री को हेय समझे जाने के कारण ऐसा होता है। इसलिए कवि फौजी मेहर सिंह ने अपने अधिकतर साँगों में स्त्री को पुरुष से अधिक महत्त्व दिया है और उसे पुरुष की अपेक्षा अधिक सबल, समर्थ एवं सशक्त दिखाया है, जिससे स्त्री के प्रति समाज की मानसिकता को बदला जा सके। उनकी रागनियों में बताया गया है कि स्त्री पुरुष की अपेक्षा अधिक सशक्त एवं कष्ट–सहिष्णु होती है। 'सत्यवान–सावित्री साँग में सावित्री अत्यधिक कष्ट सहन करने के बाद यमराज से लड़कर अपने पति के प्राण वापस ले आती है और स्त्री–जाति के लिए आदर्श प्रस्तुत करती है। 'किस्सा राजा हरिश्चन्द्र' साँग में मदनावती रामलाल ब्राह्मण के पास नौकरी करती है और बहुत कष्ट सहती है। 'किस्सा सरवर–नीर' में अम्बली अपने बच्चों और पति से अलग हो जाती है। सौदागर उसे अपनी वासनावश प्रलोभन देता है, परन्तु वह अपने पतिव्रत्य धर्म पर अटल रहती है और सौदागर के बुरे कृत्यों के प्रति आक्रोश प्रकट करती हैं–

''पतिभ्रता की गैल्यां बांधै बैर।

मतना समझिये जान की खैर।'[2]

रानी अम्बली आधुनिक नारियों के लिए प्रेरणास्रोत हो सकती हैं, क्योंकि आज समाज में स्त्रियों के साथ छेड़छाड़ बहुत बढ़ गई है। यदि स्त्रियाँ उग्र रूप धारण कर ऐसे लोगों के प्रति विद्रोह करें तो इस प्रकार के कृत्यों को रोका जा सकता है। 'किस्सा अंजना-पवन' में अंजना बारह वर्ष तक कष्ट सहती है। वह जंगल में रहती है और एक सजीव, सशक्त जीवन व्यतीत करती है। 'किस्सा चापसिंह' में सोमवती को भी कवि ने चेतनाशील एवं सशक्त स्त्री के रूप में चित्रित किया है। वह अपने मार्ग में आने वाली बाधाओं को ठोकर मारकर आगे बढ़ती है और अपनी सूझ-बूझ एवं समझदारी से अपने पति की जान बचा लेती है। वह शेरखान के षड्यन्त्र को सबके समक्ष लाकर समाज में उदाहरण प्रस्तुत करती है। सोमवती पतिव्रता, कष्ट-सहिष्णु, सबल, हार न मानने वाली अन्याय एवं अत्याचार का विरोध करने वाली स्त्री है। वह शेरखान को फटकार लगाते हुए कहती है।

''तेरे जिसे बेईमान का हर में ध्यान नहीं होता।
वेद शास्त्र पढ़े-लिखे बिना पूरण ज्ञान नहीं होता।
इस योनि में धर्म तजै वो फिर इंसान नहीं होता।
धर्मराज कै जाकै पापी आदर मान नहीं होता।
तनै धर्म छोड़ कै कुरान उठा ली कती नहीं शर्माया तूं।'[3]

समाज में स्त्री को मर्यादा मे बांधा गया है। स्त्री भी सम्मान का केन्द्र बिन्दु है। स्त्री अपने माँ, बहन, पत्नी, प्रेमिका आदि विविध रूपों में उच्च आदर्शों की स्थापना करती है। जिस समाज व देश में स्त्री के आदर्श उच्च होते हैं, उसकी संस्कृति, परिवार का जीवन और सामाजिक व्यवस्था भी उच्च होती है। भारतीय नारी की सर्वाधिक महती कामना माँ बनना होती है तो उसका स्पृहणीय आदर्श पतिव्रत धर्म है। 'किस्सा अंजना-पवन' में अंजना को उसकी सास द्वारा प्रताड़ित किया जाता है और घर से निकाल दिया जाता है। अपनी माँ के द्वारा भी उसे दुत्कार दिया जाता है। कहीं भी शरण न मिलने पर भी वह पथभ्रष्ट नहीं होती है। कवि ने अंजना के माध्यम से नारी के चरित्र को समाज तथा परिवार के स्तर का आधार बताया है -

'' एक दिन जागा भेद पाट ते कद लग ढकैगी।
कित जागी इज्जत बाहर मनै जब दुनिया तकैगी।
मेहर सिंह थारी धज्जा कति धरती म्ह टिकैगी।
मैं तै लिकड़ ज्यांगी पर या दुनियां तम नै बकैगी।
कोए घर म्हं कमी थी ज्यां तै भाजगी बहू फलाणे की।''[4]

फौजी मेहर सिंह के साँगों में नारी इतनी सशक्त, सक्षम एवं समर्थ है कि देश पर संकट आने पर अपने जीवन को बलिदान करने से भी पीछे नहीं हटती है। स्वतन्त्रता की लड़ाई में अनेक स्त्रियों ने पुरुष के समान ही भागीदार कर अपनी सबलता का परिचय दिया है। 'किस्सा सुभाषचन्द्र बोस' में ऐसी अनेक नारियाँ हैं जो अपने देश के लिए चिंतित हैं और देश की स्वतन्त्रता के लिए बलिदान देने के लिए तत्पर रहती हैं। 'भारत माता' को भी इस साँग में नारी के रूप में चित्रित किया है। भारत माता नेता जी के स्वप्न में आकर उन्हें 'आजाद हिन्द फौज' बनाने के लिए प्रेरित करती है।

'' सुपने के म्हा भारत माता सारे प्वाइंट बतागी।
म्हारे देश की आजादी का खुला गेट बतागी।''[5]

साँग में नेता जी की भाभी भी एक देशभक्त एवं सशक्त महिला के रूप में सामने आती है। वह सुभाषचन्द्र बोस को स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ने के लिए प्रेरित करती है। वह अंग्रेजों की क्रूरता का बखान उनके समक्ष करती है। वह नेताजी से एक अद्भुत एवं सुन्दर साड़ी लाने को कहती है जिसमें अनेक विशेषताएं हों-

'' जलियांवाले बाग को फोटू पापी डायर की बदमाशी का हो
हँसता दे दिखाई, तता भगत सिंह की फाँसी का हो
इस साड़ी का लाणा देवर काम नहीं सै हाँसी का हो।''[6]

नेताजी जब जहाज में बैठते हैं और सिंगापुर जाने के लिए रवाना होते हैं, तो उत्तमचन्द की पत्नी भी उनके साथ जाना चाहती है, लेकिन नेताजी युद्ध की विभीषिका के बारे में बताकर उन्हें मना कर देते हैं।

फौजी मेहर सिंह के नारी-पात्र अपने लिए वर का चुनाव स्वयं करते हैं। ये नारी-पात्र स्वत्व जागृति की मिसाल हैं। ये माता-पिता के विरूद्ध जाकर अपने द्वारा चयनित वर से ही विवाह रचाते हैं। अंजना, सावित्री, चन्द्र आदि ऐसे ही पात्र हैं जो स्वयं वर का चुनाव करते हैं और बहुत समझाने पर भी उसी से विवाह करते हैं। अपने लिए जीवनसाथी का चुनाव इन नारी-पात्रों का मुखर स्वर हैं। 'किस्सा अंजना-पवन' में अंजना अपनी माँ की पसंद उद्यतपर्व की अपेक्षा पवन को अपना जीवनसाथी चुनती है और उसी से विवाह भी करती है।

'' अपणे हाथां आप करै सै अंजना मत कर चाला हे
पवन भूप सै साठ कमी सै करदे ब्याह का टाला हे
वो सै रात अंधेरी कैसा तूं ले री चांद उजाला हे
तूं तै सै कती सफेद हंसणी वो बिल्कुल कागा काला हे।''[7]

किस्सा जगदेव-बीरमती में भी बीरमती साहस की प्रतिमूर्ति

है। वह अन्याय के विरूद्ध स्वर मुखित करती है। जब काणी ठगनी बीरमती को धोखे से अपने घर लाकर कोतवाल से उसका सौदा कर देती है, तो बीरमती कोतवाल को स्वयं से दूर रहने की चेतावनी देती है। और उसके न मानने पर उसका वध कर देती है। बीरमती के माध्यम से कवि ने बताया है कि भारतीय नारी केवल प्रताड़ना सहन करने वाली ही नहीं है, समय पड़ने पर वह शस्त्र भी उठाना जानती है। बीरमती कोतवाल को बहुत समझाती है, परन्तु वह नहीं मानता। बीरमती आत्मरक्षण के लिए तलवार उठाती है और उसकी हत्या कर देती है।

'' कोतवाल कै एक गड़ी ना, बीरमती नै घणा समझाया।
इज्जत जाती दिखी उसनै तलवार तै तार गिराया।।''[8]

किस्सा 'अजीत सिंह - राजबाला' में राजबाला स्त्री-स्वर मुखरित करती दृष्टिगोचर होती है। वह अपने पिता द्वारा किए गए अन्याय का विरोध करती है। अपने आत्मसम्मान को सर्वोपरि रखने वाली राजबाला पिता का कर्ज उतारने के लिए प्रहरी का कार्य करती है। उसके पिता द्वारा कर्ज देने के बात पता चलने पर वह अपने पिता का विरोध करती है।

'' बिना बुझै गल घोटै सै
पता न मनै किस के संग जोटै सै
ईब टोटे म्ह कुण ओटै सै अजीत सिंह कुँवारे नै।
बीस हजार रुपये मांगे बाप मेरे हत्यारे नै।''[9]

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि कवि फौजी मेहर सिंह के साँगों में स्त्री केन्द्र में रही हैं। उनके साँगों में स्त्री-जीवन की विविध सामाजिक एवं राजनीतिक गतिविधियों को सूक्ष्मता से उजागर किया गया है। उनके नारी पात्र प्रताड़ना को सहन ही नहीं करते, वरन् उनकी अनुचित रीतियों के प्रति सक्रिय विद्रोह भी करते है। स्त्री-प्रधान साँगों की रचना कर स्त्री को सामाजिक रूप से सशक्त, समर्थ एवं सजीव रूप में दर्शाया गया है। इनके नारी-पात्र कष्ट-सहिष्णु होने के साथ ही साहसी भी हैं। कवि ने अपने स्त्री-पात्रों के माध्यम से समाज की नारियों में साहस भरने का प्रयास किया है। इनके स्त्री-पात्र किसी-न-किसी रूप में अपनी संस्कृति, धर्म एवं समाज आदि के लिए महती भूमिका निभाते दृष्टिगोचर होते हैं। ये अन्याय के विरोध में अपना स्वर मुखरित करते हैं और न्याय के लिए संघर्ष करते हैं।

सन्दर्भ सूत्र

1. डॉ. रणवीर सिंह दहिया, शहीद कवि फौजी मेहर सिंह रागनी-संग्रह, किस्सा अंजना-पवन, पृ. 45
2. वही, किस्सा सरवर-नीर, पृ. 22
3. वही, किस्सा चापसिंह, पृ. 90
4. वही, किस्सा अंजना-पवन, पृ. 57
5. वही, किस्सा सुभाषचन्द्र बोस, पृ. 102
6. वही, पृ. 100
7. डॉ. सन्तराम देशवाल, शहीद कवि फौजी मेहर सिंह ग्रंथावली, पृ. 195
8. वही, जगदेव-बीरमती, पृ. 335
9. वही, अजीत सिंह - राजबाला, पृ. 341

ISSN 2278 - 0327

राजस्थान में पंचायतीराज चुनाव एवं शैक्षणिक योग्यताएं

(बाड़मेर जिले के विशेष संदर्भ में)

मांगी लाल

शोधार्थी (राजनीति विज्ञान विभाग)

जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय,जोधपुर,राजस्थान

सारांशः-

वास्तव में देखा जाए तो भारत की अधिकांश आबादी गांवों में निवास करती हैं। जिस प्रकार एक मकान की नींव जितनी मजबूत होगी मकान उतना ही ज्यादा मजबूत होगा ठीक उसी प्रकार भारत के गांव जितने समृद्ध होंगे, हमारा राष्ट्र उतना ही अधिक समृद्ध होगा। इसलिए महात्मा गांधी जी ने सही कहा था कि 'भारत गांवों में बसता है हमें भारत को समृद्ध बनाने के लिए सबसे पहले भारत के सभी गांवों को समृद्ध बनाना पड़ेगा।' गांवों के विकास की शुरूआत पंचायतीराज व्यवस्था से होती है इसलिए पंचायतीराज व्यवस्था ही हमारे देश के भविष्य का निर्माण कर सकती है। लोगों की प्रशासन में सहभागिता बढाने के लिए पंचायतीराज व्यवस्था को लागू करना एक महत्वपूर्ण कदम था। राजस्थान पंचायतीराज अधिनियम 1994 के अंतर्गत चुनाव लड़ने वाले प्रत्याशियों का साक्षर होना आवश्यक नहीं है। लेकिन सन् 2015 में राजस्थान सरकार ने पंचायतीराज चुनाव लड़ने के लिए न्यूनतम शैक्षणिक योग्यताएं निर्धारित की जिसके परिणामस्वरूप पंचायजीराज चुनाव में शैक्षणिक योग्यता सरकार के लिए घाटे का जैसा सौदा साबित हुई। उम्मीदवारों के फर्जी शैक्षणिक प्रमाण पत्र पर चुनाव लड़ने के कारण सरकार को बार-बार उपचुनाव कराने पड़े। अंततः राजस्थान सरकार को सन् 2019 में पंचायतीराज संस्थाओं के चुनाव में न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता संबंधी अनिवार्यता को समाप्त करना पड़ा। प्रस्तुत शोध पत्र राजस्थान में साक्षरता की दृष्टि से पिछड़े बाड़मेर जिले में पंचायती राज चुनाव एवं शैक्षणिक योग्यताएं के सन्दर्भ में किया गया है।

मूल शब्दः-पंचायतीराज संस्थाएं,स्व-सरकार, राजनीतिक सहभागिता एवं शिक्षा की अनिवार्यता।

प्रस्तावनाः-

पंचायती राज संस्थाएं भारत के लोकतंत्र की आधारशिला है। पंचायतीराज संस्थाओं को बुनियादी आवश्यकताओं की सुविधाएं प्रदान करने, समाज को सशक्त बनाने और ग्रामीण भारत के निम्न स्तर पर विकास प्रक्रिया को शुरू करने के लिए इसे स्थानीय सरकार अथवा स्थानीय स्व-सरकार माना जाता है। लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण में पंचायतीराज संस्थाओं की महत्वपूर्ण भूमिका हैं। इसलिए भारतीय संसद ने 73वां संविधान संशोधन अधिनियम 1992 पारित करके पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिकता का दर्जा दिया गया। आज स्वतंत्रता, समानता, न्याय एवं बंधुत्व की विचारधारा को समेटे हुए पंचायतीराज संस्थाएं भारतीय संविधान के भाग 9 अनुच्छेद 243 से 243 ण में एक संवैधानिक निकाय के रूप में क्रियान्वित है। भारत में पंचायतीराज की अवधारणा लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की अवधारणा पर आधारित हैं। जिसका अर्थ है स्थानीय स्तर की आवश्यकताओं को जानकार स्वयं जनता द्वारा ही अपने स्वहित के लिए योजनाएं बनाना, पहल करना, स्वतंत्रता पूर्वक उसको क्रियान्वित करना तथा जनप्रतिनिधियों के माध्यम से राजनीति व प्रशासन में अपनी सहभागिता देना है। शासन प्रणाली का सर्वश्रेष्ठ रूप अर्थात् लोकतंत्र की ग्रासरूट स्तर पर स्थापना पंचायतीराज संस्थाओं के माध्यम से ही संभव हुई। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की मूर्तरूप पंचायतीराज संस्थाओं ने निर्धन, असंगठित तथा उपेक्षित ग्रामीण लोगों को आवाज एवं जुबान दोनों दी हैं। इसलिए लोगों में पंचायती राज संस्थाओं के प्रति आपसी प्रेम, विश्वास, सौहार्द तथा बंधुत्व की भावना का बढावा दिया जाना चाहिए।

प्राथमिक शिक्षा प्रारंभिक दिनों से ही पंचायतीराज संस्थाओं का मुख्य कार्यकारी विषय रहा है। राजस्थान सहित बहुत से राज्यों में प्राथमिक शिक्षा तथा साक्षरता कार्यक्रमों को पंचायतीराज संस्थाओं का अभिन्न कार्य निर्धारण किया गया है। विगत 25 वर्षों के अनुभव के पश्चात यह तथ्य सामने आया कि पंचायतीराज संस्थाएं अपने कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में पूर्ण सफल सिद्ध नहीं हुई है। शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता, आवास, पेयजल, ऊर्जा, परिवहन,

कृषि, पशुपालन, ग्राम विकास, सहकारिता तथा लघु एवं कुटीर उद्योग सहित सामाजिक-आर्थिक न्याय की स्थापना के लक्ष्य अभी भी कोसों दूर है इसलिए पंचायती राज संस्थाओं के तीनों स्तरों पर प्रौढ शिक्षा कार्यक्रम, साक्षरता और सतत शिक्षा के प्रचार सहित प्राथमिक शिक्षा के बुनियादी सुविधा की अपेक्षा की गई है चूंकि ग्राम पंचायतों, पंचायत समितियों तथा जिला परिषदों के जनप्रतिनिधि स्थानीय क्षेत्र के निवासी होते हैं। अत: वे स्थानीय संस्कृति, मूल्यों, समस्याओं, भाषा, परिवेश तथा जन आकांक्षाओं से भलीभांति परिचित होते है। इसलिए वे इन पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से साक्षरता कार्यक्रमों को बेहतर गति तथा दिशा प्रदान कर सकते हैं।

राजस्थान में पंचायतीराज चुनाव एवं शैक्षणिक योग्यताएं-

राजस्थान में पंचायती राज चुनाव लड़ने के लिए न्यूनतम शैक्षणिक योग्यताएं और शौचालय अनिवार्यता संबंधी विधेयक 27 मार्च 2015 को विधानसभा में ध्वनिमत से पारित हो गया। इसके साथ ही राजस्थान देश में इन 'राजनीति नवाचारों' को क्रियान्वित करने वाला भारत का पहला राज्य बन गया हैं। इस संशोधन विधेयक के जरिए राजस्थान पंचायती राज अधिनियम 1994 में संशोधन किए गए है। इस हेतु राजस्थान विधानसभा में दो विधेयक प्रस्तुत किए गए - राजस्थान पंचायती राज (संशोधन) विधेयक, 2015 और राजस्थान पंचायती राज (द्वितीय संशोधन) विधेयक, 2015 इससे पहले राजस्थान सरकार ने 8 दिसंबर 2014 को शौचालय अनिवार्यता और 20 दिसंबर 2014 को शैक्षणिक अनिवार्यता संबंधी अध्यादेश लागू किया गया था।

पंचायत चुनाव लड़ने वाले अभ्यर्थियों हेतु न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता की अनिवार्यता: -

राजस्थान पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव में भाग लेने वाले प्रत्येक उम्मीदवार की न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता हेतु निम्नानुसार संशोधन किए गए है: -

- जिला परिषद या पंचायत समिति के सदस्य के मामले में माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान या उसके समकक्ष किसी बोर्ड से कक्षा 10 अथवा माध्यमिक बोर्ड परीक्षा उतीर्ण।
- अनुसूचित क्षेत्र में पंचायत के सरपंच मामले में किसी विद्यालय से कक्षा 5 उत्तीर्ण हो, एवं अनुसूचित क्षेत्र से भिन्न पंचायत के सरपंच के मामले में किसी विद्यालय से कक्ष 8 उत्तीर्ण हो।

इस बाबत् राजस्थान पंचायती राज (द्वितीय संशोधन) अध्यादेश 2014 (2014 का अध्यादेश संख्याकं 2) के तहत राजस्थान पंचायती राज अधिनियम, 1994 (1994 का अधिनियम सं 13) की धारा 19 में संशोधन की अधिसूचना दिनांक 20 दिसम्बर 2014 को जारी कर दी गई है। इस प्रकार पंचायती राज चुनाव में शैक्षणिक योग्यता की अनिवार्यता लागू करने वाला राजस्थान भारत का प्रथम राज्य बना।

पंचायती राज चुनाव में शैक्षणिक योग्यता लागू करना कुछ मायनों में सरकार के लिए घाटे का सौदा भी साबित हुआ है। इन नए प्रावधानों के चलते चुनाव लड़ने के लिए बड़ी संख्या में जनप्रतिनिधियों ने फर्जीवाड़ा और शिकायत के बाद गलती पकड़े जाने पर उन्हें बीच में ही अपनी कुर्सी से हाथ धोना पड़ा। राजस्थान में 900 से ज्यादा सरपंचों के खिलाफ फर्जी शैक्षणिक प्रमाण पत्र पेश करने के मामले चलें वहीं अकेले बाड़मेर जिले में 23 ग्राम पंचायतों के सरपंचों ने फर्जी शैक्षणिक प्रमाण पत्र प्रस्तुत करके चुनाव लड़कर जीत गए। हालात् ये हो गए कि प्रदेश में पंचायतीराज संस्थाओं के बार-बार उपचुनाव कराए जाने लगे, जिसके कारण सरकार पर वित्तीय भार बढ़ने लगा। अंतत: राजस्थान सरकार को सन् 2019 में पंचायतीराज संस्थाओं के चुनाव में न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता संबंधी अनिवार्यता को समाप्त करना पड़ा।

राजस्थान पंचायती राज (पंचायती राज संस्थाओं के चुनावों में न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता संबंधी अनिवार्यता निरसन्) संशोधन विधेयक 2019: -

राजस्थान पंचायती राज संस्थाओं के निर्वाचन हेतु न्यूनतम शैक्षणिक अनिवार्यता को विलोपित करने का प्रस्ताव को 15वीं विधानसभा के प्रथम सत्र में पारित कर दिए जाने के उपरांत इस बाबत् के तहत राजस्थान पंचायती राज अधिनियम 1994 (1994 का अधिनियम संख्या 13) में आवश्यक संशोधन कर दिया गया है। इसकी अधिसूना 22 फरवरी 2019 को जारी कर दी गई है।

इस प्रकार इस प्रयास के जरिए हम समझेंगे कि देश में असल में या किसी राज्य में पंचायती राज एवं स्थानीय निकाय चुनाव में अगर शिक्षा को अनिवार्य किया जाए तो उससे कामकाज में किस प्रकार बदलाव होगा अर्थात् पंचायती राज व स्थानीय काय में शैक्षणिक योग्यताओं को हटाना एवं लागू किस हद तक ठीक रहा: -

- जब विधानसभा एवं लोकसभा जैसे चुनावों में शैक्षणिक योग्यता लागू नहीं है तो सरकार के तीसरे स्तर पर स्थानीय स्वशासन अथवा पंचायती राज चुनावों में भी शैक्षणिक योग्यता आवश्यक नहीं है।

■ सन् 2015 में जब राजस्थान सरकार द्वारा पंचायती राज चुनावों में शैक्षणिक योग्यता की शर्त लागू की गई तो राजस्थान में 900 से ज्यादा सरपंचों के खिलाफ फर्जी शैक्षणिक प्रमाण पत्र पेश करने के मामले चलें। वहीं अकेले बाड़मेर जिले में 23 ग्राम पंचायतों के सरपंचों ने फर्जी शैक्षणिक प्रमाण पत्र प्रस्तुत करके चुनाव लड़कर जीत गए। हालात ये हो गए कि प्रदेश में पंचायती राज संस्थाओं के बार-बार उपचुनाव कराए जाने लगे। जिसके कारण सरकार पर वित्तीय भार बढ़ने लगा।

■ यह कोई जरूरी नहीं हो सकता कि अगर कोई राजनेता ज्यादा पढ़ा लिखा होगा तो वह उतना ही ज्यादा अच्छा काम करेगा ऐसे कई राजनेता बने हैं। जो निरक्षर या कम पढ़े-लिखे है फिर भी उन्होंने बहुत अच्छे काम किए और अच्छे प्रशासक साबित हुए।

■ सरकार समाज के प्रत्येक वर्ग के विकास के लिए प्रतिबद्ध है। संवैधानिक संस्थाओं में शैक्षणिक योग्यता की शुरूआत पहले ऊपर के स्तर से संसद और विधानसभा से होनी चाहिए। समावेशी विकास के लिए सरकार की यह कोशिश है कि वंचित लोगों को भी समान रूप से अवसर मिल सके।

■ पंचायत उम्मीदवारों के लिए शिक्षा मानदंड तय करने से राजस्थान के बाड़मेर जिले की कई ग्राम पंचायतों में वर्ग संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हुई। समाज पहले से ही विभिन्न वर्गों में बंटा हुआ था ही और ऊपर से शैक्षणिक योग्यता की अनिवार्यता थोंपना आग में घी डालने जैसा रहा।

■ शैक्षणिक योग्यता लागू होने से ऐसे लोग भी जो राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति द्वारा सम्मानित किए गए सरपंच भी चुनाव लड़ने के लिए अयोग्य घोषित हो गये थे। शिक्षा के आधार पर समाज को दो श्रेणियों में नहीं बांटा जा सकता, इसलिए शैक्षणिक योग्यता का प्रावधान संविधान की मूल भावना के विपरीत है।

■ राजस्थान शैक्षणिक दृष्टि से काफी पिछड़ा हुआ हैं। उसमें भी बाड़मेर, जैसलमेर जैसे पिछड़े जिलों के दूर-दराज गांवों में शिक्षा का प्रसार अभी तक नहीं हुआ है। साक्षरता की दृष्टि से बाड़मेर राजस्थान में 29वें नंबर पर आता है। 2011 की जनगणना के अनुसार यहां की साक्षरता दर मात्र 56.50 प्रतिशत ही है।

■ संविधान में सभी नागरिकों को राजनीतिक समानता प्राप्त है। देश के सबसे निचले पायदान पर पंचायती राज चुनावों में शैक्षणिक योग्यता की अनिवार्यता रखना बाड़मेर जैसे पिछड़े जिलों में उस राजनीतिक समानता का गला घोटना जैसा हैं।

■ भारत में लोग तीन प्रकार के चुनाव लड़ते हैं पहले केंद्रीय संसद का सदस्य के लिए, दूसरे राज्य विधानमंडल का सदस्य बनने के लिए, और तीसरे स्थानीय निकायों के लिए नगरपालिका या पंचायती राज के लिए इसलिए तीनों के लिए एक ही मानदंड होना चाहिए अगर किसी का अलग होगा तो राजनीतिक भेदभाव उत्पन्न होंगे।

■ एक राजनीतिज्ञ के लिए शिक्षा मायने नहीं रखती बल्कि उनका अनुभव, उनकी ईमानदारी, उनके काम करने का तरीका स्वाभाविक रूप से अच्छा व कर्तव्यनिष्ठ होना चाहिए।

■ पंचायती राज व स्थानीय निकायों में महिलाओं के लिए एक-तिहाई पद आरक्षण की व्यवस्था की गई हैं। और राजस्थान की पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था है अगर शहर से बाहर निकल कर ग्रामीण क्षेत्र में देखें तो हमें कितनी महिलाएं शिक्षित मिल पाएगी अगर हम राजस्थान के बाड़मेर जैसे जिलों के दूर-दराज गांवों में चले जाएं तो वहां शैक्षणिक योग्यता लागू होने से महिलाओं का 50 प्रतिशत आरक्षण भी पूरा नहीं हो पाएगा।

■ पंचायती राज चुनावों में शैक्षणिक योग्यता रखने से राजनीति मे अपराधीकरण को बढावा मिला है। आए दिन समाचार-पत्रों में खबरें आती है कि अमुख गांव के सरपंच ने दसवीं की फर्जी अंकतालिका से चुनाव लड़ा है।

■ सूचना का अधिकार अधिनियम के तहत राज्य निर्वाचन आयोग ने जो आंकड़े उपलब्ध करवाए हैं। उसके मुताबिक दिसंबर 2019 तक 9 बार पंचायती राज संस्थाओं के उपचुनाव हुए है। इनमें 2 जिला प्रमुख, 7 प्रधान, 9 उपप्रधान, 39 जिला परिषद सदस्य और 239 पंचायत समिति सदस्य पद के लिए चुनाव करवाए गए है। इसी तरह 900 सरपंच, 450 उपसरपंच और 3456 वार्ड पंच पदों के लिए भी उपचुनाव करवाए जा चुके हैं। पंचायतीराज विभाग के आंकड़ों के मुताबिक अलवर जिले में फर्जी दस्तावेजों के मामले सबसे ज्यादा सामने आये हैं। अलवर में 64, दौसा में 51, जयपुर में 49, जालौर में 35 और बाड़मेर में 23 मामले फर्जी दस्तावेजों से चुनाव लड़ने के सामने आए हैं।

■ नियमानुसार किसी जनप्रतिनिधि को पद से हटाए जाने पर या उसका पद रिक्त होने की स्थिति में 6 महीने के अन्दर उप चुनाव करवाए जाने का प्रावधान है। ऐसे में फर्जीवाड़े के चलते रिक्त रहे पदों पर राज्य निर्वाचन आयोग को बार-बार उपचुनाव करवाने पड़ रहे है।

■ राजस्थान के बाड़मेर जिले की कई ग्राम पंचायतों के सरपंचों को पंचायतीराज चुनाव में फर्जी शैक्षणिक योग्यता देने के कारण

सरपंच की कुर्सी से हाथ धोना पड़ा।

■ मैं एक शोधार्थी एवं शिक्षक होने के नाते शिक्षा की अनिवार्यता चुनाव लड़ने के लिए विरोधी नहीं हूं। लेकिन हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि क्या इसके लिए हम और हमारा समाज पूर्ण रूप से तैयार है या नहीं। हमें इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि क्या हम आजादी के बाद पिछले 70 वर्षों में सबको समान शिक्षा के अवसर दे पाए या नहीं अगर ऐसा नहीं हुआ तथा समाज के सभी लोगों को समान रूप से शिक्षा के अवसर प्राप्त नहीं हुए तो पंचायती राज चुनाव में शिक्षा की अनिवार्यता लागू करना तब तक ठीक नहीं है।

■ शिक्षा राजनीति में स्वभाविक प्रक्रिया के रूप मे आनी चाहिए अगर इसे जबदस्ती लागू किया जाएगा तो इसे समाज में असमानताएं उत्पन्न हो जाएगी। शैक्षणिक योग्यता अनिवार्य लागू होने से समाज का एक बहुत बड़ा गरीब वर्ग पीछे छूट जाएगा इसलिए शिक्षा को स्वाभाविक प्रक्रिया के रूप में आने देना चाहिए। हम स्कूल की पढाई करने के पश्चात कॉलेज में एडमिशन लेते हैं। कॉलेज में छात्र राजनीति में प्रवेश करते है। अगर किसी व्यक्ति का राजनीति में रुचि है या पारिवारिक पृष्ठभूमि होगी तो वह स्वाभाविक रूप से ही साक्षर ही होगा।

निष्कर्ष –

इस प्रकार हम निष्कर्ष के रूप में कह सकते है कि राजनेताओं का शिक्षित होना वांछनीय है परंतु क्या आज हम उस परिस्थिति के लिए तैयार हैं। शायद हमारा देश उस परिस्थिति के लिए अभी तैयार नहीं है, इतना अध्ययन करने के पश्चात हमारे सामने दो विचार आए हैं क्या अभी इंतजार करें, जब पूरा देश शिक्षित हो जाए तभी यह मापदंड लागू किए जाए या दोनों साथ-साथ चल सकते है इसके लिए लोगों को जागरूक करने की आवश्यकता है। लोगों को यह बताने की आवश्यकता है कि शिक्षा केवल चुनाव लड़ने के लिए नहीं बल्कि एक बेहतर जीवन जीने के लिए, रोजगार पाने के लिए जरूरी हैं। अगर लोग जागरूक होंगे और शिक्षित होंगे तो यह अनिवार्यता लागू करने की कोई जरूरत नहीं होगी। न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता के मानदंड पर बहस के समय सदन में यह भी तर्क दिया गया कि अधिनियम का कथित प्रावधान संविधान के मूल सिद्धांतों के खिलाफहै क्योंकि समाज को शिक्षा के आधार पर विभाजित नहीं किया जा सकता है। 1928 में साइमन कमीशन को दिये गये ज्ञापन में भारतीय संविधान के निर्माता डॉ. भीमराव अंबेडकर ने भी कहा था कि – ''जो लोग साक्षरता को मताधिकार हेतु परीक्षण के रूप में देखते है और इसे शर्त के रूप में लागू करने पर जोर देते है, मेरी राय में वे दो गलतियां करते हैं। पहली गलती उनका यह विश्वास कि एक अनपढ व्यक्ति आवश्यक रूप से मूर्ख होता है। उनकी दूसरी गलती यह मानने में है कि साक्षरता किसी व्यक्ति को आवश्यक रूप से निरक्षर व्यक्ति की तुलना में उच्च स्तर का बुद्धिमान या ज्ञानी बनाती है।'' किसी अच्छे राजनेता की परिभाषा अत्यधिक व्यक्तिपरक होती है और यदि विभिन्न लोगों से राजनेताओं के अपेक्षित गुणों के बारे में पूछा जाए तो विभिन्न उत्तर प्राप्त होते हैं। इन उत्तरों मे से ईमानदारी, विश्वसनीयता, आम लोगों के साथ जुड़ने की क्षमता और संकटों से निपटने की ताकत, दुरदृष्टिता, जैसे गुण सबसे अधिक होते हैं।

संदर्भ-सूची:-

- महला, एच. एस.,: राजस्थान में पंचायतीराज की वर्तमान स्थिति, समस्याएं एवं सुझाव, राजस्थान विकास, मार्च-अप्रैल 1999, पृष्ठ संख्या 11
- कटारिया, सुरेन्द्र: पंचायती राज संस्थाएं: अतीत, वर्तमान और भविष्य, नेशनल पब्लिकेशिगं हाउस, जयपुर, 2010, पृष्ठ संख्या 296-297
- कुमावत, ललित,: पंचायतीराज एवं वंचित महिला समुह का उभरता नेतृत्व, क्लासिकल पब्लिशिंग, नई दिल्ली, 2004, पृष्ठ संख्या 134
- आर्य, विमला: पंचायतीराज में महिलाओं की भूमिका, राजस्थानी ग्रंथागार, सोजती गेट, जोधपुर, 2013, पृष्ठ संख्या 261
- मीणा, हरिमोहन,: पंचायतीराज संस्थानों और उनके विकास: राजस्थान के संदर्भ में शोध पत्रिका, सितम्बर 2018, पृष्ठ संख्या 11
- सिंह, रणवीर: पंचायती राज संस्थाओं में महिला सशक्तिकरण: चुनौतियां एवं निवारण, पंचायतीराज अपडेट अप्रैल 2013 पृष्ठ संख्या 5
- राजस्थान पंचायतीराज वार्षिक प्रतिवेदन 2010 से 2021 तक।
- दिव्य पंचायत, राजस्थान पत्रिका, दैनिक नवज्योति एवं दैनिक भास्कर बाड़मेर।
- www.barmer.rajasthan.gov.in
- www.panchaytraj.gov.nic.in
- www.rajpanchayt.rajasthan.gov.in

ISSN 2278 - 0327

स्वयं सहायता समूह एवं बैंक सम्बद्धता

सुरेन्द्र नारायण पाण्डेय
शोधछात्र
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

स्वयं सहायता समूह एक ऐसा संगठन है जो समांगी एवं समस्तरीय व्यक्तियों द्वारा उनकी सामान्य एवं विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति, समस्याओं का समाधान तथा व्यक्तिगत एवं सामाजिक उत्तरदायित्वों की पूर्ति हेतु गठित किया जाता है। स्वयं सहायता समूह का प्रारम्भिक कार्य बचत एवं साख के रूप में प्रारम्भ होता है। समूह का निर्माण सरकारी विभाग, स्वैच्छिक संगठन अथवा इच्छुक व्यक्तियों द्वारा स्वयं किया जा सकता है। स्वयं सहायता समूह महिला अधिकारों की स्थापना, आत्मनिर्भरता, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक स्वतंत्रता तथा गरिमापूर्ण जीवन जीने के संबंध में एक आन्दोलन के रूप स्थापित हो चुका है। ग्रामीणों को उपभोग एवं उत्पादन दोनों आवश्यकताओं हेतु ऋण की आवश्यकता पड़ती है। स्वयं सहायता समूह में औपचारिक ऋण संस्थाओं तथा अनौपचारिक ऋण प्रणाली दोनों की विशेषतायें सम्मिलित होती हैं, जिस धारणा को ग्रहण करते हुये नाबार्ड द्वारा 1992 में पॉयलट परियोजना की शुरूआत की गयी। स्वयं सहायता समूह-बैंक लिंकेज योजना का उद्देश्य न केवल बैंक के साथ ऋण का लेन-देन होना है, बल्कि दोनों के बीच व्यवहारिक सम्बन्ध भी स्थापित किये जाने हैं। स्वयं सहायता समूह में कार्य प्रबन्धन क्षमता प्राप्त करने के पश्चात् आर्थिक गतिविधियां शुरू करनी होती हैं। पर्याप्त कोष के आवश्यकता के दृष्टिगत बैंक सम्बद्धता की आवश्यकता होती है। स्वयं सहायता समूह एवं बैंक सम्बद्धता के विभिन्न मॉडल प्रचलित हैं। बैंक सम्बद्धता कार्यक्रम के अन्तर्गत समुदाय की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण भी अति आवश्यक है। स्वयं सहायता समूह के गठन के सकारात्मक उद्देश्य को प्राप्त करने हेतु यह आवश्यक है कि बैंक/प्रवर्त्तक संस्था अपनी कार्य प्रणाली, रणनीति, सोच एवं मानसिकता इत्यादि में बदलाव भी लाये।

कूट शब्दः नाबार्ड-राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक, बैंक लिंकेज-बैंक से सम्बद्धता

स्वयं सहायता समूह

स्वयं सहायता समूह का गठन एक खास उद्देश्य की पूर्ति के लिये किया जाता है, जिसके अन्तर्गत आपसी सहमति से निर्मित छोटे एवं स्वैच्छिक समूह आते हैं, जो कि समांगी एवं समान स्तरीय व्यक्तियों द्वारा उनकी विशिष्ट एवं सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति करने, सामान्य समस्याओं के समाधान तथा सामाजिक एवं व्यक्तिगत उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किया जाता है। इसके अन्तर्गत समूह के सदस्यों के मध्य सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक संबंधों तथा उनके व्यक्तिगत उत्तरदायित्वों पर जोर दिया जाता है। स्वयं सहायता समूह का गठन 5 से 20 सदस्य मिलकर स्वेच्छा से स्वयं कर सकते हैं या इसका गठन किसी सरकारी, अर्द्ध-सरकारी या गैर सरकारी संगठन द्वारा किया जा सकता है। समूह निर्माण का उद्देश्य सदस्यों को गरीबी से छुटकारा दिलाने तथा आर्थिक स्वावलम्बन प्राप्त कराने हेतु है। समूह के सदस्य आमतौर पर समान लाभ, समस्तरी, समांगी, समान सोच एवं परस्पर एक-दूसरे को जानने वाले होते हैं। स्वयं सहायता समूह की कार्य प्रणाली, नियमावली तथा पदाधिकारियों का निर्णय समूह की बैठक में सामूहिक रूप से लिया जाता है। स्वयं सहायता समूह की प्राथमिक गतिविधि सदस्यों द्वारा छोटी-छोटी बचत करके जमा की गई धनराशि से प्रारम्भ होती है जिसका उपयोग आवश्यकता पड़ने पर समूह के सदस्यों द्वारा ऋण प्राप्त कर किया जाता है। प्रारम्भ में स्वयं सहायता समूह बचत एवं साख (Thrift & Credit) के रूप में कार्य प्रारम्भ करते हैं। बचत एवं साख की गतिविधि को सफलतापूर्वक संचालित करने के पश्चात् समूह आर्थिक गतिविधियों को अपनाते हैं तथा बैंक या अन्य संस्था द्वारा समूह की ग्रेडिंग उनके संचालन, बचत, ऋण तथा उनकी बैठक एवं कार्यवृत्त इत्यादि के आधार पर की जाती है।

स्वयं सहायता समूह का उद्देश्य सदस्यों में बचत की भावना को प्रेरित कर निर्धनता से मुक्ति एवं आर्थिक स्वावलंबन को

मजबूत आधार प्रदान करना है। इसके अतिरिक्त गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले व्यक्तियों के अन्तर्गत एकता, भाईचारा, हिम्मत, साहस, कुरीतियों का निवारण, साझी समस्याओं का आपसी समाधान हेतु एक मंच उपलब्ध कराना है। स्वयं सहायता समूह के माध्यम से सदस्यों को न केवल लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं की उपादेयता की जानकारी प्राप्त होती है, अपितु उसके अन्तर्गत सूचनाओं, जानकारियों, कौशल विकास, आत्मचेतना एवं आत्मबल में वृद्धि प्राप्त होती है। इसके द्वारा वे सामाजिक कुरीतियों एवं अपनी सामान्य समस्याओं में परिवर्तन हेतु पहल करते हैं। स्वयं सहायता समूह के द्वारा महिलाओं के अन्तर्गत सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक चेतना का निर्माण करने एवं समाज में सम्मानित एवं गरिमापूर्ण स्थान प्राप्ति के लिये प्रयास करने की भावना का विकास होता है, जिससे इन महिलाओं को स्वावलंबन एवं सशक्तिकरण में सुविधा होती है।

यद्यपि स्वयं सहायता समूह में 5 से 20 सदस्य हो सकते हैं, परन्तु विशेष प्रकार के समूहों जैसे लघु सिंचाई योजना एवं विकलांग सदस्यों के समूह इत्यादि के 10 से कम भी सदस्य हो सकते हैं। यदि किसी स्वयं सहायता समूह में 20 से अधिक सदस्य हों तो उस समूह को कम्पनी एक्ट अथवा सहकारी समिति अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत होना चाहिए, जिससे विधिक कठिनाइयों से बचा जा सके। स्वयं सहायता समूह में सभी सदस्यों का गरीब होना आवश्यक नहीं है, लेकिन 80 प्रतिशत सदस्य गरीबी रेखा से नीचे वाले होने चाहिये। यह भी आवश्यक नहीं है कि समूह के नाम में स्वयं सहायता समूह लिखा गया हो। समूह का निर्माण सदस्यों द्वारा स्वयं, स्वैच्छिक संस्थाओं अथवा सरकारी विभागों द्वारा किया जा सकता है। ग्रामीण बैंकों के पदाधिकारी भी अपने सेवा क्षेत्र के गाँव में स्वयं सहायता समूह का निर्माण स्वयं सेवक के रूप में कर सकते हैं। लघु ऋण का अधिकांश हिस्सा स्वयं सहायता समूह के माध्यम से वितरित करना चाहिये। बैंक के अधिकारी को समूह की बैठकों में पर्यवेक्षक के रूप में उपस्थित होना चाहिये और समूहों को लेखा पुस्तकें रखने में मदद प्रदान करनी चाहिये, परन्तु समूह की कार्यप्रणाली में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये। समूह के सदस्य 2 या 3 या अधिक कार्यकारिणी सदस्य का चुनाव कर सकते हैं। समूह अपने उपभोग एवं उत्पादक दोनों प्रकार के ऋणों के उद्देश्य तय करने के लिये स्वतंत्र हैं। स्वयं सहायता समूह के कार्यकर्त्ता शिक्षित या अशिक्षित दोनों हो सकते हैं। समूह के पदाधिकारी अंगूठा निशानी/हस्ताक्षर के साथ संव्यवहार शाखाओं से कर सकते हैं। समूह का सदस्य, समूह की सहमति से शाखा से ऋण ले सकता है या किसी प्रायोजित योजना के अन्तर्गत सामान्य ऋण भी ले सकता है। समूह शाखा को देय सम्पूर्ण ऋण राशि की अदायगी के लिये जिम्मेदार है।

2. महिलाओं का सशक्तिकरण

महिला सशक्तिकरण के अन्तर्गत अपने अधिकारों की रक्षा, शोषण से मुक्ति, सामाजिक आर्थिक एवं राजनैतिक विकास के साथ महिला कल्याण के समस्त पहलुओं को सम्मिलित करना है। महिला सशक्तिकरण हेतु अनेक नीति, योजनायें, कार्यक्रम एवं कानून बनाये गये हैं, जिनका प्रभाव एक सीमा तक समाज में महिलाओं की स्थिति परिवर्तन में हुआ है, परन्तु महिलाओं के समग्र विकास हेतु उल्लेखनीय कार्य करने के लिए स्वयं सहायता समूह एक सशक्त माध्यम है; जिसके द्वारा महिलाओं में अपने कर्त्तव्यों एवं अधिकारों के प्रति जागरूकता उत्पन्न हुई है; जिससे महिलायें स्वयं के प्रति आश्वस्त हो सकें एवं उनके आत्मविश्वास में वृद्धि हो। स्वयं सहायता समूह के अन्तर्गत महिलाओं में आयु, जाति, वर्ग, आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति तथा अन्य प्रकार की समानतायें होने के कारण उनमें अपने आपको एक समूह या दल के रूप में संगठित करने की स्वाभाविक भावना एवं रूचि उत्पन्न होती है; जिसका मुख्य ध्रुव आर्थिक स्वावलबंन होता है; क्योंकि आर्थिक आत्मनिर्भरता से न केवल सामाजिक एवं राजनैतिक समानता उत्पन्न होती है, अपितु स्वरोजगार उत्पन्न होने से मानसिक स्वतंत्रता भी प्राप्त होती है। स्वयं सहायता समूह के माध्यम से महिलायें ऋण प्राप्त कर स्वरोजगार की गतिविधियां अपने हाथों में लेती हैं जिसके द्वारा उनकी आर्थिक स्थिति मजबूत होती है। यह भी देखा गया है कि स्वयं सहायता समूह के माध्यम से ऋण प्राप्त करने वाली महिलाओं की ऋण अदायगी दर 92 प्रतिशत से भी अधिक है। स्वयं सहायता समूह आपसी विचार-विमर्श तथा चर्चा के लिये एक सहज, सार्थक, सरल एवं सुलभ मंच है जिसके द्वारा बेरोजगारी, निर्धनता एवं असुरक्षा की भावना से छुटकारा पाने में सहायता सिद्ध होती है। इसके द्वारा लुप्त होती कलाओं, परम्परागत ज्ञान कौशल, परम्पराओं, संस्कृति एवं पर्वों का संरक्षण एवं संवर्द्धन होता है। स्वयं सहायता समूह एक आन्दोलन के रूप में महिला अधिकारों की स्थापना, आत्मनिर्भरता, सामाजिक, राजनैतिक व आर्थिक समानता एवं स्वतंत्रता प्राप्त करने तथा गरिमापूर्ण जीवन जीने के कौशल विकास के रूप में स्थापित हुआ है।

स्वयं सहायता समूह का उद्देश्य ग्रामीण गरीबों तक सतत् बैंकिंग सेवाओं की पहुंच बढ़ाना, सरकारी एवं अन्य योजनाओं

का लाभ लक्षित समूहों तक पहुंचाना, उनका अधिकार सुनिश्चित करना, सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में हर परिवार की एक महिला को सम्मिलित करते हुये स्वयं सहायता समूह का निर्माण करना, जिससे गरीब महिलाओं का सामाजिक एवं आर्थिक सशक्तिकरण हो सके।

3. पृष्ठभूमि

कृषि एवं सहकारिता विभाग, कृषि मंत्रालय द्वारा महिलाओं को मुख्य धारा में लाने के लिये राष्ट्रीय कृषि नीति-2000 के अनुसार वर्ष 2004-05 के दौरान कृषि में राष्ट्रीय महिला संसाधन केन्द्र की स्थापना के अन्तर्गत महिला सशक्तिकरण के प्रति वचनबद्धता के दृष्टिगत कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्रों में महिला क्रियाकलापों में वृद्धि करने एवं समाभिरूपता के रूप में कार्य करने के लिये नीति एवं कार्यक्रमों में महिला आयाम जोड़ना एवं मुख्य धारा में लाना रहा। कार्यक्रमों के प्रभाव के मूल्यांकन सहित अन्य महत्त्वपूर्ण अभिवृद्धि क्षेत्रों में वृहद् एवं सूक्ष्म स्तरीय कार्य अनुसंधान कराने के साथ-साथ महिलाओं की भूमिका को शामिल करने तथा योजनाओं की रूपरेखा एवं कार्यनीति में सुधार के लिये कृषि में राष्ट्रीय महिला संसाधन केन्द्र द्वारा महत्त्वपूर्ण प्रगति की गयी।

1. प्रबन्ध विकास केन्द्र तिरूवनंतपुरम् द्वारा ''कृषि में मुख्यधारा तथा महिला हित'' विषय पर अध्ययन किया गया तथा उसकी संस्तुतियों पर कार्यवाही की गयी।

2. आर्थिक एवं सामाजिक अध्ययन केन्द्र हैदराबाद द्वारा ''मौजूदा राज्य नीतियां, कार्यक्रम, हस्तक्षेप प्रक्रिया एवं उनका महिलाओं के लिये भूमि प्रयोग पर प्रभाव'' विषय पर विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया। महिला किसानों की सफलता की सूचनाएं एकत्र कर उनका विश्लेषण तथा प्रलेखन किया गया। विभिन्न योजना एवं कार्यक्रमों में महिला हिस्सेदारी का मूल्यांकन एवं महिला आंकड़ों का डाटा बैंक तैयार किया गया तथा महिला कृषकों, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, महिला खेतीहर मजदूरों के लाभ के आंकड़ों का संग्रहण किया गया।

4. बैंक सम्बद्धता

(1). अवधारणा

ग्रामीण क्षेत्रों में किसी भी कार्य में एक दूसरे को मदद देने और लेने की परम्परा प्राचीन काल से विद्यमान है। आज के मुद्रा एवं बाजार प्रतियोगिता युग में विकास की प्रक्रिया संरचनात्मक ढंग से विकसित हो रही है जिससे प्राचीन समृद्धशाली परम्परा, सामाजिकता की कड़ियां कमजोर हो रही हैं। सर्वप्रथम स्वैच्छिक संस्था सेवा (Self Employed Women Association) अहमदाबाद एवं मयराडा, बंगलौर द्वारा इसकी शुरूआत की गयी। वर्ष 1968 में मयराडा, बंगलौर ने चीन युद्ध के पश्चात् तिब्बत शरणार्थियों के पुनर्स्थापन का कार्य किया एवं वर्ष 2000 तक लाखों लोगों के जीवन स्तर को उठाने में मदद पहुंचाई। इस समूह द्वारा निम्नलिखित मुद्दों पर विशेष जोर दिया गया:-

1. ग्रामीण साख पद्धति को सामुदायिक एवं सामान्य क्रियाशील समूह के रूप में सृजित करना।
2. महिलाओं को संगठित करना।

इस संस्था द्वारा किये गये प्रयासों का निम्नांकित प्रभाव परिलक्षित हुआ:-

1. लोग सामाजिक एवं आर्थिक रूप से समान छोटे समूहों के माध्यम से अपनी समस्याओं एवं अपेक्षाओं आदि को लेकर निरन्तर प्रयास करते हैं तथा उनके अन्तर्गत उत्साह का निरन्तर जागृत करने वाला वातावरण सृजित होता है।
2. सदस्य रूचिकर विषयों को सीखने का प्रयास करते हैं।
3. समान स्तरीय समूह के सदस्यगण अपने अन्दर एकता को विकसित कर, अपने ज्ञान के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने के लिये अपने व्यवहार में परिवर्तन लाते हैं।
4. समूह के सदस्य स्वयं द्वारा संचालित होकर अग्रसर होते हैं।
5. समूह के सदस्य स्वयं के साथ-साथ दूसरों को भी विकास की ओर लाना चाहते हैं।

(2). समूह का औचित्य

आज भी भारत में 70 प्रतिशत से अधिक आबादी का मुख्य आधार कृषि है। कृषि में सिर्फ 4 से 5 महीने तक ही कार्य मिलता है। ग्रामीण क्षेत्र में कृषि के अतिरिक्त आय के अन्य साधन प्रचलित नहीं होते हैं; जिसके कारण लोगों को अपनी सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु जमीन एवं गहनों को गिरवी रखना पड़ता है, जिससे प्राप्त धन बीमारी, मृत्यु, शादी-विवाह एवं पर्व इत्यादि में ही खर्च हो जाता है तथा ऋण जाल के चक्र में इसे छुड़ा पाना सम्भव नहीं हो पाता है। बैंक शाखाओं की ग्रामीण क्षेत्रों तक पहुंच न होने कारण निर्धन व्यक्तियों की जरूरतें छोटे ऋण हेतु साहुकारों पर टिकी रहती हैं जिसके कारण उनका शोषण होता रहता है। ग्रामीणों को उपभोग एवं उत्पादन दोनों आवश्यकताओं एवं उद्देश्यों के लिये ऋण की आवश्यकता पड़ती है, परन्तु बैंक ऋण वापसी को लेकर आशंकित रहने के कारण इन लोगों को उधार देने में हिचकते हैं।

इन उपर्युक्त समस्याओं के समाधान हेतु ही कुछ लोग परस्पर

मिलकर अपनी छोटी-छोटी आय से थोड़ी-थोड़ी बचत करके सामुदायिक रूप से पूंजी जमा करते हैं तथा इस पूंजी से एक-दूसरे की मदद करते हैं जिसका उपयोग उपभोग एवं उत्पादन दोनों कार्यों हेतु करते हैं। इस कार्य में सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं की भूमिका भी समस्याओं के समाधान में महत्वपूर्ण होती है।

स्वयं सहायता समूह समान सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि वाले 10 से 20 सदस्यों का स्वैच्छिक संगठन होता है, जो:-

1. नियमित रूप से अपनी आय से छोटी-छोटी बचत करते हैं।
2. सामुदायिक योजना के माध्यम से व्यक्तिगत राशि को संचित करने की सदस्य सहमति प्रदान करते हैं।
3. समूह में सामुदायिक निर्णय लेते हैं।
4. आपसी समझदारी एवं नेतृत्त्व द्वारा आपसी मतभेदों का समाधान करते हैं।
5. समूह द्वारा तय किये गये शर्तों एवं नियमों पर सदस्यों को ऋण उपलब्ध कराते हैं।

(3). भारत में स्वयं सहायता समूह-बैंक सम्बद्धता कार्यक्रम की शुरूआत

औपचारिक ऋण संस्थाओं की तकनीकी क्षमताओं एवं वित्तीय संसाधनों के साथ अनौपचारिक ऋण प्रणाली के लचीलेपन, सुग्राह्यता, सक्रियता एवं सहजता जैसी कार्य प्रणालियों को सम्मिलित करके ऋण प्रणाली में नवीनता लाने के लिये राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक ने फरवरी, 1992 में स्वयं सहायता समूहों को वाणिज्यिक बैंकों से जोड़ने के लिये पॉयलट परियोजना की शुरूआत की। बाद में सहकारी एवं क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को भी इसमें सम्मिलित किया गया। इस प्रकार सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो स्वयं सहायता समूहों में औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों संस्थाओं के गुण होते हैं। एक तरफ जहां अनौपचारिक (महाजन/पड़ोसी) में ज्यादा ब्याज, बंधक, अनियमित भुगतान तरीका एवं संसाधन पर नियंत्रण खोने का भय जैसा दोष व्याप्त है तो वहीं दूसरी ओर समय पर ऋण प्राप्त होने, ऋण प्राप्त होने का विश्वास होने, औपचारिकताओं की कमी होने तथा आसान एवं शीघ्र तथा स्थानीय रूप से उपलब्ध होने की सुविधाएं होती हैं। औपचारिक संस्थाओं यथा बैंक में ऋण हेतु जमानत की आवश्यकता, ऋण देने में सीमित उद्देश्य, कर्ज वापसी में भय, ज्यादा लम्बी और खर्चीली प्रक्रिया एवं छोटा कर्ज देने में संकोच इत्यादि जैसे दोष हैं, तो वहीं दूसरी ओर कम ब्याज दर एवं अपनी निर्णय शक्ति के आधार पर सशक्तिकरण के लिये ऋण प्राप्ति होती है।

(4). लिंकेज परियोजना की विशेषतायें एवं गुण

वर्ष 1992-93 में स्वयं सहायता समूहों को बैंक से जोड़ने के लिये पॉयलट परियोजना में 500 स्वयं सहायता समूहों का लक्ष्य रखा गया था।

वर्ष 1993-94 में 650 समूहों को जोड़ा गया तथा वर्ष 1994-95 में बैंक से सम्बद्ध समूहों की संख्या 2212 हुई, जिसमें बैंक कर्ज 224.5 लाख था।

भारतीय रिजर्व बैंक ने नाबार्ड के प्रबन्ध निदेशक श्री एस0के0 कालिया की अध्यक्षता में एक कार्यकारी समूह का गठन किया, जिसमें प्रबुद्ध शिक्षाविद्, बैंक पदाधिकारीगण तथा गैर सरकारी संस्था के प्रतिनिधि सम्मिलित थे। इस टीम ने स्वयं सहायता समूह-बैंक लिंकेज कार्यक्रम को एक प्रभावी तथा सफल पूरक ऋण वितरण प्रणाली पाया। भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा इस दौरान के0आई0वाई0 (K.I.Y.) स्वयं सहायता समूह-बैंक लिंकेज योजना को लाया गया। सम्बद्धता का उद्धेश्य न केवल बैंक के साथ कर्ज का लेन-देन हो, बल्कि स्वयं सहायता समूह तथा बैंक के बीच व्यवहारिक सम्बन्ध भी स्थापित हो। स्वयं सहायता समूह-बैंक लिंकेज कार्यक्रम पर भारतीय रिजर्व बैंक के दिशा-निर्देशों की विशेषताएं निम्नवत् थी:-

1. बैंक अपने अधिकारियों तथा कर्मियों के प्रशिक्षण कार्यक्रम में स्वयं सहायता समूह के सम्पर्क को सम्मिलित करेंगे।
2. समूहों की ऋण अदायगी अभिप्राय जो भी हो, उन्हें प्राथमिकता के आधार पर अग्रिम भुगतान मद में सम्मिलित किया जाय।
3. स्वयं सहायता समूह ऋण भुगतान को बैंक द्वारा अपने सेवा क्षेत्र योजना में सम्मिलित करना।
4. स्वयं सहायता समूह, सेवा क्षेत्र के शाखा के अलावा अन्य शाखा से भी सेवायें प्राप्त कर सकते हैं।
5. स्वयं सहायता समूह का बचत खाता खोलना।
6. अतिरिक्त राशि, प्रतिभूति मानदण्डों आदि के सम्बन्ध में लचीलापन की छूट।
7. बैंक, समूहों को ऋण भुगतान के लिये सामान्य दस्तावेज निर्धारित कर सकते हैं।
8. कुछ बाकीदारों के साथ समूह, बैंकों से वित्तीय सहायता प्राप्त कर सकते हैं, बशर्ते उस राशि का उपयोग समूह बाकीदार को वित्तीय सहायता प्रदान करने में न करें।

1) सम्बद्धता परियोजना के उद्देश्य

1. ग्रामीण गरीबों की ऋण जरूरतों को पूरा करने के लिये पूरक

नीतियों का निर्धारण।
2. ग्रामीण गरीबों तथा बैंकों के बीच परस्पर विश्वास पैदा करना।
3. ग्रामीण गरीबों में बचत एवं ऋण दोनों तरह की बैंकिंग गतिविधियों को बढ़ावा देना।

2) बैंक सम्बद्धता कार्यक्रम के प्रमुख आधार

1. गरीबों में बचत करने की क्षमता होती है।
2. बैंकों द्वारा उन्हें सुविधा दी जा सकती है।
3. गैर सरकारी संगठन एक सहयोगी के रूप में कार्य कर सकते हैं।
4. समूहों को बैंक से कर्ज उपलब्ध हो सकता है।
5. कर्ज, समूह के अपने नियम के अनुसार हो सकते हैं।
6. समूह सामान्य गति से उन्नति करने की प्रवृत्ति रखते हैं।
7. समूह को आकस्मिकता की स्थिति में सदैव ऋण प्राप्त होता है।

3) सम्बद्धता कार्यक्रम के लाभ

(1) बैंक के लिये

1. ऋण चक्र की प्रक्रिया में होने वाली लागत में कमी।
2. छोटी बचत का जमा गतिमान होना।
3. ऋण कोष का तेजी से पुन: चक्रण होना।
4. व्यापार में विस्तार करने का अवसर।
5. ग्राहक आधारित भविष्य योजना तैयार करना।

(2) स्वयं सहायता समूह के लिये

1. सदस्यों में बचत की आदत का विकास।
2. संसाधन की उपलब्धता।
3. बेहतर तकनीक एवं बौद्धिक ज्ञानवर्द्धन की सुविधा।
4. आकस्मिकता की स्थिति में उपभोग तथा उत्पादन कार्यों हेतु ऋण की उपलब्धता।
5. प्रोत्साहन सहायता का उपलब्ध होना।
6. गरीबों में सशक्तिकरण की भावना का विकास।
7. महिलाओं का सशक्तिकरण

4) सम्बद्धता कार्यक्रम में बैंक की भूमिका

1. बचत खाता खोलने की सुविधा देना।
2. ऋण देने में लचीला रूख अपनाना।
3. जमानत और मार्जिन राशि पर छूट देना।
4. समूह के स्वस्थ संचालन पर ध्यान देना।
5. मार्गदर्शन एवं निरन्तर संबंध रखने की प्रक्रिया से समूह में विश्वास उत्पन्न करना।
6. बैंक की योजनाओं एवं कार्यकलापों की सूचना देना।
7. समूह सहायता/प्रोत्साहन संस्था के रूप में कार्य करना।

5) स्वयं सेवी संस्थाओं की भूमिका

1. ग्रामीण गरीबों को उत्प्रेरित एवं संगठित करना।
2. संस्थागत एवं व्यक्तिगत विकास की ओर ले जाना।
3. खाता-बही के रखरखाव, बैठक संचालन और कोष प्रबन्धन पर शिक्षण/प्रशिक्षण का आयोजन।
4. संसाधन उपलब्धता को गति प्रदान करना।
5. फेसिलिटेटर के रूप में कार्य करना।
6. तकनीकी एवं बौद्धिक क्षमता का विकास करना।
7. सहयोगी एवं मार्गदर्शक के रूप में कार्य करना।

(5). स्वयं सहायता समूह-बैंक सम्बद्धता नीति निर्देशिका

स्वयं सहायता समूह का निर्माण एक चरणबद्ध प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत प्रारम्भ में समूह द्वारा शादी, बीमारी, शिक्षा आदि जैसे उपभोग कार्य में खर्च करने की प्रवृत्ति से उत्पादन कार्य की ओर बढ़ने के साथ कर्ज धारण की क्षमता की प्रवृत्ति पाई जाती है। कालान्तर में कार्य प्रबन्धन क्षमता प्राप्त करने के पश्चात पर्याप्त कोष की आवश्यकता के दृष्टिगत स्थानीय वित्तीय संसाधनों से सम्बद्धता आवश्यक होती है।

1) चयन हेतु मापदण्ड

1. समूह में 10 से 20 सदस्य होने चाहिये।
2. समूह पंजीकृत हो भी सकता है अथवा नहीं भी।
3. समूह को संचालित करने के लिये आचार संहिता होनी चाहिये।
4. प्रारम्भिक रूप से आंतरिक बचत प्रक्रिया की भावना होनी चाहिये।
5. सदस्य को कर्ज देने का उद्देश्य समूह द्वारा निर्धारित होना चाहिये।
6. ऋण और बचत पर ब्याज की दर समूह द्वारा तय की जानी चाहिये।
7. लोकतांत्रिक ढंग से सदस्यों को विचारों के आदान-प्रदान एवं सहभागिता में छूट प्राप्त होनी चाहिये।
8. समूह को अपने अभिलेखों के रखरखाव हेतु दस्तावेज रखना चाहिये।
9. समूह कम से कम 06 माह पूर्व से सक्रिय हो तथा डिफाल्टर न हो।
10.समूह के स्थापना के उद्देश्य और औचित्य सुस्पष्ट हों।

2) गैर सरकारी संगठन के चयन के मानक

1. पिछला रिकार्ड अच्छा होना चाहिये।
2. पिछले 03 वर्ष का बही-खाता सुव्यवस्थित हो तथा बैलेंस सीट का ऑडिट किया गया हो।
3. वित्तीय क्षमता प्रबन्धन होनी चाहिये।
4. गरीब वर्गों के समूहों के साथ उनके विकास के लिये कार्य

करने की प्रतिबद्धता होनी चाहिये।

3) बैंक सम्बद्धता की शर्तें

1. समूह 06 माह से सक्रिय हो।
2. बचत एवं ऋण की प्रक्रिया स्वयं के संसाधनों से चल रही हो।
3. समूह के रिकार्ड व्यवस्थित ढंग से रखे गये हों।
4. सदस्यों के बीच मिलजुलकर परस्पर एक-दूसरे की मदद से काम करने की भावना दृढ़ हो।

4) बचत खाता खोलना

1. सदस्यों के बीच बचत और ऋण की प्रक्रिया शुरू होनी चाहिये।
2. नजदीकी बैंक की शाखाओं से सम्पर्क करना चाहिये।
3. समूह की प्रक्रियाओं, नियमावली, उद्देश्यों से बैंक पदाधिकारियों को अवगत कराने के साथ ही बैठक में आमन्त्रित करना चाहिये।

5) बचत खाता खोलने हेतु आवश्यक अभिलेख

1. समूह का प्रस्ताव जिसमें अध्यक्ष, सचिव एवं कोषाध्यक्ष को खाता संचालन का प्राधिकार दिया गया हो।
2. प्राधिकृत पदाधिकारियों की 2-2 फोटो।
3. पहचान हेतु उस व्यक्ति का जिसका पहले से बैंक में खाता खुला हो, फार्म पर हस्ताक्षर होना चाहिये।
4. समूह का मोहर।

6) बचत खाता खोलने के लिये पारित प्रस्ताव का नमूना

समूह का नाम एवं पता.....
गठन का दिनांक.....
समूह के सदस्यों की संख्या.....
बैठक दिनांक.....
सेवा में,

प्रबन्धक,

.....(बैंक का नाम एवं पता)

महोदय,

कृपया, इस स्वयं सहायता समूह का दिनांक .....को गठन किया गया है तथा विगत 08 माह से इसका संचालन किया जा रहा है।

2. समूह के सदस्य सर्वसम्मति से निम्नलिखित प्रतिनिधियों को प्राधिकृत करते हैं।

स्वयं सहायता समूह द्वारा अनुमोदित बैंक शाखा में खाता खोलने एवं प्राधिकृत पदाधिकारियों में किन्ही 02 के हस्ताक्षर से खाता संचालन करेंगे।

नाम.....पदनाम.....

.....वर्षों के अन्तराल पर पदाधिकारियों को बदला जायेगा।

7) सम्बद्धता के विभिन्न मॉडल

1. स्वयं सहायता समूह को सीधे

बैंक उसकी कार्यक्षमता के आधार पर उसकी बचत एवं कर्जराशि के दृष्टिगत बचत-कर्ज अनुपात 1: 1 या 1: 4 रख सकता है।

2. स्वैच्छिक संगठन के माध्यम से

बैंक, समूहों को स्वयं सेवी संगठनों के माध्यम से कर्ज दे सकता है जिसमें स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा समूह को प्रोत्साहन, मार्गदर्शन एवं अनुश्रवण प्रदान किया जाता है। कुछ समय बाद समूह सीधे बैंक से सम्बद्ध हो सकते हैं।

3. व्यक्ति विशेष को स्वयं सहायता समूह के माध्यम से

समूह के किसी व्यक्ति विशेष की ऋण जरूरतों का बचत ऋण अनुपात से पूर्ति न होने पर बैंक के पास समूह उस व्यक्ति को ऋण देने का प्रस्ताव सीधे भेज सकता है जिसमें कर्ज राशि की उपयोगिता एवं समय पर वापसी की जिम्मेदारी समूह को लेनी पड़ती है।

8) ब्याज की दर

विभिन्न स्तरों पर ब्याज की दर अलग-अलग हो सकती है।

1. बैंक से स्वयं सहायता समूह: 12 प्रतिशत वार्षिक।
2. बैंक से गैर सरकारी संगठन: 10 प्रतिशत वार्षिक।
3. गैर सरकारी संगठन से स्वयं सहायता समूह: 12 प्रतिशत वाार्षिक।
4. स्वयं सहायता समूह जो अपने सदस्यों से वसूल करता है, वह बैंक से अधिक तथा सामान्य महाजन से कम होना चाहिये।

9) प्रलेखीकरण

बैंक सम्बद्धता के लिये बैंको को कम से कम और साधारण कागजात की मांग करनी चाहिये, जिसके अन्तर्गत निम्नलिखित कागजात आवश्यक होते हैं।

1. आपसी इकरारनामा जो समूह के सदस्यों के बीच होता है।
2. ऋण हेतु आवेदन पत्र।
3. ऋण इकरारनामा जो समूह एवं बैंक के बीच होता है।
4. गैर सरकारी संगठन द्वारा प्रदत्त अनुमोदन पत्र।

10) ऋण वापसी

बैंक ऋण वापसी हेतु अधिक से अधिक 03 से 05 वर्ष की अवधि आवश्यकतानुसार नियमित किश्तों पर तय कर सकता है।

11) स्वयं सहायता समूह में डिफाल्टर सदस्य

यदि समूह में कोई सदस्यगण या उनके परिवारों द्वारा पूर्व में

कर्ज लेकर अदा न किया गया हो तो भी बैंक उस समूह को ऋण दे सकता है, इस शर्त के साथ कि डिफाल्टर सदस्य के बीच उस ऋण राशि का उपयोग नहीं किया जायेगा।

12) जमानत

समूह को ऋण के लिये बैंकों को कोई जमानत (प्रतिभूति) एवं मार्जिन राशि देने की आवश्यकता नहीं होती है। ऋण वितरण मानदण्डों में भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा छूट प्रदान की गयी है।

(6). कुछ समुदाय विशेष हेतु बैंक के उत्तरदायित्त्व

बैंक सम्बद्धता कार्यक्रम के अन्तर्गत समुदाय की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण भी अति आवश्यक है। आदिवासी समुदायों के लिये बैंक सम्बद्धता में 01 से 02 वर्ष के बीच लग सकता है। जबकि सामान्य समूहों के साथ में बैंक सम्बद्धता 06 माह बाद शुरूआत की जा सकती है। आदिवासी समुदायों में उपभोग हेतु ऋण तथा उत्पादन हेतु ऋण अलग-अलग करके नहीं देखना चाहिये, क्योंकि ये दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। आदिवासी समुदायों को उत्पादन हेतु ऋण और उपभोग हेतु ऋण देते समय बैंक को ऋण और बाजार विश्लेषण अवश्य करना चाहिये।

विनिमय व्यवस्था के अन्तर्गत कुछ समुदायों में कृषि एवं वन आधारित संसाधन बाजार में बेचकर अपनी जरूरत का सामान खरीदा जाता है। यह विनिमय प्रथा अंशत: आज भी है। बैंक सम्बद्धता से पूर्व ऋण की उपयोगिता, बाजार, स्थानीय संसाधन इत्यादि के बारे में जानकारी जुटाने के अलावा यह आवश्यक है कि उस समुदाय को मध्यस्थों द्वारा होने वाले शोषण से रोका जाय।

यह आवश्यक है कि सकारात्मक परिणाम प्राप्त करने हेतु बैंक प्रवर्त्तक संस्था की मानसिकता एवं उसकी सोच तथा रणनीति क्या है। इसके लिये बैंक को अधिक भागीदारी लेने के लिये निम्नलिखित कार्यवाही अमल में लाना चाहिये।

1. लोगों के बीच जायें।
2. लोगों के साथ रहें।
3. समुदाय से सीखें।
4. समुदाय के लोगों को सेवा प्रदान करें।
5. समुदाय के साथ मिलकर नियोजन की रणनीति बनायें।
6. समुदाय के लोग जो जानते हैं, वहीं गतिविधि प्रारम्भ करें।
7. उन्हीं गतिविधियों को शुरू किया जाय, जिसके लिये समुदाय के पास संसाधन उपलब्ध हों।

5. संदर्भ ग्रंथ सूची

1. फर्नान्डिस, ए0 (1994): 'द माइराडा एक्सपीरियन्स, अल्टरनेटिव मैनेजमेन्ट सिस्टम्स फॉर सेविंग्स एण्ड क्रेडिट फॉर रूरल पुउर', बंग्लौर, इन्डिया: माइराडा।
2. भट्ट इला (1996): 'बीयोन्ड माइक्रो-क्रेडिट: स्ट्रक्चर्स दैट इन्क्रीज द इकॉनामिक पावर ऑफद पुअर': सेवा एकेडेमी, अहमदाबाद।
3. आलमगीर, डी0ए0एच0 (1999): माइक्रो-फाइनेन्सियल सर्विसेज इन बांग्लादेश, रिव्यू ऑफइनोवेसन्स एण्ड ट्रेन्ड्स, क्रेडिट एण्ड डेवलपमेन्ट फोरम, ढाका।
4. शेण्डे, हरिदास रामजी (2005): ''नारी सशक्तिकरण'', ग्रन्थ विकास, जयपुर।
5. मीणा, गिरधारी लाल और डी.के. जैन (2007): ''ग्रामीण महिलाओं का सशक्तिकरण'', कुरूक्षेत्र, 53(5), पृ0 35-36।
6. Arunachalam, Jaya (2000) : "Social and Financial empowerment of poor womenin India", **Shelter,** 3(4),Pp.28-31.
7. ManimeKalai, N and G. Rajeshwari (2000) : "Empowerment ofwomenthrough self-help groups (SHGs)", **Margin,** 32(4), Pp.74-87.
8. Reddy, G. Narayana (2002) : "Empowerment of women through self-help groupsand micro credit : The case of NIRD action researchproject", **Journal of RuralDevelopment,** 21(4), Pp.511-535.
9. Kay, Thelma (2002-03) : "Empowerment of women through self helpand microcreditprogrammes", **Bulletin on Asis-Pacific Perspectives,** Pp. 69-78
10. Chiranjeevulu T. (2003) :"Empowerment of women through self-help group : experiences in experiment", **Kurukshetra,** 51(5), Pp.16-19

ISSN 2278 - 0327

स्वामी श्रद्धानंद जी के शैक्षिक विचार तथा नई शिक्षा नीति 2020 में उनके विचारों की प्रासंगिकता

अर्चना
शोध छात्रा (इतिहास विभाग)
एम. एम. (पी. जी.) कॉलेज, मोदीनगर,
गाजियाबाद (उ. प्र.)

डॉ. आशा यादव
एसो. प्रो., विभागाध्यक्ष इतिहास विभाग
एम. एम. (पी. जी.) कॉलेज, मोदीनगर,
गाजियाबाद (उ. प्र.)

शोध सारांश–

शिक्षा सर्वांगीण विकास का साधन है। शिक्षा का मूल आधार संस्कार है। हमारी मनोवृति का निर्माण हमारे जीवन, हमारे आचारण के अनुरूप ही होता है।

आजकल हमारी शिक्षा की व्यवस्था वास्तव में बहुत दोष पूर्ण हो गई है तथा शिक्षा का स्तर निरंतर गिरता जा रहा है। छात्रों का निरंतर नैतिक पतन हो रहा है। विद्यालय में अनुशासनहीनता की समय बढ़ रही है, शिक्षा से जुड़े कर्मचारी भी अपने कर्तव्यों का पूर्ण रूप से पालन नहीं कर रहे हैं। वर्तमान समय में शिक्षा के गिरते हुए स्तर को रोकना तथा उसे ऊंचा उठाना अत्यंत आवश्यक है। भारतीय शिक्षा जगत में अनेक ऐसे शिक्षाशास्त्री और विद्वान् हुए हैं, जिनका शिक्षा के क्षेत्र में अतुलनीय योगदान है। यदि इन विद्वानों के शैक्षिक विचारों का अध्ययन किया जाए तो शिक्षा स्तर को ऊंचा उठाने में अत्यंत सहायता हो सकती है। समस्त विद्वानों के विचारों का अध्ययन करके उनका पालन करना चाहिए, इसलिए यहाँ पर स्वामी श्रद्धानंद जी के शैक्षिक विचारों का अध्ययन करना उचित समझा गया है।

इस शोध पत्र में स्वामी श्रद्धानंद जी के शिक्षा दर्शन सम्बन्धी विचार, स्वामी श्रद्धानंद जी के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य, शिक्षा के प्रति स्वामी जी का दृष्टिकोण, स्वामी श्रद्धानंद जी की दृष्टि में शिक्षा की व्यवस्था, शिक्षा के लिए वातावरण, गुरुकुल की भूमिका, शिक्षा में संस्कृत भाषा का महत्व, शिक्षा का आधार, शिक्षण प्रक्रिया में शिक्षक व विद्यार्थी का संबंध तथा नई शिक्षा नीति 2020 में स्वामी श्रद्धानन्द जी के विचारों की प्रासंगिकता का वर्णन किया गया है।

कुंजी शब्द : शिक्षा शास्त्री, शिक्षण पद्ति, गुरुकुल, ब्रह्मचर्य, वैदिक शिक्षा संस्थान।

प्रस्तावना–

स्वामी दयानंद सरस्वती के मतानुसार, जिससे विद्या, सभ्यता, धर्म, जीतेंद्रिय आदि की बढ़ोतरी होती हो और अविद्या आदि दोष दूर होते हो, उसको शिक्षा कहते हैं। किसी भी राष्ट्र व समाज की उन्नति में वहा के सामाजिक व शैक्षणिक परिवेश की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। शिक्षा जहां मनुष्य को आत्मविश्वासी बनाती है, वही वह उसमें नित्य नए–नए ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में हो रहे कार्यों को जानने की जिज्ञासा भी उत्पन्न करती है। स्वामी श्रद्धानंद जी ने शिक्षा के क्षेत्र में अपने विचारों तथा कार्यों के द्वारा भारतीय शिक्षा प्रणाली को एक नई दिशा प्रदान की है।

स्वामी श्रद्धानन्द जी ने शिक्षा पद्धति पर विशेष ध्यान देते हुए, समाज में ऐसा वातावरण बनाने की दिशा में काम किया, जिससे की संपूर्ण मानव जाति के सर्वांगीण विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ।

स्वामी श्रद्धानन्द जी का पारिवारिक परिवेश व शिक्षा दीक्षा–

स्वामी श्रद्धानन्द जी का जन्म 2 फरवरी 1856 ई0 को पंजाब के जालंधर शहर के पास तलबन नामक गांव में हुआ था। इनके बचपन का नाम बृहस्पति रखा गया था। जब बालक बृहस्पति 3 वर्ष के हुए, तो उनके पिता नानकचंद जी ने इनका पुनः नामकरण किया तथा सरल सा नाम मुंशीराम रखा गया। मुंशीराम कुल छः बहन–भाई थे। इनके पिता नानकचंद ब्रिटिश पुलिस में अधिकारी थे तथा इस कारण तबादलों के चलते ये अपने परिवार के साथ एक से दूसरे स्थान पर जाते रहे। नए–नए स्थानों पर रहने के कारण मुंशीराम की प्रारम्भिक शिक्षा विधिवत रूप से नहीं हो पाये थी। उन्होंने संवत 1935 विक्रमी इलाहाबाद के म्योर सेंट्रल कॉलेज में एम0 ए0 कक्षा में प्रवेश लिया, परंतु अस्वस्थता के कारण पढाई पूरी नहीं कर सके।

महर्षि दयानंद जी से मिलने के बाद स्वामी श्रद्धानंद जी का जीवन ही परिवर्तित हो गया। श्रद्धानंद जी की नास्तिकता को आस्तिकता में परिवर्तित कर दिया। 1877 ई0 में स्वामी श्रद्धानंद जी का विवाह अपनी उम्र से पांच वर्ष कम की कन्या शिवदेवी से हुआ। 'महर्षि दयानंद जी के बाद स्वामी श्रद्धानंद जी ने आर्य समाज के विकास के लिए अथक प्रयास किए। स्वामी जी ने हिंदू धर्म में व्याप्त अन्धविश्वासों और बुराइयो जैसे आडम्बर, जाति-प्रथा, छुआ-छुत आदि का पुरजोर विरोध किया।'[1] 1902 ई0 में उन्होंने हरिद्वार में गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की तथा जालंधर में एक कन्या विद्यालय की भी स्थापना की। 23 दिसंबर 1926 ई0 को अब्दुल राशिद नामक व्यक्ति ने स्वामी श्रद्धानन्द जी की अस्वस्थ अवस्था में ही गोली मारकर हत्या कर दी।

स्वामी श्रद्धानन्द जी के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य-

स्वामी श्रद्धानन्द जी के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना का विकास होना चाहिए, जिससे शिक्षार्थी में मानवमात्र तथा प्राणिमात्र के प्रति स्नेह उत्पन्न करने की भावना का विकास हो सके। स्वामी श्रद्धानंद जी के अनुसार यह उद्देश्य भी होना चाहिए कि विद्यार्थी प्राचीन साहित्य के ज्ञान से युक्त होने के साथ-साथ आधुनिक विज्ञानों में भी पारंगत हो, जिससे वह स्वावलम्बी जीवन जी सके। उनका यह भी विश्वास था कि समस्त पुराना अच्छा नहीं है तथा समस्त नया बुरा नहीं है। स्वामी श्रद्धानंद जी प्राचीन और अर्वाचीन का समन्वय स्थापित कर समृद्ध शिक्षा पद्धति के विकास के लिए कटिबद्ध थे।

शिक्षा के उद्देश्य के संबंध में स्वामी जी ने 1925 ई0 में लिखा था कि आजकल गुरुकुलों के कुछ संचालकों में शिक्षा के स्वरूप पर मतभेद हो रहा है। स्वामी श्रद्धानन्द जी प्राचीन काल की गुरुकुल पर आधारित शिक्षा पद्धति के पक्षधर थे।

शिक्षा के प्रति स्वामी श्रद्धानन्द जी का दृष्टिकोण-

स्वामी श्रद्धानंद जी के अनुसार, मनुष्य जीवन का उद्देश्य वेदों के अनुसार दिव्य शांति, दिव्य ज्योति, दिव्य आनंद अथवा आदर्श शिक्षा के द्वारा आत्मा के अंदर काम एवं क्रोध शत्रुओं को वश में करने की पूर्ण शक्ति तथा आत्मविश्वास विकसित करते हुए पवित्र जीवन बिताना होना चाहिए। किए हुए कर्म के फल से कोई अपने को बचा नहीं सकता है। प्रत्येक व्यक्ति को सदा अंधकार से प्रकाश, मृत्यु से अमृत तथा पाप से पुण्य की और ले जाने वाली ही आदर्श शिक्षा है। इसी आदर्श शिक्षा के द्वारा शारीरिक, मानसिक, आत्मिक शक्तियों का विकास होता है।

स्वामी जी ने अंग्रेजी शिक्षा के दुष्परिणामों को अनुभव किया। 'यद्यपि स्वामी श्रद्धानंद जी से पूर्व भी आर्य समाज के शिक्षा मनीषियों के द्वारा महर्षि दयानंद जी की स्मृति में वैदिक शिक्षा संस्थानों की स्थापना की जा चुकी थी, किंतु ये वैदिक शिक्षा संस्थान प्राचीन भारतीय शिक्षा के आदर्शों के अनुरूप राष्ट्रीय शिक्षा की पुनर्स्थापना नहीं कर सके थे। स्वामी श्रद्धानन्द जी इससे सन्तुष्ट नहीं थे, वे प्राचीन भारत के तक्षशिला जैसे सुप्रसिद्ध शिक्षा केंद्र के समान वैदिक ज्ञान-विज्ञान का प्रसारक शिक्षा केंद्र स्थापित करना चाहते थे।'[2]

स्वामी श्रद्धानन्द जी की दृष्टि में शिक्षा की व्यवस्था-

शिक्षा व्यवस्था के विषय में स्वामी जी ने गुरुकुल शिक्षा पद्धति का पक्ष लिया। 'स्वामी श्रद्धानंद जी शिक्षा में हिंदी तथा संस्कृत भाषा के पक्षधर थे, लेकिन इसका यह अभिप्राय नहीं है, कि विदेशी भाषा तथा नये ज्ञान-विज्ञान को ग्रहण है न किया जाए। हमें अंग्रेजी, आधुनिक-विज्ञानों पाश्चात्य दर्शन और राजनीति शास्त्र आदि का अध्ययन अवश्य करना चाहिए।'[3] स्वामी श्रद्धानंद जी का विचार था कि क्या यूरोपीयन लोग अन्य देशी भाषाओं और प्राच्य सहित आदि विषयों को नहीं पढ़ते हैं? पर क्या किसी यूरोपियन देश ने अपनी शिक्षा को विदेशी बनाया है? इसी प्रकार हमें भी विदेशी ज्ञान - विज्ञानों को पढ़ते हुए अपनी राष्ट्रीयता की रक्षा करनी चाहिए।

'ब्रह्मचर्य शिक्षा का मुख्य आधार है। ब्रह्मचर्य के बिना शिक्षा, बिना नींव या बिना आधार के समान होती है। इसलिए एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था को स्थापित करना बहुत आवश्यक है, जो नगरों से दूर स्थिति हो, जिसमें विद्यार्थी ब्रह्मचर्य के नियमों का पूर्ण रूप से पालन करें'[4] तथा शिक्षा सभी के लिए निःशुल्क होनी चाहिए।

शिक्षा के लिए वातावरण-

'स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अपने समाचार पत्र सद्धर्म प्रचारक में लिखा था, कि शिक्षा ऐसे वातावरण में होनी चाहिए, जो कि शहर से दूर, एकांत स्थान पर, नदियों के सुरम्य तटों पर, पर्वतमालाओं के समीप अवस्थित हो'[5] ऐसी संस्थाओं में बचपन से ही बालक ब्रह्मचर्यव्रत करते हुए, वेद शास्त्रों का अध्ययन करें तथा विद्याध्ययन के साथ-साथ अपने अंदर छिपी हुई शक्तियों का भी विकास करना चाहिये ।

'सद्धर्म प्रचारक में 1896 ई0 में स्वामी जी ने एक लेख माला शुरू की, जिसका शीर्षक था संतान को आर्य किस प्रसार बना सकते हो ? इसके अंतर्गत यह विस्तारपूर्वक समझाया गया था कि शहरों के वातावरण से बच्चों पर बुरा प्रभाव पड़ता है, उन्हें

वहां पर कुसंगति से नहीं बचाया जा सकता है।'[6] इसलिये स्वामी श्रद्धानन्द जी शिक्षा के लिए शहर से दूर, एकांत स्थान को सुगम्य समझते थे।

शिक्षा पद्धति में गुरुकुल की भूमिका

स्वामी श्रद्धानंद जी का कथन था कि गुरु के सानिध्य में रहकर शिक्षा प्राप्त करने से विद्यार्थी में विधायी तत्वों का विकास होता है। सभी विद्यार्थियों की एक सी स्थिति होने के कारण उनमें पारिवारिक उच्चाभिनंता तथा हीनता की भावना समाप्त हो जाती है। गुरुकुल में रहने वाले छात्रों में अनुकूल व प्रतिकूल द्वंदों को सहन करने की सामर्थ्य उत्पन्न होती है तथा सभी को जीवन के प्रति एक याथार्थ दृष्टि प्राप्त होती हैं। विद्यार्थियों को अपनी व्यक्तिगत समस्याओं के लिए पर्याप्त अध्ययन में व्यस्त रहने के कारण, उनमें शांत व निर्मल बुद्धि विकसित होती है। गुरुकुलों की शिक्षा पद्धति सर्वांगीण विकास करने में सक्षम है, क्योंकि उनमें विद्यार्थियों को प्रचलित विद्याओं का अध्ययन कराया जाता था। स्वामी जी ने गुरुकुलीय शिक्षा प्रणली को विकसित करने पर जोर दिया, जो कि आम आदमी व युवा पीढ़ी को शिक्षित करने के साथ साथ निर्भीक व आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में भी सहायक होती है। 'स्वामी जी का मानना था कि बदलते सामाजिक परिवेश में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली ही वह पथ है, जो आज तेजी से गिरती सामाजिक नैतिकता को रोकने में सहायक एवं मार्गदर्शक सिद्ध हो सकती है।' [7]

शिक्षा में संस्कृत भाषा का महत्व

स्वामी श्रद्धानंद जी ने संस्कृत भाषा के महत्व पर बल दिया। स्वामी जी के अनुसार, संस्कृत का अध्ययन करना देश भक्ति का कार्य है। भारत की शिक्षा पद्धति सच्चे अर्थों में तभी राष्ट्रीय हो सकती है जब यहाँ के शिक्षा संस्थानों में संस्कृत का अध्ययन हो। आज से कुछ समय पूर्व हमारे देश के शिक्षित लोगों ने अपने प्राचीन साहित्य, कला, कौशल और आचार्य व्यवहार को तिलांजलि देकर विदेशी शिक्षा पद्धति का आश्रय लिया। उस समय संस्कृत शिक्षा के पक्षपाती मूर्ख और जाति की उन्नति को रोकने वाले समझे जाते थे, लेकिन समय की गति बड़े ही विचित्र होती है आज पुराना समय और उसके साथ पुरानी सम्मतियां सर्वथा परिवर्तित होती दिखाई दे रही है। ढाका में सारस्वत समाज के संस्कृत अभिनंदन पत्र का उत्तर देते हुए स्वयं वायसराय ने कहा था-

'सारस्वत समाज के पंडितों, संस्कृत का प्राचीन साहित्य ऐसे धार्मिक और दर्शनिक रत्नों से परिपूर्ण है, जिन्हें भारतीय संतान को अपनी अमूल्य संपत्ति समझा जाना चाहिए और आपसे, जो (सदा इस पावन साहित्य के अनुशीलन में लगे रहते हैं) मैं आपसे मिलकर बड़ा ही प्रसन्न हुआ ।'[8]

शिक्षा का आधार

स्वामी जी ने गुरुकुलीय शिक्षा प्रणली को विकसित करने पर जोर दिया। 'गुरुकुलीय शिक्षा प्रणली की प्रेरणा स्वामी श्रद्धानन्द जी को महर्षि दयानन्द सरस्वती जी से मिली थी। स्वामी श्रद्धानन्द जी का विचार था कि ब्रह्मचारियों को पुस्तकीय शिक्षा के साथ-साथ रोजगारपरक, कृषि प्रधान तथा शिल्प प्रधान ज्ञान देने पर जोर देना चाहिए।'[9]

ब्रह्मचारियों या शिक्षार्थियों में व्यायाम तथा योग के माध्यम से शरीर निर्माण की आवश्यकता पर बल देना चाहिए, क्योंकि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन और रचनात्मक विचारों का प्रदुर्भाव होता है ।

शिक्षण प्रक्रिया में शिक्षक व विद्यार्थी का संबंध

'स्वामी श्रद्धानंद जी का मानना था, कि शिक्षकों और विद्यार्थियों में वही सम्बन्ध होना चाहिए, जो माता पिता के साथ अपनी संतान का होता है।'[10] वर्त्तमान समय में भारत में कोई भी ऐसा शिक्षण संस्थान नहीं है, जिसमें शिक्षकों ने विद्यार्थियों के माता-पिता का स्थान ले लिया हो। गुरुकुल के द्वारा इस व्यवस्था को लागू या पूरा किया जा सकता है। गुरुकुल का शिक्षक कोई अनुभवहीन युवक नहीं होगा। सामान्यत: वह परिपक्व आयु का ऐसा विद्वान होगा जिसने जीवन के ऊंच-नीच देख लिए होंगे, और जो, शांत होकर इस व्यवस्थित अवस्था तक पहुँचा होगा। ऐसा विद्वान ही अपने अनुभव से बालकों व किशोरावस्था के छात्रों को लाभ पहुंचाने में समर्थ हो सकेगा ।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में स्वामी श्रद्धानंद जी के विचारों की प्रासंगिकता-

केंद्रीय मंत्रीमंडल द्वारा 29 जुलाई 2020 को मानव संसाधन विकास मंत्री डॉ0 रमेश पोखरियाल और सूचना प्रसारण मंत्री प्रकाश जावड़ेकर जी ने देश के सामने नई शिक्षा नीति 2020 का प्रारूप प्रस्तुत किया। नई शिक्षा निति 2020 में स्वामी श्रद्धानंद जी के विचारों की प्रासंगिकता देखी जा सकती है, जिसके कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु निम्न प्रकार है-

1 प्राचीन शिक्षण पद्धति का प्रयोग -

स्वामी श्रद्धानन्द जी के द्वारा प्राचीन वैदिक शिक्षा की परम्परा पर बल दिया गया तथा 'नई शिक्षा नीति 2020 के अनुसार प्राचीन शिक्षा पद्धति ने चरक, चाणक्य, आर्यभट्ट, पाणिनि, भास्कराचार्य,

ब्रह्मगुप्त, चक्रपाणिदत्ता, माधव, पतंजलि, नागार्जुन, गौतम, पिंगला, शंकरदेव, गार्गी जैसे अनेकानेक विद्वानों को जन्म दिया था। इन विद्वानों ने वैश्विक स्तर पर ज्ञान के विविध क्षेत्रों जैसे गणित, खगोल विज्ञान, धातु विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान, शल्य चिकित्सा, भवन निर्माण, नौकायन निर्माण, दिशा ज्ञान, योग और ललित कला, आदि में प्रमाणिक रूप से योगदान दिया था। इन विद्वानों से मानव मात्र को जो, ज्ञान विरासत में मिला, उसका प्रयोग भविष्य के निर्माण में करना चाहिए।'[11]

2 विद्यार्थियों का समग्र विकास –

स्वामी श्रद्धानंद जी का मानना था, कि शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थियों का विकास सभी स्तरों पर होना चाहिए। इसी प्रकार 'नई शिक्षा नीति 2020 में भी इसी अवधारणा पर बल देते हुए कहा गया है, कि शिक्षा का उद्देश्य केवल संज्ञानात्मक समझ न होकर चरित्र निर्माण और इक्कीसवी शताब्दी के मुख्य कौशल से सुसज्जित करना है,'[12] क्योंकि वास्तव में ज्ञान एक छिपा हुआ खजाना है और शिक्षा व्यक्ति की प्रतिभा के साथ इसे प्राप्त करने में भी मदद करती है।

3 शिक्षक की योग्यता तथा उसका महत्व

स्वामी जी मानते थे, कि जिस समाज और देश में शिक्षक स्वयं चरित्रवान नहीं होते, उसकी दशा अच्छी हो ही नहीं सकती। उनका कहना था कि हमारे यहां टीचर है, प्रोफेसर है, प्रिंसिपल है, उस्ताद है, मौलवी है, पर आचार्य नहीं है। आचार्य अर्थात् आचारवान व्यक्ति की महती आवश्यकता है। चरित्रवान व्यक्तियों के आभाव में महान से महान व धनवान से धनवान राष्ट्र भी समाप्त हो जाते हैं। स्वामी श्रद्धानंद जी ने शिक्षा के विकास में शिक्षक की भूमिका तथा उसके गुणों पर बल दिया। उसी प्रकार 'नई शिक्षा नीति 2020 में इसका वर्णन किया गया है। शिक्षक ही वास्तव में बालक का समुचित शारीरिक, मानसिक (बौद्धिक,) सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास कर सकता है। शिक्षक शिक्षार्थी के भविष्य का निर्माता होता है तथा राष्ट्र का मार्गदर्शक भी होता है। शिक्षक ही शिक्षा का रक्षक होता है इसी कारण भारत में शिक्षक समाज के सबसे ज्यादा सम्मानित सदस्य माने जाते हैं ।'[13]

4 समतामूलक और समावेशी शिक्षा –

स्वामी श्रद्धानंद जी हमेशा से समानता के पक्षधर थे। उनका मनाना था कि समान शिक्षा के द्वारा समाज में समानता को विकसित किया जा सकता है। इसी कारण स्वामी जी ने गुरुकुल शिक्षा पद्धति को विकसित किया था। इसी प्रकार नई शिक्षा नीति 2020 में कहाँ गया है, कि 'समतामूलक और समावेशी शिक्षा न सिर्फ स्वयं में एक आवश्यक लक्ष्य है, बल्कि समतामूलक और समावेशी शिक्षा समाज निर्माण के लिए भी अनिवार्य कदम है, जिसमें प्रत्येक नागरिक को सपने संजोने, विकास करने और राष्ट्रहित में योगदान करने का अवसर उपलब्ध है।'[14]

5 छात्र गतिविधि और भागीदारी –

सम्पूर्ण शिक्षण प्रक्रिया में छात्र की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसी प्रकार नई शिक्षा नीति 2020 में 'छात्रों को महत्वपूर्ण मानते हुए छात्रों को खेल संस्कृति, कला क्लब, पर्यावरण क्लब, गतिविधि क्लब, सामुदायिक सेवा परियोजना आदि में शामिल होने के लिए भरपूर अवसर दिए जाएंगे ।'[15]

6 योग तथा व्यायाम का महत्व –

स्वामी श्रद्धानन्द जी के द्वारा योग व व्यायाम पर बल दिया गया था। इसी प्रकार नई शिक्षा निति 2020 में भी योग को शामिल किया गया है जिससे बालकों का सम्पूर्ण विकास हो सके।

7 नैतिकता और मानव मूल्य –

स्वामी श्रद्धानंद जी ने नैतिकता और मानव मूल्यों पर विशेष बल दिया था। नई शिक्षा नीति 2020 के अनुसार नैतिकता, मानव मूल्यो जैसे- सहानुभूति, दूसरों के लिए सम्मान, स्वच्छता, शिष्टाचार, लोकतांत्रिक भावना, सेवा की भावना, समानता, न्याय पर बल दिया गया है।

8 संस्कृत भाषा का महत्व –

स्वामी श्रद्धानंद जी के द्वारा संस्कृत भाषा के महत्व पर बल दिया गया था। इसी प्रकार नई शिक्षा नीति 2020 में संस्कृत भाषा को मजबूती दी गई है। 'स्कूली शिक्षा में त्रिभाषा सूत्र के द्वारा संस्कृत की महत्वता बढ़ गई है।अब संस्कृत को पृथक् रूप से नहीं पढ़ा जाएगा, बल्कि रुचिपूर्ण एवं नवचार तरीकों से एवं अन्य समकालीन एवं प्रासंगिक विषयों जैसे गणित, खगोलशास्त्र, दर्शन शास्त्र, नाटक विद्या, योग आदि से जोड़ा जायेगा। शिक्षा एवं संस्कृत विषयों में बी.एड डिग्री (4 वर्षीय) मिशन मोड के द्वारा पूरे देश में संस्कृत शिक्षकों को व्यावसायिक शिक्षा प्रदान की जाएगी।'[16]

निष्कर्ष–

निष्कर्षत: इस अध्ययन से हमें ज्ञात होता है, कि स्वामी श्रद्धानंद जी की शिक्षा के क्षेत्र में जो विचारधारा थी, वो बहुत ही सार्थक एवं दूरदृष्टिता से परिपूर्ण थी। उनके उस समय सुझाए गए शिक्षा के उद्देश्य एवं तरीकों का आज के परिवेश में भी बड़ा ही महत्वपूर्ण योगदान है। उनके द्वारा बताया गया शिक्षा का मूल

उद्देश्य भारतीय संस्कृति को मजबूत करना, छात्रों का चारित्रिक निर्माण करना तथा शारीरिक व मानसिक रूप से छात्रों को सबल बनाना और समाज में उपस्थित असमानता की भावना को रोकना है। स्वामी जी के द्वारा बताई गई शिक्षा पद्धति का उपयोग करने से हम शिक्षा की असमानता को काफी हद तक नियंत्रित करने में सफलता प्राप्त कर पाए थे। स्वामी जी के शिक्षा सम्बन्धी जो सुझाव और पद्धति है, वो इतनी उपयोगी एवं कारगर है, कि आज लगभाग 120 वर्षों से भी ज्यादा समय गुजर जाने पर भी वर्तमान में नई शिक्षा नीति 2020 में भी, उनकी शिक्षा पद्धति की प्रसांगिकता दिखाई देती है, जो कि बहुत महत्वपूर्ण है एवं उपयोगी बात है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची-

1. डॉ0 विनोद चंद्र विद्यालंकार : स्वामी श्रद्धानंद एक विलक्षण व्यक्तित्व, आर्य धर्मार्थ न्याय (राज) (2008), पृष्ठ संख्या-62,
2. डॉ0 सुरेंद्र कुमार त्यागी : गुरुकुल शोध प्रभा, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार, अंक -1 (2012), पृष्ठ संख्या-88,
3. डॉ0 विष्णुदत्त राकेश : प्रह्लाद, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार, अंक - 3 (1985) पृष्ठ संख्या-18,
4. डॉ0 विष्णुदत्त राकेश : प्रह्लाद, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार, अंक - 3 (1985) पृष्ठ संख्या-17,
5. पं0 सत्यदेव विद्यालंकार : स्वामी श्रद्धानन्द, श्री स्वामी श्रद्धानन्द अनुसंधान प्रकाश केन्द्र कनखल हरिद्वार, (1996) पृष्ठ संख्या-273,
6. पं0 सत्यदेव विद्यालंकार : स्वामी श्रद्धानन्द, श्री स्वामी श्रद्धानन्द अनुसंधान प्रकाश केन्द्र कनखल हरिद्वार, (1996) पृष्ठ संख्या-273,
7. डॉ0 वीरेंद्र अरोड़ा : गुरुकुल शोध प्रभा, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार, अंक - 1 (2012) पृष्ठ संख्या-34,
8. डॉ0 विजेंद्र शास्त्री : गुरुकुल शोध प्रभा, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार, अंक - 1 (2012) पृष्ठ संख्या-164,
9. डॉ0 विजेंद्र शास्त्री : गुरुकुल शोध प्रभा, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार, अंक - 1 (2012) पृष्ठ संख्या-166,
10. पं0 सत्यदेव विद्यालंकार : स्वामी श्रद्धानन्द, श्री स्वामी श्रद्धानन्द अनुसंधान प्रकाश केन्द्र कनखल हरिद्वार, (1996) पृष्ठ संख्या-312,
11. नई शिक्षा नीति 2020, पृष्ठ संख्या-4,
12. नई शिक्षा नीति 2020, पृष्ठ संख्या-18,
13. नई शिक्षा नीति 2020, पृष्ठ संख्या-30,
14. नई शिक्षा नीति 2020, पृष्ठ संख्या-38,
15. नई शिक्षा नीति 2020, पृष्ठ संख्या-63,
16. नई शिक्षा नीति 2020, पृष्ठ संख्या-90,

ISSN 2278 - 0327

पद्मपुराण का काल निर्धारण

कृष्ण कुमार
शोधार्थी, संस्कृत, पालि एवं प्राकृत विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय,रोहतक

डॉ.श्रीभगवान
असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत,पालि एवं प्राकृत विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय,रोहतक

प्रस्तावना- भारतीय संस्कृति के स्वरूप की जानकारी के लिए पुराणों के अध्ययन की महती आवश्यकता है। पुराण भारतीय संस्कृति का मेरूदण्ड है। पुराण आधारपीठ है जिस पर आधुनिक भारतीय समाज अपने नियमन को प्रतिष्ठित करता है। वेदों के रहस्य को जन-साधारण तक पहुँचाने एवं संस्कृत-साहित्य में भारतीय-संस्कृति, सभ्यता एवं इतिहास को संरक्षित एवं सुरक्षित रखने का श्रेय पुराणों को है, श्रीमद्भागवत पुराण में पुराण और इतिहास को पाचँवा वेद कहा गया है-

इतिहासपुराणं च पञ्चमो वेदम् उच्यते।

महाभारत के आदिपर्व एवं शिवपुराण में कहा गया है-

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्, बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति। इतिहास और पुराण दोनों के द्वारा वेदों की व्याख्या को सरल करने वाले ग्रन्थ है। पुराण भारतीय संस्कृति की अनिर्वचनीय निधि है।

पुराण शब्द की परिभाषा-पुराण शब्द का अर्थ- *पुराना या प्राचीन।* महान् वैयाकरण आचार्य पाणिनि ने पुराण शब्द की व्युत्पत्ति पुरा अव्ययपूर्वक 'णीञ' प्रापणे धातु से ड् प्रत्यय करने पर टि लोप कार्य करने पर सिद्ध हुआ। अर्थात् पुरा+नी+ड् तीनों अवयव मिलकर 'पुराण' शब्द का निर्माण करते हैं। आचार्य पाणिनि ने 'पुराण' शब्द का उल्लेख अपने ग्रन्थ में किया है- *'पूर्वकालैक-सर्वजरत-पुराणनवकेवला:समानाधिकरणेन'* (2.1.49) *'पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु'* (4.3.105)

आचार्य यास्क ने निरुक्त (3.19) के अनुसार 'पुराण' की व्युत्पत्ति है- *'पुरा नवं भवति'* (जो प्राचीन होकर भी नया होता है।)

पद्मपुराण के अनुसार पुराण शब्द की व्युत्पत्ति- *पुरा परम्परां वष्टि पुराणं तेन तत् स्मृतम्।*[1] अर्थात् जो प्राचीनता की और परम्परा की कामना करता है वह पुराण कहलाता है।

पुराण का लक्षण- अमरसिंह ने अपनी कृति अमरकोश में पुराणों के लक्षण के विषय में निम्नोक्त श्लोक के माध्यम से स्पष्ट किया है- *सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।*

वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्।।

अर्थात् पुराणों में सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित इत्यादि पांच लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं।

श्रीमद्भागवत् पुराण में पुराणों के दस लक्षणों का उल्लेख मिलता है- *सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वृत्तिरक्षान्तराणि च।*

वंशो वंशानुचरितं संस्था हेतुरपाश्रय:।।

अर्थात् श्रीमद्भागवत् के अनुसार पुराणों में सर्ग, विसर्ग, वृत्ति, रक्षा, अन्तराणि, वंश, वंशानुचरित, संस्था एवं हेतु, अपाश्रय इत्यादि दस लक्षण प्राप्त होते हैं।

पुराणों की संख्या- वेद के समान पुराण भी एक रूप था एवं अत्यन्त विस्तृत था। देवीभागवत में पुराणों के आद्यक्षर के अनुसार पुराणों की संख्या अठारह हैं लघुकाय अनुष्टुप् छन्द में किया गया है- *मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम्, अनापद्लिङ्ग-कू-स्कानि पुराणानि पृथक्-पृथक्।।*

- मकार से दो पुराण- मत्स्य एवं मार्कण्डेय पुराण।
- भकार से दो पुराण- भविष्य एवं भागवत् पुराण।
- ब्रकार से तीन पुराण- ब्रह्म, ब्रह्मवैवर्त एवं ब्रह्माण्ड पुराण।
- वकार से चार पुराण- वायु, वाराह, विष्णु, वामन पुराण।
- अ-ना-पद्-लिं-ग-कू-स्क- अग्नि, नारद, पद्म, लिंग, गरुड़, कूर्म, स्कन्द- अठारह हैं।

पद्मपुराण- में देवता के माहात्म्य वर्णन विचार से पुराणों का वर्गीकरण किया गया है। मत्स्य, कूर्म, लिंग, शिवस्कन्द, अग्नि- ये छ: पुराण तामस है। ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डय, भविष्य, वामन और ब्रह्म- ये छ: राजस पुराण है तथा विष्णु, नारद, भागवत, गरूड़, पद्म और वाराह- ये छ: सात्त्विक पुराण माने गये है। यह वर्गीकरण विष्णु को सात्त्विक देव मानकर किया गया है। यहाँ तीनों विभागों- तामस, राजस तथा सात्त्विक में पुराणों की संख्या समान मानी गयी है।

पद्मपुराण का परिचय- महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित संस्कृत भाषा में रचे गये अठारह पुराणों में से एक पुराण ग्रन्थ है। सभी अठारह पुराणों की गणना के क्रम में पद्मपुराण को द्वितीय स्थान प्राप्त हैं। श्लोक संख्या की दृष्टि से भी यह द्वितीय स्थान पर है। प्रथम स्थान स्कन्दपुराण को प्राप्त है। *पद्म का अर्थ- कमल का पुष्प।* चूँकि सृष्टि रचयिता ब्रह्माजी ने भगवान् नारायण के नाभि-कमल से उत्पन्न से होकर सृष्टि-रचना संबंधी ज्ञान का विस्तार किया था, इसलिए इस पुराण को पद्मपुराण की सञ्ज्ञा दी गयी है। *तच्च पद्मं पुराभूतं पृथ्वीरूपमुत्तमम्, यत्पद्मं सा रसादेवी पृथ्वी परिचक्ष्यते।*[2] अर्थात् भगवान् विष्णु की नाभि से जब कमल उत्पन्न हुआ तब वह पृथ्वी की तरह था। उस कमल (पद्म)को ही रसा या पृथ्वी देवी कहा जाता है। इस पृथ्वी में अभिव्याप्त आग्नेय प्राण ही ब्रह्मा हैं जो चतुर्मुख के रूप में अर्थात् चारों और फैला हुआ सृष्टि की रचना करते हैं और वह कमल जिनकी नाभि से निकला है, वे विष्णु भगवान् सूर्य के समान पृथ्वी का पालन-पोषण करते है। इस पुराण में भगवान् विष्णु की विस्तृत महिमा के साथ भगवान् श्रीराम तथा श्रीकृष्ण के चरित्र, विभिन्न तीर्थों का माहात्म्य शालग्राम का स्वरूप, तुलसी-महिमा तथा विभिन्न व्रतों का सुन्दर वर्णन है। पद्मपुराण की प्रतिष्ठा मूलत: वैष्णवों या वैष्णवपुराण में अत्यधिक महत्ता है इसमें मुख्य रूप से विष्णु की भक्ति का प्रतिपादन हुआ है। पद्मपुराण मूलत: सात्त्विक पुराण-कोटि में विद्यमान हुआ है।

1. नागप्रकाशन-के अनुसार 'पद्मपुराण' के छ: खण्ड प्रसिद्ध हैं-

- सृष्टिखण्ड (86)
- भूमिखण्ड (125)
- स्वर्गखण्ड (62)
- ब्रह्मखण्ड (26)
- पातालखण्ड (117)
- उत्तरखण्ड (255)

इन खण्डों के क्रम एवं नाम में अन्तर भी मिलता है। 'स्वर्गखण्ड' का नाम 'आदिखण्ड' भी प्रचलित है।[3] नारदपुराण की अनुक्रमणिका में 'ब्रह्मखण्ड' को 'स्वर्गखण्ड' में ही अन्तर्भूत कर दिया गया है और स्वयं पद्मपुराण के एक उल्लेख के अनुसार उपर्युक्त छ: खण्डों के अतिरिक्त 'क्रियाखण्ड' (क्रियायोगसारखण्ड) को भी सातवें खण्ड के रूप में गिना गया है।[4] तथा 'क्रियाखण्ड' को 'सृष्टिखण्ड' का ही नामांतर मानकर 'क्रियायोगसारखण्ड' को 'उत्तरखण्ड' में ही समाहित माना गया है। 'पद्मपुराण' में कथित रूप से पचपन हजार (55000) श्लोक माने गये हैं।

2. **चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन**- के अनुसार पद्मपुराण के सात खण्ड उपलब्ध हैं-

- सृष्टिखण्ड (82 अध्याय)
- भूमिखण्ड (125 अध्याय)
- स्वर्गखण्ड (आदिखण्ड) (62 अध्याय)
- ब्रह्मखण्ड (26 अध्याय)
- पातालखण्ड (117 अध्याय)
- उत्तरखण्ड (255 अध्याय)
- क्रियायोगसारखण्ड (26 अध्याय)

ब्रह्माजी ने सभी शास्त्रों में पुराणों का प्रथम स्थान बतलाता है। *'पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्'* अर्थात् पुराण साक्षात् वेदार्थ स्वरूप हैं। पद्मपुराण के दो रूप उपलब्ध हैं-

- उत्तर भारतीय (बंगीयपाठ)
- दाक्षिणात्य पाठ

बंगीयपाठ- पद्मपुराण पर बंगीय संस्करण की दृष्टि से पांच खण्ड उपलब्ध हैं-

1. सृष्टिखण्ड
2. भूमिखण्ड
3. स्वर्गखण्ड
4. पातालखण्ड
5. उत्तरखण्ड

विल्सन के अनुसार बंगीयपाठ में 45000 श्लोक मिलते हैं।[6] एम. विण्टरनित्ज बंगीयपाठ को ही प्राचीन मानते हैं।[7]

दाक्षिणात्यपाठ- पद्मपुराण के दाक्षिणात्यपाठ के कई संस्करण प्रकाशित हैं।[8] जिनमें आनन्दाश्रम तथा वेंकटेश्वर प्रेस से मुद्रित संस्करण प्रमुख हैं। इन दोनों संस्करणों में उपलब्ध पद्मपुराण में छ: खण्ड हैं- आनन्दाश्रम संस्करण के अनुसार-

1. सृष्टिखण्ड
2. भूमिखण्ड
3. स्वर्गखण्ड
4. पातालखण्ड
5. उत्तरखण्ड

वेंकटेश्वर संस्करण के अनुसार-

1. सृष्टिखण्ड
2. भूमिखण्ड
3. स्वर्गखण्ड
4. ब्रह्मखण्ड

5. पातालखण्ड
6. उत्तरखण्ड

स्वयं पद्मपुराण– में पाँच खण्ड बतायें गयें हैं–

प्रथमं सृष्टिखण्डं हि भूमिखण्डं द्वितीयकम्।
तृतीयं स्वर्गखण्डं च पातालञ्च चतुर्थकम्।
पञ्चमं चोत्तरखण्डं सर्वपापप्रणाशनम्।[9]

1. सृष्टिखण्ड
2. भूमिखण्ड
3. स्वर्गखण्ड
4. पातालखण्ड
5. उत्तरखण्ड

1. सृष्टिखण्ड– इस खण्ड में भीष्म ने सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में पुलस्त्य से पूछा। पुलस्त्य और भीष्म के संवाद में ब्रह्मा के द्वारा रचित सृष्टि के विषय में बताते हुए शंकर के विवाह आदि की चर्चा की।

2. भूमिखण्ड– इस खण्ड में भीष्म और पुलस्त्य के संवाद में कश्यप और अदिति की संतान, परम्परा सृष्टि, सृष्टि के प्रकार तथा अन्य कुछ कथाएं संकलित है।

3. स्वर्गखण्ड– स्वर्गखण्ड में स्वर्ग की चर्चा है। मनुष्य के ज्ञान और भारत के तीर्थों का उल्लेख करते हुए तत्त्वज्ञान की शिक्षा दी गई है। स्वर्गखण्ड के प्रारम्भ में शकुन्तला और दुष्यन्त का चरित्र विस्तार से वर्णित है। कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक रचना हुई। इस कथानक में स्वर्ग का प्रसंग आ जाता है, राजा शिवि और राजा उशीनर का चरित्र, मरुत् का चरित्र, राजा दिवोदास का चरित्र, हरिश्चन्द्र का चरित्र आदि प्रसंग उपलब्ध है।

4. पातालखण्ड– इस खण्ड में भगवान् राम का सम्पूर्ण निर्मल चरित्र वर्णित है। रामकथा रावण विजय के पश्चात् आरम्भ हो जाती है। राम के वंश–चरित्र की अनेक कथा और उपकथाएं प्राप्त है। इसी खण्ड में कृष्ण की महिमा, कृष्णतीर्थ नारद के स्त्रीरूप आदि के उपाख्यान है।

5. उत्तरखण्ड– यह खण्ड महेश नारद संवाद से आरम्भ होता है। सर्वप्रथम जलन्धर नामक दैत्य का चरित्र विशद् रूप से वर्णित है। जलन्धर ने जब इन्द्रादि देवताओं को पराजित कर दिया, तब पार्वती को प्राप्त करने के लिए उसने भगवान् शंकर को भी युद्ध के लिए ललकारा। अन्त में गंगा माहात्म्य से इस पुराण की समाप्ति होती है।

काल–निर्धारण– पुराण एक विकासशील साहित्य है। वैदिक युग के अनन्तर ही पुराण–विद्या का आरम्भ हुआ तथा कालक्रम से इसमें विविध सामग्री जुड़ती गयी। व्यास ने आरम्भ में इस ज्ञान को क्रमबद्ध किया। उन्होंने अपने शिष्य लोमहर्षण को यह ज्ञान दिया। लोमहर्षण की शिष्य–परम्परा में यह ज्ञान पल्लिवत–पुष्पित होता गया। सभी शिष्यों ने मूलगुरु व्यास के नाम पर ही पुराणों में अतिरिक्त सामग्री का संयोजन किया। सभी पुराण–संशोधक महर्षि व्यास के नाम से ही प्रसिद्ध हुए। इस प्रकार महर्षि व्यास एक नहीं रहकर कथावाचकों, संशोधकों और व्याख्याताओं का पर्याय बनकर काल तो कुछ होना ही चाहिए।

पुराणों के राजवंश–वर्णनों में 600ई. के पूर्व तक के राजाओं का ही निरूपण हुआ है तथापि कुछ विद्वानों का मत है कि पुराण 500 ई. में अवश्य ही अपने वर्तमान रूप में आ गये थे। फिर भी इस विषय में पर्याप्त मतभेद हैं। दूसरी और प्राचीन धर्मसूत्रों तथा महाभारत में पुराणों का उल्लेख है जिससे पुराणों की रचना का आरम्भ प्राय: 600 ई. में माना जा सकता है। इन 1100 वर्षों के अन्तराल में पौराणिक साहित्य का शनै: शनै: विकास होता रहा था।

पद्मपुराण एवं मत्स्यपुराण में श्रीकृष्ण का चरित्र–वर्णन ऐक्यता है–

भगवान् श्रीकृष्ण के चरित्र–वर्णन के कुछ प्रसंग यथास्थान पद्मपुराण में उपलब्ध हैं–

सम्यक्छुतो महाभागत्वत्तोरामाश्वमेधक:।
इदानीं वद माहात्म्यं श्रीकृष्णस्य महात्मन:।।[10]
शृण्वन्तु मुनिशार्दूला: श्रीकृष्णचरितामृतम्।
शिवा पप्रच्छ भूतेशं यत्तद्व: कीर्तयाम्यहम्।।[11]
एकदा पार्वती देवी शिवं संस्निग्धमानसा।
प्रणयेन नमस्कृत्य प्रोवाच वचनं त्विदम्।।[12]
अनन्तकोटिब्रह्माण्डे तद्वाह्याभ्यन्तरस्थिते।
विष्णो स्थानं परं तेषां प्रधानं वरमुत्तमम्।।[13]
यत्परं नास्ति कृष्णस्य प्रियं स्थानं मनोरमम्।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व महाप्रभो।।[14]

अर्थात् ऋषियों ने सूतजी से कहा हे महाभाग! आपने हम लोगों को रामाश्वमेध की कथा को अच्छी तरह से सुनाया, अब आप हम लोगों को महात्मा श्रीकृष्ण के माहात्म्य को सुनाये, अर्थात् हे मुनिवर्यों! आप लोग सुनें! पार्वती जी ने जो भगवान् शिव से पूछा था। उसे में आप लोगों को सुना रहा हूँ। एक बार पार्वती देवी ने अत्यन्त स्नेहिल मन से प्रेमपूर्वक शंकर जी को प्रणाम करके पूछा अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों में उसके भीतर तथा बाहर व्याप्त होने के कारण भगवान् विष्णु का जो सर्वोत्तम स्थान

है। भगवान् श्रीकृष्ण का उससे प्रिय और मनोहर कोई दूसरा स्थान नहीं है।

मत्स्यपुराण– श्रीकृष्ण का चरित्र–वर्णन–

अथदेवो महादेव: पूर्वं कृष्ण: प्रजापति:।
विहारार्थं स देवेषो मानुषेष्विह जायते।। [15]
देवक्यां वसुदेवस्य तपसा पुष्करेक्षण:।
चतुर्बाहुस्तदा जातो दिव्यरूपो ज्वलञ्श्रिया।। [16]
श्रीवत्सलक्षणं देवं दृष्ट्वा दिव्यैश्च लक्षणै:।
उवाच वसुदेवस्तं रूपं संहर वै प्रभो।। [17]

अर्थात् सूतजी कहते हैं ऋषियों! पूर्वकाल में जो प्रजाओं के स्वामी थे, वे ही देवाधिदेव महादेव श्रीकृष्ण लीला–विहार करने के लिए मृत्युलोक में मानव –योनि में अवतीर्ण हुए। वसुदेव जी की तपस्या से देवकी के गर्भ से उत्पन्न हुए। उनके नेत्रकमलसदृश अति रमणीय थे, उनके चार भुजाएं थी उनका दिव्य रूप दिव्य कान्ति से प्रज्वलित हो रहा था और उनका वक्ष:स्थल श्रीवत्स के चिह्नों से विभूषित था। वसुदेव जी ने इन दिव्य लक्षणों से सम्पन्न श्रीकृष्ण को देखकर–

नारायणं नमस्कृत्यं नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्।।

प्रस्तुत श्लोक पद्मपुराण के पातालखण्ड के प्रथम अध्याय का प्रथम श्लोक में उद्धृत एवं अंकित है। और कूर्मपुराण के पूर्वविभाग प्रथम में मङ्गलाचरण के रूप में उद्धृत है। यथा मत्स्यपुराण के प्रथम अध्याय का तीसरे श्लोक के रूप में उद्धृत किया गया है। डॉ. हाजरा के अनुसार कूर्मपुराण का रचना –काल षष्ठ शतक ई. है एवं कुछ भाग 9वीं से 10वीं शताब्दी है और डॉ. हाजरा ने इसका रचनाकाल 13वीं शताब्दी के उत्तरार्ध या चौथी शताब्दी के पूर्वार्ध में माना है। पी.वी.काणे कूर्मपुराण श्रीभागवतपुराण उसकी उत्तरकाल सीमा छठी शताब्दी ई. तक मानते हैं। इस प्रकार राधा की पूजा एवं श्रीकृष्ण–जन्मों के प्रसंग प्राप्त होते है भागवत का रचनाकाल जहाँ छठी शताब्दी ई. से 10 शताब्दी तक माना जाता है।

निष्कर्ष : – संभवत: पुराणों को कुछ प्रक्षेपकों, आलोचकों एवं विद्वानों ने कालदृष्टि से तीन श्रेणियों में बांटा हैं–

1. प्राचीन प्रथम शती से लेकर 400ईस्वीं तक । इस काल–निर्धारण में वायु, ब्रह्माण्ड, मार्कण्डेय, मत्स्य एवं विष्णु को विशद् रूप से समाविष्ट किया है।
2. मध्यकालीन युग में श्रीमद्भागवत, कूर्म, स्कन्द, एवं पद्मपुराण, विशिष्ट रूप से स्थान प्राप्त हैं (500ई. से 900ई.) तक मानते है।
3. आधुलिक एवं अर्वाचीन युग में ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्म, लिङ्ग, इनको स्थान प्राप्त है। (900ई. से 1000ई.) तक मानते है ।

हर्षचरितम् काव्य का लेखन कार्य राजा हर्षवर्धन के राजकवि बाणभट्ट को 606ई. से 648ई. तक माना जाता है, अत: पद्मपुराण का काल बाणभट्ट से पूर्ववर्ती होना चाहिए।

महाकवि कालिदास द्वारा रचित काव्य अभिज्ञानशाकुन्तलम् की कथावस्तु का आधार पद्मपुराण का स्वर्गखण्ड को माना जाता है। इसका काल 5वीं शताब्दी पूर्व ही मानना उचित है। संभवत: यहीं पद्मपुराण का प्रचलित काल निर्माण है। सामान्य रूप से कह सकते हैं। कि वर्तमान पद्मपुराण की काल–सीमा का विचार अपेक्षित अवश्य है फिर भी यह संग्रह रूप होने के निमित्त निश्चित समय की सीमा में नहीं रख सकते। अत: 5वीं सदीं तक अपने रूप या अस्तित्त्व में आ चुका होगा। ऐसा अनुमान हैं।

संदर्भ–ग्रन्थ सूची–

1. पद्मपुराण 5.2.53
2. आचार्य बलदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य और पुराण साहित्य पृ. 63
3. पद्मपुराणम्, भाग–2, चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी
4. पद्मपुराण, संस्करण–2015, पृ.–199 (स्वर्गखण्ड की पुष्पिका में उल्लिखित
5. पद्मपुराण, पृ.–2 (स्वर्गखण्ड– 1.23–25)
6. एम. विण्टरनित्ज, इण्डियन लिट्रेचर, प्रथम भाग, द्वितीयखण्ड, हि.नु. पृ. 202 की टिप्पणी।
7. एम. विण्टरनित्ज, इण्डियन लिट्रेचर, प्रथम भाग, द्वितीयखण्ड, हि.नु. पृ. 202 की टिप्पणी।
8. पद्मपुराण, भूमिखण्ड– 125,47–48
9. पद्मपुराण, पातालखण्ड,अध्याय 69, श्लोक सं. 1 पृ.2146
10. पद्मपुराण, पातालखण्ड,अध्याय 69, श्लोक सं. 2 पृ. 2146
11. पद्मपुराण, पातालखण्ड,अध्याय 69, श्लोक सं. 3 पृ. 2146
12. पद्मपुराण, पातालखण्ड,अध्याय 69, श्लोक सं. 4 पृ. 2146
13. पद्मपुराण, पातालखण्ड,अध्याय 69, श्लोक सं. 5 पृ. 2146
14. मत्स्यपुराण अध्याय, 47, श्लोक सं. 1
15. मत्स्यपुराण अध्याय, 47, श्लोक सं. 2
16. मत्स्यपुराण अध्याय, 47, श्लोक सं. 3
17. पद्मपुराण 1.1, कूर्मपुराण के मङ्गलाचरण में, मत्स्यपुराण 1.1.

ISSN 2278 - 0327

चन्द्रकान्ता के कथा साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन

अजय कुमार
शोधार्थी, पी-एच.डी. (हिन्दी)
भगवंत विश्वविद्यालय
अजमेर, राजस्थान

डॉ. शिवानी शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
भगवंत विश्वविद्यालय
अजमेर, राजस्थान

डॉ. राजेश कुमार शर्मा
सेवानिवृत ऐसोसिएट प्रोफेसर : हिन्दी विभाग
सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय
अजमेर, राजस्थान

सारांश- 'जम्मू कश्मीर अकादमी ऑफ साइंस कल्चर एण्ड एजुकेशन' व विभिन्न राष्ट्रीय संस्थानों द्वारा पुरस्कार प्राप्त चन्द्रकान्ता जी ने हिंसात्मक गतिविधियों, सामाजिक व्यवस्था का विचलन, वैश्वीकरण का दुष्प्रभाव, जीवन मूल्यों का विघटन, अकेलेपन की पीड़ा का त्रास, महिलाओं के साथ पारिवारिक संबंधों, पुरुष सत्ता के वर्चस्व के प्रति विद्रोह, संस्कारशील घरों में घुटते दाम्पत्य जीवन की अस्तित्वहीनता की यंत्रणा सहती स्त्री, पाश्चात्य संस्कृति के दुष्परिणाम व अवैध प्रेम संबंधों के साथ कश्मीर की पृष्ठभूमि पर अभूतपूर्व लेखन किया है। उन्होंने सदैव अपने अभूतपूर्व लेखन के द्वारा पाठकों से सीधे संवाद किया है। उनके लेखन में जिजीविषा है, इन्होंने अधिकतर रचनाओं में कश्मीरी जीवन के विविध रंगों, खान-पान, पूजा पाठ, रीति-रिवाज़, संस्कृति और त्योहारों का सुंदर चित्र प्रस्तुत किया है। साहित्य मानव संस्कृति का एक अविभाज्य अंग है। अत: साहित्य सामाजिक चेतना का भी एक अत्यंत अनिवार्य तत्त्व है। किसी देश की संस्कृति का चित्र हमें तत्कालीन साहित्य में स्पष्ट दिखाई देता है अत: यह कहना अनुचित नहीं होगा कि साहित्य समाज का आईना है।

समाज के उत्थान-पतन में साहित्य का अत्यधिक योगदान रहता है। वस्तुत: देखा जाए तो साहित्य ही समाज को क्रियाशील बनाए रखता है। सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति जितनी स्पष्ट रूप से एक साहित्यकार कर सकता है उतना कोई नहीं कर सकता। लेखिका ने समाज में आतंकवाद, बढ़ती सांप्रदायिकता, समाज में व्याप्त अंधविश्वास, युवा वर्ग का विदेश के प्रति आकर्षण, भ्रष्टाचार, कश्मीरी-संस्कृति, स्त्री-पुरुष के अवैध संबंधों की कथा, भारतीय युवाओं की बेरोजगारी की समस्या, कश्मीर के लोगों की अज्ञानता व दरिद्रता, स्त्रियों पर अत्याचार और देश के सरकारी तंत्र में फैले भ्रष्टाचार व चापलूसी की समस्या का बखूबी अपने साहित्य के माध्यम से इन सभी विषयों को नयी दिशा दी है

शोधपत्र के मुख्य बिन्दु-

कश्मीर के सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक उतार-चढ़ाव को शोधपत्र के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

शोधपत्र के बीज शब्द - सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक, सामाजिक चेतना।

जन्म से कश्मीरी और रचनाकर्म से राष्ट्रभाषा हिन्दी को समर्पित रचनाकार चन्द्रकान्ता जी मूल रूप से केंद्र शासित प्रदेश 'जम्मू-कश्मीर' से सम्बन्ध रखती हैं चन्द्रकान्ता जी का अनुभव क्षेत्र अत्यंत व्यापक है, इसलिए उनका कथा साहित्य विविध विषयों को स्पर्श करता है। कुछ स्त्री कथाकार सिर्फ स्त्री-विमर्श से ही जुड़ी रहती है वह सिर्फ स्त्री साहित्य से संबंधित रचनाएँ ही लिखती हैं उन्होंने न केवल स्त्री समस्या पर ध्यान केन्द्रित किया है बल्कि जम्मू-कश्मीर में आतंकवाद व विभिन्न सामाजिक समस्याओं को अपनी रचनाओं का विषय बनाया, उन विषयों में समाज में बढ़ती सांप्रदायिकता, समाज में व्याप्त अंधविश्वास, युवा वर्ग का विदेश के प्रति आकर्षण, भ्रष्टाचार, कश्मीर की संस्कृति, स्त्री-पुरुष के अवैध संबंधों की कथा, अकेलेपन की पीड़ा का त्रास, महिलाओं के साथ पारिवारिक संबंधों, पुरुष सत्ता के वर्चस्व के प्रति विद्रोह, हमारे समाज के संस्कारशील घरों में घुटते दाम्पत्य जीवन की अस्तित्वहीनता की यंत्रणा सहती स्त्री, भारतीय युवाओं की बेरोजगारी की समस्या, कश्मीर के लोगों की अज्ञानता व दरिद्रता, स्त्रियों पर अत्याचार व देश के सरकारी तंत्र में फैला भ्रष्टाचार व चापलूसी की समस्या का बखूबी अपने साहित्य के माध्यम से इन सभी विषयों को आपने अपनी वाणी दी है। इसके अलावा धार्मिक कट्टरता, आतंकवाद के नाम पर लोगों की नृशंस हत्या करने इन सभी घटनाओं को कथाकार ने अपने साहित्य के माध्यम से उजागर किया है।

चंद्रकान्ता जी ने अपने कथा-साहित्य के माध्यम से इस

समाज के हर एक व्यक्ति को प्रभावित किया है। विस्थापन के बाद बदले हालातों पर भी साहित्यकार ने पूरा ध्यान केन्द्रित किया है। कश्मीर के लोगों का आपसी भाईचारा, पारिवारिक विघटन की समस्या व साम्प्रदायिक सौहार्द को लेखिका ने कई कहानियों व उपन्यासों का विषय बनाया है। हमारे आधुनिक समाज के वृद्धों की अकेलेपन की पीड़ा व घर के सदस्यों के द्वारा की जाने वाली उपेक्षा इन सभी विषयों को भी लेखिका ने अपने साहित्य के माध्यम से उठाया है। रचनाकार का हृदय बहुत कोमल होता है वह जिन-जिन परिस्थितियों से होकर गुज़रता है उन परिस्थितियों का उस पर बहुत तीव्र व गहरा प्रभाव पड़ता है। चन्द्रकान्ता जी का संपूर्ण बचपन व यौवन अवस्था कश्मीर की गलियों में व्यतीत हुआ है। उन्होंने कश्मीर में घटने वाली आतंकवाद की घटनाओं व उससे उपजे परिणामों को बहुत पास से देखा व अनुभव किया जिसका बहुत गहरा प्रभाव उनके हृदय पर पड़ा। इनकी आतंकवाद की त्रासदी पर आधारित रचनाएं है 'कथा सत्तीसर', 'काली बर्फ', 'शरणागत दीनार्त', 'वितस्ता का जहर', 'बदलते हालात में', 'किस्सा गाशकौल', 'कोठे पर कागा', 'करिश्मा कैसेट का', 'पायथन', 'विदारक चीखें', 'बेगाने देश में', 'अब्बू ने कहा था', 'जलकुण्ड का रंग', 'लाजवाब', 'नुसरत की आखें', शायद संवाद में सुनाई देती है। 'शायद संवाद' में कहानी में लेखिका ने आतंकवाद के उदेश्य का पर्दाफाश किया है।

कहानी में 'मसूद' नाम का व्यक्ति जो कि पूर्व आतंकवादी था वह बताता है कि किस प्रकार से कश्मीर के भोले-भाले युवकों को दीन महज़ब का हवाला देकर गुमराह किया जाता है उन्हें भयंकर सर्दी में मरने के लिए छोड़ दिया जाता है कहानी में वह आगे बताता है कि इन लोगों को कोई फर्क नहीं पड़ता की कोई हिन्दू है या मुसलमान है। यह लोग इतने ज़ालिम होते है कि जिन लोगों के यहाँ रूकते हैं खाना खाते हैं अंत में उन्हीं की बेटियों व बहुओं की आबरू लूटते हैं। ''चिल्लयकलान में कुपवाड़ा की पहाड़ियों में गन देकर भेज दिया-'लड़ो और मरो' न ढंग के जूते दिये न कपड़े।' इसके अलावा 'पहले हिन्दूओं को घर-बाहर कर दिया, फिर मुसलमानों को भी कहाँ बख्शा? आधी रात में घरों में घुसकर खाने-पीने की फरमाइशें तो करते ही थे, घर की बहू-बेटियों की बेहुरमती करने में भी गुरेज नहीं किया।'' [1]

लेखिका ने आपसी भाईचारा व साम्प्रदायिक सौहार्द को कई कहानियों व उपन्यासों का विषय बनाया है। 'ऐलान गली ज़िन्दा है' व 'अब्बू ने कहा था' कहानी में भी लेखिका ने वहां के लोगों के आपसी भाईचारे को अपनी कहानी के माध्यम से प्रस्तुत किया है। हिन्दू-मुस्लिम दोनों एक ही डाली के पुष्प हैं, एक दूसरे के बिना वह अधूरे है। कहानी में मुख्य पात्र 'फजल रहमान' व पात्र 'मास्टर रतनलाल' है जो कि साम्प्रदायिक सौहार्द व एकता व भाईचारे के प्रतीक बनकर उभरते हैं। कहानी में आतंकवादियों के द्वारा रहमान की गोली मारकर हत्या कर दी जाती है। क्योंकि वह हिन्दू व मुस्लिम एकता की बाते करते हैं। ''आतंकवादियों की कई तंजीमें हैं। हिजबुल-मुजाहिदीन और जे. के. एल. एफ. तो आपस में ही एक दूसरे के खून के प्यासे हो गए हैं। एक को आज़ादी चाहिए, दूसरे को पाकिस्तान आम आदमी को थोड़ा सा चैन और दो जून भात ही तो चाहिए। 'मास्टर रतनलाल' और हेडमास्टर फज़ल रहमान गहरे मित्र हैं। उनकी पत्नियों और बच्चों में भी खूब अपनापन था। कश्मीर के प्राकृतिक सौंदर्य और मौसमों की बदलाहटों का वे साथ-साथ आनंद लेते।'' [2] कहानी में हेडमास्टर जी ने साम्प्रदायिक सौहार्द की मिसाल पेश की है। अपनी मृत्यु से पहले वह अपनी बेटी 'शाहीन' को कहते हैं कि मास्टर जी को बचाना है। 'शाहीन' अपनी जान को खतरे में डालकर कर अपनी पिता की अन्तिम ईच्छा पूरी करती है व 'रतनलाल' को आतंकवादियों के चंगुल से आज़ाद करवाती है। अपने ही देश में शरणार्थी बने कश्मीरी पंडितों व सिक्खों की दास्ता 'कोठे पर कागा', 'शरणागत दीनार्त', 'वितस्ता का जहर', 'पायथन' में है। संयुक्त परिवार हमारे समाज का एक अटूट अंग है और हमारी भारतीय संस्कृति की पहचान है पाश्चात्य संस्कृति के आगमन के पश्चात् हमारे भारतीय संयुक्त परिवारों का विघटन शुरू हो गया इसी समस्या को लेखिका ने अपने साहित्य के माध्यम से उठाया है, पारिवारिक विघटन की समस्या जिसके कुछ कारण है संयुक्त पारिवारों के टूटने के निम्नलिखित कारण हैं-

- पारिवार में आर्थिक विषमता का आना
- पाश्चात्य संस्कृति का आगमन
- पारिवारों में वृद्धों की उपेक्षा करना
- पीढ़ी संघर्ष आदि मुख्य कारण हैं।

लेखिका ने यह समस्या 'अन्तिम साक्ष्य', 'बाकी सब खैरियत' 'रात में सागर' में उठायी है, उपन्यास 'बाकी सब खैरियत' में दो भाई 'बीनू' व 'अनुका' की पारिवारिक विघटन की कहानी है। दोनों में आर्थिक विषमता है क्योंकि विदेश में रहकर 'अनुका' ज़्यादा कमाता है और 'बीनु' गाँव में माँ-बाप के साथ रहकर उनकी सेवा करता है फिर भी उसके माता-पिता हमेशा 'अनुका' की ही प्रशंसा करते रहते हैं। माता पिता का ज़्यादा ध्यान 'अनुका' की ओर ही रहता है जो की विदेश में रहता है। जिससे कारण

दोनों भाईयों में दरार बढ़ जाती है। वह एक दूसरे के विरूद्ध हो जाते है। ''माँ को बार-बार नोटों की गड्डियाँ दिखाकर तुम माया महाठगिनी का प्रताप न दिखाते तो अपनी बीमारी और तमाम शिकायतों के बावजूद वह शायद अपनी नियति को स्वीकार करने की कोशिश करती और हमारी सेवाओं को कोई गरिमा मिल जाती। हमारी कोशिशों को कोई अर्थ मिलता।''[3] घाटी के साम्प्रदायिक सौहार्द की अभिव्यक्ति 'ऐलान गली ज़िन्दा है', 'अब्बू ने कहा था' में मिलती है। कश्मीर की संस्कृति कई सैकड़ों वर्षों पुरानी है, हिन्दू-मुस्लिम समुदाय इस संस्कृति की पहचान है। इतिहास गवाह रहा है कि जब-जब कोई मुसीबत आयी है दोनों समुदायों ने एकसाथ मिलकर उस मुसीबत का सामना किया है। ''हल्ला सुनकर घरों की रोशनियाँ भक्-से जल उठी। अधनंगे सोये मर्द-औरतें गर्म बिस्तरे छोड़कर खिड़की-दरवाजों पर टँगकर चोर को ललकारने लगे। गली का भाईचारा भी गजब का था।''[4] वृद्धों की अकेलेपन की पीड़ा व जीवन मूल्यों में विघटन की समस्या 'रात में सागर' कहानी में देखनें को मिलती है 'रात में सागर' कहानी दो भाईयों की कहानी है बड़ा भाई 'धीरेन्द्र' भारत में अपने पिता के पास रहता है जबकि छोटा भाई 'वीरेन्द्र' जो कि अमेरिका में बस जाता है और पिता की मृत्यु के पश्चात् माँ को अपने साथ अमेरिका ले जाता है, जहाँ उसकी माँ का एक्सीडेन्ट हो जाता है जिसके कारण 'वीरेन्द्र' अपनी बीमार माँ को रिकवरी सेंटर में दो साल के लिए भर्ती करा देता है जीवन मूल्यों का किस प्रकार ह्रास होता है किस प्रकार से अपने ही संतानों के द्वारा घर के वृद्धों को उपेक्षा का शिकार होना पड़ता है। ''कितनी कोशिश के बाद प्रवेश मिला था माँ को इस रिकवरी सेंटर में। दो सौ पचास डॉलर प्रतिदिन खर्चा आता है एक-एक पेशेंट पर, माँ समझती नहीं।''[5] भ्रष्टाचार की समस्या आज पूरे विश्व की समस्या है इस समस्या को भी लेखिका ने उठाया है। कहानी 'सपने में गुलाब' हमारे सरकारी तंत्र की पोल खोलती है किस प्रकार मास्टर 'दीनानाथ' इस सरकारी तंत्र का शिकार हो जाता है। जहाँ उसे अपने मकान की कम्प्लीशन सर्टिफिकेट लेने के लिए रिश्वत मांगी जाती है परन्तु वह अपने उसूलों पर अड़ा रहता रहता है। ''नौकरशाही और लालफीताशाही में व्याप्त भ्रष्टाचार में फँसे एक मध्यवर्गीय शिक्षक की कहानी है सेवानिवृत्ति के पश्चात् मास्टर'' दीनानाथ एक सपना देखते हैं कि अब वह अपना मकान बनाएगा और सारी ज़िंदगी चैन से गुज़ारेगा परन्तु उसका यह सपना हमारे इस सरकारी तन्त्र की भेट चढ़ जाता है। 'सपने में गुलाब', जहाँ मास्टर 'दीनानाथ' बिना किसी रिश्वत के अपने मकान को 'हुड्डा' से पास करवाना चाहते है। उनका तर्क था-सिफारिशों कमज़ोर और कुसूरवार लोग तलाशते हैं। मैं न कमजोर हूँ और न गुनहगार। इन सिफारिशों और मुट्ठी गरम करने की रिवायतों ने ही करप्शन को बढ़ावा दिया है।''[6]

स्त्री संघर्ष से जुड़ी कहानी 'इस दौड़ में कहानी', 'लगातार युद्ध' में वूमेन 'गुरप्रीत' के संघर्ष और बहादुरी को दिखाया गया है। 'इस दौड़ में कहानी' में 'शिवि' नाम की महिला की कहानी है जिसे इस पुरुष सत्तात्मक समाज में उपेक्षा का शिकार होना पड़ता है। पहले अपने पिता के द्वारा फिर भाई के द्वारा व अंत में पति के द्वारा उसके अस्तित्व को दबाने की कोशिश होती है। ''आर्ट्स में एम.ए. करो। अपने पाँवों पर खड़ी तो हो जाओगी आगे चाहोगी तो डॉक्टरेट भी कर सकती हो।''[7] स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों की अवैध दास्ता व विलासा की आकांक्षा रखने वाली आज की किंकर्तव्यविमूढ़ पीढ़ी की मन:स्थिति को कहानी 'थोड़ा सा स्पेस अपने लिए', 'पत्थरों के राग' के माध्यम से दर्शाया गया है, पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव हमारे युवाओं को मात्र पतन की ओर ही ले जा रहा है हमारी भारतीय संस्कृति पूरी तरह नष्ट हो चुकी है आज हमारे युवा चमक-धमक की और आकर्षित होते जा रहे है कहानी 'थोड़ा सा स्पेस अपने लिए' में एक लड़की 'ईशा' जो अपने प्रेमी 'वरुण' के साथ विवाह से पूर्व ही लिव इन रिलेशन में रहती है और बाद में 'वरुण' को यह अहसास होता है कि 'ईशा' ने उसकी ज़िन्दगी में हर चीज़ पर अधिकार कर लिया है। वह उससे विवाह नहीं करना चाहता है, वह विवाह को मात्र बोझ मानता है जिससे वह छुटकारा पाना चाहता है। अंत में वह विवाह के लिए मना कर देता है। और ईशा डिप्रेशन व तनाव का शिकार हो जाती है। लेखिका ने आज के भटके हुए युवाओं को यह संदेश दिया है कि यह पाश्चात्य संस्कृति हमें सिर्फ पतन की ओर ही ले जाती है इससे न जाने कितने अपराधों का जन्म होता है, आजकल समाचारों व अखबारों में यह बात आम सुनने व पढ़ने को मिलती है की एक लड़की की हत्या उसके प्रेमी के द्वारा की गयी। न जाने कितने ही अजन्मे शिशुओं की नृशंस हत्या की जाती है 'थोड़ा सा स्पेस अपने लिए' कहानी का 'वरुण' आज की बज़ारवादी यानी अमेरिकन संस्कृति का शिकार है।''[8] पत्थरों के राग में व्यापारी 'सतीश' व अपने पारिवारिक दायित्वों के कारण कुँवारी रहने वाली पैंतीस वर्षीय 'सोनल' जो कि अपनी अतृप्त शारीरिक ईच्छाओं के कारण अवैध सम्बन्ध की शिकार हो जाती है। ''उन दिनों रात को जब थक चुककर तकिये पर सिर टिका देती तो खिड़की की सीध में नारियल के पेड़ के पीछे पीला चांद काले

बादलों के पीछे दुबका रहता और एक विशालकाय काला दैत्य, लम्बे नाखूनों वाला, धीरे-धीरे बाहें फैलाये उसे लीलने आगे बढ़ने लगता।

वह विचित्र सी दमघोंट छटपटाहट महसूस करती। तब वह उठकर पसीना पोंछती, पानी पी लेती, करवटें बदलती और बदहवासी में बिस्तर को एक छोर से दूसरे छोर तक टटोलने लगती।''[9] लेखिका कश्मीर की मूल समस्या आतंकवाद के लिए कहीं न कहीं राजनीतिक दलों को भी उत्तरदायी मानती है। ''युवा लड़के, विद्वान् पत्रकारों, सिद्ध नेताओं और उत्तर आधुनिक बिचौलियों, चिन्तकों से भरी राजधानी के वादों, इरादों और वैश्विक चिन्ताओं को समझाने की कोशिश करते हुए भी समझ न पाए कि आज़ादी के तैंतालीस सालों के बाद भी कश्मीर समस्या को समझना राजधानी कि लिए असंभव क्यों रहा?''[10] कश्मीर की समस्या का एक मात्र हल दृढ़ राजनीतिक ईच्छा शक्ति है जो की आज केंद्र की सत्ता के रूप में है वह दिन दूर नहीं जब स्वर्ग से नरक बने कश्मीर की परिस्थितियाँ फिर से सामान्य हो जाएगी।

सन्दर्भ सूची -

1. संतोष गोयल -चन्द्रकान्ता का सृजन संसार, शायद संवाद, पृष्ठ संख्या- 269
2. संतोष गोयल -चन्द्रकान्ता का सृजन संसार, अब्बू ने कहा था , पृष्ठ संख्या- 27
3. चन्द्रकान्ता- बाकी सब खैरियत है, पृष्ठ संख्या- 146
4. चन्द्रकान्ता, ऐलान गली ज़िन्दा है, पृष्ठ संख्या-19
5. संतोष गोयल -चन्द्रकान्ता का सृजन संसार, 'रात में सागर, पृष्ठ संख्या- 265
6. संतोष गोयल -चन्द्रकान्ता का सृजन संसार, 'सपने मे गुलाब, पृष्ठ संख्या- 265
7. संतोष गोयल -चन्द्रकान्ता का सृजन संसार, इस दौड़ में कहानी, पृष्ठ संख्या-267
8. संतोष गोयल -चन्द्रकान्ता का सृजन संसार, थोड़ा सा स्पेस अपने लिए, पृष्ठ संख्या-279
9. चन्द्रकान्ता, ओ सोनकिसरी, पृष्ठ संख्या- 15-16
10. चन्द्रकान्ता, कथा-सतीसर, पृष्ठ संख्या-514

ISSN 2278 - 0327

किसान आंदोलन में खाप पंचायतों की भूमिका

प्रदीप
छात्र
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सेक्टर 1, पंचकूला

शोध सार:

केंद्र सरकार के द्वारा लाए गए तीन कृषि कानूनों के खिलाफ शुरू हुआ किसान आंदोलन संयुक्त किसान मोर्चा के बैनर तले शुरू हुआ। जिसे देश भर के लगभग 40 किसान संगठनों ने मिलकर तीन कृषि कानूनों के खिलाफ लड़ाई लड़ने के लिए बनाया। इस आंदोलन में देशके भिन्न-भिन्न सामाजिक संगठनों ने सहयोग किया। किसी ने लंगर बनाने में, तो किसी न साफ सफाई, तो किसी ने व्यवस्था बनाने में सहयोग किया। इस आंदोलन में खाप पंचायतों ने आंदोलन का संयुक्त किसान मोर्चा के बैनर तले नेतृत्वव व्यवस्था संभालने का काम किया। हरियाणा, उत्तरप्रदेश, राजस्थान और दिल्ली की खापों ने अपने-अपने क्षेत्र के साथ-साथ दिल्ली की सरहदों पर लोकतांत्रिक ढंग से अपने प्रभाव का इस्तेमाल करते हुए आंदोलन में भारी जनसमूह के साथ आंदोलन में हिस्सा लिया।

एक वक्त जब लगा कि आंदोलन अब बिना किसी नतीजे के समाप्त हो जाएगा व देश का किसान मायूस होकर घर लौटने लगा और खाप पंचायतों के सेनापति भारतीय किसान यूनियन के राष्ट्रीय प्रवक्ता राकेश टिकैत भी जब सरकार की नाइंसाफी व चाल के सामने नहीं टिक पाए, तो उनके आंसू निकल गए, जब देश के किसानों ने उनके आंसुओं को मीडिया के माध्यम से देखा तो देश के किसानों को वह आँसू राकेश टिकैत के ना लग कर देश के किसान के आंसू लगने लगे तो हरियाणा व पश्चिमी उत्तरप्रदेश के किसानों से रहा न गया। तुरंत खाप पंचायतें सक्रिय हुई और रातों-रात हरियाणा, पंजाब व पश्चिमी उत्तरप्रदेश के किसान ट्रैक्टर ट्रॉली लेकर रात को ही गाजीपुर बॉर्डर की तरफ निकल गए और सुबह तक गाजीपुर बॉर्डर पर लाखों लोगों का जनसैलाब उमड़ पडा। हरियाणा व पश्चिमी उत्तर प्रदेश में अगले ही दिन से गांव-गांव पंचायतें होने लगी। खाप पंचायतों ने आंदोलन की विस्तृत रूपरेखा बनाई व रणनीति के तहत आंदोलन लड़ा और आखिरकार देश के प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी ने देश के किसानों की भावनाओं को समझते हुए तीनों कृषि कानून गुरु पर्व के पावन मौके पर वापस लेने का ऐलान किया।

बीज शब्द: किसान आंदोलन, प्रमुख घटनाक्रम, खाप पंचायत, योगदान, नकारात्मक पहलू।

भूमिका:

तीन कृषि कानूनों के विरोध में शुरू हुआ किसान आंदोलन आखिरकार 378 वें दिन जाकर खत्म हुआ। संयुक्त किसान मोर्चा ने अहम बैठक के बाद बड़ा फैसला लिया। इतने लंबे चले आंदोलन में कई उतार चढ़ाव भी आये। कई बार आंदोलन कमजोर पड़ता दिखाई दिया, तो संयुक्त किसान मोर्चा के नेताओं ने फिर से आंदोलन को संभाला। जहाँ आंदोलन में युवाओं का जोश दिखाई दिया, तो वहीं बुजुर्गों के फैसलों पर युवाओं का धैर्य भी आंदोलन को इतना लंबा चलाने में सहायक रहा। आंदोलन के नेताओं में मनमुटाव भी हुए, लेकिन मोर्चा फिर भी डटा रहा। संयुक्त किसान मोर्चा के बैनर तले 26 नवंबर 2020 से आंदोलन शुरू हुआ और दिल्ली बॉर्डर पर सरकार से अधिकारिक पत्र मिलने पर आंदोलन के 378 वें दिन समापन हुआ। आंदोलन में 714 से ज्यादा किसानों को अपनी जान गंवानी पड़ी व आखिरकार देश के किसानों की जीत हुई।

शोध प्रविधि:

इस शोध-पत्र के लिए शोध सामग्री अधिकांश रूप से द्वितीयक स्रोतों से ग्रहण की गई है। इसमें वर्णनात्मक दृष्टिकोण के साथ-साथ शोधकर्ता ने अपने व्यक्तिगत अनुभवों को भी स्थान दिया है। शोध सामग्री प्रसिद्ध न्यूज़ चैनल व अखबार, पत्रिकाओं व इंटरनेट से प्राप्त की गई है।

किसान आंदोलन की शुरुआत:

किसान आंदोलन की शुरुआत किसानों के दिल्ली पहुंचने से पहले ही तब शुरू हो गई थी, जब सरकार जून के पहले सप्ताह में

कोरोना काल के बीच तीन कृषि अध्यादेश लाई। इसका विरोध विपक्षी दलों के साथ-साथ किसान संगठनों ने भी शुरू कर दिया। धीरे-धीरे पंजाब, हरियाणा में इसका विरोध तेज होता गया। पंजाब में इसके विरोध में रेल रोको आन्दोलन से लेकर टोल फ्री राष्ट्रीय राजमार्ग सहित कई अन्य प्रकार के विरोध प्रदर्शन किए गए। किसानों ने सरकार के पुतले फूंके व जिला सचिवालयों पर धरना प्रदर्शन किए। कांग्रेस के पूर्व राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री राहुल गाँधी के साथ-साथ भारतीय किसान यूनियन व किसान संगठनों ने पंजाब व हरियाणा में ट्रैक्टर यात्रा निकाली। अगस्त में किसानों ने जेल भरो आंदोलन किया और सैकड़ों किसानों ने गिरफ्तारियां दी। 10 अगस्त को पंजाब के किसानों ने अन्नदाता जागरण अभियान की शुरुआत राष्ट्रीय किसान महासंघ द्वारा की गई।

इसके बाद 10 सितंबर को भारतीय किसान यूनियन हरियाणा के प्रदेशाध्यक्ष गुरनाम सिंह चढूनी ने हरियाणा के कुरुक्षेत्र जिले की पीपली अनाज मण्डी में मंडी बचाव रैली का अल्टीमेटम सरकार को दे दिया। सरकार ने इस रैली को रोकने के लिए धारा 144 लगा दी। किसानों ने इसका विरोध किया और रैली के लिए जुटने शुरू हो गए। इसके बाद पीपली चौक पर एकत्र किसानों पर प्रशासन ने लाठीचार्ज करवा दिया, जिसमें कई किसान घायल हुए व कई किसानों को गंभीर चोटें पहुंची। इसके विरोध में किसानों ने कुरुक्षेत्र में राष्ट्रीय राजमार्ग 44 जाम कर दिया किसानों के विरोध के आगे सरकार को झुकना पड़ा और रैली के लिए इजाजत देनी पड़ी। दोपहर 2:00 बजे मंडी में रैली की शुरुआत हुई। रैली में भारी जन सैलाब उमड़ा। सरकार द्वारा हुए लाठीचार्ज की वजह से घायल हुए किसानों की फोटो व लाठीचार्ज की वीडियोज ने आग में घी डालने का काम किया। फलस्वरूप आंदोलन की चिंगारी पूरे हरियाणा में फैल गई।

उसके बाद 14 सितंबर 2020 को कृषि कानून बिल लोकसभा में पेश किया गया, जो 17 सितंबर 2020 को पास हो गया। इसके बाद देशभर में किसानों के विरोध प्रदर्शन तेज हो गए। 27 सितंबर 2020 को दोनों सदनों से पास बिलों पर माननीय राष्ट्रपति श्रीरामनाथ कोविंदजी ने हस्ताक्षर किए। इसके बाद आवश्यक वस्तु (संशोधन) कानून 2020, (कृषि उत्पादन व्यापार और वाणिज्य संवर्धन और सुविधा) कानून 2020, कृषक (सशक्तिकरण व संरक्षण) कीमत आश्वासन और कृषि सेवा परकरार कानून 2020, कानून बन गए।अब पंजाब में किसानों का आंदोलन उग्र हो चला, किसानों ने रेल ट्रैक जाम कर दिए, रिलायंस स्टोर और टावरों का विरोध करना व उनमें तोड़फोड़ करनी शुरू कर दी। 2 अक्टूबर से दूसरे किसान संगठनों ने देश के अन्य राज्यों में भी प्रदर्शन किया। इस दौरान हरियाणा में भी कई जगह विरोध प्रदर्शन चलते रहे। अक्टूबर माह में ही राजस्थान व पंजाब सरकार ने विधानसभा में कृषि कानूनों के विरोध में बिल पारित करके तीनों कृषि कानूनों का विरोध किया।

किसानों ने 5 नवंबर 2020 को भारत बंद का ऐलान किया। इस भारत बंद का व्यापक असर पंजाब हरियाणा पश्चिमी उत्तर प्रदेशव राजस्थान, मध्यप्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, तेलंगाना, छत्तीसगढ़ के कुछ हिस्सों मे देखने को मिला। इसके बाद पंजाब के किसान संगठनों ने देश के अन्य किसान संगठनों से बातचीत करके संयुक्त किसान मोर्चा का गठन किया और मोर्चे की पहली बैठक दिल्ली में 7 नवंबर को हुई। इसमें किसानों की नौ सदस्यीय कमेटी का गठन किया गया। इसके बाद दिल्ली कूच का निर्णय लिया गया। 24 नवंबर को पंजाब के किसान संगठनों ने दिल्ली कूच कर दिया। वहीं हरियाणा में भारतीय किसान यूनियन के प्रदेश अध्यक्ष सरदार गुरनाम सिंह चढूनी के नेतृत्व में किसानों ने पंजाब के किसान संगठनों के आगे ढाल बनकर चलने का ऐलान कर दिया। वे शंभू बोर्डर अंबाला के बैरिकेड्स को तोड़ते हुए किसान कुरुक्षेत्र, करनाल, पानीपतव सोनीपत जिला के बैरिकेड्स को तोड़ते हुए हरियाणा- दिल्ली सिंघू बॉर्डर पर जा पहुंचे व राष्ट्रीय राजमार्ग जाम कर दिया। वही मालवा के किसानों ने खनौरी बॉर्डर के बैरिकेड्स को तोड़ते हुए जींद व रोहतक होते हुए बहादुरगढ़ में टिकरी बॉर्डर पर जा पहुंचे व टिकरी बॉर्डर जाम कर दिया। इनमें जगह-जगह से हरियाणा के किसान बड़ी संख्या में पंजाब के किसानों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर पंजाब के किसानों के आगे-आगे चलते रहे। वही उत्तराखण्ड व पश्चिमी उत्तरप्रदेश के किसानों ने मुजफ्फरनगर मेरठ होते हुए गाजीपुर बॉर्डर जाम कर दिया। इस प्रकार दिल्ली के तीन प्रमुख बॉर्डर किसानों द्वारा सील किए जा चूके थे।

खाप पंचायतों का आंदोलन में शामिल होने का ऐलानः

किसान आंदोलन में खाप पंचायतों की भूमिका तय करने के लिए 30 नवंबर 2020 को रोहतक स्थित जाट भवन में हरियाणा सर्वखाप की पंचायत हुई। जिसमें करीब हरियाणा की 30 बड़ी खापें शामिल हुई, जिनमें प्रमुख तौर पर सांगवान खाप, नरवालखाप, अहलावत खाप, गठवाला खाप, नांदल खाप, दहिया खाप, हुड्डा खाप, बिनैनखाप, आंतिलखाप, कुंडू खाप, दलाल खाप, पालम 360, सोनीपत 360, रोहतक 84, महम चौबीसी इत्यादि खापें शामिल रही। इन सभी खापों ने तीन कृषि कानूनों के

मसले पर किसानों के समर्थन का ऐलान किया और उनके समर्थन में दिल्ली चलो व हर घर से एक सदस्य किसान आंदोलन में पहुंचने का नारा दिया। हरियाणा की इन सभी प्रमुख खापों ने बहादुरगढ़ के टिकरी बॉर्डर व सिंधु बॉर्डर पर किसानों के समर्थन में अपनी-अपनी खाप के टेंट बना दिए।

हरियाणा की खाप पंचायतों की देखा-देखी उत्तरप्रदेश की खाप पंचायतें भी सक्रिय हुई और 15 दिसंबर 2020 को सर्वखाप पंचायत के मुख्यालय गांव सोरम, जिला मुजफ्फरनगर, उत्तरप्रदेश में सर्वखाप पंचायत के मंत्री चौधरी सुभाष बालियान की अध्यक्षता में पंचायत हुई। जिसमें उत्तरप्रदेश की कई खापों के प्रधान शामिल हुए, जिनमें मुख्य तौर पर बालियान खाप के प्रधान चौधरी नरेश टिकैत, नरवाल खाप के उत्तरप्रदेश प्रधान चौधरी धर्मवीर नरवाल, देशवाल खाप के चौधरी सरणवीर सिंह, गठवाला खाप के बाबा राजेंद्र सिंह मलिक, थांबा बहावड़ी चौधरी श्याम सिंह मलिक, भारतीय किसान यूनियन के प्रवक्ता चौधरी राकेश टिकैत सहित कई खापों के प्रधान शामिल हुए और पंचायत में सर्वसम्मति से सभी खापों के प्रधानों ने किसान आंदोलन का समर्थन किया और कहा कि किसान अपने हक की लड़ाई लड़ रहे हैं। जब तक केंद्र सरकार इन बिलों को वापस नहीं लेती, तब तक यह लड़ाई जारी रहेगी और साथ ही साथ खाप चौधरियों ने 17 दिसंबर को गाजीपुर बॉर्डर पर किसान आंदोलन में हिस्सा लेने की घोषणाखाप पंचायतों ने औपचारिक तौर पर कर दी। अब दिल्ली के तीनों बॉर्डरों पर खाप पंचायतें हजारों लाखों लोगों के साथ डट गई और आंदोलन को मजबूती दी।

किसान आंदोलन काप्रमुख घटनाक्रम:

हरियाणा में कई जगह किसानों को जबरदस्ती रोकने का प्रयास किया गया। लेकिन अंतत: किसान 26 नवंबर 2020 को दिल्ली की सीमाओं पर जा डटे। 27 नवंबर 2020 को माननीय गृहमंत्री जी ने किसानों से कहा कि वो बुराड़ी मैदान में चले जाएं और सरकार से वार्ता में शामिल हो, लेकिन किसान नहीं माने। अंतत: 1 दिसंबर 2020 को सरकार के साथ किसानों की दो बैठकें हुईं, केंद्र ने किसानों को बिना शर्त खुले मन से बातचीत करने का प्रस्ताव दिया था। इस पर पहली बार पंजाब के 32 किसान नेताओं ने दोपहर 3:00 बजे केंद्र सरकार के मंत्रियों से मुलाकात की, यह मीटिंग लगभग 3 घंटे तक चली। केंद्र सरकार की तरफ से केंद्रीय कृषि मंत्री नरेंद्र सिंह तोमर, पीयूष गोयल और पूर्व मंत्री सोमप्रकाश बैठक में शामिल हुए। यह बैठक नई दिल्ली स्थित विज्ञान भवन में हुई। पहले दौर की इस बातचीत में केंद्र सरकार ने एक कमेटी गठित कर मामले का हल निकालने का प्रस्ताव रखा, जिसे किसानों ने सिरे से नकार दिया। उसी दिन दूसरे दौर की वार्ता शाम 7:00 बजे हुई, जिसमें उत्तरप्रदेश, हरियाणा और अन्य राज्यों के प्रतिनिधि भी शामिल थे। कृषि मंत्री ने 2 दिसंबर 2020 को गृह मंत्री को तीसरे दौर की वार्ता की जानकारी दी, इसी प्रकार 3 व 5 दिसंबर को हुई, क्रमस: चौथे व पांचवे दौर की वार्ता बेनतीजा रही। फलस्वरूप 8 दिसंबर को किसानों ने भारत बंद का आह्वान किया। इसका उत्तर भारत में ज्यादा प्रभाव देखा गया। 17 दिसंबर को दिल्ली के मुख्यमंत्री श्री अरविंद केजरीवाल ने विधानसभा का विशेष सत्र बुलाया और विधानसभा के पटल पर ही तीनों कृषि कानूनों की प्रतियाँ फाड़ीं और विधानसभा में जय जवान जय किसान के नारे लगाए गए। 21 दिसंबर को किसानों ने सभी धरना स्थल पर एक दिवसीय भूख हड़ताल की। 30 दिसंबर को सरकार और किसान नेताओं के बीच छठे दौर की बातचीत हुई, इसमें केंद्र ने पराली जलाने से संबंधित अध्यादेश में किसानों के खिलाफ एक्शन न लेने और प्रस्तावित बिजली संशोधन कानून को लागू न करने पर सहमति जतायी। 2 जनवरी 2021 को संयुक्त किसान मोर्चा ने सरकार को अल्टीमेटम दिया कि अगर उनकी मांगें नहीं मानी गई, तो किसान 26 जनवरी को दिल्ली में ट्रैक्टर परेड निकालेंगें। इसी तरह 4 व 8 जनवरी की सातवें व आठवें दौर की बैठक भी बेनतीजा रही। 12 जनवरी 2021 को सुप्रीम कोर्ट ने कृषि कानून मामले पर सुनवाई करते हुए अगले आदेश तक तीनों कृषि कानूनों पर अस्थाई रोक लगाई और चार मेंबरी कमेटी का गठन किया गया। इसके बाद 15 जनवरी 2021 को नौवें दौर की वार्ता भी बेनतीजा रही। 10 वें दौर की वार्ता में 21 जनवरी को केंद्र सरकार ने प्रस्ताव रखा कि तीनों कानूनों को डेढ़ साल तक स्थगित रखा जाए, लेकिन किसान इस बातको नहीं माने। फलस्वरूप 22 जनवरी की 11 वें दौर की वार्ता भी बेनतीजा रही।

इसके बाद 26 जनवरी को किसानों ने अपनी एकता का परिचय देने और देश को आंदोलनसे जोड़ने के लिए दिल्ली में ट्रैक्टर रैली व झांकियां निकालने का निर्णय लिया। लेकिन हुआ इसके उल्टा, कुछ किसानों ने सबसे पहले सिंघु बॉर्डर से अपना रूट बदल लिया। हजारों की संख्या में सिंघु बॉर्डर, टिकरी बॉर्डर, गाजीपुर बॉर्डर और शाहजहांपुर बॉर्डर से ट्रैक्टरों का काफिला दिल्ली की ओर चला। सिंघु बॉर्डर के बाद टिकरी बॉर्डर और गाजीपुर बॉर्डर से भी ट्रैक्टरों के कुछ गुट लाल किला की ओर रवाना होने शुरू हो गए। आंदोलन हिंसक हो चला। पुलिस के

साथ हिंसक झड़पें हुई, अधिकतर किसानों ने दिल्ली में हिंसा की खबर पर अपने ट्रैक्टर वापस मोड़ लिए। दोपहर के समय एक कथित किसान दीप सिद्धू ने लाल किले की प्राचीर पर एक धर्म विशेष का झंडा फहराया, जो कि सरासर निंदनीय था। राकेश टिकैत ने प्रशासन व सरकार पर आरोप लगाया कि उन्हें जानबूझकर गलत रास्ते पर चढ़ाया गया और लाल किले तक ट्रैक्टर पहुंचाए गए। टिकैत ने कहा कि सरकार ने यह सब आंदोलन को बदनाम करने के लिए किया। दिल्ली में इस दिन पथराव लाठीचार्ज और आंसू गैस के गोलों का प्रयोग किया गया। आईटीओ चौक पर एक किसान की भी मौत हुई। इस पूरे घटनाक्रम के बाद लगा कि आंदोलन अब खत्म हो जाएगा। इस घटना की देश-विदेश में काफी निंदा हुई और किसान आंदोलन स्थल से अपने-अपने घरों की तरफ चल दिए।

किसानों के घर जाने के साथ-साथ सरकार ने भी बॉर्डरों पर सख्ती बढ़ा दी व बॉर्डर खाली कराने की तैयारी शुरू कर दी। 28 जनवरी की रात को जब गाजीपुर बॉर्डर को यूपी प्रशासन ने खाली करवाने की तैयारी की और राकेश टिकैत को गिरफ्तार करने की तैयारी की तो राकेश टिकैत भावुक हो गए और प्रेस कॉन्फ्रेंस करके आंदोलन स्थल छोड़कर न जाने की बात कही। टिकैत ने कहा कि जब तक मेरे गांव से पानी नहीं आएगा, पानी नहीं पिऊँगा। इसके बाद यह वीडियो सोशल मीडिया और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में वायरल हो गई। चौधरी महेंद्र सिंह टिकैत के साथ किसानों के जुड़ाव ने राकेश टिकैत को मजबूत सहारा दिया और देखते ही देखते रातों-रात पंचायतें शुरू हो गई, लोग बॉर्डर पर पहुंचने लगे। हाईवे जाम हो गए। सबसे पहले कंडेला गांव में जींद- चंडीगढ़ राष्ट्रीय राजमार्ग जाम कर दिया गया। इसके बाद धीरे-धीरे हरियाणा व पश्चिमी उत्तर प्रदेश में सड़कें जाम होने लगी। रातों- रात जनसैलाब गाजीपुर बॉर्डर की तरफ रवाना हो गए। भीड़ इतनी ज्यादा थी कि हरियाणा सरकार को किसी अप्रिय घटना की संभावना के मद्देनजर पूरे हरियाणा में इंटरनेट तक बंद करना पड़ा और सुबह तक देखते ही देखते राकेश टिकैत के समर्थन में गाजीपुर बॉर्डर पर लाखों की संख्या में किसान पहुंच गए और सरकार को अपने कदम वापस खींचने पड़े।

अब राकेश टिकैत किसान आंदोलन का एक नया चेहरा बनकर उभरे व देशभर में किसान पंचायत करने लगे। जिसमें की लाखों की भीड़ शामिल होती, इसके बाद आंदोलन चलता रहा। 12 अक्टूबर 2021 को देश के गृह राज्य मंत्री श्री अजय मिश्र टेनी के बेटे ने अपनी थार जीप व अपने साथियों के साथ कुछ गाड़ियों से निर्दोष किसानों को रौंद दिया, जिसमें 4 किसान मारे गए व कई किसान घायल हो गए। पूरे देश में गृह राज्य मंत्री के बेटे के इस कुकृत्य के खिलाफ आवाज उठने लगी। किसान आंदोलन जो कि अब तक सिर्फ हरियाणा, पंजाब, पश्चिमी उत्तरप्रदेश, राजस्थान, उत्तराखंड तक फैला था, अब वह बुंदेलखंड, पूर्वांचल, बिहार, कर्नाटक, आंध्रप्रदेश, महाराष्ट्र तक फैलने लगा। इस प्रकार केंद्र सरकार को लगा कि पूरे देश की जनभावना किसान आंदोलन के साथ जुड़ रही है, इसलिए केंद्र सरकार ने देश के किसानों की जन भावना को समझते हुए गुरु पूर्णिमा के पावन अवसर पर 19 नवंबर 2021 को तीन कृषि कानून वापस लेने का एलान माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी ने किया और किसानों की सारी मांगे मान ली गई व आंदोलन स्थगित हो गया।

आंदोलन में खाप पंचायतों का योगदान:

किसान आंदोलन के सफल होने में खाप पंचायतों का अतुलनीय योगदान रहा है। खाप पंचायतों के हर घर से एक सदस्य के दिल्ली किसान आंदोलन में पहुंचने के आह्वान व दिल्ली चलो के नारे की वजह से हजारों लाखों की संख्या में किसानों ने खापों के नेतृत्व में दिल्ली कूच किया। जिससे आंदोलन को मजबूती मिली। एक समय जब आंदोलन 26 जनवरी की हिंसा के बाद खत्म होने की कगार पर खड़ा था, तो हरियाणा व उत्तरप्रदेश की खाप पंचायतों ने मोर्चा संभाला वरातों- रात गांव-गांव, क्षेत्र- क्षेत्र में पंचायतें होने लगी। जिसका असर यह हुआ की जिस 28 जनवरी की शाम को गाजीपुर बॉर्डर पर मात्र 150 से 200 किसान थे, उसी गाजीपुर बॉर्डर पर सुबह होते- होते लाखों किसान पहुंच गए और टिकरी व सिंधु बॉर्डर पर भी काफी संख्या में हरियाणा व उत्तर प्रदेश के किसान पहुंचे। जिससे एक टूटता हुआ आंदोलन फिर से दोगुनी ताकत से खड़ा हो गया व खाप पंचायतों ने सौरम की पंचायत में जिस राकेश टिकैत पर खाप पंचायतों की तरफ से गाजीपुर बॉर्डर पर मोर्चा संभालने की जिम्मेदारी सौंपी थी, वही राकेश टिकैत किसान आंदोलन का एक बड़ा चेहरा बनकर उभरे। वहीं खाप पंचायतों ने करीब 378 दिन चले आंदोलन को हिंसक होने से बचाए रखा। जो भी हिंसक घटनाएं हुई, उनमें मुख्यत: पंजाब से संबंधित लोगों का ही रोल रहा, उनमें हरियाणा व उत्तर प्रदेश के लोग शामिल नहीं रहे, चाहे वह सिंघु बॉर्डर पर एक व्यक्ति की तड़पा-तड़पा कर हत्या करने की बात हो या फिर लाल किला हिंसा के मुख्य आरोपी

दीप सिद्दू के पंजाब से जुड़ने की बात हो इन घटनाओं में हरियाणा व उत्तरप्रदेश का रोल कहीं नहीं रहा। आमतौर पर पिछले इतिहास को देखते हुए कहा यही जाता है कि, हरियाणा के व्यक्ति ज्यादा लंबा आंदोलन नहीं करते। हरियाणवी व्यक्ति त्वरित न्याय चाहते हैं व आर-पार के मूड में रहते हैं। जिसमें ये लोग जल्दबाजी करके आंदोलन को हिंसक कर देते हैं और आंदोलन समाप्त हो जाता है। परंतु किसान आंदोलन में ऐसी कोई घटना नहीं हुई। खाप प्रधानों ने पिछले इतिहास से सबक लेते हुए युवाओं को समझाया व आंदोलन को हिंसक नहीं होने दिया व आंदोलन को लोकतांत्रिक ढंग से उसके मुकाम तक पहुंचाया। खाप पंचायतों की यह सबसे बड़ी सफलता रही है।

केस अध्ययन:

30 नवंबर 2020को रोहतक में हुई हरियाणा सर्वखाप की पंचायत में हरियाणा की सभी खाप पंचायतों ने भाग लिया। जिसमें सर्वसम्मति से निर्णय लिया गया की हर घर से एक व्यक्ति दिल्ली किसान आंदोलन में जाएगा व खाप पंचायतें अपनी झोपड़ियाँ सभी बॉर्डर पर बनाएंगी। जिससे किसान आंदोलन की हर गतिविधि पर ध्यान रखा जा सके। ताकि कोई असामाजिक तत्व आंदोलन में शामिल होकर कोई असंवैधानिक गतिविधि ना करें व आंदोलन शांतिपूर्ण तरीके से चलता रहे। उसके साथ- साथ हरियाणा, उत्तर प्रदेश की खाप पंचायतों ने दिल्ली बॉर्डरों के साथ-साथ हरियाणा, उत्तरप्रदेश के विभिन्न राष्ट्रीय राजमार्गों पर स्थित टोल नाकों पर संबंधित खापों के नेतृत्व में किसानों के साथ धरना दिया। जैसे सांगवान खाप ने भिवानी-दादरी राष्ट्रीय राजमार्ग पर स्थित कितलाना टोल प्लाजा पर, हुड्डा खाप ने रोहतक पानीपत राष्ट्रीय राजमार्ग पर स्थित मकरौली टोल प्लाजा, दलाल खाप द्वारा फिरोजपुर -दिल्ली राष्ट्रीय राजमार्ग पर स्थित रोहद टोल प्लाजा, बालियान खाप के द्वारा देहरादून - दिल्ली राष्ट्रीय राजमार्ग पर स्थित सिवाया टोल प्लाजा, कंडेला खाप द्वारा जींद - चंडीगढ़ राष्ट्रीय राजमार्ग पर स्थित खटकड़ टोल प्लाजा पर धरना दिया।

इसी प्रकार एक अन्य केस 15 दिसंबर 2020 को सर्वखाप पंचायत के मुख्यालय गांव सोरम, जिला मुजफ्फरनगर, उत्तरप्रदेश में सर्वखाप पंचायत के मंत्री चौधरी सुभाष बालियान की अध्यक्षता में हुई उत्तरप्रदेश की सभी खाप पंचायतों ने मिलकर राकेश टिकैत को खापों का सेनापति बनाकर गाजीपुर बॉर्डर पर भेजा। जो कि आगे चलकर किसान आंदोलन का सबसे बड़ा चेहरा बने। अत: इस प्रकार हम देखते हैं कि किसान आंदोलन में खाप पंचायतें मुख्य भूमिका में रही।

नकारात्मक पक्ष:

किसान आंदोलन में अच्छे पक्षों (लोकतंत्र में जनता हीसर्वोच्च शक्ति) के साथ-साथ कुछ गलत बातें भी रही हैं, जैसे 26 जनवरी को दिल्ली पुलिस द्वारा तय किए गए रूट पर ट्रैक्टर यात्रा निकालकर नई दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र से होते हुए लाल किले की तरफ ले कर जाना व लाल किले पर जहां हमारा जान से भी प्यारा तिरंगा झंडा बड़ी शान से लहराता है, उस जगह पर किसी धर्म विशेष के झंडे को फहराना सरासर गलत था। लाल किला हमारी राष्ट्रीय धरोहर है और हम सभी भारतवासियों को राष्ट्रीय धरोहरों, राष्ट्रीय चिन्ह व संविधान की रक्षा व सम्मान करना चाहिए। इसके साथ-साथ सिंघु बॉर्डर पर निहंग सिखों के द्वाराश्री गुरु ग्रंथ साहिब की बेअदबी के दोषी एक व्यक्ति की दर्दनाक हत्या करना बहुत ही शर्मनाक व निंदनीय था। अगर वह व्यक्ति दोषी भी था, तो उसको पुलिस को सौंप कर कानून के समक्षदंड दिलवाना चाहिए था। इन सभी घटनाओं से खाप पंचायतें अपनी जिम्मेदारी से भाग नहीं सकती, इनकी जिम्मेदारी बनती थी, कि ऐसी घटनाओं को रोकती और आंदोलन में कोई भी अप्रिय घटना ना होने देती।

निष्कर्ष :

भारत के इतिहास का आज तक का सबसे लंबा 378 दिन चला किसान आंदोलन आखिरकार सफल हो गया। इस आंदोलन में देश के किसान दिन -रात, गर्मी -सर्दी, बारिश के मौसम में दिल्ली की सरहदों पर 1 साल से ज्यादा समय तक डटे रहे और आखिरकार सरकार से अपनी मांगे लोकतांत्रिक ढंग से मनवा कर ही माने। साथ ही साथ सरकारों को भी किसानों ने संदेश दिया की भारत में भारतीयों की जन भावना से ऊपर कोई भी सरकार नहीं जा सकती, चाहे वह सरकार स्पष्ट पूर्ण बहुमत की ही क्यों ना हो। यही लोकतंत्र की खूबसूरती भी है कि यहां कोई भी व्यक्ति चाहे कितना ही स्पष्ट बहुमत उसके पास हो वह तानाशाह नहीं बन सकता, किसान आंदोलन न`सरकारों को यह बता दिया है। किसान आंदोलन में खाप पंचायतों की भूमिका उल्लेखनीय रही है। खाप पंचायतों नेजन भावना के अनुरूप लोकतांत्रिक ढंग से किसान आंदोलन में अपनी उपस्थिति दर्ज करवाई है। खाप पंचायतों ने चाहे दिल्ली की सरहदें हों या हरियाणा व उत्तरप्रदेश के राष्ट्रीय राजमार्गो पर स्थित टोल नाके। हर जगह किसान आंदोलन में उल्लेखनीय योगदान दिया,व इतना बड़ा आंदोलन संयुक्त किसान मोर्चा के साथ मिलकर अहिंसक व लोकतांत्रिक ढंग से चलाया।

संदर्भ सूची

1. https://youtu.be/5u17f0o2c5g
2. https://youtu.be/svsjqrikJhs
3. https://youtu.be/zXtbiYQmvJA
4. https://youtu.be/j_aNW1lwQX4
5. https://youtu.be/ZS1-aU98kGU
6. https://youtu.be/TmMkzJJzJUg
7. https://www.etvbharat.com/hindi/uttar-pradesh/state/muzaffarnagar/khap-panchyat-are-support-farmers-protest/up20201215044329471
8. https://opoyi.com/hindi/farmers-movement-in-west-up-is-getting-strength-from-khap-mahapanchayat-thousands-are-gathering
9. https://tricitytoday.com/uttar-pradesh/todays-biggest-news-in-the-kisan-andolan-the-khap-of-west-up-supported-rakesh-tikait-will-join-the-agitation-on-december-1-14689.html
10. https://hindi.caravanmagazine.in/agriculture/left-punjab-haryana-caste-gender-solidarities-farmers-protest-hindi
11. https://www.jagran.com/haryana/panipat-bku-made-preparations-for-the-kisan-mahapanchayat-21984764.html
12. https://www.indiatv.in/india/uttar-pradesh-kisan-andolan-khap-panchayat-in-mathura-naresh-tikait-769961
13. https://www.navodayatimes.in/news/khabre/farmers-movement-khap-panchayats-haryana-distanced-themselves-from-bjp-jjp-leaders-rkdsnt/168297/
14. https://www.outlookhindi.com/country/punjab-haryana-himachal-pradesh/haryana-kisan-aandolan-khap-sarvajati-panchayats-came-forward-the-farmer-movement-got-new-life-55603
15. https://www.india.com/hindi-news/uttar-pradesh/kisan-andolan-third-mahapanchayat-in-western-up-in-three-days-thousands-gathered-4371100/
16. https://www.aajtak.in/india/news/story/haryanas-khap-panchayat-supports-farmers-protest-on-farm-law-modi-government-1169629-2020-11-30
17. https://www.newsnationtv.com/specials/news/farmer-movement-revived-by-khad-of-khap-panchayats-176424.html
18. https://navbharattimes.indiatimes.com/state/punjab-and-haryana/gurgaon/khap-panchayats-are-gaining-strength-while-supporting-kisan-protests/articleshow/81493210.cms
19. https://navbharattimes.indiatimes.com/elections/assembly-elections/uttar-pradesh/up-election-news/khap-panchayat-kisan-andolan-impact-in-assembly-elections-and-its-history/articleshow/86545929.cms
20. https://www.aajtak.in/india/news/story/haryanas-khap-panchayat-supports-farmers-protest-on-farm-law-modi-government-1169629-2020-11-30

ISSN 2278 - 0327

डॉ. महेश 'दिवाकर' के मुक्तक काव्य में सामाजिक कुप्रथा 'दहेज' का चित्रण

पूनम
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

डॉ. संजीव कुमार
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक न

भूमिका :-

आधुनिक समय में भारतीय समाज में फैली विभिन्न कुप्रथाओं में से एक कुप्रथा दहेज भी है। शताब्दियों से भारतीय समाज में चली आ रही इस प्रथा ने वर्तमान समय में विकराल रूप धारण किया हुआ है। इसका उद्भव अवश्य ही धन-धान्य पूर्ण व सम्पन्न परिवारों में कान्यादान के रूप में हुआ होगा। कालान्तर में यह धन-सम्पदा तथा वस्त्र आभूषण इत्यादि नकद रूप में माता-पिता स्वेच्छा से अपनी पुत्री की खुशी के लिए उसे भेंट करते थे, जिसे दहेज की संज्ञा दी गई। वर्तमान समय में यह स्वैच्छिक न होकर माता-पिता की मजबूरी बन गई है। आज बेटी के जन्म के उपरांत से ही माता-पिता उसके विवाह में दिए जाने वाले दहेज को लेकर अत्यंत चिन्तित होते रहते हैं। परिणामस्वरूप आज दहेज प्रथा लड़की के परिवार की नींद उड़ाने वाली व्याधि बन गई है। आजकल तो दहेज के लोभी व लाचली लोग वधू पक्ष से मुँह मांगी राशि वसूल करते हैं। अगर उनकी अपनी अपेक्षा के अनुरूप राशि न दी जाए तो कन्या को उत्पीड़ित किया जाता है। डॉ. महेश 'दिवाकर' के मुक्तक काव्य में सामाजिक कुप्रथा 'दहेज' के दुष्प्रभाव को बहुआयामी पहलूओं में रेखांकित किया गया है:-

1. दहेज माँगने वालों पर कटाक्ष :-

भारतीय समाज में माता-पिता अपने सम्पूर्ण जीवन में संचित की गई पूँजी को अपनी कन्या के विवाहोत्सव पर लड़के वालों को भेंट कर देते हैं। कई बार तो माता-पिता अपनी बेटी की खुशियों को मध्यनजर रखते हुए विवश होकर अर्थ के अभाव में दहेज देने की खातिर अपना मकान तक को बेच देते हैं। परिणाम-स्वरूप उन्हें अनेक मुसीबतों का सामना करना पड़ता है। लेकिन इन सबके बावजूद भी अर्थ लोलुप वर पक्ष शैतान की भांति अपना मुँह फैलाये रहते है, उन्हें संतुष्टि नहीं होती है। डॉ. महेश 'दिवाकर' अपने मुक्तक काव्य 'पथ की अनुभूतियाँ' में 'दहेज' नामक शीर्षक में इस कुप्रथा के दुष्परिणामों को अंकित करता है। कवि कहता है कि भारतीय समाज में जिस पति को परमेश्वर की संज्ञा दी जाती है, वहीं पति जिसको अगर उसकी इच्छा अनुरूप दहेज नहीं मिलता तो असुर की भाँति नारी को प्रताड़ित करता है, जो किसी भी लड़की के लिए अत्यंत पीड़ादायक है कवि इस निर्भय अत्याचार को निम्न पंक्तियों के माध्यम से शब्दबद्ध करता है:-

'' बेच दिया-घर-बार सब, किया सभी कुछ दान।
मुँह फैला शैतान-सा, कहते पति भगवान् ।।''[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि कोई भी माता-पिता अपनी सामर्थ्य से अधिक ही अपनी बेटी को देता है। बेटी के जीवन को सुख-सम्पन्नता से भरपूर बनाने के लिए वह अपना सब कुछ दाँव पर लगा देता है, बेघर तक हो जाता है लेकिन इसके बावजूद भी वह शैतान सा मुँह फैलाए दहेज लोभियों को संतुष्ट नहीं कर पाता है। कवि कहता है कि भारतीय समाज में जिस पति को परमेश्वर समझा जाता है वह अर्थ लोलुपता में इतना क्रूर हो गया है कि उसे एक पिता का समर्पण भी दिखाई नहीं देता है। इस प्रकार कवि ने दहेज के लोभियों पर अत्यधिक कटाक्ष किया है।

2. लाचार पिता की बेबसी :-

वर्तमान समय में दहेज व्यवस्था एक ऐसी प्रथा का रूप धारण कर चुकी है जिसके अन्तर्गत कन्या के अभिभावकों की मान-मर्यादा व प्रतिष्ठा का आंकलन उसके द्वारा बेटी के दहेज में दिए गए धन-दौलत पर निर्भर है। इस व्यवस्था ने समाज के सभी वर्गों को अपनी चपेट में ले लिया है। सम्पन्न परिवारों व अभिभावकों को दहेज लेने या देने में कोई विशेष आपत्ति नहीं होती क्योंकि उन्हें मात्र यह एक निवेश लगता है जो उन्हें समाज में प्रतिष्ठा व उसकी बेटी को ससुराल में खुशहाल जीवन देता है। लेकिन निर्धन अभिभावकों के लिए यह दुष्कर हो जाता है। जब गरीब अभिभावकों द्वारा अपनी बेटी के विवाहोत्सव पर दहेज

नहीं दिया जाता है तो उस गरीब की बेटी पर अनेक अत्याचार किए जाते हैं। जिसके साथ विवाह रचा माता-पिता अपनी बेटी उसे सौंप देता है वहीं निर्मोही अर्थ लोलुपता के कारण उस वधू को प्रताड़ित करते हैं और वह लाचार पिता अपनी बेटी पर हो रहे अत्याचारों से बेहद दु:खी होता है लेकिन अपनी बेटी को इन अत्याचारों से मुक्त कराने में बेबस है। कवि द्वारा उस गरीब पिता की बेबसी को प्रतिपादित करता हुआ निम्न दोहा:-

'' बेटी रोय गरीब की, हाय ! झार-बेझार।
पिया बाधिक-सा कर रहा, मन पर अत्याचार।।''[2]

3. दहेज पीड़िता के प्रति सहानुभूति :-

समाज में नारी जीवन की दुर्गति के मूल कारणों में दहेज प्रथा एक मुख्य कारण रहा है। कवि व्यक्त करता है कि मध्यवर्गीय समाज की नारी आज इस कुप्रथा से बुरी तरह पीड़ित है। 'पथ की अनुभूतियाँ' में संकलित 'दहेज' नामक शीर्षक में दोहा (234) में कवि दिवाकर कन्या को ललाट (माथा) का ताज मानते हैं जिसके आँचल की प्रतिष्ठा में सम्पूर्ण सृष्टि की साज-सज्जा निहित है। दोहा (222) में अपनी इसी बेटी के साथ हो रहे क्रूर अत्याचारों को देख कर कवि की अंतरात्मा काँप उठती है। कवि दहेज से पीड़ित नव-वधू के जीवन की मार्मिक अभिव्यक्ति को प्रकट करता है कि कली-सदृश अर्थात् कोमल कली के समान दिखने वाली उस नव-वधू के जीवन में इस दहेज रूपी हवा के झोंके ने मानो उसकी देह रूपी फुलवारी को ध्वस्त कर दिया हो। दहेज की इस कुप्रथा के भीषण अत्याचारों को सहते हुए मानो वह शरीर सूखे पत्तों की भाँति कुमलाह गया हो। दहेज के कारण उस नव-वधू को ससुराल वालों के कोप का सामना करना पड़ता है।

नारी की इस दयनीय स्थिति पर दु:खी मन से उस पीड़िता के प्रति सहानुभूति का भाव व्यक्त करते हुए कवि लिखते हैं कि हे भगवान् बेटी की यह कैसी किस्मत लिख दी है कि वो प्रतिपल तड़प-तड़पकर मर रही है और इसकी इस स्थिति का उत्तरदायी कोई ओर नहीं इंसान ही है। दहेज के लोभी रक्त पिपासु जब उसे प्रताड़ित करते हैं तो पल-पल तड़प रही नारी की इस स्थिति से कवि को बहुत पीड़ा होती है-

'' कैसी किस्मत लिख दई, बेटी की भगवान्
तड़प-तड़पकर मर रही, मार रहा इंसान।।''[3]

4. दहेज प्रथा के समाज पर दुष्प्रभाव :-

स्वतन्त्रता के इतने वर्षों के पश्चात् भी दहेज जैसी समस्या समाज को जकड़े हुए है। इस गंभीर समस्या के कारण समाज में नारी का जीना दूभर हो गया है। दहेज प्रथा के कारण हमारे समाज को अनके दुष्परिणाम भोगने पड़ते है। इस कुप्रथा के कारण समाज में बेमेल विवाह की कुरीति को बढ़ावा मिला है। अर्थ के अभाव में माता-पिता अपनी बेटी का विवाह एक अयोग्य और उम्र में उससे बड़े व्यक्ति के साथ करने के लिए बाध्य होते हैं। आज दहेज के नाम पर समाज में प्रत्येक गाँव, बाजार में सरेआम दूल्हों की बोली लगाई जाती है और जो इनकी कीमत देने में असमर्थ होता है उसकी लड़की या तो आजीवन कुंवारी रहने को अभिसप्त है या बेमेल विवाह की त्रासदी को भोगने के लिए विवश हो जाती है। अनमेल विवाह समस्या को प्रतिपादित करता कवि का निम्न दोहा:-

'' साठ साल के वृद्ध से, तरूणी रचा विवाह।
कहाँ ऊँट? बकरी कहाँ? कैसे हो निर्वाह।।''[4]

दहेज प्रथा के कारण अनमेल विवाह जैसी समस्याएं उभरने से अनेक पारिवारिक व सामाजिक संबंधों में भी कड़वाहट पैदा होती है। अर्थहीन अभिभावक दहेज के लिए सम्पत्ति न जुटा पाने पर विवशतापूर्वक अपनी कन्या का विवाह किसी भी असमर्थ व लाचार व्यक्ति से कर देते हैं। अत: स्पष्ट है कि दहेज जैसी समस्या हमारे समाज की प्रगति में बाधक बन गई है और इसके अनेक उदाहरण कवि दिवाकर ने अपने मुक्तक काव्य में परिलक्षित किए हैं ।

5. दहेज प्रथा को समाप्त करने की प्रेरणा :-

कवि 'दिवाकर' भारतीय समाज में फैली इस कुप्रथा को समाप्त करने की प्रेरणा देते हुए लिखते हैं कि समाज में विकराल रूप धारण की हुई इस कुरीति को जड़ से उखाड़ फैंकना होगा, तभी जाकर भारतीय समाज में देवी तुल्य नारी इस अत्याचारों की पीड़ा से मुक्ति पा सकेगी। दहेज रूपी दानव की क्रूरता के प्रति क्षोभ व्यक्त करते हुए कवि लिखता है:-

'' नारी संग होता रहे, निर्मम अत्याचार।
जब तक असुर-दहेज का, करता है व्यभिचार।।''[5]

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि 'दिवाकर' दहेज को असुर की संज्ञा देते हुए व्यक्त करता है कि जब तक समाज में यह दहेज रूपी दानव विद्यमान है, तब तक भारतीय समाज में नारी के साथ अनेक निर्मम अत्याचार होते रहेंगे। अत: हमें शीघ्रता से दहेज रूपी दानव का विनाश करना ही होगा। तभी समाज में बहन, बेटी कुशलतापूर्वक व प्रसन्नचित्त होकर अपना जीवन व्यतीत कर सकेंगी।

आज भारतीय समाज में दहेज प्रथा एक गंभीर विषय बना हुआ है प्रतिदिन अशोभनीय, दर्दनाक घटनाएं घट रही हैं । समाचार

पत्र व पत्रिकाओं में दहेज प्रथा से होने वाले नुकसान व दुष्प्रभाव पढ़ने को मिलते हैं। दहेज के कारण न जाने कितने ही घर काल के ग्रास बन गये हैं। नारी को अपना जीवन मौत से भी भयावह लगने लगा है। दहेज प्रथा की समाप्ति का एकमात्र उपाय कवि शिक्षा के प्रति सजगता को मानता है। शोषित जिन्दगी से छुटकारा पाने तथा नारी उत्थान हेतू शिक्षा की अनिवार्यता का प्रतिपादन कवि ने 'कभी खिलेंगे फूल' में किया है:-

'' ज्यों-ज्यों शिक्षा बढ़ेगी, हो नारी उत्थान।
त्यों-त्यों शोषित जिन्दगी, पायेगी अवसान।।''[6]

कवि 'दिवाकर' नारी को अपने अधिकारों से अवगत कराते हुए लिखते हैं कि नारी को स्वयं की रक्षा का अधिकार स्वयं लेना है, उसे स्वयं को स्वावलम्बी बनना होगा, तभी वो अत्याचारों की पीड़ा से मुक्त हो सकती है वरना ऐसे ही युगों युगों तक उसे प्रताड़ित होना पड़ेगा। कवि दिवाकर 'भाव-सुमन' में लिखते हैं कि:-

'' अपनी रक्षा का उसे, लेना है अधिकार।
वरना, तो पिटती रहे, बिना बात हर द्वार।।''[7]

अभिभावकों को अपनी बेटी को शिक्षित कर उसे स्वावलंबी बनाना होगा, ताकि उसे ससुराल वालों के अत्याचारों का सामना ना करना पड़े। 'दिवाकर' जी ने 'पथ की अनुभूतियाँ' में दोहा (224) में बड़ी बहन की छोटी बहन के प्रति व्याकुलता को दर्शाते हुए एक बेटी की पिता से प्रार्थना को व्यक्त किया है। बड़ी बहन को ससुराल में अत्यधिक उत्पीड़ित होना पड़ता है तो वह पिता से कहती है कि छोटी बहन की शादी तभी करना जब वह आत्मनिर्भर बन जाए, अपने पैरों पर खड़ी हो ताकि उसे प्रताड़ित न होना पड़े।

अत: निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि कवि दिवाकर ने समाज में व्याप्त दहेज प्रथा जैसी सामाजिक विकृति के न केवल दुष्परिणामों का चित्रण किया है बल्कि इस कुप्रथा के निराकरण का उपाय भी पाठक के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास किया है और उनका यह प्रयास पूर्णतया सफल भी हुआ है।

संदर्भ सूची-

1. डॉ. महेश दिवाकर, लोकधारा-1/पथ की अनुभूतियाँ, पृ. 124
2. वहीं, पृ. 124
3. वहीं, पृ. 124
4 वहीं, पृ. 125
5. वहीं, पृ. 124
6. डॉ. महेश दिवाकर, लोकधारा-1/कभी खिलेंगे फूल, पृ. 769
7. डॉ. महेश दिवाकर, लोकधारा-1/भाव-सुमन, पृ. 90

ISSN 2278 - 0327

वास्तुपूजन विचार

विवेकशील पाठक
केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर परिसर, जयपुर

भूमिका –

त्रिगुणात्मिका अनिर्वचनीय मायामय सृष्टि को थोड़ा सा भी जानना भगवत् कृपाश्रित तथा स्वयं कर्मार्जित पुण्यों पर आधारित है। प्रारब्धवशात् कर्ममीमांसान्तर्गत शुभ अशुभ फल मनुष्य को प्राप्त होता है। शुभ कामना हेतु सनातन परम्परा में पूजनविधि विशेष महत्व रखती है। मायारूढ मनुष्य भविष्य को अनुमान प्रमाण पर आधारित करके नित्य, नैमित्तिक, काम्य कर्मों द्वारा नानाविध भक्ष्योपहारी द्रव्यों से स्वाभिलषित कामना सिद्धि हेतु आद्या के अनन्त रूपों में से अभिलषित रूप का पूजन करके स्वकार्य को यथाशक्ति भक्ति द्वारा सम्पन्न करने का प्रयास करता है। आचरणीय सन्दर्भ में वास्तु विषय में भी वास्तुपूजन का विस्तृत विवेचन वास्तुशास्त्र के लगभग सभी प्रामाणिक ग्रन्थों में प्राप्त होता है। इन्हीं ग्रन्थों को आधार मान कर वास्तु पूजन के विभन्न तथ्यों का विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

वास्तु पूजन की आवश्यकता –

गृह, नगर, मन्दिर बनाने के पूर्व भूमि की चारों दिशाओं में खूँटियाँ गाड़कर विधिपूर्वक वास्तु पूजन करना चाहिए। भूमिशोधन करने के समय, शिला स्थापन के समय, द्वार स्थापन में, स्तम्भ लगाने में तथा भवन में निवास करने से इन पाँच प्रकार के कार्यों से पूर्व वास्तु पूजन (वास्तुयज्ञ) करने को कहा गया है। यथा –

भवनपुरसुराणां सूत्रणे पूर्वमुक्तः
कथित इह पृथिव्याः शोधने च द्वितीयः।
तदनु मुखनिवेशे स्तम्भसंरोपणे स्याद्
भवनविशनकाले पञ्चधा वास्तुयज्ञः।।[1]

वास्तुपूजन के विषय में मत्स्यपुराण का वचन भी ऐसा ही है–

एतद्वास्तूपशमनं कृत्वा कर्म समाचरेत्।
प्रासादभवनोद्यानप्रारम्भे परिवर्तने।।
पुरवेशमप्रवेशे च सर्वदोषोपशान्तये।
वास्तूपशमनं कृत्वा ततः सूत्रेण परिवेष्टयेत्।।
रक्षोघ्नपावमानेन सूक्तेन भवनादिकम्।
नृत्यमङ्गलवाद्यैश्च कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम्।।
अनेन विधिना यस्तु प्रतिसम्वत्सरं बुधः।
गृहे वायतने कुर्यान्न स दुःखमवाप्नुयात्।।

भाव स्पष्ट है। सामान्यतया यह वास्तु पूजन मकान, पुर, देवालय आदि के सूत्रपात के समय भूमिशोधन, द्वारस्थापन, शिलान्यास और गृह प्रवेश आदि के शुभ समय में वास्तु पूजन अवश्य करना चाहिए। कूर्म–संस्थापन, द्वार–संस्थापन, पद्मशिला–संस्थापन, प्रासाद–पुरुषसंस्थापन, कलश–ध्वजासंस्थापन और वास्तुपूजन आदि इन सात प्रकार के कार्यों को अवश्य ही करना चाहिए। जैसा कि कहा भी गया है –

कूर्मसंस्थापने द्वारे पद्माख्यां च पौरुषे।
घटे ध्वजे प्रतिष्ठायामेवं पूण्याहसप्तकम्।।[2]

सर्वप्रथम वास्तुपूजन हमें क्यों और कब क्या करना चाहिए इस विषय में जानते हैं। सामान्यतः प्रासाद, देवालय, भवन, तालाब, कुँआ, बाँवडी के खनन, वाटिकार्थ वृक्षारोपण, जीर्णोद्धार, नगरनिवेश, यज्ञमण्डप जैसे कार्यों के प्रारम्भ और समापन में वास्तुपूजन से सुख मिलता है, तथा ऐसा नहीं करने से नुक्सान होता है। वास्तुपुरुष उल्टा सोया हुआ है। उसके पैर नैर्ऋत्य कोण में तथा दोनों तलवे संयुक्त होते हैं। सुषुप्तावस्था में वास्तु पुरुष का सिर ईशान कोण में, कोहनियाँ तथा घुटने अग्नि और वायव्य कोण में स्थित हैं। यथा –

प्रासादे भवने तडागखनने कूपे च वाप्यां वने–
जीर्णोद्धारपुरेषु यागभवनप्रारम्भनिर्वर्तने।
वास्तोः पूजनकं सुखाय कथितं पूजां विना हानये–
तस्माद्यत्नपरेण तत्करजतः सम्पूजनीयः सता।।[3]

वास्तु पुरुष के अङ्गों में पूजनीय देवता –

वास्तुपुरुष के सिर पर ईश देव की स्थिति होती है और दोनों कर्णों पर पर्जन्य देव, गले में आपदेव, दोनों कन्धों पर जय एवं अदिति देव, वक्षस्थल पर अर्यमा तथा भूधर देव, हृदय पर आपवत्स देव, दक्षिण बाहु पर इन्द्र सहित पाँच देवता, वाम बाहु में नाग सहित पाँच देव, दाहिने हाथ में कोहनी तक सावित्र तथा सविता देवता, बाएँ हाथ पर रुद्र व रुद्रदास देव, दोनों जांघों में मृत्यु एवं मैत्रगण देवता, नाभि के पृष्ठ भाग पर कमर से थोडा ऊपर ब्रह्मा देवता, गुप्त

अंगों (उपस्थ) पर इन्द्र तथा जय देव, दोनों जानुओं में अग्नि एवं रोग, दोनों गुल्फों पर पूषा और नन्दी गणादि सात देव तथा ऐडियों पर पितृ देव की स्थापना करनी चाहिए।[4]

वास्तुपुरुष के पूर्व आदि दिशाओं में स्थापनीय देव –

पूर्वादि क्रम से ईशान कोण में ईश की पूजा करनी चाहिए, जबकि ईशान कोण से पूर्व दिशा के बीच सात वर्गों में पर्जन्य, जय, इन्द्र, सूर्य, सत्य, भृश व आकाश की पूजा, अग्नि कोण में अग्नि की, दक्षिण कोण से नैर्ऋत्य के मध्य सात वर्गों में पूषा, वितथ, गृहक्षत, यम, गन्धर्व, भृङ्ग तथा मृग की पूजा करें। यथा –

ईशस्तु पर्जन्यजयेन्द्रसूर्याः सत्यो भृशाकाश त एव पूर्वे।
वह्निश्च पूषा वितथाभिधानो गृहक्षतः प्रेतपतिः क्रमेण।।[5]

ईसी प्रकार नैर्ऋत्य कोण में पितृदेव की तथा नैर्ऋत्य कोण से पश्चिम दिशा के बीच सात वर्गों में दौवारिक, सुग्रीव, पुष्पदन्त, वरुण, असुर, शोष व पापयक्ष्मा की पूजा, तथा वायव्य कोण में रोग की पूजा करें। वायव्य कोण से उत्तर दिशा के मध्य सात वर्गों में नाग, मुख्य, भल्लाट, कुबेर, शैल, अदिति और दिति देवों की स्थापना कर पूजा करनी चाहिए। इसी उपक्रम में उपरोक्त बत्तीस (32) देवों की बाहर के वर्गों में तथा तेरह (13) देवों के मध्य के वर्गों में पूजा करनी चाहिए। यथा –

गन्धर्वभृङ्गौ मृगपतिसंज्ञौ द्वारस्थसुग्रीवकपुष्पदन्ताः।
जलाधिनाथोऽप्यसुरस्य शोषः सपापयक्ष्मापि च रोगनागौ।।
मुख्यश्च भल्लाटकुबेरशैलास्तथैव बाह्ये दितितोऽदितिश्च।
द्वात्रिंशदेवं क्रमतोऽर्चनीयास्त्रयोदशैव त्रिदशास्तु मध्ये।।[6]

किस प्रकार के निर्माण कार्य में तथा कहाँ कौन सा वास्तु पूज्य होता है अर्थात् हमें किस तरह के वास्तु पद चक्र में किसी निर्माण कार्य से पूर्व वास्तु पूजन करना चाहिए, इस जिज्ञासा के समाधान में नियम यह है कि ग्राम की स्थापना करने पर, राजमहल के निर्माणावसर में, नगर निवेश के समय चौंसठ (64) पद के वास्तु का पूजन करना चाहिए। इस तरह सभी प्रकार के घरों के लिए ईक्यासी (81) पद के वास्तु का विधान है, जीर्णोद्धार के अवसर में उनचास (49) पद का वास्तु पूज्य है, मन्दिर तथा मण्डप के निर्माण के लिए सौ (100) पद का वास्तु पूजनीय है, और तालाब, कुँआ, बाँवडी, उद्यान आदि के निर्माण में एक सौ छयानवे (196) पद वास्तु चक्र में वास्तु के पूजन का विधान वास्तु ग्रन्थों में वर्णित है। तद्यथा–

ग्रामे भूपतिमन्दिरे च नगरे पूज्यश्चतुष्षष्टिकै–
रेकाशीतिपदैः समस्तभवने जीर्णे नवांशकैः।
प्रासादे तु शतांशकैस्तु सकले पूज्यस्तथा मण्डपे–
कूपे षण्णवतिचन्द्रभागसहिते वाप्यां तडागे वने।।[7]

ईसी उपक्रम में मुहूर्तचिन्तामणि की पीयूष धारा टीका में उद्धृत है कि भवन निर्माण के समय और तीनों प्रकार के प्रवेश के समय वास्तु पूजन करना आवश्यक है अतः उसका विधान कहता हूँ– भवन के बीच एक हाथ चौड़ा चावल के ऊपर ईक्यासी (81) पद का सुशोभित वास्तु चक्र बनाएँ। उसमें एक, दो तथा तीन पद के पैन्तालीस (45) देवता होते हैं। बाहर की ओर बत्तीस (32) और भीतर की ओर से तेरह (13) सब मिलकर पैन्तालीस (45) देवता ईक्यासी (81) पद वास्तु के अन्दर होते हैं। यथा–

निर्माणे मन्दिराणां च प्रवेशे त्रिविधेऽपि च।
वास्तुपूजा च कर्तव्या यस्मात्तां कथयाम्यतः।।
गृहमध्ये हस्तमात्रं समन्तात्तण्डुलोपरि।
एकाशीतिपदं कार्यं तिलैस्तुल्यं सुशोभनम्।।
एकद्वित्रिपदा पञ्च चत्वारिंशत्सुरार्चिताः।
द्वात्रिंशद्बाह्यतो वक्ष्यमाणश्चान्तस्त्रयोदश।।[8]

इस प्रकार वास्तु शास्त्रों के ग्रन्थों में उपलब्ध नियमों के आधार पर ईक्यासी पद (सभी तरह के घरों के लिए) के वास्तु पद के चक्र का निर्माण करके वास्तुपूजनोपयोगी सामग्री, दिशा आदि का विवरण आगे किया जा रहा है।

इस प्रकार वास्तुविद्या का विद्वान् उक्त देवताओं के स्थान और नाम को जानकर ब्रह्मा सहित सभी देवों को अपने–अपने स्थान पर न्यास करें, और गन्ध, अक्षत, पुष्प इत्यादि द्वारा षोडशोपचार से वास्तु मन्त्रों से अथवा प्रणव (ओङ्कार) का उच्चारण करके पूजा करें, दो श्वेत वर्ण के वस्त्र चढाएँ, धूप, दीप, फल, पूआ (गेंहूँ से बना) इत्यादि नाना प्रकार का नैवेद्य, ताम्बूल आदि से प्रत्येक देव का पृथक–पृथक् पूजन करें।[9]

ग्रहशान्ति के सहित वास्तुशान्ति करनी चाहिए। मकान इत्यादि से सम्बन्धित सम्पूर्ण कार्यों के आरम्भ के समय तथा गृह प्रवेश के समय विधिपूर्वक ग्रहशान्ति करके प्रवेश करने से अभीष्ट कार्यों की सिद्धि मिलती है।

कार्यारम्भेषु सर्वेषु नववेश्मप्रवेशने।
ग्रहशान्तिं विधानेन कृत्वाऽभीष्टं समश्नुते।।

गृहारम्भ हेतु खनन विधि –

गृहस्वामी ज्योतिश्शास्त्र के अनुसार शुभ दिन, शुभ वार, शुभ लग्न, शुभ मुहूर्त में स्नान करके जिस भूमि पर घर बनाना हो वहाँ जाकर श्रीगणेश जी महाराज, नवग्रह आदि की कलश पर पूजा करें, फिर जितनी भूमि पर भवन बनाना हो नापकर उतनी भूमि को (दिक्शुद्धि पूर्वक) ग्रहण करें। सर्वप्रथम पूजास्थल को गोबर

से लीपकर फिर उस पर अष्टदल का कमल बनाकर कलश की स्थापना करें, ज्योतिषी तथा ब्राह्मणों की दक्षिणा-द्रव्यादि से पूजा कर उन्हें सन्तुष्ट करें। पञ्चगव्य (गौ की पाँच वस्तुएँ दुग्ध, दधि, घृत, मूत्र, मल), सर्वौषधि के जल तथा पञ्चामृत (दुग्ध, दधि, घृत, शर्करा तथा मधु) इनको मिलाकर उस भूमि पर छिड़कना चाहिए तथा भूमि के अन्य संस्कार (सफाई, झाड़-झंखाड काटना तथा समतलीकरण) भी पूर्व में ही कर लेना चाहिए। यथा -

ज्योतिश्शास्त्रानुसारेण सुदिने शुभवासरे।
सुलग्ने सुमुहूर्ते च सुस्नातः प्राङ्मुखो गृही।।
पूजयेद् गणनाथञ्च ग्रहांश्च कलशे स्थितान्।
परीक्षते च भूभागे गोमयेनानुलिप्य च।।
तत्र सम्पूजयेद् विप्रान् दैवज्ञञ्च तथैव च।
यावत्प्रमाणा भूर्ग्राह्या गृहार्थं तावता गृही।।
पञ्चगव्यौषधैः जलैस्तथा पञ्चामृतेन च।
सेचयेच्छुद्धिकामेन भूसंस्कारांश्च कारयेत्।।

कलश-स्थापन तथा उस पर देवादि का आवाहन एवं पूजन-

सर्वप्रथम एक छिद्ररहित कलश में स्वर्ण धातु डालकर उसमें जल भर दें। उसी में सर्वधान्य, सर्वगन्ध, सर्वौषधि, पुष्प डालकर रक्तवर्ण से कलश को वेष्टित कर दें। फिर मन्त्रसहित नवग्रहों, वरुणादि देवताओं का उस कलश में आवाहन करें। उसी पर पर्वतों, वनों, नदियों, नदी तथा कर्णिका सहित पृथ्वी का आवाहन करें। सागर से वेष्टित पृथ्वी देवी की पूजा तथा प्रार्थना करें, दश दिक्पालों, कुलदेवी, कुलदेवता, यक्ष तथा नागों का पूजन करे तथा उन्हें बलि देकर विधिपूर्वक 'जलाय...' मन्त्रों, षड् ऋचाओं तथा रुद्रसूक्त का जाप करें। फिर अन्त में उस कलश में वास्तु देवता की पूजा तथा प्रार्थना करें।[10]

वास्तु प्रार्थना मन्त्र -

हे कपिलवर्ण के वास्तुपुरुष! पृथ्वी को धारण करने वाले प्रधान पुरुष! आपको नमस्कार है। आप सभी प्रकार के भवन, प्रासाद, उद्यानादि निर्माण के कार्यों में तथा गृहारम्भ के प्रथम काल में सम्पूर्ण सफलता को देने वाले हैं। आपकी सिद्ध, देवता गण तथा मनुष्य रात-दिन पूजा किया करते हैं। आप यहाँ इस गृह निर्माण हेतु भूमि पर प्रजापति के क्षेत्र में इस समय (इस उपलक्ष्य पर) आकर विराजमान हों तथा यहाँ आकर इस पूजा एवं बलि आदि को स्वीकार करने की कृपा करें। यथा -

ॐ नमो भगवते वास्तुपुरुषाय कपिलाय च।।
पृथ्वीधराय देवाय प्रधानपुरुषाय च।
सकलगृहप्रासादपुष्करोद्यानकर्मणि।।
गृहारम्भप्रथमकाले सर्वसिद्धिप्रदायक।
सिद्धदेवमनुष्यैश्च पूज्यमानो दिवानिशम्।।
गृहस्थाने प्रजापतिक्षेत्रेऽस्मिंस्तिष्ठ साम्प्रतम्।
इहागच्छ इमां पूजां गृहाण वरदो भव।।[11]

हे वास्तुपुरुष! आपको नमस्कार है, आप भूमि की शैय्या पर शयन कर रहे हैं। हे प्रभो! आप मेरे इस गृह को धन-धान्यादि से सर्वदा समृद्ध करते रहें। यथा -

वास्तुपुरुष नमस्तेऽस्तु भूमिशय्यारतः प्रभो।
मद् गृहं धनधान्यादिसमृद्धं कुरु सर्वदा।।[12]

इस प्रकार से प्रार्थना कर के भूमि पर वास्तुपुरुष की मूर्ति का लेखन आटे से या चावलों से करें। वास्तुपुरुष नाग - जैसे आकार का बनाएँ।[13]

वास्तुपुरुष का आवाहन तथा पूजा नींव की खुदाई -

आवाहयेद् वेदमन्त्रैः पूजयेच्च स्वशक्तितः।
मन्त्र -*आवाहयाम्यहं देवं भूमिस्थं च अधोमुखम् ।।*
वास्तुनाथं जगत्प्राणं पूर्वस्यां प्रथमाश्रितम् ।
विष्णोरराटेति मन्त्रेण पूजयेत्सर्पनायकम् ।।
नमोस्तु सर्पेभ्यो इति वा पूजयेत्स्वशक्तितः ।
*कुक्षिप्रदेशे निखनेद्वास्तुनागस्य मन्त्रतः।।*14

अर्थात् वास्तुपुरुष का आवाहन वेद मन्त्रों से करें तथा अपनी सामर्थ्य के अनुसार पूजन करना चाहिए। आवाहन मन्त्र - मैं भूमि में अधोमुखस्थित वास्तुपुरुषरूपी वास्तुनाथ जो कि जगत् के प्राण हैं तथा पूर्व ईशान दिशाओं प्रथम आश्रित हुए हैं, उनका आवाहन करता हूँ।

इसके अतिरिक्त विष्णोरराटमसि.. इस मन्त्र से सर्पनायक की पूजा करें, नमोस्तु सर्पेभ्यो इस मन्त्र से पूजा की जा सकती है अथवा दोनों से करें।

फिर वास्तुपुरुष के कुक्षिप्रदेश में नागमन्त्र के उच्चारण (नमोस्तु सर्पेभ्यो...) से खुदाई प्रारम्भ करनी चाहिए।

निष्कर्ष -

वस्तुतः मानव अपने आस-पास के वातावरण से हमेशा प्रभावित होता रहता है तथा अपने जीवन के कुशल तथा क्षेम के लिए हमेशा वातावरण को शुद्ध रखना चाहता है और इसी प्रयास में लगा रहता है कि मैं तथा मेरा परिवार सुनियोजित ढंग से निवास कर सके। किन्तु हर व्यक्ति को जो गृह निर्माण अथवा प्रवेश आदि करना चाहता है वह वास्तु शास्त्र के सामान्य नियमों तथा वास्तुपूजन को सम्यक् प्रकार से जानकर फिर उसे उस जगह पर निवास करना चाहिए।

सभी वास्तु सम्बन्धित ग्रन्थों में उपदिष्ट वास्तु पूजन के नियमों के अनुसार कब किस प्रकार के भवन में कितने वास्तु पद के चक्र का निर्माण करके वहाँ तत्तत् देवों की स्थापना करके उन सभी देवों का पूजन करना चाहिए। वास्तु का पूजन जैसे और देवताओं के पूजा का विधान है उसी प्रकार जातक को वास्तु का भी यथोपचार, लब्धोपचार अथवा षोडशोपचार से सर्वविध पूजन तथा यथासंख्या वास्तु का जाप करके उसका दशांश हवन, तर्पण तथा मार्जन आदि को करने के बाद पूर्णाहुति के पश्चाद् अभिषेक आदि करके ब्राह्मणों का आशीर्वाद प्राप्त करके नूतन गृह में निवास करना चाहिए।

जो मनुष्य अनन्य भक्ति से विधिपूर्वक वास्तु का पूजन करता है उस को मकान-सम्बन्धी कोई दु:ख नहीं होते और वह सौ (100) वर्ष तक जीता है एवं कल्प (4320000000 सौर वर्ष) तक स्वर्गवास करता है।[15]

जो मनुष्य वास्तुपूजन और सूत्रधार इत्यादि का सत्कार किए बिना ही गृहप्रवेश करता है वह सात जन्म तक कोढी और नरकभागी होता है।[16]

अत: सर्वदा भूमि आदि के शुभकार्य में हमें वास्तुपुरुष से प्रार्थना करनी चाहिए कि -

ॐ वास्तोष्पते प्रतिजानीह्यस्मान्त्स्वावेशोऽअनमीवो भवान: ।
यत्वे महे प्रतितन्नो जुषस्व शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे।।[17]

अर्थात् हे वास्तोष्पति देव! आप हमारे द्विपद (मनुष्य) एवं हमारे चतुष्पद (पशुधन) का कल्याण व रक्षा करें। पिता (पालक) की तरह हमें सुरक्षा, सुविधा एवं संरक्षण दें। मनुष्य, परिवार, समाज एवं पशु-जगत् व जीव-जगत् के योग क्षेम में हमारी सहायता करें, हमारा कल्याण करें। वैदिक परम्परा में जो प्राणी या पदार्थ प्रत्युकार की भावना के बिना सतत उपकार करता है वह देव कहलाता है। इसीलिए वेदों में सूर्य, चन्द्रमा, वरुण, वायु, पृथ्वी एवं वास्तोष्पति को देव माना गया है। भवन-निर्माण में, भूखण्ड में या भूखण्ड के गर्भ में किसी भी प्रकार के दोष जाने या अनजाने में रह जायें तो उससे हमारी सुरक्षा करने की क्षमता 'वास्तोष्पति' में बतलायी गयी है और इन दोषों का परिहार करने के लिए वास्तु शान्ति का विधान हमारे समाज में प्रचलित है।

सन्दर्भ सूची -

1. वास्तुराजवल्लभ 1,27
2. प्रासादमण्डनम् 1/34
3. वास्तुराजवल्लभ 2,2
4. ईशो मूर्धनि समाश्रित: श्रवणयो: पर्जन्यामादिती
   आपस्तस्य गले तदंशयुगले प्रोक्तौ जयश्चादिति:।
   उक्तावर्यमभूधरौ स्तनयुगे स्यादापवत्सो हृदि
   पञ्चेन्द्रादिसुराश्च दक्षिणभुजे वामे च नागादय:।।
   सावित्र: सविता च दक्षिणकरे वामे द्वयं रुद्रतो
   मृत्युर्मैत्रगणस्तथोरुविषये स्यान्नाभिपृष्ठे विधि:।
   मेढ्रे शक्रयमौ च जानुयुगले तौ वह्निरोगौ स्मृतौ
   पूषा नन्दिगणादिसप्त विबुधा गुल्फे पदे पैतृका:।।
   वास्तुराजवल्लभ 2-5,6
5. वास्तुराजवल्लभ 2-7
6. वास्तुराजवल्लभ 2-8,9
7. वास्तुराजवल्लभ 1,27
8. मु. चि. पी.धा.टी. 13-3
9. ज्ञात्वैवं स्थाननामानि ब्रह्मणा सहितान्यसेत्।
   वास्तुज्ञो वास्तुमन्त्रेण गन्धपुष्पाक्षतादिभि:।।
   प्रणवेनार्चयेद्वापि अथवा स्वस्वनामभि:।
   शुक्लवस्त्रयुगं दद्याद् धूपदीपफलै: सह।।
   अपूपैर्भूरिनैवेद्यैर्वाद्यै: सह समर्चयेत्।
   ताम्बूलं च ततो दद्याद्देवेभ्यश्च पृथक्पृथक्।।
   दत्वा पुष्पाञ्जलिं कर्ता प्रार्थयेद्वास्तुपूरुषम्।
   वास्तुपूरुष नमस्तेऽस्तु भूमिशय्यारत प्रभो।।
   मदृहं धनधान्यादिसमृद्धं कुरु सर्वदा।
   इति प्रार्थ्य ततो दद्याद्दक्षिणामर्चकाय च।।
   विप्रेभ्यो भोजनं दत्वा स्वयं भुञ्जीत बन्धुभि:।
   एवं य: कुरुते सम्यग्वास्तुपूजां प्रयत्नत:।।
   आरोग्यं पुत्रपौत्रादि धनधान्यं लभेन्नर:।
   वास्तुपूजामकृत्वा य: प्रविशेन्नवमन्दिरे।
   रोगान्नानाविधान् कलेशानश्नुते सर्वसंकटम्।।
   वास्तु रत्नाकर 11/59-66
10. तत्र कुम्भं निवेश्यादौ हेमगर्भं जलैर्युतम्।
    सर्वधान्ययुतं सर्वगन्धसर्वौषधैर्युतम्।।
    पुष्पान्वितं रक्तवर्णं सवस्त्रं मन्त्रमन्त्रितम्।
    तस्मिन्नावाहयेत् खेटान् वरुणप्रमुखांस्तथा।।
    तस्मिन्नावाहयेद् भूमिं सशैलवनकाननाम्।
    नदीनदसमायुक्तां कर्णिकाभिश्च भूषिताम्।।
    सागरैर्वेष्टितां तत्र पूजयेत्प्रार्थयेत्तत:।
    दिक्पालाय कुलदेवीश्च देवान्यक्षांस्तथोरगान्।।
    बलिञ्च दत्त्वा विधिवज्जलायेति जपेत्तत:।
    षड्ऋचं रुद्रजापञ्च कारयेद् विधिपूर्वकम्।।
    तस्मिन्सम्पूजयेद् वास्तुं प्रार्थयेत् पूजयेत्तत:।
    विश्वकर्मवास्तुप्रकाश 1/85-88
11. विश्वकर्मवास्तुप्रकाश 1/89-93
12. विश्वकर्मवास्तुप्रकाश 1/98
13. इति प्रार्थ्य ततो भूमौ संलिखेद् वास्तुपुरुषम्।
    3पिष्टातकैर्तण्डुलैर्वा नागरूपधरम् विभुम्।। विश्वकर्मवास्तुप्रकाश 1/99
14. विश्वकर्मवास्तुप्रकाश 1/100 -102
15. वास्तु रत्नाकर 12-67
16. वास्तु रत्नाकर 12-68
17. ऋग्वेद 5/54/1

ISSN 2278 - 0327

रामायणकालीन भारतीय राजनीतिक व्यवस्था

नीतेश
पीएच.डी. (शोधछात्रा)
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

राजतंत्र ही रामायण में वर्णित एकमात्र शासन व्यवस्था है। आर्य, वानर एवं राक्षस तीनों संस्कृतियों में इसके अतिरिक्त अन्य कोई शासन प्रणाली दृष्टिगोचर नहीं होती।

रामायण के अनुसार राजा के उत्तराधिकारी के चुनाव में दो मुख्य बातें थीं- पैतृकता एवं ज्येष्ठता। ज्येष्ठता के साथ-साथ युवराज बनने के लिए राजकुमारों में गुणों एवं योग्यताओं का होना आवश्यक था। युवराज के लिए यह आवश्यक था कि वह बलशाली, पराक्रमी, बुद्धिमान्, धैर्यवान् होने के साथ-साथ लोकप्रिय भी हो। राज्याभिषेक संबंधी समस्त प्रबंध राजपुरोहित के द्वारा किया जाता था। सर्वप्रथम चारों समुद्रों, यमुना आदि पवित्र नदियों, सरोवरों तथा तीर्थों से जल मँगाया जाता था। *स्वर्ण आदि रत्न, देवपूजन की सामग्री, सब प्रकार की औषधियाँ, श्वेत पुष्पों की मालाएँ, खील, शहद, घी, नवीन वस्त्र, रथ, अस्त्र-शस्त्र चतुरंगिणी सेना, हाथी, चँवर, ध्वज, श्वेत क्षत्र, अभिषेक के लिए स्वर्ण भद्रपीठ आदि की आवश्यकता राज्याभिषेक के अवसर पर पड़ती थी।*[1] राज्याभिषेक से एक दिन पूर्व युवराज तथा उनकी पत्नी को उपवास रखकर ब्रह्मचर्य-पूर्वक रहना होता था। राज्याभिषेक के दिन प्रात:काल सभी मन्दिरों तथा सार्वजनिक स्थानों पर घी दूध, दही आदि का भोजन ब्राह्मणों को कराया जाता था और उन्हें दान दक्षिणा भी दी जाती थी।

मंत्रिपरिषद्

प्रथम श्रेणी में मंत्रिपरिषद् के वे सदस्य आते हैं जिनके लिए रामायणकार ने 'गुरव:'[2] शब्द का प्रयोग किया है। ये वो विशिष्ट लोग थे जिन्हें राजा भी गुरु की भाँति मानता था। इनका कार्य विशेष परिस्थिति में राजा को मन्त्रणा देना होता था। ऐसा प्रतीत होता है कि वो प्रत्यक्ष रूप से कोई प्रशासनिक कार्य नहीं किया करते थे और न स्थायी रूप से राजधानी में रहा करते थे। आवश्यकता पड़ने पर राजा अथवा पुरोहित द्वारा इन्हें मन्त्रणा देने के लिए बुलाया जाता था। महाराज दशरथ एवं राम के दरबार से सम्बद्ध इस श्रेणी में आने वाले मंत्रियों में मार्कण्डेय, मोद्गल्य, वामदेव, कश्यप, कात्यायन, ज़ाबालि, गौतम तथा नारद[3] के नाम उल्लेखनीय हैं।

राम को युवराज बनाने पर विचार-विमर्श एवं दशरथ की मृत्यु के उपरांत उनके स्थान पर भरत को राजपद प्रदान करने में इन ब्राह्मण परामर्शदाताओं द्वारा महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई गई थी। दूसरी श्रेणी में उन मंत्रियों को रखा जा सकता है जिनके लिए रामायणकार ने 'सचिव' अथवा 'अमात्य'[4] शब्द का प्रयोग किया है। सुमन्त्र तथा हनुमान के लिए 'मंत्री', 'अमात्य' अथवा 'सचिव' शब्द का प्रयोग किया है। इन लोगों के द्वारा प्रशासनाधिकारी, सभासद्, राजदूत तथा कहीं-कहीं सेवक की भाँति कार्य करने का विवरण भी मिलता है। वाल्मीकि ने दशरथ के 8 अमात्यों- धृष्टि, जयंत, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप, धर्मपाल तथा सुमन्त्र का उल्लेख किया है।[5] भरत के मंत्रियों में सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप तथा धर्मपाल के स्थान पर सिद्धार्थ अर्थसाधक, अशोक तथा मंत्रपाल के नामों का उल्लेख मिलता है। राम के अमात्यों में मुख्य रूप से अशोक, विजय एवं सिद्धार्थ के नामों का उल्लेख ही मिलता है। रामायणीय मन्त्रिमण्डल में दोनों प्रकार के मन्त्री ब्राह्मण परामर्शदाता एवं सचिव मण्डल के सदस्य सम्मिलित हुआ करते थे।

रामायण युग में मंत्रिपरिषद् के अतिरिक्त दूसरी महत्त्वपूर्ण राजनीतिक संस्था सभा थी। रामायणकार ने सभा शब्द का प्रयोग 'सभा-भवन, न्यायालय, नागरिकों के बैठने का स्थान, राजसभा[6] आदि अर्थ में किया है। इस काल में सभा शासन का एक महत्त्वपूर्ण अंग थी, जिसके माध्यम से नागरिक राजकार्य में भाग लेते थे। सभा के सदस्यों को सभासद् कहकर पुकारा जाता था। सभासदों के लिए आर्य, भवन्त, भवद्भीह आदि सम्बोधनों का प्रयोग किया जाता था।

राजा, मंत्रिपरिषद् एवं सभा के अतिरिक्त राज्य के प्रशासन में तीर्थों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान था। रामायण के अनुसार इनकी

संख्या अठारह [7] थी। रामायण में इनके नामों एवं कार्यों का वर्णन नहीं किया गया है। टीकाकार के अनुसार ये अठारह तीर्थ इस प्रकार थे- मंत्री, पुरोहित, युवराज, सेनापति, द्वारपाल, अन्तर्वेशिक, कारागाराध्यक्ष, कोषाध्यक्ष, प्रदेष्टा, नगराध्यक्ष, कार्यनिर्माणकर्ता, धर्माध्यक्ष, सभाध्यक्ष, दण्डपाल, दुर्गपाल, राष्ट्र, सीमापाल तथा वनरक्षक।

रामायणकालीन व्यवस्था में जिस भाँति यम को ईश्वरीय न्यायकर्ता माना गया है उसी भाँति पृथ्वी पर राजा को सर्वोच्च दण्डधार स्वीकार किया गया है। सर्वोच्च न्यायपालक के रूप में राजा का यह कर्तव्य था कि वह दण्ड का प्रयोग करके मनुष्य की रक्षा करे। रामायण युग में न्याय की प्रक्रिया बहुत सूक्ष्म एवं सरल थी। न्याय कार्य बहुत शीघ्रता से सम्पन्न हुआ करता था। रामायण में कानूनी झगड़ों के लिए व्यवहार[8] शब्द का प्रयोग किया गया है। उत्तरकाण्ड में राम के न्यायालय के वर्णन से तथा अयोध्याकाण्ड के कुछ वर्णनों से उस युग में दण्ड प्रदान करने की प्रक्रिया की एक झलक मिलती है। जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि कार्यार्थी किसी भी दिन प्रात: काल दरबार में उपस्थित होकर अपनी समस्या राजा के सम्मुख रख सकता था। राजा उसी समय उसकी समस्या पर विचार करता था तथा सभासदों के परामर्श से अपना निर्णय देता था। अयोध्याकाण्ड में दिए गए वर्णन के अनुसार पहले राज्यकर्मचारी द्वारा अपराधी को हवालात (ग्रहिता) में बंद कर दिया जाता था। इसके पश्चात् अपराधी की खोजबीन की जाती थी, इस संबंध में अपराधी से पूछा जाता था तथा अन्य प्रमाण आदि एकत्रित किये जाते थे। यदि व्यक्ति अपराधी सिद्ध हो जाता था तो उसे दण्ड दिया जाता था।

रामायणकाल में शांति व्यवस्था बनाए रखने के लिए आजकल की भाँति पुलिस विभाग भी हुआ करता था। अयोध्या तथा लंका दोनों ही नगरों के वर्णन से यह बात स्पष्ट है कि सड़कों पर भी भीड़ को नियंत्रित करने के लिए तथा नगर में शांति एवं सुरक्षा बनाये रखने के लिए इनका प्रयोग किया जाता था।[9] शांति व्यवस्था बनाए रखने वाली साधारण पुलिस के अतिरिक्त गुप्तचर व्यवस्था का भी वर्णन रामायण में मिलता है। राजा लोग अपने राज्य तथा पड़ोसी राज्यों की गतिविधियों की जानकारी प्राप्त करने के लिए चर अथवा चारकों का प्रयोग करते थे। ये चर लोग सड़कों आदि पर नगर की सामान्य जनता के बीच घुलमिल जाते थे तथा चुपके से जाकर राजा को जनता के मध्य होने वाली बातचीत एवं गतिविधियों से अवगत कराते थे। विशेष अवसरों पर राजा लोग अपने मंत्रियों तक का प्रयोग इन कार्यों के लिए किया करते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि चरों का प्रयोग नागरिकों के साथ-साथ पड़ोसी राज्यों की सैन्य गतिविधियों की जानकारी प्राप्त करने के लिए भी किया जाता था।

रामायणकार द्वारा राजनय शब्द का तो नहीं किन्तु कूट शब्द प्रयोग अनेक स्थानों पर किया गया है। यह द्रष्टव्य है कि महाकाव्य में इसका प्रयोग निम्न अथवा धर्म-विरोधी क्रिया-कलापों के संदर्भ में ही किया गया है। आज हम जिसे राजनय अथवा कूटनीति कहते हैं, रामायण युग में उसे भी राजधर्म के अंतर्गत माना जाता था।[10] कूटनीति के रामायणीय सिद्धांत साम, दाम, दण्ड, भेद आदि आज भी कूटनीतिक क्रियाकलापों का आधार माने जाते हैं। व्यावहारिक क्षेत्र में कूटनीति को राजधर्म का अंग बनाकर रामायणीय लोगों ने लगभग इसी उद्देश्य को प्राप्त कर लिया था, उच्च आदर्शों से पूर्ण इस महाकाव्य की काव्यात्मक भाषा के अन्तर में भारतीय संस्कृति के एक महान युग के राजनीतिक संगठन एवं विचारों का भी एक अनमोल भण्डार स्थित है।

रामायणकार के अनुसार राजा को बलिषड् भाग प्राप्त करने का अधिकार था, किन्तु उसके बदले में उसका यह कर्त्तव्य था कि वह प्रजा को सुरक्षा प्रदान करे। अपने इस कर्त्तव्य को जो राजा पूर्ण नहीं करता था उसे पाप का भागी तथा उसके इस कार्य को अधर्मपूर्ण समझा जाता था। रामायण में यद्यपि ऐसे राजा के लिए किसी निश्चित दण्ड की व्यवस्था नहीं की गई है, किन्तु फिर भी स्पष्ट है कि एक अधर्मी एवं परम्परा विरूद्ध कार्य करने वाले शासक को प्रजा के कोप का भाजन होना पड़ता था।[11] रामायणकार ने स्पष्ट शब्दों में बताया है कि प्रजाजन को यह अधिकार है कि ऐसे राजा को त्याग दे। इससे स्पष्ट है कि रामायणकाल में यह भी माना जाता था कि प्रजा द्वारा दिया जाने वाला राजकर तथा राजा द्वारा प्रजा की रक्षा के निमित्त किये जाने वाले कार्यों में घनिष्ठ सम्बन्ध है। रामायण में कर की मात्रा के रूप में आय का छठा भाग तथा मुनियों की तपस्या का चौथा भाग प्राप्त करने का राजा को अधिकार था।[12] रामायण में आपातकालीन स्थिति में भी कर की मात्रा बढ़ाए जाने का कोई उदाहरण प्राप्त नहीं होता। रामायणीय राज्य की एक और विशेषता थी- केन्द्रीकृत एवं विकेन्द्रीकृत व्यवस्थाओं का समन्वय। एक ओर रामायण में प्राप्त उल्लेखों से लगता है कि तत्कालीन व्यवस्था का आधार केन्द्रीकरण था।[13] किन्तु आगे अध्याय 4 में दिए गए स्थानीय प्रशासनिक संस्थाओं के वर्णन से स्पष्ट है कि स्थानीय महत्त्व के कार्य इन्हीं संस्थाओं द्वारा सम्पादित किये जाते थे। किन्तु समन्वयीकरण की भारतीय प्रवृत्ति यहाँ भी दृष्टिगोचर होती है। विकेन्द्रीकरण का अर्थ स्थानीय

अनाचार अथवा मनमानी न हो जाय इसके लिए यह व्यवस्था थी कि कोई भी व्यक्ति अपनी फरियाद लेकर सीधे राजा के पास जा सकता था।[14]

राजा एवं राजतन्त्र संबंधी रामायणीय विचारों को यदि राजनीतिक दर्शन की दृष्टि से देखा जाये तो रामायणकार का उद्देश्य महाकाव्य के माध्यम से एक आदर्श समाज एवं आदर्श राजा का चित्र प्रस्तुत करना था। राजनीतिक दृष्टि से जिन विचारों का प्रस्फुटन वैदिक साहित्य में दृष्टिगोचर होता है, वह रामायण में विकसित होकर अर्थशास्त्रकार एवं शुक्रनीतिकार के हाथों में पहुँचकर अपने पूर्णरूपेण राजनीतिक कलेवर को प्राप्त हुए।

संदर्भः-

1. अयोध्या काण्ड - 3.8.12
2. बालकाण्ड - 4.8
3. अयोध्या काण्ड - 67.3
4. बालकाण्ड - 7.1-2
5. बालकाण्ड - 7.3
6. युद्धकाण्ड - 11.9 / उत्तरकाण्ड - 59.3
7. अयोध्याकाण्ड - 100.36
8. उत्तरकाण्ड - 59.3
9. सुन्दरकाण्ड - 4.14-16
10. किष्किंधाकाण्ड - 17.32
11. अयोध्याकाण्ड - 35.9-13
12. अरण्यकाण्ड - 6.11/6.14
13. किष्किंधाकाण्ड - 18.9
14. उत्तरकाण्ड - 59.5-7

ISSN 2278 - 0327

मूल-भारोपीय भाषा का स्रोत : वैदिक संस्कृत

राकेश शर्मा
शोधछात्र, संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

परिचय-

संस्कृत का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से विशेष महत्व तो रहा ही है किन्तु 18 वीं शताब्दी में जब संस्कृत का परिचय पाश्चात्य जगत् के विद्वानों के साथ हुआ तब इसका भाषाशास्त्रीय महत्व भी अत्यधिक बढ़ गया। पाश्चात्य भाषाशास्त्रियों ने जब संस्कृत व्याकरण व शब्दों की यूरोप की प्राचीन भाषाओं- ग्रीक एवं लैटिन आदि के साथ असामान्य एकरूपता देखी तो वे चकित रह गए। उन्हें एक नया प्रकाश मिल गया, जिसमें कि उन्होंने इस विशाल भूखण्ड (एशिया-यूरोप) की भाषाओं के बीच एक नवीन सम्बन्ध को देखा। इससे पूर्व इन यूरोपीय विद्वानों का विचार था कि यूरोप तथा एशिया की समस्त भाषाओं की उत्पत्ति 'हिब्रू' से हुई किन्तु संस्कृत के परिचय ने उनकी इस भ्रांत धारणा को दूर करके उन्हें एक नई दिशा दी व एक नया प्रकाश दिया। सर्वप्रथम यूरोपीय विद्वानों में सर विलियम जोन्स ने 1786 ई. में कलकत्ता में रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल के समक्ष अपना वक्तव्य प्रस्तुत किया था, यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है, क्योंकि इससे प्रेरित होकर सम्पूर्ण यूरोप में तुलनात्मक भाषाशास्त्र के अध्ययन की एक अभूतपूर्व लहर दौड़ गई थी, जिसके फलस्वरूप भाषाओं के विकास के इतिहास में एक अभूतपूर्व क्रान्ति आ गई। अनेक पुरानी आस्थाएं टूट गई तथा अनेक नवीन आस्थाएं बन गईं, अनेक नए सिद्धान्त स्थापित हो गये। उनके वक्तव्य का महत्त्वपूर्ण अंश इस प्रकार था : 'संस्कृत भाषा की प्राचीनता चाहे जो भी रही हो, पर अद्भुत है। यह ग्रीक से भी अधिक पूर्ण, लैटिन से भी अधिक समृद्ध एवं इन दोनों से भी अधिक परिष्कृत है। इतना होते हुए भी यह इन दोनों के साथ धातुओं तथा व्याकरण के रूपों की दृष्टि इतनी निकटता के साथ सम्बद्ध है कि इसे आकस्मिक नहीं कहा जा सकता। यह सम्बन्ध इतना दृढ़ है कि कोई भी भाषाशास्त्री इनका विवेचन यह माने बिना नहीं कर सकता कि इनका मूल स्रोत कोई एक है जो कि अब विद्यमान नहीं रहा। यद्यपि यह कारण इतना सशक्त नहीं, फिर भी कहा जा सकता है कि एक भिन्न मुहावरे में होने पर भी गॉथिक तथा केल्तिक दोनों ही संस्कृत के साथ समान, उत्पत्ति-स्रोत वाली हैं तथा प्राचीन फारसी को भी इसी परिवार के साथ जोड़ा जा सकता है। सर विलियम जोन्स ने अपने वक्त में जिस 'अविद्यमान मूल स्रोत' का संकेत किया था उसका पता लगाने के लिए यूरोप के अनेक भाषाविदों ने अपने-अपने क्षेत्र में खोज करना आरम्भ कर दिया जिसके फलस्वरूप इस स्रोत की स्थिति दिन प्रतिदिन स्पष्टतर होने लगी। इस दिशा में कार्य करने वालों में सर्वप्रथम फ्रांज बॉप (Franz Bopp) का नाम आता है, जिन्होंने 1816 ई. में संस्कृत, ग्रीक, लैटिन, फारसी तथा जर्मनिक भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन करके भाषाविदों के समक्ष- इनके समानान्तर रूपों को प्रस्तुत किया तथा इस दिशा में अन्य विद्वानों को कार्य करने के लिए विशेष प्रेरणा प्रदान की। पाश्चात्य विद्वानों ने तुलनात्मक अध्ययन से मूल भाषा की ध्वनि-प्रक्रिया एवं स्वरूप का भी अनुमान लगा लिया। किन्तु इन महत्त्वपूर्ण खाजों में संस्कृत का योग सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण रहा, क्योंकि संस्कृत ने जहाँ एक ओर भारत तथा यूरोप की प्राचीन भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन के लिए एक अभूतपूर्व प्रेरणा दी वहीं इसमें तथा अन्य सम्बन्धित भारोपीय भाषाओं में प्राप्त अद्भुत समानताओं ने ही इन विद्वानों को एक मूल भाषा तथा उससे उत्पन्न भाषाओं के लिए एक भाषा -परिवार की कल्पना को सुदृढ़ आधार प्रदान किया। इसके फलस्वरूप उस मूल भाषा की प्रकृति एवं स्वरूप का अनुमानाश्रयी पुनर्गठन सम्भव हो सका जिसे कि इन विद्वानों ने 'मूल भारोपीय' (PIE - Proto Indo European) का नाम दिया। इसके फलस्वरूप इस नवीन खोज के सम्बन्ध में डा. सुनीति कुमार चटर्जी का कथन है -'इस आद्य भारत यूरोपीय भाषा का और विशेषत: इसकी ध्वनियों और शब्दरूपों का पुनर्गठन गत सौ वर्षों में मानवीय बुद्धि की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धियों में से एक

है'।मानवीय बुद्धि की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धियों में से एक है।

यद्यपि मूल भारोपीय का उद्भव कब और कहाँ हुआ तथा वैदिक संस्कृत, अवेस्तन गाथा तथा होमरिक ग्रीक में उपलब्ध भाषायी रूपों को प्राप्त करने से पूर्व इसके विकास को दिशा व रूप क्या-क्या रहा तथा किस-किस प्रदेश में होकर ये लोग भारत तक पहुँचे- इन सब प्रश्नों का निश्चित उत्तर पा सकना कठिन है, किन्तु फिर भी, भाषाविदों ने प्राचीन भाषाओं के समान रूपों के आधार पर इन सभी प्रश्नों का अनुमानाश्रयी उत्तर प्रस्तुत करने का श्लाघनीय प्रयत्न किया ही है। संस्कृत के वीर, लैटिन के उईर (uir), जर्मन के वेर (wer) तथा प्राचीन आइरिश के फेर (fer) आदि समान रूपों के आधार पर भाषाविदों ने इस मूल भारोप रित किया है। बोलने वाली जन जाति का नाम वीरोस् (*wiros) 'मनुष्य' निर्धारित किया है। अन्य उदाहरण निम्नवत हैं-

1. PIE- अग्ग्रो, संस्कृत- अज्र (मैदान), ग्रीक- अग्रोस् 'खेत', लैटिन- अगेर् (ager), गॉथिक - अर्क्स् (akrs), जर्मन- एकर् (Acker), अंग्रेजी-ऍकर(acre)।
2. PIE- ?स्ति (है), संस्कृत- अस्ति, ग्रीक- ऍस्ति, लै.- एस्त, जर्मन- इस्त (ist), प्राचीन लिथु.- ऍस्ति, प्रा. स्लाव-येस्ति, रूसी- येस्त्य।
3. PIE - पोति (poti) 'स्वामी', सं.-पति, ग्रीक-पोसिस्, लिथु. पातिस् ,पत्स।
4. PIE - देक्म् (दस), सं- दश, अवे.- दस।
5. PIE- भ्रातोर (Bhrator) 'भाई', सं.- भ्रातृ, ग्रीक- फ्रातेर्, लै.-फ्रातेर्, गॉ.- ब्रोत्येर्, अंग्रेजी- ब्रदर, लिथु. ब्रोतेरेलिस्, प्रा. स्लाव- ब्रात्रि ।
6. PIE- मातेर, सं.- मातृ (मातर्), अवे. -मातर, ग्रीक- मातेर्, जर्मन- मुटर (mutter), अंग्रेजी- मदर (mother)।
7. PIE- पतेर, सं.- पितृ (पितर्), अवे.- पितर् (pitar), ग्रीक- पतेर्, जर्मन- फाटर (Vater), अंग्रेजी-फादर (Father)।
8. PIE- दुघतेर 'पुत्री', सं.-दुहितृ (दुहिता), अवे.- द्रुग्दा, ग्रीक-थुगातेर्, जर्मन- टॉखटर (Tochter), अंग्रेजी- डॉटर (daughter)।
9. PIE- वीरोस् (Viros), सं.- वीर, लिथु.-व्यिरस (Vyras), अंग्रेजी- वॉरियर (warrior)।

मूल-भारोपीय के पुनर्गठन में संस्कृत का योगदान :

भाषाविज्ञान के क्षेत्र में एक अभूतपूर्व उत्साह के साथ अनेक तुलनात्मक नवीन तथ्यों को सामने लाया गया तथा अनेक भाषायी उलझनों को सुलझाया गया। किन्तु इन सबकी जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण देन कही जा सकती है, वह है इन भाषाओं के एक मूल स्रोत की कल्पना। अन्ततः इस महान खोज का प्रमुख श्रेय संस्कृत को ही जाता है, क्योंकि संस्कृत के अध्ययन से पूर्व एक तो कभी ऐसे एक मूल की कल्पना सम्भव न हो सकी थी तथा दूसरे इस मूलरूप की प्रकृति को समझने तथा उसका पुनर्गठन करने में जो सहायता संस्कृत से मिली है, वह ग्रीक तथा लैटिन से भी अधिक महत्व की मानी जाती है। इसका स्पष्ट कारण यह है कि विश्व की भाषायी सामग्री का पुरातनतम रूप केवल वैदिक भाषा में ही सुरक्षित रह पाया है। इसलिए इस परिवार की भाषायी विशेषताओं का प्राचीनतम रूप इसी में देखा जा सकता है जो कि तत्कालीन विकास का प्रत्यक्ष रूप में तथा पूर्ववर्ती विकास की दिशा का अप्रत्यक्ष रूप में निर्देश कर सकता है। इस परिवार की अन्य भाषाओं के साथ इसकी तुलना करने तथा इस आधार पर पुनर्गठित इसके मूलरूपों से इसकी तुलना करने पर स्पष्ट हो जाता है कि इसमें ही मूल भारोपीय की ध्वनियों एवं संरचना का सबसे अधिक विश्वसनीय रूप में संरक्षण हो पाया है। इसलिए मूल भारोपीय के पुनर्गठन में संस्कृत का महत्त्व स्वयं सिद्ध है। संस्कृत के अतिरिक्त विश्व की और किसी भाषा में स्पर्श व्यंजनों के पाँच वर्ग (क,च,ट,त,प) तथा चार श्रेणियाँ अघोष, घोष, अल्पप्राण, महाप्राण नहीं पायी जातीं।

'मूल-भारोपीय भाषा' के खण्डन में तर्क :

मूल-भरोपीय भाषा के विषय में डा. रामबिलास शर्मा ने निम्नलिखित विचार प्रकट किया है- 'तथाकथित भारत-यूरोपीय परिवार की संस्कृत-लैटिन-ग्रीक-स्लाव आदि भाषाएं स्वतंत्र कूलों की भाषाएँ हैं। इनमें जो सामान्य तत्व मिलते हैं, उनका आधार इन भाषाओं या इनसे मिलती जुलती भाषाओं में बोलने वालों का परस्पर संपर्क है, न कि एक आदि भाषा से जन्म। इस प्रकार संस्कृत आदि-भारत-यूरोपीय भाषा का उच्छिष्ट और विकृत रूप न होकर स्वतंत्र भारतीय भाषा सिद्ध होती है। यूरोप की भाषाओं पर संस्कृत और उसके समानांतर बोली जाने वाली भाषाओं का असर पड़ा है, न कि किसी कल्पित आद्य आर्यभाषा से अनार्य संपर्क के कारण संस्कृत की उत्पत्ति हुई है'। प्रो. डी. डी. शर्मा जी प्राग्वैदिक संस्कृत को ही भारोपीय भाषाओं का मूल मानते हैं तथा इनका प्रसार भारतीय मूल से ही मानते हैं और

भाषिक प्रमाण भी प्रस्तुत करते हैं- कल्पित मूल भारोपीयवादियों की मान्यता है कि लिथुआनियाँ की पुरातन भाषा का रूप संस्कृत की अपेक्षा अधिक प्राचीन है। इसी कारण उसमें मूल भाषा के रूप भी अधिक सुरक्षित पाये जाते हैं। इसका अभिप्रेत अर्थ यह हुआ कि संस्कृत का जन्म तथा पोषण इसी क्षेत्र में हुआ। संस्कृत क्योंकि आर्यों की भाषा थी अत: आर्यों का मूल स्थान भी यही कहीं होना चाहिए, किन्तु भाषिक तथ्य इसके विपरीत दिशा में निर्देश करते हैं। उदाहरणार्थ- लिथु. तथा स्लाव वर्ग की अन्य भाषाओं में मूल भारो. के पुनर्गठित विभक्तिप्रत्यय भ्यस् में भ् के स्थान पर म् पाया जाता है, यथा सं. वृकेभ्य: =लिथु. विल्कम्स् = स्लाव ब्लुकोमु= प्रा.ज. वुल्फम् यहाँ पर इन रूपों के प्रकाश में एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि यदि आर्यों का आदि स्थान यही बाल्तिक प्रदेश था तथा संस्कृत का उद्भव भी यहीं हुआ था और आर्य लोग यहां से भारत में आये थे तो क्या ये लोग, जो कि मूल भारो. भ्यस् को म्स् बोलने लगे थे, अपने इस उच्चारण को अपने यात्राकाल में भूल गये और भारत में पहुँचने पर उन्हें ये अपना वह मूल उच्चारण पुन: स्मरण हो आया जिसे वे हजारों साल पहले अपने मूल स्थान में बोलते थे ? ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के विद्वान् जब अपनी यादि इंडोयूरोपियन भाषा के ध्वनितन्त्र में ख-थ-फ के अस्तित्व पर विचार करते हैं, तो स्वभवत: संशय में पड़ जाते हैं। उन्हें इस बात का पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता कि उस आादि भाषा में इनका व्यवहार होता था। संस्कृत की शब्द-राशि सामने होने से यह भी दृढ़तापूर्वक नहीं कह सकते कि आदि भाषा में इनका व्यवहार होता ही नहीं था। भारत के समग्र भाषायी परिवेश को ध्यान में रखते हुए, आर्य और नाग भाषा परिवारों के परस्पर सम्पर्क पर विचार करने से सम्भव है, इस समस्या का समाधान मिल जाय।

निष्कर्ष-

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि वैदिक संस्कृत ही आदि भारोपीय भाषा का मूल स्रोत है। इस मूल स्रोत के सम्बन्ध में पाश्चात्य भाषाविदों के साथ सहमति न रखते हुए भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि प्रागैतिहासिक युग में ऐसा कोई एक मूल स्रोत अवश्य था, उसे चाहे प्राग्वैदिक संस्कृत अथवा मूल संस्कृत कहा जाय अथवा भाषाविदों द्वारा कल्पित मूल भारोपीय देश-कालगत तथा विजातीय भाषाओं के संपर्कों से उद्भूत विभिन्न प्रकार के ध्वन्यात्मक परिवर्तन के बावजूद भी इनमें कतिपय ऐसी मूलभूत विशेषताएँ अवशिष्ट रह गयी हैं जो कि इन सबका किसी एक ही मूल से विकसित होने का विस्पष्ट निर्देश करती है। इन्हीं सूत्रों को पकड़ कर ही तो भाषाविदों ने उस मूल रूप की संकल्पना एवं पुनर्गठन किया है जिसे 'भारोपीय मूल' के नाम से अभिहित किया है, यद्यपि उन्होंने उस मूल रूप तक पहुँचने के लिए सीधा रास्ता अपनाने की अपेक्षा घुमावदार रास्ता अपनाया। भारोपीय भाषा का मूल प्राग्वैदिक संस्कृत ही है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. शर्मा, रामविलास. भाषा और समाज. पांचवां संस्करण, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2014 ई.
2. वर्मा, श्री रामदत्त. सब भाषाओं की जननी-वैदिक संस्कृत. प्रथम संस्करण, दिल्ली, बाबा साहेब आप्टे स्मृति समिति, 2001 ई.
3. चाटुर्ज्या, डॉ. सुनीतिकुमार. भारतीय-आर्य भाषा और हिन्दी. पंचम संस्करण, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 1989 ई.
4. शर्मा, रामविलास. भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी-द्वितीय खण्ड, प्रथम संस्करण, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 1980 ई.
5. शर्मा, डॉ. देवीदत्त. संस्कृत का ऐतिहासिक एवं संरचनात्मक परिचय. प्रथम संस्करण, चण्डीगढ़, हरियाणा हिन्दी ग्रंथ अकादमी, 1974 ई.
6. शर्मा, डॉ. देवीदत्त. संस्कृतभाषा का इतिहास. द्वितीय संस्करण, वाराणसी, चौखम्बा विद्याभवन, 2006 ई.

ISSN 2278 - 0327

शिक्षा के रचनात्मक परिप्रेक्ष्य में फ्लिप कक्षा सन्दर्भित अधिगम अन्तराल की उपादेयता

अमिता कुमारी
शोधकर्त्री, शिक्षा संकाय
वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

डॉ. विनीता सिंह गोपालकृष्णन्
एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षा संकाय
वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

सारांश

समाज की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए आधुनिक शिक्षा में निरन्तर परिवर्तन हो रहे हैं। इन्ही परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में भी शिक्षार्थियों के अनुरूप विज्ञान तथा तकनीकी की सहायता से परिवर्तन किये जा रहें हैं। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में तकनीकी का उपयोग आधुनिक युग की ज्ञानार्जन प्रक्रिया का एक अनिवार्य अंग है। इसके माध्यम से पाठ्यसामग्री को शिक्षार्थियों की व्यक्तिगत भिन्नता के अनुरूप विविध विकल्पों से सुसमृद्ध कर, शिक्षण-अधिगम को अधिक से अधिक रोचक तथा संसाधन सम्पन्न बनाना संभव हुआ है। यह अधिगम उपागम शिक्षार्थी को स्व-अधिगम द्वारा समस्या समाधान आधारित ज्ञान के निर्माण के लिए प्रोत्साहित करती है। अधिगमकर्ता केन्द्रित शिक्षण में अधिगम अंतराल एक प्रमुख स्थान रखता है। शिक्षार्थी अधिगम अंतराल द्वारा नये अधिगम वातावरण में अपनी आवश्यकताओं तथा इच्छाओं को पूरा करते है। समय के साथ इन्हीं भिन्न आयामों में तकनीकी क्षेत्र से संबंधित फ्लिप कक्षा प्रारूप सामने आया, जिसमें शिक्षार्थी कक्षा में तथा कक्षा के बाहर अपने अनुसार कार्यों को तकनीकी की सहायता से कर सकतें हैं। इस प्रपत्र में अधिगम अंतराल की सम्प्रत्यात्मक पृष्ठभूमि, कक्षा में तथा कक्षा के बाहर तकनीकी के अनुप्रयोग तथा शोध अध्ययनों के आ़लोक में फ्लिप कक्षा व अधिगम अंतराल के प्रयोग व उपादेयता पर चर्चा की गई है।

शब्दावली-अधिगम अंतराल, फ्लिप कक्षा, तकनीकी, स्व-अधिगम।

प्रस्तावना

अधिगम एक मुख्य क्रिया बिन्दु है, जिसे सुचारू रूप से पूर्ण तथा संचालित अधिगम सिद्धान्त द्वारा किया जाता है। जिसके माध्यम से शिक्षार्थी अधिगम के दौरान ज्ञान का आत्मसातीकरण कर स्मृति को अधिक संयोजित कर पाते हैं। शिक्षार्थी संज्ञानात्मक, भावात्मक तथा वातावरण संबंधी प्रभाव के साथ अपने पूर्व अनुभव की क्रियाविधि को समझ पाते है। इक्कीसवीं शताब्दी में शिक्षण तथा अधिगम का स्थानातंरण रचनात्मक परिप्रेक्ष्य में हो गया है, ज्ञान का स्थानांतरण बहुविध रूप से होने के कारण परम्परागत अधिगम के स्थान पर रचनात्मक अधिगम समस्या-समाधान आधारित हुई है। यह अधिगम उपागम शिक्षार्थी को समस्या समाधान आधारित ज्ञान के निर्माण के लिए प्रोत्साहित करती है। जहाँ अधिगमकर्ता स्वयं ज्ञान का निर्माण अपने समझ, नई सूचना तथा निपुणता के साथ करते है। अधिगमकर्ता केन्द्रित शिक्षण में अधिगम अंतराल एक प्रमुख स्थान रखता है। जिसे सूचना तकनीकी द्वारा अधिक से अधिक रोचक तथा संसाधन सम्पन्न बनाना संभव हुआ है। अधिगम अंतराल अधिगमकर्ता केन्द्रित शिक्षण में प्रमुख भूमिका रखती है।

अधिगम अंतराल की सम्प्रत्यात्मक पृष्ठभूमि

वर्तमान अधिगम कृत सामाजिक परिदृश्य में अधिगम अंतराल परम्परागत कक्षा प्रारूप परिवेश के रूप में एक तर्कयोक्ति अंतराल है। जहाँ अधिगमकर्ता स्वयं ज्ञान का निर्माण अपने समझ, नई सूचना तथा निपुर्णता के साथ करते है। इस अंतराल के दौरान शिक्षार्थी रचना, विश्लेषण, आलोचना, वाद-विवाद, वर्गीकरण कर अधिगम प्रक्रिया को क्रियाशील बनाते है, तथा शिक्षक शिक्षार्थी विविध रूप से अपने विस्तृत आवश्यकताओं से परिचित हो पाते हैं। अधिगम परिप्रेक्ष्य से सम्बन्धित अधिगम अंतराल में भौतिक अंतराल अधिगमकर्ता के अनुसार फर्नीचर की ऊँचाई, प्रकाश, स्थान की पहुँच के अनुसार स्पष्ट अधिगम उद्देश्य को प्राप्त करने में सहायक हैं। लचीला अंतराल के अन्तर्गत अधिगमकर्ता

अपने अनुसार स्वतंत्र रूप से पारस्परिक क्रिया कर सकते हैं। वे अपने अनुभव तथा विचार को वैयक्तिक या सामूहिक रूप से प्रदर्शित करने की स्वतंत्रता रख सकते हैं। इस विविधता के विकास से शिक्षार्थी कक्षा मे तथा कक्षा के बाहर अधिगम तथा अन्वेषण करने में सहायक होते हैं। प्रेरक अंतराल के अन्तर्गत उद्दीपन आधारित कार्य किये जाते है। यह वातावरण रचनात्मक विकास, अन्वेषण, तथा जीवन के अनुभव के अनुसार अभिप्रेरित होकर कार्य करने में सहायक होती है।

अधिगम अंतराल अधिगमकर्ता केन्द्रित तथा स्व-अधिगम की आवश्यकता को वरीयता देती है। इस तरह अधिगम अंतराल का क्षेत्र विस्तृत है, क्योंकि यह हर प्रकार से स्व-अधिगम को प्रोत्साहित करने में सहायक है। अधिगम अंतराल क्योंकि स्व-अधिगम सम्बन्धित अंतराल है, अत: इसे कई कारक प्रभावित कर सकते है। शिक्षार्थी आपस में रचनात्मक/क्रियाशील कार्य द्वारा एक-दूसरे को अधिगम के लिये प्रभावित करने के योग्य बनते हैं। यह अधिगम के परम्परागत कक्षा प्रारूप से बिल्कुल भिन्न है। अधिगम अंतराल आगामी अधिगम के विभिन्न दृष्टिकोण को अपनाने की एक शैली है। अधिगम अंतराल अधिगमकर्ता को अभिप्रेरित तथा अधिगम को एक गतिविधि के रूप में कार्यान्वित करता है।

अधिगम अंतराल प्रत्येक अध्येता को अद्वितीय अधिगम जरुरतें तथा प्रभावी अधिगम के लिए सकारात्मक मानवीय संबंध के अनुरूप बनाने में सहायक होते है। यह शिक्षार्थी को रचनात्मक क्रियाविधि तथा उनके अंत:क्रिया को करने के लिए प्रेरित करती है। यह उद्देश्यपूर्ण अवसर का निरूपण करती है, जो अधिगम को अधिक प्रभावशाली बनाती है। सूचना तकनीकी के अनुप्रयोग द्वारा अधिगम अंतराल नये अधिगम परिप्रेक्ष्य में उपयुक्त शिक्षार्थियों की आवश्यकताओं तथा इच्छाओं को पूरा करने में सक्षम हैं। अधिगम अंतराल शिक्षार्थियों को प्रेरित करने तथा अधिगम गतिविधियों को बढ़ावा देने, सहभागितापूर्ण तथा औपचारिक अभ्यास का समर्थन करने, व्यक्तिगत तथा समावेशी वातावरण प्रदान करने तथा परिवर्तनीय जरुरतों के अनुसार बदलने पर जोर देती है।

कक्षा में तथा कक्षा के बाहर तकनीकी के अनुप्रयोग

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में तकनीकी का उपयोग आधुनिक युग की ज्ञानार्जन प्रक्रिया का एक अनिवार्य अंग है। इसके माध्यम से पाठ्य-सामग्री को शिक्षार्थियों की व्यक्तिगत भिन्नता के अनुरूप विविध विकल्पों से सुसमृद्ध कर शिक्षण को अधिक रोचक तथा संसाधन संपन्न बनाना संभव हुआ है। ऑनलाइन अधिगम सामग्री का प्रयोग वर्तमान तकनीकी की देन है। इससे शिक्षार्थियों में स्व-अधिगम, अन्वेषणात्मक प्रवृति तथा बेहतर सामग्री के चयन करने की योग्यता विकसित होती है। इसके साथ ही विशिष्ठ बालकों के संदर्भ में भी तकनीकी के द्वारा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया सरल रोचक एंव शीघ्र फलप्रद होती है। सूचना तकनीकी की उपलब्धता ने शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को अधिगमकर्ता के अनुकूल कक्षा में तथा कक्षा के बाहर उनकी आवश्यकता के अनुरूप उपलब्ध करवाया है।

वर्तमान समय में शिक्षार्थी स्वतंत्र रूप से अपने अनुसार अधिगम करना पसंद करते है। तकनीकी द्वारा उन्हें यह सुविधा मिलती है, कि वह अपने समय, पहुँच के अनुसार सूचना को ग्रहित कर सकें। तकनीकी शिक्षा में शिक्षार्थी कभी भी, कितनी भी, कैसी भी सूचना जब चाहे तब प्राप्त कर सकते हैं। यह विभिन्न विषय सूची के अनुसार शिक्षण व्यवस्था को पूरी तरह स्थानांतरित कर पारस्परिक संरचित अध्यापन प्रारूप को लाने में सहायक होती है। इस पारस्परिक संरचित अध्यापन प्रारूप का उदाहरण फ्लिप कक्षा के रूप में सामने आया है। यह व्यवस्था परम्परागत शिक्षण में परिवर्तन कर अधिगम को प्रभावशाली बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

फ्लिप कक्षा तथा अधिगम अंतराल के प्रयोग व उपादेयता

वर्तमान समय में शिक्षार्थियों का रचनात्मक तथा तकनीकी के प्रति बढ़ते झुकाव ने, शिक्षार्थी शिक्षक व शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को क्रियाशील बनाने के लिए फ्लिप कक्षा, एक विकल्प के रूप हैं। फ्लिप कक्षा परम्परागत शिक्षण विधि के विपरीत एक रणनीति है, जिसका उपयोग शिक्षण की क्षमता को प्रभावशाली तथा गुणकारी बनाने के लिए किया जाता है। यह शिक्षण विधि शिक्षार्थियों को अन्य ऑनलाइन विधि की तरह पढने की स्वतंत्रता देती है परन्तु साथ ही एकत्रित सूचना को संरचित करने का अवसर देती है। सर्वप्रथम किंग, एलिसन (1993)[1] ने फ्लिप कक्षा के सम्प्रत्यय को विकसित किया। इसमें कक्षा समय का उपयोग ऑनलाइन अधिगम सम्बन्धित क्रियात्मक कार्य के लिए किया जाता है। क्रियात्मक कार्य के अंतर्गत शिक्षार्थी कक्षा के बाहर, ऑनलाइन अधिगम सामग्री (विडियो, लेक्चर, वेबसाइट्स, डी.वी.डी.) द्वारा अधिगम करते हैं तथा कक्षा कक्ष में समूह सहभागिता, योजना आधारित अधिगम, समस्या समाधान करते हैं। फ्लिप कक्षा विधि द्वारा शिक्षार्थियों के अन्दर विस्तृत गहनता, तार्किक चिन्तन तथा सृजनात्मकता का विकास संभव है। यह

स्व-अधिगम के लिए शिक्षार्थियों को अभिप्रेरित करता है, जैसा कि चित्र 1 में वर्णित है।

मानव संवादात्मक आवश्यक कम्प्यूटर तकनीकी द्वारा स्वचालित



चित्र 1: फ्लिप कक्षा (विशप,जे.एल. एंव वर्गलर 2013)[2]

जैसा कि चित्र में दर्शाया गया है इसके समर्थन में हावर्ड प्रोफेसर मैजूर एरिक (1997)[3] ने फ्लिप शिक्षण के विकास के लिए अनुदेशन रणनीति अपनाई जिसे साथी अनुदेशन (Peer Instruction) नाम दिया गया। इन्होंने अपनी पुस्तक ''आउटलाइनिंग द स्ट्रेटजी इनटेल्ड पियर इन्स्ट्रक्शन'' में बताया है कि शिक्षार्थी शिक्षक द्वारा दिये गये व्याख्यान पर निर्भर रहने के स्थान पर स्व-अधिगम तथा साथी अधिगम के द्वारा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को प्रभावी बना सकते हैं। फ्लिप कक्षा स्व-अध्ययन को प्रेरित करता है, परन्तु बाद में कक्षा में योजना आधारित अध्ययन या समस्या समाधान विधि द्वारा नियंत्रित भी करता है। अत: यह शिक्षण विधि शिक्षा में एक बदलाव को दर्शाती है। अधिगम अंतराल फ्लिप कक्षा के माध्यम से शिक्षार्थियों के अधिगम को सुदृढ़ीकृत करता है। शिक्षार्थी अपने अनुसार स्वतंत्र रूप में अधिगम कर पाते हैं। समय की बाध्यता, अधिगम सामग्री की उपल्बधता, कक्षा-कक्ष की आवश्यकता से पड़े, फ्लिप कक्षा तथा अधिगम अंतराल शिक्षार्थियों के इन सभी समस्याओं के समाधान के विकल्प के रूप में सामने आया है। जिसके द्वारा परम्परागत कक्षा शिक्षण को रचनात्मक रूप प्रदान कर शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को प्रभावी बनाया जा सकता है।

शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को प्रभावी बनाने में फ्लिप कक्षा तथा अधिगम अंतराल की उपादेयता से सम्बन्धित अनेकों अध्ययन अलग-अलग रूप में किये गये हैं, इसमें **सजपैरागोवस्की, राइमण्ड.**(2018)[4], अध्ययन शीर्षक ''द इफेक्टिवनेस ऑफ फ्लिप क्लासरूम'' में कॉलेज के शिक्षार्थियों के अधिगम पर फ्लिप कक्षा के प्रभाव को देखा गया। सर्वेक्षण विधि के प्रयोग द्वारा यह पाया गया कि शिक्षा के स्तर को फ्लिप कक्षा द्वारा कुछ आंशिक लाभ है। जिसे शिक्षक द्वारा अनदेखी किया जाता है। **कैको,एम.**(2016)[5], अध्ययन ''टीचर एक्सपीरियेन्स विद फ्लिप क्लासरूम इन सैकण्डरी साइंस'', के अध्ययन में माध्यमिक स्कूल के शिक्षकों का विज्ञान फ्लिप कक्षा के प्रति अवधारणा ली गई। इस अध्ययन में सर्वेक्षण विधि के उपयोग के फलस्वरूप पाया गया कि फ्लिप कक्षा शिक्षार्थी के विज्ञान अधिगम की क्षमता को समुन्नत करने में सहायक है। **मुरे,डी., कोजिनिएक,टी. तथा मैकगिल,टी.जे.**(2015)[6], अध्ययन ''स्टूडेन्ट परसेपशन्स ऑन फ्लिप लर्निंग'' में कॉलेज के शिक्षार्थियों का फ्लिप अधिगम के प्रति अवधारणा का पता लगाना था। सर्वेक्षण विधि के प्रयोग के उपरान्त निष्कर्ष स्वरूप पाया गया कि फ्लिप अधिगम के प्रति शिक्षार्थियों की सकारात्मक अभिवृत्ति है। **क्लार्क,आर. के. तथा फॉल्स, वी.**(2015)[7], के ''द इफेक्ट ऑफ द फ्लिप मॉडल ऑफ इन्स्ट्रक्शन ऑन स्टूडेन्ट इंगेजमेंट एण्ड परफोरमेन्स इन द सैकण्डरी मेथेमेटिक्स क्लासरूम'', अध्ययन में स्कूल के शिक्षार्थियों की फ्लिप कक्षा तथा परम्परागत कक्षा के अन्त:क्रिया की तुलना करना तथा फ्लिप प्रारूप अनुदेशन के द्वारा माध्यमिक स्तर के गणित शिक्षार्थियों की उपलब्धि जाँच की गई। सर्वेक्षण विधि को प्रयुक्त कर निष्कर्ष स्वरूप पाया गया कि परम्परागत कक्षा अनुभव की तुलना में फ्लिप प्रारूप अनुदेशन तथा अनुभव के द्वारा उनके अन्त:क्रिया तथा समप्रेषण में वृद्धि होती है। **जॉनसन, डब्ल्यू.,एल. तथा रेनर,डी.,जे.**(2012)[8],''इफेक्ट ऑफ द फ्लिप क्लासरूम मॉडल ऑन अ सैण्डरी कम्प्यूटर एप्लीकेशन कोर्सरू स्टुडेन्ट्स एण्ड टीचर परसेपशन्स क्रेशचन एण्ड स्टूडेन्ट अचीवमेन्ट'' पर अध्ययन किया। इस अध्ययन में फ्लिप तथा परम्परागत कोर्स वितरण विधि के प्रभाव की जाँच की। सर्वेक्षण विधि तथा निष्कर्ष स्वरूप पाया गया कि फ्लिप तथा परम्परागत कोर्स वितरण में सार्थक अन्तर है जो शिक्षार्थी उपलब्धि को प्रभावित करता है।

दूसरी ओर अधिगम अंतराल सम्बन्धित अध्ययनों के अंर्तगत **एडेडोकुन, ओ.ए., पार्कर, एल.सी., हेनके,जे.एन. तथा बर्गेस, डब्लू.डी.** (2017)[9], ने शीर्षक ''स्टुडेंट परसेपसन ऑफ अ ट्वन्टीफर्स्ट सेन्चुअरी लर्निंग स्पेस'' पर अध्ययन किया जिसमें शिक्षार्थी के नरम अधिगम अंतराल अवधारणा पर शिक्षार्थी अधिगम तथा पारस्परिक क्रिया को परम्परागत कक्षा में देखा गया। सर्वेक्षण विधि के प्रयोग द्वारा निष्कर्ष स्वरूप पाया गया कि लोचनीय अंतराल कक्षा पारस्परिक क्रिया के द्वारा शिक्षार्थी के अधिगम अनुभव को बढ़ाता है। **बेकर्स,आर.आर.**(2016)[10], अध्ययन शीर्षक ''हाईयर एज्यूकेशन लर्निंग स्पेस डिजाइन फोर्म फोलॉज फंक्शन'' का उद्देश्य उच्च शिक्षा शिक्षार्थियों के वैयक्तिक अध्ययन क्रियाविधि के लिए एकाग्रता की जरुरत तथा सहयोगपूर्ण अध्ययन

गतिविधियों के लिए सम्प्रेषण की जरुरत के लिए अधिगम अंतराल को वरीयता देना था। इसके लिए स्वप्रशासित प्रश्नावली का प्रयोग किया गया निष्कर्ष स्वरूप पाया गया कि शिक्षार्थियों ने अधिगम अंतराल को महत्त्वपूर्ण पाया। उनकी अवधारणा थी कि विशेष अधिगम उनके वैयक्तिक तथा सहयोगपूर्ण अध्ययन क्रियाविधि के परिणाम में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। **इलिस, आर. ए.तथा गुडईयर, पी.** (2016)[11], के अध्ययन का शीर्षक ''मॉडल्स ऑफलर्निंग स्पेस इन्टीग्रेटींग टीचर्स ऑन स्पेस, प्लेस एण्ड लर्निंग इन हाईर एज्यूकेशन'', पर अध्ययन किया जिसका उद्देश्य विश्वविद्यालय अधिगम अंतराल तथा शिक्षार्थी अधिगम क्रियाविधि के बीच समझ संयोजन को देखना था। सर्वेक्षण विधि के प्रयोग द्वारा निष्कर्ष स्वरूप पाया गया कि शिक्षार्थी अधिगम क्रियाविधि तथा विश्वविद्यालय अधिगम अंतराल के सकारात्मक प्रभाव देखे गए। शिक्षार्थियों के समक्ष संयोजन में वृद्धि देखी गई। **ओ-नेल,एम.** (2009)[12],''रिसर्च केस स्टडी डिजाइन फोर लर्निंग स्पेस इन हाईयर एज्यूकेशन'', अध्ययन में स्कूल प्रशासन के साथ कक्षा अंतराल का मूल्यांकन, तकनीकि तथा व्यवस्था जैसे कारक (शिक्षक तथा शिक्षार्थी के परिपेक्ष्य में) शिक्षण तथा अधिगम को कैसे प्रभावित करते हैं को देखा। इस अध्ययन में कक्षा प्रारूप तथा तकनीकि मूल्यांकन विधि का उपयोग यांत्रिकी सर्वेक्षण प्रतिक्रिया द्वारा विभिन्न विषय पर किया गया। निष्कर्ष स्वरूप पाया गया कि शिक्षण की गुणवत्ता तथा शिक्षण तथा शिक्षार्थी की शैक्षिक अनुभव कक्षा अंतराल की लोचनीयता पर अधिक निर्भर करती है। **नील, एस. एंव एथ्रिज, आर.**(2008)[13],ने ''फ्लेक्जीबल लर्निंग स्पेस द इन्टीग्रेशन ऑफपेडागॉजी, फिजिकल डिजाइन तथा इन्स्ट्रक्शनल टेक्नोलॉजी'', अध्ययन में सुझाव दिया कि सहायक शिक्षण शास्त्र नवाचार, प्रशिक्षक के भौतिक अंतराल पुनर्परीक्षण में सहायक होते हैं। इस अध्ययन में लोचनीय अधिगम अंतराल के द्वारा कक्षा को पुन: प्रारूपित कक्षा के सहायक कारक (शिक्षण शास्त्र, उपागम तथा अधिगम अनुभव) द्वारा किया गया जा सकता है। नये रूप से प्रस्तावित कक्षा में शिक्षार्थी सक्रियता, सहभागिता, लोचनीयता तथा अधिगम में वृद्धि होती है। लोचनीय अधिगम अंतराल उपयोगी है। परम्परागत कक्षा की तुलना में नवाचार उपागम शिक्षण अधिगम के लिए उपयोगी है। **मेयर, पी.**(2007)[14], शीर्षक''इम्प्रोविजिंग लर्निंग स्पेसरू मैकिंग रूम फोर डिफरेन्स एण्ड ट्रासफारमेशन'', अध्ययन में विभिन्न अधिगम अंतराल के लिए कक्षा प्रारूप का निर्माण तथा इसके परिणाम को देखना था। साक्षात्कार विधि के प्रयोग द्वारा निष्कर्ष स्वरूप पाया गया कि शैक्षिक स्तर पर विभिन्न प्रकार से सुधार लाया जा सकता है। लेकिन वैयक्तिक रूप से उनके सुधारात्मक कौशल, सम्प्रत्ययात्मक समझ तथा स्थानांतरित अनुभव नहीं विकसित हो पाते हैं।

निष्कर्ष

उपरोक्त परिवर्तनों के आधार पर शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में शिक्षण अधिगम विधि ऐसी होनी चाहिए जिसमें शिक्षार्थियों को ना केवल स्वयं करके सीखने का, बल्कि अपने अर्जित ज्ञान को उपयोग करने का भी पर्याप्त मौका मिले। ताकि उनका प्र्याप्त ज्ञान स्थायी प्रकृति का हो एवं शिक्षार्थी स्वयं अपने ज्ञान का सृजन करें। हमारे शिक्षाशास्त्रियों द्वारा भी इस प्रकार के मौजूदा सम्प्रत्यय के उपर चर्चा की गई है। उन्होंने कर के सीखना विधि, समस्या समाधान विधि, ह्यूरिस्टिक विधि के बारे में बात की थी जिसमें अंतर इतना है कि तभी तकनीकी की अनुपलब्धता थी और आज इसका उपयोग कर उसी पुरानी पद्धति का कार्यान्वयन किया जा रहा है। वर्तमान समय में शिक्षार्थियों का स्वअधिगम तथा ऑनलाइन अधिगम के प्रति बढ़ते रूझान को देखते हुए फ्लिप कक्षा तथा अधिगम अंतराल जैसी रणनितियों को तकनीकी द्वारा अपनाकर कक्षा में तथा कक्षा के बाहर शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को प्रभावी बनाया जा सकता है। फ्लिप कक्षा तथा अधिगम अंतराल कक्षा के बाहर अधिगम की स्वतंत्रता प्रदान करती है तथा उस अधिगम से प्राप्त सूचना को कक्षा में नियंत्रित करती है। इस तरह अधिगम अंतराल, शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को रचनात्मक दृष्टिकोण प्रदान करने तथा शिक्षार्थी अधिगम क्रियाविधि के बीच समझ एवं संयोजन विकसित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है जो शिक्षा के रचनात्मक परिप्रेक्ष्य में फ्लिप कक्षा सन्दर्भित अधिगम अन्तराल की उपादेयता को सिद्ध करती है।

संदर्भसूची

1. किंग,एलिसन,(1993). सैग ऑन द स्टेज.टू गाइड ऑन इ साइड. कॉलेज टीचिंग. वाल्यूम 41, न.1,पृष्ठसंख्या 30-35 https://faculty.washington.edu/kate1/ewExternalFiles/SageOnTheStage.pdf
2. विशप,जे.एल. एंव वर्गलर. (2013).द फ्लिप क्लासरूम: अ सर्वे ऑफ द रिसर्च पेपर प्रजेन्टेड एट द अमेरिकन सोसाइटी फॉर इंजिनियरिंग एजुकेशन, अटलांटा, जी.ए. https://www.asee.org/public/conferences/20/papers/6219/download

3. मैजूर, एरिक (1997). पियर इन्सट्रक्सन : अ यूजर्स मैनुअल सीरिज इन एजुकेशनल इनोवेशन. प्रेन्टीस हॉल, अपर सैडल रीवर, एन. जे.
https://mazur.harvard.edu/publications/peer-instruction-users-manual
4. सजपैरागेवस्की, राईमण्ड. (2018). द इफेक्टीवनेस ऑफ फ्लिप क्लासरूम,वॉवलिंग ग्रीनस्टेट यूनिवर्सिटी स्कॉलर वर्कस एट द रेट वी.जी.एस.यू.
https://scholarworks.bgsu.edu/cgi/viewcontent.cgi?article=1118&context=honorsprojects
5. कैको,एम.(2016). टीचर एक्सपीरियेन्स विथ फ्लिप क्लासरूम इन सैकेण्डरी साइंस
https://tspace.library.utoronto.ca/bitstream/1807/72159/1/Caicco_Matthew_J_201606_ MT_MTRP.pdf
6. मुरे,डी., कोजिनिएक,टी. व मैकगिल,टी.जे.(2015). स्टूडेन्ट परसेपस्नस ऑफ फ्लिप लर्निंग.
https://crpit.scem.westernsydney.edu.au/confpapers/CRPITV160Murray.pdf
7. क्लार्क, आर. के.,तथा फॉल्स, वी. (2015) . द इफैक्ट ऑफ द फ्लिप मॉडल ऑफ इन्स्ट्रक्शन ऑन स्टूडेंट इंगेजमेंट एण्ड परफोरमेन्स इन द सैकण्डरी मेथेमेटिक्स क्लासरूम.
http://files.eric.ed.gov/fulltext/EJ1051042.pdf
8. जॉनसन, डब्ल्यू. ,एल. तथा रेनर, डी. ,जे.(2012). इफेक्ट ऑफ द फ्लिप क्लासरूम मॉडल ऑन अ सैण्डरी कम्प्यूटर एप्लीकेशन कोर्सरू स्टुडेन्ट्स एण्ड टीचर परसेपशन्स क्रेशचन एण्ड स्टूडेन्ट अचीवमेन्ट. अप्रकाशितशोश प्रबंध.यूनिवर्सिटी ऑफ लुइसविले, लुइसविले, कैंटकी.
https://theflippedclassroom.files.wordpress.com/2012/04/johnson-renner-2012.pdf
9. एडेडोकुन, ओ.ए., पार्कर, एल.सी., हेनके, जे.एन. तथा बर्गेस, डब्लू.डी.(2017). स्टूडेन्ट्स परसेपसनस ऑफअ 21 सेन्चुअरी लर्निंग स्पेस. जर्नरल ऑफ लर्निंग स्पेस, वॉल्यूम 6(1).
https://files.eric.ed.gov/fulltext/EJ1152589.pdf
10 बेकर्स, आर.आर.(2016). हाईयर एज्यूकेशन लर्निंग स्पेस डिजाइनरू फोर्म फोलोज फंक्शन, फिफ्टीन यूरो एफ.एम. रिसर्च सिम्पोजियम
https://www.researchgate.net/profile/Ronald_Beckers/publication/304139434_Higher_education_learning_space_design_form_follows_function/links/5767c2d608ae421c448dc384.pdf?origin=publication_list
11. इलिस, आर.ए. तथा गुडईयर,पी. (2016). मॉडल्स ऑफ लर्निंग स्पेसरू इन्टीग्रेटिंग रिसर्च ऑन स्पेस, प्लेस एण्ड लर्निंग इन हाईयर एज्यूकेशन, रिव्यू ऑफ एज्यूकेशन वॉल्यूम 4, नं. 2, पी.पी. 149-191
https://doi.org/10.1002/rev3.3056
12. ओ-नेल,एम.(2009). रिसर्च केस स्टडी:डिजाइन फोर लर्निंग स्पेस इन हायर एज्यूकेशन
https://www.knoll.com/media/931/11/wp_LearningSpacesHigherEd.pdf
13. नील, एस. एण्ड एथ्रिज, आर. (2008). फ्लेक्जीबल लर्निंग स्पेस द इन्टीग्रेशन ऑफपेडागॉजी. फिजिकल डिजाइन एण्ड इन्स्ट्रक्शन टेक्नॉलॉजी.
https://doi.org/10.1080/10528008.2008.11489024
14. मेयर,पी. (2007). इम्प्रोविजिंग लर्निंग स्पेस. मेकिंग रूम फोर फिरेंस एण्ड ट्रासफोरमेशन. रिसर्चगेट

ISSN 2278 - 0327

वीतरागस्तोत्र में वर्णित केवली के अतिशयों की विवेचना

साध्वी मननप्रिया श्री
शोधार्थी
जैनविद्या एवं तुलनात्मक धर्म तथा दर्शन विभाग
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ

अतिशय का स्वरूप

''अतिशय शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए कहा गया है कि *'शेषव्यतिक्रान्तं सातिशयम्'* अर्थात् शेष का जो अतिक्रमण करता है, वह अतिशय कहलाता है।[1] जिन गुणों के कारण भी तीर्थंकर परमात्मा विश्व के समस्त श्रेष्ठतम जीवों से श्रेष्ठतर बन जाते हैं, उन्हें अतिशय कहा जाता है। राग-द्वेष-मोह के संपूर्ण विजेता प्रभु वीतराग अवस्था प्राप्त कर चुके हैं और केवलज्ञान, केवलदर्शन से सुशोभित सर्वज्ञता के स्वामी हैं। देव-देवेन्द्र प्रभुजी का सतत् पूजन करते हैं, समवसरण में प्रभु यथावस्थित वस्तु पदार्थों का परिचय देकर मोक्षमार्ग का प्रदर्शन कराते हैं। वीतरागता, सर्वज्ञता, देवेन्द्र जितना यथावस्थित पदार्थ प्ररूपता आदि परमात्मा की विशेषताऐं हैं। शास्त्रीय भाषा में इन चारों को अतिशय कहा जाता है।'' मानव देह के रूप में उनके जन्म की अपनी कुछ अलग ही विशेषताऐं होती हैं, जो अन्य मानव में संभव नहीं हैं; उनकी इन विशेषताओं को भी अतिशय की संज्ञा दी गई है।''[2] अलौकिक अर्थात् जगत् के जीवों से कुछ विशिष्ट अद्भुत लक्षण विशेषताऐं जो पूर्वजन्म के प्रकृष्ट श्रद्धाबल, तपोबल, संयमबल आदि के प्रभाव से से संभवित होते हैं वे अतिशय कहलाते हैं।[3]

परमात्मा का प्रभाव अचिंत्य है। जहां विचरण करते हैं वहां चारों दिशाओं में सवा सौ योजन के विस्तार में अतिवृष्टि, अनावृष्टि, रोग, अस्वास्थ्य, मृत्यु, स्वचक्र, परचक्र, अकाल आदि का नामोनिशान नहीं होता है।[4] प्राणी मात्र के बीच रहने वाला जाति वैर आदि शान्त हो जाता हैं रोगादिक भी उपशांत हो जाते हैं, पक्षी प्रभु की प्रदक्षिणा करते हैं, कांटे उल्टी दिशा में मुड़ जाते हैं, वृक्ष नमन करते हैं और अचिंत्य प्रभावशील परमात्मा की देशना के लिए देव एक योजन विस्तार वाले समवसरण की रचना करते हैं। तीर्थंकर परमात्मा का सातिशय रूप देखते ही उन्हें अनिमेष दृष्टि से निहार-निहार कर भी दर्शनाशक्ति कहां तृप्त होती हैं? उनके दर्शन मात्र से हर्षाश्रुओं की गंगा बहने लगती है, बुद्धि चरमसीमा तक पहुंच जाती है। प्रभु की सुंदरता का वर्णन करने के लिए शब्दों की संपत्ति समाप्त हो जाती है। इसलिए परमात्मा का वह सातिशय रूप अलौकिक, अचिन्तय, अवर्णनीय ही रहा जाता है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि शब्दों द्वारा उनका वर्णन अवाच्य, असंभव है। अरहंत परमात्मा के चौंतीस अतिशयों का तीन भागों में वर्गीकरण किया जा सकता है-1. जन्मातिशय, 2. कर्मक्षय अतिशय और 3. देवकृत अतिशय। जन्म के साथ चार अतिशय हैं, कर्मक्षय होने पर प्रकट होने वाले अतिशय ग्यारह हैं, देवों द्वारा भक्तिपूर्वक किये जाने वाले अतिशयों की संख्या उन्नीस है। दिगम्बर परम्परा भी चौंतीस अतिशय मानती है, पर उन अतिशयों में कुछ भिन्नता है। दिगम्बर परंपरा में दस जन्मकृत, दस केवलाज्ञानकृत और चौदह देवकृत अतिशय माने जाते हैं।

अतिशयों के सम्बन्ध में आचार्य हेमचन्द्र ने योगशास्त्र[5] और अभिधान चिन्तामणि[6] आदि ग्रंथों में वर्णन किया है। 'वीतराग स्तोत्र' के द्वितीय प्रकाश में जन्म प्रत्यय के चार अतिशय, तृतीय प्रकाश में कर्मक्षयोत्पन्न ग्यारह अतिशय तथा चतुर्थ प्रकाश में देवकृत अतिशयों का वर्णन किया है। आचार्य अभयदेव और आचार्य हेमचन्द के अतिशय वर्णन की विभाजन पद्धति में कुछ अन्तर है, परन्तु भाषा के सम्बन्ध में दोनों का एक ही मत है। आचार्य हेमचन्द्र की दृष्टि में अतिशय जबकि अभयदेव दृष्टि में पन्द्रह अतिशय देवकृत हैं। हेमचन्द्राचार्य ने लिखा है कि भगवान् समोसरण में चारों ओर दिखाई देते हैं। वह देवकृत अतिशय है, परन्तु दिगम्बर दृष्टि से यह केवलज्ञानकृत है, परन्तु समवायांग सूत्र के चौंतीस अतिशयों में इनका उल्लेख नहीं है। उक्त चौंतीस अतिशयों का वर्गीकरण चार आधार भूत अतिशयों में किया जा सकता है- 1. ज्ञानातिशय, 2. वचनातिशय, 3. पूजातिशय और 4. अपायापगमतिशय। समवायांग सूत्र[7] में तीर्थंकर के चौंतीस अतिशयों की चर्चा की गई है।

द्रव्यानुयोगी देवचंद्रजी महाराज स्वरचित सोलहवें शान्तिनाथ

जिन-स्तवन में अरिहंत परमात्मा के अष्ट प्रातिहार्य और चौंतीस अतिशयों की शोभा का वर्णन करते हुए कहते है:-

''प्रातिहार्य अतिशय शोभा, वाला ते तो कहिय न जावे रे।
धूक बालक थी रविकर भरनुं वर्णन केणी परे थारे रे।।
भविक जन हरखो रे।।2।।[8]

अरिहंत परत्मात्मा के अष्ट प्रातिहार्य और चौंतीस अतिशयों को शोभा का वर्णन मेरे जैसे मन्दमति वाले से नहीं हो सकता है। मेरे जैसा मूढमति और मंदमति वाला बालक सूर्य की तेजस्वी किरणों के समूह के सौंदर्य का वर्णन कैसे कर सकता है?

तीर्थंकर परमात्मा के अतिशय

चार अतिशय परमात्मा के देह के साथ सम्बन्धित होने के कारण इन्हें देहातिशय भी कहा जाता है। जन्म से निर्वाण तक ये अतिशय प्रभु के साथ रहते हैं।[9] समवायांग सूत्र में भी चौंतीस अतिशय का वर्णन किया गया है। यथा-

चार अतिशय मूलथी, ओगणीश देववीध,
कर्म खय्याथी अग्यार, चौत्रीश एम अतिशया समवायों प्रसिद्ध।[10]

मूल अतिशय- करूणानिधान वीतराग करूणानिधान वीतराग परमात्मा का महाकरूणादि गुणों के द्वारा ध्यान करके प्रभु के अन्तर में प्रवेश करना हो तो इन चार अतिशयों से बढ़कर अधिक महत्वपूर्ण अन्य कोई आलंबन नहीं है।

अतिशय- 34
दिगम्बर परम्परा- 34 जन्मकृत (10) केवलज्ञानकृत (10) देवकृत (14)
श्वेताम्बर परम्परा- 34 जन्मकृत (4) केवलज्ञानकृत (11) देवकृत (19)

जन्म-कृत अतिशय

1. निर्मल देह :- प्रभु का माता के गर्भ में अवतरण होते ही अद्भुत, अनन्य और असाधारण देह का निर्माण होता है। राजा, महाराजा, बलदेव, चक्रवर्ती, वासुदेव से अनन्तगुणा अधिक सौन्दर्यपूर्ण प्रभु का रूप पुण्यानुबंधी पुण्य प्रकृतियों के उदय से नैसर्गिक सौंदर्य, निर्मलता, स्वभाविक सुन्दरता और चमत्कारिक पवित्रता का अद्भुत संगम है जिनके रूप की तुलना समूचे विश्व में किसी के पास नहीं है। प्रभु की काया ही नहीं अंगोपांग भी सुगंधित होते हैं। प्रभु चाहे कितना भी उग्र यात्रा अथवा विहार करें उनके शरीर को लेशमात्र भी मैल स्पर्श नहीं करता। प्रतिकूल ऋतुओं में भी प्रभु के शरीर से प्रस्वेद का उत्सर्जन नहीं होता है। द्वितीय प्रकाश के अन्तर्गत वीतराग परमात्मा के मंत्र-मुग्ध करने वाले दैहिक सौंदर्य का खिलखिलाता स्वरूप प्रस्तुत किया गया है।[11] प्रभु न जल निमज्जन करते हैं, न सौंदर्य वर्धक साधनों का प्रयोग तथापि मुख पर चमकती दिव्य कांति और शरीर से छलकली सौम्य चांदनी अनन्तगुणा आकर्षक होती है, वहीं आज व्यक्ति अपने स्वयं को सुन्दर सजाने, दिखाने के लिए हिंसात्मक सौंदर्य प्रसाधन साधनों का प्रयोग करते हैं, Beauty Parlour आदि में जाकर हजारों लाखों रूपयों को पानी में बहाते हैं।

प्रभु की काया में पांच वर्ण जैसे पांच परमेष्टि के पांच वर्णों का प्रतिनिधित्व किया गया है। परमात्मा के रूप के आगे करोड़ों देवता मिलकर एक अंगूठे जितना रूप बनावे तो भी वह जले हुए अंगारे के जैसा ही होता है। इसलिए पू. उपाध्याय जी म. ने गाया है-

''कोडि देव मिल के कर न सके, एक अंगूठरूप प्रति छंद।
ऐसे अद्भुत रूप निहारो, दर्शन मानूं अमृत को बुंद।।''

2. सुगंधित श्वासोच्छावास:- जन्म से ही तीर्थंकर परमात्मा का पद्मगंधी श्वास अत्यन्त ही सुगंधमय होता है। वीतराग स्तोत्र के द्वितीय प्रकाश की दूसरी गाथा में आचार्य हेमचन्द्र कहते हैं-

''मन्दारदासवन्नितय-मवासितसुगन्धिनि।
तवाङ्गे भृङ्गता यान्ति, नेत्राणि सुरयोषिताम्।।''[12]

प्रभु की वीतराग-काया सुगंधित पुष्प की भांति सुवासित द्रव्यों के लेपोपयोग न करने पर भी नित्य निरन्तर महकती रहती है। प्रभु के श्वासों में जैसे बसंत की पूर बहार, कमलपुष्पों की गंध, चन्दन आदि समस्त पुष्पों से भी अधिक सुवास बहती रहती है। आपकी श्वास की सुगंध से देवांगनाऐं, भंवरें आदि आकर्षित होकर जल एवं भूमि पर उत्पन्न सुगंधित पुष्पमालाओं को छोड़कर गूंजन करते रहते हैं। सामान्य जन के श्वास में दुर्गंध आती है, उपाधि से उत्पन्न द्रव्य सुवास तो कुछ अल्प समय में ही विलीन हो जाती है, परन्तु आपकी काया पर देवियों के नयन भ्रमर की भांति गुंजारव करते रहते हैं। इस प्रकार प्रभु के गंधातिशय का वर्णन किया गया है।

3. धवल रक्त और शुभ्र मांस :- विश्व के अन्यत्र किसी भी स्थान पर कभी दुष्टिगोचर नहीं होती ऐसी दो विशेषताऐं प्रभु के चौथे अतिशय से सम्बन्धित हैं।[13] वीतराग परमात्मा का मात्र मन ही राग से मुक्त नहीं है, अपितु शरीर में बहता हुआ रक्त और शरीर का मांस श्वेतवर्णी दुग्धधारा की धवल, उज्ज्वल एवं कमलपुष्पों सदृश सुगन्धपूर्ण होता है। आपके अतिशय की महिमा से आपके शरीर के रक्त ने भी राग को छोड़ दिया है। रक्त वर्ण,

राग, आसक्ति, स्नेह, मोह का प्रतीक होता है, जिस प्रकार नई दुल्हन का वेश और चूड़ी लाल होती है, उसके सुहाग का प्रतीक होती है। माताजी के चुंदड़ी ओढ़ाते हैं, वह भी लाल होती है, सिंदूर का रंग भी रक्त होता है, मित्रता के लिए भी लाल गुलाब (Red Rose) का उपयोग किया जाता है। यह सब उदाहरण राग, विषयासक्ति आदि के प्रतीक माने जाते हैं।

वीतराग परमात्मा का मन परम कारूण्य, माधुर्य और औदार्य से परिपूर्ण होता है। वे अठारह दोषों से रहित होते हैं। जब चंडकौशिक सर्प ने प्रभु को अंगूठे में डंसा तभी उनके अगूठे से रक्त ही जगह दुग्ध वर्ण धरा निकली। उस वक्त यदि उनका रक्त रागयुक्त होता तो अन्यरक्त के समान लाल ही होता अर्थात् वीतराग के मन-वचन-काया सब कुछ राग रहित ही होते हैं। [14]

सम्पूर्ण जगत से विलक्षण आपका मांस भी दुर्गन्ध रहित दर्शनीय तथा शुभ्र होने के कारण अन्य सब मांस की अपेक्षा से उत्तम गुणवाला है।[15] अन्य सब प्राणियों का मांस दुर्गन्ध, बीभत्स तथा रक्त होता है पर सारे जगत में विशिष्ट तीर्थंकर परमात्मा की काया का मांस न तो दुर्गंध युक्त और न ही घृणाप्रद है। उनके मांस की कोमलता, कान्ति और सुगंध समुद्र के फीण (झाग) की भांति श्वेत, स्फटिक की भांति उज्ज्वल और रत्नों की भांति कान्तिमय होती है। राग से मुक्त हुए तो वीतराग बने, राग को जीत लिया तो जिन बने। राग को हरा दिया तो अरिहंत बने। इस प्रकार उनकी महिमा, उनके गुणों को लिपिबद्ध करना असंभव है। गीता में ईश्वरीय गुणों को अपरिमित, असीम कहा है।

4. अदृश्य आहार-निहार :- प्रभु की आहार-निहार विधि अदृश्य होती है।[16] जन्म से लेकर निर्वाण तक प्रभु जब-जब आहार ग्रहण करते हैं, उस आहार विधि को चर्मचक्षुधारी कोई भी मान देख नहीं सकता, उसी प्रकार मलमूत्र त्याग स्वरूप निहार विधि को भी कोई नहीं देख सकता। सामान्य मनुष्य के आहार-निहार को चर्मचक्षुओं से देखा जा सकता है। सकल लोक में असाधारण तीर्थंकर भव की मर्यादा अलौकिक आश्चर्य करने वाली है।[17]

इस प्रकार द्वितीय प्रकाश में वीतराग परमात्मा के चार सहज अतिशयों का वर्णन किया गया है जो उन्हें जन्म से प्राप्त होती है। 'ऋषिभाषित''[18] का यह संवाद युक्ति संगत मननीय है-

1. वीतराग की देह विमल सुगंध से परिपूर्ण होती है।
2. देह सर्वथा रोग-विमुक्त होती है।
3. वीतराग को कदापि प्रस्वेद नहीं होता।
4. वीतराग का रूधिर दुग्ध की भांति शुभ्र आभा वाला होता है।
5. वीतराग का मांस निर्विष एवं पीतवर्णीय होता है।
6. वीतराग का आहार-निहार चर्मचक्षुओं से अग्राह्य होता है।
7. वीतराग के उच्छवास में कमल की सुगंध आती है।

कर्मक्षय और ग्यारह अतिशयों की प्रगटता-

कर्मक्षय के कारण प्रगट होने वाले ग्यारह अतिशयों का वर्णन निम्नलिखित है। केवलज्ञान प्राप्त के पूर्व चार घातिकर्मों का सम्पूर्णतया क्षय होना आवश्यक है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय एवं अन्तराय ये चार घातिकर्म हैं। संयम ग्रहण कर साधना द्वारा क्षपकक्षेणी की यात्रा के दौरान चार घातिकर्मों का क्षय करके परमात्मा केवलज्ञान प्राप्त करते हैं। केवलज्ञान प्रकट होते ही परमात्मा ग्यारह अतिशयों से सुशोभित हो जाते हैं। 1. रोगशान्ति (अपायापगम-अतिशय), 2. वैर शमन, 3. इति उपद्रव नाश, 4. महामारि अभाव, 5. अतिवृष्टि-अनावृष्टि नाश, 6. अवृष्टि निवारण, 7. दुर्भिक्ष क्षय, 8. स्व-पर चक्र निवारण (आक्रमण मुक्ति), 9. भामंडल अतिशय, 10. कोटा-कोटि जीव समावेश (पूजातिशय), 11. वचनातिशय (सुगम वाणी)।

देवकृत अतिशय

परमात्मा को केवलज्ञान प्राप्त होते ही समस्त इन्द्र एवं देवतागण देवलोक से अवतरण करते हैं तथा प्रभु भक्ति करने हेतु समवसरण, अष्ट महाप्रातिहार्यादि उन्नीस अतिशयों की रचना करते हैं। इन अतिशयों के प्रभाव से परमात्मा के अतुल्य, अद्भुत ऐश्वर्य में वृद्धि होती है। इसलिए भावपूर्वक उनकी स्तुति एवं स्तवना करनी चाहिए क्योंकि यह अतिशय अन्य दूसरों के लिए अत्यन्त दुर्लभ है। देवकृत अतिशयों के नाम इस प्रकार हैं- अवस्थित केश, कोटि सुर सान्निध्य, सुवर्णकमल, अधोमुख कंटक, वृक्षशाखा-नमन, पक्षी प्रदक्षिणा, आह्लादक पवन, षडर्तु अनुकूलता, धर्मचक्र, मिथ्यादृशां युगान्तार्क, सदृशाममृतांजनम्, तिलक तीर्थकृल्लक्ष्म्या।

परमात्मा जब-जब विहार करते हैं और समवसरण में बैठते हैं तब-तब उनके आगे आकाश में धर्मचक्र चलता है।[19] धर्मचक्र, धर्मध्वज, दो चामर, पादपीठ सहित सिंहासन और तीन छत्र यह पांच अतिशय, भगवान जहाँ-जहाँ विहार करते हैं, वहाँ-वहाँ आकाश में साथ चलते हैं। धर्मचक्र और धर्मध्वज आगे के भाग में रहते हैं। इस धर्मचक्र का निर्माण व्यंतर देव करते हैं। इस चक्र का वहन देवों द्वारा और अनेक देवताओं द्वारा परिवेष्टित होता है। एक सहस्र आरों से सुशोभित यह धर्मचक्र विशुद्ध सुवर्ण से बनाया जाता है। इसमें अमूल्य रत्न जड़े होते हैं। परमात्मा जब सिंहासन पर विराजमान होते हैं, तब उनके प्रत्येक सिंहासन के समक्ष सुवर्णकमल पुष्प में धर्मचक्र की स्थापना होती है। सूर्य से अधिक तेजस्वी, दस दिशाओं को प्रकाशमय बनाने वाला यह

ओजस्वी चक्र मिथ्यादृष्टि के लिए मानो कालचक्र है एवं सम्यग्दृष्टि के लिए अमृत का अंजन है।

अतिशय के द्वारा परमात्मा का ध्यान-

सर्व जगत हितैषी एवं हितकर्त्ता अनुपमेय शारीरिक सुंदरता के स्वामी, अतिशय और प्रातिहार्यों द्वारा संपन्न, देशना द्वारा समस्त जीवों के कल्याण के लिए प्रवृत्त और तत्पर, जीवों की शारीरिक एवं मानसिक व्याधियों के लिए परमौषधि, चक्रादि अष्टोत्तर सहस्र लक्षणों से पंडित, सर्वोत्तम पुण्य के कारण तीर्थंकर पद प्राप्त सर्वश्रेष्ठ, अतुल महात्मशाली देवताओं के लिए वंदनीय तथा आस्तिक्य ऐसे जिनेन्द्र परमात्मा की भक्ति करना चाहिए। सम्पूर्ण निष्काम प्रेम का अभाव हो तो भक्ति का प्रादुर्भाव ध्यान के बिना भगवंत के साथ एकात्मता, तारतम्य के भाव का प्राक्ट्य नहीं होता। तारतम्य का अभाव हो तो भगवान के वास्तविक स्वरूप के अनुभव से आत्मा वंचित रह जाती है। भगवान् के महाकरूणादि गुणों के द्वारा उनके अतिशयों का ध्यान करके प्रभु के अन्तर में प्रवेश कर सकते हैं। इन अतिशयों से बढ़कर अधिक महत्त्वपूर्ण ध्यान के लिए कोई आलंबन नहीं है।

1 ज्ञानातिशय- अर्हन्त भगवान अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन के धारक होते हैं। वे त्रिकाल और लोकत्रय के ज्ञाता होते हैं। वे संपूर्ण ज्ञानी, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होते हैं। उनके ज्ञान का अतिशय समग्र लोक को प्रकाशित करता है। जैसे किसी को अपने हाथ में रहे हुए आंवले का स्पष्ट ज्ञान होता है, वैसे ही केवलज्ञान की महिमा से विश्व के समस्त द्रव्य तथा उनके पर्यायों को साक्षात् देखा व जाना जाता है।[20] वीतराग स्तोत्र में वीतराग देवों के इस ज्ञानातिशय का उल्लेख अनेक स्तोत्रों में किया गया है। '*यस्य ज्ञानं भवद्भावि-भूतभावावभासकृत्*' [21] जिनका ज्ञान अतीत, अनागत और वर्तमानकालीन वस्तु के पदार्थ मात्र को प्रकाशित करने वाला है।

2 वचनातिशय-वीतराग प्रभु जन कल्याणार्थ, परोपकार की भावना से अपना अमृतमय आत्मकल्याण करते हैं।

3 पूजातिशय-महात्याग की प्रेरणामूर्ति तीर्थंकर परमात्मा के चरण, शरण और समवसरण में देव-देवेन्द्र, नर-नरेन्द्र, वासुदेव-बलदेव आकर वंदना-अभिवंदना करते हैं। अष्ट प्रातिहार्य आदि जो भगवान के विशेष पुण्योदय से प्रकट होते हैं, पूजा की यह पराकाष्ठा ही जिनेश्वर का पूजातिशय है।

4 अपायापगमतिशय-अपाय-कष्ट, उपद्रव, रोग। अपराग-दूरीकरण। अतिशय-प्रभाव।

शास्त्रों में दो प्रकार से अपाय वर्णित हैं- स्वाश्रयी एवं पराश्रयी। स्वाश्रयी अपाय भी दो प्रकार का है। द्रव्य की अपेक्षा से वीतराग परमात्मा की काया सर्वथा रोग मुक्त होती है। इसी कारण परमात्मा महावीर को केवलज्ञान के उपरांत गोशालक की तेजोलेश्या के कारण जो अतिसार रोग हुआ वह आश्चर्य स्वरूप कहा गया। भाव की अपेक्षा से स्वाश्रयी रोग मुक्ति प्रभु के अठारह दोष विमुक्ति के कारण है। पराश्रयी अपाय से प्रभु का स्पर्श कर बहने वाली वायु स्पर्श से लोगों के छह माह पूर्व उत्पन्न रोग समाप्त हो जाते हैं। प्रभु का प्रभावशाली संस्पर्श पाकर सृष्टि का कल्याण स्वत: सिद्ध हो जाता है।

चंदन आदि से जो शीतलता प्राप्त होती है, वह शारीरिक एवं क्षणिक होती है, जबकि जिनेश्वर के वचनों से प्राप्त होने वाली आध्यामित्क एवं स्थायी है। परम आनंदकारी, सुखकारी अमृतवत् प्रभु की वाणी अजर-अमर पद दात्री है। [22] सकलार्हतस्तोत्र[23] में प्रभु की वाणी को अन्य सभी वाणियों से अधिक महत्त्वशाली बताया गया है, यह वाणी कतक (फिटकरी) के चूर्ण के समान तीनों लोकों के प्राणियों के हृदय और चित्त रूपी जल को निर्मल करने वाली सर्वश्रेष्ठ है। तीर्थंकर परमात्मा की वाणी सम्यग् ज्ञान का प्रतिपादन करने के कारण आत्मा के दोष-रोग-द्वेष-मोह-कषाय आदि को दूर करने वाली है।[24] इन वचनों का श्रवण कर, उनका रहस्य समझकर स्वर्ग एवं मोक्ष की प्राप्ति की जा सकती है। '*सवि जीव करूं शासनरसी*' की भावना की फलश्रुति करने के लिए, केवलज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् केवल जगत में स्थित जीवों के हित के हेतु से दिन में बार एक-एक प्रहर तक चलने वाली देशना परमात्मा देते हैं। यह धर्मदेशना केवल भाषण ही नहीं अपितु वाणी का भूषण है।

इन सब अतिशयों का निर्माण तो देवगण करते हैं, परन्तु उनके प्रयास भगवंत के अतिशय के कारण साकार होते हैं। भगवंत के अनुपस्थिति के बिना यदि समस्त देवगण मिलकर धर्मचक्र बनाऐगें तो वह वैसा ही बनेगा जैसा भगवान् की उपस्थिति में बनाया गया चक्र! परन्तु वह भगवान के चक्र की तुलना में अनंत है।

सन्दर्भ सूची -

1. जैन स्तोत्र साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन, साध्वी डॉ. हेमप्रभा 'हिमांशु', पृ.137
2. परम तत्त्व की साधना, भाग-2, श्री भद्रंकरविजय गणिवर्य, पृ.22
3. परम तेज: श्री ललितविस्तरा-विवेचन, भाग-1, पूज्य पन्यासश्रीभानुविजय गणिवर, पृ.201
4. जैन धर्म दर्शन एक समीक्षात्मक परिचय, डॉ. मोहनलाल

मेहता, पृ.242-243
5. योगशास्त्र-एकादश प्रकाश
6. अभिधान चिन्तामणि-56-63
7. समवायांग सूत्र-34वां समवाय, सूत्र 219, पृ. 100-101
8. देवचन्द्र चौबीसी स्तवन 16
9. अभिधान चिंतामणि नाममाला, हेमचंद्राचार्य
10. समवायांग सूत्र
11. 'प्रियङ्गुस्फटिक स्वर्ण-पद्रागांजनप्रभः।
प्रभो! तवाधौतशुचिः, कायः कमिव नाक्षिपेत्।।
वीतराग स्तोत्र 2/1।।
12. वीतराग स्तोत्र 2/2
13. वीतराग स्तोत्र 2/2
14. महाविदेह के महाप्रभु, आचार्य विजय जयन्तसेनसूरीश्वरजी म. ''न केवलं मुक्तं, वीतराग! मनस्तव। वपुः स्थितं स्तकमपि, क्षीरधारासहोदरम्।। -वीतराग स्तोत्र2/3
15. जगद्विलक्षणं किं वा, तवान्यद्वक्तुमीश्महे। यदविस्त्रमबीभत्सं, शुभ्रं मांसमपि प्रभो।।-वीतराग स्तोत्र 2/6
16. अवचूरि में 'आहारनीहारौ भोजनोत्सर्गविधि' तथा अभिधान चिंतामणि कोश में 'आहारनीहार विधिस्त्वदृश्यः' यह अदृश्य आहार-निहार की क्रिया अदृश्य कही है। इसलिए आहार-निहार दिखाई देता है, परन्तु आहार-निहार की क्रिया दिखाई नहीं देती है।
17. वीतराग स्तोत्र 2/8
18. ऋषिभाषित-'देहं विमलसुअंधं, आभयपस्सेयवाज्जियं रूवं।
रूहिरं गोक्खीराभं, विव्विस्सं पण्डुरं मंसं।।1।।
आहार नीहारा अद्दिस्सा, मंसचक्खुणो सययं।
नीसासो अ सुअंधो, जम्मप्पभिइ गुणा ए ए।।2।।
19. वीतराग स्तोत्र,4/1
20. वीतराग स्तोत्र, 4/4
21. से भगवं अरहा जिणे जाणए केवली सव्वन्नू सव्वभावदरिसी सदेव-मणुयाऽसुरस्स लोगस्स पज्जाए जाएइ, तं जहा आगइं गइं द्विइं पवजं उववायं भुतं वयंवीयं कडं पडिसेवियं आविकम्मं रहोकम्मं लवियं कहियं मणोमासियं सव्वलोए सव्वजीवाणं सव्वभावाइं जाणमाणे पासमाणे एवं च णं विहरई।-आचारांग सूत्र, द्वितीय श्रुत स्कंध, 15वां अध्याय सूत्र-773, पृ.316
22. समलार्हत्स्तोत्र, 15
23. यान्तु वः श्रीमहावीर स्वामिनो देशनागिरः।
भव्यानामान्तरमल प्रक्षालनजलोपमाः।।-वीरस्तवनम्-4
24. वीतराग स्तोत्र, 4/7

ISSN 2278 - 0327

'हिमाचलदर्शनम्' नामक महाकाव्य में वर्णित देव-देवालयों का विवेचन

कु. शुभम दीक्षित
शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग,
पतंजलि विश्वविद्यालय, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

सारांश-

हिमाचल प्रदेश देवभूमि के रूप में विख्यात है। जिसका कारण है वहां स्थान-स्थान पर अनेक देवताओं के देवालय विराजमान हैं। हिमाचल प्रदेश में जहां प्राकृतिक सौन्दर्य की सुन्दर आभा मनोरम हैं वहां उसे ऋषिभूमि व देवभूमि होने का भी गौरव प्राप्त है। हिमाचल की संस्कृति धर्म प्रधान है अत: वहां जनसाधारण की देव-देवालयों के प्रति आस्था होना भी स्वाभाविक है। हिमाचल प्रदेश के विषय में अभी तक संस्कृत में लिखा गया कोई ऐसा महाकाव्य अथवा ग्रन्थ उपलब्ध नहीं था जिसमें हिमाचल का समग्र वर्णन किया गया हो। सन् 2019 में 'हिमाचलदर्शनम्' नामक महाकाव्य प्रकाशित हुआ जिसमें हिमाचल प्रदेश का प्राय: समग्र वर्णन उपलब्ध है। हिमाचल प्रदेश को देवभूमि क्यों कहा जाता है? किन-किन स्थानों में कौन-कौन से देव व देवालय हैं, उनका क्या इतिहास एवं संस्कृति है यह सब प्रस्तुत लेख में वर्णित है जिसका मुख्य आधार 'हिमाचलदर्शनम्' नामक महाकाव्य है।

विषय प्रवेश-

राष्ट्रीय कालिदास पुरस्कार से सम्मानित, अनेक काव्यों के रचयिता, आशुकवि डॉ. मनोहरलाल आर्य द्वारा 'हिमाचलदर्शनम्'[1] नामक महाकाव्य की रचना की गई है जिसमें देवभूमि हिमाचल प्रदेश का प्राकृतिक, भूगोलिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक व राजनीतिक वर्णन सुललित काव्य शैली में किया गया है। इस महाकाव्य में हिमाचल प्रदेश के 12 मण्डलों (जिलों) पर आधारित 12 सर्ग हैं जिनमें अनेक देव-देवालयों का वर्णन हिमाचलप्रदेश के धार्मिक व सांस्कृतिक स्वरूप को प्रकाशित करता है। इन्हीं देव-देवालयों का सर्गानुसार विवेचन प्रस्तुत शोधपत्र का वर्ण्य-विषय है।

प्रथम सर्ग-

काँगड़ा मण्डल पर आधारित प्रथम सर्ग में-

ज्वालाकुणालपथरी बगलामुखी वा .....।।[2]

ज्वालामुखी, कुणालपथरी, बगलामुखी, बज्रेश्वरी, महला, मनशा, दुर्गा, आशापुरी, भजिनी, बड़धारिणी, काली, जखनी, शारदा, चामुण्डा, सरस्वती व नागनी आदि देवियों व उनके मन्दिरों का वर्णन है। भागसूनाग, बैजनाथ, काठगढ़, चामुण्डा, जरोट, मसरूर, चड़ी-घरोह, डाडाशीबा, चनौर, पनियाल, भवारना, पल्लवेश्वर, भरमाड़, मटौर, धीरा, ज्वाली, कथोली, डमटाल, तपोवन, जैसिंह, गंगथ, बनोड़ और मनूमनाला आदि स्थानों में शिवमन्दिरों की शोभा विराजमान है।

इनके अतिरिक्त अनेक स्थानों में नाग, वैष्णव, सीता, राम, कृष्ण, पार्वती, विश्वकर्मा व हनुमान के मन्दिरों का भी उल्लेख है।

कालेश्वर में महादेव मन्दिर, सुजानपुर में दौलासिद्ध, काँगड़ा में प्राचीन जैन मन्दिर, जयन्ती माता, नगरोटा बगवां, धर्मशाला, इन्दौर, पालमपुर, बैजनाथ व भवारना में आर्य समाज मन्दिर तथा कई स्थानों में गुरुद्वारों का भी सुन्दर वर्णन मिलता है।

द्वितीय सर्ग-

चम्बामण्डल पर आधारित द्वितीय सर्ग में-

भूम्यम्बुशैलनगनागमुखा अमर्त्या: .....।।[3]

इत्यादि में वर्णन मिलता है कि चम्बा में भूमि, जल, पर्वत, वन, नाग, शिव, पार्वती, विष्णु व कार्तिकेय आदि की पूजा अधिक होती है। इसके अतिरिक्त वंशीगोपाल, हरिराय, चम्पावती व सुहीमाता का मन्दिर भी प्रसिद्ध है। इस मण्डल में अनेक मस्जिदें, बौद्धमठ, व जुलाकड़ी में दयानन्द मठ व गुरुद्वारा विशेषरूप से प्रतिष्ठित है, जिससे चम्बामण्डल देव-देवालयों की भूमि के रूप में विख्यात है।[4]

तृतीय सर्ग-

ऊना मण्डल पर आधारित तृतीय सर्ग में-

श्रीध्यूंसराख्यमिह धौम्यर्षिप्रणीतम्.....।।[5]

इत्यादि श्लोकों में ध्यूंसर नामक शिवमन्दिर धौम्य ऋषि द्वारा निर्मित है, गगरेट में विराजमान शिवमन्दिर द्रोणाचार्य द्वारा बनवाया गया था जो पाण्डवकालीन इतिहास की याद दिलाता है।

पण्डोगधामनि तथेशपुरे पुराणे.....।।[6]

इत्यादि श्लोकों में पण्डोग, ईशपुर में प्राचीन शिवमन्दिर तथा वसदेहडा में सोमेश्वर मन्दिर का उल्लेख है। इसमें ऋषि दत्रात्रय व बाबाकालीधारी का वर्णन भी मिलता है।[7]

रुद्रस्य धाम च बसालभुवि..... ।[8]

इत्यादि श्लोक में डेराबाबा रुद्रु में रुददेवधाम तथा अम्ब में कालेश्वर धाम का उल्लेख है।

अस्त्यत्र सर्वफलदा किल चिन्तपूर्णी..... ।।[9]

बज्रेश्वरी भगवती नयनाम्बिकेव..... ।।[10]

इत्यादि में माता चिन्तपूर्णी को माता बज्रेश्वरी व माता नयनादेवी के समान ही पूजे जाने का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त पोलियां पुरोहितां में माता कामाख्या, बौल, टिक्का, धर्मशाल महन्तां, ऊना तथा आर्यनगर में शीतला माता के मन्दिरों की महिमा है।[11]

दौलतपुर में भद्रकाली, मुबारिकपुर व वनखण्डी में दुर्गा, धुंधला में जमासनी देवी, दोबड व पनेड में काली माता के मन्दिरों का उल्लेख है।[12]

श्रीनारसिंहसदनं पिपलूधरायाम् ..... ।।[13]

शेषावतारविदितोऽस्ति च नागदेव..... ।।[14]

अध्यम्बरायपुर-पीरनिगाह-सिद्ध..... ।।[15]

अर्थात् पिपलू में नरसिंह मन्दिर, सतलुज के किनारे ब्रह्मा मन्दिर, पंजावर, पतेहड व नागरोली में भर्तृहरि के मन्दिर, हरोली, डूमखर, टाहली व लठियाणी में नागमन्दिर, अम्ब, रायपुर, पीरनिगाह, सिद्धचलेहड व मुबारिकपुर में सिद्धों के मन्दिर विराजमान है। मैडी, भभौर, गगरेट, हरोली, बल्ह तथा पंजावर में सिक्खों के गुरुद्वारे[16] मैडी में बाबा बड़भागसिंह व मंजीसाहिब गुरुद्वारे भी विराजमान हैं, डंगोली, दौलतपुर, अम्ब बनेहड़ा, टक्का, मलांगढ़, मुबारिकपुर, मरेड, गुगलैहड, स्वारी, टकोली, लठियाणी, टकारला, चौकीमिनार, कुठमा, अरलू, डोहगी, सन्तोषगढ़, नंगल व कोटला आदि स्थानों में शिवमन्दिर प्रतिष्ठित हैं।[17] इस प्रकार ऊना मण्डल अनेक देव-देवालयों से सुशोभित है।

चतुर्थ सर्ग-

हमीरपुर मण्डल पर आधारित चतुर्थ सर्ग में अवाहदेवी में दुर्गा, ऊहल में चामुण्डा, नादौन में शिव, टौणी देवी में टौणी माता, चकमोह में बाबा बालकनाथ, भोटा में राधास्वामी सत्संग भवन, नादौन, हमीरपुर, सुजानपुर आदि में गुरुद्वारे,[18] भोरंज, ताल, पिपलू, लगमानवी, मुन्डखर, अणु, गलोड, चौरी, बलौनी, सुजानपुर, टीहरा, चबूतरा, टौणी देवी, डगोह, गसोता, सलौनी, दियोटसिद्ध, भोटा व जाहू आदि स्थान में शिवमन्दिर विराजमान हैं।[19] इसके अतिरिक्त हमीरपुर में भगवान् विष्णु, हनुमान, श्रीकृष्ण, लक्ष्मी, सूर्य, राधा और राम-सीता आदि के मन्दिर आस्था का केन्द्र बने हुए है।[20] यहां दुर्गा, अन्नपूर्णा, काली, लगदेवी, जौलीदेवी, अवाहदेवी, सन्तोषी, शीतला, वैष्णोमाता व शारदा माता आदि देवियां शिवशक्ति के रूप में पूजी जाती हैं।[21] हमीरपुर में गुग्गादेव, भोटा, टौणी देवी, वसारल, गवाला और दरागणा में इसकी महिमा अधिक मानी जाती है।[22]

पंचम सर्ग-

पंचम सर्ग विलासपुर मण्डल पर आधारित है जिसमें-

श्रीब्रह्मपुक्खरभुवि ह्यधिपंजगार ..... ।।[23]

इत्यादि श्लोकों में ब्रह्मपुक्खर, पंजगाई, स्वारघाट, नीउ, देहरा, नयनादेवी, परनाल, वच्छरेटू, हटवाड़, सोलग, धुमारवीं, मारकण्डे और विलासपुर में शिवमन्दिरों का आकर्षण है। झण्डा, तलाई, नीउ, चान्दपुर, विलासपुर, औहर और गेहडवी में बाबा बालकनाथ की अर्चना प्रचलित है।[24] लद्दा, भटेड, मलहोट, टोहरा, पन्तेहड, गेहडवी, झण्डा, तयामन और बुहाड में गुग्गा मन्दिर,[25] शिमला-विलासपुर मार्ग में शगीरठी देवी की कुलदेवी के रूप में प्रतिष्ठा है। यहां माता नयनादेवी हिन्दु व सिक्खों की आस्था स्थली है।[26] डंगार में माता हरिदेवी, चढ़ियार में सोहणीदेवी,[26] बरोह में नेरसादेवी, जांगला में शीतला माता, तथा धनथर में बड़ोलदेवी विराजमान है।[28] इसके अतिरिक्त जुखाला में मार्कण्डेय मन्दिर, मौजपुर में बाबा मौजपुरी की कुटिया,[29] बस्सी, बिलासपुर, पपरोला, गुरु का लाहौर, मेहला और हड़नोटा में गुरुद्वारे प्रतिष्ठित है; सुन्हाणी, राजपुर, मन्हण आदि स्थानों में मस्जिदें भी विद्यमान हैं[30] इस प्रकार विलासपुर मण्डल भी अनेक देव-देवालयों से सुशोभित है।

षष्ठ सर्ग-

छठा सर्ग मण्डी मण्डल पर आधारित है, इसमें देव-देवालयों के सन्दर्भ में-

गुग्गा-द्रु-नाग-वरसेलक-लौहलर्षि ..... ।

शिब्बा-बदार-हिमरी-नवकोटिगंगा ..... ।।[31]

इत्यादि श्लोकों में गुग्गा, वृक्ष, नाग, इन्द्र व शिव देवों की पूजा की जाती है। यहां शिब्बा, बदार, हिमरी, नवकोटि व डैहर आदि स्थानों में विद्यमान देवालयों को तीर्थ तुल्य माना जाता है। अनेक ऋषिमुनियों ने इस भूमि पर रहकर विविध ग्रन्थों की रचना की थी।[32] यहां विविध शक्तियों से सम्पन्न शिव, रूपेश्वरी देवी, श्यामाकाली,[33] त्रिलोकीनाथ; नरसिंह, कामाक्षादेवी शिकारीदेवी आदि के मन्दिर तथा कहीं आर्य समाज मन्दिर भी शोभायमान होते हैं।[34] पशाकोट में वृष्टिदेव, मच्छयालतीर्थ आदि का भी उल्लेख है।

इस प्रकार मण्डीमण्डल भी ऋषियों की तप:स्थली रही है ऐसा वर्णन किया गया है।[35]

सप्तम सर्ग–

सप्तम सर्ग कुल्लु मण्डल पर आधारित है, जिसमें अनेक देव–देवालयों का वर्णन मिलता है–

तीर्थस्यास्यामलपरिसरे प्रोष्णपानीयपूर्णा.....।।[36]

तत्रैवैकं विलसति शुभं श्रीगुरुद्वारधाम.....।।[37]

इसमें मनीकर्णतीर्थ, राममन्दिर, गुरुद्वारों को तीर्थ माना गया है, यहां गर्मपानी के चश्में लोगों की आस्था का केन्द्र बने हुए हैं। कुल्लू–मनाली में वसिष्ठधाम, मनुमन्दिर, शिव–पार्वती, राम, कृष्ण, हनुमान्, ब्रह्मा, विष्णु आदि के मन्दिर आकर्षण का केन्द्र बने हुए हैं।[38] यहां भागासिद्धा देवी, गुग्गा मन्दिर, रघुनाथधाम, वैष्णो देवी मन्दिर, बिजलीमहादेव, त्रियुगीनारायण आदि के मन्दिर विराजमान है।[39]

गडसा नामक पर्वतीय क्षेत्र में अग्निपाला व जगतसुख में गौरीशंकर मन्दिर, संघादेवी धाम[40], श्रृंगीऋषि मन्दिर[41], सैन्जघाटी में अम्बिका देवी[42], तथा इसके अतिरिक्त मनुमन्दिर, ब्रह्मा, इन्द्र, उमा, शिव, हनुमान्, चण्डी[43], ज्वालामहादेव, गौरीशंकर, शमशरी महादेव, नीलकण्ठ, डंकीया महादेव, बुगरुमहादेव, बिजली महादेव आदि देवालय भी मण्डी के गौरव को बढ़ाते हैं।[44] यहां काली, चण्डी, त्रिपुरसुन्दरी, भाडका, वैष्णो देवी, झीड़ी देवी, प्रीणी देवी, कलशनदेवी, हिडिम्बा, कुमाता, चामुण्डा, शराबली, बड़ी देवी, योगिनी देवी व कुसुम्बादेवी, के मन्दिरों का भी उल्लेख है।[45] इसके अतिरिक्त धौम्य, व्यास, परशुराम, भृगु, गौतम, कश्यप, श्रृंगी, स्कन्द च्यवन व भरद्वाज आदि ऋषियों की तप:स्थली का भी वर्णन है।[46]

कुल्लू, मण्डी, मनाली, भुन्तर व नग्गर में बौद्ध मन्दिरों, दयनीय स्थिति में पड़ी मस्जिदों व चर्चों का भी उल्लेख है,[47] इसमें आर्यसमाज मन्दिरों का भी उल्लेख है जो वेद–प्रचार कार्य में संलग्न है।[48] इस प्रकार कुल्लू मण्डल विविध देव–देवालयों से सुशोभित है।

अष्टम सर्ग–

अष्टम सर्ग लाहुलस्पीति मण्डल पर आधारित है जिसमें–

–चन्द्राभागायुगलसविधे संगमे पावने श्री .....।[49]

–नामैतस्याजनि च दुपचीलिङ्गमेषा जनेक्ति: .....।[50]

–अन्यच्चैकं त्रिदशसदनं राजतेऽत्र त्रिलोकी.....।[51]

इत्यादि श्लोकों में श्रीगुरुघण्टाल मन्दिर (दुपचीलिंग) व त्रिलोकीनाथ मन्दिर का भी उल्लेख है।

वहां उदयपुर में मृकुलादेवी, गुरुघण्टाल, शैशर, गौन्धला, कंगनी, गैमुरक, तुकलिंग, श्रीमनिंग व ताबो–गोम्पा आदि बौद्धमठों का सुन्दर वर्णन किया गया है।[53] इसके अतिरिक्त काजा, ताबो, सुमधु व किब्बर में बौद्धविहारों का उल्लेख है[54] वहां लद्दाख के क्षेत्र में विष्णु को नमछरा, लक्ष्मी को छोरिंग्मा तथा गणेश को छोग्दक के रूप में पूजा जाता है।[55] इस प्रकार लाहुल–स्पीति क्षेत्र में बौद्धधर्म के प्रचार के साथ–साथ हिन्दु–देव–देवालयों की भी प्रतिष्ठा है।

नवम सर्ग–

नवम सर्ग सिरमौर मण्डल पर आधारित है, यहाँ पच्छाद, राजगढ़, शिवपुरी, पौंटा साहिब, पक्का तालाब, जरवेश्वर, रेणुका, शिलाई, रोनहार, पातल, रानीताल, त्रिलोकपुर, हरिपुर, ददाहू, भूरेश्वर, शरगांव और सरांह आदि स्थानों में सैकड़ों शिवमन्दिरों का वर्णन है, शेषनाग को यहां शिरगुल के नाम से पूजा जाता है तथा महाशु शिव के अवतार के रूप में जाने जाते है।[56]

सन्तीह शक्ति–शिव–वैष्णवमन्दिराणि .....।।

बौद्धा मठा: क्वचन भान्त्यथ चर्चशाला: .....।।[57]

इत्यादि श्लोकों में सिरमौर की धरती पर अनेक शक्तिस्थल, शिवमन्दिर, वैष्णवमन्दिर, बौद्धमठ, चर्च, गुरुद्वारे, मस्जिदें, सत्संग भवन आदि विराजमान हैं, रेणुका में भगवान् परशुराम व रेणुका माता की अत्यधिक प्रतिष्ठा है।

दशम सर्ग–

दसवां सर्ग सोलन मण्डल पर आधारित है, 'सोलन' शब्द 'शूलिनी' का अपभ्रंश रूप है, यहां शूलिनी माता का पवित्र आवास है।[58] बड़ा देवी भी यहां श्रद्धापूर्वक पूज्या है,[59] अर्की में शिवमन्दिर[60], पिपलूधर में बणिया देवी[61], हरसंग क्षेत्र में चण्डीमाता, डगशई, परवाणू में काली माता, कपूरी माता व शीतला माता[62], साधुपुल, दानोघाट, लुगासन आदि क्षेत्रों में दुर्गा माता, सोलन में शूलिनी व सिद्धेश्वरी माता, कण्डाघाट में सन्तोषी माता, छामला में जालपा, सुवाथू में पूर्णादेवी[63], नालागढ़, रामशहर, पट्टा, महलोग व दीगल में बाबा बालकनाथ[64], मंधाला, दालडाघाट, सकोडी, समलोह, जोणाजी, अर्की, डगशई, कोटी आदि स्थानों में अनेक शिवमन्दिर[65], सोलन में विष्णु, लक्ष्मी, नाग, हनुमान्, राम व कृष्ण आदि[66] के अनेक देवालय शोभायमान होते हैं। इस प्रकार सोलन मण्डल भी अनेक देवों से प्रतिष्ठित है।

एकादश सर्ग–

ग्यारहवां सर्ग शिमला मण्डल पर आधारित है, यहां श्यामला देवी की प्रतिष्ठा के कारण 'शिमला' नाम रूढ़ हो गया[67], यहां

जाखू मन्दिर सुविख्यात है। सरपारा में नागमन्दिर[68], हाटू, धामी, बलग, रामपुर, धवास, शोली व बाट आदि स्थानों में शिव मन्दिर विराजमान हैं [69]। हाटेश्वर, महेश्वर, चूढेश्वर, धनेश्वर, भूतेश्वर, मानेश्वर, महामानणेश्वर आदि के रूप में शिव पूजा प्रचलित है[70]। इसके अतिरिक्त यहां दुर्गा, काली, खतना देवी, देसुमाता, कियारीदेवी, डुण्डी देवी, तारा देवी, मनसा देवी, कामना देवी, रेलमूलदेवी आदि देवियां भी पूजी जाती है [71]।

शिमला मण्डल में श्रीकृष्ण, हनुमान्, सूर्यनारायण, राधा, सीता, राम, विष्णु, बद्रीनाथ, नाग, शिरगुल, धुनू, महाशु, शौली, खन्दू, बिजट, जथिया व बन्थरा आदि देवों के मन्दिर भी प्रतिष्ठित हैं [72]। इसके अतिरिक्त यहां अनेक बौद्धमठ, जैन मन्दिर, चर्च, मस्जिदें व गुरुद्वारों का भी उल्लेख है [73]। इस प्रकार शिमला मण्डल भी अनेक देव-देवालयों से प्रतिष्ठित है।

द्वादश सर्ग-

अन्तिम द्वादश सर्ग किन्नौर मण्डल पर आधारित है। इस में 'किन्नर' शब्द देववाची सिद्ध किया गया है [74]। यहां बौद्धधर्म का प्रचार प्रबल रहा [75], तसिंग, कानम, लियो, लिम्पा, थांगी, नेसांग, पांगी, पूह, नेथांग, चरांग, रिब्बा व जंगी आदि स्थानों में अनेक बौद्धमठ विराजमान हैं [76]। किन्नौर में किन्नर कैलाश, कोठी में चण्डी धाम, गौरीधाम, निचार में चित्ररेखा देवी के मन्दिर आस्था के केन्द्र हैं [77]। कटगांव में महेश्वर मन्दिर, कोठी में भैरव मन्दिर, छिटकुल में मठी देवी, चिनी में काली माता आदि देवालय प्रसिद्ध हैं 7[8]। इसके अतिरिक्त मीरू, निचार, सपनी, भुस व नाथया आदि में नाग मन्दिरों की प्रतिष्ठा है।[79]

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि 'हिमाचलदर्शनम्' महाकाव्य में अनेक देव-देवालयों का वर्णन है। यद्यपि कविवर निराकार परमेश्वर को ही आराध्य के रूप में स्वीकार करते हैं तथापि हिमाचल में प्रचलित परम्परा को स्वीकार करते हुए उन्होंने अनेक देव-देवालयों का वर्णन किया है तथा जन-आस्था का महिमामण्डन किया है जो काव्यमार्ग में सर्वथा ग्राह्य व स्तुत्य है।

सन्दर्भ सूची -

1. द्र. हिमाचलदर्शनम् (महाकाव्यम्) डॉ. मनोहरलाल आर्य द्वारा विरचित, प्रणव प्रकाशन, काँगड़ा (हिमाचल प्रदेश) से सन् 2019 में प्रकाशित।
2. द्र. हिमाचलदर्शनम् - 1.75 - 84
3. द्र. हिमाचलदर्शनम् - 2.80
4. द्र. हिमाचलदर्शनम् - 2.81 - 82
5. द्र. हिमा.दर्श.- 3.57 - 58
6. द्र. हि.दर्श.- 3.59
7. द्र. हि.दर्श. - 3.3, 4, 13, 14
8. द्र. हि.दर्श.- 3.60
9. द्र. हि.दर्श.- 3.63
10. द्र. हि.दर्श.- 3.64
11. द्र. हि.दर्श.- 3.65
12. द्र. हि.दर्श.- 3.67
13. द्र. हि.दर्श.- 3.68
14. द्र. हि.दर्श.- 3.69
15. द्र. हि.दर्श.- 3.70
16. द्र. हि.दर्श.- 3.71,72
17. द्र. हि.दर्श.- 3.61-63
18. द्र. हि.दर्श.- 34.51-52
19. द्र. हि.दर्श.- 4.53, 54
20. द्र. हि.दर्श.- 4.57
21. द्र. हि.दर्श.- 4.55, 56
22. द्र. हि.दर्श.- 4.58-61
23. द्र. हि.दर्श.- 5.54, 55
24. द्र. हि.दर्श.- 5.56
25. द्र. हि.दर्श.- 5.57
26. द्र. हि.दर्श.- 5.58-59
27. द्र. हि.दर्श.- 5.60,61
28. द्र. हि.दर्श.- 5.62
29. द्र. हि.दर्श.- 5.64
30. द्र. हि.दर्श.- 5.65,66
31. द्र. हि.दर्श.- 6.121, 122
32. द्र. हि.दर्श.- 6.123
33. द्र. हि.दर्श.- 6.126
34. द्र. हि.दर्श.- 6.127
35. द्र. हि.दर्श.- 6.128, 129
36. द्र. हि.दर्श.- 7.62, 63
37. द्र. हि.दर्श.- 7.64
38. द्र. हि.दर्श.- 7.65-69,72,73
39. द्र. हि.दर्श.- 7.78-80
40. द्र. हि.दर्श.- 7.82,83,89
41. द्र. हि.दर्श.- 7.90
42. द्र. हि.दर्श.- 7.93
43. द्र. हि.दर्श.- 7.97
44. द्र. हि.दर्श.- 7.98
45. द्र. हि.दर्श.- 7.100
46. द्र. हि.दर्श.- 7.101
47. द्र. हि.दर्श.- 7.108
48. द्र. हि.दर्श.- 7.109
49. द्र. हि.दर्श.- 8.53
50. द्र. हि.दर्श.- 8.54
51. द्र. हि.दर्श.- 8.55
52. द्र. हि.दर्श.- 8.58
53. द्र. हि.दर्श.- 8.59
54. द्र. हि.दर्श.- 8.63
55. द्र. हि.दर्श.- 8.64
56. द्र. हि.दर्श.- 9.91, 92
57. द्र. हि.दर्श.- 9.4-20, 94
58. द्र. हि.दर्श.- 10.2
59. द्र. हि.दर्श.-10.39, 55
60. द्र. हि.दर्श.- 10.40
61. द्र. हि.दर्श.- 10.49
62. द्र. हि.दर्श.- 10.56
63. द्र. हि.दर्श.- 10.58, 59
64. द्र. हि.दर्श.- 10.61
65. द्र. हि.दर्श.- 10.62, 63
66. द्र. हि.दर्श.- 10.64
67. द्र. हि.दर्श.- 11.67
68. द्र. हि.दर्श.- 11.60
69. द्र. हि.दर्श.- 11.64
70. द्र. हि.दर्श.- 11.65
71. द्र. हि.दर्श.- 11.66
72. द्र. हि.दर्श.- 11.67,68
73. द्र. हि.दर्श.- 11.69
74. द्र. हि.दर्श.- 12.12-23
75. द्र. हि.दर्श.- 12.93.95
76. द्र. हि.दर्श.- 12.108
77. द्र. हि.दर्श.- 12.109
78. द्र. हि.दर्श.- 12.111
79. द्र. हि.दर्श.- 12.112

ISSN 2278 - 0327

पेरिस समझौता और भारत का विकासशील देशों की ओर कूटनीति : स्वरूप और संभावनाएं

डॉ. प्रणव कुमार
सहायक प्राध्यापक (सीनियर स्केल), राजनीतिक अध्ययन विभाग
दक्षिण बिहार केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गया, बिहार

सारांश-

प्रस्तुतशोध आलेख एक प्रयास है जिसके माध्यम से सबसे पहले जलवायु परिवर्तन के क्षेत्र में किया गया पेरिस समझौता का इस दृष्टि से मूल्यांकन किया गया है कि क्या विकसित देश उनके लिए तय की गयी जिम्मेवारियों का निर्वहन कर रही हैं या नहीं। और यह भी जानने का प्रयास है कि इस क्षेत्र में 'उत्तर-दक्षिण संवाद' और 'उत्तर-दक्षिण सहयोग' किस हद तक सफल रहा है। तत्पश्चात् यह विश्लेषित करता है कि भारत इस क्षेत्र में 'दक्षिण-दक्षिण सहयोग' के दायरे में किस हद तक विकासशील देशों के साथ ट्रेक-वन कूटनीति में संलग्न है और क्या किया जाना अपेक्षित है।

मुख्यशब्द- पेरिस समझौता, उत्तर-दक्षिण संवाद, उत्तर-दक्षिण सहयोग, दक्षिण-दक्षिण सहयोग, पूंजी, तकनीक

प्रस्तावना- आधुनिकीकरण और भूमंडलीकरण से प्रेरित विश्व में सुरक्षा के मायने प्रति-दिन बदल रहे हैं। अब यह केवल राष्ट्र-राज्यों के बीच युद्ध तक सीमित नहीं रह गया है। गैर-पारम्परिक और गैर-सैन्य सुरक्षा मामले आज विश्व का ध्यान इतिहास के किसी भी अन्य काल के तुलना से कहीं अधिक आकर्षित कर रहे हैं। चीन विषाणु ने स्वास्थ्य सुरक्षा को आज विश्वसमुदाय के लिए एक महत्वपूर्ण विषय के रूप में ला खड़ा कर दिया है। पर शायद उससे भी अधिक लम्बे समय से चर्चा के केंद्र में है जलवायविक परिवर्तन का मुद्दा। शायद इसीलिए क्योंकि यह विश्व के सभी देशों को कमोवेश प्रभावित कर रहा है। और इसलिए भी क्योंकि इसका प्रभाव बहुत ही दूरगामी है। पेरिस समझौता (2015) जलवायविक परिवर्तन के प्रभाव पर नियंत्रण और इसके द्वारा हो चुके घातक प्रभावों को कम करने के दिशा में किया गया अभी तक का सबसे ऐतिहासिक अंतरराष्ट्रीय समझौता है। इस समझौते में विकसित देशों के लिए विशेष दायित्व तय किया गया है क्योंकि वो तकनीक, पूँजी और विकास के मामले में विकासशील देशों से बहुत ही आगे हैं। परन्तु इस दिशा में कई प्रश्न हैं जिन पर ध्यान देने की आवश्यकता है। प्रथमत:, क्या विकसित देश सही अर्थों में किस हद तक उनके लिए तय किये गए मानदंडों पर खरे उतरे हैं? यदि यथार्थवादी दृष्टिकोण से देखा जाय तो क्या यह सम्भव है कि विकसित देश विकासशील देशों के ओर अपने जिम्मेवारियों का निर्वहन कर रहे हैं और करेंगे? क्या जलवायविक परिवर्तन के क्षेत्र में उत्तर-दक्षिण संवाद और उत्तर-दक्षिण सहयोग के इतर दक्षिण-दक्षिण सहयोग का किस हद तक गुंजाईश है ? भारत इस दिशा में किस हद तक क्रियाशील है और भविष्य में भारत ट्रेक-वन स्तर पर क्या-क्या कर रहा है और क्या-क्या कर सकता है?

विकसित देशों की जिम्मेवारी: मिथक और यथार्थ

पेरिस समझौता के दस्तावेज़ को यदि ध्यान से देखा जाय तो यह स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है कि इसके मूल में है 'आम परन्तु विभेदित जिम्मेवारी'। अत: संभ्रांत और विकसित देशों को अतिरिक्त जिम्मेदारी दी गयी है और यह तार्किक भी है क्योंकि वो न सिर्फ तकनीकि रूप से अधिक सक्षम हैं बल्कि उनके पास पर्याप्त पूँजी भी है। साथ ही औद्योगीकरण के दौर में यदि किसी ने प्रकृति का सब से अधिक दोहन किया है तो वो हैं सयुंक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन,जर्मनी और जापान जैसे विकसित देश। उनकी विकसित होने की पहचान प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध और अतार्किक दोहन पर निर्भर रही है। पर्यावरणीय संकटों के सृजन में पृथ्वी के प्रति उनका भौतिकवादी सोच और निश्चयवादी दर्शन मूल कारण रहे हैं। साथ ही यदि 'निर्भरता सिद्धांत' की विवेचना पर विश्वास किया जाय तो यह देखा जा सकता है कि विकसित देशों की विकास एक स्वतंत्र प्रक्रिया नहीं है बल्कि यह बहुत हद तक इस बात पर निर्भर रही है कि उन्होंने भारत और अन्य विकासशील देशों का ऐतिहासिक रूप से किस हद तक प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से दोहन और शोषण किया है। अत: 'आम परंतु विभेदित जिम्मेवारी' न सिर्फ एक नैतिक मुद्दा है परन्तु साथ ही यह ऐतिहासिक तथ्यों पर भी आधारित है। आज पेरिस समझौता के यथार्थ में आये हुए छ: वर्ष हो चुके हैं परन्तु क्या इन छ: वर्षों में विकसित देशों ने 'आम परन्तु विभेदित जिम्मेदारी'के अंतर्गत

उन पर दिए गए जिम्मेदारियों का सही अर्थों में पालन कर रहे हैं या नहीं यह ध्यान देने योग्य बात है।

जून 2021 में संपन्न जी-सात की 47वीं बैठक कॉर्नवेल, ब्रिटेन में संपन्न हुई। जिसमें विश्व के सात संपन्न देशों-कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका, यूनाइटेड किंगडम, फ्रांस, जर्मनी, इटली और जापान-के अतिरिक्त यूरोपीयन संघ भी शामिल हुए। ब्रिटेन की अध्यक्षता में हुए इस बैठक में साश्वत विकास एक महत्वपूर्ण मुद्दा रहा और विश्व के संभ्रांत देशों के समूह ने जलवायु परिवर्तन के मुद्दे को एक गंभीर चुनौती मानते हुए इससे लड़ने के लिए सामूहिक प्रयास का आह्वान किया, साथ ही इस पर भी जोर दिया कि इस दिशा में वो विकासशील देशों को भी सहायता करेंगे। परन्तु यदि जी-सात के दस्तावेजों और घोषणापत्रों को ध्यान से देखें तो पायेंगे की ये दावे खोखले हैं और और उन्होंने गंभीरता से इस विषय पर कोई प्रयास नहीं कर रहे हैं बल्कि केवल दिखावा और सांकेतिकता के लिए ये बातें कर और कह रहे हैं। इस बैठक में भारत को भी आमंत्रित किया गया था। भारत के प्रधानमन्त्री इस बैठक में आभासी माध्यम से जुड़े (MEA 2021) और पेरिस समझौते और अन्य ज्वलंत मुद्दों पर विकासशील देशों के पक्ष को दृढ़ता से रखा।

उससे पहले मई 2021 में यूरोपीयन संघ और भारत पोर्टो में जलवायु परिवर्तन के मुद्दे पर सहयोग करने के उद्देश्य से हाइब्रिड माध्यम से मिले और जलवायु परिवर्तन के मुद्दे पर सहयोग के लिए संयुक्त घोषणा-पत्र जारी किया। जिसके माध्यम से 2020 में इसी तरह के एक अन्य बैठक में तैयार 2025 के रोड-मैप को पालन करने पर जोर दिया। पेरिस समझौते के अगले वर्ष अर्थात् 2016 से ही भारत और यूरोपीय संघ 'स्वच्छ ऊर्जा और जलवायविक साझेदारी (CECP) पर सहयोग करते आ रहे हैं। जिसके अंतर्गत भारत और यूरोपीयन संघ स्वच्छ ऊर्जा, ऊर्जा दक्षता, जलवायु कार्यवाही जैसे मुद्दों पर बातचीत और सहयोग के लिए दृढ संकल्पित दिखे। इस सहयोग के अंतर्गत मुख्य रूप से ऊर्जा-दक्ष भवनों का निर्माण, सौर-ऊर्जा और पवन-ऊर्जा पर निर्भरता बढ़ाना, स्मार्ट ग्रिडों का निर्माण, जैसे मुद्दे प्रमुख हैं। यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि भारत और फ्रांस ने पेरिस समझौते के दौरान ही वैश्विक सौर-ऊर्जा गुट के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी (EU 2016)।

ठीक उसी तरह से अफ्रीका और यूरोपीयन संघ के बीच पर्यावरण और ऊर्जा के क्षेत्र में सहयोग की चर्चा होते रहता है। 2021 में अफ्रीका-यूरोपीयन संघ ऊर्जा साझेदारी पर बैठक की गयी। जिसमें साश्वत विकास पर जोर देते हुए समृद्धि के लिए ऊर्जा आवश्यकताओं पर बल दिया गया। यह इस तरह की न तो पहली बैठक है और न ही पहला प्रयास। इससे पहले भी यूरोप के देश इस तरह के कई समझौते और प्रयास अफ्रीका और दक्षिण के अन्य देशों के साथ करते रहे हैं। मार्च2020 में यूरोपीयन संघ ने अफ्रीका से संबंधों को दिशा देने के लिए एक व्यापक रणनीति की घोषणा की। इस व्यापक मसौदे में पर्यावरणीय सहयोग पर सबसे अधिक जोर दिया गया। परन्तु यह भी सत्य है कि इस तरह के उपाय ऊर्जा के मांग में बहुत ही कम मात्रा में कमी ला सकता है। साथ ही इनके माध्यम से ग्लोबल वार्मिंग पर बहुत सीमित रूप से ही लगाम लगाया जा सकता है। इनका महत्व सांकेतिक ही प्रतीत होता है।

जी-सात और इस प्रकार के अन्य घटनाक्रमों से यह समझा जा सकता है कि विश्व के समृद्ध देश विकासशील देशों को खुले ह्रदय से पूंजी और तकनीकी सहायता देने में बहुत ही गंभीर नहीं रहे हैं। यूरोपीय संघ तो फिर भी जलवायु परिवर्तन के कुछ मुद्दे पर सक्रिय लगता है। अमेरिका जैसे देश जो आज प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से सबसे बड़ा प्रदूषक है इस समस्या के समाधान के और कदम न बढाकर दक्षिण के देशों के ऊपर इस समस्या की जिम्मेवारी थोपकर अपना पल्ला झाड़ते रहे हैं। यदि विश्व के प्रति व्यक्ति ऊर्जा उपभोग की प्रवृत्ति देखा जाय, भारत और चीन जैसे देशों के तुलना में अमेरिका बहुत ही आगे है। इस मामले में तथाकथित विकसित स्केंडिनेविया के देश अमेरिका से भी बहुत आगे रहे हैं। सही अर्थों में किसी भी देश का कार्बन प्रदूषण को मापने का प्रति व्यक्ति ऊर्जा खपत से भी अधिक महत्वपूर्ण मापक है प्रति व्यक्ति वस्तुओं और सेवाओं की खपत, क्योंकि कई बार यह दिखाने के लिए कि घरेलू स्तर पर कार्बन उत्सर्जन कम किया जा रहा है विकसित देश अन्य देशों में उत्पादित ऐसे वस्तुओं का आयात कर लेते हैं और सेवाओं का आउटसोर्सिंग कर देते हैं जो अधिक कार्बन उत्सर्जित करने में सहायक हैं। यह ध्यातव्य है कि चीन आज विनिर्मित वस्तुओं का एक बड़ा केंद्र है। चीन 2006 में अपने सकल घरेलू उत्पाद का 36 प्रतिशत निर्यात करता था जो हाल में 2020 में भी सकल घरेलू उत्पाद का 18.5 प्रतिशत निर्यात करता है (The Global Economy 2021)। अत: यदि सूक्ष्म स्तर पर विश्लेषण करें तो यह कहना अनुचित नहीं होगा कि यदि चीन जैसे देश कार्बन उत्सर्जन के लिए यदि उत्तरदायी हैं तो वो देश भी कम उत्तरदायी नहीं हैं जो इन वस्तुओं का आयात कर रहे हैं। घरेलू स्तर पर कम कार्बन उत्सर्जित करने वाले वस्तुओं के खपत को बढ़ावा दिए बिना कार्बन उत्सर्जन को नियंत्रित किया जाना संभव नहीं लगता है। ठीक

उसी तरह से सेवा क्षेत्र को भी अधिक ऊर्जा खपत वाला क्षेत्र माना जाता है। विकसित देश सेवा क्षेत्र के कई कार्यों को दूसरे देशों को आउटसोर्स करके अपना कार्य तो निकाल लेते हैं पर कार्बन उत्सर्जन की जिम्मेवारी उन देशों पर थोप देते हैं जहाँ उन्होंने इनको आउटसोर्स किया है। भारत और अन्य विकासशील देश भी इस कलुषित मानसिकता वाले रणनीति का एक शिकार रहे हैं।

इन उदाहरणों से यह समझा जा सकता है कि भूमंडलीय तापन की परिघटना को नियंत्रित करने से सम्बन्धित 'उत्तर-दक्षिण संवाद' और 'उत्तर-दक्षिण सहयोग' एक छलावा से अधिक कुछ भी नहीं हैं। विकसित देशों की पदार्थवादी और निश्चयवादी सोच पृथ्वी के लिए एक गंभीर संकट पैदा कर रहा है। और वो दक्षिण के देशों के साथ न तो सहयोग कर रहे हैं और न ही पेरिस समझौते में उनके लिए निर्धारित दायित्वों का ही सही अर्थों में निर्वहन। शायद इसलिए की अभी भी उन्हें लगता है की जलवायु परिवर्तन से शायद वो इतना प्रभावित नहीं होंगें जितना दक्षिण के देश। अत:, 'उत्तर-दक्षिण संवाद' और 'उत्तर-दक्षिण सहयोग' से हट कर सोचने की आवश्यकता है।

दक्षिण-दक्षिण सहयोग और भारत- यह माना जा रहा है कि 'दक्षिण-दक्षिण सहयोग' और त्रिकोणीय सहयोग साश्वत विकास और जलवायविक परिवर्तन के क्षेत्र में दूरगामी कदम हो सकते हैं। 'जलवायु परिवर्तन पर संयुक्तराष्ट्र के फ्रेमवर्क सम्मेलन (NFCCC)' के तत्वाधान में किये गए पेरिस समझौता के क्रियान्वयन में दक्षिण-दक्षिण सहयोग की भूमिका को स्वीकार करते हुए 'दक्षिण-दक्षिण सहयोग एक्शन प्लान' की परिकल्पना की गयी है। जिसमें वैश्विक दक्षिण के देशों के मध्यज्ञान, सर्वश्रेष्ठ तरीका (प्रथा) और अनुभव को स्वैच्छिक रूप से साझा करने पर बल दिया गया है। इस सन्दर्भ में भारत का उत्तरदायित्व महत्वपूर्ण हो जाता है। क्योंकि चीन अभी अपने भूराजनीतिक और भू-आर्थिक हितों के साधन में इतना व्यस्त हो गया है कि दक्षिण के सामूहिक हितों की न तो उसे चिंता है और न ही मंशा। भारत की विश्व दृष्टि केवल भूराजनीतिक हितों के द्वारा प्रेरित नहीं रही है। हमने पहले भी दिखाया है कि भारत अपने हितों का ध्यान तो रखता है पर कभी भी किसी देश के हितों की अनदेखी नहीं करता है। यदि भारत ने कभी भी कड़ा रुख अपनाया है तो तभी जब इसके राष्ट्रीय हितों को किसी ने चुनौती दी हो।

भारत की विदेश नीति और कूटनीति 'वसुधैव कुटुम्बकम्' और 'सर्वे भवन्तु सुखिन:, सर्वे सन्तु निरामय:' की विश्व दृष्टि से प्रेरित रही है। जैसा कि पहले भी वर्णित किया गया है कि आज वसुधा के लिए यदि कोई समस्या सबसे गंभीर चुनौती पेश कर रहा है तो वो है जलवायु परिवर्तन। यह यदि नियंत्रण में नहीं लाया गया तो शायद इसके कारण जल-स्तर में वृद्धि कई द्वीपों को लील जाए और कई तटीय क्षेत्रों को डूबा दे। विश्व के सुख, समृद्धि और स्वास्थ्य के लिए भी यदि कोई सबसे बड़ी चुनौती है तो वो है जलवायविक परिवर्तन। दिल्ली में 2019 में आयोजित मरुस्थलीकरण के समस्या से लड़ने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ की सम्मेलन में भी कार्बन उत्सर्जन और निर्वनीकरण की चुनौतियों से लड़ने के लिए दक्षिण-दक्षिण सहयोग का आवाहन किया (Gupta 2019)। भारत द्विपक्षीय व बहुपक्षीय स्तर पर जलवायु परिवर्तन से सम्बंधित शमन और अनुकूलन प्रयासों को केंद्र में रख कर अनेक कूटनीतिक कदम उठा रहा है।

यहाँ तक कि चीन जैसे प्रतिद्वंदी और प्रतिस्पर्धी राष्ट्र-राज्य के साथ भी भारत जलवायु परिवर्तन के क्षेत्र में सहयोग के लिए रूप रेखा तैयार करते रहा है। वस्तुत: जलवायु परिवर्तन एक ऐसा मुद्दा रहा है जहाँ भारत और चीन के हित सम्प्रति और आने वाले समय में मिलता हुआ दिख रहा है। भारत और चीन ने जलवायु परिवर्तन के क्षेत्र में 2015 में भारत के प्रधानमंत्री के चीन की यात्रा की और एक संयुक्त वक्तव्य जारी किया जिसमें न सिर्फ 'जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र के फ्रेमवर्क सम्मेलन (NFCCC)' और 'क्योटोप्रोटोकोल' में विश्वास जताया गया और उन्हें सशक्त करने की दिशा में और सार्थक प्रयास करने के लिए संकल्प लिया गया बल्कि इस क्षेत्र में द्विपक्षीय सहयोग को बढ़ावा देने पर भी विशेष बल दिया गया।

जलवायु परिवर्तन के मुद्दे पर दक्षिण के कुछ देशों के साथ मिलकर भारत ने एक छोटे समूह के निर्माण में भी भूमिका निभायी है। इस समूह को बेसिक (BASIC) समूह भी कहा जाता है जिसमें भारत के अलावा चीन, ब्राजील और दक्षिण अफ्रीका सदस्य हैं। हाल ही में (2021) आयोजित जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र के फ्रेमवर्क सम्मेलन (UNFCCC)' के सदस्यों की 26वीं बैठक (COP26) में इस समूह ने विकसित देशों से प्रत्येकवर्ष 100 अरब अमेरिकी डॉलर राशि की जलवायु वित्त कोष की मांग की। यह समूह विकासशील देशों का प्रतिनिधित्व करने वाले महादेशों एशिया, अफ्रीका और लेटिन अमेरिका के तुलनात्मक रूप से अधिक संपन्न और प्रभावशाली देश हैं। पेरिस समझौता विकसित देशों के लिए यह भी तय करता है कि वो विकासशील देशों को जलवायु परिवर्तन के क्षेत्र में तकनीक और पूंजी का सहयोग दे। अत: बेसिक समूह का यह मांग पेरिस समझौता को लागू करने

के दिशा में एक अर्थपूर्ण पहल है और विकसित देश यदि यह नहीं करते हैं तो सही अर्थों में पेरिस समझौते के भविष्य पर प्रश्न चिह्न लगा रहेगा। विकासशील देशों द्वारा इस तरह के दवाब बनाये रखना होगा।

निश्चित रूप से पर्यावरण और जलवायु से सम्बंधित अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं और संगठन विश्व के शक्तिशाली देशों के चंगुल में फंसे हुए हैं। इनको और उत्तरदायी और न्यायपूर्ण बनाने के लिए इसमें दक्षिण के देशों का प्रभाव बढ़ाना पड़ेगा। जो केवल कुछ देशों के द्वारा दवाब बनाये जाने के द्वारा नहीं होगा। इस मुद्दे को एक आन्दोलन का स्वरूप देने की आवश्यकता है। जिसमें अधिक से अधिक विकासशील देशों की भागेदारी तय करने की आवश्यकता है। अधिकतर छोटे विकासशील देश अभी भी यूरोपीयन देशों, अमेरिका, चीन और जापान जैसे देशों द्वारा प्रभावित हैं। इसका मुख्य कारण है कि इन प्रभावशाली देशों द्वारा 'हार्ड पावर' का अधिक प्रभावशाली प्रयोग। चाहे वो आर्थिक कूटनीति के माध्यम से हो, भय के माध्यम से या आर्थिक निर्भरता के माध्यम से। इसलिए भारत, ब्राजील और दक्षिण अफ्रीका ही ऐसे देश हैं जो छोटे और तुलनात्मक रूप से कम शक्तिशाली विकासशील देशों को यह एहसास दिलवा पायें कि जलवायु परिवर्तन से सम्बन्धित समस्याएं दक्षिण के देशों को अधिक गंभीरता से प्रभावित कर सकते हैं। साथ ही उन्हें प्रेरित कर सकते हैं कि वो प्रभावशाली देशों के प्रभाव से स्वतंत्र होकर अपने राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखकर फैसले लें। छोटे और सांकेतिक सहायता से खुश न होकर वो जलवायु परिवर्तन के दूरगामी प्रभाव को ध्यान में रखें और अपने रणनीतिक स्वायत्तता को बनाते हुए शक्तिशाली देशों पर एकजुट होकर दवाब बनाएं। जिससे जलवायु से सम्बन्धित संस्थाओं को शक्ति–असंतुलन की छाया से बचाया जा सके, और साथ ही विकसित देशों को बाध्य किया जाए कि पेरिस समझौता में उनके लिए तय की गयी जिम्मेदारियों का निर्वहन करें और केवल दिखावा कि लिए कदम न उठायें।

भारत इस दिशा में कार्यरत भी है। इसलिए इस मुद्दे पर भारत विकसित देशों के आँखों में चुभने भी लगा है। पर महान राष्ट्र के ऊपर महान उत्तरदायित्व भी होता है। अत: भारत को इन सब बातों की चिंता किये बिना जलवायु परिवर्तन के क्षेत्र में अधिक न्यायपूर्ण व्यवस्था के लिए प्रयासरत रहना चाहिए। साथ ही भारत को अन्य विकासशील देशों के साथ मिलकर शोध और अध्ययन करते रहना चाहिए जिससे वैज्ञानिक और तर्कपूर्ण ढंग से अपने बात को रख सकें और वैश्विक पर्यावरणीय न्याय सुनिश्चित करवा पायें।

उपसंहार– पेरिस समझौता जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों के शमन और आगे आने वाले दुष्प्रभावों का दमन की दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रस्थान बिन्दु है जो क्योटो प्रोटोकोल के धरातल पर स्थित है। इसमें विकसित देशों के लिए कई जिम्मेवारियां तय की गयी हैं। परन्तु विकसित देश अपने जिम्मेवारियों को न निभाकर केवल दिखावे की राजनीति कर रहे हैं। 'उत्तर–दक्षिण संवाद' और 'उत्तर–दक्षिण सहयोग' के सारे प्रयास खोखले और प्रभावहीन लग रहे हैं। अत: दक्षिण–दक्षिण सहयोग एक वैकल्पिक परन्तु सार्थक उपाय है। इस सहयोग में भारत की महती भूमिका है और इस दिशा में भारत एक प्रभावशाली देश के रूप में उभरा भी है।

संदर्भ सूची–

- EU (2016). EU and India agree on clean energy and climate partnership. https://ec.europa.eu/clima/news-your-voice/news/eu-and-india-agree-clean-energy-and-climate-partnership-2016-03-31_en
- EU (2021). The EU and India pledge to collaborate more closely on climate actionhttps://ec.europa.eu/clima/news-your-voice/news/eu-and-india-pledge-collaborate-more-closely-climate-action-2021-05-11_en
- EU (2020). Bilateral and regional cooperation. https://ec.europa.eu/environment/international_issues/relations_africa_en.htm.
- Gupta, J. (2019). India promotes South-South cooperation, but key questions unaddressed. The Third Pole. https://www.thethirdpole.net/en/climate/india-promotes-south-south-cooperation-but-key-questions-unaddressed
- IISD (2021). Africa-EU Energy Partnership (AEEP) Forum 2021. https://sdg.iisd.org/events/africa-eu-energy-partnership-aeep-forum-2021/
- MEA (2021) https://mea.gov.in/pressreleases.htm?dtl/33905/Prime_Ministers_ participation_in_47th_G7_Summit
- MEA (2015). Joint Statement on Climate Change between India and China during Prime Minister's visit to China. https://mea.gov.in/bilateral-documents.htm?dtl/25238/
- Sen, Amiti (2021). COP26: India, Brazil, China, S. Africa demand $100-b climate finance support.https://www.thehindubusinessline.com/news/cop-26-india-brazil-south-africa-china-demand-roadmap-for-100-billion-climate-finance-support/article3727999
- The Global Economy (2021). China: Exports, percent of GDPhttps://www.theglobaleconomy.com/china/exports/
- UNOSSC (2021). South-South Cooperation on Climate Action. https://www.unsouthsouth.org/climate/

ISSN 2278 - 0327

नियमित विद्यार्थियों की व्यावसायिक रुचियों का अध्ययन

संजीव कुमार
शोधकर्ता
जनार्दन राय नागर राजस्थान विद्यापीठ
(डीम्ड. टू. बी.) विश्वविद्यालय, उदयपुर, राज.

डॉ. सुनीता मुर्डिया
पर्यवेक्षक, (एसोसिएट प्रोफेसर)
जनार्दन राय नागर राजस्थान विद्यापीठ
(डीम्ड. टू. बी.) विश्वविद्यालय, उदयपुर, राज.

सारांश:-

व्यावसायिक रूचि से तात्पर्य व्यवसाय विशेष के प्रति रूचि से है। प्रत्येक विद्यार्थी की व्यवसाय के प्रति रूचि अलग-अलग होती है। किन्हीं दो विद्यार्थियों की एक ही व्यवसाय के प्रति एक समान रूचि होना मुश्किल है। विद्यार्थी अपनी रूचि के अनुसार ही व्यवसाय को चुनता है। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य स्नातक स्तर पर अध्ययनरत नियमित विद्यार्थियों की व्यावसायिक रूचियों का अध्ययन करना है। न्यादर्श के रूप में 200 विद्यार्थियों को जिला बरेली के विभिन्न महाविद्यालयों से यादृच्छिक न्यादर्श विधि द्वारा चुना गया है। आंकड़े संग्रहण हेतु 'डॉ. एस. पी. कुलश्रेष्ठ द्वारा निर्मित व्यावसायिक रूचि प्रपत्र' का प्रयोग किया गया। शोध में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया। अध्ययन के आंकड़ों का विश्लेषण मध्यमान, प्रमाप विचलन, प्रमाणिक त्रुटि और टी-परीक्षण द्वारा किया गया। शून्य परिकल्पना का स्वीकरण तथा अस्वीकरण 0.05 सार्थकता स्तर पर किया गया।

प्रस्तावना:-

प्रत्येक विद्यार्थी व्यक्तिगत रूप से भिन्न होता है। इसी विभिन्नता के आधार पर प्रत्येक विद्यार्थी अपने लिए अलग-अलग मार्गों को चुनाव करता है। जेम्स ड्रेवर (आर.ए.शर्मा.2008, शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार, इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस मेरठ.) के अनुसार-'औसत समूह से मानसिक एवं शारीरिक विशेषताओं के सन्दर्भ में समूह रूप में भिन्नता या अन्तर को व्यैक्तिक भेद कहते हैं'। शारीरिक एवं मानसिक रूप में विभिन्नता के साथ -साथ पढ़ने-लिखने, खेलने एवं रूचियों में भी विभिन्नता पाई जाती है। विद्यार्थी अपनी रूचि विशेष के अनुसार ही अपनी पढ़ाई या व्यावसायिक क्षेत्र को चुनता है। विद्वानों ने विभिन्न व्यावसायिक क्षेत्रों को प्रस्तुत किया है जैसे- साहित्य, वैज्ञानिकता, कला, कृषि, शिक्षण, प्रशासन आदि। विद्यार्थी अपनी रूचि के अनुसार उपर्युक्त क्षेत्रों में से किसी भी क्षेत्र में नौकरी या व्यवसाय को चुनकर अपना जीवन यापन करता है।

व्यावसासिक रूचि -

डॉ. एस. पी. कुलश्रेष्ठ के अनुसार -'व्यावसायिक रूचि की पहचान व्यक्ति की प्राथमिकता, अभिवृत्ति, पसन्द, न पसन्द बुद्धिमत्ता पूर्ण अथवा अबुद्धिमत्ता पूर्ण निर्णय स्वयं या अन्य श्रोतों के आधार पर दिये गये व्ययसायों में से किसी एक व्यावसायिक क्षेत्र के चुनाव करने की क्रिया के रूप में की जा सकती है' (2012, कैलाश कुमारी पृ0 89)।

जॉन्स (1978) के अनुसार 'व्यावसायिक रूचि का अर्थ समग्र रूप से व्यवसाय के प्रति रूचि से है। इसका अर्थ व्यवसाय के प्रत्येक कार्य में आनंद प्राप्त करना है या वास्तविक रूप से उसको उस कार्य से सन्तोष मिलना है' (गुप्त.कुमार उमेश 2012, पृ0 12)।

प्रस्तुत शोध कार्य में ''व्यावसायिक रूचि का अभिप्राय नियमित विद्यार्थियों की साहित्य, वैज्ञानिकता, प्रशासनिक, व्यावसायिक, संरचनात्मक, कृषि, प्रत्यकारिता, सामाजिक, कलाकारी तथा गृहसामग्री क्षेत्रों में रूचि से है''।

समस्या कथन:-'नियमित विद्यार्थियों की व्यावसायिक रूचियों का अध्ययन' करना।

उद्देश्य:-

प्रस्तुत अध्ययन के उद्देश्य इस प्रकार है-

1. नियमित छात्र और छात्राओं की व्यावसायिक रूचियों का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. नियमित ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों कीव्यावसायिक रूचियों का तुलनात्मक अध्ययन करना।

शोध परिकल्पनाएं:-

प्रस्तुत अध्ययन की परिकल्पनाएं इस प्रकार हैं।

1. नियमित छात्र एवं छात्राओं की व्यावसायिक रूचियों में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता ।
2. नियमितग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों की व्यावसायिक रूचियों में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता।

समस्या का परिसीमनः-

1. प्रस्तुत शोध अध्ययन बरेली जिले तक ही सीमित रखा गया है।
2. प्रस्तुत शोध अध्ययन में महाविद्यालय में स्नातक अन्तिम वर्ष में अध्ययनरत विद्यार्थियों का ही चयन किया गया है।
3. प्रस्तुत शोध अध्ययन में केवल नियमित विद्यार्थियों का ही चयन किया गया है।
4. प्रस्तुत शोध अध्ययन हेतु चयनित विद्यार्थियों की व्यावसायिक रूचियों का ही अध्ययन किया गया है।
5. प्रस्तुत शोध अध्ययन में केवल सर्वेक्षण विधि का ही प्रयोग किया गया है।

न्यादर्श एवं शोध विधिः-

प्रस्तुत अध्ययन हेतु जिला बरेली के महाविद्यालयों में अध्ययनरत 200 विद्यार्थियों का चयन न्यादर्श के रूप में किया गया। बरेली जिले के अन्तर्गत 115 महाविद्यालयों में स्नातक और परास्नातक स्तर पर शैक्षणिक कक्षाओं का संचालन किया जा रहा है। शोधार्थी ने 115 महाविद्यालयों की सूची बनायी तथा महाविद्यालयों के नाम की 115 पर्चियां बना लीं। पर्चियों को एक गत्ते के डिब्बे में डालकर हिलाया। लॉटरी विधि द्वारा 10 पर्चियां डिब्बे में से निकाली। लॉटरी द्वारा चयनित 10 महाविद्यालयों में शोधार्थी गया। प्रत्येक महाविद्यालय में से स्नातक कक्षा की तृतीय वर्ष में अध्ययन कर रहे केवल 20 विद्यार्थियों को ही सोद्देश्य न्यादर्शन चयन विधि द्वारा चुना गया। इस प्रकार शोध कर्ता द्वारा 200 न्यादर्श का चयन कर लिया गया। शोध कर्ता ने इस शोध कार्य में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया है।

उपकरणः-प्रस्तुत शोध अध्ययन में 'डॉ. एस. पी. कुलश्रेष्ठ द्वारा निर्मित व्यावसायिक रूचि प्रपत्र' का प्रयोग का प्रयोग किया गया है।

तथ्यों का विश्लेषण एवं व्याख्याः-

परिकल्पना 01:- नियमित छात्र एवं छात्राओं की व्यावसायिक रूचियों में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता ।

नियमितछात्र एवं छात्राओं की व्यावसायिक रूचियों का एक साथ एवं क्षेत्रवार मध्यमान,प्रमाप विचलन, प्रमाणिक त्रुटि,एवं टी-मान की तालिका का प्रस्तुतीकरण -

सारणी -1

न्यादर्श	न्यादर्श सं0	मध्यमान	मध्यमान में अन्तर	मानक विचलन	मानक त्रुटि	टी. मान	सार्थकतास्तर	
नियमित छात्र	100	106.42	9.96	28.45	3.96	2.51	0.05	
नियमित छात्रायें	100	116.38		27.31			स्वीकृत	
क्रम	क्षेत्र	नियमित विद्यार्थी		स्वपाठी विद्यार्थी				
		मध्यमान	प्रमाप विचलन	मध्यमान	प्रमाप विचलन	मध्यमान में अन्तर	मानक त्रुटि	टी-मान
1	साहित्य	9.75	3.48	10.92	2.86	1.17	0.44	2.65
2	वैज्ञानिकता	10.78	3.44	11.43	2.79	0.65	0.42	1.54
3	प्रशासनिक	11.29	3.89	11.94	3.50	0.65	0.51	1.27
4	व्यावसायिक	10.02	3.82	11.62	3.65	1.60	0.51	3.13
5	संरचनात्मक	9.90	4.36	11.53	4.02	1.63	0.59	2.76
6	कलाकारी	10.32	4.05	12.21	3.72	1.89	0.53	3.56
7	कृशि	11.O1	3.95	11.68	3.70	0.67	0.52	1.28
8	प्रत्ययकारिता	10.56	3.60	11.77	3.36	1.21	0.48	2.52
9	सामाजिक	12.27	3.90	11.92	3.25	0.35	0.50	.70
10	गृहसामग्री	10.30	3.55	11.93	3.03	1.63	0.45	3.62

उपर्युक्त सारणी संख्या 1 में नियमित छात्र और छात्राओं की व्यावसायिक रूचियों से सम्बन्धित दत्तों का विश्लेषण किया गया। विश्लेषण के आधार पर टी -मान 2.51 प्राप्त हुआ। डी.एफ. 198 का 0.05 सार्थकता स्तर पर टी- का मान 1.97 दिया गया है। दत्त विश्लेषण द्वारा प्राप्त मान (2.51) सारणी में दिये गये मान (1.97) से अधिक है। इस आधार पर शोध कर्ता द्वारा निर्मित शून्य परिकल्पना (नियमित छात्र और छात्राओं की व्यावसायिक रूचियों में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता) अस्वीकृत की जाती है। अत: परिणाम स्वरूप कहा जा सकता है नियमित छात्र और छात्राओं की व्यावसायिक रूचियों में सार्थक अन्तर होता है।

नियमित छात्र और छात्राओं की व्यावसायिक रूचियों से सम्बन्धित साहित्यक क्षेत्र का अध्ययन किया गया। नियमित छात्रों का मध्यमान 9.75 एवं छात्राओं का मध्यमान 10.92 और टी.मान 2.65 प्राप्त हुआ। नियमित छात्र और छात्राओं की व्यावसायिक रूचियाँ जैसे -पत्रिका सम्पादक, भाषा अनुवादक, समालोचक, पत्रकार, कवि, साहित्यक लेखक, भाषा विज्ञान विशेषज्ञ, नाटककार, महाकाव्य रचयिता, भाषा अध्यापक, इतिहास कार, काव्यकार, उपन्यासकार, मंच अनुवादक, कविता संग्रह करने वाला, साहित्य शोधकर्ता, नाटक का मूल्यांकन करने बाला, साहित्यक कार्य कर्ता, कथाकार एवं आलोचक आदि में अन्तर पाया गया। छात्राओं की व्यावसायिक रूचियां छात्रों की अपेक्षा श्रेष्ठ पायी गईं, तथा सभी छात्रायें अपनी-अपनी व्यावसायिक रूचियों से सन्तुष्ट हैं।

नियमित छात्र और छात्राओं की व्यावसायिक रूचियों से सम्बन्धित वैज्ञानिक क्षेत्र का अध्ययन किया गया। नियमित छात्रों का मध्यमान 10.78 एवं छात्राओं का मध्यमान 11.43 और टी.मान 1.54 प्राप्त हुआ। नियमित छात्र और छात्राओं की व्यावसायिक रूचियों जैसे -वैज्ञानिक, डॉक्टर, शिविल इन्जीनियर, स्वास्थ्य अधिकारी, कम्पाउन्डर, ज्योतिषी, परमाणु वैज्ञानिक, दवा बेंचने वाले फर्मों का प्रतिनिधि, वनस्पति शास्त्र, विज्ञान शिक्षक, मकैनिकल इन्जीनियर, रासायिनिक इन्जीनियर, पशु चिकित्सक, टीका लगाने वाला, कैमिस्ट, शल्य चिकित्सक, ओवर सियर, रासायिनिक पदार्थों के चिकित्सक, वैज्ञानिक यन्त्र निर्माता, बिजली इन्जीनियर आदि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है और सभी छात्र और छात्रायें अपनी-अपनी व्यावसायिक रूचियों से सन्तुष्ट है।

नियमित छात्र और छात्राओं की व्यावसायिक रूचियों से सम्बन्धित प्रशासनिक क्षेत्र का अध्ययन किया गया। नियमित छात्रों का मध्यमान 11.29 एवं छात्राओं का मध्यमान 11.94 और टी.मान 1.27 प्राप्त हुआ। नियमित छात्र और छात्राओं की व्यावसायिक रूचियों जैसे-सिटी मजिस्ट्रेट, न्याधीश, पुलिस इन्सपेक्टर, शिक्षक, संचालक, जिलाधीश, प्रधानाचार्य, तहसीलदार, कारखानों का सुपरिन्टेन्डेन्ट, आनरेरी मजिस्ट्रेट, सेना आफीसर, जहाज कप्तान, डिप्टी कलक्टर, प्रोवेजन आफीसर, राष्ट्रपति, उपराज्यपाल, अस्पताल का सुपरिन्टेन्डेन्ट, नगर का मेयर आदि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है और सभी छात्र और छात्रायें अपनी-अपनी व्यावसायिक रूचियों से सन्तुष्ट है।

नियमित छात्र और छात्राओं की व्यावसायिक रूचियों से सम्बन्धित व्यावसायिक क्षेत्र का अध्ययन किया गया। नियमित छात्रों का मध्यमान 10.02 एवं छात्राओं का मध्यमान 11.62 और टी.मान 3.13 प्राप्त हुआ। नियमित छात्र और छात्राओं की व्यावसायिक रूचियों जैसे-टाइपिस्ट, प्राइवेट सेक्रेटरी, दुकानदार, कम्पनी के एकाउन्टेन्ट, टिकिट बांटने बाला, मुनीम, शार्ट हैन्ड शिक्षक, वाणिज्य शिक्षक, दुकान पर लेन देन का हिसाब रखने वाला, खजांची,स्टैनो, प्रूफ रीडर, ड्राफ्ट मैन, आयकर विभाग वाला, टाइप सिखाने वाला, व्यापारिक एजेन्ट, सेल्स मैन, बही खाते का काम करने वाला, व्यापारिक व्यवस्थापक, कम्पनी में पत्र व्यहार करने बाला आदि में सार्थक अन्तर पाया गया तथा छात्राओं की व्यावसायिक रूचियाँ छात्रों से श्रेष्ठ हैं।

नियमित छात्र और छात्राओं की व्यावसायिक रूचियों से सम्बन्धित संरचनात्क क्षेत्र का अध्ययन किया गया। नियमित छात्रों का मध्यमान 9.90 एवं छात्राओं का मध्यमान 11.53 और टी.मान 2.76 प्राप्त हुआ। नियमित छात्र और छात्राओं की व्यावसायिक रूचियों जैसे- कागज के फूल बनाने वाला, लुहार, वर्कशाप, कलई करने बाला, रेडियो मकैनिक, रंगरेज, रचनात्मक विषयों का अध्यापक, जिल्दसाज, कपड़े धोने बाला, वर्कशाप में मिस्त्री, लकड़ी के खिलौने बनाने वाला, सूत कातने वाला, बैल्डिंग करने वाला, सुनार, बढ़ई, गाड़ियों की मरम्मत करने वाला, बुनाई करने वाला, जिल्दसाज, लघु उद्योग लगाने वाला,मिट्टी के बर्तन बनाने वाला राजपूत आदि में सार्थक अन्तर पाया गया तथा

संरचनात्क क्षेत्र में छात्राओं की व्यावसायिक रूचियाँ छात्रों से श्रेष्ठ हैं।

नियमित छात्र और छात्राओं की व्यावसायिक रूचियों से सम्बन्धित कलाकारी क्षेत्र का अध्ययन किया गया। नियमित छात्रों का मध्यमान 10.32 एवं छात्राओं का मध्यमान 12.21 और टी.मान 3.56 प्राप्त हुआ। नियमित छात्र और छात्राओं की व्यावसायिक रूचियों जैसे-संगीतकार, पेन्टर, कार्टून बनाने वाला, ललित कला शिक्षक, चित्रकार, फोटोग्राफर, मूर्तिकार, फिल्मी गायक, कलाकेन्द्र संचालक, गायक, रेडियो सिंगर, संगीत के यन्त्र बजाने वाला, बांसुरी बादक, संगीत निर्देशक, फिल्म कलाकार, वस्त्र डिजाइन कर्ता, स्टेज डाइरेक्टर,कलाकार कला आलोचक आदि कलाकारी सम्बन्धी व्यावसायिक रूचियों में सार्थक अन्तर पाया गया तथा कलाकारी क्षेत्र में छात्राओं की व्यावसायिक रूचियाँ छात्रों से श्रेष्ठ हैं।

नियमित छात्र और छात्राओं की व्यावसायिक रूचियों से सम्बन्धित कृषिक्षेत्र का अध्ययन किया गया। नियमित छात्रों का मध्यमान 11.01 एवं छात्राओं का मध्यमान 11.68 और टी.मान 1.28 प्राप्त हुआ। नियमित छात्र और छात्राओं की व्यावसायिक रूचियों जैसे-बाग लगाने वाला, किसान, पशु पालक, एग्रीकल्चर इंस्पेक्टर, बीजभन्डार, भूमिविशेषज्ञ, खाद्यविशेषज्ञ, कृषि अनुसन्धान कर्ता, ट्रेक्टर चालक, मुर्गीखाना चलाने वाले, कृषि शिक्षक, पौध तैयार करने वाला, खाद निर्माण कर्ता, सिंचाई करने वाला, अच्छी नस्ल के पशु तैयार करने बाला, पशु चिकत्सक, बागबानी करने बाला, कृषि साहित्य पढ़ने वाला, डेयरी संचालक, कृषक सहकारी संस्थान का कार्यकर्ता आदि कृषि सम्बन्धी व्यावसायिक रूचियों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है और सभी छात्र और छात्रायें अपनी-अपनी व्यावसायिक रूचियों से सन्तुष्ट हैं।

नियमित छात्र और छात्राओं की व्यावसायिक रूचियों से सम्बन्धित प्रत्ययकारिता क्षेत्र का अध्ययन किया गया। नियमित छात्रों का मध्यमान 10.56 एवं छात्राओं का मध्यमान 11.77 और टी.मान 2.52 प्राप्त हुआ। नियमित छात्र और छात्राओं की व्यावसायिक रूचियों जैसे- राजपूत, वकील, बीमा एजेन्ट, राजनीतिज्ञ, धर्म प्रचारक, ग्राम संरमंच, शिक्षक, टूरिस्ट गाइड, ठेकेदार सेल्स मैनेजर, विज्ञापन मैनेजर, प्रचारक, चुनाव लड़ने वाला, समाज में चेतना उत्पन्न करने,बाला,बीमा कम्पनी का आफीसर, विज्ञापन लेखक, आर्डर बुक करने वाला, व्यवसाय सलाहकार, राजनीतिक वक्ता, नये विचारों का प्रचारक राजपूत आदि में सार्थक अन्तर पाया गया तथा प्रत्ययकारिता क्षेत्र में छात्राओं की व्यावसायिक रूचियाँ छात्रों से श्रेष्ठ हैं।

नियमित छात्र और छात्राओं की व्यावसायिक रूचियों से सम्बन्धित सामाजिक क्षेत्र का अध्ययन किया गया। नियमित छात्रों का मध्यमान 12.27 एवं छात्राओं का मध्यमान 11.92 और टी.मान 0.70 प्राप्त हुआ। नियमित छात्र और छात्राओं की व्यावसायिक रूचियों जैसे- स्काउट, ग्राम, सेबक, समाज सुधारक, रेडक्रास कार्य कर्ता, अकाल पीड़ित सहायक, गूंगे बहरों का स्कूल खोलने बाला, प्राथमिक चिकित्सा, कल्याण समित कार्य कर्ता, मुफ्त दबाई बांटने वाला, अवैतनिक अध्यापक, मुफ्त सेवा करने वाला डॉक्टर, धर्म शाला बनवाने वाला, समाजसेवक, गरीब बच्चों को छात्रवृति देने वाला, स्वयं सेवक, गृह कला में निपुण आदि में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया तथा सभी सभी छात्र और छात्रायें अपनी-अपनी व्यावसायिक रूचियों से सन्तुष्ट है।

नियमित छात्र और छात्राओं की व्यावसायिक रूचियों से सम्बन्धित गृह सामग्री क्षेत्र का अध्ययन किया गया। नियमित छात्रों का मध्यमान 10.30 एवं छात्राओं का मध्यमान 11.93 और टी.मान 3.62 प्राप्त हुआ। नियमित छात्र और छात्राओं की व्यावसायिक रूचियों जैसे-गृहविज्ञान शिक्षक, गृह व्यवस्थापक, घर का बजट बनाने वाला, गृह कला प्रशिक्षक, घर बनाने वाला, बच्चों का पालन करने वाला, घर में फलों के मुरब्बा बनाने बनाने वाला, रोगी की देखभाल करने वाला, घर में सिलाई करने वाला, गृह शास्त्र शोध कर्ता, पाक विद्या विशेषज्ञ, घर में कढ़ाई करने वाला, घर में सिलाई करने वाला, गृह विज्ञान में उच्च डिग्री लेने वाला, रोगी परिचर्चा में रूचि लेने वाला, घर में रफू करने वाला, गृह विज्ञान की पुस्तक पढ़ने वाला, गृह प्रबन्धक, गृह प्राथमिक चिकित्सक, सेवा सुश्रुषा करने वाला आदि गृह सामग्री सम्बन्धी व्यावसायिक रूचियों में सार्थक अन्तर पाया गया तथा छात्राओं की व्यावसायिक रूचियाँ छात्रों से श्रेष्ठ हैं।

परिकल्पनाः- 2 नियमित शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की व्यावसायिक रूचियों में सार्थक अन्तर नहीं होता है।

ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों की व्यावसायिक रूचियों का एक साथ एवं अलग-अलग क्षेत्रवार मध्यमान, प्रमाप विचलन ,

प्रमाणिक त्रुटि, एवं टी–मान की तालिका का प्रस्तुतीकरण –

सारणी –2

न्यादर्श	न्यादर्श सं0	मध्यमान	मध्यमान में अन्तर	मानक विचलन	मानक त्रुटि	टी. मान	सार्थकतास्तर	
भाहरी विद्यार्थी	100	106.4	9.96	28.45	3.96	2.51	0.05	
ग्रामीण विद्यार्थी	100	116.4		27.31			स्वीकृत	
क्रम	क्षेत्र	नियमित विद्यार्थी		स्वपाठी विद्यार्थी				
		मध्यमान	प्रमाप विचलन	मध्यमान	प्रमाप विचलन	मध्यमान में अन्तर	मानक त्रुटि	टी–मान
1	साहित्य	10.58	3.24	10.99	3.46	0.41	0.46	0.89
2	वैज्ञानिकता	11.67	3.06	10.54	3.32	1.13	0.44	2.56
3	प्रशासनिक	11.96	3.71	11.27	3.63	0.69	0.50	1.38
4	व्यावसायिक	11.16	4.03	10.38	3.72	0.78	0.53	1.47
5	संरचनात्मक	11.27	3.98	9.98	4.37	1.29	0.59	2.18
6	कलाकारी	11.62	3.90	10.91	4.02	0.71	0.55	1.29
7	कृशि	11.78	3.87	10.63	3.82	1.15	0.53	2.16
8	प्रत्ययकारिता	11.72	3.80	10.55	3.28	1.17	0.48	2.43
9	कलाकारी	11.89	3.72	10.99	3.23	0.90	0.47	2.30
10	गृहसामग्री	11.54	3.06	10.64	3.73	0.90	0.47	2.30

उपर्युक्त सारणी संख्या 2 में नियमित शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की व्यावसायिक रूचियों से सम्बन्धित दत्तों का विश्लेषण किया गया। विश्लेषण के आधार पर टी –मान 1.90 प्राप्त हुआ। डी.एफ. 198 का 0.05 सार्थकता स्तर पर टी– का मान 1.97 दिया गया है। दत्त विश्लेषण द्वारा प्राप्त मान (1.90) सारणी में दिये गये मान (1.97) से अधिक है। इस आधार पर शोध कर्ता द्वारा निर्मित शून्य परिकल्पना (शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की व्यावसायिक रूचियों में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता) अस्वीकृत की जाती है। अत: परिणाम स्वरूप कहा जा सकता है कि शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की व्यावसायिक रूचियों में सार्थक अन्तर होता है।

नियमित शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की व्यावसायिक रूचियों से सम्बन्धित साहित्यक क्षेत्र का अध्ययन किया गया। शहरी विद्यार्थियों का मध्यमान 10.58 एवं ग्रामीण विद्यार्थियों का मध्यमान 10.99 और टी.मान 0.89 प्राप्त हुआ। शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की व्यावसायिक रूचियाँ जैसे –पत्रिका सम्पादक, भाषा अनुवादक, समालोचक, पत्रकार, कवि, साहित्यक लेखक, भाषा विज्ञान विशेषज्ञ, नाटककार, महाकाव्य रचयिता, भाषा अध्यापक, इतिहास कार, काव्य कार, उपन्यासकार, मंच अनुवादक, कविता संग्रह करने वाला, साहित्य शोध कर्ता, नाटक का मूल्यांकन करने वाला, साहित्यक कार्य कर्ता, कथाकार एवं आलोचक आदि में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया तथा सभी शहरी और ग्रामीण विद्यार्थी अपनी–अपनी व्यावसायिक रूचियों से सन्तुष्ट हैं।

नियमित शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की व्यावसायिक रूचियों से सम्बन्धित वैज्ञानिक क्षेत्र का अध्ययन किया गया। शहरी विद्यार्थियों का मध्यमान 11.67 एवं ग्रामीण विद्यार्थियों का मध्यमान 10.54 और टी.मान 2.56 प्राप्त हुआ। शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की व्यावसायिक रूचियों जैसे –वैज्ञानिक, डॉक्टर, शिविल इन्जीनियर, स्वास्थ्य अधिकारी, कम्पाउन्डर, ज्योतिषी, परमाणु वैज्ञानिक, दवा बेंचने वाले फर्मों का प्रतिनिधि, वनस्पति शास्त्र, विज्ञान शिक्षक, मकैनिकल इन्जीनियर, रासायिनिक इन्जीनियर, पशु चिकित्सक, टीका लगाने वाला, कैमिस्ट, शल्य चिकित्सक, ओवर सियर, रासायिनिक पदार्थों के चिकित्सक, वैज्ञानिक यन्त्र निर्माता, बिजली इन्जीनियर आदि में सार्थक अन्तर पाया गयातथा शहरी विद्यार्थियों की व्यावसायिक रूचियाँ ग्रामीण विद्यार्थियों की अपेक्षा श्रेष्ठ हैं।

नियमित शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की व्यावसायिक

रूचियों से सम्बन्धित प्रशासनिक क्षेत्र का अध्ययन किया गया। शहरी विद्यार्थियों का मध्यमान 11.96 एवं ग्रामीण विद्यार्थियों का मध्यमान 11.27 और टी.मान 1.38 प्राप्त हुआ। शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की व्यावसायिक रूचियों जैसे-सिटी मजिस्ट्रेट, न्याधीश, पुलिस इन्सपेक्टर, शिक्षक, संचालक, जिलाधीश, प्रधानाचार्य, तहसीलदार, कारखानों का सुपरिन्टेन्डेन्ट, आनरेररी मजिस्ट्रेट, सेना आफीसर, जहाज कप्तान, डिप्टी कलक्टर, प्रोवेजन आफीसर, राष्ट्रपति, उपराज्यपाल, अस्पताल का सुपरिन्टेन्डेन्ट, नगर का मेयर आदि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है तथा सभी शहरी और ग्रामीण विद्यार्थी अपनी-अपनी व्यावसायिक रूचियों से सन्तुष्ट है।

नियमित शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की व्यावसायिक रूचियों से सम्बन्धित व्यावसायिक क्षेत्र का अध्ययन किया गया। शहरी विद्यार्थियों का मध्यमान 11.16 एवं ग्रामीण विद्यार्थियों का मध्यमान 10.38 और टी.मान 1.47 प्राप्त हुआ। शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की व्यावसायिक रूचियों जैसे- टाइपिस्ट,प्राइवेट सेक्रेटरी, दुकानदार, कम्पनी के एकाउन्टेन्ट, टिकिट बांटने वाला, मुनीम, शार्ट हैन्ड शिक्षक, वाणिज्य शिक्षक, दुकान पर लेन देन का हिसाब रखने वाला, खजांची, स्टैनो, प्रूफरीडर, ड्राफ्ट मैन, आयकर विभाग वाला, टाइप सिखाने वाला, व्यापारिक एजेन्ट, सेल्स मैन, बही खाते का काम करने वाला, व्यापारिक व्यवस्थापक, कम्पनी में पत्र व्यहार करने वाला आदि में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया तथा सभी शहरी और ग्रामीण विद्यार्थी अपनी-अपनी व्यावसायिक रूचियों से सन्तुष्ट हैं।

नियमित शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की व्यावसायिक रूचियों से सम्बन्धित संरचनात्क क्षेत्र का अध्ययन किया गया। शहरी विद्यार्थियों का मध्यमान 11.27 एवं ग्रामीण विद्यार्थियों का मध्यमान 9.98 और टी.मान- 2.18 प्राप्त हुआ। शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की व्यावसायिक रूचियों जैसे- कागज के फूल बनाने वाला, लुहार, वर्कशाप, कलई करने वाला, रेडियो मकैनिक, रंगरेज, रचनात्मक विषयों का अध्यापक, जिल्दसाज, कपड़े धोने वाला, वर्कशाप में मिस्त्री, लकड़ी के खिलौने बनाने वाला, सूत कातने वाला, बैल्डिंग करने वाला, सुनार, बढ़ई, गाड़ियों की मरम्मत करने वाला, बुनाई करने वाला, जिल्दसाज, लघु उद्योग लगाने वाला, मिट्टी के बर्तन बनाने वाला राजपूत आदि में सार्थक अन्तर पाया गया तथा संरचनात्क क्षेत्र में शहरी विद्यार्थियों की व्यावसायिक रूचियाँ ग्रामीण विद्यार्थियों की अपेक्षा श्रेष्ठ हैं।

नियमित शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की व्यावसायिक रूचियों से सम्बन्धित कलाकारी क्षेत्र का अध्ययन किया गया। शहरी विद्यार्थियों का मध्यमान 11.62 एवं ग्रामीण विद्यार्थियों का मध्यमान 10.91 और टी.मान- 1.29 प्राप्त हुआ। शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की व्यावसायिक रूचियों जैसे-संगीतकार, पेन्टर, कार्टून बनाने वाला, ललित कला शिक्षक, चित्रकार, फोटोग्राफर, मूर्तिकार, फिल्मी गायक, कला केन्द्र संचालक, गायक, रेडियो सिंगर, संगीत के यन्त्र बजाने वाला, बांसुरी बादक, संगीत निर्देशक, फिल्म कलाकार, वस्त्र डिजाइन कर्ता, स्टेज डाइरेक्टर, कलाकार कला आलोचक आदि कलाकारी सम्बन्धी व्यावसायिक रूचियों में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया तथा कलाकारी क्षेत्र में सभी शहरी और ग्रामीण विद्यार्थी अपनी-अपनी व्यावसायिक रूचियों से सन्तुष्ट हैं।

नियमित शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की व्यावसायिक रूचियों से सम्बन्धित कृषिक्षेत्र का अध्ययन किया गया। शहरी विद्यार्थियों का मध्यमान 11.78 एवं ग्रामीण विद्यार्थियों का मध्यमान 10.63 और टी.मान 2.16 प्राप्त हुआ। शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की व्यावसायिक रूचियों जैसे-बाग लगाने बाला, किसान, पशु पालक, एग्रीकल्चर इंस्पेक्टर, बीजभन्डार, भूमिविशेषज्ञ, खाद्यविशेषज्ञ, कृषि अनुसन्धान कर्ता, ट्रेक्टर चालक, मुर्गीखाना चलाने वाले, कृषि शिक्षक, पौध तैयार करने वाला, खाद निर्माण कर्ता, सिंचाई करने बाला, अच्छी नस्ल के पशु तैयार करने वाला, पशु चिकत्सक, बागबानी करने वाला, कृषि साहित्य पढ़ने वाला, डेयरी संचालक, कृषक सहकारी संस्थान का कार्यकर्ता आदि कृषि सम्बन्धी व्यावसायिक रूचियों में सार्थक अन्तर पाया गया तथा कृषिक्षेत्र में शहरी विद्यार्थियों की व्यावसायिक रूचियाँ ग्रामीण विद्यार्थियों की अपेक्षा श्रेष्ठ हैं।

नियमित शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की व्यावसायिक रूचियों से सम्बन्धित प्रत्ययकारिता क्षेत्र का अध्ययन किया गया। शहरी विद्यार्थियों का मध्यमान 11.72 एवं ग्रामीण विद्यार्थियों का मध्यमान 10.55 और टी.मान-2.43 प्राप्त हुआ। शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की व्यावसायिक रूचियों जैसे- राजपूत, वकील, बीमा एजेन्ट, राजनीतिज्ञ, धर्म प्रचारक, ग्राम सरपंच, शिक्षक, टूरिस्ट गाइड, ठेकेदार सेल्स मैनेजर, विज्ञापन मैनेजर, प्रचारक, चुनाव लड़ने वाला, समाज में चेतना उत्पन्न करने वाला, बीमा कम्पनी का आफीसर, विज्ञापन लेखक, आर्डर बुक करने वाला, व्यवसाय सलाहकार, राजनीतिक वक्ता, नये विचारों का प्रचारक राजपूत आदि में सार्थक अन्तर पाया गया तथा प्रत्ययकारिता क्षेत्र में शहरी विद्यार्थियों की व्यावसायिक रूचियाँ ग्रामीण विद्यार्थियों

की अपेक्षा श्रेष्ठ हैं।

नियमित शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की व्यावसायिक रूचियों से सम्बन्धित सामाजिक क्षेत्र का अध्ययन किया गया। शहरी विद्यार्थियों का मध्यमान 11.89 एवं ग्रामीण विद्यार्थियों का मध्यमान 10.99 और टी.मान 2.30 प्राप्त हुआ। शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की व्यावसायिक रूचियों जैसे- स्काउट, ग्राम, सेवक, समाज सुधारक ,रेडक्रास कार्य कर्ता, अकाल पीड़ित सहायक, गूंगे बहरों का स्कूल खोलने वाला, प्राथमिक चिकित्सा, कल्याण समित कार्य कर्ता, मुफ्त दबाई बांटने वाला, अवैतनिक अध्यापक, मुफ्त सेवा करने बाला डॉक्टर, धर्म शाला बनवाने वाला, समाजसेवक, गरीब बच्चों को छात्रवृति देने वाला, स्वयं सेवक, गृह कला में निपुण आदि में सार्थक अन्तरपाया गया तथा सामाजिक क्षेत्र में शहरी विद्यार्थियों की व्यावसायिक रूचियाँ ग्रामीण विद्यार्थियों की अपेक्षा श्रेष्ठ हैं।

नियमित शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की व्यावसायिक रूचियों से सम्बन्धित गृह सामग्री क्षेत्र का अध्ययन किया गया। शहरी विद्यार्थियों का मध्यमान 11.54 एवं ग्रामीण विद्यार्थियों का मध्यमान 10.64 और टी.मान 2.30 प्राप्त हुआ। शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की व्यावसायिक रूचियों जैसे-गृहविज्ञान शिक्षक, गृह व्यवस्थापक, घर का बजट बनाने वाला, गृह कला प्रशिक्षक, घर बनाने वाला, बच्चों का पालन करने वाला, घर में फलों के मुरब्बा बनाने बनाने वाला, रोगी की देखभाल करने वाला, घर में सिलाई करने वाला, गृह शास्त्र शोध कर्ता, पाक विद्या विशेषज्ञ, घर में कढ़ाई करने वाला, घर में सिलाई करने वाला, गृह विज्ञान में उच्च डिग्री लेने वाला, रोगी परिचर्चा में रूचि लेने वाला, घर में रफू करने वाला, गृह विज्ञान की पुस्तक पढ़ने वाला, गृह प्रबन्धक, गृह प्राथमिक चिकित्सक, सेवा सुश्रुषा करने वाला आदि गृह सामग्री सम्बन्धी व्यावसायिक रूचियों में सार्थक पाया गया तथा सामाजिक क्षेत्र में शहरी विद्यार्थियों की व्यावसायिक रूचियाँ ग्रामीण विद्यार्थियों की अपेक्षा श्रेष्ठ हैं।

उपसंहार:-

प्रस्तुत शोध में दो परिकल्पनाओं का निर्माण किया गया। परिकल्पना, नियमित छात्र एवं छात्राओं की व्यावसायिक रूचियों में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता, को दत्त विश्लेषण के आधार पर अस्वीकृत किया गया। नियमित छात्र एवं छात्राओं की व्यावसायिक रूचियों का क्षेत्रवार अध्ययन किया गया, विश्लेषण के आधार पर छात्राओं की व्यावसायिक रूचियाँ -साहित्य, व्यावसायिक, कलाकारी, प्रत्ययकारिता, गृहसामग्री आदि छात्रों से श्रेष्ठ पायी गयीं तथा वैज्ञानिता, प्रशासनिक, कृषि क्षेत्र में कोई अन्तर नहीं है।

परिकल्पना, नियमित ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों की व्यावसायिक रूचियों में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता, को दत्त विशलेषण के आधार पर अस्वीकृत किया गया। ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों की व्यावसायिक रूचियों का क्षेत्रवार अध्ययन एवं विश्लेषण किया गया, विश्लेषण के आधार पर शहरी विद्यार्थियों की व्यावसायिक रूचियाँ-वैज्ञानिकता, संरचनात्मक, कृषि, प्रत्ययकारिता, सामाजिक, गृहसामग्री आदि ग्रामीण विद्यार्थियों से श्रेष्ठ पायी गई तथा साहित्य, प्रशासनिक, व्यावसायिक तथा कलाकारी क्षेत्र में कोई अन्तर नहीं है।

सन्दर्भित ग्रन्थ सूची:-

1. कपिल,के.एच.(1997). सांख्यिकी के मूल तत्व. विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
2. वर्मा.,आर.पी. और उपाध्याय, आर.पी.(1997). शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन. विनोद पुस्तक मन्दिर,आगरा।
3. माथुर,एस.एस.डॉ. (2008). शिक्षा मनोविज्ञान. विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा ।
4. मदान,पूनम,. और श्रीवास्तव, रोमा (2013). उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक. अग्रवाल प्रकाशन आगरा.
5. राय,नाथ.पारस. (2013-14).अनुसन्धान परिचय. अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा .
6. शर्मा, ए.आर. (2008). शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार. इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस मेरठ।

डब्लू. डब्लू.डब्लू. विक्की पीडिया. कॉम.

डब्लू.डब्लू.डब्लू. गूगल.कॉम.

ISSN 2278 - 0327

शैक्षिक अभिवृत्ति उपकरण का निर्माण एवं मानकीकरण

डॉ. सुरेन्द्र पाल
एसोसिएट प्रोफेसर, अध्यापक शिक्षा विभाग
डी०ए०वी० (पी०जी०) कॉलेज, मुजफ्फरनगर, उ०प्र०

विपिन तेवतिया
शोधार्थी, अध्यापक शिक्षा विभाग
डी०ए०वी० (पी०जी०) कॉलेज, मुजफ्फरनगर, उ०प्र०

विद्यार्थियों की उपलब्धियों में उनकी अभिवृत्तियों का मुख्य योगदान होता है। जब शिक्षा की बात आती है, तब यह कथन निश्चित रूप से और अधिक प्रबलता से कहा जा सकता है। वर्तमान समाज की अधिगम प्रक्रिया में प्रत्येक छात्र की अभिवृत्ति उसकी शिक्षा को बहुत अधिक प्रभावित करती है। अभिवृत्ति और शिक्षा साथ-साथ चलते हैं, एक सकारात्मक एवं अच्छा परिणाम प्राप्त करने के लिए छात्रों की अभिवृत्तियों को शिक्षण और अधिगम की प्रक्रिया में पोषित किया जाए, छात्रों द्वारा अर्जित किया गया ज्ञान और अधिगम को प्रभावित करने की क्षमता, प्रभावशाली शिक्षण और अधिगम की प्रक्रियाओं का एक सकारात्मक परिणाम होता है। जो छात्र शिक्षा के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति रखते हैं, वह नकारात्मक अभिवृति रखने वाले छात्रों से शैक्षिक सफलता के लिए पूर्ण रूप से भिन्न, अधिक सकारात्मक प्रक्रिया को अपनाते हैं। शोधकर्ता ने अपने शोध हेतु, छात्रों की शैक्षिक अभिवृत्ति को ज्ञात करने के लिए शैक्षिक अभिवृत्ति उपकरण का निर्माण किया। इसके अंतर्गत उपकरण की योजना, कथनों की रचना, मूल्यांकन, विश्लेषण, प्रारंभिक जांच, पद-विश्लेषण, विश्वसनीयता, वैधता एवं मानकीकरण की प्रक्रिया को अपनाते हुए, शैक्षिक अभिवृत्ति उपकरण को मूर्त रूप प्रदान किया। वर्तमान अध्ययन में शैक्षिक अभिवृत्ति उपकरण के विकास एवं मानकीकरण का विस्तार से उल्लेख किया गया है।

मूलशब्द :- शैक्षिक अभिवृत्ति, पदों की रचना, पद-विश्लेषण, विश्वसनीयता, वैधता, मानक।

प्रस्तावना :-

अभिवृत्तियाँ उन चुनौतियों में से एक हैं, जिनका सामना छात्रों को पठन-पाठन के दौरान करना पड़ता है। एक छात्र की अभिवृत्ति किसी वस्तु, स्थिति के प्रति एक निश्चित तरीके से प्रतिक्रिया करने की उनकी प्रवृत्ति है। स्वाभाविक रूप से, छात्र की प्रतिक्रिया सकारात्मक से नकारात्मक या अच्छे से बुरे की निरंतरता पर हो सकती है। जब एक शिक्षक कहता है कि एक छात्र का रवैया खराब है, तो इसका मतलब है कि छात्र ने उस स्थिति के लिए सकारात्मक प्रतिक्रिया नहीं दी, जो उन्हें करने के लिए कहा गया था। उल्टा भी सही है। एक अच्छे दृष्टिकोण वाला छात्र संभवत: ऐसा व्यक्ति होता है, जिसमें शिक्षक द्वारा उनसे जो करने के लिए कहा जाता है, उसका अनुपालन करने के मामले में सहकारी भावना होती है। अत: अभिवृत्ति छात्रों की वह मानसिक स्थिति है जो कार्य करने या प्रतिक्रिया करने के लिए शैक्षिक अवस्थाओं आदि के लिए या उनके विपरीत प्रतिक्रिया करने के लिए तैयार है। इनमें सभी के साथ छात्रों की निहित भावनाएं, प्रभाव, इच्छा, रुचि, पसंद आदि प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से संलग्न होती हैं। विकास के दौरान जब छात्र, शिक्षा पर प्रतिक्रिया करने की प्रवृत्ति प्राप्त करता है, तो इन्हीं सीखे हुए संज्ञानात्मक तंत्रों को अभिवृत्ति कहा जाता है। ज्ञान में परिवर्तन होने के बाद दृष्टिकोण में परिवर्तन होता है, यहां तक कि एक साधारण विषय भी छात्रों को प्रभावित कर सकता है और यहां तक कि किसी विशेष विषय के बारे में छात्रों के विचारों में बदलाव आ सकता है, कभी-कभी हमारे आसपास का वातावरण हमारे व्यवहार पर प्रभाव डालता है और छात्र स्वयं को बदल देते हैं। इसका सरल उदाहरण है, छात्र अपने माता-पिता, शिक्षक अथवा अनुकरणीय व्यक्ति की तरह बनने की कोशिश करते हैं। यह केवल अनुकरण एवं अवलोकन है, जो बाद में अभिवृत्ति के रूप में विकसित होता है। शैक्षिक अभिवृत्तियां विभिन्न प्रतिक्रियाओं पर निर्भर करती हैं जिनको छात्र, शिक्षण के समय प्रयोग में लाता है यह गतिविधियां विभिन्न आयामों का प्रतिनिधित्व करती हैं। शोधकर्ता ने शैक्षिक अभिवृत्तियों के परीक्षण के लिए शैक्षिक अभिवृत्ति उपकरण की रचना एवं इसका मानकीकरण किया है। इसके लिए उपकरण की रचना एवं मानकीकरण की प्रक्रिया के सिद्धांतों को अपनाया गया है।

शैक्षिक अभिवृत्ति उपकरण की रचना :- किसी भी उपकरण

की रचना के लिए उपकरण की योजना उसका प्रारंभिक चरण होती है। उपकरण योजना के अंतर्गत उपकरण के उद्देश्य, उपकरण की विषयवस्तु, स्वरूप, माध्यम, प्रशासन, विधि, स्तर आदि के संबंध में विचार कर परीक्षण की योजना को अंतिम रूप प्रदान किया गया। शैक्षिक अभिवृत्ति उपकरण की रचना विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिवृत्ति को ज्ञात करने के लिए की गई है। शोधकर्ता ने अपने उद्देश्य एवं विषय वस्तु के अनुरूप शैक्षिक अभिवृत्ति से संबंधित मुख्य पांच क्षेत्रों का चयन किया है। इनमें शैक्षिक अभिवृत्ति का दार्शनिक पक्ष, शैक्षिक अभिवृत्ति का मनोवैज्ञानिक पक्ष, शैक्षिक अभिवृत्ति का आर्थिक पक्ष, शैक्षिक अभिवृत्ति का सामाजिक पक्ष एवं शैक्षिक अभिवृत्ति का लोकतांत्रिक पक्ष सम्मिलित हैं। सर्वप्रथम इन क्षेत्रों से संबंधित परीक्षणों, लेखों, शोध ग्रंथों, स्वयं के अनुभव, विद्यार्थियों एवं विशेषज्ञों से परिचर्चा कर प्राप्त करते हुए, तथ्यों को व्यवस्थित कर अपने उद्देश्य एवं विषय वस्तु के अनुरूप 138 कथनों की रचना की गई, यह सभी कथन शैक्षिक अभिवृत्ति से संबंधित थे। उपकरण का स्वरूप लिकर्ट विधि पर आधारित है। इस उपकरण की अंकन प्रक्रिया के 5 बिंदु हैं।

शैक्षिक अभिवृत्ति उपकरण की प्रारंभिक जांचः-

प्रारंभिक जांच में यह जानने का प्रयास किया गया, कि कथनों में क्या-क्या दोष है, और उन्हीं दोषों के निवारण के लिए कथनों की प्रारंभिक जांच की गई। इसके अंतर्गत अनिश्चित कथन, कठिन कथन, द्वैअर्थ वाले कथन, भ्रामक कथन, पदों की संदिग्धता, अपर्याप्ता एवं अन्य दोषयुक्त कथनों को सुधारा गया, और 42 दोषयुक्त कथनों को अलग कर दिया गया। परीक्षण में लगने वाला समय, परीक्षण के दिशानिर्देश, परीक्षण की एकरूपता एवं संगत्ता में भी सुधार किया गया और उपकरण के 96 कथनों को व्यवस्थित कर नवीन रूप प्रदान किया गया।

अंकन प्रक्रियाः-

शैक्षिक अभिवृत्ति उपकरण के कथनों की अंकन प्रक्रिया निम्न तालिका के अनुरूप की गई।

तालिकाः- 1 अंकन प्रक्रिया

प्रतिक्रिया	पूर्णः सहमत	सहमत	अनिश्चित	असहमत	पूर्णः असहमत
सकारात्मक	5	4	3	2	1
नकारात्मक	1	2	3	4	5

पद-विश्लेषणः-

यह उपकरण की वास्तविक जांच प्रक्रिया है। इसके लिए न्यादर्श की स्तरीय विधि के आधार पर कॉलेजों का चयन कर जनसंख्या के 600 स्नातक स्तर के विद्यार्थियों पर उपकरण को प्रसारित किया गया। प्रत्येक कथन की अलग-अलग जांच की गई, इसके अंतर्गत कथनों की विभेदन क्षमता का आंकलन किया गया। इसके लिए शोधार्थी ने 'कैली विधि' 27 प्रतिशत उच्च एवं 27 प्रतिशत निम्न समूह के विद्यार्थियों को छांटकर प्रत्येक कथन के दोनों समूह में 't'-परीक्षण द्वारा सार्थकता के मान को ज्ञात किया गया। जिन कथनों का मान सार्थक आया उन्हें स्वीकार किया गया, और शेष को अस्वीकार कर दिया गया।

तालिका 2:- कथनों की स्वीकृति/अस्वीकृति का विवरण कथन

कथन क्र.सं	't' मान	निर्णय	कथन क्र. सं	't' मन	निर्णय
1	5.38	स्वीकृत	49	4.39	स्वीकृत
2	1.71	अस्वीकृत	50	1.53	अस्वीकृत
3	5.96	स्वीकृत	51	3.84	स्वीकृत
4	5.07	स्वीकृत	52	2.91	स्वीकृत
5	5.69	स्वीकृत	53	3.68	स्वीकृत
6	1.80	अस्वीकृत	54	1.15	अस्वीकृत
7	1.67	अस्वीकृत	55	4.28	स्वीकृत
8	2.82	स्वीकृत	56	4.45	स्वीकृत
9	5.38	स्वीकृत	57	4.66	स्वीकृत
10	4.76	स्वीकृत	58	1.60	अस्वीकृत
11	3.38	स्वीकृत	59	4.23	स्वीकृत
12	1.64	अस्वीकृत	60	1.94	अस्वीकृत
13	1.34	अस्वीकृत	61	1.85	अस्वीकृत
14	4.89	स्वीकृत	62	1.89	अस्वीकृत
15	3.46	स्वीकृत	63	1.15	अस्वीकृत
16	6.76	स्वीकृत	64	4.18	स्वीकृत
17	4.25	स्वीकृत	65	2.46	स्वीकृत
18	1.71	अस्वीकृत	66	2.42	स्वीकृत
19	3.24	स्वीकृत	67	1.67	अस्वीकृत
20	4.25	स्वीकृत	68	4.32	स्वीकृत
21	6.38	स्वीकृत	69	2.83	स्वीकृत
22	3.38	स्वीकृत	70	2.97	स्वीकृत
23	5.15	स्वीकृत	71	1.79	अस्वीकृत
24	2.92	स्वीकृत	72	1.60	अस्वीकृत
25	1.92	अस्वीकृत	73	3.43	स्वीकृत
26	1.41	अस्वीकृत	74	2.83	स्वीकृत
27	1.67	अस्वीकृत	75	2.86	स्वीकृत
28	1.46	अस्वीकृत	76	1.67	अस्वीकृत

29	1.56	अस्वीकृत	77	2.21	स्वीकृत
30	3.20	स्वीकृत	78	2.35	स्वीकृत
31	4.01	स्वीकृत	79	1.35	अस्वीकृत
32	4.74	स्वीकृत	80	2.14	स्वीकृत
33	1.24	अस्वीकृत	81	2.07	स्वीकृत
34	5.84	स्वीकृत	82	3.07	स्वीकृत
35	6.26	स्वीकृत	83	1.45	अस्वीकृत
36	1.79	अस्वीकृत	84	1.62	अस्वीकृत
37	7.38	स्वीकृत	85	2.35	स्वीकृत
38	1.66	अस्वीकृत	86	3.21	स्वीकृत
39	1.76	अस्वीकृत	87	1.75	अस्वीकृत
40	4.25	स्वीकृत	88	2.61	स्वीकृत
41	6.86	स्वीकृत	89	1.15	अस्वीकृत
42	5.91	स्वीकृत	90	4.92	स्वीकृत
43	1.60	अस्वीकृत	91	3.35	स्वीकृत
44	5.47	स्वीकृत	92	3.31	स्वीकृत
45	4.38	स्वीकृत	93	1.53	अस्वीकृत
46	1.45	अस्वीकृत	94	2.92	स्वीकृत
47	5.63	स्वीकृत	95	1.37	अस्वीकृत
48	2.23	स्वीकृत	96	1.15	अस्वीकृत

उपरोक्त तालिका में 36 कथनों का 't'-मान 0.05 स्तर पर असार्थक प्राप्त हुआ, इन सभी कथनों को अस्वीकृत कर दिया गया । 60 कथनों का 't'-मान 0.05 स्तर पर अथवा दोनों स्तरों 0.05 एवं 0.01 पर सार्थक प्राप्त हुआ, इन सभी कथनों को स्वीकृत कर दिया गया। इन कुल स्वीकृत 60 पदों की उद्देश्यपूर्णता एवं स्पष्टता के अनुरूप पाँच आयामों में विभक्त किया गया। प्रत्येक आयाम में 12 कथन स्वीकृत किए गए, जिसका विवरण निम्न है:

1. शैक्षिक अभिवृत्ति का दार्शनिक पक्ष, कथन सं0 1-12
2. शैक्षिक अभिवृत्ति का मनोवैज्ञानिक पक्ष, कथन सं0 13-24
3. शैक्षिक अभिवृत्ति का आर्थिक पक्ष, कथन सं0 25- 36
4. शैक्षिक अभिवृत्ति का सामाजिक पक्ष, कथन सं0 37-48
5. शैक्षिक अभिवृत्ति का लोकतांत्रिक पक्ष, कथन सं0 49-60

विश्वसनीयता:-

शैक्षिक अभिवृत्ति उपकरण की विश्वसनीयता को ज्ञात करने के लिए अर्द्ध-विच्छेदन विधि (Split half method) का प्रयोग किया गया। कथनों को सम-विषम के आधार पर दो भागों में विभाजित कर विश्वसनीयता ज्ञात की गई। उपकरण का विश्वसनीयता गुणांक 0.72 प्राप्त हुआ।

वैधता:-

शैक्षिक अभिवृत्ति उपकरण की वैधता के लिए (Face validity) को अपनाया गया। इसके लिए विशेषज्ञों द्वारा उपकरण की जांच कराई गई। जिसमें भाषा, स्पष्टता, प्रकरण अनुकूलता, व्यापकता, सुगमता पर शिक्षाशास्त्र, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र के विशेषज्ञों ने उपकरण की रेटिंग की और पाया कि उपकरण निश्चित उद्देश्यों का मापन करता है।

मानकीकरण:-

उपकरण का मानकीकरण स्नातक स्तर के दूरस्थ एवं परंपरागत संस्थानों में अध्ययनरत विद्यार्थियों पर किया गया। अंतिम रूप से जांच के बाद सांख्यिकी विधियों द्वारा मानकों का निर्धारण किया गया।

तालिका 3:- सांख्यिकी विवेचन

N	मध्यमान	मानक-विचलन
600	208.3	21.65

तालिका 4:- मानकीकरण

क्रम संख्या	मूल प्राप्तांक	शैक्षिक अभिवृत्तियों का स्तर
1	247.27 से उपर	अति श्रेष्ठ
2	221.29 – 247.27	उच्च
3	195.31 – 221.29	औसत
4	169.33 – 195.31	निम्न
5	169.33 से निचे	अति निम्न

निष्कर्ष:-

शोधकर्ता ने इस उपकरण का निर्माण स्नातक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिवृत्ति को मापने के लिए किया है। शैक्षिक अभिवृत्ति उपकरण विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिवृत्ति को मापने में सहायक होगा। यह उपकरण अन्वेषण के लिए लाभकारी होगा। इससे ज्ञात किया जा सकेगा, कि स्नातक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिवृत्ति का स्तर क्या है और भविष्य के लिए शोधकर्ताओं एवं विद्यार्थियों के लिए इसका उपयोग किया जा सकेगा। समय की उपयोगिता एवं परिवर्तनशीलता के आधार पर उपकरण का विस्तार भी किया जा सकेगा।

संदर्भ ग्रंथः-

1. अग्रवाल, वाई.पी. (1998), 'सांख्यिकीय विधियाँ, स्टर्लिंग प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
2. ब्लॉमर्स, पी. एवं लिंडक्विस्ट, ई.एफ (1960), 'साइकोलॉजी एंड एजुकेशन में प्राथमिक सांख्यिकीय विधियाँ, ऑक्सफोर्ड बुक कंपनी, कलकत्ता।
3. चड्ढा, एन.के. एवं सहगल (1984), 'मनोविज्ञान में सांख्यिकीय विधियाँ, ई.एस.एस. प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. फ्रीमैन, एफ एस. (1965), 'मनोवैज्ञानिक परीक्षण में सिद्धांत और व्यवहार, ऑक्सफोर्ड एवं आई.बी.एच. पब्लिशिंग कंपनी लिमिटेड, नई दिल्ली।
5. गैरिट, हेनरी, ई. (1989), 'शिक्षा और मनोविज्ञान में सांख्यिकी, (11 वां हिंदी संस्करण) लुधियाना कल्याणी पब्लिशर्स।
6. त्रिपाठी, लाल (1986), 'मनोवैज्ञानिक सांख्यिकी, एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा।
7. गुप्ता, एस.पी. एवं गुप्ता, अलका (2016), 'आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज।
8. भार्गव, महेश (1999), 'आधुनिक मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं मापन, 9 वां एडिशन, एच0पी0 भार्गव बुक हाउस, आगरा।
9. मुखर्जी, रविंद्र नाथ (1969), 'सामाजिक शोध एवं सांख्यिकी, (प्रथम संस्करण) विवेक प्रकाशन, दिल्ली।
10. बघेल, डी.एस. एवं के.सी. पांडे (1976), 'सामाजिक अनुसंधान, (द्वितीय संस्करण) पुष्पराज प्रकाशन रीवा।
11. शर्मा, आर.ए. (1996), 'शिक्षा तथा मनोविज्ञान में परा एवं अपरा सांख्यिकी, आर. लाल. बुक डिपो, मेरठ।
12. शर्मा, आर.ए. (2016), 'आधुनिक अनुसन्धान के मूल तत्व एवं शोध प्रक्रिया, आर. लाल. बुक डिपो, मेरठ।
13. सिंह, अरुण कुमार (2001), 'मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियां, (चतुर्थ संशोधित संस्करण) मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली।

ISSN 2278 - 0327

रामायण में चित्रित भारतीय संस्कृति का उदात्त स्वरूप

संगीता सिंह
शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग
नेहरु ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय), प्रयागराज

मानवीय जीवन शैली, रहन-सहन रीति-रिवाज, आचरण-व्यवहार तथा विचार सरणी आदि का समेकित स्वरूप होती है संस्कृति। इस आधार पर कह सकते हैं कि संस्कृति हमारे जीने और सोचने की विधि में हमारी अन्त:स्थ प्रकृति की अभिव्यक्ति है। यह हमारे साहित्य में, धार्मिक कार्यों में, मनोरंजन और आनन्द प्राप्त करने के तरीकों में भी देखी जा सकती हैं। संस्कृति जीवन की विधि है। जो भोजन हम खाते हैं, जो कपड़े पहनते हैं, जो भाषा बोलते हैं और जिस भगवान् की पूजा करते हैं, ये सभी सभ्यता कहलाते हैं; तथापि इनसे संस्कृति भी सूचित होती है। सरल शब्दों में हम कह सकते हैं कि संस्कृति उस विधि का प्रतीक है जिसके आधार पर हम सोचते हैं; और कार्य करते हैं। इसमें वे अमूर्त/अभौतिक भाव और विचार भी सम्मिलित हैं जो हमने एक परिवार और समाज के सदस्य होने के नाते उत्तराधिकार में प्राप्त करते हैं। एक सामाज वर्ग के सदस्य के रूप में मानवों की सभी उपलब्धियाँ उसकी संस्कृति से प्रेरित कही जा सकती हैं। कला, संगीत, साहित्य, वास्तुविज्ञान, शिल्पकला, दर्शन, धर्म और विज्ञान सभी संस्कृति के प्रकट पक्ष हैं। तथापि संस्कृति में रीतिरिवाज, परम्पराएँ, पर्व, जीने के तरीके और जीवन के विभिन्न पक्षों पर व्यक्ति विशेष का अपना दृष्टिकोण भी सम्मिलित हैं।

मानव ही संस्कृति का निर्माता है और संस्कृति ही मानव को मानव बनाती है। संस्कृति अपूर्णता की ओर ले जाती है। यह व्यक्ति, कुल, समाज तथा विश्व भर के आदर्शों की प्रतिष्ठा करती है। ये आदर्श परम्परा में परिपालित होकर तथा पोषित होकर अनेक पीढ़ियों तक चलते रहते हैं और अग्रिम संतति को प्रेरणा देते हैं। तभी तो मनुस्मृतिकार ने लिखा है -

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन:।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवा:।। [1]

वस्तुत: संस्कृति को परिभाषित करते हुए मनुस्मृतिकार ने वस्तुस्थिति को बड़े स्पष्ट शब्दों में परिभाषित करते हुए कहा है कि- इस राष्ट्र के निवासियों की सबसे मुख्य विशेषता यही है कि यहाँ जन्म लेने वाले सभी व्यक्ति अपने अनुभवों को एक दूसरे से सांझा करते हुए निरन्तर गतिशील रहते हैं। '*वसुधैव कुटुम्बकम्*' की भावना ही भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता और पहचान है। यही कारण है कि मनुस्मृतिकार ने भी '*पृथिव्यां सर्वमानवा:*' शब्द का प्रयोग किया है।

इस प्रकार संस्कृति मानव जनित मानसिक पर्यावरण से सम्बन्ध रखती है जिसमें सभी अभौतिक उत्पाद एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को प्रदान किये जाते हैं। समाज-वैज्ञानिकों में एक सामान्य सहमति है कि संस्कृति में मनुष्यों द्वारा प्राप्त सभी आन्तरिक और बाह्य व्यवहारों के तरीके समाहित हैं। ये चिह्नों द्वारा भी स्थानान्तरित किए जा सकते हैं, जिनमें मानव समूहों की विशिष्ट उपलब्धियां भी समन्वित रहती हैं। इन्हें शिल्प कलाकृतियों द्वारा मूर्त रूप प्रदान किया जाता है। वस्तुत:, संस्कृति का मूल केन्द्र बिन्दु उन सूक्ष्म विचारों में निहित है जो एक समूह में ऐतिहासिक रूप से उनसे सम्बद्ध मूल्यों सहित विवेचित होते रहे हैं। संस्कृति किसी समाज के वे सूक्ष्म संस्कार हैं, जिनके माध्यम से लोग परस्पर सम्प्रेषण करते हैं, विचार करते हैं और जीवन के विषय में अपनी अभिवृत्तियों और ज्ञान को दिशा देते हैं। [2]

संस्कृति का स्वरूप

परम्परागत रूप से सांस्कृतिक विकास एक ऐतिहासिक प्रक्रिया है। हमारे पूर्वजों ने बहुत सी बातें अपने पुरखों से सीखी है। समय के साथ उन्होंने अपने अनुभवों से उसमें और वृद्धि की। जो अनावश्यक था, उसको उन्होंने छोड़ दिया। हमने भी वंशानुक्रम की परम्परा से अपने पूर्वजों से बहुत कुछ सीखा। जैसे-जैसे समय बीतता गया, हम उनमें नए विचार, नई भावनाएँ जोड़ते चले गए हैं और इसी प्रकार जो हमने उपयोगी नहीं समझा उसे छोड़ते गए हैं। इस प्रकार संस्कृति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तान्तरित होती चली आ रही है। जो संस्कृति हम अपने पूर्वजों से प्राप्त

करते हैं उसे सांस्कृतिक विरासत कहते हैं। यह विरासत कई स्तरों पर विद्यमान रहती है। मानवता ने सम्पूर्ण रूप में जिस संस्कृति को विरासत के रूप में अपनाया उसे 'मानवता की विरासत' कहते हैं।

एक राष्ट्र भी अपनी प्राचीन परम्पराओं से, अपने उत्कृष्ट मूल्यों से और अपनी ऐतिहासिक अनुभवों से अपनी समृद्ध संस्कृति को विरासत के रूप में प्राप्त करता है जिसे 'राष्ट्रीय सांस्कृतिक विरासत' कहते हैं। सांस्कृतिक विरासत में वे सभी पक्ष या मूल्य सम्मिलित रहते हैं जो मनुष्यों को पीढ़ी दर पीढ़ी अपने पूर्वजों से प्राप्त होते हैं। वे मूल्य पूजे जाते हैं, संरक्षित किए जाते हैं और अटूट निरन्तरता से सुरक्षित रखे जाते हैं। तब जाके आने वाली पीढ़ियाँ इस पर गर्व करती हैं। जो उनके मन, रुचि, आचार-विचार, कला-कौशल तथा सभ्यता के क्षेत्र में बौद्धिक विकास की सूचक होती है। संस्कृति का निरूपण करने वाले ग्रन्थों में धर्म, दर्शन, साहित्य, कला, काव्य, शिल्प आदि अनेक मानवीय कृतित्त्व का निदर्शन रहता है। संस्कृति केवल मनुष्य की श्रद्धा उसके विचार, कलात्मक रचना आदि का ही विकास है अथवा संस्कृति की धारणा उन भावों पर अवलम्बित है जो इनके विकास में सहायक होते हैं।

जहाँ तक भारतीय संस्कृति की बात है तो यह विश्व की सर्वाधिक प्राचीन एवं समृद्ध संस्कृति है। अन्य देशों की संस्कृतियाँ तो समय की धारा के साथ-साथ नष्ट होती रही हैं, किन्तु भारत की संस्कृति आदि काल से ही अपने परम्परागत अस्तित्व के साथ अजर-अमर बनी हुई है। तभी तो इसे सनातन सांस्कृतिक परम्परा कहते हैं। इसकी उदारता तथा समन्वयवादी गुणों ने अन्य संस्कृतियों को समाहित तो किया है, किन्तु अपने अस्तित्व के मूल को सुरक्षित रखा है। तभी तो पाश्चात्य विद्वान् अपने देश की संस्कृति को समझने हेतु भारतीय संस्कृति को पहले समझने का परामर्श देते हैं।

संस्कृति का एक मौलिक तत्त्व है, धार्मिक विश्वास और उसकी प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है। हमें धार्मिक पहचान का सम्मान करना चाहिए, साथ ही सामयिक प्रयत्नों से भी परिचित होना चाहिए, जिनसे अन्त:धार्मिक विश्वासों की बातचीत हो सके, जिन्हें प्राय: 'अन्त: सांस्कृतिक वार्तालाप' कहा जाता है। जैसे-जैसे समाज में मत वैभिन्यता आरम्भ हुआ, वैसे-वैसे इसे परिभाषित करने की शैली में परिवर्तन आते गए। इन परिवर्तनों को संरक्षित करने और सम्प्रेषित करने का परम दायित्त्व जिन साहित्यिक धरोहरों ने सम्भाल रखा है, उनमें से अग्रगणी है महर्षि वाल्मीकि कृत 'रामायण'।

रामायणाश्रित संस्कृति

आदि कवि वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण न केवल भारतीय जनमानस में श्रद्धा का पात्र है, अपितु भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के संरक्षण का, विश्लेषण का एवं स्थानान्तरण का प्रमुख स्रोत भी है। महाकवि वाल्मीकि ने भगवान् श्री राम के जीवन चरित्र का वर्णन करते समय उन सभी उदात्त और ग्राह्य गुणों को अपने काव्य में निबन्धित करने का सर्वथा प्रयास किया है जिनके माध्यम से भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के उत्कृष्ट स्वरूप का दिग्दर्शन होता है। महाकवि वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति उदात्त स्वरूप उपस्थापित करने वाला प्रमुख स्रोत ग्रन्थ है। तभी तो वाल्मीकि रामायण माहात्म्य में लिखा है-

धर्मार्थकाममोक्षाणां साधनं च द्विजोत्तमा:।
श्रोतव्यं सदा भक्त्या रामायाणपरामृतम्।।[3]

वस्तुत: संस्कृति मानव समाज के इतिहास की आचरण, चिंतन, शिक्षा, कला, साहित्य, प्रशासन एवं समाज के परिष्कृत मूल्यों की गरिमायी धरोहर होती है। इसी से स्वस्थ परम्परा व मार्ग प्राप्त करके मानव अपने प्रगति पथ पर अग्रसर होता है। संस्कृति वह मूल स्रोत है, जो हमें कर्तव्य और अकर्तव्य का बोध कराती है, ग्राह्य और त्याज्य अंशों का परिचय कराती है तथा अपनी परम्परा को जीवित रखने के लिए आधार बनती है। जिससे कि हम परम्परागत रूप से चले आ रहे मूल्यों का संरक्षण और संवर्धन कर सकें।

संस्कृति को न तो किसी निश्चित परिभाषा में बांधा जा सकता है और ना ही इस शब्द का कोई दूसरा पर्याय ही हो सकता है। किसी भी देश की संस्कृति उसके विभिन्न युगों के आचार एवं विचारों की परम्परा से उत्पन्न एक भूषण युक्त परिष्कृत स्थिति का द्योतक होती है। विश्व में प्राचीन एवं अर्वाचीन अनेक संस्कृतियाँ विद्यमान हैं, उन्हीं में से सर्वश्रेष्ठ संस्कृति का आदर्श है सनातन संस्कृति। इसी सनातन संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता ग्रन्थ है- आदि कवि वाल्मीकि कृत 'रामायण'।

पुत्र का उदात्त स्वरूप

वाल्मीकि रामायण में जीवन के प्रत्येक स्तर पर एक अभूतपूर्व सांस्कृतिक आदर्श की स्थापना की गई है जहाँ माता पुत्र का सम्बन्ध श्रद्धाभरित, स्नेहसंकुल तथा स्पृहणीय होता है। कैकयी ने सौतेली माँ का आदर्श अवश्य ही ध्वस्त कर दिया है। किन्तु राम ने सुपुत्र के चरम आदर्श को प्रस्तुत किया है।

कैकयी के कार्यों से दुखी होकर, क्रुद्ध होकर राजा दशरथ

ने भरत सहित कैकयी का त्याग कर दिया था और उसके पश्चात् उनका स्वर्गवास हो गया तथा लंका विजय के उपरान्त स्वर्ग से आए पिता दशरथ से राम ने केवल एक ही याचना की थी कि- दशरथ द्वारा दिया गया घोर शाप कैकयी को स्पर्श न करे

सुपुत्रां त्वां त्यजामीति यदुक्ता कैकयी त्वया।
स शाप: कैकयीं घोर: सुपुत्रां न स्पृशेत् प्रभो।। [4]

आज के भौतिकता प्रधान विश्व में आदर्श भाई लक्ष्मण का उदाहरण ढूंढे भी नहीं मिलता। जिसने बड़े भाई के दु:ख से संतप्त होकर 14 वर्षों तक स्वयं भी बनवासी का सा जीवन व्यतीत किया। वही भरत जैसा परम त्यागी भी नहीं मिलते परम वैभव राजसी ठाठ-बाट को छोड़कर अपने बड़े भाई के प्रति अगाध श्रद्धा के कारण एक कुटिया में जीवन व्यतीत करने का और उनके खड़ाऊं को राजा के आदर्श के रूप में स्थापित करके राज की रक्षा करने का सर्वोच्च उदाहरण केवल सनातन परम्परा का प्रतिनिधित्व कर्ता ग्रन्थ महर्षि वाल्मीकि रचित रामायण में ही प्राप्त होता है।

सखा भाव

भगवान् श्रीराम के प्रति निषादराज का कथन सखाभाव का सर्वोच्च अभिबोधक है। निषादराज कहते हैं-

भर्ता चैव सखा चैव रामो दाशरथिर्मम।
तस्यार्थकामा: संनद्धा: गङ्गानूऽत्र तिष्छत।। [5]

वर्णाश्रम व्यवस्था

भारतीय ऋषियों ने समाज के विभिन्न कार्यों की दृष्टि से चतुर्वर्णों की अद्भुत संकल्पना की थी।

वाल्मीकि रामायण के समय तक यह संकल्पना पूर्णत: परिपक्व हो चुकी थी। वाल्मीकि रामायण के वर्णन के अनुसार से स्पष्ट हो जाता है कि- तत्कालीन संस्कृतियों में जातियों के बीच एक सुनिश्चित् पार्थक्य स्थापित हो चुका था और उनके कर्तव्यों और अधिकारों का बंटवारा भी कर्म आधारित था, ना कि जन्म आधारित। उदाहरणार्थ 'त्रिजट' नामक व्यक्ति ब्राह्मण था। किन्तु वह वैश्यों की भाँति कृषि से जीविकोपार्जन करता था। अर्थात् तत्कालीन समाज की उदात्तता यह थी कि व्यक्ति जन्म से एक वर्ण का होकर अपने श्रेष्ठ कर्मों से दूसरे वर्ण का बन जाता था। सांस्कृतिक आदर्श का यह प्रसंग और वर्णन भारतीय संस्कृति के उदात्त स्वरूप के संस्थापक ग्रन्थ वाल्मीकि रामायण में ही प्राप्त होता है। रामायण में प्राय: चारों वर्णों का उल्लेख किया गया है। महाराज दशरथ के सुशासन ने ब्राह्मण आदि चारों वर्णों के लोक देवता और अतिथियों की पूजा की जाती थी तथा वे सब कृतज्ञ, उदार, पराक्रमी और शूरवीर थे। महाराज दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ में वशिष्ठ ने अधिकारियों को आज्ञा दी थी कि सभी वर्गों की सत्कार पूर्वक पूजा होनी चाहिए -

सर्वे वर्णा यथा पूजां प्राप्नुवन्ति सुसत्कृता:। [6]

राम राज्य में भी चारों वर्गों के लोग लोभ रहित हो कर रहते थे और संतुष्ट होकर अपने अपने कर्मों में संलग्न रहते थे। अयोध्या में रहने वाले चारों वर्ण क्रमश: अपने उच्च वर्ण की आज्ञा पालन में तथा सेवा में लगे रहते थे -

क्षत्रं ब्रह्ममुखं चासीत् वैश्या: क्षत्रमनुव्रता:।
शूद्रा: शूद्रा: स्वकर्मनिरतास्त्रीन वर्णानुपचारिण:।। [7]

भाई राम को अयोध्या लौटा लाने के लिए भरत जब चित्रकूट जाने को तत्पर हुए तो चारों वर्गों की जन वहाँ जाने के लिए उद्यत हो गए-

' तत: समुत्थाय कुले-कुले ते राजन्यवैश्या वृषलाश्च विप्रा:।' [8]

त्रिकूट में राम ने भरत से प्रश्न किया था कि- स्वकर्मनिरत चारों वर्णों से युक्त अयोध्या की भली प्रकार रक्षा तो हो रही है। इन सारे उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि रामायण काल में चतुर्वर्ण व्यवस्था पूर्णता विद्यमान था।

आश्रम व्यवस्था

वर्ण व्यवस्था की भांति ने रामायण में महर्षि वाल्मीकि ने चतुराश्रम की भी परिकल्पना की हुई है। आश्रम व्यवस्था भारतीय संस्कृति के समुज्वल तत्त्वों में से एक है। हिन्दू सामाजिक संगठन के अन्तर्गत आश्रम व्यवस्था की योजना से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन भारतीय मनीषियों का मानव जीवन के प्रति एक सर्वांगीण दृष्टिकोण था। आश्रम व्यवस्था की योजना का कारण यही था कि मनुष्य के जीवन में सतत सौख्य बना रहे तथा जीवन के समस्त प्रयोजन धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूपी चारों पुरुषार्थ भी पूर्ण हो जायें। ऋषियों ने मानव की अनुमानित आयु लगभग 100 वर्ष मानी है। उसके चार काल्पनिक खण्ड करके उन्हें आश्रम नाम दिया गया है। किन्तु किसी भी आश्रम में आयु सीमा व्यक्ति की योग्यता एवं लक्ष्य पूर्ति पर ही निर्भर थी। सूत्रकारों ने प्रत्येक आश्रम के विशेष आचार तथा कर्तव्यों का भी निर्धारण किया था। पिता की आज्ञा से वन जाने के लिए तत्पर प्रभु श्रीराम से लक्ष्मण कहते हैं कि सहस्त्र वर्षों तक प्रजा पालन करने के उपरान्त आप वन जाने की योग्य होंगे। इसका अर्थ यही है कि क्रमश: एक के बाद एक आश्रम का पालन ही व्यक्ति के लिए उचित माना जाता है। इसी प्रकार श्री राम को पुन: अयोध्या लौटा लाने के लिए प्रयास करते हुए भरत कहते हैं- चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम ही

सर्वश्रेष्ठ माना जाता है आप धर्मज्ञ होकर ही भी उसको क्यों त्यागना चाहते हैं–

चतुर्णामाश्रमाणां हि गार्हस्थ्यं श्रेष्ठमुत्तमम्।
आहुर्धर्मज्ञ धर्मज्ञास्तं कथं त्यक्तुमिच्छसि।। [9]

भरत का यह कथन स्पष्ट था स्पष्टत: आश्रम बन्धवाद का प्रतिपादन करता है। अयोध्या का प्रत्येक गृहस्थ धन–धान्य और गाय आदि से पूर्णत: संपन्न था। यह गृहस्थाश्रम के सम्पन्नता तथा उदात्तता का द्योतक है। क्योंकि गृहस्थाश्रम ही मानव समाज की समाज का मेरुदण्ड है

नाल्पसंनिचय: कश्चिदासीत् तस्मिन् पुरोत्तमे।
कुटुम्बी यो ह्यसिद्धार्थोऽगवाश्वधनधान्यवान्।। [10]

इसी प्रकार से हनुमान जब सीता का अन्वेषण नहीं कर पाते हैं तब निराश होकर कहते हैं कि यदि मैं अन्वेषण करने में असफल रहा नहीं कर पाया तो वानप्रस्थ ग्रहण कर लूंगा–

हस्तादानो मुखादानो नियतो वृक्षमूलिक:।
वानप्रस्थो भविष्यामि ह्यदृष्ट्वा जनकात्मजाम्।। [11]

संस्कार

संस्कार भारतीय संस्कृति का महत्वपूर्ण पक्ष है संस्कार संस्कार कहीं ना कहीं वर्णाश्रम व्यवस्थाओं की अपेक्षा भारतीय संस्कृति में ज्यादा महत्वपूर्ण है। क्योंकि संस्कार ही वर्णाश्रम व्यवस्थाओं का आधार है। रामायण में महर्षि वाल्मीकि ने प्रजा मात्र के लिए राज्य धर्म को सर्वश्रेष्ठ धर्म के रूप में उपस्थापित किया है। एक पत्नीव्रती राम ने जनापवाद के कारण सीता को तो निर्वासित कर दिया, किन्तु दूसरा विवाह न करके प्रत्येक यज्ञ में जानकी की स्वर्ण प्रतिमा रखकर ही धर्म आचरण सम्पन्न किया करते थे। इससे स्पष्ट होता है कि विवाह संस्कार भारतीय संस्कृति का सर्वश्रेष्ठ संस्कार है। जिसका कोई पर्याय नहीं हो सकता। यह भारतीय संस्कृति और सभ्यता का आधारभूत संस्कार है–

न सीताया: परां भार्यां वव्रे च रघुनन्दन:।
यज्ञे–यज्ञे च पत्न्यर्थं जानकी काञ्चवीभवेत्।। [12]

उपसंहार

सारांशत: हम कह सकते हैं कि रामायण भारतीय सांस्कृतिक परम्परा का मूल आधारग्रन्थ है। यह सत्य है कि मानवीय जीवन की मेरुदण्ड है संस्कृति। यह कोई बाह्य वस्तु नहीं है और न ही कोई आभूषण है जिसे मनुष्य प्रयोग में ले और जब चाहे छोड़ दे। यह केवल रंगों का स्पर्श मात्र भी नहीं है। यह वह गुण है जो हमें मनुष्य बनाता है। संस्कृति ही मानवीय जीवन शैली का निर्धारण करती है नहीं तो मानव और पशु में कोई बहुत ज्यादा फर्क नहीं है। यह हमें जीवन का अर्थ, जीवन जीने का तरीका सिखाती है। मानव ही संस्कृति का निर्माता है और संस्कृति ही मानव को मानव बनाती है। संस्कृति अपूर्णता की ओर ले जाती है। यह व्यक्ति, कुल, समाज तथा विश्व भर के आदर्शों की प्रतिष्ठा करती है। अत: इसका निरूपण भी शास्त्रों में इस प्रकार से किया जाना चाहिये कि समाज के लोग आदर्श मान कर इसका अनुगमन करें। वाल्मीकि रामायण एक ऐसा ही आदर्श ग्रन्थ है, जिसमें प्रदत्त समस्त सांस्कृतिक विरासतों का अनुकरण भारतीय जनमानस श्रद्धा और और प्रेम के साथ करता है।

सन्दर्भ सूची –

1. मनुस्मृति, 2/20.
2. मुक्त ज्ञान कोश।
3. श्रीवाल्मीकिरामायणमाहात्म्यम्–1/24.
4. वाल्मीकि रामायण–6/119/27.
5. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड–84/6.
6. वाल्मीकि रामायण–1/13/14.
7. वाल्मीकि रामायण–1/6/19.
8. वाल्मीकि रामायण–2/28/32.
9. वाल्मीकि रामायण–2/106/22.
10. वाल्मीकि रामायण–1/6/7.
11. वाल्मीकि रामायण–5/13/40.
12. वाल्मीकि रामायण–1/6/7.

ISSN 2278 - 0327

संस्कृत नीतिशास्त्रों में मंत्रिमंडल की अवधारणा

अंजू देवी
शोधार्थी, संस्कृत, पालि एवं प्राकृत विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा

प्रो. (डॉ.) सुनीता सैनी
शोध निर्देशिका, संस्कृत, पालि एवं प्राकृत विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा

सामान्य परिचय

राज्य में प्रशासन चलाना किसी एक व्यक्ति के लिए संभव नहीं माना जाता, चाहे वह कितना भी बड़ा राजा क्यों न हो। अत: राजा की सहायता के लिए कुछ ऐसे मंत्रियों की नियुक्ति की जानी आवश्यक है जो उस कार्य के योग्य भी हो और प्रशासन चलाने में राजा की सहायता कर सकें। इस विषय में विभिन्न आचार्यों ने अपने मत प्रकट किए हैं कि अल्प से अल्प कार्य भी अकेले पुरुष द्वारा किए जाने असंभव माने गए हैं फिर यह तो महान अभ्युद्य वाले राज्य का कार्य है जो अकेले व्यक्ति द्वारा कैसे चलाया जा सकता है। अत: किसी भी कार्य को सही संपन्न करने के लिए सहायकों का होना अत्यधिक आवश्यक माना गया है। इसलिए राजा को बिना सहायक रूपी मंत्रियों के कोई भी कार्य अकेले नहीं करना चाहिए।[1]

किसी भी विषय पर राजा द्वारा अकेले निर्णय न लेने के बारे में कहा गया है कि –

सर्व विद्यासु कुशलो नृपो ह्यपि सुमंत्रवित्।
मंत्रभिस्तु विना मंत्रं नैकोऽर्थं चिंतयेत्क्वचित्।।[2]

अर्थात् सभी प्रकार की विधाओं में कुशलता प्राप्त करने वाले एवं अनेक प्रकार के विचारों को जानने वाले राजा को भी बिना मंत्रियों की सहायता के अकेले किसी प्रकार का कोई निर्णय नहीं लेना चाहिए। राज्य के कार्यों में मंत्रियों की अत्यधिक आवश्यकता को बताते हुए आचार्य कामन्दक ने कहा है कि राजा को गलत रास्ते से हटाना मंत्रियों का प्रमुख कर्त्तव्य माना गया है, ऐसे में मंत्रियों की मंत्रणा को सुनना भी राजा का कर्तव्य बन जाता है। जब इस प्रकार के मंत्री राजा को सही मार्गदर्शन पर लाकर खड़ा कर देते हैं तो वहीं राजा के गुरु की भूमिका का निर्वहन करते हैं।[3]

इस प्रकार राज्य की सात प्रकृतियों में राजा के पश्चात् मंत्रियों को द्वितीय स्थान प्रदान किया गया है, क्योंकि मंत्रियों के सत् परामर्श पर ही राज्य का विकास, उन्नति एवं स्थायित्व निर्भर करता है। जिससे राज्य में नए कार्यों का विकास एवं मंत्र की रक्षा होती है क्योंकि गुप्त मंत्रणा कराने वाले राजा के धर्म, अर्थ एवं काम जैसे सभी विषयों की रक्षा मंत्रियों की सहायता पर ही निर्भर करती है।[4] इसलिए राजा को श्रेष्ठ गुणों से संपन्न बुद्धिमान् मनुष्य को ही मंत्री पद पर नियुक्त करना चाहिए क्योंकि अच्छे मंत्रियों के अभाव में शासन करने वाले राजा शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।[5]

मंत्रियों की नियुक्ति

जिस प्रकार राजा का पद वंशानुगत माना गया है उसी प्रकार मंत्रियों की नियुक्ति भी प्रत्येक राज्य में की जाती थी। इस विषय में यह कहा गया है कि राजा अपनी इच्छा के अनुसार मंत्रियों की नियुक्ति नहीं करता था अपितु वह उनकी नियुक्ति धर्मशास्त्रों एवं अर्थशास्त्रों में वर्णित नियमों के अनुसार ही करवाता था। आचार्य शुक्ल एवं अन्य आचार्यों के द्वारा मंत्रियों की नियुक्ति करते समय उनके गुणों के विषय में बताया गया है कि–

मंत्री तु नीतिकुशल: पण्डितो धर्मतत्त्ववित्।।[6]

अर्थात् नीतिशास्त्र को जानने वाले एवं उसके अनुसार कार्य करने में कुशल व्यक्ति को ही मंत्री पद पर नियुक्त किया जाना चाहिए। मंत्रियों की नियुक्ति के विषय में आचार्य मनु का कथन है कि स्वदेश में उत्पन्न एवं कुल कर्म से वेदादि शास्त्रों को जाने वाले, शूर–वीर एवं जिनके विचार एवं लक्ष्य निष्फल न हो ऐसे सुपरीक्षित और कुलीन व्यक्तियों को ही मंत्रियों की श्रेणी में रखा जाना चाहिए। इनकी संख्या सात या आठ होनी चाहिए।[7] इसी प्रकार रामायण के अध्ययन से ज्ञात होता है कि राजा दशरथ ने अपने मंत्रिमंडल में योग्य व्यक्तियों की नियुक्ति की हुई थी जो मंत्र के तत्व को जानने वाले एवं बाहरी चेष्टा से ही व्यक्ति के मनोभाव को समझ लेने वाले थे वे सदा शुद्ध आचार–विचार से युक्त एवं राज–हित में लगे रहते थे।[8]

मंत्रियों की योग्यता एवं गुणों के संबंध में आचार्य सोमदेव ने भी पर्याप्त प्रकाश डाला है और कहा है कि राजा के मंत्री द्विज, स्वदेशवाची, सदाचारी, कुलीन, निर्व्यसन, स्वामिभक्त, नीतिज्ञ,

युद्ध विद्या में निपुण एवं निष्कपट व्यवहार करने वाले होने चाहिए।[9] मंत्रियों की योग्यता के विषय में महाभारत, आचार्य कौटिल्य, याज्ञवल्क्य एवं कामन्दक ने भी इसी प्रकार के मंत्र को प्रस्तुत किया है ।[10] अत: राजा को मंत्रियों की नियुक्ति करने से पहले उनके गुणों एवं उसी कार्य के प्रति उनकी योग्यता को भली-भाँति जानना चाहिए। उसके पश्चात् ही उन्हें मंत्री नियुक्त करना चाहिए।

मंत्रियों की परीक्षा

राजा को मंत्रियों की नियुक्ति करने से पहले उनकी परीक्षा अवश्य करनी चाहिए। राजा को चाहिए कि वह बिना परीक्षा किये किसी को भी अपना मंत्री न बनावे[11] क्योंकि जो राजा परीक्षा के बिना ही मंत्री को चुन लेता है उस राज्य एवं राजा का पतन अवश्यंभावी हो जाता है। लेकिन जो राजा अपने मंत्रियों की परीक्षा लेकर नियुक्ति करता है वह राजा समृद्धि एवं उन्नति को प्राप्त करता है क्योंकि कुत्सित व्यक्ति को नियुक्त करने से न तो राजा को सुख की प्राप्ति होती है और न ही राज्य की उन्नति होती।[12] अत: राजा को पहले परीक्षा करके ही मंत्रियों की नियुक्ति करनी चाहिए।

मंत्रियों की पूर्व परीक्षा के विषय में रामायण के बालकाण्ड में लिखा है कि -

कुशला व्यवहारेषु सौहृदेषु परीक्षिता:।
प्राप्त-कालं यथा दण्डं धारयेयु: सुतेष्वपि।।[13]

अर्थात् राजा दशरथ के द्वारा उनके मंत्रियों के सौहार्द की अनेक बार परीक्षा ली जा चुकी थी। मंत्रियों के अलावा अन्याय के विषय में वे अपने पुत्रों को भी दंड देने वाले थे। मंत्रियों की परीक्षा के विषय में आचार्य कौटिल्य का मत है कि मंत्रियों की नियुक्ति से पहले राजा को उनकी प्रमाणिकता, सत्यवादी, उनके निवास स्थान, बुद्धि स्मृति, चतुरता, वाक्पटुता, उत्साह, सहनशक्ति, स्वास्थ्य, बल, गौरव एवं उनके व्यवहार की परीक्षा अवश्य लेनी चाहिए।[14]

अत: स्पष्ट है कि मंत्रियों की नियुक्ति से पहले राजा को उनकी परीक्षा अवश्य लेनी चाहिए।

मंत्रियों की संख्या

राजा के मंत्रियों की संख्या निश्चित नहीं होनी चाहिए जिससे कि वह अपनी आवश्यकतानुसार मंत्रियों की संख्या को कम या अधिक कर सकें। लेकिन राजकीय महत्व के विषयों में उचित परामर्श के लिए एक या दो व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक व्यक्तियों का परामर्श उपयोगी माना गया है। इसका अभिप्राय यही प्रतीत होता है कि राज्य के विभिन्न कार्य होते हैं, उन्हें अकेला मंत्री या अकेला राजा नहीं कर सकता। इसके लिए कुछ मंत्रियों की संख्या होनी चाहिए जो न तो अधिक और न ही एक या दो होनी चाहिए। इस विषय में आचार्य सोमदेव ने अकेले राजा द्वारा राज्य संचालन न होने के विषय में एवं मंत्रियों की आवश्यकता के विषय में उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहा है कि -

किमेकशाखस्य शखिनो महती भवतिच्छाया।।[15]

अर्थात् क्या केवल एक शाखा वाले वृक्ष से कभी अधिक छाया उत्पन्न हो सकती है नहीं हो सकती तो उसी प्रकार अकेले मंत्री के महान राज्य में कार्य कभी भी सिद्ध नहीं हो सकते। अत: मंत्रिमंडल की संख्या के विषय में आचार्य सोमदेव का कथन है कि राजा को अपनी आवश्यकता के अनुसार तीन, पाँच या सात मंत्रियों को नियुक्त करनी चाहिए।[16] इसी प्रकार मंत्रियों की संख्या के विषय में आचार्य मनु का कथन है कि राजा को सात या आठ मंत्रियों को नियुक्त करना चाहिए जो बुद्धिमान् एवं धार्मिक प्रवृत्ति के हो।[17] रामायण में मंत्रियों की संख्या के विषय में कहा गया है कि राजा दशरथ के आठ मंत्री थे, वे सब अत्यंत यशस्वी, बुद्धिमान्, ईमानदार एवं सर्वदा राज्य कार्यों में लगे रहते थे।[18] इसी प्रकार महाभारत के नए मंत्रियों की संख्या के विषय में भीष्म पितामह का कथन है कि -

मन्त्रिण: प्रकृतिज्ञा: स्युस्त्रयवरामहदीप्सव:।[19]

अर्थात् राजा को कम से कम तीन मंत्रियों की नियुक्ति करनी चाहिए एवं उन तीन मंत्रियों से पृथक्-पृथक् सलाह लेनी चाहिए जिस पर राजा को भी मनोयोग पूर्वक चिंतन करना चाहिए।[20]

इस प्रकार आचार्य कौटिल्य एवं शुक्र ने भी अपने-अपने मतानुसार मंत्रियों की संख्या को स्वीकार किया है, जिसमें कौटिल्य ने आवश्यकतानुसार भी राज्य को मंत्री चुनने के विषय में संकेत किया है।[21] इस प्रकार आचार्य शुक्ल 20 मंत्रियों तक मंत्री रखने के पक्षधर थे।[22] अत: उपरोक्त तथ्यों से प्रतीत होता है कि विभिन्न ग्रंथों के आचार्यों ने मंत्रियों की संख्या के विषय में मत प्रस्तुत किए जो कि राजा की आवश्यकता पर निर्भर करते हैं।

मंत्रियों के अधिकार एवं कर्त्तव्य

मंत्रियों के अधिकार एवं कर्त्तव्य के विषय में कहा गया है कि राजा द्वारा मंत्रियों को उनकी योग्यता के आधार पर उन्हें पूरा अधिकार दिया जाना चाहिए। जिससे अधिकार मिलने पर यह मंत्री संपूर्ण निष्ठा एवं ईमानदारी से कर्त्तव्य को पूरा कर सके। इस विषय में राजा को भी ध्यान रखना चाहिए कि एक कार्य पर दो या तीन व्यक्ति नियुक्त नहीं करना चाहिए जबकि एक कार्य पर

एक ही व्यक्ति को नियुक्त करना चाहिए क्योंकि एक कार्य पर नियुक्त हुए अनेक व्यक्तियों में सर्वदा मतभेद बना रहता है।[23]

राजकार्यों में राजा को सत परामर्श देना मंत्रियों का प्रमुख कर्त्तव्य माना गया है। मंत्रियों के कर्त्तव्य का उल्लेख करते हुए आचार्य सोमदेव ने कहा है कि –

अकृतारम्भमारब्धस्याप्यनुष्ठानम् अनुष्ठितविशेषं विनियोगसंपदं च ये कुर्युस्ते मंत्रिण:।[24]

अर्थात् प्रारंभ किए हुए कार्यों को संपूर्ण करना और जो कार्य संपूर्ण हो चुके हैं उनमें कुछ विशेषता उत्पन्न करना तथा अपने अधिकारों का उचित स्थान पर प्रभाव दिखाना यह मंत्रियों के प्रमुख कर्त्तव्य माने गए हैं। मंत्रियों के अधिकार एवं कर्त्तव्य के विषय में विशेष महत्व प्रदान करते हुए महाभारत में कहा गया है कि मंत्रियों को इनकी योग्यता के अनुरूप कर्मों में नियुक्त करना चाहिए, क्योंकि यह सर्वदा परस्पर स्पर्धापूर्वक कार्य करते हैं और एक दूसरे से सलाह लेकर अर्थ की सिद्धि के लिए हमेशा तत्पर रहते हैं, जिससे बड़े से बड़े कार्य में भी सफलता प्राप्त कर राजा के कल्याण एवं राज्य में समृद्धि को उत्पन्न करते हैं।[25]

निष्कर्ष

अत: स्पष्ट है कि राजा को राज्य संचालन एवं प्रजा के कल्याण हेतु अपने सहायकों के रूप में ऐसे मंत्रियों एवं उप-मंत्रियों की नियुक्ति करनी चाहिए जो शास्त्रोक्त विधि से चुने हुए एवं सर्वश्रेष्ठ गुणों से संपन्न हो।

सन्दर्भ सूची –

1. यद्यप्यल्पतरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम्। पुरुषणासहायेन किमु राज्यं महोदयम् ।। शुक्रनीति 2.1
   न ह्येकं चक्रं परिभ्रमति।। नीतिवाक्यामृत 18.3
2. शुक्रनीति – 2.2
3. सज्जमानमकार्येषु निरून्ध्युर्मन्त्रिणो नृपम् ।
   गुरूणमिव चैतेषां श्रृणुयाद्वचनं नृप:।। कामन्दकीय नी0सा0 प.41
4. अमात्ये ह्यर्थलिप्सा च मन्त्ररक्षणमेव च ।
   कृतानि सर्वकार्याणि यस्य पारिषदा विदु ।।
   धर्मे चार्थे च कामे च स राजा राजसत्तम: ।
   गूढमन्त्रस्य नृपतेस्तस्य सिद्धिरसंशयम् ।। – विदुरनीति – 6.19-20
5. चाणक्यनीति – 2.15 – 18.3
6. शुक्रनीति – 2.85
7. मौलञ्छास्त्रविद: शुरॉल्लब्धलक्षान् कुलोदगतान् ।
   सचिवान्सप्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान् ।। मनुस्मृति – 7.54
8. वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड – 7.1-2
9. ब्राह्मणक्षत्रियविशामेकतमं स्वदेशजमाचाराभिजनविशुद्धमव्यसनिनम् अव्याभिचारिणमधीताखिल व्यवहारतंत्रमस्त्रज्ञमशेषोपाधि: विशुदं च मन्त्रिण कुर्वीत ।। नीतिवाक्यामृत – 10.5
10. महाभारत शांति पर्व – 118.7-14, याज्ञवल्क्य स्मृति – 1.312, कौटिल्य अर्थशास्त्र – 1.9.2, कुलीना: शुचय: शुराङ्ग: श्रुतवन्तोऽनूरागिन: । दण्डनीति प्रयोक्तार: सचिवा: स्युर्महीपते: ।। का0नी0 4.25
11. विदुरनीति – 6.18
12. नापरीक्ष्य महीपाल: सचिव कर्तुमर्हति अकुलीननराकीर्णो न राजा सुखमेद्यते।। महा शांति – 118.4, शुक्र0 2.55
13. रामायण बालकाण्ड – 7.10
14. तेषां जनपदमवग्रह चाप्यत: परीक्षेत । समान-विद्येभ्य: शिल्पं, शास्त्रं, चक्षुष्मतां च, कर्मारम्भेषु प्रज्ञा ..... कौ0अर्थ0 – प्र 4 अ 8
15. नीतिवाक्यामृत – 10.82
16. त्रय: पंच सप्त वा मन्त्रिणस्तै: कार्या:।। नीतिवाक्यामृत – 10.71
17. सचिवान्सप्तचाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान् । मनुस्मृति – 7.54
18. वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड – 7.2
19. महाभारत का शांतिपर्व – 83.47
20. तेषां त्रयाणां विविधं विमर्श विबुद्धयचितं विनिवेश्यतत्र ।
21. यथासामर्थ्यमिति कौटिल्य ।
    महाभारत शांतिपर्व – 85.53, कौटिल्य अर्थशास्त्र – 1.15.50
22. कौटिल्य अर्थशास्त्र – 1.15.49
23. नैव दौ न त्रय: कार्या न मृष्येरन् परस्परम् ।
    एकार्थे ह्येव भूतानां भेदो भवति सर्वदा।।
    महाभारत शांतिपर्व – 80.25
24. नीतिवाक्यामृत – 25 महाभारत शांतिपर्व – 80.30-31

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कामन्दकीयनीति सार – डॉ0 राजेंद्र लाल मित्र, प्रकाशन-एशियाटिक सोसाइटी,कोलकाता, 1982
2. कौटिल्य अर्थशास्त्र – डॉ0 रघुनाथ सिंह, प्रकाशन-कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 1983
3. चाणक्यनीति, चाणक्य, अनु0 सौरभ अग्रवाल, मनोज प्रकाशन ।
4. महाभारत शांतिपर्व – महर्षि वेदव्यास, अनु0 पंडित राम नारायण दत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम', प्रकाशन-आत्माराम एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली।
5. मनुस्मृति – आचार्य मनु, अनु0 पंडित रामेश्वर भट्ट, प्रकाशन-चौखंबा संस्कृत प्रतिष्ठान, जवाहर नगर, बंगलो रोड, दिल्ली।
6. नीतिवाक्यामृत – सोमदेव, अनु0 पंडित सुंदरलाल शास्त्री, प्रकाशन-द्वितीय संस्करण, श्री वर्धमान मुदवालय, भेलूपुर वाराणसी, (उत्तर प्रदेश)
7. याज्ञवल्क्य स्मृति – याज्ञवल्क्य, व्याख्या पंडित थानेशचंद्र उप्रेती, प्रकाशन-परिमलपब्लिकेशंस, दिल्ली।
8. शुक्रनीति, शुक्राचार्य, व्याख्या पंडित ब्रह्मशंकर मिश्र, प्रकाशन-चौखंबा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी।
9. वाल्मीकि रामायण, महर्षि वाल्मीकि, प्रकाशन-गीता प्रेस, गोरखपुर।
10. विदुरनीति – विदुर, व्याख्या डॉ0 गुन्जेश्वर चौधरी, प्रकाशन-चौखंबा सुरभारती ।

ISSN 2278 - 0327

शिक्षा में योग की अवधारणा

राजू
एम० ए०, बी० एड०
Email : raju96panchal@gmail.com

शोध प्रविधि-

भारतीय साहित्य में प्रमुख रूप से नौ दर्शनों की अवधारणा है। जिनमें से एक है- योग दर्शन। योग एक व्यापक विषय है। वेदों, उपनिषदों में योग का वर्णन किया गया है। श्रीमद्भगवद् गीता में भी अनेक प्रकार से योग को परिभाषित किया गया है। यथा- '*सिद्धयसिद्धयो: समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते*' तथा '*योग: कर्मसु कौशलम्*'। योग दर्शन के प्रवर्तक / रचयिता महर्षि पतंजलि है। इन्हीं के नाम पर इस दर्शन को 'पातंजल योगदर्शन' भी कहा जाता है। महर्षि पतंजलि का योगसूत्र योगदर्शन का प्रथम सुव्यवस्थित और वैज्ञानिक अध्ययन है।

मूल शब्द- लक्ष्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियाँ, योग शिक्षा एवं विद्यार्थी, अध्यापक की भूमिका।

प्रस्तावना -

'योग' शब्द समाध्यर्थक युज् धातु से निस्पन्न हुआ है। जिसका अर्थ है- समाधि। पतंजलि के अनुसार चित्त अर्थात् अंत:करण की वृत्तियों को चंचल होने से रोकना ही योग है। अर्थात् अपने मन को इधर-उधर भटकने न देना बल्कि एक ही लक्ष्य की गई वस्तु में स्थिर रखना ही योग है और इसके लिए पतंजलि ने एक मार्ग स्थापित किया है। इस मार्ग को अष्टांग योग कहा जाता है। अष्टांग योग के आठ अंग-यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि है।

महर्षि पतंजलि ने संपूर्ण योगदर्शन को चार अध्यायों में विभाजित किया। प्रथम अध्याय का नाम- समाधिपाद, द्वित्तीय- साधनपाद, तृतीय-विभूतिपाद व चौथा- कैवल्यपाद है। योग दर्शन में 195 सूत्र हैं। सांख्य के पच्चीस तत्त्वों - दस बाह्य इन्द्रियों, तीन आंतरिक इन्द्रियों, पंच तन्मात्रा (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध), पंच महाभूत (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, प्रकृति व पुरुष को योग भी मानता है। योग इन पच्चीस तत्त्वों में एक तत्त्व ईश्वर को भी जोड़ देता है। इस प्रकार योग के अनुसार तत्त्वों की संख्या छब्बीस है।

शिक्षा के संदर्भ में योग -

(1) शिक्षा का उद्देश्य/लक्ष्य -

योग का प्रतिपाद्य/ उद्देश्य स्वस्थ शरीर व सबल आत्मा है। योग दर्शन विवेक ज्ञान की प्राप्ति के लिए योगाभ्यास को आवश्यक मानता है। योगाभ्यास पर जोर देना इस दर्शन की निजी विशिष्टता है। इसलिए योग-दर्शन में व्यवहारिक पक्ष अत्यधिक प्रधान है। योग का तात्पर्य व्यवहारिक शिक्षा से है तथा इसके निम्नलिखित उद्देश्य है -

(क) शारीरिक विकास-

हर व्यक्ति की यह इच्छा होती है कि उसका शरीर हष्ट-पुष्ट हो, उसके अंगों व प्रत्यंगों की कार्यकारिणी शक्ति में वृद्धि हो तथा वह एक लंबा जीवन व्यतीत करें। इसके लिए योग महत्त्वपूर्ण माना गया है। विभिन्न प्रकार के आसन व प्राणायाम द्वारा हम अपने शरीर को निरोगी व शक्तिशाली बना सकते हैं। श्वास क्रिया को स्थिर व शांत करने के लिए योग सहायक है। अगर हमारा शरीर स्वस्थ होगा तो हम अपने कार्यों, पढ़ाई, खेलकूद आदि को बड़े ही सरल ढंग से पूरा कर सकेंगे इसलिए योग शारीरिक विकास में भी सहायक है।

(ख) मानसिक व बौद्धिक विकास -

योग दर्शन चित्तभूमि अर्थात् मानसिक अवस्था के भिन्न-भिन्न कार्य रूपों में विश्वास करता है। ये चित्त अर्थात् मन की पाँच अवस्थाएँ हैं- (1) **क्षिप्त**-यह वह अवस्था है, जिसमें चित अत्यधिक चंचल एवं सक्रिय रहता है। उसका ध्यान किसी एक वस्तु पर केंद्रित नहीं हो पाता। (2) **मूढ**- इस अवस्था में निद्रा, आलस्य इत्यादि की प्रबलता रहती है। (3) **विक्षिप्त**- इस अवस्था में चित्त का ध्यान कुछ समय के लिए निर्धारित लक्ष्य / उद्देश्य पर जाता है। परंतु स्थिर नहीं हो पाता। (4) **एकाग्रता**- इस अवस्था में मन (चित्त) अपने लक्ष्य अर्थात् विषय पर देर तक ध्यान लगाता रहता है। (5) **निरूद्धावस्था** -इस अवस्था में मन को सभी विषयों अर्थात् बाहरी परिदृश्य से अलग करके एक विषय

पर ध्यानमग्न (ध्यान केंद्रित) किया जाता है।

इस प्रकार जब ऊपरी तीन अवस्थाओं को विद्यार्थी पार कर लेता है। तब एकाग्र और निरूद्ध अवस्थाओं द्वारा मन की स्थिरता प्राप्त होगी व मानसिक व बौद्धिक शक्ति का विकास होगा।

(ग) नैतिक व चारित्रिक विकास–

योग में वर्णित अष्टांगयोग में निहित–अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, संतोष, स्वाध्याय आदि गुणों का अपने चरित्र में समावेश करेंगे, जिससे विद्यार्थियों का नैतिक व चारित्रिक विकास होगा।

(घ) इन्द्रिय संयम व चित्त की शुद्धि –

इन्द्रियाँ ज्ञान की प्राप्ति का प्राथमिक स्त्रोत है। इन्द्रियों के संयम से अभिप्राय है कि अपनी इन्द्रियों को अपने वश में करके उसको बाहरी विषयों की और न जाने देना। अगर हमारी इन्द्रियाँ वश में होगी तो चित्त की शुद्धि अपने आप होती रहेगी। चित्त बाहरी विषय–वस्तुओं की ओर आकर्षित नहीं होगा। इस प्रकार इन्द्रियों पर संयम व चित्त की शुद्धि भी योग का परम लक्ष्य / उद्देश्य है।

(ङ) सांस्कृतिक विकास–

योग शिक्षा विद्यार्थियों में सद् आचरण, संयम, नियम तथा इन्द्रियों के निग्रह आदि के माध्यम से उपर्युक्त मानवीय मूल्यों को विकसित करके सुसंस्कृत बनाने में योगदान देती है व विद्यार्थियों को अपनी प्राचीन संस्कृति व शिक्षा पर गर्व करने का अवसर तथा उनके मूल्यों को आत्मसात करने में सहायता करती है।

(च) अध्यात्मिक विकास–

योग साधना व्यक्ति को शरीर व मन से कहीं अधिक अध्यात्मिक प्रगति का रास्ता दिखाती है। सृष्टि ईश्वरमय है। सभी प्राणी उसी परमात्मा के अंश हैं। अष्टांग योग का ज्ञान प्राप्त होने से अविद्या का नाश होगा व ज्ञान का उदय होगा। ज्ञान की प्राप्ति होगी तो ईश्वर प्राणीधान अर्थात् ईश्वर की भक्ति में मग्न होगा तब ईश्वर व आत्मा का साक्षात्कार होगा तो वह मोक्ष / मुक्ति को प्राप्त करेगा। इसलिए योग आध्यात्मिक विकास में भी सहायक है।

(2) पाठ्यक्रम –

योग दर्शन में व्यवहारिक व आध्यात्मिक दोनों पहलुओं के विकास को महत्त्व दिया गया है। अत: पाठ्यचर्या इस प्रकार की होनी चाहिए जो आरंभ में ही बच्चों को कर्मेन्द्रियों व ज्ञानेन्द्रियों को क्रियाशील कर सके। इसके लिए पाठ्यक्रम में पाठ्य सहगामी क्रियाएँ खेलकूद, आसन, ध्यान, व्यायाम आदि को सम्मिलित किया जाना चाहिए। ताकि बच्चों की कर्मेन्द्रियों व ज्ञानेन्द्रियों के विकास के साथ–साथ उनका शारीरिक विकास भी हो सके। बच्चों को शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध तन्मात्राओं का ज्ञान दिया जाना चाहिए क्योंकि वस्तुओं की ध्वनि, रूप, आकृति, आकार आदि के अनुभव तन्मात्रा के अंतर्गत आते हैं। मन व बुद्धि के विकास के लिए पाठ्यक्रम में भाषा, साहित्य, पदार्थ–विज्ञान, गणित आदि जैसे तत्त्वों का ज्ञान शामिल करना चाहिए। आत्मतत्त्व के ज्ञान की शिक्षा देनी चाहिए। उनकी योग्यता, समताओं व रूचियों के अनुकूल विशेष स्वाध्याय की व्यवस्था भी करनी चाहिए। आध्यात्मिक जीवन के लिए पारमार्थिक विषय (ईश्वर, आत्मा, मोक्ष आदि) एवं परमार्थिक क्रियाओं (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान व समाधि) का समावेश किया जाना चाहिए ताकि विद्यार्थियों का संपूर्ण विकास हो सके।

(3) शिक्षण विधियाँ –

पतंजलि जी ने निम्नलिखित शिक्षण विधियों की ओर संकेत किया है –

(क) श्रवण विधि–

शिष्य को ऐसे वातावरण में रखना चाहिए कि वह गुरु की बात को ध्यानपूर्वक सुन सके व ज्ञान का संचय कर सके व उनको आत्मसात कर सके।

(ख) मनन विधि–

योग दर्शन में विवेक ज्ञान के लिए योगाभ्यास अर्थात् विषय का बार–बार अभ्यास उसका चिंतन मनन करना बताया गया है।

(ग) निद्धिध्यासन विधि–

इस प्रकार गुरु के उपदेश को श्रवण कर, उसका चिंतन (मनन) कर, फिर किसी लक्ष्य तक पहुँचना (निद्धिध्यासन) ही एक पूर्ण रूप से मानसिक प्रक्रिया है और व्यक्ति के आत्मिक विकास का आधार है।

(घ) प्रश्नोत्तर विधि–

इस विधि में विषयों व तत्त्वों से संबंधित शंकाओं का प्रश्नोत्तर द्वारा निवारण किया जाता है।

(ङ) व्याख्या विधि –

योगदर्शन में प्रथम सूत्र में ही पतंजलि ने कहा है–'*अथ योगानुशाससनम्*' अर्थात् योग के साथ अनुशासन पद का प्रयोग करके शिक्षा की अनादिता को सूचित किया है। अथ शब्द से उसका आरंभ करने की प्रतिज्ञा की है। इस प्रकार गुरु अपने पाण्डित्य से विषय की व्याख्या करता है।

(च) दृष्टांत विधि –इस विधि से छात्रों को कठिन विषयों का

ज्ञान सरल व सहज दृष्टांतों के द्वारा किया जाता है। जैसे–अष्टांग में निहित आसनों व प्रत्याहारों का गुरु द्वारा स्वयं प्रदर्शित करके उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है।

(छ) कथाकथन विधि–यह कहानी विधि का ही परिवर्तित रूप है। इस विधि में किसी गुढतत्त्व का ज्ञान कहानी द्वारा छात्रों को दिया जाता है। जैसे समाधि, अणिमा, लघिमा आदि सिद्धियों व शक्तियों का ज्ञान ऋषियों, मुनियों की कहानियाँ द्वारा दिया जा सकता है।

(4) योग शिक्षा व विद्यार्थी–

योग दर्शन में अष्टांग योग का वर्णन किया गया। जो विद्यार्थियों के लिए बहुत लाभकारी है। विद्यार्थियों को यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि इनका मार्ग अपनाना चाहिए ताकि वे स्वयं का विकास, उत्थान कर सके। विद्यार्थी के लिए निम्न प्रकार से उपयोगी है –

(क) यम –

बाह्य व अभ्यांतर इन्द्रियों के संयम की क्रिया यम है। यम पाँच प्रकार के होते हैं।

(1) अहिंसा –

अहिंसा से अभिप्राय है कि हमें किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं पहुँचानी चाहिए।

(2) सत्य –

विद्यार्थी को ऐसे सत्य वचनों का प्रयोग करना चाहिए जिससे सभी प्राणियों का हित हो।

(3) असत्य–

दूसरे की वस्तु, धन आदि का अपहरण करने की प्रवृत्ति का विद्यार्थी को त्याग करना चाहिए यही अस्तेय है।

(4) ब्रह्मचर्य –

विद्यार्थीयों को विषय–वासना की ओर झुकाने वाली बुरी प्रवृत्ति का परित्याग करना चाहिए यही ब्रह्मचर्य है।

(5) अपरिग्रह–

अनावश्यक वस्तुओं, बातों के ग्रहण का त्याग अपरिग्रह है। विद्यार्थियों को मन को सबल बनाने के लिए ये पाँच प्रकार के यम का पालन अवश्य रूप से करना चाहिए।

(ख) नियम –

नियम का अर्थ है – सदाचार का प्रश्रय देना। ये नियम भी पाँच माने गए हैं –

(1) शौच– शौच के अंतर्गत विद्यार्थी की बाह्य व आंतरिक शुद्धि समाविष्ट है। विद्यार्थी को स्नान, पवित्रता, स्वच्छता, करूणा, मैत्री, प्रसन्नता आदि गुणों को अपनाना चाहिए।

(2) संतोष–

विद्यार्थी को जीवन में जो कुछ प्राप्त हो उसी में संतोष रखना चाहिए क्योंकि यदि मन में संतोष नहीं है तो कितना ही भौतिक वैभव मिल जाए, वह कभी प्रसन्न नहीं रह सकता।

(3) तपस–

सर्दी–गर्मी, सुख–दु:ख को समान रूप से सहन करना। शारीरिक कठिनाइयों को झेलना तपस् है। इसी प्रकार अध्ययन में आने वाली सभी बाधाओं व कठिनाइयों को विद्यार्थी को पार करते हुए अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते रहना ही तप है।

(4) स्वाध्याय–

स्वाध्याय का अर्थ शास्त्रों का अध्ययन करना तथा ज्ञानी पुरुष के कथनों का अनुकरण करना। विद्यार्थी को मन, कर्म, वचन से स्वाध्याय करना चाहिए।

(5) ईश्वर प्रणिधान–

विद्यार्थियों को अपने अध्ययन के साथ–साथ ईश्वर में भी आस्था रखनी चाहिए। ईश्वर ही सभी कार्यों का आदि व अंत है।

(ग) आसन –

आसन की अवस्था में शरीर की क्रियाशीलता और मन की चंचलता इत्यादि का अभाव हो जाता है। तन व मन दोनों को एक स्थान पर स्थिर रखना पड़ता है तभी विद्यार्थी अपनी मंजिल तक पहुँच सकता है। इस प्रकार आसन से शरीर व मन दोनों को शक्ति प्राप्त होती है।

(घ) प्राणायाम –

प्राणायाम शरीर और मन को दृढ़ता प्रदान करता है। श्वास के व्यायाम से हृदय सबल होता है इसलिए विद्यार्थियों को प्रतिदिन प्राणायाम करना चाहिए।

(ङ) प्रत्याहार–

प्रत्याहार का अर्थ है। इन्द्रियों के बाहरी विषयों से दूर कर उन्हें मन के वश में रखना। प्रत्याहार को अपनाना अत्यंत कठिन है। विद्यार्थी दृढ़ संकल्प और अभ्यास के द्वारा ही अपनी इन्द्रियों को वश में कर सकता है।

(च) धारणा–

धारणा स्वयं के आंतरिक अनुशासन की पहली सीढ़ी है। धारणा में विद्यार्थी का मन किसी एक वस्तु या लक्ष्य पर केंद्रित करना पड़ता है, जिसको वह हासिल करना चाहता है।

(छ) ध्यान– ध्यान का अर्थ है– एक ही लक्ष्य पर अपना सारा ध्यान केंद्रित करना। विद्यार्थी को इस अवस्था में पहले विषयों या

लक्ष्यों के अंशों का ज्ञान होता है। पर संपूर्ण विषय की रूपरेखा विदित नहीं होती है।

(ज) समाधि–

इस अवस्था में विद्यार्थी जिस लक्ष्य को प्राप्त करना चाहता है, केवल मात्र उसी की चेतना या अनुभूति रहती है। यहाँ तक कि उसे स्वयं का भी कोई भान नहीं रहता। इस प्रकार अष्टांग योग के पालन से चित्त का विकार नष्ट हो जाता है। विद्यार्थी अपने यथार्थ स्वरूप को पहचान लेता है कि उसे अपने जीवन में क्या हासिल करना है।

(5) अध्यापक की भूमिका –

योग दर्शन के अनुसार अध्यापक को बालक की अंतर्निहित योग्यताओं के विकास का साधन बनना चाहिए। उसे योग के प्रत्येक विषयों का सूक्ष्म रूप से ज्ञान होना चाहिए।

अध्यापक विद्यार्थियों के समक्ष एक उच्च कोटि का आदर्श होना चाहिए। अधिगमकर्ताओं को उसमें विश्वास होना चाहिए। शिक्षा विद्यार्थी के संपूर्ण शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक व आध्यात्मिक विकास में योगदान देती है इसलिए अध्यापक को यह ज्ञान जरूरी होना चाहिए कि विद्यार्थी के इन पक्षों का विकास किस प्रकार होगा। अध्यापक को अष्टांग योग का गहराई से ज्ञान होना चाहिए ताकि विद्यार्थियों को भी सभी तत्त्वों का ज्ञान हो जाए।

बच्चों के जन्म के पश्चात् ही कर्मेन्द्रियाँ सक्रिय हो जाती है। अध्यापक को सभी कर्मेन्द्रियों व ज्ञानेन्द्रियों के विषयों की जानकारी होनी चाहिए जिससे वह बालक के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सके।

निष्कर्ष –

इस प्रकार कह सकते हैं कि यद्यपि योग दर्शन द्वारा दिए सिद्धांत विद्यार्थी व अध्यापक के लिए बहुत प्राचीन है। परंतु आधुनिक परिप्रेक्ष्य में इन्हें स्वीकार किया जाता रहा है। यह तथ्य या सिद्धांत आज भी उतने ही वैद्य है, जितने वह तब थे जब महर्षि पतंजलि द्वारा प्रस्तुत किए गए थे। हमें उनके सिद्धांतों को न केवल शिक्षा तक सीमित करना चाहिए बल्कि यह भी प्रयास करना चाहिए कि इनको अपने जीवन दर्शन में लागू कर सके। ताकि भविष्य में हम सुखी व स्वस्थ रहे।

संदर्भ ग्रन्थ–

1. योग–दर्शन, महर्षि पतंजलि कृत
2. भारतीय दर्शन, जगदीश चंद्र मिश्र
3. शिक्षा के दार्शनिक, समाजशास्त्रीय और आर्थिक आधार, डॉ0 रेनू गुप्ता।

ISSN 2278 - 0327

एजाज रसूल बेगम

(संविधान सभा में पहुंचने वाली एकमात्र मुस्लिम महिला)
एक परिचय एवं योगदान : विस्तृत संदर्भ में

सविता
शोधछात्रा, इतिहास विभाग
एम.एम.पीजी कॉलेज
मोदीनगर, गाजियाबाद उ.प्र.

डॉ. आशा यादव
एसो. प्रो. विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग
एम. एम. पीजी कॉलेज मोदीनगर
गाजियाबाद उ.प्र.

शोध सारांश

कैबिनेट मिशन की संस्तुतियों के आधार पर भारतीय संविधान का निर्माण करने वाली संविधान सभा का गठन जुलाई 1946 ईस्वी में किया गया। संविधान सभा के सदस्यों की कुल संख्या 389 निश्चित की गई थी, जिनमें 292 ब्रिटिश प्रांतों के प्रतिनिधि, 4 कमिश्नरी क्षेत्रों के प्रतिनिधि एवं 93 देशी रियासतों के प्रतिनिधि थे, प्रांतो का प्रतिनिधित्व मुख्यत: 3 प्रमुख समुदायों की जनसंख्या के आधार पर किया गया था, समुदाय थे मुस्लिम, सिख व साधारण संविधान सभा में 389 सदस्यों में से महिला सदस्यों की संख्या मात्र 15 थी इन 15 महिलाओं में से पांच महिलाएं संयुक्त प्रांत (उत्तर प्रदेश) से थी संयुक्त प्रांत से एकमात्र मुस्लिम महिला एजाज रसूल बेगम थी, जिन्होंने न केवल संयुक्त प्रांत का प्रतिनिधित्व किया बल्कि संविधान मसौदा निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बेगम एजाज रसूल ने अल्पसंख्यकों के लिए आरक्षित सीटों की मांग को छोड़ने के लिए आम सहमति बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया तथा मुस्लिम महिलाओं के कल्याण एवं जागरुकता के लिए अनेक उल्लेखनीय प्रयास किए। उन्होंने न केवल विभाजन के बाद मुसलमानों की राजनीतिक अलगाववाद के साथ टकराव से अपनी स्थिति को बाधित पाया, बल्कि उन्हें इतिहास के पिछड़े, अदृश्य, मूक विषयों के रूप में मुस्लिम महिलाओं के रुढीवादी विचारों के साथ भी संघर्ष करना पड़ा। बेगम का मानना था कि संविधान न केवल महिलाओं के साथ भेदभाव को खत्म करेगा वरन वास्तव में एक नए गणराज्य में महिलाओं के लिए 'अवसर की समानता' को भी सुनिश्चित करेगा।

कुंजी शब्द –संविधान, समानता, प्रतिनिधित्व, अल्पसंख्यक, आरक्षण, संप्रदायिकता।

भूमिका –

भारत के विभाजन के साथ मुट्ठी भर मुस्लिम लीग के सदस्य ही भारतीय संविधान सभा में शामिल हए बेगम एजाज रसूल को प्रतिनिधि मंडल का उपनेता और संविधान सभा में विपक्ष का नेता चुना गया जब चौधरी खली कुजमा पार्टी के नेता पाकिस्तान रवाना हुए तो बेगम एजाज ने उन्हें मुस्लिम लीग के नेता के रूप में सफल बनाया, बेगम एजाज रसूल ने मुस्लिम अल्पसंख्यकों के बीच धार्मिक अल्पसंख्यकों के लिए आरक्षित सीटों की मांग को छोड़ने के लिए आम सहमति बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, मसौदा समिति की एक सभा में अल्पसंख्यकों के अधिकार से संबंधित चर्चा के दौरान उन्होंने मुस्लिमों के लिए अलग निर्वाचन मंडल का विरोध किया। उन्होंने अलग निर्वाचन मंडल के विचार को आत्म विनाशकारी बताया जो अल्पसंख्यकों को बहु–संख्यकों से अलग करता है। यह अल्पसंख्यकों को हर समय बहुमत की सद्भावना जीतने का कोई मौका नहीं देता है यह अलगाव और सांप्रदायिकता की भावना को जीवित रखता है जिसे हमेशा के लिए दूर किया जाना चाहिए। अलग निर्वाचन मंडल की इच्छा रखने वाले मुस्लिम लीग के सदस्यों ने बेगम की इस अपील को अंतत: स्वीकार कर लिया।

एजाज रसूल बेगम का जीवन परिचय –

एजाज रसूल बेगम का जन्म पंजाब प्रांत के संगरुर जिले में 2 अप्रैल सन् 1909 को हुआ इनका जन्म ऐसे समय में हुआ था जब भारतीय समाज में सांप्रदायिक राजनीति का गहरा ध्रुवीकरण था, उस समय विधायिका में प्रतिनिधित्व के लिए विशेष प्रावधान किए गए थे इनके पिता सर जुल्फीकार अली खान और माता महमूदा सुलताना थी इनके पिता मलेरकोटला शासक परिवार से

संबंधित थे और माता लोहारु के नवाब अलाउद्दीन अहमद खान की बेटी थी बेगम एजाज के बचपन का नाम साहिबा कुदसिया था, इन्होंने अपने पिता के साथ सचिव के रूप में काम किया जिससे वह प्रमुख राष्ट्रवादी हस्तियों, औपनिवेशिक अधिकारियों और बुद्धिजीवियों के साथ निकटता में आई कुदसिया का विवाह सन् 1929 में नवाब एजाज रसूल से हुआ था, जो उस समय अवध के हरदोई जिले के संडीला के तालुकदार थे कुदसिया का विवाह एक सामंजस्य पूर्ण राजनीतिक समझौता था और यह व्यवस्था मेलकम हेली ने की थी। विवाह के 2 वर्ष बाद कुदसिया के पिता की मृत्यु सन् 1931 में हो गई। पिता की मृत्यु के बाद कुदसिया के ससुराल वाले उसे संडीला ले गए और वही उसकी मृत्यु के बाद उसे दफनाया गया था कुदसिया को संडीला में बेगम एजाज रसूल कहकर पुकारा जाता था तथा इसी नाम से उन्हें सार्वजनिक रिकॉर्ड में जाना गया है। इनकी मृत्यु 1 अगस्त सन् 2001 में 93 वर्ष की उम्र में लखनऊ, उत्तर प्रदेश में हुई।

राजनीति में प्रवेश –

कुदसिया ने अपने राजनीतिक जीवन की शुरुआत 1937 में मुस्लिम लीग (संयुक्त प्रांत में) के एक निर्वाचित सदस्य के रूप में की थी। जबकि विपक्ष के अधिकांश सदस्य विभाजन के बाद पाकिस्तान चले गए, रसूल बेगम भारत में रही और भारतीय कांग्रेस में शामिल हो गई। एजाज बेगम एक मुस्लिम राजनीतिज्ञ के रूप में प्रसिद्ध हुई, एजाज बेगम 73 मुस्लिम लीग के सदस्यों में से एक थी। 1937 के चुनावों में वह उन कुछ महिलाओं में से एक थी जो गैर आरक्षित सीट से सफलतापूर्वक चुनाव लड़ी और विधान सभा के लिए चुनी गई। 1939 में जब कांग्रेस के मंत्रालयों ने इस्तीफा दे दिया, तो रसूल विधान परिषद के सदस्य बनी रही उनके पति नवाब एजाज रसूल, जो यूनाइटेड प्रोविंस मुस्लिम लीग के महासचिव थे, ने 1941 में उनका परिचय एम ए जिन्ना से कराया हालांकि लीग में शामिल होने के लिए उन पर दबाव था रसूल इसके बारे में जानती थी। उनकी मुख्य चिंता यह थी कि उनके अपने जैसे अल्पसंख्यक प्रांतों में मुसलमानों का क्या होगा? वह भी पाकिस्तान के विचार से आश्वसत नहीं थी।

उनके शब्दों में, 'क्या पाकिस्तान' आर्थिक रूप से व्यवहार्य था? हालांकि रसूल मुस्लिम लीग की महिला उप समिति के सचिव के रूप में शामिल हई, लेकिन पाकिस्तान समर्थक आंदोलन के लिए उनके समर्थन की कमी ने उन्हें गहराई से विभाजित महसूस कराया उनकी दुविधा को बीसवीं सदी के मध्य में चुनावी राजनीति में अन्य मुस्लिम महिलाओं द्वारा सांझा किया गया था हालांकि अलग-अलग राजनीतिक प्रवृत्तियों के साथ वह मुस्लिम लीग के सदस्यों में से एक थी, जो 1946 से 1950 ईस्वी तक भारतीय संविधान सभा के सदस्य के रूप में कार्यरत रही वह एकमात्र मुस्लिम महिला थी जो इस पद तक पहुंचने में सफल रही। 1950 में मुस्लिम लीग भंग होने के बाद वह काँग्रेस पार्टी में शामिल हो गई। अपनी पारिवारिक जमीनदारी पृष्ठभूमि के बावजूद एजाज बेगम जमीनदारी उन्मूलन के लिए मजबूत समर्थन प्राप्त करने के लिए जानी जाती हैं। इन्होंने अलग निर्वाचन मंडल का भी जमकर विरोध किया था। 1952 में वह उत्तर प्रदेश की शाहाबाद विधानसभा क्षेत्र से विधायक तथा राज्यसभा के लिए उत्तर प्रदेश से सदस्य चुनी गई। 1954 में उन्हें एक साथ दो सदन की सदस्य होने के कारण राज्यसभा से इस्तीफा देना पड़ा था। 1969 में और 1989 तक एजाज बेगम उत्तर प्रदेश की विधानसभा सदस्य रही। 1969 और 1971 के बीच एजाज बेगम समाज कल्याण और अल्पसंख्यक मंत्री थी। सन् 2000 में उन्हें सामाजिक कार्यों के लिए एवं उनके योगदान के लिए पद्म भूषण से सम्मानित किया गया था। अल्पसंख्यक आरक्षण पर एजाज बेगम के विचार संविधान सभा के सामने सबसे नाजुक मामला विभाजन के बाद देश में बचे अल्पसंख्यक समुदायों की सुरक्षा से संबंधित था। मौलाना अब्दुल आजाद कलाम का मानना था कि चुनावों में मुस्लिम व अन्य अल्पसंख्यकों के लिए सीटें आरक्षित की जानी चाहिए किंतु पटेल इस आरक्षण का विरोध कर रहे थे। सरदार वल्लभ भाई पटेल ही अल्पसंख्यकों के लिए बनाई गई सलाहकार समिति के अध्यक्ष थे। नेहरु जी ने इस समस्या का समाधान पटेल पर छोड़ दिया जब इस मामले पर बातचीत प्रारंभ हई तो भारतीय ईसाईयों की तरफ से राजकुमारी अमृत कौर ने साफ कहा कि – धर्म या जाति के आधार पर आरक्षण नहीं करना चाहिए इससे देश की एकता खंडित होती है। मुसलमानों की तरफ से इस बातचीत में लखनऊ से एजाज बेगम सामने आई, बेगम ने गर्व से कहा – जो मुसलमान भारत में रह गए हैं वह राष्ट्र का अभिन्न अंग है और उन्हें किसी विशेष सुरक्षा की जरुरत नहीं है। उन्होंने मुस्लिम अल्पसंख्यकों में धार्मिक अल्पसंख्यकों के लिए आरक्षित सीटों की मांग छोड़ने के लिए आम सहमति बनवाई अल्पसंख्यक अधिकारों पर रसूल की अवरुद्ध स्थिति को केवल 'अनुरूपतावादी' के रूप में नहीं देखा जा सकता बल्कि उर्दू के लिए उनका समर्थन और मुसलमानों के लिए आरक्षण की एक साथ अस्वीकृति, राष्ट्रीय परियोजना से आंतरिक अस्थिरताओं को उजागर करने का प्रयास है। जब 1948 में संविधान सभा में अल्पसंख्यकों के

लिए अलग निर्वाचन मंडल और राजनीतिक सुरक्षा के मुद्दे पर बहस चल रही थी, रसूल संयुक्त प्रांत की सामंतवादी महिला सदस्य ने अलग निर्वाचन मंडल और धार्मिक अल्पसंख्यकों के लिए आरक्षण के खिलाफ बात की और 1949 तक मुस्लिम सदस्यों ने बेगम की इस अपील को सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया।

महिला अधिकारों के विषय पर रसल बेगम के विचार-

रसूल बेगम यह मानती थी कि भारतीय विरासत ऐतिहासिक रूप से महिलाओं की समानता को मान्यता देती है। एजाज रसूल का हस्तक्षेप एवं कार्य औपनिवेशिक मुस्लिम महिलाओं के लिए राजनीतिक भागीदारी का प्रतिनिधि था रसूल का जीवन और उनकी आत्मकथात्मक पद्धति उन महिलाओं के लिए सार्वजनिक जीवन की चुनौतियां और संभावनाओं में मल्यवान विचारधारा प्रदान करती है, जिन्हें ब्रिटिश भारत में लैंगिक haasiye और अल्पसंख्यक के दोहरे बोझ पर बातचीत करनी पड़ी थी। संविधान स्वीकार करने पर उन्होंने कहा था कि-'भारत की महिलाएं जीवन और गतिविधि के सभी क्षेत्रों में पुरुषों के साथ पूर्ण समानता की अपनी उचित विरासत को आगे बढ़ा कर खुश है। मैं ऐसा इसलिए कहती हूँ क्योंकि मुझे विश्वास है कि यह कोई नई अवधारणा नहीं है, जिसे इस संविधान के उद्देश्य के लिए बनाया गया है, यह एक ऐसा आदर्श है जिसे लंबे समय से भारत ने पोषित किया है, हालांकि कुछ समय के लिए सामाजिक परिस्थितियों ने इसे व्यवहार से बाहर कर दिया था यह संविधान इस आदर्श की पुष्टि करता है और इस बात का आश्वासन देता है कि भारतीय गणराज्य के कानून में महिलाओं के अधिकारों का पूर्ण सम्मान किया जाएगा'।

बेगम की चनाव में भागीदारी एवं पर्दे का त्याग -

रसूल बेगम 1936 उत्तर प्रदेश विधान परिषद चुनाव के दौरान औपचारिक रूप से परदे से बाहर आई रसूल अपनी आत्मकथा में अपने चुनाव का जिक्र करते हुए कहती है कि - उत्तर प्रदेश विधान परिषद सीट, जिसे वह पुरुषों की सीट के रूप में वर्णित करती है, से चुनाव लड़ते हुए उन्होंने नोट किया कि उनके मतदाताओं में शिक्षित सरकारी कर्मचारी, आयकर और राजस्व देने वाले लोग शामिल थे हालांकि उनमें शायद ही कोई महिला थी। उस समय उलेमाओं द्वारा फतवा इस आधार पर जारी किया गया था कि गैर -पर्दा मुस्लिम महिला को वोट देना गैर - इस्लामिक था, हालांकि फतवे का बहुत कम असर हुआ। उन्होंने निर्वाचन क्षेत्र हरदोई, सीतापुर और खीरी में प्रचार किया उनके राजनीतिक प्रचार में 3p शामिल थे- पेट्रोल, पोस्ट और प्रचार। अंततः रुढीवादियों के कड़े विरोध के बावजूद वह प्रचंड बहुमत से चुन ली गई जिससे यह पता चलता है कि मुसलमान उतने रुढ़िवादी नहीं थे जितना उन्हें बताया जाता था। राजनीति में प्रवेश करने के बाद एवं परदे से बाहर आने के बाद रसूल ने अपने पति से कहा था कि वह उन लोगों से निमंत्रण स्वीकार नहीं करेगी जो अपनी महिलाओं को पर्दे में रखते हैं चाहे वह हिंदू हो या मसलमान, क्योंकि अधिकांश तालुकदार अपनी पत्नियों को बाहर नहीं लाते थे, हालांकि यह ध्यान रखना भी दिलचस्प है कि उन्होंने वास्तव में पर्दा रखना पूरी तरह नहीं छोड़ा था इसलिए राजनीतिक हो या आर्थिक, की जड़ें मजबूत होनी चाहिए अन्यथा एक प्रति क्रांति द्वारा इसका सफाया कर दिया जाएगा, इसलिए उन्होंने रुढ़िवादिता और आधुनिकता को सामंजस्य पूर्ण ढंग से मिश्रित किया बेगम मानती है कि एक 'स्व' की पहचान राष्ट्र के मूल्य के अनुरूप तैयार की जाती है। रसूल अपने जीवन को, जैसा कि उनकी आत्मकथा 'फ्राम पर्दा टू पार्लियामेंट' के शीर्षक में स्पष्ट रूप से निहित है और अधिक आधुनिक होने के रूप में देखती थी।

खेल के क्षेत्र में योगदान -

एजाज बेगम 20 वर्षों तक भारतीय महिला हॉकी महासंघ और एशियाई महिला महासंघ के अध्यक्ष रही। इनकी खेल में गहरी रुचि थी। बेगम के सम्मान में भारतीय महिला हॉकी कप का नाम रसूल बेगम कप रखा गया था।

लेखन के क्षेत्र में योगदान -

एजाज बेगम एक यात्रा प्रेमी व्यक्तित्व थी उन्होंने 1953 में जापान में प्रधानमंत्री प्रतिनिधित्व मंडल की सदस्य के रूप में यात्रा की तथा सन 1955 में सद्भावना दूत के रूप में कार्य किया। इन्होंने तुर्की भारतीय संसदीय प्रतिनिधि मंडल सदस्य के रूप में यात्राएं की। एजाज बेगम की साहित्य में गहरी रुचि थी उन्होंने जापान में 'श्री वीक्स' नामक पुस्तक लिखी। उनकी एक आत्मकथा का शीर्षक 'फ्रॉम पर्दा टू पार्लियामेंट ए मुस्लिम वूमेन इन इंडियन पॉलिटिक्स' है। रसूल ने अपनी आत्मकथा के माध्यम से भारत की राष्ट्रीय कहानी में खुद को सम्मिलित करने का प्रयास किया है वह भारत के राष्ट्रीय जीवन में एक सही ऐतिहासिक विषय के रूप में अपनी स्थिति का दावा करने की कठिनाइयों के बारे में भी बताती हैं।

निष्कर्ष

इस प्रकार स्पष्ट है कि एजाज रसूल बेगम बेशक मुस्लिम लीग के सदस्य के रूप में संविधान सभा में सम्मिलित हुई किंतु

देश के विभाजन के बाद भी उन्होंने पाकिस्तान न जाकर भारत को अपनी कर्मभूमि के रूप में चुना साथ ही जमीदारी उन्मूलन एवं मुस्लिम अल्पसंख्यकों की शिक्षा के मामले में अपने विचारों से लोगों को न केवल प्रभावित किया बल्कि धार्मिक अल्पसंख्यकों के लिए आरक्षित सीटें की मांग छोड़ने के लिए आम सहमति बनाने में कामयाब रही, भारत की राजनीति में महिलाओं को जो प्रतिनिधित्व बेगम ने प्रदान किया तथा विभिन्न भूमिकाओं में जिस तरह से अपने को स्थापित करके देश की सेवा की, उसे कभी भुलाया नहीं जा सकता उनकी भारत के प्रति आस्था एवं विश्वास गजब का था, जिसमें भारतीय एकता के सूत्र छिपे हुए थे यह कहना उचित है कि जब जब मुस्लिम महिलाओं का इतिहास लिखा जाएगा एजाज बेगम का नाम इसमें अग्रिम पंक्ति में होगा। एक लेखिका, खेल संरक्षिका, प्रमुख राजनीतिज्ञ एवं समाज सेविका के रूप में उनकी भूमिका अविस्मरणीय है।

संदर्भ ग्रंथ-

1. रामचंद्र गुहा, गांधी के बाद का भारत, लंदन:- मैकमिलन प्रकाशन, 2008,पेज नंबर-108
2. संविधान सभा वाद-विवाद, वॉल्यूम 8,25 मई 1949, पीपी-300-303
3. डॉक्टर हरी देव शर्मा द्वारा आयोजित बेगम कुदसिया एजाज रसूल के साक्षात्कार का प्रतिलेख, पाइलिपि अनुभाग नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय,नई दिल्ली में संग्रहित।
4. रसूल, फ्रॉम पर्दा टू पार्लिमेंट, पेज नंबर-32
5. रसूल,फ्रॉम पर्दा टू पार्लिमेंट, पेज नंबर-57
6. वही, पेज नंबर-58
7. शाहिदा लतीफ, भारत में मुस्लिम महिलाएं:- राजनीतिक एवं निजी वास्तविकताएँ, 1890-1980(लंदन: जेड बुक्स प्रकाशन) 1990 और सीता अनंत रमन, विमेन इन इंडिया:- ए सोशल एंड कल्चरल हिस्ट्री, वॉल्यूमा ऑक्सफोर्ड: प्रेगर, 2001) पेज नंबर123-127
8. बेगम एजाज प्राइवेट पेपर,IOR,MSS,F 431/ 155, ब्रिटिश लाइब्रेरी, पेज नंबर-4
9. एजाज बेगम प्राइवेट पेपर, IOR,MSS,F 341/155 पेज नंबर-3
10. दीपेश चक्रवर्ती, पोस्टकॉलोनियल्टी एंड आर्टिफीस ऑफ। हिस्ट्री:- ह स्पीक्स फॉर इंडियन पास्टस रिप्रेजेंटेशन-37 (1992) पीपी-1-26

ISSN 2278 - 0327

स्वास्थ्य की गांधीय अवधारणा

डॉ. मिथिलेश कुमार तिवारी
सहायक - आचार्य
महात्मा गांधी फ्यूजी गुरुजी सामाजिक कार्य अध्ययन केंद्र
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

महात्मा गांधी एक ऐसे व्यक्तित्व थे जिनके जीवन में ज्ञान, भक्ति एवं कर्मयोग का समान समन्वय था। इसलिए वे एक साथ विचारक, सन्त एवं राजनीतिज्ञ थे। गांधी जी के व्यवहार एवं विचार (कथनी एवं करनी) में कोई फर्क नहीं था। जो वे महसूस करते थे वही वास्तविक जीवन में जीते थे। उन्होंने अपने जीवन में मुख्यत: तीन पुस्तकें 'हिन्द स्वराज', 'सत्य के साथ मेरे प्रयोग' एवं दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह का इतिहास लिखे। शेष उनके विचार पत्र-पत्रिकओं एवं भाषाओं में प्रकट होते थे। जब वे दक्षिण अफ्रीका में थे तो 1906 में उन्होंने 'इंडियन ओपिनियन' नामक अपने पत्रिका में 'आरोग्य के जड़ विषय में सामान्य ज्ञान' नामक शीर्षक से कुछ प्रकरण लिखा। उनका यह प्रकरण प्राकृतिक चिकित्सा पर आधारित था। गांधीजी का यह प्राकृतिक चिकित्सा सम्बधित विचार यूरोपीय लेखक 'जुस्ट के रीटर्न टु नेचर' एवं लुइस क्यूने के 'साइंस ऑफ हिलींग विदाउट मेडिसीन एण्ड विडाउट ऑपरेशन' तथा 'एसाइंस ऑफ फेसियल इस्प्रेसन' से प्रभावित था। इस बात को गांधी जी ने खुद अपने संदर्भित प्रकरणों में स्वीकारा है।

शरीर संरचना -

मानव शरीर प्रकृति के ही विविध तत्वों से बना है। ये प्राकृतिक तत्व सबसे पहले रासायनिक स्तर पर शरीर की रचना करते है। फिर रासायनिक स्तर से क्रमश: कोशीकिय, ऊतक, अवयव, अवयवतंत्र स्तर का निर्माण होता है। सभी शारीरिक तंत्र (श्वसन तंत्र, पोषण तंत्र, रक्त परिसचरण तंत्र, त्वचा तंत्र आदि) आपस में मिलकर पूर्ण शरीर का निर्माण करते हैं। गांधी जी कहते हैं कि एक पूर्ण मानव शरीर में दस इंद्रियाँ एवं एक मन होता है। इन इन्द्रियों में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (आँख, कान, नाक, जिह्वा एवं त्वचा) है वहीं पाँच कर्मेन्द्रियाँ (हाथ, पैर, मुख, गुदा, एवं उपस्थ) हैं। इसके अलावा कुछ लोग मन को भी इन्द्रिय ही मानते है। गांधीजी कहते है कि आरोग्य का अर्थ तदुरुस्त शरीर है। एक ऐसा शरीर जो व्याधि रहित हो। जिसके सभी अंग भली-भाँति कार्य कर रहे हो। व्यक्ति वगैर थकान के दस बारह भील चल सके। इसके अलावा गांधी जी आरोग्य का मतलब सिर्फ स्थूल शरीर को ही स्वस्थ्य नही बल्कि सूक्ष्म शरीर(मन) को भी स्वस्थ्य होने की बात करते है। इस तरह से हमारा शरीर दो रूप में है। एक स्थूल शरीर एवं दूसरा सूक्ष्म शरीर। गांधीजी कहते है कि मानव शरीर अदभूत है इसके प्रज्ञा रूप को कोई नहीं जान सका है। यह शरीर संम्पर्ण ब्रह्माण्ड का प्रतिनिधित्व करती है। संपूर्ण ब्रह्माण्ड के तत्त्व इस शरीर में प्राप्त होते हैं और संपूर्ण इस शरीर के तत्व इस असीमित ब्रह्माण्ड में प्राप्त होते हैं। जब शरीर में कोई ब्रह्माण्डीय तत्व की कमी हो जाती है तो शरीर रोग ग्रस्त हो जाती है। मुख्य रूप से यह ब्रह्माण्डीय तत्व पांच तत्वों पृथ्वी, वायु, जल अग्नि एवं आकाश है। इन पांच तत्वों से बने इस शरीर का प्रयोग व्यक्ति को दो तरह के कार्यों में करता है और कर सकता है। प्रथम सदुपयोग तथा दूसरा दुरुपयोग। जब व्यक्ति स्वार्थ, स्वेच्छाचार, दुसरों को नुकसान पहुँचाने एवं तामस आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए इस शरीर का प्रयोग करता है तो वह दुरुपयोग कहलाता है। इसी कारण व्यक्ति के अन्दर तनाव, चिन्ता, दु:ख, क्रोध जैसे बीमारियां जगह बनाती है। जिसके कारण मानव शरीर नर्क जैसा बन जाता है। और जब इस शरीर का प्रयोग परमार्य, आत्म-साक्षात्कार एवं वसुधैव कुटुम्बकम् हेतु व्यक्ति करता है तो यह शरीर स्वर्ग या मन्दिर बन जाती है और इसमें ईश्वर निवास करते हैं। गांधीजी कहते है कि मानव शरीर एवं जीवन इस जगह एवं समाज का ऋणी है। अत: उसे अपने जीवन का उपयोग सेवाधर्म में लगाकर करना चाहिए। जो सेवाधर्म का

अभ्यासयोग करता है वह ईश्वर भय हो जाता है।

शरीर संरचना के अवयव

■ **मिट्टी**

गांधीजी चिकित्सा में मिट्टी का प्रयोग बताते हैं जिसका उन्होंने स्वयं पर प्रयोग किया है। कब्ज के लिए वह पेट पर मिट्टी का लेप लगाने की सलाह देते हैं। साथ ही, उनके अनुसार, इसका प्रयोग सर्पदंश, बिच्छूदंश, फोड़ा, सरदर्द में भी किया जा सकता है। बुखार के इलाज में वह मिट्टी के महत्व को रेखांकित करते हैं और इसका लेप सर और पेट पर लगाने की सलाह देते हैं।

■ **जल**

प्राचीन समय से ही जल चिकित्सा चिकित्सा की एक पद्धति रही है। इस विषय पर कई पुस्तकें लिखी गयी हैं। परंतु गांधीजी की दृष्टि में कून्हे द्वारा प्राकृतिक चिकित्सा पर लिखित पुस्तक में इसका सरलतम रूप प्रस्तुत किया गया है। वह ठंढे पानी से टब में 30-35 मिनट बैठ कर कटि-स्नान (Hip bath) करने की सलाह देते हैं जो बुखार और कब्ज में उपयोगी है। इसके अतिरिक्त वह कुन्हे द्वारा बताए गए पद्धति के अनुसार घर्षण स्नान (Sitz bath) का वर्णन प्रस्तुत करते हैं। गरम पानी और भाप के चिकित्सकीय उपयोग का भी गांधीजी ने इस पुस्तक में विस्तार से चर्चा किया है। वह कहते हैं- 'बिच्छुदंश में जब सभी उपचार असफल हो जाएं, वहाँ प्रभावित अंग को गरम पानी में डुबोना बहुत हद तक राहत देता है'। गरम भाप के संदर्भ में वह इसे गठिया और जोड़ों के रोगों में उपयोगी बताते हैं।

■ **आकाश**

आकाश से गांधीजी का तात्पर्य पृथ्वी के चारों ओर की खुली जगह, पर्यावरण है। उनकी यह मान्यता है कि यदि हमारे शरीर का स्पर्श बिना किसी बाधा- घर, छत और यहाँ तक की कपड़े- के खुले आकाश से हो पाता है तो वह स्वास्थ्य के लिए अत्यंत लाभकर होगा। यद्यपि यह सभी व्यक्तियों के लिए संभव नहीं है, फिर भी यह आवश्यक है कि वह इस कथन की सत्यता को स्वीकार करें और जितना संभव हो उतना प्रयास करें। उनके इस प्रयास मात्र से ही उन्हें संतुष्टि और मानसिक शांति की प्राप्ति होगी।

■ **धूप**

अन्य तत्वों के समान धूप भी जीवन के लिए आवश्यक है। सूर्य ऊष्मा और प्रकाश का स्रोत है। सूर्य स्नान भी जल स्नान के समान उपयोगी है। हालांकि, कोई एक दूसरे का स्थान नहीं ले सकता। प्रात: सूर्य की किरणें रक्त परिसंचरण के साथ-साथ अलसर और टीबी रोग में उपयोगी है।

■ **वायु**

शरीर के निर्माण में आवश्यक होने के कारण यह पांचवा तत्व भी समान रूप से महत्वपूर्ण है। यदि व्यक्ति बचपन से ही खुले में रहने की आदत डाल ले तो उसका शरीर कठोर बनेगा और सर्दी-जुखाम जैसी समस्याएँ नहीं होंगी।

स्वास्थ्य और जीवनचर्या गांधी जीवन के प्रति प्रकृतिवादी दृष्टिकोण अपनाने की सलाह देते हैं। गांधीजी का अटूट विश्वास है कि जब व्यक्ति अपना जीवन हवा, पानी, अग्नि, स्थल एवं आकाश से जोड़कर जीयेगा तो वह आनन्दपूर्ण जीवन व्यतीत करेगा। वे कहते हैं कि जीवन के लिए हवा बहुत जरुरी है। यह प्राणवायु है।

हवा लेते समय प्राणवायु संपूर्ण शरीर में पहुँचती है और छोड़ते समय कार्बन डाईऑक्साइड के रुप में विषाक्त हवा शरीर से बाहर निकलती है। इसलिए आवश्यक है कि व्यक्ति अपना घर खुले में बनाये तथा उसमें खिड़कियाँ लगवाये। तभी व्यक्ति स्वच्छ हवा (प्राणवायू) प्राप्त कर सकता है। व्यक्ति को प्राणायाम सीखना चाहिए जिसके माध्यम से व्यक्ति भरपूर प्राणवायु फेफ़डों में ले सकता है। योगशास्त्र में हवा को लेने एवं छोड़ने की प्रक्रिया को रेचक एवं कुम्भक कहते हैं। इस रेचक एवं कुंभक के द्वारा शरीर को स्वस्थ रखा जा सकता है। गांधी जी यह भी कहते है कि व्यक्ति को सदैव ढ़ीले-ढाले कपड़े पहनने चाहिए। जिसके कारण व्यक्ति के शरीर को पर्याप्त हवा प्राप्त होगी और वह स्वस्थ होगा। व्यक्ति को स्वच्छातापूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहिए। तन्दुरुस्त रहने के लिए व्यक्ति को प्रत्येक दिन में पाँच पौंड पानी या द्रव्य पीना चाहिए। गांधीजी सदैव स्वच्छ पानी पीने के संदर्भ में सचेत करते है। गरम पानी स्वच्छ न हो तो उसे उबाल लेना चाहिए। हो सके तो पानी को उबालकर पीने से पहले स्वच्छ कपड़े से छान लेना चाहिए।

आहार एवं स्वास्थ्य के विषय में गांधीजी का कहना है कि खुराक तीन प्रकार का होता है। मांसाहार, शाकाहार और मिश्राहार। मिश्राहारियों की संख्या ज्यादा है। गांधीजी दूध को मांसाहार में सम्मिलित करते हैं। क्योंकि जो गुण मांस में होता है वही गुण बहुत कुछ दूध में भी होता है। डाक्टरी भाषा में भी दूध को प्राणिजनित भोजन का हिस्सा माना जाता है। इसलिए जो लोग दूध का सेवन कर सकते हैं उन्हें बेफिक्र होकर अंड़े का सेवन करना चाहिए। गांधीजी कहते हैं कि मैं शाकाहारी का पक्षपाती हूँ। क्योंकि बहुत से डॉक्टर भी कहते है कि मनुष्य जन्म से

शाकाहारी रहा है क्योंकि मानव शरीर रचना इस बात की पुष्टि करती है। मांस एवं दूध दोनों को शाकाहार के पालन हेतु वर्जित माना जाना चाहिए क्योंकि मांस के लिए जीवों की हत्या होती है तथा मात्र अपनी माँ के दूध के अलावा और किसी प्रकार के दूध पर हमारा अधिकार नहीं हो सकता। गांधीजी कहते है कि पशुओं के अन्दर भी बीमारी होती है जो मांस एवं दूध के साथ मनुष्य में प्रवेश कर जाती है। अनाज के बारे में गांधीजी का कहना है कि यदि गेहूँ मिले तो चावल का प्रयोग उचित नहीं है। गेहूँ एवं चावल की भूसी को निकाल लेने के बाद केवल स्टार्च मात्र बचता है। अत: स्वास्थ्य की दृष्टि से चावल एवं गेहूँ की भूसी भी खाना चाहिए। गांधीजी खाने के तरीके के बारे में भी बताते है कि हमें भोजन को खास रूप में चबाकर खाना चाहिए। खास कर के स्टार्च वाले भोजन को चबाकर खाये तो बहुत ही अच्छा है। क्योंकि स्टार्च वाले पदार्थों को चबाकर खाने से भोजन में लार मिल जाती है जिसके कारण भोजन अधिक सुपाच्य एवं स्वास्थ्यकार होता है। फलों के सेवन के संदर्भ में गांधी जी का मत है कि इन्हें सबेरे ही खाये तो बहुत अच्छा है और यदि फल के साथ दूध का भी सेवन किया जाये तो सोने पर सुहाना होता है। गांधीजी के मत में केला, दूध और भाजी संपूर्ण खुराक है। आधुनिक समय में बाजारू तेल एवं घी के संबंध में गांधीजी अपना स्पष्ट मत देते हुए कहते हैं कि सिर्फ देशी घानी का तेल ही खाने के लिए प्रयोग में लाना चाहिए। बाजार का तेल एवं वनस्पति घी कभी नहीं प्रयोग में लाना चाहिए। क्योंकि बाजार का तेल, घी निकम्मा होता है। यह दु:ख की बात है कि बाजार में खाने-पीने वाली चीजों में मिलावट जैसी भ्रष्टाचारी की स्थिति बढ़ रही है। गांधी जी कहते है कि इस भ्रष्टाचारी व्यापारिक स्थितियों को बरतने की आवश्यकता है। वे यह भी कहते है कि इस भ्रष्ट व्यापार को मात्र कानूनी नियमों एवं लोकशिक्षण के द्वारा व्यवहार में परिवर्तन लाकर सुधारा जा सकता है। गांधीजी कहते है कि हम स्वाद के लिए अति मीठे एवं तीखे चीजों का प्रयोग करते हैं। जबकि असली स्वाद तो भूख में होता है। भूख लगने पर स्वादिष्ट लगता है। स्वाद के लिए तले हुए चीजों का हम सेवन करते हैं यह बहुत ही गलत है। इससे पेट खराब हो जाता है। पाचन तंत्र कमजोर हो जाता है। गांधीजी कहते हैं कि गर्भवती माँ को तो कभी भी स्वाद के लिए भोजन नहीं करना चाहिए क्योंकि माँ जो भी खाती है उसी से बच्चे का पोषण होता है और ऐसा ही बच्चे को स्वास्थ्य बनता है। मसाले खाने के बारे में गांजीजी कहते है कि व्यक्ति बगैर मसाले के सेवन का भी स्वस्थ्य रह सकता है। जीभ का स्वाद पाने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है जबकि मसाले के विविध तत्व हमारे पाचन तन्त्र को नुकसान पहुंचाते हैं। नमक तो बहुत खाद्य पदार्थों में डालकर खाने पर उसमें रहने वाले तत्व को मार डालता है। गांधीजी मसाले के अनुपयोगिता के बारे में तर्क देते हुए कहते हैं कि अंग्रेज भी हमारे मसाले नहीं खाते हैं। गांधीजी चाय, कोको और कॉफी के संदर्भ में कहते है कि इन तीनों प्रकार के पदार्थों का प्रयोग से सेहत को नुकसान जरुर होता है। चाय में 'केफीन' नामक एक ऐसी चीज होती है जो चमड़े को पकाने में काम आती है। चाय में मिलकर जब यह अमाश्य में जाती है तो अमाशय के साथ भी वही व्यवहार करती है। जिसके कारण अमाशय की पाचन शक्ति कम हो जाती है। इन चाय, कोको एवं कॉफी जैसे पेय पदार्थों के जगह गरम पानी में एक चमच शहद और आधा चम्मच नींबू का रस डाला जाये तो सुन्दर पेय पदार्थ बन जाता है। इसके अलावा उबली हुई सब्जियों के रस में भी पेय पदार्थ का स्वाद पाया जाता है। गांधीजी नशा के बारे में कहते हैं कि यह व्यक्ति के व्यक्तित्व को खराब कर देती है। इसलिए शराब, तंबाकू आदि का सेवन मानव के लिए वर्जित है। जो लोग इन सब चीजों का प्रयोग करते है उनका पारिवारिक माहौल बेहद खराब हो जाता है।

ब्रह्मचर्य एवं सुखी जीवन के बारे में गांधीजी कहते हैं कि बह्मचर्य का अर्थ है ब्रह्म को प्राप्त करने की दिनचर्या। बह्म को प्राप्त करने के लिए सबसे बड़ी आवश्यकता है अपने इन्द्रियों पर संयम करना। सामान्यत: ब्रह्मचर्य का तात्पर्य वीर्य संग्रह को माना जाता है। यह ब्रह्मचर्य की संकीर्ण अवधारणा है। यदि देखा जाये तो ब्रह्मचर्य के कई फायदे है जैसे ब्रह्मचर्य के द्वारा शरीर निरोग होती है। मन प्रसन्न होता है। इस तरह से सुन्दर आचार का व्यक्ति ही ब्रह्मचारी हो सकता है। ऐसे व्यक्ति की उर्जा अधोगामी दिशा से ऊर्ध्वगामी हो जाती है। जब प्राण उर्जा ऊर्ध्वगामी हो जाती है तो व्यक्ति बह्म की प्राप्ति के दिशा में बढ़ जाता है। वीर्य को यदि व्यक्ति मात्र सन्तति प्राप्ति का एक माध्यम मान ले तो कामवासना का भाग खत्म हो जाता है। गांधीजी वीर्य संग्रह के लिए कुछ नियम बताते है जिसके अनुपालन से वीर्यसंग्रह किया जा सकता है। जैसे मन को सदैव काम में व्यस्त रखे, जब मन खाली नहीं होगा तो कामवासना पैदा ही नहीं होगी। जब कभी बुरे विचार आ भी जाये तो व्यक्ति को भगवान का ध्यान करना चाहिए। वासनायुक्त विचारों को नियंत्रित करने के लिए सद्ग्रन्थ का अध्ययन करना चाहिए। अर्थात् वासनायुक्त विचारों का पोषण करने वाले पदार्थों का सेवन बन्द कर दिया जाये तो वासना का भाव नहीं पैदा होगा।

व्यक्ति को जल्दी एवं आसानी से आ जाती है। जिसके कारण रात्रि में काम भावना पैदा नहीं होती है। गांधीजी वीर्य संग्रह के लिए युक्ताहार एवं अल्पाहार की भी बात करते हैं। उनका कहना है कि जीवन भगवान दर्शन के लिए है खाने के लिए नहीं। व्यक्ति जब अल्पाहार एवं युक्ताहार का सेवन करता है तो खुद पर नियंत्रण रखता है जिसके कारण ब्रह्मचर्य का पालन करना आसान हो जाता है। व्यक्ति को पराई स्त्री को माँ, बहन, बेटी के रूप में देखना चाहिए।

प्राकृतिक चिकित्सा

महात्मा गांधी प्राकृतिक चिकित्सा के परमभक्त एवं अनुप्रयोग कर्ता थे। वे प्राकृतिक चिकित्सा के द्वारा अपने ही रोगों का नहीं बल्कि दूसरे लोगों के रोगों का भी इलाज करते थे। प्राकृतिक चिकित्सा में व्यक्ति की बीमारी का इलाज पाँच पदार्थों पृथ्वी, हवा, अग्नि, जल एवं आकाश के द्वारा किया जाता है। गांधीजी खुद कहते हैं कि प्राकृतिक चिकित्सा कोई वर्तमान समय की खोजी गई पद्धति नहीं है। यह तो मनुष्य के साथ क्रमागत विकास के द्वारा प्राचीन काल में ही विकसित कर दी गई थी। जो वर्तमान में अंग्रेजी चिकित्सा पद्धति के कारण अफवाहों का शिकार हो गई है। महात्मा गांधी मुनष्य को प्रकृति का एक पुष्पित एवं पल्लवित अंग मानते थे। उनकी नजर में मनुष्य प्रकृति का न तो स्वामी है और न ही दास। पुत्र कभी माँ का न स्वामी होता है न तो माँ का दास होता है। वह तो माँ के अस्तित्व का विस्तार होता है। अत: महात्मा गांधी मनुष्य जीवन को प्रकृति का विस्तार भर मानते थे। जब तक मनुष्य प्रकृति के नियमों के साथ सामंजस्य बैठाकर जीवन व्यतीत करता है तब तक वह शारीरिक एवं मानसिक रूप में स्वस्थ्य होता है। जैसे जैसे मनुष्य नैसर्गिक प्रकृति से खुद को दूर करता जाता है वैसे-वैसे उसके जीवन में कृत्रिमता एवं आडंबर में बढ़ोत्तरी होती है। जिसके कारण मानव जीवन विविध प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक बीमारियों का घरौंदा बन जाता है। सच्चे अर्थों में सभी जीव इस विश्वात्मा रूपी प्रकृति में ही जन्म लेते हैं, जीते हैं और अंत में इसी प्रकृति में विलीन हो जाते हैं फिर भी यह विश्वात्मा रूपी प्रकृति निस्तर एवं अविरल रूप में प्रखर, पुनीत एवं शुद्ध भाव धारण की रहती है। महात्मा गांधी कहते है कि जब जीवन एवं आकाश के बीच कोई भेद नहीं रह जाता अर्थात् जब हम खुद को आकाश में एवं आकाश को खुद में व्यक्त होने के भाव को महसूस करने लगते हैं तो हमारे स्व का इतना विस्तार हो जाता है कि शरीर के अस्तित्व का पता ही नहीं चलता है। जब जीवन में एक अनोखा आनन्द प्राप्त होता है। गांधीजी के इन सभी प्राकृतिक चिकित्सा सम्बधित विचार को एवं संश्लिष्ट रूप देते हुए 1942 में आरोग्य की कुंजी नाम से एक पुस्तिका प्रकाशित की गई। जो दुनिया की कई भाषाओं में अनुवादित एवं प्रकाशित किया गया है। महात्मा गांधी प्रकृति के अत्यंत करीब थे। उन्होंने बहुत संयमित जीवन व्यतीत किया। राजनैतिक कारणों के अतिरिक्त स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से भी कई बार उपवास रखा। जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्रकृति पर निर्भर गांधीजी यह मानते थे कि मनुष्य प्रकृति के जितना नजदीक होगा उतना ही सुखी होगा। जीवन के सभी पक्षों में परिलक्षित होने वाला उनका यह दर्शन, वास्तव में, प्रकृतिवादी है जो मनुष्य और प्रकृति में सामंजस्य पर बल देता है। धर्म ग्रंथों में अटूट आस्था रखने के कारण वह मानव शरीर को पाँच तत्वों यथा- क्षितिज, जल, पावक, गगन, समीर से बना मानते थे। अत: शरीर के इलाज में भी इन्हीं तत्वों को परम मानते थे। उनका यह विश्वास था कि शरीर को स्वयं संतुलन में रखने की शक्ति निहित है और साधारण नियमों के प्रयोग से शरीर, मन और आत्मा में सामंजस्य बैठाया जा सकता है।

वह यह मानते थे कि आधुनिक चिकित्सा रोग के कारणों का नहीं, सिर्फ रोग के लक्षणों का इलाज करती है। ऐसी चिकित्सा मनुष्य को मानसिक रूप से लापरवाह बनाने के लिए जिम्मेदार है। आधुनिक चिकित्सकों में सेवा भाव नहीं होता और वो अपने इलाज को 'बेचते' हैं अत: यह चिकित्सा जनकल्याण नहीं कर सकती। उनकी दृष्टि में ब्रह्मचर्य के पालन से ही निरोग रहा जा सकता है। एक ब्रह्मचारी का उसके सभी अंगों पर पूर्ण नियंत्रण होता है, उसका जीवन संयमित होता है, उसकी आत्मा पवित्र होती है। अत: वह बीमारियों से दूर रहता है। गांधीजी सदैव सर्वोदय और अंत्योदय की संकल्पना को साकार करने का प्रयत्न करते रहे। उनका जीवन गरीबों और निराश्रितों की सेवा में समर्पित था। एक तरफ आधुनिक चिकित्सा पद्धति के शरीर पर दुष्प्रभाव के कारण और अधिकांश गरीब जनता द्वारा इसका खर्च वहन करने में असमर्थता के कारण भी उन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा का प्रयोग किया। इसे अपनाया और दूसरों को भी अपनाने की सलाह दी। प्राकृतिक चिकित्सा पर साप्ताहिक यंग इंडिया में लिखे अनेक लेख उनके इस विश्वास की दृढ़ता को दर्शाते है।

गांधीजी द्वारा बताई गई आधुनिक चिकित्सा पद्धति की बुराइयाँ वर्तमान समय में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती हैं। आधुनिक चिकित्सा पद्धति के अत्यधिक ख़र्चीले होने के कारण यह अमीर और गरीब के बीच असमानता पैदा करने का कारण बन गया है।

ऐसे में गांधीजी की प्राकृतिक चिकित्सा अधिक प्रासंगिक हो जाती है।

प्राकृतिक चिकित्सा नाम से प्रकाशित उनकी यह पुस्तक साप्ताहिक हरिजन, यंग इंडिया और पुस्तकें हिन्द स्वराज, आत्म-कथा, और 1942-44 में जेल में लिखी गई स्वास्थ्य की कुंजी में छपे लेखों का संकलन है जिसे पुस्तक के रूप में छापने का काम नवजीवन प्रेस ने 1954 में किया।

प्राकृतिक चिकित्सा प्रयोग

■ **इसके प्रयोग पर विश्वास**

गांधीजी को प्राकृतिक चिकित्सा पर पूरा विश्वास था। यह प्रसंग गांधीजी के दूसरे पुत्र मणिलाल का है। उस समय मणिलाल की उम्र 10 वर्ष थी। उन्हें रात में टाइफाइड के दौरे के साथ निमोनिया के लक्षण महसूस हुए। डॉक्टर ने उन्हें मांस खाने की सलाह दी, परंतु शाकाहारी होने के कारण गांधीजी ने इसका विचार त्याग दिया। उन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा अपनाया और इसका लाभ मिलने पर उनका इस पर विश्वास और दृढ़ हो गया।

■ **मिट्टी और जल चिकित्सा में प्रयोग**

गांधीजी प्राकृतिक चिकित्सा के साथ प्रयोग करते हुए कहते हैं कि जब वह जोहन्स्बर्ग में थे उस समय उनके सर में बहुत तेजी से दर्द हो रहा था। प्रयोग के तौर पर उन्होंने सुबह का नास्ता बंद कर दिया। नास्ता बंद करने के कारण उनका सर दर्द ठीक हो गया। तत्पश्चात् उन्हें अहसास हुआ कि वह आवश्यकता से अधिक भोजन करते थे। गांधीजी को कब्ज की बीमारी भी थी। इसके लिए उन्होंने प्रारम्भ में जल-चिकित्सा शुरू की पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा। इसी समय उन्हें दोस्त के द्वारा 'रिटर्न टू नेचर' पुस्तक प्राप्त हुई। इस पुस्तक में मिट्टी के द्वारा कब्ज ठीक करने की विधि बतलाई गई थी। गांधीजी ने गीली मिट्टी लेप अपने पेट पर लगाना प्रारम्भ किया। रात को मिट्टी का लेप पेट पर करते तथा सुबह को हटा देते। कुछ दिनों के बाद उनके पेट की समस्या खत्म हो गई। गांधीजी ने माना कि 99 प्रतिशत बीमारियाँ हमारे गलत भोजन करने के कारण होती है।

■ **दूध की अनिवार्यता**

गांधीजी जब खेड़ा आंदोलन कर रहे थे तो गलत तरीके से भोजन लेने के कारण उनकी तबीयत खराब हो गई। उनको कई तरह के पेय पदार्थ दिये गए जिसमें गाय और भैंस का दूध भी शामिल था। परंतु गांधीजी ने बकरी का दूध लेना पसंद किया। कुछ दिन बाद से ही उनकी समस्या ठीक होने लगी। इसके बाद उन्होंने सदैव बकरी का दूध लेने का व्रत ले लिया। वे कहते हैं कि एक बीमार व्यक्ति के लिए दूध के जैसा पोषणयुक्त पदार्थ कुछ भी नहीं हो सकता।

■ **टूटे बांह का इलाज**

गांधीजी जब दक्षिण अफ्रीका से अपने परिवार के साथ वापस आ रहे थे तो उनका तीसरे बेटे रामदास ने जहाज के कैप्टन के साथ खेलते हुए अपनी बांह तोड़ ली। वह उस समय आठ वर्ष की अवस्था में था। कैप्टन रामदास को जहाज के डॉक्टर के पास लेकर गया। जहाज के डॉक्टर ने तुरंत घर वापस जाने और वहाँ डॉक्टर से इलाज करने की बात कही। लेकिन गांधीजी को अपने इलाज पर पूरा भरोसा था। उन्होंने मिट्टी को गीला कर के उसके घाव पर बंधा। यह प्रक्रिया हर रोज लगभग एक महीने तक चलती रही। वह ठीक हो गया। गांधीजी कहते हैं कि वह यह नहीं कह सकते कि वह अपने प्रयोग से सभी बीमारियों का इलाज कर सकते है। अंग्रेजी डॉक्टर भी अपने इलाज को पूर्ण सटीक नहीं मानते। फिर भी, सही प्रयोग के साथ ईश्वर सदैव साथ होता है और इसमें उनकी अटूट आस्था है।

■ **नकसीर (Hemorrhage)**

गांधीजी कहते हैं कि एक बार उनकी पत्नी कस्तूरबा नकसीर की बीमारी से ग्रसित हो गई। उनके सभी प्रयोग असफल रहे। अंतत: उन्होंने कस्तूरबा से नमक और दाल भोजन में न लेने की बात कही। इस पर कस्तूरबा ने गुस्से में कहा कि नमक और दाल न लेना कैसे संभव है। यह कहना आसान है परंतु करना असंभव। गांधीजी ने उसी समय एक वर्ष के लिए नमक एवं दाल भोजन में न लेने का व्रत ले लिया। इससे कस्तूरबा विस्मित हुई तथा गांधीजी से क्षमा मांगते हुए नमक एवं दाल न लेने के व्रत को वापस लेने के लिए विनती करने लगीं। परंतु गांधीजी ने कहा कि यह उनके प्रति उनके प्रेम कि परीक्षा है। अत: हार मान कर कस्तूरबा ने भी नमक और दाल लेना बंद कर दिया। कुछ ही दिनों में कस्तूरबा का नकसीर पूरी तरह से खत्म हो गया।

■ **पार्श्वशूल (Pleurisy)**

जब गांधीजी लंदन में थे तो पार्श्वशूल से ग्रसित हो गए थे। उनके सीने में अत्यधिक तेजी से दर्द हो रहा था। उन्होंने डॉ. एलिसन को दिखाया। उन्होने उन्हें दूध न लेने की सलाह दी। उन्होंने कहा कि कुछ दिन तक उनको वसा रहित भोजन लेना होगा। डॉ. ने उन्हें सुखी सब्जियाँ और फल खाने की सलाह दी जिसमें अखरोट, संतरे, मूली एवं प्याज शामिल थे। इसके अतिरिक्त उन्हें चौबीसों घंटे कमरे की सभी खिड़कियाँ खोले रखने की बात कही। हालांकि, काफी दिन गुजर जाने के बाद भी जब वह ठीक

नहीं हुए तो उन्हें भारत वापस लौट जाने की सलाह दी गई। गांधीजी लिखते हैं कि जैसे-जैसे वह भारत की ओर बढ़ते गए वह ठीक महसूस करने लगे। इस दौरान वह मात्र अखरोट और कुछ फल ही ले रहे थे। भारत आने पर शायद उनकी सेहत में सुधार अधिक तापमान के कारण हुआ था जिसके परिणामस्वरूप हवा की शुद्धता बढ़ती जाती है जो फेफड़ों के लिए लाभदायक होती है।

■ **मौत दहलीज पर**

गांधीजी का प्राकृतिक चिकित्सा पर इतना अधिक विश्वास था कि एक बार उनको लगा कि मौत उनके करीब है पर उन्होंने किसी प्रकार की दावा अथवा डॉक्टर का सहारा नहीं लिया। हुआ यह कि एक त्योहार पर कस्तूरबा ने मीठी पूड़ी घी में बनाई जो गांधीजी को बहुत पसंद थी। कस्तूरबा के आग्रह करने पर उन्होंने पूड़ी का भरपूर स्वाद लिया। इसके कुछ समय बाद उन्हें काफी तेजी से दस्त होना शुरू हो गया। स्थिति काफी बिगड़ गयी। एक ही घंटे में 10 बार दस्त कि आवृति होने लगी।

बहुत सारे डॉक्टर बुलाये गए पर उन्होंने सभी को इलाज करने से मना कर दिया। एक डॉक्टर गांधीजी के पास गए। उन्होंने अपनी चिकित्सा का प्रयोग गांधीजी पर करने के लिए कहा। कुछ संकोच के बाद गांधीजी ने उस डॉक्टर को अनुमति दे दी। डॉक्टर ने गांधीजी के पूरे शरीर पर बर्फ का लेप किया। कुछ समय के बाद गांधीजी पूरी तरह से ठीक हो गए। इसके कारण गांधीजी उन्हें आइस डॉक्टर से संबोधित करने लगे।

प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली चिकित्सा की एक रचनात्मक विधि है, जिसका लक्ष्य प्रकृति में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध तत्त्वों के उचित इस्तेमाल द्वारा रोग का मूल कारण समाप्त करना है। यह न केवल एक चिकित्सा पद्धति है बल्कि मानव शरीर में उपस्थित आंतरिक महत्त्वपूर्ण शक्तियों या प्राकृतिक तत्त्वों के अनुरूप एक जीवन शैली है। गांधी जी ने संपूर्ण जीवन प्राकृतिक चिकित्सा को अपनाया एवं इसका प्रचार-प्रसार करते रहें। उन्होंने अपने जीवन में प्राकृतिक चिकित्सा संबंधी कई प्रयोग किए जो प्रकृति एवं मानव में निहित अंतर्सम्बंधों पर आधारित थी।

संदर्भ ग्रन्थ -

गांधी, म. (1948). आरोग्य की कुंजी. अहमदाबाद : नवजीवन प्रकाशन मंदिर.

Nisal, R. V. (2012) Gandhian Approach towards Health, retrieved from http://www.mkgandhi.org /articles/gandhian_approach_towards_health.htm.

Gandhi.M. (1954). Nature Cure retrieved from http://www.mkgandhi.org/ebks/nature_cure.pdf

ISSN 2278 - 0327

दलित अस्मिता की राजनीति में प्रतीकों और नारों का समाजशास्त्रीय महत्व : एक अवलोकन

डॉ. पारिजात प्रधान
सहायक प्राध्यापक
समाजशास्त्रीय अध्ययन विभाग
दक्षिण बिहार केंद्रीय विश्वविद्यालय गया (बिहार)

सारांश

दलित अस्मिता के प्रकटीकरण, स्थापित्यकरण और दिशा में प्रतीकों और नारों ने हमेशा से अपनी भूमिका अदा की है। वास्तव में प्रतीक अधिकतम जनता से कम से कम समय में जुड़ने का एक सशक्त माध्यम है जिसमें सामाजिक-राजनैतिक नारे उसे सरलीकृत और जनोपयोगी बनाते हैं। दलित आंदोलन में प्रतीक दोहरे मापदंड का प्रतिनिधित्व करते हैं। एक ओर जहां दलित समाज अपनी अस्मिता को नारों, मूर्तियों, स्मारकों आदि से सर्वसमाज के बीच स्थापित करता है तथा अपने होने के वजूद का एहसास कराता है तथा अपने लोगों द्वारा सामाजिक धरातल पर योगदान की शिनाख्त भी कराता है तो दूसरी ओर प्रतीक तथा दलित नायकों के नाम पर बनवाई गई मूर्तियां, स्मारक, उद्यान आदि ब्राह्मणवादी संस्कृतिक वर्चस्वता को भी खंडित करते हैं। वह बस्तियों से निकलकर शहर के बीच चौराहों पर स्थापित होकर अंतिम आदमी के सशक्तिकरण को सांस्कृतिक आधार देते हैं। इसीलिए विभिन्न राजनीतिक पार्टियों ने आज के दौर में टेक्नॉलॉजी और व्यापक संचार माध्यमों का सहारा लेकर अपने विचारों, कार्यक्रमों, नीतियों आदि को जनप्रेरक बनाने की जुगत लगा रखी है। विकास की पहुंच अंतिम व्यक्ति से लेकर जातिगत प्रहार, गठजोड़, नायकों का इतिहास, धार्मिक प्रतीक आदि से लबरेज नारे इस राजनीतिक रस्साकशी के अमोघ बाण हैं। यह पत्र इन सारे दावों और इतिहास का द्वितीयक स्रोतों पर आकलन करता है।

मुख्य शब्द -प्रतीक, बहुजन, डी.एस.फोर., सवर्ण, नारा,गठजोड़

भूमिका

पहचान का अर्थ – व्यक्ति क्या है ?- से है, पहचान मैं कौन हूं को स्पष्ट करती है। पहचान व्यक्ति को सामाजिक दायरे में दखल प्रदान करती है, वह क्या है, उसकी विशेषता क्या है, वह किस आधार पर अन्यों से भिन्न है। पहचान किसी व्यक्ति की विशिष्टताओं के आधार पर उसकी अन्यों से भिन्नता और समानता को जानने का एक तकाजा है। इन्हीं विशिष्ट पहचान की खोज इतिहास में की जाती है और वहीं से पहचान की राजनीति की शुरुआत होती है जैसे जाति, लिंग, धर्म, समुदाय, व्यवसाय आदि सभी व्यक्ति की एक अपनी निजी पहचान को निर्मित करते हैं। पहचान लामबंदीकरण का एक कारगर शस्त्र है, जिसके माध्यम से समान अस्मिता से जुड़े लोग एकत्रित हो जाते हैं। दलित समाज की समय-समय पर विभिन्न पहचान रही है। कभी इस इस वर्ग को शूद्र , अतिशूद्र कहा गया तो कभी अछूत, अस्पृश्य माना गया तथा कभी डिप्रेस्ड क्लास, वंचित तो कभी आदि हिंदू, आदि द्रविड़ कहा गया। अंबेडकर ने इस समाज को डिप्रेस्ड माना तो गांधीजी ने हरिजन नाम दिया। वक्त के साथ इस वर्ग की पहचान दलित के रूप में हमारे सामने आयी तथा 1980 के बाद बहुजन समाज के रूप में एक भिन्न पहचान स्थापित की गयी। इसी वर्ग में और उनके समाज में जन्मे विभिन्न शूरवीर महानुभावों के द्वारा समाज के लिए किये गए कार्यों के आधार पर दलित समाज ने उनको सम्मान प्रदान किया। इनके योगदानों को आधार बनाकर इस दलित समाज ने इन महानुभावों को अपनी पहचान के इतिहास का हिस्सा बनाया और अपने को इन लोगों के नाम पर एकजुट करने का प्रयास किया। आम समाज को अपने दलित वर्ग के शूरवीरों, समाज उद्धारकों के बारे में बताने के लिए उनके प्रतीकों को स्थान-स्थान पर स्थापित किया। ये प्रतीक उस समाज वर्ग के थे जिन्हें इतिहास में कभी स्थान नहीं दिया गया था। 'बसपा आज का दलित नेतृत्व आधारित दल है, जिसने दलित इतिहास की खोज के लिए शोध प्रभाग नामक एक अनुषांगिक संगठन भी

बना रखा है जिसका कार्य दलित इतिहास को खोज निकालना है। बसपा के शोध प्रभाग को इस कार्य में पहले कांशीराम लगाते थे तथा अब मायावती यह कार्य कर रही हैं।' (नैमिशराय 2005:29) इसका उद्देश्य दलितों के गौरवपूर्ण इतिहास के प्रतीकों से उन्हें परिचित कराना और साथ ही साथ उनमें अपने इतिहास के प्रति गौरव और सम्मान को बढ़ाना है जिसके सहारे यह प्रताड़ित, उपेक्षित समाज अपने प्रतीक के तले एकत्रित हो सके।

प्रतीकों का महत्व और इस्तेमाल

प्रतीकों की राजनीति केवल दलित, बहुजनों ने ही नहीं की। इसके अलावा भी तमाम राजनीतिक दलों तथा विभिन्न जातीय संगठनों के द्वारा भी प्रतीकों का बखूबी प्रयोग किया गया है। प्रतीकों के विषय में विवेक कुमार कहते हैं कि 'समाज का हर व्यक्ति अपनी अस्मिता को आदर का जामा पहनाना चाहता है इसलिए वह अपने इतिहास से तमाम चिन्ह और प्रतीकों का सहारा लेता है'। (कुमार : 2007:11) इस पर बद्रीनारायण का कहना है कि 'प्रतीक संस्कृति की विरासत की उपज होती है और संस्कृति लोगों के मन और आचार पर सदैव प्रभावी रहती है' (टाइम्स ऑफ इंडिया: 2009: 2 मार्च) प्रतीक किसी समाज की संस्कृति और पारंपरिक इतिहास से जुड़ी हुई विरासत होती है जिसके सहारे समाज अपने पर गर्व महसूस करता है और यह गर्व चेतना की राजनीति और सामाजिक परिवर्तन में अधिक प्रभावी होती है। जर्मनी में हिटलर भी अपने विजय ध्वज पर बने चिन्ह को स्वास्तिक का चिन्ह समझता था तथा वह उसे आर्यों के अविजित इतिहास से जोड़कर गौरव करता था। विभिन्न राजनीतिक दलों और जातियों ने भी यही कार्य किया। ब्राह्मण परशुराम को अपने गौरवपूर्ण इतिहास का एक प्रतीक स्वरूप मानते हैं तथा राजपूत महाराणा प्रताप और भगवान राम को अपने वंश का मानकर गौरवांवित महसूस करते हैं। वर्तमान सत्ताधारी नेतृत्व में भाजपा भी हिंदू या सनातनी हिंदू परंपरा के ध्वजवाहक बनने का दावा पेश करती है जिसमें प्रभु श्री राम का मंदिर, काशी विश्वनाथ, कमंडल, धर्म संसद आदि से एकीकरण और ध्रुवीकरण के प्रयास होते हैं।'इसी प्रकार यह दलित अपनी आस्था वाल्मीकि, रविदास, कबीर, झलकारी बाई, संत गाडगे, साहू जी महाराज तथा डॉ. आंबेडकर में दिखाते हैं।' (कुमार : 2011:139) कांग्रेस ने अपने चुनाव चिन्हों का प्रयोग समय परिस्थितियों के अनुसार बखूबी किया है। गांधीजी के समय में 'चरखा' एक चिन्ह होता था तथा दो बैलों की जोड़ी, गाय का दूध पीता बछड़ा तथा फिर हाथ का निशान जो आम आदमी का साथ माना गया। 'चरखा' स्वतंत्रता से पहले स्वदेशी वस्त्रों और चीजों का प्रयोग के लिए जनता की भावना को जागृत करता था। तथा आजादी के बाद दो बैलों की जोड़ी का चुनाव चिन्ह कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था और 'अन्न' की आवश्यकता पर अधिक जोर देता था तथा उस कालखंड में कांग्रेस के साथ किसान वर्ग अधिक जुड़ा हुआ था। इस दौरान हरित क्रांति का नारा भी बुलंद किया गया था तथा आगे के काल में कांग्रेस का चुनाव चिन्ह गाय और उसका दूध पीता बछड़ा श्वेत क्रांति के नारे के साथ दुग्ध आवश्यकता पर ध्यान केंद्रित करता था। अभी कांग्रेस (आई) का हाथ का निशान जो 'भरोसे के भाव' के प्रतीकात्मक रूप में इंगित किया जा सकता है। कांग्रेस ने गांधी परिवार को सदैव से एक प्रतीक की राजनीति में प्रयोग किया है। विभिन्न योजनाओं के साथ कांग्रेसी नेताओं का नाम जोड़कर उनका संचालन किया जाता है। मसलन, इंदिरा गांधी ग्राम सड़क योजना, राजीव गांधी पेयजल योजना, राजीव रत्न अवार्ड, जवाहरलाल विश्वविद्यालय आदि सभी प्रतीकों की ही राजनीति तो है। इस कड़ी में कम्युनिस्ट पार्टी के चुनाव चिन्ह को देखे तो इसका चुनाव चिन्ह दंराती और हथौड़ा है जो मजदूर और किसान वर्ग का प्रतीक है। वामपंथियों को सबसे अधिक वोट भी इसी वर्ग से प्राप्त होते हैं तथा मार्क्सवादी भी मार्क्स और एंगल्स को प्रतीक के तौर पर प्रयोग करते हैं। समाजवादी पार्टी और जनता पार्टी भी मजदूर, किसान, पिछड़ा और दलित – मुसलमान गठजोड़ को साधने के लिए साइकिल को प्रतीक के तौर पर रखती है तो दूसरी ओर लोहिया, जयप्रकाश नारायण, कर्पूरी ठाकुर आदि के नाम पर योजनाएं चलाती रहती है। विलियम कोर्टी ने प्रतीकों के महत्व की ओर ध्यान खींचते हुए अपनी किताब 'द पार्टी सिंबल रीडिंग ऑन पॉलिटिकल पार्टीज' में बताया है कि 'प्रतीक अधिकतम जनता से जुड़ने का एक सरल माध्यम है जिसका प्रयोग तमाम राजनीतिक दलों के द्वारा किया जाता है।' (कोर्टी:नेट सोर्सेस) आर के सिंह कहते हैं, 'बहुजन प्रतीक के द्वारा कांशीराम दलित शोषित समुदाय से निष्ठा की मांग, सामाजिक मूल्यों के परिवर्तन एवं शासन पर नियंत्रण के लिए कर रहे हैं। (सिंह: 1994: 50) बसपा ने दलितों और बहुजनों को अपने साथ जोड़ने के लिए रणनीति के रूप में दो राजनीतिक पहचानों का प्रयोग किया। एक तो उसने बहुजन के रूप में भिन्न पहचान बनाई जिसमें उसने 'एससी' 'एसटी' 'ओबीसी' और धर्मांतरित अल्पसंख्यकों को शामिल किया जो इस समाज का 85 प्रतशित हिस्सा हैं। इसी को कांशीराम ने बहुजन नाम दिया और दूसरी पहचान मनुवाद जिसमें उसने तमाम सवर्ण कही जाने वाली

जातियों को शामिल किया। बसपा जब-जब सत्ता में आई तो उसने विभिन्न जिलों, चौराहों, विश्वविद्यालयों और तमाम सरकारी योजनाओं के नाम दलित बहुजनों के महानायकों के नाम पर रखे जिसे नामांतरण आंदोलन के रूप में जाना जाता है। बसपा ने ज्योतिबा फुले नगर, कांशीराम नगर, महामाया जिला, अंबेडकर विश्वविद्यालय, छत्रपति शाहूजी जिला तथा अंबेडकर ग्राम योजना, सावित्रीबाई फुले महिला सशक्तिकरण योजना, कांशीराम शहरी आवास योजना तथा चौक-चौराहों पर दलितों और बहुजनों के प्रतीकों को स्थापित किया। इसके साथ विभिन्न मेलों और सांस्कृतिक कार्यक्रमों को आयोजित किया। पेरियार मेला भी इसी कड़ी का एक कदम था तथा परिवर्तन चौक और बहुजन प्रेरणा केंद्र को स्थापित किया। यह सभी प्रयास दलितबहुजनों को लामबंदीकरण करने का एक माध्यम था जिससे उनका जनाधार बढ़े। प्रवेश कुमार कहते हैं कि 'बसपा ने दलित, बहुजन समाज के लिए तीन प्रकार के प्रतीकों का निर्माण किया: राष्ट्रीय प्रतीक, क्षेत्रीय प्रतीक और स्थानीय प्रतीक' (कुमार :2011: 141)

दलित अस्मिता की राजनीति और नारों का महत्व

जिस प्रकार से दलित अस्मिता के स्थापत्य में प्रतीकों ने एक भूमिका निभाई, उसी प्रकार नारों का भी महत्वपूर्ण योगदान है। नारे भी बहुत कम समय में व्यापक जनाधार को अपने उद्देश्य और विचारों को सरल और पॉपुलर तरीके से लोगों तक पहुंचाते हैं। इसका प्रयोग भी लगभग हर राजनीति पार्टी ने समय-समय पर किया। कांग्रेस का नारा 'जय जवान जय किसान', 1967 से पहले अधिक प्रचलित रहा जो कृषक समाज के स्वाभिमान से जुड़ा था। 1971 में जगजीवन राम को कांग्रेस का अध्यक्ष बनाया गया और दलित वोट बैंक को इस नारे के साथ साधने की कोशिश हुई, 'नारा आया दलितों का हाथ जगजीवन राम के साथ /दलितों का हाथ कांग्रेस के साथ' 1971 में चुनाव के वक्त भी कांग्रेस ने एक नारा दिया था 'कांग्रेस को लाना है भुखमरी, गरीबी को भगाना है।' 'इंदिरा लाओ भुखमरी भगाओ', वैसे कांग्रेस ने 'गरीबी हटाओ' नारे के साथ जीत हासिल की। इसके विरोध में 1977 में जनता पार्टी ने नारा दिया था 'इंदिरा हटाओ देश बचाओ' तथा भय भूख और भ्रष्टाचार का नारा दिया था तथा इसी तरह 1999 के बाद से कांग्रेस का एक अहम नारा है - 'कांग्रेस का हाथ आम आदमी के साथ'। इसी क्रम में भाजपा ने भी तमाम नारों का प्रयोग किया 'गाय, गंगा बचाना है, भाजपा को लाना है', 'मंदिर बनवाना है, भाजपा की सरकार लाना है', 'जय श्री राम', 'जय जवान जय किसान जय विज्ञान', 'इंडिया शाइनिंग', 'गुजरात विकास मॉडल देश में लाना है' जैसे प्रचलित नारों ने भाजपा को मजबूत लोकप्रिय हिंदू समाज की पार्टी बना दिया। दलित दल के रूप में बसपा ने भी नारों की मदद से संपूर्ण दलित समाज को जागृत किया और इस जागृति को वर्ग चेतना में बदला तथा इसी को राजनीतिक सत्ता में रूपांतरित भी किया। कांशीराम ने बसपा की स्थापना के बाद से ही विभिन्न नारों की रचना प्रारंभ की जिसने दलित लामबंदीकरण में सहयोग दिया और जिसने कम समय में दलित बहुजन समाज में अपना आधार बढ़ा लिया। 'बहुजनों का नारा है, भारत देश हमारा है, बहुजनवाद जागेगा, ब्राह्मणवाद भागेगा। 85 पर 15 का राज नहीं- चलेगा नहीं- चलेगा, 'बहुसंख्यक पर अल्पसंख्यक का राज नहीं चलेगा','वोट से लेंगे सी. एम., पी. एम. आरक्षण से एस.पी.डी.एम', 'जिसकी जितनी संख्या भारी, उसकी उतनी हिस्सेदारी', 'तिलक तराजू और तलवार इनको मारो जूते चार' जैसे प्रतिक्रियावादी नारें जातीय वर्ग चेतना और ध्रुवीकरण से ओतप्रोत थे।'ठाकुर, ब्राह्मण, बनिया छोड़ बाकी सब है डी. एस. - फोर' नारे के कारण बसपा की राजनीतिक गलियारे में अधिकाधिक चर्चा हुई। (नैमिशराय : 2003:46) इन नारों से बसपा ने प्रभुत्व जातियों की शक्ति संरचना को चुनौती दी। बसपा ने विभिन्न जातियों एवं धार्मिक समुदायों को जोड़ने के लिए कई नारों का निर्माण किया जैसे कि 'बसपा के तीन कप्तान दलित, पिछड़ा और मुसलमान', 'मुस्लिम दलित चेतना जगेगा ब्राह्मणवाद भागेगा'। बसपा ने 1996 के बाद अपने नारों में परिवर्तन किया और अब 'तिलक तराजू और तलवार इनको मारो जूते चार' के स्थान पर परिवर्तित कर सवर्ण जातियों को अपने साथ जोड़ने की बात हुई। इस काल को हम उत्तर कांशीराम काल भी कहते हैं। इस दौर के नारे कुछ ऐसे थे जैसे 'हाथी नहीं गणेश है, ब्रह्मा विष्णु महेश है', 'ब्राह्मण शंख बजाएगा हाथी बढ़ता जाएगा', 'सर्व समाज के उत्थान/सम्मान में बसपा है मैदान में', 'बसपा को लाना है सर्व समाज का विकास कराना है।' इसी तरह बसपा ने गठजोड़ की राजनीति में जब मुलायम (सपा) से हाथ मिलाया तो नारा दिया-'दलित- पिछड़ा गठजोड़, जिंदाबाद, जिंदाबाद' 'दलित- यादव मुस्लिम गठजोड़, जिंदाबाद जिंदाबाद', 'दलित पिछड़े भाई-भाई, अगड़ी जातियां कहां से आयी'

1995 में भाजपा के साथ जब समझौता किया तो जय भीम के साथ जय श्री राम का नारा दिया जाने लगा (नैमिशराय: 2003:72) और 9 जून, 2005 को बसपा ने 'ब्राह्मण महारैली' का आयोजन किया। इस रैली में सतीश चंद्र मिश्र के साथ सुश्री

मायावती ने एक नए और शक्तिशाली सामाजिक समझौते दलित, ब्राह्मण, मुस्लिम गठजोड़ का स्वरूप प्रदान किया गया (राय:जून :2005) मायावती ने भी जाति तोड़ो सम्मेलन की जगह जाति जोड़ो सम्मेलन को प्रश्रय दिया। प्रोफेसर विद्युत चक्रवर्ती अपनी किताब Forging Power, Coalition Politics in India (2006) मे सभी नारों को विभिन्न काल खंडों में विभाजित करते हैं जो नारों के महत्व को इंगित करते हैं। इन्होंने इस प्रकार विभिन्न काल समय में प्रसिद्ध नारों को बताया और 1971 'गरीबी हटाओ', 1977 'आपातकाल हटाओ' 1980, 'जनता पार्टी हटाओ', 1984 'देश बचाओ कांग्रेस को लाओ', 1989, 'भ्रष्टाचार हटाओ' आदि नारों की बात की है।

निष्कर्ष

नारे और प्रतीक आम लोगों से जुड़ा इतना अधिक प्रभावशाली माध्यम क्यों बन गया है? भारत की बहुसंख्यक जनता ज्यादा पढ़ी-लिखी नहीं है। अगर पढ़ी भी है तो ज्यादा नहीं जिससे उनकी एक समझ बन सके। इसलिए प्रतीकों और नारों के माध्यम से अपने विचारों को समझाना और आधार बनाना पार्टियों के लिए आसान लगता है। ये जल्दी प्रचारित और प्रसारित हो सकते हैं और अंतर्मन को भी प्रभावित करते हैं। जहां प्रतीकों को देखकर उनके बारे में जानने की तीव्र इच्छा होती है, वही नारे प्रत्यक्ष रूप से लोगों को किसी घटना, विचार, दर्शन, व्यक्ति के साथ जोड़ देते हैं। वर्तमान सरकार भी खादी, पटेल, दीनदयाल उपाध्याय और एकात्म मानववाद, सुभाष चंद्र बोस, स्वयंसेवीहिंदू समाज, जैसे प्रतीकों के जरिए या फिर पिछड़ा सवर्ण गठजोड़ बनाकर यही करने का प्रयास सफलता से कर रही है।

संदर्भ

1. Narayan, Badri.2006. Women Heroes and Dalit Assertion in North India: Culture Identity and Politics. Sage Publications. New Delhi.
2. Goutmen, Amy.2003. Identity in Democracy. PrinatonPress.New York.
3. Kumar,Dr. Vivek.2002. Dalit leaders in India. KalpazPublication,Delhi
4. सिंह,राजगोपाल. 2006 सामाजिक न्याय एवं दलित संघर्ष. राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी. जयपुर
5. नैमिशराय, मोहनदास. 2003. बहुजन समाज. नीलकंठ प्रकाशन. दिल्ली
6. – 2004. भारतीय दलित आंदोलन: एक संक्षिप्त इतिहास. बुक फॉर चेंज. नई दिल्ली
7. कुमार, डॉ. विवेक. 2007. दलित समाज, पुरानी समस्याएं नई आकांक्षाएं. सम्यक प्रकाशन. नई दिल्ली
8. सिंह, आर.के. 1994. कांशीराम और बसपा(दलित आंदोलन का वैचारिक आधार ब्राह्मणवाद विरोध). कुशवाहाबुक डिस्ट्रीब्यूटर्स. इलाहाबाद
9. कुमार,प्रवेश.2011.दलित अस्मिता की राजनीति.मानक पब्लिकेशन. नई दिल्ली

ISSN 2278 - 0327

ललितबिस्तर : अपाणिनी शब्द का एक शानदार उदाहरण

प्रवीर सरकार
पूर्वतन छात्र, संस्कृत विभाग
यादवपुर विश्वविद्यालय
कलिकाता-700032 (प.व)

बौद्ध साहित्य में सबसे प्रसिद्ध पुस्तकों में से एक ललितबिस्तर है। यद्यपि इस लोलिता बिस्तर पुस्तक की तिथि और लेखक के बारे में कोई निश्चित जानकारी नहीं है, लेकिन इसकी लेखन शैली, सामग्री, नामकरण और बौद्ध कला और मूर्तिकला जैसे पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर यह माना जाता है कि यह शताब्दी का प्रवर्तक है। पुस्तक का संकलन कुषाण राजा कनिष्क के शासनकाल के दौरान पूरा हुआ था। यह ललितबिस्तर महायान बौद्ध धर्मग्रंथों और महायान सूत्रों में से एक के रूप में है। महायान विचारधारा की नकल करते हुए ग्रंथ खानी को 'ललितबिस्तर' भी कहा गया है। महायान बुद्ध की जीवनी को 'ललित' के रूप में खूबसूरती से वर्णित किया गया है और इसका विस्तृत विवरण है। शिल्पदर्शन नामक पुस्तक के बारहवें अध्याय में बुद्ध की जीवनी संबंधी चर्चा है। यहाँ भी उल्लेख किया गया है कि शाक्यनेता दंडपाणि की पुत्री कुमारी गोपा यशोधा का सिद्धार्थ से विवाह हुआ है। बुद्ध की लीला के विस्तृत विवरण में हमें जो बुद्धि की अवधारणा मिलती है और प्राचीन बहुसाहित्य में प्रतिबिम्बित बुद्ध की अवधारणा में अंतर है। भगवान बुद्ध, जो चमत्कारी शक्तियों से संपन्न हैं, देवत्व के दिन जानवरों को मुक्त करने के लिए पृथ्वी पर प्रकट हुए, जिसमें मनुष्यों की एक जोड़ी है।

यद्यपि कई बौद्ध सिद्धांत ललितविस्तर ग्रंथों में पाए जाते हैं, कुछ व्याकरणिक गैर-व्याकरणिक अपाणिनीय प्रयोग और भाषाई अंतर यहां विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं। संस्कृत व्याकरण का सही प्रयोग नहीं देखा जाता है। अनेक अप्राप्य अपाणिनीय प्रयोग पाठक के समाज का मोहभंग कर देते हैं।

किसी भी पाठ की चर्चा में 'भाषा' एक बहुत ही महत्वपूर्ण विषय है। प्रत्येक पुस्तक की अपनी अनूठी विशेषताएं होती हैं, जो कोई अपवाद नहीं हैं। भाषा आमतौर पर व्याकरणिक होती है। यानी भाषा में प्रयुक्त शब्द और वाक्य व्याकरणिक रूप से सुसंगत होने चाहिए। संस्कृत भाषा भी इस नियम की अपवाद नहीं है। पाणिनि, पतंजलि और कात्यायन के व्याकरण को संस्कृत भाषा का व्याकरण माना जाता है। इनमें पाणिनि के व्याकरण को संस्कृत में नियम माना गया है। इस नियम के बावजूद ललित बिस्तर में कई असाधारण विशेषताएं हैं। जैसे अपणिनिय अनुप्रयोग, असंस्कृत अनुप्रयोग, उपसर्गों का उपयोग, वाक्य-विन्यास की विशेषताएं, अपरंपरागत धातु आदि। बौद्ध संस्कृत साहित्य में भाषा और शब्द व्याकरण की दृष्टि से विशेषकर ललितबिस्तर में न केवल संस्कृत बल्कि पाली प्राकृत भी प्रभावित है। उदाहरण के लिए-

1) श, ष, स - इन तीन सीटी ध्वनियों (उष्मवर्ण) के अनुप्रयोग में भिन्नताएं देखी जा सकती हैं।
'प्रश्रवन्ति' - यह शब्द ललितविस्तर में प्रस्रवन्ति हुआ है। श्रावा > स्रवा, आश्रव > आस्रवा भी हुआ है। ललितबिस्तर में 'क्लेश' शब्द ने पालि भाषा 'किलेसा' का रूप धारण कर लिया है।
2) कभी कभी अनुस्वार के स्थान पर 'न' आया है। उदाहरण के लिए, विहंसस्ये > विहनससे आदि।
3) ध्वन्यात्मक समीकरणों में एक महत्वपूर्ण विषय यहाँ व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है, जैसे - त्य, च्य > च्च, द्य, ज्य > ज्ज, ल्प, प्य > प्प, श्च > च्छ /छ, पश्चात > पच्छा, मत्स > मच्छ आदि।

प्राचीन भारत के बौद्ध ग्रंथों पर निर्भरता मुख्यत: पाली है। लेकिन ललितविस्तर नामक महायान ग्रंथ की भाषा मिश्रित संस्कृत है अर्थात् यहां संस्कृत, पाली, प्राकृत अपभ्रंश शब्दों का प्रयोग किया गया है। ललितबिस्तर की भाषा पर पूर्व और पश्चिम के विद्वानों ने अलग-अलग विचार व्यक्त किए हैं। प्रोफेसर एफ. एडगर्टन ने अपने 'बौद्ध संकर संस्कृत व्याकरण और शब्दकोष' को 'बौद्ध संकर संस्कृत' नाम दिया। श्रद्धेय प्रोफेसर डॉ. सुकुमार सेन महाशय ने कलकत्ता विश्वविद्यालय के पत्र विभाग के जर्नल

(xvii-1928) में प्रकाशित बौद्ध संस्कृत के वाक्यात्मक अध्ययन पत्रिका में बौद्ध संस्कृत साहित्यिक ग्रंथों की भाषा के व्याकरण की समीक्षा की है। एस. लेफमैन, एस. सेन आदि लोग इसे भाषाई संस्कृत या मिश्रित संस्कृत भाषा कहते हैं।

यद्यपि पाणिनि बौद्ध जीवनी ललितबिस्तर ग्रंथों में प्रयुक्त श्लोकों से सहमत हैं, फिर भी कई अपाणिनीय अनुप्रयोग हैं। उन असाधारण उदाहरणों पर करीब से नज़र डालने से कई अपरंपरागत अनुप्रयोगों का पता चलता है। लिंग के मामले में, अपाणिनीय आवेदन, उच्चारण के मामले में, कारक के मामले में, विभाजन के मामले में, गैर-करंता या एम-करंता शब्द 'उ' करंता के मामले में, एक बनाने की प्रवृत्ति- करंता शब्द / पादक गैर-करंता। उपंत और टिंगंता शब्दों के अंतिम 'म' (अनुस्वर) को छोड़ने की प्रवृत्ति। ई-करंता शब्द को 'ई'-करंता बनाने की प्रवृत्ति। आत्मनिपदी रूप से परसमाईपदी का प्रयोग करने की प्रवृत्ति, उपसर्ग 'सम' आदि का प्रयोग करने की प्रवृत्ति।

ललितविस्तर नामक पुस्तक के 'शिल्प संदर्शन' के अध्याय में लिंग के सभी न के बराबर अनुप्रयोग मिलते हैं - सत्यबक्यम्, ईदृश, तादृशम् शाठ्य, धर्मचारी आदि।

अ) **सत्यवाक्यम्**- इस मामले में 'सत्यवाक्य' के बजाय सत्यबक्यम का प्रयोग किया जाता है। यानी स्त्रीलिंग के स्थान पर दरार का प्रयोग देखने को मिलता है। सत्यवाक्यम् > सत्यवाक्य।

आ) **ईदृश**- यहां पर पुलिंग ईदृश स्थान में स्त्रीलिंग ईदृशी अभीष्ट हुआ। ईदृश > ईदृशी।

इ) **तादृश**- इस मामले में तादृशं के स्थान पर तादृशाम् लगाया गया है। पाणिनि व्याकरण के अनुसार एक समान शब्द के स्त्रीलिंग रूप में एक समान रूप पाया जाता है। तादृशाम् > तद्रीशीं

ई) **शाठ्य**- यहाँ क्लिब्लिंग शब्द को पुल्लिंग रूप दिया गया है। लेकिन वांछित रूप शाठ्यम् है। शाठ्य > शाठ्यम्।

उ) **धर्मचारी**- यहाँ भी स्त्री शब्द के स्थान पर पुरुष शब्द का प्रयोग किया गया है। यहाँ अभिप्रेत रूप धर्मचारिणी है। धर्मचारी > धर्मचारिणी।

ललितबिस्तर में एकवचन के स्थान पर एकवचन और बहुवचन के स्थान पर बहुवचन का प्रयोग भी मिलता है। मध्य भारतीय आर्य भाषा (पाली, प्राकृत, बंगाली आदि) में कोई अस्पष्टता नहीं है। उस स्थिति में बहुवचन लागू होता है। यद्यपि बहुवचन कृदंत लागू होता है, बहुवचन क्रिया में जोड़ा जाता है। उदाहरण के लिए, 'शक्रो ब्रह्म उभौ च दर्शयन्ति'। जब फिर से या एकवचन जैसे- 'चंद्र सूर्य पात भुमौ माहि चा विलयं व्रजेत'। वचन के मामले में अपानिणीय आवेदन पर नीचे चर्चा की गई है अभूत शब्द का पाणिनीय अनुप्रयोग लुङ् लकार भू धातु का एकवचन रूप है। लेकिन शब्द पाणिनीय आवेदन में भू धातु के लुङ्लकार के उत्तमपुरुष का एकवचन होना चाहिए था। ऐसे में फॉर्म अभुयम् होगा।

प्रश्न में शब्द इस आवेदन में बारहवीं कला संदासन के बजाय देखा जाता है। अस्ति शब्द अस् धातु लट् के पहले पुरुष का एक विलक्षण रूप है। लेकिन यह शब्द बहुवचन में होना चाहिए था। उस स्थिति में फॉर्म सन्ति होगा।

संस्कृत व्याकरण में हम छह क्रियाओं और सात घोषणाओं में क्रिया की अभिव्यंजक घोषणा के आवेदन के लिए विशिष्ट नियम पाते हैं। बौद्ध साहित्य में समाधातुज करण कारक का प्रयोग देखा जाता है। यदि हम ललितबिस्तर में क्रिया कारक के अनुप्रयोग को देखें, तो हम कुछ अजीब रूप देख सकते हैं।

'यामे रात्रिं वोधसत्त्वे जातः तस्यामेव रात्र्यां कण्यकासहस्राणि .....जाताः।'

द्वितीय एवं चतुर्थ संभाग के स्थान पर ललितबिस्तर षष्ठी लगाई जाती है। उदा.- कुमारस्य वरयिष्यामि > कुमाराय, वोधसत्त्वस्य उपनायति स्म > बोधिसत्त्वाय।

'शुद्धोदनोत्पयेन समयेन' यहाँ दूसरा कृदंत पाणिनि समय शब्द के जोड़ से सहमत है। लेकिन इस मामले में थर्ड डिविजन लागू किया गया है। प्रासंगिक सूत्र है- 'समया निकषा हा प्रतियोगेऽपि'।

रोचतः- 'रुच्यार्थनां प्रीयमाणः' इस फॉर्मूले के मुताबिक यहां रोचते होना चाहिए था। लेकिन यहां रोचत हुआ यहां पर अपाणिनीय लागू किया गया है।

ललितविस्तर में कुछ ऐसे अनुप्रयोग हैं जिनका विभक्ति रूप पाणिनिया यानि अपनिनिया नहीं है। जैसे-

क) सर्वेभिः > सर्वैः पाणिनि के व्याकरण के अनुसार इस प्रकार का रोग केवल वेदों में ही संभव है। यह लौकिक भिस् के स्थान पर ऐस है। 'अतो भिस् ऐस'। 'छन्दोसी बहुलम्'।

ख) पतिना > प्ता, पति शब्द के तृतीया एकवचन में पात्या पाणिनि सम्मत। लेकिन पतिना ऐसे मिलते हैं। पाणिनि के व्याकरण में जो समास में ही संभव है।

ग) ध्यानसुखेभिः > ध्यानसुखेभ्यः , वरयस्व > वृणीष्व यहाँ इच्छित रोग धातु 'वृ' के मध्यमपुरुष का एकवचन वृणीष्व

है।

घ) संकीर्ण- इस पद का प्रातिपदिक हुआ संकिर्णि। सं-कृ धातु से क्त प्रत्यय कार के निकला हुआ। इसमें पुलिंग सप्तमी एकवचन का रूप हुआ संकिर्णे, लेकिन यहां पर क्ति विभक्ति योग करके संकीर्ण किया गया।

ङ) शोभमि- शुभ् धातु का लट् उत्तम पुरुष का एक वचन में हम लोग शोभे पाते है। यहां पर शोभमि इस पद का विभक्ति पाणिनि अनुसार नहीं है।

ललितविस्तर ग्रंथ में ऐसे बहुत सारे शब्द मिलते हैं यहां पर अ- कारान्त वा म-कारान्त शब्द को उ-कारान्त मैं पाठ करने का प्रयास दिखाई जाती है। जैसे कि आहू शब्द अहम् होना चाहिए लेकिन नहीं हुआ। ममार्थु इस शब्द पाणिनि के अनुसार नहीं हुआ। इसका सही शब्द है ममार्थम्। कुमारु शब्द अपाणिनिय है। पाणिनीय पद हुआ कुमार:। यहां पर अ-कारांत शब्द को उ-कारान्त् उच्चरण करने का प्रयास दिखाई जाती है। ललितविस्तर नामक पाठ में कई व्याकरणिक और ध्वन्यात्मक समस्याएं हैं। अधिकांश ग्रंथों में 'ए' शब्द को 'इ' में बदलने की प्रवृत्ति है। जैसे-

कामगुनि - यहाँ सप्तमी के एकवचन 'अ' में पुरुष और नपुंसक के स्थान पर व्यंजन शब्द सप्तमी का एकवचन रूप देखा जा सकता है। कामगुनि > कामगुने।

संकीर्णी - इस प्रसंग में सप्तमी का एकवचन रूप 'संकीर्ण' है, लेकिन यह व्यंजन शब्द की तरह सप्तमी के एकवचन रूप जैसा हो गया है। संकीर्ण > संकीर्ण।

ललितबिस्तर में देखे जाने वाले रूप के कई रूप हैं, जो आत्मानेपदी रूप से परस्माइपदी में बदलने की प्रवृत्ति है। जैसे-

अ) **पङ्कि** - यहां पाणिनि रूप पंक शब्द के सप्तमी एकवचन होना चाहिए। लेकिन इसके पंकि रूप को अपाणिनीय तरीके से लागू किया गया है।

आ) **लभति** - लङ् धातु लट प्रथम पुरुष एकवचन का रूप हुआ लभते। लेकिन यहां पर लभति हुआ।

ऐसे 20 उपसर्ग हैं जो संस्कृत व्याकरण से सहमत हैं। इन 20 उपसर्ग में 'योग' उपसर्ग का प्रयोग करने की प्रवृत्ति होती है। इस तरह के उपसर्गों का प्रयोग संनिपत्य, संजनस्य, उपसंक्रम्य, संविद्यान्ते आदि शब्दों के साथ किया गया है। इससे अलावा और कोई व्याकरण विरोध कुछ शब्द का प्रयोग दिखाई जाते हैं। ललित विस्तार में ऐसे बहुत सारे शब्द का प्रयोग हुआ जो संस्कृत नहीं हो असंस्कृत प्रयोग। जब हम ललितविस्तर नामक बौद्ध जीवनी पर आधारित पुस्तक पढ़ते हैं, तो हम आसानी से कुछ असंस्कृत प्रथाओं को नोटिस करते हैं।

बौद्ध ग्रंथ 'ललितविस्तर' बुद्ध की जीवनी पर आधारित पुस्तक है। आमतौर पर यह कहा जाता है कि बुद्ध के जीवन पर सबसे अच्छी किताबों में से एक ललितविस्तर है। इस पुस्तक के 27 अध्यायों में भगवान बुद्ध की जीवन गाथा का सुंदर वर्णन किया गया है। बुद्ध के प्रथम जीवन से लेकर बोधिसत्व की प्राप्ति तक सभी घटनाओं पर विस्तार से चर्चा की गई है। आमतौर पर यह पुस्तक पाली भाषा में प्रमुख है लेकिन यह पुस्तक संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, मिश्रित संस्कृत भाषा से प्रभावित है। और इसी कारण से संस्कृत के अनेक व्याकरणिक शब्दों, अर्थात् पाणिनि के व्याकरणिक शब्दों का प्रयोग पुस्तक में नहीं किया गया है।

किसी भी साहित्य की रचना के लिए व्याकरण के नियमों का प्रयोग आवश्यक है। लेकिन ललितविस्तर नामक ग्रन्थ में अनेक अपणिनियाँ प्रयुक्त हुई हैं। इस पुस्तक को पढ़ते समय यदि पाठकों को पाणिनि व्याकरण की स्पष्ट समझ हो तो इस विषय की गंभीरता को समझना अधिक उपयोगी होगा।

Referance-

1. Gangopadhyay, Jaydeb shastri, lalitbistar
2. Das, Dev Kumar, Sanskrit sahityeritihas
3. Sarkar, Sadhanchandra, boudhyashilpa o sthapatya.
4. Bhattacharya, Bindushekhar, pratimoksha.
5. Chowdhury, Binayendra, Boudhya sahitya.
6. Lahiri, Prabodh Chandra, & , Bhattacharya, Hrishikesh, paniniyam.
7. Bhattacharya, pareshchandra, Sanskrit sahityeritihas.

ISSN 2278 - 0327

'रेत समाधि' उपन्यास में चित्रित नारी की सामाजिक संघर्ष चेतना

सोनिया
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा) -124001

भूमिका :

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहकर वह दिन-प्रतिदिन अपनी आजीविका के लिए प्रयत्नशील रहता है। इसी कारण संघर्ष उसके जीवन का एक अहम हिस्सा बन गया है, जैसे-जैसे मानव जीवन में बदलाव आता है, वैसे-वैसे उसके मन में इच्छाएँ, आकांक्षाएँ, कुंठाएँ और आवेग जन्म लेने लगते हैं और वह उनके लिए प्रयत्नशील रहता है। जब कभी परिस्थितियाँ उनके प्रतिकूल होती है, तो वह उन्हें अपने अनुकूल बनाने की कोशिश करता है, यहीं से आरंभ होता है मनुष्य के वास्तविक संघर्ष का। अर्थात् दो विरोधी प्रवृत्तियों में टकराव ही संघर्ष कहलाता है। इसके बाद मनुष्य में जागृत होती है, चेतना अर्थात् ऐसा संघर्ष जिसका परिणाम सकारात्मक हो और उसके पीछे काम करने वाली मानवीय शक्ति 'चेतना' कहलाती है। इस प्रकार संघर्ष व चेतना का मानव जीवन में महत्वपूर्ण स्थान होता है।

संघर्ष का अर्थ :

'संघर्ष' का शाब्दिक अर्थ है - टकराना, परस्पर द्वेष रखना या मुठभेड़। यह अंग्रेजी भाषा के 'Struggle' शब्द का पर्यायवाची है, जिसका अर्थ है - प्रयत्न करना, अधिक परिश्रम करना और दो विरोधी दलों में टकराव होना।

इसी प्रकार संघर्ष का अर्थ है, 'एक तरह का टकराव'। जहाँ दो विपरीत परिस्थितियाँ होंगी, वहीं दोनों में टकराव होगा और इसे ही 'संघर्ष' कहा जा सकता है। डॉ. यश गुलाटी ने 'संघर्ष' को परिभाषित करते हुए कहा है - ''संघर्ष जिंदगी की अनिवार्य शर्त है और अस्तित्व की सुरक्षा और पहचान का एकमात्र औजार भी है।''[1]

संघर्ष मानव जीवन से ही आरंभ हो जाता है। जन्म के बाद वह अपने वातावरण के साथ संघर्ष करता और धीरे-धीरे जब वह बड़ा हो जाता है तो उसे पारिवारिक व सामाजिक परिस्थितियों से संघर्ष करना पड़ता है। इस प्रकार संघर्ष मानव जीवन में आदि से अंत तक चलने वाली प्रक्रिया है।

समय के साथ मनुष्य को परिवार व समाज के मूल्यों, रीति-रिवाजों, परंपराओं और मान्यताओं के साथ निरंतर संघर्ष करना पड़ता है। आधुनिक युग में समाज में स्वार्थ, ईर्ष्या-द्वेष, असंतोष ने अपनी जगह बना ली है। समाज में पीढ़ियों की टकराहट, पारिवारिक विघटन, शोषण, तनाव और असमानता का वातावरण छा चुका है। व्यक्ति के मानवीय अधिकारों का हनन होने लगा है। समाज में व्यक्ति का अस्तित्व खतरे में पड़ चुका है और इन्हीं में से एक है - नारी। आज समाज में नारी की अस्मिता का खतरा है। वह शिक्षित व जागरूक होते हुए भी पुरुषवादी सत्ता के शोषण का शिकार हो रही है। आज की नारी शिक्षित है, वह अपने अधिकारों के प्रति सचेत है, यही कारण है वह अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष करती है। यह संघर्ष कहलाता है पुरुषवादी सत्ता और नारी के बीच संघर्ष।

इस प्रकार नारी को समाज में एक मानवीय प्राणी, समाज का आधार होते हुए भी अपने मानवीय मूल्यों और अधिकारों के लिए निरंतर संघर्ष करना पड़ रहा है।

चेतना :

संघर्ष करके मनुष्य को अपने लक्ष्य प्राप्ति तक पहुंचाने के लिए जो मानवीय शक्ति कार्य करती है वह है 'चेतना'। चेतना मनुष्य की वह जीवनदायिनी प्रेरणा शक्ति है, जिसके बिना केवल संघर्ष से उसे उसके वास्तविक लक्ष्य प्राप्त नहीं हो पाते।

चेतना का अर्थ :

चेतना शब्द अंग्रेजी के 'Conciousness' शब्द का हिंदी पर्याय है, जिसका अर्थ है - आभास होना। अन्य अर्थों में कहें तो जहाँ इच्छा, संवेदना, समझ, आभास, चेतनता अथवा सचेत है, वही चेतना है।

बाबू श्याम सुंदर दास ने ''चेतना का अर्थ - (1) बुद्धि (2) मनोवृति (3) ज्ञानात्मक मनोवृति (4) स्मृति, सुधि, वाद (5)

चेतनता, चैतन्य, संज्ञा, होश'' बताया है। – ''चेतना मानव मस्तिष्क का वह विशेष गुण है।[2]

इस प्रकार चेतना का अभिप्राय है, सोचना, विचारना, समझना और बुद्धि विवेक से काम लेना। इसके अभाव में केवल संघर्ष व्यक्ति को सफलता नहीं दिला सकता। कोरा संघर्ष विध्वंसकारी साबित हो सकता है।

नारी संघर्ष चेतना:

समाज की आधारशिला के रूप में नर और नारी दोनों का महत्वपूर्ण स्थान है। दोनों एक गाड़ी के दो पहियों की तरह है। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व गौण है, लेकिन पुरुषवादी समाज ने नारी को सदा ही हेय दृष्टि से देखा है। यह बात और है कि पाषाण काल में समाज में मातृसत्ता का वर्चस्व था, लेकिन धीरे-धीरे पुरुष ने श्रम विभाजन को आधार बनाकर नारी का क्षेत्र व दर्जा सीमित कर दिया और अपना क्षेत्र विस्तृत कर लिया। फिर उसे देवी, अबला व भोग्या समझा जाने लगा। यह काल था वैदिककाल। इसके बाद तो जैसे नारी की स्थिति दिन-प्रतिदिन और काल दर काल इतनी दयनीय होती चली गई कि समाज का स्वरूप मातृसत्ता की जगह पितृसत्ता में परिवर्तित हो गया।

आज स्थिति यह है कि उसे शिक्षित होते हुए भी शोषण का शिकार होना पड़ रहा है। समय के साथ-साथ वह जागरूक अवश्य हुई है, लेकिन उसे शारीरिक व मानसिक प्रताड़नाओं को सहना पड़ रहा है। संविधान में स्त्री-पुरुष समानता का प्रावधान है, देश में 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' जैसी योजनाएँ देश के प्रधानमंत्री चला रहे हैं, लेकिन क्या केवल प्रावधान बनाने से और योजनाएँ बनाने से सारा समाधान हो सकता है। आज भी समाज में कन्या भ्रूण हत्या, दहेज प्रथा, यौन उत्पीड़न जैसी गंभीर समस्याएँ समाज में व्याप्त है। जब तक बेटी बचेगी नहीं तो पढ़ेगी कैसे ? जब तक बेटी मानसिक रूप से स्वस्थ नहीं होगी तो वह अपने अधिकारों के लिए लड़ेगी कैसे ? इस ओर ध्यान केंद्रित करना आवश्यक है। स्त्री को भी इसके लिए संघर्ष करना होगा और चेतना जागृत करनी होगी। उसे अपने अधिकारों के प्रति सजग होकर अपनी बुद्धि व विवेक के बल पर समाज की पुरुषवादी सत्ता के प्रति संघर्ष करना होगा। समाज में सभी को अपनी मानसिकता बदलनी होगी। धर्म, रीति-रिवाज, मूल्य व सामाजिक मान्यताओं के बंधनों में बांधकर नारी शोषण बंद करना होगा तभी एक सुदृढ़ व समृद्ध समाज का निर्माण हो सकता है।

'रेत समाधि' उपन्यास में नारी की सामाजिक संघर्ष चेतना :

समाज से जुड़ने के कारण मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी कहा जाता है। समाज में रहकर उसे अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। प्रत्येक समाज के अपने बंधन व दायरे होते हैं, जिन्हें लांघना उनके लिए विरोध उत्पन्न कर सकता है। समाज की मर्यादा और सीमाओं का सबसे अधिक पालन करना पड़ता है नारी को। घर परिवार के प्रति जिम्मेदारी और घर से बाहर की जिम्मेदारी का दायित्व उसे ही निभाना पड़ता है।

साहित्य समाज का दर्पण होता है, इसलिए एक सफल साहित्यकार सदैव अपने साहित्य में अपने युग परिवेश से प्रभावित होकर अपने अनुभवों को अवश्य चित्रित करता है। एक साहित्यकार युग दृष्टा ही नहीं भविष्य दृष्टा भी होता है। वह अतीत और वर्तमान से प्रभावित होकर अपनी रचनाओं में उनका चित्रण कर भविष्य के मानवीय आदर्शों व संभावनाओं को भी प्रदर्शित करता है।

गीतांजलि श्री जी का 'रेत समाधि' उपन्यास हिंदी गद्य साहित्य के लिए एक अमूल्य निधि है। इस उपन्यास में उन्होंने अतीत व वर्तमान का सामंजस्य कर नारी की समस्याओं, संघर्षों के साथ-साथ कई दृष्टियों से पाठक वर्ग को आकर्षित किया है। इसमें दर्शाया गया है कि किस प्रकार एक नारी अपनी सीमाओं को लांघकर परंपराओं को तोड़कर मर्यादाओं से निकलकर समाज के सामने अपनी संघर्ष चेतना का प्रमाण देती है, जिसके लिए उम्र भी एक सीमा मानी जाती है।

'रेत समाधि' उपन्यास में नारी की सामाजिक संघर्ष चेतना का वर्णन इस प्रकार है-

1. पारिवारिक संघर्ष -

परिवार समाज की सबसे पहली सीढ़ी है। परिवार के आपसी संबंधों पर ही उसकी नींव टिकी होती है, लेकिन आपसी मनमुटाव के कारण संबंधों में दरार पारिवारिक विघटन का कारण बन जाती है। समाज के नियम, परंपराएँ व मर्यादाएँ जो केवल नारी के लिए आवश्यक माने जाते हैं, में घिरकर जब वह अपने अस्तित्व के प्रति जागरूक होकर संघर्ष करने लगती है तो कई बार असमंजस की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जिसके कारण उसके मन की स्थिति द्वंद्वात्मक हो जाती है।

'रेत समाधि' उपन्यास में ऐसी ही स्थिति का चित्रण किया गया है, जिसमें घर की बेटी मर्यादाओं के कारण घर की दहलीज पर पैर उठाए खड़ी है कि अन्दर जाऊँ या नहीं। ''हवा में उठा पाँव हवा में रुका सवाल बन गया- मैं इस तरफ हूँ कि उस तरफ ?''[3]

इस प्रकार अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करती है कि जब मैं घर से चली गई थी तो अब मेरा घर ही मेरा अपना है। कहने का अभिप्राय है कि वह बड़े भाई के घर को अपना नहीं समझती।

इसी प्रकार घर की बहू भी अपने पति के हर सवाल का जवाब बड़ी ही निर्भीकता से देती है। वह उसे बार-बार नीचा दिखाने की कोशिश करता है, लेकिन वह तर्क सहित अपनी हर बात को सामने रखती है। भारतीय संस्कृति के अनुसार नारी का अपना घर नहीं होता। मायके में वह किसी की बेटी व बहन होती है, वहाँ उसके पिता व भाई का घर होता है और ससुराल में वह बहू, पत्नी और माँ होती है, वहाँ उसके ससुर, पति और बेटे का घर होता है। यही स्थिति उपन्यास में बहू की होती है। उसका पति हर समय उसके साथ नोक-झोंक रखता है। वह बिना पूछे उसकी साड़ियाँ अपनी माँ जो हॉस्पिटल में है, को दे देता है, इस पर वह कहती है-

''पत्नी की आँखें फटी की मेरी अलमारी से ये कब इन्हें निकाल लाये और पुराना घाव हरियाया की मेरी चीज कभी मेरी थी कि नहीं। ससुराल में जो चाहे उन पर हाथ मार ले, मेरे बच्चों तक को मुझे पालने न दिया, कभी बुआ जी की गोदी, कभी दादा दादी की और घर तो जग भर की सराय, मुझे पता ही क्या कि अपना घर किसे कहते हैं।''[4]

इसी प्रकार समाज की परंपराओं के विरोध में नारी की संघर्ष चेतना बेटी के माध्यम से भी उजागर होती है। जब बेटी को उसके पिताजी और बड़े भाई घर से बाहर दोस्तों से मिलने नहीं जाने देते तो वह अपनी माँ के सहारे बाहर जाती और अपने दोस्तों के साथ घूमती फिरती, अंताक्षरी खेलती और हँसती गाती। अपनी माँ का साथ पाकर वह घर की परंपरा, मर्यादा और सुरक्षा को तोड़कर स्वतंत्र व स्वच्छंद घूमती। यहाँ पर अम्मा की संघर्ष चेतना दृष्टिगोचर होती है। वह भी अपनी बेटी को खिड़की से उसके दोस्तों के साथ जाने में मदद करती और जब वह अपने घर रहने लगी तो अम्मा कभी-कभी परिवार से छुपाकर झाड़ी पार उसे साड़ी देती और उसके ब्लाउज का नाप लेती, जिसके कारण झाड़ी के काँटे भी चुभ जाते हैं, लेकिन अपनी बेटी के लिए वह सब कुछ सहने को तैयार थी।

अम्मा एक पत्नी के रूप में भी संघर्ष करती नजर आती है। देश विभाजन से पहले वह लाहौर रहती थी, जो विभाजन के बाद पाकिस्तान चला गया। वह अपने शौहर अनवर के साथ वहाँ रहती थी लेकिन देश के विभाजन के कारण वह भारत की और अनवर पाकिस्तान का होकर रह गया, लेकिन अपने सच्चे प्रेम के खातिर वह पाकिस्तान जाती है, उसे वहाँ कैद कर लिया जाता है और अंत में वह अनेक संघर्षों के बावजूद अपने शौहर से मिलने में कामयाब हो जाती है। यह बात अलग है कि वह वही गोली का शिकार हो जाती है और रेगिस्तान की रेत में ही अंतिम साँस लेती है।

2. लिंग भेद के प्रति संघर्ष -

लिंगभेद की समस्या समाज के लिए गंभीर होती जा रही है। बच्चे के जन्म से ही परिवार में यह समस्या आरंभ हो जाती है। बेटे के जन्म पर खुशी व बेटी के जन्म पर घर में मातम छा जाता है। धीरे-धीरे जब वे बड़े होते जाते हैं तो सीमाएँ निर्धारित कर दी जाती हैं कि बेटा स्वतंत्र है और बेटी के लिए मर्यादा में रहना अनिवार्य है। घर परिवार के बुजुर्ग अपना उत्तरदायित्व अपने बेटे को सौंपते हैं और यह सिलसिला पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता रहता है। माँ-बाप की जिम्मेदारियों को निभाना बेटे का दायित्व समझा जाता और बेटी को पराया व कमजोर समझा जाता है। घर पर उसका दायित्व पिता और भाई का और ससुराल में उसका दायित्व पति और बेटे पर होता है, लेकिन 'रेत समाधि' उपन्यास में इसी लिंग-भेद के प्रति बेटी के संघर्ष को दर्शाया गया है। जब अम्मा बीमार होती है तो वे उसकी देखभाल करने आती रहती है और एक अम्मा जब घर से बिना किसी को बताए कहीं चली जाती है तो बेटी उसे अपने साथ अपने घर ले जाती है और उनकी एक माँ की तरह देखभाल कर उन्हें नया जीवन प्रदान करती है।

''बेटी ने माँ बनकर, माँ को बेटी बनाया और उनके माथे पर हाथ फेरा। आ गयी यहाँ, अब न जाने दूँगी। कैसी कमजोर हो गई है, मैं ना होती तो गिर ही पड़ती, इतने में हाँफ गई। न जाने इस दौरान कहाँ गिरती पड़ती रही ? कहने को इतने संारे लोग, देखने वाले और बेचारी बेसहारा को न देख पाएँ अभी भी धूल कहीं-कहीं जमीं रह गई है। कब से नहाई न होगी। सो लेने दो। फिर मैं स्पंज कर दूंगी, धीरे-धीरे न जिला दूँ तो देखना।''[5] इस प्रकार सभी को अपने समाज में लिंग-भेद के समस्या को समाप्त करने में महत्वपूर्ण योगदान देना चाहिए।

3. प्रकृति के लिए संघर्ष -

ईश्वर ने प्रकृति के रूप में मनुष्य को अनमोल उपहार भेंट किया है- लेकिन मनुष्य अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए दिनों-दिन इसका दोहन करता है जा रहा है। बड़ी ही निर्ममता से वृक्षों को काट रहा है, पानी व हवा को दूषित कर रहा है। अपनी भौतिक सुख-सुविधाओं के लिए मनमाने ढंग से उसको नष्ट कर रहा है। कहीं तो कारखानों से निकलने वाला अपशिष्ट और धुआँ, कहीं विषैली गैसों का रिसाव, कहीं दूषित पानी, कहीं घरों में प्रयोग होने वाले उपकरणों की गैसे, कहीं वनों का कटाव आदि

प्रकृति के लिए खतरा हैं। यही कारण है कि इस गलत छेड़छाड़ के कारण प्रकृति भी अपना विनाशकारी रूप दिखाना प्रारंभ कर देती है। कभी असमय बारिश, कभी ज्यादा गर्मी, कभी ज्यादा सर्दी, कभी सूखा, कभी बाढ़, ध्रुवीय बर्फ का पिघलना, ओजोन परत में छेद आदि इसके विनाशकारी संकेत हैं। पर्यावरण की सुरक्षा प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। इसके लिए मनुष्य को प्रकृति के प्रति सचेत होना होगा और आवश्यकता से ज्यादा इसके संसाधनों के प्रयोग पर रोक लगानी होगी। यदि इससे संबंधित मुद्दों पर विचार किया जाए तो काफी हद तक प्रकृति का संरक्षण किया जा सकता है।

'रेत समाधि' उपन्यास में अम्मा के माध्यम से लेखिका ने नारी की इसी संघर्ष चेतना को चित्रित करने का प्रयास किया है। पहले तो अम्मा बड़े बेटे के घर में परिवार से विमुख होकर लेटी रहती थी, लेकिन जब वह अपनी बेटी के घर चली जाती है तो उसमें नई चेतना जागृत होती है। अम्मा का नया जीवन शुरू होता है। उनका पेड़-पौधों व पक्षियों से लगाव हो जाता है। अम्मा बेटी के घर में बालकनी में पौधे लगाती है और उनकी देखभाल करती है। वो मिट्टी मे हाथ साने रहती और कौवे व चिड़िया से बतियाती रहती। चिड़िया की सीटी के साथ-साथ सीटी बजाती। इसी के साथ-साथ वे अपने शरीर के लिए भी प्राकृतिक चीजों का इस्तेमाल करती जो रोज़ी बुआ उन्हें सुझाती थी।

अम्मा सोसाइटी वालों से भी प्रकृति के लिए झगड़ पड़ती और पेड़ काटने को लेकर उन्हें काफी कुछ सुनाती। उन्होंने पेड़ों की डालियाँ काटने के लिए भी माली को मना कर दिया जब सोसाइटी वालों ने कहा जीव-जंतु, छिपकली, कीड़े, मकड़ियाँ, गिलहरी, चूहे, पक्षी आदि पेड़ों पर चढ़कर यह देख लेते हैं कि अंदर घरों में मेज पर रसीले फल रखे हैं और बंदर, बिल्ली आदि पेड़ों के सहारे घर में घुस आते हैं, तो अम्मा ने कहा कि सिर्फ डालियाँ छाँटनी है, पेड़ नहीं काटना। मैं यहीं खड़ी देख रही हूँ। इस पर सभी हँस पड़ते। इस प्रकार अम्मा ने अपने विवेक से पेड़ों को काटने से बचाया और प्रकृति के संरक्षण की ओर एक महत्वपूर्ण कदम उठाया।

4. उम्र की सीमाओं को तोड़ती नारी -

मानव जीवन को चार अवस्थाओं में बाँटा गया है। शैशवावस्था, बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था। यें चारों अवस्थाएँ है, मानव जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। शिशु का जीवन पराश्रित होता है, बाल्यावस्था में बच्चा चलना, फिरना, बोलना सीख जाता है लेकिन वह परवरिश के लिए अपने परिवार पर निर्भर होता है। युवावस्था में व्यक्ति पढ़-लिख कर आत्मनिर्भर बन जाता और गृहस्थी भी संभाल लेता है, लेकिन वृद्धावस्था उम्र की वो सीमा है, जहाँ पहुँचकर व्यक्ति पराश्रित हो जाता है। बुढ़ापे में व्यक्ति की शारीरिक व मानसिक क्षमता कमजोर होने लगती है लेकिन 'रेत-समाधि' उपन्यास में इस धारणा के प्रति संघर्ष करती अस्सी वर्षीय अम्मा केवल उम्र की ही नहीं अपितु देशों के मध्य बनी सीमा को भी तोड़ती और लाँघती नजर आती है। अस्सी वर्षीय अम्मा जो परिवार से पीठ करके बिस्तर पर लेटी रहती, बेटी के घर जाकर मानो उनमें नए जीवन का संचार होता है। वह अपने आपको बिल्कुल तरोताजा महसूस करने लगती है। रोज़ी के साथ काम करती है, उसके साथ घण्टों बतियाति और घूमती है। घर के छोटे-मोटे काम जैसे चाय बनाना, खरल में कभी सौंफ मलना, लहसुन कूचना, भुने मसाले कूटना, खुद उठना, खुद नहाना, खुद खाना आदि। इतना ही नहीं इन्होंने घर की बालकनी में गमलों में पौधे भी लगाए और उन्हें हाथों से पुचकारती भी। अकेली बैठकर आसमान व पेड़ों से बतियाती हैं।

जब रोज़ी लापता हो जाती है तो भी वह केके और अपने पोते सिड को लेकर पुलिस स्टेशन रिपोर्ट लिखवाने जाती है। जब वह आनाकानी करता है, तो उसे धमकी देकर रोज़ी का पता निकलवाती है। ''अम्मा ने छड़ी चलायी। आप गुमशुदाई का केस दर्ज़ करिए''[6] अपनी उम्र के इस पड़ाव पर वह अपने पोते से अपना पासपोर्ट बनवा कर लाहौर जाती है, अपनी बेटी के साथ। रोज़ी की दी हुई चिरौंजी देने उसके रिश्तेदारों को और अपने शौहर अनवर से मिलने। वह अपने दोनों कार्यो में सफल भी होती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि उपन्यास में नारी की सामाजिक संघर्ष चेतना उभरकर हमारे सामने आती है, जहाँ उम्र कोई सीमा नहीं है।

5. समाज में उपेक्षित किन्नर समुदाय के लिए संघर्ष -

किन्नर को हमारे समाज में स्त्री और पुरुष किसी भी श्रेणी में नहीं रखा जाता। इन्हें समाज में उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है। संविधान में इन्हें तीसरा लिंग घोषित किया गया है, लेकिन समाज में इन्हें सम्मान नहीं दिया जाता, बावजूद एक मानवीय इकाई के। केवल शारीरिक संकेतों के आधार पर इस तरह मानव की उपेक्षा सही नहीं है। समाज की इसी मान्यता का विरोध करती अम्मा रोज़ी (हिजड़ा) के साथ मानवीय रिश्ते बनाती है। अम्मा रोज़ी के साथ हर प्रकार की बातें करती है। वह उसके साथ घंटों बिताती है। उसके साथ बैठकर खिलौने बनाती है, उसके साथ घूमने जाती है, उससे अपनी बीमारियों का इलाज करवाती है और

जब रोज़ी लापता हो जाती है तो पुलिस वालों को मजबूर कर देती है उसे खोज निकालने के लिए वह उनके साथ उसे ढूंढने झील के किनारे वाली बस्ती में भी जाती है। जब रोज़ी मर जाती है, तो अस्पताल में भी उसकी लाश को देखने जाती है। अम्मा का रोज़ी के साथ आत्मीय रिश्ता बन चुका था, वह उसी दोस्ती को निभाने अस्सी साल की उम्र में पाकिस्तान जाती है उसके लिए किसी रिश्तेदार को चिरौंजी देने।

''पाकिस्तान कौन जाता है?
रोज़ी! अम्मा का जवाब।
रोज़ी से क्या मतलब, सब चीखे और एक दूसरे की चीख पर चौक कर कूदे।
इसे कहते हैं भूत सवार होना।
'उसको जाना था।',
'वो गई',
'चिरौंजी नहीं ले गई।'
'तो क्या ?'
मैं ले जाऊँगी।
बड़े पत्नी किचलू ताया डॉक्टर मिरासी केके बेटी, सब कूदे हुंकारे और चुप होकर सोचने लगे, करे तो क्या?''[7]

इससे स्पष्ट होता है कि उपन्यास में नारी संघर्ष चेतना का उपेक्षित किन्नर समुदाय के प्रति सकारात्मक पक्ष उभरकर हमारे सामने आता है, जो एक सराहनीय कदम है।

6. आत्मनिर्भरता के लिए नारी संघर्ष –

आधुनिक युग में नारी शिक्षित और जागरूक है। वह रोजगार के अवसर पाकर आत्मनिर्भर बन जाती है। लेकिन समाज उसकी योग्यता व आत्मनिर्भरता पर तरह-तरह के सवाल खड़े करता है। उस पर आरोप लगाता है। उसे केवल हेय दृष्टि से देखता है। पुरुष नारी को अपने समक्ष पाकर अपनी ही सत्ता के लिए खतरा मानता है, लेकिन उपन्यास में नारी को अपनी समस्याओं से जूझते हुए आत्मनिर्भरता के लिए संघर्षरत दर्शाया गया है। वह आर्थिक समस्याओं का सामना बड़े ही साहस और धैर्य के साथ करती है और अंत में अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेती है।

घर की बेटी जिसे उसके प्रेमी अकेला छोड़कर चले जाते हैं। एक बार उसकी शादी भी टूट जाती है, कारण था बेटी के भाई व पिता का आर्थिक सहयोग न मिल पाना। इसलिए वह बेचारी अकेली रह जाती है और उसके पास पैसे भी नहीं होते। घर वह इसलिए नहीं जाना चाहती क्योंकि वह अपनी मर्जी से आई थी और अब उसे अकेले ही संघर्ष करना था। वह एक जर्नलिस्ट थी। कभी-कभी उसका भाई उसको इक्का-दुक्का किताबों की बिक्री करवा देता था। उसके कपड़ों की हालत देखकर अंदाजा लगाया जा सकता था कि उसकी हालत इतनी खस्ता थी, लेकिन उसने संघर्ष जारी रखा और वह कामयाब हो गई।

''हमदर्दी हवा नहीं हुई पर विस्तृत जरूर हुई, जब पत्रिकाएँ, अखबार इस बहन और बेटी के फोटो छापने लगे और टेलीविजन भी साक्षात्कार दिखाने लगे। उसके मशवरों के चर्चे छेड़ते थे कि नारी चेतना, लिंगभेद, फीमेल ऑर्गेज़्म, ऊलजलूल, हाय हाय। हमदर्दी के और गड़बड़ाने के दिन आए जब बेचारी ने अच्छे बड़ों के मोहल्ले में बड़ा फ्लैट खरीद लिया और टीवी, माइक्रोवेव, गाड़ी भी। पता चला आए रोज हवाई अड्डे जा रही है या कहीं से आ रही है और देश-विदेश घूमती है। कुछ घर में दबी जुबान में छिड़ी कि आजकल यह हथकंडे सही, गलत, पैसे और नाम कमाने के, नेटवर्किंग आनी चाहिए और औरत हो, कम उम्र तो..... तो..... तो..... और तो।''[8]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि उपन्यास में आत्मनिर्भर बनने के लिए बेटी संघर्षरत रहती है, लेकिन फिर भी उसे गलत समझा जा सकता है, क्योंकि वह एक नारी है।

7. भोगवाद के प्रति नारी संघर्ष –

समाज में नारी को भोग व प्रदर्शन की वस्तु के रूप में देखा जाने लगा है। चाहे समाज का कोई भी क्षेत्र हो, उसे धर्म, संस्कृति के आधार पर अनेक पाखंडियों के धोखे का शिकार होना पड़ता है। मीडिया जो लोकतंत्र का चौथा स्तंभ माना जाता है। आज नारी को अंग प्रदर्शन के लिए प्रयोग कर रहा है। नारी सौंदर्य की वस्तु बनकर रह गई है। परिवार में वह पुरुषवादी सश्रा के कारण शोषित हो रही है। हर स्थान पर वह पुरुष की हवस का शिकार हो रही है।

'रेत समाधि' उपन्यास में लेखिका ने इसी प्रकार की पुरुष मानसिकता के प्रति संघर्ष करती नारी का चित्रण है। परिवार की बेटी, जिसका प्रेमी है केके, वह बार-बार कोशिश करता है बेटी का उपभोग करने की लेकिन वह बड़ी ही समझदारी से काम लेती है।

''बेटी को उसके होंठ सूखे, चिपचिपे लगे। हटो, उसने केके को धकेला। कोई आ जाएगा।
बिल्ली, चूहा, कौवा केके ने उसे चटाई पर लुढ़का दिया।
अम्मा..... उसने कहने की कोशिश की।
अंदर छुपी है? केके के हाथों में मस्ती, जबान पे मजाक।
वह सब जगह हैं, बेटी का तन बोला पर स्वर फूटा, हटो

कहीं वो लौट आएँ।

केके उस पर झुका। उसने मुँह जो हँसता सा, खोला कि लार की एक लंबी धार वहाँ से बेटी के चेहरे पर चू गई। ऐसी रेशेदार कि चाहो तो उँगली पर धागे की तरह लपेट लो।'' [9]

इसी प्रकार केके कई बार उसके साथ गलत व्यवहार करता है और उसे अपनी वासना का शिकार बनाना चाहता है, लेकिन बेटी अपने आपको बचाने में कामयाब हो जाती है। पुरुष को अपनी यह मानसिकता बदलनी होगी क्योंकि नारी भी तो समाज की एक मानवीय इकाई है। उसे भी स्वतंत्र व स्वछंद जीवन जीने का अधिकार है।

जब अम्मा जैसी अनेक लड़कियों का पाकिस्तानी सांप्रदायिक दंगों के दौरान अपहरण करके गाड़ियों में डाल कर ले जाया जा रहा था, तो वहाँ भी पुरुष की हैवानियत स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

''कौन थे? बहसते सारी हिंदू कहानियाँ आपकी? ये तो हम पर जुल्म। ठहाके फूटे। दो चार इधर करो, मेहरबानो। और ठहाके लगे। चारों बड़ी फुर्सत की जगह पा गए हो। अम्मा कुछ लम्हें हमें भी गुजारने दो।'' [10]

सभी लड़कियाँ मौका पाकर इनसे बच निकली, लेकिन रेत के बवंडर में ज़िंदगी की आखिरी सांस तक संघर्ष करती हुई, वहीं अपनी जान गवाँ बैठी। लेकिन अम्मा रोज़ी और अपने प्राण बचाने में कामयाब हो गई।

निष्कर्ष –

इस प्रकार स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि समाज की पितृसत्तात्मक व्यवस्था के कारण नारी को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। समाज की पुरुषवादी सत्ता, चाहे दिखावे के लिए कितनी भी उदारता दिखाए लेकिन वह वास्तविक रूप से स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व के लिए खतरा है। नारी को स्वयं अपने अस्तित्व, सामाजिक भागीदारी व संघर्ष को साबित कर एक नया इतिहास रचना ही होगा। किसी भी उन्नत राष्ट्र की संकल्पना बिना स्त्री के अधूरी है। 'रेत समाधि' उपन्यास में लेखिका ने नारी की इसी जागरूकता का परिचय दिया है कि भले ही समाज में उसके सामने पितृसत्ता के कारण अनेक समस्याएँ उभर कर आती है लेकिन अपनी सीमाओं और रूढ़िवादी परंपराओं को लाँघकर वह अपनी बुद्धि और विवेक से उनका सामना करने का साहस रखती है, यही वास्तविक नारी शक्ति है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- गीतांजलि श्री, 'रेत समाधि', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2018
- (डॉ.) यश गुलाटी, 'कविता और संघर्ष चेतना', इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, के 71, कृष्ण नगर, दिल्ली 110001
- (संपादक) (बाबू) श्यामसुन्दर दास, हिन्दी शब्द सागर, द्वितीय खण्ड, काशी नागरी प्रचारिणी सभी, संस्करण-1928

सन्दर्भ सूची –

1. डॉ. यश गुलाटी, कविता और संघर्ष चेतना, पृष्ठ संख्या-11
2. श्याम सुन्दर, हिन्दी शब्द सागर, दूसरा खण्ड, पृष्ठ संख्या – 1028
3. गीतांजलि श्री, 'रेत समाधि', उपन्यास, पृष्ठ 18
4. गीतांजलि श्री, 'रेत समाधि', उपन्यास, पृष्ठ 201
5. गीतांजलि श्री,'रेत समाधि', उपन्यास, पृष्ठ 125
6. गीतांजलि श्री, 'रेत समाधि', उपन्यास, पृष्ठ 248
7. गीतांजलि श्री, 'रेत समाधि', उपन्यास, पृष्ठ 262
8. गीतांजलि श्री, 'रेत समाधि', उपन्यास, पृष्ठ 209
9. गीतांजलि श्री, 'रेत समाधि', उपन्यास, पृष्ठ 209
10. वही, पृष्ठ 302

ISSN 2278 - 0327

संस्कृतशिक्षण हेतु तन्त्रयुक्तियों का रचनावादी निहितार्थ

डॉ. नितिन कुमार जैन
सहायकाचार्य, शिक्षाशास्त्र
केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, भोपाल परिसर, भोपाल

प्रदीप कुमार
शोधच्छात्र, शिक्षाशास्त्र
केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, भोपाल परिसर, भोपाल

शोध सारांश

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020) के अनुसार लक्ष्य हमारे देश का विकास और अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति है। भारत की परम्पराओं और सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षणार्थ इस इक्कीसवीं शताब्दी की शिक्षा के लिए आकाङ्क्षात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति अपेक्षित है। यह नीति सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था में परिष्कार एवं पुनर्घटन का प्रस्ताव देती है। स्पष्ट रूप से इसका इक्कीसवीं सदी की शिक्षा के आकांक्षात्मक लक्ष्यों के साथ मेल तो बिठाया ही जा सके, साथ ही इसे प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा और सांस्कृतिक मूल्यों की विरासत की नींव पर समृद्ध भी बनाया जा सके।

स्पष्ट रूप से भारतीय समाज के विकास के लिए भारतीय भाषाओं के विकास के पक्षों को सम्मिलित किया जाता है, और जब संस्कृत भाषा के विषय में हम चिन्तन करते हैं, तो इसके विपुल और जीवनपक्षों की सर्वग्राही दृष्टि के विषय अत्यंत व्यापक हो जाता है। संस्कृत एक प्राचीनतम भाषा होते हुए भी, वर्तमान में यह आधुनिक भाषा है, और इसका शिक्षण वस्तुत: भारतीयता का शिक्षण है। यह केवल एक भाषा का शिक्षण ना होकर, समग्र जीवनशैलियों का शिक्षण है। जीवन के आचार और विचार जहां सरल रूप से शिक्षित किये जा सके, या उनका शिक्षण किया जा सके, माध्यम संस्कृत शिक्षण ही है। संस्कृत शिक्षण भाषा शिक्षण नहीं है, बल्कि यह भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्वों से परिचय प्राप्ति का और इन तत्वों के संरक्षण का सरल उपाय भी है। यदि संस्कृत शिक्षण संस्कृताश्रित साहित्य में वर्णित युक्तियों से किया जाएं तो यह अधिक भारतीय ज्ञान प्रणाली के अनुकूल होगा - यही विचार इस आलेख का तर्काधार है।

मुख्य बिन्दु - संस्कृत शिक्षण, तन्त्रयुक्ति, रचनावाद

प्रास्ताविक

वस्तुत: भारतीय ज्ञान परम्परा अद्वितीय ज्ञान का भण्डार है। यहाँ ज्ञान-विज्ञान की, लौकिक एवं पारलौकिक तत्त्वों की, भारतीय कर्म एवं धर्म सम्बद्ध अवधारणाओं का विशिष्ट समन्वय है। प्राचीन सनातन भारतीय ज्ञान एवं विचार की समृद्ध परम्पराओं के आलोक में नवीन राष्ट्रीय शिक्षा नीति निर्मित की गयी। नव तत्त्वों का अन्वेषण भारतीय विचार परम्परा में सदैव सर्वोच्च लक्ष्य की तरह माना गया है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020) के अनुसार 2040 पर्यन्त भारत की विशिष्ट शिक्षा प्रणाली का लक्ष्य माना गया है और जो आगामी काल में सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली का आधार होगी। ऐसी विशिष्ट शिक्षा व्यवस्था, जहाँ सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से सभी शिक्षार्थियों के लिए समान गुणवत्तायुक्त शिक्षा उपलब्ध होगी। नए समय की नई आवश्यकताओं के सन्दर्भ में यह प्रथम शिक्षा नीति है, जिसका लक्ष्य हमारे देश का विकास और अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति है। भारत की परम्पराओं और सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षणार्थ इस इक्कीसवीं शताब्दी की शिक्षा के लिए आकाङ्क्षात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति अपेक्षित है।

इस नीति में विशेष रूप से भारतीय ज्ञान प्रणाली और तत्सम्बद्ध विभिन्न आयामों के विषय में छात्र-छात्रा के मध्य संस्कृत आदि भारतीय भाषाओं के प्रति रुचि एवं सकारात्मक अभिवृत्ति उत्पादन के लिए, सतत संरक्षण के लिए, और क्षेत्र भ्रमण एवं लघु परियोजना आदि पद्धतियां विशिष्ट होती हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020) सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था में परिष्कार एवं पुनर्घटन का प्रस्ताव देती है। स्पष्ट रूप से इसका इक्कीसवीं सदी की शिक्षा के आकांक्षात्मक लक्ष्यों के साथ मेल तो बिठाया ही जा सके, साथ ही इसे प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा और सांस्कृतिक मूल्यों की विरासत की नींव पर समृद्ध भी बनाया जा सके। शिक्षा नीति कहती है कि दुनिया के विभिन्न विकसित देशों के अनुभवों से यह स्पष्ट हो चुका है कि अपनी भाषा, संस्कृति और परंपराओं में सुशिक्षित होने से हानि नहीं बल्कि शैक्षिक, सामाजिक और तकनीकी उन्नति के लिए लाभ ही मिला है।

इसी संदर्भ में, राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 ने भारत के सभी छात्र-छात्राओं द्वारा अच्छे, सफल, मौलिक सोच वाले, परिस्थिति अनुकूल और रचनाशील व्यक्ति बनने के लिए जिन मुख्य विषयों, कौशलों व क्षमताओं को आवश्यक माना है उसमें 'भारत का ज्ञान' एक मुख्य विषय है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति - 2020, 'भारत के ज्ञान' को परिभाषित करते हुए कहती है कि भारत के ज्ञान' में प्राचीन भारत से प्राप्त ज्ञान और आधुनिक भारत और इसकी सफलताओं और चुनौतियों में इसके योगदान के साथ ही शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण आदि के संबन्ध में भारत की भविष्य की आकांक्षाओं का एक स्पष्ट भाव शामिल होगा।

भारत की शास्त्रीय भाषाओं और साहित्य के महत्त्व, प्रासंगिकता और सुंदरता को भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। संस्कृत, एक महत्त्वपूर्ण आधुनिक भाषा होते हए भी, इसका शास्त्रीय साहित्य इतना विशिष्ट है कि सारे लेटिन और ग्रीक साहित्य को भी यदि शामिल इसकी तुलना की जाए तो भी इसकी बराबरी नहीं कर सकता। संस्कृत साहित्य में गणित, दर्शन, व्याकरण, संगीत, राजनीति, चिकित्सा, वास्तुकला, धातु विज्ञान, नाटक, कविता, कहानी, और बहुत कुछ (जिन्हें 'संस्कृत ज्ञान प्रणालियों' के रूप में जाना जाता है), के विशाल खजाने हैं।

'भारत का ज्ञान' में आधुनिक भारत और उसकी सफलताओं और चुनौतियों के प्रति प्राचीन भारत का ज्ञान और उसका योगदान शामिल होगा, और शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण, आदि के संबंध में भारत की भविष्य की आकांक्षाओं की स्पष्ट भावना शामिल होगी। इन तत्त्वों को पूरे स्कूल पाठ्यक्रम में जहाँ भी प्रासंगिक हो वहाँ वैज्ञानिक तरीके से और एक सटीक रूप से शामिल किया जाएगा। विशेष रूप से भारतीय ज्ञान प्रणाली को आदिवासी ज्ञान एवं सीखने के स्वदेशी और पारंपरिक तरीकों सहित कवर किया जाएगा और गणित, खगोल विज्ञान, दर्शन, योग, वास्तुकला, चिकित्सा, कृषि, इंजीनियरिंग, भाषा विज्ञान, साहित्य, खेल के साथ-साथ शासन, राजव्यवस्था, संरक्षण, आदि विषयों में शामिल किया जाएगा।

मनुष्य के संपूर्ण विकास का आधार भाषा है। मनुष्य जिस समाज में और संस्कृति में निवास करता है, वहाँ किसी भाषा के माध्यम से सर्वदा लोकव्यवहारों को संपादित करता है। अपने समाज में रहते हुए कोई व्यक्ति सामाजिक तभी होता है, जब वह समाज की विशिष्ट परंपराओं और अनुकूल जीवनशैलियों को भाषा के द्वारा ग्रहण करता है। भाषा अत्यंत व्यापक संप्रत्यय है। जब संस्कृत भाषा के विषय में हम चिन्तन करते हैं, तो इसके विपुल और जीवनपक्षों की सर्वग्राही दृष्टि के विषय अत्यंत व्यापक हो जाता हैं।

संस्कृतशिक्षण और रचनावाद

संस्कृत एक प्राचीनतम भाषा होते हुए भी, वर्तमान में यह आधुनिक भाषा है। संस्कृत एक अद्वितीय भाषा है, जिसमें भारतीय ज्ञान परंपराएं मूल रूप से अंतर्निहित हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा प्रधान रूप से संस्कृत माध्यम या संस्कृत भाषा पर आश्रित मानती है। संस्कृत भाषा की प्रकृति और महत्त्व सर्वोपरि है। सर्वविदित है कि भारतीय ज्ञान परम्पराओं के सन्दर्भ संस्कृत भाषा के शिक्षण की अत्यंत आवश्यकता है। भारतीय जीवन के भौतिक और आध्यात्मिक दोनों - पक्षों का समावेश संस्कृत भाषा में निबद्ध ग्रंथों में सहज रूप से हुआ है, इसीलिए प्राथमिक कक्षा से लेकर उच्चस्तरीय शोध अध्ययन पर्यंत संस्कृत भाषा का पाठ्यचर्या में निःसंदेह एवं सहज स्वीकृत स्थान है।

संस्कृत शिक्षण वस्तुतः भारतीयता का शिक्षण है। यह केवल एक भाषा का शिक्षण ना होकर, समग्र जीवनशैलियों का शिक्षण है। जीवन के आचार और विचार जहां सरल रूप से शिक्षित किये जा सके, या उनका शिक्षण किया जा सके, माध्यम संस्कृत शिक्षण ही है। संस्कृत शिक्षण भाषा शिक्षण नहीं है, बल्कि यह भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्वों से परिचय प्राप्ति का और इन तत्वों के संरक्षण का सरल उपाय भी है। बौद्धिक-मानसिक विकास, ज्ञान-कलात्मक पक्षों का विकास, सांस्कृतिक पक्षों का विकास, व्यावसायिक और अन्य भौतिक अध्यात्मिक पक्षों में मनुष्य के विकास के लिए संस्कृत शिक्षण एक अनिवार्य और उपयोगी उपाय है।

रचनावाद शब्द नया होते हुए भी इसका अर्थ बड़ा स्पष्ट और सामान्य है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी स्मृति और अपनी भाषा का उपयोग करते हुए अपने ज्ञानप्रक्रिया को स्वयं निर्धारित करता है, ज्ञान की प्राप्ति करता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने अनुभवों का उपयोग करते सीखता है। ये अनुभव ही सीखने की प्रक्रिया में सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस दृष्टि से प्रत्येक अनुभव आगामी अनुभव की आधारशिला होता है। ये अनुभव यदि वैयक्तिक पृष्ठभूमि से युक्त है, तो निश्चित ही अधिगम-प्रक्रिया भी वैयक्तिक हो जाती है। वर्तमान शिक्षणविधियों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि विद्यार्थियों के सामर्थ्य का वैसा उपयोग नहीं किया जाता, जैसा हम कर सकते हैं। इसका कारण विद्यार्थियों के सामर्थ्य के प्रति अध्यापकों की अंतर्दृष्टियों और स्वीकृतियों का अभाव ही है। परंपरागत शिक्षण जहां निश्चित अधिगम या शिक्षणशैलियों/

पद्धतियों की बात करता है, वहाँ रचनावाद शिक्षक के समान विद्यार्थियों को ज्ञान का अद्वितीय स्रोत मानता है।

जहाँ पूर्व में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली संस्कृतनिष्ट अधिक है, वहाँ यह भी समझना उपयोगी होगा कि भारतीय साहित्य में शिक्षणशास्त्रीय तत्त्वों का परिचय प्राप्त होता है। मुख्य रूप से आयुर्वेद ग्रंथों, विष्णुधर्मोत्तरपुराण, कौटिल्य अर्थशास्त्र आदि ग्रन्थों में इन शिक्षणविधियों के तन्त्रयुक्ति कहा गया है। इन तन्त्रयुक्तियों का उपयोग संस्कृत शिक्षकों के लिए भी महत्त्वपूर्ण है। तन्त्रयुक्तियों में आधुनिक रचनावाद की भी अवधारणाएं स्वीकार की जाती है। यहाँ तीन मुख्य अवधारणाएं हैं – अनुभव, परिस्थिति और अंत: क्रिया।

इन तीन महत्त्वपूर्ण अवधारणायों को ध्यान में रखते हुए विभिन्न तन्त्रयुक्तियों में अन्तर्निहित रचनावाद को समझ सकते हैं। यदि हम कुछ युक्तियों का विश्लेषण इस आधार पर करें कि इनमें किस प्रकार अनुभव, परिस्थिति और अन्त:क्रिया – इन तीन तत्त्वों का उपयोग होता है। तब हम स्पष्ट रूप से समझ जाएंगे रचनावाद के कुछ मुख्य अंश, अपेक्षाएं या निर्धारित स्थितियां महत्त्वपूर्ण हैं–

1. विद्यार्थी की स्मृति और अनुभवों का उपयोग करना।
2. भाषा के रचनात्मक स्वरूप का उपयोग करना।
3. संवाद या विचार–विश्लेषण करना।
4. ज्ञाननिर्माण की प्रक्रिया को अधिक स्वायत्त बनाना

रचनावाद की दृष्टि से संस्कृत शिक्षण की विभिन्न विधियों पर चर्चा करते हुए हमें यह समझना होगा कि प्रत्येक विधि में इन महत्त्वपूर्ण तत्त्वों का स्थान होना चाहिए। यदि किसी विधि में इस प्रकार से परिवेश का निर्माण किया जाए, तो वह रचनात्मक शिक्षण विधि कही जा सकती है।

तन्त्रयुक्ति और रचनावादी निहितार्थ

हेत्वर्थ:– *यदन्यदुक्तमन्यार्थसाधकं भवति स हेत्वर्थ:।*

- एक के आधार पर दूसरे के सम्बन्ध में विवरण करना, यथा महाभारत/रामायण के एक दृश्य के आधार पर अन्य कथा का विवरण, यथा यह करने योग्य है, अर्थात् अन्य कार्य करने योग्य नहीं हैं ।
- इस युक्ति में विद्यार्थियों की भाषा, श्रुत विषयवस्तु एवं स्मृतियों का उपयोग होता है।

निर्देश: – *विस्तरवचनं निर्देश:।*

- विस्तारपूर्वक कथन करना और उद्देश्य (संक्षिप्त कथन) का विस्तार करना और किसी सूक्ति या उद्देश्य का विस्तार करना।
- इस युक्ति में विद्यार्थियों की भाषा का विस्तार होता है।

प्रसङ्ग: – *प्रकारान्तरेण समापनं प्रसङ्ग:। यद्वा, प्रकरणान्तरितो योऽर्थोऽसकृतदुक्त: समाप्यते स: प्रसङ्ग:।*

- अन्य सन्दर्भ में उक्त वचन या प्रस्तुत विवरण उद्धृत करना।
- इस युक्ति में विद्यार्थियों की स्मृतियों और कल्पनाओं का उपयोग होता है।

उपमानम् – *दृष्टेनादृष्टस्य साधनमुपमानम्।*

- हेतुयुक्त कथन से अन्य कथनों की उपपत्ति करना।
- इस युक्ति में विद्यार्थियों की भाषा, तर्कशीलता एवं स्मृतियों का उपयोग होता है।

निर्दर्शनम् – *दृष्टान्तव्यक्तिर्निर्दर्शनम्।*

- दृष्टान्त या उदाहरण के माध्यम से किसी विषय को स्पष्ट करना।
- इस युक्ति में विद्यार्थियों की कल्पनाशीलता एवं स्मृतियों का उपयोग होता है।

योग: –

- वाक्यगत अथवा श्लोकगत पदों की अर्थ की दृष्टि से समुचित योजना करना और पदों की योजना करना।
- इस युक्ति में विद्यार्थियों की भाषा की अपनी प्रयोगशीलता और कल्पनाओं का उपयोग होता है।

प्रदेश: – *प्रकृतस्य अतिक्रान्तेन साधनं प्रदेश:।*

- अतीत एवं पूर्वकाल में धटित घटना के आधार पर वर्तमान की व्याख्या या समर्थन करना।
- इस युक्ति में विद्यार्थियों की तार्किक क्षमता, स्मृतियों और कल्पनाओं का उपयोग होता है।

वाक्यशेष:– *येन पदेन अनुक्तेन वाक्यं समाप्यते स: वाक्यशेष: ।*

- वाक्य में अनुक्त या अप्रयुक्त पदों का ग्रहण करना।
- इस युक्ति में विद्यार्थियों की स्मृतियों और कल्पनाओं का उपयोग होता है।

अर्थापत्ति: – *यदकीर्तितम् अर्थादापद्यते सार्थापत्ति:। 'न नक्तं दधि भुञ्जीत।'*

- कथित विषय से अकथित विषय का उपपन्न होना।
- इस युक्ति में विद्यार्थियों की आनुमानिक क्षमताओं एवं स्मृतियों का उपयोग होता है।

पूर्वपक्ष: – *आक्षेपपूर्वक: प्रश्न: पूर्वपक्ष:।*

- आक्षेप या शंका के साथ प्रश्न करना।
- इस युक्ति में विद्यार्थियों की जिज्ञासा, उत्सुकताभाव एवं

कल्पनाओं का उपयोग होता है।

निर्णय: – *तस्योत्तरं निर्णय:।*

- पूर्वपक्ष में उपस्थित शंका का समाधानात्मक उत्तर देना, किसी विषय का पहले अन्यान्य दृष्टियों से विवेचन करके पुन: उसके सम्बन्ध में संक्षेप निर्णयात्मक कथन करना और पूर्वोक्त विवेचन की निश्चित व्याख्या या संगति बैठाना।
- इस युक्ति में विद्यार्थियों की समस्या-समाधान क्षमता एवं कल्पनाओं का उपयोग होता है।

तन्त्रयुक्तियों में रचनावादिता का प्रथम प्रतिबिम्ब यह है कि विद्यार्थियों की स्मृति, भाषा, चिन्तनशीलता, तर्कशीलता आदि वैयक्तिक मनोवैज्ञानिक तत्त्वों का उपयोग होता है। विशेष रूप से वैयक्तिक रचनावादी या संज्ञानवादी पियाजे की अधिगम-अवधारणाओं का साम्य यहाँ होता है। इन तन्त्रयुक्तियों द्वारा शिक्षण में विद्यार्थियों की संवादशीलता या साझा समझ का विकास – एक माध्यम भी है और एक लक्ष्य भी। इस दृष्टि से व्योगोत्स्की के सामाजिक रचनावाद के अर्थों एवं तात्पर्यों को हम समझ सकते हैं।

उपसंहार

संस्कृत शिक्षण विद्यालय पाठ्यचर्या में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। नई शिक्षा नीति में भारतीय ज्ञान प्रणाली के विकास का और इस प्रणाली के आधार पर पाठ्यचर्या विकास का संप्रत्यय प्रस्तुत किया गया है। इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि भारतीय चिंतन परंपरा में जो साहित्य लिखा गया और आज हमें जो उपलब्ध है, उस साहित्य का अनुशीलन हमें शिक्षणशास्त्र की दृष्टि से भी करना चाहिए। यह एक आधार हो सकता है कि शिक्षणशास्त्र को अधिक से अधिक भारतीय दृष्टि से अनुकूल बनाने के लिए यह भारतीय ज्ञान प्रणाली अनुसन्धेय विषय है। उदाहरणार्थ आयुर्वेद, पुराण और अर्थशास्त्र आदि का अवलोकन या अनुशीलन, शिक्षणशास्त्रीय दृष्टि से उपयोगी है। इसी दृष्टि से इनके आधार पर कुछ विशिष्ट तन्त्रयुक्तियों का परिचय यहाँ दिया गया है। इससे यह ज्ञात हो सकता है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली में सिर्फ ज्ञान की चर्चा ही नहीं है, बल्कि ज्ञान के सम्प्रेषण या संक्रान्ति के विषय में भी कुछ पाठ्यवस्तु प्राप्त होती है।

एक और विशेष ध्यातव्य बिंदु यह है कि इन तन्त्रयुक्तियों का प्रयोग केवल संस्कृत विषय के शिक्षण के लिए ही नहीं, यदि प्रयोगधर्मिता और रचनाधर्मिता से कार्य लिया जाए तो इन विधियों के उपयोग के द्वारा गणित, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान या अन्य भारतीय भाषाओं का शिक्षण भी संभव है। इसके लिए व्यवस्थित प्रतिमान विकसित किए जाने की आवश्यकता है। इनके आधार पर विशेष रूप से न्याय, मीमांसा और जैन-बौद्ध न्याय परम्परा के आधार पर शिक्षण प्रतिमान विकसित किए जा सकते हैं, जो प्राथमिक, माध्यमिक या उच्चशिक्षा के स्तर पर उपयोगी हो सकता है। भारतीय ज्ञान परम्परा को भारतीय शिक्षण विधियों के द्वारा संप्रेषित किया जा सकता है। निश्चित ही संस्कृत शिक्षण पाठ्यचर्या में एक अनिवार्य स्थान रखता है और संस्कृत भाषा में निबद्ध साहित्य में वर्णित युक्तियों का उपयोग बड़ा समन्वित होगा। इस दृष्टि से आधुनिक परिप्रेक्ष्य में जिस शिक्षणशास्त्रीय विचारधाराओं की चर्चा सर्वाधिक होती है, उस रचनावाद की दृष्टि से भी इन तन्त्रयुक्तियों की सिद्धता अनुभव की जा सकती है।

सन्दर्भ-

- गुलाटी, सुषमा. (संपा.) (2009). सर्जनात्मकता के लिए शिक्षा. नई दिल्ली: राष्ट्रिय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद.
- शर्मा, सिंहश्च. (2008). संस्कृतशिक्षणम् – नवीनप्रविधयश्च. जयपुरम् : आदित्यप्रकाशनम्,
- Kolb, D. (1984) *Experiential Learning: Experience as the Source of Learning and Development.*Englewood Cliffs, NJ: Prentice Hall.
- Kagan, S. (1995).*We Can Talk: Cooperative Learning in the Elementary ESL Classroom* in *ERIC Digest*:
- Herris, J. &Duibhir, P O. (2011).*Effective Language Teaching: A Synthetic of Research.* Dublin: NCCA.

ISSN 2278 - 0327

भारत में सतत विकास की आवश्यकता एवं रणनीति

रवींद्र कुमार
प्रवक्ता, भूगोल विभाग
बख़्शी का तालाब इंटर कॉलेज, लखनऊ
उत्तर प्रदेश, भारत

सुलेमान
शोधार्थी, भूगोल विभाग
ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती भाषा विश्वविद्यालय
लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश–

सतत विकास की संकल्पना भारतीय संस्कृति का प्राण तत्व रही है तभी तो प्राचीन काल से लेकर आज तक प्राकृतिक तत्वों जैसे पीपल, बरगद, नीम, तुलसी आदि पौधों, सूर्य, जल, वायु, अग्नि आदि तत्वों, पर्वतों, नदियों आदि को देवता की तरह पूजा जाता है। गरीबों, असहाय लोगों आदि की सहायता करना अत्यंत पुण्य का कार्य माना जाता है। कम से कम आवश्यकता में अपना जीवन चलाना भारतीय संस्कृति का आदर्श गृहस्थ जीवन है। फिर भी आज जब भारत में जनसंख्या तेजी से बढ़ रही हैं और यह दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा जनसंख्या वाला देश बन गया है तब संसाधनों की सीमितता सर्वत्र दिखने लगी है ऐसी स्थिति में सतत विकास भारत के लिए एक अति आवश्यक विचार बन गया है। इस लेख में सर्वप्रथम सतत विकास के विचार को सरलतम रूप में समझाया गया है। भारत एवं विश्व में सतत विकास के इतिहास की भी संक्षिप्त जानकारी दी गई है। पुन: भारत में सतत विकास का विचार किस लिए आवश्यक है इसके ऊपर आंकड़ों के साथ विस्तार से चर्चा की गई है। पुन: भारत सरकार द्वारा एवं यहां के अनेक स्वयंसेवी संगठनों द्वारा सतत विकास की अवधारणा को साकार करने हेतु जो प्रयास किए जा रहे हैं उन पर प्रकाश डाला गया है। भविष्य में सतत विकास के शोध के विभिन्न आयामों को भी समझाया गया है। इस प्रकार यह लेख सतत विकास की भारतीय संदर्भ में आवश्यकता और उसके लिए भारत की रणनीति को अच्छी तरह समझाता है। यह जिज्ञासु जनों के साथ-साथ विद्वत जनों एवं शोधार्थियों के लिए अत्यंत ही उपयोगी है।

इस शोधपत्र को लिखने के पूर्व हमने सतत विकास संबंधी अनेकों पुस्तकों, लेखों एवं पत्रों का अध्ययन किया। भारत में इसकी आवश्यकता एवं भारत द्वारा किए जा रहे प्रयासों के विश्लेषण के उपरांत इस लेख को लिखा है। आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि यह शोध लोगों के लिए अत्यंत ही उपयोगी होगा।

मुख्य शब्द– सतत विकास, आर्थिक विकास, मानव, पर्यावरण, औद्योगीकरण, संसाधन, भारत, जनसंख्या

प्रस्तावना–

सतत विकास विकास की अवधारणा वह विचार है जिसमें वर्तमान समय की आवश्यकता को पूरा करने के साथ-साथ भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखा जाता है और यह प्रयास किया जाता है कि जिन संसाधनों का उपयोग हम कर रहे हैं हमारी आने वाली पीढियां भी उन संसाधनों का उपयोग अच्छे से कर पाएं ताकि उनका जीवन हमारे जीवन से और बेहतर हो सके।

संसाधनों का न्यायोचित विदोहन और प्रकृति को बिना क्षति पहुंचाएं उसका उपयोग करना। वास्तव में यही सतत विकास की मूल संकल्पना है। यह तभी संभव है जब हम प्रकृति से लिए गए संसाधनों की क्षतिपूर्ति भी करते रहे। उदाहरण के लिए यदि अपनी आवश्यकता के लिए जब भी हम एक वृक्ष काटे तो कम से कम दो वृक्ष और लगाएं। जिसमें से एक वृक्ष से हमारे द्वारा काटे गए पेड़ की भरपाई के और दूसरे वृक्ष से भावी पीढ़ियों के लिए संसाधन का प्रबंध होगा। वास्तव में यही सतत विकास की संकल्पना है।

सतत विकास की अवधारणा–

सतत विकास विकास की ऐसी अवधारणा है जिसमें प्राकृतिक संसाधनों को इस प्रकार से उपयोग करने की प्रवृति पर बल दिया जाता है जिससे बिना प्रकृति को नुकसान पहुंचाए हम अपना विकास कर सकें और आने वाली पीढ़ी भी उनका उपयोग अपनी आवश्यकता की पूर्ति हेतु कर पाए। अनेक विद्वानों ने सतत विकास को अपने-अपने ढंग से परिभाषित करने का प्रयत्न किया है जिनमें प्रमुख विचारों का हम यहां पर उल्लेख कर रहे हैं।

ब्रैटलैंड आयोग ने सतत विकास को सर्वप्रथम परिभाषित करते हुए लिखा कि- 'सतत विकास वह विकास है जो भविष्य की पीढ़ियों की आवश्यकता की क्षमता से समझौता किए बिना वर्तमान पीढ़ियों की आवश्यकता को पूरा करता है। (*Sustainable development is a development that means the needs of the present without compromising the ability of future generations to meet their own needs.*)

वेंडर-मरवे और वाडर मरवे (1999) के अनुसार 'सतत विकास एक ऐसा कार्यक्रम है जो आर्थिक विकास की प्रक्रिया को इस प्रकार परिवर्तित करता है कि महत्वपूर्ण परितंत्र को भावी पीढ़ियों हेतु संरक्षित रखते हुए वर्तमान की जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि करता है। (*Sustainable development is a program that changes the economic development process to ensure the basic quality of life] protecting valuable ecosystem and other communities at the same time.*)

सतत विकास का इतिहास-

भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल से ही सतत विकास की अवधारणा को अपने व्यवहार में समाहित किया गया है इस कारण प्रकृति को ईश्वर की तरह पूजा जाता है। प्राचीन काल से ही देश में कुएं खुदवाने, तालाब खुदवाने आदि को को अत्यंत पवित्र एवं परोपकारी कार्य माना जाता है इसीलिए धनवान लोग इस तरह के कार्य स्वयं से ही किया करते थे और जहां पर पानी की समस्या होती थी वहां पर वह कुएं, बावली या तालाब खुदवाते थे, जिससे लोगों को आसानी से पानी उपलब्ध हो सके। इसका फायदा यह है कि जो जलस्रोत बनाए जाते हैं उनसे वर्षा जल का भूसंचरण होता है और भूमिगत जल का स्तर ऊंचा होता है। यही जल हमारे दैनिक आवश्यकताओं को पूरा करने का सबसे बड़ा स्रोत है। (*Maurya S.D. and Maurya R.K., 2018*)

भारतीय समाज में अन्नदान को महादान माना जाता है भूखे को भोजन, जिसके पास वस्त्र नहीं है उसको वस्त्र देने, जिसके पास आश्रय नहीं उसे आश्रय देना भारतीय संस्कृति का अत्यंत ही पुण्य कार्य माना जाता है।

जीवों के प्रति दया एवं प्रेम भारतीय संस्कृति का सार तत्व है यहां पर गाय को माता के रूप में देखा जाता है और उसकी पूजा की जाती है। गाय से प्राप्त दूध, घी, गोबर, मूत्र और दही से पंचगव्य बनाया जाता है जो दुर्गा पूजा के अवसर पर प्रसाद के रूप में भगवान को अर्पित किया जाता है एवं स्वयं भी पिया जाता है। इसी तरह बिल्ली, कुत्ता, बैल, भैंस, गधा, घोड़ा, हाथी एवं ऊंट को लोगों द्वारा बड़े आदर के साथ पाला जाता है।

मितव्ययी होना भारतीय संस्कृति का मूल तत्व है तभी तो कबीर दास जी ने कहा था-

साईं इतना दीजिए जामे कुटुम्ब समाय।
आपहु भूखा न रहूं साधु न भूखा जाए।।

इन दो पंक्तियों में प्रकृति संरक्षण की भावना समाहित है जब कोई व्यक्ति या समाज मितव्ययी होता है तब वह अपनी कम आवश्यकता के कारण वह प्रकृति को संरक्षण देता है जिस कारण प्राकृतिक संसाधन का क्षय कम होता है और इस प्रकार सतत विकास की अवधारणा को अपने जीवन में साकार करता है।

पाश्चात्य संस्कृति में सतत विकास का विचार अपेक्षाकृत नवीन है। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जब अधिक जनसंख्या वृद्धि के कारण प्राकृतिक संसाधनों पर बोझ बढ़ने लगा और लोगों की आवश्यकताएं पूरी होने में कठिनाई होने लगी तथा औद्योगिक क्रांति के दुष्परिणाम स्वरूप पर्यावरण प्रदूषण, पारिस्थितिक असंतुलन, ओजोन रिक्तिकरण, प्रजाति विलुप्तता की समस्याएं उत्पन्न होने लगी तब अनेक विद्वानों का विचार सतत विकास की अवधारणा की ओर गया। (*Maurya S.D. and Maurya R.K., 2018*)

सतत विकास की अवधारणा का एतिहासिक संदर्भ

वर्ष	कार्य	विवरण
1969	संयुक्त राष्ट्र द्वारा Man and His Environment or Uthant Report का प्रकाशन	इस रिपोर्ट को लगभग 2000 वैज्ञानिकों ने तैयार किया था इसका उद्देश्य पर्यावरण अवनय को रोकना था।
1972	संयुक्त राष्ट्र और UNEP का प्रथम मानव–पर्यावरण सम्मेलन स्टाकहोम, स्वीडन में हुआ।	Only One Earth के नारे के साथ पर्यावरण सरंक्षण हेतु घोषणा पत्र एवं कार्य योजना का प्रकाशन
1975	UNESCO का पर्यावरण शिक्षा पर सम्मेलन, वेलग्रेड, यूगोस्लाविया	विश्व पर्यावरण शिक्षा का फ्रेमवर्क तैयार किया गया जो वेलग्रेड चार्टर के नाम से प्रसिद्ध है।
1975	मानव –पर्यावरण का अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन, क्योटो, जापान	विचार विमर्श हुआ
1979	प्रथम जलवायु सम्मेलन जिनेवा, स्वीटजरलैण्ड	जलवायु परिवर्तन पर शोध एवं नियंत्रण की स्थायी व्यवस्था का निर्माण

1981	अल्पविकसित देशों का प्रथम संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन	अल्पविकसित देशों के मापदण्ड एवं सहायता हेतु एक रिपोर्ट का प्रकाशन
1984	संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण एवं विकास आयोग की स्थापना (WCED)	विश्व के विकसित एवं विकासशील देशों के मध्य सहायता एवं विश्व पर्यावरण संरक्षण की वैश्विक कार्य योजना तैयार करना
1987	WCED की रिपोर्ट Our Common Future अथवा ब्रांटलैण्ड रिपोर्ट का प्रकाशन	सतत विकास के मूल सिद्धांतो का प्रकाशन
1987	मल्टीपल प्रोटोकॉल का प्रकाशन	ओज़ोन परत पर होने वाले हानिकारक प्रभावों पर शोध एवं कार्य
1990	द्वितीय विश्व जलवायु सम्मेलन जिनेवा, स्वीटजरलैण्ड	जलवायु परिवर्तन पर शोध एवं नियंत्रण का वैश्विक नेटवर्क का निर्माण
1992	संयुक्त राष्ट्र का पर्यावरण एवं विश्व सम्मेलन, रियो सम्मेलन, ब्राज़ील	सतत विकास पर एजेंडा–21 की घोषणा एवं कार्य योजना पर निर्णय
1997	क्योटो जलवायु परिवर्तन सम्मेलन क्योटो, जापान	उपस्थित देशों ने क्योटो प्रोटोकॉल पर हस्ताक्षर किए। जिसमे 2005 तक CO2 एवं अन्य ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन मे कमी लाना था।
2000	संयुक्त राष्ट्र ने शताब्दी लक्ष्यों की घोषणा की	इस (MDGS) मे 8 सहताब्दी लक्ष्यों का निर्धारण किया जिन्हे 2015 तक पूरा करना था।
2002	सतत विकास पर विश्व समिति का आयोजन जोहान्सवर्ग, दक्षिण अफ्रीका	रियो सम्मेलन मे निर्धारित लक्ष्यों पर हुयी प्रगति की समीक्षा और भविष्य लक्ष्यों को समयावधि मे प्राप्त करने हेतु दिशा निर्देशों का निर्धारण
2009	तृतीय विश्व जलवायु सम्मेलन जिनेवा, स्वीटजरलैण्ड	भावी वैश्विक जलवायु परिवर्तनों की मानीटरिंग और निर्धारित समयावधि में पूर्ण करने पर सहमति
2012	संयुक्त राष्ट्रसंघ Rio+20 सम्मेलन रियो द जनेरियों, ब्राज़ील	रियो सम्मेलन के 20 वर्ष पूर्ण होने पर The future we want रिपोर्ट का नवनीकरण और वैश्विक हरित ऊर्जा उत्पादन को प्रोत्साहन
2015	संयुक्त राष्ट्र सतत विकास सम्मेलन, न्यूयार्क, U.S.A.	संयुक्त राष्ट्र द्वारा सतत विकास संबंधी एजेण्डा 2030 का प्रकाशन तक 17 गोल्स पाना है।
2015	संयुक्त राष्ट्र का जलवायु परिवर्तन सम्मेलन कोप–21 पेरिस, फ़्रांस	ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को कम एवं उनकी सीमा तय करने पर समझौता द्य

Source: (Tomislav Klarin, 2018)

भारत में सतत विकास की आवश्यकता–

भारत विश्व का एक महत्वपूर्ण देश है यह विश्व की दशा एवं दिशा को बदलने में सक्षम है। यहां एक विशाल आबादी का वास है, साथ ही पर्यावरण अवनयन, गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी आदि समस्याएं भी खड़ी हैं इसी कारण भारत में सतत विकास की आवश्यकता ही नहीं वरन अनिवार्यता है आइए हम कुछ महत्वपूर्ण बिंदुओं की चर्चा करते हैं जो भारत में सतत विकास की आवश्यकता को आवश्यक बनाते हैं।

1. जनसंख्या– भारत जनसंख्या की दृष्टि से विश्व का दूसरा सबसे बड़ा देश है जबकि प्रथम स्थान चीन का है। भारत की कुल जनसंख्या 2011 की जनगणना के अनुसार 121.2 करोड़ है। एक अनुमान के अनुसार 2040 तक यह बढ़कर 150 करोड़ से भी अधिक हो जाएगी जबकि भारत का क्षेत्रफल विश्व के क्षेत्रफल का 2.4 प्रतिशत है जोकि इतनी बड़ी आबादी को पालन पोषण हेतु कम है।

राष्ट्रीय जनसंख्या के मूलभूत संकेतक

जनसंख्या (लाख में)	1951	2001	2011
जनसंख्या	361	1027	121.05
जनसंख्या की औसत वृद्धि दर	1.25	1.95	1.77
नगरीय जनसंख्या (प्रतिशत में)	17.3	27.8	31.18
जन्मदर	39.9	25.8	—
मृत्युदर	27.4	8.5	—
उत्पादकता दर	5.96	8.5	—
शिशु मृत्यु दर	148	68	—
लिंगानुपात	946	933	940

Source- Censes of India (2011)

2. गरीबी (Poverty)– गरीबी भारत की सर्वप्रमुख समस्या है अन्य बहुत सी समस्याओं के मूल में गरीबी ही होती है। भारत 1947 में आजाद हुआ तब देश की कुल जनसंख्या में लगभग 75% लोग गरीब थे। अनेक प्रयत्न के बाद इस अनुपात में उल्लेखनीय कमी आई। 1993–94 में यह घटकर 35.97 प्रतिशत हो गई। 2012 में या घटकर 22% हो गई। किंतु दूसरे रूप में देखे तो आज भी लगभग 27 करोड़ जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करती है अर्थात् इतने लोगों के जीवन की बुनियादी आवश्यकता भी नहीं पूर्ण हो पा रही है। विश्व बैंक की अंतरराष्ट्रीय गरीबी रेखा जो विश्व में गरीबी का आकलन करती है के अनुसार भारत में 2015 में 13.4 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा

से नीचे जीवन यापन कर रहे हैं। विश्व बैंक के अनुसार प्रतिदिन 1.90 अमेरिकी डॉलर से कम आए अर्जित करने वाले लोग अत्यधिक गरीब की श्रेणी में आते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत में एक बड़ी आबादी आज भी गरीबी में जीवन जीने हेतु बाध्य है। इनकी स्थिति सुधारने के लिए सतत विकास का मार्ग ही एक मात्र रास्ता है।

गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वालों का अनुपात

वर्ष	ग्रामीण	नगरीय	कुल योग
1973–74	56.44	49.01	54.88
1983–84	45.65	40.79	44.48
1993–94	37.27	32.36	35.97
2007	21.1	15.1	19.3
2017–18	29.6	9.2	22.8

Source:- Planning commision-2007, NEETI AYOG-2017-18

3. पेयजल की उपलब्धता- भारत में शुद्ध पेयजल की उपलब्धता निरंतर घट रही है जिसका कारण तेजी से बढ़ती जनसंख्या के साथ-साथ कृषि एवं औद्योगिक क्षेत्रों में भी मीठे जल की मांग बढ़ना है। दूसरी ओर नदियों झीलों एवं तालाबों को जो जल पहले पीने योग्य था आज अत्यधिक प्रदूषण के कारण पीने के अयोग्य हो गया है। ऐसी स्थिति में यदि हम अभी से सतत विकास संकल्पना नहीं अपनाएंगे तो निश्चित ही हमारा एवं हमारी आगे आने वाली पीढ़ियों का भविष्य अंधकार में होगा। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में जल के उपयोग का विवरण अधोलिखित है-

वर्ष	मात्र (CUM/Person/Year)
1951	345
1991	1288
1999	1250
2050	760

Source- Censes of India (2011)

4. पर्यावरण प्रदूषण- भारत में जैसे-जैसे औद्योगिक एवं नगरीकरण बढ़ता जा रहा है वैसे-वैसे वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण एवं मृदा प्रदूषण भी बढ़ता जा रहा है, इसके कारण पारिस्थितिकी से संबन्धित अनेक समस्याएं जैसे अम्ल वृष्टि, प्रजातीय विलुप्तता, ओजोन रिक्तिकरण, जीवीय विलुप्तता, वर्षा की अनियमितता एवं अनिश्चितता आदि उत्पन्न हो रही है। जिससे स्वास्थ्य संबंधी अनेक समस्याएं भी उत्पन्न हो रही हैं। त्वचा कैंसर, मोतियाबिंद, बांझपन आदि इन्हीं कारणों से हो रहे हैं। (Rai P.K. & Suleman, 2021)

5. उपभोग प्रतिरूप- किसी भी देश या समाज का उपभोग प्रतिरूप वहां के लोगों के आय के स्तर द्वारा निर्धारित होता है। सामान्य आय वर्ग वाले लोग साधारणतया अनाज, दूध, मांस, सब्जियों एवं ईधन हेतु लकड़ियों का उपयोग करते हैं किंतु जैसे ही उनकी आय बढ़ती है वह द्वितीयक वस्तुएं जैसे पेट्रोलियम पदार्थ, सीमेंट, रेफ्रिजरेटर, कार तथा ईंधन हेतु प्राकृतिक गैस आदि का उपयोग करने लगते हैं और अधिक आय बढ़ने पर वह तृतीयक श्रेणी की वस्तुओं जैसे कार, एयर कंडीशनर एवं अन्य विलसिता की उपभोक्ता वस्तुओं का उपयोग करने लगते हैं जो प्रकृति को अधिक मात्रा में नुकसान करने के बाद प्राप्त होती हैं। भारत में तेजी से विभिन्न आय वर्ग के लोगों की संख्या बढ़ रही है, इस कारण प्राकृतिक संसाधनों का उपभोग तेजी से बढ़ रहा है और अनेक संसाधनों की सीमितता का आभास होने लगा है इसी कारण भारत में सतत विकास की संकल्पना को अपनाना परम आवश्यक है।

वस्तु के अनुसार उपभोग व्यय 1993-94 (करोड़ रुपये में)

ITEM	1990-91	1991-92	1992-93	1993-94	1994-95	1995-96	1996-97	1997-98	1998-99	1999-2000	2000-2001
Food, Beverages and Tobacco	293000 (55.74)	299285 (55.73)	301327 (54.70)	315243 (54.85)	325436 (54.11)	340124 (53.23)	369285 (53.55)	362475 (53.50)	404108 (53.78)	414078 (52.95)	388298 (47.87)
Gross Rent, Fuel and Power	64254 (12.22)	66411 (12.37)	68575 (12.45)	68239 (11.87)	70688 (11.75)	72907 (11.41)	75380 (10.93)	79862 (11.39)	82880 (11.03)	85656 (10.95)	88705 (10.94)
Transport and Communication	52975 (10.08)	56236 (10.47)	60569 (11.00)	64993 (11.31)	71783 (11.93)	76568 (11.98)	87748 (12.73)	86758 (12.37)	88266 (11.75)	90595 (11.58)	113051 (13.94)
PFCE in Domestic Market	525641	536980	550828	574772	501481	638938	689566	701114	751439	782064	811160
Population (In Crores)	85.0	86.7	88.2	89.8	94.4	92.9	94.6	95.2	98.0	99.8	101.6
Per Capital Consumption (in rupees)	6884	6194	6245	6401	6581	6878	7289	7288	7668	7836	7984

Sources- NSS Report No. 541/66/1.0/3(2011)

6. नगरीकरण एवं परिवहन- नगरीकरण एवं परिवहन एक-दूसरे के पूरक हैं नगरीकरण में वृद्धि जैसे-जैसे होती जाती है वैसे-वैसे परिवहन में संसाधनों में भी वृद्धि होती जाती हैं भारत में नगरीकरण की वृद्धि अन्य विकासशील देशों की तुलना में अपेक्षाकृत धीमी हैं। 1951 में भारत में नगरीकरण 15% था जो 2011 में जनगणना के अनुसार 31.2 हो गया है। 2050 तक इसके 50त्न से अधिक होने का अनुमान है।

भारत में 10 लाख नगरों की संख्या मे भी तेजी से वृद्धि हुई है। 1951 में इनकी कुल संख्या मात्र 5 थी यह 1971 में बढ़कर 23 हो गई है और 2011 में 53 दसलाखी नगर हो गए। इसी तरह 1961 में कुल नगरों की संख्या 2330 थी 1999 मे यह बढ़कर 4689 और 2011 में यह बढ़कर 6171 हो गई है। स्पष्ट है कि भारत में नगरीकरण तेजी से बढ़ रहा है। किसी भी देश में नगरीकरण की वृद्धि वहां प्राइवेट वाहनों की संख्या में वृद्धि करती है इसी के साथ ऊर्जा खपत और वायु प्रदूषण में वृद्धि होती है। नीचे तालिका भारत में पंजीकृत वाहनों की संख्या में वृद्धि को दर्शाया गया है। (*Censes of India, 2011*)

भारत में पंजीकृत मोटर वाहनों की कुल संख्या (हजारों में)

Year (As on 31st march)	All Vehicles	Two Wheelers	Cars, Jeep & Taxies	Buses	Goods Vehicles	Others*
1951	306	27	159	34	82	4
1971	1865	576	682	94	343	170
1991	21374	1420	2954	331	1356	2533
1994	27660	18899	3569	392	1691	3109
1999	44875	31328	5556	540@	2554	4897
2000(R)	48857	34118	6143	562@	2715	5319
2001(P)	54991	38556	7058	634@	2948	5795
2002(P)	58863	41478	7571	669@	3045	6100

Sources- Ministry of Road Transport & Highways (2000)

वाहनों की वृद्धि से जीवाश्म ईंधन का उपभोग बढ़ता है जो पर्यावरण प्रदूषण (RSPM), नाइट्रोजन ऑक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड, क्लोरोफ्लोरोकार्बन आदि गैसों के उत्सर्जन को बढ़ाते हैं और सभी का सम्मिलित प्रभाव परिस्थितिकी को और असंतुलित करता है जो भविष्य के लिए खतरे की घंटी है। भारत में सतत विकास इसीलिए आवश्यक है।

सतत विकास हेतु भारत द्वारा किए जा रहे प्रयास- भारत एवं भारतीयों के लिए पर्यावरण संरक्षण जो कि सतत विकास का अभिन्न अंग है न कि कोई नई अवधारणा है यह हमारे दैनिक जीवन में प्रतिबिंबित होता है तभी तो महात्मा गांधी जिन्हें हम आदर से राष्ट्रपिता कहते हैं ने कहा था की धरती प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकता को तो पूरा कर सकती हैं पर प्रत्येक व्यक्ति के लालच को नहीं। ट्रांसफॉर्मिंग आवर वर्ल्ड 2030 एजेंडा फॉर सस्टेनेबल डेवलपमेंट जिसे भारत सहित 193 देशों ने सितंबर 2015 में आयोजित संयुक्त राष्ट्र महासभा की उच्च स्तरीय पूर्ण बैठक में स्वीकार किया और इसे जनवरी 2016 से इसे लागू भी किया। सतत विकास के इन लक्ष्यों का उद्देश्य सबके लिए समान न्याय, न्याय संगत, सुरक्षित, शांतिपूर्ण, समृद्ध एवं रहने योग विश्व का निर्माण करना और विकास के तीनों पहलुओं सामाजिक समावेश, आर्थिक विकास और पर्यावरण संरक्षण को व्यापक रूप से समाविष्ट करना है। (*Kumar Ravindra & Suleman, 2021*)

भारत सरकार ने भारत के विकास संबंधी लक्ष्य एवं नीतियों में सतत विकास के एजेंडा को प्रमुखता से सम्मिलित किया है तभी सतत विकास संबंधी लक्ष्यों को पूरा करने हेतु अनेक कार्यक्रम सरकार द्वारा चलाए जा रहे हैं उनमें स्वच्छ भारत मिशन, डिजिटल इंडिया, दीनदयाल उपाध्याय ग्राम ज्योति योजना, उज्जवला योजना, स्किल इंडिया, राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन, प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना, बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ, सबके लिए आवास की प्रधानमंत्री आवास योजना, जल जीवन मिशन योजना, मनरेगा, सब पढ़े सब बढ़े, रोजगार गारंटी योजना, नि:शुल्क अन्न योजना आदि प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त गरीबी समाप्त करने से जुड़े अनेक कार्यक्रमों एवं बुनियादी सुविधाओं के विकास संबंधी अनेक कार्यक्रमों हेतु अधिक बजट का आवंटन भी किया जा रहा है।

केंद्र सरकार ने सतत विकास लक्ष्यों के कार्यान्वयन पर निगरानी रखने तथा इसके समन्वय की जिम्मेदारी नीति आयोग को सौंपी है। सांख्यिकी एवं कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय को संबंधित राष्ट्रीय संकेतक तैयार करने का कार्य सौंपा गया है। सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय द्वारा संयुक्त राष्ट्र आर्थिक एवं सामाजिक परिषद द्वारा प्रस्तावित संकेतकों की वैश्विक सूची से उन संकेतकों की पहचान की गई है जो हमारे राष्ट्रीय संकेतक ढांचे के लिए अपनाए जा सकते हैं यह इस दिशा में एक मील का पत्थर है। सतत विकास के लक्ष्यों के क्रियान्वयन को सरल बनाने हेतु भारतीय संसद विभिन्न हित धारकों के साथ गहन विचार-विमर्श हेतु अध्ययक्षीय शोध कदम (SRY) नामक मंच स्थापित किया है जो हमारे सांसदों द्वारा क्षेत्र के विशेषज्ञों के साथ विचार विमर्श को सुविधाजनक बनाता है। इसके अतिरिक्त नीति आयोग ने अन्य संगठनों के सहयोग से विशेष सतत विकास लक्ष्यों को लेकर राष्ट्रीय और क्षेत्रीय स्तर पर परामर्श श्रृंखलाएं आयोजित किए हैं ताकि इस महत्वपूर्ण बिंदु पर विद्वानों, संस्थाओं, सिविल सोसाटियों, अंतर्राष्ट्रीय संगठनों और केंद्रीय मंत्रालयों सहित राज्यों एवं अन्य हित धारकों के साथ गहन विचार-विमर्श किया जा सके इस प्रकार भारत निरंतर सतत विकास के प्रति अपनी जिम्मेदारियों का निर्वहन करने हेतु प्रयासरत है। (Kumar Ravindra & Suleman, 2021)

भारत सरकार के प्रयास- 1- प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना- 1 मई 2016 को भारत सरकार द्वारा इस योजना की शुरुआत की गई थी जिसका उद्देश्य था 2019 तक 5 करोड़ परिवारों विशेषकर गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रही महिलाओं को रियायती दर पर एलपीजी कनेक्शन देना था 'स्वच्छ ईंधन-बेहतर जीवन' इसकी मूल भावना थी इसे समय रहते पूरा कर लिया गया बाद में इसका लक्ष्य 8 करोड़ गरीब परिवार कर दिया गया जिसे 2020 तक पूरा भी कर लिया गया है। इस योजना के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में ईंधन हेतु लकड़ी की आवश्यकता में महत्वपूर्ण कमी आई है और वन क्षेत्र में विस्तार हुआ है।

2- स्वच्छ भारत मिशन- 2 अक्टूबर 2014 को इस योजना का शुभारंभ हुआ था इसके अंतर्गत सभी गांव, ग्राम पंचायतों, जिलों, राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों ने ग्रामीण भारत में 100 मिलियन शौचालयों का निर्माण किया और 2 अक्टूबर 2019 तक महात्मा गांधी की 150वीं जयंती के अवसर पर देश को खुले में शौच से मुक्त घोषित किया। अब इस योजना का द्वितीय चरण प्रारंभ हो गया है। जिसके अंतर्गत ओडीएफ प्लस गतिविधियों पर जोर दिया जा रहा है जो ओडीएफ व्यवहार को सुदृढ़ करेंगी और गांव में ठोस एवं तरल कचरे के सुरक्षित प्रबंधन को सुनिश्चित करने में मदद करेंगी।

3- प्रधानमंत्री आवास योजना- इस योजना का शुभारंभ 25 जून 2015 को हुआ था इसका मुख्य उद्देश्य 2022 तक सभी परिवारों को घर उपलब्ध कराना है इसके अंतर्गत 75वें स्वाधीनता दिवस के पहले 31 मार्च 2022 तक 2 करोड़ शहरी गरीबों को घर देने का लक्ष्य रखा गया है। इसी तरह ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले गरीब परिवारों को भी रुपये 130000 का अनुदान घर बनाने हेतु दिया जा रहा है। 2022 तक लगभग 10 करोड ग्रामीण परिवारों को नि:शुल्क घर देने का लक्ष्य रखा गया है।

4- जल जीवन मिशन- इस योजना की शुरुआत 2020 में की गई है इसका लक्ष्य देश के हर नागरिक के घर स्वच्छ जल की सुविधा पहुंचाना है इस योजना का लाभ लगभग छह करोड़ परिवारों को मिलेगा। अभी तक इस योजना का लाभ 18.3 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों को मिला है। ग्रामीण क्षेत्रों में इसके माध्यम से personal household tab कनेक्शन दिया जा रहा है। यह देश की हर घर जल पहुंचाने की महत्वाकांक्षी योजना है जिस पर भारत सरकार बहुत अधिक धन खर्च कर रही है।

5- दीनदयाल उपाध्याय ग्राम ज्योति योजना- इस योजना का शुभारंभ नवंबर 2014 में भारत सरकार द्वारा किया गया। इसका प्राथमिक लक्ष्य था 1000 दिनों के भीतर 1 मई 2018 तक देश के 18452 अविद्युतीय गांवों का विद्युतीकरण करना एवं साथ ही 24/4 विद्युत आपूर्ति सुनिश्चित करना है। इसके लिए भारत सरकार राज्य सरकारों के साथ मिलकर विद्युत वितरण व्यवस्था को सुदृढ़ करने में लगी हैं ताकि जिन क्षेत्रों में अतिरिक्त विद्युत का उत्पादन होता है वहां से विद्युत की आपूर्ति कमी वाले राज्य में की जा सके और इस तरह से संपूर्ण देश में विद्युत आपूर्ति की पर्याप्त आपूर्ति सुनिश्चित हो सके।

6- डिजिटल इंडिया कार्यक्रम- 7 अगस्त 2014 को इस योजना की शुरुआत हुई इसके अंतर्गत सभी सरकारी सेवाओं को सभी नागरिकों के लिए डिजिटली उपलब्ध है। इस योजना के 9 मुख्य स्तंभ है जो अधोलिखित है-

1) ब्रॉडबैंड हाईवे का निर्माण
2) मोबाइल कनेक्टिविटी के लिए सार्वभौमिक पहुंच
3) पब्लिक इंटरनेट एक्सेस कार्यक्रम
4) ई-गवर्नेंस प्रौद्योगिकी के माध्यम से सरकार में सुधार
5) ई-क्रांति सेवाओं की इलेक्ट्रॉनिक डिलीवरी
6) सभी के लिए सूचना
7) इलेक्ट्रॉनिक विनिर्माण
8) नौकरियों के लिए आई टी
9) अर्ली हार्वेस्ट कार्यक्रम

सतत विकास के शोध की दिशा-

सतत विकास के संदर्भ में वर्तमान में अनेक शोध लेख, प्रबंध ग्रंथ एवं पुस्तकों का प्रकाशन हो चुका है या हो रहा है, यह हमारे लिए आशा की किरण है। परंतु आज भी अनेक शोधों एवं पुस्तकों में सतत विकास का केवल अर्थ ही स्पष्ट किया जाता है उसके वास्तविक स्वरूप, उद्देश्य, प्रारूप एवं रणनीतियों पर विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोग वर्तमान में उपलब्ध संसाधनों को भविष्य की पीढ़ियों के लिए संरक्षित करने को ही सतत विकास कहते हैं जबकि कुछ विद्वान सतत विकास का अर्थ वर्तमान समय में अपनी आवश्यकता को सीमित करने एवं भौतिक विकास को छोड़ देने को कहते हैं जबकि कुछ विद्वान सतत विकास की अवधारणा को अंतरराष्ट्रीय राजनीति का एक साधन मानते हैं उनके द्वारा यह कहा जाता है कि विश्व के विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों पर जबरन थोपा जाने वाला यह एक महत्वपूर्ण एजेंडा है क्योंकि वर्तमान समय में जो पर्यावरण अवनयन हुआ है वह अधिकांशतया विकसित देशों में तीव्र औद्योगीकरण एवं नगरीकरण का परिणाम है, वह अपने द्वारा उत्पन्न पर्यावरणीय प्रभावों को विकासशील देशों एवं अविकसित देशों द्वारा मिलकर दूर कर रहे हैं और वह यह भी चाहते हैं कि कोई अन्य विकासशील राष्ट्र उतनी तेजी से विकास न करें जितना तेजी से उन्होंने किया है। इस तरह के अनेक विमर्श सतत विकास के संदर्भ में हुए हैं। लेकिन यदि वास्तविक धरातल पर देखा जाए तो निश्चय ही सतत विकास आज प्रत्येक राष्ट्र की आवश्यकता है क्योंकि विकास की जो अंधी दौड़ चल रही है उसका कोई अंत नहीं है और इस दौड़ के कारण वर्तमान के साथ-साथ भविष्य की पीढ़ियों का भी भविष्य खतरे में है। आज विकास की इस दौड़ के कारण अनेक जीवो एवं पेड़ पौधों की प्रजातियां लुप्त हो गई हैं या लुप्त होने के कगार पर, क्या हम अपने बच्चों को इसी तरह का पर्यावरण देंगे जिसमें अनेक जीव एवं पेड़-पौधे समाप्त हो जाएंगे ? जिनके बारे में वह केवल पुस्तकों में ही पढ़ेंगे। क्या हम उन्हें ऐसे वातावरण देंगे जिनमें सांस लेना भी मुश्किल होगा ? क्या हम उन्हें ऐसे फलों सब्जियों एवं खाद्य सामग्री को देंगे जिनमें कीटनाशक दवाएं होगी जो उनके शरीर में अनेक रोगों को जन्म देंगी या उनके बच्चे अपंगता की स्थिति में जन्म लेंगे ? क्या विश्व भर में संसाधनों के लिए संघर्ष हो ऐसा विश्व उनके लिए छोड़ना चाहते हैं ? अत्यंत जटिल है किंतु विचारणीय है।

निष्कर्ष–

भारत के संदर्भ में सतत विकास एक अति आवश्यक विचार है क्योंकि यह लगभग 130 करोड़ जनसंख्या को धारण करने वाला विश्व का दूसरा सबसे बड़ा देश है। इतनी बड़ी जनसंख्या का भरण पोषण करने के लिए और भावी पीढ़ियों को भी संसाधन उनकी आवश्यकता के मुताबिक मिलते रहे इसके लिए जरूरी है कि हम सतत विकास की अवधारणा को अपनाएं जिससे एक ओर संसाधनों की बचत होगी दूसरी ओर भावी पीढ़ियों के लिए जरूरी संसाधन आसानी से उपलब्ध हो पाएंगे। यद्यपि भारत में प्राचीन काल से ही सतत विकास का विचार यहां की संस्कृति में रचा बसा है फिर भी आज की नई परिस्थिति में इसे गंभीरतापूर्वक अपनाने की आवश्यकता है। इसके लिए सरकार द्वारा एवं अनेक स्वयंसेवी संस्थाओं संगठनों द्वारा इस दिशा में तेजी से प्रयास किया जा रहा है। यह एक सुखद स्थिति है।

References

1) Maurya S.D. and Maurya R.K. (2018), Physical Geography & Physical environment of India, Abhigyan Internation Lucknow, ISBN: 978-81-951948-3-4
2) Maurya S.D. and Maurya R.K. (2018), Human Geography, People & Economy, Abhigyan Internation Lucknow, ISBN: 978-81-951948-8-9
3) Sustainable Development, https://en.wikipedia.org/wiki/Sustainable_development
4) Censes of India, (2011), https://censusindia.gov.in/pca/Searchdata.aspx
5) Planning commision-2007, https://niti.gov.in/planningcommission.gov.in/docs/plans/planrel/fiveyr/default.html
6) NEETI AYOG (2018)https://www.niti.gov.in/annual-reports
7) NSS Report No. 541/66/1.0/3(2011) http://164. 100.161.63/sites/default/files/publication_reports/Report_no558_rou68_30june14.pdf
8) Ministry of Road Transport & Highways (2000), https://morth.nic.in/
9) Suleman and Kumar Ravindra (2021), सतत विकास –एक विश्लेषणात्मक अध्ययन, Shodhsamagam, ISSN: 2581-6918(E), 2582-1792(P), Year-04, Volume-04, Issue-04
10) Suleman and Rai P.K. (2021), मानव पर्यावरण संबंध का मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव – एक भौगोलिक अध्ययन, International Journal of Creative Research Thoughts, Peer Reviewed Referred Journal IJCRT/vol 9/issue 5 may 2021, ISSN : 2320-2882)
11) Tomislav Klarin(2018), The Concept of Sustainable Development: From its Beginning to the Contemporary Issues, Zagreb International Review of Economics & Business, Vol. 21, No. 1, pp. 67-94,2018,file:///C:/Users/hp/Downloads/Sustainable_Developmen/The_Concept_of_Sustainable_Development_From_its_Be.pdf

- प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना, ·https://www.india. gov.in/hi/spotlight
- स्वच्छ भारत मिशन, https://swachhbharatmission.gov.in/SBMCMS/index-hi.htm
- जल जीवन मिशन, https://jaljeevanmission.gov.in/
- दीनदयाल उपाध्याय ग्राम ज्योति योजना, https://www.india.gov.in
- डिजिटल इंडिया कार्यक्रम, https://www.digitalindia.gov.in/hindi/
- प्रधानमंत्री आवास योजना, https://hi.wikipedia. org/wiki/

https:// sustainabledevelopment.un.org/content/documents/5987our-common-future.pdf

ISSN 2278 - 0327

राजतरङ्गिणी में प्रयुक्त अकारादि कृदन्त संज्ञापदों का व्याकरणशास्त्रीय विमर्श

राजय कुमार देवांगन
शोधछात्र
दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

प्रो. अनिता शर्मा
आचार्या, लक्ष्मीबाई महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

राजतरङ्गिणी एक ऐसा अनुपम तथा अतुलनीय ऐतिहासिक ग्रन्थ है, जो भारतवर्ष के अतीत तथा काश्मीर के राजवंशावली को प्रामाणिकता के साथ हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है। कविकुलकलाधर, कमलदिवाकर, कविप्रवर महाकवि कल्हण द्वारा विरचित इस ऐतिहासिक महाकाव्य में आहत्य आठ तरंग तथा कुल 7726 श्लोक सन्नद्ध हैं। इन श्लोकों के माध्यम से कविराज कल्हण ने कलि संवत् 625 तदनुसार लौकिक संवत् 628 से लेकर अपने जीवन समय 1148-49 ई. संवत् तक की ऐतिहासिक वंशावली का प्रस्तुतीकरण किया है। इस ऐतिहासिक महाकाव्य में कल्हण ने लगभग 2100 संज्ञापदों का उल्लेख किया है, जिनमें से कृत्प्रत्ययान्त अकारादि संज्ञापदों का व्याकरणशास्त्रीय विमर्श इस लेख के माध्यम से प्रस्तुत किया जा रहा है।

व्याकरणशास्त्र में संज्ञापदों की सिद्धता के लिये तद्धितप्रकरण कृदन्तप्रकरण तथा स्त्रीप्रकरण का आश्रय लिया जाता है। तदनुसार महर्षि पाणिनि मुनि कृत अष्टाध्यायी के 'तद्धिता:'[1] इस अधिकारसूत्र से लेकर पञ्चमाध्याय के समाप्ति[2] पर्यन्त जितने भी प्रत्यय पठित हैं, वे सभी तद्धितप्रत्यय कहलाते हैं जो अण, ठक्, ठञ्, णिनि, मतुप्, घञ्, मयट् आदि अनेक प्रकार के हैं। तथा इन तद्धितप्रत्ययों से सिद्ध होने वाले शब्द तद्धितान्तशब्द से जाने जाते हैं।

नामकरण की इस परिपाटी में कृदन्त प्रकरण का भी अपना एक बहुमूल्य स्थान है। क्योंकि जिस प्रकार दाक्षिणात्य जन तद्धितप्रिय होते हैं,[3] ठीक उसी प्रकार उदीच्य गण कृदन्त शब्दों के प्रयोग में रुचि रखते हैं।[4] एतदनुसार व्याकरणशास्त्र में 'धातो:'[5] सूत्र के अधिकार में 'कृदतिङ्'[6] सूत्र से कृत्प्रत्यय निरूपित होते हैं। सामान्यत: देखा जाए तो पाणिनीय सूत्र 'कर्तरि कृत्'[7] सूत्र से कृत्प्रत्यय मूलत: कर्ता के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। जैसे- पचतीति पाचक:।[8] किन्तु कृत्संज्ञक विशेष प्रावधान के तहत 'तयोरेव कृत्यक्तखलर्था:'[9] सूत्र से मात्र कर्त्ता के अर्थ में प्रयुक्त होने वाले कृत्प्रत्यय अब भाव तथा कर्म के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। जैसे- 'दातुं योग्यं = देयम्'।[10]

संज्ञापदों की सिद्धि में उणादिसूत्रों का भी विशेष महत्व है। क्योंकि अनेक स्थलों पर इन सूत्रों के बिना सिद्धि कार्य दुरूह सा प्रतीत होता है। महर्षि पाणिनि ने इन उणादिसूत्रों को 'उणादयो बहुलम्'[11] सूत्र के माध्यम से कृदन्त प्रकरण के अन्तर्गत ही समावेश कर लिया है। इस प्रकार सभी संज्ञापद कृदन्त, तद्धित तथा स्त्रीप्रत्ययों से सिद्ध हो सकते हैं।

कल्हणकृत राजतरङ्गिणी में कुल 90 अकारादि संज्ञापद उल्लिखित हैं जो विभिन्न सूत्रों के माध्यम से सिद्ध हो सकते हैं। इन संज्ञापदों के अनेक विभाग किये जा सकते हैं, जैसे- कृदन्त संज्ञापद, तद्धितान्त संज्ञापद, स्त्रीप्रत्ययान्त संज्ञापद, औणादिक संज्ञापद और सामासिक संज्ञापद। यद्यपि औणादिक संज्ञापद कृदन्त संज्ञापदों के अन्तर्गत ही समाविष्ट हो सकते हैं तथापि स्पष्टता के लिये इनका पृथगुल्लेख ही मुझे श्रेयस्कर प्रतीत होता है। सामासिक संज्ञापद भी अपनी सिद्धता के लिये कृत् तथा तद्धित प्रत्ययों पर ही आश्रित हैं, फिर भी विशिष्टज्ञान के लिये इस विभाग का उल्लेख भी अपेक्षित है।

कृदन्त संज्ञापद -

अक्ष:[12] - व्याप्ति अर्थ में अक्ष्[13] धातु से कर्ता के अर्थ में अच्[14] प्रत्यय करने पर 'अक्ष:' ऐसा सिद्धरूप हमें प्राप्त होता है। जो सिद्धान्तकौमुदी में पाश अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[15] तथा इसके समानार्थक शब्दों के रूप में अमरकोश में विभीतक, अक्ष, तुष, कर्षफल, भूतावास तथा कलिद्रुम आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं।[16] राजा अक्ष कश्मीर के महान शासक नर के पुत्र थे जिन्होंने लगभग 60 वर्षों तक काश्मीर पर शासन किया। तथा इन्होंने काश्मीर में अक्षवाल नामक नगर भी बसाया।[17]

अक्षपटलम्[18] - 'अक्षाणां व्यवहाराणां पटलं यत्र साध्यते तदक्षपटलम्' (लेखा-कार्यालय:) इस विग्रह के साथ अक्ष पूर्वक पट् + ला[19] धातु से क:[20] प्रत्यय करने पर अक्षपटल ऐसा रूप

सिद्ध होता है। यह अक्षपटल एक प्रकार का कार्यालय होता है जहाँ गणनाधिकारी अथवा लेखापाल भूमिदान अथवा अनुदान से सम्बद्ध विवरण लिखता है।

अगस्त्य:[21] – 'अगं विन्ध्यं स्त्यायति स्तभ्नातीति वा' इस विग्रह के साथ अगपूर्वक स्त्यै[22] धातु से क:[23] प्रत्यय करने पर 'अगस्त्य:' यह साध्यपद सिद्ध होता है। अगस्त्य मुनि मैत्रावरुण के पुत्र एक प्राचीन मुनि थे।[24]

अङ्गद:[25] – अङ्गं द्यति युद्धकालेऽवखण्डयति इस व्युत्पत्ति के साथ अङ्ग शब्दपूर्वक दो[26] धातु से क:[27] प्रत्यय करने पर कर्ता के अर्थ में 'अङ्गद:' ऐसा रूप सिद्ध होता है। काश्मीर में अङ्गद नामक राजा हुए जिन्हें राजा जयसिंह ने आमात्यों की सहायता से पदच्युत कर दिया था।[28]

अनङ्गपाल:[29] – अनङ्गयन्नचेष्टितं वा पालयति रक्षयति इस व्युत्पत्ति के साथ अनङ्गपूर्वक पाल[30] धातु से अच्[31] प्रत्यये कृते 'अनङ्गपाल:' यह रूप सिद्ध होता है। यह अनङ्गपाल हरिराज के पुत्र अनन्तदेव का मित्र था जो हमेशा मन्दिरों को तोड़ने की बात मन में सोचता रहता था।[32]

अभिनव:[33] (1) – अभि उपसर्गपूर्वक णु[34] धातु से भाव अर्थ में अप्[35] प्रत्यय करने पर 'अभिनव:' शब्द सिद्ध होता है। अभिनव शब्द के समानार्थक नव्य, नवीन, नूतन आदि अनेक शब्द अमरकोश में पठित हैं।[36] अभिनव एक वीर योद्धा था, जो राजसैनिकों के हाथों मृत्यु को प्राप्त हुआ था।[37]

अवकल्य:[38] – अव उपसर्ग के साथ कल[39] धातु से णिच्[40] विकरणप्रत्यय पूर्वक यत्[41] प्रत्यय जोड़ने पर 'अवकल्य:' रूप सिद्ध होता है। अवकल्य काश्मीर के राजा हुए जिनकी दो कन्याओं आसमती तथा सहजा का विवाह मल्ल के पुत्रों रल्हण तथा सल्हण के साथ हुआ।[42]

इसी प्रकार राजतरङ्गिणी में अनेक कृत्प्रत्ययान्त अकारादि संज्ञापद आये हैं जैसे- अनङ्गभवनम्[43], अनङ्गापीड:[44], अभिनवगुप्त:[45], अमृताकर:[46], अर्घदेव:[47], अलखान:[48], अलङ्कारचक्र:[49] आदि ये सभी शब्द व्याकरण की दृष्टि से सुगमता पूर्वक सिद्ध हो जाते हैं।

औणादिक संज्ञापद –

अनन्त:[50] – गत्यर्थक अम[51] धातु से औणादिक तन्[52] प्रत्यय करने के साथ-साथ मकार के स्थान पर नकारादेश[53] करने पर अन्त शब्द सिद्ध होता है। तथा 'नास्त्यन्तो यस्य स' इस विग्रह के साथ जिसका कोई अन्त नहीं है वह इस अर्थ में बहुव्रीहिसमास होकर 'अनन्त:' शब्द सिद्ध होता है। यह अनन्त पर्णोत्स में उत्पन्न एक साधारण व्यक्ति था जिसके पुत्र को तिलकसिंह ने द्वाराधिपति नियुक्त किया था।[54]

अनरण्य:[55] – अर्य्यते मृगैरिति इस व्युत्पत्ति के साथ गत्यर्थक ऋ[56] धातु से औणादिक अन्य[57] प्रत्यय करने पर अरण्य शब्द सिद्ध होता है, अनन्तर न अरण्य: इस विग्रह के साथ नञ्तत्पुरुषसमास करने पर 'अनरण्य:' यह सार्थक रूप सिद्ध होता है। अनरण्य इक्ष्वाकु वंश में जन्में एक प्रतापी राजा थे। इन्होंने भी कृपाचार्य तथा द्रोणाचार्य के समान अपने कुल के वैर का प्रतिशोध लिया।[58] राक्षसराज रावण के द्वारा इनकी मृत्यु हुई।

अनल:[59] – अन[60] धातु से औणादिक कलच्[61] प्रत्यय जोड़ने पर 'अनल:' रूप सिद्ध होता है। अमरकोश में अग्नि के पर्यायपद के रूप में इस शब्द का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है।[62] यह अनल डामरजातीय सेना का प्रमुख योद्धा था। इसकी मृत्यु राजा सुस्सल के सैनिकों के हाथों हुई।[63]

अभिमन्यु:[64] – अभि उपसर्गपूर्वक ज्ञानार्थक मन्[65] धातु से औणादिक युच्[66] प्रत्यय मिलाने पर 'अभिमन्यु:' शब्द सिद्ध होता है। यह अभिमन्यु देवराज इन्द्र के समान तेजस्वी, काश्मीर का शासक, एक महान राजा था। इसने कण्टकोत्स नामक अग्रहार ब्राह्मणजनों को दान में दिया। तथा अपने नाम से एक नगर भी स्थापित किया।[67]

अरुण:[68] – गत्यर्थक ऋ[69] धातु से कर्ता के अर्थ में औणादिक उनन्[70] प्रत्यय करने पर 'अरुण:' शब्द सिद्ध होता है। अरुण शब्द का प्रयोग राजतरङ्गिणी में सूर्य के सारथी के रूप में प्रयुक्त हुआ है।[71]

अर्जुन:[72] (1) – ण्यन्त ऋज्[73] धातु से औणादिक उनन्[74] प्रत्यय करने के साथ णिभाग का लोप करने पर 'अर्जुन:' शब्द सिद्ध होता है। यह अर्जुन एक विदेशी आक्रान्ता था जिसने तुङ्ग की मृत्यु के बाद राजसैनिकों से युद्ध किया।[75]

अलक:[76] – अल[77] धातु से कर्ता के अर्थ में औणादिक वुन्[78] प्रत्यय करने पर 'अलक:' ऐसा सिद्धरूप प्राप्त होता है। यह अलक पृथिवीहर के भाई का पुत्र था। इसको साथ लेकर पृथिवीहर ने नदी पार करके जनकसिंह के समस्त सेना को नष्ट भ्रष्ट कर दिया।[79]

अवन्ति:[80] – अव[81] धातु से बहुल करके औणादिक झिच्[82] प्रत्यय करते हुए झकार के स्थान पर अन्त आदेश[83] होने से 'अवन्ति:' रूप सिद्ध होता है। अवन्ति महाकाल की नगरी उज्जयिनी का दूसरा नाम है।[84]

इसी तरह राजतरङ्गिणी में और भी अनेक संज्ञापद हैं जो उणादिसूत्रों से सिद्ध होते हैं जैसे- अश्वपति:[85], अन्तर्वेदि:[86],

अभयराज:[87] इत्यादि।

सामासिक संज्ञापद –

अनङ्ग:[88] – जिसका कोई अङ्ग अथवा आकार नहीं है अर्थात् कामदेव। ऐसा बहुव्रीहि सामासिक शब्द अनङ्ग 'अङ्गयति चेष्टयति' इस व्युत्पत्ति के साथ अङ्ग[89] धातु से कर्ता के अर्थ में अच्[90] प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है। कल्हण ने भी अनङ्ग शब्द का अर्थ कामदेव ही किया है।[91]

अमरकण्ठ:[92] – अमर है कण्ठ जिसका वह अमरकण्ठ। यह बहुव्रीहिसामासिक शब्द अमरशब्दपूर्वक कठ्[93] धातु से अच्[94] प्रत्यय करने पर नुम्[95] आगमपूर्वक 'अमरकण्ठ:' शब्द सिद्ध होता है। अमरकण्ठ एक द्विज थे जिनके पुत्र प्रमदकण्ठ को कलश ने अपने गुरु के रूप में नियुक्त किया था।[96]

अशोक:[97] – नास्ति शोको यस्य यस्मिन् वा इस विग्रह के साथ शुच[98] धातु से घञ्[99] प्रत्यय करते हुए कुत्वादेश करने पर बहुव्रीहि सामासिक शब्द 'अशोक:' सिद्ध होता है। शनीचर के प्रपितृव्य के पुत्र शकुनि के प्रपौत्र राजा अशोक जलौक के पिता थे जो नि:सन्तान राजा शनीचर के बाद काश्मीर के शासक हुए।[100]

इस प्रकार असिधर:[101], अमृतेश्वर:[102], असुररिपु:[103] इत्यादि कृदन्त सामासिक शब्द भी पाणिनीय सूत्रों से सिद्ध हो जाते हैं।

निष्कर्ष –

राजतरङ्गिणी में प्रयुक्त संज्ञापदों के व्याकरणावलोकन से पता चलता है कि तत्कालीन समाज अपनी संस्कृति से जुडते हुए विकास की ओर अग्रसर था। क्योंकि कल्हण ने अपनी राजतरङ्गिणी में नामावली के साथ कोई उलटफेर नहीं किया अपितु समाज में प्रचलित नामों को याथातथ्य रूप से ग्रहण किया। राजतरङ्गिणी में अनेक ऐसे नाम आते हैं जैसे– अज्जक:, अक्षोसुवा, अट्टयिक: आदि जो प्राकृत शब्द अथवा बोलचाल की भाषा के अन्तर्गत आते हैं इन नामों को लिखते हुए कल्हण ने उसके संस्कृतनिष्ठ शब्दों को खोजने की चेष्टा नहीं की अपितु समाज में प्रचलित अपभ्रंश नाम ही प्रदर्शित करते हुए समाज का विकास किया भाषा का विकास किया। अन्यथा गग्ग अथवा गग्गचन्द्र आदि नामों के स्थान पर वे गर्ग अथवा गर्गचन्द्र या गगनचन्द्र का भी प्रयोग कर सकते थे। यहां तक कि उनका स्वयं का नाम कल्हण भी संस्कृतनिष्ठ नहीं है वह उसे भी परिवर्तित कर कल्याण नाम रख सकते थे।

इस प्रकार यह देख सकते हैं कि राजतरङ्गिणी में प्रयुक्त संज्ञापद बहुतायत रूप से संस्कृतनिष्ठ ही हैं तथा पाणिनीय सूत्रों से सिद्ध हो सकने वाले संज्ञापद हैं तथा बहुत थोड़े ही शब्द अपभ्रंश अथवा प्राकृत भाषा में हैं। इससे स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज संस्कृतनिष्ठ था तथा पाणिनीय व्याकरण का अनुकरण करने वाली संस्कृति का संरक्षक था।

सन्दर्भ सूची –

1. अष्टा., 4/1/76
2. निष्प्रवाणिश्च, अष्टा., 5/4/160
3. प्रियतद्धिता दाक्षिणात्या:, काव्यमीमांसा, षष्ठोऽध्याय:, पृ0 56
4. कृत्प्रयोगरूचय उदीच्या:, काव्यमीमांसा, षष्ठोऽध्याय:, पृ0 56
5. अष्टा., 3/1/91
6. वहीं, 3/1/93
7. वहीं, 3/4/67
8. ण्वुल्तृचौ, वहीं, 3/1/133
9. वहीं, 3/4/70
10. अचो यत्, वहीं, 3/1/97
11. वहीं, 3/3/1
12. कल्ह. राज.– 1/338; 8/3416
13. अक्षू व्याप्तौ, भ्वादि.– 674
14. नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यच:, अष्टा.– 3/1/134
15. अक्षैरक्षान् वा दीव्यति सि. कौ., का. प्र., 'दिव: कर्म च' सूत्र की व्याख्या।
16. अमृता च वयस्था च त्रिलिङ्गस्तु विभीतक:। नाक्षस्तुष: कर्षफलो भूतावास: कलिद्रुम:॥ अमर.– 2/4/58/2/1
17. नर: षष्टिं तस्य सूनुस्तावतोऽक्षश्च तत्सुत:। वर्षानभृद्विभुर्ग्रामं योऽक्षवाल–मकारयत्॥ कल्ह. राज.– 1/338
18. वहीं,– 5/301, 389, 398, 6/287, 7/162, 1604
19. ला आदाने, अदादि.– 1096
20. आतोऽनुपसर्गे क:, अष्टा.– 3/2/3
21. कल्ह. राज.– 3/325; 4/647,
22. स्त्यै शब्दसंघाते, भ्वादि.– 945
23. आतोऽनुपसर्गे क:, अष्टा.– 3/2/3
24. ध्रुवौत्तानपादि: स्यादगस्त्य: कुम्भसम्भव:। मैत्रावरुणिरस्यैव लोपामुद्रा सधर्मिणी।, अमर.– 1/3/20/1/3
25. कल्ह. राज.– 8/3400
26. दो अवखण्डने, धातु. दिवादि.– 1186
27. आतोऽनुपसर्गे क:ट्टुट्टुअष्टा. 3/2/3
28. कृतसाहायकोऽमात्यै राज्ञ: सप्रज्जिमङ्गदम्। राज्यात्प्राभ्रंशयद्भ्रातृद्रुहं पञ्चवटं नृपम्॥ कल्ह. राज.– 8/3400
29. वहीं,– 7/147
30. पाल रक्षणे, धातु. चुरादि.– 1652
31. नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यच:, अष्टा. 3/1/134
32. अनङ्गपालवेतालश्चक्रे क्ष्मापाललालित:। शश्वत्सुवर्णगीर्वाणप्रतिमापाटने मन:॥ कल्ह. राज.– 7/147
33. वहीं,– 7/93,
34. णू स्तवने, धातु. तुदादि.– 1435
35. ऋदोरप्, अष्टा. 3/3/57
36. पुराणे प्रतनप्रत्नपुरातनचिरन्तना:। प्रत्यग्रोऽभिनवो नव्यो नवीनो नूतनो नव:॥ अमर.– 3/1/77/2/2
37. कोशाधिकारी त्रैलोक्यराजनामा हतो रणे। कय्यामन्तकधात्रेयो वीरोप्यभिनवाभिध:॥ कल्ह. राज.– 7/93
38. वहीं,– 7/1487,
39. कल गतौ संख्यान,धातु. चुरादि.– 1914
40. सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्मवर्णचूर्णचुरादिभ्यो णिच्,

अष्टा. 3/1/25
41. अचो यत्, अष्टा.- 3/1/97
42. राजावकल्ययोः पत्न्यो बाले सल्हणरल्हयोः। स्नुषे मल्लस्यासमती सहजा चाग्निसाद्गते॥ कल्ह. राज.- 7/1487
43. वहीं,- 4/3,
44. वहीं,- 4/707, 8/3428
45. वहीं,- 6/130
46. वहीं,- 5/423
47. वहीं,- 8/1305, 1543,
48. वहीं,- 5/149, 5/155
49. वहीं,- 8/2482, 8/2520, 8/2568, 8/2598, 2895, 2923, 2941,
50. वहीं,- 8/633, 8/713, 8/1005, 8/1042, 8/1427
51. अम गत्यादिषु, धातु. भ्वादि.- 480
52. हसिमृग्रिण्वाऽमिदमिलूपूधुर्विभ्यस्तन्, उणादि. 3/86
53. मोऽनुस्वारः, अष्टा. 8/3/23, अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः, अष्टा. 8/4/58
54. हृत्वाधिकारं त्वस्याथ क्रुद्धः पर्णोत्ससंभवम्। अनन्तात्मजमानन्दाभिधं द्वाराधिपं व्यधात्॥ कल्ह. राज.- 8/633
55. वहीं,- 8/1355,
56. ऋ गतौ, धातु. जुहो.- 1135
57. अन्तेर्निच्च, उणादि. 3/102
58. अनरण्यकृपद्रोणजामदग्न्यादिषु स्पृहाम्। कुल्यक्षालितवैरेषु मा कार्षीः काञ्चन क्षणम्॥ कल्ह. राज.- 8/1355
59. वहीं,- 8/1102
60. अन च (प्रापणे) धातु. अदादि.- 1108
61. वृषादिभ्यश्चित्, उणादि. 1/106
62. बर्हिः शुष्मा कृष्णवर्त्मा शोचिष्केश उषर्बुधः। आश्रयाशो बृहद्भानुः कृशानुः पावकोऽनलः॥ अमर.- 1/1/54/2/5
63. र्श्यानन्दः काककुलजो लोष्टशाह्वनलादयः। अन्ये च डामरानीके ख्याता भूभृद्भटैर्हताः॥ कल्ह. राज.- 8/1102
64. वहीं,- 1/20,174, 1/175, 8/3413
65. मन ज्ञाने, धातु. दिवादि.- 1214
66. यजिमनिशुन्धिदसिजनिभ्यो युच्, उणादि. 3/20
67. स्वनामाङ्कं शशाङ्काङ्कशेखरं विरचय्य सः। परार्ध्यविभवं श्रीमानभिमन्युपुरं व्यधात्॥ कल्ह. राज.- 1/175
68. वहीं,- 7/959, 8/50, 2549,
69. ऋ गतिप्रापणयोः, धातु. भ्वादि.- 971
70. अर्तेश्च, उणादि. 3/60
71. कुष्ठार्ताङ्घ्रियुगः शिखी बहुपदं गृह्णाति धावन्नहिं भानुः पादसहस्रभाक्प्रतिपदं संचार्यतेऽनूरुणा। वञ्च्यन्ते बलिनोऽपि यल्लघुबलैः सामर्थ्यहीनैश्च यद्भाम्यन्ते परिपूर्णवृत्तय इदं दैवस्य लीलायितम्॥ कल्ह. राज.- 7/959
72. वहीं,- 7/97
73. ऋज गतिस्थानार्जनोपार्जनेषु, धातु. भ्वादि.- 184
74. अजेर्णिलुक्, उणादि. 3/58
75. चन्दाख्यः सुभटंमन्यो दैशिकश्चार्जुनाभिधः। हेलाचक्रो डामरश्च त्यक्तशस्त्राः परैर्हताः॥ कल्ह. राज.- 7/97
76. वहीं,- 8/936,
77. अल भूषणपर्याप्तिवारणेषु, धातु. भ्वादि.- 534
78. कृआदिभ्यः संज्ञायां वुन्, उणादि. 5/35
79. अलकेन समं पृथ्वीहरस्तद्भ्रातृसूनुना। अन्येन सेतुना तीर्त्वा तस्य सैन्यमनाशयत्॥ कल्ह. राज.- 8/936
80. वहीं,- 4/162,
81. अव रक्षणगतिकान्तिप्रीतितृप्त्यवगमप्रवेशश्रवणस्वाम्यर्थयाचन क्रियेच्छादीप्त्यवाप्त्यालिङ्गनहिंसादानभागवृद्धिष,धातु. भ्वादि.- 620
82. भुवो झिच्, उणादि. 3/50
83. झोऽन्तः, अष्टा. 7/1/3
84. विशतां दशनश्रेण्यस्तस्यावन्तिषु दन्तिनाम्। महाकालकिरीटेन्दुज्योत्स्नया खण्डिताः परम्॥ कल्ह. राज.-4/162
85. वहीं,- 8/399,
86. वहीं,- 4/132
87. वहीं,- 7/586, 8/16,
88. वहीं,- 7/1436,
89. अङ्ग च (पदे लक्षणे च), धातु. चुरादि.- 1976
90. नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः, अष्टा. 3/1/134
91. शान्तयोर्जीवितस्थानं द्वयमत्यद्भुतं द्वयोः। अनङ्गस्याङ्गनापाङ्गः स्तोतृजिह्वा यशस्विनः॥ कल्ह. राज.-7/1436
92. वहीं,- 7/276,
93. कठि शोके, धातु. भ्वादि.- 273
94. नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः, अष्टा. 3/1/134
95. इदितो नुम् धातोः, अष्टा. 7/1/58
96. द्विजेन्द्रेमरकण्ठे तु याते शिवसमानताम्। राजा प्रमदकण्ठस्य ययौ तज्जस्य शिष्यताम्॥ कल्ह. राज.- 6/276
97. वहीं,- 1/18, 1/20, 1/101, (1/102- बाद) 8/3411, 3412
98. शुच शोके, धातु. भ्वादि.- 191
99. अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्टुट्टुट्टुअष्टा. 3/3/19
100. प्रपौत्रः शकुनेस्तस्य भूपतेः प्रपितृव्यजः। अथावहदशोकाख्यः सत्यसंधो वसुन्धराम्॥ कल्ह. राज.- 1/101
101. वहीं,- 7/1001, 7/1003
102. वहीं,- 3/463
103. वहीं,- 3/215

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. अमरकोष, (अमरसिंह विरचित) सं. पं शिवदत्त और पं. वासुदेव पणीशीकर, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी : 2013.
2. अष्टाध्यायीसूत्रपाठ (पाणिनिमुनिप्रणीत), रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ, सोनीपत, हरियाणा : 1988.
3. उणादिकोष, व्या. ईश्वरचन्द्र, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली : 2008
4. धातुपाठ (पाणिनिमुनिविरचित), रामलाल कपूर ट्रस्ट, रेवली (सोनीपत हरियाणा) : 2006.
5. राजतरङ्गिणी (कल्हणकृत), भा. रघुनाथसिंह, हिन्दी प्रचार संस्थान, वाराणसी : 1970.
6. राजतरङ्गिणी कोश, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी : 1967
7. वाचस्पत्यम् (छः भाग), चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला, ग्रं. सं. 14, वाराणसी : 1969.
8. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी (भट्टजोजिदीक्षित, बालबोधिनी तत्त्वबोधिनी युक्त), सं.- गिरिधरशर्मा परमेश्वरानन्द शर्मा, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली : सं. 10; 2001.
9. शब्दकल्पद्रुम, (पाँच भाग), चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला , ग्रन्थ संख्या 93, वाराणसी : 1967.

ISSN 2278 - 0327

दक्खिनी हिन्दी : इतिहास एवं साहित्य

डॉ. विशेष कुमार राय
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
जे०एस०हिन्दू (पी०जी०) कालेज, अमरोहा

किसी भी भाषा, साहित्य, संस्कृति इत्यादि का अध्ययन करने से पूर्व निर्मित धारणाओं एवं पूर्वाग्रहों से मुक्त हो जाना चाहिए। यदि प्रश्न भाषा का है, तो अध्येता को भाषा के साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक अवदान पर दृष्टि केन्द्रित करनी चाहिए। मुकम्मल अध्ययन के लिहाज से यह एक महत्वपूर्ण शर्त है, किंतु विडम्बना है कि किसी भी भाषा का अध्ययन एक तय दायरे में होता आया है। यह तय दायरा जहाँ एक तरफ अध्येता की दृष्टि के विस्तार में बाधा उत्पन्न करता है, वहीं दूसरी ओर अध्ययन किए जा रहे विषय के साथ भी न्याय नहीं होने देता। इसलिए किसी भी भाषा के अध्ययन में सावधानी बरतनी चाहिए। बोलचाल की सामान्य भाषा में जिसे आज खड़ी बोली (हिन्दी) कहा जाता है तथा जो भारत गणराज्य की राजभाषा है, उसकी एक शैली दक्खिनी हिन्दी के नाम से विकसित हुई। हिन्दी की यह शैली अपने विकास क्रम में सुदूर दक्षिण भारत में जन्मी। विद्वानों एवं भाषाविदों का एक वर्ग यह मानता आया है कि खड़ी बोली एवं दक्खिनी हिन्दी एक ही भाषा की दो शैलियाँ हैं। उदयनारायण तिवारी के अनुसार-'*..... दक्खिनी, हिन्दी की ही एक शैली है, इसका यह नाम देशपरक है और इसमें अपेक्षाकृत विदेशी (अरबी-फारसी) शब्दों की मात्रा भी अल्प है।*' [1]

यह जानना दिलचस्प है कि खड़ी बोली जो दिल्ली-मेरठ-बिजनौर क्षेत्र में निर्मित-विकसित हुई, वह कैसे अपने आरंभिक दिनों में सुदूर दक्षिण भारत में एक महत्वपूर्ण साहित्यिक भाषा के रूप में विकसित हुई। अमीर खुसरों के काफी समय बाद तक साहित्य में खड़ी बोली का प्रयोग नहीं मिलता। कबीर आदि की भाषा में यदा-कदा उसका रूप मिल जाता है। इस समय तक बोलचाल की भाषा में इसका इस्तेमाल होने लगा था, किंतु साहित्यिक प्रयोग के प्रमाण नहीं मिलते। ठीक इसी दौर में खड़ी बोली की एक नवीन शैली दक्षिण भारत में विकसित हुई, जो साहित्य में बरती जाने लगी थी। बकौल बाबूराम सक्सेना-'*.....जिस बोलचाल की भाषा में अमीर खुसरों और शेख फरीदुदीन शकरगंजी आदि प्रारम्भ काल के रचनाकारों ने रचना की और जिसका साहित्य उत्तर भरत में लुप्त होकर, दक्खिन में 15वीं, 16वीं और 17वीं ई0 सदी में फूट निकला, उसका नाम हिन्दवी और हिन्दी था और उसी को दक्खिनी साहित्यकार कभी-कभी दक्खिनी भी कहते थे। 'उर्दू' नाम दक्खिनी के किसी कलाकार के ग्रंथ में नहीं आया।*' [2] इस तरह खड़ी बोली के आंरभिक काल में दक्खिनी हिन्दी निर्मित-विकसित हुई।

भाषा का इतिहास बताता है कि भाषाओं के विकास में आपसी मेलजोल की प्रक्रिया का विशेष महत्व है। दरअसल भाषा नदी की तरह होती है, जो अनेक छोटी-बड़ी धाराओं के योग से बनती है। भाषा के विकास हेतु उसका नदी की भाँति प्रवाहमान होना आवश्यक है, तभी उसके जल की निर्मलता बनी रहेगी। एक ही स्थान पर सीमित रहने के कारण तालाब का पानी दूषित होता है। खड़ी बोली जो दिल्ली-मेरठ-बिजनौर एवं आस-पास के इलाकों की बोलचाल की भाषा थी, वह अपने आस-पास की तमाम स्थानीय बोलियों से प्रभावित थी।

इन बोलियों में एक तरफ ब्रज भाषा, तो दूसरी ओर बांगरू एवं मेवाती थी। हिन्दी की यह उदारवादी प्रवृत्ति रही कि उसने तमाम भाषाओं-बोलियों के अनेक शब्दों को खुद में इस तरह मिला लिया कि आज उनकी अलग पहचान कर पाना मुश्किल है। खड़ी बोली के विकास के प्रथम दौर में अरबी-फारसी जैसी विदेशी भाषाओं के तमाम शब्द भी इसमें घुल-मिल रहे थे। इस समय दिल्ली पर मुस्लिम शासन था। शासन के लिहाज से फारसी विशेष महत्व की भाषा थी। यही उस दौर में राज भाषा के पद पर आसीन रही। इस सब का प्रभाव खड़ी बोली के विकास पर भी हुआ। उसने मुक्त हृदय से नए सहज शब्दों का स्वागत किया। विदेशी भाषाएं भी हिन्दी से प्रभावित हुई। भाषाओं का विकास ऐसे ही हुआ करता है।

उत्तर एवं दक्षिण भारत में प्राचीनकाल से ही गहरा सम्बन्ध रहा है। जब दो संस्कृतियों -सभ्यताओं का सम्पर्क होता है, तो उनकी भाषा, रहन-सहन, आचार-विचार एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। दो संस्कृतियों का यह सम्पर्क कभी-कभी इतना दूरगामी होता है कि एक नई भाषा, एक नई संस्कृति का ही जन्म हो जाता है। उत्तर एवं दक्षिण भारत के संबंध को इतिहास में वैदिक युग तक पीछे ले जाया जा सकता है। जब आर्य एवं द्रविड़ संस्कृति में सम्पर्क कायम हुआ, तो दोनों ने एक-दूसरे को गहरे स्तर तक प्रभावित किया। इन दोनों संस्कृतियों के सम्पर्क का परिणाम बड़ा दूरगामी रहा। प्राचीन काल से ही लोग धार्मिक, राजनीतिक एवं अन्य कारणों से उत्तर से दक्षिण एवं दक्षिण से उत्तर भारत की यात्रा करते रहे। मुस्लिम शासन में बढ़ती साम्राज्यवादिता की भावना ने इस सम्पर्क को अभूतपूर्व गति प्रदान की। इतिहासकार सतीश चंद्र के अनुसार-*'यात्री, व्यापारी, तीर्थ यात्री और घुमक्कड़ साधु सदा से..... आते-जाते रहे थे तथा दक्षिण और उत्तर में जहाँ हर एक के अपने विशेष सांस्कृतिक स्वरूप थे, उन्हें एक रूप में बाँधते रहे थे। तुगलकों द्वारा दक्कन विजय तथा उत्तर और दक्षिण के मध्य आवागमन के साधन सुगम हो जाने के कारण दोनों क्षेत्रों में व्यापारिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध दृढ़तर हो गए थे। दिल्ली सल्तनत के पतन के पश्चात बहुत से सूफी सन्त और नौकरी की तलाश में कई अन्य व्यक्ति बहमनी सुल्तानों के दरबारों में पहुँचे थे।'* [3]

गौरतलब है कि उत्तर एवं दक्षिण भारत के सम्बन्धों ने मध्यकाल में नई करवट ली। विदेशी शासकों की आमद एवं उनके साम्राज्य विस्तार के अभियानों ने इसे गति प्रदान की। समय-समय पर भिन्न शासकों ने राज्य विस्तार हेतु दक्षिण भारत की ओर कूच किया। सन् 1295 ई0 में अलाउद्दीन खिलजी ने देवगिरी पर चढ़ाई की थी। वहीं सन् 1306-1307 ई0 में मलिक काफूर अपने अभियान के तहत देवगिरी (दौलताबाद) पहुँचा। इन अभियानों के दौरान बहुत से लोगों का उत्तर से दक्षिण भारत जाना हुआ। इनमें से काफी संख्या में लोग वहीं रह गए और दौलताबाद तथा आस-पास के क्षेत्रों में बस गए। इन लोगों में प्रशासनिक अधिकारी, व्यापारी, धार्मिक प्रचारक, सैनिक एवं श्रमिक इत्यादि शामिल थे। इस समुदाय के कारण उस क्षेत्र में एक नई भाषा का जन्म हो रहा था। शीघ्र ही इस भाषा में विपुल साहित्य भी रचा गया। इस बारे में रामकिशोर शर्मा का विचार है कि-*'दक्षिण की ओर कई बार उत्तर के मुसलमानों का आक्रमण हुआ। अलाउद्दीन खिलजी (1307 ई0), मुहम्मद तुगलक (1327), निजाम (1723 ई0) की दक्षिणी प्रदेशों की विजय सम्बन्धी उपलब्धियाँ महत्वपूर्ण हैं। समय- समय पर पंजाब और दिल्ली के आस-पास के लोग जो सैनिक राज-कर्मचारी, धर्म प्रचारक के रूप में गुजरात, महाराष्ट्र, हैदराबाद के कुछ क्षेत्रों में बस गए, अपनी मूल बोली को यहाँ भी प्रयुक्त करते रहे, उसी बोली को दक्खिनी कहा गया।'* [4]

मुस्लिम शासकों के दक्षिण भारत के अभियानों के क्रम में ही सन् 1327 ई0 में मुहम्मद बिन तुगलक ने राजधानी परिवर्तन का आदेश जारी किया। दिल्ली के स्थान पर उसने दक्षिण के दौलताबाद को राजधानी बनाने का निर्णय लिया। इस आदेश के फलस्वरूप लाखों की संख्या में जनता ने दिल्ली से दौलताबाद की ओर प्रस्थान किया। बाद में तुगलक द्वारा राजधानी परिवर्तन के फैसले को पलटने के बावजूद बड़ी संख्या में लोग वहीं रह गए। इन लोगों ने ही अपनी भाषा को बारहा हिन्दवी, हिन्दी, गूजरी और दक्खिनी हिन्दी इत्यादि नामों से संबोधित किया, किंतु इसका सर्वमान्य नाम दक्खिनी हिन्दी ही रहा। इसके नामकरण के सम्बन्ध में यह स्पष्ट है कि ' दक्खिनी' शब्द देशपरक है। बाबूराम सक्सेना इस बाबत कहते हैं-*'हिन्दी या हिन्दवी का दक्खिनी कहलाना केवल इन दक्खिनी रज्यों से सम्बन्ध के कारण है।'* [5]

यह गौरतलब है कि दक्खिनी हिन्दी में रचना करने वाले अधिकांश साहित्यकारों का जोर अपनी भाषा को दक्खिनी हिन्दी कहने पर रहा है। किसी भी रचनाकार ने अपनी भाषा को उर्दू नही कहा है। इससे यह भी पता चलता है कि भले ही ये लोग सुदूर दक्षिण में जाकर बस गए मगर अपनी भाषा को नहीं भूले। कई लेखकों में अपनी भाषा के प्रति अभिमान साफदिखाई देता है-*' दक्खिनी भारतीय मुसलमानों की भाषा में स्वभावत: अरबी, फारसी तथा तुर्की के शब्द अपेक्षाकृत अधिक थे, किन्तु उन लोगों ने स्वाभिमानपूर्वक अपनी भाषा को दक्खिनी या दक्खिनी हिन्दी ही कहा है। किसी दक्खिनी मुसलमान ने उसका नामकरण उर्दू नहीं किया।'* [6] दक्खिनी हिन्दी के साहित्यकार भी अपनी भाषा को हिन्दी की शैली मानते थे, न कि उर्दू की शैली या कोई दूसरी भाषा। जहाँ वे उर्दू शब्द से भी परहेज करते हैं, वहीं दक्खिनी के साथ हिन्दी शब्द जोड़कर अपनी भाषा से जुड़े भी रहना चाहते थे। दक्खिनी की अनेक कविताओं में यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है। उदाहरण के लिए मीरांजी शम्सुलउश्शाक अपने प्रसिद्ध ग्रंथ खुशनामा में लिखता है-*' ये हिन्दी बोलूं सब'* [7] मुल्ला वजही अपने प्रसिद्ध ग्रंथ सबरस में हिन्दी जबान की बात करता है। मनलगन में बहरी साफ शब्दों में यह घोषणा करता है

कि '*हिन्दी तो ज़बान च है हमारी।*' [8] इब्राहीमनामा का अब्दल और इसी तरह कई अन्य लेखक भी अपनी भाषा को हिन्दी या दक्खिनी हिन्दी कहते हैं। सूरदास से भी पहले हुए दक्खिनी के कवि बुरहानुद्दीन जानम (1422 ई0), तो ऐब (दोष) न रखके हिन्दी बोलने की बात कहता है–

'यह सब बोलू हिन्दी बोल, पन तू अनभौ सेती खोल,
ऐब न राखें हिन्दी बोल.....' [9]

इसी तरह मुहम्मद कुल्ली भुजा पर ताबीज बाँधकर दिल से वचन लेता है कि वह हिन्दी से दूर न हो–

'मैं उस बुते हिन्दी के राख्या हूँ, दिल में लिख वचन ताबीज।
वो मुजते दूर ना होये त्यों किया बुज पर बँदन तावीज।।' [10]

मुकीमी जो कि इरान का फारसी का बड़ा शायर था, वह भी दक्खिनी हिन्दी की महिमा का गुणगान करता है। गौरतलब है कि 17वीं शती तक दरबारों में इस भाषा का महत्व काफी बढ़ गया था। इस समय तक दक्खिनी हिन्दी में कई बड़ी रचनाएं सामने आ चुकी थीं। कुल मिलाकर यह दक्खिनी हिन्दी के उत्कर्ष का काल था। समय की गति को पहचानकर मुकीमी फारसी पोशाक को पांव की बेड़ी बताते हुए, रेशमी हिन्दी की ओर निगाह डालने की बात करता है–

'हरीरे हिन्दवी पर कर तूँ तस्वीर, लिबासे पारसी है पाय-जंजीर।' [11] इन कविताओं से स्पष्ट होता है कि ये सारे कवि अपनी भाषा को हिन्दी कहते हैं। इसके साथ ही दक्खिनी हिन्दी के साहित्यिक महत्व का पता भी इन कविताओं से चलता है।

देखा जाए, तो दक्खिनी हिन्दी को यह महत्व अचानक ही नहीं मिल गया। अपने विकास की प्रक्रिया में यह भाषा इस स्तर तक पहुँची। जिन लोगों ने दौलताबाद व उसके आस-पास के क्षेत्रों में अपना निवास बना लिया उनमें से अधिकांश दिल्ली व आस-पास के इलाकों के निवासी थे। बाकी अन्य हिन्दी क्षेत्रों से सम्बन्धित थे। ये लोग भी दिल्ली की खड़ी बोली ठीक-ठीक बोलते-समझते थे। जो मुसलमान प्रारंभ से ही दक्षिण में रह रहे थे या उत्तर भारत से आए थे, वे स्वयं को मुल्की या दक्खिनी कहते थे। धार्मिक एवं व्यवसायिक कारणों के चलते बहुत से विदेशी मुसलमान भी इन क्षेत्रों में रह रहे थे, जिनकी भाषा अरबी, फारसी व तुर्की थी। इन मुसलमानों को वहाँ गैर मुल्की या आफाकी कहा जाता था। इस तरह भाषाई स्तर पर वहाँ तीन वर्ग हो गए। पहले दक्षिण के मूल निवासी जो मराठी, कन्नड़ व तेलगु इत्यादि दक्षिण भारतीय भाषाएं बोलते थे, दूसरा वर्ग खड़ी बोली बोलने वाले लोगों का था एवं तीसरा वर्ग अरबी, फारसी व तुर्की इत्यादि विदेशी भाषाओं का प्रयोग करता था। खड़ी बोली बोलने वाला वर्ग थोड़ी-बहुत अरबी-फारसी समझता था क्योंकि फारसी उत्तर भारत में शासन की भाषा थी। इसके साथ ही यह वर्ग अरबी, फारसी व तुर्की भाषी जनता के सम्पर्क में भी रहता आया था।

उत्तर भारत से गए लोगों की भाषा में ब्रज, अवधी, पंजाबी, राजस्थानी के साथ ही अरबी व फारसी इत्यादि का प्रभाव भी विद्यमान था। आफाकी लोग फारसी भाषा में रचना कर रहे थे एवं उत्तर भारतीय लोग अपनी भाषा में। किंतु इन दोनों ही वगों की लिपि फारसी थी। इन भाषाओं के आपसी सम्पर्क एवं तेलगु, कन्नड़ व मराठी भाषाओं के प्रभाव से भाषा का एक नया रूप जन्म ले रहा था, जो आगे चलकर दक्खिनी हिन्दी के नाम से जाना गया।

'दक्खिनी के विकास में दिल्ली, मेरठ और बिजनौर के आस-पास बोली जाने वाली खड़ी बोली का मुख्य हाथ है। इसी में अपनी अरबी, फारसी के शब्द मिलाकर इस नई भाषा का जन्म हुआ था।' [12]

किसी भी भाषा का भविष्य राज सत्ता की कृपा पर निर्भर करता है। सत्ता जिस भाषा को राज्याश्रय प्रदान करती है, वही भाषा साहित्य एवं ज्ञान-विज्ञान की प्रमुख भाषा भी बन जाती है। इतिहास भी ऐसी भाषाओं को याद रखता आया है। दक्खिनी हिन्दी के विकास में भी राजकीय संरक्षण का महत्वपूर्ण योगदान रहा। 1347 ई0 के आस-पास गुलबर्गा में स्वतंत्र राज्य (हसन गंगोही बहमनी) कायम होने के पश्चात गुलबर्गा में मुस्लिम संस्कृति के एक नए केन्द्र का निर्माण आरंभ हुआ। आगे चलकर बहमनी शासकों ने दक्खिनी मुसलमानों के साथ ही उत्तर से आए हिन्दुओं को भी प्रोत्साहित किया एवं उनकी संस्कृति में रूचि ली। इस प्रकार आपसी सम्पर्क से विकसित हो रही भाषा को प्रचार-प्रसार का अवसर मिला। तत्कालीन राजनीतिक वातावरण बड़ा ही अस्थिर था। दक्षिण में कोई भी वंश दीर्घकाल तक के लिए अपनी सत्ता नहीं स्थापित कर पाया था। तथापि प्राप्त राजकीय संरक्षण के सहारे दक्खिनी हिन्दी फलती-फूलती रही। दक्खिनी के साहित्यकार बहमनी, कुतुबशाही, आदिलशाही, निजामशाही, वरीदशाही व मुगल इत्यादि दरबारों की मदद से साहित्य सृजन करते रहे। किंतु आदिलशाही एवं कुतुबशाही राज्य में दक्खिनी अपने उत्कर्ष पर रही *'दक्खिनी साहित्य बीजापुर के आदिलशाही राज्य और गोलकुंडा के कुतुबशाही राज्य में खूब चमका। दोनों राज्य के सुल्तान न केवल कवि रक्षक थे, बहुधा स्वयं अच्छे कवि थे।'* [13] इन शासक कवियों के प्रोत्साहन की नीति के चलते

दक्खिनी को विकास का भरपूर अवसर मिला। इसके साथ ही उत्तर भारत की तरफसे लगातार हो रहे सैनिक अभियानों, व्यापारियों एवं धर्म प्रचारकों के आवागमन के कारण भी इसे प्रचार-प्रसार का मौका मिलता रहा।

प्रचार-प्रसार के अपने इस क्रम में दक्खिनी अपने आस-पास की अन्य बोलियों एवं भाषाओं से प्रभावित होती रही। हिन्दी की यह लचीली प्रवृत्ति रही है कि उसने अन्य भाषा के शब्दों से कभी परहेज नहीं किया। आवश्यकतानुसार उसने अपनी प्रकृति के अनुरूप सहज शब्दों को ग्रहण किया है। लम्बे समय तक दक्खिनी बोलचाल की भाषा बनी रही होगी। उत्तर भारतीय जनता जो दक्षिणी खित्ते में बस गई, वह मौखिक रूप में इसका प्रयोग करती रही। धीरे-धीरे इसमें साहित्य भी लिखा जाने लगा और दरबारी संरक्षण प्राप्त हो जाने पर इसका साहित्यिक महत्व अपने आप बढ़ गया। यह महत्वपूर्ण तथ्य है कि जिस समय दिल्ली व आस -पास के क्षेत्रों में खड़ी बोली केवल बोलचाल की भाषा थी और उसमें साहित्य रचना नहीं हो रही थी, उस समय तक दक्खिनी हिन्दी में साहित्य सृजन आरंभ हो चुका था-*'..... दक्खिनी हिन्दी कविता का आरम्भ खवाजा बंदानेवाज (1341 ई0) अर्थात् विधापति के समय से होता है।'* [14] इस तरह दक्खिनी में आदिकाल के अंत व भक्तिकाल की शुरूआत के समय से ही साहित्य सृजन आरंभ हो गया था। इस समय तक खड़ी बोली हिन्दी की रचनाएं नहीं आई थीं। राहुल सांकृत्यायन के अनुसार *'उत्तर में खड़ी (हिन्दी) बोली की कविता 19वीं सदी के अन्त में नाममात्र और सो भी बेमन से हुई। वस्तुत: उसका आरंभ 20वीं सदी के आरम्भ से होता है।..... दक्षिण में गुलबरगा, गोलकुंडा और बीजापुर में खड़ी हिन्दी की कविता उस वक्त शुरू हुई, जिस वक्त मैथिलकोकिल विद्यापति अपने मधुर गीतों से प्राची को मुखरित कर रहे थे। किन्तु उसकी प्रौढ़ता का जमाना वहीं है, जब कि सूर और तुलसी की कविताओं के रूप में ब्रजभाषा और अवधी की कविताएं उन्नति के शिखर पर पहुँची। ..... दक्खिनी का अंतिम महाकवि वली (1700 ई0) उर्दू-कविता का आरंभ भी करता है।'* [15]

भक्तिकाल में जब ब्रज एवं अवधी भाषा में काव्य रचना हो रही थी, उस समय दक्खिनी हिन्दी अपने चरम उत्कर्ष पर थी। इसी समय उसे मुल्ला वजही, सुल्तान मुहम्मद कुल्ली कुतुब और मुल्ला गौवासी के रूप में तीन महाकवि प्राप्त हुए। महत्वपूर्ण है कि दक्खिनी में कविता के उत्कर्ष पर पहुँचने के साथ ही गघ में भी बेहतरीन साहित्य लिखा जाने लगा था। मुल्ला वजही का प्रसिद्ध ग्रंथ सबरस दक्खिनी हिन्दी गद्य की शानदार प्रस्तुति है। दक्खिनी की रचनाओं में पर्याप्त विविधता देखने को मिलती है। पद्य के साथ ही गद्य भी प्रयोग में लाया गया। काव्य में मुक्तक के साथ ही उत्कृष्ट प्रबंध काव्य भी पर्याप्त मात्रा में लिखा गया। इस साहित्य की विषयवस्तु के बारे में कहा जा सकता है कि *'दक्खिनी भाषा में रचनाओं की विविधता रही है। पद्य और गद्य दोनों पर्याप्त मात्रा में लिखा गया है। वजही का सबरस तत्कालीन गद्य का श्रेष्ठतम उदाहरण है। कविता में भी विविध प्रकार की पुस्तकें लिखी गईं। मरसिया अथवा शोकगीत, गीतों और मसनवियों की प्रधानता थी। मसनवियों का प्रमुख विषय प्रेम, सूफी विचारधारा, धर्म, विभिन्न ऐतिहासिक घटनाएं, सामान्य ज्ञान की वस्तुएं, अलौकिक घटनाएं, नैतिकता ही थी।'* [16]

विषयवस्तु की यह विविधता दक्खिनी की समृद्ध साहित्यिक परंपरा का प्रमाण है। तमाम रचनाकारों ने दक्खिनी में उत्कृष्ट सहित्य की रचना की। इसी दौरान इस भाषा में कई प्रसिद्ध ग्रंथों की रचना हुई। दक्षिण पर औरंगजेब के आक्रमण के पहले तक हिन्दी एवं दक्खिनी की अलग पहचान कायम नहीं हुई थीं। उसके बाद से ही इसे दक्खिनी कहने का सिलसिला आरंभ हुआ। इससे पहले के तमाम रचनाकार अभिमानपूर्वक अपनी भाषा को हिन्दवी या हिन्दी कहते आए थे।

मुगल आक्रमण के बाद ही इसे दक्खिनी कहा जाने लगा। किंतु, इसके साथ हिन्दी लगाकर खड़ी बोली हिन्दी के साथ इसकी अभिन्नता कायम रखने की कोशिश की गई। हिन्दी के साथ इस जुड़ाव को बाद में भी देखा गया। उर्दू के शायर मिर्जा गालिब भी अपनी भाषा को हिन्दवी और रेख्ता कहते हैं। यह कहा जा सकता है कि दक्खिनी साहित्य खड़ी बोली हिन्दी के साहित्य का आदि रूप है। खड़ी बोली के गद्य की शुरूआत पर इस नजरिए से बात किए जाने की आवश्यकता है। क्या दक्खिनी का गद्य खड़ी बोली गद्य की परंपरा का आंरभ नहीं ? इस दृष्टि से भी विचार किया जाना चाहिए। वजही के गद्य का यह साफ-सुथरा रूप देखा जाना चाहिए।

'तूँ कहाँ का है, इस जागाँ तूँ क्यों आया ? इस शहर को बाट तूँ क्यों पाया ?'

तुझे कौन दिखलाया ?' वैसे सबरस को मुल्ला वजही की मौलिक कृति नहीं माना जाता किंतु इसका महत्व असाधारण है *'.....वह अपने कवितामय गद्य के रूप में विशेष महत्व रखता है। तुलसीदास के तुरन्त बाद या समकालीन गद्य का क्या रूप था, इसका वह एक अच्छा नमूना है।'* [17] उस दौर में इतना उत्कृष्ट गद्य उत्तर भारत के हिन्दी साहित्य में नहीं मिलता। वजही के अलावा

अन्य लेखकों ने भी गद्य में रचनाएं की मगर उनका स्तर सबरस के काव्यमय गद्य जैसा श्रेष्ठ नहीं बन सका है यद्यपि उनका अपना महत्व है।

गद्य के साथ ही दक्खिनी में श्रेष्ठ कविताएं भी लिखी गईं। यद्यपि दक्खिनी में अरबी, फारसी इत्यादि विदेशी भाषाओं के शब्द शामिल होते जा रहे थे मगर इसके लेखकों ने अपनी रचनाओं में देसीपन कायम रखने की पूरी कोशिश की है। कई कवियों ने हिन्दी के भक्तिकालीन सूफी कवियों की भाँति ही भारतीय जन-जीवन को अपने काव्य का विषय बनाया है। कई रचनाओं में भारतीय व इस्लामी संस्कृति के समन्वय का प्रयास भी दिखाई देता है। इन कवियों की कई कविताएं ऐसी हैं जिन्हें देखकर लगता है कि हिन्दी के किसी उत्तर भारतीय कवि की रचनाएं हें। शाह बुरहानुद्दीन जानम जो कि सूरदास से भी पहले के कवि हैं; अपनी एक कविता में लिखते हैं-

'बहुरूप परगट आप छिपाया, कोइ न पाया अन्त।
माया मोह में सब जग बध्या, क्यों कर सूझे पन्थ।।'[18]

वहीं शाह अली मुहम्मद माशूकअल्ला (1566 ई0) की एक कविता है-

'ढूँढन निकली पीव कूँ, अपस गई सो खोय
जिधर देखूं एक हूं, मुंज बिन और न कोय'

कुली कुतुब शाह दक्खिनी के बड़े कवियों में प्रमुख स्थान रखते हैं। उसकी कविताओं में धार्मिक पर्वों के साथ ही तमाम रीति-रिवाजों का वर्णन भी खूब मिलता है। इसके साथ ही मुहम्मद कुली कुतुबशाह को ऋतु वर्णन में महारत हासिल थी। वसंत, वर्षा व शीत इत्यादि ऋतुओं का बड़ा ही मनोहारी वर्णन उसकी कविताओं में मिलता है। एक कविता में वसंत की खुमारी का वर्णन वे यूँ करते हैं-

'वसन्त की खुमारी नयन में भरी
हिंडोले नैन दिल डुलाया वसन्त'[20]

विभिन्न ऋतुओं की सुंदरता इनकी कविताओं में देखते बनती है। मुहम्मद अमीन अयागी (1641 ई0 से पूर्व) अपनी कविता में निर्गुण ईश्वर का स्मरण करते हुए कहता है-

अव्वल कुच न था वो निरंकार था।
दोनों जग कू पैदा करनहार था।।[21]

आयागी की कविता में रतन, त्रिभुवन, नीर, कुन्दन, गगन एवं पवन इत्यादि हिन्दी शब्दों का खूब प्रयोग मिलता है। इसी तरह दक्खिनी के अंतिम महाकवि वली की कविताओं में भी भारतीय जन-जीवन का वर्णन देखा जा सकता है। एक कविता में वे बैरागी का वर्णन करते हुए कहते हैं-

'बिरागी जो कहाते हैं, उसे घर-बार करना क्या।
हुई जोगिन जो पी की, उसे संसार करना क्या।।'[22]

इन कविताओं पर सूफी दर्शन एवं एकेश्वरवाद का प्रभाव साफदेखा जा सकता है। किंतु भारतीय एवं इस्लामी संस्कृति के समन्वय का महत्पूर्ण प्रयास भी दक्खिनी की कविता में मिलता है। उमर (1814 ई0) अपनी एक मसनवी में लिखता है-

'निरंजन रूप अलख निर्गुन निराकार
वही खालिक वही राजिक जहाँदार'[23]

शाहमियाँ तुराब दखनी (1840 ई0) अपने रिसाले में राम का स्मरण करते हुए कहते हैं-

'अरे मन तुझे राम का घर कते है
भइ पंचभूत का तुझ कू जेवर कते है.....
बजुज राम के कोई साती नहीं है।' [24]

इस प्रकार दक्खिनी की कविताओं में भारतीय जन-जीवन की अभिव्यक्ति हुई है। खड़ी बोली हिन्दी एवं दक्खिनी हिन्दी में लिपि भेद के अतिरिक्त अन्य कोई भिन्नता नजर नहीं आती। वास्तव में ये एक ही भाषा की दो शैलियाँ हैं। यदि लिपि भेद को भुला दिया जाए तो इनके साहित्य में कोई अंतर नहीं दिखता।

हिन्दी की भक्तिकालीन प्रेमाख्यान परंपरा की भाँति ही दक्खिनी में भी प्रेमाख्यान रचना की परंपरा मिलती है। दक्खिनी के कवि अवधी भाषा की प्रेमाख्यान परंपरा से अच्छी तरह परिचित थे। कई प्रेमाख्यानों में अवधी के प्रेमाख्यानों का जिक्र मिलता है। कई विद्वान निजामी को दक्खिनी हिन्दी का प्रथम प्रेमाख्यान रचयिता स्वीकार करते हैं। उनकी रचना 'कदमराव व पदम' को दक्खिनी की पहली प्रेमाख्यान रचना माना जाता है। इस रचना में अरबी-फारसी की अपेक्षा हिन्दी के शब्दों की अधिकता मिलती है। इसके अलावा दक्खिनी में अनेक प्रेमाख्यान रचे गए। इनमें कुतुबमुश्तरी (मुल्ला वजही), मैना सतवती, सैफुल मुलूक व बदीउल्जमाल, तूतीनामा (गव्वासी), चन्दर वदन व महियार (मुकीमी), फूलबन (इब्न निशाती), गुलशने इश्क (नुसरती), बहराम गुल अन्दाम (तबई), तालिब मोहनी (मीर सैयद), बहराम व हुस्नबानो (अमीन), गुलजारे इश्क या रिजवान व रूहअफ्जा (मौलवी मोहम्मद वाकर आगाह), हश्शाम व कमर (मीर नजीबुल्लाह) इत्यादि प्रमुख प्रेमाख्यान रचनाएं हैं। इनके अतिरिक्त भी कई रचनाएं लिखी गईं। गुलाम अली ने जायसी के पदमावत का अनुवाद (1680 ई0) किया। गुलाम अली के अलावा पदमावत के अन्य अनुवाद भी किए गए किंतु गलाम अली का

अनुवाद सर्वश्रेष्ठ है। दक्खिनी में युसूफ-जुलेखा के अनुवाद की परंपरा भी मिलती है। दक्खिनी के प्रेमाख्यानों की यह विशेषता रही कि अपने कथ्य में वे विशुद्ध रूप से प्रेमाख्यान ही हैं। दक्खिनी के बहुत से रचनाकार सूफी दर्शन या इस्लाम के अनुयायी रहे, मगर उनकी कृतियों में उनके मतवाद की छाया भी नजर नहीं आती है। यह इन लेखकों की उदारता का ही परिचायक है।

इस प्रकार दक्खिनी के समृद्ध साहित्य की यह परंपरा अविरल रूप से चलती रही। खड़ी बोली एवं दक्खिनी में लिपिगत भिन्नता के अतिरक्त ज्यादा भेद नहीं नजर आता। भाषा वैज्ञानिक आधार पर भी खड़ी बोली एवं दक्खिनी हिन्दी दोनों हिन्दी का ही रूप लगती हैं। दक्खिनी में हिन्दी के साथ ही फारसी की कुछ ध्वनियाँ भी प्रयुक्त होती हैं। बाबूराम सक्सेना के अनुसार-*'हिन्दी बोलचाल के सभी स्वर..... दक्खिनी में भी मौजूद हैं।..... हिन्दी बोलचाल के सभी व्यंजन भी दक्खिनी में मौजूद हैं।'* [25] इसी तरह की अन्य समानताएं भी मौजूद हैं जो खड़ी बोली एवं दक्खिनी को हिन्दी की दो शैलियों प्रमाणित करती हैं क्योंकि *'खड़ी बोली की सभी विशेषताएं दक्खिनी में विद्यमान हैं। उदाहरण के रूप में खड़ी बोली के स्वरों को प्रस्तुत किया जा सकता है।'* [26] यदि दक्खिनी हिन्दी के आरंभिक साहित्य को देखें, तो यह सन्देह होगा कि यह खड़ी बोली के निकट हैं या नहीं; इसके लिए परवर्ती रचनाओं का अनुशीलन करना होगा क्योंकि भाषा जिन परिवर्तनों को सहज स्वीकार कर लेती है उन्हें साहित्य में स्वीकृति पाने में समय लग सकता है। भाषा वैज्ञानिक एवं साहित्यिक, दोनों ही दृष्टियों से यह स्पष्ट होता है कि दक्खिनी वास्तव में दक्षिण भारत में विकसित खड़ी बोली का ही एक रूप है। डॉ0 बाबूराम सक्सेना, डॉ0 सुनीति कुमार चाटुर्ज्या एवं डॉ0 राम शरण शर्मा इत्यादि विद्वानों एवं भाषाविदों का भी यही मत है। डॉ0 सुनीति कुमार चाटुर्ज्या दक्खिनी के साहित्य को खड़ी बोली एवं उर्दू साहित्य का आदि रूप मानते हैं। उनका विचार है कि *'ईसा की अट्ठारहवीं शती में दक्खिनी साहित्य की प्रेरणा और उसके दृष्टान्त से दिल्ली की खड़ी बोली वाला साहित्य और बाद में खड़ी बोली वाले हिन्दी साहित्य का शिलान्यास हुआ। इसलिए हम दक्खिनी साहित्य को उर्दू तथा हिन्दी के खड़ी बोली से सम्बन्धित साहित्य का आदि रूप कह सकते हैं। यह साहित्य धारा वर्तमान हिन्दी तथा उर्दू साहित्य का उत्पत्ति स्थान है।'* [27]

वासुदेवशरण अग्रवाल का विचार है कि जैसे अपभ्रंश साहित्य के सामने आने पर हिंदी भाषा साहित्य की सीमा रेखा इतिहास में काफी पीछे चली गई उसी प्रकार दक्खिनी का साहित्य भी हिन्दी का विस्तार करेगा। अत: इस दृष्टि से दक्खिनी भाषा एवं उसके साहित्य का अध्ययन करने की आवश्यकता है। दक्खिनी के साहित्य को अनुवाद के माध्यम से सामने लाया जाए ताकि हिन्दी भाषा एवं साहित्य का दायरा विस्तृत हो सके। लिपिगत भिन्नता के अलावा दोनों में कोई भेद नहीं। खड़ी बोली एवं दक्खिनी दोनों ही हिन्दी की शैलियाँ हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. हिन्दी भाषा उद्गम और विकास, उदयनारायण तिवारी, पृष्ठ संख्या-186, भारती भण्डार, प्रयाग, प्रथम संस्करण सं0 2012 वि0
2. दक्खिनी हिन्दी, बाबूराम सक्सेना, पृष्ठ संख्या-39, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, 1952 संस्करण।
3. मध्यकालीन भारत, सतीश चंद्र, पृष्ठ संख्या-37, एन0 सी0 इ0 आर0 टी0, 1978 संस्करण।
4. हिन्दी भाषा का विकास, प्रो0 रामकिशोर शर्मा, पृष्ठ संख्या-103, श्यामा प्रकाशन संस्थान इलाहाबाद, 2007 संस्करण।
5. दक्खिनी हिन्दी, बाबूराम सक्सेना, पृष्ठ संख्या-17.
6. दक्खिनी हिन्दी और उसके प्रेमाख्यान, डॉ0 रहमत उल्लाह, पृष्ठ संख्या-13-14, अनुभव प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 1982.
7. दक्खिनी हिन्दी का उद्भव और विकास, डॉ0 श्रीराम शर्मा, पृष्ठ संख्या-21, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1964 संस्करण।
8. वही, पृष्ठ संख्या-22.
9. दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा, राहुल सांकृत्यायन, पृष्ठ संख्या-8, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, 1959 संस्करण।
10. वही, पृष्ठ संख्या-123.
11. वही, पृष्ठ संख्या-223.
12. दक्खिनी हिन्दी और उसके प्रेमाख्यान, पृष्ठ संख्या-18.
13. दक्खिनी हिन्दी, बाबूराम सक्सेना, पृष्ठ संख्या-36.
14. दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा, राहुल सांस्कत्यायन, पृष्ठ संख्या-17.
15. वही, पृष्ठ संख्या-251
16. दक्खिनी हिन्दी और उसके प्रेमाख्यान, डॉ0 रहमत उल्लाह, पृष्ठ सं.24.
17. दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा, राहुल सांकृत्यायन, पृष्ठ संख्या-17.
18. दक्खिनी का गद्य और पद्य, श्रीराम शर्मा, पृष्ठ संख्या-54, प्रकाशन विभाग, हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद, 1954 संस्करण।
19. वही, पृष्ठ संख्या-67.
20. वही, पृष्ठ संख्या-74.
21. वही, पृष्ठ संख्या-117.
22. दक्खिनी हिन्दी, बाबूराम सक्सेना, पृष्ठ संख्या-107.
23. दक्खिनी का गद्य और पद्य, श्रीराम शर्मा, पृष्ठ संख्या-239.
24. वही, पृष्ठ संख्या-256.
25. दक्खिनी हिन्दी, बाबूराम सक्सेना, पृष्ठ संख्या-43-44.
26. दक्खिनी हिन्दी उद्भव और विकास, श्रीराम शर्मा, पृष्ठ संख्या-28.
27. दक्खिनी का गद्य और पद्य, श्रीराम शर्मा, पृष्ठ संख्या-6.

ISSN 2278 - 0327

गीता में सांस्कृतिक मूल्यों की शाश्वत धारा

डॉ. रामचन्द्र
अध्यक्ष- संस्कृत विभाग
इन्स्टीट्यूट ऑफइन्टीग्रेटिड एण्ड ऑनर्स स्टडीज
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

भारतीय संस्कृति सनातन संस्कृति है। सम्पूर्ण मानवता के कल्याण के समस्त सूत्र इस संस्कृति की मूलधारा में ओतप्रोत है। जीवन के प्रत्येक पहलू को अद्भुत रूप से आनन्दनिमग्न होकर जीने की कला इस संस्कृति की पहचान है। वेद भारत के आधार ग्रन्थ हैं। भारतीय संस्कृति वेदमूलक संस्कृति है। इस गौरवमयी परम्परा का आधार यजुर्वेद में प्राप्त होता है जहाँ इसे विश्व की प्रथम तथा वरण करके योग्य संस्कृति बताते हुए कहा गया है –

सा संस्कृतिः प्रथमा विश्ववारा ।[1]

ब्राह्मणग्रन्थों, स्मृतिग्रन्थों, उपनिषदों से लेकर श्रीमद्भगवद्गीता पर्यन्त इसी उज्ज्वल संस्कृतिधारा का प्रवाह दृष्टिगोचर होता है। आध्यात्मिकता के जल से इस पावनी संस्कृति का पल्लवन हुआ है। बृहदारण्यकोपनिषद् डिण्डिमघोष करते हुए सन्देश देती है – *आत्मा वा अरे द्रष्टव्य श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेयि ।*[2]

यहाँ पर महर्षि याज्ञवल्क्य ने आत्मा के दर्शन, श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन पर विशेष जोर दिया है। जब तक व्यक्ति आत्मालोचन के बिना जीवन यापन करेगा तब तक संसार में त्रासदी बनी रहेगी, यह शाश्वत सत्य है। वर्तमान विश्व में आत्मचिन्तन का निरन्तर ह्रास हो रहा है – जिसका दुष्प्रभाव सबके समक्ष है। भारतीय मनीषियों के इस दिव्य चिन्तन को भगवान कृष्ण ने सम्पूर्ण रूप से अपनी दिव्य वाणी श्रीमद्भगवद्गीता में प्रस्तुत किया है। गीता की इस दिव्यता का गान स्वयं श्रीकृष्ण गीता के अठारहवें अध्याय में करते हैं –

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ।।[3]
सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः ।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ।।[4]

गीता की इस सकल जगत्कल्याणकारिणी अमोघा वाक् के कुछ दिव्य अमृत कण यहाँ प्रस्तुत हैं –

वर्णाश्रम व्यवस्था

भगवान कृष्ण ने मानव समाज की सहज प्रवृत्ति का अनुसन्धान करके गीताशास्त्र में चातुर्वर्ण्य धर्म की प्रतिष्ठा की है–

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।
तस्य कर्त्तारमपि मां विद्धकर्त्तारमव्ययम् ।।[5]

यहाँ श्रीकृष्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र के रूप में वर्णाश्रम धर्म की प्रतिष्ठापना करते हैं। वर्तमान समय में चातुर्वर्ण्य संस्कृति का विलोप हो गया है और उसका स्थान जाति व्यवस्था ने ले लिया है। इससे समाज में निरन्तर कटुता, वैमनस्य एवं अविश्वास का वातावरण बना हुआ है। वस्तुतः प्राचीन भारत में शिक्षा काल में ही विद्यार्थी के ज्ञान, शौर्य, व्यवहार एवं सेवा के भाव का आकलन करके उसके वर्ण की उद्घोषणा की जाती थी। यह एक अद्भुत सांस्कृतिक महायज्ञ था और इससे सम्पूर्ण प्रजा में समदृष्टि और संसृष्टि का भाव निरन्तर बना रहता था। आज भी समाज में वर्णाश्रम परम्परा की इस दिव्य ज्ञान मुक्ति माला की पुनः प्रतिष्ठापना होनी चाहिए।

यज्ञीय संस्कृति

गीता में यज्ञीय संस्कृति का महिमा गान किया गया है। यज्ञ केवल अल्पकालिक कर्मकाण्ड का नाम नहीं है। यज्ञ वस्तुतः एक जीवन पद्धति है जिसमें मनुष्य स्वार्थ भाव का परित्याग करके परमार्थ भाव को अपनाता है। गीता में प्रत्येक कर्म को यज्ञीय कर्म बनाने का उपदेश है –

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर।।[6]

गीता का स्पष्ट कथन है कि आदिकाल में स्वयं प्रजापति ने प्रजा को उपदेश दिया कि तुम यज्ञिय कर्म का विस्तार करो और यह यज्ञ तुम सब को इच्छित भोग प्रदान करने वाला सिद्ध होगा –

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोस्त्विष्टकामधुक् ।।[7]

समस्त प्रकृति भी इस यज्ञिय आदान प्रदान से अनुगृहीत होती है और परस्पर स्वार्थ परित्याग पूर्वक कर्मानुष्ठान की इस दिव्य सनातनी परम्परा से परस्पर सबका कल्याण होगा –

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ।।[8]

यज्ञीय परम्परा को सर्वोत्तम मानते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि यज्ञ से अवशिष्ट अन्न को ग्रहण करने वाले के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और जो इस महान कर्त्तव्य परायणता का त्याग करके स्वार्थ का जीवन जीते हैं वे वस्तुतः पाप के ही भागी हैं –

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।। गीता 3/13

वर्तमान विश्व की असंख्य समस्याओं का समाधान गीता की इस यज्ञीय संस्कृति में सन्निहित है।

दैवासुरसम्पद्

श्रीमद्भगवद्गीता के सोलहवें अध्याय में सामाजिक प्रवृत्ति का अनुसन्धान किया गया है। श्रीकृष्ण यहाँ कहते है कि दिव्यता जीवन का परम धर्म है। दैवी प्रकृति व्यक्ति को मुक्ति मार्ग की दिशा में अग्रसर करती है और आसुरी प्रकृति व्यक्ति को बन्धन का राह दिखाती है –

दैवीसम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता।
मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव।।[9]

दैवी सम्पद् का विस्तार से वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि अभय, चित्त की प्रसन्नता और निर्मलता, तत्त्वज्ञान की साधना, दम, दान, यज्ञ, स्वाध्याय, तप और अन्तःकरण की सरलता दैवी सम्पद् के प्राथमिक लक्षण हैं–

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ।।[10]

आगे श्रीकृष्ण अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, निन्दा न करना, दया, अलोभ, कोमलता, लज्जा और अचपलता को भी इसी में सम्मिलित करते हैं –

अहिंसा सत्यमक्रोधः त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ।।[11]

गीताकार ने यहाँ पर अन्य श्लोकों में भी विस्तार से दैवी सम्पदा का विवेचन किया है। इसके बाद वे दर्प, दम्भ, अभिमान, क्रोध, अज्ञान, कठोरता आदि आसुरी सम्पदा का वर्णन करते हैं।[12]

श्रीकृष्ण का कथन है कि जब तक समाज में दैवी प्रकृति का विस्तार तथा आसुरी प्रकृति का क्षरण नहीं होगा तब तक सामाजिक विषमता समाप्त नहीं हो सकती। वर्तमान युग में सर्वत्र यही दृष्टिगोचर हो रहा है।

गीता वस्तुतः सांस्कृतिक, आध्यात्मिक और जीवन उन्नयन करने वाले दिव्यों तत्त्वों का प्रतिपादक महाग्रन्थ है। इसका अध्ययन, मनन और चिन्तन सांस्कृतिक त्रिवेणी को प्रवाहित करेगा। इससे समाज में समरसता पूर्ण वातावरण का विस्तार किया जा सकता है और यही वर्तमानयुग की महती आवश्यकता है।

सन्दर्भ

1. यजुर्वेद, 7/4
2. बृहदारण्यकोपनिषद् 4/5/6
3. गीता, 18/63
4. वही, 18/64
5. वही, 4/13
6. वही, 3/9
7. वही, 3/10
8 वही, 3/11
9. वही, 16/5
10. वही, 16/1
11. वही, 16/2
12. वही, 16/4

ISSN 2278 - 0327

राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा के विविध आयाम

डॉ. हनुमान प्रसाद चौधरी
अध्यक्ष, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग
शिवहर्ष किसान पी० जी० कालेज, बस्ती

प्राय: राष्ट्रीय सुरक्षा का अधिकांश अध्ययन राष्ट्र विशेष की समस्याओं और उनके प्रति उस राष्ट्र विशेष के दृष्टिकोण से ही किया जाता है। सामान्यत: राष्ट्रीय सुरक्षा को स्पष्ट करते समय चिन्तक उसे केवल सैनिक दृष्टिकोण से ही देखते हैं। जबकि राष्ट्रीय सुरक्षा एक व्यापक अवधारणा है। इसका व्यवस्थित एवं संगठित अध्ययन किया जाना आवश्यक है। इसी को दृष्टिगत रखते हुए इसके विविध आयामों का विश्लेषण किया जा रहा है। राष्ट्र एक अवधारणा है, जिससे हमारा तात्पर्य एक भौतिक सांस्कृतिक और राजनीतिक ईकाई से है। स्त्रातेजिक चिन्तन के दृष्टिकोण से राष्ट्रीय सुरक्षा का अर्थ है, 'राष्ट्र की भौतिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक स्वरूप की रक्षा करना है।' ध्यातव्य है कि रक्षा एवं सुरक्षा एक दूसरे के पर्यायवाची नही है, क्योंकि सुरक्षा का क्षेत्र व्यापक होता है, जबकि रक्षा तो सुरक्षा का एक अंश मात्र है। सुरक्षा एक व्यापक राजनीतिक विचारधारा है, जबकि रक्षा तात्कालिक सैन्य परिस्थितियों से सम्बद्ध समस्या है। इस प्रकार सुरक्षा के परिपालन मे उत्पन्न समस्याओं या वास्तविक खतरों का सामना रक्षा के द्वारा किया जाता है। राष्ट्रीय सुरक्षा की आवश्यकता सदैव न होकर यदा–कदा ही होती है, जबकि सुरक्षा के लिए राजनीतिक एवं कूटनीतिक प्रयास सदैव चलते रहते हैं।

किसी भी राष्ट्र की सुरक्षा में उसकी भौगोलिक सामर्थ्य, जनबल, सशस्त्र सेनायें, औद्योगिक प्रगति, वैज्ञानिक एवं तकनीकी आधार और विकास, आर्थिक सामर्थ्य एवं व्यवस्था, जनमानस का मनोबल एवं राष्ट्र की इच्छा शक्ति सम्मिलित होती हैं। रक्षा सर्वदा राष्ट्रीय शक्ति एवं क्षमता से प्रत्यक्ष जुड़ी होती है, जबकि सुरक्षा का क्षेत्र व्यापक भी है और जटिल भी। इसमें वे सभी उपाय सम्मिलित होते हैं जो सुरक्षा के विरूद्ध वास्तविक या सम्भावित खतरों का सामना करने के लिए अपनाये जाते हैं। जितनी अधिक सुदृढ़ एवं सशक्त राष्ट्र की रक्षा तैयारियाँ होगी, उतना ही अधिक वह सुरक्षा के प्रति अपने को आश्वस्त महसूस करेगा। राष्ट्रीय सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए राष्ट्र को मात्र सैन्य दृष्टि से ही नहीं, बल्कि प्रत्येक दृष्टिकोण से सबल होना आवश्यक है, क्योंकि राष्ट्रीय सुरक्षा की व्यापकता तो रक्षा से कहीं अधिक गहरी और जटिल है। इसके अन्तर्गत उन तमाम तथ्यों का समावेश होता है, जो राष्ट्र को अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर सामाजिक तथा राजनीतिक पहचान देते हैं। राष्ट्रों का इतिहास यह बताता है कि एक राष्ट्र का अस्तित्व दूसरे राष्ट्र को असुरक्षित करता रहा है। एक राष्ट्र द्वारा अपनी सुरक्षा के लिए किये गये प्रयास बहुत से अन्य कारणों के साथ मिलकर युद्ध को ही जन्म देते रहे हैं। सुरक्षा ऐसी अवधारणा है, जिसमें पृथक्–पृथक् व्यक्ति पृथक्–पृथक् परिस्थितियों में अपने आपको दूसरे से सुरक्षित या असुरक्षित अनुभव करता हैं। यही बात राष्ट्रों पर भी चरितार्थ होती है। एक राष्ट्र द्वारा किये गये सुरक्षा के प्रयास दूसरे राष्ट्र को अपनी सुरक्षा के लिए खतरा दिखाई देते है।

अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों में न कोई शास्वत मित्र है और न कोई शत्रु। यदि कुछ शास्वत है तो वह है राष्ट्रीय हित। वास्तव में अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों के एक तत्व के रूप में अन्तरराष्ट्रीय राजनीति की दो अटल वास्तविकतायें हैं– 1– राष्ट्रीय हित 2– सैन्य शक्ति की महत्ता।

राष्ट्रीय सुरक्षा समस्या की व्याख्या के दो प्रमुख अवधारणा का वर्णन अधिकांश साहित्यों में उपलब्ध है– पहला– यथार्थवादी विचारधारा जो शक्ति को ही राष्ट्रीय सुरक्षा समस्याओं के समाधान का आधार मानती है और दूसरी विचारधारा शान्ति की अवधारणा पर आधारित है। शक्ति की अवधारणा के माध्यम से राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा पर चिन्तन करने वाले विचारकों की विचारधारा का प्रतिनिधित्व ई० एच० कार तथा हंस मार्गेन्थाऊ[1] द्वारा किया जाता है। जिन्होनें अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों में यथार्थवादी संप्रत्यय की स्थापना की। इन विचारधाराओं से दो भाव प्रकट होते हैं। पहला– कोई राष्ट्र जब शक्ति संचित करके प्रबल स्थिति में पहुँच जाता है, तो वह राष्ट्र सुरक्षित हो जाता है अर्थात् सुरक्षा शक्ति व्युत्पादित है। दूसरा किसी राष्ट्र में जब शान्ति स्थापित हो जाती है, तो वह राष्ट्र सुरक्षित हो जाता है अर्थात् सुरक्षा शान्ति व्युत्पादित है। इसका आशय है कि जब कोई राष्ट्र पर्याप्त शक्ति संचित करके चिरस्थाई शान्ति स्थापित करने में सफल हो जाता है, तो वह अपने आप सुरक्षित हो जाता है। इसका अर्थ है, सुरक्षा शक्ति व शान्ति, या सुरक्षा और

शक्ति पर आधारित है। परन्तु यदि हम अन्तरराष्ट्रीय राजनीति तथा राष्ट्रों की पारस्परिक क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं का गहन अध्ययन करें, तो यह आभास हो जाता है कि सुरक्षा की अवधारणा, शक्ति और शान्ति की अवधारणा के समान ही उपयोगी है। सुरक्षा शक्ति की सहयात्री है, उसके द्वारा व्युत्पादित नहीं। सुरक्षा शान्ति की पूर्व शर्त है, उसका परिणाम नहीं।

यद्यपि राष्ट्रीय सुरक्षाओं के प्रति जागरण तथा राष्ट्रीय सुरक्षा के सम्बन्ध में वृहद अध्ययन द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् ही प्रारम्भ हुई लेकिन इसकी अवधारणा का प्रयास पहले भी किया गया है। राष्ट्रीय सुरक्षा समस्या पर व्यापक अध्ययन करने पर पता चलता है कि इस विषय पर कई विचारकों ने चिन्तन-मनन का प्रयास अपने अनुसार किया है।

मैकियावेली, माइकल लाब, डब्लू० डब्लू० काफमैन, हिनरी किसिंजर, रार्बट आस्गुड, थामस सेलिंग, बर्नाड ब्राडी, सैमुअल हटिंगटन, ग्लेस्नाइडर, हरमन कान्ह, ए० वोल्स्टेटर, हेडली वुल, रेमाण्ड सरोन, मार्टन वर्कोविट्ज, पी० जी० वूके, वाल्टर लिपमैन, स्टीफन डी क्रेजनर, हैराल्ड ग्राउण्ड बाउन, रावर्ट मैनवरा, कैनिथ वाल्टज, रार्वट जारविस, गर्ट क्रेल, लियोनार्ड बेटन, अरनाल्ड वुल्फर, जान हर्ज, जैसे अनेक विद्वानों ने अपनी अपनी विचारधारा के अनुसार राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा की व्याख्या करने का प्रयत्न किया है। इन्हीं समकालीन विचारकों के विचार को दृष्टिगत रखते हुए राष्ट्रीय सुरक्षा की पारम्परिक तथा समकालीन अवधारणा का अलग-अलग विश्लेषण किया जा रहा है।

राष्ट्रीय सुरक्षा की पारम्परिक अवधारणा:

पारम्परिक अवधारणा के रूप में किसी भी राष्ट्र को उसकी सुरक्षा हेतु बाह्य आक्रमण एवं अन्तर्कलह से बचने के लिए आगाह किया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि राजनीति की सहायता से राष्ट्रीय सुरक्षा सुनिश्चित की जाए। इसके लिए राष्ट्र को अपनी सशस्त्र सेनाओं का निर्माण करना तथा उसे आधुनिकतम साजो-सामान से लैस करना आवश्यक होता है। प्रथम सैन्य विचारक मैकियावेली के अनुसार-''शासक को दो चीजों से डरना चाहिए, शासितों द्वारा राज्य के भीतर की जाने वाली विध्वंसक कार्यवाही और विदेशी शक्तियों के द्वारा किये जाने वाले आक्रमण से । आक्रमण से बचने के लिए उसके पास अच्छी सशस्त्र सेना का होना और अच्छे मित्रों का होना आवश्यक है। यदि उसके पास विदेशी शक्तियों के साथ सम्बन्ध अच्छे होगें, तो राज्य के धरेलू मामले भी सुचारू रूप से चलते रहेगें। यदि वे पहले षड्यन्त्र द्वारा खराब न कर दिये गये हो।[2]

सैनिक शक्ति किसी राष्ट्र की सुरक्षा का अंग होती है क्योंकि इसके बिना न तो किसी भी क्षेत्र, स्थान व संसाधन की सुरक्षा की जा सकती है और न ही शान्तिपूर्वक अपना चतुर्मुखीविकास ही किया जा सकता है। इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि आक्रमणकारियों के विरूद्ध सैनिक शक्ति सुदृढ करके ही बचा जा सकता है। सुरक्षा एवं सैन्य तैयारियॉ कोई नवीन संकल्पना नहीं है। पुरातनकाल से ही राज्यों की सुरक्षा सरकारों का प्रमुख उत्तर दायित्व रहा है महाभारत मे भीष्म का यह कथन है कि -

उदीर्णमनसो योधा वाहनानि च भारत।
यस्यां भवन्ति सेनायां ध्रुवं तस्यां परोजयः।। (महाभारत, शान्ति पर्व)

उक्त कथन से यह सिद्ध होता है कि भारत में भी सुरक्षा की अवधारणा प्राचीन काल से ही विद्यमान रही है। इसी तरह प्लेटो, अरस्तु, मैकियावली आदि ने भी सुरक्षा के प्रश्न को महत्वपूर्ण माना है। मैकियावेली ने तो यहॉ तक कहा है, ''नए या पुराने सभी राज्यों की नींव अच्छे कानून और अच्छे आचरण पर पड़ीहै।''[3] मैकियावेली की उक्त अवधारणा से यह स्पष्ट होता है कि कोई भी राष्ट्र अपनी सुरक्षा का आधार अपनी अच्छी और समर्थ सेना के अभाव में नहीं रख सकता है। मैकियावेली ने राष्ट्रीय सुरक्षा हेतु अच्छे मित्रों की आवश्यकता पर भी बल दिया है लेकिन यदा कदा मित्रता की आड़ में भी एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र की सुरक्षा के लिए खतरा बन जाते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि सुसज्जित एवं समर्थ सैन्य शक्ति एवं सन्तुष्ट प्रजाजन ही पारम्परिक रूप से राष्ट्रीय सुरक्षा के मूलाधार रहें है।

राष्ट्रीय सुरक्षा की समकालीन अवधारणा:

यद्यपि राष्ट्रीय सुरक्षा की पारम्परिक अवधारणा को किसी भी काल में अमान्य नहीं किया जा सकता और उसकी महत्ता हर काल में है। लेकिन फिर भी वर्तमान शताब्दी की अन्तरराष्ट्रीय कठिनाइयों के बीच राष्ट्रीय सुरक्षा की पारम्परिक अवधारणा संर्कीण प्रतीत होती है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में ऐसे राष्ट्रों को भी अपनी सुरक्षा सुनिश्चित करनी है, जिन्हें आक्रमण का भय नहीं है। वर्तमान में राष्ट्रों को अपने समस्त राजनीतिक एवं आर्थिक संक्रियाओं की सुरक्षा तथा अन्तरराष्ट्रीय व्यवस्था में अपने मूल्यों को स्थापित करने एवं कायम रखने में, प्रभुत्व की रक्षा भी राष्ट्रीय सुरक्षा में सम्मिलित है। उदाहरण स्वरूप अमेरिका पश्चिमी राजनीतिक संस्थाओं, आर्थिक ढाँचों, प्रजातन्त्र एवं स्वतन्त्रता के मूल्यों के रक्षार्थ, जिन पर धुरी राष्ट्रों ने आक्रमण किया था, अपनी परम्परागत पृथकतावादी नीति को त्याग कर मित्र राष्ट्रों के समूह में सम्मिलित हो गया था। जबकि उसकी प्रादेशिक अखण्डता को कोई खतरा भी नहीं था। द्वितीय विश्व युद्ध ने राष्ट्रीय सुरक्षा की नई अवधारणा को जन्म दिया और शीत युद्ध काल ने इसे नया आयाम दिया। शीत युद्ध काल में बडी शक्तियाँ अन्तरराष्ट्रीय प्रणाली में अपने प्रभुत्व को कायम रखने के लिए अपनी

सीमाओं से अधिक दूर कोरिया, वियतनाम, अफगानिस्तान, कुवैत और ईराक जैसे युद्धों में उलझ गईं। इस काल में अपने सामाजिक एवं राजनीतिक मूल्यों का विस्तार करना तथा अपने आर्थिक आधार को कायम एवं मजबूत रखना बड़ी शक्तियों का उद्देश्य रहा है। वर्तमान आणविक युग में स्त्रातजिक भयादोहन के कारण राष्ट्रीय सुरक्षा सम्बन्धी समस्याओं का निराकरण विदेश नीति एवं कूटनीतिक के माध्यम से करना सर्वमान्य अवधारणा बनती जा रही है। अत: राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा को नवीन परिस्थितियों में परिस्कृत एवं परिभाषित करने की आवश्यकता महसूस हो रही है। लेकिन इसके पहले राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा को विभिन्न विचारकों के मतानुसार जानना आवश्यक है। तद्नुक्रम में हम कुछ विचारकों की अवधारणा को जानने का प्रयास करते हैं।

1-**वाल्टर लिपमैन** के अनुसार- ''एक राष्ट्र की सुरक्षा तभी समझी जाती है, जब उसे युद्ध के निवारण के लिए अपने न्याय संगत हितों का बलिदान न करना पड़े तथा युद्ध थोपे जाने पर उसको कायम रख सके''।[4]

2-**निल्स ओरविक** के अनुसार- ''यदि राष्ट्रीय मूल्यों और आस्थाओं को किसी प्रकार की धमकी नहीं है, तो सुरक्षा औपचारिकता का मामला होगा''।[5]

3-**माइकल लाब** के अनुसार- ''राष्ट्रीय सुरक्षा वाह्य धमकियों से राष्ट्र को मुक्त बनाये रखने की स्थिति है''।[6]

4-**ट्रगर और सिमानी** के अनुसार- ''राष्ट्रीय सुरक्षा सरकार की नीतियों का एक अंग है, जिसका उद्देश्य राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा व पूर्ति हेतु राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय दृष्टिकोण के अनुकूल परिस्थितियों को उत्पन्न करना होता है''।[7]

5-**अर्नोडवॉल्फर्स** के अनुसार: ''वस्तुनिष्ठ अर्थ में सुरक्षा अर्जित मूल्यों के लिए खतरों की अनुपस्थिति को मापता है। एक भाव (व्यक्तिपरक), भय की अनुपस्थिति पर हमला किया जायेगा''।[8]

6-**ईयन वैलनी** के अनुसार: ''सुरक्षा अपने आप में युद्ध से एक सापेक्ष स्वतन्त्रता है, साथ ही आपेक्षाकृत उच्च अपेक्षा के साथ कि हार किसी भी युद्ध का परिणाम नही होगा, जो घटित होना चाहिए''।[9]

7-**माइकेल एच० एच० लो०**: ''राष्ट्रीय सुरक्षा में पारम्परिक रक्षा नीति और एक राज्य की गैर सैन्य कार्यवाहियाँ भी शामिल है ताकि प्रभाव डालने और अपने आन्तरिक अन्तरराष्ट्रीय उद्देश्य को पूरा करने के लिए एक राजनीति ईकाई के रूप में जिवित रहने की कुल क्षमता सुनिश्चित हो सके।''[10]

8- राष्ट्रीय सुरक्षा केमनोवैज्ञानिक पहलुओं की महत्ता का अनुभव करते हुए अमेरिका के पूर्व विदेशमन्त्री डॉ० हेनरी किसिंजर ने सुरक्षा की व्याख्या करते हुए बताया है कि, ''व्यापक अर्थों में राष्ट्रीय सुरक्षा में वह प्रत्येक क्रिया शामिल है जिसके द्वारा कोई समाज अपने अस्तित्व को सुनिश्चित करने या अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर आकांक्षाओं को साकार करने का प्रयास करता है।''[11] इसी कथन से मिलता जुलता विचार मार्टन वर्कोविट्ज तथा पी० जी० बूके का भी है। उनके अनुसार, ''राष्ट्रीय सुरक्षा किसी राष्ट्र की वह क्षमता होती है, जिसके द्वारा वह बाह्य धमकियों के विरूद्ध अपने आन्तरिक मूल्यों को बचाने का प्रयास करता है।''[12] राष्ट्रीय सुरक्षा की यह अवधारणा नई तो है परन्तु पर्याप्त नहीं है क्योंकि इनके अनुसार राष्ट्रीय सुरक्षा को बाह्य स्त्रोतों से धमकियाँ प्राप्त होती हैं परन्तु बहुत सी आन्तरिक धमकियाँ भी होती है, जो राष्ट्रीय सुरक्षा को प्रभावित करती हैं।

9-राबर्ट मैकनमारा ने सुरक्षा का विश्लेषण करते हुए बताया है कि सुरक्षा किसी राष्ट्र के विकास, स्वतन्त्रता एवं समृद्धि की मूलधारणा होती है उन्होनें कहा कि, ''विकास एवं सुरक्षा के बिना कोई सुरक्षा नही हो सकती है।''[13] वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यह अभिकथन अत्याधिक प्रासंगिक प्रतीत होता है इसलिए संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपने पच्चीसवें अधिवेशन (1970) में मान्यता प्रदान की है।[14]

हमें आन्तरिक विद्रोह तथा बाह्य शक्तियों की अप्रत्यक्ष राष्ट्र विरोधी कार्यवाही का भी आकलन करना चाहिए। हमारी आन्तरिक कमजोरियों के परिणाम स्वरूप बाह्य शक्तियाँ हमको खतरा पहुँचा सकती हैं। अमेरिका की आसूचना संस्था सी० आई० ए० के कारण ग्वाटेमाला एवं ईरान जैसे देशों की अपार क्षति हुई है। पाकिस्तान की आइ०एस०आई० के कारण भारत की आन्तरिक असुरक्षा एवं आतंकवादी गतिविधियों को प्रोत्साहन मिल रहा है। इस प्रकार राष्ट्रीय सुरक्षा विषयक चुनौतियाँ मिल रही हैं। इसे भी आक्रमण की श्रेणी में रखा जाना चाहिए। विगत कई वर्षों से 'आक्रमण' को परिभाषित करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संध में प्रयास चल रहा है, किन्तु सबको स्वीकार्य हो एवं न्याय संगत हो ऐसी परिभाषा पर नही पहुँचा जा सका है। कमजोर एवं छोटे राष्ट्र यह चाहते हैं कि बड़े राष्ट्रों द्वारा प्रयोग में लाई जाने वाली दबाव की नीति एवं आतंकवाद को भी इस परिभाषा में सम्मिलित किया जाए। परन्तु सम्पन्न राष्ट्र जो ऐसे दबावों का प्रतिरोध करने की स्थिति में है, इस दबाव की नीति को कूटनीति का न्यायोचित उपाय मानते हैं। अब प्रश्न यह उठ खड़ा होता है कि जब आक्रमण को परिभाषित नहीं किया जा सकता है तो सुरक्षा के प्रति धमकियों को परिभाषित करना या समझना और भी कठिन कार्य है।

अमेरिका का नया सिद्वान्त, स्त्रातजिक पहल का सिद्वान्त,''दुश्मन कुछ करे उसके पहले उसके खिलाफराष्ट्रीय सुरक्षा

का नया आयाम''। इसको जोड़कर किसी चिन्तक ने राष्ट्रीय सुरक्षा को परिभाषित करने का प्रयास नहीं किया है, जबकि यह एक सच्चाई है। आज अमेरिका अपने राष्ट्रीय हित की प्राप्ति ही राष्ट्रीय सुरक्षा मान रहा है तथा राबर्ट आस्गुड द्वारा दी गई राष्ट्रीय सुरक्षा की परिभाषा को चरितार्थ कर रहा है। रार्वट आस्गुड के अनुसार, ''अनिवार्य रूप से प्रत्येक कीमत पर राष्ट्रीय हितों को सुरक्षित करने के दृढ़ संकल्प को ही राष्ट्रीय सुरक्षा कहते है। राष्ट्रीय हितों में निहित राष्ट्र की प्रादेशिक अखण्डता, राजनैतिक स्वतन्त्रता और सरकार की मूल संस्थाओं जैसे तत्वों में न केवल राष्ट्र की उत्तरजीविता अपितु उसकी सामर्थ्य भी समाविष्ट होती है''[15]।

इसी प्रकार के विचार आई०डी०एस०ए० के पूर्व निदेशक एयर कोमोडोर जसजीत सिंह की भी है उनके अनुसार, ''राष्ट्रीय सुरक्षा द्वारा ही राष्ट्र अथवा राज्य बाह्य व आन्तरिक खतरों के विरूद्ध अपने मार्मिक मूल्यों को परिरक्षित कर सकते है।[16]

उक्त सभी विचारकों के विचार को एक साथ समाहित करते हुए कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय सुरक्षा के सुदृढ़ ढाचे के निर्माण हेतु सर्व प्रथम राष्ट्र के मार्मिक मूल्यों की पहचान तथा बाद में आन्तरिक व बाह्य सुरक्षा के विभिन्न खतरों के स्वरूप एवं प्रकृति का अध्ययन एवं विश्लेषण आवश्यक होता है। आन्तरिक व बाह्य कारक एक दूसरे से सम्बद्ध होने के साथ एक दूसरे को प्रभावित भी करते है। जहाँ एक ओर विभिन्न बाह्य राजनीतिक, आर्थिक व सैनिक दबाब राष्ट्र की आन्तरिक सुरक्षा व्यवस्था को प्रभावित करते हैं वही विभिन्न आन्तरिक समस्यायें बाह्य खतरों को जन्म देती है। वास्तविक रूप में राष्ट्रीय सुरक्षा का आधार इतना अधिक व्यापक है कि इसमें राष्ट्र के समस्त मानवीय व गैर मानवीय घटक सम्मिलित रूप से उसे प्रभावी बनाने में निर्णायक होते हैं। सुरक्षा सामर्थ्य व सुरक्षा भावना विकसित करने में न केवल सुदृढ सैन्य शक्ति की अहम भूमिका होती है। अपितु राष्ट्रीय हितों के सुरक्षार्थ अपेक्षित राष्ट्रीय शक्ति विकसित करना राष्ट्र के समस्त संसाधनों के उत्तम व आदर्श संयोजन व समस्या से ही सम्भव है। राष्ट्रीय नेतृत्व जनमत जनशक्ति, विचारधाराएँ, नागरिकों के त्याग व बलिदान की प्रवृत्ति एवं राष्ट्रवाद जैसे अनेकानेक कारक सुरक्षा सामर्थ्य के निर्माण व अनुरक्षण में उपयोगी कारक की भूमिका निभाते हैं। ऐसे शक्ति एवं सामर्थ्य से सुसज्जित राष्ट्र ही किसी बाह्य व आन्तरिक स्रोतों से उत्पन्न खतरों का सम्यक प्रतिकार करने में सक्षम व समर्थ होते है। अतएव आज बदले विश्व व्यवस्था में राष्ट्रीय सुरक्षा की व्यापक अवधारणा को चिन्हित कर आत्मसात् की आवश्यकता है।

वास्तव में राष्ट्रीय सुरक्षा के विविध अयामों के विश्लेषण के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा एक अन्तहीन पहेली है। इसमें क्या-क्या विषय सम्मिलित किया जाय और किसे छोड़ा जाये, यह विवादास्पद रहस्य है, क्योंकि दुनिया के नीति निर्धारकों ने सदैव राष्ट्रीय हित के साथ-साथ राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा को अस्पष्ट बनाये रखा है। तथपि उपरोक्त अवधारणाओं के तथ्यात्मक विश्लेषण के आधार पर राष्ट्रीय सुरक्षा को इस प्रकार व्याख्यायित किया जा सकता है।

''राष्ट्रीय हितों के प्रत्यय-अप्रत्यक्ष, मूर्त एवं अमूर्त तत्वों का वर्तमान एवं भविष्य के सापेक्ष सम्वर्धन एवं विकास ही राष्ट्रीय सुरक्षा है।''

सन्दर्भ सूची:-

1- HJ. Margenthau, Politics Among Nations: The struggle for Power and peace, (New York, University of Chicago Press, 1973) & E.H. Carr, The Twenty year's Crisis (1919-1939) (London, MacMillon 1946)

2- मैकियावेली, अनुदित शशिवन्धुभ, शासक (The Prince) नई दिल्ली पाकेट बुक्स 2002 पेज 107

3- E.M. Earl: Makers of Modern Strategy, P13

4- Waltes Lippmann: U.S Foreign Policy: Shield of Republic, Bostan, Mass 1943 P.35

5- NILLS Orvic, ''The Threat: Problems of Analysis'', International Journal, (Torronto) Vol.26No. 4Qutumn, 1971 P.675

6- Mycal lanwa, National Security: A Modren Approach,(Pretoria,1978) P10

7- Targer & Simonie: National Security and American Society, P.36

8- आरनोल्ड वोल्फर्स, ''नेशनल सिक्योरिटी ऐज एन एम्बिगुअस सिम्बल'', डिस्कार्ड एण्ड कोलेबरेशन, बाल्टीमोर, जॉन्स हापकिंस यूनिवर्सिटी प्रेस, 1962

9- Quated in National Security & International Relation: Dr. B.R. Pandey & Dr. R.S. Pandey Prakash Book Depo, Barailly, P. 2 to 5

10- Ibid

11- Ibid

12 - Morton Berkowitz and P.G. Booke National Security in David L Sills, ed. International Encyclopaedis of the Social Science (London, 1968)Vol.11 P.41-45

13- Robert Mc Namara the essence of security.(London 1968) quoted is P.S. Jairamu India's National Security and Fireign Policy,(New Delhi)1987 P.5

14- तूणीर, प्रियंका त्रिपाठी, सम्पादक डॉ० के० एन० पाण्डेय, वर्ष 3 अंक 8 वर्ष 2007

15- Quoted in Strategic Analysis December 1991, Vol.XIV, No.9 P.1073

16- Jasjeet Singh, Stratigic Analysis, NOV.1987 P.886

ISSN 2278 - 0327

वर्तमान स्थिति में श्वसन तंत्र पर पड़ रहा प्रभाव और योग द्वारा उपचार

सुनील कुमार
सहायक प्राध्यापक
चौधरी बंसीलाल विश्वविद्यालय, भिवानी

डॉ. अनुराग सचान
सहायक प्राध्यापक
चौधरी बंसी लाल विश्वविद्यालय, भिवानी

सारांशः-

वर्तमान समय में प्रदूषण सम्पूर्ण विश्व की सबसे बड़ी समस्या बनकर सामने आई है। प्रदूषण का सबसे अधिक दुष्प्रभाव मनुष्य के श्वसन तंत्र पर पड़ता है। जिसके कारण दमा, ब्रोंकाइटिस एवं एलर्जी आदि रोग बढ़ते जा रहे। ये बीमारियां अपना विकराल रूप धारण कर कम उम्र के बच्चों एवं नवयुवकों को भी अपना शिकार बना रही है। शेष धूल-मिट्टी और प्रदूषण के कण फेफड़ों में जमा हो जाते। नियमित प्राणायाम के अभ्यास से फेफड़ों साफ हो जाते हैं और कार्य क्षमता विकसित होती है। जिससे रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है और भविष्य में इन रोगों से बचे रहते हैं।

फिजियॉलाजी के अनुसार जो वायु हम श्वसन क्रिया के दौरान भीतर खींचते हैं तो हमारे फेफड़ों में जाती है और पूरे शरीर में फैल जाती है। इस तरह शरीर को जरूरी ऑक्सीजन मिलती है। एक सामान्य सांस लेने से फेफड़ों का चौथाई हिस्सा ही काम में आता है और बाकी तीन चौथाई हिस्सा शिथिल रहता है। फेफड़ों में लगभग 75 मिलियन कोशिकाएं होती है। जिसमें से लगभग 20 मिलियन छिद्रों/ कोशिकाओं तक ही आक्सीजन पहुंचती है बाकी 55 मिलियन छिद्र इसके लाभ से वंचित रह जाते हैं। इस कारण फेफड़ों से संबंधित कई बीमारियां पैदा हो जाती है। इनसे बचने के लिए नियमित प्राणायाम- भस्त्रिका अनुलोम-विलोम, उज्जई, आसन और शुद्धि क्रियाएं-कपॉलभाति, नेति, धौति की जाए। यौगिक क्रियाओं का अभ्यास मानव श्वसन तंत्र पर अनुकूल एवं सकारात्मक प्रभाव डालता है।

मुख्य शब्दः- प्रदूषण, योग शारीरिक क्षमता, प्राणायाम, फेफड़े।

वर्तमान परिस्थिति का श्वसन तंत्र पर प्रभावः-

श्वसन तंत्र मानव शरीर का वह महत्वपूर्ण अंग है जो हर क्षण कार्य करता हुआ शरीर को ऊर्जावान रखता है। परन्तु वर्तमान समय में प्रदूषण संपूर्ण विश्व की सबसे बड़ी समस्या बन गई। प्रदूषण का सबसे अधिक दुष्प्रभाव मनुष्य के श्वसन तंत्र पर पड़ता है ? वातावरण में फैलती अलग-अलग प्रकार की जहरीली गैसें, फैक्ट्रियों से निकलने वाला धुआं, ऑटोमोबाइल्स से उत्पन्न धुएं, प्लास्टिक एवं बढ़ते कचरे के ढेरों से निकलने वाली गैसें नाना प्रकार के श्वसन रोगों को जन्म दे रही हैं। बढ़ते वायु प्रदूषण के कारण श्वसन तंत्र से संबधित सर्दी, जुकाम, खाँसी, बोंकाइटिस, दमा एवं एलर्जी आदि रोग सामान्य होते जा रहे हैं। श्वसन तंत्र में विकार उत्पन्न होने पर मनुष्य की कार्य क्षमता एवं रोगप्रतिरोधक क्षमता क्षीण हो जाती है। वर्तमान समय में जहरीली रासायनिक दवाईयों एवं खतरनाक इन हेलरों का प्रयोग समाज में तेजी से बढ़ रहा है, परन्तु इनके प्रयोग से रोग, विकार एवं समस्या कुछ समय के लिए दब जाती हैं, जबकि मूल रूप से रोग समाप्त नहीं होता है, अपितु आगे चलकर ओर खतरनाक रूप से सामने आता है।

वायु मनुष्य के लिए कितनी जरूरी है इसका अनुमान आप इससे लगा सकते हैं। मनुष्य दिन भर में जो कुछ लेता है उसका 80 प्रतिशत भाग वायु है। प्रतिदिन मनुष्य 22000 बार सांस लेता है इस प्रकार प्रत्येक दिन में वह 16 किलोग्राम या 35 गैलन वायु ग्रहण करता है। वायु विभिन्न गैसों का मिश्रण है। जिसमें नाइट्रोजन की मात्रा 78 प्रतिशत जबकि 21 प्रतिशत ऑक्सीजन, .03 प्रतिशत कार्बन डाइऑक्साइड पाई जाती है तथा शेष 0.97 प्रतिशत में हाइड्रोजन, हीलियम, आर्गन, निपॉन, क्रिप्टन, जेनान, ओजोन तथा जल वाष्प होते हैं। वायु में विभिन्न गैसों की मात्रा उसे संतुलित बनाए रखती हैं। इसमें जरा-सा भी अंतर आने पर वह असंतुलित हो जाती है और स्वास्थ्य के लिए हानिकारक साबित होती है। इसका सीधा प्रभाव श्वसन तंत्र पर पड़ता है और बहुत से रोग पैदा होते हैं।

श्वसन तंत्र पर यौगिक क्रियओं का प्रभावः-

(1) षट्कर्म का प्रभावः-

शरीर में कफ दोष विकृत होने पर श्वसन क्रिया में बाधा

उत्पन्न होती है। धौति क्रिया कफ दोष का शमन करते हुए श्वसन क्रिया को सुचारू बनाती है।

- नेति क्रिया सम्पूर्ण श्वसन तंत्र पर सीधा सकारात्मक प्रभाव डालती है। नेति क्रिया से ई0एन0टी0 रोगों का शमन होता है। ई0 से ईयर, एन0 से नोज तथा टी से थ्रोट होता है। नेति क्रिया इन तीन महत्वपूर्ण अंगों का शोधन करते हुए इन पर सकारात्मक प्रभाव रखती है। इस क्रिया का वर्णन हठयोग में स्वामी स्वात्माराम करते हुए कहते हैं–इससे कपाल की शुद्धि होती है तथा नासिका आदि के मल दूर होतें हैं। साधक को दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है।
- वातक्रम कपालभाँति का अभ्यास नियमित करने से वायुकोष स्वच्छ बनते हैं। वायुकोषों के स्वच्छ बनने से फैफड़ों का अधिकाधिक भाग सक्रिय बनता है, जिससे मनुष्य की कार्यक्षमता विकसित होती है।
- व्युत्क्रम एवं शीतक्रम कपालभाँति जलतत्व द्वारा शरीर से कफदोष की निवृत्ति करते हैं जिससे श्वसन तंत्र अच्छे से कार्य करता है।
- त्राटक कर्म का अभ्यास श्वसन क्रिया संतुलित एवं सुव्यवस्थित करता है।
- षट्कर्म के अभ्यास से श्वसन अंगों का शोधन होता है, जिससे श्वसन तंत्र रोगमुक्त, स्वस्थ एवं सक्रिय बनता है।

(2) आसन का प्रभावः–

नियमित आसनों का अभ्यास श्वसन तंत्र पर प्रभाव डालता है। बहुत सारे शोधकर्ताओं ने यह सिद्ध कर दिया। उष्ट्रासन, गोमुखासन, भुजंगासन, सिंहासन, धनुरासन, श्लभासन चक्रासन, मत्स्यासन, ताड़ासन आदि आसनों का अभ्यास करने से वायुकोषों में फैलाव उत्पन्न होता है जिससे फेफड़ों की कार्यकुशलता एवं कार्यक्षमता बढ़ती हैं। आसन करने का महत्वपूर्ण नियम यह है कि आगे झुकते समय श्वास बाहर छोड़ते हैं, जबकि पीछे की ओर झुकते समय श्वास को अन्दर भरते हैं। इस प्रकार आसनों के अभ्यास से श्वसन क्रिया पर मस्तिष्क का नियंत्रण बढ़ता है। योगासनों का सम्मिलित समूह के साथ में सूर्य नमस्कार करने से मनुष्य का श्वसन तंत्र स्वस्थ, सक्रिय एवं रोगमुक्त बनता है।

(3) बंधों का प्रभावः–

बंधों के अभ्यास से हमारे फेफड़ों की कार्य क्षमता में वृद्धि होती है। विशेषकर जब सांस अन्दर भरकर जालंधर बंध लगाते हैं, सांस के अन्दर रूकने से अन्दर के तापमान में वृद्धि होती है गैंसों का आदान प्रदान ज्यादा होता है विजातीय तत्त्व अपना स्थान छोड़कर प्रश्वास के साथ बाहर आ जाते हैं। और फेफड़ों में होने वाले बहुत सारे रागों से बचाव हो जाता। जालंधर बंध का अभ्यास करने से श्वसन क्रिया पर भी नियंत्रण स्थापित होता है।

(4) प्राणायाम का प्रभावः–

प्राणायाम श्वसन तंत्र का एक खास व्यायाम है, जो फेफड़ों के मजबूत बनाने और रक्तसंचार बढ़ाने में मदद करता है। फिजियोलॉजी के अनुसार जो वायु हम श्वसन क्रिया के दौरान भीतर खींचते हैं वो हमारे फेफड़ों में जाती है। और फिर पूरे शरीर में फेल जाती है। मधु मक्खी के छत्ते के समान फेफडें लगभग 75 मिलियन कोशिकाओं से बने होते हैं। इनकी संरचना स्पंज के समान होती है। सामान्य श्वास जो हम सभी आमतौर पर लेते हैं उससे फेफड़ों के मात्र 20 मिलियन छिद्रों तक ही ऑक्सीजन पहुंचती है, जबकि 55 मिलियन छिद्र इसके लाभ से वंचित रह जाते है। इस वजह से फेफड़ों से संबधित कई बीमारियां जैसे ट्यूबरक्युलोसिस, रेस्पिरेट्री डिजीज, खांसी और ब्रोंकाइटिस आदि पैदा हो जाती है। नियमित प्राणायाम से इन सभी बीमारियों से छुटकारा मिल सकता है।

प्राणायाम के अभ्यास में पूरक, रेचक, अन्तः कुम्भक एवं बाह्य कुम्भक नामक चार महत्वपूर्ण क्रियाएं श्वसन तंत्र पर बहुत सकारात्मक प्रभाव डालती है ? इन क्रियाओं के विधिपूर्ण नियमित अभ्यास करने से श्वसन क्रिया पर नियंत्रण हो जाता है एवं श्वसन तंत्र के रोग दूर होते हैं। श्वसन तंत्र के लिए उपयोगी प्राणायामों में नाड़ी शोधन, अनुलोम–विलोम, सूर्यभेदी, उज्जायी व भस्त्रिका है। इसका नियमित अभ्यास करने से श्वसन तंत्र के विकारों से मुक्ति मिलती है व श्वसन स्वस्थ एवं सक्रिय बनता है।

निष्कर्ष–

वर्तमान स्थिति में श्वसन तंत्र के रोगों की संख्या बढ़ रही है। जिसमें दमा, बोंकाइरिस, एलर्जी, ट्यूबरक्पुलोसिस, खांसी आदि। जिस तरह से वायु प्रदूषित रही है। बीमारियां कम भी नहीं होगी। इनसे बचने का सबसे अच्छा उपाय नियमित यौगिक क्रियाएं करना है। यह सिद्ध हो चुका है। नेति क्रिया जहां नाक एवं गले की सफाई करती है जिनसे श्वसन क्रियाएं निर्बाध गति से होती है। कपालभॉति क्रिया फेफड़ों में जमा विजितीय तत्वों को बाहर निकालती और फेफड़ों को शुद्ध करती है। धौति क्रिया कफ दोष का शमन कर श्वसन क्रिया सुचारू बनाती है। नियमित योगासनों के अभ्यास से वायुकोषों में फैलाव उत्पन्न होता है। जिससे फेफड़ों की कार्यक्षमता बढ़ती है। बंधों के अभ्यास से जहां श्वसन को अन्दर या बाहर रोकते हैं उससे फेफड़ों की कार्य क्षमता में वृद्धि

होती है और श्वसन क्रिया पर नियंत्रण स्थापित होता है। यौगिक क्रियाओं में प्राणायाम का एक खास प्रभाव श्वसन तंत्र पर पड़ता है। जिससे फेफड़ों में स्पंज के आकार के लगभग 75 मिलियन छिद्र सुचारू रूप से कार्य करने लगते हैं। जिससे फेफड़े मजबूत बनते हैं और उनकी कार्यक्षमता में वृद्धि होती है। फेफड़ों की क्षमता को बढ़ाने में महत्वपूर्ण प्राणायाम नाड़ी शोधन, अनुलोम-विलोम, सूर्यभेदी, उज्जायी व भस्त्रिका है।

ये सभी यौगिक क्रियाए फेफड़ों की कार्यक्षमता को बढ़ाकर, उन्हें मजबूत बनाती हैं, प्रतिरोधक क्षमता को विकसित करती है जिससे हमें वर्तमान स्थिति में श्वसन तंत्र पर हो रहे प्रभाव व इससे होने वाले रोगों से बचते हैं।

संदर्भ सूची:-

1. मानव शरीर संरचना एवं योगाभ्यास का प्रभाव, डॉ0 मलिक राजेन्द्र प्रताप।
2. शरीर विज्ञान व योगाभ्यास, डॉ0 एन0पी0एस0 वर्मा।
3. आसन प्राणायाम मुद्रा बन्ध, स्वामी सत्यानन्द सरस्वती।
4. सम्पूर्ण योग विद्या, राजीव जैन।
5. प्राणायाम रहस्य, स्वामी रामदेव।
6. पातंजलयोग प्रदीप, गीता प्रेस गोरखपुर।
7. योग और रोग, डॉक्टर स्वामी कर्मानंद सरस्वती।
8. योग शिक्षा, डॉक्टर तारकनाथ प्रमाणिक
9. योग परिचय एवं परंपरा।

ISSN 2278 - 0327

हिंदू नैतिकता के स्रोत की तलाश में श्रुति और स्मृति

डॉ. नसीरुद्दीन मंडल
सहायक प्रोफेसर, दर्शन विभाग
कान्दि राज कॉलेज, मुर्शिदाबाद, पश्चिम बंगाल।

नीतिशास्त्र मानव व्यवहार के अच्छे और बुरे का विज्ञान है जहां मानव व्यवहार और आदतों का नैतिक मूल्यांकन किया जाता है। भारतीय शास्त्र न केवल सत्य की खोज की बात करते हैं, बल्कि मानव जीवन में सत्य की स्थापना की भी बात करते हैं। इस देश में धर्मशास्त्र के आधार पर वैदिक उपनिषदों का परीक्षण करके नैतिकता और जीवन दर्शन का जीवन जीना पुण्य का कार्य माना जाता है। इस पर चर्चा करते हुए भारतीय धर्मशास्त्र में नैतिकता की क्षमता को देखा जा सकता है। भारतीय शास्त्रों में जिस शब्द को नैतिकता का पर्याय माना जाता है, वह है 'धर्म', जिसे वैदिक नीतिशास्त्र या हिंदू नैतिकता के रूप में भी जाना जाता है। वेदों, उपनिषदों आदि जैसे मिथकों के अलावा, भारतीय धर्मशास्त्र के बीज रामायण, महाभारत जैसे स्मृतिया महाकाव्योंमें भी छिपे हुए हैं। इस शोध पत्र का उद्देश्य केवल 'श्रुति' और 'स्मृति' जैसे भारतीय शास्त्रों में नैतिकता की उत्पत्ति का पता लगाना है और यह उजागर करना है कि हमारे व्यक्तिगत जीवन में उनका पालन करके हमारा जीवन कैसे समृद्ध होगा।

नीतिशास्त्र वह ग्रंथ है जो मानव चरित्र की अभिव्यक्ति और मानव व्यवहार के अच्छे और बुरे से संबंधित है। यह शास्त्र मनुष्य के स्वैच्छिक कार्यों, आदतों और चरित्र के नैतिक मूल्य का न्याय करता है और इन कार्यों और व्यवहारों के अच्छे, बुरे, औचित्य, अनुचितता आदि के संकेतों और नियमों को निर्धारित करने का प्रयास करता है। इसीलिए नीतिशास्त्र को मानव व्यवहार का विज्ञान कहा जा सकता है। प्रोफेसर जॉन स्टुअर्ट मैकेंज़ी "A Manual of Ethics" ग्रन्थ नीतिशास्त्र की परिभाषा में कहता है – "Ethics may be defined as the study of what is right or good in conduct"[1]. इसीलिए बहुत से लोग नीतिशास्त्र को मानव जीवन के अर्थ का विज्ञान कहते हैं। लिली, पश्चिम में दर्शनशास्त्र के एक प्रोफेसर, नीतिशास्त्र का वर्णन इस प्रकार करते हैं – 'नीतिशास्त्र एक ऐसे समाज में मानव व्यवहार का एक आदर्श विज्ञान है जिसमें विज्ञान मानव व्यवहार का न्याय करता है कि यह सही है या गलत, अच्छा या बुरा, सही या गलत।'[2] विज्ञान चर्चा करता है किसी विचारधारा के सन्दर्भ में मानव व्यवहार अच्छा हो या बुरा, लोगों को उस विचारधारा के अनुसार जीने के लिए नैतिकता का कोई प्रयास नहीं होता, अर्थात् यहाँ व्यावहारिक पहलू की उपेक्षा की जाती है। दर्शन के प्रति दृष्टिकोण सिंथेटिक हैं, यानी हमारी भारतीय परंपरा के सैद्धांतिक और व्यावहारिक पहलुओं को समान महत्व दिया जाता है। भारतीय दर्शन न केवल सत्य की खोज की बात करता है, बल्कि जीवन में सत्य की स्थापना की भी बात करता है। इसलिए हमारी प्राचीन परंपरा को ध्यान में रखते हुए जीवन के अभ्यास के साथ जीवन शैली का एक अजीब संयोजन बनाया गया है। जीने के लिए सच्चा ज्ञान या सैद्धांतिक ज्ञान आवश्यक है। भारतीय दर्शन का उद्देश्य इस सिद्धांत के आलोक में जीवन को सत्य, सुंदर और परोपकारी बनाना है। पश्चिम में, सिद्धांत का ज्ञान दार्शनिक के जीवन को ज्यादा प्रभावित नहीं करता है, जहां दार्शनिक का एकमात्र लक्ष्य सिद्धांत को जानना है। तो पश्चिमी दार्शनिक को अगर ज्ञानी कहा जाए तो हम भारतीय दार्शनिक को सच्चे संत के रूप में जानते हैं। इस देश में वेदों और उपनिषदों के दिव्य ज्ञान का सत्यापन कर नैतिकता और जीवन दर्शन का संचालन करना परम पुण्य का कार्य माना जाता है। इसके अलावा, जैन, बौद्ध, मीमांसक और वेदांतिक जैसे दार्शनिक सत्य की अपनी धारणा के अनुसार अपने जीवन के तरीके का पालन करते हैं और ऐसा माना जाता है कि ऐसा आचरण व्यक्तिगत जीवन के अच्छे और बुरे, सही और गलत नैतिक गुणों से जुड़ा है। यही कारण है कि भारतीय नैतिकता में सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों पहलुओं के बीच एक सुंदर सामंजस्य है। भारतीय नैतिकता की पराकाष्ठा महान विद्वान चाणक्य के एक श्लोक का अर्थ यदि कोई समझ सकता है कि हमारे देश का नैतिक पहलू 'भारतीय नैतिकता के स्रोत की तलाश%की

परंपरा में कितना निहित है। हमारे सभी कर्तव्य और दायित्व इस आदर्श वाक्य में अंतर्निहित प्रतीत होते हैं। अगर हम इसे ठीक से समझ सकें और इसका पालन कर सकें, तो हम सामान्य रूप से नैतिक बन जाएंगे। उसने बोला –

मातृवत् परादारेषु, परद्रव्येषु लोष्ट्रवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु, य: पश्यतिस: पण्डित:।।[2]

अर्थात् जो पराई स्त्री को अपनी माता, अगली वस्तु को की धूलि के समान और समस्त विश्वसंसार के सभी प्राणियों को अपना मान लेने वाला ही सच्चा विद्वान् है। (चाणक्य श्लोक)

भारतीय दर्शन के सभी दार्शनिक संप्रदायों ने अपने शास्त्रों में 'आचरण' के अर्थ में मनुष्य के कार्य conduct और virtue के अर्थ में पालन के धर्म की चर्चा की है। इसे ही हम भारतीय नीतिशास्त्र कहते हैं। इस पर चर्चा करते हुए भारतीय नैतिकता में नीतिशास्त्र की क्षमता को भी देखा जा सकता है। इस संदर्भ में, हमें यह याद रखना चाहिए कि भारतीय दर्शन के किसी भी मूल ग्रंथ में नीतिशास्त्र शब्द की अलग से चर्चा नहीं की गई है। भारतीय शास्त्रों में, नैतिकता शब्द 'धर्म' का पर्याय है, जिसे वैदिक धर्मशास्त्र या हिंदू धर्म के रूप में भी जाना जाता है; हालाँकि, हिंदू शब्द के वास्तविक महत्वपर असहमति की गुंजाइश है। दुरुपयोग या अति प्रयोग के कारण इस शब्द के उपयोग ने हमें मिश्रित प्रतिक्रियाएं दी हैं। बंकिमचंद्र ने 'धर्मतत्त्व' पुस्तक के पूरक में लिखा है, 'जिसे अंग्रेज Morality कहते हैं उसे हम 'धम्म' कहते हैं।'[3] बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय ने स्वयं धर्म के छह अर्थों के प्रयोग का उल्लेख किया है, अर्थात् –

1. धार्मिक (जैसे हिंदू–मुस्लिम, आदि।
2. नैतिकता और morality ।
3. धर्मात्मा व्यक्ति के अभ्यस्त गुण।
4. धार्मिक, शास्त्र या नैतिक कर्म जिसके परिणामस्वरूप पाप, पुण्य।
5. वस्तु या व्यक्ति का प्राकृतिक गुण, जैसे जल हीनता का धर्म।
6. आचरण, जैसे देश धर्म, जाति धर्म, शांत धर्म, आदि।

धर्म शब्द का प्रयोग उपरोक्त अर्थ में / धर्म के अनुसार आचरण नैतिक है और धर्म के विरुद्ध आचरण अनैतिक है। नीतिशास्त्र की इस धारणा से कर्तव्य और गैर–कर्तव्य के कुछ सिद्धांत सामने आए जिन्हें समाज में मान्यता प्राप्त है। ऋग्वेद के समय से लेकर आज तक हमारी हर साधना में सुधार का विचार शामिल रहा है। मीमांसा सूत्र कर जैमिनी धर्म के लक्षणों को 'चोदनालक्षनोधर्म:'[4] मीमांसा सूत्र कहा गया है, जिसका अर्थ है कि जो कर्म वैदिक पर्यायवाची या इष्टकर्म साधना में सबसे अच्छा है, वह धर्म कहलाता है।

वैदिक प्रामाणिक वादी भारतीय दर्शन की एक विशाल परंपरा रखते हैं। इसमें शामिल विभिन्न दार्शनिकों को आस्तिक दार्शनिक या वैदिक के रूप में जाना जाता है। हम कभी–कभी वैदिक धर्मशास्त्र को हिंदू धर्मशास्त्र के रूप में संदर्भित करते हैं, क्योंकि हिंदू सभ्यता का उपयोग धार्मिक लोगों की तुलना में अधिक भौगोलिक कारणों से किया जाता है। अत: स्वामी विवेकानंद का अनुसरण करते हुए हिंदू शब्द के स्थान पर वैदिक शब्द का भी प्रयोग किया जा सकता है। और यदि आप वैदिक धर्म को समझना चाहते हैं, तो सबसे पहले आपको इसे वैदिक धर्म की तरह समझना होगा। महाभारत में धर्मपुत्र के नाम से प्रसिद्धधर्म युधिष्ठिर ने पितामह भीष्म से उत्सुकता से पूछा, दादाजी –*इमे वे मानव सर्वे धर्मसम्प्रति विशंकिता। को अयंधर्मकुतो धर्मस्तम्मे ब्रूहि पितामह*।।[5]

दूसरे शब्दों में, इन सभी लोगों को धर्म की चिंता है, यह धर्म क्या है? उत्तर भीष्म को कहते सुना जाता है – *बहु द्वारस्य धर्मस्य नेहास्ति विफला क्रिया*।[6] (महाभारत) । यानि उस धर्म के कई तरीके हैं और किसी भी धर्म के कर्मकांड व्यर्थ नहीं हैं। महाभारत के शांतिपर्व में कहा गया है– 'सर्वत्रविहितधर्म' अर्थात् सभी बातों में धर्म का विधान है। जो धर्मग्रन्थ है उसका आचरण धर्म की उपज है जो स्वयं धर्म कहलाता है। अब प्रश्न यह है कि इस ग्रंथ का तात्पर्य किस ग्रंथ से है? शास्त्र आमतौर पर श्रुति या वेद कहते हैं। मनुसंहिता के दूसरे अध्याय के श्लोक 10 के अनुसार – '*श्रुतिस्तु वेद, धर्मशास्त्रस्तु वैस्मृति:।*'[7] मनुसंहिता के दूसरे अध्याय के द्वादश श्लोक में वेद, स्मृति, सदाचार, अतमुस्तुषी इन चारों को धर्म का मिलन बिन्दु कहा गया है। श्रुति धर्म का सर्वोत्तम प्रमाण है, क्योंकि स्मृति, पुण्य, आत्मसंतुष्टि आदि का प्रमाण वैदिक मौलिकता का निबंधन है। इसके अलावा, भारत के सर्वोच्च आदर्शों में से एक माने जाने वाले से सब की अच्छी तरह से एकीकृत कल्पना को रामायण में कुशलता से चित्रित किया गया है। बाल्मीकि रामायण के बाल कांड में कहते हैं –

कामार्था गुण संयुक्ता धर्मार्थ गुनविस्तरम्।
समुद्रमिव रत्नाठं सर्वश्रुति मनोहरम्।।[8]

भारतीय धार्मिक जीवन में रामायण का प्रभाव काफी है। वाल्मीकि रामायण के सुंदर कांड में सीता की आवाज में एक महान नैतिक संदेश सुना जा सकता है। उन्होंने कहा: 'कोई भी

अपने साथ किए गए गलत के बदले में कभी भी खुद को गलत नहीं करता है। इस सिद्धांत का सभी लोगों को पालन करना चाहिए। एक पवित्र व्यक्ति का आभूषण उसका आचरण है। वह कभी भी खलनायक या सज्जन को नुकसान नहीं पहुंचाएगा। मत पूछो इसके लिए महापुरुष हमेशा करुणा दिखाएंगे और उस आदत को बनाए रखेंगे, यहां तक कि जो हमेशा दूसरों को नुकसान पहुंचाकर क्रूरता दिखाते हैं, और क्रूर व्यवहार करके आनन्दित होते हैं।'[9] रामायण में हमने बार-बार राम की कृपा का परिचय देखा है। उन्होंने सार्वभौमिक सत्य और अपने विनम्र स्वभाव के प्रति अपने प्रेम और विनम्रता से जीवों के कल्याण की कामना की[10]। बालकांड के दूसरे उपदेश में, श्लोक 36 में, हम श्रीरामचंद्र को ब्रह्मा के आशीर्वाद के शब्द सुनते हैं-

यावत् स्थास्यन्ति गिरय: सरतिश्च महीतले।
तावत् रामायणीकथा लोकेषु प्रचरिष्यति।।[11]

आइए अब देखें कि वैदिक सिद्धांत सिद्धांत या इसकी जड़ें भारतीय समाज में कितनी दूर तक निहित हैं। हम जानते हैं कि वैदिक या हिंदू धर्म कुछ मान्यताओं पर आधारित है। वे 1. कर्मवाद, 2.जन्मान्तर, 3. पुरुषार्थ और 4. अधिकार भेदभाव। कर्मवाद यह विश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने श्रम का फल भोगना पड़ता है। यह कर्म अच्छा या बुरा हो सकता है और यदि यह अच्छा है तो यह पुण्य या धर्म होगा और यदि यह बुरा है तो यह पाप या अधर्म होगा। अच्छे कर्मों का अर्थ है आचरण के नियमों का पालन करने वाले कार्य और बुरे कर्मों का अर्थ उन कार्यों से है जो आचरण के नियमों के विरुद्ध हैं।

कर्मवाद के लिए आवश्यक निर्णयों में से एक जन्मान्तर है। प्रत्येक जीव का पहले से ही जन्म होता था और मोक्ष तक उत्तरी जन्म की संभावना होती है। जन्म और मृत्यु के प्रवाह में स्थित जीवन का प्रवाह वास्तव में शाश्वत और आंतरिक है। कर्मवाद के लिए पुनर्जन्मवाद आवश्यक है क्योंकि एक व्यक्ति के लिए एक जीवन में अपने सभी कर्मों का फल भोगना संभव नहीं है। अत: प्रारब्ध के कारण जीव का पुनर्जन्म होता है और वह अपने कर्मों का फल भोगता है।

जन्मान्तर का अपरिहार्य परिणाम पुरुषत्व है, क्योंकि जीव का बार-बार जन्म तब तक होता है जब तक वह मोक्ष प्राप्त नहीं कर लेता। तो इस मोक्ष को प्राप्त करने के लिए उसे नियम या धर्म के अनुसार कार्य करना पड़ता है। भारतीय दर्शन में, विशेष रूप से वैदिक समाज में, पुरुषत्व का अर्थ मनुष्य या मोक्ष का अंतिम अर्थ है, लेकिन वैदिक शास्त्रों में कुल चार पुरुषत्व स्वीकार किए गए हैं। अन्य भारतीय नीतिशास्त्र में भी चार पुरुषार्थों का उल्लेख किया गया है जो मानवीय आवश्यकताओं के साधक हैं जैसे-

1. धर्म, 2. अर्थ, 3. काम और 4. मोक्ष। गौरतलब है कि यह व्यवस्था मानव जीवन के क्रम के अनुसार होती है, हालांकि 1. अर्थ, 2. काम, 3. धर्म और 4. मोक्ष, फिर भी भारतीय नीतिशास्त्र में, धर्म को सबसे पहले और सबसे महत्वपूर्ण पुरुषत्व के रूप में वर्णित किया गया है। कारण यह है कि भारतीय चिंतन में धर्म या नेक कर्मों का परित्याग करने से जीवन का कोई उद्देश्य प्राप्त नहीं किया जा सकता है। पैसा ईमानदारी से कमाया और खर्च किया जाना चाहिए। आपको धार्मिक तरीके से सेक्स का आनंद लेना होगा। अन्यथा पूर्ण अभीप्सा या मुक्ति संभव नहीं है। इसीलिए भारतीय नीतिशास्त्र में चतुरवर्ग पुरुषार्थ की चर्चा में सबसे पहले धर्म और अंतिम पुरुषार्थ मोक्ष का उल्लेख किया गया है। वैदिक समाज में, आम आदमी के जीवन का उद्देश्य काम, धन और धर्म के तीन गुणों को प्राप्त करना था। कर्म ही सुख है, अर्थ सुख का मार्ग है, और धर्म नियमों के अनुसार कार्य करना है। पुरुषत्व की इन त्रिवर्ग में धर्म सबसे अच्छा है, लेकिन हिंदू शास्त्रों में इच्छा और धन की वृत्ति की निंदा नहीं की गई है। वासना या सुख के प्रति मानवीय प्रवृत्ति सामान्य है। इसलिए सुख की इच्छा भी सामान्य है। सामान्य लोग स्वाभाविक रूप से इन दो पुरुषार्थों की ओर आकर्षित होते हैं, लेकिन लोगों को सावधान रहना चाहिए कि वे जीवन में खुशी या 'प्रेय' के लिए पैसा खर्च न करें। धर्म के अनुसार सुख और धन ही एक ऐसी चीज है जो मिलती है। नहीं तो अधर्म होगा। यह उन लोगों के लिए वृत्ति का मार्ग है जो अपना जीवन केवल पहले तीन पुरुषार्थों जैसे धर्म, धन और काम के साथ बिताना चाहते हैं।

वास्तव में, भारतीय विचारों के अनुसार, धर्म और सिद्धांत प्रमुख रूप से मौजूद नहीं हैं। कभी यह धर्म आधारित नीति रही है तो कभी नीति आधारित धर्म रही है। माण्डूक्योपनिषद और छांदोग्य उपनिषद; पद्मपुराण अग्निपुराण और ब्रह्मपुराण में दस प्रकार के धर्म यानि नैतिक कर्म का उल्लेख मिलता है, जैसे-

1. अहिंसा, 2. क्षमा, 3. इन्द्रिय दमन या घुटन और घुटन, 4. कृपया, 5. शौच, 6. दान, 6. सच, 6. तपस, 9. अस्तेय और 10. ज्ञान। इन धर्मों में अहिंसा को परम धर्म कहा गया है। इस तरह की ईमानदार सोच और ईमानदारी से जीना हर इंसान या पुरुषार्थों के लिए एक वांछनीय चीज है, लेकिन पैसा और 'कम' की तरह 'धर्म' भी एक मूल्यवान पुरुषत्व है, 'स्व' नितांत आवश्यक है [12] (Artha, Kama and Dharma are

instrumental values, but at the same time essential methods for the attainment of Moksha).

दूसरी ओर, जिनका अंतिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना है, उनके लिए निश्चित जीवन का मार्ग निरोध का मार्ग या त्याग का मार्ग है। मोक्ष का अधिकार तब तक उत्पन्न नहीं होता जब तक कि भोग की इच्छा को समाप्त नहीं कर दिया जाता। यहां से हम हिंदू धर्म या वैदिक धर्म और समाज के मूल सिद्धांत 'अधिकारीवेध' की चर्चा पर जा सकते हैं।

अधिकारी के भेद का सार यह है कि चूंकि मनुष्य स्वाभाविक रूप से भिन्न हैं, इसलिए मनुष्य के बीच योग्यता या अधिकारी का भेद पहचाना जाता है। उदाहरण के लिए, जो व्यक्ति भोग के लिए प्रवृत्त है, वह मृत्यु की वृत्ति का हकदार है, वह निरोध के मार्ग के योग्य नहीं है। यदि वह भविष्य में योग्य हो जाता है, तो वह निरोध के मार्ग के योग्य हो जाएगा और मोक्ष हो जाएगा। यह जाति व्यवस्था के मूल में है, आश्रम व्यवस्था, जिसे वैदिक समाज में मान्यता प्राप्त है। इस समाज में लोगों को चार जातियों में बांटा गया है, अर्थात् – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। प्रत्येक जाति के लिए विशिष्ट कर्तव्य हैं। वैदिक समाज में प्रचलित चतुराश्रम प्रणाली के अनुसार मानव जीवन में भी चार चरण होते हैं, अर्थात् – ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ, बनप्रस्थ और सन्यासऔर प्रत्येक आश्रम य के लिए विभिन्न अनुष्ठानों या नियमों का पालन किया जाता है। हालांकि, इस दूसरे या घरेलू आश्रम में किए गए कर्तव्यों को बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है। यहां परिवार को धर्म का पालन करना है, पितृसत्तात्मक ऋण चुकाना है, अग्निहोत्र करना है और ऋण चुकाना है। इस घरेलू आश्रम में गृहस्थ को ब्रह्मचारी और भिक्षुओं को शहद बनाने में मदद करनी होती है और रिश्तेदारों को उनकी देखभाल करनी होती है। इन कार्यों के माध्यम से परिवार का जातीय ऋण चुकाया जाता है। फिर गृहस्थ को स्वावलंबन द्वारा ऋषि ऋण चुकाना होता है और अंत में अमानवों को उदारता देकर भूत ऋण का भुगतान करना होता है।

भारतीय नैतिकता की एक और विशेषता यह है कि यहाँ नैतिकता की अवधारणा बहुत व्यापक है। वैदिक समुदाय के लोगों की दैनिक व्यक्तिगत गतिविधियों, सामाजिक व्यवहार, आध्यात्मिक गतिविधियों आदि में धर्म की बहुत आवश्यकता होती है। इस तरह का शौच एक दैनिक व्यक्तिगत कार्य है, लेकिन इसे एक सामान्य धर्म के रूप में भी देखा गया है। सत्यबचन, अहिंसा आदि से लेकर सामाजिक व्यवहार, धर्म का सम्मान, अध्ययन, यज्ञादि कर्मकांड सभी को निर्धारित कर्म माना गया है। इसलिए यह स्पष्ट है कि हिंदू नैतिकता की अवधारणा पूरी तरह से वैदिक समाज के विचारों पर निर्भर है।

अब हमारी बात यह समीक्षा करने की है कि श्रुति को भारतीय नैतिकता की नींव क्यों कहा जाता है। यह सत्य है कि धर्म–अधर्म, कर्तव्य–अधर्म ज्ञान और व्यवहार उसी के अनुसार नैतिक आचरण है और दूसरा धर्म की प्रवृत्ति और धर्म का निरोध आवश्यक है। तो हम उसे नैतिकता के आधार के रूप में स्वीकार करेंगे, जो शास्त्रों का ज्ञान देता है और हमारे कर्तव्य–गैर–कर्तव्य का ज्ञान देता है और नैतिक आचरण में संलग्न है। तो यहाँ शास्त्र कहने के लिए श्रुति और स्मृति दोनों को समझना होगा। श्रीमत भगवद गीता में, श्री कृष्ण कहते हैं – 'शास्त्र श्रेष्ठ कर्तव्य–कर्तव्य का एकमात्र प्रमाण है।'[13] मधुसूदन सरस्वती, शास्त्र क्या है? के प्रश्न की व्याख्या में कहते हैं कि वे सभी अर्थ जो किसी अन्य प्रमाण से ज्ञात नहीं हैं, अद्भुत हैं, और जिनके द्वारा शास्त्र मान्य है। शास्त्र मूल रूप से वेद, स्मृति या धर्मशास्त्र और पुराण जैसे शास्त्रों को संदर्भित करता है। वेदों को चार भागों में विभाजित किया गया है और प्रत्येक को दो भागों में विभाजित किया गया है, अर्थात् मंत्र या संहिता और ब्राह्मण। ब्राह्मण के दो और भाग हैं, अर्थात् आरण्यक और उपनिषद। इस ब्राह्मण से संबंधित श्रुति वाक्यों को विधि निषाद के रूप में जाना जाता है। इसलिए जिस वाक्य में कर्तव्य का प्रावधान दिया गया है वह नियम वाक्य है। उस अर्थ में, हिंदू नैतिकता के अनुसार, संपूर्ण वेद धर्म का प्रमाण है, क्योंकि अधिकार के मामले में, और प्रत्येक आश्रम में, मनुष्य को अपने कर्तव्यों का पालन नियमों के अनुसार करना पड़ता है, और अंत में उसका अंतिम प्राप्ति या मोक्ष की प्राप्ति होती है।

तो हम महसूस करते हैं कि वैदिक उपदेशों का महत्व, उपनिषदों के आत्म–संयम और न्याय के सिद्धांत, मनु के नियंत्रण की नैतिकता और नैतिकता के प्राथमिक स्तर के रूप में गीता के निस्वार्थ कर्म अथाह हैं। नैतिकता की बनावट इसके मुख्य चरित्र को चित्रित करने में अंतर्निहित है। यहां राम–सीता का चरित्र वासना और मानवीय अधीनता और अनुग्रह से जुड़ा हुआ है। राम–सीता सभी के लिए दु:ख–दु:ख की प्रतिमूर्ति हैं। इन तीनों वर्गों के सुंदर संयोजन के चरित्र में काम, अर्थ और धर्म को खूबसूरती से चित्रित किया गया है। बाल्मीकि ने अपनी रामायण में जिस तरह से वाक्यों और चुने हुए शब्दों को लागू किया है, वह असाधारण निषेधाज्ञा और आज्ञाकारिता का एक बिना शर्त और बिना शर्त सिद्धांत बन गया है। अकेले इन त्रि–वर्गों में से किसी

की कामना करने या उससे बचने का कोई उपाय नहीं है। यह सब मोक्ष प्राप्ति के साधन के रूप में व्यक्ति को उसके इच्छित लक्ष्य की ओर ले जाता है।

अंत में, यह कहा जा सकता है कि वैदिक सामाजिक-केंद्रित हिंदू नैतिकता जो विभिन्न शास्त्रों में देखी जाती है, अब लगभग विलुप्त हो चुकी है। समय के नियमों के अनुसार समाज में मूल्य बदल रहे हैं। अब वैदिक सामाजिक सिद्धांतों और नियमों का पालन नहीं किया जाता है। आज के आधुनिक भौतिकवादी समाज में जीवन में श्रुति और स्मृति शास्त्र के नियम, धर्म, कर्म, कर्मकांड और कर्मकांड को चंद लोगों को छोड़कर ज्यादातर लोग बेकार समझते हैं। हमारा समाज इस वैदिक परंपरा से जितना दूर जाता है, उतना ही लगता है कि समाज बुरी ताकतों से प्रेरित होगा। आज के समाज के संदर्भ में यह कहा जाना चाहिए कि आज के समाज में नैतिकता के सुधार और बहाली के लिए धार्मिक और वैदिक सुधारों का मूल्य निर्विवाद है। तो, इस इक्कीसवीं सदी के दरवाजे पर खड़े होकर, हमें सबसे दयालु निर्माता से प्रार्थना करनी चाहिए -

असतो मा सद्गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्मामृतं गमय ॥[14]

ग्रन्थसूची-

1. Mackenzi, J.S., A Manual of Ethics, Kessinger Pubublishing, Montara, U.S.A., 2004
2. Lillie, William, An Introduction to Ethics, Jyoti Publishers, kolkata, 2021
3. चट्टोपाध्याय, बंकिमचंद्र, धर्मशास्त्र, digital book. banglapustak.com,http://www. banglapustak. com (retrieved on 04.01.2022)
4. मीमांसा सूत्र, (1/1/2)ऋषि जैमिनी ,
5. महाभारत
6. वही
7. मनुसंहिता: 2:10
8. बाल्मीकि रामायण; बालकांड
9. बाल्मीकि रामायण: सुंदर कांड, अध्याय: 115
10. बाल्मीकि रामायण; बालकंड, अध्याय: 3
11. बाल्मीकि रामायण; बालकंड, अध्याय: 2, श्लोक संख्या: 36
12. Sharma, I.C., Ethical Philosophy of India, p. 93, George &Uniwin Ltd., London, 1965
13. श्रीमद्भगवद्गीता
14. बृहदारण्यक उपनिषद: मंत्र 1 / 3 / 28

ISSN 2278 - 0327

पण्डित महोर सिंह का हरियाणा के लोक संगीत में योगदान

डॉ. मुकेश
शोध निर्देशक, एसोसिएट प्रोफेसर
पं. नेकीराम शर्मा राजकीय महाविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

योगेश कुमार
शोधार्थी, पीएच.डी., संगीत विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

शोध प्रपत्रः

कवि शिरोमणि पंडित महोर सिंह गौड़ का जन्म तत्कालीन रोहतक जिले के साल्हावास गाँव में हुआ था। वर्तमान में यह गाँव झज्जर जिले में स्थित हैं। इनका जन्म 3 दिसम्बर 1869 कृष्ण पक्ष, अमावस्या, संवत् 1925 शुक्रवार को हुआ था। इनके पिता पंडित रतीराम गौड़ प्रतिष्ठित आशु कवि एवं लोक गायक थे। पं. महोर सिंह का बचपन एक निर्धन परिवार में बीता। ये बाल्यकाल से ही प्रखर बुद्धि के धनी थे। ज्ञान एवं शिक्षा के प्रति गहन रूचि होने के कारण बाल्यकाल से ही स्वयं को गुरूकुलों की ओर उन्मुख कर लिया। इन्होंने अपनी ज्ञान पिपासा शांत करने के लिए डीघल, बेरी, झज्जर, चूरू, रामगढ़ के गुरूकुलों में विद्या अध्ययन किया। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए ये काशी नगरी चले गए थे। जहाँ पर उन्होंने वेद, शास्त्र, ज्योतिष एवं संगीत का गहन अध्ययन किया इसके अतिरिक्त इन्होंने वेदांत, ब्रह्मज्ञान का भी पठन किया जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण उनके द्वारा लिखित लोक साहित्य में मिलता हैं। पं. महोर सिंह को काव्य रचना, गायन एवं ज्योतिष का गुण पारिवारिक विरासत के रूप में मिला था, जिसे आगे चलकर उन्होंने विद्यालय से प्रकृष्ट रूप में स्थापित किया। इनके पिता पं. रतीराम जी कुशल गायक एवं ढोलक वादक थे। पं. महोर सिंह ने स्वंय एक स्थान पर इसकी चर्चा की हैं। प्रमाण निम्नलिखित हैं-

टेक - *किस-किस को करे याद, कालग्रास जग सारा।*
रतीराम पंडित यहाँ आते
गाते ढोलक तीन बजाते
गायन का बंधता नाद जैसे सिंह ललकारा।।

संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा कविवर ने अपने पिता से ली। इसी प्रकार इनके ताऊ जी प्रख्यात ज्योतिषी थे। इनके ताऊ जी का नाम 'पंडित मोतीराम' था। ये पंचांग निर्माता थे। पं. महोर सिंह ने ज्योतिष का प्रारंभिक ज्ञान अपने ताऊ जी से लिया था। पं. महोर सिंह की विद्वता एवं काव्य कला के प्रभाव से इनके जन्म स्थान साल्हावास की पहचान इन्हीं के नाम से होने लगी थी जो आज भी कवियों के बीच प्रचलित हैं अर्थात् जब कविगणों के बीच प्रचलित चर्चा चलती हैं कि कौन सा साल्हावास? तो कहा जाता है पं. महोर सिंह वाला।

पं. महोर सिंह द्वारा रचित प्रमुख किस्से इस प्रकार है:- किस्सा लाखा भवन, किस्सा द्रौपदी स्वयंवर, किस्सा द्रौपदी चीर-हरण, किस्सा जीमूत वध, किस्सा कीचक वध, किस्सा गऊ हरण, किस्सा कृष्ण का शांति संदेश, किस्सा अभिमन्यु/चक्रव्यूह जंग, किस्सा कर्ण वध, किस्सा गदा पर्व, किस्सा अश्वमेघ यज्ञ, किस्सा चण्डी की कथा, किस्सा हंस ध्वज, किस्सा वबरूवाहन, किस्सा मोर ध्वज, किस्सा चन्द्रहास, किस्सा नल-दमयन्ती स्वंयवर, किस्सा राजा नल-दमयन्ती, किस्सा हरिश्चन्द्र, किस्सा राजा उत्तानपाद, किस्सा उषा-अनिरूद्ध, किस्सा श्री कृष्ण जन्म, किस्सा शिव-पार्वती विवाह।[1]

एक समय की बात है, जब पंडित महोर सिंह काशी नगरी से विद्या प्राप्त करके लौट रहे थे तो उनके पिता पंडित रतिराम, सिरसा में आयोजित भजन सम्मेलन में उन्हें अपने साथ ले गए। अभी तक पंडित महोर सिंह का काव्य एवं संगीत लोक से अधिक परिचय नहीं था। इस भजन सम्मेलन में श्रोताओं के आग्रह किए जाने पर पंडित रतिराम जी ने पंडित महोर सिंह से भजन गाने को कहा। इस पर पंडित महोर सिंह ने अपने ही पिता का रचित भजन गाया, किंतु यह भजन श्रोताओं को आकर्षित नहीं कर पाया, क्योंकि पंडित महोर सिंह को लोक संगीत का अभी तक अधिक अनुभव नहीं था और न ही कोई पूर्व अभ्यास था। इस पर दर्शकों ने पंडित रतीराम से कहा कि पंडित जी आपके पुत्र के भजन में आनंद नहीं आया। ऐसा लगता है आपके बाद तो यह विद्या आपके परिवार से लुप्त हो जाएगी। दर्शकों द्वारा कथित यह वचन पंडित महोर सिंह के स्वाभिमान पर आघात कर

गए और वह आत्मग्लानि से भर गए। वे मन ही मन स्वयं को कोसने लगे कि काशी जी प्राप्त विद्या एवं ज्ञान सब व्यर्थ है। जब मैं काव्य रचना ही नहीं कर सकता और व्यर्थ है वो संगीत की रागदारी का ज्ञान जब मैं लोक संगीत नहीं गा सकता। यहाँ से उन्होंने संकल्प किया कि वे काव्य रचना कर पारिवारिक परंपरा को जीवित रखेंगे। इसके बाद उन्होंने 8 वर्ष तक निरंतर संगीत एवं काव्य का श्रवण एवं अभ्यास किया तथा पिता के साथ विभिन्न संगोष्ठी में शामिल होकर अनुभव प्राप्त किया।

ज्ञातव्य है कि पंडित महोर सिंह उस काल के कवि थे, जब कवि सम्मेलनों में विभिन्न विषयों पर संगीत में शास्त्रार्थ होता था। पंडित महोर सिंह इस गायन शैली में अग्रणीय थे। उपर्युक्त सिरसा वाली घटना के बाद यद्यपि पंडित महोर सिंह अपने पिता के साथ काव्य एवं संगीत साधना में रत थे, फिर भी वे कुछ लघु स्तरीय कवि सम्मेलनों में शिरकत करते रहे। एक दिन अकस्मात् उनके जीवन में ऐसा अवसर आया जिसने पंडित महोर सिंह को कवि शिरोमणी के रूप में विख्यात कर दिया। यह वह अवसर था जब पंडित महोर सिंह ने वृहद् स्तर पर किसी शास्त्रार्थ में अपने कविता एवं गायन कला का परिचय दिया था। इसी घटना ने हरियाणा प्रदेश का गौरव बढ़ाया था। कहा जाता है कि कवि शंकरदास (उत्तर प्रदेश) उस काल में विद्वान् कवि थे। जो कवि दंगल में अपना झंडा गाड़ कर सभी कवियों को चुनौती देते थे। शंकर दास जी हरियाणा के बाघोत में शिवरात्रि के मेले में प्रतिवर्ष कवि दंगल स्थापित करते थे। पंडित महोर सिंह ने इस पर स्वयं लिखा है–

किस-किस को करें याद०
काल ग्रास जग सारा०।
शंकर दास यहाँ आया करते०
झंडा गाडकर गाया करते हैं०
गुणियों के थे संवाद०
खुड़क्या करता नंगारा०।।

उस काल में शंकर दास जी का सामना करने का साहस किसी में नहीं था। वर्ष 1914 में शंकर दास जी ने बाघोत में पुन: कवि दंगल स्थापित किया। इस बार दर्शकों ने गाँव साल्हावास पहुँचकर पंडित महोर सिंह से बाघोत चलने का आग्रह किया। दर्शकों ने कहा कि आप काशी जी के पढ़े हुए विद्वान् हैं और आशु कवि पंडित रतीराम के पुत्र भी हैं। साथ ही आपकी गायन शैली एवं अभिव्यक्ति भी सशक्त है। आपको कविता एवं शास्त्रार्थ का अनुभव भी है। अत: आप शंकर दास जी की चुनौती को स्वीकार करें। इस आग्रह पर पंडित महोर सिंह जी बाघोत पहुँचे और शंकरदास जी की चुनौती को स्वीकार किया। कहते हैं कि ब्रह्म विषयक प्रश्नों पर तत्काल काव्य रचना के माध्यम से लोक संगीत पर आधारित शास्त्रार्थ आरंभ हुआ। इसमें कवि शंकर दास ने प्रश्न किया तो पंडित महोर सिंह ने उत्तर दिया। पंडित सोहनलाल शर्मा एवं पंडित महावीर प्रसाद के कथनानुसार यह शास्त्रार्थ रात भर चला। सूर्योदय भी हो गया था किंतु कोई भी कवि पराजय स्वीकार करने को तैयार नहीं था। शास्त्रार्थ में कवि शंकर दास के प्रश्न भजन की पंक्ति एवं पंडित महोर सिंह के प्रत्युत्तर भजन की पंक्ति जो कि उनके शिष्य पंडित मुसद्दीलाल से प्राप्त थी, वो प्रमाण स्वरूप इस प्रकार हैं –

शंकर० – *गम खाणा चीज बड़ी है, देखो गम खाय कै०*
महोर० – *गम खाइए देख विचार कै,*
कहीं आवैगा सिर फुड़वाकै०।।

ध्यातव्य है कि शास्त्रार्थ के अन्त में कवि शंकर दास ने एक भजन गाया जिसका प्रत्युत्तर में पंडित महोर सिंह द्वारा दिए जाने पर शंकर दास ने पराजय स्वीकार कर ली थी। उस भजन की पंक्ति प्रमाण स्वरूप इस प्रकार है –

शंकर० – *सैरा कर दसवें द्वार का दिल रोक अटल बंगले मैं०।*
महोर०– *सैर करणिया कौण है जब दिल रूक्या अटल बंगले मैं०।*

पंडित महोर सिंह द्वारा दिए गए इस प्रत्युत्तर पर शंकर दास जी निरुत्तर होकर मौन हो गए और नगर खेड़े की जय बोल दी। साथ-साथ उन्होंने पंडित महोर सिंह की प्रशस्ति में एक भजन गाया, जो इस प्रकार है –

टेक – *रतिराम आपके कुल में जन्मे महोर सिंह विज्ञानी०*
ज्ञान समंदर अंदर जिसके बात नहीं कोई छानी०
पावन धरा बाघोत को नमन शत-शत बार०
अर्ज ईश से महोर सिंह जियो वर्ष हजार०
है कवि शिरोमणि साख्य तेरी सब भरै आज सुण कानी०।

इस प्रकार शंकर दास जी ने अपना झंडा उठा लिया और हरियाणा की जनता का धन्यवाद करते हुए कवि ने कहा कि अब बाघोत की धरती पर आपका रंजन करने के लिए पंडित महोर सिंह ही आएगा। यह कहकर शंकर दास जी ने बाघोत छोड़ दिया। उपर्युक्त भजन की पंक्ति में यह सिद्ध है कि कवि शंकर दास ने पंडित महोर सिंह को कवि शिरोमणि की उपाधि से अलंकृत किया है।[2]

ध्यातव्य हैं कि पं. महोर सिंह के जीवन संघर्ष एवं उनकी

वंश परम्परा के संबंध को प्रकाशित करना उचित होगा। इनके दादा श्री मायाराम जो कुशल काव्यकार थे। कहा जाता हैं कि इनके पिता पं. रतीराम तत्काल काव्य रचना करते थे। किसी भी विषय पर एक ही भजन को कभी दोबारा नहीं गाया। वे उसी समय नवीन काव्य रचना कर देते थे। यही कारण हैं उनकी काव्य रचना आज प्राप्त नहीं हैं। कोई एक या दो काव्य रचनाएं जो उनके शिष्यों ने लिखी होगी, मिली हैं: –

टेक – 1. *त्याग कै कपट झट डट रट राम राम।*

टेक – 2 *धन – धन हैं तेरी कारीगरी भगवान।*

पंडित रतीराम को तीन पुत्र हुए – पं. महोर सिंह, श्री हरफूल एवं श्री हरदेव सहाय। इनमे पं. महोर सिंह सबसे बड़े थे। श्री हरदेव सहाय गणित विद्या में तीक्षण बुद्धि के धनी थे। पं. महोर सिंह ने वेदाध्ययन का एवं साहित्य का मार्ग चुना। पं. महोर सिंह ने अपने जीवन काल में निंरतर विषम परिस्थितियों का सामना किया। इन्होंने तीन विवाह किए। इनकी प्रथम दो पत्नियों बिना संतान प्राप्ति के एक के बाद मृत्यु को प्राप्त हो गई थी। तीसरा विवाह अचीणा में हुआ था। तीसरी पत्नी का नाम 'श्रीमती गंगा देवी' था। इसी से पं. महोर सिंह को चार पुत्र पं. काशीराम, पं. चिम्मनलाल, पं. बदरी प्रसाद एवं पं. सुखानंद और पाँच पुत्रियाँ हुई जिनमें सबसे बड़ी पुत्री का नाम दीपकौर था।

यद्यपि पं. महोर सिंह का बचपन निर्धनता में गुजरा था लेकिन कविवर ने अपने जीवन पर इसका नकारात्मक प्रभाव नहीं दिया। उन्होंने अदम्य साहस एवं अजस्त्र परिश्रम से निरंतर विद्याभ्यास किया एवं सामाजिक व आर्थिक प्रतिष्ठा अर्जित की। उनके युवा काल एवं बाद के जीवन में यद्यपि आर्थिक तंगी का अभाव था किंतु कुछ पारिवारिक विषम परिस्थितियां ऐसी रही जिनसे उनका मन विक्षुब्ध जरूर रहा। कविवर ने स्वयं अपनी एक रचना में मानसिक व्यथा को कुछ इस प्रकार दर्शाया हैं–

टेक: – *सहारा राम नाम का अब तो दीखै ना और सहारा।*

1. *भाई बंध सब दुश्मन बणग्या, बेटा हो गया न्यारा*
   मर गई नार मित्र सब खप गया, रूस गया सगा प्यारा।
2. *खो गई खटताल मेरी और फूट गया इकतारा*
   साज बजैया काल कै धक्कै चढ़ गया स्वर्ग सिधारा।
3. *वृद्धपन नै घेर लिया आंखी छाया अंधियारा*
   काया शिथिल होय गई ढीला बंध हुआ सारा।
4. *सहचारी भी बिछड़ गया सब तज गया देश द्वारा*
   महोर सिंह बजने वाला हैं तेरा भी कूंच नगारा।[3]

यद्यपि पं. महोर सिंह को पूर्वोक्त परिस्थितियों का जीवन में समय–समय पर सामना करना पड़ा फिर भी उन्होंने अपने कर्म क्षेत्र में इन्हें बाधा नहीं बनने दिया। विविध गुरूकुलों में ज्ञान अर्जन कर आजीवन साहित्य लेखन का कार्य करते रहे। पं. महोर सिंह ने संस्कृत का गहन अध्ययन किया। इनके गुरू का नाम 'आचार्य श्री मुखराम' था। ये सूरजगढ़ (राजस्थान) के निवासी थे। कविवर ने अपने गुरू श्री 'मुखराम' से गुरूकुल में व्याकरण शास्त्र एवं पिंगल शास्त्र अर्थात् छन्दशास्त्र की शिक्षा प्राप्त की थी। पं. महोर सिंह जी ने स्वयं इसका उल्लेख दो स्थानों पर अपनी कविता में किया हैं।

टेक:– *सूरजगढ़ सूरजवंशी राजाओं की हैं राजधानी*
श्री जयपुर महाराज ताज सिर साज यहाँ की हैं बानी।।
सूरजगढ़ मैं कायां सेठ हुए लालचंद बलदेवदास
इनकी छतरी में मैंने पाँच वर्ष किया विद्याभ्यास
'मुखराम जी' अध्यापक थे मैं पढ़ता था उनके पास
उन दिनों सेठ ठोकरसी थे गुरू मुखराम थे परकाश
इसी वंश में जोखीराम जी प्रकट हुए थे महादानी।।

उपर्युक्त पंक्तियों श्री जयपुर महाराज की प्रशस्ति में कहीं गई हैं। संभवतया उस काल में सूरजगढ़ रियासत में कवि सम्मेलन एवं धार्मिक प्रचार हेतु संत समागम हुआ था जिसमें कविवर ने उक्त भजन गाया था।

ध्यातव्य हैं कि पं. महोर सिंह ने उच्च शिक्षा काशी के गुरूकुलों से प्राप्त की थी। जहाँ पर उन्होंने वेद, पुराण, दर्शन आदि विभिन्न विषयों का ज्ञान प्राप्त किया था। कविवर ने स्वयं इसका उल्लेख किसी शास्त्रार्थ के दौरान गाए भजन में किया हैं।

टेक:– *पद गाना तेरा फिजूल हैं तुझे पद अर्थ का बेरा ना*
जे संस्कृत की करे हिरस तू
सतगुरू के जा चरण परस तू
काशी पढ़ दस बीस बरस तू
मेरे पढ़ने का स्कूल हैं फिर पद में अलझेरा ना।[4]

इस प्रकार पं. महोर सिंह ने अपने जीवन की जानकारी स्वयं अपनी कविताओं में दी हैं।

पं. महोर सिंह की शिष्य परंपरा पारिवारिक सदस्यों एवं उनके शिष्यों द्वारा संप्रेषित की गई हैं। इनकी वंश व शिष्य परंपरा में सबसे पहला नाम उनके पुत्र एवं परम शिष्य पं. चिम्मनलाल का आता हैं, जिन्होंने पं. महोर सिंह से संगीत एवं काव्य कला का ज्ञान प्राप्त किया। वे अपने पिता की तरह तत्काल काव्य रचना एवं शास्त्रार्थ में निपुण थे। इन्होंने अपने पिता पं. महोर सिंह के साथ 12 साल तक ढोलक भी बजाई हैं। इसके बाद पं. महोर सिंह के

छोटे पुत्र अर्थात् पं. चिम्मनलाल के अनुज भ्राता पं. बदरी प्रसाद का नाम आता हैं, जो हारमोनियम वादक के रूप में प्रतिष्ठित हुए। इनके अतिरिक्त पं. मनीराम शर्मा, पं. मुसद्दीलाल शर्मा। इसके अतिरिक्त वद्धिचंद (दर्गुनांगल) रतीराम सैनी (महेन्द्रगढ़) घीसाराम, बेरी श्रीधर आदि पं. महोर सिंह के शिष्य रहे।

इसके बाद नांगल, महेंद्रगढ़ निवासी श्री सोहन लाल शर्मा का स्थान आता है। इन्होंने पंडित महोर सिंह से संगीत काव्य की शिक्षा ग्रहण की थी। अपने गुरु के प्रति अगाध श्रद्धा भाव रखने वाले पंडित सोहन लाल जी तत्काल काव्य रचना करने में समर्थ थे। यह पंडित चिम्मनलाल के समकालीन थे।

इसी प्रकार पं. महोर सिंह के पुत्र एवं परम शिष्य पं. चम्मनलाल ने साल्हावास गाँव में उनकी पहली पुण्य तिथि के अवसर पर उनके व्यक्तित्व को कुछ इस प्रकार दर्शाया हैं –

टेक– *परम गुरू का अटल धाम मैं वास हो गया*
वेद बिहुना सूना साल्हावास हो गया
सत्संग का भारत पे चढ़ाया रंग तनै
विधर्मियों से जगह-जगह जीते थे जग तनै
सत्संग दिया तनै चिम्मन भी तेरा दास हो गया।

साहित्य लेखन की इतनी गहन रुचि कठिनाइयों से ही कहीं और देखने को मिलती है। जीवन के अंतिम दिनों में भी कविवर साहित्य साधना में लगे रहते थे। इसका प्रमाण वे स्वयं एक कविता में देते हैं –

टेक – *सुत नीलध्वज भूपाल का, बागों में कर रह्या केली०*
मदन मंजरी पति से बोली०
पकडो तुरंग वस्तु अनमोली०
महोर सिंह तै आँख ना खोली०
हुआ चौरीसी साल का, वृद्धा ये पीठी पेली०।

यह भजन नीलध्वज राजा की कथा का है। पंडित महोर सिंह ने इसमें अपनी आयु को दर्शाया है। ध्यातव्य है कि पंडित महोर सिंह ने 84 वर्ष की आयु पूर्ण कर ब्रह्मलीन हो गए। इस प्रकार काव्य जगत के प्रकाशमान नक्षत्र के समान तथा वेदों के ज्ञाता कवि शिरोमणी पंडित महोर सिंह संसार से 10 दिसंबर, 1954 को मार्गशीर्ष, शुक्ल पक्ष, चतुर्थी, संवत् 2010, बृहस्पतिवार को संसार को अलविदा कह गए।[5]

संदर्भ सूची

1. पंडित महावीर (पंडित महोर सिंह के पौत्र) 31 अक्टूबर 2020, गुरुग्राम घर पर शोधार्थी द्वारा साक्षात्कार से प्राप्त सूचना के आधार पर संकलित।
2. श्री सत्यवान गौड (पंडित महोर सिंह के पांचवीं पीढ़ी के वंशज) 28 नवंबर 2020, ग्राम घर पर शोधार्थी द्वारा साक्षात्कार से प्राप्त सूचना के आधार पर संकलित।
3. चौधरी बिरेंदर सिंह जाखड़ (पंडित महोर सिंह के पड़ोसी) 28 दिसंबर 2020, गाँव साल्हावास घर पर शोधार्थी द्वारा साक्षात्कार से प्राप्त सूचना के आधार पर।
4. श्री सत्यवान गौड़ (पंडित महोर सिंह के पांचवी पीढ़ी के वंशज) 28 दिसंबर 2020, गाँव साल्हावास घर पर शोधार्थी द्वारा साक्षात्कार से प्राप्त सूचना के आधार पर संकलित।
5. चौधरी बिरेंदर सिंह जाखड़ (पंडित महोर सिंह के पड़ोसी) 28 नवंबर 2020, गाँव साल्हावास घर पर शोधार्थी द्वारा साक्षात्कार से प्राप्त सूचना के आधार पर।

ISSN 2278 - 0327

भोपाल गैस त्रासदी का यथार्थ और मंजूर एहतेशाम का कथा साहित्य

रविना कादयान
शोधार्थी, हिंदी विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

डॉ. संजीव कुमार
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

भोपाल गैस त्रासदी मानव इतिहास की दर्दनाक त्रासदी में से एक है। सन् 1984 में 2 दिसंबर की रात को भोपाल में यूनियन कार्बाइड कंपनी के प्लांट से मिथाइल आइसोसाइनाइट गैस का रिसाव हुआ। गैस रिसाव से सैकड़ों लोग बिस्तर में ही समाधिस्थ हो गए थे। शहर के अन्य लोग जो नींद से जाग गए थे जब उन्होंने अपने घरों से बाहर खुली हवा में निकलने की कोशिश की तो वायुमंडल में फैली हुई गैस उनके लिए काल बन गई। दुर्भाग्य की बात यह है कि इस जघन्य कांड के आरोपी बच निकले एवं उन पर कोई कानूनी कार्यवाही नहीं हो सकी।

मंजूर एहतेशाम ने अपने कथा-साहित्य में भोपाल गैस त्रासदी की दर्दनाक घटना से प्रभावित हुए भोपालवासियों के जीवन को दर्शाया है। भोपाल के लोगों को नहीं पता था कि 2 दिसम्बर की रात को पूरा शहर गैस चैम्बर में बदल जाएगा और सैकड़ों बेकसूरों को इस प्रकार मौत का मुँह देखना पड़ेगा। भोपाल के भोले-भाले लोग अपनी अनभिज्ञता के कारण मिथाइल आइसोसाइनाइट गैस को भिन्न-भिन्न नाम देकर भिन्न-भिन्न मुद्दों से जोड़ते नजर आते हैं। ''कोई कहता हँसी की गैस छोड़ी है भीड़ को बिखेरने, कोई आँसू गैस का नाम देता और कुछ मसखरे इसका संबंध अंतर्राष्ट्रीय राजनीति, युद्ध, शान्ति, रासायनिक युद्ध शास्त्र इत्यादि से जोड़कर अपनी बेअक्ली साबित करते थे।''[1] भोपाल गैस त्रासदी देश के इतिहास की ऐसी घटना है जिसने जीवन को झिंझोड़ कर रख दिया था। उस समय लोग खांसते-खांसते इधर-उधर भागने लगे थे। लड़खड़ाते हुए इंसान सुबुकदोश भी हो गए थे। मातम और रूदन चारों तरफ फैला हुआ था। अगले दिन बचे हुए भाग्यशाली लोगों ने देखा की स्टेशन लाशों से भरा हुआ था। 'दास्तान-ए-लापता' उपन्यास में त्रासदी के समय रेलवे स्टेशन की स्थिति के विषय में जमीर अहमद खां बताते हैं कि ''रात के उस पहर की व्यस्तता और लोगों की भीड़ देखकर क्या कोई गुमान भी कर सकता था कि कोई ढ़ाई साल पहले एक ऐसी ही रात यह स्टेशन श्मशान घाट में परिवर्तित हो गया था और न जाने कितने कुली, रेलवे कर्मचारी और मुसाफिर मारे गए थे।''[2] कार्यालयों के अन्दर कार्य करने वाले अपनी-अपनी कुर्सियों पर मरे पड़े थे। जो किसी तरह इस विनाशलीला से बच निकले उन्हें अस्पताल में भर्ती करा दिया गया। शनैः-शनैः डॉक्टर और मरीज दोनों मौत के शिकार हो रहे थे। संपूर्ण भोपाल मुर्दा घर बन गया था। कौन मर रहा है और कौन मर चुका है दोनों में रेखा खींचना कठिन हो गया था।

गैस रिसाव ने न केवल इंसान को अपनी चपेट में लिया बल्कि पशु-पक्षियों के हालात भी बदतर बने। मवेशियों की गणना ही नहीं की वे कितनी संख्या में यत्र-तत्र मरे पड़े थे। 'जिक्रे खलील उर्फ दास्ताने फाख्ता कहानी' का पात्र खलील खाँ उस खौफनाक मंजर का वर्णन करता हुआ कहता है, ''क्या मंजर थे अगले दिनों बड़ी-बड़ी क्रेनों से मुर्दा जानवरों के फूले हुए शव ट्रक-ट्रालियों में ढोए जा रहे थे, श्मशान की आग ज़रतुश्त की पवित्र अग्नि की तरह बिना एक पल रूके, सुलग और दहक रही थी और बाजारों में शोरा और नमक लाशों को सामूहिक कब्रों में गलाने-घुलाने के लिए कि सड़ायंध शहर में न फैले, वातावरण साफ रखा जा सके, फैलने वाली बिमारियों पर नियंत्रण रहे, ढूंढे नहीं मिल रहा था।''[3]

यूनियन कार्बाइड के आस-पास के स्थानों पर गरीब ठेले वाले और मेहनतकश परिवार रहते थे। बहुत से परिवारों में परिवार का पालन-पोषण करने वाले सदस्य ही गैस का शिकार हो गए। इस स्थिति में किसी के सिर से माता-पिता का साया उठ गया तो कोई जीवन संघर्ष में अकेला रह गया था। इन परिवारों की समस्या एक गंभीर सामाजिक समस्या के रूप में उभरकर सामने आई। सरकार ने आरोपियों को सजा दिलवाने और मुआवजा मुहैया करवाने के तमाम आश्वासन भोपाल की जनता को दिए। लोगों ने मुआवजे के लिए क्लेम-फॉर्म भरे। क्लेम फॉर्म की

गणना के समय सामने आया कि क्लेम फॉर्म की संख्या शहर की आबादी से कही ज्यादा थी। अगर अधिकारिक तौर पर देखा जाए तो मरने और गैस से प्रभावित होने वाले लोगों की संख्या कम थी, जबकि अन्य स्रोतों ने अपना-अपना पक्ष अलग-अलग आंकड़ों पर रखा। आंकड़ों का हेर-फेर गैस पीड़ितों के लिए एक नयी चुनौती बना क्योंकि सरकार आंकड़ों के फेर में ही उलझी हुई थी, जिसके परिणामस्वरूप मुआवजा राशि समय पर न मिल सकी। खलील खां कहता है कि ''उस दुर्घटना के बाद तो दरख्त की कितनी छाले, कितने पत्ते बदल चुके, कितने मौसम बीत चुके, एक कौड़ी जो क्या नाम से, अल्लाह के नाम पे भी मिली हो, खा गए होंगे खाने वाले।''[4]

उस समय ऐसे झूठे और अवसरवादी लोग भी थे जो मुर्दों का माल खाने में व्यस्त थे। उन अवसरवादी लोगों के लिए हर माध्यम काला धन कमाने का साधन बना, चाहे वह 'ऑपरेशन फेथ' हो या फिर दूध, ब्रेड, फ्री राशन के नाम पर लाखों की हड़प हो। शासन के भ्रष्ट कर्मचारी, भ्रष्ट नेता और विदेशी एटॉनी सभी बेइमानी का दामन पकड़े हुए थे। ''दे आर आल इन फॉर दियर पाउंड आव फलेश !''[5] सभी मनमानी पर उतर आए थे अर्थात् भ्रष्ट और मूल्यहीन व्यवस्था अपने पैर पसारे हुए थी। 'राहत' कहानी में भ्रष्ट कानून व्यवस्था का क्रूरतम रूप दिखाई देता है। गैस राहत की राशि के लिए सरकार गैस पीड़ितों के सामने स्वास्थ्य सर्टिफिकेट जैसी औपचारिकताएं रखती है। गैस पीड़ित अपना इलाज कराने और सर्टिफिकेट बनवाने के लिए दर-दर की ठोकरे खाते हैं जबकि मक्कार लोग सिफारिस और रिश्वत से सर्टिफिकेट बनवाने में कामयाब हो जाते हैं। ''एक मौत के शहर में छोटे-छोटे आर्थिक फायदों की खातिर मौत के सर्टिफिकेट से डॉक्टरों के पर्चे और जमीन-जायदाद पर नाजायज कब्जे तक का बाजार... यह अस्पतालों, दवाओं, वैज्ञानिकों, वकीलों का नाटक, कार्बाइड के ओहदेदारों की गिरफ्तारी और लोकल जिम्मेदारों की मनमानी की छूट कितना शर्मनाक।''[6]

सच्चाई तो यह है कि गैस दुर्घटना से पीड़ित लोगों को छोड़कर, जिससे जितना हो सकता था राहत राशि से उतना फायदा उठाता रहा। यह सब देखकर कह सकते हैं कि जब तक भ्रष्ट कानून व्यवस्था रहेगी तब तक गलत लोगों को गलत तरीकों से लाभ मिलता रहेगा और साधारण जन ऐसे ही शोषित और प्रताड़ित होता रहेगा। मंजूर एहतेशाम ने 'एक पारम्परिक समस्या - प्रधान कहानी' के पात्र खान साहब के माध्यम से क्लेम फॉर्म भरने की प्रक्रिया को जुआं कहा है। खान साहब के घर काम करने वाली हलीमन गैस त्रासदी में अपने दो बेटों को खो देती है। जब गैस राहत के क्लेम फॉर्म भरे जा रहे थे तब खान साहब, हलीमन के परिवार के सदस्यों का भी आवेदन करवाता है। वह देश की व्यवस्था से वाकिफ होने के कारण फार्म भरने की प्रक्रिया को शक की नजरों से देखता है और कहता है ''जुआं है क्या पता, शायद मुआवज़ा मिल ही जाए।''[7] खान साहब के परिवार वाले अनमने ढ़ंग से आवेदन करते हैं लेकिन खान साहब स्वयं ऐसा करने से इनकार कर देता है। वह कहता है, ''हमारी जान के दुश्मन अब उसकी कीमत भी खैरात में देंगें ! लानत है ऐसे मुआवजे पर।''[8] समय बीतने के बाद वह घड़ी आती है जब शहर में अन्तरिम राहत और अन्तरिम मुआवजा मिलना प्रारम्भ होता है। दो बच्चों की मौत पर हलीमन को पचास हजार रूपये अन्तरिम मुआवजा मिलता है किन्तु मेडिकल चेकअप जैसी औपचारिकताओं का हिस्सा न होने के कारण खान साहब का परिवार मुआवजा राशि से वंचित रह जाता है।

इस प्रकार मंजूर एहतेशाम ने अपने कथा साहित्य में भोपाल गैस त्रासदी जैसी औद्योगिक दुर्घटना के पश्चात् उपजी उन सभी समस्याओं को समाज के समक्ष रखा है, जिनके कारण भोपालवासियों का जीवन प्रभावित हुआ है, जैसे गैस पीड़ितों को उचित स्वास्थ्य सेवाएँ न मिलना, यूनियन कार्बाइड से मुआवजा मिलने से देरी, भ्रष्टाचार का बोलबाला, शारीरिक रूप से विकलांगता की समस्या आदि। गैस त्रासदी क्षेत्र में आज भी ये समस्याएँ ज्यों कि त्यों बनी हुई हैं। कही अपाहिज लोग नजर आते हैं तो कहीं त्वचा रोग, खासी, दमा व साँस की बिमारियों से ग्रसित दिखाई देते हैं। यही नहीं वर्तमान में गैस पीड़ित महिलाएँ या तो मृत बच्चों को जन्म दे रही हैं या फिर पैदा होने वाले बच्चे शारीरिक और मानसिक विकृतियों से युक्त हैं। निसंदेह दुर्घटना पुरानी हो चुकी है लेकिन इसके दुष्प्रभाव आज भी ताजा हैं।

संदर्भ सूची-

1. मंजूर एहतेशाम, संपूर्ण कहानियाँ, पृ. 155
2. मंजूर एहतेशाम, दास्तान-ए-लापता, पृ. 73
3. मंजूर एहतेशाम, संपूर्ण कहानियाँ, पृ. 157
4. मंजूर एहतेशाम, संपूर्ण कहानियाँ, पृ. 159
5. मंजूर एहतेशाम, संपूर्ण कहानियाँ, पृ. 186
6. मंजूर एहतेशाम, संपूर्ण कहानियाँ, पृ. 185-186
7. मंजूर एहतेशाम, संपूर्ण कहानियाँ, प. 163
8. मंजूर एहतेशाम, संपूर्ण कहानियाँ, पृ. 164

ISSN 2278 - 0327

कहानी साहित्य और समकालीन समाज

जुविन इयासमिन
सहकारी आचार्य, संस्कृत विभाग
आशुतोष कॉलेज, कलिकाता -700026 (प.व)

इस संदर्भ में साहित्य से हमारा क्या तात्पर्य है? समाज का साहित्य से क्या संबंध है? साहित्य सांसारिक या लौकिक विचार, चेतना, भावना, सौंदर्य और कला की इंद्रियों द्वारा लिखित या लेखक के वास्तविक जीवन की भावना है। साहित्य मानव और सामाजिक जीवन का दर्पण है। दूसरी ओर, समाज साहित्य का वाहक है। साहित्य में सुख-दु:ख, मानव मन की शाश्वत भावनाएँ परिलक्षित होती हैं। मानव समाज के साथ साहित्य का संबंध अविभाज्य है। जीवन के मूल्य के निर्धारण और निर्माण में साहित्य की भूमिका निर्विवाद है। साहित्य मानव अंतर्निहित सुंदरता की भावना और चेतना को जीवंत और प्रकाशित करता है। लोगों में नैतिक चेतना का जागरण और उसका उत्थान साहित्य की प्रमुख उपलब्धियों में से एक है। स्वस्थ अंत:करण से बुरी प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त करना और हर चीज को परिष्कृत तरीके से सुशोभित करना साहित्य का कर्तव्य है। उसके पास सभ्यता और संस्कृति की गुणवत्ता में सुधार करने की जिम्मेदारी है। साहित्य के पहलुओं में से एक चेतन, अवचेतन और अचेतन मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के माध्यम से मानव मन की कमजोरियों को स्पष्ट रूप से दिखाना है। इसलिए, यह कहा जा सकता है कि साहित्य और समाज एक दूसरे के पूरक हैं। अन्याय, सुधार-उपयोग, महानता - हीनता ये सभी दबे हुए रूप समाज हैं। जिस प्रकार समाज में राजनीतिक भंवर होता है, उसी प्रकार आर्थिक घटनाओं का योग होता है। कवि, कलाकार या लेखक समकालीन समाज की उपेक्षा नहीं कर सकते। क्योंकि संसार और सामाजिक जीवन का अनुभव लेखक का मानसिक संसाधन है। साहित्य की प्रत्यक्ष सामग्री समकालीन समाज और सामाजिक जीवन है लेकिन यह किसी विशेष सीमा या समाप्त तक सीमित नहीं है। कवि, कलाकार, लेखक की शैली की अनूठी कला में समकालीन कला को पार करके साहित्य सर्वव्यापी और सार्वभौमिक हो गया।

पंचतंत्र संस्कृत कथा साहित्य का सबसे पुराना ग्रंथ है। पंडित विष्णुशर्मा ने यह पुस्तक दक्कन के स्त्री नगर के राजा अमरशक्ति के तीन युवा पुत्रों को विभिन्न विषयों को पढ़ाने के लिए लिखी थी। पंचतंत्र पचास भाषाओं और दो सौ से अधिक संस्करणों में प्रकाशित हो चुका है। छठी शताब्दी ईस्वी के पूर्वार्द्ध में इसका पल्लवी में अनुवाद किया गया था, लेकिन मूल संस्कृत पाठ अब विलुप्त हो गया है। मूल पंचतंत्र का एक संस्करण था जिसे तांत्रिकायिका कहा जाता था। सिरि एक संस्करण और अरबी संस्करण ने भी पंचतंत्र को प्रकाशित किया। 1199 में, जिनापति सूरी के एक शिष्य श्वेतांबर जैन भिक्षु ने पूर्णभद्र पंचतंत्र का एक नया संस्करण प्रकाशित किया। इस संस्करण में इक्कीस नई कहानियाँ जोड़ी गईं और इसे पंचख्यानक के रूप में जाना जाने लगा। पंचतंत्र दक्षिण भारतीय संस्करण और उत्तर पश्चिम भारतीय संस्करण में भी प्रकाशित हुआ था। पंचतंत्र के आगमन के बारे में मैकडॉनेल कहते हैं - 'इस बात के प्रमाण हैं कि वेसली का एक संग्रह, लगभग 380 ईसा पूर्व और पांचवीं शताब्दी ईस्वी में'।

पुस्तक पांच खंडों में विभाजित है। हार्टेल के अनुसार, 'तंत्र' का अर्थ है 'अच्छी समझ का मामला'।

मित्रवेद - पहला तंत्र मित्रवेद है। इस प्रणाली में बाईस सुखद कहानियों का संकलन किया गया है। इस यंत्र के मुख्य पात्र दमनक और कार्तिक नाम के दो सियार हैं, पिंगलक नाम का एक सिंह और संजीवक नाम का एक बैल है। कहानियों के माध्यम से साम, दान, वेद, डंडा आदि राजनीति का ज्ञान दिया गया है।

मित्रता इस तंत्र में छह कहानियों का मेल बताया गया है। यहाँ मुख्य कहानी से जुड़ी पाँच कहानियाँ दी गई हैं और इन कहानियों के माध्यम से बच्चों के जीवन के रास्ते पर जाने के बारे में विभिन्न सलाह दी गई है।

काकोलुकिया - इस प्रणाली में चार कहानियों का संयोजन देखा जाता है। इस प्रणाली में मुख्य रूप से संधि आदि के छह गुणों की

चर्चा की गई है। इस प्रणाली को संधि विग्रह के नाम से भी जाना जाता है। कहानी छह गुणों में से किसी एक को आश्रय देने के संदेश को दर्शाती है।

लाभप्राणशा–पंचतंत्र का चौथा तंत्र लाभप्राणशा है। इस तंत्र का मुख्य उद्देश्य नैतिकता और अर्थशास्त्र की शिक्षा देना है। परीक्षण न किया गया अंत प्रणाली परीक्षण नहीं किया गया है। पंद्रह कहानियों का एक संयोजन मनाया जाता है। इस प्रणाली में वास्तविक जीवन के बारे में विभिन्न ज्ञान प्रदान किया जाता है।

पाँच तंत्रों में कुल छियासठ कथाएँ हैं। कहानियों की मौलिकता और पात्रों की जीवंतता को बयान करने की सादगी के कारण पंचतंत्र अधिक रोमांटिक हो गया है।

बेताल पंचविंशती कथा साहित्य की सबसे अमूल्य पुस्तकों में से एक है। पच्चीस कहानियों का संग्रह बेताल पंचविंशती के वर्तमान में चार संस्करण हैं। ए) शिवदास द्वारा लिखित गद्य का मिश्रित संस्करण, जिसमें कभी–कभी राजसी छंदों के साथ सरल गद्य डाला जाता है। बी) एक जम्भलदत्त द्वारा लिखित एक गद्य संस्करण, इसमें कोई नैतिक छंद नहीं है। सी) वल्लभदास द्वारा लिखित एक लघु संस्करण। डी) अज्ञात लेखक का गद्य संस्करण। कहानी के अनुसार राजा बिक्रम सेन या त्रिबिक्रम सेन को 25 किस्से सुनाए गए हैं। राजा विक्रम सेन की हत्या की साजिश रचने के बाद एक साधु उन्हें प्रतिदिन एक फल देता था, जिसमें से एक फल रत्न होता था। यदि राजा रत्नों के उपहार का कारण जानना चाहता है, तो साधु राजा से लाश प्राप्त करने में मदद मांगता है। देर रात, साधु के अनुरोध पर, राजा बिक्रम सिंह शव लाने के लिए श्मशान में प्रवेश किया। शव को श्मशान घाट में पेड़ से उतारा गया तो जमीन को छूते ही उसमें जान आ गई। जब राजा बिक्रम सेन लाश को लेकर श्मशान में इंतजार कर रहे साधु के पास गए, तो उन्होंने राक्षस राजा को एक कहानी सुनाई और इसके बारे में सवाल पूछा। बुद्धिमान: राजा भी उचित प्रश्नों का उत्तर देना जारी रखता है। इस प्रकार, 25 दिन बीत जाने के बाद, बेताल ने राजा की विद्वता और वीरता से प्रसन्न होकर राजा को साधु की साजिश का खुलासा किया, और बेताल की सलाह पर, उसने दुष्ट साधु को मार डाला और अपना बचाव किया। कहानियाँ बहुत ही मार्मिक और रोचक हैं। नवाचार, सरलता, हास्य हर कहानी में मौजूद हैं।

शुकसप्तति संस्कृत कथा साहित्य की सबसे लोकप्रिय पुस्तकों में से एक है। शुकसप्तती में 60 आख्यानों का संग्रह है। मूल कार्य अब विलुप्त हो चुका है। इस कहानी साहित्य के दो संस्करण हैं। पूर्ण जैन संस्करण (ग्यारहवीं शताब्दी), चिंतामणि भट्ट द्वारा बड़ा संस्करण। यह पुस्तक बारहवीं शताब्दी से पहले प्रकट नहीं हुई थी। ईस्वी में शुकसप्तती का फारसी में अनुवाद किया और इसका नाम तूतिनामेह या तूतिनामा रखा। फारसी में इसके अनुवाद के सौ साल बाद, शुकसप्तरी का तुर्की में अनुवाद किया गया था। इसके अलावा, तूतिनामा की मदद से, शुक्सप्तती का अनुवाद भारत की प्रांतीय भाषा उर्दू में किया गया है। चंडीचरण मुंशी ने तुतिनामा का बंगाली में अनुवाद किया और इसे तोता का इतिहास नाम दिया।

व्यापारी हरिदत्त के पुत्र मदन बिनोद, देवदास प्रकृति के एक युवा व्यक्ति थे। हरिदत्त अपने पुत्र मदन बिनोद के लिए बहुत चिंतित था। हरिदत्त को एक ब्राह्मण से शुक्रारी उपहार मिला। गिद्ध नैतिकता में पारंगत था और मदन बिनोद विलासिता को त्याग कर विदेश व्यापार यात्रा पर चला गया। हर शाम जब प्रभावती अपने पति की अनुपस्थिति में एक अवैध प्रेमी से मिलने के लिए घर से निकलने वाली थी, तो साड़ी नामक एक पक्षी भौंकता था और एक सूखी चिड़िया उसे एक कहानी सुनाती थी। इस तरह वह 60 दिनों में 70 कहानियां सुनाता था और अवैध प्रेमियों से मिलने से रोकता था। इस कहानी में उल्लिखित उल्लू की कोई पहचान नहीं है। किंवदंती के अनुसार, शुक के अवतार महात्मा नारद ने देवराज इंद्र को ये कहानियां सुनाईं। लेकिन श्री स्मित के शुक्सप्तती के अनुवाद से शुक पक्षी की पहचान का पता चलता है। यह शुक और सारिका दो शापित पक्षी हैं।

इस पाठ में कहानी के बारे में मुख्य और हड़ताली बात रणनीति, बुद्धि और कौशल है। अधिकांश कहानियों में, ट्रांसजेंडर महिला के अस्थायी खतरे और उसके बौद्धिक उपचार, बुद्धि और चालाकी से खतरे पर काबू पाने, धैर्य और प्रयास की सुंदरता आदि को देखा जाता है। इस कहानी में समाज में लड़कियों की स्वतंत्रता कहीं अधिक थी और इसीलिए कवि ने लड़कियों के आराम की कहानी लिखी है। हालाँकि, यह विपरीत प्रतिक्रिया हो सकती है कि भारतीय समाज में आमतौर पर लड़कियों को कोई स्वतंत्रता नहीं थी, इसलिए हो सकता है कि लड़कियों का चोरी के बाद पुरुषों के साथ अवैध संबंध हो। शुकसप्तती की अधिकांश कहानियों में स्त्री के विवाहेतर संबंधों का बार–बार उल्लेख किया गया है, इसलिए हमारे लिए यह समझना मुश्किल नहीं है कि उस समय के समाज में कोई सामान्य स्त्रीत्व नहीं था। चतुर और विनोदी कहानियाँ लिखी गई हैं। वास्तव में पारंपरिक वैवाहिक जीवन के बाहर वासना और व्यभिचार की दुनिया, ब्राह्मणवादी रूढ़िवादिता की असंगति, गरीबी की वास्तविक तस्वीर, राजनीतिक कुशाग्रता, ग्रामीण परिवेश को चित्रित किया गया है।

विक्रमांकचरित या सिंहसनादबत्रिनशिका पर सबसे पुराना मूल कार्य शायद गायब है। लेकिन इस पुस्तक के दो संशोधित संस्करण हैं, एक उत्तर भारत में और दूसरा दक्षिण भारत में। उत्तर भारतीय संस्करण मूल रूप से तीन भागों में विभाजित है- ए) जैन लेखक खेमनकर (महाराष्ट्रियन संस्करण) द्वारा लिखित, बी) बरुची द्वारा बंगाली संस्करण सी) एक अज्ञात लेखक (लघु संस्करण) द्वारा लिखित। इस पुस्तक के मूल लेखक हमारे लिए अज्ञात हैं। जैन संस्करण और दक्षिण भारतीय संस्करण के आधार पर, यह पुस्तक तेरहवीं शताब्दी से पहले दिखाई दी। विक्रमांकचरित 32 कहानियों के संग्रह के साथ लिखा गया है। महाराजा विक्रमादित्य को इंद्र से उपहार के रूप में एक सिंहासन मिला। फिर विक्रमादित्य के शालिवाहन द्वारा पराजित और मारे जाने के बाद, इंद्र द्वारा प्राप्त सिंहासन को धीरे-धीरे भूमिगत दफन कर दिया गया। धाराधिपति भोज सिंहासन को बचाने में सफल रहे। इंद्र द्वारा प्राप्त सिंहासन के बचाव के बाद, जब राजा ने एक दावत के लिए बैठना चाहा, तो सिंहासन पर उकेरी गई 32 महिला मूर्तियों में जान आ गई। उनमें से प्रत्येक ने महाराजा विक्रमादित्य के गुणों के बारे में एक कहानी छोड़ी। हर कहानी में विक्रमादित्य के गुणों का वर्णन किया गया है और कहानियाँ बहुत ही सुखद और मनोरम हैं।

नीतिवचन के लेखक नारायण शर्मा हैं। वह एक बंगाली और बंगाल के सबसे लोकप्रिय कवि हैं। उन्हें राजा धबल चंद्र का संरक्षण प्राप्त था। उन्होंने राजा पाटलिपुत्र के सुंदर पुत्रों को पढ़ाने के लिए इस कथा का निर्माण किया।

नीतिवचन में 43 कहानियों का मेल देखा गया है। 43 कहानियों में से 25 कहानियाँ पंचतंत्र से ली गई हैं। नीतिवचन की पुस्तक की रचना के लिए न केवल पंचतंत्र बल्कि एक या एक से अधिक कहानी पुस्तकों का उपयोग किया गया है। और यही कारण है कि उन्होंने नीतिवचन की पुस्तक की शुरुआत में कहा: '*पंचतंत्रतथा मेः न्यास्मद ग्रंथाक्षय लेख्य*' यह कहना आवश्यक है कि हालांकि मूल पंचतंत्र अब विलुप्त हो गया है, बहुत से लोग सोचते हैं कि नीतिवचन का बंगाली अनुवाद है पंचतंत्र। फिर से, कई लोगों ने बताया है कि नारायण शर्मा द्वारा लिखित नीतिवचन की पुस्तक दक्षिणी संस्करण का अनुवाद है।

नीतिवचन को चार अध्यायों में विभाजित किया गया है-

मित्रालव - प्रथम अध्याय का नाम मित्रलव है। इस भाग में कहानियों की संख्या 6 है। मुख्य कहानी कौआ-कछुए-हिरण-चूहे की कहानी है। मुख्य कहानी के अंदर पुराने बाघ यात्री की कहानी है, हिरण कौवे की कहानी, लोमड़ी की कहानी, गिद्ध और बिल्ली की कहानी, कुटिल कान की कहानी, व्यापारी जोड़े की कहानी, सुपर-बचत शिकारी की कहानी, राजकुमार और व्यापारी मित्र की कहानी, हाथी और सियार की कहानी।

सुहृदवेद - दूसरे अध्याय का नाम सुहृदवेद है। यह भाग कहानियों की संख्या नहीं है। मूल कहानी एक शेर-बैल-दो लोमड़ियों की कहानी है। मुख्य कहानी में अन्य कहानियों का संग्रह है: बंदर की कहानी, चोर की कहानी, गधे की कहानी, शेर की कहानी, विलय की कहानी, दानव की कहानी, घंटी बजाने वाले राक्षस की कहानी, राजा-राजकुमार की कहानी - नाई और नाई दुल्हन के बारे में बात करते हैं, कौवा युगल - काला सांप - शंख दर, शेर-खरगोश, समुद्र और टिटिव युगल।

विग्रह - तीसरे अध्याय का नाम विग्रह है। अध्याय कहानियों की संख्या नहीं हैं। इस भाग में हंस, मोर और कौवे की कहानी है।

सन्धि- चौथे अध्याय का नाम सन्धि है। इस भाग में कहानियों की संख्या बारह है।

नीतिवचन की पुस्तक में, यह जीवन के रास्ते में आशा-संघर्ष, बाधाओं, लालच-भ्रम आदि का सामना करने पर किस मार्ग का चयन करना है, इसके प्रारंभिक संकेतों को दर्शाता है। इस ग्रंथ में शाश्वत सत्य के अनेक उदाहरण हैं, जैसे विज्ञान के ज्ञान की स्तुति, यौवन की नश्वरता, धन, आधिपत्य आदि, दुष्ट पुत्रों की निंदा, संसार में सुख के संकेत, धर्म की स्तुति, दान की स्तुति, विश्वास और अविश्वास, बुराई के साथ बुराई और अच्छाई के साथ अच्छाई, महात्मा की प्रशंसा, सच्चे मित्र की प्रशंसा और मित्र की प्रशंसा, अच्छे और बुरे के बीच भेद, आत्मरक्षा का महत्व, दुर्गम स्वभाव, बड़ों के निर्देशों का पालन करने की आवश्यकता आदि। नीतिवचन की कहानियों के माध्यम से उन्होंने राजशाही के नियमों और विनियमों की आसानी से सेवा की है और शाश्वत सत्य की पहचान को भी प्रचारित किया है। नीतिवचन एक उल्लेखनीय बात यह है कि कहानी के माध्यम से नारी चरित्र की कमजोरी को बार-बार व्यक्त किया जाता है। पत्नी ने चरित्र के विभिन्न गुणों पर केन्द्रित हास्य कहानियाँ लिखी हैं। नारायण शर्मा ने न केवल महिलाओं की कमजोरी का उपहास किया है, बल्कि उन्होंने अपनी फैंसी लेखन शैली के माध्यम से समाज की कमजोरी को भी दर्शाया है।

पड़ावली साहित्य के संस्थापक वैष्णव कवि विद्यापति हैं। विद्यापति मिथिला राज शिवसिंह के मिलनसार कवि थे और उन्हें 'मैथिल कोकिल' की उपाधि मिली। इस पुस्तक में 44 कहानियाँ संकलित हैं। सभी कहानियाँ मानवीय चरित्रों पर आधारित हैं।

पुरुष परीक्षण पुस्तक का पाठ चौदहवीं शताब्दी ई. में प्रकट हुआ पद्मावती हरकोला के प्रसिद्ध और ससागर राजा हरकोला की एकमात्र सुंदर और बुद्धिमान राजकुमारी थी। युवा पद्मावती के लिए विवाह योग्य पात्र की तलाश में, राजा हरकोल चिंतित हो गए और उन्होंने बासुकृति नाम के एक ब्राह्मण से पूछा कि वह अपनी बेटी के लिए किस तरह का दूल्हा (बर्तन) बनाएंगे। उत्तर में बासुकृति ब्राह्मण ने पुरुषबार की बात की। असंतुष्ट राजा ने इसका सही अर्थ नहीं समझा और ब्राह्मण ने राजा से कहा कि इस दुनिया में आकार में कई पुरुष हैं लेकिन असली पुरुषों की कमी ध्यान देने योग्य है। और वास्तविक बर्तन या मनुष्य के गुणों की परीक्षा विचाराधीन पाठ की विषय-वस्तु है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के पुरुषों के चरित्रों को परोपकारी, दयालु, सत्यवादी, योद्धा, बुद्धिमान, प्रतिभाशाली, जानकार, सशस्त्र, सशस्त्र, लोकगीत, वैदिक, गीत, नृत्य, जादू, चित्रकला आदि के रूप में चित्रित किया गया है। बेईमान, आलसी, अज्ञानी, जन्म लेने वाले, सहवास करने वाले, पीड़ित, थके हुए, मूर्ख और नीच जैसे दुष्ट पुरुषों का भी वर्णन किया गया है। पुरुष परीक्षण कहानियों में कवि ने हास्य और आकर्षक हास्य के माध्यम से समाज में पुरुषों के आचरण के नियमों को प्रस्तुत कर एक सुधारक की भूमिका निभाई है।

बल्लाल या वल्लभ द्वारा लिखित भोज प्रबंध नामक पुस्तक ने धार साम्राज्य के प्रसिद्ध राजा पर केंद्रित इतिहास के प्रसिद्ध जानकार पात्रों की सभा में विभिन्न कहानियों का निर्माण किया है और साहित्यिक पहलू में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उन्होंने बल्लाशतक नामक एक और पुस्तक लिखी है। भोज नामक एक से अधिक व्यक्तियों के नाम मिलते हैं। विदर्भराज भोज जो दसवीं शताब्दी (1005-1054) में प्रकट हुआ। रामायण चंपू नामक पुस्तक के लेखक कौन हैं? इस समय भोज नामक एक अन्य व्यक्ति का नाम मिला जो धारा शहर का शासक था। जिन्होंने कवियों और विद्वानों का सम्मान किया। ऐसा माना जाता है कि बल्लाल सेन ने इस काव्य शैली के राजा भोज के ऐतिहासिक चरित्र पर निबंध की रचना की थी। हालाँकि बल्लाल सेन ने ऐतिहासिक कविताएँ लिखीं, लेकिन इस पुस्तक में संवादों का संग्रह है। ऐसी रचनात्मक विशेषताएं या प्रकृति जैन साहित्य में पाई जाती है। अत: 'बुझी' नामक निबंध को मनोरंजक कविताओं-सूक्ति- का संग्रह कहा जा सकता है। राजा भोज वे स्वयं साहित्य के संरक्षक थे। बल्लाल सेन के लेखन से ज्ञात होता है कि राजा भोज के दरबार में कालिदास, भवभूति, माघ, मल्लीनाथ आदि प्रसिद्ध तथा अन्य कवि उपस्थित थे।

संस्कृत साहित्य में प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के तीन स्तर देखे जाते हैं, प्राचीन, मध्य और नवीन। वैदिक काल प्राचीन आर्य भाषा का है। ऋग्वेद की रचना इसी काल में हुई थी। (65-65 ईस्वी) ने उत्तर भारत के कई हिस्सों में अपना राज्य फैलाया। वह कनिष्क (6 ईस्वी) द्वारा सफल हुआ। कनिष्क वह एक बौद्ध था। ह्यूग एन संग और अल बरुनी के बीच हुई मुलाकात से ज्ञात होता है कि उन्होंने पेशावर में एक विशाल बौद्ध मठ का निर्माण किया था। ऐसा कहा जाता है कि कनिष्क की प्रेरणा से कश्मीर (गांधार या जालंधर) में बौद्ध सभाओं का आयोजन किया गया था। इसके अलावा, उन सभी को बौद्ध दार्शनिकों जैसे महायानी नागार्जुन और प्रसिद्ध आयुर्वेद शास्त्र निर्माताओं द्वारा सजाया गया था। कुषाण वंश के अंत के बाद, उत्तरी भारत के विभिन्न हिस्सों में आदिवासी लोकतंत्र स्थापित हुए और कुछ क्षेत्रों में राजशाही अस्तित्व में थी। लोकतंत्रों में उल्लेखनीय हैं अर्जुनायन, मालाब और युद्ध। शकों की स्थापना पहली शताब्दी ईसा पूर्व में पश्चिमी भारत की सिंधु घाटी में हुई थी। पहली शताब्दी ईसा पूर्व में, दक्षिण भारत के दो अन्य राजवंशों का प्रभुत्व था, एक उत्तर-दक्षिण में सातवाहन राजवंश था और दूसरा कलिंग का चेदि वंश था। तीसरी शताब्दी ईस्वी में, सातवाहन वंश के अंत के साथ, दक्कन के बकाटक वंश के राजाओं ने प्रभुत्व स्थापित किया। बकाटक वंश के प्रसिद्ध राजा प्रोबरसेना प्रथम थे और वे ब्राह्मण धर्म के प्रबल समर्थक थे। इसके अलावा, अवीर, बोधी, इश्वकु, बृहत्फालयन, चोल, प्रांड, चेर राजवंशों ने दक्कन पर प्रभुत्व किया। दूसरी ओर, नंद वंश का पतन और गुप्त वंश का उदय तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में शुरू हुआ। चंद्रगुप्त प्रथम गुप्त वंश का सबसे पुराना और प्रमुख राजा था। वह संभवत: 320 ईस्वी में सिंहासन पर बैठा और पूरे बिहार, उत्तर प्रदेश और बंगाल के कुछ हिस्सों पर शासन किया। उनके पुत्र समुद्रगुप्त, जो चंद्रगुप्त प्रथम के बाद राजा बने, इलाहाबाद प्रशस्ति में अपने राज्य की विजय के विभिन्न गुणों का वर्णन करते हैं। नतीजतन, हिंदू धर्म में शोक, पहलवी, कुषाण और ग्रीक तौफीक-ए गैर-भारतीय राष्ट्रों का प्रभाव देखा जाता है। इस समय यूनानी राजदूत मेगस्थनीज कुछ समय के लिए पाटलिपुत्र के दरबार में रहे और भारतीय सामाजिक व्यवस्था को देखा। यद्यपि उस समय बौद्ध, जैन, शैव और वैष्णववाद का प्रभाव स्पष्ट था, बौद्ध धर्म ने अधिक से अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त की। वैष्णववाद और शैववाद का सार भक्ति था। देवता की भक्ति और देवता के प्रति पूर्ण समर्पण केवल

इच्छुक देवता के प्रसाद, कृपा और मोक्ष प्राप्त करने का एक साधन है। अर्थशास्त्र नामक ग्रंथ से उस समय प्रचलित शासन, सामाजिक नीति और राजनीतिक विचारों के सैद्धांतिक पैटर्न ही पंचतंत्र कथा में परिलक्षित होते हैं और उस समय के समाज का नामकरण पुस्तक के नामकरण से स्पष्ट हो गया है।

दक्कन का राष्ट्रकूट साम्राज्य 975 ईस्वी में गिर गया और तंजौर के चोल वंश ने धीरे-धीरे प्रभुत्व प्राप्त किया। इस समय राजेंद्र चोल दक्कन में चोल वंश के राजा थे। मध्य, पश्चिम, भारत में प्रमुख राजवंश चंदेल, कलचुरी, परमार, चौलुक्या, चा हमन, गोहिल, तोमर, शाही आदि थे। कश्मीर में उत्पल वंश का शासन 939 ई. में समाप्त हो गया और फिर बारहवीं शताब्दी में लोहार वंश का शासन स्थापित हुआ। ग्यारहवीं शताब्दी में मुझे मालाबार के परम के शाही भोज का नाम मिला। दक्कन में पांड्य, गंगा, पल्लब, बान आदि जैसे अन्य राजवंशों के नाम महत्वपूर्ण हैं। दसवीं शताब्दी में, दक्षिण से सेन वंश ने बंगाल के सिंहासन पर कब्जा कर लिया और पाल वंश का पतन शुरू हो गया। जयद्रथ के हरचरितचिंतामणि महाकाव्य और मांखा के श्रीकांत चरित से ज्ञात होता है कि उस समय शैववाद का प्रभाव मौजूद था।
राजा भोज के सरस्वती कंठभरण, रुयाक के अलंगकारसरबस्वा, अभिनव गुप्त के तंत्रलोक, भास्कराचार्य के सिद्धांत शिरोमणि, ममता के काव्यप्रकाश आदि लफ्फाजी में बहुत समृद्ध हैं। बंगाली साहित्य में चर्यपद का नाम सभी जानते हैं। चर्यपद दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दी के बीच प्रकट हुए। बाद में, बंगाली साहित्य को दो भागों में विभाजित किया गया, महामोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने नेपाल से चर्यचार्यबिनिश्चय एकत्र किया और 23 बौद्ध सहजों ने इन छंदों की रचना की। संस्कृत साहित्य के साथ-साथ तत्कालीन बंगाली साहित्य के समाज में बौद्ध धर्म का प्रभाव देखा गया।

इस प्रकार का उपन्यास बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी के बीच लिखा गया था। इस समय बंगाल में पाल वंश का पतन और सेन वंश का उदय देखा गया। यद्यपि मुसलमान लंबे समय से भारत में खुद को स्थापित करने के लिए अभियान चला रहे थे, उन्होंने हिंदू राजा का विरोध किया और अपनी ताकत हासिल की और भारत पर हमला किया। बारहवीं शताब्दी के अंत में, बंगाबीर और अन्य क्षेत्रों पर मुसलमानों का कब्जा था और लंबे समय तक उनके शासन में रहे।उस समय वंशवादी राजा ने बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की। सुभात का छाया नाटक दुतंगड़ और अमर चंद्र का बाल भारत चालुक्य वंश के राजा त्रिभुवन पाल के समकालीन हैं। 1258 में लिखी गई सूक्ति मुक्तावली या सुभासिता मुक्तावली के लेखक कवि जाहलान दक्षिण भारतीय जादु वंश के राजा कृष्ण के समकालीन थे। शांधार व्यवस्था के रचयिता, शांधार, शाकंभरी साम्राज्य के चौहान वंश के समकालीन हैं। तेरहवीं शताब्दी में, पश्चिम बंगाल के कुछ हिस्से मुस्लिम राष्ट्र का हिस्सा बन गए।बाद में, पठानों, सुल्तानों और मुगलों ने पांच सौ वर्षों तक बंगाल पर शासन किया। मुस्लिम शासक समुदाय इस सदी में दिल्ली के सिंहासन के लिए सफल हुआ। खिलजी वंश 1290 के दशक में उभरा और अलाउद्दीन खिलजी ने एक एकीकृत साम्राज्य स्थापित करने की मांग की और हिंदुओं को विभिन्न तरीकों से सताया। 1320 के दशक में खिलजी वंश के पतन के बाद तुगलक वंश का उदय हुआ। कल्हण के बाद के युग में, सल्तनत काल के दौरान मुस्लिम राजा के संरक्षण में, चार इतिहासकारों ने ऐतिहासिक कविता राज तरंगिनी में चार अध्याय जोड़े, जिसे द्वितीय राज तरंगिनी के रूप में जाना जाता है। बारहवीं शताब्दी में प्रसिद्ध व्याकरणविद् और धर्मशास्त्री के रूप में हेमचंद्र का नाम विशेष उल्लेख के योग्य है। उस समय के समाज में जैन धर्म का प्रभाव देखा गया। इसके अलावा, पद्मनाभ के सुपद्मा व्याकरण और रूप गोस्वामी जीव गोस्वामी की पुस्तक हरिनमृत में वैष्णव धर्म के प्रचार के बारे में बताया गया है।

भारतीय इतिहास के मध्यकाल में 11वीं शताब्दी ई. में भारत और विदेशी व्यापार के बीच संचार लाल और फारस की खाड़ी के माध्यम से शुरू हुआ। इतिहासकार नीलकंठ शास्त्री के अनुसार, ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी में चोल राजाओं के उदय के दौरान, दक्कन में कोरोमंडल और मालाबार के बंदरगाह पर अच्छी संख्या में व्यापारी जहाजों का निर्माण किया गया था। भारत के साथ-साथ चीनी व्यापारियों ने पश्चिमी दुनिया को भारतीय सामान की आपूर्ति की। उस समय, मिस्र में फातिमिद वंश के शासन के साथ, इस्लामी राज्य मजबूत हो गए थे। इस दौरान भारतीय व्यापार और वाणिज्य समुद्र के रास्ते अपने चरम पर पहुंच गए। बारहवीं शताब्दी में, भारतीय मसाले, इत्र, रंग, आयुर्वेदिक पौधे, लोहा और जहाज से बनी लकड़ी भारत से अरब और फारस, मिस्र और भूमध्यसागरीय यूरोप में भेज दी गई थी। फारस की खाड़ी में होर्मुज के बंदरगाह के माध्यम से, भारतीय मालवाहक जहाज ईरान, यूरोप, रूस, मध्य एशिया आदि के लिए रवाना हुए।

खिलजी वंश के पतन के बाद तुगलक वंश (1320) की स्थापना हुई और चौदहवीं शताब्दी के अंत तक शासन किया।

तैमूर लॉन्ग के आक्रमण ने तुगलक वंश के पतन के साथ-साथ हिंदुओं के क्रूर उत्पीड़न का कारण बना। तुगलक वंश के अंत के बाद, विभिन्न छोटे राज्यों का उदय हुआ। तुगलक वंश के अंत के साथ, दक्कन में दो स्वतंत्र राज्य स्थापित हुए, एक बहमनी साम्राज्य और एक विजयनगर साम्राज्य। कृष्णदेव राय विजयनगर साम्राज्य के एक उल्लेखनीय राजा थे। उनके समय में न केवल साहित्य बल्कि वास्तुकला और कला का भी विकास हुआ। चौदहवीं शताब्दी में शाह राजवंश का उदय हुआ। बांग्लादेश के समाज, जीवन और संस्कृति के विभिन्न पहलुओं में पैदा हुई अराजकता इस समय समाप्त हो गई। कला और साहित्य धीरे-धीरे अराजकता से मुक्त हो जाते हैं। बौद्ध, जैन और हिंदू समाजों की मुक्ति के बाद, भगवान कृष्ण की जीत हुई। विद्यापति मिथिला के राजा शिव सिंह के प्रसिद्ध मिलन कवि थे। प्रसिद्ध बंगाली कवि जयदेव ने संस्कृत में गीतागोविन्द की रचना की। बंगाली साहित्य में उनका प्रभाव महत्वपूर्ण है। कवि ने जयदेव को मूल गुरु कहा है।

बल्लाल या वल्लभ ने सोलहवीं शताब्दी में भोज निबंध लिखे। यह लेख परमार वंश के शासक भोज (1010-1055) पर आधारित है। राजा भोज मध्य भारत के मालवा क्षेत्र के धारा शहर, उत्तर में चित्तौड़ से लेकर दक्षिण में कंकण तट तक और पूर्व में साबरमती नदी से विदिशा शहर तक हावी था। किंवदंती है कि वह वह था जिसने राक्षस राजा विक्रमादित्य के देवता इंद्र द्वारा दिए गए सिंहासन को बचाया था। उन्होंने दक्षिण भारत के शक्तिशाली राजा राजेंद्र चोल के साथ मजबूत संबंध स्थापित किए और मुहम्मद से शाहिरजाओं की गजनी की रक्षा की। वह न केवल एक अच्छे शासक थे, बल्कि एक विद्वान्, कवि और समाज सुधारक भी थे। उनके शासनकाल में संस्कृत का प्रयोग बोली जाने वाली भाषा के रूप में किया जाता था। उन्होंने शिक्षा पर जोर दिया। राजा भोज के सींग का रहस्योद्घाटन, सरस्वती कंठाभरण संस्कृत साहित्य की एक त्रुटिहीन रचना है।

तुगलक वंश के पतन के बाद भारत के लोदी वंश की स्थापना हुई और इस राजवंश का शासन पंद्रहवीं शताब्दी के मध्य से सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक चला। इस दौरान मुगल साम्राज्य का प्रभुत्व देखा गया। मुगल साम्राज्य का सबसे महान सम्राट अकबर अपने सुशासन और उत्पीड़ित हिंदू बहनों के प्रति उदार रवैये के कारण एक व्यापक समाज का निर्माण करने में सक्षम था। उस समय के समाज में दो ऐतिहासिक महिला कवियों के नाम स्मरणीय हैं, वे हैं रामभद्रम्बा और गंगा देवी। सोलहवीं शताब्दी में हरिविजय सूरी द्वारा रचित जैन महाकाव्य विजयप्रस्तिकव्य लिखा गया, अर्थात् उस समय के समाज में महिलाओं का प्रभाव और जैन धर्म का प्रभाव देखा गया।

सन्दर्भ -

1: Apte, Varma Shivram, *The Practical Sanskrit English Dictionary*,page-202,330,331.

2: Krishnamachariar ,M, *A History of Classical Sanskrit Literature*,page-413

3: Dasgupta,S.N & De,S.R *A History of Sanskrit Literature*,vol:1 page-419

4: Chattopadhyay,Rita. *20th Century Sanskrit Literature:A Glimpse into Tradition and Inovetion.* Kolkata:Sanskrit Pustak Bhandar,2009.

5: Dasgupta,S.N &S .K.Day *A Histry of Sanskrit Literature classical Period* vol 1,Calcutta:University of Calcutta.

6: J.Wynn,*Theory and Practice of Psychology*,London:Macmillan& co,1934, page-x+308

7. Kân˜jilal,D.k,*Sanskrito Sâhitye hâsyarasa,* kolikata:Sanskrito College Prakashana,1371, page-284.

8. Macdonell,A.A.*The Energy of Men,*Routledge: first publish 1932,page-418.

9. ...India's Past,Oxford,At The Clarendon press,1927,page-275

10. ...*A History of Sanskrit Literature*, New York ,published by D.Apleton and company ,1900,page:455

11. Mishra,Gopalchandra.*Sansktito Sâhitya: samâloconâ: bibidho prasanga*, Kolkata: Sanskrito Pustak Bhandar,2013,page-231

12. Mukherji,R.*Literary Criticisim in Ancient India,*Calcutta:Sanskrit Pustak Bhandar ,october 1966.

13. Nagar,R.S, *Nâtyaaâstra of Bharatamuni, Delhi*:Parimal Publication,edition 2009,page-400.

ISSN 2278 - 0327

संस्कृत नाटकों की उपलब्ध परम्परा

संजय कुमार मिश्र
शोध छात्र
मानविकी संकाय (संस्कृत विभाग)
बी. एन. एम. यू. मधेपुरा (बिहार)

संस्कृत संसार की एक अति समृद्धशाली भाषा है। संस्कृत साहित्य के गहन अध्ययन और सूक्ष्म चिन्तन करने पर इस विशाल साहित्य में ज्ञान-विज्ञान, कला, चिकित्सा, गीत-संगीत, नाट्य-अभिनय का अगाध भंडार मिलता है।

नाटकीय विधा इस साहित्य का एक विशिष्ट और महत्वपूर्ण अंग माना जाता रहा है। सभी कलाओं में नाटक को श्रेष्ठ माना गया है।

''काव्येषु नाटकं रम्यम्।''

संस्कृत साहित्य में दो काव्यात्मक विधाएँ हैं-

श्रव्यकाव्य और दृश्यकाव्य

'श्रव्यकाव्य' की अपेक्षा 'दृश्यकाव्य' प्राचीन काल से ही मन को मुग्ध और आनंदित करते आया है। काव्य की अपेक्षा नाटक की लोकप्रियता प्राचीन काल से ही सर्वथा अधिक रही है। जिन्हें काव्य में रूचि नहीं है वह व्यक्ति भी नाट्य अभिनय के मनमोहक साज-सज्जा, शृंगार को देखकर परमानंद को प्राप्त कर लेता है। काव्यीय विधा सुनकर मन को प्रभावित एवं आनंदित करता है किन्तु नाटकीय विधा नयन द्वारा हृदय को आनंदित करता है। वैसे भी देखा जाय तो श्रवण के अपेक्षा दर्शन में विशेष आनंद की प्राप्ति होती है।

काव्य में रस की अनिवार्यता रहती है, नाटक की उपमा आकृति से की गयी है। चित्रांकन में जब भिन्न-भिन्न रंगों का समागम होता है तो उसकी सुन्दरता और भी प्रखर हो जाती है; ठीक उसी प्रकार नाटक में भी वेश-भूषा, आभूषण, अलंकरण, नेपथ्य, साज-सज्जा आदि औचित्यपूर्ण होने से द्रष्टा के मन को प्रमुदित (आनंदित) कर देता है। प्रख्यात आलंकारिक कवि वामन ने काव्यों में रूपक को सर्वोत्तम बताया है -

सन्दर्भेषु दशरूपकं श्रेयः। तद्धि चित्रं चित्र वद् विशेष साकल्यात्।।[1]

नाट्यशास्त्रकार भरतमुनि ने तो 'नाटक' को 'सार्ववर्णिक' वेद बताया है। नाटक का प्रयोजन सभी वर्ण और सभी धर्मों के लिये समान है। यह सार्वजनिक मनोरंजन होने के साथ-साथ समाज एवं देश हित में बहुउपयोगी और कल्याणकारी है।

नाटक का विषय और क्षेत्र असीमित है। इसमें तीनों लोकों का गुणगान तथा बखान है।

त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्यं भावानु-कीर्त्तनम्।[2]

नाटक अपनी भाव-भंगिमा, साज-सज्जा, गीत तथा वाद्य के सुन्दर प्रयोगों द्वारा निर्बलों में भी शक्ति का संचार भर कर बलवान् (शक्तिशाली) बनाता है। योद्धाओं में उमंग और उत्साह को बढ़ाकर उसके मनोबल को दृढ़ कर देता है। अज्ञानियों में ज्ञान का उन्मेष करता है। ज्ञानी को महाज्ञानी बनाता है। नाट्यकला की महिमा अद्भुत और अपरम्पार है। भरत मुनि इसे लोकाचार का अनुसरण बताते हैं:-

नाना भावोप सम्पन्नं नानावस्थान्तरात्मकम्।
लोक वृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मया कृतम्।।[3]

इस इहलौकिक संसार में सुख-दु:ख का चक्र मानव जीवन में चलता रहता है। इन सभी बातों का समुचित चित्रण ही नाटक का मूल अभिप्राय है। भरत मुनि ने अपने नाट्य शास्त्र में ज्ञान, शिल्प, विद्या, योग और कर्म को समाहित किया है।

न तद्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
न स योगो न तत्कर्म नाट्येस्मिन् यन्न दृश्यते।।[4]

संस्कृत-नाट्य-परंपरा पर लगभग सभी विद्वतजनों का एक ही मत है कि ऋग्वैदिक काल-खण्ड में ही नाटक पूर्ण रूप से अपने अस्तित्व में आ गया था। वैदिक युग ही नाटक का स्तम्भ है। ऋग्वेद के अनकों संवाद सूक्त में नाट्यकला एवं अभिनय की झलक प्राप्त होती है। जो यह मानने के लिये हमें विवश कर देती है कि नाट्य-परंपरा का शुभारंभ वैदिककाल ही रहा होगा।

उस समय के समाज में धार्मिक सामाजिक, मांगलिक एवं व्यापारिक कार्यों में नाट्य, अभिनय, नृत्य, संगीतादि का प्रचलन बृहद् मात्रा में हो गया था। ऋग्वेद के एक प्रसंग में ऊषा को

नर्त्तकी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसे सूर्योदय-कालीन अधिष्ठात्री देवी से संबोधित किया गया है। जो परम सुन्दरी, नव यौवना और नर्त्तकी है। यह कालरात्रि को मिटाकर चतुर्दिक अपने तेज से प्रकाशित करती है। सोमपान के लिये देवताओं का आवाहन भी करती है। जिस प्रकार नाटक में नायक अपनी रूठी नायिका को मनाने के लिये उसके पीछे-पीछे भागता है, ठीक उसी प्रकार सूर्य ऊषा का पीछा करता दिखता है। यहाँ ऊषा और सूर्य के बीच नाट्य अभिनय दिखता है।-

एषा युक्त परावतः सूर्योस्योदय नादधि।
शतं रथेभिः शुभगोषा इयंवि यात्यभि मानुषान।।[5]

'संवाद' नाटकीय तत्वों में प्रमुख है। ये नाटक के प्राण होते हैं। संवाद ही कथोपकथन कहलाता है। संवाद के द्वारा नाटक में नट-नटी अपने मनोभावों को स्पष्ट रूप से प्रकट करता है। यद्यपि आङ्गिक चेष्टाओं, साज-सज्जा, वस्त्राभूषण एवं नृत्यादि द्वारा रूपक में प्रभावोत्पादकता बढ़ती है तथापि बिना संवाद के रूपक लवणविहीन व्यञ्जनसदृश होता है।

ऋग्वेदीय संवाद-सूक्तों में नाट्य-परम्परा का उत्स ढूँढा जा सकता है। अब मैं यहाँ संक्षेप में कुछ ऋग्वैदिक संवाद सूक्तों का वर्णन करना आवश्यक समझता हूँ।

निम्न संवादात्मक सूक्त में कथोपकथन के द्वारा नाट्य अभिनय का अंकुर अवश्य है -

(i) पुरूरवा-उर्वशी संवाद
(ii) यम-यमी संवाद
(iii) इन्द्र-इन्द्राणी वृषाकपि संवाद
(iv) सरमा-पणि संवाद
(v) विश्वामित्र-नदी संवाद, इत्यादि

पुरूरवा उर्वशी संवाद

इस संवाद सूक्त में पुरूरवा और उर्वशी के प्रेमालाप का सम्यक् वर्णन मिलता है। उर्वशी द्वारा पुरूरवा का परित्याग किए जाने के पश्चात् पुरूरवा-उर्वशी की खोज में एक सरोवर पर आ जाता है जहाँ उर्वशी अपनी सखियों के साथ क्रीड़ा कर रही होती है। वहीं पुरूरवा-उर्वशी में संवाद होता है जो नाट्य-परंपरा का एक सजीव दृष्टान्त है।

तामाह पुनरेहीति दुःखात्सा त्वब्रवीन्नृपम्।
अप्राप्याहं त्वयाद्ये हस्वर्गे प्राप्यरसि मां पुनः।।[6]

यम-यमी संवाद -

यह ऋग्वैदिक संवाद सूक्त बहुत ही मार्मिक, हृदयस्पर्शी एवं शृंगारिक नाट्य अभिनय का दृष्टांत है।

यमी, यम के साथ नैसर्गिक संबंध बना-कर संतान उत्पत्ति की कामना रखती है। अनेक तर्कों द्वारा यमी, यम को मनाना चाहती है। यम भाई-बहन के पवित्र बन्धन को कलंकित नहीं करना चाहता है। यम सगोत्र में पति-पत्नी बनकर ऋषि मुनियों के संवैधानिक नियमों को नहीं तोड़ना चाहता है। संभवतः इसी कारण हिन्दू या अन्य धर्मों में सगोत्र विवाह वर्जित है।

ओ चित्सखायां सख्या ववृत्यांतिरः पुरू चिदर्णव जगन्वान्।
पितुर्न पातमा दधीति वेधा अधि क्षमि प्रतरं दीध्यानः।।[7]

इन्द्र-इन्द्राणी- वृषाकपि संवाद

वृषाकपि इन्द्र का पुत्र है और अपने पिता को बहुत ही प्रिय है क्योंकि वृषाकपि अतिशक्तिशाली और पराक्रमी भी है। इन्द्राणी अपने पुत्र वृषाकपि से अप्रसन्न होकर बहुत क्रोधित होती है। पुनः इन्द्र उसे मनाने लग जाते हैं। कहते हैं- संसार की सभी स्त्रियों में मैं अपने इन्द्राणी को अति सौभाग्यशालिनी और श्रेष्ठ मानता हूँ। अन्य स्त्रियों के पति के समान आपका पति इन्द्र वृद्धावस्था को पाकर भी मृत्यु से वंचित है। इस संवाद सूक्त में नाट्य-अभिनय का सम्यक् चित्रण हुआ है।-

परा हीन्द धावसि वृषा कपेरति व्यथिः।
नो अह प्र विन्दस्यन्यत्र सोम पीतये विश्वस्मादिन्द्रः उत्तरः।।[8]

सरमा-पणि संवाद

यह संवाद सूक्त भी नाट्य-अभिनय का सुन्दर दृष्टान्त स्वरूप है। सरमा इन्द्र की दूती हैं और पणि पराक्रमी असुर हैं। पणियों द्वारा इन्द्र की गायों की चोरी कर उसे पहाड़ की गुफा में छुपाकर रखा जाता है। इन्द्र सरमा को अपनी दूती बनाकर पणियों के पास भेजते हैं। सरमा और पणियों के बीच संवाद होता है। सरमा पणियों को समझाती है, तुम इन्द्र के पराक्रम को नहीं जानते हो। अच्छा होगा, तुम इन्द्र की गायों को लौटा दो।

किमिच्छन्ती सरमा प्रेदमानड् दूरे ह्यध्वा जगुरिः पराचैः।
कास्मेहितः का परितक्म्या सीत्कथं रसाया अतरः पयांसि।।[9]

अहंकारी पणियों ने सरमा की एक न सुनी और कई प्रलोभनों द्वारा सरमा को अपनी ओर आकृष्ट करना चाहा।

अन्ततः इन्द्र को पणियों पर आक्रमण कर गायों को छुड़ाना पड़ा। सरमा और पणि के बीच का कथोपकथन नाट्य-परम्परा का बीजारोपण ही तो है।

विश्वामित्र नदी संवाद

भरतवंशी विश्वामित्र पौरोहित्य कर्म द्वारा उपार्जित धन को लेकर अपने गन्तव्य मार्ग की ओर जा रहे थे। मार्ग में आई नदी को पार करना कठिन था। अतः उन्होंने नदी की प्रार्थना करते हुए

कहा- आप अपने रौद्र रूप को शान्त करें। मुझे और मेरे सहचर पर दया करें। सहजता से हमें पार उतरने दें। यहाँ व्यास और सतलज दो बहनों का नाम लेकर संबोधन, संभाषण नाटकीय अभिनय है।

ओ षु स्वसार: कारवे श्रृणोत ययौ वो दूरादरसा रथेन।
निषू नमध्वं भवता सुपारा, अधो अक्षा: सिन्धव: स्त्रोत्याभि:।। [10]

'कात्यायन श्रौत सूत्र' में भी सोमपान के अवसर पर एक लघु नाट्य अभिनय का वर्णन मिलता है। [11]

वनवासियों द्वारा सोम की बिक्री यजमान और अध्वर्यु के कथोप-कथन नाट्य अभिनय की प्राचीनता का एक उत्कृष्ट दृष्टांत है।

पाश्चात्य विद्वान् 'मैक्समूलर'[12], 'लेवी'[13] तथा ओल्डेनबर्ग[14] ने भी नाट्यकला की प्राचीनता तथा उत्पत्ति का मूल आधार वेदों के संवादात्मक सूक्तों को ही बताया है।

उपर्युक्त सभी विद्वत्जनों ने नाट्यकला की प्राचीनता को वैदिक-संवाद सूक्तों से जोड़ा है।

'डॉ० दास गुप्ता' ने पाश्चात्य विद्वानों के अनुसंधानों का गहन अध्ययन किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि वेदमन्त्रों में नाट्य-कला एवं अभिनय का उत्कृष्ट संग्रह तथा भंडार है। [15]

वैदिक युग के तत्कालीन समाज अपने धार्मिक, मांगलिक एवं अन्य शुभ अवसरों पर नृत्य, संगीत, एवं नाट्य अभिनय का अति उल्लास के साथ प्रदर्शन किया करते थे। वैदिक युग में नृत्य और उत्सव से नाट्यकला का हृदयस्पर्शी संबंध बन गया था।

संस्कृत नाट्य परंपरा का दृष्टांत 'ऋग्वेद' के अलावा 'यजुर्वेद' में भी सरलता से प्राप्त होता है। यजुर्वेद के 'वाजसनेयि संहिता' में वर्णन है कि शैलूष नामक जाति के लोग अपने व्यवसाय के रूप में नाटकीय प्रदर्शन कर अपना जीविकोपार्जन बड़े ही ठाट-बाट से किया करते थे। उस समय शुभअवसरों पर शैलूष जाति के लोगों की नियुक्ति होती थी। जो अपनी अभिनय कला के द्वारा लोगों को प्रसन्न किया करते थे।

नृत्ताय सूतं गीताय शैलूषं धर्माय सभाचरं
नरिष्ठायै भीमलं नर्मायरेभ ग्वं हसाय।
कारिमानन्दाय स्त्रीषरवं प्रमदे कुमारी
पुत्रं मेधायै रथकारं धैर्याय तक्षाणम्।। [16]

मांगलिक अवसरों पर नृत्य के लिये 'सूत' को, संगीत एवं शारीरिक भाव-भंगिमा हेतु 'नट' को नियुक्त किया जाता था।

डॉ० दास गुप्ता मानते हैं कि वैदिक युग में नाटक और अभिनय का प्रचलन हो गया था किन्तु उस समय के समाज में सूत और शैलूष जाति के लोग नाट्य नियमों से पूर्णतया अनभिज्ञ थे। वेदमंत्रों के किसी भी प्रसंग में नाट्य अभिनय के पात्रों का पारिभाषिक शब्दावली दृष्टगत नहीं है, फिर भी गर्भस्थ शिशु के समान घनिष्ठ संबंध बन गया था। [17]

उत्तरवर्त्ती संस्कृत साहित्य की यदि हम बात करें तो नाट्य अभिनय कला का सम्पूर्ण इतिहास दिखाई पड़ता है। जैसे- अष्टाध्यायी, रामायण, अर्थशास्त्र, बौद्धजातक एवं अन्य महाकाव्यों में हमें नाट्यकला के विविध अंगों और उसके पात्रों का पारिभाषिक विवरण- मिलता है। रामायणकाल के अयोध्या नगरी में नाटक मंडलियों ने प्रसिद्धि और लोकख्याति प्राप्त कर चुकी थी कुशीलव (नट-नर्त्तक) का प्रचार-प्रसार हो चुका था। 'रामायण' के एक प्रसंग में वर्णन है कि नटों, नर्त्तकों तथा गायकों के कर्णप्रिय और मधुर शब्दों को लोग बहुत ही तन्मयता से सुनते थे और खुशियों से झूमते थे।

नटनर्त्तकसंधानां गायकानाञ्च गीयताम्।
यत: कर्णसुखा वाच: शुश्राव जनता मत:।। [18]

महाकवि वाल्मिकी जी का कथन है कि जिस राज्य में राजा नहीं होते, उस राज्य में नट और नर्त्तक दु:खी और अप्रसन्न दिखाई पड़ते थे।

नीराजने जनपदे पहृष्टनटनर्त्तका:।। [19]

आचार्य पाणिनि की अष्टाध्यायी में 'भिक्षु सूत्रों' और 'नट सूत्रों' के प्रणेता 'पाराशर्य शिलालि' एवं कृशाश्व नामक दो प्राचीन आचार्यों का नाम का उल्लेख मिलता है। [20]

इन दोनों आचार्यों के कोई नाट्यशास्त्र विषयक ग्रंथ उपलब्ध होते तो नाट्यकला से संबंधित बहुत सारी बातों की जानकारी प्राप्त हो जाती।

'हरिवंश पर्व' जो मूलत: महाभारत का ही एक अंश है, इसमें कई स्थानों पर नाट्य अभिनय का प्रयोग दिखाई पड़ता है। 'प्रदुम्न विवाह' का सुन्दर प्रसंग है। वसुदेव जी के अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर 'भद्र' नामक एक 'नट' ने सुन्दर प्रस्तुति दी थी। वहाँ उपस्थित ऋषि मुनि प्रसन्न और हर्षित हुए थे। इसी नाट्यकला की प्रस्तुति पर उसे इच्छारूप धारण करने का और गगन में विचरण करने का वरदान प्राप्त हुआ था। [21]

महाभारत में 'रामायण नाटक' और 'कौवेर रम्भाभिसार' नामक दो नाटकों का उल्लेख मिलता है।[22] महाभारत में 'नट' नर्त्तक, गायक, और सूत्रधार आदि का अत्यधिक वर्णन मिलता है। [23]

महान विद्वान् कौटिल्य के अर्थशास्त्र का गहन अध्ययन

और समग्रचिन्तन करने पर ज्ञात होता है कि मौर्य सामाज्य काल में जितनी भी तरह की ललितकलाएँ थीं, उसके पठन-पाठन एवं अध्ययन के लिए मौर्य साम्राज्य की ओर से सम्पूर्ण प्रबंध किया जाता था। अर्थशास्त्रकार कौटिल्य ने एक सुदृढ़ राज्य व्यवस्था को चलाने के लिए एक नियम का प्रतिपादन करते हुए कहा कि- गायक, गायिका, गणिका, दासी, अभिनेत्री, अभिनेता आदि के लिए चित्रकारी, वीणा वादन, वेणुवादन, मृदंगवादन, गंधादिनिर्माण और शारीरिक शृंगारादि के लिए उक्त चौंसठ प्रकार की कलाएँ हैं। इसके ज्ञान एवं शिक्षण के लिये राज्य की ओर से विद्वान् आचार्यों की व्यवस्था होनी चाहिये। [24]

कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अध्ययन से पता चलता है कि उस समय नट नर्त्तक, गायक, वादक, कुशीलव, पल्वक, सौमित्र और चारण आदि ये सभी लोग, गीत-संगीत नृत्य और अभिनय के लिए अलग-अलग मंडली (टोली) बनाकर अपना जीविकोपार्जन चलाते थे। इन्हें राज्य में प्रवेश करने पर राज्य को मनोरंजन कर (टैक्स) देना पड़ता था। उस समय अलग-अलग अभिनय के लिये कर के रूप में पाँच पण देना पड़ता था। [25]

ईस्वीपूर्व की शताब्दियों में जो बौद्ध ग्रन्थों की रचना हुई उसमें नाट्यकला का देशव्यापि प्रचार देखने को मिलता है। 'विनयपिटक' के 'चुल्लबग्ग' की एक कथा प्रसंग में 'अश्वजीत' और 'पुनर्वसु' नाम के दो भिक्षु कीटागिरी की रंगशाला में एक नर्त्तकी के साथ प्रेमालाप करते हुए देखे गये। तब महास्थविर ने उन्हें उसी समय बिहार से निष्कासित कर दिया था। [26]

वैयाकरण पतंजलि के महाभाष्य में दो नाट्य कृतियों का उल्लेख प्राप्त होता है। इनके नाम हैं- 'कंसवध' और 'बालिवध'। डॉ. कीथ का कथन है कि पतंजलि के समय नट-नर्त्तक के साथ ही साथ संगीत में भी प्रवीण हो गया था और उत्कृष्ट प्रदर्शन करने लगा था। डॉ० कीथ संस्कृत के नाटकों की प्राचीनता को ईस्वीपूर्व दूसरी शताब्दी के आस पास मानते हैं। [27]

आचार्य वात्स्यायन जो कामशास्त्र के ख्याति प्राप्त विद्वान् हुए, उनका कहना है कि तत्कालीन कलापूर्ण सरस्वती मंदिरों में प्रत्येक महीना के पक्ष एवं पर्व, उत्सवों पर राजा के द्वारा नियुक्त नटों के माध्यम से अनेक प्रकार का नृत्य अभिनय आदि होता था। इस उत्सव को उस समय समाज की संज्ञा से संबोधित किया जाता था। [28]

हजारी प्रसाद द्विवेदी का मानना है कि धार्मिक अवसरों पर देवालयों में जन्मोत्सव और विवाहोत्सव के समय घरों में प्राचीनकाल में ही रंगशालाओं का प्रणयन हो गया था। [29]

आचार्य वामन ने साहित्य में नाटक को प्रथम स्थान पर माना है, इसलिए कि कथा आख्यायिका, महाकाव्य, काव्य इत्यादि के समग्र आनन्द की अनुभूति तब तक प्राप्त नहीं होती है, जब तक कि उसमें नाटकत्व का समावेश न हो। [30]

आचार्य अभिनव गुप्त ने नाटक के विषय में कहा है कि अभिनेय काव्य ही काव्य का एक ऐसा अंग है, जिससे रंगमंच पर अभिनय का वातावारण पात्रों का आंगिक क्रिया-कलाप, वचनों में माधुर्य और उत्तम अभिनय के माध्यम से कठोर समाज भी सरस होकर आनंद विभोर हो जाता है। [31]

नाटक का उद्भव और विकास -

नाटक समाज के लिये दर्पण के समान है। समाज में सदैव नये-नये विचारों का उत्थान एवं पतन स्वाभाविक है। नवीन विचारों एवं भावनाओं का समावेश होते रहता है, उसी प्रकार नाटकों में भी परिवर्त्तन और परिवर्धन होना स्वाभाविक है। पश्चिम के विद्वानों ने नाटक की उत्पत्ति और विकास से संबंधित अपने-अपने विचार प्रकट किये हैं। जो हमारी नाट्य परम्परा से बिल्कुल भिन्न होने के कारण सर्वमान्य नहीं कहे जा सकते हैं।

इन विद्वानों का मत संक्षेप में प्रस्तुत है -

डॉ० रिजवे नाटक की उत्पत्ति ''वीर पूजा'' से मानते हैं। उनका मानना है कि मरे हुये वीर पुरुषों के आदर और सम्मान में नाट्य-अभिनय का मंचन प्रस्तुत किया जाता था।

भारत में भी मृत पुरुषों के सम्मान में नाटक का मंचन हुआ होगा। वीर पूजा ही नाटक की उत्पत्ति है। 'राम लीला' और 'कृष्णलीला' इसके उपयुक्त दृष्टान्त हैं। [32]

इनका यह मत यूरोपियन विद्वानों को भी सर्वमान्य नहीं है। डॉ० कीथ ने नाटक के उत्पत्ति से संबंधित एक नवीन मत की भी कल्पना की है। उनका कहना है कि प्राकृतिक परिवर्त्तनों को जनमानस के सामने मूर्त्त रूप से दिखलाने की इच्छा से ही नाटकों का जन्म हुआ है। [33]

महाकाव्य में वर्णित 'कंसवध' नामक नाटक के अभिनय से इस मत की पुष्टि होती है। महाभाष्य में वर्णित है कि कंस तथा उसके समर्थक काले मुख रखते थे और कृष्ण के समर्थक नाट्य अभिनय में अपने मुँह को लाल रंग से रंगाते थे।

डॉ० कीथ का मानना है कि वसंत ऋतु का हेमंत ऋतु पर विजय दिखाना ही इस नाटक का अभिप्राय है।

जर्मन विद्वान् डॉ० पिसेल ने नाटक की उत्पत्ति 'पुत्तलिका' नृत्य (पपेट शो) से मानते हैं। डॉ० पिसेल का मानना है कि पुत्तलिका नृत्य का प्रारंभ भारत देश में ही हुआ है। इस नृत्य का

प्रचार-प्रसार भारत से चलकर अन्य देशों में हुआ। 'सूत्रधार' तथा 'स्थापक' आदि का मूल अर्थ इस मत का प्रतिपादन अवश्य करता है। सूत्रधार से ही नाटक का आरंभ और अन्त होता है। 'स्थापक' नाटकीय कथा वस्तु को रंगमंच पर आकर प्रस्तुत करता है। 'सूत्रधार' और 'स्थापक' दोनों ही शब्दों का पुत्तलिका नृत्य से घनिष्ट संबंध है। रस्सी को पकड़कर पुत्तलिका (कठपुतली) को नचाने वाला व्यक्ति ही नाटक का सूत्रधार कहलाता है।

भारतीय नाट्य प्रबंधक को सूत्रधार कहने का उद्देश्य यही हो सकता है, यह 'पुत्तलिका' नृत्य से ही हुई है। अत: पुत्तलिका नृत्य का सर्वप्रथम प्रचलन भारत में हुआ। उसके बाद अन्य देशों में। लेकिन इस सामान्य नृत्य से रसभावयुक्त नाटक की उत्पत्ति मान लेना सरासर निराधार होगा।

कुछ विद्वानों ने ''छाया नाटकों'' को नाटक की उत्पत्ति मानते हैं। इसकी पुष्टि के लिए गहन खोज-बीन की गयी। डॉ० पिसेल ही इसके उद्भावक हैं।

डॉ० लूडर्स और डॉ० कोनो इस मत का समर्थक हुए लेकिन डॉ० पिसेल का विचार यथार्थ प्रतीत नहीं होता है, इसलिए कि भारतवर्ष में छाया नाटकों की प्राचीनता को प्रमाणित करना कठिन है।

संस्कृत में 'दूतांगद' नामक छाया नाटक प्रसिद्ध अवश्य है, किन्तु न तो प्राचीन है न ही अति महत्वपूर्ण है। छाया द्वारा नाटक के प्रदर्शन को नाटक की उत्पत्ति मानना संदेहास्पद होगा। कुछ विद्वानों ने नाटक की उत्पत्ति 'मेपोल नृत्य' को मानते हैं।[34]

पश्चिमी देशों में मई का महीना बहुत ही आनंद और उत्सव का होता है। एक बाँस को गाड़कर स्त्री और पुरुष उत्साहित होकर वहाँ नाचते-गाते हैं। यह लोक नृत्य का एक प्रतिरूप है। भारत में 'इन्द्र ध्वज' उत्सव को इसी प्रकार माना गया है।

विद्वानों द्वारा इस मत को आधारहीन बताया गया है, नेपाल आदि देशों में 'इन्द्र ध्वज' उत्सव अभी भी प्रचलन में है किन्तु अन्य विद्वान् इस मत के विरूद्ध हैं।

यहाँ संस्कृत नाटकों की परंपरा को विस्तार से लिखना संभव नहीं है। अत: हमें अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि नाटक की परंपरा का अभ्युदय वैदिक युग ही रहा होगा।

सन्दर्भ सूची

1. वामन- काव्यालंकार सूत्र - 1/330-31
2. नाट्यशास्त्र- भरत मुनि - 1/107
3. नाट्यशास्त्र-भरत मुनि - 1/112
4. नाट्यशास्त्र-भरत मुनि - 1/117
5. ऋ० वे० म० - 1/48
6. ऋ० वे० म० - 10/95
7. ऋ० वे० म० - 10/10
8. ऋ० वे० म० - 10/86
9. ऋ० वे० म० - 10/108
10. ऋ० वे० म० - 3/33
11. कात्यायन श्रौत सूत्र - 7/8/25
12. मैक्समूलर - वर्जन ऑफदि ऋग्वेद, वाल्यूम-1, पृ0-173
13. 'Le Theater Indian' Bibliothiquede I Ecole des- Haits Etudes Fasicule 83, पृ0 - 307-308, 1890
14. एच0 ओल्देनबर्ग - जेड एम जी, 32 पृ0 54, एफ39, पृ0 52
15. डा0 एस0 एन0 दास गुप्ता एण्ड एस0 के0 डे - हिस्ट्री ऑफसंस्कृत लिटरेचर वाल्यूम - 1 पृ0 44-1947
16. यजुर्वेद संहिता अ0 - 30 मन्त्र-6, पृ0- 301 प्रकाशक - युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, गायत्री तपोभूमि, मथुरा
17. डा0 एस0 एन0 दास गुप्ता- हिस्ट्री ऑफसंस्कृत लिटरेचर, भाग- 1 पृ0 - 46-47
18. बाल्मीकि रामायण, तिलक टीका सहित, अयोध्याकांड सर्ग- 6 श्लोक - 14
19. बाल्मीकि रामायण- 2/67/15
20. पाराशर्य शिलालिभ्यां भिक्षुनट सूत्रयो: (44/1/110) कर्मन्द कृशाश्वादीनि (4/3/111) अष्टाध्यायी
21. महाभारत हरिवंश पर्व 91 से 97 अध्याय
22. महाभारत वनपर्व 15 से 13
23. डा0 दशरथ ओझा - हिन्दी नाटक: उद्भव और विकास, पृ0-26 राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली।
24. कौटिल्य अर्थशास्त्र, अध्यक्ष-प्रचार, अध्याय- 41
25. कौटिल्य अर्थशास्त्र, अध्यक्ष प्रचार, अध्याय- 27
26. जयशंकर प्रसाद - काव्य और कला तथा अन्य निबंध पृ0- 91 (तृतीय संस्करण)
27. डा0 कीथ संस्कृत ड्रामा - पृ0- 45
28. वात्स्यायन- कामसूत्र, नागरवृत्त, प्रकरण- 15
29. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी- प्राचीन भारत का कला विलास पृ0- 75, 77, 87
30, वामन- काव्यालंकार सूत्र, 1/3/30-32
31. अभिनव गुप्त- अभिनव भारती पृ0- 282/283/288 गायकवाड़ का प्रथम संस्करण।
32. Dr. Ridgeway - Drama and dramatic dances of Non European race
33. Theory of vegitation spirit. Keith Sanskrit drama P.P 45 - 48
34. Shadow play- Dr. Sten Konow Das Indische Drama P.P 45 - 46

ISSN 2278 - 0327

भारतीय जीवन शैली वैश्विक आकर्षण का केन्द्र

चौटि शिवानन्द
Research Scholar, PhD
Department of Sanskrit,
University of Delhi, Delhi

भारतीय सभ्यता हमेशा से ही स्थिर न होकर विकासोन्मुख एवं गत्यात्मक रही है। भारत में स्थल और समुद्र के रास्ते व्यापारी और उपनिवेशी आए। प्राचीन समय से ही भारत कभी भी विश्व से अलग नहीं रहा। इसके परिणामस्वरूप भारत में विविध संस्कृति वाली सभ्यता विकसित हुई जो प्राचीन भारत से आधुनिक भारत तक की अमूर्त कला और सांस्कृतिक परंपराओं से सहज ही परिलक्षित होता है, चाहे वह गंधर्व कला विद्यालय का बौद्ध नृत्य जो यूनानियों के द्वारा प्रभावित हुआ था या उत्तरी एवं दक्षिणी भारत के मंदिरों में विद्यमान अमूर्त सांस्कृतिक विरासत हो। सभ्यता के अन्तर्गत कला, हस्तशिल्प, बाह्यसौन्दर्यदृश्यों का वर्णन होता है।

भारत में विभिन्न धर्मों के लोगों की अपनी संस्कृति और परम्परा होती है, उनके अपने त्योहार होते हैं जिसे वे अपने परम्परानुसार मनाते हैं। विश्व में भारत अपनी संस्कृति और परम्परा के लिए प्रसिद्ध है। भारतीय संस्कृति के महत्वपूर्ण तत्व अच्छे शिष्टाचार, सभ्य-संवाद, धार्मिक-संस्कार,संगीत-नृत्य मान्यताएं एवं मूल्य आदि हैं। यहां अपने विभिन्न सांस्कृतिक नृत्यों जैसे शास्त्रीय (भरतनाट्यम्, कथक, कथकली, कूचिपूडी, मोहिनीअट्टम् आदि) और क्षेत्रीय नृत्यों के कारण भी जाने जाते हैं- पंजाबी भांगडा, गुजराती-गरबा, राजस्थानी-घूमर, आसामी-बिहू, जबकि महाराष्ट्र के लोग लावणी आदि प्रसिद्ध हैं।

भारतीय संस्कृति सबसे प्राचीन ही नहीं, सबसे श्रेष्ठ भी है क्योंकि संसार की अन्य संस्कृतियों में आध्यात्मिकता का बहुत ही कम अंश पाया जाता है अथवा अधिकांश आधिभौतिक विषयों तक ही सीमित है, भारतीय संस्कृति का मुख्य लक्ष्य आध्यात्मिक उन्नति ही है, क्योंकि जो संस्कृति मनुष्य में 'पञ्च तत्वों से निर्मित शरीर' की भावना भर दे वह इस भौतिकता के प्रगति या विकास को उन्नति नहीं मान सकता।

भारतीय संस्कृति ने आधिभौतिक व लौकिक उन्नति की अवहेलना नहीं की है अपितु जीवन को सुखी बनाने का मार्ग उसने स्पष्टता से समझाया है, परन्तु अन्तिम लक्ष्य सदैव आध्यात्मिक उन्नति को ही माना है अथवा यह कहना चाहिए कि उसने समस्त लौकिक कार्यों और उद्योगों का सम्बन्ध आध्यात्मिक उन्नति से ही जोड़ दिया है। जिससे मनुष्य भौतिकवाद के दोषों से बच सके और समस्त सांसारिक कार्यों को करते हुए आत्मकल्याण के ध्येय को न भूले। हमारे प्रचीन ऋषि-मुनियों ने गहन शोध करके ही सनातन धर्म को विज्ञान की कसौटी पर खड़ा किया है। विश्व का सबसे पुराना धर्म परमात्मा की प्राप्ति पर जोर देता है, साथ ही यह हमें एक अच्छे जीवन को कैसे जिया जाये उसके बारे में भी बताता है। अगर हमारी संस्कृति के निर्माताओं ने इस बात का ध्यान आरम्भ से ही न रखा होता तो हमें भी वही दिन देखना पड़ता। जो आज यूरोप-चीन आदि में दिखाई पड़ हैं। भारतीय सभ्यता की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जहां अन्य देशों ने अपने धर्म-सभ्यता-संस्कृति का सर्वोच्च लक्ष्य सांसारिक सुख और भोग की सामग्री प्राप्त करना समझा है वहीं भारतवर्ष का लक्ष्य सदा त्याग का रहा है। जिसका वर्णन अधिकांश भारतीयशास्त्रों व उपदेशग्रंथों में प्राप्त होता है' *तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा:*'[1]। प्रकृति से उतना ही ग्रहण करना चाहिए जितने से हमारा सुखमयजीवन चल सके प्रकृति में अतिविकार या मूकपशुओं के उत्पीड़न से हम अपने ही विनाश का कारण न बने। प्रकृति तथा तदाश्रित जीवों के साथ खिलवाड़ नहीं करना चाहिए इसके विपरीत अपनी ही जिन्दगी खेल बनकर रह जाएगा। जैसे प्रकृति हमारे लिए सब कुछ देती है वैसे हम भी प्रकृति के प्रति समर्पित हों यतो हि प्रकृति सदा अन्य के लिए उपकारक होती है। *परोपकाराय फलन्ति वृक्षा: परोपकाराय दुहन्ति गाव:। परोपकाराय वहन्ति नद्य:॥*[2]

मनुष्य भौतिक वस्तुओं का संग्रह और उपभोग तो करना चाहिए पर अपनी दृष्टि सदा उन भौतिक वस्तुओं के मूल आधार पर होनी चाहिए। कोई ऐसा समय भी था कि संसार भर के धन का केन्द्र भारत ही था और यहां स्वर्ण और रत्नों के मन्दिर बनाए

गए पर उसने धन को अपना आदर्श कभी नहीं बनाया अपितु उसके विविधगतियों का वर्णन से उपयोगिता दर्शाता है। दानं भोगो नाशस्तिस्त्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य... [3] ॥

भारतीय संस्कृति की दूसरी विशेषता यह है कि इसका कभी एक समाज या श्रेणी विशेष से संबन्ध नहीं रहा। जैसे आजकल किसी देश की संस्कृति में पूञ्जीपतियों की ही प्रधानता है, किसी पुरातनपंथियों का जोर तो, कहीं नवपंथियों के सिर पर ही चेहरा बान्धा जाता है, वैसी भारतीय संस्कृति में किसी काल में नहीं रहीं। इसमें आश्चर्य की बात नहीं कि भारतीय संस्कृति की विविधताओं से आकर्षित होकर अनेक लेखकों ने इसके विभिन्न पक्षों एवं अवधारणों का बखूबी वर्णन किया है। इन लेखों में भारतीय संस्कृति की जटिल तथा विरोधी वर्णन भी पढ़ने को मिलते हैं। इसकी सर्वोत्तम व्याख्या अर्थशास्त्र में नोबल पुरस्कार विजेता डा.अमर्त्य सेन के लेखों में मिलता है। उनके अनुसार, आधुनिक भारतीय संस्कृति इसकी ऐतिहासिक परंपराओं का जटिल सम्मिश्रण है – जिस पर शताब्दियों से शासन करने वाले औपनिवेशक शासन तथा वर्तमान पश्चिमी सभ्यता का व्यापक प्रभाव पड़ा है। पश्चिमी लेखकों ने प्राय: महत्वपूर्ण तरीके से भारतीय संस्कृति एवं परंपराओं ओर इसकी विविधताओं के महत्व को नकारा है। किसी भी देश की संस्कृति को समझने के लिए उसके साथ एकात्मभाव होना आवश्यक है उसके विपरीत वैसे ही होता है यथा अंधगजन्यायवत्[4] है।

प्रसिद्ध लेखक 'अमीर खुसरो' भारत के ज्ञान, विज्ञान, धर्म की श्रेष्ठता का उल्लेख करते हुए कुछ तर्क देता है, जिसने भारत को स्वर्ग बना दिया है और जिसके कारण जलवायु, फल और फूलों में भारत को उच्चता प्राप्त हुई। इसके पश्चात् वह भारत के निवासियों को विज्ञान और ज्ञान में सभी राष्ट्रों से उच्च स्थान प्रदान करता है। वह लिखता है कि – भारत में ज्ञान और दर्शनशास्त्र अथाह पडा हुआ है। दर्शन के सभी विभाग यहां हैं। तर्कशास्त्र, ज्योतिष, गणित तथा पदार्थ विज्ञान में भारत के विद्वान् बहुत ज्ञानी हुए थे यहां बडे-बडे विद्वान् ब्राह्मण पाये जाते हैं, किन्तु अभी तक किसी ने उनसे पूर्णतया लाभ नहीं उठाया। अत: उनके विषय में अधिक जानकारी नहीं हो सकी है। मैंने इन लोगों से शिक्षा ग्रहण की है।[5]

1. देश के प्रत्येक स्थान पर ज्ञान और विद्या फैली हुई है।
2. ये संसार की सभी भाषाएं बडी कुशलता से बोल सकते हैं। संसार की अन्य भाषा वाले भारत की भाषा नहीं बोल सकते।
3. संसार के सभी भागों के विद्वान् आध्यात्मिक ज्ञान के लिए, नित्यज्ञान के अध्ययन हेतु भारत में आए हैं, किन्तु यहां के ब्राह्मण, यहां के विद्वान् बाहर अध्ययन के लिए नहीं गए हैं।
4. शून्य का ज्ञान सबसे पहले आर्य भट्ट को हुआ था। गणित का कोई भी भाग शून्य के ज्ञान के बिना पूर्णत: प्राप्त नहीं हो सकता। 'हिन्दसा'[6] अर्थात् 'हिन्द से प्राप्त' हिन्दसा शब्द हिन्दू तथा आसा से मिलकर बना है। आसा ब्राह्मण ने इस ज्ञान का आविष्कार किया था यहीं से यह ज्ञान अरब गया और वहाँ से योरोप वालों को प्राप्त हुआ। समस्त दार्शनिक इस प्रकार इस ब्राह्मण के शिष्य है।

भारतीय गणित ने दशमलव प्रणाली का भी आविष्कार किया। भारत में दशमलव अंकों का सर्वप्रथम प्रयोग आर्यभट्ट प्रथम (499 ई.) द्वारा मिलता है। संभव है कि इसका आविष्कार इससे भी बहुत पहले हुआ हो। किन्तु यूरोप में दशमलव अंक का सामान्य प्रचार सत्रहवीं शताब्दी में हुआ, जिसका ज्ञान निश्चित ही उसने भारत से प्राप्त किया था। ये भारतीय गणितीय सिद्धान्त यूरोप को अरब के माध्यम से प्राप्त हुए थे। अरबी लिपि दाएं से बाएं लिखी जाती है, किन्तु अरबी में अंक बायें से दायें लिखे जाते हैं। यह भी इस बात का प्रमाण है कि अरबी अंकों की उत्पत्ति अरबी भाषा के साथ अरब देश में नहीं हुई, अपितु ये बाहर से आयात किए गए हैं। अरबों के माध्यम से जब यह भारतीय अंक यूरोप पहुँचे तो उन्हें लगा कि ये अंक मूल रूप से अरबों द्वारा ही आविष्कार किए गए हैं। अतएव आज भी यूरोप में एक से नौ एवं शून्य के भारतीय अंकों को 'एरेबिक न्युमरल'(अरबी गणनांक) कहते हैं।

5. यहाँ बुद्धि की प्रसिद्ध पुस्तक कलीला[7] और दिमना (पंचतंत्र) की रचना हुई है, जिसका अनुवाद फारसी, तुर्की इत्यादि भाषाओं में हुआ है।
6. शतरंज खेल का आविष्कार, जिससे मनुष्य अपने कष्टों को भूल जाता है, भारतवर्ष में हुआ। शतरंज का खेल भी हिंदुस्तान के निवासियों से बढ़कर कोई भी नहीं खेल सकता।
7. शतरंज, हिन्दसा संसार वालों ने हिंदुस्तान से ही सीखा। यह संसार में जनप्रिय है।
8. भारतीय संगीत की समानता संसार में नहीं है। भारतीय संगीत संसार के सभी देशों में सर्वश्रेष्ठ है। विदेशी तीस-चालीस वर्ष भारत में रहने के बाद भी यथावत् एक भी ताल का ज्ञान नहीं प्राप्त कर सके। यहाँ का संगीत अग्नि के समान है[8], जो हृदय तथा प्राण को उद्वेलित कर देता है।
9. भारतीय संगीत केवल मनुष्य को ही नहीं, बल्कि पशुओं का भी मन मोह लेता है। हिरनों का शिकार संगीत की कृत्रिम निद्रा में मस्त हो जाने पर आसानी से हो जाता है।

भारत एक ऐसा देश है जहां देश के अलग-अलग हिस्सों में

भिन्न-भिन्न भाषाएं बोली जाती हैं। सिन्धी, कश्मीरी, समुद्री, तेलुगु, तमिल, गुजराती, बंगाली तथा अवधी आदि विभिन्न प्रान्तों में बोली जाती हैं। पुनरपि सबकी मूल भाषा संस्कृत को मानने में सभी ऐकमत होते हैं।

पर्व

यहां अपने धर्म के अनुसार लोग मान्यताओं, रीति-रिवाज और परम्परा को मानते हैं। हम त्योहारों को विधि-विधानानुसार मनाते हैं, व्रत-गंगास्नान-प्रार्थना-विषयानुसार गीत-नृत्य- सामाजिक पर्वों के साथ राष्ट्रिय उत्सव भी मनाते हैं। कुछ पर्व किसी विशेषव्यक्ति के स्मरण हेतु भी मनाते हैं जैसे- गौतमबुद्ध के जन्मदिन को बुद्धपूर्णिमा, महावीर के जन्मोत्सव को महावीर जयन्ती, गुरु नानक जयन्ती, गुरुपर्व आदि को कई धर्मों के लोगों द्वारा एक साथ मनाया जाता है। विविधता में एकता कथन यहां पर आम है। *यत्र विश्वं भवत्येक नीडम्*[9]

पर्वों में होली के धार्मिक अनुष्ठान सामाजिक परंपराओं पर आधारित थे ओर प्राचीनतम समय से प्रचलित थे। हिन्दु अनुष्ठान, मिथक एवं किंवदन्तियां बाद में अस्तित्व में आएं। धार्मिक तथा सांस्कृतिक पर्वोत्सव जैसे होली लोगों के उमंग एवं उत्साह को अभिव्यक्त करता है जिसमें उनकी संस्कृति एवं पहचान परिलक्षित होती है। विश्व के सर्वाधिक ज्ञात अनेक पर्व भारत में मनाएं जाते हैं। इनमें से अधिकांश का जन्म भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता में ही हुआ है। इसलिए होली मूलत: 'होलिका' के नाम से ज्ञात होता है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में भारत की प्राचीनतम धार्मिक कृतियों एवं महाकाव्यों में विस्तृत विवरण मिलता है। भारत के प्राचीन पुरातत्व अवशेषों में भी होली के अनेक संदर्भ पाए जाते हैं। दशहरा, दीपावली आदि पर्व के माध्यम से बुराई के विरुद्ध अच्छाई एवं भगवान् के प्रति समर्पण की जीत का समारोह मनाया जाता है।

योग

योग शब्द संस्कृत धातु 'युजि: योगे' से बनता है, जिसका मतलब है व्यक्तिगत चेतना या आत्मा का सार्वभौमिक चेतना से मिलन। योग, भारतीय ज्ञान की पांच हजार वर्ष पुरानी शैली है। हालांकि कई लोग योग को केवल शारीरिक व्यायाम ही मानते हैं और श्वास लेने के जटिल प्रक्रिया को अपनाते हैं। यह वास्तव में केवल मनुष्य के मन और आत्मा की अनंत क्षमता का खुलासा करने वाले इस गहन विज्ञान है। योग का अर्थ इन सब से कहीं विशाल है। योग विज्ञान में जीवन शैली का पूर्ण सार आत्मसात किया गया है। योग भावनात्मक एकीकरण और रहस्यवादी तत्व का स्पर्श लिए हुए एक आध्यात्मिक ऊंचाई है, जो आपको सभी कल्पनाओं से परे की कुछ एक झलक देता है। सामान्यत: मानव के जीवन को सुखपूर्वक जीने के लिए इस शरीर को स्वस्थ रखना आवश्यक है, तदर्थ उचित पदार्थों का सेवन एवं योग कि आवश्यकता है, हमारे भारतीय चिन्तन में शरीर को धर्म का पहला साधन माना गया है। महाकवि कालिदास की सूक्ति 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'[10] और इस हेतु सदैव स्वस्थ रहने को कर्तव्य निरूपित किया है। '*धर्मार्थ काममोक्षाणाम् आरोग्यम् मूल मुत्तमम्*'[11] इसीलिए अच्छा स्वास्थ्य महा-वरदान है। शरीर स्वस्थ नहीं हो तो मन स्वस्थ नहीं रह सकता, उर्दू में एक सूक्ति है- '*तन्दुरूस्ती हजार न्यामत*' अर्थात् स्वास्थ्य हजार अन्य अच्छे भोगों से बढ़कर है। अंग्रेजी में भी कहावत है- 'Health is Wealth' अर्थात् स्वास्थ्य ही धन है। तथा- *योगेन चित्तस्य दोषान् अपाक्रियते। योग: कर्मसु कौशलम्*[12] इत्यादि योग के महत्व को शास्त्रों के द्वारा बोध होता है। इस प्रकार योग के महत्व को समझ कर विश्व योग दिवस मनाने को प्रेरित हुआ है।

वस्त्र

भारत अपने सादगी के लिए भी जाना जाता है। यहां के सुन्दर आकर्षक वस्त्रों को पारम्परिकसौन्दर्य (फैशन) के रूप में दुनिया ने सहर्ष स्वीकार किया है। मनुष्य की सुन्दरता वस्त्र के माध्यम से भी बढती है। भारत में वस्त्रों के विविधता बाहुल्य है। 'सादा जीवन उच्चविचार' पद्धति को अपनाते हुए खूबसूरत जीवन बिताते हैं। इसी अंदाज के लिए भारत के वेशभूषा को दुनिया एक फैशन के रूप में आज व्यवहार करता है। मौसम-वातावरण अनुसार, सांस्कृतिक परम्पराओं के आधार पर भिन्न-भिन्न प्रकार के वस्त्र धारण किए जाते हैं। सामान्यरूप से आजकल शहरी क्षेत्रों में पश्चिमी वस्त्र सभी सामाजिक स्तर के लोगों द्वारा पहना जाता है भारत में रंग और वस्त्रों की विविध सामग्री है। वस्त्ररंग धर्म, पर्व और रस्म के आधारित होते हैं।

मानव सभ्यता को कपास की खेती तथा उनसे निर्मित सूती वस्त्र भी भारत की ही देन है।

वैदिक साहित्य में सूत कातने तथा अन्य प्रकार के साधनों के प्रयोग के उल्लेख मिलते हैं। कपास नाम भी भारत से ही विश्व की अन्य भाषाओं में प्रचलित हुआ है जैसे- सर्वप्रथम संस्कृत में कर्पस, कर्पस से हिन्दी में कपास, हिब्रू में कापस, यूनानी तथा लेटिन में कार्पोसस। अत: हर तरह के परिधानों का आविष्कार भारत में हुआ और भारतीय परिधानों का विकसित रूप ही है आज के आधुनिक परिधान कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसमें कालान्तर में ग्रीक, रोमन, फारस, हूण, कुषाण, मंगोल, मुगल आदि के काल में भारतीय परिधानों की वेशभूषा परिवर्तन होते रहे।

भारतीय वस्त्रों के कलात्मक पक्ष और गुणवत्ता के कारण उन्हें अमूल्य उपहार माना जाता था। खादी से लेकर सुवर्णयुक्त रेशमी वस्त्र, रंग-बिरंगे परिधान, शीत से पूर्णत: सुरक्षित कश्मीरी शाल, भारत के प्राचीन कलात्मक उद्योग का प्रत्यक्ष प्रमाण थे।

प्राकृतिक जीवन के सिद्धान्तानुसार देखा जाए तो यहां के वेशभूषा के संबन्ध में हमारे भारतीय मनीषियों को इसकी गहरी समझ थी। प्रकृति के नियमानुसार शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए वायु, सूर्यरश्मि और प्रकाश का हमारी देह से जितना सम्पर्क होता रहे उतना ही अच्छा है। सिर का पहनावा- सिर के पहनावे को शिरस्त्राण, शिरोवेष कहते हैं। प्रत्येक प्रान्त में यह अलग-अलग किस्म, नाम, रंग और रूप में भेद होता है। पंजाब, हरयाणा, राजस्थान में साफा, सिखों का जड्डा जो कि उन्हें अलग ही पहचान देता है। प्राय: प्राचीनकाल और मध्यकाल में सभी भारतीय यह शिरस्त्राण धारण करते थे।

भारतीय सनातन संस्कृति का विशेष वस्त्र कुर्ता एवं पायजामा। यह कश्मीर में फिरान और नेपाल में दौरा के नाम से जाना जात है। दक्षिणभारतीय लोगों द्वारा साधरणत: धोती - कटिवस्त्र पहना जाता है। उत्तरीयवस्त्र ऊपर के परिधान के लिए होता है परन्तु कालान्तर में बदलाव हुए उत्तरीयवस्त्र के जगह कुर्ता पहनने का प्रचलन हुआ। काञ्जीवरं, बनारस, पटोला आदि शहर साड़ी के लिए प्रसिद्ध हैं। स्वामी विवेकानंद की निम्नलिखित पंक्तियों का स्मरण करना उपयुक्त होगा-यदि कोई अपने ही धर्म तथा संस्कृति का विशेष रूप से विद्यमानता का स्वप्न देखता है तो मुझे उस व्यक्ति के प्रति दिल से सहानुभूति है और यह कहना चाहता हूँ कि बहुत ही निकटसमय में प्रत्येक धर्म एवं संस्कृति के बैनर पर बिना संकोच 'सहायता करो - संघर्ष नहीं, समावेशन करो - विध्वंस नहीं, मेल - मिलाप तथा शांति रखो - मतभेद नहीं' ही लिखा जाएगा। यह उसका परिचायक है जो भारत संपूर्ण विश्व को देना चाहता है, अपनी जीवंत अमूर्त विरासत जो इसकी वैश्विक सभ्यता की विरासत है। इस विरासत से विभिन्न राष्ट्रों, समाजों तथा संस्कृतियों के बीच संस्कृति एवं सभ्यता का एक संवाद बनाने में सुविधा होगी। यह परिणामत: विकास एवं शांति की दिशा में अंतर्राष्ट्रिय समुदाय की रणनीति को पुनर्जीवित करने का एक प्रभावी कदम होगा।

मानव एक सामाजिक प्राणी है। जिस समाज में वह रहता है उसकी कुछ व्यवस्थाएं बना ली जाती हैं। उन व्यवस्थाओं को सुरक्षित बनाये रखने के लिए (यतोहि प्रत्येक के जीवन विकास का समुचित अवसर मिल सके) एक तन्त्र की आवश्यकता होती है, जिसे राजतन्त्र कहते हैं। वर्तमान में राजतन्त्र का कार्य प्रजातन्त्र-प्रणाली के द्वारा चल रहा है। उद्देश्य दोनों का सामाजिक व्यवस्थाओं को सुरक्षित करना होते हुए भी कुछ भेद हैं -

राजतन्त्र में 'यथा राजा तथा प्रजा' का नियम काम करता है जबकी प्रजातन्त्र में 'यथा प्रजा तथा राजा' का नियम काम करता है। चाहे राजतन्त्र हो या प्रजातन्त्र सरकार केवल कानून बनाकर मानव जीवन को उच्च आदर्श में नहीं डाल सकती। उदाहरण के तौर पर मद्यपान-धूम्रपान आदि दोषों को सरकार कनून मात्र से दूर नहीं कर सकती। जब तक की जनमानस उसके लिए तैयार न हो। चार्वाक् ने हमें सिखाया है -

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मी भूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुत:॥ [13]

परन्तु इस शिक्षा का निश्चित परिणाम यह हुआ है कि चोरी-लूट-मार-काट, अनाचर-दुराचार, रिश्वतखोरी, स्वार्थपरता आदि-आदि.....। इस शिक्षा में देशभक्ति, मानव-कल्याण या समाज-कल्याण आदि सत्कार्यों का कहीं स्थान नहीं है। इन सबका उचित समाधान सरकार के पास भी नहीं, भारतीय चिन्तन, भारतीयसंस्कृति, आध्यात्मिकता के ही पास है। परस्पर प्रेम, सहानुभूति, समाज-सेवा, देशभक्ति, स्वार्थ-त्याग की भावना, लोकोपकारादि सद्गुणों का समावेश आध्यात्मिकता के द्वारा ही हो सकता है। जिसके लिए अपना शरीर ही सब कुछ है, वह दूसरों के लिए क्यों और क्या सहयोग देगा।

पूजा

भारातीय परम्परा में जड-अजड पत्थर, सूर्य, पशु तथा वृक्षों की वे पूजा अवश्य ही करते हैं, किन्तु उनका विश्वास है कि ये सब वस्तुएँ भगवान् की पैदा की हुई हैं। वे उन्हें कुल देवता के रूप में मानते हैं वे अपने आपको उन वस्तुओं का दास नहीं समझते हैं। इस प्रकार की पूजा के विषय में उनका विश्वास है कि यह उन्हें अपने पूर्वजों द्वारा प्राप्त हुई है, जिसे त्यागने में वे असमर्थ हैं।

प्रकृति विरोधी होने के कारण रोग बड़े तो भारत ने पश्चिम की चिकित्सा पद्धति अपनाया। भारतीय वैज्ञानिक जानते थे की मनुष्य प्राकृतिक वातावरण में ही स्वस्थ रहता है उन्नति करता है इसलिए यहाँ प्रकृति को पुष्ट कर उससे अधिक से अधिक लाभ उठाने का विज्ञान विकसित हुआ, भारत का विज्ञान समृद्ध विज्ञान था। विज्ञान और ज्ञान दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, जहां ज्ञान है वह विज्ञान से है और जहां विज्ञान है वह ज्ञान से ही है।

टेक्नोलॉजी से प्राप्त होने वाले परिणाम कभी-कभी अनिष्ट भी हो सकते हैं, इस बात को ध्यान में रखना आवश्यक है। मानव एक दूसरे से भावनाओं के स्थान पर यंत्रों के द्वारा जोड़ा जा रहा

है। कहना गलत न होगा कि कम से कम भारत जैसे देश तो आधुनिक तकनीक का अत्यधिक उपयोग टाल सकते हैं। भावी स्मार्ट शहरों की संरचना भारतीय जीवन शैली पर आधारित बनाई जा सकती है। अगर आने वाली अत्याधुनिक तकनीक भारतीय जीवन शैली की आत्मा को ही ध्वस्त करने लगे तो इस तकनीक का इस्तेमाल सोच-समझकर करना ही बेहतर है। इसलिए, जो मार्ग हमें हमारे अंतिम ध्येय तक ले जाए, उसी मार्ग का अनुकरण करना बेहतर होगा। इंडिया ने प्रकृति को उजडा लोगों को प्रकृति से दूर कर दिया, इससे जो अभाव और विकृतिया पैदा हुई उसकी पूर्ति करने के लिए विज्ञान का विकास किया, इसलिए इंडिया का विज्ञान अभाव एवं दुर्गति का विज्ञान है।

अत: निष्कर्षरूप में भारतीय जीवन शैली को अपनाकर सुख-समृद्धि-आयु-आरोग्य को प्राप्त कर जीवन को अभ्युदय एवं निर्विघ्न सुखमय बना सकते हैं तथा इसकी महत्ता को जानकर वेदानुकूलजीवन से नि:श्रेयस की प्राप्ति कर सकते हैं।

सन्दर्भ सूची -

1. यजु0 40.1
2. नीति श्लोक
3. हितोपदेश
4. कई जन्मांधों ने हाथी कैसा होता है यह देखने के लिये हाथी को टठोला। जिसने जो अंग टटोल पाया उसने हाथी का आकार उसी अंग का सा समझा। जिसने पूँछ टटोली उसने रस्सी के आकार का, जिसने पैर टटोला उसने खंभे के आकार रस्सी के आकार का, जिसने पैर टटोला उसने खंभे के आकार का समझा। किसी विषय के पूर्ण अंग का ज्ञान न होने पर उसके संबंध में जब अपनी अपनी समझ के अनुसार भिन्न भिन्न बाते कही जाती हैं।
5. नूप सिपेहर अध्याय-7 (ले0 अमीर खुसरो)
6. अरबी भाषा में एक से नौ अंकों को हिन्दसा कहते हैं।
7. ब्राह्मण अपनी शिक्षा को जानवरों के प्रतीक स्वरूप प्रस्तुत करता है।
8. संस्कृत व्याकरणग्रन्थ में वर्णन प्राप्त होता है- कष्टोऽग्नि: । कष्टं व्याकरणम् । ततोऽपि कष्टतराणि सामानि । कृच्छ्रम् - दुखम्, तत्कारणमप्यग्न्यादिकं कृच्छ्रमित्युच्यते । काशिकावृत्ति 7.2.22
9. ऋग्वेद
10. कुमारसंभव
11. सूक्ति संग्रह
12. भगवद्गीता- 2.50
13. चार्वाक् दर्शन

ISSN 2278 - 0327

'छत्रपतिसाम्राज्यम्' में समाज एवं संस्कृति

अनु कुमारी
शोधछात्रा
VVBIS- hosiyarpur, Punjab University Chandigarh

बींसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में भारत में जो प्रशिष्ट संस्कृत साहित्यकार हुए उनमें मूलशंकर माणिकलाल याज्ञिक जी अन्यतम है। बीसवीं शताब्दी की नाटकीय काव्य धारा के उज्जीवक, संस्कृत गद्य-पद्य साहित्य के लेखक अनेक ग्रंथों के प्रणेता नाटककार पंडित मूलशंकर माणिकलाल याज्ञिक जी गुजरात में खेड़ा जनपद के गांव के निवासी थे। उनके पिता का नाम माणिकलाल और माताजी का नाम अतिलक्ष्मी था। 31 जनवरी 1886 का वह पुण्यमय दिवस था, जिस दिन मूलशंकर माणिकलाल याज्ञिक जी का जन्म हुआ। संस्कृत जगत् को इन्होंने तीन प्रसिद्ध संस्कृत नाटक दिए हैं। उन तीन नाट्य रचनाओं में से एक नाटक है- 'छत्रपतिसाम्राज्यम्'।

यह नाटक 1929 ई0 में स्वयं नाटककार मूलशंकर माणिकलाल याज्ञिक जी के द्वारा बड़ौदा प्रिंटिंग प्रेस से प्रकाशित हुआ है।[1] इसमें महाराष्ट्र केसरी छत्रपति शिवाजी के शौर्यपूर्ण कार्यों का तथा तत्कालीन यवन सम्राट् औरंगजेब के विरुद्ध संघर्ष का तथा अन्ततः स्वराज्य स्थापना का वर्णन है। पूरे नाटक में शिवाजी के जीवन से संबंधित 1646 से 1674 ई. की घटनाएँ हैं।[2] 'छत्रपतिसाम्राज्यम्' का कथानक इतिहास प्रसिद्ध है। इसके नायक राजाधिराज छत्रपति जी हैं। दस अंकों में यह नाट्य रचना निबद्ध है।

कवि की अनुभूति और तात्कालिक परिस्थितियाँ और सामाजिक मान्यताएं साहित्य सृजन का प्रथम चरण हैं। अपनी शब्द दृष्टि से कवि जीवन और समाज का अवलोकन करता है। कवि समाज का अनुभव और मुख दोनों होता है। साहित्यकार सामाजिक मान्यताओं को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। साहित्यकार समाज के विचारों और भावों को आत्मसात् करके उन्हें साहित्य के रूप में अभिव्यक्ति प्रदान करता है। कविजन अपने कौशल से समाज में संदेश ध्वनित करतें हैं। इससे सामाजिक विचारों का शोधन, मार्जन और पोषण होता है। मूलशंकर माणिकलाल याज्ञिक की रचनाओं से स्पष्ट परिलक्षित होता है कि शब्द की सृष्टि जीवन और समाज के लिए हुई है और उसे अर्थ भी समाज ने दिया है। भारतीय समाज और संस्कृति को 'छत्रपतिसाम्राज्यम्' में उत्कृष्ट रूप में दिखाया गया है। नाटककार ने तात्कालिक परिस्थितियों को नाटकीय रूप प्रदान किया है। समाज ही हमारी संस्कृति का निर्माण करता है। नाटकीय संवादों, घटनाओं और पात्रों के माध्यम से नाट्यकार तत्कालीन समाज और संस्कृति को प्रकट करते हैं। मूलशंकर माणिकलाल याज्ञिक द्वारा रचित 'छत्रपतिसाम्राज्यम्' में समाज एवं संस्कृति को तत्कालीन परिस्थितियों एवं रीति-रिवाजों के अनुसार दिखाया गया है। परतंत्रता की विषम परिस्थितियों में समाज और संस्कृति किस प्रकार है तथा मराठावीर किस प्रकार अपने कर्तव्य का निर्वहण करते हैं? ये सभी बातें तत्कालीन परतंत्र समाज को दिखाती है।

समाज बाह्य शक्ति के रूप में और संस्कृति आन्तरिक शक्ति के रूप में देश को एकसूत्र में बांधती है। संस्कृत भाषा में 'सम' उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय के योग से संस्कृति शब्द निष्पन्न होता है।[3] यह शब्द मनुष्य की सहज प्रवृत्तियों, नैसर्गिक शक्तियों और परिष्कार का द्योतक है। संस्कृति से विशिष्ट काल, भूखंड़ और प्रगति का इतिहास स्वतः प्रकट होता है।

'छत्रपतिसाम्राज्यम्' इस नाटक में याज्ञिक जी ग्यारहवीं शताब्दी की तात्कालिक घटनाओं के माध्यम से समाज और भारतीय संस्कृति को सम्यक् प्रकार से वर्णित करते हैं।

प्रस्तुत शोधपत्र में 'छत्रपतिसाम्राज्यम्' में वर्णित समाज और संस्कृति को दिखाया जा रहा है।

वर्ण व्यवस्था- ऋग्वेद से लेकर समस्त परवर्ती भारतीय साहित्य में वर्ण शब्द का विभिन्न अर्थों में प्रयोग हुआ है। वर्ण शब्द 'वृ' धातु से निष्पन्न होता है ।[4] जब संज्ञा रूप में यह शब्द प्रयुक्त किया जाता है तो रंग, अक्षर, सौंदर्य, प्रशंसा, यश इत्यादि अर्थों को प्रकट करता है।[5] वर्ण व्यवस्था के अनुसार समाज को चार भागों में विभक्त किया गया है- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भारतवर्ष में मूलतः वर्ण का निर्धारण उनके गुण और व्यक्तित्व के क्रमानुसार होता था।

ऋग्वैदिक ऋषियों ने भी संपूर्ण समाज को एक विराट् पुरुष के रूप में परिकल्पित किया था।[6] छत्रपतिसाम्राज्य में शिवराज के गुरु श्रीरामदास वर्ण व्यवस्था की व्यवस्थित परम्परा को समझाते हैं। शत्रु नाश के लिए हो रही हिंसा से शिवराज का मन अशांत होता है तो शिवराज अपने गुरु जी से पूछते हैं कि हे भगवन्! क्या जीवन पर्यंत मैं इसी प्रकार हिंसात्मक कार्य करता रहूँगा?

शिवराज के गुरुजी समझाते हुए कहते हैं कि – क्षत्रिय वीर! भारत में क्षत्रियों का परम धर्म है कि वह दुष्टों का वध और साधुओं की रक्षा करें। इसलिए नीति मार्ग का आश्रय ग्रहण करके पथभ्रष्ट राजाओं का नाश करके अपना धर्मशासन स्थापित करो। इस आचरण में तुम्हें कोई धार्मिक बाधा नहीं है।[7] अपने गुरुरामदास जी के नीति वचन सुनकर शिवराज कहते हैं कि– 'ब्राह्मणों की शक्ति से युक्त होकर क्षत्रियों की शक्ति बढ़ती है।'[8]

रामदास जी बताते हैं कि– ब्राह्मण और क्षत्रिय की बुद्धि एवं शक्ति का जहाँ समन्वय होता है वहीं साम्राज्य लक्ष्मी विलसती है। '*यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च समीची चरतस्तत्रैव साम्राज्यश्रीर्विलसति।*'[9] साम्राज्य की समृद्धि के लिए चारों वर्णों और निषादों को प्रसन्न रखने की शिक्षा गुरुरामदास जी देते हैं।

इससे पता चलता है कि उस समय समाज में वर्ण व्यवस्था थी। समाज वर्णों में विभक्त था। इस नाटक के अनुसार मुख्य बात यह है कि शिवराज के गुरुजी पाँच वर्णों की चर्चा करते हैं। उनके अनुसार पाँचवाँ वर्ण निषाद है। रामदास जी यह अच्छी प्रकार से जानते हैं कि युद्ध काल में स्थितियाँ कभी भी अपना रूप बदल सकती हैं। अगर राजा पर्वतीय दुर्गों का आश्रय लेता है तो निषाद लोगों से अच्छा कोई भी अन्य सहायक नहीं हो सकता है। निषाद भारत की एक आदिम जाति है जो शिकार से अपना जीवन निर्वाह करते हैं।[10]

सांस्कृतिक एकता –भारत की अखंड़ मौलिक एकता उसके सांस्कृतिक स्वरूप में सर्वाधिक अभिव्यक्त होती है। समय–समय पर भारत में बाह्य शक्तियों यूनानी, शक, कुषाण, हूण, अरब, तुर्क, मंगोल, मुगलादि ने प्रवेश किया। भारतीय संस्कृति को सबसे अधिक क्षति मुगल काल में हुई है। मुगल काल में भाषा और धर्म को बदलने के लिए अनेक प्रयास किए गए।[11] छत्रपति कालीन क्षत्रिय राजा अपना क्षत्रिय धर्म छोड़कर मुगल सम्राटों के आश्रय में चले गए थे। भारतीय प्रजा मानसिक रूप से अत्यंत दुखी थी। यवनों के अत्याचारों से पीड़ित प्रजा शिवराज के धर्मराज्य स्थापना की घोषणा से बहुत प्रभावित हुई। प्रथम अंक में 'तोरणादुर्गपाल' शिवराज के धर्मराज्य स्थापना से खुश होकर अपने दुर्ग को शिवराज के अधिकार में सौंप देते हैं।[12] शिवराज के सभी सहयोगी पात्र इस दुर्ग को शिवराज साम्राज्य का सिंह द्वार बताते हैं। तृतीय अंक में बीजापुर नरेश जैसे समृद्ध नरेश को त्यागकर सात–सौ गांधार सैनिक शिवराज का आश्रय चाहते हैं।[13] इससे यह बात स्वत: स्पष्ट हो जाती है कि शिवराज की यशस्वी विजयों से प्रभावित होकर अपनी संस्कृति में जीने वाले लोग सांस्कृतिक एकता के लिए शिवराज के साथ खड़े हो गए। नाटकीय घटनाएँ स्पष्ट बताती हैं कि तत्कालीन परिस्थितियाँ भारतीय संस्कृति का ह्रास कर रही थीं। नायक शिवराज की धर्मराज्य स्थापना की घोषणा भारतीयों में नव चेतना जागृत करती है। बीसवीं शताब्दी में याज्ञिक जी का नाट्यत्रयी प्रस्तुत करने का मुख्य कारण भी जन समुदाय में राष्ट्रीय चेतना जागृत करना ही था। नाटक में शिवराज को एक आदर्श क्षत्रिय नायक के रूप में प्रस्तुत करके याज्ञिक जी इतिहास के समान ही साहित्य में भी भारत के अमर वीर योद्धाओं में अग्रणिम स्थापित करते हैं।

शिक्षा व्यवस्था–सभ्यता एवं संस्कृति के सम्यक् प्रसार तथा विकास के लिए एवं वैयक्तिक, सामाजिक और राष्ट्रीय प्रगति के लिए शिक्षा नितांत आवश्यक है।

'*शिक्ष्यते विद्योपादीयतेऽनया इति शिक्षा*'[14] इस व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ से संसार की किसी भी विद्या का ज्ञान प्राप्त करने का साधन ही शिक्षा है। चरित्र निर्माण, व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास, कर्तव्य की भावना जाग्रत करना, संस्कृति का संरक्षण इन सभी प्रयोजनों की पूर्ति उचित शिक्षा और श्रेष्ठ गुणों के मार्गदर्शन से ही संभव है।

नाटक के चतुर्थ अंक में गुरु शिष्य संबंध के दर्शन होते हैं। शिवराज अपने गुरु के आगमन से अत्यंत प्रसन्न होते हैं और उनके कण्ठ में पुष्पमाला समर्पित करके चरण स्पर्श करते हैं।[15] रामदास जी अपने शिष्य को 'अद्वितीय–वीर' से संबोधित करते हैं। विजयश्री का आशीर्वाद देते हुए नीतिवचन से ज्ञान वर्षा करते हैं। युद्ध नीति बनाने में शिवराज की सहायता करते हैं। शिवराज का मनोबल बढ़ाते हुए उसे क्षत्रिय धर्म का ज्ञान देते हैं–

लोकसंग्रहपरैर्जितात्मभि:, कर्मयोगनिरतैर्नृपोत्तमै:।
पाप्मनां प्रमथने प्रकल्पितो, धर्मतन्त्रमपि बाधते नय:॥ [16]

सप्तम अंक में एक वर्णन आता है कि शिवराज राजा जयसिंह द्वारा प्रस्तावित चारों संधियों पर शिवाजी अपने हस्ताक्षर करके तथा नाम की मुद्रा से अंकित करके अपनी स्वीकृति प्रदान करते हैं– *स्वनाममुद्राङ्कितंविधाय उररीक्रियते मयैतत्संधिपत्रम्।*[17]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट परिलक्षित होता है कि शिवाजी

पूर्णत: साक्षर थे।

आश्रम व्यवस्था–भारतीय संस्कृति के समुज्ज्वल तत्त्वों में एक उत्कृष्ट व्यवस्था है–आश्रम व्यवस्था। भारतीय संस्कृति के सामाजिक संगठन के अंतर्गत आश्रम व्यवस्था की परिकल्पना से यह नितांत स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य जीवन के प्रति भारतीय मनीषियों का दृष्टिकोण अत्यंत व्यापक तथा सर्वाङ्गीण था। ऋषियों ने अत्यंत सुक्ष्म नजर से आश्रम व्यवस्था को भारतीय संस्कृति में समाहित किया है।

आश्रमव्यवस्था का दूसरा भाग है– गृहस्थाश्रम। 'छत्रपतिसाम्राज्य' में नायक शिवराज गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर चुके हैं। नाटक में उनके पुत्र का उल्लेख आठवें अंक में आता है जब शिवराज अपने पुत्र सहित फलों की टोकरी में छिपकर मुगलेश की कैद से भाग निकलते हैं।[18]

गृहस्थ के लिए पंचमहायज्ञों का विशेष महत्व है।[19] पंचमहायज्ञों में 'नृयज्ञ' सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। शिवराज क्षत्रिय धर्म के साथ नृयज्ञ को कुशलता से संपादित करते हैं। शत्रु द्वारा प्रेषित दूतों के साथ शिवराज का व्यवहार अत्यंत आदर पूर्ण रहता है। चतुर्थ अंक में 'कृष्णाजी' के नामक एक दूत शिवराज की सभा में आता है। शिवराज कृष्णाजी को द्विजश्रेष्ठ संबोधन देते हैं। अतिथि भवन में रुकवा कर उनका अतिथि सत्कार करते हैं। शत्रु दूत पर शंका रहने पर भी शील स्वभाव से बात करते हैं।[20]

नारी की स्थिति–किसी भी समाज अथवा राष्ट्र के सर्वतोमुखी विकास में स्त्री और पुरुष का समान महत्व होता है। भारतीय संस्कृति की निरंतर प्रवाहित सुदीर्घ परम्परा में नारी की स्थिति, प्रतिष्ठा, शक्ति, योग्यता आदि कालक्रम में निरंतर परिवर्तित होती रही है। भारतीय संस्कृति में नारी की स्थिति परिवर्तनशील रही है। 'छत्रपतिसाम्राज्य' में याज्ञिक जी ने दो स्त्री पात्रों को स्थान दिया है तथा नाटकीय घटनाओं में स्त्रिओं की स्थिति को दर्शाया है।

नाटक के अध्ययन से ज्ञात होता है कि राजपरिवार में स्त्रियों की स्थिति अच्छी थी परंतु यवनों के अत्याचारों से प्रजा में स्त्रियों की स्थिति दयनीय थी। स्त्रियों का वध और अपहरण यवनों की क्रूरता को दिखाता है। इस नाटक में दो स्त्री पात्र हैं– राज्ञी और राजमाता।

राजमाता–राजमाता कुशल मार्ग–निर्देशिका हैं। शिवराज शत्रु पक्ष पर विचार करने के लिए तथा लिए गए निर्णय पर राजमाता के विचार तथा तर्क अवश्य सुनते थे। राजमाता समय–समय पर शिवराज को सचेत करती हैं और मनोबल बढ़ाती हैं। राजमाता (जीजाबाई) वात्सल्य की साक्षात् मूर्ति राजमाता है। वे शिव भक्त हैं और शिव मंदिर में अनेक बार अर्चना करते हुए उन्हें दिखाया गया है।[21] शिवराज के स्वराज्य स्थापना रूपी उद्देश्य की सफलता को ईश्वर की असीम अनुकम्पा समझती हैं।[22] राजमाता राजनीति में कुशल क्षत्रियाणी हैं, साहस को सफलता का मूलमंत्र मानती हैं।[23] वे दंड़नीति के द्वारा शिवराज को महाराष्ट्र विजय के लिए प्रेरत करती हैं।[24] बांधव जनों को अपने अनुकूल बना लेने की उनमें पूर्ण क्षमता है तभी तो शिवराज को अपनी कन्या का विवाह बजाजी से करने को कहती हैं ताकि सम्बन्ध प्रगाढ हो जाये। इससे स्वराज्य–स्थापना रूपी व्रत पूरा होने में आसानी होगी।[25] साधु सन्तों के प्रति आदर और सम्मान भाव रखते हुए अतिथि को सौभाग्य समझती हैं।[26]

राज्ञी–राज्ञी सोयराबाई शिवराज की पत्नी हैं। दोनों आदर्श पति–पत्नी का उदाहरण हैं। राज्ञी बहुत कम समय के लिए मंच पर आती हैं परतु अपने शील स्वभाव की अमिट छाप छोड़ जाती है। राज्ञी पति–व्रत का पूर्ण पालन करती है। अपनी स्नेहमयी तथा मधुर वाणी से शिवराज के मन को प्रसन्न रखती हैं।[27]

'छत्रपतिसाम्राज्यम्' में वर्णित तत्कालीन घटनाएँ बताती हैं कि प्रजा यवनों से अत्यधिक पीड़ति थी। प्रथम अंक में नेताजी और उनके बांधवों को बीजापुर के सैनिक मार देते हैं। बीजापुर का यवन सम्राट् स्त्री, बच्चों, वृद्धजनों पर भी दया नहीं करता है। यवन सैनिक नेता जी को मारकर उनकी बहन का अपहरण कर लेते हैं।[28] तृतीय अंक में 'आबाजी' शिवराज के लिए स्त्री रत्न भेंट करना चाहते हैं। इससे स्पष्ट पता चलता है कि उस समय सम्राट् को स्त्रीधन भेंट करने की परम्परा रही होगी। परन्तु शिवराज इसे धर्माचरण के विरुद्ध मानते हैं। शिवराज परस्त्री को पुत्री समझते हैं। शिवराज मंत्री से कहते हैं कि राज्य में घोषणा करा दो कि हमारे धर्मराज्य में शिवराज और उसके सेवक दूसरों की स्त्रियों को पुत्री स्वरूपा समझते हैं।[29]

सैनिकों का अंत्येष्टि संस्कार–भारतीय हिंदू संस्कृति के अनुसार मनुष्य के सोलह संस्कारों में अंतिम संस्कार अंत्येष्टि संस्कार है। यह संस्कार मृतक व्यक्ति के संबंधियों द्वारा संपन्न किया जाता है। सामरिक घटनाओं से परिपूर्ण इस नाटक में भारतीय संस्कृति की झलक भी युद्ध की स्थितियों में अंतर्निहित है। क्षत्रिय योद्धाओं के लिए उनका कर्तव्य ही सब कुछ होता है। शिवराज स्वयं हिंसा से दु:खी है। शत्रु पक्ष के सैनिकों को मार कर वे स्वयं भी मानसिक रूप से दु:खी होते हैं। शिवराज के सभी क्षत्रिय योद्धा अत्यंत विश्वासपात्र और निष्ठावान् हैं। वीरगति को प्राप्त सैनिकों का अंत्येष्टि संस्कार राजा की उपस्थिति में राजोपयुक्त विधियों द्वारा सम्पन्न

होता है।

सप्तम अंक में मुगलों के आक्रमण से विशालगढ़ दुर्ग की रक्षा करते हुए 'बाजीप्रभु' वीरगति को प्राप्त होते हैं। शिवराज की उपस्थिति में संपूर्ण हिंदू पद्धति से बाजी प्रभु की राजोपयुक्त अंत्येष्टि होती है। शिवराज-राज्य में सैनिकों को राजपरिवार का अभिन्न अंग माना जाता था। इस अंत्येष्टि विधि से क्षत्रिय वीरों के प्रति शिवराज की आत्मीयता के दर्शन होते हैं।

उपसंहार-नाटकीय संवादों, घटनाओं और पात्रों के माध्यम से नाट्यकार तत्कालीन समाज और संस्कृति को प्रकट करते हैं। मूलशंकर माणिकलाल याज्ञिक द्वारा रचित 'छत्रपतिसाम्राज्यम्' में समाज एवं संस्कृति को तत्कालीन परिस्थितियों एवं रीति-रिवाजों के अनुसार दिखाया गया है। परतंत्रता की विषम परिस्थितियों में समाज और संस्कृति किस प्रकार है तथा क्षत्रियवीर किस प्रकार अपने कर्तव्य का निर्वहण करते हैं? ये सभी बातें तत्कालीन परतंत्र समाज को दिखाती है।

समाज बाह्य शक्ति के रूप में और संस्कृति आन्तरिक शक्ति के रूप में देश को एकसूत्र में बांधती है। यह शब्द मनुष्य की सहज प्रवृत्तियों, नैसर्गिक शक्तियों और परिष्कार का द्योतक है। संस्कृति से विशिष्ट काल, भूखंड और प्रगति का इतिहास स्वत: प्रकट होता है। इस नाटक में याज्ञिक जी चौदहवीं शताब्दी की तात्कालिक घटनाओं के माध्यम से समाज और भारतीय संस्कृति को सम्यक् प्रकार से वर्णित करते हैं। 'छत्रपतिसाम्राज्यम्' में वर्णित तत्कालीन घटनाएँ बताती हैं कि प्रजा यवनों से अत्यधिक पीड़ति है। जन समुदाय यवनों के अत्याचारों से पीड़ित है। परतंत्र समाज दिखाता है कि भारत अपनी गरिमा खो रहा है संस्कृति का ह्रास चरम सीमा पर है क्योंकि जिस राज्य में स्त्री का सम्मान नहीं होता है वहां सभ्यता और संस्कृति केवल इतिहास बन कर रह जाती है। समाज की दुर्दशा को देखकर मराठा केसरी हिन्दू राज्यस्थापना की प्रतिज्ञा करते है। चतुर्विध निति से शिवराज शत्रु का दमन करते है। श्रेष्ठ गुरुओं के मार्गदर्शन में रहकर भारतीय संस्कृति के अनुरूप राजसी कार्यो कों सम्पन्न करते है।

भारतीय संस्कृति की गरिमा के अनुसार शिवराज राज्य में स्त्रीयों को समुचित सम्मान तथा आदर देते हैं। शासन व्यवस्था की नीतियां प्रजा हित को ध्यान में रखकर बनाई जाती है। इस प्रकार समाज और संस्कृति का अनुपम समन्वय इस नाटक में याज्ञिक जी दिखाते है।

सन्दर्भ सूची -

1. प्रतापविजयम्, मुख पृष्ठ.
2. मूलशंकर नाट्यत्रयी, प्रथम संस्करण, पृष्ठ सं0 8.
3. गोयल, प्रीतिप्रभा. भारतीय संस्कृति, पृष्ठ संख्या 1.
4. यास्क, निरुक्त 3. 2 - वर्णो वृणोते:
5. आप्टे, संस्कृत हिन्दी कोश, पृ.स0 9.
6. ऋग्वेद 10.90.12.
7. छत्रपतिसाम्राज्यम्, पृ. सं. 59
8. वही, पृ. सं. 61.
9. वही, 4/ 6.
10. आप्टे, शिवराम. संस्कृत हिन्दी कोश, पृ. सं. 543.
11. प्रतापविजयम्, पृ. सं. 101.
12. छत्रपतिसाम्राज्यम्, पृ. सं. 19.
13. वही, पृ. सं. 43.
14. गोयल, प्रीतिप्रभा. भारतीय संस्कृति, पृ. सं. 105.
15. छत्रपतिसाम्राज्यम्, पृ. सं. 59.
16. वही, 4.2.
17. वही, सप्तम अंक, पृष्ठ संख्या 115.
18. छत्रपतिसाम्राज्यम्, पृ. सं. 134
19. मनुस्मृति, 3.70.
20. प्रापयैनं विप्रवर्यमावेशिकमन्दिरम्। उच्यतां च मद् वचनात्राधिकृतो यदेष द्विजोत्तमो राजोपचारै: सम्भावनीय इति ॥- छत्रपतिसाम्राज्यम्, पृ. सं. 68.
21. छत्रपतिसाम्राज्यम्, तृतीय अङ्क, पृ. सं. 103.
22. वही, चतुर्थ अङ्क, पृ. सं. 144.
23. वही, 3.14.
24. वही, नवम् अङ्क, पृ. सं. 259.
25. वही, तृतीय अङ्क, पृ. सं. 103.
26. वही, नवम् अङ्क, पृ. सं. 256.
27. छ0 सा0, 3.17.
28. छ0 सा0,प्रथम अङ्क, पृ. सं. 10.
29. छत्रपतिसाम्राज्यम्, तृतीय अङ्क, पृ. सं. 43.

संदर्भ- ग्रंथ- सूची

मूल संस्कृत ग्रंथ-

1. याज्ञिक, मूलशंकर माणिकलाल. छत्रपतिसाम्राज्यम्. सं.प्रभात शास्त्री. द्वितीय संस्करण. इलाहाबाद: देवभाषा प्रकाशन, वि0स0 2026.
2. याज्ञिक, मूलशंकर माणिकलाल. प्रतापविजयम्. अनु. शिवशंकर त्रिपाठी. द्वितीय संस्करण. इलाहाबाद: देवभाषा प्रकाशन, वि0स0 2026.
3. याज्ञिक, मूलशंकर माणिकलाल. मूलशंकर नाट्यत्रयी. सं. राजेन्द्र नाणावटी. प्रथम संस्करण. नव देहली: राष्ट्रीयसंस्कृतसंस्थानम्, 2010.

सहायक ग्रंथ-

1. उपाध्याय, रामजी. आधुनिक संस्कृत नाटक. सागर: संस्कृत परिषद्, 1977.
2. गोयल, प्रीतिप्रभा. भारतीय संस्कृति. चतुर्थ संस्करण. जोधपुर: राजस्थानी ग्रन्थागार,2011
3. दीक्षित, हरिनारायण. अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में राष्ट्रीय भावना. दिल्ली: देववाणी परिषद्, 1973.
4. द्विवेदी, कपिलदेव. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास. इलाहाबाद: रामनारायणलाल विजयकुमार, 2015.
5. भरतमुनि. नाट्यशास्त्र (अभिनवभारती टीका सहित). सं. रविशंकर नागर. खण्ड-1. दिल्ली: परिमल पब्लिकेशन, 1981.
6. शर्मा, चित्रा. संस्कृत नाटकों में समाज चित्रण. दिल्ली: मेहरचंद लछमनदास, 1969.

ISSN 2278 - 0327

बालशिक्षा

डॉ. डम्बरुधर पति
असिस्टेंट प्रोफेसर (शिक्षा विभाग)
केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय
(शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार)
भोपाल परिसर, भोपाल

प्रस्तावना

यथा दृष्टि: तथा सृष्टि:,
यथा मति: तथा कीर्ति:।।

अर्थात् जिस प्रकार दृष्टि होगी उस प्रकार सृष्टि की संरचनाएं संकल्पित की जावेगी एवं जिस प्रकार बुद्धि होगी उस प्रकार उस व्यक्ति तथा समाज की कीर्ति व्याप्त होगी। विश्लेषण की दृष्टि से जिस व्यक्ति तथा समाज की दृष्टि यानी उसका विचार, भावना, चिन्तन आदि होगी उस व्यक्ति तथा समाज का व्यवहार, परिवेश तथा पारिस्थितिक तन्त्रों का निर्माण उस प्रकार होगा। उससे उस व्यक्ति में बुद्धि उस दृष्टिकोण से आवेगी तथा उसकी कीर्ति, मान तथा यश आदि व्याप्त होगी।

इस लोकोक्ति के अनुसार यदि सूक्ष्मदृष्टि से विचार किया जावें तो मानवीय मूल्यों का विकास पूर्णतया उस व्यक्ति तथा समाज की दृष्टि के उपर निर्भर करता है। यह केवल एक व्यक्ति परक चिन्तन नहीं है अपितु उस व्यक्ति तथा समाज की आनुवंशिक परम्परा अथवा पीढ़ी के मानवीय मूल्यों पर प्रभाव पड़ता है।

मेरा स्वयं का चिन्तन, भावना तथा विचारों से केवल व्यक्तिगत रूप से मैं प्रभावित हूं ऐसा नहीं अपितु मेरे साथ मेरा परिवार यानी मेरे पिता, माता, भाई, बहन, पत्नी, पुत्र, पुत्री, पौत्र तथा पौत्री आदि पूर्णतया प्रभावित होते हैं।

अत: व्यक्ति का चिन्तन वैयक्तिक ना होकर सामूहिक होना अत्यन्त आवश्यक है।

बाल्यकाल से बच्चों का चिन्तन तथा उनकी भावनाएं उनके जीवन के साथ साथ पीढ़ियों के माननीय संस्कारों का विकास में सहयोग करता है।

विषय–वस्तु विश्लेषण

बाल्यकाल से बच्चों का चिंतन तथा उनकी भावनाएं, उनके जीवन के साथ साथ पीढ़ियों के मानवीय संस्कारों का विकास में सहयोग करता है।

21 वीं शताब्दी के पाश्चात्य प्रभाव से बच्चों में आने वाली भारतीय संस्कृति के प्रतिकूल भावनाएं तथा चिंतन एक विचारणीय विषय है। बच्चों के भीतर भारतीय संस्कृति के अनुकूल बौद्धिक तत्वों को प्रवेश कराने हेतु वर्तमान समय पर विविध दृष्टि से प्रयास किया जा रहा है। सर्वकारीय स्तर से मानवीय मूल्यों का विकास हेतु प्रयास करना अत्यन्त आवश्यक है ऐसा नहीं अपितु प्रत्येक परिवार से ही पहल आवश्यक है। यह सर्वविदित है कि पाश्चात्य प्रभाव से वर्तमान की भारतीय दृष्टि संस्कृति के प्रतिकूल होने के कारण बच्चों को उचित शिक्षा देने में हम असमर्थ हो रहे हैं। बच्चे जैसे देखते हैं वैसे ही सीखते हैं। बच्चों के परिवेश में जो विद्यमान हैं उससे बच्चे प्रभावित होते हैं। वह परिवेश, घर, विद्यालय तथा समाज हो सकते हैं। बाल शिक्षा का प्रारंभ घर से ही होता है। वर्तमान समय पर विद्यालय से प्राप्त शिक्षा उसे केवल उद्योग की ओर ले जाती है। संस्कार, संस्कृति, धर्म, सत्य, निष्ठा आदि ज्ञान के स्थान पर कथा कथञ्चित् कार्य सिद्धता कि ओर प्रेरित हेतु शैक्षिक संस्थाओं से शिक्षा प्राप्त किया जा रहा है। विश्व ज्ञान परंपरा में भारतीय संस्कृति का स्रोत तथा जीवन्त धरोहर संस्कृत ही है। संस्कृत के बिना भारतीय संस्कृति का अस्तित्व नहीं है। यथा–

विना मूलं न तरवो संस्कृति: संस्कृतं विना।

जिस प्रकार मूल के बिना पेड़ का अस्तित्व नहीं है उस प्रकार संस्कृत के बिना भारतीय संस्कृति का है।

एवं – *भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतं संस्कृतिस्तथा*

भारत की प्रतिष्ठा संस्कृत एवं संस्कृति में ही निहित है।

जिस प्रकार बच्चों से परिवार, परिवार से समाज तथा समाज से राष्ट्र की संकल्पना की जाती है उस क्रम में बालशिक्षा के द्वारा भारतीय देश की संस्कृति की सुरक्षा ही संभव है। बच्चों

को उचित शिक्षा की आवश्यकता है। शिक्षा से चार स्तंभों का विकास होना अत्यन्त आवश्यक है। तथा–

1. स्वयं का विकास
2. परिवार का विकास
3. समाज का विकास
4. राष्ट्र का विकास

वर्तमान शिक्षा केवल स्वयं का विकास हेतु प्रेरित करता है किंतु स्वयं के साथ–साथ परिवार समाज तथा राष्ट्र का विकास की भावना हेतु बालशिक्षा की आवश्यकता है।

बाल्यकाल से जो शिक्षा प्राप्त होती है उसका क्रियान्वयन प्रौढ होने पर किया जाता है। यदि बाल्यकाल से भारतीय संस्कृति के अनुकूल शिक्षा दी जावेगी तो शिक्षा के चार स्तंभों का विकास होना सुनिश्चित है। भारत में प्रत्येक बच्चों के अन्दर एक विशिष्ट प्रतिभा है। उस प्रतिभा का प्रदर्शन तथा सदुपयोग शिक्षा के माध्यम से होता है, किन्तु पाश्चात्य शिक्षा पद्धति के प्रभाव से भारत के बच्चे मानसिक रूप से प्रभावित होते हैं। जो मातृभाषा नहीं है,भारत की सम्पर्क भाषा नहीं है, राजा भाषा नहीं है तथा संवैधानिक भाषा नहीं है उस भाषा के माध्यम से बच्चों को पढ़ाने हेतु प्रेरित करते हैं जिससे प्रतिभा अवरुद्ध हो जाती है।

बाल्यकाल से यदि सहजतया, सरलतया तथा अपनत्व की दृष्टि से शिक्षा व्यवस्था की जावेगी निश्चित रूप से प्रतिभा का प्रदर्शन तथा सदुपयोग होगा।

शिक्षा के तीन स्तर के अनुसार मानसिक तथा भावनाओं का सम्बन्ध। यथा–

प्राथमिक स्तर (संज्ञानात्मक)

माध्यमिक स्तर (भावनात्मक)

उच्च स्तर (क्रियात्मक)

प्राथमिक स्तर से संज्ञानात्मक ज्ञान को प्राप्त किया जाता है। माध्यमिक स्तर पर चिन्तन तथा विचार युक्त ज्ञान एवं उच्च स्तर पर प्रत्येक ज्ञान को क्रियात्मक रूप में लिया जाता है।

स्मृति परक ज्ञान को चिन्तन तथा विचार करते हुए उस ज्ञान को क्रियान्वयन का स्वरूप दिया जाता है। अत: प्राथमिक स्तर पर भारतीय संस्कृति के अनुकूल ज्ञान दिया जाना अत्यन्त आवश्यक है।

उदाहरण के रूप में यदि बाल्यकाल से निम्न वत सभी को शिक्षा दी जावेगी तो एक स्वस्थ नागरिक के साथ–साथ स्वस्थ राष्ट्र का निर्माण संभव हो सकेगा। यथा:

विद्वत्त्वं च नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते।।

ज्ञान और राजपन कभी भी समान नहीं हो सकते हैं, क्योंकि राजा अपने देश में ही पूजा जाता है किंतु ज्ञानी सारे विश्व में पूजा जाता है।

सार– विशुद्ध ज्ञान की महिमा चिरकाल रहती है।

रूपयौवनसम्पन्ना विशालकुलसम्भवा:।
विद्याहीना: न शोभन्ते निर्गन्धा: इव किंशुका:।।

यदि कोई रूप और पराक्रम से युक्त है और उच्चकुल में जन्म है किन्तु यदि वह मूर्ख है तो उसका रूप, पराक्रम और उच्चकुल भी जैसे ही व्यर्थ है वैसे ही पलाश का पुष्प देखते में सुंदर होने पर भी देव कार्य हेतु अनुप्रयुक्त होता है वैसे मूर्ख सर्वत्र निन्दित होता है।

सार– धन से ज्यादा ज्ञान तथा बुद्धि का महत्त्व है।

को हि भार: समर्थानां किं दूरं व्यवसायिनाम्।
को विदेश: सुविद्यानां क: पर: प्रियवादिनाम्।।

समर्थ व्यक्ति के लिए कोई भी कार्य असंभव नहीं होता। व्यवसायी व्यक्ति के लिए कोई भी स्थान दूर नहीं होता। मधुर भाषी व्यक्ति का कोई शत्रु नहीं होता उसी प्रकार ज्ञानी के लिए कोई अपरिचित स्थान नहीं होता, वह सर्वत्र सम्मान प्राप्त करता है।

सार– सन्तुलित सामाजिक जीवन परंपरा का मार्गदर्शन रूपी शिक्षा।

दु:खम् आपातितं सेव्यं सुखम् आपातितं तथा।
चक्रवत् परिवर्तन्ते दु:खानि च सुखानि च।।

रथ का चक्र घूमते समय जैसे ऊपर और नीचे होता रहता है वैसे ही सुख और दु:ख भी स्वाभाविक रूप से जीवन में आते रहते हैं, इसलिए हमें सुख और दु:ख को समान रूप से स्वीकार कर लेना चाहिए।

सार– धैर्य के साथ पूर्ण जीवन का निर्वहन करना।

दरिद्रता धीरतया विराजते,
कुवस्त्रता शुभ्रतया विराजते।
कदन्नता चोष्णतया विराजते,
कुरूपता शीलतया विराजते।।

निर्धनता धैर्य से सुशोभित होती है अर्थात् छिप जाती है वस्त्र की खराबी उसके शुभ्र होने पर छुप जाती है बुरा अन्न गर्म होने से उसकी बुराई छुप जाती है बुरा रूप शील तथा विनम्रता होने से शोभित होता है अर्थात् छिपाया जाता है।

सार– अच्छे व्यक्तित्व का परिचय।

अधमा: धनमिच्छन्ति,

धनं मानं च मध्यमा:।
उत्तमा: मानमिच्छन्ति,
मानो हि महतां धनम्।।

निम्न श्रेणी के लोग केवल धन की इच्छा रखते हैं, मध्यम श्रेणी के लोग धन और सम्मान की इच्छा रखते हैं, किंतु उत्तम व्यक्ति केवल सम्मान की ही इच्छा रखते हैं क्योंकि सम्मान महापुरुषों का श्रेष्ठ धन है।

सार- जीवन में यश, कीर्ति एवं सम्मान ही मुख्य है । यह उत्तम मानव का लक्षण है।

जैसे पढेगा आचरण वैसा होगा। इस दृष्टि से प्राथमिक स्तर से सकारात्मक दृष्टि पर ध्यान रखते हुए यदि भारतीय संस्कृति के अनुकूल इस प्रकार शिक्षा की व्यवस्था की जावेगी तो गुणवत्ता शिक्षण व्यवस्था के साथ वैयक्तिक विकास एवं समाज तथा राष्ट्र का विकास सुनिश्चित हो सकेगा। इस प्रकार शैक्षिक वातावरण से बच्चों के संज्ञानात्मक विकास एवं समयानुसार उस विषय पर चिंतन विचार एवं भावनाओं का विकास संभव हो सकेगा पुन: ज्ञान क्रियान्वयन होने लगेगा। भारतीय शिक्षा के प्रति प्रेरित करना आवश्यक है। यह शोध लेखक का एक वैयक्तिक विचार है जो सभी के समक्ष प्रस्तुत है।

निष्कर्ष-

बाल्यकाल से यदि इस प्रकार उचित शिक्षा के द्वारा बच्चों को संस्कृति के अनुकूल वातावरण के प्रति प्रेरित किया जावे तो एक स्वस्थ राष्ट्र का निर्माण सुनिश्चित है। उद्योग के साथ-साथ उत्तम मानव की रचना संभव हो सकेगा। बच्चों के कोरा मस्तिष्क में अच्छी-अच्छी बातें यदि लिख दी जावेगी तो वह चिरकाल पर्यंत स्थाई बनेगी। यह परंपरा तथा संस्कार हमारे भारत देश का ही है। उसे पुन: प्रत्यास्मरण करके उचित मार्गदर्शन देने हेतु सरकार तथा जन समाज से आग्रह है । शिक्षा का सर्वांगीण विकास भारतीय शिक्षा से ही संभव है।

ISSN 2278 - 0327

वेद और विज्ञान

डॉ. रजनीश
शिवाजी कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

वेद शब्द का अर्थ ही ज्ञान होता है और जो विशेष ज्ञान है उसको विज्ञान कहते हैं। ज्ञान-विज्ञान का मूल स्रोत क्या है? ये सब ज्ञान-विज्ञान आये कहाँ से? संसार का यह नियम है कि बिना सिखाये कोई नहीं सीखता। इससे ज्ञात होता है कि इन सबको भी सिखाने वाला कोई होगा। अन्त में देखें तो '*स एषः पूर्वेषामपि गुरुः..*'- (योगसूत्र-26) अर्थात् सभी गुरुओं का गुरु परमात्मा है और परमात्मा का दिया हुआ ज्ञान ही वेद है। वेदों में कहा गया है कि ब्रह्म सबकी प्रतिष्ठा है और सृष्टि में सबसे पहले ब्रह्म ही उपस्थित था। '*सर्व ज्ञानमयो ही सः*' अर्थात् वेद सब ज्ञान-विज्ञान का आधार है। इस संसार में हर प्रकार का व्यवहार सम्पादन करने हेतु और सब प्रकार की समस्याओं का समाधान हेतु पर्याप्त ज्ञान वेद में निहित है। इस बात की प्रामाणिकता तो तब होगी जब हम वेद को जान लेंगे।

वेद में असंख्य विषय विज्ञान सम्बन्धी निर्देशों से भरे पड़े हैं परन्तु हम कुछ ही बिन्दुओं का संकेतात्मक दिग्दर्शन करने का प्रयास करेंगे। आधुनिक विज्ञान में यह धारणा है कि यह सृष्टि ऊर्जा का ही रूप है और सृष्टि में जो कुछ दिखाई दे रहा है वह ऊर्जा ही है। इसी प्रकार यजुर्वेद में भी कहा- '*विश्वस्य दूतममृतम्०*' (यजुर्वेद :-15.33) अर्थात् अग्नि (ऊर्जा) संसार का अमर दूत है, उसमें सम्प्रेषण शक्ति स्थित है। ऋग्वेद में कहा- '*श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिः०*' (ऋ.1.44.13) अर्थात् विद्युत् में श्रवण शक्ति विद्यमान है। '*अरण्यो निहितो जातवेदाः०*' (ऋ.3.29.2) अर्थात् दो लकड़ियों को रगड़ कर अग्नि का आविष्कार किया जाता है। '*सूरात् अश्वं वसवो निरतष्ट०*' (ऋ.1.163.2) अर्थात् वैज्ञानिकों ने सूर्य से अश्व शक्ति वा सौर ऊर्जा को निकाला। '*चकृषे भूमिं प्रतिमानं०*'(ऋ.1.52.12) अर्थात् सूर्य भूमि को आकर्षित किया हुआ है। '*अग्निषोमौ बिभ्रति आप इत् ताः*' (अथर्व.3.13.5) अर्थात् जल के अन्दर अक्सीजन और हाइड्रोजन विद्यमान है। '*प्रसोमासो विपश्चितो अपां न यन्ति ऊर्मयः०*' (ऋ.9.33.1) अर्थात् चन्द्रमा के आकर्षण से समुद्र की लहरें ऊपर उठती हैं। '*शकमयं धूमम् आरादपश्यम्०*' (ऋ.1.164.43) अर्थात् सूर्य की चारों ओर शक्तिशाली गैस फैली हुई है ।

हमारी धारणा यह है कि जो कुछ भी गवेषणा, खोज है वह सब पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने ही की है, छोटी सी सुई से लेकर बड़े से विमान तक विदेशी वैज्ञानिकों ने ही बनाया है। जब कि यह सब बातें पूरी तरह मिथ्या हैं। जब हम वेदादि शास्त्र व ऋषि-मुनि कृत अनेक ग्रंथों का अध्ययन करते हैं तो ज्ञात होता है कि पहले से ही इन सब शास्त्रों में समस्त प्रकार की विद्या हमारे पूर्वज ऋषियों ने खोज की थी तथा विज्ञान सम्बन्धी अनेक वस्तुओं का निर्माण व प्रयोग भी कर लिया था। इसका सबसे बड़ा उदाहरण अभी भी हमारे सामने उपस्थित है महर्षि भरद्वाज जी के द्वारा प्रणीत 'बृहद-विमान-शास्त्र' के रूप में। इस पुस्तक में अनेक अन्य आचार्यों के नाम भी उल्लिखित है, जो कि विमान-शास्त्र के प्रणेता रहे हैं। विमान को किन-किन धातुओं से बनाना चाहिए? युद्ध की स्थिति में विमान को कैसे बचाना चाहिए? विमान किस प्रकार आकाश, भूमि और जल के ऊपर व भीतर भी चल सके? विमान चालक किस प्रकार का वस्त्र धारण करे, कैसा भोजन करे? इन सभी बातों की विस्तृत जानकारी इस विमान-शास्त्र में निर्देशित किये गए हैं। इससे ज्ञात होता है कि प्राचीन काल से ही हमारे ऋषि-मुनिओं ने ऐसी अनेक वस्तुओं का निर्माण किया है और उन सब का प्रयोग भी किया करते थे। आज दिल्ली जैसे महानगरों में प्रदूषण से लोग कितना दुखी हो रहे हैं, श्वास लेना दुष्कर हो रहा है। वैदिक संस्कृति सदैव प्रकृति की पालक रही है। पर्यावरण संरक्षण एवं प्रबंधन वैदिक साहित्य का अभिन्न अंग रहा है। वेद में प्रदूषण के निराकरण हेतु बताया कि '*वनस्पतिः शमिता०*' (यजुर्वेद. 29.34) अर्थात् वनस्पति प्रदूषण

निरोधक होता है अत: हमें अधिक से अधिक वृक्ष-वनस्पतिओं का रोपण करना चाहिये। वेदों में वायु को मरुत देवता कहा गया है और अनेक मंत्रों में उनकी स्तुति की गयी है '*ओउम् वात आ वात भेषजम्*'(ऋग्वेद10/186/1) अर्थात् वायु हमें ऐसा औषध प्रदान करे जो हमारे हृदय के लिए शांतिकारक और आरोग्यकारक हो तथा हमारी आयु को बढ़ाए यानि हमें प्रदूषण रहित वायु प्राप्त हो।

वेदों में कर्मकाण्ड की प्रधानता है यज्ञ भावना वैदिक संस्कृति का मूलमंत्र है सृष्टि की सम्पूर्ण व्यवस्था उत्पत्ति, स्थिति, पालन, प्रलय आदि का चक्र भी यज्ञ प्रक्रिया से चल रहा है। यज्ञ से प्राणिमात्र का कल्याण है '*यज्ञो वै श्रेष्ठतम कर्म*'(शतपथ ब्रा०1.7.1.5)आज यदि समाज में लोग यज्ञ-अग्निहोत्र को ही अपना लेते तो प्रदूषण से इतनी अधिक मात्रा में पीड़ित न होते, किन्तु सुख-शान्ति से युक्त रहते। जैसे कि यजुर्वेद में कहा गया है कि - '*वाताय स्वाहा, धूमाय स्वाहा, अभ्राय स्वाहा, मेघाय स्वाहा०*' (यजु. 22.26) अर्थात् जो मनुष्य वायु की शुद्धि के लिए, धूम की शुद्धि के लिए, मेघ की शुद्धि के लिए यज्ञ क्रिया करते हैं वे पुण्यात्मा हो कर सबका हित करने वाले होते हैं। अत: सबको यज्ञ-अग्निहोत्र का अनुष्ठान नित्य-प्रति करते रहना चाहिए। जब कभी वर्षा के न होने से राज्य में सूखा व अकाल पड़ता है, तब यज्ञ के माध्यम से वृष्टि कराने का विधान भी है। उसी प्रकार जब कभी अधिक वर्षा के कारण बाढ़ आ जाये, तो उस स्थिति में वर्षा को रोकने के लिए भी यज्ञ करने का विधान वेद में प्रतिपादित है। अथर्ववेद में ऐसा निर्देश किया गया है कि जस ओर वायु जाती है, उस ओर बादल भी चल पड़ते हैं। अर्थात् वातावरण व परिस्थिति के अनुरूप हम अपनी इच्छा से वायु की दिशा बदल कर मेघ को स्थानान्तरित कर सकते हैं और वृष्टि करा सकते हैं। '*मरुद्भि: प्रच्युता मेघा: प्रावन्तु पृथिवीमनु*' (अथर्व.4.15.9) अर्थात् वायुओं से प्रेरित मेघ पृथिवी की ओर खूब जोर से उमड़कर आवें। इस प्रकार अति-वृष्टि और अनावृष्टि रूपी समस्या का समाधान भी वेद ज्ञान के द्वारा संभव है ।

वेद में ऐसा निर्देश भी किया गया है कि, यज्ञ के द्वारा रोगों की चिकित्सा होती है। '*मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातक्ष्मादुत०*' (अथर्व.3.11.1) अर्थात् हे व्याधिग्रस्त मनुष्य! तुझे सुखमय जीवन व्यतीत करने के लिए यज्ञ-हवन के द्वारा ज्ञात और अज्ञात रोगों से बचाता हूँ। वैसे तो सम्पूर्ण आयुर्वेद ही ऋग्वेद का उपवेद है जिसमें कि मनुष्यों के साथ-साथ पशु-पक्षियों के शरीर को भी स्वस्थ, बलवान, निरोग व दीर्घायु रखने के लिए विविध प्रकार के उपाय और औषधि बताये गए हैं। अत: प्रत्येक व्यक्ति यदि अग्निहोत्र को अपनी जीवनचर्या में सम्मिलित करने का साथ यज्ञ की भावना को अपनी जीवनचर्या का अंग बना लें तो विश्व में भौतिक पर्यावरण की शुद्धि शारीरिक एवं मानसिक पुष्टि के साथ साथ सुख शांति और स्नेह की भावना जागेगी।

ISSN 2278 - 0327

राजी सेठ के 'गमे-हयात ने मारा' कहानी संग्रह में नारी की मनोदशा

अमित चहल
शोधार्थी
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

प्राचीन समय में नारी का अस्तित्व पुरुष के समक्ष अत्यंत गौण था। लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले और बाद में नारी के जीवन में बहुत सारे बदलाव आए हैं स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले बहुत सारी महिलाएं अशिक्षित थी और उनकी समाज में पुरुष के मुकाबले उनकी प्रतिष्ठा कम आंकी जाती थी। लेकिन आज की जो नारी है वह पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर हर क्षेत्र में अपना कार्य कर रही है। आज की नारी समाज के प्रत्येक कार्य में बढ़-चढ़कर भाग ले रही हैं चाहे वह राजनीति के क्षेत्र में हो, चाहे नौकरी के क्षेत्र में हो। वह हर जगह अपना सिक्का जमा रही है। लेकिन फिर भी कुछ महिलाओं को समाज में किसी न किसी कारणवश जगह नहीं मिल पाती। प्रस्तुत कहानी संग्रह में हम नारी के पत्नी, प्रेमिका, कामकाजी नारी, मां के रूप में नारी आदि विभिन्न रूपों का वर्णन करेंगे।

आज समाज में हर व्यक्ति अपने अधिकारों के प्रति स्वतंत्र है वह समाज में मनचाहे वर से मनचाही शादी कर सकता है। लेकिन फिर भी हमारे समाज में आज भी लड़कियों के प्रति संकीर्ण सोच को अपनाया जाता है लड़कियों के साथ बुरा व्यवहार किया जाता है और उनके साथ मारपीट की जाती है जिसके फलस्वरूप वह आत्महत्या तक करने के लिए जुझारू हो जाती हैं इसी प्रकार पंखुरी सिन्हा लेखिका 'गमे-हयात ने मारा' कहानी में ऐसी ही एक लड़की चन्नी का चित्रण करती है जो चौधरी चतुर सिंह चंदेल के लड़के से प्रेम करती है अर्थात् ये दोनों ही आपस में एक दूसरे को चाहते हैं। इन दोनों की जाति अलग होने के कारण चौधरी चौधरी चतुर सिंह अपने लड़के नरेंद्र का यह प्रेम स्वीकार नहीं करते और उन्हें उस लड़की से दूर रहने के लिए कहते हैं चन्नी को भी उसके मां-बाप द्वारा प्रताड़ित किया जाता है ।

चौधरी चतुर सिंह को यह प्रेम विवाह स्वीकार नहीं था वे कहते हैं कि-''अपनी खाल खिंचवा कर बेटे के जूते सिलवा सकते थे चौधरी, पर बनिया की बेटी के हाथ में सपूत का भविष्य नहीं सौंप सकते थे। प्यार होता है होता रहे। बछड़े मुंह मारते हैं मारते रहे। यह सब तो राजसी मिजाज के लक्षण हैं।'' (पृष्ठ 19)[1] चुन्नी और नरेंद्र दोनों के ही घर वालों को यह रिश्ता स्वीकार नहीं था अर्थात् दोनों ने जहर पीकर आत्महत्या कर ली। लेकिन किसी तरह चन्नी बच जाती है तो वह उसके घर वालों के ताने तो सुनती है, साथ-साथ में चौधरी चतुरसिंह जब चन्नी के घर उसके पिता को खरी-खोटी सुनाने जाते हैं तो गोकुल चंद ने अपनी बेटी को चौधरी के सामने उनके पैरों में ऐसे पटक दिया जैसे किसी कसाई के सामने पशु को और गोकुल चंद कहते हैं कि-''ले ..ले ..ले ..तू। मरी नहीं है छोरी। अब कर ले इसका जो करना है पगलाए से गोकुल चंद के मर्दाने हाथ अब चन्नी की पीठ को तबले की तरह पीट रहे थे।'' (पृष्ठ 20)[2] इस तरह चन्नी को नरेंद्र के चौथे से पहले ही शहर से गायब कर दिया जाता है ताकि नरेंद्र के घर वाले उसे कोई नुकसान न पहुंचा दें और चन्नी के माता-पिता भी मंडी को छोड़कर कहीं और बस जाते हैं। समाज में आज भी बहुत से शहरों में गांव में हमें देखने को मिलता है कि बहुत सारी लड़कियां अपने न तो प्रेम संबंध बना सकती हैं और न ही अपनी मर्जी से शादी कर सकती हैं।

पंखुरी सिन्हा 'सहकर्मी' कहानी के अंतर्गत एक ऑफिस में काम करने वाली नारी का वर्णन किया है जो हमेशा ही अपने अंदर और अपने कार्य में ही व्यस्त रहती है वह नहीं किसी से बोलती है, न उसका किसी के साथ उठना बैठना है। कार्यालय में सभी कर्मचारी किसी न किसी मित्र से या अपने सहकर्मी से जुड़े होते हैं, लेकिन मिसेज मित्रा का किसी से कोई भी संबंध या वास्ता नहीं है। लेकिन बहुत कोशिश करने के बाद ललित उनका एक अच्छा सहयोगी सहकर्मी बन जाता है। एक रोज जब वह मिसेज मित्रा को पूछता है कि वह कई दिन से छुट्टी पर क्यों थी

तो वह कहती हैं कि उनका बेटा बीमार था ललित कहता है कि आप फिर मिस्टर मित्रा को सूचित क्यों नहीं कर देती मैं उनको पोस्ट ऑफिस में जाकर सूचना दे आता हूं आप को अकेले में मुश्किल पड़ेगी पता दे दीजिए मुझे। इस बात पर मिसेज मित्रा कहती हैं कि- ''ओ नो .. उन्होंने हतासा में अपने हाथ टेबल पर पटके नो, नो, नो मित्रा नाम का कोई आदमी, मेरे लिए इस दुनिया में नहीं है मेरे लिए सच है सिर्फ।'' (पृष्ठ 30)[3] वह ललित से कहती है कि वह मुझे बहुत पहले ही छोड़कर विदेश में चले गए थे और आज तक वापस नहीं लौटे हैं मैंने उन पर अंधा विश्वास किया इस बात पर वह कहती हैं कि-''मैं सच कहती हूँ, वह मुस्लिम होकर इतनी श्रद्धा से मेरे साथ बिरला मंदिर की सीढ़ियां चढ़ता तो शायद कुछ नहीं होता.... मुझे उस पर इतना विश्वास में न आ जाता..।'' (पृष्ठ 31) इस प्रकार वह अपना जीवन अपने बेटे के साथ अकेले ही बिता रही है जिसे उसके पति ने बहुत पहले छोड़ दिया था। समाज में आज भी बहुत सी नारी हैं जिनके साथ मिसेज मित्रा के समान अपना जीवन व्यतीत कर रही हैं और अकेली ही अपने जीवन रूपी डोर को संभाली हुई है ऐसा चित्र पंखुरी सिन्हा ने अपने सहकर्मी कहानी के माध्यम से किया। हमारे जीवन में एक मां की भूमिका सबसे अहम होती है जो हमें पाल पोस कर बड़ा करती है। जो हमसे निस्वार्थ प्रेम करती है। ऐसी ही एक वृद्ध महिला के बारे में पंखुरी सिन्हा बाहरी लोग कहानी में वर्णन किया है। एक मां जिसे अपनी संतान को लेकर हमेशा चिंतित रहती है उसी तरह बाहरी लोग कहानी में एक वृद्ध, महिला अपने बेटे की नौकरी से घर देरी से लौटने से चिंता ग्रस्त रहती है वह आधी रात अपने पड़ोसियों को जगाती है और उन्हें बार-बार पूछती है कि मेरा बेटा अभी तक नहीं आया क्या आप सब को कुछ पता है लेकिन एक पड़ोसी महिला को छोड़कर उसका साथ कोई नहीं देता अर्थात् सभी पड़ोसी उसे पागल बुढ़िया समझते हैं जो हर रोज ऐसे अपने बेटे की प्रतीक्षा में उन्हें पूछती रहती है। इस पर एक पड़ोसी पुरुष वृद्ध नारी के बारे में कहता है कि-''आपको नहीं पता इसका पेंच ढीला है। पूरी तरह क्रेक है बुढ़िया। इसे अपना कुछ पता नहीं रहता गैस पर दूध रखती है दूध उबलता रहता है नल खोलती है पानी बहता रहता है।''(पृष्ठ 38)[4] इस तरह वह पड़ोसी पुरुष वृद्ध महिला की सहायता ना करके बल्कि उसे ही पागल बताता है और अंदर चला जाता है। जब देर रात बेटा शराब पीकर घर आता है तो उसकी मां उसे कहती है कि बेटा एक बार फोन करके बता तो देता कि मैं घर देर से लौट आऊंगा लेकिन उस पर उसका बेटा भी उसे पलट कर जवाब देता है। इस बात को उसका पड़ोसी दूसरी महिला पड़ोसी को कहता है कि-''देखिए अब यह लड़का है... जवान है.. अभी अकेला है.. आजाद है, कहां जंजाल पाले। इस दर्द की पोटली को संभालना क्या आसान है? पर वह लाख मना करें यहां आ ही जाती है, इस अकेले की रोटियां पाथने अरे यह नहीं होगी तो क्या लड़के को रोटियां नसीब नहीं होंगी। हर समय बताता रहता है कि बड़े भाई के पास जाकर रहो उनकी गिरस्ती है।'' (पृष्ठ 40)[5] जो मां अपना सारा जीवन अपनी संतान के सुख-दु:ख में लगा देती हैं फिर भी वह संतान अपने जीवन मैं इतने स्वार्थी हो जाते हैं कि वह अपनी माता को भूल जाते हैं न जाने आज कितने समाज में ऐसी मां होंगी जिनका आदर उनकी संतान द्वारा नहीं होता।

पंखुरी सिन्हा अपनी कहानी 'दलदल' में पत्नी के रूप में उसके जीवन को प्रस्तुत किया है। उन्होंने बताया है कि नारी कार्यालय क्षेत्र में होते हुए उसे अपनी गृहस्थी अपने पति और कार्यालय के बीच में किस प्रकार सामंजस्य स्थापित करना पड़ता है। दलदल कहानी में चित्रित पात्र आरती जो आर्मी से रिटायर्ड अमर की पत्नी है। अमर आर्मी में पेट्रोलिंग के दौरान दुश्मन के बिछाए बारूद का शिकार बन गया था जिसके कारण विस्फोट में उसकी दाई पिंडली चली गई उपचार के कारण उसकी टांग काटनी पड़ी और उसे रिटायरमेंट लेनी पड़ी घर में मां ननंद और बेटा होने के कारण घर की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी। जिसके चलते आरती भी एक ऑफिस में कार्य करती है और अपने पति के लिए भी उसी ऑफिस में कोई नौकरी ढूंढती है। अमर इतना स्वाभिमानी है कि वह उसके द्वारा बताई गई नौकरी नहीं करना चाहता। बहुत कोशिश के बाद वह अपने पति अमर को अपने बॉस मिस्टर वर्मा से मिलवा आती है तो मिस्टर वर्मा कहते हैं कि-''आपकी योग्यता में तो कोई कोर कसर नहीं। कोई दिक्कत नहीं होनी चाहिए कॉर्पोरेट सेक्टर में तो ऐसा ही आलराउंडर आदमी चाहिए परफेक्ट। उन्होंने उधर देखा। अपनी बगल में। उमावि साड़ी की प्रति छाया में दहकते चेहरे को। क्यों आरती? और मुस्कुराए। वह भी मुस्कुराए जैसे समर्थन में।'' (पृष्ठ 66-67)[6] यह सब देख कर पता नहीं अमर के दिमाग में क्या चल रहा था।''उसके कानों की लवे लाल हो गई यह अदान प्रदान उसे अर्थ वाहन लगा कुटिल लगा हुआ कोई तो बात होती है बीच में ऐसे ही कोई किसी के लिए कुछ नहीं करने बैठता।''(पृष्ठ 67)[7] अमर किसी का एहसान नहीं लेना चाहता वह न ही अपनी पत्नी के द्वारा की गई कोशिश की नौकरी को पाना चाहता है। अपनी पत्नी के बारे में उसके दिमाग में पता नहीं क्या-क्या चलता रहता

है। जिससे हम दोनों के बीच में लड़ाई झगड़ा भी होता है और अमर बिना बताए अपने दोस्त के पास नौकरी करने चला जाता है। इस प्रकार समाज में पुरुष अपनी पत्नी के लिए नौकरी ढूंढता है तो वह शायद खुद को ठीक समझता है लेकिन इसके विपरीत पत्नी अपने पति के लिए कोई नौकरी खोजें तो पति के दिमाग में अनेक बात जन्म ले लेती हैं।

प्रस्तुत कहानी संग्रह में पंखुरी सिन्हा नारी के प्रेम संबंध में आई बाधा वह समाज की रूढ़ि ग्रस्त सोच से जूझती नारी जो आत्महत्या करने पर मजबूर हो जाती है और अपने माता पिता अन्य लोगों द्वारा प्रताड़ित की जाती है, एक मां जो अपने संतान के प्रति हमेशा चिंता में रहती है और पड़ोसी और खुद की संतान के द्वारा उसे पागल घोषित कर दिया जाता है और कार्यालय में काम करने वाली कुंठा ग्रस्त व अकेले में जीवन व्यतीत करने वाली नारी और अपने परिवार को चलाने हेतु कामकाजी नारी ने पति की नकारात्मक सोच से लड़ती हुई नारी का वर्णन पंखुरी सिन्हा ने दर्शाया है। प्राचीन समय में भी नारी अपने जीवन में आ रही बाधाओं से लड़ती नजर आती हैं तो आज भी नारी अपने जीवन में अनेक बाधाओं से लड़ती हैं और मानसिक द्वंद्व से लड़ती नजर आती हैं। वह समाज में हर समस्या का डटकर सामना करती है और अपना जीवन निर्वाह विभिन्न समस्याओं, द्वंद्व के साथ करती हैं।

संदर्भ सूची

1. पंखुरी सिन्हा, गमे-हयात ने मारा, पृष्ठ 19
2. वही, पृष्ठ 20
3. वही, पृष्ठ 30
4. वही, पृष्ठ 38
5. वही, पृष्ठ 40
6. वही, पृष्ठ 66-67
7. वही, पृ0 67

ISSN 2278 - 0327

अनुसूचित जनजाति तथा गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों के स्व-प्रत्यय का तुलनात्मक अध्ययन

अनिता सिंह
शोधार्थी, गृह विज्ञान संकाय
मानसरोवर ग्लोबल विश्वविद्यालय, सीहोर (म.प्र.)

डॉ. माधवी पांडे
मानसरोवर ग्लोबल विश्वविद्यालय, सीहोर (म.प्र.)

इस शोध पत्र में अनुसूचित जनजाति तथा गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों के स्व-प्रत्यय का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। इस अनुसंधान हेतु न्यादर्श के रूप में हाईस्कूल की कक्षा 9वीं में अध्ययनरत 150 छात्रों (75 अनुसूचित जनजाति तथा 75 गैर अनुसूचित जनजाति) का दैव निदर्शन विधि से चयन कर उन पर डॉ. राजकुमार सारस्वत की स्व-प्रत्यय प्रश्नावली का प्रशासन किया गया। मध्यमान, मानक विचलन व क्रांतिक अनुपात परीक्षण के द्वारा आंकड़ों का विश्लेषण किया गया। शोधकार्य से प्राप्त परिणामों के अनुसार अनुसूचित जनजाति तथा गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों के स्व-प्रत्यय के शारीरिक, सामाजिक, शैक्षिक, नैतिक, बौद्धिक एवं समग्र स्व-प्रत्यय में सार्थक अंतर पाया गया जबकि स्वभावगत स्व-प्रत्यय में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

मुख्य शब्दः अनुसूचित जनजाति, गैर अनुसूचित जनजाति, स्व-प्रत्यय

शिक्षा का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करने के साथ ही, उनमें उत्तम चारित्रिक एवं नैतिक गुणों का विकास करना भी है। इसके लिए हमें उन सभी बातों को ध्यान में रखना होगा, जो शिक्षा की प्रक्रिया को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण एवं सकारात्मक विकास करने के साथ ही, उनमें उत्तम चारित्रिक गुणों का विकास करना भी है। विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का निर्धारण करने में अनुवांशिकता एवं वातावरण की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यदि विद्यार्थियों को सकारात्मक पारिवारिक वातावरण मिलता है, तो उनमें अहिंसा प्रेम, स्नेह, विनम्रता, ईमानदारी, दया, शिष्टाचार, अनुशासन, देशप्रेम व कर्त्तव्यपरायणता जैसे गुणों का विकास होता है, जिसके फलस्वरूप उनमें सकारात्मक स्व-प्रत्यय का विकास होता है, जिससे उनका व्यक्तित्व प्रभावशाली बनता है, साथ ही सकारात्मक विद्यालयीन परिवेश उनमें उत्तम नागरिक गुणों के विकास में सहायक होता है। प्रस्तुत शोध में जाति वर्ग (अनुसूचित जनजाति तथा गैर अनुसूचित जनजाति) स्वतंत्र चर है। अतः वर्तमान समय में शिक्षा के प्रचार व प्रसार के कारण समाज के दृष्टिकोण व परिस्थितियों में आने वाले परिवर्तनों, विशेषकर अनुसूचित जनजाति की स्थिति में आये बदलाव के कारण यह जानना भी आवश्यक है कि छात्रों का व्यक्तित्व व चरित्र किस तरह निर्मित हो रहा है, तथा इसके फलस्वरूप वर्ग भिन्नता के कारण उनका स्व-प्रत्यय किस प्रकार प्रभावित हो रहा है, उपरोक्त बातों का अध्ययन करना बहुत ही आवश्यक प्रतीत हो रहा है। अतः शोधकर्ता ने उपरोक्त सभी बातों को ध्यान में रखते हुए वर्तमान समस्या का चयन शोधकार्य हेतु किया है।

प्रस्तुत शोध से संबंधित पूर्व में भी कुछ शोध कार्य किये गये हैं जैसे - **कल्याणी देवी, टी. एवं माधुरी लता, बी.** (2004) ने अपने अध्ययन के निष्कर्षतः पाया कि अनुसूचित जनजाति एवं गैर अनुसूचित जनजाति के किशोरावस्था के विद्यार्थियों के स्व-प्रत्यय में सार्थक अंतर पाया गया एवं किशोरावस्था के विद्यार्थियों के स्व-प्रत्यय में लिंग भिन्नता नहीं पाई गई। **चक्रवती, पी.के. एवं बनर्जी, देवश्री** (2005) ने अपने अध्ययन में पाया कि छात्र एवं छात्राओं के आत्म-प्रत्यय में अंतर पाया गया तथा छात्रों में, छात्राओं की तुलना में उच्च आत्म-प्रत्यय पाया गया। **हेनरी, सपना एवं मिश्रा, मुक्ति** (2006) ने अपने अध्ययन के निष्कर्षतः पाया कि गैर अनुसूचित जनजाति वर्ग की छात्राओं एवं अनुसूचित जनजाति वर्ग की छात्राओं के स्व-प्रत्यय में सार्थक अंतर पाया गया तथा गैर अनुसूचित जनजाति वर्ग की छात्राओं में, अनुसूचित जनजाति वर्ग की छात्राओं की तुलना में उच्च स्व-प्रत्यय पाया गया। **पुरोहित, सुरभि एवं प्रवीण, नीलम** (2008) ने अपने अध्ययन के निष्कर्षतः पाया

कि सहयोगात्मक व सामान्य प्रवृत्ति वाली पालनशैली माताओं तथा किशोरों के शारीरिक आत्मप्रत्यय के मध्य धनात्मक सहसंबंध पाया गया जबकि अन्य पालन शैली वाली माताओं तथा छात्राओं के शारीरिक आत्मप्रत्यय के मध्य नगण्य अथवा ऋणात्मक सहसंबंध पाया गया। **चौधरी, स्वाति** (2011) ने अपने अध्ययन के निष्कर्षत: पाया कि सामाजिक आर्थिक स्तर विद्यार्थियों के स्व-प्रत्यय को सार्थक रूप से प्रभावित करता है, उच्च सामाजिक व आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों में निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों की अपेक्षा बेहतर स्व-प्रत्यय पाया गया। **बागड़े रेखा; डेविड, अल्का एवं करोड़िया, कविता** (2011) ने अपने अध्ययन में पाया कि किशोर व किशोरियों के मध्य आत्म-प्रत्यय के क्षेत्रों शारीरिक स्वास्थ्य व आत्मस्वीकृति में सार्थक अंतर नही पाया गया। **अवस्थी, पूनम एवं खरे, ज्योत्सना** (2017) ने अपने अध्ययन के निष्कर्षत: पाया कि अनुसूचित जनजाति एवं गैर अनुसूचित जनजाति की छात्राओं के शारीरिक, सामाजिक व बौद्धिक आत्मप्रत्यय में सार्थक अंतर पाया गया जबकि स्वभावगत, शैक्षिक, नैतिक एवं समग्र आत्मप्रत्यय में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

उद्देश्य:-

अनुसूचित जनजाति तथा गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों के स्व-प्रत्यय (शारीरिक, सामाजिक, स्वभावगत, शैक्षिक, नैतिक, बौद्धिक एवं समग्र) का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पना:-

अनुसूचित जनजाति तथा गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों के स्व-प्रत्यय (शारीरिक, सामाजिक, स्वभावगत, शैक्षिक, नैतिक, बौद्धिक एवं समग्र) में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।

उपकरण:-

स्व-प्रत्यय प्रश्नावली - डॉ. राजकुमार सारस्वत

विधि:-

सर्वप्रथम भोपाल के शहरी क्षेत्र में स्थित माध्यमिक स्तर के चार विद्यालयों की कक्षा नवमीं में अध्ययनरत् 150 छात्रों (75 अनुसूचित जनजाति तथा 75 गैर अनुसूचित जनजाति) का दैव निदर्शन विधि से चयन कर उन पर स्व-प्रत्यय प्रश्नावली का प्रशासन किया गया। मध्यमान, मानक विचलन व क्रांतिक अनुपात परीक्षण के द्वारा आंकड़ों का विश्लेषण किया गया। प्राप्त परिणामों के आधार पर निष्कर्ष निकाले गये।

परिणामों का विश्लेषण:-

परिकल्पना- 1: अनुसूचित जनजाति तथा गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों के स्व-प्रत्यय (शारीरिक, सामाजिक, स्वभावगत, शैक्षिक, नैतिक, बौद्धिक एवं समग्र) में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।

तालिका

अनुसूचित जनजाति तथा गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों के स्व-प्रत्यय संबंधी तुलनात्मक परिणाम

स्व-प्रत्यय के घटक	समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात मान	'पी' मान
शारीरिक	छात्र	75	28.65	4.33	2.07	< 0.05
	छात्राएं	75	30.19	4.75		
सामाजिक	छात्र	75	32.65	3.85	5.02	< 0.01
	छात्राएं	75	29.23	4.49		
स्वभावगत	छात्र	75	30.32	4.21	0.45	> 0.05
	छात्राएं	75	29.99	4.80		
शैक्षिक	छात्र	75	34.52	3.87	2.92	< 0.01
	छात्राएं	75	32.49	4.59		
नैतिक	छात्र	75	29.29	3.95	2.00	< 0.05
	छात्राएं	75	30.65	4.38		
बौद्धिक	छात्र	75	32.41	4.30	4.21	< 0.01
	छात्राएं	75	29.19	5.06		
समग्र	छात्र	75	187.85	17.57	2.04	< 0.05
	छात्राएं	75	181.73	19.10		

स्वतंत्रता के अंश - 148

0.05, 0.01 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान - 1.98, 2.61

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट है कि अनुसूचित जनजाति तथा गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों के स्व-प्रत्यय के शारीरिक, सामाजिक, शैक्षिक, नैतिक, बौद्धिक एवं समग्र स्व-प्रत्यय में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर है, क्योंकि इनके लिए प्राप्त क्रांतिक अनुपात के मान क्रमश: 2.07, 5.02, 2.92, 2.00, 4.21, 2.04 स्वतंत्रता के अंश 148 पर सार्थकता के 0.05, 0.01, 0.01, 0.05, 0.01, 0.05 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान क्रमश: 1.98, 2.61, 2.61, 1.98, 2.61, 1.98 की अपेक्षाकृत अधिक हैं जबकि स्वभावगत स्व-प्रत्यय में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर नहीं है, क्योंकि इसके लिए प्राप्त क्रांतिक अनुपात का मान 0.45 स्वतंत्रता के अंश 148 पर सार्थकता के 0.05 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान 1.98 की अपेक्षाकृत कम है।

अत: निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि अनुसूचित जनजाति तथा गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों के स्व-प्रत्यय के शारीरिक, सामाजिक, शैक्षिक, नैतिक, बौद्धिक एवं समग्र स्व-प्रत्यय में सार्थक अंतर पाया गया तथा अनुसूचित जनजाति के छात्रों का शारीरिक, नैतिक स्व-प्रत्यय गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों से उच्च पाया गया जबकि गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों का सामाजिक, शैक्षिक, बौद्धिक एवं समग्र स्व-प्रत्यय, अनुसूचित जनजाति के छात्रों से उच्च पाया गया। अनुसूचित जनजाति तथा

गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों के स्वभावगत स्व-प्रत्यय में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

अत: उपरोक्त परिणामों के परिप्रेक्ष्य में पूर्व में ली गई परिकल्पना ''अनुसूचित जनजाति तथा गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों के स्व-प्रत्यय (शारीरिक, सामाजिक, स्वभावगत, शैक्षिक, नैतिक, बौद्धिक एवं समग्र) में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा'' आंशिकत: अस्वीकृत की जाती है।

निष्कर्ष-

अनुसूचित जनजाति तथा गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों के स्व-प्रत्यय के शारीरिक, सामाजिक, शैक्षिक, नैतिक, बौद्धिक एवं समग्र स्व-प्रत्यय में सार्थक अंतर पाया गया तथा अनुसूचित जनजाति के छात्रों का शारीरिक, नैतिक स्व-प्रत्यय गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों से उच्च पाया गया जबकि गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों का सामाजिक, शैक्षिक, बौद्धिक एवं समग्र स्व-प्रत्यय, अनुसूचित जनजाति के छात्रों से उच्च पाया गया। अनुसूचित जनजाति तथा गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों के स्वभावगत स्व-प्रत्यय में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अस्थाना, मधु एवं वर्मा, किरणबाला (1996) ''व्यक्तित्व मनोविज्ञान'', मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृष्ठ क्रमांक 86
2. भटनागर, सुरेश(2007) ''शिक्षा मनोविज्ञान'', आर. लाल बुक डिपो, मेरठ, नवीनतम संस्करण, पृष्ठ क्रमांक 190
3. भार्गव, महेश (1997) ''आधुनिक मनोविज्ञान परीक्षण एवं मापन'', हर प्रसाद भार्गव, 4/230 कचहरी घाट, आगरा, ग्यारहवां संस्करण
4. गुप्ता, एस. पी. (2005) ''सांख्यकीय विधियां'', शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
5. सिंह, अरूण कुमार (2005) ''शिक्षा मनोविज्ञान'', भारती भवन पब्लिशर्स, पटना
6. वालिया, जे.एस. (2005) ''शिक्षा मनोविज्ञान की बुनियादें'', पाल पब्लिशर्स, जालंधर
7. अवस्थी, पूनम एवं खरे, ज्योत्सना (2017) ''अनुसूचित जनजाति एवं गैर अनुसूचित जनजाति की छात्राओं के आत्मप्रत्यय का तुलनात्मक अध्ययन'', स्वदेशी रिसर्च फाउन्डेशन, वॉल्युम 4, दिसम्बर 2017, पेज नम्बर 161-164
8. बागड़े, रेखा; डेविड, अलका एंव करोड़िया, कविता (2011) ''किशोर एवं किशोरियों के आत्मप्रत्यय के क्षेत्र (शारीरिक स्वास्थ्य व आत्मस्वीकृति) का तुलनात्मक अध्ययन'', रिसर्च हंट, वाल्यूम -*VI*, इश्यू *IV* दिसम्बर 2011, पृष्ठ क्रमांक 397-371
9. कल्याणी, देवी टी. एवं माधुरी लता बी. (2004) ''अनुसूचित जनजाति एवं गैर अनुसूचित जनजाति के किशोरावस्था के विद्यार्थियों के आत्मप्रत्यय का अध्ययन'', आई.जे.पी.ई. (इंडियन जनरल ऑफ सॉयकोमेट्री एंड एजूकेशन), जनवरी 2004, वाल्यूम 35 (1) पेज नं. 21-25
10. तिवारी, सुषमा एवं लता, सुमन (2000) ''बालक के व्यक्तित्व निर्माण में गृह वातावरण का प्रभाव'', प्राईमरी शिक्षक, अक्टूबर 2000, पृष्ठ क्रमांक 54-57
11. **Chakrabarti, P.K. and Banerjee, Debasri (2005) "**A study of gender difference in self-concept among school students in Kolkata", *The Primary Teacher, Jan. and April 2005, Pg. No. 85-90*
12. **Chaudhri, Swati (2011)** "Study of Effect of Social Status and Ecnomic status on Self-Concept of Senior Secondary Students of Bhopal City", *Research Link - 82, Vol IX (II), Janaury 2011, Pg. No. 129-130*
13. **Henry, Sapnaa and Mishra, Mukti (2006)** "Self-Concept of Tribal and Non-Tribal College Girls", *Praachi Journal of Psycho-Cultural Dimensions, April 2006, Vol. 22 (1), Pg. No. 62-66*
14. **Purohit, Surbhi and Praveen, Neelam (2008) "**Role of Parental Stylesin Nurturing the Self-Concept among Adolescent Girls", *Edutracks, Vol - 7, No. 6, Feb. 2008, Pg. No. 34-37*

ISSN 2278 - 0327

हिंसा और दहशत की चादर तले : 'हमारा शहर उस बरस'

डॉ. देविना अक्षयवर
एमए, एम.फिल एवं पीएच.डी.
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
सहायक प्रोफेसर – सेंट बीड्स कॉलेज, शिमला

राजेंद्र यादव ने बीसवीं सदी के 'औपन्यासिक अंत' में गीतांजलि श्री के उपन्यास, 'हमारा शहर उस बरस', के बहाने एक अहम सवाल उठाया था कि 'हिंदू- मुसलमान होने से ऊपर उठकर सिर्फ मनुष्य और भारतीय होकर रहना क्या सच-मुच इतना आसान है? 'सभी मनुष्य बराबर हैं!' के भोले सपाटवादियों ने शायद ही कभी इस विस्तार में जाने की ज़हमत उठायी हो- हाँ, इस धर्मनिर्पेक्षता की कहानी लिखी है गीतांजलि श्री ने- 'हमारा शहर उस बरस' में..।[1]

कथाकार दूधनाथ सिंह का 'आखिरी कलाम' और विभूति-नारायण राय का 'शहर में कर्फ्यू' जहाँ अयोध्या में बाबरी मस्जिद के विध्वंस से पहले साम्प्रदायिक उन्माद फैलाये जाने से लेकर विध्वंस के बाद हिंदू-मुसलमान दंगे और उनके चलते शहर में लगाए गए कर्फ्यू के बीच की कथा पेश करते हैं, वहीं गीतांजलि श्री का उपरोक्त चर्चित उपन्यास बाबरी मस्जिद विध्वंस की घटना के इर्द-गिर्द घूमते हुए भी महज़ उसी घटना पर आधारित नहीं रहता। हालांकि उपन्यास में जिस शहर की चर्चा की गयी है, उस में 'हिंदुओं ने शांतिप्रियता छोड़ दी थी...मस्जिदों पर सवार होकर त्रिशूल की नोंक पर देवी की पताका फेहराने लगे कि जो हमारे संग हुआ है, वही हमें उनके संग करना है। पाप का बदला पाप से चुकेगा...'[2] जैसी वारदातें और नारे उसी देश्काल का परिचय देते हैं। 'एक लाइन में युनिवर्सिटी, मठ और वह मैदान, जिसका मुकद्मा चल रहा है' और 'टंकियों में ज़हर मिला दिये जाने' जैसे संकेत- वाक्य कुल मिलाकर अयोध्या में सन् 1992 के बाबरी मस्जिद विध्वंस की ही याद दिलाते हैं। फिर भी लेखिका अपने पूरे सोच- विचार को मात्र एक घटना पर आधारित नहीं रहने देती हैं, बल्कि बाबरी मस्जिद विध्वंस की विभीषिका में लगे हाथ यह भी बता देना चाहती हैं कि- 'बात पर असल उस बरस भर की नहीं है उस बरस को हम आज में घसीट लाए हैं न कि बात है सिर्फ हमारे शहर की..।'[3]

अत: अतीत के एक हादसे को आधार बनाकर लेखिका ने अपने उपन्यास के बहाने कुछ महत्वपूर्ण मुद्दों को उठाया है जो भारत में घृणा की राजनीति द्वारा फैलायी जाने वाली हिंसा, धर्म- प्रचार के नाम पर मठों की अलगाववादी भूमिका, शिक्षण संस्थानों से लेकर कानून- व्यवस्था और पत्रकारिता के सम्प्रदायीकरण को अंजाम देते हैं। साम्प्रदायिक राजनीति दो खास समुदायों के बीच भौगोलिक और मानसिक विभाजन पैदा करती है। लेकिन विभाजन की शुरुआत असल में मानसिक विभाजन से ही तय होता है। यह मानसिक विभाजन भारत की भौगोलिक विराटता में इतने सालों तक क्यों और कैसे फैलता चला गया, इसकी व्यावहारिक और तटस्थ शिनाख्त, लेखिका ने अपने पात्रों- शरद, श्रुति, हनीफ और दद्दू के ज़रिये की है।

दूधनाथ सिंह और विभूतिनारायण राय के घटना-प्रधान उपन्यासों की लीक से हटकर गीतांजलि श्री की यह रचना किसी एक कथा, चरित्र- निर्माण या फिर औपन्यासिक- संरचना पेश करने से कहीं आगे की रचना है। ध्यान देने वाली बात है कि साम्प्रदायिक राजनीति का अर्थ साम्प्रदायिक दंगे या हिंसा नहीं है बल्कि ये तो साम्प्रदायिक राजनीति के चरमोत्कर्ष का मैनिफैस्टेशन है। इसीलिये लेखिका दंगों, कर्फ्यू, भाषणों आदि को पृष्ठभूमि में ही रखती हैं और अपने पात्रों के माध्यम से साम्प्रदायिक राजनीति की आग को हवा देने वाले असली मुद्दों की तह तक जाती हैं- मानसिक स्तर पर साम्प्रदायिकता को पैदा करने के लिये धर्म के ठेकेदारों द्वारा धर्म का इस्तेमाल, इतिहास की विकृत व्याख्या करके उसे बार-बार दोहराना, दिखावटी बनाम वास्तविक धर्मनिर्पेक्षता का सवाल, मठों का समाज के बौद्धिक वर्ग (यहाँ विश्वविद्यालय के रूप में) पर पड़ता प्रभाव, जन-माध्यमों और कानून-व्यवस्था के पैरोकारों के विचार, पुलिस का पूर्वाग्रह-युक्त रवैया और सब से उल्लेखनीय बात- बुद्धिजीवियों के मनोजगत में साम्प्रदायिक विचारधारा की गहरी घुस-पैंठ के कारणों की पड़ताल।

कथा की शुरुआत से ही लेखिका के रूप में श्रुति और

बुद्धिजीवी प्राध्यापकों के रूप में शरद और हनीफ़ बर्बर साम्प्रदायिक्ता के खिलाफ़ खड़े होते हैं। वे घर की चार दिवारी के अंदर दद्दू के साथ बीयर की चुस्कियों के बीच, बहसें, कहकहे और 'पेटी जोक्स' के बहाने एक खुले, उन्मुक्त और आत्मीय माहौल का अनुभव करते हैं लेकिन बाहर के ज़हरीले वातावरण को मठ से विश्वविद्यालय और वहाँ से उनके घर तक फैलने में ज़्यादा देर नहीं लगती। धार्मिक कुंठाओं से ऊपर उठे हुए ये लोग भी किस प्रकार हिंदू-मुसलमान बनने लगते हैं, उन्हीं के मानसिक संघर्ष की कथा इस उपन्यास के केंद्र में है।

लेखिका अपने उपन्यास में हिंदुत्ववादी ताकतों द्वारा मस्जिद गिराये जाने के बाद, मठ में हो रही पूजा-आरती और लाउड स्पीकरों से 'छन-छनकर' आ रहे महंत के प्रवचनों का ज़िक्र ज़ोर देकर करती हैं। इसका कुछ प्रासंगिक मतलब है। धर्म के ठेकेदार, चाहे पंडित हो या मौलवी, दोनों ही धर्म की आड़ में साम्प्रदायिक विद्वेष का माहौल बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यहाँ हिंदू बहुसंख्यकों द्वारा धर्म के नाम पर नफ़रत का ताण्डव रचाया जा रहा है। महंत द्वारा मुट्ठियाँ उछाल-उछालकर 'जय-जगदम्बे', सरीखे नारे देना और साथ ही युवा-वर्ग को 'वीर शिवाजी की संतान', 'महाराणा प्रताप सिंह के वंशज' जैसे नामों से उद्बोधित करके उसे उस इतिहास की याद दिलाकर उक्सामा जा रहा है जिस में इन दोनों 'वीरों' ने मुगलों से लड़कर अपने हिंदू धर्म की रक्षा की थी। अत: युवा-वर्ग की वीरता तभी सिद्ध होगी जब वह 'दुश्मनों' का सफ़ाया शस्त्र उठाकर करेगा! लेकिन ये दुश्मन किस लिहाज़ से हुए और इनसे खतरा किस रूप में है? इस सवाल का व्यावहारिक होकर जवाब ढूँढ़ना ही बेमतलब का हो जाता है। लेखिका लिखती हैं कि 'किसी को कुछ अपने बस में या साफ़ नहीं दिख रहा था, जब मठवालों की ललकार गूंजी कि मस्जिदों की गुम्बद पर गेरुआ पताका लगा दो। न सरकार, न वर्दीपोश, न प्रशासन, न अखाड़ेबाज, न श्रुति, न हनीफ, न शरद, न किसी और को, क्योंकि तब मठवालों के जुलूस की धमधमाती पदचापें सबकी आँखों में धूल झोंकती चली गईं।...बहुत धूल उड़ी उस बरस ।'[4] यह धूल प्रतीक है - धर्मांधता का, धर्म के नाम पर फैलाये जाने वाले अफ़वाहों का, विध्वंस, बर्बादी और धोखाधड़ी का भी कि 'धर्म खतरे में है, देश खतरे में है, मंदिर बचाओ, लड़कियों की इज्जत बचाओ, उसे बचाना होगा, जो उसके लिए नहीं लड़ता, वह कायर है।'

धर्म के नाम पर प्रचारित ऐसी विकृत धारणाओं को ललकारते हुए लेखिका ने एक समारोह में प्रश्न उठाया था कि - 'असली धर्म क्या है ? मंदिर बनाना? साम्प्रदायिक कलह, धार्मिक उन्माद फैलाना? या समाज से गरीबी, भुखमरी, अशिक्षा और बेरोज़गारी मिटाना ?''[5]

गीतांजलि श्री इस बात को लेकर सचेत हैं कि भारतीय जनता के लगभग सौ करोड़ लोग जब गरीबी, बेरोज़गारी और मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित हैं तब भारत का राजनीतिक नेतृत्व मंदिर-मस्जिद के निर्माण या विध्वंस जैसे अप्रासंगिक विवाद में जनता को उलझा कर उसे असली मुद्दों से दूर धकेल रहा है। इसीलिए धार्मिक उन्माद के बढ़ते जाने से देश की धर्मनिरपेक्षता भी प्रभावहीन होती जा रही है। यह भारतीय राजनीतिक नेतृत्व की विडम्बना ही मानी जायेगी कि प्रशासन से लेकर नेतृत्व की नीतियों तक के यूरोपीय मिसाल को भारत एक राष्ट्र-राज्य के रूप में अपनाता आया है लेकिन धर्म सत्ता (चर्च) और राजसत्ता (स्टेट) के बीच उसके संघर्ष के पाँच सौ से भी ज्यादा लम्बे इतिहास से वह कुछ सीख नहीं ले पाया है।

धर्म की गलत व्याख्या के साथ ही गीतांजलि श्री इतिहास की भी गलत व्याख्या पर विचार करती हैं। इतिहास की अध्येत्री होने के नाते लेखिका इस बात पर गौर करती हैं कि शिक्षण संस्थानों में इतिहास को जिस हिन्दू साम्प्रदायिक पूर्वाग्रह के तहत पढ़ाया गया, वह दरअसल साम्प्रदायिक राजनीति के तहत चलाई गयी रणनीति ही थी- युवा पीढ़ी के बीच अलगाव पैदा करने के लिए, उसके भीतर 'दूसरे' कौम के प्रति शक, नफ़रत और हीन दृष्टि विकसित करने के लिए। इस सन्दर्भ में उपन्यास के प्रस्तुत अंश पर गौर करना लाज़मी है जहाँ समाजशास्त्र के प्रोफेसर के नाते, हनीफ़ अपने छात्रों से पूछता है-'...पूछते क्यों नहीं कि जहाँ तीनों बातों की गुत्थम-गुत्थी थी-परस्पर ज़ुल्म, परस्पर मेल, और तीसरा कि अलग-अलग मगर शान्ति से दूर रहना, वहां सिर्फ़ ज़ुल्म और सिर्फ़ मुसलमानों का ही, क्यों हमारे कानों में डाला जा रहा है? सत्ता की हो? में राजनीतिज्ञ बेईमानी करते हैं, करेंगे ही, मगर क्यों हम-तुम उनके झांसे में आ रहे हैं...।'[6] गीतांजलि श्री ऐतिहासिक तथ्यों पर पुनर्विचार करने की मांग करती हैं। शरद के ज़रिये वे अपनी समन्वयवादी दृष्टि का परिचय देती हैं-'...हम यह जानते हैं कि झगड़ा भी था, मुहब्बत भी थी, चाहे उनकी तफसील ना भी पता हो। तो क्यों नहीं मुहब्बत की बातें सामने रखें?...झगड़े थे तो उन्हें मानेंगे, पर उन्हें बढ़ाएं क्यों? ख़त्म क्यों ना करें?'[7] लेखिका इतिहास के इन पहलुओं को आत्मसात करने की बात करती हैं जिससे समाज में एकात्मता और आत्मीयता बढ़े, ना कि उन तत्वों को दोहराना जिससे समाज का पतन हो। वे ऐतिहासिक

साक्ष्यों को पूर्वाग्रहों के आधार पर पेश करने की संकीर्ण मानसिकता का पुरज़ोर विरोध करती हैं। वे साम्प्रदायिक राजनीति के अलगाववादी चरित्र का पर्दाफ़ाश करती हुई उन धार्मिक नेताओं के भाषणों, उनकी पर्चेबाज़ी और उनके द्वारा मीडीया को अपने स्वार्थ में मैनिप्युलेट करने की तिकड़मबाज़ी को भी रेखांकित करती चलती हैं जिनके तहत समाज में सहिष्णुता का बाँध जान-बूझकर तोड़ा जाता है। वे उपन्यास में टी.वी, अखबार, लाउडस्पीकर और कैसेटों के इस्तेमाल के पीछे की राजनीति की तरफ़ भी इशारा करती हैं। टी.वी. पर 'बलात्कार पर स्पेशल रिपोर्ट', अखबार में विवादित स्थल पर मंदिर होने का दावा, कैसेटों में मुसलमानों को निशाने पर रखकर उनको धमकाना आदि साम्प्रदायिक तनाव को और ज्यादा बढ़ाने के नायाब तरीके अपनाए जाते हैं।

भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था के 'उदारवादी' चरित्र पर लेखिका तंज़ कसती हैं कि लोकतंत्र हर किसी को स्वतंत्र रूप से आचरण करने की छूट देता है, चाहे वह दूसरे को हानि ही क्यों ना पहुंचाता हो। वह 'अराजकता फैलाने का हथियार बन गया है।' इसीलिए मठ के लाउडस्पीकर से आते भावनात्मक प्रवचनों का नशा जब यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर नन्दू पर छाता है, तो वह भी कहने से नहीं चूकता-'मठवालों के डेमोक्रेटिक हक़ नहीं है क्या?'[8] भारतीय लोकतंत्र की खामियों को तलाशती हुईं गीतांजलि श्री अपने उपन्यास में सबसे अहम् तत्व-भारत की धर्मनिरपेक्षता पर सवालिया निशान लगाती हैं। कांग्रेस द्वारा मुस्लिम समुदाय के तुष्टीकरण पर टिप्पणी करती हुईं वे लिखती हैं कि मुस्लिम समाज के 'पिछड़ेपन' के पीछे कारण जहाँ एक तरफ़ उनके धर्मावलम्बी होने के कारण है, वहीं दूसरी ओर उनके पिछड़ेपन को मुद्दा बनाकर सरकार कभी उनके विकास और प्रगति की बात नहीं करती बल्कि उन्हें 'मायनोरिटी' के नाम पर हमेशा 'अपीज़' करने की नीति अपनाती रही है-'बहुत हो गयीं उनके पिछड़ेपन की बातें। सरकार उन्हें गलत शै भी खूब देती है।'...उनके साम्प्रदायिक तत्वों को ही उभारती है, दूसरी ज़िम्मेदारियों से, जीवन की मूल ज़रूरतों को पूरा करने की कठिन ज़िम्मेदारी से, उन्हें अलग पहचान का लोलीपोप पकड़ा के बरी हो जाती है।'[9]

लेखिका के अनुसार बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक की राजनीति में कांग्रेस सरकार मुसलमानों को वोट बैंक के रूप में इस्तेमाल करती आई है। यही वह मूल कारण है कि बहुसंख्यक हिन्दुओं में मुसलमानों को दी जाने वाली रियायतों को लेकर कुंठा भर गयी है। इसी के चलते उनके प्रति घृणा भी पैदा होती गयी है। बहुसंख्यक हिन्दू और अल्पसंख्यक मुसलमान के बीच साम्प्रदायिक तनाव के अलग-अलग स्वरूप का उल्लेख श्रुति और दद्दू के निम्न संवाद में मिलता है-

'मुसलमानों में साम्प्रदायिकता भरी है।
हिन्दुओं में भी भरी है।
मगर एक इनसेक्यूरिटी और डर से पैदा हुई है, दूसरी ताकत और अहंकार से।
दोनों के चिल्लाने का फ़र्क देखना होगा। दोनों की गलतफ़हमियों से जूझना होगा।'[10]

इसी के आधार पर गीतांजलि श्री ने समाज के बुद्धिजीवी 'सेक्युलर' वर्ग को भी कठघरे में घसीटा है जिनकी समय आने पर 'मायनोरिटी' और 'मेजोरिटी' नामक ग्रंथि उभरकर सामने आती है। शरद और हनीफ़ साम्प्रदायिकता विरोधी हैं लेकिन ऐसा क्यों होता है कि साम्प्रदायिकता का विरोध सेक्युलर वर्ग द्वारा तभी होता है जब दंगों का माहौल खड़ा हो चुका होता है? शरद और हनीफ़ साम्प्रदायिकता के विरोध के प्रति अपनी ही निष्क्रियता को इंगित करते हुए सवाल उठाते हैं कि 'एकदम से तो यह इंडस्ट्री नहीं बन गयी। हम कहाँ थे जब यह बन रही थी?' इस तरह लेखिका समाज में पढ़े-लिखे बुद्धिजीवी के उन खोखले विचारों और नक्कारेपन को अड़े हाथों लेती हैं जो बहसों और मंचों पर ही सेक्युलरिज्म, सहिष्णुता, सामाजिक समता आदि की दुहाई देते हैं, पर उन्हीं मूल्यों को जब व्यवहार में लाने की बारी आती है तो वे विफल हो जाते हैं। क्यों कथा के अंत तक आते-आते ट्रेन में बलात्कृत महिलाओं की खबर पाकर शरद सोचता है-'ये औरतें हिन्दू ना हों'? क्यों शरद के मन में मुसलमान स्त्रियों के बलात्कार का विचार डर, दु:ख या आक्रोश पैदा नहीं करता? उसका एक और कथन काबिल-ए-गौर है-'कोई मुकाबला नहीं, उनके हमारे संगठन में...'। वास्तव में शरद के ये विचार उसके दबे साम्प्रदायिक चरित्र का उभार ही है। 'उनके और हमारे' जैसे अलगाववादी विचार के आते ही इंसान अपनी मज़हबी पहचान का परिचय देने लगता है।

दूसरी तरफ हनीफ़ मुसलमान होने के कारण चारों ओर से असुरक्षा भाव से ग्रसित है। हर किसी की बात को शक की नज़र से तौलता है। हेड के पद के लिए अपनी नियुक्ति को स्वीकार नहीं कर पाता। उसके अन्दर यह ग्रंथि घर कर जाती है कि वह अल्पसंख्यक है और जहाँ बहुमत बहुसंख्यकों की होगी वहां उसकी नहीं चल सकती। वह कहता है-'मेजोरिटी का ही डर है हेडसाहब।' युवा-वर्ग के बीच साम्प्रदायिक नफ़रत फैलाने का नतीजा यह होता है कि देश की राजधानी में नए छात्र दल, 'अखिल भारतीय वीर दल' का गठन होता है जिसकी शाखा यूनिवर्सिटी में भी खुल जाती

है। इसके परिणाम में हिन्दू छात्र अपने प्रिय प्रोफेसर हनीफ़ को भी घृणा, शक और अविश्वास की नज़र से देखने लगते हैं। ये ही छात्र अंत में हनीफ़ के खून के प्यासे हो जाते हैं और अपने उन्माद में ना श्रुति को बक्शते हैं और ना दद्दू को। मठ के प्रवचनों और विकृत छात्र राजनीति विश्वविद्यालय के जनतांत्रिक माहौल को किस प्रकार दूषित करते हैं, उस पर रोहिणी अग्रवाल की यह टिप्पणी गौरतलब है-'आश्चर्य नहीं कि युवा पीढ़ी का दिशा निर्देश करने वालों की ये भावनात्मक सहमतियाँ विद्यार्थियों के राजनीतिक एजेंडे को स्पष्ट कर देती हैं जिसके तहत कल तक के सर्वाधिक लोकप्रिय और काबिल प्रोफेसर हनीफ़ के 'दीवाने' छात्र आज उसके सेक्शन में पढ़ने को तैयार नहीं। यही राजनीति फल-फूलकर मदरसे जैसी धर्म-शिक्षा संस्थाओं को प्रोत्साहन देकर अपरिपक्व बाल-मस्तिष्क पर शिकंजा कसना चाहती है। तब हनीफ़ का यह सवाल बेहद मानीखेज हो जाता है कि 'जब यह जूझने का दौर पूरा होगा, तो क्या शरद मठ में होगा और मैं अंजुमन-ए-इस्लाम में?' [11]

इस तरह गीतांजलि श्री दोनों बुद्धिजीवियों के विचारों पर मंडराते 'फंडामेंटलिस्ट' बादलों को दर्शाती हैं और साथ ही हमें सोचने पर मजबूर करती हैं कि अगर बुद्धिजीवी वर्ग सारी सच्चाइयों से वाकिफ़ होने के बावजूद, इतिहास की आलोचना करने के बाद भी कट्टर साम्प्रदायिक विचारों की चपेट में आ सकता है तो कापड़िया जैसा हिन्दू पूर्वाग्रही पुलिसकर्मी, छात्र-समुदाय और अनपढ़ समाज ऐसी स्थिति में खुद को कहाँ पाएँगे?

लेखिका उपन्यास के अंत तक आते-आते मानसिक स्तर पर साम्प्रदायिक संघर्ष की परिणति दर्शाती है लेकिन उनके आशावादी और समन्वयवादी एप्रोच की झलक हमें उनके निम्न वाक्यों में मिलती है-' हमारी नज़र बीते युग पर ही क्यों अड़ी है? क्यों हम आज और आने वाले कल के प्रति इतने ना-उम्मीद हैं कि पीछे देखे जा रहे और उसमें भी केवल अलगाव के प्रतीकों को ढूंढ रहे हैं? अरे क्यों नहीं करते नज़रूल इस्लाम की बात, अमीर खुसरो की बात?...क्यों नहीं देखते भाषा का विकास, जब अरबी-फ़ारसी संस्कृत और रोज़मर्रा की बोली के शब्द मिलकर भाषा बना रहे थे?...वली, मीर, सौदा की ज़बान देखो...।' [12]

वस्तुत: 'हमारा शहर उस बरस' जैसी औपन्यासिक कृति एक ऐसे प्लेटफोर्म की तरह प्रस्तुत है जिसके तल पर गीतांजलि श्री ने साम्प्रदायिक और फ़ासीवादी राजनीति का विरोध कर अपनी राजनीतिक चेतना का प्रमाण दिया है और साथ ही इन विध्वंसकारी ताकतों से जूझने के लिए ज़मीन तैयार की है।

संदर्भ सूची-

1) यादव राजेन्द्र, सदी का औपन्यासिक अंत II, हंस, अगस्त 1998,पृ.5
2) श्री गीतांजलि, 1998, हमारा शहर उस बरस, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ. 10
3) वही, फ्लाप से उधृत
4) वही, पृ. 19
5) कथाक्रम पत्रिका द्वारा सन 2002 में आयोजित दो दिवसीय समारोह में 'साम्प्रदायिकता की चुनौतियाँ और कथा साहित्य के सरोकार' विषय पर व्याख्यान से उधृत
6) श्री गीतांजलि, 1998, हमारा शहर उस बरस, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ. 29
7) वही, पृ. 190
8) वही, पृ. 105
9) वही, पृ. 111
10) वही, , पृ. 160
11) अग्रवाल रोहिणी, 2011, स्त्री लेखन: स्वप्न और संकल्प, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, , पृ. 251
12) श्री गीतांजलि, 1998, हमारा शहर उस बरस, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ.103

सहायक ग्रन्थ

क) हिंदी

1) मुरूमकर दत्तात्रेय, 2012, हिंदी साहित्य में वर्णित साम्प्रदायिकता का स्वरूप, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली.
2) चंद्र बिपन, 2000, (लेख) साम्प्रदायिकता और उसका समाधान, आधुनिक भारत में विचारधारा और राजनीति, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटरस, नयी दिल्ली
3) पुनियानी राम, 2005, अनु. रामकिशन गुप्ता, साम्प्रदायिकता: तथ्य एवं मिथक, वाणी, नयी दिल्ली
4) चतुर्वेदी जगदीश्वर, 2005, साम्प्रदायिकता, आतंकवाद और जनमाध्यम, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटरस, नयी दिल्ली
5) जोशी प्रभाष, 2003, हिन्दू होने का धर्म, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
6) कोसंबी धर्मानंद, 1948, भारतीय संस्कृति और अहिंसा, नाथूराम प्रेमी,हेमचन्द्र मोदी, पुस्तक माला, हीराबाग, गिरिगओं, मुंबई
7) गुप्ता रमणिका, 2004, साम्प्रदायिकता के बदलते चेहरे, वाणी, नयी दिल्ली
8) इस्लाम शमशुल, 2008, सावरकर: मिथक और सच, वाणी, नयी दिल्ली
9) कपूर मस्तराम, 1999, साम्प्रदायिक दंगों का समाजशास्त्र, समाजवादी साहित्य संस्थान
10) इस्लाम शमशुल, 1923, हिंदुत्व, नागपुर

ख) अंग्रेजी

1) Thapar Romila, 2014, Communalism: A Historical Perspective, The Past As Present, Aleph Book Company, New Delhi
2) Sarkar Sumit, 1996, Modern India, MacMilan, Madras
3) Golwalkar, 1939, We Or Our Nationhood Defined, Bharat Publication, Nagpur
4) Ambedkar, B.R., 1946, Pakistan And Partition Of India, Mumbai
5) Ed. Chatterjee Partha, 1998, State And Politics In India, Oxford University Press, New Delhi

पत्रिकाएँ-

1) हंस, मई 2002
2) हंस, अप्रैल 2003
3) हंस, अगस्त 2003

ISSN 2278 - 0327

किशोरावस्था की छात्राओं की समस्याओं पर उनके विद्यालयीन वातावरण के प्रभाव का अध्ययन

डॉ. माधवी पांडे
प्राध्यापक, गृह विज्ञान संकाय,
मानसरोवर ग्लोबल विश्वविद्यालय, सीहोर (म.प्र.)

कुसुम सिंह
शोधार्थी, गृह विज्ञान संकाय
मानसरोवर ग्लोबल विश्वविद्यालय, सीहोर (म.प्र.)

प्रस्तुत शोध पत्र में किशोरावस्था की छात्राओं की समस्याओं पर उनके विद्यालयीन वातावरण के प्रभाव का अध्ययन किया गया है। शोधकर्ता ने अनुसंधान हेतु न्यादर्श के रूप में किशोरावस्था की 100 छात्राओं का चयन किया है जो माध्यमिक विद्यालयों की कक्षा 9वीं में अध्ययनरत हैं। इन चयनित छात्राओं पर स्वनिर्मित किशोरावस्था समस्या मापनी एवं डॉ. अनीता सोनी व डॉ. अशोक शर्मा की विद्यालयीन परिवेश (वातावरण) मापनी का प्रशासन किया गया। क्रांतिक अनुपात परीक्षण के द्वारा आंकड़ों का विश्लेषण किया गया। शोधकार्य से प्राप्त परिणामों के अनुसार किशोरावस्था की छात्राओं की संवेगात्मक, सामाजिक, व्यावसायिक, आर्थिक समस्याओं पर विद्यालयीन वातावरण (उच्च व निम्न) का सार्थक प्रभाव पाया गया तथा निम्न विद्यालयीन वातावरण वाली किशोरावस्था की छात्राओं में यह सभी समस्याएं, उच्च विद्यालयीन वातावरण वाली किशोरावस्था की छात्राओं से उच्च पाई गयीं। किशोरावस्था की छात्राओं की व्यक्तिगत व स्वास्थ्य, पारिवारिक समस्याओं पर विद्यालयीन वातावरण (उच्च व निम्न) का सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया।

मुख्य शब्दः किशोरावस्था, छात्राओं की समस्याएं, विद्यालयीन वातावरण

किसी भी मनुष्य का भविष्य उसके व्यक्तित्व पर निर्भर करता है और मानव व्यक्तित्व का विकास उसके वंशानुक्रम व वातावरण की अंत:क्रिया पर निर्भर करता है और इन्हीं को व्यक्तित्व का मुख्य निर्धारक भी माना गया है। वंशानुक्रम पर व्यक्ति का नियंत्रण नहीं होता है परंतु अच्छा वातावरण सकारात्मक व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक होता है। वर्तमान समय में विज्ञान की प्रगति व जनसंचार साधनों के प्रभाव से कोई भी अछूता नहीं है, जिसके सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रभाव बालिकाओं पर स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। बालिका का जन्म परिवार में होता है। पारिवारिक जीवन का प्रभाव बालिका के व्यक्तित्व के विकास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। व्यक्तित्व निर्माण में दूसरा महत्वपूर्ण प्रभाव विद्यालय का पड़ता है, क्योंकि बालिकाओं की औपचारिक शिक्षा का आरम्भ विद्यालय में ही होता है। विद्यालय के वातावरण, अध्यापकों का व्यवहार, साथी विद्यार्थियों का व्यवहार, आपसी सहयोग की भावना, पुस्तकालय, मनोरंजन तथा खेल के साधन बालिकाओं के व्यक्तित्व विकास में सहायक होते हैं। वास्तव में बालिका के विकास व व्यक्तित्व के दिशा निर्धारण की भूमिका परिवार व विद्यालय द्वारा ही संपादित कि जाती है व उसके भविष्य का निर्माण इन्ही संस्थानों द्वारा होता है। अत: प्रस्तुत शोधकार्य में किशोरावस्था की छात्राओं की समस्याओं पर उनके विद्यालयीन वातावरण के प्रभाव का अध्ययन करना अत्यंत ही सामयिक प्रतीत होता है।

प्रस्तुत शोध से संबंधित पूर्व में भी कुछ शोध कार्य किये गये हैं जैसे – **दास, एन.** (1982) ने अपने अध्ययन के निष्कर्षत: पाया कि विद्यालय का असंतोषजनक वातावरण, विद्यालय में निम्न समायोजन, विद्यालयीन कार्यक्रमों में भागीदारी, सामाजिक स्थिति, अध्यापकों और छात्रों के समुदाय आदि का किशोरों की व्यवहारगत समस्याओं में योगदान पाया गया। **रावल, जी.एल.** (1984) ने अपने अध्ययन के निष्कर्षत: पाया कि विद्यालयीन

परिवेश संवेगात्मक विचलित किशोरों के पूर्ण समायोजन को प्रभावित करता है। **मंजुबनी** (1990) ने अपने अध्ययन में पाया की पारिवारिक एवं विद्यालयीन वातावरण का मानसिक स्वास्थ्य के निर्धारण में सार्थक योगदान था। **प्रधान, सी.** (1991) के अध्ययन के निष्कर्षत: ज्ञात हुआ कि विद्यालयीन संस्थागत वातावरण विद्यार्थियों के गृह, सामाजिक, स्वास्थ्य, संवेगात्मक तथा विद्यालयीन समायोजन को प्रभावित नहीं करता है। **विद्या, प्रतिमा** (2006) ने अपने अध्ययन में पाया कि विद्यार्थियों में तनाव का 40 प्रतिशत कारण उनके विद्यालय हैं तथा किशोर-किशोरियों के समायोजन में विद्यालय की महत्वपूर्ण भूमिका है। **श्रीवैद्य, वी.; खाडी, पी.बी. एवं भटट्, ए.आर.एस.** (2011) के अध्ययन के निष्कर्षत: ज्ञात हुआ कि विभिन्न प्रकार के विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की विभिन्न समस्याओं में कोई अन्तर नहीं पाया गया। **पालीवाल एवं अन्य** (2006) ने अपने अध्ययन में पाया कि विद्यालयीन समायोजन तथा विद्यालयीन वातावरण में सार्थक सह संबंध पाया गया। **गलफट, संगीता; शर्मा, आलोक एवं बाजपेयी, आशीष** (2015) ने अपने अध्ययन में पाया था कि निम्न विद्यालयीन परिवेश वाले किशोरावस्था के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों में, उच्च विद्यालयीन परिवेश वाले छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की तुलना में अधिक संवेगात्मक, सामाजिक, व्यावसायिक समस्याएं पाई गईं थीं। **जोसफ, पी.पी. एवं साहू, राकेश** (2016) के अध्ययन के निष्कर्षत: ज्ञात हुआ कि सहशिक्षा विद्यालयों एवं कन्या विद्यालयों में अध्ययनरत् किशोरावस्था की छात्राओं के गृह, स्वास्थ्य, संवेगात्मक एवं समग्र समायोजन में सार्थक अंतर नहीं पाया गया जबकि सामाजिक समायोजन में सार्थक अंतर पाया गया। **पाठक, स्वाती एवं बाकलीवाल, ममता** (2017) के अध्ययन के निष्कर्षत: ज्ञात हुआ कि किशोरावस्था की छात्राओं की संवेगात्मक/सामाजिक/व्यावसायिक समस्याओं पर विद्यालयीन परिवेश का सार्थक प्रभाव पाया गया तथा निम्न विद्यालयीन परिवेश वाली छात्राओं में, उच्च विद्यालयीन परिवेश वाली छात्राओं की तुलना में अधिक संवेगात्मक/सामाजिक/व्यावसायिक समस्याएं पाई गयीं।

इन अध्ययनों से शोधकर्ता ने निष्कर्ष निकाला कि किशोरावस्था की छात्राओं की समस्याओं पर उनके विद्यालयीन वातावरण के प्रभाव का अध्ययन आवश्यक है, जिससे उनकी समस्याओं को जानकर उन्हें दूर करने हेतु उनका उचित मार्गदर्शन किया जा सके।

उद्देश्य:-

किशोरावस्था की छात्राओं की विभिन्न समस्याओं पर उनके विद्यालयीन वातावरण के प्रभाव का अध्ययन करना।

परिकल्पनाएं:-

किशोरावस्था की छात्राओं की विभिन्न समस्याओं (संवेगात्मक, सामाजिक, व्यावसायिक, व्यक्तिगत व स्वास्थ्य, पारिवारिक, आर्थिक) पर उनके विद्यालयीन वातावरण का सार्थक प्रभाव नहीं पाया जायेगा।

उपकरण:-

1. किशोरावस्था की छात्राओं की समस्याओं के मापन हेतु स्वनिर्मित किशोरावस्था समस्या मापनी का उपयोग किया जाएगा।
2. विद्यालयीन वातावरण के मापन हेतु डॉ. अनीता सोनी एवं डॉ. अशोक शर्मा की विद्यालयीन परिवेश (वातावरण) मापनी का उपयोग किया जायेगा।

विधि:-

इस शोधकार्य हेतु सर्वप्रथम भोपाल जिले के 04 शासकीय माध्यमिक विद्यालयों का चयन किया गया तथा इन विद्यालयों की कक्षा नवमीं में अध्ययनरत् 100 छात्राओं का चयन दैव निदर्शन विधि द्वारा करके उन पर सामूहिक रूप से स्वनिर्मित 'किशोरावस्था समस्या मापनी' एवं डॉ. अनीता सोनी एवं डॉ. अशोक शर्मा की विद्यालयीन परिवेश मापनी का प्रशासन किया गया एवं किशोरावस्था समस्या मापनी के सभी 6 क्षेत्रों का अलग अलग फलांकन किया गया तथा विद्यालयीन परिवेश मापनी के प्राप्तांकों के आधार पर छात्राओं को उच्च व निम्न समूह में विभाजित कर मॉस्टर शीट तैयार की गई। मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रांतिक अनुपात परीक्षण के द्वारा आंकड़ों का विश्लेषण किया गया प्राप्त परिणामों के आधार पर निष्कर्ष प्राप्त किये गये।

परिणामों का विश्लेषण:-

परिकल्पना: किशोरावस्था की छात्राओं की विभिन्न समस्याओं

(संवेगात्मक, सामाजिक, व्यावसायिक, व्यक्तिगत व स्वास्थ्य, पारिवारिक, आर्थिक) पर उनके विद्यालयीन वातावरण का सार्थक प्रभाव नहीं पाया जायेगा।

तालिका

किशोरावस्था की छात्राओं की विभिन्न समस्याओं पर उनके विद्यालयीन वातावरण के प्रभाव संबंधी तुलनात्मक परिणाम

किशोरावस्था की समस्याएं	विद्यालयीन वातावरण	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात मान	'पी' मान
संवेगात्मक	उच्च	53	8.28	3.24	4.25	< 0.01
	निम्न	47	10.96	3.05		
सामाजिक	उच्च	53	7.28	2.72	2.38	< 0.05
	निम्न	47	8.53	2.53		
व्यावसायिक	उच्च	53	6.32	2.52	3.40	< 0.01
	निम्न	47	8.04	2.53		
व्यक्तिगत व स्वास्थ्य	उच्च	53	10.89	3.03	0.42	> 0.05
	निम्न	47	11.17	3.66		
पारिवारिक	उच्च	53	7.92	2.27	0.72	> 0.05
	निम्न	47	8.28	2.57		
आर्थिक	उच्च	53	7.49	2.12	2.03	< 0.05
	निम्न	47	8.43	2.47		

स्वतंत्रता के अंश – 98

0.05, 0.01 स्तर के लिये निधार्रित न्यूनतम सारणीय मान – 1.98, 2.63

उपरोक्त तालिका का अध्ययन करने पर पाया गया कि उच्च व निम्न विद्यालयीन वातावरण वाली किशोरावस्था की छात्राओं की संवेगात्मक, सामाजिक, व्यावसायिक, आर्थिक समस्याओं के लिए प्राप्त क्रांतिक अनुपात के मान क्रमश: 4.25, 2.38, 3.40, 2.03 हैं जो कि स्वतंत्रता के अंश 98 पर सार्थकता के 0.01, 0.05, 0.01, 0.05 स्तर पर निधार्रित न्यूनतम सारणीय मान क्रमश: 2.63, 1.98, 2.63, 1.98 से अधिक हैं जो सार्थक हैं जबकि उच्च व निम्न विद्यालयीन वातावरण वाली किशोरावस्था की छात्राओं की व्यक्तिगत व स्वास्थ्य, पारिवारिक समस्याओं के लिए प्राप्त क्रांतिक अनुपात के मान क्रमश: 0.42, 0.72 हैं जो कि स्वतंत्रता के अंश 98 पर सार्थकता के 0.05 स्तर पर निधार्रित न्यूनतम सारणीय मान 1.98 से कम हैं जो असार्थक हैं।

अत: कहा जा सकता है उच्च व निम्न विद्यालयीन वातावरण वाली किशोरावस्था की छात्राओं की संवेगात्मक, सामाजिक, व्यावसायिक, आर्थिक समस्याओं में सार्थक अंतर पाया गया तथा निम्न विद्यालयीन वातावरण वाली किशोरावस्था की छात्राओं में यह सभी समस्याएं, उच्च विद्यालयीन वातावरण वाली किशोरावस्था की छात्राओं से उच्च पाई गयीं जबकि उच्च व निम्न विद्यालयीन वातावरण वाली किशोरावस्था की छात्राओं की व्यक्तिगत व स्वास्थ्य, पारिवारिक समस्याओं में सार्थक अंतर नहीं पाया गया। अर्थात् किशोरावस्था की छात्राओं की संवेगात्मक, सामाजिक, व्यावसायिक, आर्थिक समस्याओं पर विद्यालयीन वातावरण (उच्च व निम्न) का सार्थक प्रभाव पाया गया जबकि व्यक्तिगत व स्वास्थ्य, पारिवारिक समस्याओं पर विद्यालयीन वातावरण (उच्च व निम्न) का सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया।

अत: इस आधार पर शून्य परिकल्पना ''किशोरावस्था की छात्राओं की विभिन्न समस्याओं (संवेगात्मक, सामाजिक, व्यावसायिक, व्यक्तिगत व स्वास्थ्य, पारिवारिक, आर्थिक) पर उनके विद्यालयीन वातावरण का सार्थक प्रभाव नहीं पाया जायेगा'', आंशिकत: अस्वीकृत होती है।

निष्कर्ष–

किशोरावस्था की छात्राओं की संवेगात्मक, सामाजिक, व्यावसायिक, आर्थिक समस्याओं पर विद्यालयीन वातावरण (उच्च व निम्न) का सार्थक प्रभाव पाया गया तथा निम्न विद्यालयीन वातावरण वाली किशोरावस्था की छात्राओं में यह सभी समस्याएं, उच्च विद्यालयीन वातावरण वाली किशोरावस्था की छात्राओं से उच्च पाई गयीं। किशोरावस्था की छात्राओं की व्यक्तिगत व स्वास्थ्य, पारिवारिक समस्याओं पर विद्यालयीन वातावरण (उच्च व निम्न) का सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया।

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. भटनागर, सुरेश (2007): शिक्षा मनोविज्ञान, आर. लाल बुक डिपो, निकट गर्वनमेन्ट कॉलेज, मेरठ, नवीनतम संस्करण, पृष्ठ क्रमांक 190
2. चौबे, डॉ. सरयू प्रसाद (1966): मनोविज्ञान एवं शिक्षा, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन, अस्पताल मार्ग, आगरा, आठवां संस्करण
3. डेविड, अलका (1999): किशोरावस्था विवाह एवं पारिवारिक जीवन, शिवा प्रकाशन, इंदौर, पृष्ठ क्रमांक 163–166
4. हकीम, एम.ए.; अस्थाना, विपिन एवं जायसवाल, सीताराम (1991): व्यक्तित्व मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, द्वितीय संस्करण
5. हरलॉक, एलिजाबेथ बी. (2003): विकास मनोविज्ञान,

हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

6. गुप्ता, एस. पी. (2005): सांख्यकीय विधियां, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
7. वालिया, जे.एस. (2005): शिक्षा मनोविज्ञान की बुनियादें, पाल पब्लिशर्स, जालंधर
8. गलफट, संगीता; शर्मा, आलोक एवं बाजपेयी, आशीष (2015) ''किशोरावस्था के विद्यार्थियों की समस्याओं पर विद्यालयीन परिवेश के प्रभाव का अध्ययन'', सामाजिक शोध योजना, वाल्यूम-III, अंक-V अक्टूबर (2015), पेज नं. 18-23
9. पाठक, स्वाती एवं बाकलीवाल, ममता (2017) ''किशोरावस्था की छात्राओं की समस्याओं पर विद्यालयीन परिवेश के प्रभाव का अध्ययन'', स्वदेशी रिसर्च फाउन्डेशन, वॉल्युम 4, दिसम्बर 2017, पेज नम्बर 144-148
10. रावल, जी.एल. (1984) 'संवेगात्मक रूप से विचलित किशोरों के व्यक्तित्व समायोजन का पारिवारिक एवं विद्यालयीन वातावरण के संबंध का अध्ययन', फोर्थ सर्वे ऑफएजूकेशन रिसर्च, वाल्यूम प्ए पेज.नं. 422-423
11. **Das, N.M (1982)** ''Some Behaviour Problems of the Secondary School Students of the District of Burdwan and Their Causes'', *Ph.D. Edu., In Third Survey of Research in Education. (1978-83), Pg. No. - 121.*
12. **Joseph, P.P. and Sahu, Rakesh (2016)** "Comparative study of adjustment of adolescent girls of co-educational school girl and girls schools of urban area", Education Times, Volume 1, Number-1, Jan.-Dec. 2016, Page No. 166-172
13. **Manjuvani, E. (1990)** ''Influence of home and school environment on the mental health status of children'', *Ph.D., Home Sc., Sri Venkateswara University, In Fifth Survey of Educational Research (1988-92), Vol. - II, Pg. No. 968.*
14. **Pradhan, C. (1991)** ''Effect of school organisational climate on the creativity, adjustment and academic achievement of secondary school students of Orissa'', *Ph.D. Edu., Utkal Univ., In Fifth Survey of Educational Research (1988-92), Vol. - II, Pg. No. 1840.*
15. **Srivaidhya, V., Khadi, P.B. And Bhat, A.R.S. (2011)** ''Adjustment problems of student's of navodhaya, central and state schools, A.P.R.C'', *Indian Psychological review, Vol. 76, No. 2, Year 2011, Pg. 93-98.*

ISSN 2278 - 0327

आपस्तम्बधर्मसूत्र में स्त्रियों के अधिकार

डॉ. सरिता शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
कमला नेहरू महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय, अगस्त क्रान्ति मार्ग, दिल्ली-110049

1. भूमिका

आपस्तम्बधर्मसूत्र कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा से सम्बन्धित है। इसकी रचना गौतम एवं बौधायन धर्मसूत्रों के उपरान्त हुई। महामहोपाध्याय पी.वी. काणे के अनुसार 600-300 ई.पू. के मध्य आपस्तम्बधर्मसूत्र की रचना हुई।

विद्वानों का बहुमत है कि आपस्तम्ब दाक्षिणात्य ब्राह्मण थे।[1]

यह धर्मसूत्र दो प्रश्नों में विभाजित है। दोनों प्रश्नों को 11 पटलों में तथा इन्हें पुन: कण्डिकाओं में बाँटा गया है। प्रथम प्रश्न में 32 कण्डिकाएँ तथा द्वितीय प्रश्न में 29 कण्डिकाएँ हैं।

वसिष्ठ, विष्णु तथा शंखलिखित धर्मसूत्रों को डॉ. पी.वी. काणे ने ई.पू. 300-100 ई. के मध्य रचित माना है, अत: यह धर्मसूत्र आपस्तम्ब के पश्चात् लिखे गए।

2. विषय-चयन का औचित्य

आपस्तम्बधर्मसूत्र का प्रथम सूत्र इस विषय की आधारशिला है। यह सूत्र है -

''*अथातस्सामयाचारिकान् धर्मान् व्याख्यास्याम:।।*'' 1/1/1/1

अर्थात् अब हम सामयाचारिक धर्मों की चर्चा करेंगे। इस धर्मसूत्र का प्रयोज्य 'अनेक धर्मों' की आचारपरक व्याख्या जो कि श्रुति एवं स्मृति सम्मत है। इस धर्म का विभिन्न वर्ण, लिंग तथा आश्रमों में भिन्न-भिन्न स्वरूप हो सकता है।

स्त्रियों के अधिकार के विषय में यहाँ विविध प्रकार के रोचक, तत्कालीन समाज के सूचक एवं वर्तमान के लिए उपयोगी सूत्र हैं।

3. आपस्तम्बधर्मसूत्र में वर्णित स्त्रियों के अधिकार

3.1 सामाजिक अधिकार

3.1.1 शिक्षा

आपस्तम्ब ने स्त्रियों के लिए उपनयन संस्कार का उल्लेख नहीं किया, अपितु ब्रह्मचारियों को स्त्रियों से दूर रहने तथा उनके विषय में न सोचने के लिए कहा है।[2]

अत: स्पष्ट हैं कि उस काल में शिक्षा संस्थानों में छात्राएं उपवीत होने तथा अध्ययन की अधिकारिणी नहीं थीं। सामान्यत: गुरु-पत्नियाँ ही गुरुकुलों में रहने वाली स्त्री जातिकाएं होती थीं।

3.1.2 सुरक्षा का अधिकार

3.1.2.1 भ्रूण हत्या से रक्षा का अधिकार -

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में निर्देश है कि आत्रेयी[3] की हत्या करने वाले[4] तथा गर्भस्थ तथा भ्रूण की हत्या करने वाले5 को अभिशस्त कहा जाए। इस अभिशस्त व्यक्ति को प्रायश्चित्त के लिए निम्नलिखित उपाय करने होंगे -

- वन में जाकर कुटिया बनकर रहना।[6]
- मौन रहना।[6]
- कुण्ड पर मनुष्य की खोपड़ी रखना।[6]
- नाभि से लेकर घुटने तक अपने शरीर को[6] सन के वस्त्र से चौथाई भाग ढकना।
- ग्राम प्रवेश के समय दो मार्गों के बीच में अपना रास्ता चुनना।[7]
- श्रेष्ठ व्यक्ति को समक्ष देखकर उसके निमित्त मार्ग छोड़ना।[8]
- निकृष्ट धातु से बने खर्पर[9] को ले, गाँव में जाकर, ''मुझ अभिशप्त व्यक्ति को कौन भिक्षा देगा।'' इस प्रकार का घोष करता हुआ सात घरों में जाकर और उनसे शिक्षा ग्रहण करना।[10]
- यही उसके भोजन का साधन है;[11] इस प्रकार भिक्षा न मिलने पर निराहार रहना।[12]
- गो सेवा एवं रक्षा करना।[13]
- गायों के ग्राम से निष्क्रमण एवं प्रवेश करने के समय ही भिक्षा माँगना।[14]
- उपर्युक्त प्रायश्चित कर्म को 12 वर्षों तक करने के उपरान्त शास्त्रोक्त आचरण करने पर ही आर्य समाज में प्रवेश करना।[15]

अथवा

- चोरों के रास्ते में अपनी कुटिया बनाए, जहाँ गायों की चोरी को रोकने के प्रयासत्रय करके अथवा पाप से निवृत्त होना।।[16]

अथवा

- अश्वमेध की समाप्ति पर अवभृथ स्नान करके पाप मोचन।[17]

भ्रूणहत्या का इतना कठोर दण्ड! यदि वर्तमान भारत में काई ऐसी व्यवस्था रही होती तो लिङ्गानुपात में इतना वैषम्य न होता!

3.1.2.2 शारीरिक सुरक्षा का अधिकार –

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में स्त्रियों को परस्त्रीगमन (Adultery) एवं बलात् यौन-उत्पीड़न जैसे घृणित कृत्यों से सुदृढ़ सुरक्षा प्राप्त है। आचार्य ने इस प्रकार के दुष्कर्ता को कठोरतम दण्ड निर्दिष्ट किए हैं।

- गुरुपत्नी में गमन करने वाले महापातकी को अपने अनुकोष तथा मूत्रेन्द्रिय काटकर, अपनी अंजलि में रखकर दक्षिण दिशा की ओर आमरण गमन करना।[18]
- यहाँ गुरुपत्नी आचार्य की पत्नी नहीं, अपितु माता तथा सौतेली माताएं हैं। गुरु = पिता।

अथवा

- अग्नि सन्तप्त स्त्री प्रतिमा का आमरण आलिङ्गन करे।[19]
- सायंकालीन भोजन को प्रतिदिन घटाता हुआ, तीन सवनों में नहाता हुआ, दिन भर खड़ा हुआ, रात्रि जागरण करता हुआ, तीनवर्षों तक इस कठोर आचरण को करके वह महापातकी अपने पापों को दूर करे।[20]
- गुरुपत्नी में गमन करने वाला अपराधी खोखली, लौहानिर्मित स्त्री मूर्ति में प्रवेश करे, जलती हुई अग्नि में मूर्ति के भीतर दग्ध होकर प्राण त्याग दे।[21] देह त्यागने पर यह पाप छूटता है।[22]
- कुँआरी/कुमारी से रतिकर्म करने वाले युवक का सर्वस्वहरण करके देशनिष्कासन दिया जाए।[23]
- राजा इस प्रकार की कन्या का भरणपोषण करे।[24]
- राजा उसके शील की रक्षा करे।[25]
- कुमारियां प्रायश्चित्त करने के बाद पिता तथा भाई को और परस्त्रियां अपने पतियों तथा श्वसुरों को दे देनी चाहिए[26] क्योंकि प्रायश्चित के उपरान्त यह पूर्ववत् हो जाती हैं। वस्तुत: धर्मपूर्वक स्थापित सम्बन्ध ही ग्रहण योग्य होता है।[27]

3.1.2.3. पारिवारिक सुरक्षा का अधिकार

माता

- पतिता होने पर भी माता की सर्वदा सेवा करनी चाहिए, क्योंकि पुत्र के लिए वह अनेक कष्ट उठाती है।[28]

पत्नी

- अकारण पत्नी त्यागने वाले को गधे का बहिर्लोम वाला अजिन = चमड़ा पहन कर 'दाख्यतिक्रमिणे भिक्षा' इस प्रकार कह कर सात घर से भिक्षा ग्रहण कर 6 मास तक प्रायश्चित करे।[29]

पुनर्विवाह

- पत्नी धार्मिक हो तथा पुत्र पैदा करने में सक्षम हो तो पुनर्विवाह नहीं करे[30], किन्तु धर्म तथा पुत्र में से एक के अभाव में भी अग्निहोत्र की अग्नि जलाने से पूर्व दूसरा विवाह कर लेना चाहिए।[31]

अन्य

- सगे-सम्बन्धियों की महिलाओं एवं गर्भवती स्त्रियों को पहले भोजन कराना चाहिए।[32]
- स्त्रियों के लिए मार्ग/रास्ता छोड़ देना चाहिए।[33]

वियोग

- कन्या एक कुल को प्रदान की जाती है,[34] अत: वह सगोत्र सम्बन्धियों से क्षेत्रज पुत्र की प्राप्ति के लिए नियोग कर सकती है।[35]

4. समानता, सम्मान एवं धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार

4.1 आपस्तम्ब के अनुसार, '*पतिवयस: स्त्रिय:*'।[36] अर्थात् विवाहिता स्त्रियां अपने पति की अवस्था के अनुसार अभिवादन के योग्य होती है।

4.2 '*अरण्ये च स्त्रियम्*'[37] अर्थात् जंगल में यदि कोई स्त्री मिले तो उनसे वार्तालाप अवश्य करे। इस सूत्र के अर्थ का स्पष्टीकरण पूर्व सूत्र '*नाऽसम्भाष्य श्रोत्रियं व्यतिव्रजेत्*'[38] से समायोजित कर होता है। स्त्रियों की सहायता करने के लिए आचार्य ने यह निर्देश दिया होगा।

4.3 ''*स्त्रीषु चैतेषामेवम्*''[39] सूत्र के अनुसार ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र वर्ण के पुरुष की हत्या हो जाने पर जैसा प्रायश्चित्त किया जाता है, वैसा ही प्रायश्चित्त इन वर्णों की स्त्रियों की हत्या होने पर किया जाए।

4.4 कुँआरी कन्या के दुर्गुणों की निन्दा न करे।[40]

4.5 विवाह संस्कार के पश्चात् पति-पत्नी यज्ञानुष्ठान आदि मिलकर करें।[41] एक के अभाव में यह अनुष्ठान अपूर्ण होते हैं। किन्तु बलिवैश्यकर्म विधुर भी कर सकते हैं।

4.6 अग्निहोत्र की अग्नि प्रज्ज्वलित करने पर जो पत्नी होती है,

वह धार्मिक कार्यों से जुड़ जाती है तथा है उसका अंग यज्ञ की अग्नि का आधान कर्म कहा जाता है।[42]

4.7 पति पत्नी का सम्बन्ध धर्म-कर्म की पूर्ति्त हेतु होता है।[43]

4.8 स्त्री के लिए अन्न एवं अग्नि में आहुतियाँ निषिद्ध हैं।[44]

4.9 वानप्रस्थाश्रम का आश्रय लेने वाला व्यक्ति पत्नी को (अरण्यवास के लिए बाध्य न करे) तथा स्वयं को भोजन पकाने की सामग्री के एक-एक जोड़ा दे तथा अरण्यवास करे।[45]

5. आर्थिक अधिकार

5.1 पति-पत्नी के मध्य धन का विभाग नहीं होता।[46]

5.2 विवाह के बन्धन में बंधते ही वे सभी कर्मों में एक साथ हो जाते हैं।[47]

5.3 पुण्य फल भी दोनों को संयुक्त रूप में मिलते हैं।[48]

5.4 धन अर्जन में एक साथ ही रहते हैं।[49]

5.5 पति के प्रवास काल में पत्नी के द्वारा दिए गए उचित दान को स्तेय = चोरी नहीं कहा जाता।[50]

5.6 स्त्रियों (सभी वर्णों की) से कर नहीं लिया जा सकता।[51]

5.7 घर की सम्पत्ति में पति-पत्नी का बराबर अधिकार होता है।[52]

निष्कर्ष

यदि निष्कर्ष निष्पत्ति का कार्य भी आचार्य आपस्तम्ब के सूत्रों के रूप में किया जाए -

- स्त्रियों में उपस्थित ज्ञान विद्या की अन्तिम सीमा हैं।
- इनकी विद्याएँ अथर्ववेद के ज्ञान का विशिष्ट भाग हैं।
- वेदाक्षर ज्ञान से नहीं अपितु वेद प्रतिपादित मार्ग का आचरण करने से धर्म का पालन होता है।

सामान्य शब्दों में इस शोध-पत्र के आधार पर निम्न निष्कर्ष प्रतिपादित किया जा सकता है -

1. आपस्तम्ब धर्मसूत्र में स्त्रियों को पुरुष की भाँति गुरुकुल वास की अनुमति नहीं है, किन्तु यह ध्वनित होता है कि वह गृहकार्यों में दक्षता अवश्य प्राप्त करती थीं।
2. आचार्य आपस्तम्ब त्रियों का व्यक्ति, पारिवारिक सदस्य तथा राज्य की प्रजा - इन तीनों ही रूपों में आदर करते हैं।
3. चरित्र की शुद्धि पुरुष तथा स्त्री के लिए समानरूपेण अनिवार्य है।
4. धनार्जन पुरुष करे, किन्तु पत्नी का उस धन पर समान अधिकार है।
5. धार्मिक कृत्यों में स्त्री तथा पुरुष अन्योन्याश्रित हैं।
6. स्त्री को जन्म लेने का तथा सम्मानपूर्वक जीवन जीने का अधिकार है।

संदर्भ सूची

1. दक्षिणतः पितृलिङ्गेन प्राचीनावीत्यवाचीनपाणिः कुर्यात् - आपस्तम्ब. 2/2/4/5
2. न प्रेक्षेत नग्नां स्त्रियम्।। - 1/2/7/3
   नोपजिघ्रेत् स्त्रियं मुखेन।। - 1/2/7/8
   न हृदयेन प्रार्थयेत्।। - 1/2/7/9
   ना कारणादुपस्पृशेत्।। - 1/2/7/10
3. ऋतुस्नातामात्रेयीमाहुरिति वसिष्ठः (10/94)
4. आत्रेयीं च स्त्रियम् - आप.धर्म. - 1/9/24/9
5. गर्भं च तस्याऽविज्ञातम् - वही - 119/24/8
6. अरण्ये कुटिं कृत्वा वाग्यतः शवशिरध्वजोऽधंशाणोप-क्षमधोनाभ्युपरिजान्वाच्छाद्य - आप.धर्म. - 1/9/24/11
7. तस्य पन्था अन्तरा वर्त्मनी - 1/9/24/12
8. दृष्ट्वा चाऽन्यमुत्क्रामेत् - 1/9/24/13
9. खण्डेन लोहितकेन शरावेण ग्राम प्रतिष्ठेत - 1/9/24/14
10. कोऽभिशस्ताया भिक्षामिति सप्तागारं चरेत् - आप.धर्म. 1/9/24/15
11. सा वृत्तिः - आप.धर्म - 1/9/24/16
12. अलब्ध्वोपवासः- आप.धर्मः - 1/9/24/17
13. गाश्च रक्षेत् - आप.धर्म. - 1/9/24/18
14. तासां निष्क्रमणप्रवेशने द्वितीयो ग्रामेऽर्थः - आप.धर्म. 1/9/24/19
15. द्वादशवर्षाणि चरित्वा सिद्धः सद्भिस्सम्प्रयोगः - आप.धर्म. - 1/9/24/20
16. आजिपथे वा कुटिं कृत्वा ब्राह्मणगण्योऽपजिगीषमाणो वसेत्त्रिः प्रतिराद्धोऽपजित्य वा मुक्तः - आप. धर्म. - 1/9/24/21
17. आश्वमेधिकं वाऽवभृथमवेत्य मुच्यते - आप.धर्म. - 1/9/24/22
18. गुरुतल्पगामी सवृषणं शिश्नं परिवास्याऽञ्जलावाधाय दक्षिणां दिशमनावृत्तिं व्रजेत् - आप. धर्म - 1/9/25/1
19. ज्वलिता वा सूर्मिं परिष्वज्य समाप्नुयात् - आप.धर्म. -1/9/25/2
20. स्तेयं कृत्वा सुरो पीत्वा गुरुदारं च गत्वा ब्रह्महत्यामकृत्वा।
    चतुर्थकाला मितभोजिनः स्युरपोऽभ्यवेयुः सवनानुकल्पम्।
    स्थानासनभ्यां विहरन्त एते त्रिभिर्वर्षैरप पापं नुदन्ते।।
    आप.धर्म. - 1/9/25/11

21. गुरुतल्पगामी तु सुषिरां सूर्मि प्रविश्योभयत आदीप्याऽभिदहेदात्मानम् – आप. धर्म – 1/10/28/15
22. एतेनैव विधिनोत्तमादुच्छ्पवासाच्चरेन्नाऽस्याऽस्मिंल्लोके प्रत्यापत्तिर्विद्यते कल्मषं तु निर्हण्यते – आप.धर्म. 1/10/28/18
23. कुमार्यां तु स्वान्यादाय नाश्यः – आप.धर्म. – 2/10/26/21
24. अथ भृत्ये राज्ञा – आप.धर्म. 2/10/26/22
25. रक्ष्ये चाऽत ऊर्ध्वं मैथुनात् – आप.धर्म. – 2/10/26/23
26. निर्वेषाभ्युपाये तु स्वामिभ्योऽवसृजेत् – आप.धर्म. – 2/10/26/24
27. चरिते यथापुरं धर्माद्धि सम्बन्धः– आप.धर्म. – 2/10/27/1
28. माता पुत्रत्वस्य भूयांसि कर्माण्यारभते तस्यां शुश्रूषा नित्या पतितायामपिं – आप.धर्म. – 1/10/28/9
29. दाख्यतिक्रमी खराजिनं बहिर्लोमं परिधाय 'दाख्यतिक्रमिणे भिक्षा' मिति सप्ताऽगाराणि चरेत्। सा वृत्तिः षण्मासान्।। – आप.धर्म. 1/10/28/19
30. बालान्वृद्धान्रोगसम्बन्धान्स्त्रीश्चान्तर्वत्नी – आप.धर्म. 2/2/4/12
31. यानस्य भाराभिनिहितस्याऽऽतुरस्य स्त्रिया इति सर्वैर्दातव्यः – आप.धर्म. 2/5/11/7
32. धर्मप्रजासम्पन्ने दारे नाऽन्यां कुर्वीत– आप.धर्म. 2/5/11/12
33. अन्यतराभावे कार्या प्रागग्न्याधेयात्– आप.धर्मः– 2/5/11/13
34. कुलाय हि स्त्री प्रदीयत इत्युपदिशन्ति – आप.धर्म. – 2/10/27/3
35. सगोत्रस्थानीयां न परेभ्यस्समाचक्षीत – आप.धर्म. – 2/10/27/2
36. आप.धर्म. – 1/4/14/18
37. आप.धर्म. – 1/4/14/28
38. आप.धर्म. – 1/4/14/27
39. आप.धर्म. – 1/9/24/5
40. गोर्दक्षिणानां कुमार्याश्च परीवादान्वर्जयेत्। आप.धर्म . 2/11/31/8
41. पाणिग्रहणादधि गृहमेधिनोर्व्रतम् – आप.धर्म. – 2/1/1/1
42. आधाने हि सती कर्मभिस्संबध्यते येषामेतदङ्गम् – आप.धर्म. – 2/5/11/14
43. विवाहे.... धर्माद्धि सम्बन्धः – आप.धर्म. – 2/6/14/11
44. न स्त्री जुहुयात् – आप.धर्म. – 2/6/15/17
45. द्वन्द्वानामेकैकमादायेतराणि दत्वाऽरण्यमवतिष्ठेत – आप.धर्म. – 2/9/22/16
46. जायापत्योर्न विभागो विद्यते – आप.धर्म. – 2/6/14/16
47. पाणिग्रहणाद्धि सहत्वं कर्मसु – आप.धर्म. – 2/6/14/17
48. तथा पुण्यफलेषु – आप.धर्म. – 2/6/14/18
49. द्रव्यपरिग्रहेषु च – आप.धर्म. – 2/6/14/19
50. न हि भर्तुर्विप्रवासे नैमित्तिके दाने स्तेयमुपदिशन्ति – आप.धर्म. 2/6/14/20
51. सर्ववर्णानां च स्त्रियः – आप.धर्म. – 2/10/26/11
52. कुटुम्बिनौ धनस्येशाते – आप.धर्म. – 2/11/29/3

ISSN 2278 - 0327

रक्षात्मक युक्तियों का प्रयोग करने वाले उच्चतर माध्यमिक स्तर के सामान्य छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि का अध्ययन

अवनीश कुमार पांडे
शोधार्थी, शिक्षा संकाय
मानसरोवर ग्लोबल विश्वविद्यालय, सीहोर (म.प्र.)

डॉ. अनामिका श्रीवास्तव
प्राध्यापक, शिक्षा विभाग,
मानसरोवर ग्लोबल विश्वविद्यालय, सीहोर (म.प्र.)

इस शोध पत्र में रक्षात्मक युक्तियों का प्रयोग उच्च व निम्न स्तर पर करने वाले उच्चतर माध्यमिक स्तर के सामान्य छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि का अध्ययन किया गया है। शोधकार्य हेतु न्यादर्श के रूप में 100 छात्रों का चयन कर उन पर डॉ. एन.आर. मृणाल एवं स्व. उमा सिंघल की 'रक्षात्मक युक्ति मापनी' का प्रशासन किया गया तथा शैक्षणिक उपलब्धि के मापन हेतु माध्यमिक शिक्षा मंडल द्वारा आयोजित उच्चतर माध्यमिक स्तर पर कक्षा बारहवीं की वार्षिक परीक्षा के प्राप्तांकों का उपयोग किया गया। शोधकार्य से प्राप्त परिणामों के अनुसार प्रयोजन के विरूद्ध, स्वयं के विरूद्ध, प्रतिवर्ती रक्षात्मक युक्तियों का प्रयोग उच्च एवं निम्न स्तर पर करने वाले उच्चतर माध्यमिक स्तर के सामान्य छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया गया जबकि प्रक्षेपण, प्रधानतापूर्वक रक्षात्मक युक्तियों का उच्च एवं निम्न स्तर पर प्रयोग करने वाले सामान्य छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

मुख्य शब्दः रक्षात्मक युक्तियाँ, उच्चतर माध्यमिक स्तर, शैक्षणिक उपलब्धि

शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य एक स्वस्थ्य समाज का निर्माण करना है। शिक्षा के माध्यम से ही समाज में व्याप्त बुराइयों को कम या हल किया जा सकता है। वर्तमान समय में गिरते हुये नैतिक मूल्य एवं बढ़ती हुई अपराधिक प्रवृत्तियों से सामाजिकता बुरी तरह से आहत हुई है। सामान्य अपराधिक गतिविधियों में, चोरी करना, झूठ बोलना, धोखा देना, दोषारोपण करना, हत्या या आत्महत्या के लिए प्रेरित करना आदि घटनाऐं गंभीर मानसिक अस्वस्थता व्यक्त करती है। कहा जाता है, कोई जन्मजात अपराधी नहीं होता, उसके इस असामान्य व्यवहार के लिए वातावरण एवं परिस्थितियाँ उत्तरदायी होती हैं। शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य भावी नागरिकों का निर्माण करना भी है, अतः यह आवश्यक है कि हम विद्यालय स्तर पर ही छात्रों में सकारात्मक आदतों का विकास करने का प्रयास करें जिससे वह गलत राह पर भटकने से बच सकें। मनोवैज्ञानिक अध्ययनों एवं अनुसंधानों के आधार पर ही हम विद्यालय या कक्षा-कक्ष में छात्रों की गतिविधियों का अध्ययन करके उनके भविष्य निर्माण एवं भविष्य निर्माण में प्रमुख भूमिका निभाने वाली शैक्षणिक उपलब्धि को सही दिशा प्रदान कर सकते हैं। प्रस्तुत शोधकार्य का मुख्य उद्देश्य उच्चतर माध्यमिक स्तर पर रक्षात्मक युक्तियों का प्रयोग करने वाले छात्रों की पहचान करके उच्च व निम्न स्तर पर विभिन्न रक्षात्मक युक्तियों का प्रयोग करने वाले छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि का अध्ययन करना है। पूर्व में भी कुछ शोधकर्ताओं द्वारा इस विषय पर शोधकार्य किया गया है। **मनुअल** (1982) के अध्ययन में चिन्ता आधारित तनाव का शैक्षिक उपलब्धि पर नकारात्मक प्रभाव पाया गया, इसी प्रकार **जसूजा** (1983), के शोध अध्ययन में भग्नाशा एवं अभिलाषा स्तर शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करने वाले पाये गये। **प्रसन्ना** (1984) के मानसिक स्वास्थ्य पर किये गये अध्ययन में मानसिक स्वास्थ्य के सभी 16 चर शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करने वाले पाये गये। **ज्ञानानी** (1984) के अध्ययन के अनुसार अधिकांश न्यादर्श भग्नाशा स्थिति में अधिक आक्रामक या सुरक्षात्मक नहीं होते है। निम्न उपलब्धि अभिप्रेरणा वाले बालक अपेक्षाकृत अधिक अहं सुरक्षात्मक पाये गये। **गगनदीप** (1986) के शोध निष्कर्ष के अनुसार ऋणात्मक रक्षा युक्तियाँ विद्यालय तथा घर दोनों प्रकार के कुसमायोजन के लिए उत्तरदायी होती हैं। **अग्रवाल** (1989) ने शैक्षिक उपलब्धि पर मानसिक

विकार और रक्षात्मक युक्तियों के प्रभाव के अध्ययन में पाया कि तनाव, दब्बूपन व दुश्चिंता स्तर का उच्च प्रयोग करने वाले विद्यार्थी, रक्षायुक्ति का अधिक प्रयोग करने वाले तथा निम्न शैक्षिक उपलब्धि वाले पाये गये। **नम्रता** (1992) के अध्ययन में भी तनाव तथा दुश्चिंता का शैक्षिक उपलब्धि के साथ नकारात्मक संबंध प्राप्त हुआ। **वर्मा, शरत एवं शर्मा, लालसा** (2000) ने अपने अध्ययन के निष्कर्षत: पाया कि एकल एवं संयुक्त परिवार के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया गया व एकल परिवार के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि, संयुक्त परिवार के छात्रों की अपेक्षा अधिक पाई गई। **गुप्ता, नीता** (2007) ने भी पाया कि अंतर्मुखी व बर्हिमुखी व्यक्तियों के व्यक्तित्व पर रक्षा आधारित युक्तियों का सार्थक अंतर पाया जाता है। अंतर्मुखी व्यक्ति, स्वयं के विरूद्ध तथा बर्हिमुखी व्यक्ति प्रयोजन के विरूद्ध, प्रक्षेपण व प्रतिवर्ती युक्तियों का प्रयोग अधिक करते हैं। इसी प्रकार **बघेल** (2009) ने भी पाया कि विद्यार्थियों की संज्ञानात्मक योग्यता उनके अधिगम पर कोई प्रभाव नहीं डालती, परन्तु उनकी शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करती है। **देशमुख एवं अन्य** (2009) ने अपने अध्ययन में पाया कि उच्च व निम्न पारिवारिक संबंध वाले छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया गया तथा उच्च पारिवारिक संबंध वाले छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि, निम्न पारिवारिक संबंध वाले छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों से अधिक पायी गयी। **फैलोज, अंजना** (2011) ने अपने अध्ययन के निष्कर्षत: पाया कि अभिभावकों द्वारा स्वीकृत बच्चों की शैक्षणिक उपलब्धि व अभिभावक पाल्य संबंध के क्षेत्र-स्वीकृती के मध्य उच्च व धनात्मक सहसंबंध पाया गया तथा साथ ही स्वीकृत छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि भी उच्च पायी गयी। **शुक्ला** (2014) के शोध अध्ययन में भी दुश्चिंता का उच्च स्तर रखने वाले डी.एड. प्रशिक्षणार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि निम्न पायी गयी। **नेहरा** (2014) के अध्ययन में व्यक्तित्व और शैक्षिक उपलब्धि के मध्य कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। इसी प्रकार अन्तर्मुखी एवं बर्हिमुखी विद्यार्थियों के उपलब्धि अंकों में भी कोई सार्थक अन्तर नहीं देखा गया।

अत: शैक्षणिक उपलब्धि व रक्षात्मक युक्तियों पर पूर्व अध्ययन से प्राप्त परिणामों का विश्लेषण करते हुए शोधकर्ता ने रक्षात्मक युक्तियों का अधिक व कम मात्रा में उपयोग करने वाले सामान्य छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि का अध्ययन अपने शोधकार्य हेतु किया हैं।

उद्देश्य:-

विभिन्न रक्षात्मक युक्तियों का प्रयोग उच्च व निम्न स्तर पर करने वाले उच्चतर माध्यमिक स्तर के सामान्य छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पना:-

विभिन्न रक्षात्मक युक्तियों का प्रयोग उच्च व निम्न स्तर पर करने वाले उच्चतर माध्यमिक स्तर के सामान्य छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

उपकरण:-

1. रक्षात्मक युक्ति मापनी - डॉ. एन.आर. मृणाल एवं स्व. उमा सिंघल
2. उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि के मापन हेतु माध्यमिक शिक्षा मंडल द्वारा आयोजित उच्चतर माध्यमिक स्तर पर कक्षा बारहवीं की वार्षिक परीक्षा के प्राप्तांकों का उपयोग किया गया है।

विधि:-

इस शोधकार्य हेतु सर्वप्रथम भोपाल जिले के उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों की सूची प्राप्त की गई तथा इस सूची में से दैव निदर्शन विधि द्वारा कक्षा बारहवीं में अध्ययनरत् कला संकाय के 100 छात्रों का चयन करके उन पर डॉ. एन.आर. मृणाल एवं स्व. उमा सिंघल की 'रक्षात्मक युक्ति मापनी' का प्रशासन किया गया तथा इसके परिणामों के आधार पर छात्राओं को दो वर्गों 'उच्च' तथा 'निम्न' में बांटा गया एवं शैक्षणिक उपलब्धि के मापन हेतु माध्यमिक शिक्षा मंडल द्वारा आयोजित उच्चतर माध्यमिक स्तर पर कक्षा बारहवीं की वार्षिक परीक्षा के प्राप्तांकों का उपयोग किया गया। प्राप्तांकों के आधार पर मॉस्टर शीट तैयार की गई। क्रांतिक अनुपात परीक्षण के द्वारा आंकड़ों का विश्लेषण किया गया प्राप्त परिणामों के आधार पर निष्कर्ष प्राप्त किये गये।

परिणामों का विश्लेषण:-

परिकल्पना : विभिन्न रक्षात्मक युक्तियों का प्रयोग उच्च व निम्न स्तर पर करने वाले उच्चतर माध्यमिक स्तर के सामान्य छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

तालिका

विभिन्न प्रकार की रक्षात्मक युक्तियों का प्रयोग करने वाले उच्चतर माध्यमिक स्तर के सामान्य छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि

संबंधी तुलनात्मक परिणाम

रक्षा युक्तियों का प्रकार	रक्षा युक्तियों का स्तर	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात मान	'पी' मान
प्रयोजन के विरूद्ध	उच्च	61	318.10	83.31	6.41	< 0.01
	निम्न	39	423.90	78.59		
प्रक्षेपण	उच्च	46	349.02	104.01	0.98	> 0.05
	निम्न	54	368.17	88.59		
प्रधानतापूर्वक	उच्च	53	351.04	94.26	0.92	> 0.05
	निम्न	47	368.74	98.05		
स्वयं के विरुद्ध	उच्च	44	409.84	72.90	5.40	< 0.01
	निम्न	56	319.70	94.16		
प्रतिवर्ती	उच्च	57	380.07	91.35	2.53	< 0.05
	निम्न	43	331.91	96.21		

स्वतंत्रता के अंश – 98

0.05, 0.01 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान – 1.98, 2.63

ऊपर दिये गये परिणामों से स्पष्ट होता है कि विभिन्न रक्षात्मक युक्तियों का प्रयोग उच्च व निम्न स्तर पर करने वाले उच्चतर माध्यमिक स्तर के सामान्य छात्रों में से प्रयोजन के विरूद्ध, स्वयं के विरूद्ध, प्रतिवर्ती रक्षात्मक युक्तियों का प्रयोग उच्च एवं निम्न स्तर पर करने वाले उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर है, क्योंकि इन रक्षात्मक युक्तियों का प्रयोग करने वाले छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि के लिए प्राप्त क्रांतिक अनुपात के मान क्रमश: 6.41, 5.40, 2.53 स्वतंत्रता के अंश 98 पर सार्थकता के 0.01, 0.01, 0.05 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान क्रमश: 2.63, 2.63, 1.98 की अपेक्षाकृत अधिक हैं, जबकि प्रक्षेपण, प्रधानतापूर्वक रक्षात्मक युक्तियों का प्रयोग उच्च एवं निम्न स्तर पर करने वाले उच्चतर माध्यमिक स्तर के सामान्य छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर नहीं है, क्योंकि इन रक्षात्मक युक्तियों का प्रयोग करने वाले छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि के लिए प्राप्त क्रांतिक अनुपात के मान क्रमश: 0.98, 0.92 स्वतंत्रता के अंश 98 पर सार्थकता के 0.05 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान 1.98 की अपेक्षाकृत कम हैं।

अत: इन परिणामों के आधार पर निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि प्रयोजन के विरूद्ध, स्वयं के विरूद्ध, प्रतिवर्ती रक्षात्मक युक्तियों का प्रयोग उच्च एवं निम्न स्तर पर करने वाले उच्चतर माध्यमिक स्तर के सामान्य छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया गया तथा प्रयोजन के विरूद्ध रक्षात्मक युक्ति का प्रयोग निम्न स्तर पर करने वाले सामान्य छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि, इस रक्षात्मक युक्ति का प्रयोग उच्च स्तर पर करने वाले सामान्य छात्रों की तुलना में अधिक पाई गयी परंतु स्वयं के विरूद्ध, प्रतिवर्ती रक्षात्मक युक्तियों का प्रयोग उच्च स्तर पर करने वाले सामान्य छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि, इन रक्षात्मक युक्तियों का प्रयोग निम्न स्तर पर करने वाले सामान्य छात्रों की तुलना में अधिक पाई गयी। प्रक्षेपण, प्रधानतापूर्वक रक्षात्मक युक्तियों का उच्च एवं निम्न स्तर पर प्रयोग करने वाले सामान्य छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

अत: इन परिणामों के आधार पर पूर्व में ली गयी परिकल्पना ''विभिन्न रक्षात्मक युक्तियों का प्रयोग उच्च व निम्न स्तर पर करने वाले उच्चतर माध्यमिक स्तर के सामान्य छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है'', आंशिकत: अस्वीकृत की जाती है।

निष्कर्ष–

प्रयोजन के विरूद्ध, स्वयं के विरूद्ध, प्रतिवर्ती रक्षात्मक युक्तियों का प्रयोग उच्च एवं निम्न स्तर पर करने वाले उच्चतर माध्यमिक स्तर के सामान्य छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया गया जबकि प्रक्षेपण, प्रधानतापूर्वक रक्षात्मक युक्तियों का उच्च एवं निम्न स्तर पर प्रयोग करने वाले छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. अग्रवाल, संध्या (2008): शिक्षा मनोविज्ञान, अनुप्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ क्रमांक 168
2. अस्थाना, डॉ. मधु एवं वर्मा, किरणबाला (1996): व्यक्तित्व मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृष्ठ क्रमांक 86
3. अस्थाना, विपिन (1999): मनोविज्ञान एवं शिक्षा में मूल्यांकन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, नवीनतम् संस्करण
4. बैरन, राबर्ट ए. एवं बार्यन, डॉन: सामाजिक मनोविज्ञान (प्रथम हिन्दी अनुवाद), नवम् संस्करण, ऐलिन एंड बेकन प्रकाशन, सिंगापुर, पीयर्सन एजूकेशन, दिल्ली, पृष्ठ क्रमांक 140–179
5. भार्गव, तृप्ति एवं भार्गव, विवेक (1991): मानव व्यवहार का मनोविज्ञान, हर प्रसाद भार्गव प्रकाशन, कचहरी घाट, आगरा, प्रथम संस्करण
6. चौबे, सरयू प्रसाद (1966): असामान्य मनोविज्ञान एवं आधुनिक जीवन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
7. कपिल, एच.के. (1994–1995): अपसामान्य मनोविज्ञान,

एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा
8. स्किनर, चार्ल्स (1965): शिक्षा मनोविज्ञान, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली
9. स्टीफन, जे.एम. (1972): शिक्षा मनोविज्ञान, भारती प्रिंटर्स, दिल्ली

Related Research

1. भूटिया, योदिदा एवं भलांग, सुंगोह (2014) ''शिलॉग के किशोरों में भग्नाशा प्रतिक्रिया'', इंटरनेशनल जर्नल ऑफ ऐजूकेशन एण्ड साइकोलॉजिकल रिसर्च, *Vol-3*, (54-58), शिलाँग: जे.पी.ई.आर.ओ.आर.जी.
2. देशमुख, अमृता; वर्मा, उर्मिला एवं निगम, भूपेन्द्र (2009) ''उच्चतर माध्यमिक शालाओं में पढ़ने वाले छात्र-छात्राओं के पारिवारिक संबंधों का उनकी शैक्षणिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन'', रिसर्च लिंक, 62, वाल्यूम, *VIII (3)* मई 2009, पृष्ठ क्रमांक 116-118
3. देशमुख, निवेदिता (2014) ''रक्षात्मक युक्तियों का संक्षिप्त अध्ययन'', इंटरनेशनल जर्नल ऑफ साइन्टिफिक रिसर्च *Vol.-3/issue7/July 2014* नवी मुम्बई
4. मृणाल, एन.आर. एवं सिंघल, उमा (1982) ''रक्षात्मक व अरक्षात्मक युक्ति अध्ययन'', रक्षा युक्ति मापनी, नेशनल साइकोलॉजिकल कार्पोरेशन, आगरा, पृष्ठ क्रमांक 16
5. मृणाल, एन.आर. एवं सिंघल, उमा (1981) ''विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों में रक्षा युक्ति का प्रयोग'', रक्षा युक्ति मापनी, नेशनल साइकोलॉजिकल कार्पोरेशन, आगरा, पृष्ठ क्रमांक 17
6. शुक्ला, कमलेश (2014) ''डी.एड. प्रशिक्षणार्थियों में दुष्चिंता का शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव'', सामाजिक शोध योजना Vol.-2/3/July 2014
7. वर्मा, शरत एवं शर्मा, लालसा, (2000) ''उच्च माध्यमिक स्तर पर एकल एवं संयुक्त परिवार के विद्यार्थियों की आकांक्षा स्तर एवं शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन'', भारतीय आधुनिक शिक्षा, जुलाई 2000, पृष्ठ क्रमांक 54-58
1. **Fellows, Anjana (2011)** "To Study the academic achievement & parent child relationship of adolescent boys", *Research Hunt, Vol - VI, Issue - IV, Dec 2011, Pg. No. - 12-14*

ISSN 2278 - 0327

कालिदास साहित्य में सौन्दर्य चेतना : अभिज्ञानशाकुन्तलम् के सन्दर्भ में

राजेन्द्र प्रसाद मिश्रा
शोधछात्र (पीएच.डी.)
संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रस्तावना

भारतीय चिन्तनपरम्परा सदैव प्राणियों के कल्याण में तत्पर रही है, इसी उद्देश्य को पूर्ण करने के लिये काव्य का सृजन हुआ जो वैदिक सहित्य से प्रारम्भ होकर अद्यावधि सतत् प्रवाहशील है। उसी को उपजीव्य बनाकर कवियों ने अपनी काव्यकृतियों में सम्पूर्ण चराचर जगत् के साथ सौन्दर्यमय सह अस्तित्व प्रस्तुत किया है। सौन्दर्य के बिना इस जीवन का महत्व कुछ भी नहीं है , महाकवि कालिदास का भी प्रत्येक ग्रन्थ सौन्दर्य चेतना को जीवन्त प्रस्तुत करता है। सत्य, शिव और सुन्दर ये सब परमात्मा के ही स्वरूप हैं। इन्हें प्राप्त करने का प्रयास परमात्मा को प्राप्त करने का ही प्रयास है। मनुष्य ने पदार्थ की गढन को सौन्दर्य मानकर उसका एक काल्पनिक स्वरूप स्थापित किया है। सौन्दर्य सत्य है इसलिये वह भौतिक नही हो सकता, न ही अपवित्र हो सकता है। 'आत्मकथा' में महात्मा गांधी जी ने लिखा है कि –'वास्तविक सौन्दर्य हृदय की पवित्रता में है, बाह्य बनावट और प्रदर्शन से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। यह जो रूप की सजावट, वेश-विन्यास में विचित्रता आदि का प्रसार बढ रहा है यह आन्तरिक सौन्दर्य को छलता है। इससे बचना चाहिये। शब्द निर्माण की दृष्टि से 'सुन्दर' शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार से हुई है–'सुन्दर' शब्द 'सु' उपसर्ग उद् धातु तथा अरन् प्रत्यय से बना है। उद् का अर्थ है आर्द्र करना (पिघलाना) तथा अरन् कर्तृ वाच्य प्रत्यय है। इस प्रकार सुन्दर का अर्थ भली-भांति आर्द्र करने वाला है।[1] सुन्दर शब्द भवादिगण की टुनादि समृद्धौ धातु से भी बन सकता है। *'सुष्ठुतया नन्दयति इति सुन्दरम्। तस्य भाव: सौन्दर्य:'* अर्थात् जिससे मानव को आनन्द की अनुभूति होती है, वह सौन्दर्य है।[2] अंग्रेजी में यह शब्द Beauty (बो + टी) से बना है। यहां बो का अर्थ प्रिय अर्थात् रसिक तथा टी भाववाचक प्रत्यय है। इस प्रकार Beauty शब्द का अर्थ 'रसिक भाव अथवा रसिकता' है[3]। संस्कृतवाङ्मय में इसके निम्नलिखित पर्यायवाचक शब्द प्राप्त होते हैं–

सुचिरं रुचिरं सुषयं साधु शोभनम्।
कान्तं मनोरमं रुच्चं मनोज्ञं मञ्जुमञ्जुलम्
अभीष्टेऽभीप्सित हृदयदयितं वल्लभप्रियम्।[4]

उपर्युक्त शब्दों के अतिरिक्त कतिपय शब्द ऐसे हैं जो सौन्दर्य के पर्याय के रूप में पर्युक्त हैं जैसे ललित, सुष्ठु, रमणीय, कमनीय आदि उल्लेखनीय हैं।

महाकवि कालिदास के लोकप्रसिद्ध नाटक अभिज्ञानशाकुन्तलम् में अनेक विद्वानों ने बहुविधदृष्टियों से विचार प्रस्तुत किए हैं। हमारे ऋषियों, कवियों, विद्वानों ने कृतियों में सांसारिक कल्याण के सरलतम पथ को प्रदर्शित किया है वे सम्पूर्ण मनोयोग से सर्वहित समभाव युक्त होकर चराचर जगत् के लिए सर्वकालिक सौन्दर्यपरक एवं उपकारी चिन्तन मनन करते रहे हैं, इसी परम्परा का निर्वाह महाकवि कालिदास ने अपने नाटक अभिज्ञानशाकुन्तल में भी किया है, जिसका साक्ष्य नाटक के आरम्भ में ही दृष्टिगोचर हो जाता है, जब दुष्यन्त महर्षि कण्व के आश्रम में वृक्ष की ओट से शकुन्तला और उसकी सखियों के द्वारा वृक्षों को सीचते हुए देखकर कहता है कि 'अहो, मधुरमासां दर्शनम्'[5] अर्थात् इन तीनों की ही आकृति सुन्दर है। और इस अप्रतिम सौन्दर्य को देखने के पश्चात् ही राजा को आश्चर्य हो रहा है जिससे हठात् उसके मुख से अहो ! निकल गया है क्योंकि राजा ने कुछ दूरी में इन तीन कन्याओं को देखा है। अत: तीनों कन्याएं समान भाव से सुन्दर दिख रही हैं। महाकवि कालिदास ने अपने ग्रन्थों में रमणीयता में ही सौन्दर्य की अवस्थिति मानी है उनका कथन है कि सुन्दर आकृति सभी अवस्थाओं में सुन्दर ही रहती है, क्योंकि आकृति की रमणीयता का कारण उसकी बाह्य सुन्दरता नही होती अपितु आन्तरिक सुन्दरता होती है इस सन्दर्भ मे कवि कि यह पंक्ति उद्धृत है–

'अहो सर्वास्ववस्थासु रमणीयत्वमाकृतिविशेषाणाम्'[6]

अर्थात् जो सुन्दर होते हैं, उनकी अवस्थिति हर दशा में सुन्दर ही होती है। कालिदास जी का विचार है कि बाह्य अलंकरण तो व्यक्ति के रूप-सौन्दर्य में उत्कर्षाधायक होते हैं, उन अलंकारों

के अभाव में सौन्दर्य में न्यूनता नहीं आती क्योंकि नैसर्गिक स्वरूप किसी के आश्रय की अभिलाषा नहीं करते हैं –

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।

इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्॥[7]

काई से घिरा हुआ कमल भी सुन्दर लगता है, चन्द्रमा का कलंक भी शोभा को बढ़ाता है, यह सुन्दरी वल्कल से भी सुशोभित हो रही है, सुन्दर आकृति वालों के लिए कौन सी वस्तु सुन्दर नहीं होती ? अर्थात् स्वभाव से सुन्दर व्यक्ति के सौन्दर्य को किसी बाह्य वस्तु की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि प्रकृति प्रदत्त उसका स्वरूप ही मनोदशा को रुचिकर बना देता है।

तृतीय अंक में गान्धर्व विवाह के बाद राजा प्रेम-विह्वल है, प्रगाढ़ प्रेम से सम्बन्धित यह पद्य एक दूसरे के प्रति सहानुभूति, संवेदना, साहचर्य आदि आदर्शों को प्रस्तुत करता है, जिसमें राजा शकुन्तला के पैर दबाने के लिए स्वयं को प्रस्तुत करता है –

किं शीतलैः क्लमविनोदिभिरार्द्रवातान्संचारयामि नलिनीदलतालवृन्तैः।

अङ्के निधाय करभोरु यथासुखं ते संवाहयामि चरणावुत पद्मताम्रौ॥[8]

क्या मैं कमलदल के पंखे से ठंडी हवा करुं या अंक में रखकर तुम्हारे चरण कमलों को धीरे-धीरे दबाऊं। पुरुष प्रधान समाज मे प्रायः स्त्रियों को भर्त्सना ही दी गई। आज समाज में प्रेम प्रगाढ़ न होकर एक छलावा मात्र रह गया है। उपर्युक्त पद्य में कालिदास ने प्रेम सौन्दर्य को स्पष्ट किया है जीवन में सुख हो या दुःख व्यक्ति को एक दुसरे के प्रति संवेदना होनी ही चाहिए।

भाव सौन्दर्य की दृष्टि से चतुर्थ अंक के चार श्लोक व अन्य स्थल रमणीय है। माता-पिता अपने सन्तान के विषय आजीवन चिन्तित रहते हैं, यह उनका स्वभाविक दायित्व है। परन्तु गुरुकुल के परिवारिक सम्बद्ध को भी कालिदास ने मार्मिक रूप से प्रस्तुत किया है, जहां पुत्री कि विदाई के दृश्य में सभी आश्रमवासी पशु-पक्षी, मृग, मयूर आदि भाव विह्वल हैं। कण्व अपनी पुत्री के लिये हार्दिक शुभकामना प्रकट करते हैं। ऋषि कण्व शकुन्तला की विदाई के अवसर पर उतने ही दुःखित है जितना कि एक सद्गृहस्थ। उनका हृदय दुःख से भरा हुआ है, तथा गला अवरुद्ध है, आंखों में अश्रु है –

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठः स्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम् ।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः॥[9]

इस प्रकार वे कहते हैं कि कन्या की विदाई के अवसर पर जब मुझ ऋषि की यह स्थिति है, तब गृहस्थ की क्या स्थिति होती होगी ?

एक सद्गृहस्थी अपने परिवार के दुर्व्यवहार को भी सद् आचार व्यवहार में बदल देता है क्योंकि एक व्यक्ति के शीलगुण दुसरे व्यक्ति को अत्यन्त प्रभावित करते हैं, उन्हीं शीलगुणों के कारण व अच्छा व बुरा व्यवहार करता है। अतः कविवर कालिदास ने इन सभी का भावसौन्दर्य की दृष्टि से वर्णन किया है। जिसमें कण्व शकुन्तला को उपदेश देते हैं कि तुम अपने बडों की सेवा करना, सपत्नियों से सखी भाव रखना; पति के तिरस्कृत होने पर भी कटुवचन न बोलना; सेवकों पर उदारवृत्ति रखना; ऐश्वर्य का अभिमान मत करना, इस प्रकार की स्त्रियां गृहस्वामिनी होती है, इसके विपरीत आचार व्यवहार वाली स्त्री कुल-कलंकिनी होती है।[10]

प्रकृति की सुन्दरता का भी अभिज्ञानशाकुन्तलम् में मर्मभेदी सौन्दर्यीकरण किया गया है। प्रथमांक से लेकर सप्तम अंक पर्यन्त प्रकृति के साथ अन्योन्य क्रिया का सारगर्भित रूप दिखाई देता है। प्रथमांक में शिकार करते हुये राजा दुष्यन्त का वर्णन किया गया है, जो कि वर्तमान परिवेश में प्रतिबन्धित है। यद्यपि यह प्रसंग पर्यावरण के विरुद्ध है, किन्तु महाकवि ने भी अपने कविचातुर्य से इसे घटित होने से पूर्व ही '*आश्रममृगोह्ययम् न हन्तव्य इति*' कहकर मृगया पर विराम लगाकर पर्यावरण हित में सन्निहित कण्व आश्रम का गरिमामय चित्रण प्रस्तुत किया है, जो वर्तमान लोलुप समाज को सही दिशा प्रदान कर सकता है। आश्रम में समस्त जीव, पशु-पक्षी मनुष्य को देखकर भी डर से नहीं भाग रहें हैं, अपितु विश्वस्त होकर वही ठहरे हुये हैं –

'*विश्वासोपगमादभिन्नगतयः शब्दं सहन्ते मृगाः*'[11]

चतुर्थ अंक में मनुष्य और प्रकृति का परस्पर जो भावविह्वल, सहानुभूतपरक सौहार्दपूर्ण वर्णन मिलता है इसका कारण यह है कि यहा न केवल भावप्रदर्शक मनुष्य (शकुन्तला आदि) को ही प्रकृति प्रेमी दिखाने का प्रयास किया गया है। अपितु प्रकृति को भी मनुष्य से अधिक मनुप्रेमी चित्रित किया गया है, मानव और प्रकृति के मध्य ऐसा अटूट सौंदर्यमय प्रेमवर्णन अन्योन्य सम्बन्धों की पराकाष्ठा है, जहां दोनों ही एक दूसरे के बिना अपूर्ण है, यह सहित्य जगत मे पर्यावरण पर उपलब्ध प्रसंगों में अद्वितीय एवं रमणीय है–

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युस्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां सेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्॥ [12]

शकुन्तला के लिए आसपास की प्रकृति या पर्यावरण घटक पारिवारिक सदस्य से बढ़कर हैं, जिनकी सकुशलता में उसकी प्रसन्नता निहित है, वह आश्रमवृक्षों और पशु- पक्षियों को अन्न-जल देने के उपरान्त ही भोजन ग्रहण करती है। शकुन्तला को वृक्षों से प्राप्त अलंकरण प्रिय होते हुए भी स्नेहवश उनके पल्लवादि को धारण नहीं करती है, वृक्षों में नूतन पर्ण लगना ही उसके लिए उत्सव के समान है, जो उसको अपार आनन्द की प्राप्ति कराता है, पतिगृह जाने के अवसर पर भी आशीर्वाद स्वरूप वहां की प्रकृति से अनुमति देने की प्रार्थना की जा रही है, क्योंकि वे सभी प्रकृति के अनुकूल स्वभाव से चिर परिचित है, जो यात्रा को सुखद बनाती है, इसलिए यह पद्य अति लघु होते हुए भी मानव और प्रकृति के सम्बन्धों के वर्णन में गागर में सागर की तरह है सीमित शब्दों में असीमित अभिव्यक्ति को यह प्रकट करने की क्षमता रखता हैं।

महाकवि ने प्रकृति के महात्म्य को स्पर्श कर सत्पुरुष के व्यवहार का अन्यतम चित्रण किया है, जिनका प्रत्येक अवयव परोपकार के लिए समर्पित है, अतः निम्न सुभाषित में परोपकार की भावना से युक्त प्रकृति के सौंदर्य का नैसर्गिक वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है-

भवन्ति नम्रास्तरवः फलागमैर्नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिर्स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्॥[13]

वस्तुतः प्रकृति पूर्णरूपेण परोपकार का सनातन उदाहरण है, जो सदैव परहितार्थ मे संलग्न है। सूर्य, चन्द्र, मेघ, सागर, नदियां, वृक्ष, वन -उपवन आदि सभी परोपकार के अवधूत है, जो बिना थके लगातार समस्त चराचर जगत को लाभान्वित करते आ रहे हैं।

सप्तम अंक प्रेम भावनाओं के सौंदर्य का बड़ा आकर्षक चित्रण है ऋषियों के आश्रमों में प्रेम और आत्मीयता के प्रबल संकल्प गूंज करते थे इसी कारण वन्य पशु भी निर्मय होकर विचरन करते थे ऋषियों के बालक एवं शिष्य स्वच्छतापूर्वक हिंसक पशुओं से खेला करते थे और उनसे मैत्री स्थापित कर लेते थे। शकुन्तलापुत्र सर्वदमन का सिंह के दांत गिनते हुए चित्रण तो सौंदर्य चेतनत्व की पराकाष्ठा है कि मानव व अन्य जीव का प्रेम एक दूसरे के प्रति विश्वस्त होकर सौंदर्य का बोध कराता है जृम्भस्व सिंह, दन्तांस्ते गणयिष्ये।[14] राजा शाप के कारण शकुन्तला को भूल गया तथा उसे एक पराई स्त्री समझकर देखना उचित नहीं समझता है यहां पर दुष्यन्त के प्रजापालक तथा धैर्यशीलता गुणों को कालिदास ने स्पष्ट किया है यह दर्शाता है कि प्राचीन काल में पर स्त्री देखना भी धर्मविरुद्ध कार्य था राजा के द्वारा शापवश शकुन्तला को स्वीकार न करने पर शार्ङ्गरव कहना चहता है कि विवाहित स्त्री का अपने पिता कुल में रहना उचित नहीं है अतः इसका अपने पति के पास ही रहना लोकव्यवहार में उत्तम है शार्ङ्गरव कहता है कि-

सतीमपि ज्ञातिकुलैकसंश्रयां जनोह्यन्यथा भर्तृमतीं विशङ्कते।
अतः समीपे परिणेतुरिष्यते प्रियाप्रिया वा प्रमदा स्वबन्धुभिः॥[15]

लोग अपने पिता के ही घर में निवास करने वाली विवाहिता स्त्री के सच्चरित्र होने की आंशका करते है, इस युवती स्त्री का उसके पितृकुल से सम्बन्धी पति के समीप ही निवास करना समीचीन समझते है चाहे वह पति के लिय प्रिय हो य अप्रिय हो दोनों ही अवस्थिति मे पतिगृह रहना ही श्रेयस्कर माना जाता है। पञ्चम अंक मे ही शार्ङ्गरव द्वारा कहा गया यह पद्य सम्पूर्ण युवक व युवतियों के लिय आदर्श चरित्र को स्थापित करता है कि किसी कार्य को अपने परिजनों के परमर्श के द्वारा ही करना चाहिये बिना सोचे किया गया कार्य बाधा प्रकट करता है- इत्थमात्मकृतं प्रतिहतं चापलं दहति'[16] इसी क्रम में कहा गया है कि मैत्री सम्बन्ध (विवाहादि) परीक्षा करके ही करना चाहिये क्योंकि अज्ञात हृदय व्यक्तियों मे मैत्री सम्बन्ध वैर में परिणत हो जाया करते हैं-

अतः परीक्ष्य कर्त्तव्यं विशेषात्संगतं रहः।
अज्ञातहृदयेष्वेवं वैरीभवति सौहृदम्॥[17]

निष्कर्ष -

प्रस्तुत शोधपत्र वर्तमान समय में प्रेम, शीलगुणों तथा विश्वासादि आदर्शों को स्थापित करने का प्रयास करता है। डॉ. क्वार्ल्स का भी मत है कि सुन्दरता का सद्गुणों के साथ संयोग होना हृदय का स्वर्ग है यदि उसके साथ दुर्गुण हैं तो वह आत्मा के नरक के समान है। मूर्ख लोग सौंदर्य के बाह्य स्वरूप की पूजा करते हैं इसलिए निन्दा के पात्र होते है इत्यादि अनेक विद्वानों के कथानक को महाकवि कालिदास ने कई शताब्दियों पूर्व ही कह दिया था। उपर्युक्त विवेचनानुसार महाकवि भी अपने पद्यों में कह चुके है कि स्वभाविक सुन्दर व्यक्ति के लिए बाह्य साधनों की आवश्यकता नहीं होती है। मन को सद्गुणों के साथ आरोपित करने में ही मनुष्य का सच्चा सौन्दर्य सन्निहित है। इस सुन्दरता पर दुर्भावनाओं, ईर्ष्या, छिद्रान्वेषण

की मलिनता न पड़े। इस कुरूपता से सदैव दूर ही रखना चाहिए प्रसन्नता और आशापूर्ण सुखद विचारों को जितना अधिक हम अपने मस्तिष्क में स्थान देंगे उतनी ही हमारे शरीर व मन में तेजस्विता रहेगी। मानव को अन्त:करण के सौन्दर्य को खोजने का प्रयत्न करना चाहिए। दुष्यन्तपुत्र के द्वारा सिंह के साथ उपर्युक्त प्रेम भावना को देखते हुए किसका हृदय आनन्दित नहीं होगा। इस प्रकार दु:खार्त-श्रमार्त-शोकार्त व्यक्तियों के जीवन को सुखद व सौन्दर्यमय बनाने का प्रयास महाकवि कालिदास के पद्यों ने किया है। पाश्चात्य विद्वान् गेटे आदि भी अभिज्ञानशाकुन्तलम् को पढ़कर उसके सौन्दर्यबोध से अत्यन्त प्रभावित हुए अत: विद्वानों कि उक्ति है कि -

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्यं शकुन्तला।
तत्रापि चतुर्थोऽङ्क: तत्र श्लोकचतुष्टयम्॥

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1 कालिदास. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, सम्पादक. विद्यलंकार, मेरट: निरूपण प्रकाशन साहित्य भण्डार, 2011
2 उपध्याय. बलदेव. संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाराणासी: शान्ति निकेतन, 2008.
3 डॉ. धर्मपाल देशवाल, सौन्दर्य चेतना के सन्दर्भ में-कालिदास व जयशंकर प्रसाद के काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन. पृ.अ16
4 डॉ. रामसजन पाण्डेय, विद्यापति का सौन्दर्यबोध.पृ.11
5. ऋषि. उमाशंकर. संस्कृत साहित्य का इतिहास. वाराणासी : चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, 1999..
6. भट्टाचार्य. तर्कवाचस्पति तारानाथ. वाचस्पत्यम्. वाराणसी: चौखम्बा संस्कृतग्रन्थमाला, 1969.
7. कालिदास के काव्यों में पर्यावरण चेतना, कुमार अजय, वाराणसी: कला प्रकाशन, 2008
8. नगेन्द्र.भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की भुमिका; नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस, पृ.21978

सन्दर्भ सूची -

1. वाचास्पत्यम् पृ.5314
2. डॉ.धर्मपाल देशवाल,सौन्दर्य चेतना के सन्दर्भ में- कालिदास व जयशंकर प्रसाद के काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन. पृ.अ 16
3. डॉ. रामसजन पाण्डेय, विद्यापति का सौन्दर्यबोध. पृ.11
4. अमरकोश 3, 52-53
5. अभि.शा. 1.अङ्क पृ सं.48
6. अभि.शा. 6.अङ्क पृ.सं.376
7. अभि.शा. 1/20
8. अभि.शा. 3/18
9. अभि.शा. 4/6
10. शुश्रूषस्व गुरून्कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गम:।
भुयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामा: कुलस्याधय:॥ अभि. शा.4/18
11. अभि. शा.1.14
12. अभि.शा.4/9
13. अभि. 5/12
14. अभि.शा. अंक 7
15. अभि.शा. 5/17
16. अभि.शा. पृ.333
17. अभि.शा. 5/24

ISSN 2278 - 0327

वैदिक साहित्य में वर्णित धर्म का स्वरूप

प्रो. विनय कुमार विद्यालंकार
प्रोफेसर संस्कृत विभाग, डीन शिक्षा प्र.संकाय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

आरती चौधरी
शोधार्थी, योग विभाग
निर्वाण विश्वविद्यालय, जयपुर

भारतीय संस्कृति में समस्त ज्ञान-विज्ञान का मूल वेदों को माना गया है। वेदों में वर्णित भौतिक एवं आत्मिक उन्नति के गंभीर सूत्रों को वेदांगों, स्मृति शास्त्रों एवं अन्य वैदिक वाङ्मय में व्याख्यायित किया गया है। संस्कृत में उपलब्ध साहित्य को वैदिक एवं लौकिक दो भागों में विभक्त किया जाता है। वेदों में वर्णित विद्याएं न केवल मानवता अपितु सम्पूर्ण प्राणीमात्र के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करती हैं। इसीलिए महर्षि मनु उपदेश करते हैं-

वेदोऽखिलोधर्ममूलम्। (मनुस्मृति)

अर्थात् वेद ही समस्त कर्तव्य-अकर्तव्य का बोध कराते हैं। यहां पर मनुष्य के पालनीय कर्तव्य को ही 'धर्म' कहा गया है। संस्कृत साहित्य में वर्णित हितोपदेश मनुष्य को धर्म के साथ जोड़कर अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ होने का ज्ञान कराता है। धर्म को मानव जीवन की विशिष्ट पहचान के रूप में वर्णित करते हुए उपदेश किया गया है-

आहार निद्रा भय मैथुनं च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषः धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।।
(हितोपदेश-25)

आहार, निद्रा, भय और मैथुन- यह तो मनुष्य और पशु दोनों में एक समान रूप से होने वाली क्रियाएं होती हैं किन्तु मनुष्य में धर्म की विशेषता होती है क्योंकि बिना धर्म के तो मनुष्य भी पशु के समान ही है। अर्थात् धर्म ही मनुष्य और पशु को भिन्न बनाता है। जो मनुष्य धर्म का आचरण करता है वह मनुष्य की श्रेणी में आता है और जो मनुष्य अपने जीवन में धर्म का आचरण नहीं करता है वह मानव देह को प्राप्त करने के उपरान्त भी इस संसार में पशु के समान विचरण करता रहता है। धर्म ही मनुष्य को इस संसार के अन्य प्राणियों से भिन्न एवं श्रेष्ठ बनाता है। धर्म के स्वरूप को महर्षि मनु महाराज ने मनुस्मृति नामकग्रन्थ में प्रमुख रूप से वर्णित किया है।

व्याकरण की दृष्टि से 'धृञ् धारणे' धातु से 'अर्तिस्तु सुहुसृधृ.' सूत्र से प्राप्त 'मन्' प्रत्यय के योग से धर्म शब्द सिद्ध होता है। 'धारणात् धर्म इत्याहुः' 'ध्रियते अनेन लोकः' आदि व्युत्पत्तियों के अनुसार जिसे आत्मोन्नति और उत्तम सुख के लिए धारण किया जाये अथवा जिसके द्वारा लोक को धारण किया जाये अर्थात् व्यवस्था या मर्यादा में रखा जाये, उसे 'धर्म' कहते हैं। इस प्रकार आत्मा की उन्नति करने वाला, मोक्ष या उत्तम व्यावहारिक सुख देने वाला सदाचरण, कर्तव्य अथवा श्रेष्ठ विधान (कानून), नियम ही धर्म है।[1]

मनुस्मृति ग्रन्थ में धर्म के दो अर्थों का वर्णन किया गया है। धर्म के प्रथम अर्थ को मुख्य अर्थ के रूप में वर्णित किया गया है। इस ग्रन्थ में मुख्य अर्थ के रूप में आध्यात्मिक उद्देश्य के अर्थ में धर्म शब्द को लिया गया है अर्थात् वे क्रियाएं या कार्य जिनके द्वारा साधक को आध्यात्मिक उद्देश्य की प्राप्ति होती है, धर्म कहलाती है। आध्यात्मिक क्षेत्र में आत्मा के उपकारक, निःश्रेयससिद्धि अर्थात् मोक्ष प्राप्ति कराने वाले आचरण को धर्म कहते हैं। यह धर्म का मुख्य अर्थ है। यही धर्म सार्वभौमिक, सार्वकालिक एवं सार्वजनीन है, जो त्याज्य नहीं है।[2]

धर्म के दूसरे अर्थ को गौण रूप में वर्णित किया गया है। गौण अर्थ के रूप में उन क्रियाओं अथवा कार्यों को लिया जाता है जिनके करने से मनुष्य का लौकिक व्यवहार श्रेष्ठ बनता है। इनके अन्तर्गत आत्मिक, मानसिक और शारीरिक उन्नति कराने वाले, मानव-तत्व और देव-तत्व का विकास कराने वाले, उत्तम सुख-साधन, श्रेष्ठ व्यावहारिक कर्तव्य, मर्यादाएं और विधान का समावेश होता है। इस प्रकार इन कार्यों एवं कर्तव्य कर्मों को विधानपूर्वक करना ही धर्म है जिसका पालन करने से शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास होता है और मनुष्य अपने जीवन को श्रेष्ठमार्ग पर लेकर चलने में सक्षम बनता है।

भारतीय दर्शन शास्त्र में धर्म के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। वैशेषिक दर्शनकार महर्षि कणाद मुनि धर्म को परिभाषित

करते हुए उपदेश करते हैं-

यतोऽभ्युदयनि:श्रेयससिद्धि: स धर्म:।

(वैशेषिक दर्शन 1/1/2)

जिसके आचरण से मनुष्य की त्रिविध (आत्मिक, मानसिक व शारीरिक) उन्नति और व्यावहारिक उत्तम सुख की प्राप्ति एवं वृद्धि हो तथा मोक्ष सुख की सिद्धि करे, वह आचरण या कर्तव्य धर्म है।[3] इसी प्रकार पूर्व मीमांसा ग्रन्थ में धर्म को परिभाषित करते हुए उपदेश किया गया है कि वेदों में मनुष्यों को करने के लिए जो कर्तव्य विहित किये गये हैं, वही धर्म है।[4] यहां पर धर्म का आधार वेद को स्वीकार किया गया है। महर्षि मनु महाराज धर्म के दस लक्षणों का उपदेश करते हुए कहते हैं-

धृति: क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रह:।
धीर्विधा सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।[5]

(मनुस्मृति 6/92)

धृति (धैर्य), क्षमा (अपना अपकार करने वाले का भी उपकार करना), दम (हमेशा संयम से धर्म में लगे रहना), अस्तेय (चोरी न करना), शौच (भीतर और बाहर की पवित्रता), इन्द्रिय निग्रह (इन्द्रियों को हमेशा धर्माचरण में लगाना), धी (सत्कर्मों से बुद्धि को बढ़ाना), विद्या (यथार्थ ज्ञान लेना), सत्यम् (मनसा-वाचा-कर्मणा सत्य का आचरण करना) और अक्रोध (क्रोध को छोड़कर हमेशा शान्त रहना) यही धर्म के दस लक्षण हैं।

1. धृति- धर्म के दस लक्षणों में सबसे प्रथम स्थान धृति का है। धृति का अर्थ होता है-धैर्य धारण करना। मानव जीवन में स्थान-स्थान पर मनुष्य के सम्मुख कठिनाईयों और विपत्तियों का आना बहुत स्वाभाविक होता है। सभी मनुष्यों को जीवन में पग-पग पर कठिनाईयों और विपत्तियों का सामना करना पड़ता है। कुछ लोग इनसे घबरा जाते हैं तो वहीं कुछ इनका सामना बहुत कुशलतापूर्वक करते हैं। वास्तव में जीवन की इन कठिनाईयों और विपत्तियों का सामना करने के लिए मनुष्य के पास सबसे बड़े शस्त्र के रूप में धैर्य की शक्ति विद्यमान होती है। इसीलिए जो मनुष्य धैर्य को अपनाते हुए जीवन की कठिनाईयों और विपत्तियों का सामना करता है, उसका नाम इतिहास में अमर हो जाता है। हमारे सभी महापुरुषों ने धर्म के इस प्रथम लक्षण का आचरण करते हुए अर्थात् धैर्य को अपनाते हुए कठिनाईयों और विपत्तियों का सामना किया और इन पर विजय प्राप्त करते हुए इतिहास के पन्नों में अमरता प्राप्त की है।

2. क्षमा- धर्म के दूसरे लक्षण के रूप में क्षमा का वर्णन आता है। एक धार्मिक मनुष्य के जीवन में क्षमा का भाव होना चाहिए। क्षमा मनुष्य का एक बहुत बड़ा शस्त्र है, गुण एवं आभूषण है। मनुष्य में बाहर से ही नहीं अपितु अन्त:करण में भी क्षमा रूपी गुण का उदय होना चाहिए। इसीलिए धर्म के दस लक्षणों में क्षमा को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। मनुष्य के साथ-साथ एक योग साधक भी जब योग साधना में प्रवृत्त होता है तो अनेक लोगों के कटुवचन भी सुनने पड़ते हैं अत: यदि साधक उनकी उन बातों में तथा भ्रान्तिपूर्ण बातों में आकर अपने को कठोर बना लेता है तो उसकी साधना में विघ्न आ सकते हैं। इसलिए किसी के अपकार करने पर भी उससे मित्रवत् व्यवहार करना चाहिए। क्षमा करने से मनुष्य का कुछ घटता नहीं है अपितु हृदय का विस्तार होता है। कवि रहीमदास जी कहते हैं-

क्षमा बड़न को चाहिए छोटन को उत्पात।।
का रहीम हरि को घटयो जो भृगु मारी लात।।

वस्तुत: क्षमा करने से बड़े-बड़े अपराधों का भी निराकरण हो जाता है, मनुष्य अपनी भूलों व गलतियों का भी सुधार कर लेता है। आपस में मनमुटाव रखकर कोई भी योग-पथ का पथिक नहीं बन सकता। इसलिए योगी का हृदय जहाँ दयालु व सरल हो, वहाँ क्षमाशील भी हो क्योंकि क्षमा में महती शक्ति होती है। ठीक इसी प्रकार सामान्य जनों को अपने जीवन में क्षमा को महत्वपूर्ण स्थान देते हुए धर्म का आचरण करना चाहिए।

3. दम- दम का अर्थ होता है- मन को वश में करना। मनुष्य का मन अत्यन्त चंचल स्वभाव का होता है। इस मन पर नियंत्रण न रहने पर मनुष्य इन्द्रियों का दास बन जाता है और बाह्य विषयों में ही प्रवृत्त रहने लगता है। इसीलिए योग के गन्थों में इस मन को प्राणायाम आदि योगाभ्यास द्वारा वश में करने का उपदेश किया जाता है। मन के विषय में कहा गया है-

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो:।

अर्थात् मन ही मनुष्य के बन्धन और मन ही मनुष्य को मोक्ष प्राप्ति का कारण है। इस मन पर संयम करते हुए मनुष्य इसे सुदृढ़ बना सका सकता है। मन पर संयम करते हुए मनोजय करने से मनुष्य का व्यक्तित्व श्रेष्ठ से महान् की ओर अग्रसर होने लगता है।

4. अस्तेय- अस्तेय की उत्पत्ति अ+स्तेय के मिलने से होती है। अ का अर्थ नहीं और स्तेय का अर्थ होता है-चोरी करना। अर्थात् अस्तेय का अर्थ होता है- चोरी के भावों का पूर्णरूप से त्याग कर देना। यजुर्वेद मनुष्य को शिक्षा देता है कि किसी दूसरे के धन की ओर ललचाई दृष्टि से मत देखो क्योंकि जो ऐसा करता है वह स्तेय है-

मा गृधः कस्यस्विदद्धनम्।।

(यजुर्वेद 40/1)

इसी प्रकार अन्याय पूर्वक (छल या बल से) किसी के धन, द्रव्य अथवा अधिकार आदि का हरण करना, अपना बना लेना स्तेय (चोरी) है। इन सबका कारण लोभ या राग ही है। जैन धर्म में भी साधक के लिए अस्तेय को एक महत्वपूर्ण व्रत माना है। कहा है कि पदार्थ सचेतन हो या अचेतन अल्प हो या बहुत, दाँत कुरेदने की सींक भी जिस गृहस्थ के अधिकार में हो उसकी आज्ञा लिए बिना पूर्ण संयमी साधक न तो स्वयं ग्रहण करते हैं न दूसरों को ग्रहण करने के लिए प्रेरित करते हैं और न ग्रहण करने वालों का अनुमोदन करते हैं। अतः साधक को चाहिए कि वह स्तेय की भावना को अपने मन से निकाल दे और अस्तेय के मार्ग का अनुसरण करता हुआ अपनी साधना में रत रहे। मनुष्य के जीवन में अस्तेयरूपी व्रत धारण करने से उसे सन्तोषरूपी महाधन प्राप्त होता है और वह अपने जीवन को सन्तुष्टि के साथ व्यतीत करने में सक्षम बनता है। अस्तेय के फल का वर्णन करते हुए महर्षि पतंजलि उपदेश करते हैं-

अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्।।

(पातंजल योगसूत्र 2/37)

चोरी के अभाव की दृढ़ स्थिति हो जाने पर उस योगी के सामने सब प्रकार के रत्न प्रकट हो जाते हैं।[6] वर्तमान समय में समाज में फैले असन्तोष का मूल कारण स्तेय की भावना के साथ ही जुड़ा है। आज का मानव किसी भी तरह उचित-अनुचित रीति से धन, वस्तु या अन्य लाभ प्राप्त करना चाहता है और अनेक प्रकार के कष्टों-पीड़ाओं के साथ घिरा हुआ रहता है। किन्तु धर्म के एक प्रमुख लक्षण के रूप में मनुष्य को अस्तेय का पालन करना चाहिए। अस्तेय पालन करते हुए मनुष्य अपने जीवन को सरलता, सन्तुष्टि और शान्ति के साथ व्यतीत कर सकता है।

5. शौच- शौच का अर्थ है पवित्रता अथवा शुद्धिकरण। वास्तव में धर्म का शुद्धि के साथ बहुत गहरा सम्बन्ध होता है। इसीलिए शुद्धि-पवित्रता को धर्म के एक प्रमुख लक्षण के रूप में स्वीकार किया जाता है। शुद्धि के भी दो प्रकार होते हैं- प्रथम बाह्य दूसरी आभ्यान्तर अर्थात् शारीरिक व मानसिक शुद्धि। मृत्तिका (मिट्टी) व जल आदि से पात्र, वस्त्र, स्थान, शरीर को शुद्ध या स्वच्छ रखना, शुद्ध सात्विक खान-पान से शरीर को सात्विक, नीरोग और स्वस्थ रखना, नित्य प्रति स्नान और स्वच्छ वस्त्रों को धारण करते हुए शरीर को शुद्ध व निर्मल बनाए रखना तथा धौती, बस्ति, नेति आदि शोधन क्रियाओं आदि से शरीर शोधन करना, यह सब क्रियाएं बाह्य शौच कहलाते हैं।

आभ्यान्तर या आन्तरिक शौच से अभिप्रायः काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा ईर्ष्या-द्वेष आदि चित्त के मलों को दूर करना, गन्दे विचारों को अच्छे विचारों से हटाना, दुर्व्यवहार को अच्छे व्यवहार से हटाना आन्तरिक या मानसिक शौच है। अविद्या आदि क्लेशों के मलों को विवेक ज्ञान द्वारा हटाना चित्त का शौच है। इस प्रकार जब मनुष्य शौच का पालन करते हुए शरीर व मन दोनों को शुद्ध कर लेता है तब उसके बाह्य और अन्तःकरण दोनों का शुद्धिकरण होने लगता है तथा उस मनुष्य को जीवन में धर्ममार्ग पर उन्नति प्राप्त होने लगती है। शौच में प्रतिष्ठित होने के फल पर प्रकाश डालते हुए महर्षि पतंजलि उपदेश करते हैं-

सत्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च।।

(पातंजल योगसूत्र 2/41)

अन्तःकरण की शुद्धि, मन में प्रसन्नता, चित्त की एकाग्रता, इन्द्रियों का वश में होना और आत्मसाक्षात्कार की योग्यता- ये पाँचों भी होते हैं।[7]

6. इन्द्रिय निग्रह- इन्द्रिय निग्रह का अर्थ है इन्द्रियों पर संयम स्थापित करते हुए धर्मानुसार आचरण करना। सामान्यतः इन्द्रियां सदैव अपने-अपने विषयों की ओर आकृष्ट होती है और इन्द्रियों की विषयों के प्रति आकृष्टता होने के कारण जीवात्मा धर्म-अधर्म का सही ज्ञान नहीं कर पाता है। श्रीमद् भगवद् गीता में भी यही बात दूसरे शब्दों में कही गयी है कि प्रकृति और पुरुष (जीवात्मा और परमात्मा) दोनों अनादि तत्व हैं। सत्व, रजस् और तमस् इन तीन गुणों से युक्त सम्पूर्ण पदार्थों को तथा राग-द्वेषादि विकारों को प्रकृति से उत्पन्न समझना चाहिए। साथ ही यह भी स्पष्ट किया गया है कि कार्य तत्व और कारण तत्वों का उपादान कारण प्रकृति है। कार्यतत्व दस है- 5 महाभूत (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) और इनके पाँच गुण (गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द), कारण तत्व 13 हैं- तीन अन्तःकरण (बुद्धि, अहंकार, मन), पाँच ज्ञानेन्द्रिय (आंख, नाक, कान, त्वचा और जीभ) और पाँच कर्मेन्द्रिय (वाणी, हाथ, पैर, मलेन्द्रिय, मूत्रेन्द्रिय)। इस प्रकार गीता में प्रकृति के अठारह तत्वों का उपदेश किया गया है। ये ही जीवात्मा के सुख-दुःख भोगने के कारण है। जीवात्मा सत्व, रजस् और तमस् गुणों से युक्त पदार्थों का भोग करता है और इन गुणों के कारण ही वह अच्छी और बुरी विविध योनियों में जन्म लेता है। इसका अभिप्रायः यह है कि जीवात्मा त्रिगुणात्मक पदार्थों के भोग के कारण ही जन्म-मरण के बन्धन में पड़ता है और उसका पुनर्जन्म होता है। परमात्मा साक्षी और मार्गदर्शक के रूप

में मानव शरीर में रहता है।[8] इस प्रकार इन्द्रियों पर संयम स्थापित करते हुए उनका निग्रह करना धर्म का प्रमुख लक्षण कहा गया है।

7. धी– 'धी' एक सकारात्मक रूप में प्रयुक्त होने वाला शब्द है। मनुष्य मादक द्रव्य, बुद्धिनाशक अन्य पदार्थ, दुष्टों का संग, आलस्य आदि को छोड़कर सत्पुरुषों के संग एवं योगाभ्यास से बुद्धि बढ़ाना[9] आदि क्रियाओं का सम्बन्ध 'धी' के साथ है। धी को प्राप्त करने के लिए गायत्री महामंत्र के जप का उपदेश शास्त्रों में किया जाता है। इसी प्रकार यजुर्वेद में ईश्वर से प्रार्थना की गयी है–

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा।।

(यजु. अ. 32/मं. 14)

हे अग्ने! अर्थात् प्रकाश स्वरूप परमेश्वर आपकी कृपा से जिस बुद्धि की उपासना विद्वान, ज्ञानी और योगी लोग करते हैं उसी बुद्धि से युक्त हमको इसी वर्तमान समय में आप बुद्धिमान कीजिए।[10]

8. विद्या– धर्म के आठवें लक्षण के रूप में विद्या का उपदेश किया जाता है। विद्या से अभिप्राय: सांसारिक या भौतिक ज्ञान से लेकर ईश्वर के आध्यात्मिक ज्ञान को प्राप्त करने से होता है। ईशोपनिषद् का कथन है–

विद्ययाऽमृतमश्नुते। (ईशोपनिषद्)

अर्थात् विद्या मनुष्य को मृत्यु से अमृत की ओर लेकर जाती है। अविद्या मनुष्य को बन्धनों में बांधती है तो वहीं दूसरी ओर विद्या मनुष्य को बन्धनों से मुक्ति प्रदान करने में सहायक होती है।

इसीलिए योग शास्त्र में वर्णित पंचक्लेशों में अविद्या को सबसे प्रथम क्लेश के रूप में वर्णित किया गया है। इसके साथ-साथ अविद्या को शेष सभी क्लेशों की जननी के रूप में वर्णित करते हुए उपदेश किया गया है–

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या।।

(पातंजल योगसूत्र 2/5)

अनित्य, अपवित्र, दु:ख और अनात्मा में नित्य, पवित्र, सुख और आत्मभाव की अनुभूति अविद्या है।[11] अविद्या को सामान्य भाषा में अज्ञान से भी सम्बोधित किया जाता है और यह अज्ञान मनुष्य को अंधकार की ओर लेकर जाता है। जिस प्रकार अंधकार में जाने से मनुष्य को अपना मार्ग स्पष्ट दिखलाई नहीं पड़ता है और इस अवस्था में वह किसी भी कठिन परिस्थिति से घिर सकता है। ठीक इसके विपरीत ज्ञान का प्रकाश मनुष्य को सही मार्ग का दर्शन कराता है और ज्ञान के मार्ग पर चलकर मनुष्य मुक्ति की उच्च अवस्था को प्राप्त करने की दिशा में अग्रसर होता है।

9. सत्य– सत्य का अर्थ है मनुष्य के द्वारा शरीर, मन और वाणी से एकसमान व्यवहार करना। इसे धर्म के एक प्रमुख लक्षण के रूप में वर्णित किया गया है। सत्य का बोलना और सत्य व्यवहार को आचरण में लाना वस्तुत: बहुत कठिन है। अत: सत्य को एक व्रत के रूप में पालन करने का उपदेश योग शास्त्र में किया गया है जिससे योग साधक एक व्रत के रूप में इसे धारण करते हुए अपने लक्ष्य की ओर निरन्तर बढ़ता जाता है। सत्यनिष्ठ होने से मनुष्य के आचार-विचार पवित्र होते हैं। वेद में कहा है – *सत्येनोत्तभिता भूमि* अर्थात् यह पृथ्वी सत्य से ही टिकी है यदि असत्य का या झूठ का ही अस्तित्व हो जाए तो यह धरती रसातल में समा जाए और समाज में त्राहि-त्राहि मच जाए। अत: सत्य का व्रत पालन करना बहुत महत्वपूर्ण है। उपनिषदों में भी इसीलिए प्रेरणा दी गई कि 'सत्यं वद' 'धर्मं चर' अर्थात् हे मनुष्य! सत्य का आचरण करो और धर्म के मार्ग का अनुसरण करो। इसलिए मनुष्य जब अपने मन में संकल्प ग्रहण कर लेता है कि 'सत्यं वदिष्यामि, नानृतम्' मैं सत्य ही बोलूँगा, कभी झूठ नहीं बोलूँगा तो समझो वह धर्म के मार्ग की एक सीढ़ी ऊपर चढ़ गया। धर्म का पालन करने वाले मनुष्य को सर्वप्रथम यह चाहिए कि वह मन, वचन और कर्म से सत्य का आचरण करे। इन्द्रिय और अन्त:करण से प्रत्यक्ष देखकर, सुनकर या अनुमान करके जैसा अनुभव किया हो, ठीक वैसा का वैसा ही भाव प्रकट करने के लिए प्रिय और हितकर बोले तथा दूसरे को उद्वेग न उत्पन्न करने वाले जो वचन बोले जाते है उनका नाम 'सत्य' है। ऐसे ज्ञान को ही सार्थक और सत्य कहा जाना चाहिए। इसी प्रकार कपट व छल रहित व्यवहार का नाम सत्य व्यवहार समझना चाहिए। पुण्य रूप सत्य वही है, जो किसी को हानि न पहुँचाए। सत्य रूपी व्रत का पालन करने से मनुष्य की आत्मा पवित्र होती है। सत्य में प्रतिष्ठित होने के फल पर प्रकाश डालते हुए महर्षि पतंजलि उपदेश करते हैं–

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्।।

(पातंजल योगसूत्र)

सत्य की दृढ़ स्थिति हो जाने पर क्रियाफल के आश्रय का भाव आ जाता है।[12] अर्थात् जब एक मनुष्य पूर्णरूप से सत्य में प्रतिष्ठित हो जाता है तब उसकी सभी क्रियाएं या कार्य फल प्रदान करने वाले हो जाते हैं और उसका कोई भी कार्य निष्फल नहीं रहता है।

10. अक्रोध– धर्म के दसवें लक्षण के रूप में अक्रोध का उपदेश किया गया है। अक्रोध का अर्थ होता है- क्रोध नहीं करना अथवा क्रोध की भावना का पूर्ण रूप से त्याग कर देना। क्रोध मनुष्य की

बुद्धि को नष्ट कर देता है जिससे मनुष्य को सही और गलत का ज्ञान नहीं हो पाता है। सही-गलत के ज्ञान के अभाव में मनुष्य सही मार्ग का चयन नहीं कर पाता है और बुद्धि के अभाव में पथभ्रष्ट हो जाता है। श्रीमद्भगवद् गीता में योगीराज श्रीकृष्ण उपदेश करते हुए कहते हैं-

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।

(श्रीमद्भगवद्गीता 02/63)

क्रोध से अत्यन्त मूढ़भाव उत्पन्न हो जाता है, मूढ़भाव से स्मृति में भ्रम हो जाता है, स्मृति में भ्रम हो जाने से बुद्धि अर्थात् ज्ञानशक्ति का नाश हो जाता है और बुद्धि का नाश हो जाने से पुरुष अपनी स्थिति से गिर जाता है।[13] इस प्रकार क्रोध को नरक के द्वार के रूप में वर्णित किया गया है और इस क्रोध का त्याग करना धर्म का लक्षण माना गया है। क्रोध की वृत्ति पर विजय प्राप्त करते हुए मनुष्य धर्म के मार्ग का अनुसरण करने में सक्षम बनता है।

इस प्रकार मानव जीवन के प्रथम पुरुषार्थ के रूप में धर्म का वर्णन आता है। मनुष्य का जीवन जन्म के साथ ही इस प्रथम पुरुषार्थ के साथ जुड़ जाता है और वह जीवन पर्यन्त इसके साथ जुड़ा रहता है। मानव जीवन में धर्म के महत्व पर प्रकाश डालते हुए आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी आर्य समाज के पाँचवे नियम में उपदेश करते हैं- ''मनुष्य को सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।''[14]

सारांशिका- मनुष्य अपने जीवन में प्रातःकाल से रात्रिकाल तक अनेक अर्थपूर्ण कार्य अथवा क्रियाएं करता रहता है जिनका उद्देश्य मनुष्य के अभीष्ट अर्थ को प्राप्त करना होता है, यह सभी कार्य अथवा क्रियाएं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामक चार मूल उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए किये जाते हैं अतः इन्हें पुरुषार्थ चतुष्टय कहा जाता है। भारतीय दर्शन में पुरुषार्थ चतुष्टय को अत्यन्त विशिष्ट और महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है और सम्पूर्ण मानव जीवन का आधार पुरुषार्थ चतुष्टय ही माना जाता है। पुरुषार्थ चतुष्टय का प्रथम अंग धर्म होता है। धर्म के पालन से एक ओर मनुष्य कार्यों को करता है जिससे उसका लौकिक व्यवहार श्रेष्ठ बनता है तो वहीं दूसरी ओर धर्म से मनुष्य आध्यात्मिक उद्देश्य को प्राप्त करता हुआ मोक्ष की ओर अग्रसर होता है। धर्म के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए महर्षि मनु महाराज ने धृति (धैर्य), क्षमा (अपना अपकार करने वाले का भी उपकार करना), दम (हमेशा संयम से धर्म में लगे रहना), अस्तेय (चोरी न करना), शौच (भीतर और बाहर की पवित्रता), इन्द्रिय निग्रह (इन्द्रियों को हमेशा धर्माचरण में लगाना), धी (सत्कर्मों से बुद्धि को बढ़ाना), विद्या (यथार्थ ज्ञान लेना), सत्यम (हमेशा सत्य का आचरण करना) और अक्रोध (क्रोध को छोड़कर हमेशा शान्त रहना) नामक धर्म के दस लक्षणों का उपदेश किया है। इनका पालन और आचरण करने से मनुष्य का इस लोक में भौतिक (व्यक्तित्व) विकास होता है और इसके साथ-साथ परलोक में वह मुक्ति की ओर अग्रसर होता है।

सन्दर्भ सूची -

1. विशुद्ध मनुस्मति, प्रो. सुरेन्द्र कुमार, प्रथम अध्याय पृष्ठ संख्या 02
2. विशुद्ध मनुस्मति, प्रो. सुरेन्द्र कुमार, प्रथम अध्याय पृष्ठ संख्या 02
3. विशुद्ध मनुस्मति, प्रो. सुरेन्द्र कुमार, प्रथम अध्याय पृष्ठ संख्या 03
4. विशुद्ध मनुस्मति, प्रो. सुरेन्द्र कुमार, प्रथम अध्याय पृष्ठ संख्या 03
5. विशुद्ध मनुस्मति, प्रो. सुरेन्द्र कुमार, षष्ठ अध्याय पृष्ठ संख्या 285
6. पातंजलयोगदर्शन, हरिकृष्णदास गोयन्दका, पृष्ठ संख्या 69
7. पातंजलयोगदर्शन, हरिकृष्णदास गोयन्दका, पृष्ठ संख्या 70
8. वैदिक दर्शन, पद्मश्री डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, पृष्ठ संख्या 104
9. विशुद्ध मनुस्मति, प्रो. सुरेन्द्र कुमार, षष्ठ अध्याय पृष्ठ संख्या 286
10. सत्यार्थ प्रकाश, स्वामी दयानन्द सरस्वती पृष्ठ संख्या 151
11. पातंजलयोगदर्शन, हरिकृष्णदास गोयन्दका, पृष्ठ संख्या 47
12. पातंजलयोगदर्शन, हरिकृष्णदास गोयन्दका, पृष्ठ संख्या 70
13. श्रीमदभगवद्गीता, गीता प्रेस गोरखपुर, पृष्ठ संख्या48
14. संध्या-अग्निहोत्र, डॉ. दिलीप वेदालंकार, पृष्ठ संख्या 287

ISSN 2278 - 0327

उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विज्ञान एवं कला संकाय के विद्यार्थियों की पर्यावरण के प्रति जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन

कुमार गौरव
शोधार्थी, शिक्षा संकाय
आर.के.डी.एफ. विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

प्रो., (डॉ.) मोहन सिंह पंवार
विभागाध्यक्ष, शिक्षा संकाय
आर.के.डी.एफ. विश्वविद्यालय, भोपाल

प्रस्तुत शोध पत्र में उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विज्ञान एवं कला संकाय के विद्यार्थियों की पर्यावरण के प्रति जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। न्यादर्श के रूप में 200 विद्यार्थियों (100 विज्ञान एवं 100 कला संकाय) का चयन साधारण यादृच्छिक न्यादर्श विधि द्वारा कर उन पर डॉ. प्रवीण कुमार झा की 'पर्यावरण जागरूकता मापनी' का प्रशासन किया गया। प्राप्त परिणामों के अनुसार उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विज्ञान एवं कला संकाय के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की पर्यावरण के प्रति जागरूकता में सार्थक अंतर पाया गया तथा विज्ञान संकाय के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की पर्यावरण के प्रति जागरूकता, कला संकाय के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की तुलना में उच्च पाई गयी। उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विज्ञान/कला संकाय के छात्र एवं छात्राओं की पर्यावरण के प्रति जागरूकता में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

मुख्य शब्दः उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, विज्ञान एवं कला संकाय, पर्यावरण के प्रति जागरूकता

पर्यावरण मनुष्य के अस्तित्व का प्रमुख आधार है। प्रकृति और मानव का सम्बंध आदिकाल से है किन्तु मानव ने ही इन सम्बंधों को तोड़ा है तथा प्रकृति को दूषित किया है। प्रकृति अपने प्राकृतिक क्रियाकलापों से वातावरण को शुद्ध व स्वच्छ रखने का प्रयास करती है किन्तु मानव की विकासात्मक क्रियाओं के परिणामस्वरूप प्रदूषण का जन्म होता है। प्रदूषण क्या है? इसे समझने के लिए एक साधारण कहावत है कि किसी भी चीज की अति बुरी होती है। पर्यावरण की भी निश्चित वहन क्षमता होती है और सभी जैविक और भौतिक कारक इस प्रकार अन्योन्याश्रित क्रियाओं से बंधे होते हैं कि किसी एक कारक में हुए परिवर्तन का प्रभाव अन्य सभी अंगों पर होता है। आज हमारे द्वारा किए गए प्रकृति के अंधाधुन्ध प्रयोग के कारण हमें स्वच्छ वायु प्राप्त करना कठिन हो रहा है। इन सब का कारण यह है कि हम सभी मानव प्रकृति को एक संसाधन के रूप में देखते हैं। रूसो के अनुसार – ''प्रत्येक वस्तु प्रकृति के नियन्ता के यहां से अच्छे रूप में आती है, केवल मनुष्य के सम्पर्क से ही वह दूषित हो जाती है'' उनका यह भी कथन भी है कि ''विधाता प्रत्येक वस्तु को अच्छा बनाता है, परन्तु मनुष्य उसके साथ छेड़छाड़ करता है और उसे दूषित बना देता है।''

पृथ्वी पर रहने वाले जीवों (मनुष्यों) की आवश्यकता की पूर्ति हो सके इसके लिए हमें प्रकृति का संतुलित दोहन करना चाहिए ताकि मानव तथा पर्यावरण में सद्भावना के सम्बंध बने रह सके। इसके लिए विश्व के अर्थशास्त्री, शिक्षाशास्त्री तथा पर्यावरणविदों ने नई धारणा प्रस्तुत की है जिसे पर्यावरण शिक्षा कहा जाता है। पर्यावरण शिक्षा द्वारा व्यक्ति को इस प्रकार शिक्षित किया जाए ताकि वह अपने चारों ओर होने वाली पर्यावरण (घटनाओं) समस्याओं को जान सके और उन समस्याओं को दूर करे के लिए उसे तकनीकी ज्ञान प्राप्त हो ताकि वह पर्यावरण को स्वच्छ रखने में अपना सहयोग दे सके। वर्तमान में पर्यावरण से जुड़ी हुई समस्याओं का निराकरण करना अत्यंत आवश्यक हो गया है, जिसमें मानव समाज का अस्तित्व सुरक्षित रह सके। अतः इसी कारण से शोधकर्ता ने उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विज्ञान एवं कला संकाय के विद्यार्थियों की पर्यावरण के प्रति जागरूकता का अध्ययन करने का निश्चय किया है।

इस संदर्भ में अनेक शोध कार्य किए गये हैं जैसे **मिति, राजन** (1996) ने अपने अध्ययन में पाया कि विज्ञान विषय से

सम्बन्ध रखने वाले छात्रों में पर्यावरण जागरूकता, कला तथा वाणिज्य विषय पढ़ने वाले छात्रों से अधिक थी। वाणिज्य संकाय के छात्रों में पर्यावरण जागरूकता सबसे कम पाई गई। **सिंह** (2004) ने अपने अध्ययन में पाया कि विज्ञान वर्ग के छात्रों में पर्यावरणीय जागरूकता, कला वर्ग के छात्रों की तुलना में अधिक है। **अस्टालिन** (2011) के अध्ययन के निष्कर्षत: ज्ञात हुआ कि कला एवं विज्ञान संकाय के विद्यार्थियों की पर्यावरण के प्रति जागरूकता में सार्थक अंतर पाया गया तथा विज्ञान संकाय के विद्यार्थी, कला संकाय के विद्यार्थियों की तुलना में पर्यावरण के प्रति अधिक जागरूक पाए गए। **शर्मा** (2014) के अध्ययन के निष्कर्षत: ज्ञात हुआ कि शहरी क्षेत्र के कला एवं वाणिज्य संकाय के 100 प्रतिशत छात्रों में उच्च स्तर की पर्यावरण जागरूकता पाई गई जबकि विज्ञान संकाय के 93.33 प्रतिशत छात्रों में उच्च स्तर की एवं 6.67 प्रतिशत छात्रों में औसत स्तर की पर्यावरण जागरूकता पाई गई। विज्ञान, वाणिज्य तथा कला संकाय के विद्यार्थियों की पर्यावरण के प्रति जागरूकता में सार्थक अंतर पाया गया। **श्रीवास्तव** (2015) के अध्ययन के निष्कर्षत: ज्ञात हुआ कि विज्ञान एवं कला संकाय के विद्यार्थियों की पर्यावरणीय जागरूकता में सार्थक अंतर नहीं पाया गया। **सिंह, राजवीर** (2016) के अध्ययन के निष्कर्षत: ज्ञात हुआ कि कला एवं विज्ञान संकाय के विद्यार्थियों की पर्यावरण जागरूकता में सार्थक अंतर पाया गया तथा विज्ञान संकाय के विद्यार्थियों में, कला संकाय के विद्यार्थियों की तुलना में पर्यावरण के प्रति बेहतर जागरूकता पाई गई। **इस्लाम, सयैदिल व रज्जाक, रहैद एस.के.** (2017) के अध्ययन के निष्कर्षत: ज्ञात हुआ कि कला एवं विज्ञान संकाय के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की पर्यावरण के प्रति जागरूकता में सार्थक अंतर पाया गया तथा विज्ञान संकाय के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों में, कला संकाय के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की तुलना में पर्यावरण के प्रति बेहतर जागरूकता पाई गई। विज्ञान संकाय/कला संकाय के छात्र एवं छात्राओं की पर्यावरण के प्रति जागरूकता में सार्थक अंतर पाया गया तथा विज्ञान/कला संकाय की छात्राओं में, विज्ञान/कला संकाय के छात्रों की तुलना में पर्यावरण के प्रति बेहतर जागरूकता पाई गई।

उद्देश्य:-

1. उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विज्ञान एवं कला संकाय के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की पर्यावरण के प्रति जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विज्ञान/कला संकाय के छात्र एवं छात्राओं की पर्यावरण के प्रति जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पना:-

1. उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विज्ञान एवं कला संकाय के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की पर्यावरण के प्रति जागरूकता में सार्थक अंतर नहीं है।
2. उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विज्ञान/कला संकाय के छात्र एवं छात्राओं की पर्यावरण के प्रति जागरूकता में सार्थक अंतर नहीं है।

न्यादर्श-

न्यादर्श के चयन के लिए भोपाल जिले में स्थित 04 उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों का चयन कर इन विद्यालयों की कक्षा 11वीं में अध्ययनरत 200 विद्यार्थियों (100 विज्ञान एवं 100 कला संकाय) का चयन साधारण यादृच्छिक विधि द्वारा किया गया।

उपकरण:-

उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की पर्यावरण के प्रति जागरूकता का अध्ययन करने के लिए डॉ. प्रवीण कुमार झा की 'पर्यावरण जागरूकता मापनी' का उपयोग किया गया है।

शोध विधि:-

इस शोध कार्य हेतु सर्वप्रथम भोपाल जिले में स्थित समस्त उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों की सूची प्राप्त की गई तथा इस सूची में से 04 उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों का चयन करके, इन विद्यालयों की कक्षा 11वीं में अध्ययनरत 200 विद्यार्थियों 6 विज्ञान संकाय के 100 (50 छात्र एवं 50 छात्राएँ) तथा कला संकाय के 100 (50 छात्र एवं 50 छात्राएँ)8 का चयन साधारण यादृच्छिक विधि द्वारा कर उन पर डॉ. प्रवीण कुमार झा की 'पर्यावरण जागरूकता मापनी' का प्रशासन किया गया। प्राप्तांकों के आधार पर मॉस्टर शीट तैयार की गई। क्रांतिक अनुपात परीक्षण के द्वारा आंकड़ों का विश्लेषण कर परिणाम प्राप्त किये गये तथा प्राप्त परिणामों के आधार पर निष्कर्ष निकाले गये।

परिणामों का विश्लेषण:-

परिकल्पना क्रमांक 1. उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विज्ञान एवं कला संकाय के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की पर्यावरण के प्रति जागरूकता में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

तालिका 01

उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विज्ञान एवं कला संकाय के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की पर्यावरण के प्रति जागरूकता संबंधी तुलनात्मक परिणाम

समूह	संकाय	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात मान	'पी' मान
छात्र	विज्ञान	50	38.36	7.29	2.99	< 0.01
	कला	50	33.88	7.71		
छात्रा	विज्ञान	50	37.88	6.67	4.20	< 0.01
	कला	50	31.88	7.60		
विद्यार्थी	विज्ञान	100	38.12	6.99	5.03	< 0.01
	कला	100	32.88	7.72		

स्वतंत्रता के अंश 98, 198

0.01 स्तर पर सार्थकता का मान – 2.63, 2.60

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट है कि उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विज्ञान एवं कला संकाय के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की पर्यावरण के प्रति जागरूकता में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर है, क्योंकि इनके लिए प्राप्त क्रांतिक अनुपात के मान क्रमश: 2.99, 4.20, 5.03 स्वतंत्रता के अंश क्रमश: 98, 98, 198 पर सार्थकता के 0.01 स्तर के लिए निर्धारित न्यूनतम मान क्रमश: 2.63, 2.63, 2.60 की अपेक्षा अधिक हैं।

अत: उपरोक्त परिणामों के आधार पर कहा जा सकता हैं कि उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विज्ञान एवं कला संकाय के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की पर्यावरण के प्रति जागरूकता में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर पाया गया तथा विज्ञान संकाय के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की पर्यावरण के प्रति जागरूकता, कला संकाय के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की तुलना में उच्च पाई गयी।

अत: इन परिणामों के आधार पर पूर्व में ली गयी उपरोक्त परिकल्पना ''उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विज्ञान एवं कला संकाय के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की पर्यावरण के प्रति जागरूकता में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है'', अस्वीकृत की जाती है।

परिकल्पना क्रमांक 2. उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विज्ञान/कला संकाय के छात्र एवं छात्राओं की पर्यावरण के प्रति जागरूकता में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

तालिका 02

उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विज्ञान/कला संकाय के छात्र एवं छात्राओं की पर्यावरण के प्रति जागरूकता संबंधी तुलनात्मक परिणाम

संकाय	समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात मान	'पी' मान
विज्ञान	छात्र	50	38.36	7.29	0.34	> 0.05
	छात्राएँ	50	37.88	6.67		
कला	छात्र	50	33.88	7.71	1.31	> 0.05
	छात्राएँ	50	31.88	7.60		

स्वतंत्रता के अंश 98

0.05 स्तर पर सार्थकता का मान – 1.98

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट है कि उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विज्ञान/कला संकाय के छात्र एवं छात्राओं की पर्यावरण के प्रति जागरूकता में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर नहीं है, क्योंकि इनके लिए प्राप्त क्रांतिक अनुपात के मान क्रमष: 0.34, 1.31 स्वतंत्रता के अंश 98 पर सार्थकता के 0.05 स्तर के लिए निर्धारित न्यूनतम मान 1.98 की अपेक्षा कम हैं।

अत: उपरोक्त परिणामों के आधार पर कहा जा सकता हैं कि उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विज्ञान/कला संकाय के छात्र एवं छात्राओं की पर्यावरण के प्रति जागरूकता में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

अत: इन परिणामों के आधार पर पूर्व में ली गयी उपरोक्त परिकल्पना ''उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विज्ञान/कला संकाय के छात्र एवं छात्राओं की पर्यावरण के प्रति जागरूकता में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है'', स्वीकृत की जाती है।

निष्कर्ष–

1. उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विज्ञान एवं कला संकाय के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की पर्यावरण के प्रति जागरूकता में सार्थक अंतर पाया गया तथा विज्ञान संकाय के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की पर्यावरण के प्रति जागरूकता, कला संकाय के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की तुलना में उच्च पाई गयी।
2. उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विज्ञान/कला संकाय के छात्र एवं छात्राओं की पर्यावरण के प्रति जागरूकता में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

संदर्भ ग्रन्थ सूची –

- बाना, वीणा एवं बाना, राजीव (नवीनतम संस्करण): पर्यावरण शिक्षा, रिसर्च पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली
- चक्रवर्त्ती, पुरुषोत्तम भट्ट (2006) 'पर्यावरण चेतना', म.प्र.

हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल

- गोयल, एम. के. (2007-08) 'पर्यावरण शिक्षा', अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा
- जैन, एस.के. (2004) 'पर्यावरण शिक्षा', अग्रसेन शिक्षा प्रकाशन, जयपुर
- श्रीवास्तव, पंकज (2008) 'पर्यावरण शिक्षा', म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल
- उपाध्याय, राधावल्लभ (2007-08) 'पर्यावरण शिक्षा', अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा
- शर्मा, आर.ए. (2008) 'पर्यावरण शिक्षा', आर.लाल बुक डिपो, मेरठ
- श्रीवास्तव, डी. एन. (नवीन संस्करण) 'सांख्यिकीय एवं मापन', विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
- मिति, राजन (1996) ''कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय के स्नात्कोत्तर छात्रों में पर्यावरण जागरूकता शिक्षा का अध्ययन'', अप्रकाशित लघुशोध प्रबंध, शिक्षा विभाग, कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरूक्षेत्र
- श्रीवास्तव, सुनीता (2015) 'बी.एड़. महाविद्यालय के विद्यार्थियों की पर्यावरणीय जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन', इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च-ग्रन्थालय, वॉल्यूम.-3, इस्यु-9, पेज नम्बर 1-3
- **Astalin, Prashart kumar (2011)** "A Study of Environmental Awareness Among Higher Secondary Students And Some Educational Factors Affecting it", *Zenith International Journal of Multidisciplinary Research, Volume 1, Issue 7, November 2011, Page No. 90-101*
- **Islam, Sayedil and Razzak, Rahed S.K. (2017)** "A comparative Study of Environmental Awareness Among undergraduate students of Arts And Science Faculties of A.M.U.", *International Journal of Research in Social Sciences, Volume 7, Issue 10, October 2017, Page No. 645-657*
- **Sharma, Neeraj Kumar (2014)** "A Study on Environmental Awareness of College Students in Relation to Sex, Rural-Urban background and Academic Streams wise", *The Online Journal of new Horizons in Education, Volume 4, Issue 2, April 2014, Page No. 15-20*
- **Singh, Rajvir (2016)** "Environmental Awareness Among Undergraduate Students in Relation to their Stream of Study and Area of Residence", *An International Peer Reviewed & Referred Scholarly Research Journal For Interdisciplinary Studies, Volume 4/26, Sep.-Oct. 2016, Page No. 2830-2845*

ISSN 2278 - 0327

सुधा अरोड़ा के कहानी संग्रह 'काला शुक्रवार' में सामाजिक समस्या

सविता हुड्डा
शोधार्थी
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

डॉ. संजीव कुमार
प्रोफेसर एवं पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

सारांश

मनुष्य एक चिन्तनशील प्राणी है। जब-जब मनुष्य में चेतना का विकास हुआ तब-तब मनुष्य ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किसी न किसी समूह का निर्माण किया। साधारण अर्थ में इसी प्रकार के समूह को समाज का नाम दिया गया। जब भारत वर्ष में आर्यों का आगमन हुआ तब उन्हें अपने जैसी विचारधाराओं का एक समूह बनाया जो आगे चल कर आर्य समाज के नाम से जाना गया। इसी तरह जैन समाज, हिन्दु समाज आदि यह समाज शब्द का उदाहरण है। डॉ. कुँवरपाल सिंह के अनुसार समाज की परिभाषा 'एक ऐसे संगठन के रूप में की जा सकती है जो निरंतर विकसित होता रहता है तथा जिसके प्रमुख क्रियाकलाप किसी देवी शक्ति पर नहीं बल्कि उत्पादन प्रणाली के विकास पर आधारित होते है।'[1] डॉ. स्वर्णलता के अनुसार 'वह सामाजिक सम्बन्ध जो एक दूसरे को प्रभावित करें।'[2] अत: हम कह सकते हैं कि समाज की संरचना कुछ इस तरह की होती है कि उसमें अनेक प्रकार की भिन्नताएँ होते हुए भी भिन्नता दिखाई नहीं देती। समाज का प्रत्येक सदस्य किसी न किसी रूप से एक दूसरे से जुड़े हुए होते है। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं। यह भी बात सत्य है कि समाज में अनेक बुराईयाँ, कुप्रथाएँ भी विद्यमान होती है जो किसी एक मनुष्य के लिए नहीं बल्कि पूरे समाज के लिए हानिकारक होती है। इस प्रकार की अनेक समस्याएँ सुधा अरोड़ा ने अपने इस कहानी 'संग्रह काला शुक्रवार' में दिखाई है जिसका अध्ययन हम यहाँ करेगें।

प्रस्तावना

एक साहित्यकार का संबंध समाज से बहुत गहरा जुड़ा हुआ होता है। वह जो कुछ भी समाज में देखता है, जिस वातावरण में अपना जीवन व्यतीत करता है, उसी को अपने साहित्य में अभिव्यक्त करता है। सुधा अरोड़ा ने अपनी कहानी 'काला शुक्रवार' में कुछ ऐसी ही सामाजिक समस्याओं को उजागर किया है जो किसी भी समाज के लिए घातक सिद्ध हो सकती है। समाज में अनेक प्रकार के आचार, संचार, संस्कार के लोग विद्यमान होते है तथा इन्हीं के आधार पर समाज में अनेक समूह बने हुए होते है। जिसके कारण समाज में टकराव की स्थिति बनी रहती है। कहानी का पुरुष पात्र 'मीराज' जो अपने ही क्षेत्र में डरा हुआ रहता है क्योंकि वह मुस्लिम धर्म से सबंध रखता था। यदा-कदा जब कभी इस क्षेत्र में सम्प्रदायिक दंगें होते तो कभी मुस्लिम अपने धर्म को खतरे में समझते तो कभी हिन्दु अपने धर्म को जिसके कारण तनाव की स्थिति बन जाती। मीराज एक अपने साहब पिंटो की कार चलाता था। जब एक दिन पिंटो साहब अपने ऑफिस से किसी काम के लिए बाहर चले जाते हैं तब मीराज गाड़ी लेकर पिंटो के घर पहुँचते हैं। जैसे ही पिंटो साहब की पत्नी मीराज को देखती है तो वह चकित रह जाती है क्योंकि मीराज मुस्लिम होने के कारण भी अपने चेहरे पर दाड़ी नहीं रख रहा था। पिंटो साहब की पत्नी मीराज से इससे संबंधित बात भी करती है तब मीराज अपने साहब ही पत्नी से कहता है 'मजहब के नाम पर दो जून की रोटी भी तो नहीं मिलती, मीराज ने मेरी ओर देखा और उसकी आँखों की नमी ने मुझे दुबारा शर्मिन्दा किया, इसी दाढ़ी के चलते अपना पड़ोसी पीटर मारा गया। अपनी कम्पनी के रजत सरीन साहब का तो आपको मालूम ही होगा। फसाद में दंगाइयों ने पकड़ लिया था। नसीब अच्छा था, कार के लाइसेंस में अपना नाम दिखाकर छूट गए।'[3] इस प्रकार कहानी में दिखाया गया है कि जो मनुष्य समाज में रहकर अपना विकास करता है वही समाज के कुछ लोग अपनी तुच्छ मानसिकता के कारण धर्म के नाम पर एक दूसरे को हानि पहुँचाते रहते है जो धीरे-धीरे एक विकासशील समाज के लिए बहुत गहरी समस्या बन जाती है।

लेखिका ने 'बोलो, भ्रष्टाचार की जय!' कहानी में समाज में बढ़ रही भ्रष्टाचार की समस्या ही दिखाया है। कहानी में दिखाया गया है कि किस तरह भ्रष्टाचार की समस्या आज आम-आदमी के लिए घातक बनती जा रही है। आज समाज का कोई भी आयाम हो, वो सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक या आर्थिक हो, हर क्षेत्र में भ्रष्टाचार, अपनी जड़ फैलाए हुए दिखाई देता है। आज प्रकृति के सीमित संसाधनों पर सीमित लोगों का ही वर्चस्व हो रहा है जिसके कारण समाज में असुन्तलन की स्थिति उत्पन्न हो रही है जो एक भ्रष्टाचार की समस्या को ही बढ़ावा दे रहा है। आज भ्रष्टाचार की समस्या के कारण गरीब आदमी और गरीब होता जा रहा है तथा अमीर आदमी और अमीर होता जा रहा है। जब-जब समाज में कोई भी बुराई उत्पन्न होती है उसका सबसे ज्यादा दंश आम आदमी को ही सहना पड़ता है। भ्रष्टाचार की समस्या के कारण ही आज गरीब आदमी को अपना जीवन निर्वाह करना कठिन हो रहा है। आज न्याय व्यवस्था निरन्तर बिगड़ती जा रही है। आम आदमी को समझ ही नहीं आता कि न्याय पाने के लिए वो किधर जाए। कहानी में भी कुछ इसी तरह के दृश्य को दिखाया गया हैं। 'मैंने अपने बॉस-मिस्टर बी. के. मनिहार के भ्रष्टाचार का पर्दाफाश करना चाहता था और उसकी बड़ी महँगी कीमत मुझे चुकानी पड़ी थी। खैर यह सब सोचकर क्या फायदा? मैंने अपना चेहरा आईने के सामने से हटा लिया और बड़ी तकलीफ से होंठ खींचकर मुस्कुराई।' कहानी की स्त्री पात्र खुद लेखिका 'मैं' कहकर सम्बोधित की गई है स्त्री पात्र जो मैं कहकर सम्बोधित की गई है किसी ऑफिस में काम करती हुई दिखाई गई है, तथा एक रोज अपने बोस मिस्टर बी. के. मनिहार के भ्रष्टाचार के कारण उसे अपनी नौकारी से हाथ धोना पड़ा। हुआ कुछ इस प्रकार था कि मिस्टर बी. के. मनिहार की रेख-देख में कम्पनी में एक 'श्रमिक-अधिकार सुरक्षा समिति' बनाई गई थी। कहने को तो इस समिति का कार्य श्रमिक तथा मजदूर लोगों के अधिकारों की सुरक्षा करना था लेकिन भौतिक धरातल पर असलियत कुछ और ही थी। यही समिति अपने नाम की आड़ में गरीब और मजदूर लोगों का शोषण करती थी। जो भी मजदूर कभी इस समीति के विरुद्ध अपनी आवाज उठाता तो उसे नौकरी से निकाल दिया जाता था जिसके डर के कारण मिस्टर मनिहार के प्रति कोई विरोधी आवाज नहीं निकालता था। कहानी में स्त्री पात्र के माध्यम से दिखाया गया है कि जब एक रोज मैंने अपनी कम्पनी से बोनस के रूप में पाँच हजार रुपये के पीछे अनेक सपने संजोय हुए थे। जिस दिन बोनस के रूप में मैंने वो पाँच हजार रुपये मिले थे उसी दिन मिस्टर मनिहार हमारे घर 'श्रमिक-अधिकार सुरक्षा समीति' के नाम पर चंदा लेने के लिए आया था। उस पल अपने बोस को अपने ही घर देखकर मैं बहुत प्रसन्न हो गई थी तथा उसी प्रसन्नता के वशीभूत होकर मैंने बोनस के रूप में प्राप्त कि हुई राशि के रूप में पाँच हजार रुपये अपने बोस मिस्ट मनिहार के हाथ में थमा दिये थे। लेकिन धीरे-धीरे समय बीतता गया और चंदा के रूप में इकट्ठा की गई राशि भी धीरे-धीरे गुप्त होती गई इतना होने के बावजूद कोई भी कर्मचारी न्याय पाने के लिए अपनी आवाज नहीं उठाता था। जब मैंने अपने हक के प्रति आवाज उठाने की सोची तो मैं यह सब देखकर चकित रह गई, एक रोज जब मैं उन पैसों से संबंधित मिस्टर मनिहार से मिलने के लिए पहुँची तब उन्होंने मुझ से जवाब दिया 'देखो, मेरे पास तुम्हारे कोई पाँच-पाँच हजार रुपए नहीं, माफ करना।' वह एक-एक शब्द चबा-चबाकर बोले, 'हाँ, तुम्हें जरूरत है तो यह लो ...' उन्होंने जेब से सौ का एक कड़कता चमकदार नोट निकाला, इस वक्त मेरे पास यही हैं।'[4] इस प्रकार जब मैंने अपने बोस के प्रति आवाज उठानी चाही तो मुझे नौकरी से निकाल दिया गया। कहानी के माध्यम से दिखाया गया है कि देश में ऐसे कितने मिस्टर मनिहार बैठे हैं जो आम आदमी का शोषण करते रहते हैं। समाज में निचले स्तर से लगकर ऊपरी स्तर तक भ्रष्टाचार फैला हुआ है जिसके कारण आम-आदमी का जीना मुश्किल हो रहा है।

जनकी नामा कहानी में भी लेखिका ने भ्रष्टाचार का पर्दाफाश किया है कहानी में दिखाया गया है कि किस तरह नेता-राजनेता लोग अपने स्वार्थ की राजनीति के लिए समाज का शोषण करते रहते हैं, समाज के लोगों को आपस में ही लड़वाते रहते हैं। कभी धर्म के नाम पर तो कभी जाति के नाम पर समाज में अपनी वोट की राजनीति करते रहते हैं जिसके कारण समाज में टकराव की स्थिति उत्पन्न होती रहती है। कहानी में एक जगह दिखाया भी गया है 'अब क्या बताएँ, करूणा जी, धर्म एक आदमी की जिन्दगी में इतना बड़ा रोल अदा नहीं करता, जितना बड़ा राजनेताओं ने उसे स्वार्थवश बना दिया है। समूची बम्बई आग में झुलस रही है। दंगों का फायदा उठाकर बड़े-बड़े बिल्डर्स बस्तियों की बस्तियाँ उजाड़ रहे हैं और यहाँ हिन्दुस्तान का भूतपूर्व प्रधानमन्त्री द्रुतात्मा चौक पर सुरक्षा पुलिस और ई. सी. जी. ब्लड प्रेशर के यन्त्रों से लैसे डॉक्टरों के जमघट के बीच अपनी भूख-हड़ताल का प्रदर्शन कर रहा है। ऐसी-ऐसी नौटंकियाँ होती है इस देश में कि राजनीति दंगल और कुश्ती का अखाड़ा बनकर रह गई है। जब हमारी

पुलिस को बैमौत मारी जाती गरीब जनता के बीच होना चाहिए, वह प्रधानमंत्री के कारों के काफिले के लिए सुरक्षित रास्ता तैयार कर रही है।'[5] इस प्रकार कहानी में दिखाया गया है कि शासन और प्रशासन इस तरह अपनी-अपनी जिम्मेदारियों से भाग रहे हैं। जिस शासन का कार्य आम-आदमी की सेवा तथा उनकी सुरक्षा करना होता है आज वही शासन के लोग आम जनता का शोषण कर रहे हैं तथा समाज को जोड़ने की बजाय तोड़ने का कार्य कर रहे हैं जो कि आज एक सुंगठित समाज के लिए एक बहुत बड़ी समस्या बन गई है।

सुधा अरोड़ा ने अपनी एक और कहानी 'तानाशाही' में आज वर्तमान में चल रही सबसे गम्भीर सामाजिक समस्या को उजागर किया है आज मानव मूल्य निरन्तर समाप्त होते जा रहे है जिसके कारण समाज की सबसे छोटी इकाई परिवार में ही टकराव की स्थिति बनी रहती है। आज संयुक्त परिवार एकल परिवार में विघटित हो रहे हैं। आज की युवा पीढ़ी में धैर्य बिल्कुल समाप्त होता जा रहा है जिसके कारण घर के बुजुर्गों और युवा पीढ़ी में तालमेल का अभाव देखा जा सकता है। हालाँकि यह कोई नई समस्या नहीं है नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी में टकराव सदियों से देखा जा सकता है लेकिन अन्तर ये है कि आज की जो युवा पीढ़ी है एक छोटी सी बात पर इतनी उत्तेजना में भर जाती है कि कुछ ही पल में पूरा भरा परिवार बिखर जाता है। आज की युवा पीढ़ी अपने संस्कारों के लिए नहीं बल्कि अपने अधिकारों के लिए जीना चाहती है इसलिए आज किसी भी रिश्ते का कोई मोल नहीं रह गया है एक छोटी सी बात के लिए भाई-भाई की हत्या कर देता है, पति-पत्नी की हत्या कर देता है तथा बहन भाई की भी हत्या कर देती है। पति-पत्नी की हत्या कर देता है तथा बहन भाई की भी हत्या कर देती है। आज पिता पुत्र के रिश्तों में बहुत टकराव देखा जाता है कहानी में भी इसी तरह की समस्या को दिखाया गया है कहानी का पुत्र पुरुष पात्र सुनील अपने पिता के साथ समझता रहता है तथा एक छोटी सी बात पर अपना कर तक त्याग देने को सोचता है तब सुनील का पिता सोचता है 'जिस युग में बाप-बेटों में बनी है? हम ही बाण से कितना लड़ा करते थे। हाँ आज के लड़कों में स्वाभिमान बहुत है, हठ ज्यादा हैं।'[6] कहानी में एक जगह और मानव मूल्यों को गिरते हुए दिखाया गया है। शायद पिताजी ने इस बीच छत पर से नीचे थूक दिया था और सुनील भाई अपनी पूरी आवाज भर चिल्लाते हुए भीतर आ गए थे, 'मैं इस बार में अब एक मिनट भी नही रह सकता यहाँ,[7] इस प्रकार कहानी में दिखाया गया है कि किस तरह एक छोटी से बात पर सुनील बिलख जाता है और घर छोड़ने की बात भी करता है आज वर्तमान में ऐसे कितनी बार भी देखने को मिल जाते हैं जो छोटी-छोटी बातों पर बिखर जाते है। ऐसा लगता है कि आज की युवा पीढ़ी में संयम नाम से कोई चीज रही ही नहीं रही जिसके कारण आज संयुक्त परिवार एकल परिवार में परिवर्तित हो रहे हैं जो एक संगठित समाज के लिए एक गम्भीर समस्या बनती जा रही है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष के तौर पर हम कह सकते हैं कि सुधा अरोड़ा के कहानी संग्रह 'काला शुक्रवार' में समाज की अनेक समस्याओं को उद्घाटित किया गया है, जो एक सुव्यवस्थित समाज के लिए तोड़ने का कार्य कर रही है, मैंने उन समस्याओं का सूक्ष्म अध्ययन कर अपने शोध पेपर में रेखांकित किया है।

उद्देश्य

मेरे शोध पेपर का उद्देश्य सुधा अरोड़ा के कहानी संग्रह 'काला शुक्रवार' में सामाजिक समस्याओं को उद्घाटित करना है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. डॉ. कुँवरपाल सिंह, हिन्दी उपन्यास सामाजिक चेतना, पृ0 17
2. डॉ. स्वर्णलता, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य की समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि, पृ. 1
3. सुधा अरोड़ा, काला शुक्रवार, पृ. 14
4. वही, पृ. 45
5. वही, पृ. 63
6. वही, पृ. 87
7. वही, पृ. 86

ISSN 2278 - 0327

उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले सामाजिक कारकों का अध्ययन

उमा चौरसिया
शोधार्थी, शिक्षा संकाय
बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल

डॉ. एन.के. कौशिक
प्राचार्य
महाराणा प्रताप कॉलेज ऑफएजुकेशन, रातीबड़ भोपाल

प्रस्तुत शोध में उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले सामाजिक कारकों का अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन हेतु न्यादर्श के रूप में भोपाल जिले में स्थित उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत 100 बालिकाओं, उनके 200 अभिभावकों (100 माता व 100 पिता) एवं 100 शिक्षकों (50 पुरुष व 50 महिला) का चयन साधारण यादृच्छिक न्यादर्श विधि द्वारा किया गया तथा इन चयनित बालिकाओं, उनके अभिभावकों व शिक्षकों का साक्षात्कार लिया गया एवं उन सभी पर स्वनिर्मित 'बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले सामाजिक कारकों पर आधरित प्रश्नावली' का प्रशासन किया गया। इस अध्ययन से प्राप्त परिणामों के अनुसार उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले प्रमुख सामाजिक कारक कुप्रथाएं (बाल विवाह, दहेज आदि), लिंगगत भेदभाव, लड़कियों पर अधिक पाबंदी, विद्यालयों का खराब वातावरण, पुरातनपंथी विचार एवं रूढ़िवादिता, लड़कियों में आत्मनिर्भरता का अभाव तथा लड़कियों की सुरक्षा की चिंता पाए गये। साथ ही उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले विभिन्न सामाजिक कारकों कुप्रथाएं (बाल विवाह, दहेज आदि), लिंगगत भेदभाव, लड़कियों पर अधिक पाबंदी, पुरातनपंथी विचार एवं रूढ़िवादिता तथा लड़कियों की सुरक्षा की चिंता आदि के प्रति बालिकाओं, अभिभावकों एवं शिक्षकों के विचारों में मत भिन्नता नहीं पाई गयी।

मुख्य बिन्दू - उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, बालिकाओं की शिक्षा, सामाजिक कारक

परिवार किसी भी समाज की मौलिक इकाई एवं बच्चे की सर्वप्रथम शिक्षा संस्था है। पारिवारिक जीवन का प्रभाव बच्चों के व्यक्तित्व के विकास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है, प्रत्येक मनुष्य अपने परिवार विशेषकर माँ से ही भाषा (मातृभाषा) का ज्ञान प्राप्त करता है उसके उपरांत ही अन्य भाषाओं को सीखता है। माँ ही शिशु की प्रथम गुरू होती है। यदि माँ शिक्षित होगी तो पूरा परिवार स्वत: ही शिक्षित हो जाता है। शिक्षित नारी ही दूसरों को शिक्षा प्रदान कर सकती है। अत: भारत वर्ष में वैदिक काल से ही स्त्री शिक्षा की समृद्ध व्यवस्था दृष्टिगोचर होती है। ऐसे अनेक प्रमाण मिलते है जिनसे ज्ञात होता है कि प्राचीन काल की स्त्रियां अनेक विषयों की शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करती थीं। कठिन से कठिन तथा दुरूह से दुरूह विषयों की वो प्रकाण्ड पंडित होती थीं। यही कारण है कि उस काल में विश्वतारा, लोपमुद्रा, गार्गी एवं ब्रह्मवादिनी जैसी विदुषियों ने अनेक दार्शनिकों के साथ शास्त्रार्थ किया। वैदिक काल के बाद उत्तर वैदिक काल में महिलाओं की शिक्षा का रूप वैदिक काल के ही समान रहा किन्तु उनके सामाजिक स्तर में गिरावट आने लगी, जहाँ वैदिक काल में माता के रूप में स्त्री मनुष्य समाज में सबसे बड़ी गुरू कही गई थी। उत्तर वैदिक काल के बाद धर्मशास्त्र काल यह काल तीसरी शताब्दी से चौथी शताब्दी का काल रहा है। इस काल के प्रारंभ में कर्मकाण्ड बढ़ गया था जाति प्रथा का बोलबाला था इसे ब्राह्मण काल के नाम से जाना गया। इस काल में महिलाओं के लिये वेद पाठ करना तथा यज्ञ करना वर्जित था। इस समय वेदों को तिलांजलि देकर 'मनुस्मृति' के नियमों को महत्व दिया जाने लगा। इस काल में स्त्री सेविका एवं याचिका बन गई। इसके बाद मध्य काल जो कि 16 वीं शताब्दी का काल माना जाता है, इस समय पर्दा प्रथा एवं सती प्रथा अपने चरम पर थी। इसी काल में इस्लाम धर्म का भारत में आगमन हुआ। भारत में विदेशी शासकों के आने से रक्त की शुद्धता को बनाये रखने के लिये बालिकाओं का विवाह 5-10 वर्ष की आयु में किया जाने लगा। इसके बाद भारत में ईसाई धर्म का आगमन हुआ, ईसाई धर्म के आगमन के साथ ही समाज सुधार की लहर का आरंभ हुआ सती प्रथा एवं पर्दा प्रथा में कमी आनी शुरू हो गई एवं सम्भ्रांत परिवारों द्वारा अपनी बालिकाओं

को घर पर ही शिक्षा देनी प्रारंभ की गई। इसी क्रम में ब्रिटिश शासन का आरंभ हुआ, इस समय स्त्री शिक्षा पर तो जोर दिया गया किन्तु सामाजिक बंधनों से स्त्रियों के मुक्त न होने के कारण केवल 6 प्रतिशत महिलाएं (बालिकाएं) ही शिक्षित थीं।

स्वतंत्रता के पश्चात् महिलाओं की शिक्षा पर जोर दिया गया। सन् 1948 में केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ने भारत सरकार के समक्ष माध्यमिक शिक्षा की जाँच के लिये एक आयोग की नियुक्ति का विचार दिया 23 सितम्बर 1952 में मुदालियर कमीशन ने माध्यमिक स्तर पर बालिकाओं के गृह उपयोगी कार्यों के लिये गृह विज्ञान विषय की शिक्षा की सिफारिश की। सन् 1990 में नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का प्रस्ताव रखा गया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के अंतर्गत 15-35 आयु वर्ग की महिलाओं को 1995 तक साक्षर बनाने का लक्ष्य रखा गया। इन सभी नियमों के परिणाम स्वरूप स्त्री शिक्षा के स्तर में वृद्धि हुई जो कि 1951 में 7.95 प्रतिशत से बढकर 2001 में 54.16 प्रतिशत हो गई एवं वर्तमान में 60.61 प्रतिशत हो गई है किन्तु यह स्तर अभी भी बालकों के बराबर नहीं है, बल्कि बालकों से बहुत कम है। जिसके एक नहीं अनेक कारण हैं, अत: यह बहुत आवश्यक है कि हम उन सभी कारकों की पहचान करें जो बालिकाओं की शिक्षा में बाधक हैं। इसी कारण से इस शोध में बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले सामाजिक कारकों का अध्ययन किया गया है।

बालिकाओं की शिक्षा एवं उसको प्रभावित करने वाले कारकों पर पूर्व में कुछ शोध कार्य हुये हैं जैसे **मिश्र, विजय लक्ष्मी** (2017) ने 'अल्पसंख्यक, पिछड़े एवं अनुसूचित वर्ग के अभिभावकों की बालिका शिक्षा के प्रति मतकोंण का तुलनात्मक अध्ययन' विषय पर किये अपने अध्ययन के निष्कर्षस्वरूप देखा कि बालिका शिक्षा के प्रति अल्पसंख्यक एवं पिछड़े वर्ग के अभिभावकों की अभिवृत्ति में सार्थक अंतर देखा गया तथा पिछड़े वर्ग के अभिभावकों में, अल्पसंख्यक वर्ग के अभिभावकों की अपेक्षा बालिका शिक्षा के प्रति अधिक सकारात्मक अभिवृत्ति पाई गयी। बालिका शिक्षा के प्रति अल्पसंख्यक एवं अनुसूचित वर्ग के अभिभावकों की अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं देखा गया। बालिका शिक्षा के प्रति पिछड़े वर्ग एवं अनुसूचित वर्ग के अभिभावकों की अभिवृत्ति में सार्थक अंतर देखा गया तथा पिछड़े वर्ग के अभिभावकों में, अनुसूचित वर्ग के अभिभावकों की अपेक्षा बालिका शिक्षा के प्रति अधिक सकारात्मक अभिवृत्ति पाई गयी। **फर्स्वाण, डिंगर सिंह** (2017) ने ''जनपद पिथौरागढ़ के राजकीय प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययनरत बालक-बालिकाओं में आगत-निर्गत सूचक का लिंग के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन'' विषय पर किये अपने अध्ययन के निष्कर्षस्वरूप देखा कि प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययनरत बालक-बालिकाओं में आगत-निर्गत सूचक में लिंग के आधार पर कोई सार्थक अंतर नहीं था। इस अध्ययन से यह भी पता चलता है कि माता-पिता की निरक्षरता, बेरोजगारी, आर्थिक तंगी, विषम भौगोलिक परिस्थितियां तथा समुचित व्यवस्थाओं का अभाव आदि शिक्षा में अपव्यय व अवरोधन के मुख्य कारण है। **प्रदीप, एम.डी. एवं रवीन्द्र, बी.के.** (2017) ने अपने अध्ययन के निष्कर्षस्वरूप बताया कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, एन.सी.ई.आर.टी. जैसी संस्थाओं ने हमारे देश में महिला शिक्षा पर जोर दिया है, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के महिला शिक्षा केन्द्रों ने महिलाओं के शिक्षा स्तर पर चिंता व्यक्त की है। आज के समय में महिलाओं के राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए शिक्षा को आवश्यक माना है। **सिंह, रश्मि** (2019) ने 'प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर छात्राओं की समस्याएं: उत्तर प्रदेश के हरदोई जिले के विशेष संदर्भ में' विषय पर किये अपने अध्ययन के निष्कर्षस्वरूप देखा कि छात्राओं की शिक्षा के प्रति समाज का नकारात्मक दृष्टिकोण, लैंगिक भेदभाव, विद्यालय का अरूचिकर वातावरण, अभिभावकों में असुरक्षा की भावना, विद्यालय में महिला शिक्षकों का अभाव, विद्यालय में छात्राओं के लिए पृथक् शौचालय का अभाव, शिक्षकों द्वारा शिक्षण कार्य में रूचि न लेना आदि छात्राओं की शिक्षा में मुख्य बाधक कारक हैं। **मिश्रा, लक्ष्मी एवं आर्य, मोहन लाल** (2020) ने 'बालिका शिक्षा को प्रभावित करने वाले कारकों का विश्लेषणात्मक अध्ययन' विषय पर किये अपने अध्ययन के निष्कर्षस्वरूप देखा कि बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक बाल विवाह की समस्या, नकारात्मक सामाजिक दृष्टिकोण, गृहकार्य की अधिकता, महिला प्राध्यापकों की कमी, मनपसंद विषय की अनुपलब्धता, सहशिक्षा की समस्या, महाविद्यालय में आवश्यक संसाधनों का अभाव आदि पाए गये।

अध्ययन के उद्देश्य:-

1. उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले सामाजिक कारकों की पहचान करना।
2. उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले सामाजिक कारकों के

प्रति बालिकाओं, अभिभावकों एवं शिक्षकों के विचारों की तुलना करना।

परिकल्पना:-

1. उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत बालिकाओं की शिक्षा को अनेक सामाजिक कारक प्रभावित करते हैं।
2. उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले सामाजिक कारकों के प्रति बालिकाओं, अभिभावकों एवं शिक्षकों के विचारों में मत भिन्नता नहीं पाई जाती है।

न्यादर्श- इस अनुसंधान हेतु न्यादर्श के चयन के लिए भोपाल जिले में स्थित उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत 100 बालिकाओं, उनके 200 अभिभावकों (100 माता व 100 पिता) एवं 100 शिक्षकों (50 पुरुष व 50 महिला) का चयन साधारण यादृच्छिक न्यादर्श विधि द्वारा किया गया।

उपकरण:-

उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले सामाजिक कारकों को जानने के लिए साक्षात्कार एवं स्वनिर्मित प्रश्नावली का उपयोग किया गया है।

शोध विधि:- अनुसंधान हेतु सर्वप्रथम भोपाल जिले में स्थित उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत बालिकाओं, उनके अभिभावकों तथा इन बालिकाओं को अध्यापन करवाने वाले शिक्षकों का चयन साधारण यादृच्छिक न्यादर्श विधि द्वारा करके तीनों प्रमुख समूहों में से कुछ लागों का चयन करके इन चयनित लोगों का साक्षात्कार किया गया एवं उन सामाजिक कारकों की पहचान की गयी जो लड़कियों की शिक्षा को प्रभावित करतें हैं। पूर्व में हुए अनुसंधानों, साक्षात्कार एवं शोधकर्ता के व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले सामाजिक कारकों पर आधरित प्रश्नावली को तैयार करके इस प्रश्नावली का अनुसंधान हेतु चयनित 100 बालिकाओं, उनके 200 अभिभावकों तथा 100 शिक्षकों पर प्रशासन किया गया। प्राप्तांकों के आधार पर मॉस्टर शीट तैयार की गई। प्रतिषत एवं औसत के द्वारा आंकड़ों का विश्लेषण किया गया।

परिणामों का विश्लेषण:-

परिकल्पना 01:- उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत बालिकाओं की शिक्षा को अनेक सामाजिक कारक प्रभावित करते हैं।

उपरोक्त परिकल्पना के परीक्षण के लिए साक्षात्कार के आधार पर प्राप्त निष्कर्षों को लिया गया है, जिसमें बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले प्रमुख सामाजिक कारक निम्न प्राप्त हुए हैं-

1. कुप्रथाएं (बाल विवाह, दहेज) 2. लिंगगत भेदभाव 3. लड़कियों पर अधिक पाबंदी
4. विद्यालयों का खराब वातावरण 5. पुरातनपंथी विचार एवं रूढ़िवादिता 6. आत्मनिर्भरता का अभाव
7. सुरक्षा की चिंता

इसके अतिरिक्त भी कुछ कारक जैसें लड़कियों को कमजोर व निम्न समझाना, लड़कियों को पराया धन मानना, पृथक् बालिका विद्यालयों का अभाव, विद्यालयों में लड़कियों के लिए पृथक् शौचालय का अभाव आदि पाए गये। अत: उपरोक्त विवरण के आधार पर पूर्व में ली गयी परिकल्पना ''उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत बालिकाओं की शिक्षा को अनेक सामाजिक कारक प्रभावित करते हैं'', स्वीकृत की जाती है।

परिकल्पना 02:- उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले सामाजिक कारकों के प्रति बालिकाओं, अभिभावकों एवं शिक्षकों के विचारों में मत भिन्नता नहीं पाई जाती है।

तालिका 01

उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत बालिकाओं की शिक्षा को नकारात्मक रूप से प्रभावित करने वाले सामाजिक कारक कुप्रथाओं (बाल विवाह, दहेज आदि) संबंधी तुलनात्मक परिणाम

समूह	प्रतिक्रियाएं					
	सहमत	सहमत (प्रतिशत में)	अनिश्चत	अनिश्चत (प्रतिशत में)	असहमत	असहमत (प्रतिशत में)
बालिका	65	65.00	09	9.00	26	26.00
अभिभावक (माता)	74	74.00	12	12.00	14	14.00
अभिभावक (पिता)	57	57.00	14	14.00	29	29.00
महिला शिक्षक	34	68.00	04	8.00	12	24.00
पुरूष शिक्षक	29	58.00	03	6.00	18	36.00
कुल	259	औसत 64.40	42	औसत 9.80	99	औसत 25.80

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट है कि उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले सामाजिक कारक में से एक प्रमुख नकारात्मक कारक सामाजिक कुप्रथाओं (बाल विवाह, दहेज आदि) के लिए प्राप्त प्रतिक्रियाओं से पता चलता है कि अधिकांशत: लोग (64.40 प्रतिशत) इस बात से सहमत हैं कि समाज में व्याप्त इन कुप्रथाओं का बालिकाओं की शिक्षा पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है जबकि अपेक्षाकृत कम लोग (25.80 प्रतिशत) इस बात से असहमत हैं तथा कुछ लोगों (9.80 प्रतिशत) ने इस बात के प्रति कोई स्पष्ट प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की।

तालिका 02

उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत बालिकाओं की शिक्षा को नकारात्मक रूप से प्रभावित करने वाले सामाजिक कारक लिंगगत भेदभाव संबंधी तुलनात्मक परिणाम
समूह प्रतिक्रियाएं

समूह	प्रतिक्रियाएं					
	सहमत	सहमत (प्रतिशत में)	अनिश्चत	अनिश्चत (प्रतिशत में)	असहमत	असहमत (प्रतिशत में)
बालिका	73	73.00	06	6.00	21	21.00
अभिभावक (माता)	79	79.00	11	11.00	10	10.00
अभिभावक (पिता)	51	51.00	18	18.00	31	31.00
महिला शिक्षक	37	74.00	05	10.00	08	16.00
पुरूष शिक्षक	27	54.00	04	8.00	19	38.00
कुल	267	औसत 66.20	44	औसत 10.60	89	औसत 23.20

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट है कि उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले सामाजिक कारक में से एक प्रमुख नकारात्मक कारक लिंगगत भेदभाव के लिए प्राप्त प्रतिक्रियाओं से पता चलता है कि अधिकांषत: लोग (66.20 प्रतिशत) इस बात से सहमत हैं कि समाज में बालिकाओं से किए जाने वाले लिंगगत भेदभाव का बालिकाओं की शिक्षा पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है जबकि अपेक्षाकृत कम लोग (23.20 प्रतिशत) इस बात से असहमत हैं तथा कुछ लोगों (10.60 प्रतिशत) ने इस बात के प्रति कोई स्पष्ट प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की।

तालिका 03

उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत बालिकाओं की शिक्षा को नकारात्मक रूप से प्रभावित करने वाले सामाजिक कारक लड़कियों पर घर में अधिक पाबंदी संबंधी तुलनात्मक परिणाम

समूह	प्रतिक्रियाएं					
	सहमत	सहमत (प्रतिशत में)	अनिश्चत	अनिश्चत (प्रतिशत में)	असहमत	असहमत (प्रतिशत में)
बालिका	87	87.00	04	4.00	09	9.00
अभिभावक (माता)	71	71.00	17	17.00	12	12.00
अभिभावक (पिता)	56	56.00	07	7.00	37	37.00
महिला शिक्षक	36	72.00	06	12.00	08	16.00
पुरूष शिक्षक	26	52.00	03	6.00	21	42.00
कुल	276	औसत 67.60	37	औसत 9.20	87	औसत 23.20

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट है कि उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले सामाजिक कारक में से एक प्रमुख कारक लड़कियों पर घर में अधिक पाबंदी के लिए प्राप्त प्रतिक्रियाओं से पता चलता है कि अधिकांशत: लोग (67.60 प्रतिशत) इस बात से सहमत हैं कि लड़कियों पर घर, समाज आदि में अधिक पाबंदी लगाई जाती है जिसका इन बालिकाओं की शिक्षा पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है जबकि अपेक्षाकृत कम लोग (23.20 प्रतिशत) इस बात से असहमत हैं तथा कुछ लोगों (9.20 प्रतिशत) ने इस बात के प्रति कोई स्पष्ट प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की।

तालिका 04

उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत बालिकाओं की शिक्षा को नकारात्मक रूप से प्रभावित करने वाले सामाजिक कारक 'पुरातनपंथी विचार एवं रूढ़िवादिता' संबंधी तुलनात्मक परिणाम

समूह	प्रतिक्रियाएं					
	सहमत	सहमत (प्रतिशत में)	अनिश्चत	अनिश्चत (प्रतिशत में)	असहमत	असहमत (प्रतिशत में)
बालिका	57	57.00	19	19.00	24	24.00
अभिभावक (माता)	64	64.00	17	17.00	19	19.00
अभिभावक (पिता)	47	47.00	20	20.00	33	33.00
महिला शिक्षक	28	56.00	07	14.00	15	30.00
पुरूष शिक्षक	26	52.00	05	10.00	19	38.00
कुल	222	औसत 55.20	68	औसत 16.00	110	औसत 28.80

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट है कि उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले सामाजिक कारक में से एक प्रमुख कारक 'पुरातनपंथी विचार एवं रूढ़िवादिता' के लिए प्राप्त प्रतिक्रियाओं से पता चलता है कि अधिकांशत: लोग (55.20 प्रतिशत) इस बात से सहमत हैं कि समाज में अभी भी पुरातनपंथी विचार एवं रूढ़िवादिता जैसे लड़कियां पराया धन हैं, मासिक चक्र संबंधी विचार, लड़कियों को आगे चलकर भी घर संभालना हैं, आदि व्याप्त हैं जिसका इन बालिकाओं की शिक्षा पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है जबकि अपेक्षाकृत कम लोग (28.80 प्रतिशत) इस बात से असहमत हैं तथा कुछ लोगों (16.00 प्रतिशत) ने इस बात के प्रति कोई स्पष्ट प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की।

तालिका 05

उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत बालिकाओं की शिक्षा को नकारात्मक रूप से प्रभावित करने वाले सामाजिक कारक लड़कियों की सुरक्षा की चिंता संबंधी तुलनात्मक परिणाम समूह प्रतिक्रियाएं

समूह	प्रतिक्रियाएं					
	सहमत	सहमत (प्रतिशत में)	अनिश्चत	अनिश्चत (प्रतिशत में)	असहमत	असहमत (प्रतिशत में)
बालिका	69	69.00	08	8.00	23	23.00
अभिभावक (माता)	78	78.00	12	12.00	10	10.00
अभिभावक (पिता)	66	66.00	13	13.00	21	21.00
महिला शिक्षक	34	68.00	07	14.00	09	18.00
पुरूष शिक्षक	28	56.00	06	12.00	16	32.00
कुल	275	औसत 67.40	46	औसत 11.80	79	औसत 20.80

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट है कि उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले सामाजिक कारक में से एक अन्य प्रमुख कारक लड़कियों की सुरक्षा संबंधी चिंता के लिए प्राप्त प्रतिक्रियाओं से पता चलता है कि अधिकांशत: लोग (67.40 प्रतिशत) इस बात से सहमत हैं कि लड़कियों को विद्यालय जाने के रास्ते, कहीं-कहीं विद्यालय, कोचिंग आदि जगहों पर दिक्कतों का सामना करना पड़ता है, जिसके कारण ये बालिकाएं स्वयं एवं उनके अभिभावक जब तक ये बालिकाएं घर न आ जाएं चिंतित रहतें हैं, जिसका इन बालिकाओं की शिक्षा पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है जबकि अपेक्षाकृत कम लोग (20.80 प्रतिषशत) इस बात से असहमत हैं तथा कुछ लोगों (11.80 प्रतिशत) ने इस बात के प्रति कोई स्पष्ट प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की।

तालिका 06

उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत बालिकाओं की शिक्षा को नकारात्मक रूप से प्रभावित करने वाले समस्त सामाजिक कारकों संबंधी तुलनात्मक परिणाम

सामाजिक कारक	सहमत लोगों की संख्या	सहमत लोगों की संख्या (प्रतिशत में)
कुप्रथाएं (बाल विवाह, दहेज आदि)	259	औसत 64.40
लिंगगत भेदभाव	267	औसत 66.20
लड़कियों पर अधिक पाबंदी	276	औसत 67.60
पुरातनपंथी विचार एवं रूढ़िवादिता	222	औसत 55.20
लड़कियों की सुरक्षा की चिंता	275	औसत 67.40

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट है कि उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले सामाजिक कारक में से घर परिवार, समाज आदि जगहों में लड़कियों पर अधिक पाबंदी उनकी शिक्षा को प्रभावित करने वाला सर्वप्रमुख कारक (67.60 प्रतिशत) पाया गया जबकि पुरातनपंथी विचार एवं रूढ़िवादिता बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले नकारात्मक कारकों में सबसे कम (55.20 प्रतिशत) प्रभावी पाया गया।

अत: उपरोक्त सभी सारणियों में प्रदर्शित परिणामों के आधार

पर निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले प्रमुख सामाजिक कारक कुप्रथाएं (बाल विवाह, दहेज आदि), लिंगगत भेदभाव, लड़कियों पर अधिक पाबंदी, पुरातनपंथी विचार एवं रूढ़िवादिता तथा लड़कियों की सुरक्षा की चिंता पाए गये। साथ ही उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले विभिन्न सामाजिक कारकों कुप्रथाएं (बाल विवाह, दहेज आदि), लिंगगत भेदभाव, लड़कियों पर अधिक पाबंदी, पुरातनपंथी विचार एवं रूढ़िवादिता तथा लड़कियों की सुरक्षा की चिंता आदि के प्रति बालिकाओं, अभिभावकों एवं शिक्षकों के विचारों में मत भिन्ता नहीं पाई गयी।

अत: उपरोक्त सारणियों में दिये गये परिणामों के परिप्रेक्ष्य में पूर्वनिर्धारित परिकल्पना ''उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले सामाजिक कारकों के प्रति बालिकाओं, अभिभावकों एवं शिक्षकों के विचारों में मत भिन्ता नहीं पाई जाती है'', स्वीकृत की जाती है।

निष्कर्ष–

उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले प्रमुख सामाजिक कारक कुप्रथाएं (बाल विवाह, दहेज आदि), लिंगगत भेदभाव, लड़कियों पर अधिक पाबंदी, विद्यालयों का खराब वातावरण, पुरातनपंथी विचार एवं रूढ़िवादिता, लड़कियों में आत्मनिर्भरता का अभाव तथा लड़कियों की सुरक्षा की चिंता पाए गये। साथ ही उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले विभिन्न सामाजिक कारकों कुप्रथाएं (बाल विवाह, दहेज आदि), लिंगगत भेदभाव, लड़कियों पर अधिक पाबंदी, पुरातनपंथी विचार एवं रूढ़िवादिता तथा लड़कियों की सुरक्षा की चिंता आदि के प्रति बालिकाओं, अभिभावकों एवं शिक्षकों के विचारों में मत भिन्ता नहीं पाई गयी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अग्रवाल, जे.सी. (2004) ''आधुनिक भारतीय शिक्षा और समस्याएं'', विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
2. आप्टे, प्रभा (1996) ''भारतीय समाज में नारी'', क्लासिक पब्लिकेशंस, जयपुर
3. भटनागर, सुरेश (1997) ''आधुनिक भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं'', आर. लाल बुक डिपो, मेरठ
4. गुप्ता, मधु (2000) ''शिक्षा संस्कार एवं उपलब्धि'', क्लासिक पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली
5. जैन, बसन्तलाल एवं सिंह, विजय (2004) ''भारत का विकास'', भारत भारती प्रकाशन मेरठ
6. कपिल, एच.के. (1995) ''अनुसंधान विधियां'', एच.पी. भार्गव पुस्तक प्रकाशक कचहरी घाट, आगरा
7. कपूर, उर्मिला (2004) ''भारतीय शिक्षा का इतिहास एवं समस्याएं'', साहित्य प्रकाशन, आगरा
8. माहेश्वरी, सरला (1998) ''नारी प्रश्न'', राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
9. शर्मा, आर.ए. (2001) ''विद्यालय संगठन तथा शिक्षा प्रशासन'', आर. लाल बुक डिपो मेरठ, पृष्ठ 350
10. Chandra Soti Shivendra and Sharma Rajendra K. (2004) : **Research in Education,** Atlantic Publishers and Distributors , New Delhi, First Edition.

Related Research :

1. मिश्र, विजय लक्ष्मी (2017)''अल्पसंख्यक, पिछड़े एवं अनुसूचित वर्ग के अभिभावकों की बालिका शिक्षा के प्रति मतकोंण का तुलनात्मक अध्ययन'',*Periodic Research, Vol 6, Issue 2, November 2017, Page No.83-87*
2. मिश्रा, लक्ष्मी एवं आर्य, मोहन लाल (2020) ''बालिका शिक्षा को प्रभावित करने वाले कारकों का विश्लेषणात्मक अध्ययन'', *Shikshan Sanshodhan: Journal of Arts, Humanities, and Social Science, Vol 3, Issue 1, Jan-Feb 2020, Page No.121-127*
3. सिंह, रष्मि (2019) ''प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर छात्राओं की समस्याएं: उत्तर प्रदेष के हरदोई जिले के विशेष संदर्भ में''*Shrinkhla Ek Sodhparak Vaicharik Patrika, Vol 6, Issue 10, June 2019, Page No.49-53*
4. फर्स्वाण, डिंगर सिंह (2017) ''जनपद पिथौरागढ़ के राजकीय प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययनरत बालक–बालिकाओं में आगत–निर्गत सूचक का लिंग के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन'' *Golden Research Thought, Vol 6, Issue 7, January 2017, Page No.1-5*
5. **Pradeep, M.D. and Ravindra, B.K. (2017)** "Review on the Gender Sensitive Women Education –Legal Revolution in Higher Education", *International Journal of Management, Technology and Social Science, Vol 2, No. 1, June 2017, Page No. 53-65*

ISSN 2278 - 0327

मराठी-हिंदी क्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. आम्रपाल शेंदरे
सहायक प्रोफेसर
भाषा विद्यापीठ, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

प्रस्तावना :

भाषा समाज का अभिन्न अंग है, भाषा के बिना समाज अधूरा और प्राणहीन शरीर जैसा है। संसार में प्रत्येक मनुष्य अपने कार्य के लिए अक्सर भाषा का प्रयोग करता है। आज भाषा अभिव्यक्ति के साथ-साथ कार्य सिद्धि का माध्यम भी बन चुकी है। साथ ही भाषा के अध्ययन का कार्यक्षेत्र भी बढ़ा है, इसमें सूचना क्रांति की महत्वपूर्ण भूमिका है। भाषा के मूल तत्वों का अध्ययन भाषाविज्ञान के अंतर्गत किया जाता है, भाषाविज्ञान का अध्ययन सैद्धांतिक भाषाविज्ञान और अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान इन दोनों क्षेत्रों में होता हैं।

भाषाविज्ञान के अध्ययन का क्षेत्र संगणक के कारण और व्यापक हो गया है। संपूर्ण विश्व में इसके अध्ययन-अध्यापन के साथ निरंतर नए-नए शोधों पर कार्य चल रहा है। आज संगणक तथा इंटरनेट के माध्यम से अन्य भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करना, सीखना और भी सहज एवं सुगम हो गया है। वैश्वीकरण के इस युग में केवल एक भाषा का ज्ञान होना पर्याप्त नहीं अपितु एक से अधिक भाषाओं का ज्ञान होना आवश्यक है, खास कर किसी भाषाविज्ञान के अध्येता के लिए, तभी वह भाषावैज्ञानिक तुलनात्मक अध्ययन या अनुवाद का कार्य कर सकता है। वास्तव में यहाँ पर तुलनात्मक अध्ययन या अनुवाद से तात्पर्य है, किन्ही दो भाषाओं का अध्ययन, जैसे हम भारतीय भाषाओं का अध्ययन करते हैं, तो उसमें द्रविड़िय और भारोपीय परिवार की भाषाएँ आती हैं या भारोपीय परिवार में ही ऐसी अनेक भाषाएँ हैं, जिनका तुलनात्मक अध्ययन करने से ही उन दो भाषाओं की समानताएँ और भिन्नताओं के बारे में पता चलता है। यह अध्ययन भाषा अनुवाद, भाषा शिक्षण, व्यतिरेकी विश्लेषण, कोश विज्ञान आदि के लिए काफी महत्वपूर्ण एवं उपयोगी है।

संसार की सभी भाषाओं में क्रिया का स्थान महत्वपूर्ण है, वाक्यों का महत्वपूर्ण अंग क्रिया ही होती है साथ ही इन क्रियाओं का विश्लेषण करना एक जटिल प्रक्रिया है। प्रस्तुत शोध-पत्र में यह प्रयास किया गया है कि मराठी और हिंदी क्रियाओं का विश्लेषण कर उनका तुलनात्मक रूप से अध्ययन किया जाए।

मराठी-हिंदी भाषा परिचय :-

मराठी-हिंदी दोनों एक ही परिवार की भाषाएँ हैं, दोनों भारोपीय परिवार में आती हैं। माना जाता है कि दोनों का विकास संस्कृत भाषा से हुआ है, किन्तु मराठी, संस्कृत भाषा की तरह विभक्ति प्रधान है। मराठी भाषा में विभक्ति प्रत्यत शब्द के साथ जुड़े होते हैं, तथा हिंदी में विभक्ति प्रत्यय/परसर्ग सर्वनामों के साथ संस्कृत और मराठी की तरह ही प्रयुक्त होते है, किन्तु संज्ञा शब्द के साथ जुड़कर नहीं आते। दोनों भाषाओं की वाक्य संरचना संस्कृत की तरह ही समान है, कर्ता, कर्म और क्रिया। दोनों भाषाओं में बहुतांश शब्द संस्कृत भाषा से लिए गए है। मराठी-हिंदी दोनों भाषाओं के लिए देवनागरी लिपि का प्रयोग किया जाता हैं। मराठी भाषा के शुरुआती दौर में लेखन के लिए मोडी लिपि का प्रयोग किया जाता था। कालांतर में इसे भी देवनागरी लिपि में ही लिखा जाने लगा।

क्रिया के बारे में मराठी तथा हिंदी के विद्वानों ने अलग-अलग व्याख्याएँ और अपनी राय दी हैं, जैसे-'जिस शब्द से किसी कार्य का होना अथवा करना समझा जाए अथवा जाहिर हो उसे क्रिया कहते है।'-डॉ हरिवंश तरुण। यह स्पष्ट है कि क्रिया उसे कहते है, जिससे वाक्य में किसी कार्य के होने का बोध हो या उसकी स्थिति का पता चले। वाक्य में प्रयुक्त क्रियाओं को क्रियापद कहते है जैसे- 'लड़का घर जाता है'। इस उदाहरण में 'जाता' क्रियापद है और इसका क्रिया रूप 'जाना' है। मुख्यत: धातु के साथ 'ना' प्रत्यय जोड़ने से जो रूप बनते हैं उन्हें क्रियारूप कहते हैं। और इनका वाक्य में काल, पक्ष और वृत्ति के साथ जो प्रयोग किया जाता है, उसे क्रियापद कहते हैं। इन क्रियापदों के साथ जब सहायक क्रियायों का प्रयोग होता है तब यह क्रिया पदबंध कहलाते हैं। जैसे- खाना, पीना, सोना, रोना हिंदी में और मराठी के लिए खाणे, पिणे झोपणे,रडणे आदि।

इनका वाक्य में प्रयोग इस प्रकार से देखा जा सकता है-

मराठी-	हिंदी -
रामाने आंबा खाल्ला.	राम ने आम खाया।
राम आंबा खातो.	राम आम खाता है।
मुलाने पाणी प्याले.	लडके ने पानी पिया।
मोहन झोपत आहे.	मोहन सो रहा है।
मोहन रडत आहे.	मोहन रो रहा है।

रेखांकित किए गए पद क्रमश: क्रियापद और क्रिया पदबंध को दर्शा रहे हैं। यह क्रियापदबंध और क्रियापद वाक्य में घटित कार्य का बोध कराती है, या वक्ता की स्थिति का बोध कराती है। वैसे देखा जाए तो हिंदी और मराठी की क्रियाओं में बहुत अधिक समानताएँ मिलती है, जिनको आगे देखा जाएगा।

मराठी धातु रूप और क्रिया संरचना-

मराठी भाषा को संस्कृत भाषा के काफी निकट समझा जाता है। अन्य भाषाओं की तरह मराठी भाषा में क्रिया ही वाक्य का महत्वपूर्ण अंग है, जो वाक्य में अहम् भूमिका निभाने का कार्य करती है। मराठी भाषा में क्रिया के मूल को धातु ही कहा जाता है। धातु को परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि वाक्य में प्रयुक्त क्रियाओं में से 'णे' प्रत्यय को हटाने पर जो शब्द शेष बचते हैं उन्हें धातु कहते हैं।

मराठी भाषा में धातु के प्रकार कुछ इस तरह से बताए जा सकते हैं, जैसे- 'बस', 'कर', 'हो', 'जा', आदि धातु के रूप हैं, इनमें 'णे' प्रत्यय जोड़ने से क्रिया के सामान्य रूप बनाते हैं, जैसे- 'बसणे', 'करणे', 'होणे', 'जाणे' आदि। मराठी भाषा में स्वरूप या रूप रचना के आधार पर धातु के मुख्य प्रकार है:

1. मूल धातु
2. व्युत्पन्न धातु

1. मूल धातु वे होते हैं, जो किसी और धातु से उत्पन्न न हुए हो इन्हें मराठी में अव्युत्पन्न या सिद्ध धातु भी कहते हैं। जैसे- हो, जा, खा, पी, आदि इसके उदाहरण हैं।

इनका वाक्य में प्रयोग इस प्रकार से किया जाएगा- 'राम! तू घरी जा.' 'मोहन हा आंबा खा.' 'सीता पाणी पी.' आदि

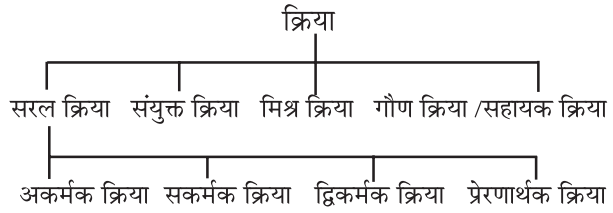
2. व्युत्पन्न धातु वे होते हैं, जो किसी और धातु से उत्पन्न होते हैं। इन्हें मराठी में साधित धातु भी कहते हैं, इसके दो प्रकार है; 1. धातुसाधित या धातुज धातु 2. धातु से भिन्न शब्दों से साधित धातु। 1.धातुसाधित या धातुज धातु- धातु से उत्पन्न होने वाले धातु हिंदी भाषा में धातु से प्रेरणार्थक और सकर्मक धातु उत्पन्न होते है, तो मराठी भाषा में प्रेरणार्थक के साथ शक्यार्थक धातु भी उत्पन्न होते हैं। दोनों ही रचना के आधार पर एक जैसे होते है, परंतु प्रकार्य के आधार पर दोनों का कार्य अलग- अलग है। जैसे 'बसणे' से 'बसवणे' उदा. 'आता माझ्याशी बसवत नाही.' (अब मुझसे बैठा नहीं जाता।) शक्यार्थक, 'राम गड्याकडून घरामध्ये मूर्ती बसवून घेतो.' (राम नौकर से घर में मूर्ति की स्थापना करवा /बैठवा लेता है।)

इसके साथ ही मराठी भाषा में धातु में अनुकरणात्मकता का प्रयोग करके भी उसे वाक्य में प्रयोग किया जाता है। जैसे- 'गड-गड, पट-पट, लख-लख, चम-चम, आदि इसके उदाहरण है। जैसे- 'ढग जोरात गडगडत आहेत.'

मराठी भाषा में क्रिया और क्रियापद दोनों में थोडा सा अंतर है। मराठी भाषा में क्रिया का सामान्य रूप वह है, जिसमें क्रिया के साथ 'णे' प्रत्यय जुड़ा होता है और जब क्रिया में काल, पक्ष, वृत्ति वाचक प्रत्ययों का प्रयोग होता है और उनका वाक्य में प्रयोग होता है, तो यही रूप क्रियापद कहलाता है, जैसे मराठी में 'बस' धातु के साथ '+ णे' प्रत्यय जोड़ने से = 'बसणे' क्रिया का सामान्य रूप बनता है और इसका वाक्य में प्रयोग जैसे- 'मोहन झाडाखाली बसतो' में 'बसतो' क्रियापद के रूप में प्रयोग हो रहा है।

रूप के आधार पर मराठी क्रियाओं के प्रकार-

रूप रचना के आधार पर मराठी क्रियाओं के मुख्या प्रकार है- सरल क्रियाएँ, संयुक्त क्रियाएँ, मिश्र क्रियाएँ और गौण क्रियाएँ।



सरल क्रियाएँ (Simple verbs)- जिनमें एक ही धातु से क्रिया बनती है और वाक्य में उस क्रिया का प्रयोग किया जाता है उसे सरल क्रिया कहते हैं। जैसे- मराठी के 'बस' धातु का प्रयोग वाक्य में होगा तो उससे उत्पन्न क्रिया सरल क्रिया होगी जैसे- 'राम झाडाखाली बसतो.'(राम पेड़ के निचे बैठता है।), 'राम झाडाखाली बसला आहे.'(राम पेड़ के निचे बैठा है।), 'राम झाडाखाली बसला होता.' (राम पेड़ के निचे बैठा था।) आदि मराठी के वाक्यों में बसतो, बसला आहे, बसला होता, ये सरल क्रियाएँ हैं। इन वाक्यों में 'बस' धातु से मराठी भाषा में क्रिया के रूप बन रहे हैं और उनके साथ सहायक क्रियाओं का प्रयोग हो

रहा है। यानि वाक्य में एक ही मुख्य क्रिया होगी और सहायक क्रियाएँ वाक्य की संरचना पर आधारित होती हैं।

संयुक्त क्रियाएँ (Compound verbs)- मराठी भाषा में संयुक्त क्रियाएँ उन क्रियाओं को कहते हैं जो भाषा में मुख्य क्रिया के रूप में भी कार्य करती हो और सहायक क्रिया के रूप में भी जैसे 'बस' धातु का प्रयोग मराठी भाषा में मुख्य क्रिया के रूप में हमने ऊपर के उदाहरण में देखा है। परंतु यहाँ इसका प्रयोग सहायक क्रिया के रूप में भी देखने को मिलता है जैसे- 'तो पैसे देऊन बसला'.(वह पैसे दे बैठा।) 'तो तिला थापड मारून बसला'. (वह उसे थप्पड़ मार बैठा।). यहाँ पर दोनों वाक्यों में 'बस' धातु का प्रयोग सहायक क्रिया के रूप में हुआ है। संयुक्त क्रिया में क्रिया + क्रिया का प्रयोग होता है। संयुक्त क्रियाएँ बहुत कम होती हैं। यह क्रियाएँ यौगिक धातुओं से अलग होती हैं जैसे- 'तो नेहमी हसत-खेळत असतो'.(वो हमेशा हसता- खेलता है।), 'तो आता चालू-फिरू शकतो'.(वह अब चल-फिर सकता है।) उपरोक्त दोनों वाक्य संयुक्त क्रिया से भिन्न हैं।

मिश्र क्रियाएँ (Complex verbs)- मिश्र क्रियाएँ वे क्रियाएँ होती हैं, जो संज्ञा या विशेषण + क्रिया से मिलकर बनती हैं, यह क्रियाएँ संयुक्त क्रियाओं से भिन्न होती है, संयुक्त क्रियाओं का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है. मराठी भाषा की मिश्र क्रियाओं में जैसे- 'प्रेम करणे', 'वाट पाहणे', 'उपदेश देणे', 'विचार करणे', वाक्य में इनका प्रयोग जैसे - 'सैनिक देशावर प्रेम करतात'.(सैनिक देश से प्यार करते है।), 'दुष्काळग्रस्त भागातील शेतकरी मदतीची वाट पाहतात'.(सूखाग्रस्त क्षेत्र के किसान मदत का इंतजार करते हैं।), 'साधू जनतेला उपदेश देतात'.(साधू जनता को उपदेश देते हैं।), 'मोहन विचार करतो'.(मोहन सोचता है।) उपरोक्त वाक्यों में संयुक्त क्रियाओं को बताया गया हैं। मराठी और हिंदी की संयुक्त क्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि मराठी भाषा में जो मिश्र क्रियाएँ हैं उनके लिए हिंदी भाषा में सरल क्रिया का प्रयोग किया गया है। जैसे- 'विचार करणे' मराठी में तो मिश्र क्रिया है परंतु हिंदी में इसके लिए समांतर क्रिया 'सोचना' का प्रयोग होता है जो सरल क्रिया है।

गौण क्रियाएँ- गौण क्रियाएँ मुख्य क्रियाओं से अलग होती हैं यह क्रिया का ही एक भाग है, जो सहायक क्रिया का कार्य करती है। इसलिए इसे सहायक क्रिया भी कहते हैं। कुछ सहायक क्रियाएँ वाक्य में मुख्य क्रियाओं का कार्य करती है। जिसकी वजह से उन्हें कोप्युला क्रिया या (Linking verb) कहते हैं।

गौण क्रियाएँ हमेशा काल, पक्ष, वृत्ति और लिंग, वचन, पुरुष को साथ लेकर चलती हैं। मराठी भाषा में- 'आहे, होता, असेल, होईल' आदि इसके प्रकार है। इनका वाक्य में प्रयोग इस प्रकार हैं, जैसे- 'तो जात आहे.'(वह जा रहा है।), 'ती खात असेल.'(वह खा रही होगी।) 'तो भविष्यात पंतप्रधान होईल.'(वह भविष्य में पंतप्रधान बनेगा।)

अर्थ के आधार पर मराठी क्रियाओं के प्रकार- अर्थ के आधार पर मराठी भाषा की क्रियाओं को इस प्रकार से विभाजित किया जा सकता है: जैसे- अकर्मक, सकर्मक, प्रेरणार्थक, द्विकर्मक आदि।

अकर्मक क्रियाएँ- अकर्मक क्रियाएँ वे क्रियाएँ होती हैं, जो वाक्य में कर्म की अपेक्षा नहीं करती। अर्थात् वाक्य में क्रिया का प्रभाव कर्ता पर ही पड़ता है, उन्हें अकर्मक क्रियाएँ कहते हैं। मराठी भाषा में अकर्मक क्रियाएँ इस प्रकार से हैं: जैसे - 'उठणे', 'बसणे', 'चालणे', 'झोपणे', 'रडणे', 'हसणे' आदि। इन अकर्मक क्रियाओं का मराठी भाषा में प्रयोग इस प्रकार से होगा। 'राम रोज सकाळी लवकर उठतो.' 'मुलगा खुर्चीवर बसतो.' 'मोहन रोज रात्री लवकर झोपतो.' 'लहान बाळ रडते.' आदि वाक्यों में अकर्मक क्रियाएँ दी हैं। इनका प्रभाव मात्र कर्ता पर ही हो रहा है, अन्य पर नहीं। कुछ अकर्मक धातुओं से सकर्मक और प्रेरणार्थक क्रियाएँ बनती हैं।

सकर्मक क्रियाएँ- भाषा में सकर्मक क्रियाएँ उन्हें कहते हैं, जो वाक्य में कर्म की अपेक्षा करती है। यानि वाक्य में क्रिया का प्रभाव कर्ता पर नहीं तो कर्म पर पड़ता है। कुछ सकर्मक क्रियाएँ अकर्मक धातु से और कुछ सकर्मक धातु से बनती हैं। अकर्मक धातु से बनने वाली सकर्मक क्रियाएँ, जैसे- 'मर- मार', 'तुट- तोड' आदि। तो सकर्मक धातुओं से बनने वाली सकर्मक क्रियाएँ, जैसे- 'खा- खाणे', 'पी- पिणे', 'वाच-वाचणे', 'लिह- लिहिणे' आदि इसके उदाहरण हैं। इनका वाक्य में प्रयोग इस प्रकार से होगा- 'राम आंबा खात आहे.' (राम आम खा रहा है।) 'सीता दुध पीत आहे.'(सीता दूध पी रही है।) 'मोहन पुस्तक वाचत आहे.' (मोहन किताब पढ़ रहा है।) आदि। इन सभी वाक्यों में क्रिया का प्रभाव कर्ता पर न होकर कर्म पर हो रहा है। अत: कह सकते हैं कि इन सभी वाक्यों में सकर्मक क्रियाओं का प्रयोग किया गया है।

द्विकर्मक क्रियाएँ - द्विकर्मक क्रियाएँ वे क्रियाएँ होती हैं, जो वाक्य में दो कर्मों की मांग करती हैं। मराठी भाषा में द्विकर्मक क्रियाओं की संख्या बहुत कम है। इन क्रियाओं के वाक्यों में एक कर्म प्रधान होता है तो दूसरा कर्म गौण होता है। प्रधान कर्म के

साथ और गौण कर्म के बिना भी इन क्रियाओं का प्रयोग वाक्यों में किया जा सकता है, जैसे- 'देणे, पाठवणे, घेणे, सांगणे' आदि मराठी द्विकर्मक क्रियाएँ हैं। मराठी भाषा के वाक्यों में इनका प्रयोग इस प्रकार से होगा: 'रामाने सीतेला चाबी दिली.' (राम ने सीता को चाबी दी।) गौण कर्म के बिना- 'रामाने चाबी दिली.'(राम ने चाबी दी।) परंतु यहाँ पर मुख्य कर्म के बिना वाक्य में इसका प्रयोग अधुरा हो जाएगा, जैसे- 'रामाने सीतेला दिली.' (राम ने सीता को दी।) द्विकर्मक क्रियाओं के अन्य उदाहरण इस प्रकार हैं- 'मोहनने सोहनला पत्र पाठवले.' (मोहन ने सोहन को पत्र भेजा।) 'सोहनने मोहनकडून पैसे घेतले.' (सोहन ने मोहन से पैसे लिए।) 'आजीने मुलांना गोष्ट सांगितली.' (दादी ने बच्चों को कहानी सुनाई।)

प्रेरणार्थक क्रियाएँ - मराठी भाषा में प्रेरणार्थक क्रियाएँ सकर्मक तथा अकर्मक क्रिया धातु से बनती है। प्रेरणार्थक वे क्रियाएँ होती हैं, जो वाक्यों में प्रयुक्त कर्ता को कोई कार्य करने के लिए किसी और के द्वारा प्रेरित करती हैं। इसमें प्रथम प्रेरणार्थक क्रिया और द्वितीय प्रेरणार्थक क्रियाओं का समावेश होता है: जैसे- 'बस'- अकर्मक क्रिया से 'बसव', 'झोप'- अकर्मक क्रिया से 'झोपव', 'पी' सकर्मक क्रिया से 'पाजव', 'मोज' से 'मोजव', 'कर' से 'करव' आदि मराठी की अकर्मक तथा सकर्मक क्रियाओं से प्रेरणार्थक रूप बनाए जा सकते हैं। इनका वाक्य में प्रयोग इस प्रकार से देखा जा सकता है। मराठी वाक्य में प्रयोग- प्रथम प्रेरणार्थक - 'मोहनने पाहुण्यांना जेवायला बसवले'. द्वितीय प्रेरणार्थक- 'मोहनने नौकराकडून पाहुण्यांना जेवायला बसवले.' प्र.प्रे.-'आईने बाळाला झोपवले.' द्वि. प्रे.-'आईने मोलकरणीकडून बाळाला झोपवले.' प्र. प्रे.- 'मोहन मोलकरीणीकडून पैसे मोजवुन घेतो.' सामान्य क्रिया वाक्य- 'मोहन काम करतो.' प्र. प्रे.- 'मोहन मोलकरीणीकडून काम करवून घेतो.' द्वि.प्रे.- 'मोहन सोहनला सांगुन मोलकरीणीकडून काम करवून घेतो.' इन में से प्रथम प्रेरणार्थक क्रिया वाक्यों में प्रयोजक कर्ता,(PK1) तथा प्रयोज्य कर्ता (JK1) का प्रयोग हुआ हैं तो द्वितीय प्रेरणार्थक क्रिया वाक्यों में इन कर्ताओं के साथ मध्यस्त कर्ता (MK1) का भी प्रयोग होता है।

हिंदी धातु रूप और क्रिया संरचना -

पहले हम धातु के भेद और क्रिया के प्रकारों को देखते हैं। क्रियापद के उस भाग को धातु कहते है, जो क्रिया के सभी रूपों में उपस्थित रहता है। धातु में 'ना' प्रत्यय लगने से क्रिया का सामान्य रूप बनता है, जैसे- हिंदी भाषा में 'खा, पी, सो, जा, रो, उठ,' आदि धातु रूप हैं। इनमें 'ना' प्रत्यय जोड़ने से क्रिया सामान्य रूप बन जाएगा जैसे- 'खाना, पीना, सोना, जाना, रोना और उठना' आदि। प्रयोग और व्युत्पत्ति के आधार पर धातुओं के मुख्य दो भेद देखने को मिलते हैं: 1. मूल धातु 2. यौगिक धातु।

1. मूल धातु- मूल धातु वे धातु होते हैं, जो किसी दूसरे शब्द से नहीं बनते हैं, तथा किसी दूसरे शब्द पर निर्भर भी नहीं होते हैं। ये वाक्य में अकेले भी प्रयुक्त हो सकते हैं: जैसे- 'जा, खा, दे, पी', यह धातु किसी दूसरे शब्द से नहीं बने हैं, इनका वाक्य में प्रयोग इस प्रकार से होता हैं जैसे- 'तू घर जा'।, 'तू आम खा'।, 'तू दूध पी' आदि इनके उदाहरण हैं। इन धातुओं का प्रयोग केवल मध्यम पुरुष, एकवचन के साथ ही वाक्य में संभव होते हैं।

2. यौगिक धातु- प्रत्ययों के योग से यौगिक धातुओं की निर्मिती होती है। इसके तीन प्रकार देखे जा सकते हैं-

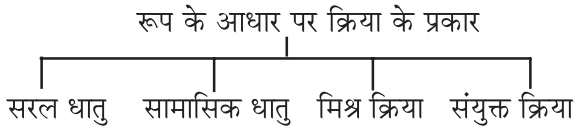
1) धातुओं में प्रत्यय जोड़ने से सकर्मक तथा प्रेरणार्थक धातुएँ बनाना। सकर्मक धातु बनाना- 'धुल- धो, उखड़-उखाड़, ढँक-ढाँक, रो-रुला' आदि प्रेरणार्थक धातु बनाना- 'पी-पिला, खा-खिला, सो- सुला' आदि।

2) संज्ञा तथा विशेषण से नामधातु बनाना- संज्ञा तथा विशेषण से बनने वाले धातुओं को नामधातु कहते हैं, जैसे-'हाथ-हथियाना, लात-लतियाना, लाठी-लठियाना आदि इसके उदाहरण हैं।

3) धातु में एक या एक से अधिक धातुओं को जो ?कर संयुक्त धातु बनाना - 'ले + जाना = ले जाना, ढूँढ+ निकालना= ढूँढ निकालना, ले+ आना = ले आना' आदि इसके उदाहरण हैं।

उपरोक्त उदाहरणों में हम धातु के प्रकार देखते हैं, जिनमें सरल धातु और यौगिक धातु प्राप्त होते हैं। इन धातुओं में प्रत्यय जोड़कर उनसे अलग-अलग क्रियाओं का निर्माण किस प्रकार से करते हैं और उनका वाक्य में प्रयोग किस प्रकार से करते हैं, इन सभी बिंदुओं पर आगे विस्तार से चर्चा करते हैं।

रूप रचना के आधार पर मुख्य क्रियाओं के चार भेद किए जाते हैं: 1. धातु से क्रिया बनाना, 2. यौगिक धातु से क्रिया बनाना 3. मिश्र क्रिया और 4. संयुक्त क्रिया।



1. **सरल धातु से क्रिया बनाना**- धातु से बनने वाली अधिकांश क्रियाएँ अधिकतर सरल धातु से ही बनती हैं। इन क्रियाओं का

प्रयोग हिंदी भाषा में अधिक होता हैं। इनको एकल या सरल क्रियाएँ भी कहते हैं। जैसे, धातु- 'जा, आ, सो'(अकर्मक) 'खा, पी, देख, पढ़',(सकर्मक) 'दे, ले,'(द्विकर्मक) 'दिला, सुला, नहला'(प्रेरणार्थक) इन धातुओं में प्रत्यय लगाकर सरल क्रियाओं के जो रूप बनते हैं वे इस प्रकार हैं: जैसे - 'जा - जाना, आ - आना, सो- सोना' आदि अकर्मक क्रियाएँ हैं।'खा- खाना, पी- पीना, देख- देखना, पढ़- पढ़ना' आदि सकर्मक क्रियाएँ हैं।'खा - खिलाना, खिलवाना, पी - पिलाना, पिलवाना, दे - दिलाना, दिलवाना,पढ़- पढ़ना, पढ़वाना' आदि प्रेरणार्थक क्रियाएँ बनती हैं। इनमें क्रियाओं के सभी रूप सकर्मक, अकर्मक, द्विकर्मक, प्रेरणार्थक शामिल हैं।

2. सामासिक धातु से क्रिया बनाना- हिंदी भाषा में कुछ क्रियाएँ दो धातु रूपों से मिलकर भी बनती हैं, उन्हें सामासिक क्रियाएँ कहते हैं। जैसे - 'भाग-दौड़', 'चल-फिर', 'खा-पी' आदि इसके उदाहरण हैं। सामासिक क्रियाएँ दो ऐसी धातुओं से मिलकर बनती हैं, जो अर्थ की दृष्टि से आपस में जुड़ी होती हैं। इनमें दोनों धातुओं का अर्थ आपस में बना रहता हैं। जैसे - 'वह भाग-दौड़ कर सकता है'। 'हादसे के बाद अब वह चल-फिर सकता है'।

3. मिश्र क्रिया - संरचना की दृष्टि से क्रिया प्रकारों में से एक प्रकार मिश्र क्रिया है। मिश्र क्रियाओं का निर्माण संज्ञा + क्रिया के योग से किया जाता है। ऐसी क्रियाएँ संज्ञा या विशेषण के बाद 'कर,''हो' आदि (Verbelizer) क्रियाकरों के प्रयोग से बनती हैं। जैसे- 'पता-होना', 'ठीक-करना', 'प्यार-होना', 'इंतजार-करना' आदि क्रियाओं का समावेश इसमें आता हैं।

4. संयुक्त क्रियाएँ - रूप रचना के आधार पर संयुक्त क्रिया क्रिया के प्रकारों में से एक हैं, इन क्रियाओं में दो क्रियाएँ होती हैं। इनमें पहली क्रिया मुख्य क्रिया के रूप में प्रयुक्त होती है, तथा दूसरी क्रिया से काल, पक्ष और वृत्ति का बोध होता हैं। जैसे- 'बेच-देना', 'खरीद- लेना', इनमें भी कुछ क्रियाएँ ऐसी होती हैं जो स्वतंत्र रूप से प्रयोग में नहीं आती। जैसे -'सकना' इसका स्वतंत्र प्रयोग नहीं होता हैं। यह एक तरह से क्षमता को दर्शाता हैं। जैसे- 'वह अब चल सकता हैं'। संयुक्त क्रियाओं में रंजक क्रियाओं का प्रयोग होता हैं। रंजक क्रियाओं को अंग्रेजी मे इंन्टेसिफायर (intensifier) भी कहते हैं। रंजक क्रियाओं में प्रथम क्रिया का कोशीय अर्थ होता है, तो दूसरी क्रिया अपना कोशीय अर्थ खो देती है। इनके उदाहरण हैं- 'फेक देना', 'रो पड़ना', 'चिल्ला उठना' आदि। हिंदी की रंजक क्रियाओं की यह विशेषता हैं कि ये नकारात्मन वाक्यों में प्रयोग नहीं होती।

5. यौगिक क्रिया - यौगिक क्रियाएँ वे क्रियाएँ हैं, जिनके प्रयोग में दो क्रियाओं का प्रयोग होता हैं और उन दोनों का अपना-अपना कोशीय अर्थ होता हैं। ये दिखने में संयुक्त क्रियाओं की तरह ही होती है पर ये उनसे भिन्न होती हैं। जैसे- 'ले-आना', 'ले- जाना', 'उखाड़- फेकना' इनमें दोनों क्रियाओं के अपने-अपने अर्थ सुरक्षित रहते हैं।

अर्थ के आधार पर क्रियाओं के भेद-

अर्थ या प्रकार्य के आधार पर हिंदी क्रियाओं को इस प्रकार से विभाजित गया हैं।

1) अकर्मक
2) सकर्मक
3) द्विकर्मक
4) प्रेरणार्थक
5) कर्ता + को क्रियाएँ
6) योजक क्रियाएँ (copula/ Linking)

1. अकर्मक क्रियाएँ (Intransitive verbs)- अकर्मक क्रियाएँ वे क्रियाएँ होती हैं, जो कर्म की अपेक्षा नहीं करती। वाक्य में जब भी इन क्रियाओं का प्रयोग होता हैं, तो वाक्य बिना कर्म के प्रयुक्त होता हैं। या कहा जाए तो कर्ता के कार्य का प्रभाव स्वयं कर्ता पर ही पड़ता है, किसी और पर नहीं। जैसे- 'रोना', 'सोना', 'जाना', 'आना', 'नहाना' आदि अकर्मक क्रियाएँ हैं, क्योंकि इन क्रियाओं का प्रभाव केवल कर्ता पर ही पड़ रहा है। वाक्य में इनका प्रयोग इस प्रकार से मिलता हैं। मोहन घर जाता है।, राम सो रहा है।, लड़का नहा रहा है। आदि इनके उदाहरण हैं।

2. सकर्मक क्रियाएँ (Transitive verbs)- सकर्मक क्रियाएँ वे क्रियाएँ होती है जो कर्म की अपेक्षा करती हैं। यानि ये क्रियाएँ वाक्य में प्रयुक्त होने पर वाक्य में कर्म का प्रयोग होता है। कर्म वे होते हैं, जिनपर क्रिया का प्रभाव पड़ता है। यानि वाक्य में कर्ता के द्वारा किए गए कार्य का व्यापार कर्म पर पड़ता हैं। 'खाना', 'पीना', 'पढ़ना', 'लिखना', 'देखना', 'छूना', आदि कर्म की अपेक्षा करने वाली सकर्मक क्रियाएँ हैं। इनका वाक्य में प्रयोग इस प्रकार से हैं - 'लड़का पानी पीता है।''राम आम खाता है।' 'लड़की किताब पढ़ती है।''अध्यापक पत्र लिखते हैं।''मोहन जंगल में शेर को देखता है।''वह बुजुर्गों के पैर छूता है।' आदि उपरोक्त वाक्यों में सभी क्रियाओं का कार्य व्यापार या प्रभाव कर्म पर पड़ रहा हैं।

3. द्विकर्मक क्रियाएँ (Ditransitive verbs)- द्विकर्मक क्रियाएँ वह क्रियाएँ होती हैं, जो वाक्य में दो कर्मों की अपेक्षा करती हैं। यानि यह क्रियाएँ एक तरह से सकर्मक क्रियाएँ होते हुए वाक्य में दो कर्मों की मांग करती हैं, जिसमें एक मुख्य कर्म होता है और दूसरा गौण कर्म। मुख्य कर्म वह कर्म होता है- जिसकी अनुपस्थिति में वाक्य अपूर्ण लगता है। गौण कर्म वह कर्म होता है, जो वाक्य में प्रयुक्त नहीं भी किया तो वाक्य अधुरा नहीं रहता और उसमें पूर्ण अर्थ की प्राप्ति होती है। हिंदी में द्विकर्मक क्रियाओं की संख्या बहुत ही कम हैं। इनमें से कुछ द्विकर्मक क्रियाएँ इस प्रकार से बताई जा सकती हैं। जैसे - भेजना, देना, लेना आदि इसके उदाहरण हैं और इनका वाक्य में प्रयोग इस प्रकार से हैं। 1.'पत्नी ने पति को पत्र भेजा।' 2.'मोहन ने सोहन को किताब दी।' 3. 'नौकर ने मेहमानों के लिए चाय लायी।' उपर्युक्त द्विकर्मक क्रियाओं के उदाहरणों में जैसे वाक्य क्रमांक 1. में 'पत्नी ने पति को भेजा'। वाक्य पूर्ण अर्थ नहीं देता। परंतु 'पत्नी ने पत्र भेजा'। वाक्य हो सकता है, इस वाक्य में 'पति को' गौण कर्म तथा 'पत्र' मुख्य कर्म होगा। वाक्य क्रमांक 2. में 'मोहन ने किताब दी'। बन सकता है, परंतु 'मोहन ने सोहन को दी'। वाक्य ग्राह्य नहीं माना जाएगा। अत: यह कह सकते हैं कि प्रस्तुत वाक्य में 'किताब' मुख्य कर्म है और 'सोहन' गौण कर्म। इसी प्रकार वाक्य क्रमांक 3. का विश्लेषण करे तो पता चलता है कि 'नौकर ने चाय लायी।' वाक्य ग्राह्य है, परंतु 'नौकर ने महमानों के लिए लायी।' वाक्य ग्राह्य नहीं होगा। इससे यह ज्ञात होता है कि उपर्युक्त वाक्य में 'चाय' मुख्य कर्म तथा 'महमान' गौण कर्म है।

4. प्रेरणार्थक क्रिया - प्रेरणार्थक क्रियाएँ वे क्रियाएँ होती हैं, जो अकर्मक तथा सकर्मक क्रिया धातुओं में प्रत्यय लगाकर बनाई जाती है। यानि अकर्मक तथा सकर्मक क्रियाओं के धातुओं को प्रत्यय जोड़ने से प्रथम प्रेरणार्थक तथा द्वितीय प्रेरणार्थक क्रियाएँ बनती हैं। प्रेरणार्थक क्रियाओं का अर्थ है, वाक्य में कर्ता द्वारा कार्य को करने के लिए किसी और को प्रेरित करना। प्रेरणार्थक क्रियाओं को अंग्रेजी में (Causative Verbs) भी कहते हैं। प्रेरणार्थक क्रियाओं के प्रकार हैं: 1. प्रथम प्रेरणार्थक 2. द्वितीय प्रेरणार्थक।

1. प्रथम प्रेरणार्थक- प्रथम प्रेरणार्थक क्रियाएँ वे क्रियाएँ हैं, जो अकर्मक तथा सकर्मक धातु में प्रत्यय जुड़कर बनती हैं। प्रथम प्रेरणार्थक क्रियाओं में कर्ता किसी भी प्रकार की क्रिया करने के लिए किसी अन्य को प्रेरित करता है। प्रयोजक कर्ता द्वारा जिसे प्रेरित किया जाता है उसे प्रयोज्य कर्ता कहते हैं और क्रिया का फल उसपर पड़ता है। प्रथम प्रेरणार्थक वाक्यों में प्रयोजक कर्ता और प्रयोज्य कर्ता का प्रयोग होता है। तो वही द्वितीय प्रेरणार्थक क्रिया वाक्यों में प्रयोजक, प्रयोज्य कर्ता के साथ मध्यस्थ कर्ता का भी प्रयोग होता है। प्रथम प्रेरणार्थक क्रियाओं का निर्माण करने के लिए अकारांत धातु में 'आ' प्रत्यय जुड़ता है और अकारांत को छोड़कर अन्य कारांत में 'ला' प्रत्यय जुड़ता है। इनसे बनने वाले प्रेरणार्थक रूप प्रथम प्रेरणार्थक कहलाते हैं, जो इस प्रकार से हैं। जैसे- 'पढ़-पढ़ा', देख- दिखा, सीख-सिखा, खा-खिला' आदि क्रिया धातु अकारांत होने की वजह से इनमें 'आ' प्रत्यय का योग होकर इनसे प्रेरणार्थक क्रियाएँ बनी हैं। इनका वाक्य में प्रयोग इस प्रकार से किया जाता है- 1. 'अध्यापक छात्रों को पढ़ाते है'। इस उदाहरण में अध्यापक द्वारा छात्रों को पढ़ने की प्रेरणा मिल रही है, या अध्यापक छात्रों को पढ़ने के लिए प्रेरित कर रहे हैं। यहाँ पर पढ़ने की क्रिया छात्रों के द्वारा ही हो रही है, परंतु यह क्रिया अध्यापक द्वारा छात्रों से करायी जा रही है। 2.'राम ने मोहन को पत्र दिखाया।' 3.'गुरूजी राधा को नृत्य सिखाते हैं।' 4.'मोहन बच्चे को खाना खिलाता है।' आदि इनके उदाहरण हैं। इन उदाहरणों के वाक्य 1 में 'अध्यापक', वाक्य 2. में 'राम', वाक्य 3. में 'गुरूजी' वाक्य 4. में 'मोहन' आदि प्रयोजक कर्ता है, जो क्रिया करने के लिए किसी को प्रेरित कर रहे हैं। प्रयोजक कर्ता वह कर्ता होता जो क्रिया करने के लिए कारण बनता है या प्रेरित होता है। प्रयोज्य कर्ता वह होता है, जो प्रत्यक्ष क्रिया में भाग लेता है। प्रयोज्य कर्ता प्रत्यक्ष उस क्रिया को करने का कार्य करता है।

2. द्वितीय प्रेरणार्थक क्रिया:- सकर्मक तथा अकर्मक अकारांत धातुओं में 'अवा' प्रत्यय तथा अन्य कारांत में 'लवा' प्रत्यय जोड़कर द्वितीय प्रेरणार्थक क्रिया बनाई जाती है। जैसे - 'दे - दिलवा', 'खा-खिलवा', 'पी- पिलवा', 'सो-सुलवा', 'लिख-लिखवा', 'पढ़- पढवा', 'बन-बनवा' आदि इनके उदाहरण हैं। इनका वाक्य में प्रयोग इस प्रकार से होगा जैसे - 1. 'मोहन राम को सीता से पैसे दिलवाता है'। 2. 'माँ बच्चे को दायी से खाना खिलवाती है'। 3. 'मोहन सोहन को नौकर से चाय पिलवाता है'। 4. 'माँ बच्चे को नौकरानी से सुलवाती है'। 5. 'मुख्याध्याप ने अध्यापक के द्वारा बच्चों से कहानी लिखवाई'। 6. 'मुख्याध्यापक ने बच्चों को अध्यापक से पाठ पढ़वाया'। 7. 'मोहन ने नौकर से मेहमानों के लिए चाय बनवायी'। आदि द्वितीय प्रेरणार्थक वाक्य हैं। वाक्य क्रमांक 1. में मोहन (प्रयोजक कर्ता) सीता से (मध्यस्त कर्ता) और राम को (प्रयोज्य कर्ता) दिलवाना (द्वितीय प्रेरणार्थक क्रिया) है। वाक्य क्रमांक 2. में माँ (प्रयोजक कर्ता) दायी से

(मध्यस्त कर्ता) और बच्चा को (प्रयोज्य कर्ता) खिलवाना (द्वितीय प्रेरणार्थक)क्रिया है। वाक्य क्रमांक 3. में मोहन (प्रयोजक कर्ता) नौकर से (मध्यस्त कर्ता) सोहन को (प्रयोज्य कर्ता) पिलवाना (द्वितीय प्रेरणार्थक) क्रिया है। वाक्य क्रमांक 4. में माँ (प्रयोजककर्ता) नौकरानी से (मध्यस्त कर्ता) और बच्चा (प्रयोज्य कर्ता) सुलवाना (द्वितीय प्रेरणार्थक) क्रिया है। वाक्य क्रमांक 5. में मुख्याध्यापक ने (प्रयोजक कर्ता) अध्यापक के द्वारा (मध्यस्त कर्ता) और बच्चों से (प्रयोज्य कर्ता) लिखवाना(द्वितीय प्रेरणार्थक) क्रिया है। वाक्य क्रमांक 6. में मुख्याध्यापक ने (प्रयोजक कर्ता) अध्यापक से (मध्यस्त कर्ता) और बच्चों को (प्रयोज्य कर्ता) पढ़वाना (द्वितीय प्रेरणार्थक) क्रिया है। और वाक्य क्रमांक 7. में मोहन ने (प्रयोजक कर्ता) नौकर से (मध्यस्त कर्ता) और मेहमानों के लिए (प्रयोज्य कर्ता) बनवाना (द्वितीय प्रेरणार्थक) क्रिया है।

5. कर्ता + को क्रियाएँ - कर्ता + को क्रियाएँ वे क्रियाएँ होती हैं, जो वाक्य में कर्ता के साथ को कारक की अपेक्षा करती है। इस प्रकार की क्रियाओं के वाक्यों में कर्ता के साथ हमेशा 'को' का ही प्रयोग होता है। इन क्रियाओं के उदाहरण इस प्रकार से हैं: जैसे- चाहना, हो-जाना, लगना, आदि इसके उदाहरण हैं। वाक्य में इनका प्रयोग इस प्रकार से किया जाता है।- 1. 'मुझको किताब चाहिए'। 2. 'मोहन को प्यार हो गया है'। 3. 'राधा को श्याम अच्छा लगता है'। 3. 'लडके को बुखार है'। वाक्य क्रमांक 4. में 'है' क्रिया योजक क्रिया 'है' से भिन्न है।

6. योजक क्रिया (copula verbs)- योजक क्रियाएँ वे क्रियाएँ होती हैं, जो वाक्य में कर्ता और क्रिया के बीच सेतु का काम करती हैं। इन्हें अंग्रेजी में लिंकिंग वर्ब्स (Linking Verbs) भी कहते हैं। यह क्रियाएँ सकर्मक तथा अकर्मक क्रियाओं से बिलकुल भिन्न होती हैं। यह वाक्य में कर्ता को उसके पूरक से जोड़ने का काम करती हैं। जब सहायक क्रिया 'है' वाक्य में मुख्य क्रिया के रूप में प्रयुक्त होती है, तो वह क्रिया योजक क्रिया के रूप में अकसर प्रयोग की जाती है, 'था' और 'होगा' इसके भूत तथा भविष्य काल के रूप हैं। वाक्य में इसका प्रयोग इस प्रकार से होगा- 1. मोहन अध्यापक है। 2. इश्वर है। 3. लड़की बीमार थी। 4. लड़का भविष्य में महान खिलाडी होगा। वाक्य क्रमांक 1. में 'है' योजक क्रिया कर्ता और उसके पूरक को जोड़ने का काम कर रही है, तो वाक्य क्रमांक 2. में 'है' योजक क्रिया अस्तित्त्व का बोध करा रही है।

मराठी से हिंदी क्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन-

1. क्रिया रूपों में भिन्नता- मराठी भाषा में 'खा' धातु को 'तो' प्रत्यय जुड़कर 'खातो'(present Tense) रूप बनता है, तो हिंदी भाषा में 'खा' धातु में 'ता' प्रत्यय लगाकर 'खाता' रूप बनता है।

जैसे -'राम आंबा खातो'. (राम आम खाता है।) मराठी भाषा में 'तो' प्रत्यय (Tense: Present, Aspect: Habitual, Mood: Indicative, Gender: Masculine, Number: Singular, Person: First/Third) ये व्याकरणिक कोटियाँ जुड़ी हुई हैं। तो हिंदी भाषा में 'ता_है' प्रत्यय के साथ (Tense: Present, Aspect: Habitual, Mood: Indicative, Gender: Masculine, Number: Singular, Person: Second/Third) ये व्याकरणिक कोटियाँ जुड़ी हैं। मराठी भाषा में 'तो' प्रत्यय प्रथम पुरुष, एक वचन, पुलिंग के साथ भी प्रयुक्त होता है, जैसे- 'मी आंबा खातो.' परंतु हिंदी भाषा का 'ता_है' प्रत्यय प्रथम एक वचन के साथ नहीं प्रयुक्त होता। जैसे- *मैं आम खाता है। हिंदी में 'मै' के साथ हमेशा 'ता_हूँ' प्रत्यय का प्रयोग प्रथम पुरुष, एक वचन, पुलिंग में होता है।

मराठी क्रिया प्रत्यय	हिंदी क्रिया प्रत्यय	लिंग	वचन	पुरुष	काल	पक्ष	वृत्ति
'तो'	ता_है	पुल्लिंग	एक वचन	अन्य पुरुष	वर्तमान	नित्य	निश्चयात्मक
'तो'	ता_हूँ	पुल्लिंग	एक वचन	प्रथम पुरुष	वर्तमान	नित्य	निश्चयात्मक

जैसे- I) राम आंबा खातो. (राम आम खाता है।)

II) मी आंबा खातो.(मैं आम खाता हूँ।) उपरोक्त उदाहरणों में पुरुष के स्तर पर दोनों भाषा में भिन्नता देखने को मिलती है।

लिंग के स्तर पर दोनों भाषाओं में भी भिन्नताएँ मिलती है

जैसे- I) रामाने सीतेला चाबी दिली.(राम ने सीता को चाबी दी।)

II) रामाने सीतेला पुस्तक दिले. (राम ने सीता को किताब दी।)

मराठी क्रिया प्रत्यय	हिंदीक्रिया प्रत्यय	लिंग	वचन	पुरुष	काल	पक्ष	वृत्ति
'ली'	'ी'	स्त्रीलिंग	एक वचन	अन्य पुरुष	भूतकाल	पूर्ण	निश्चयात्मक
'ले'	'ी'	नपुं.लिंग	एक वचन	अन्य पुरुष	भूतकाल	पूर्ण	निश्चयात्मक

वाक्य I) में क्रिया प्रत्यय 'ली' स्त्रीलिंग, एकवचन, अन्यपुरुष में है, तो वही II) में क्रिया प्रत्यय 'ले' नपुंसक लिंग, एकवचन, अन्य पुरुष में है। जबकि हिंदी के दोनों वाक्यों में क्रिया प्रत्यय स्त्रीलिंग, एकवचन, अन्य पुरुष में है।

2. संरचना की दृष्टि से हिंदी और मराठी की क्रियाओं में काफी हद तक समानताएँ हैं। यह समानताएँ केवल संरचना के स्तर की

न होकर क्रिया धातु रूप में समानताएँ प्राप्त होती हैं: जैसे- मराठी वाक्य- 1. 'तू घरी जा'. 2. 'तू खा'.3. 'तू बस'. 4. 'तू उठ'. आदि एकवचन, मध्यम पुरुष वाक्यों में क्रिया के धातु रूप का प्रयोग हुआ हैं। तो हिंदी के वाक्यों में भी समान प्रयोग देखने को मिलता है। जैसे- हिंदी वाक्य- 1.तू घर जा. 2.तू खा. 3.तू बैठ. 4.तू उठ आदि। यह समानताएँ कही-कही नहीं भी दिखाई देती है जैसे- 'बस' मराठी क्रिया और उसके ही सामान हिंदी भाषा में 'बैठ' क्रिया का प्रयोग हुआ है। यहाँ पर यह भिन्नता केवल भाषा की अपनी विशेषता के कारन दिखाई देती है।

3. मराठी-हिंदी भाषा की क्रियाओं में कही- कही रचनागत भिन्नताएं भी देखने को मिलती है। मराठी की कुछ मिश्र एवं संयुक्त क्रियाएँ हिंदी भाषा में सरल क्रिया के रूप में प्रयुक्त होती हैं: जैसे-

मराठी मिश्र क्रियाएँ	हिंदी सरल क्रियाएँ
विचार करणे	सोचना
विकत घेणे	खरीदना
अंघोळ करणे	नहाना
उडी मारणे	कूदना

उपरोक्त टेबल में बताया गया है कि किस प्रकार मराठी मिश्र क्रियाओं के लिए हिंदी भाषा में सरल क्रियाएँ मिलती हैं।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि मराठी और हिंदी क्रिया रूपों में समानता के साथ भिन्नता भी है। मराठी भाषा में तीन लिंग की व्यवस्था है, इस वजह से मराठी क्रियाओं पर तीसरे यानि नपुंसक लिंग का भी प्रभाव पड़ता है। परंतु हिंदी भाषा में दो ही लिंग है, इसी वजह से यहाँ हिंदी क्रियाओं पर स्त्री लिंग और पुलिंग का ही प्रभाव देखा जा सकता है। मराठी भाषा में सामान्य वर्तमान काल में प्रथम पुरुष के साथ वचन का प्रभाव क्रिया पर नहीं पड़ता है: जैसे- मी जातो. आम्ही जातो. परंतु हिंदी भाषा में प्रथम पुरुष के साथ वचन का प्रभाव क्रिया पर साफ देखा जा सकता है: जैसे- मैं जाता हूँ। हम जाते हैं। मराठी और हिंदी भाषा की क्रियाओं में कही-कही समानताएँ भी देखने को मिलती हैं और असमानताएँ भी। मराठी के मिश्र क्रिया रूपों के लिए हिंदी में सरल क्रिया रूपों का भी प्रयोग यहाँ हमें देखने को मिलता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. गुरु, कामताप्रसाद, संक्षिप्त हिंदी व्याकरण, 2014,वाणी प्रकाशन नई दिल्ली.
2. बासुतकर, एम. एम., हिंदी-मराठी क्रिया पदबंध व्यतिरेकी विश्लेषण, केंद्रीय हिंदी संस्थान आगरा.
3. वालंबे एम. आर., सुगम मराठी व्याकरण लेखन, 2011, नितिन प्रकाशन पुणे.
4. तरुण हिरवंश, मानक हिंदी व्याकरण और रचना,2010, प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली.
5. देशमुख, अम्बादास, हिंदी और मराठी की व्याकरणिक कोटियाँ, 1990 , अतुल प्रकाशन कानपुर.
6. बोरकर, प्रमिला, मराठी -हिंदी-अंग्रेजी तुलनात्मक व्याकरण, नंदिनी पब्लिशिंग हाऊस, पुणे
7. धोंगडे, रमेश वामन, मराठी, 2009, जॉन बेंजामिन पब्लिशिंग कंपनी, एम्स्टर्डम/फिलाडेल्फिया.
8. सिंह, सूरजभान, हिंदी भाषा सन्दर्भ और संरचना, 2008, साहित्य सहकार नई दिल्ली.
9. तिवारी, भोलानाथ, हिंदी भाषा की वाक्य संरचना, साहित्य सहकार, नई दिल्ली.
10. सिंह, सूरजभान, अंग्रेजी-हिंदी अनुवाद व्याकरण, 2006, प्रभात प्रकाशन दिल्ली.
11. दामले, एम.के., शास्त्रीय मराठी व्याकरण,1925, इंदुप्रकाश छापखाना मुंबई.

ISSN 2278 - 0327

मनुस्मृतिकालीन समाज में महिलाओं के स्थान

सुव्रत गायेन
सहायक अध्यापक
संस्कृत विभाग, चन्दननगर महाविद्यालय

भूमिका –

यः कश्चित् कस्यचिद्धर्मो मनुना परिकीर्त्तितः।
स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः।।

मनुस्मृति ऋषि मनु द्वारा दिए गए सिद्धांतों पर आधारित संपूर्ण हिंदू समाज के शासन के लिए नियमों को निर्धारित करने वाली एक प्राचीन स्मरणीय कानून पुस्तकहै। यहां, समाज में शांति बनाए रखने के लिए अधिकार और कर्तव्य के बारे में विस्तार से बताया गया है। ऋषि मनु ने मनुस्मृति में प्राचीन हिंदू समाज में महिलाओं की स्थिति का उन्नति, महिलाओं के कल्याण के लिए कुछ अधिकार और उन अधिकारों के खिलाफ कुछ प्रतिबंध बताते हैं। महिलाओं की स्थिति पर चर्चा करने में अग्रणी होने के नाते यह कार्य निस्संदेह उल्लेखनीय है। प्राचीन हिंदू पारंपरिक कानून की यह श्रद्धेय पुस्तक किसी भी समय के समाज के साथ लागू किया जा सकता है।

कभी-कभी मनु को घर में बंद कर महिलाओं के प्रति दमनकारी कहा जाता है। लोगों का एक वर्ग मनु की समालोचना करता है कि आधुनिक युग के परिप्रेक्ष्य में महिलाओं के विकास के लिए उनके सिद्धांत पीछे हट गए हैं। ऐसे आलोचक केवल मनुस्मृति के उन श्लोकों को उद्धृत करते हैं, जिनमें महिलाओं के लिए आलोचना होती है या तकनीकी युग के समकालीन सामाजिक परिदृश्य में नारीत्व के लिए अपमानजनक है। लेकिन, यह स्पष्ट है कि वे स्वेच्छा से मनु के दूषण हेतु उन श्लोकों को उल्लेख करते हैं। यहाँ, इस प्रबन्ध में मनुस्मृति के परिप्रेक्ष्य में परिकल्पित स्त्री के सामाजिक स्थान पर ध्यान केंद्रित करने का प्रयास किया जाएगा।

विषयवस्तु –

मनु के अनुसार नारी परिवार या घर की नींव है। परंपरागत रूप से, एक परिवार में पुरुष सदस्य भोजन या बाहरी आक्रमण से सुरक्षा के लिए चीजें जमा करते हैं, जबकि महिलाएं परिवार का विस्तार करके समाज की निरंतरता का पोषण करती हैं, चाहे वह नई संतानों का जन्म हो या पारिवारिक परंपरा का संरक्षण। प्राचीन शास्त्रों में कहा गया है कि चरित्र के संगठन में मनुष्य पूरी तरह से अपनी मां का पालन करता है।[1] मनु के लिए पारिवारिक अनुशासन बनाए रखने के लिए महिला का व्यवहार बहुत महत्त्वपूर्ण है।

मनु महिलाओं को घर के कामों में ही व्यस्त रखना चाहते थे। मनु के कथन सामाजिक बुराइयों का संकेत देते हुए उन प्रभावों का उल्लेख करते हैं जो किसी अज्ञात पुरुष द्वारा महिलाओं को नुकसान पहुंचा सकते हैं। यहां तक कि वह पुरुषों के प्रति महिलाओं के आकर्षक स्वभाव के लिए उनकी आलोचना भी करते हैं। मनु के अनुसार, एक बुद्धिमान व्यक्ति भी काम या क्रोध से प्रभावित हो सकता है।[2] इसलिए, अज्ञात बाहरी लोगों से, अपनी शील की रक्षा के लिए महिलाओं को व्यस्त रखने की आवश्यकता है। क्योंकि स्त्रियाँ इस संसार में मूर्ख ही नहीं, विद्वान् पुरुष को भी पथभ्रष्ट कर सकती हैं, और उसे काम और क्रोध की दास बना सकती हैं।[3] नारीसंग में इन्द्रियाँ ज्ञानी पुरुषों को भी अपने आकर्षण से विवश कर सकती हैं। मनु हमेशा नर और नारी के अनधिकृत मिलन की कड़ी निंदा करता है।

एक महिला को कभी भी स्वतंत्र नहीं होना चाहिए[4] – इस वचन की तात्पर्य है मनु स्त्री को अकेले कुछ करने से रोकता है। पुरुषों को कर्तव्य सौंपकर (महिलाओं की रक्षा के लिए) मनु अप्रत्यक्ष रूप से महिलाओं को जीवन में सुरक्षा के लिए विशेषाधिकार प्रदान करता है।[5] मनु मानते हैं कि सर्वशक्तिमान् की रचना का संरक्षण समाज के सदस्यों के बीच परस्पर निर्भरता के सिद्धांत पर टिका है। मानव जाति की सतत निरंतरता के लिए पुरुष और महिला दोनों महत्वपूर्ण हैं। इसे एक वर्ग की दूसरे पर श्रेष्ठता नहीं कहा जा सकता।

बचपन में महिलाओं की स्थान –

मनु कहते हैं कि पुत्री पुत्र के समान है।[6] हिंदू सामाजिक रीति-रिवाजों में शिशु परिवार का एक हिस्सा है, आनंद की वस्तु

है। शैशव काल को स्नेह का काल कहा जाता है। उस स्तर पर लड़का या लड़की होने के लिए कोई भेदभाव नहीं किया जाता है। वैदिक, महाकाव्य या शास्त्रीय साहित्य में भी कन्या भ्रूण हत्या की दुष्ट प्रथा का कोई उल्लेख नहीं था। स्मृतिकार मनु भ्रूण के विनाश को सबसे जघन्य अपराध मानते हैं।[7]

हमें यह भी याद रखना होगा कि अथर्ववेद में लड़कियों की शिक्षा पर जोर दिया गया है।[8] मनुस्मृति महिलाओं के लिए संस्थागत शिक्षा को घरेलू कामों की शिक्षा के साथ प्रतिस्थापित करती है।[9] इसमें कहा गया है कि पति अपनी पत्नी को अपने धन के संग्रह और व्यय में, सब कुछ साफ रखने में, धार्मिक कर्तव्यों की पूर्ति में, और घर के संरक्षण की शिक्षा में लगाये।

वैदिक युग के पारंपरिक हिंदू समाज में, महिलाओं का कर्तव्य बच्चों को शिक्षित करना और व्यक्तिगत पारिवारिक परंपरा को जारी रखना भी था। विवाह से पहले की समय का उपयोग बेटी को शिक्षा प्रदान करने के लिए किया जाता था। उपनिषदों में एक विद्वान बेटी के जन्म को सुनिश्चित करने के लिए गृहस्वामी को निश्चित अनुष्ठान की सिफारिश की गई है।[10] समाज में, विद्वान बेटी को एक परिवार के गर्व रूप में माना जाता है।[11]यहाँ पुरुषों और महिलाओं को एक समाज के सतत विकास को बनाए रखने के लिए एक दूसरे के बीच अन्योन्याश्रित माना जाता है।

महिलाओं की भूमिका –

ऋषि मनु परिवार को समाज की मूल स्तम्भ मानते हैं। हिंदू परिवार प्रकृति में पितृसत्तात्मक है। लेकिन मनु स्वयं कहते हैं कि एक अनुशासित घरेलू जीवन का रखरखाव एक सुखी संतुष्ट पत्नी की संगति में ही सुनिश्चित किया जा सकता है।[12] मनु के समय में संयुक्त परिवार के कामकाज में पुरुष और महिलाएं समान रूप से योगदान करते थे।[13]

मनु कहते हैं कि स्त्री के सुख से ही पारिवारिक समृद्धि प्राप्त होती है। जिन परिवारों में महिलाओं का सम्मान नहीं किया जाता है, उनसे बचना चाहिए। जहां भी महिलाओं का सम्मान होता है वहां समृद्धि आती है।[14] जहां महिलाओं को सम्मानित किया जाता है वहां देवता प्रसन्न होते हैं। और जहां नारी का सम्मान नहीं किया जाता है, वहां उस घर में किया गया हर अनुष्ठान निष्फल हो जाता है।[15] जहाँ स्त्रियाँ शोक करती हैं वह परिवार शीघ्र नष्ट हो जाता है।

विवाहों में महिलाओं की भूमिका –

हर हिंदू के जीवन में चार चरण होते हैं, यानी छात्रवृति, गृहस्थ जीवन, मोक्ष और त्याग। महिलाओं के लिए उनके विवाह से दूसरा चरण शुरू हो जाता है, जो पुरुषों की तुलना में काफी जल्दी होता है, क्योंकि प्राचीन काल में लड़कियों की कम उम्र में ही शादी कर दी जाती थी।

परन्तु धर्मसूत्रकार मनु के अनुसार तीन साल की प्रतीक्षा करें, भले ही वह विवाह योग्य हो, लेकिन उस समय के बाद उसे अपने लिए एक समान दूल्हा चुनने दें।[16] ऋग्वेद में भी उल्लेख मिलता है कि सुंदर दुल्हनें अपने पति का चयन (स्वयंवर सभा) स्वयं करती हैं।[17] मनु दूल्हे द्वारा दुल्हन के चयन के बारे में स्पष्ट रूप से पहचान कराते हैं कि किससे शादी नहीं करनी है, उदाहरण, जो माता-पिता का निकटतम परिजन हो, या किसी बीमारी से संक्रमित हो, या ज्ञान के प्रति अनादर करने वाला हो, वहां विवाह न करना उचित है हालांकि ऐसा परिवार धन से संपन्न होता है।[18] वह उस पिता की निंदा भी करता है जो बेटी को सही समय पर विवाह नहीं देता है।[19]

मनु पिता को अपनी बेटी को अविवाहित रखने की अनुमति देता है, यहाँ तक कि उसके जीवन के अंत तक भी, अगर एक उपयुक्त पति की उपलब्धि नहीं की जा सकती है।[20] अथर्ववेद पुनर्विवाह और विधवा विवाह का भी समर्थन करता है।[21] पराशरस्मृति में उल्लेख है कि पति का समाचार न मिलने पर, उसकी मृत्यु पर, उसके तपस्वी होने पर, उसके नपुंसक होने पर या उसके पतित होने पर स्त्री पुनर्विवाह कर सकती है। साथ ही, ऋषि पराशर यह भी कहते हैं कि यदि पत्नी अपने पति की मृत्यु पर ब्रह्मचर्य (मोक्ष का कठोर जीवन) का पालन करती है, तो वह मृत्यु के बाद स्वर्ग को प्राप्त करती है।[22]

मनुस्मृति के अनुसार विवाह की बातचीत में पिता को कन्या मूल्य स्वीकार नहीं करना चाहिए। पिता द्वारा कन्या की कीमत लेना बेटी की गुप्त बिक्री के बराबर है। इस तरह के अभ्यास को उनके द्वारा पाप माना जाता था। मनु ने घोषणा की कि हमने पूर्व युगों में भी कभी ऐसा नहीं सुना है।[23] ऐसी घोषणा के द्वारा मनु दहेज की निंदा करता है। दुल्हन को जो दिया गया है वह परिवार के सदस्यों द्वारा प्यार का उपहार है। यहाँ तक कि मनु कहते हैं कि स्त्रियों का सम्मान किया जाना चाहिए पिता के द्वारा, भाइयों द्वारा, पति द्वारा, और सास-ससुर द्वारा भी, जो समृद्धि की इच्छा रखते हैं।[24]

सामान्य तौर पर मनु विवाह के आठ रूपों को मानते हैं, अर्थात् ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गांधर्व, राक्षस और पैशाच।[25] मनुस्मृति में कन्यादान एक पवित्र कार्य माना जाता है। शतपथब्राह्मण में, यह कहा गया है कि जिस पति के पास पत्नी नहीं है, उसे यज्ञ करने से मना किया जाता है।[26] और जब तक

पत्नी न हो जाए तब तक कोई पूर्ण रूप से जन्म नहीं लेता है।[27]

ऐतरेय आरण्यक निर्देश देता है कि एक आदमी जब अपने लिए एक पत्नी प्राप्त करता है तो पूर्ण हो जाता है।[28]

मनु ने बिना पति वाली महिलाओं को भी संतानोत्पत्ति की प्रक्रिया जारी रखने का विधान किया है। मनु ने दुल्हन को नियोग द्वारा विवाह करने की अनुमति दी। यदि युवती के भावी पति की दुर्दशा के बाद मृत्यु हो जाती है, तो उसका देवर उससे विवाह करेगा।[29]

लेकिन मनु के अनुसार यदि बड़ा भाई बिना किसी आवश्यकता के छोटे भाई की पत्नी के साथ, या छोटे भाई के साथ बड़े भाई की पत्नी संभोग करता है, तो दोनों ही पतित हो जाते हैं।[30]

मनुस्मृतिकालीन समाज में बाल विवाह –

मनु बाल विवाह पर कोई टिप्पणी नहीं करते हैं। वैदिक युग में विवाह के लिए महिला की सामान्य आयु 16–18 वर्ष थी।[31]

मनुस्मृतिकालीन समाज में विवाह विच्छेद –

विवाह विच्छेद यानी तलाक का मनुस्मृति में कोई स्थान नहीं है। मनु ने वैवाहिक बंधन को पति–पत्नी के लिए अनन्त रिश्ता बताया है। न तो बिक्री से और न ही खंडन से एक पत्नी अपने पति से मुक्त होती है। मनु ऐसे नियम को प्रजापति (सर्वशक्तिमान) द्वारा निर्धारित कानून के रूप में मान्यता देते हैं।[32] वैदिक साहित्य में भी कहा गया है कि विवाह एक पवित्र बंधन है और इसे भंग नहीं किया जा सकता है।

मनु ने महिलाओं के वैवाहिक सुखलाभ के अधिकार को भी मान्यता दिया है – कि अगर पत्नी नपुंसक पति से नफरत करती है तो, या पति किसी लाइलाज बीमारी से पीड़ित हैं, या शराबी है, फिर दूसरे विवाह में पत्नी को दोष नहीं देना चाहिए।[33] यद्यपि, मनु ने अपने पति द्वारा पत्नी के परित्याग का उल्लेख किया है, लेकिन पत्नी की किसी भी गलती का पता चलने पर पत्नी के तत्काल परित्याग की वकालत नहीं करता है। मनु ने सुझाव दिया कि एक वर्ष के लिए एक पति को ऐसी पत्नी के साथ रहने दें जो उससे नफरत करती है; परन्तु एक वर्ष के बीतने पर यदि उनकी समस्या का समाधान न हो तो वह उसकी सम्पत्ति से वंचित करे और उसके साथ रहना छोड़ दे।[34] वह पत्नी जो किसी दुष्ट वासना के आदी पति के प्रति अनादर प्रकट करती है, पति के दिये गये गहने और फर्नीचर से वंचित हो जाएगा। अर्थात् मनु एक विश्वासघाती पत्नी को सुधार की वकालत करता है, त्यागने के लिए नहीं।

महिलाओं की सामाजिक स्थिति–

स्मृतिकार मनु स्पष्ट रूप से प्रत्येक स्थिति में महिलाओं की सुरक्षा विधि रखता है। यहां तक कि राजा भी जरूरतमंद महिला की रक्षा करने और उसे आवश्यकता प्रदान करने के लिए बाध्य है। इसे राजा के कर्तव्य के रूप में शामिल किया गया है। मनु के नियम के अनुसार, उचित पारिवारिक सुरक्षा के अभाव में महिलाओं की रक्षा की जिम्मेदारी राजा के पास होती है। इसी प्रकार बांझ स्त्रियों का, जिनका परिवार विलुप्त हो गया है उनकी पत्नियों और विधवाओं की, और रोगों से पीड़ित महिलाओं की देखभाल की जानी चाहिए। और एक धर्मी राजा को उन सगे–संबंधियों को चोरों के समान दंड देना चाहिए जो अपने जीवनकाल में ऐसी स्त्रियों की सम्पत्ति पर अधिकार करते हैं।[35] मनुस्मृति इस बात की वकालत करती है कि पत्नी, बेटियों, माताओं, विधवाओं, अविवाहित महिलाओं के साथ, हर दूसरी महिला को अच्छी तरह से संरक्षित किया जाना चाहिए ताकि उनके साथ कोई बुराई न हो।

उपसंहार –

मनुस्मृति का उद्देश्य है शांतिपूर्ण आध्यात्मिक विकास द्वारा समाज को रक्षा करना। इसलिए मनु नि:संतान दंपतियों के लिए गोद लेने से सहमत हैं।[36] मनु ने बेटियों के आजीवन संरक्षण की बात कही। यहाँ, हमें एक इंडोलॉजिस्ट के दृष्टिकोण का उल्लेख करना होगा –

It is quite clear that his (Manu's) purpose was not to deny freedom to women so much as to ensure them as adequate and continuous protection throughout their life.[37]

वैदिक साहित्य के कुछ स्थानों में बेटियों को अधिक कीमती माना जाता है। स्कंदपुराण में कहा गया है कि एक पुत्री दस पुत्रों के बराबर होती है।[38]

अधिकांश ज्ञात सभ्यताओं के इतिहास से पता चलता है कि महिलाओं की सामान्य स्थिति असंतोषजनक है, स्त्रियाँ भोग की वस्तु हैं। लेकिन भारतीय इतिहास में, हम जितना भी पीछे जाते हैं, विभिन्न सन्दर्भो में महिलाओं की स्थिति संतोषजनक ही पाई गई है।[39]

जो भी हो, मनुस्मृति का उद्देश्य एक अनुशासित सामाजिक व्यवस्था के भीतर मानवीय गतिविधियों को विनियमित करना है। यह बात सभी जानते हैं कि पुरुषों की तुलना में महिलाएं शारीरिक और मानसिक खतरों के प्रति अधिक संवेदनशील होती हैं। और मनु के महिलाओं के लिए सुरक्षा के प्रावधान महिलाओं को

महत्वपूर्ण स्थिति का आश्वासन देते हैं, सामाजिक बुराइयों के प्रति उनकी संवेदनशीलता को पहचानते हैं। पुरुषों की तुलना में महिलाओं को कभी भी वंचित नहीं किया गया। इंडोलॉजिस्ट केवीआर अयंगर के शब्दों में -

The passage in Manusmriti which seen to condemn the nature of women are in reality warnings against the strength of the se& urge and the tendency of both men and women to succumb to it, unless taught restraint. In the family in-treatment as children, a girl and her brothers are equal. In the family, husband and wife are equal partners, and are unable to function independently of each other.[40]

सन्दर्भ सूची -

1. न पित्र्यमनुवर्तन्ते मातृकं द्विपदा यथा। श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, अरण्यकाण्ड,16.34 श्लोक
2. बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति। मनुस्मृति, द्वितीय अध्याय, 214-215 श्लोक
3. स्वभाव एष नारीणां नराणामिह दूषणम्। मनुस्मृति, द्वितीय अध्याय, 213 श्लोक
4. बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत्पाणिग्राहस्य यौवने।
   पुत्राणां भर्तरि प्रेते न भजेत्स्त्री स्वतन्त्रताम्।। मनुस्मृति, पञ्चम अध्याय,148 श्लोक
5. बालया वा युवत्या वा वृद्धया वापि योषिता।
   न स्वातन्त्र्येण कर्त्तव्यं किञ्चित्कार्यं गृहेष्वपि।। मनुस्मृति, पञ्चम अध्याय, 147 श्लोक
6. यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा। मनुस्मृति, नवम अध्याय,130 श्लोक
7. The Position of Women in the Hindu Civilization, A.S.Altekar, (1959) 8 पृष्ठ
8. ब्रह्मचर्येण कन्यानां...। अथर्ववेद 9.7.18
9. अर्थस्य संग्रहे चैनां व्यये चैव नियोजयेत्।
   शौचे धर्मेऽन्नपक्त्यां च पारिणाह्यस्य वेक्षणे।। मनुस्मृति, नवम अध्याय,11 श्लोक
10. य इच्छेदुहिता मे पण्डिता जायेत। सर्वमायुरियादिति तिलौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयातामीश्वरौ जनयितवै...। बृहदारण्यकोपनिषद् 4.4.18
11. कन्येयं कुलजीवितम्। कुमारसम्भवम्, VI. 63
12. पित्रा भर्त्रा सुतैर्वापि नैच्छेद्विरहमात्मनः।
    एषां हि विरहेण स्त्री गर्ह्ये कुर्यादुभेकुले। मनुस्मृति, पञ्चम अध्याय,149 श्लोक
13. यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्। मनुस्मृति, तृतीय अध्याय,60 श्लोक
14. तस्मादेताः सदा पूज्याः भूषणाच्छादनाशनैः।
    भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेष्वुत्सवेषु च।। मनुस्मृति, तृतीय अध्याय,59 श्लोक
15. यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
    यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।
    शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यन्त्याशु तत्कुलम्।
    न शोचन्ति तु यत्रैता वर्द्धते तद्धि सर्वदा।। मनुस्मृति, तृतीय अध्याय,56-57 श्लोक
16. त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्य्यृतुमती सती।
    ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम्।।मनुस्मृति, नवम अध्याय, 90 श्लोक
17. भद्रा वधूर्भवति यत्सुपेशः स्वयं सा मित्रं कृणुते...। ऋग्वेद, 10.2.71
18. हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम्।
    क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्वित्रिकुष्ठिकुलानि च।। मनुस्मृति, तृतीय अध्याय,7 श्लोक
19. कालेऽदाता पिता वाच्यः। मनुस्मृति, नवम अध्याय,4 श्लोक
20. काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्तुमत्यपि।
    न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित्।। मनुस्मृति, नवम अध्याय, 89 श्लोक
21. अथर्ववेद, XI.7.18
22. पराशरस्मृति, चतुर्थ अध्याय
23. शुल्कं हि गृह्णन् कुरुते च्छन्नं दुहितृविक्रयम्। मनुस्मृति, नवम अध्याय,98 श्लोक
    नानुशुश्रुम जात्वेतत् पूर्वेष्वपि हि जन्मसु।
    शुल्कसंज्ञेन मूल्येन च्छन्नं दुहितृविक्रयम्।। मनुस्मृति, नवम अध्याय,100 श्लोक
    न कन्यायाः पिता विद्वान् गृह्णीयाच्छुल्कमण्वपि।
    गृह्णन् शुल्कं हि लोभेन स्यान्नरोऽपत्यविक्रयी।। मनुस्मृति, तृतीय अध्याय, 51 श्लोक
24. पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा।
    पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः।। मनुस्मृति, तृतीय अध्याय,55 श्लोक
25. ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः।
    गान्धर्व्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः।। मनुस्मृति, तृतीय

अध्याय, 21 श्लोक
26. अयज्ञीयो वैष योऽपत्नीकः। शतपथब्राह्मण, VI.5.2.37
27. अर्धो ह वा एष आत्मानो यज्जाया तस्माद् यावज्जायाम्...। शतपथब्राह्मण, V.2.1.10
28. तस्मात्पुरुषो जायां भित्त्वा कृत्स्नतरमिवात्मानं मन्यते। ऐतरेय आरण्यक, 1.3.5
29. यस्या म्रियेत कन्याया वाचा सत्ये कृते पतिः।
तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः।। मनुस्मृति, नवम अध्याय, 69 श्लोक
30. ज्येष्ठो यवीयसो भार्य्यां यवीयान् वाग्रजस्त्रियम्।
पतितौ भवतो गत्वा नियुक्तावप्यनापदि।। मनुस्मृति, नवम अध्याय, 58 श्लोक
31. The Position of Women in the Hindu Civilization, A.S.Altekar, (1959) 49 पृष्ठ
32. न निष्क्रयविसर्गाभ्यां भर्तुर्भार्यया विमुच्यते।
एवं धर्म्मं विजानीमः प्राक् प्रजापतिनिर्म्मितम्।। मनुस्मृति, नवम अध्याय, 46 श्लोक
33. उन्मत्तं पतितं क्लीबमबीजं पापरोगिणम्।
न त्यागोऽस्ति द्विषन्त्याश्च न च दायापवर्त्तनम्।।मनुस्मृति, नवम अध्याय, 79 श्लोक
34. संवत्सरं प्रतीक्षेत द्विषन्तीं योषितं पतिः।
ऊर्ध्वं संवत्सरात्त्वेनां दायं हृत्वा न संवसेत्।। मनुस्मृति, नवम अध्याय, 77 श्लोक
35. वशाऽपुत्रासु चैवं स्याद्रक्षणं निष्कुलासु च।
पतिव्रतासु च स्त्रीषु विधवास्वातुरासु च।।
जीवन्तीनान्तु तासां ये तद्धरेयुः स्वबान्धवाः।
ताञ्छिष्याच्चौरदण्डेन धार्म्मिकः पृथिवीपतिः।। मनुस्मृति, अष्टम अध्याय,28-29 श्लोक
36. माता पिता वा दद्यातां यमद्भिः पुत्रमापदि।
सदृशं प्रीतिसंयुक्तं य ज्ञेयो दत्रिमः सुतः।। मनुस्मृति, नवम अध्याय,168 श्लोक
गोत्ररिक्थे जनयितुर्न हरेद्दत्रिमः क्वचित्।
गोत्ररिक्थानुगः पिण्डो व्यपैति ददतः स्वधा।। मनुस्मृति, नवम अध्याय,142 श्लोक
37. Women in Manu and his Seven Commentators,R.M. Das, (1962) 261 पृष्ठ
38. दशपुत्रसमा कन्या दशपुत्रं प्रवर्धयन्।
यत्फलं लभते मर्त्यस्तल्लभ्यं कन्ययैकया।। स्कन्दपुराण 1.2.23.46
39. Education in Ancient India, A.S.Altekar,(1944) 204 पृष्ठ
40. Aspects of the Social and Political System of Manusmriti: P.K.MukherjeeLectures, 1946, 163पृष्ठ

सहायक ग्रन्थ -

1. अथर्ववेद, सम्पा. डॉ. गङ्गा सहाय शर्मा, संस्कृत साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, प्रथम संस्करण।
2. वाल्मीकि, श्रीमद्रामायणम्, प्रथम खण्ड, गीताप्रेस्, गोरक्षपुर, 2013, एकादश संस्करण।
3. बृहदारण्यकोपनिषद्, सम्पा. स्वामी माधवानन्द, अद्वैत आश्रम, हिमालय, 1950, तृतीय संस्करण।
4. मनु, मनुसंहिता, सम्पा. श्री सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय, वसुमती साहित्य मन्दिर,कलिकाता, 1336 वङ्गाब्द, चतुर्थ संस्करण।
5. मनु, मनुस्मृति, सम्पा. पण्डित गिरिजा प्रसाद द्विवेदी, लखनऊ, 1917, प्रथम संस्करण।
6. शतपथब्राह्मण (द्वितीय भाग), पण्डित गङ्गा प्रसाद उपाध्याय, दा रिसर्च इन्स्टिटिउट् अफ् एन्सियेन्ट साइन्टिफिक् स्टडिस्, नई दिल्ली, 1969, प्रथम संस्करण।

ISSN 2278 - 0327

ईश्वर प्रणिधान-ईश्वर प्राप्ति का सरल मार्ग

अनुज कुमार
शोधार्थी, योगविभाग
श्री खुशालदास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़, राजस्थान

डॉ. मनोज कुमार टाक
सह आचार्य
श्री खुशालदास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़, राजस्थान

सार-

एक योगाभ्यासी को सर्वाधिक इच्छा योग के परम फल ईश्वर प्राप्ति की रहती है उसके अंदर ईश्वर को पाने की लालसा सबसे अधिक होती है उसके लिए सर्वाधिक सुलभ मार्ग ईश्वर प्रणिधान है। इसके लिए योगी को ईश्वर प्रणिधान की पूरी जानकारी होनी चाहिए जिससे उसकी उन्नत्ति शीघ्र हो समर्पण करना या समर्पित हो जाना। ईश्वर से प्रिय किसी को न मानना ही ईश्वर-प्रणिधान कहलाता है।

अध्यात्मिक जगत् में ईश्वर ही जगत्जननी परम करुणामयी जगदम्बा है, हम सब की माँ है। यह माँ तो स्वयं अपने अनंत गुण-कर्म स्वाभावों से तथा अपने बनाये दिव्य गुण युक्त जड़ व चेतन पदार्थों से हम सब मनुष्यों की निरंतर सब प्रकार से रक्षा कर रही है। यह माँ तो अत्यंत सामर्थ्य, अत्यंत बल एवं अत्यंत क्रिया वाली है और सकल ऐश्वर्य युक्त है। इस माँ के साथ तो नित्य सम्बन्ध है, जो अनादि काल से है और अनादिकाल तक रहेगा। इस माँ के सदृश हितैषी और कोई नहीं है। यही माँ ही हम सब की पिता, राजा, न्यायाधीश और सब सुखों को देने वाली है, विडम्बना यह है कि इस माँ पर बालक के समान अटूट विश्वास कोई विरला ही रख पाता है। महर्षि पतंजली जी प्रणीत योग दर्शन में योगमय जीवन बनाने के लिए विविध उपाय बताये हैं। इन उपायों में एक उपाय ईश्वर-प्रणिधान भी है। प्रणिधान का अर्थ भक्ति विशेष हैं। ऋषि दयानन्द सरस्वती जी स्तुति-प्रार्थना-उपासना के मन्त्रों के अर्थों में विधेम शब्द का अर्थ लिखते हैं कि ईश्वर की विशेष भक्ति किया करें। भक्ति का अर्थ भी ऋषि स्पष्ट करते हैं कि ईश्वर की आज्ञा पालन करने में तत्पर रहें अर्थात् अपने आत्मा को परमेश्वर की आज्ञानुकूल समर्पित कर देवें। समर्पित व्यक्ति ईश्वर से अधिक प्रिय किसी को नहीं मानता, ईश्वर की आज्ञा के अनुकूल ही आचरण करते हुए, प्रत्येक कार्य ईश्वर को समर्पित करता है, और लौकिक फल की कामना नहीं करता। शरीर, बुद्धि, बल, धनादि समस्त साधनों का प्रयोग ईश्वर प्राप्ति के लिए ही करता है

प्रस्तावना

ईश्वर- प्रणिधान

मन, वाणी व शरीर से करने वाले समस्त कर्मों को ईश्वर के प्रति समर्पित करना, उन कर्मों का लौकिक (सांसारिक) फल न चाहते हुए मुक्ति की इच्छा रखना। प्रत्येक कर्म को करते हुए ईश्वर मुझे देख, सुन व जान रहे हैं, '*मैं परमेश्वर की उपस्थिति में उपस्थित हो कर कर्म कर रहा हूँ*' ऐसी अनुभूति बनाये रखने को ईश्वर-प्रणिधान कहते है।[1]

जिस प्रकार से दिन में दिन की व रात्रि में रात्रि की अनुभूति रखते हुए समस्त कार्यों को करते हैं उसी प्रकार प्रभु की व्यापकता को मन बुद्धि व आत्मा में रखते हुए समस्त कार्यों को करना चाहिए जिससे ईश्वर की अत्यन्त निकटता प्राप्त हो जाये, इसको प्रारम्भ में बार-बार अभ्यास करके करना चाहिए।

ईश्वरप्रणिधान के लाभ [2]

1. ममत्व (मैं और मेरे) की भावना समाप्त हो जाती है
2. इन प्रत्येक वस्तु (जड़ व चेतन) में प्रभु का आभास होता है जिससे सब के साथ समुचित व्यवहार कर पाते हैं।
3. ईश्वर की आज्ञा के अनुरूप प्रत्येक कार्य को करने के कारण ही किसी प्रकार का अनुचित पापकर्म नहीं करता। जिससे ईश्वर प्रणिधान करने वाला व्यक्ति पूर्ण अहिंसक बनता है
4. ईश्वरप्रणिधान करने वाले व्यक्ति की ईश्वर वरण कर (चुन) लेता है।
5. प्रभु अपना दर्शन कराते हैं।

प्रत्येक ईश्वर भक्त ईश्वर का साक्षात्कार करना चाहता है, ईश्वर का दर्शन करना चाहता है, ईश्वर को देखना चाहता है। संसार में जितने भी महापुरुष हुए हैं उन्होंने प्रभु को प्राप्त करने के लिए

अनेकों उपाय बताये हैं। जितने ऋषि हुए हैं उन्होंने भी इसके अनेकों उपाय बताते हुए अनेकों ग्रंथ बनाये, उन ग्रन्थों में एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है योग-दर्शन। यदि संसार में वास्तव में कोई मनुष्य ईश्वर को प्राप्त करना चाहता है, ईश्वर का दर्शन करना चाहता है तो उसकी विधि क्या होनी चाहिए। उसकी पद्धति क्या होनी चाहिए, किस तरह मनुष्य अपने सांसारिक कार्यों को करते हुए, संसार में रहते हुए, ईश्वर को प्राप्त कर सकता है? योग दर्शन में योग के आठ अङ्ग बनाये यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। योग के आठों अङ्गों को समझाते हुए महर्षि पतञ्जलि जी ने अनेक उपाय ऐसे प्रस्तुत किये जिससे कि आत्मा शीघ्रता से ईश्वर को प्राप्त कर सके। उन उपायों को बताते बताते उन्होंने अन्त में एक उपाय बताया, जिस पर मैं आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ, वह उपाय है '*ईश्वर-प्रणिधान*' [3]

हम कैसे ईश्वर को प्राप्त कर सकें 'ईश्वर- प्रणिधान' एक ऐसा उपाय है जिससे जीवात्मा शीघ्रता से ईश्वर को प्राप्त कर सकता है। ईश्वर प्रणिधान का सीधा अर्थ है- समर्पण करना। समर्पित हो जाओ, अपने आप को समर्पित कर दो। अपने आप को हम कैसे समर्पित करें? उसकी क्या पद्धति है? उसको समझाते हुए महर्षि वेद व्यास ने अपनी व्याख्या में अनेक बातें बताई। वैसे तो हम लोग समर्पित होने के बारे में बहुत कुछ सुनते हैं और समर्पित करते भी हैं। दूसरों को भी कहते समर्पित हो जाओ। जब अध्ययन की बात आती है, यहाँ पर अध्यापक और विद्यार्थी के बीच में यह समर्पण की भावना आती है। माता-पिता अपने बच्चों को अपने प्रति समर्पित होने के लिए निर्देश करते हैं, हमारे प्रति समर्पित हो जाओ, जैसा हम कहें उसी तरह आपको करना है। अध्यापक अपने विद्यार्थी को कहता है कि समर्पित हो जाओ, जैसा मैं कहूँ वैसा ही करो। हम किसी कार्य को करते हैं, किसी के नीचे काम करते हैं, तो ये कहा जाता है आप हमारे प्रति समर्पित हो जाओ, जैसा हम कहें वैसा करो।

यहाँ एक बात कही जा रही है 'समर्पित हो जाओ, जैसा हम करें वैसा आप करो।' ये समर्पण है क्या? इसके लिए यहाँ पर कहा जा रहा है जैसा हम कहें वैसा करो, यानि समर्पण का अर्थ है- आज्ञा का पालन करो, जैसा हम कहें वैसा आप करो। यह माता-पिता कह रहे हैं, अध्यापक कहता है और समाज में जो भी कार्य कराने वाले होते हैं वे सभी यही कहते हैं, जैसा हम कहें वैसा करो। यह है समर्पण और इसी बात को महर्षि वेद व्यास ने समझाने का प्रयत्न किया है-**भक्तिविशेष**[3] शब्द से आप 'भक्ति विशेष करो, तो आप समर्पित हो जाओगे।' 'भक्ति विशेष' को महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने स्पष्ट शब्दों में हिन्दी में अभिव्यक्त किया है। उन्होंने कहा-'भक्ति अर्थात् उसी की आज्ञा का पालन करने में नित्य तत्पर रहे।' जिसके प्रति आप समर्पित हो रहे हो, उसकी आज्ञा का पालन करो, उसके निर्देशों का पालन करो, उनके नियमों का पालन करो, यह है समर्पण। इस समर्पण को महर्षि वेद व्यास ने अपने शब्दों में इस रूप में व्यक्त किया है-

'*सर्वक्रियाणां परमगुरावर्पणं तत्फलसंन्यासो वा*' [4]

सर्वक्रियाणाम् जो कुछ भी हम करते हैं, हर काम को, हर क्रिया को *परमगुरावर्पणम्*-परम गुरु ईश्वर के प्रति समर्पित कर दो। ये ईश्वर प्रणिधान हो जायेगा। जो कुछ भी करते हैं, सबको समर्पित कर दो। पैसा कमाया, पैसे को भी समर्पित कर दो, मकान बनाया प्राप्त किया, उसको भी समर्पित कर दो, सोना चाँदी प्राप्त किये, उसको समर्पित कर दो। जो कुछ भी किया उसको समर्पित कर दो। *सर्वक्रियाणां परमगुरावर्पणम्* जो कुछ हमने किया उस सबको प्रभु के प्रति समर्पित कर दो। एक बात और व्यास जी ने कही '*तत्फल संन्यासो वा*' जी आपने किया उसका फल नहीं चाहो इस बात को थोड़ा समझना है

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।[5]

भावार्थ : संपूर्ण धर्मों को अर्थात् संपूर्ण कर्तव्य कर्मों को मुझमें त्यागकर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान, सर्वाधार परमेश्वर की ही शरण में आ जा। मैं तुझे संपूर्ण पापों से मुक्त कर दूंगा, तू शोक मत कर। फल को न चाहने का अर्थ क्या है? हमने मेहनत की है, पुरुषार्थ किया है, और पुरुषार्थ करके, कुछ काम करके कुछ प्राप्त किया है, उस फल को न चाहना? उसका फल न चाहना यानि जो कुछ हमने किया है उसके बदले में हमें कुछ नहीं चाहिए। यदि फल त्याग करने का अर्थ यही है, तो ऐसा कर्म कोई करेगा ही नहीं। फल न चाहे ऐसा तो कोई कर नहीं सकता। करके भी फल न चाहना, तब तो बहुत मुश्किल हो जायेगी, फिर तो कोई कर्म कर ही नहीं पायेगा।

फल का त्याग करना यह अर्थ कुछ गलत ढंग से लें तो कोई व्यक्ति ईश्वर प्रणिधान कर नहीं पायेगा। जो कुछ भी कार्य करने पर मिलता है-जड़ पदार्थ-उसको ही अंतिम फल समझ कर कार्य करें, तो उससे आत्मा को पूर्ण तृप्ति नहीं मिलती, पूर्ण संतोष नहीं मिलता, पूर्ण निर्भयता की प्राप्ति नहीं होती, वह पूर्ण स्वतंत्र नहीं हो पाता है। इसलिये वह फल चाहना, जिस फल को प्राप्त करने से पूर्ण तृप्ति मिले। उस फल को प्राप्त करने की इच्छा रखो जिससे पूर्ण संतोष मिल जाये, पूर्ण संतुष्टि मिल जाये, पूर्ण तृप्ति मिल जाये,

पूर्ण प्रसन्नता मिले, पूर्ण निर्भयता की प्राप्ति हो और आनन्द की प्राप्ति हो। ऐसा लगे जो मेरे को मिल रहा है बस यही मुझको चाहिए, और कुछ नहीं चाहिये। जो चाहिये था वह मुझे मिल रहा है और किसी चीज की जरूरत नहीं है। ऐसे फल की इच्छा करो।

तो यहाँ पर ईश्वर प्रणिधान का अर्थ हुआ जो कर्म आपने किया उसे ईश्वर के प्रति समर्पित करो, उसका जो फल है वह ऐसा चाहो जिससे आत्मा की अभिलाषा को पूर्ति हो सके। उसकी पूर्ति होती है ईश्वरीय आनन्द को पाने से कर्म को ईश्वर के लिए करें, ईश्वरीय आनन्द को प्राप्त करने के लिए करें। लौकिक पदार्थों को, सांसारिक पदार्थों को जड़ पदार्थों को प्राप्त करने की इच्छा से यदि हम कर्म कर रहे हैं तो फिर ईश्वरीय आनन्द हमको नहीं मिल पायेगा। दोनों में से एक मिल सकता है। यदि सांसारिक पदार्थों से मिलने वाले सुख को मान करके उद्देश्यमान करके कर्म करें तो ईश्वरीय सुख नहीं मिलेगा किन्तु सुख को प्राप्त करना चाहते हैं तो सांसारिक सुख अवश्य मिलेगा। इसलिये जो कर्म हम करते हैं उसे ईश्वर के लिए समर्पित करना ईश्वर के प्रति अर्पित करना है प्रभो! इसका फल आप देना और ऐसा फल देना जैसी मेरी इच्छा है अर्थात् में पूर्ण तृप्त हो जाऊँ, आपके आनन्द को पा सकूँ ।

समर्पण कैसे करना है, वह कैसे हो? इसे समझना चाहिए। जैसे हम किसी को पूछते हैं यह मकान किसका है ? यह सम्पत्ति किसकी है? ये बेटा किसका है? तो एक भाषा का प्रयोग किया जाता है, यह तो आपका ही है, यह तो आपका ही बेटा है, यह तो आपकी ही संपत्ति है यह जो बोला जाता है यदि इसे अन्तर्मन से बोलें, अन्दर से बोलें तो उसे ऐसा लगेगा जैसे इन सब पदार्थों को सामने वाला ले लेगा। तो मेरा क्या बचेगा? यह जो मेरापन है, मैं और मेरा मैं और मेरी की स्थिति है यह है हमें समर्पण करने से रोकती है।

यजुर्वेद में एक मन्त्र आता है- *'आयुर्यज्ञेन कल्पता प्राणो यजेन कल्पताम्'*[6] इसमें यह कहा गया है कि ईश्वर को आप समर्पित करो, जो आपकी योग्यता है उसे ईश्वर के प्रति समर्पित कर दो। आपके अन्दर जो बल है, उसे ईश्वर के प्रति समर्पित कर दो, आपके अन्दर जो सामर्थ्य है उसे ईश्वर के प्रति समर्पित कर दो, जो आप आँखों से देखते हो व जितना भी देखा उसे ईश्वर के प्रति समर्पित कर दो जो आपने बोला है वाणी से, सबको ईश्वर के प्रति समर्पित कर दो, जितना आपने सुना है कानों से, उसको ईश्वर के प्रति समर्पित कर दो, जो प्राणों की ले रहे हो, जो आयु को प्राप्त कर रहे हो उस आयु को भी ईश्वर के प्रति समर्पित कर दो। तो एक-एक चीज को बोल-बोल के आगे मन्त्र में कहा ही गया है कि अपने आपको भी ईश्वर के प्रति समर्पित कर दो समर्पित कर दो, अपना कुछ नहीं मानो व्यक्ति जब ऐसा करने लगता है तो उसको डर लगता है। यदि मेर सब कुछ समर्पित कर दूँ *आत्मा यजेन कल्पताम्।*[7] सब कुछ ईश्वर के लिए दे दूं तो मेरे लिए कुछ बचेगा ही नहीं। मैं और मेरा, ये जो भावना होती है, इसके ऊपर चोट आती है और उसको व्यक्ति छोड़ना नहीं चाहता। इसलिये ऊपर से तो बोल देता है कि ये सब आपका है, लेकिन मानता है अपना। जब अपना मानता है तो अपने लिए बचा कर रखता है। उद्देश्य जड़ पदार्थ रहता है। हम अपने सामने जड़ पदार्थ को रखते हैं, क्योंकि जड़ वस्तु दिखाई भी देती है कि ये मेरे पास है, मकान मेरे पास है, सम्पत्ति मेरे पास है, इतना मेरे पास है। वह सब उसको दिखाई देता है। और जब कहता है कि ये सब आपका है तो सामने वाला यही कहेगा इसको वहाँ दे दो, वहाँ लगा दो, इसका ऐसा कर दो। ईश्वर भी तो यही कहता है, मैं जैसा कहूँगा, वैसा आपको करना है, किन्तु वैसा हम करने के लिए तत्पर नहीं हो पाते।

ईश्वर प्रणिधान करने पर भी समस्त धन रहेगा तो अपने पास ही, लेकिन उसे ईश्वर की आज्ञा के अनुरूप प्रयोग करना होगा। उसका सदुपयोग हमको ही करना होता है, यह मानकर कि ये ईश्वर का है। जैसे उदाहरण के लिए एक मकान में किरायदार रहता है। वह किरायदार किस तरह उस मकान का प्रयोग करता है? इतना अच्छा प्रयोग कि उतना अच्छा तो मकान मालिक भी नहीं कर पाता। बहुत अच्छे ढंग से उसका प्रयोग करता है, बहुत खुल करके उसका प्रयोग करता है। स्वतंत्रता से अधिक से अधिक प्रयोग करता है और उसका अधिक से अधिक सुख लेने का प्रयत्न करता है, लेकिन अपना नहीं मानता। मकान उसी के पास है, वह ही प्रयोग करता है और अपना नहीं मानता, उसके बारे में उसकी कोई चिन्ता नहीं रहती। किसी कारण से बिगड़ भी जाए तो उसको दु:ख बिल्कुल भी नहीं होता। आंधी आ जाए, तूफान आ जाए, भूकम्प आ जाए या और कुछ हो जाए उस मकान को उसको कुछ भी परेशानी नहीं होती, टूट गया तो टूट गया, फूट गया तो फूट गया, गिर गया तो गिर गया, उसका तो कुछ जा नहीं रहा, क्योंकि अपना तो कुछ माना ही नहीं था। ऐसे ही ट्रेन में जाते हैं और हम स्थान आरक्षित करा देते हैं, उसको हम कुछ समय के लिए अपना मानते हैं, किसी दूसरे को बैठने नहीं देते, यदि किसी कारण से, गलती से या जानबूझ कर कोई बैठता

है तो उसको हम उठाते हैं, अपना मानकर उसका पूरा प्रयोग करते हैं और जब गन्तव्य स्थान पर पहुंच जाते हैं तो उसको छोड़ देते हैं और दु:ख नहीं होता तो पूर्णत: अपना मानने पर सारे के सारे हो रहे हैं, अपना न मानते हुए ईश्वर के प्रति या और किसी के प्रति अर्पित करते हैं, तो दु:ख नहीं होता।

तो प्रणिधान का अर्थ यही हुआ कि जो कुछ हमारे पास है, जितना कुछ हमारे पास है, उसको यदि हमने ईश्वर के प्रति समर्पित किया है। प्रभो! ये मेरा नहीं आपका है, मैं आपको समर्पित करता हूँ इसका एक बहुत बड़ा लाभ होगा कि वो जैसा हमको कहेगा हम वैसा उसका प्रयोग करेंगे, जिम्मेदारी अपनी नहीं रहेगी। वो कहेगा कि दान दो तो दान देना पड़ेगा क्योंकि उसकी आज्ञा है। आपने यह स्वीकार किया है कि यह ईश्वर का है,[8] तो दान दो, अच्छे कामों में लगाओ। जो-जो ईश्वर का आता है उसके अनुरूप इसका प्रयोग करो। जितना खाने के लिए कहता है उतना खाओ, जिसे न खाने के लिए कहता है उसे मत खाओ। समर्पण का अर्थ हमने किया भक्ति विशेष अर्थात् ईश्वर की आज्ञा पालन। जो कुछ भी ईश्वर की आज्ञा है, इस के अनुरूप हमने काम करना शुरू किया और उसके फल की इच्छा नहीं की। जब हमने ईश्वर को चाहा तो हम हर वक्त ईश्वर को सामने रखेंगे। बताइए मेरे को क्या करना है? अब क्या सोचना है? अब क्या बोलना है? सब कुछ हमने ईश्वर को समर्पित कर दिया, अब हमको अपनी ओर से कुछ भी नहीं करना है, अब तो पूछ पूछ करके करना है। उसकी आज्ञा के अनुसार चलना होगा तो पूछना पड़ेगा और पूछना हो तो पूछे जाने वाले को सामने रखना होगा। तो ईश्वर प्रणिधान का दूसरा विभाग है ईश्वर को हर समय सामने रखना। हे प्रभो! आप मुझे देख रहे हो, सुन रहे हो, जान रहे हो। आपकी उपस्थिति में में उपस्थित हूँ और आपकी आज्ञा के अनुसार मेरे को करना है। ईश्वर की सतत प्रेरणा हमको मिलती रहेगी यदि हम सतत ईश्वर को सामने रखेंगे। हमारी एकाग्रता ईश्वर में रहेगी। हम ईश्वर को सामने रखते हैं तो एकाग्र बने रहेंगे। मन ईश्वर में रहेगा तो ईश्वर के आदेश को देख देख के क्रियाओं को करेंगे। जैसे छोटा सा बच्चा होता है, उसको जब हम काम कहते हैं, काम कराते हैं तो वो बार बार हमें देखता रहता है। ठीक करता हूँ ? बताओ, ऐसे करूँ ? बताओ, ऐसा न करूँ ? बताओ, ये ठीक है? बताइए, यहाँ रखना ठीक है? उसको हर बात बतायी जाती है, और वो ऐसे ही करता हुआ अपना कुछ मानता ही नहीं, और उसको कोई परेशानी भी नहीं होती, कोई तनाव नहीं होता, सारी जिम्मेदारी कराने वाले की होती है। आत्मा को जब हम समर्पित कर देते हैं, अपने आप को जब समर्पित कर देते हैं तो इसका अर्थ है अपनी योग्यता सामर्थ्य को भी समर्पित कर दिया सब कुछ।

एक और मोटा सा उदाहरण कि किस हद तक हमको समर्पित होना चाहिए। *राजा जनक का प्रसिद्ध उदाहरण है, वे महर्षि याज्ञवल्क्य के पास अध्यात्म विद्या सीखने जाते हैं। गुरु शिष्य के बीच में समर्पण की बात है। महर्षि याज्ञवल्क्य पढ़ाते रहे, जनक पढ़ते रहे। जनक को बड़ा अच्छा लगता है, वे बीच-बीच में गुरु जी को कुछ देने के भाव से भर उठते हैं। -एक हजार गायें भेंट दे देते थे, ऐसा अनेक बार हुआ। एक बार पुन: जनक में देने का भाव अंतितीव हुआ और उन्होंने अपने सम्पूर्ण विदेह राज व साथ में स्वयं को भी समर्पित कर दिया, सब कुछ समर्पित कर दिया। महर्षि ने भी देखा कि अब इसमें पूर्ण समर्पण की भावना आई है*[9] सब कुछ समर्पण कर दिया, स्वयं का कुछ नहीं रखा। मैं-मैं नहीं रहा मैं आप हो गया, अब आप जो कहेंगे मुझे वैसा ही करना है। मेरा अस्तित्व होते हुए भी नहीं रहा, मैंने आपको ही समर्पित कर दिया। अब आपकी भक्ति अर्थात् आज्ञापालन में ही तत्पर रहूँगा। बतायें मुझे क्या करना है? यह है समर्पण। इस तरह यदि हम ईश्वर समर्पण करेंगे तो निश्चित रूप से ईश्वर का दर्शन होगा, यही हमको करना है, इसी के लिए महर्षि पतञ्जलि जी कहते हैं ईश्वर प्रणिधान करो। तो ईश्वर- प्रणिधान बहुत महत्त्व पूर्ण उपाय है, प्रभु को पाने के लिए।

निष्कर्ष

ईश्वर की सत्ता में दृढ़ विश्वास और विपरीत परिस्थितयों में भी उससे सम्बन्ध बनाये रखना। कैसे संकट की घड़ी में हमारा ईश्वर में विश्वास डगमगाने लगता है। मन में कितनी ही शंकाएं व संशय उत्पन्न होने लगते हैं और ईश्वर की सत्ता से भी विश्वास डोलने लगता है कि ईश्वर है भी या नहीं। ईश्वर प्रणिधान से, उस सर्वशक्तिमान जगत्पिता के निरंतर सम्पर्क में बने रहने से बुद्धि, शरीर, आत्मा, मन-मस्तिष्क सब का विकास होता है। ईश्वर विश्वास हमारे आत्मिक बल को इतना बढ़ा देता है कि सम्मुख आई घोरतम विपत्ति को भी व्यक्ति हंसते-हंसते सहन कर लेता है। विपत्तियों के पहाड़ ही क्यों न टूट पड़े परन्तु विचलित नहीं होता। ईश्वर विश्वासी को किंचित भी भय नहीं होता। ऐसी श्रद्धा व विश्वास विरले लोगों में होती है, इन विरले लोगों में ही वर्तमान काल में ऋषि दयानन्द सरस्वती जी का जीवन ईश्वर-प्रणिधान से ही ओत-प्रोत था, ऐसा उन के जीवन चरित्र का स्वाध्याय करने से ज्ञात होता है। वे ईश्वर विश्वासी और सत्यवादी थे। उनके जीवन

में कितनी बार कितने ही प्रलोभन आये, मगर वे कभी भी असत्य के पक्षधर नहीं बने। प्रभु भक्त होने के कारण उन में अद्भुत सहनशक्ति तथा निर्भीकता थी। वे हर क्रिया-कलाप में ईश्वर से ही आबद्ध रहते थे। ईश्वर में इतना दृढ़ विश्वास कि प्रत्येक कार्य ईश्वर की आज्ञा लेकर करना उन का स्वभाव बन गया था। जीवन की अंतिम वेला में मृत्यु द्वार पर दस्तक दे रही थी, ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना कर के मानों ईश्वर से देह त्यागने की आज्ञा ले रहे हों। आदेश मिलते ही अंतिम श्वास के साथ ईश्वर का धन्यवाद किया और मुख से शब्द निकले तेरी इच्छा पूर्ण हो। अकेले दयानन्द ने ईश्वर को अपना सुरक्षा कवच बना युग को चुनौती दी थी। ऋषि दयानन्द जी व उन की अमर कृति सत्यार्थ प्रकाश पूरे विश्व का प्रकाश स्तम्भ हैं। क्योंकि मार्ग दर्शक वह है, जो सदमार्ग जानता है, उस पर चलता है, और दूसरों को प्रेरित करता है, सही रास्ता दिखाता है।

ईश्वर पर विश्वास उस बच्चे की तरह होना चाहिए जो स्वयं को ऊपर उछाले जाने पर डरता नहीं, हसंता है क्योंकि उसे गिरने का अहसास ही नहीं है। ऐसा ही विश्वास ईश्वर पर हो तो वो आप को कर्म पथ पर कभी गिरने नहीं देगा। हे परमेश्वर ! मैं आप को किसी भी मूल्य पर न छोडूं। आप की आज्ञाओं को भंग न करूं, सदा आपके अनुकूल प्रिय आचरण करते हुए आपका प्रिय भक्त बन जाऊं।

संदर्भ-

1. योग दर्शन 2/40
2. योग पृष्ठ संख्या 86
3. योगार्थ पृ. स. 199
4. व्यास योग भाष्य 2/40
5. गीता 18/66
6. यजुर्वेद 18/29
7. यजु. 18।29 8 योग पृष्ठ संख्या 89
9. शतपथ 14/6/1/1-9

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

- योग दर्शन दर्शनयोग धर्मार्थ ट्रष्ट आर्यवन रोड , 2010
- योग स्वामी विश्वंग वैदिक पुस्तकालय अजमेर, 2009
- स्वामी सत्यपति दर्शनयोग धर्मार्थ ट्रष्ट आर्यवन रोड ,2010
- योग भाष्य राजवीर शास्त्री आर्ष साहित्य प्रचार ट्रष्ट
- वैदिक गीता मोहन चट्टोपाध्याय कलकत्ता
- यजुर्वेद भाष्यम् महर्षि दयानंद सरस्वती वैदिक पुस्तकालय अजमेर
- यजुर्वेद भाष्यम् महर्षि दयानंद सरस्वती वैदिक पुस्तकालय अजमेर
- योग स्वामी विश्वंग वैदिक पुस्तकालय अजमेर, 2009
- स्वामी सत्य प्रकाश सरस्वती विजय कुमार गोविंदराम हंसानन्द दिल्ली, 2019

ISSN 2278 - 0327

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में गाँधी की महत्ता एवं प्रासंगिकता

अरुण कुमार
असि. प्रोफेसर (राजनीति विज्ञान)
राजकीय महिला महाविद्यालय, झाँसी

शोध सार–

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में विद्यमान समस्याओं ने मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित किया है। इन समस्याओं से निजात पाने व मानवीय संवेदना को जीवित रखने तथा संसार के समस्त नागरिकों को सुरक्षित जीवन की आकांक्षा उपलब्ध कराने के उद्देश्य से गाँधी जी के विचार एक प्रभावी मार्गदर्शक सिद्ध हो रहे हैं। वैश्विक गाँव और बाजार आधारित अर्थव्यवस्था के इस दौर में विश्व के समक्ष जो विश्व स्तरीय चुनौतियाँ है, उन्हें देखते हुये गाँधी दर्शन की प्रासंगिकता और बढ़ गयी है। वर्तमान समाज में लक्ष्य प्राप्ति करने एवं अन्यायपूर्ण समाज का विरोध करने के तरीके सर्वाधिक भ्रष्ट रूप ले रहे है। अत: लक्ष्य प्राप्ति हेतु साधनों की पवित्रता तथा अन्याय का विरोध करने के लिए सत्याग्रह की अवधारणा सीधे तौर पर प्रत्येक राष्ट्र के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती है। आज जब विश्व एक नये ध्रुवीकरण की ओर अग्रसर है तो गाँधी जी के विचार इस नयी सदी में और भी सामयिक तथा प्रासंगिक हो गये है। अमेरिका, एशिया, यूरोप तथा अफ्रीका में ऐसी कई जीवन वृत्तात्मक घटनायें हुयी जिन पर गाँधी के विचारों का स्पष्ट प्रभाव पड़ा और निर्विवाद रूप से गाँधी जी विश्व स्तर पर प्रासंगिक हो गये हैं। भूमण्डलीकरण के इस दौर में बढ़ती शस्त्र हिंसा, निजीकरण तथा उदारीकरण ने गाँधी के विस्मित करने का ही परिणाम है कि आज विश्व के समक्ष हिंसा, आतंकवाद, गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी व अशिक्षा जैसी समस्यायें उपस्थित हुयी है और सबसे बड़ी पर्यावरणीय असन्तुलन की समस्या जो विश्वव्यापी बन चुकी है।

प्रस्तावना–

वर्तमान विश्व राजनीति के परिवर्तित दौर में मानव जाति निरन्तर आशा और आकाँक्षा के भाव से भविष्य की ओर देख रही है। जहाँ एक ओर वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी उन्नति का विपुल वैभव विद्यमान है तो वहीं दूसरी ओर व्यक्तिगत एवं सामाजिक स्तर पर बढ़ती हिंसा और प्रतिस्पर्धा ने नैतिक एवं मानवीय मूल्यों को मृतप्राय कर मानवीय जीवन को अस्थिर एवं असुरक्षा के संकट में डाल दिया है। आज वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति, राजनीतिक प्रक्रिया, अर्थव्यवस्था, सामाजिक, सांस्कृतिक सम्बन्ध तथा व्यक्ति की मानवीयता सभी क्षेत्रों में व्यापक परिवर्तन दिखाई दे रहे हैं। विश्व के समक्ष उपस्थित ये परिवर्तन अनायास ही प्रकट नहीं हुये है बल्कि एक दीर्घकालिक ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम है। परिवर्तनों की इस प्रक्रिया ने भौतिक सुख–समृद्धि की असीम सम्भावनाओं को प्रस्तुत किया लेकिन इस प्रवृत्ति में लाभों का दायरा निरन्तर संकुचित होता चला गया है।

वैश्विक गाँव की अवधारणा ने राष्ट्रों को न केवल सांस्कृतिक उपनिवेशवाद से वरन् औद्योगिकीकरण के साथ–साथ वर्ग संघर्ष एवं पर्यावरणीय समस्याओं से रूबरू करवाया है। शायद इसी कारण वर्तमान विश्व में हिंसा, आतंकवाद, गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी तथा अशिक्षा जैसी समस्याओं से ग्रसित है। इन समस्याओं के कारण मानव जीवन का प्रत्येक पक्ष प्रभावित हो रहा है तथा विश्व शान्ति पूरी तरह से क्षण भंगुर हो चुकी है। वैश्विक जगत को इन समस्याओं ने इस कदर प्रभावित किया है कि आज उचित एवं न्यायपूर्ण कार्यप्रणाली का आस्तित्व ही खतरे में पड़ गया है।

इन परिस्थितियों में मानवीय संवेदना को जीवित रखने तथा संसार के समस्त नागरिकों को सुरक्षित जीवन की आकाँक्षा उपलब्ध कराने के उद्देश्य से गाँधी जी के विचार एवं दर्शन एक प्रभावी मार्गदर्शक सिद्ध हो रहे हैं। गाँधीवादी दर्शन जीवन के विभिन्न पहलुओं के लिए शक्ति एवं प्रेरणा का निरन्तर बहने वाला एक ऐसा स्रोत है जो शताब्दियों तक प्रकाश स्तम्भ के रूप में बना रहेगा। महात्मा गाँधी की विशेषता मानव समाज के सम्पूर्ण जीवन के सम्बन्ध में सभी पहलुओं पर चिन्तन करने तथा आदर्श पथ पर अग्रसर करने में है और इसके लिए उन्होंने सत्य, अहिंसा व प्रेम का मार्ग अपनाया तथा कहा कि उनका जीवन चरित्र ही

उनका सन्देश है।

महात्मा गाँधी एक युग पुरुष थे। जहाँ एक ओर उन्होंने भारतीयों में स्वाधीनता की अलख जगायी वहीं दूसरी ओर उनके सामाजिक जीवन को भी प्रभावित किया। उन्होंने अपने लम्बे जीवनकाल अपने चरित्र के मौलिक गुणों- सत्य, अहिंसा पर सामान्यतया परिवर्तित परिस्थितियों को हावी नहीं होने दिया। उनका समस्त जीवन कर्ममय था। उनके जीवन का लक्ष्य न केवल भारतीयों को अंग्रेजी दासता से मुक्ति दिलाना था बल्कि भारत सहित सम्पूर्ण विश्व का सत्य व अहिंसा के आदर्शों पर निर्माण करना भी था। भारत के राजनीतिक परिदृश्य में गाँधी जी एक नूतन तथा एक अद्भुत पथ प्रदर्शक के रूप में उदित हुये। दक्षिण अफ्रीका से लौटे हुये इस कर्मयोगी के नये-नये विचारों तथा आचरण पर विमोहित होकर सारा देश असीम विश्वास एवं अडिग श्रृद्धा के साथ उनके पीछे चल पड़ा था। इस कर्मयोगी ने सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह के मन्त्र को आधार बनाकर सम्पूर्ण मानवता को एक नये रूप में संगठित किया।

21वीं सदी में जब दुनिया वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति को प्रतिमान बनाकर तेजी से आगे बढ़ रही है तो एक ओर भौतिक सुख-समृद्धि एवं विकास से युक्त सम्पूर्ण विश्व एक वैश्विक गाँव में तब्दील हो रहा है, लेकिन दूसरी ओर विश्व समुदाय हिंसा, आर्थिक मन्दी, भुखमरी तथा नफरत के घने साये की अशंकाओं के साथ-साथ बेलगाम विघटनकारी प्रवृत्तियों के भयावह खतरे से भी जूझ रहा है। ऐसे में गाँधी दर्शन से मतभेद रखने वाली समस्त शक्तियों को यह भली भाँति महसूस होने लगा कि गाँधी जी का वैचारिक दर्शन आज अत्यधिक प्रासंगिक है। यही कारण है कि आज न केवल गाँधी जी को याद किया जा रहा है बल्कि बड़ी शिद्दत से गाँधी दर्शन को व्यवहारिक जीवन में आत्मसात् करने की आवश्यकता महसूस की जा रही है। महात्मा गाँधी का कथन है कि 'मैं नहीं चाहता है कि मेरे घर को ऊँची चारदीवारों से घेर दिया जाये और खिड़कियों को मजबूती से बन्द कर दिया जाये। मैं चाहता हूँ कि सभी संस्कृतियों का प्रवाह युक्त रूप से मेरे घर में हो परन्तु मैं उस प्रवाह में उखड़ने से इन्कार करता हूँ।'

वैश्विक परिदृश्य में उपस्थित समस्याओं एवं अनिश्चितताओं को लेकर गाँधी दर्शन एवं विचार धारा के प्रति लोगों की आस्था अभी बनी हुयी है और इस नई शताब्दी में गाँधी के विचारों की प्रासंगिकता पहले से अधिक हो गयी है। उनके स्वयं के शब्दों में- 'जितनी देर तक मेरा विश्वास जलता रहेगा, मैं आशा करता हूँ कि मैं उतनी देर तक खड़ा रह सकता हूँ। मैं कब्र में भी जीवित रह सकता हूँ।' ओबामा से लेकर मनमोहन तक वे परमाणु आतंकवाद के खतरों की चर्चा की और माना कि इससे निपटने के लिए कपटपूर्ण कूटनीति में लिपटे शान्तिपूर्ण प्रयास नहीं वरन् गाँधी के विचारों का अनुसरण ही कारगर उपाय होंगे। 2007 में संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा 2 अक्टूबर जो कि गाँधी जी का जन्म दिवस है को 'अन्तर्राष्ट्रीय अहिंसा दिवस' के रूप घोषित करना इस बात का परिचायक है कि सम्पूर्ण विश्व में विद्यमान अशंकाओं से मुक्ति पाने के लिए नजर कहीं न कहीं गाँधी दर्शन की ओर ही उठ रही है। गाँधी जी के 150वीं जन्मसदी पर संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव का यह प्राक्कथन कि 'महात्मा गाँधी के सिखाये पाठ विकास, शान्ति व सर्वोदय ही संयुक्त राष्ट्र के मूल उद्देश्य है।' गाँधी की प्रासंगिकता को बल प्रदान करता है।

गाँधी जी का चरित्र बृहद था। उनके क्रियाशीलता के आयाम अत्यन्त व्यापक थे और इनका विस्तार समाज के प्रत्येक बिन्दु तक था। अपने विचारों में गाँधी जी ने राजनीति से प्रारम्भ कर स्त्रियों की समुन्नत दशा के सरोकार से लेकर धर्म व साम्प्रदायिकता को प्रवेश दिया। वे एक समाज सुधारक के रूप में सत्य के प्रबल पैरोकार थे। इसके साथ ही शान्ति के उपदेशक, नैतिकतावादी, जिज्ञासु, विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था के समर्थक तथा समाज के अन्तिम पायदान पर खड़े व्यक्ति के अधिकारों के लिए लड़ने वाले योद्धा थे। अपने विचारों में उन्होंने शोषणकारी प्रवृत्ति, तानाशही, साम्राज्यवाद तथा गला काट प्रतिस्पर्धा को कोई स्थान नहीं दिया। उन्होंने एक ऐसे समाज के निर्माण पर बल दिया जिसमें प्रसन्नता व समृद्धि का वातावरण हो तथा चारों ओर शान्तिपूर्ण व्यवस्था कायम हो।

वैश्विक परिदृश्य में व्याप्त समस्याओं को गाँधी जी ने साधन साध्य के अन्तर के रूप में देखा तथा मानव जीवन में साधन साध्य के महत्व को स्थापित करने की कोशिश की। उनका मानना था कि जिस प्रकार व्यक्तिगत जीवन में उच्च आदर्शों एवं लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए हम निम्न या अनुचित साधनों का सहारा नहीं लेते, ठीक उसी प्रकार विश्व समुदाय में शान्ति की स्थायी व्यवस्था करने के लिए हिंसा व युद्ध को साधन नहीं बना सकते हैं। गाँधी जी अन्तर्राष्ट्रीय जगत में विद्यमान विभाजनकारी मुद्दों के उचित समाधान के लिए मध्यस्थता के विकल्प को स्वीकार करने पर जोर देते है। उनका मानना था किसी समस्या के शान्तिपूर्ण समाधान के लिए दोनों पक्षों द्वारा तीसरे पक्ष की मध्यस्थता को स्वीकार किया जा सकता है। इससे दोनों पक्षों के मध्य विद्यमान कटुता को

बखूबी समाप्त किया जा सकता है। गाँधी जी ने धर्म व नैतिकता के माध्यम से व्यक्ति के जीवन को शुद्ध व नियमित करने का प्रयास किया। उनका मानना था कि 'धर्म का कानून राज्य तथा व्यक्ति दोनों पर समान रूप से लागू होता है तथा यह प्राकृतिक कानून के समान है क्योंकि इसमें न्याय का विचार शामिल है।' गाँधी जी मानते है कि धर्म का सार नैतिकता में विद्यमान है और सभी धर्मों का एक ही नैतिक आधार मानते हैं। उन्होंने धर्म व नैतिकता के बीच किसी प्रकार का अन्तर नहीं माना। इस प्रकार गाँधी जी के धर्म को विश्वव्यापी नैतिकता के रूप में समझा जा सकता है तथा सम्पूर्ण विश्व में हिंसा व युद्ध पर आघात करने व अन्तर्राष्ट्रीय एकता स्थापित करने की दृष्टि से गाँधी के धर्म व नैतिकता का विशिष्ट महत्व है।

अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान व विश्व शान्ति की स्थापना के लिए सत्याग्रह एक महत्वपूर्ण साधन सिद्ध हो सकता है और गांधी ने भी अन्तर्राष्ट्रीय जगत में विद्यमान विवादों के स्थायीपूर्ण समाधान के लिए अहिंसा और सत्याग्रह जैसे अस्त्रों के प्रयोग को उचित माना। इन्हीं साधनों के आधार पर ही वह 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की धारणा को जीवन्त रखना चाहते थे। गाँधी जी ने माना कि सम्पूर्ण विश्व में स्थायी शान्ति व विवादों के समाधान के लिए राष्ट्रों को युद्ध एवं हिंसा के स्थान पर सत्याग्रह का सहारा लेना चाहिए। उनके इस अस्त्र की भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में प्रयोग की सफलता से प्रभावित होकर विश्व के कई राष्ट्रों ने अपने-अपने देश की सफलता से प्रभावित होकर विश्व के कई राष्ट्रों ने अपने-अपने देश की समस्याओं के निराकरण के लिए अहिंसात्मक प्रतिरक्षात्मक संघर्ष की नीति को अपनाया। 1949 में वाना में एन्क्रमा ने गाँधीवादी अस्त्रों के सहारे साम्राज्यवाद पर आक्रमण किया और उन्होंने हड़ताल, बहिष्कार तथा असहयोग आन्दोलनों के माध्यम से सत्याग्रह के प्रयोग को सफल बनाया। इसी तरह 1967 में हुये अमरीकी साम्प्रदायिक दंगों में मार्टिन लूथर ने गाँधी जी के अहिंसक संघर्ष की नीति का प्रयोग किया। इस प्रकार विश्व के अनेक देशों ने समस्याओं के समाधान के लिए सत्याग्रह जैसे साधन का प्रयोग गाँधी दर्शन के अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप को और अधिक निखार दिया।

वास्तव में आज वैश्विक परिप्रेक्ष्य में शान्ति एवं एकता केवल सत्य एवं अहिंसा के माध्यम से ही स्थापित की जा सकती है। युद्ध एवं हिंसा के सम्भावित खतरे को देखते हुये विश्व समुदाय में शस्त्रीकरण की जोड़ में जिस प्रकार आशातीत वृद्धि हुयी है उसने सम्पूर्ण विश्व बिरादरी में चिन्ता की लकीरे खींच दी है। गांधी जी ने शस्त्रीकरण की इस होड़ को अनुचित माना और इसके प्रति चिन्ता व्यक्त की। उनका मानना था कि 'शस्त्रीकरण की होड़ को तभी रोका जा सकता है जब विश्व समुदाय अहिंसा को एक सार्वभौम सिद्धान्त के रूप में स्वीकार कर लें। उन्होंने स्वीकार किया कि सत्य ही हमें वैश्विक अशान्ति एवं विनाश से बचा सकता है। यह सत्य एक विश्व आन्दोलन करेगा तथा स्थायी शान्ति के साथ विश्व सरकार के निर्माण का मार्ग प्रशस्त करेगा। लेकिन गाँधी दर्शन के मूल तत्व, सत्य, अहिंसा, धर्म, नैतिकता आदि के विश्वव्यापी प्रयोग करने के प्रश्न पर हमारे समक्ष यह समस्या आती है कि क्या वैश्विक समुदाय में इतनी नैतिक शक्ति विद्यमान है कि वे एकमात्र अहिंसा और सत्य का प्रयोग कर सकें। इसका अन्तर सन्देहात्मक है क्योंकि संयुक्त राष्ट्र संघ को भी अहिंसात्मक शक्ति का प्रयोग करने में पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हुयी और उत्तर कोरिया के मामले में उसे सैनिक शक्ति के प्रयोग की इजाजत देनी पड़ी। लेकिन यहाँ स्पष्ट कर दे कि अन्ततः सैनिक शक्ति का विकल्प असफल रहा था और शान्ति स्थापना अहिंसा के माध्यम से ही सम्पन्न हुयी। ऐसा परिदृश्य इण्डोनेशिया में भी क्रियान्वित हुआ। इस सन्दर्भ में यही कहा जा सकता है कि यदि गाँधी जी के आदर्शों द्वारा विश्व शान्ति की स्थापना करनी है तो विश्व की जनता को नैतिक रूप से जाग्रत करना होगा क्योंकि जिस दिन किसी देश की जनता की नैतिक भावना जाग जायेगी, उसी दिन उस राष्ट्र से हिंसा, युद्ध एवं शोषण की समस्या सदा के लिए मृत प्राय हो जायेगी।

गाँधी जी एक ऐसे विश्व के निर्माण का आदर्श अपने मन-मस्तिष्क में रखते थे जिसमें हिंसा व युद्ध का कोई स्थान नहीं था। डॉ. प्रकाश शास्त्री के शब्दों में 'वर्तमान सामाजिक संरचना और अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था स्वयं हिंसा पर आधारित है। जब तक हिंसा पर आधारित व्यवस्था होगी तब तक अहिंसात्मक समाज की स्थापना नहीं हो पायेगी। वे आगे कहते है कि वर्तमान दौर में समतामूलक विश्व व्यवस्था की स्थापना महत्वपूर्ण आवश्यकता है। भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया पूँजीवादी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में अपने वर्चस्व की स्थापना का एक अनावश्यक प्रयास है। जैसे-जैसे भूमण्डलीकरण तीव्र होगा, हिंसा भी बढ़ती जायेगी।' इसी के उत्तर में गाँधी जी कहते थे कि 'घृणा का जवाब प्रेम और हिंसा का जवाब अहिंसा ही समाधान है।' गाँधी जी विषमता से मुक्त व भाईचारे से युक्त व्यवस्था के पोषक थे। यद्यपि अहिंसा के माध्यम से शान्ति स्थापना के प्रयास भले ही दिवास्वप्न लगते है लेकिन अहिंसक तरीकों से किये गये प्रयास ही अन्ततः प्रभावशाली

साबित होते है। गाँधी दर्शन को अपनाकर शान्ति एवं मैत्री का वातावरण तैयार किया जा सकता है।

अणुबम व परमाणु बमों की विभीषिका से विश्व समुदाय को वर्तमान समय में यदि कोई बचा सकता है तो वह सिर्फ गाँधी दर्शन ही है क्योंकि इन विनाशकारी हथियारों के प्रयोग पर रोक हेतु मानवता एवं नैतिकता की शिक्षा की आवश्यकता है जिसकी पूर्ति गाँधी दर्शन ही कर सकता है। अत: विनाश से बचने के लिए तथा स्थायी शान्ति के लिए कोई उपाय शेष रह जाता है तो वह गाँधी जी द्वारा अपनाये गये साधन जैसे- सत्य, अहिंसा व सत्याग्रह ही है। आज आणविक युग में सत्याग्रह के स्थान को आश्रित करने के लिए परमाणु शक्तियों से डरकर भागने की जरूरत नहीं है वरन् सत्याग्रह के माध्यम से तानाशाहों का डटकर अहिंसक प्रतिकार करने की आवश्यकता है। इस प्रकार आणविक युग में अहिंसा की भूमिका एवं अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में आतंकवाद और हिंसा को समाप्त करने में अहिंसा और सत्याग्रह के उपयोग को देखते हुये आज की वर्तमान परिस्थितियों में विश्व की अन्य सभी व्यवस्थाओं में से गाँधी जी की अहिंसा की नीति एक ऐसी व्यवस्था प्रदान करती है जिसके बिना किसी नुकसान या अव्यवस्था के विश्व शान्ति स्थापित करने में प्रमुख योगदान दिया। इस आणविक युग में गाँधी जी के विचारों व उनकी तकनीक सत्याग्रह व अहिंसा का प्रयोग करके एन्क्रूमा, मार्टिन लूथर व नेल्सन मण्डेल ने सत्याग्रह की महत्ता को सिद्ध कर दिया।

वर्तमान में हमारे पास गाँधी दर्शन की ओर लौटने के सिवाय और कोई उपाय नहीं है क्योंकि हिंसा व युद्ध की राजनीति के साथ-साथ सम्पूर्ण विश्व तथा संगठन पर्यावरणीय समस्याओं से मुक्ति पाने के लिए गाँधीवादी सिद्धान्तों को अपने आचरण में प्रयोग कर रहे हैं। श्रीलंका के सर्वोदय आन्दोलन के प्रणेता डी.एटी. अरियारत्ने, थाईलैण्ड स्पिरिट इन एजुकेशन मूवमेंट के जनक सुलाक शिवरक्षा का उदाहरण उल्लेखनीय है। विश्व के समक्ष उत्पन्न पर्यावरणीय संकट का हल तलाशने में गाँधी दर्शन की प्रासंगिकता पर विचार व्यक्त करते हुये डायना कार्लथोर्प रोज ने लिखा 'विश्व को ग्लोबल वार्मिंग की समस्या से मुक्ति प्राप्त करने के लिए जो शक्ति चाहिए वह सत्याग्रह की शक्ति में निहित है।' इस प्रकार विश्व शान्ति के साथ-साथ पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान का वाजिब तर्क गाँधी दर्शन में विद्यमान है जो आज उन्हें किसी एक देश में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय बिरादरी में प्रासंगिक बना रहा है।

भूमण्डलीकरण के इस दौर में औद्योगिकीकरण के वर्तमान स्वरूप ने अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को पूरी तरह से कुछ राष्ट्रों के कब्जे में दे दिया है। परिणामस्वरूप राष्ट्रों के बीच उत्तर-दक्षिण संवद की स्थिति पैदा हुयी। डब्लू.ए.टी.ओ.में विकसित एवं विकासशील देशों के बीच कृषि सब्सिडी को लेकर जो गर्मा-गर्म बहस चल रही है उसे केवल आर्थिक एवं तकनीकी आत्मनिर्भरता के प्रयासों पर गाँधी जी द्वारा सुझाये गये विचारों से ही समाप्त किया जा सकता है। आर्थिक विकास व आत्मनिर्भरता के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए गाँधी जी ने कहा कि पूँजी पैदा करने के लिए लोगों को संगठित किया जाये। गाँवों के आस-पास जंगलों का विकास हो। इस प्रकार गाँधी जी ने औद्योगिकीकरण के अभिशाप से मुक्ति दिलाने के लिए जो विचार दिये वह हमारी परिस्थितियों के अनुकूल है।

निष्कर्ष-

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि समकालीन विश्व में गाँधी दर्शन की अहमियत आज भी है। उनके विचार तथा साधन आज और अधिक प्रासंगिक है क्योंकि विविध धर्म, परम्पराओं और शान्ति के मध्य अपनी रचना धर्मिता की पहचान बनाये रखने वाला यह दर्शन सभी को एक-दूसरे के निकट लाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में मार्टिन लूथर किंग, दक्षिण अफ्रीका में नेल्सन मण्डेला तथा म्यांमार में आंग सान की जैसे लोगों के नेतृत्व में उत्पीड़ित समाज को न्याय दिलाने में गाँधीवादी विचारों को सफलता पूर्वक लागू किया गया। पूर्व अमरीकी राष्ट्रपति बराक ओबामा ने महात्मा गाँधी द्वारा बताये गये सत्य, अहिंसा तथा शान्ति के मार्ग पर चलते हुये विश्व में शान्ति स्थापित करने की वकालत की। वैश्विक स्तर पर गाँधी जी के आदर्शों से प्रेरित होकर ही दलाइ लामा ने कहा कि 'आज विश्व शान्ति और विश्व युद्ध अध्यात्म और भौतिकवाद, लोकतन्त्र व अधिनायकवाद के मध्य एक बड़ा युद्ध चल रहा है। इन बड़े युद्धों से लड़ने के लिए आवश्यक है कि समकालीन समय में गाँधीवादी दर्शन को अपनाया जाये।'

वास्तव में गाँधीवादी चिन्तन केवल भारत में ही प्रासंगिक नहीं है वरन् इसकी आवश्यकता पूरे वैश्विक समाज को है। गाँधी दर्शन विशुद्ध भारतीय उपज है और यदि विश्व के लिए भारत का कोई सन्देश है तो वह गाँधी दर्शन में निहित है। समकालीन विश्व की समस्यायें, अनैतिकता, हिंसा, भ्रष्टाचार आतंकवाद, घृणा, वैमनस्थ, अविश्वास, भुखमरी, बेरोजगारी आदि का समाधान गाँधी जी के नैतिकता, अहिंसा, पवित्रता, प्रेम, दया, मानवीयता, सत्याग्रह व रोटी के श्रम जैसे सिद्धान्तों को प्रभावी रूप से क्रियान्वित करके किया जा सकता है। आज के भौतिकवादी संसार में व्यक्ति

का आत्मबल, आत्मविश्वास तथा अनुशासन पूर्णतया असन्तुलित हो गया है। वैश्विक स्तर पर आज मानव जाति की मुक्ति सत्य का रास्ता अपनाने से ही सम्भव है। आज विश्व में शान्ति स्थापित करने के लिए हमें गाँधी जी के अहिंसा का अनुसरण करना ही होगा। संयुक्त राष्ट्र संघ के गाँधी दर्शन को अनुसरण करने तथा विश्वशान्ति हेतु गाँधी के विचारों को अपनाये जाने के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वैश्विक परिप्रेक्ष्य में गाँधी के विचार एवं दर्शन कल भी प्रासंगिक थे, आज भी प्रासंगिक है और भविष्य में भी प्रभावी होकर मानव जाति का उत्थान करते रहेंगे।

सन्दर्भ सूची –

1. वर्मा, वी0पी0 (2005) : पॉलिटिकल फिलासफी ऑफ महात्मा गाँधी एण्ड सर्वोदय, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।
2. शर्मा, बी.एस. (2008) : गाँधी एज ए पॉलिटिकल थिंकर स्टर्लिंग पब्लिकेशन, जयपुर।
3. चौधरी, बी.पी. (1999) : महात्मा गाँधी और भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।
4. कमल, के. एल. (2002) : गाँधी चिन्तन, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
5. बर्थोनिया, शेफाली (2018) : महात्मा गाँधी एवं विश्व आविष्कार पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।
6. ललांत प्रसून (2014): 'बढ़ रहे है दुनिया में गाँधी के रास्ते पर चलने वाले' दृष्टि विमर्श पत्रिका, नई दिल्ली।
7. लामा दलई (2009) : वैश्विक समुदाय सम्बन्धी विचार लेख।
8. कश्यप ओम प्रकाश (2008) : 'अहिंसा और इन्सानियत के दो दावेदार' डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
9. कौशिक आशा (2018) : 'गाँधी नई सदी के लिए' रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर।
10. राय, गाँधी जी (2020) : गाँधीवादी चिन्तन की अद्यतन प्रासंगिकता भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली।
11. मीना, जनक सिंह (2020): वर्तमान युग में गाँधी चिन्तन की प्रासंगिकता भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली।
12. अरविन्द, पवन कुमार (2014) : वर्तमान में गाँधी के विचारों की प्रासंगिकता, www.Jagran.com
13. गाँधीवादी विचारधारा और समकालीन संघर्ष, https://reactetvbharat.com
14. गाँधी के विचार आज भी प्रासंगिक, https://hindinews18.com
15. वर्तमान समय में गाँधीवाद की प्रासंगिकता, https://www.drishtilas.com

ISSN 2278 - 0327

स्वामी विवेकानंद के सामाजिक एवं शैक्षिक चिंतन का विश्लेषणात्मक अध्ययन

बृजभूषण राय
शोधार्थी, शिक्षा संकाय
आर.के.डी.एफ. विश्वविद्यालय, भोपाल

डॉ. आशीष कुमार बाजपेयी
प्राध्यापक, शिक्षा संकाय
आर.के.डी.एफ. विश्वविद्यालय, भोपाल

प्रस्तावना –

आज भारत को आज एक युवा राष्ट्र के रूप में पहचाना जा रहा है ऐसे में चिर युवा व्यक्तित्व स्वामी विवेकानन्द ही उसकी प्रेरणा का सर्वोत्तम स्रोत हो सकते हैं। स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दू संस्कृति को उस समय वैश्विक मान्यता दिलवाई जब भारतियों का आत्मविश्वास रसातल में गया हुआ था। स्वामी विवेकानन्द के आध्यात्मिक प्रवाह के साथ-साथ राष्ट्रीयता के शंखनाद ने भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन में नई जान फूंक दी थी। देश के पुन: निर्माण का श्री गणेश उन्होंने किया, वह आज भी जारी है। स्वामी विवेकानन्द की जयन्ती पर आवश्यकता यह मनन करने की है कि हम उनके दिखाए मार्ग पर कितना आगे बढ़ पाये हैं।

स्वामी विवेकानन्द जी भारतीय और विश्व इतिहास के उन महान् व्यक्तियों में से हैं, जो राष्ट्रीय जीवन को एक नई दिशा प्रदान करने में एक अमृतधारा की भाँति हैं। स्वामी जी के व्यक्तित्व और विचारों में भारतीय संस्कृति परम्परा के सर्वश्रेष्ठ तत्व निहित थे। स्वामी जी के व्यक्तित्व और विचार भारत ही नहीं बल्कि संपूर्ण विश्व के लिए वरदान हैं। स्वामी जी का सम्पूर्ण जीवन माँ भारती और भारतवासियों की सेवा हेतु समर्पित था। उनका व्यक्तित्व विशाल समुद्र की भाँति था। वे आधुनिक भारत के एक आदर्श प्रतिनिधि होने के अतिरिक्त वैदिक धर्म एवं संस्कृति के समस्त स्वरूपों के उज्जवल प्रतीक थे। प्रखर बुद्धि के स्वामी और तर्क विचारों से सुसज्जित जलते दीपक की तरह प्रकाषमान थे। उनके अंत:करण में अलोकित प्रस्फुटित ज्वाला प्रज्जवलित होती है। ''उनके विचार शिक्षा और दर्शन इतने प्रभावी हैं कि स्वामी जी के द्वारा दिये गये सैकड़ो वक्तव्यों में से कोई एक वक्तव्य महान् क्रान्ति करने के लिए, व्यक्ति के जीवन में आमूल परिवर्तन करने में समर्थ है।''[1]

स्वामी विवेकानन्द क्रान्ति की नई छवि को गढ़ने वाले विचारक थे। वे समाजोद्धार को आत्मोद्धार से जोड़कर देखते थे। यही उनकी क्रान्ति को एक नया आयाम देता है, ''जीवन में मेरी एक मात्र अभिलाषा यही है कि ऐसे चक्र का प्रवर्तन कर दूँ, जो उच्च एवं श्रेष्ठ विचारों को सबके द्वार तक पहुँचा दे, और फिर स्त्री-पुरुष अपने भाग्य का निर्णय स्वयं कर ले। हमारे पूर्वजों तथा अन्य देशों ने भी जीवन के महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर क्या विचार किया है, यह सर्वसाधारण को जानने दो। विशेष कर उन्हें यह देखने दो कि और लोग इस समय क्या कर रहे हैं और तब उन्हे अपना निर्णय करने दो।''[2]

उठो, साहसी बनो, वीर्यवान् बनो। सब उत्तरदायित्व अपने कन्धों पर लो। यह याद रखो कि तुम स्वयं अपने भाग्य के निर्माता हो। तुम जो कुछ बल या सहायता चाहते हो, सब तुम्हारे ही भीतर विद्यमान है। अतएव इस ज्ञानरूप शक्ति के सहारे तुम बल प्राप्त करो और अपने हाथों अपना भविष्य निर्माण करो।

स्वामी विवेकानन्द जी का जन्म 12 जनवरी, सन् 1863 में एक बंगाली कायस्थ परिवार में हुआ था। इनके पिता श्री विश्वनाथ दत्त कलकत्ता के उच्च न्यायालय में एटर्नी (वकील) थे। इनका वास्तविक नाम नरेन्द्रनाथ दत्त था। उनके घर का वातावरण धार्मिक था, इसलिए स्वामी जी को भी धर्म-कर्म, पूजा-पाठ में विशेष रूचि थी। उनकी माँ भुवनश्वरी देवी भी बड़ी बुद्धिमती, गुणवती, धर्मपरायण एवं परोपकारी थीं। वह उन्हें रामायण, महाभारत तथा पुराण सुनाया करती थीं। इन धार्मिक चर्चाओं और स्वामी रामकृष्ण परमहंस के संपर्क में आने का उनके ऊपर अत्यधिक प्रभाव पड़ा और वे बड़े महात्मा बन गये। उनकी महानता, विद्वता एवं धर्मनिष्ठा किसी से छिपी नहीं है। सन् 1893 ई. में विश्व धर्म सम्मेलन में भाग लेने वे अमेरिका गये और वहाँ जाने से पूर्व उन्होंने अपना नाम विवेकानन्द रखा। उन्होंने तत्कालीन शिक्षा को अपने देश की गरीबी, दरिद्रता एवं दुख का कारण बताया और भारत के नागरिकों की शिक्षा कैसी हो इस पर विचार व्यक्त किया। विदेशों में घूम-घूम कर हिन्दू धर्म का प्रचार कर देश एवं स्वयं का नाम ऊँचा किया। 4 जुलाई सन् 1902 में यह महात्मा संसार में हिन्दु धर्म को

फिर से प्रतिष्ठित करके अल्पायु में ही परलोक सिधार गये।

स्वामी विवेकानन्द जी के अनुसार कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को नहीं सिखाता, प्रत्येक व्यक्ति अपने आप सीखता है। बाहरी शिक्षक तो केवल सुझाव ही प्रस्तुत करते हैं जिनसे भीतरी, शिक्षक को समझने और सीखने की प्रेरणा मिलती है। स्वामी जी ने उस समय की शिक्षा को निरर्थक बताते हुए कहा–''आप उस व्यक्ति को शिक्षित मानते हैं जिसने कुछ परीक्षाऐं पास कर ली हों तथा अच्छे भाषण दे सकता हो। पर वास्तविकता यह है कि जो शिक्षा जनसाधारण को जीवन संघर्ष के लिए तैयार नहीं कर सकती वो चरित्र-निर्माण नहीं कर सकती। जो समाज सेवा की भावना को पैदा नहीं कर सकती तथा जो शेर जैसा साहस पैदा नहीं कर सकती, ऐसी शिक्षा से क्या लाभ है।''[3] उनके इस कथन से स्पष्ट है कि शिक्षा के प्रति उनका व्यापक दृष्टिकोण है। अत: स्वामी जी सैद्धान्तिक शिक्षा के पक्ष में नहीं थे, वे व्यावहारिक शिक्षा को व्यक्ति के लिए उपयोगी मानते थे। व्यक्ति शिक्षा ही उसे भविष्य के लिए तैयार करती है। इसलिए शिक्षा में उन तत्वों का होना अत्यन्त आवश्यक है जो उसके भविष्य के लिए महत्त्वपूर्ण हों। इस संबंध में उन्होंने भारतीयों को समय-समय पर सचेत करते हुए कहा–''तुमको कार्य के प्रत्येक क्षेत्र को व्यवहारिक बनाना पड़ेगा। सिद्धान्तों के ढेरों ने सम्पूर्ण देष का विनाष कर दिया है।''[4] स्वामी जी शिक्षा द्वारा लौकिक एवं पारलौकिक दोनों जीवन के लिए तैयार करना चाहते हैं। लौकिक दृष्टि से शिक्षा के सम्बन्ध में उन्होंने कहा है कि ''हमें ऐसी शिक्षा चाहिए, जिससे चरित्र का गठन हो, मन का बल बढ़े, बुद्धि का विकास हो और व्यक्ति स्वावलम्बी बने। पारलौकिक दृष्टि से उन्होंने कहा है कि ''शिक्षा मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति है।''

विवेकानन्द का सामाजिक चिंतन –

एक बार विवेकानन्द जी ने घोषणा की थी, ''मैं समाजवाद का सर्मथक हूँ इसलिए नहीं कि मैं इसे पूर्ण रूप से निर्दोष व्यवस्था समझता हूँ , बल्कि इसलिए कि आधी रोटी अच्छी है, कुछ नहीं से।'' समाजशास्त्री डॉ. वी.पी. वर्मा के अनुसार, ''विवेकानन्द समाजवादी इसलिए थे कि उन्होंने राष्ट्र के समस्त नागरिकों के लिए 'समान अवसर के सिद्धान्त' का समर्थन किया था।'' वे रूस के क्रान्तिकारी विचारक प्रिंस क्रोपोटिलिन से मिले। समाजवादी विचारों ने उनके मनमस्तिष्क पर जर्बदस्त प्रभाव डाला और उन्होंने स्वयं को समाजवाद का सर्मथक कहना शुरू कर दिया। उनकी रचनाओं में सामाजिक समानता का जो समर्थन देखने को मिलता है वह सामाजिक ऊँच-नीच के सिद्धान्त का प्रबल प्रतिवाद है। स्वामी जी ने स्वयं भारत भ्रमण के समय अपनी आँखों में भयानक निर्धनता, अज्ञानता, नग्न बच्चे, अर्द्धनग्न स्त्री-पुरुष, निर्धन एवं निरक्षर ग्रामीण, अवैज्ञानिक खेती, सिंचाई के साधनों का अभाव, गाँवों में अस्वच्छता, अत्यंत निम्न जीवन स्तर, धार्मिक आडम्बर, अन्धविश्वास, सामाजिक कुरीतियों आदि के रूप में विपन्न भारत का दर्शन किया। लोग निर्धनता एवं अज्ञानता के कारण पशुवत जीवन व्यतीत कर रहे थे। इस अमानवीय स्थिति को देख कर मानवीय संवेदना से युक्त स्वामी जी का हृदय अत्यंत द्रवित हुआ। उन्होंने अपने अंत:प्रेरणा से आत्ममुक्ति के स्थान पर राष्ट्रमुक्ति-राष्ट्र को निर्धनता एवं अज्ञानता से मुक्ति दिलाने, दीन-दुखियों के उद्धार हेतु कार्य करने तथा राष्ट्र के पुन:निर्माण मे संलग्न होने का संकल्प किया और आजीवन मानवता की सेवा ही अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित किया।[5]

अस्पृश्यता का विरोध व दलितों का उत्थान –

स्वामी विवेकानन्द के हृदय में गरीबों एवं पददलितों के प्रति असीम संवेदना थी। उन्होंने कहा, राष्ट्र का गौरव महलों में सुरक्षित नहीं रह सकता, झोपडियों की दशा भी सुधारनी होगी। गरीबों यानी दरिद्रनारायण को उनके दीन-हीन स्तर से ऊँचा उठाना होगा। यदि गरीबों एवं शूद्रों को दीन-हीन रखा गया तो देश व समाज का कोई कल्याण नहीं हो सकता। विवेकानन्द की समाजवादी अर्न्तआत्मा ने चीत्कार कर कहा कि ''मैं उस भगवान या धर्म पर विश्वास नहीं कर सकता जो ना तो विधवाओं के आँसू पोछ सकता है और न तो अनाथों के मुँह में एक टुकड़ा रोटी ही पहुँचा सकता है।''

■ **बाल विवाह का विरोध**– विवेकानन्द जी ने बाल-विवाह की भर्त्सना की और कहा, ''बाल विवाह में असामयिक सन्तानोत्पत्ति होती है और अल्पायु में संतान धारण करने के कारण हमारी स्त्रियाँ अल्पायु होती हैं, उनकी दुर्बल और रोगी संताने देश में भिखारियों एवं अपराधियों की संख्या बढ़ाने का कारण बनती हैं।[6]

■ **आत्मविश्वास पर बल**– विवेकानंद जी ने स्वयं पर विश्वास करने की प्रेरणा दी। आत्मविश्वास रखने पर ही व्यक्ति में कुछ करने की क्षमता विकसित होती है और आत्मविश्वासी समाज ही समस्त बाधाओं को लाँघकर ऊपर उठता है। विवेकानंद जी ने कहा ''लोग कहते हैं- इस पर विश्वास करो, उस पर विश्वास करो, मैं कहता- पहले अपने आप पर विश्वास करो। सर्वशक्ति तुम में है-कहो हम सब कर सकते हैं।''

■ **स्त्रियों को शिक्षा के समान अवसर**– स्वामी जी ने नारी उत्थान के लिए स्त्री शिक्षण पर बल देते हुए कहा–''पहले अपनी

स्त्रियों को शिक्षित करो, तब वे आपको बताएंगी की उनके लिए कौन से सुधार आवश्यक हैं, उनक मामले में बोलने वाले तुम कौन होते हो।''समाज स्त्री-पुरुष दोनों से मिलकर बना है। दोनों की शिक्षा से ही देश का पूर्ण विकास संभव है। पक्षी आकाश में एक पंख से नहीं उड़ सकते, उसी प्रकार देश का सम्यक् उत्थान मात्र पुरुषों की शिक्षा से संभव नहीं है। स्त्रियों को पुरुषों के समान ही शिक्षा प्राप्त करने का सुअवसर सुलभ होना चाहिए।''[7]

■ **व्यवसायिक विकास पर बल**- भारत एक निर्धन देश है और यहाँ कि अधिकांश जनता मुश्किल से ही अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति कर पाती है। स्वामी जी ने इस तथ्य एवं सत्य को हृदयंगम किया तथा यह अनुभव किया कि कोरे आध्यात्म से ही जीवन नहीं चल सकता, जीवन चलाने के लिए कर्म आवश्यक है। इसके लिए उन्होंने शिक्षा के द्वारा मनुष्य को उत्पादन एवं उद्योग कार्य तथा अन्य व्यवसायों में प्रशिक्षित करने पर बल दिया।[8]

स्वामी विवेकानन्द का शिक्षा दर्शन -

स्वामी विवेकानन्द जी ऐसे परम्परागत व्यवसायिक तकनीकी शिक्षाशास्त्री न थे जिन्होंने शिक्षा का क्रमबद्ध सुनिश्चित विवरण दिया हो। वह मुख्यत: एक दार्शनिक, देशभक्त, समाज सुधारक और दिव्यात्मा थे। जिनका लक्ष्य अपने देश और समाज की खोयी हुई जनता को जगाना तथा उसे नव निर्माण के पथ पर अग्रसर करना था। शिक्षा दर्शन के क्षेत्र में स्वामी जी की तुलना विश्व के महानतम शिक्षाशास्त्रियों प्लेटो, रूसो और बर्टैंड रसेल से की जा सकती है क्योंकि उन्होंने शिक्षा के कुछ सिद्धान्त प्रस्तुत किए हैं, जिनके आधार पर विशाल ज्ञान का भवन निर्माण तकनीकी रूप से कर सकते हैं। स्वामी विवेकानन्द की नस-नस में भारतीयता तथा आध्यात्मिकता कूट-कूट कर भरी हुई थी। अत: उनके शिक्षा दर्शन का आधार भी भारतीय वेदान्त या उपनिषद् ही रहे। उनका मुख्य उद्देश्य मानव का नव निर्माण था क्योंकि व्यक्ति समाज का मूल आधार है। व्यक्ति के सर्वांगीण उत्थान से समाज का सर्वांगीण उत्थान होता है और व्यक्ति के पतन से समाज का पतन होता है। स्वामी जी ने अपने शिक्षा दर्शन में व्यक्ति और समाज दोनों के समरस संतुलित विकास को ही शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य माना। स्वामी जी के अनुसार वेदान्त दर्शन के अनुसार प्रत्येक बालक में असीम ज्ञान और विकास की सम्भावना है परन्तु उन्हें इन शक्तियों का पता नहीं है। शिक्षा द्वारा उसे इनकी प्राप्ति करायी जा सकती है तथा उनके उत्तरोतर विकास में छात्र की सहायता की जा सकती है। स्वामी जी वेदांती थे इसलिए वे मनुष्य को जन्म से पूर्ण मानते थे और इस पूर्णता की अभिव्यक्ति को ही शिक्षा कहते थे। स्वामी जी के शब्दों में ''मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को व्यक्त करना ही शिक्षा है।''[9] स्वामी विवेकानन्द शिक्षा के विषय में कहते हैं कि सच्ची शिक्षा वह है जिससे मनुष्य की मानसिक शक्तियों का विकास हो। वह शब्दों को रटना मात्र नहीं है। वह व्यक्ति की मानसिक शक्तियों का ऐसा विकास है, जिससे वह स्वयंमेव स्वतंत्रतापूर्वक विचार कर सही निर्णय कर सके।

इक्कीसवी शताब्दी के बदलते परिवेश में जहाँ सूचना और प्रौद्योगिकी का युग चल रहा है, ऐसे में स्वामी जी के चिन्तन को अपनाना आवश्यक है। स्वामी जी शिक्षा के वर्तमान रूप को अभावात्मक बताते थे। जिन विद्यार्थियों को अपनी संस्कृति का ज्ञान नहीं उन्हें जीवन के वास्तविक मूल्यों का पाठ नहीं पढ़ाया जा सकता तथा उनमें श्रद्धा का भाव भी नहीं पनपता है। उनके अनुसार भारत के पिछड़ेपन के लिए वर्तमान शिक्षा पद्धति ही उत्तरदायी है। यह शिक्षा न तो उत्तम जीवन जीने की तकनीक प्रदान करती है और न ही बुद्धि का नैसर्गिक विकास करने में सक्षम है। स्वामी जी ने आधुनिक शिक्षा पद्धति की आलोचना करते हुए लिखा है- ''ऐसा प्रशिक्षण जो नकारात्मक पद्धति पर आधारित हो, मृत्यु से भी बुरा है।''[10] स्वामी विवेकानन्द भारतीयों के लिए पाश्चात्य दृष्टिकोण से प्रभावित शिक्षा पद्धति के स्थान पर भारतीय गुरूकुल पद्धति को श्रेष्ठ मानते थे। जिसमें विद्यार्थियों तथा शिक्षकों में निकटता के संबंध तथा सम्पर्क रह सके और विद्यार्थियों में श्रद्धा, पवित्रता, ज्ञान, धैर्य, विश्वास, विनम्रता, आदर आदि गुणों का विकास हो सके।[11] स्वामी जी भारतीय शिक्षा पाठ्यक्रम में दर्शनशास्त्र एवं धार्मिक ग्रंथों के अध्ययन को भी आवश्यक मानते थे। वे ऐसी शिक्षा के समर्थक थे जो संकीर्ण मानसिकता तथा भेदभावपूर्ण साम्प्रदायिकता के दोषों से मुक्त हो। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार शिक्षा का मूल उद्देश्य, जिसमें व्यक्ति का सर्वांगीण विकास हो। उत्तम चरित्र, मानसिक शक्ति और बौद्धिक विकास हो, जिससे व्यक्ति पर्याप्त मात्रा में धन अर्जित कर सके और आपात काल के लिए धन सचंय कर सके।

शिक्षा दर्शन के आधारभूत सिद्धान्त -

स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा दर्शन के आधारभूत सिद्धान्त निम्नलिखित हैं-

- शिक्षा ऐसी हो जिससे बालक का शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक विकास हो सके।
- शिक्षा ऐसी हो जिससे बालक के चरित्र का निर्माण हो, मन का विकास हो, बुद्धि विकसित हो तथा बालक आत्मनिर्भर बने।

- बालक एवं बालिका को समान शिक्षा देनी चाहिए।
- धार्मिक शिक्षा, पुस्तकों द्वारा न देकर आचरण एवं संस्कारों द्वारा देनी चाहिए।
- शिक्षा से बालक के चरित्र का गठन हो, मन का बल बढ़े तथा बुद्धि विकसित हो जिससे वह अपने पैरों पर खड़ा हो जाये।
- शिक्षा बालक में आत्मिक निष्ठा तथा श्रद्धा विकसित करे एवं उसमें आत्मत्याग की प्रगति करके पूर्णता की अभिव्यक्ति करे।
- पाठ्यक्रम में लौकिक एवं पारलौकिक दोनों प्रकार के विषयों को स्थान देना चाहिए।
- शिक्षा, गुरू गृह में प्राप्त की जा सकती है।
- शिक्षक एवं छात्र संबंध अधिक से अधिक निकट का होना चाहिए।
- सर्वसाधारण में शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार किया जाना चाहिए।
- देश की प्रगति के लिए तकनीकी शिक्षा की व्यवस्था की जाए।
- मानवीय एवं राष्ट्रीय शिक्षा परिवार से ही शुरू करनी चाहिए।

शिक्षा के उद्देश्य –

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य निम्नलिखित होने चाहिए-

- **पूर्णता को प्राप्त करने का उद्देश्य**- स्वामी जी के अनुसार शिक्षा का प्रथम उद्देश्य अन्तर्निहित पूर्णता को प्राप्त करना है। उनके अनुसार लौकिक तथा आध्यात्मिक सभी ज्ञान मनुष्य के मन में पहले से ही विद्यमान रहते हैं। इस पर पड़े आवरण को उतार देना ही शिक्षा है। इसलिए शिक्षा ऐसी हो जिससे मनुष्य के अन्तर्निहित ज्ञान अथवा पूर्णता की अभिव्यक्ति हो सके।
- **शारीरिक एवं मानसिक विकास का उद्देश्य**- विवेकानन्द जी के अनुसार शिक्षा का दूसरा उद्देश्य बालक का शारीरिक एवं मानसिक विकास है। शारीरिक उद्देश्य पर उन्होंने इसलिए बल दिया जिससे आज के बालक भविष्य में निर्भीक योद्धा के रूप में गीता का अध्ययन करके देश की उन्नति कर सके। मानसिक उद्देश्य पर बल देते हुए उन्होंने बताया कि हमें ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जिसे प्राप्त करके मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा हो जाये।
- **नैतिक तथा आध्यात्मिक विकास का उद्देश्य**- स्वामी जी का विश्वास था कि किसी देश की महानता केवल उसके संसदीय कार्यों से नहीं होती अपितु उसके नागरिकों की महानता से होती है और नागरिकों को महान् बनाने के लिए उनका नैतिक तथा आध्यात्मिक विकास परम आवश्यक है। अत: शिक्षा को नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास पर बल देना चाहिए।
- **आत्मविश्वास, श्रद्धा एवं आत्मत्याग की भावना का उद्देश्य**- स्वामी जी ने आजीवन इस बात पर बल दिया कि अपने ऊपर विश्वास रखना, श्रद्धा तथा आत्मत्याग की भावना को विकसित करना शिक्षा का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है। उन्होंने लिखा है- ''उठो! जागो और तब तक बढ़ते रहो जब तक कि चरम उद्देश्य की प्राप्ति न हो जाये।''
- **विभिन्नता मे एकता की खोज का उद्देश्य**- स्वामी जी के अनुसार शिक्षा का मुख्य उद्देश्य विभिन्नता में एकता की खोज करना है। उन्होंने बताया कि आध्यात्मिक तथा भौतिक जगत एक ही है। अत: शिक्षा ऐसी हो जो बालक को विभिन्नता में एकता की अनुभूति करना सिखाए।
- **धार्मिक विकास का उद्देश्य**- स्वामी जी चाहते थे कि प्रत्येक व्यक्ति उस सत्य एवं धर्म को मालूम कर सके जो उसके अन्दर छिपा हुआ है। इसके लिए उन्होंने मन तथा हृदय के प्रशिक्षण पर बल दिया और बताया कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिसे प्राप्त करके बालक अपने जीवन को पवित्र बना सके तथा उसमें आज्ञापालन, समाजसेवा एवं महापुरुषों और सन्तों के अनुकरणीय आदर्शों को अपनाने की क्षमता विकसित हो जाये।
- **पाठ्यक्रम**- स्वामी जी के अनुसार जीवन का चरम लक्ष्य आध्यात्मिक विकास है। इसलिए उन्होंने पाठ्यक्रम के अन्तर्गत उन सभी विषयों को सम्मिलित किया जिनके अध्ययन से आध्यात्मिक उन्नति के साथ-साथ भौतिक उन्नति भी हो सके। स्वामी जी ने आध्यात्मिक पूर्णता के लिए धर्म, दर्शन, पुराण, उपनिषद, साधु-संगत, उपदेश तथा कीर्तन और लौकिक समृद्धि के लिए भाषा, भूगोल, राजनीति, अर्थशास्त्र, विज्ञान, मनोविज्ञान, कला, व्यावसायिक विषय, कृषि, प्रावैधिक-विषय, खेल-कूद तथा व्यायाम आदि विषयों को पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने पर जोर दिया।
- **शिक्षण पद्धति**- स्वामी जी ने सैद्धान्तिक शिक्षा का खण्डन करते हुए व्यावहारिक शिक्षा पर बल दिया और भारत की उसी प्राचीन आध्यात्मिक शिक्षण पद्धति को अपनाने पर बल दिया जिसमें गुरू और शिष्य के सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ रहते हैं।
- **बालक का स्थान**- फ्रोबेल की भाँति स्वामी जी ने भी बालक को शिक्षा का केन्द्र बिन्दु माना तथा बताया कि बालक लौकिक तथा आध्यात्मिक सभी प्रकार के ज्ञान का भण्डार होता है। इसलिए बालक को स्वयं विकसित होने का सुझाव देते हुए कहा- ''अपने अन्दर जाओ और उपनिषदों को अपने में से बाहर निकालो। तुम सबसे महान् पुस्तक हो जो कभी थी अथवा होगी।

जब तक अन्तरात्मा नहीं खुलती, समस्त बाह्य शिक्षण व्यर्थ है।''[12]

■ **शिक्षक का स्थान**–स्वामी जी को स्वयं शिक्षा में विश्वास था। वे कहते थे कि हम में से प्रत्येक व्यक्ति अपना स्वयं शिक्षक है। अत: शिक्षक के स्थान पर प्रकाश डालते हुए स्वामी जी कहते हैं कि, ''शिक्षक एक दार्शनिक, मित्र तथा पथ–प्रदर्शक है जो बालक को अपने ढंग से अग्रसर होने के लिए सहायता प्रदान करता है।''

■ **जन साधारण की शिक्षा**– स्वामी जी ने तत्कालीन भारतीय समुदाय की आर्थिक दृष्टि से हीन दशा को सुधारने के लिए जन साधारण की शिक्षा पर बल दिया और कहा–''मैं जन–साधारण की अवहेलना करना महान् राष्ट्रीय पाप समझता हूँ। यह हमारे पतन का मुख्य कारण है। जब तक भारत की सामान्य जनता को एक बार फिर उपयुक्त शिक्षा, अच्छा भोजन तथा अच्छी सुरक्षा नहीं प्रदान की जायेगी तब तक प्रत्येक राजनीति बेकार सिद्ध होगी।''

देश की वर्तमान व भविष्य में आने वाली परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए हमें अपनी वर्तमान शिक्षा प्रणाली में महत्वपूर्ण परिवर्तन करने की आवश्यकता है। हमें ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जो समय के अनुकूल हो।

निष्कर्ष – स्वामी विवेकानन्द का विचार, दर्शन और शिक्षा अत्यंत उच्चकोटि के हैं। जीवन के मूल सत्यों, रहस्यों और तथ्यों को समझने की कुंजी हैं। उनके शब्द इतने असरदार हैं कि एक मुर्दे में भी जान फूंक सकते हैं। वे मानवता के सच्चे प्रतीक थे, और मानव जाति के अस्तित्व को जन साधारण के पास पहुँचाने का अभूतपूर्व कार्य किया। वे अद्वैत वेदांत के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने अपनी संस्कृति को जीवित रखने हेतु भारतीय संस्कृति के मूल अस्तित्व को बनाये रखने का आह्वान किया ताकि आने वाली भावी पीढ़ी पूर्ण संस्कारिक, नैतिक गुणों से युक्त, न्यायप्रिय, सत्यधर्मी और आध्यात्मिक तथा भारतीय आदर्श के सच्चे प्रतीक के रूप में विश्व में अपना वर्चस्व बनाए रखे।

स्वामी विवेकानंद जी युग दृष्टा और युग सृष्टा थे। युगदृष्टा की दृष्टि से उन्होंने अपने समय की स्थिति को देखा समझा था और युगसृष्टा उस दृष्टि की उन्होंने नवभारत के निर्माण की नींव रखी थी। वे भारतीय धर्म दर्शन की व्यवस्था आधुनिक परिप्रेक्ष्य में करने, वेदांत को व्यवहारिक रूप देने एवं उसके प्रचार करने और समाज सेवा एवं समाज सुधार करने के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं परंतु उन्होंने शिक्षा की आवश्यकता पर बहुत बल दिया और नवभारत के निर्माण के लिए तत्कालीन शिक्षा में सुधार हेतु अनेक सुझाव दिए। जवाहर लाल नेहरू जी ने भी उनके बारे में एक बार कहा था, ''भारत के अतीत में अटल आस्था रखते हुए और भारत की विरासत पर गर्व करते हुए भी विवेकानंद जी का जीवन की समस्याओं के प्रति आधुनिक दृष्टिकोण था और वे भारत के अतीत तथा वर्तमान के बीच एक प्रकार के संयोजक थे।''[13]

हमारे राष्ट्र की आत्मा ग्रामों में निवास करती है। अत: शिक्षा के दीपक को घर–घर ले जाना होगा, तभी तो जन समाज प्रबुद्ध हो सकेगा। शिक्षा मंदिर के द्वार सभी व्यक्तियों के लिए खोल दिए जाएं, जिससे कोई भी अनपढ़ न रहे। दृढ़ लगन और कर्म की शिक्षा ही जन समूह को उचित शिक्षा दिला सकती है। शिक्षा के द्वारा देश के विकास को चरम पर ले जाएं और सर्व धर्म के द्वारा सच्ची मानवता को अपनाकर ईश्वर की सेवा करें। तो आइए हम एक होकर राष्ट्रीय नव चेतना जगाएं, नए समाज एवं नवयुग का निर्माण करें।

संदर्भ सूची–

1. विवेकानंद साहित्य, खंड 5, पृष्ठ 138–139
2. विवेकानंद साहित्य, खण्ड 2, पृष्ठ 321
3. सक्सैना, एन. आर. स्वरूप (2009): 'शिक्षा दर्शन, एवं पाश्चात्य तथा भारतीय शिक्षाशास्त्री', आर. लाल बुक डिपो, मेरठ, पृष्ठ 344
4. सक्सेना, एन. आर. स्वरूप (2009): 'शिक्षा दर्शन, एवं पाश्चात्य तथा भारतीय शिक्षाशास्त्री', आर. लाल बुक डिपो, मेरठ, पृष्ठ 344
5. कुमार, भवेश (2010): 'स्वामी विवेकानंद के शैक्षिक चितंन की प्रासंगिकता', भारतीय आधुनिक शिक्षा, जनवरी 2010, वर्ष 30, अंक 3, पृष्ठ 46
6. जैन, पुखराज (2002): 'भारतीय राजनीतिक विचारक', साहित्य पब्लिकेशन, आगरा पृष्ठ 153
7. कुमार, भवेश (2010): 'स्वामी विवेकानंद के शैक्षिक चितंन की प्रासंगिकता', भारतीय आधुनिक शिक्षा, जनवरी 2010, वर्ष 30, अंक 3, पृष्ठ 48
8. शर्मा, आर.ए. (2011): 'शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक मूल आधार', आर. लाल. बुक डिपो, मेरठ, पृष्ठ 524
9. जैन, पुखराज (2002): 'भारतीय राजनीतिक विचारक', साहित्य पब्लिकेशन, आगरा, पृष्ठ 148
10. सिंह, जगबीर (नवम्बर–जनवरी 2009): 'शोध समीक्षा और मूल्यांकन', सम्पादक कृष्ण वीर, जयपुर राजस्थान
11. स्वामी विवेकानंद 'विश्वधर्म वेदांत', वेदांत केन्द्र प्रकाशन, जोधपुर
12. सक्सेना, एन. आर. स्वरूप (2009): 'शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धांत', आर.लाल बुक डिपो, मेरठ, पृष्ठ 373
13. पाठक एवं त्यागी (2011): 'शिक्षा के सामान्य सिद्धांत', अग्रवाल पब्लिकेशन्स, पृष्ठ 364, 365

ISSN 2278 - 0327

21 वीं सदी में महर्षि पतंजलि के क्रियायोग की महत्ता

नेहा बिष्ट
पी.एच.डी. शोधार्थी, योग विभाग
निर्वाण यूनिवर्सिटी जयपुर

डॉ. भावना श्रीवास्तव
प्रोफेसर
निर्वान युनिवर्सिटी जयपुर

सारांश

योग ब्रह्मा द्वारा निर्दिष्ट ऋषियों तपस्वियों तथा योगियों द्वारा बनी एक श्रेष्ठ विद्या है। योग की उत्पत्ति हजारों साल पहले हुई थी सृष्टि के प्रारंभ से ही योग विद्या मानव को लाभ देती रही हैं। योग हमारे शरीर, मन, भावना एवं ऊर्जा के स्तर में काम करता है। योग के द्वारा हमारे आचार्यों ने हमें आध्यात्मिक ज्ञान के साथ मनुष्य के शरीर एवं मन से संबंधित ज्ञान दिया है महर्षि पतंजलि द्वारा रचित योग के महान ग्रंथ पातंजल योगसूत्र ऋषि पतंजलि ने सूत्रों को माला में मोतियों की तरह पिरोया है, उसमें हर सूत्र का अपना एक अलग महत्व है महर्षि पतंजलि ने क्रिया योग की विद्या भी दी है क्रिया योग का मानव जीवन में अत्यंत महत्व है योग को अपने जीवन में उतारने से मानव को न केवल शारीरिक दृढ़ता मिलती है बल्कि मानसिक स्थिरता भी प्राप्त होती है ऋषि पतंजलि ने तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान तीनों को क्रिया योग कहा है।

इस अध्ययन का उद्देश्य वर्तमान समय में मानव जीवन में क्रिया योग की महत्ता को बताना है क्रिया योग से मानव को शारीरिक और मानसिक लाभ की प्राप्ति होती है।

कूट शब्द–

शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य, क्रियायोग।

प्रस्तावना–

योग कोई धर्म नहीं है। यह जीने की एक कला है जिसका लक्ष्य स्वस्थ शरीर में, स्वस्थ मन। योग का क्षेत्र बहुत विस्तृत एवं व्यापक है। विज्ञान के नवीनता एवं विशिष्टता आज उतनी ही प्रभावशाली है जितनी प्राचीन समय में थी। महर्षि पतंजलि द्वारा वर्णित योगसूत्र में उन्होंने अनेक विषयों का वर्णन किया है जिसमें उन्होंने क्रिया योग का वर्णन भी किया है। क्रिया, योग में मूल रूप से तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्राणिधान का विवरण दिया है। आज 21वीं शताब्दी में हमने जितनी तरक्की कर ली है वहीं अनेक रोगों का भी विकास हुआ है आधुनिकता की दौड़ में मानव ने अपने ही जीवन में शांति खो दी है सुकून के दो पल भी आज मानव को प्राप्त नहीं है आज अगर हम देखें तो प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी बीमारी से ग्रसित है। वहीं हम देखें तो आज लोगों में योग के क्षेत्र में रुचि बढ़ी है प्रत्येक देश आज योग की ओर बढ़ रहा है इसी कारण ही सम्पूर्ण विश्व 21 जून को योग दिवस मना रहा है। महर्षि पतंजलि ने योग को आठ अंगों में विभाजित किया है और पूरे योग दर्शन को सूत्रों में पिरोया है क्रिया योग का वर्णन भी महर्षि पतंजलि ने किया है और क्रिया योग का महत्व भी दिया है क्रिया योग एक ऐसी विद्या है जिसमें मनुष्य को न केवल शारीरिक बल्कि मानसिक रोग, जो की वर्तमान समय में सबसे बड़ी समस्या है उससे भी छुटकारा मिलता है।

क्रिया योग को अपने दैनिक जीवन में अपनाने से मनुष्य को अनेक लाभ की प्राप्ति होती है और मानव को संतोष भी प्राप्त होता है जो कि आज मानव में देखने को नहीं मिलता उसे कितने भी संसाधन प्राप्त हो जाये परन्तु संतोष नहीं होता क्रिया योग से अन्य भी अनेक लाभ होते हैं

क्रिया योग–

महर्षि पतंजलि साधन पाद के पहले सूत्र में कहते हैं–

तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः ॥2.1॥[1]

अर्थात् तप, स्वाध्याय और ईश्वर शरणागति ये तीनों क्रिया योग है।

क्रिया योग अर्थात् कर्म का योग कर्म ही इस प्रकृति का ताना बाना है। पूरा ब्रह्माण्ड एक परमाणु से लेकर, सूरज चाँद सब सक्रियता से ओतप्रोत है पूरा अस्तित्व ही क्रियाशील है, ऐसा कुछ है ही नहीं जो स्थिर हो अचल हो सब कुछ ही व्यस्त और चलायमान हैं असीम ब्रह्मांड भी अनंत क्रियाओं से भरा है कहीं भी कुछ शांत है ही नहीं और तो नींद में भी हम क्रियाशील होते हैं हमें ऐसा लगता है निद्रा में सब कुछ ठहर जाता है परन्तु निद्रा में

भी क्रियाएं चलती रहती हैं।[2] क्रिया योग को करने वाले इसे एक प्राचीन योग पद्धति के रूप में जानते हैं कालांतर में इसे महावतार बाबा जी के शिष्य लाहिड़ी महाशय के जरिए अठ्ठारहवीं शताब्दी के आसपास एक बार फिर से अस्तित्व में लाया गया।[3]

परम हंस योगानंद के अनुसार क्रिया योग एक सरल मन-कायिक प्रणाली है जिसके द्वारा मानव रक्त कार्बन से रहित तथा ऑक्सीजन से प्रपूरित हो जाता है उसके अतिरिक्त ऑक्सीजन के अणु जीवन प्रवाह में रूपांतरित होकर मस्तिष्क और मेरुदंड के चक्रों को नव शक्ति से पुन: पूरित कर देते हैं प्राण शक्ति के द्वारा मन को नियंत्रित करने वाला क्रिया योग अनंत तक पहुँचने के लिए सबसे सरल प्रभावकारी और अत्यंत वैज्ञानिक मार्ग है।

क्रिया योग का उद्देश्य -

ऋषि पतंजलि ने साधन पाद के दूसरे सूत्र में क्रिया योग का उद्देश्य बताया है-

समाधिभावनार्थ: क्लेशतनूकरणार्थश्च।। 2 ।।[4]

अर्थात् यह क्रिया योग साधक को समाधि की सिद्धी प्रदान करने वाला तथा पंच क्लेशों को क्षीण करने वाला है क्रिया योग अविद्यादि दोषों को क्षीण करने वाला और समाधि की सिद्धि करने वाला है अर्थात् इसके साधन से साधक के अविद्यादि क्लेशों का क्षय होकर उसको कैवल्य अवस्था तक समाधी की प्राप्ति हो सकती है।

ऋषि पतंजलि जी का मानना है कि मनुष्य के, पूर्व जन्म के संस्कार आने वाले समस्त जन्म में अपना प्रभाव दिखाते हैं। इसका परिणाम मनुष्य को हर जन्म में भोगना पड़ता है इन परेशानियों को पूरी तरह से दूर किए बिना क्रिया योग की साधना नहीं की जा सकती है यदि साधक यह करने में कामयाब होते हैं तो मोक्ष प्राप्ति के मार्ग पर साधक बढ़ सकता है किया योग को साधना से समाधी की योग्यता आ जाती है।

क्रिया योग के प्रकार-

क्रिया योग के प्रकार क्रियायोग के तीन प्रकार महर्षि पतंजलि ने बताए हैं तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान।

तप - अपने वर्ण आश्रम परिस्थिति और योग्यता के अनुसार स्वधर्म का पालन करना और उनके पालन में जो शारीरिक या मानसिक अधिक से अधिक कष्ट प्राप्त हो उसे सहर्ष सहन करना इसका नाम तप है व्रत, उपवास आदि भी इसी में आ जाते हैं निष्काम भाव से तप का पालन करने से मनुष्य का अंत: करण अनायास ही शुद्ध हो जाता है यह गीतोक्त कर्म योग का ही अंग है तप का तात्पर्य बेहतर अवस्था की प्राप्ति के लिए परिवर्तन या रूपांतरण की एक प्रक्रिया के अनुगमन से है सामान्य अर्थ में तप पदार्थ के शुद्ध सारतत्व को प्राप्त करने की एक प्रक्रिया है उदाहरण हेतु जिस प्रकार सोने को बार बार गर्म कर छोटी हथौड़ी से पीटा जाता है जिसके परिणामस्वरूप शुद्ध सोना प्राप्त हो सके उसी प्रकार योग में तप एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति की अशुद्धियों को जलाकर भस्म किया जाता है ताकि उसका असली सार तत्व प्रकट हो सके।[5]

स्वाध्याय- जिनसे अपने कर्तव्य अकर्तव्य का बोध हो सके ऐसे वेद शास्त्र महापुरुषों के लेख आदि का पठन-पाठन और भगवान् के ओम का जप आदि किसी नाम का या गायत्री का और किसी भी इष्ट देवता के मंत्र का जप करना स्वाध्याय है इसके सिवा अपने जीवन के अध्ययन का नाम भी स्वाध्याय है अत: साधक को प्राप्त विवेक के द्वारा अपने दोषों को खोजकर निकालते रहना चाहिए।[6]

ईश्वर प्रणिधान- ईश्वर के शरणा संपन्न हो जाने का नाम ईश्वर प्रणिधान है उसके नाम रूप लीला, धाम, गुण और प्रभाव आदि का श्रवण कीर्तन और मनन करना, समस्त कर्मों को भगवान् के समर्पण कर देना अपने को भगवान् के हाथ का यंत्र बनाकर जिस प्रकार वह नचावे वैसे ही नाचना उसी की आज्ञा का पालन करना उसी में अनन्य प्रेम करना ये सभी ईश्वर प्राणिधान के अंग है।[7]

21वी सदी में क्रिया योग की उपयोगिता-

महर्षि पतंजलि जी ने योग दर्शन में मानव जीवन के लिए श्रेष्ठ ज्ञान दिया है जो शरीर इन्द्रियाँ तथा मन को पूर्ण अनुशासित करके चित्त की वृत्तियों का निरोध करता है 21वी शताब्दी में आज मानव आधुनिकता की होड़ में मैं विकास के नाम पर अपने लिए एक तनावपूर्ण जीवन बना चुका है जिसमें अनेक रोगों की वृद्धि भी हुई है आज मानव का जीवन इतना व्यस्तता पूर्ण हो चुका है कि मानव को खुद के शरीर के रख रखाव के लिए भी समय नहीं है ऐसे में क्रिया योग मानव को अनेक लाभ पहुँचा सकता है क्रिया योग के कई लाभ है जो निम्नलिखित है-

- क्रिया योग से मानसिक राहत मिलती है, अवसाद से छुटकारा मिलता है। तनाव वर्तमान समय की प्रमुख समस्याओं में से एक है, छोटे बच्चे से लेकर वृद्ध तक हर कोई तनाव से ग्रसित है क्रिया योग इसे पूर्ण रूप से समाप्त कर सकता है।[8] स्वाध्याय, का मानसिक स्वास्थ्य पर सीधा और सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।[9]
- क्रिया योग से मानव अपने विभिन्न प्रकार के मनोरोगों से छुटकारा पा सकता। है आज वर्तमान समय में मानव का

जीवन ऐसा है कि उसे शारीरिक रोगों के साथ–साथ मानसिक रोगों में भी अत्यंत वृद्धि हुई है और क्रिया योग का मनोरोगों पर सीधा प्रभाव पड़ता है।[10]

- क्रिया युग अभ्यास से साधक की रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि होती है इससे शरीर कई तरह के रोगों से लड़ने में सक्षम बनता है रोग प्रतिरोधक क्षमता की महत्ता सम्पूर्ण विश्व जान गया है जब पूरा विश्व कोविड–19 जैसी महामारी से लड़ रहा है तब मजबूत रोग प्रतिरोधक क्षमता ही इससे बचाव का एकमात्र उपाय था।
- क्रिया योग से मानव अपने जीवन के मूल सत्य को जानता है सांसारिक जीवन की मोह माया नहीं रहती मनुष्य को सत्यता की प्राप्ति होती है।
- क्रिया योग के अभ्यास से साधक अपने आत्मा को साध लेता है इसके साथ ही वह अपने ज्ञानेन्द्रियों को साधने में कामयाब होगा।
- क्रिया योग से साधक अपने परमात्मा में ध्यान लगाने में समर्थवान् बनता है उसे सिद्धि मिलती है।
- साधक शारीरिक बंधन, से मुक्त होकर आत्मा व परमात्मा में भेद कर पाता है।
- व्यक्तित्व का समग्र विकास होता। है साधक ज्ञानी बनता है उसे अपने जीवन का ज्ञान प्राप्त होता है अपने जीवन का उद्देश्य प्राप्त होता है।[11]
- स्वाध्याय का संवेगात्मक बुद्धिमत्ता पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। दीपक सिंह गुंजन शर्मा व अन्य द्वारा किए गए एक शोध में परिणाम देखा गया कि स्वाध्याय का बुद्धिमत्ता पर सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा उन्होंने किशोरियों (16–18 वर्ष) पर अपना शोध कार्य किया और स्वाध्याय का सकारात्मक प्रभाव देखा।[12]

निष्कर्ष–

आज पूरा विश्व योग से लाभ प्राप्त कर रहा है जिसे प्राचीन काल से वर्तमान समय तक महान आचार्यों द्वारा परिरक्षित किया गया है योग का महत्व दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है तो निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि क्रिया योग योग की एक ऐसी विद्या है जिसको अपने जीवन में अपनाने से मानव को अनेक लाभ हो की प्राप्ति होती है वो मानव एक सफल सुखद और स्वस्थ जीवन व्यतीत कर पाता है क्रिया योग महर्षि पतंजलि द्वारा वर्णित एक बहुमूल्य ज्ञान है।

संदर्भ ग्रंथ सूची –

1. योगदर्शन, महर्षि पतंजलि कृत अध्याय 2 श्लोक 1
2. https://www.artofliving.org/in-hi/yoga/patanjali-yogasutra/knowledge-sheet-31
3. https://hindi.astroyogi.com/yoga/kriya-yoga
4. योगदर्शन, महर्षि पतंजलि कृत अध्याय 2 श्लोक 2
5. योगदर्शन, महर्षि पतंजलि कृत अध्याय 2 पेज नंबर 43
6. योगदर्शन, महर्षि पतंजलि कृत अध्याय 2 पेज नंबर 43
7. योगदर्शन, महर्षि पतंजलि कृत अध्याय 2 पेज नंबर 44
8. https://hindi.astroyogi.com/yoga/kriya-yoga
9. https://doi.org/10.36018/dsiij.v10i0.96
10. http://thejournalshouse.com/index.php/Anusandhan-Hindi-IntlJournal/article/view/160
11. https://hindi.astroyogi.com/yoga/kriya-yoga
12. https://doi.org/10.36018/dsiij.v13i.114

ISSN 2278 - 0327

वेदों मे पर्यावरण शोधन हेतु यज्ञ का महत्व : एक विवेचनात्मक अध्ययन

उमा साह चौधरी
शोधार्थी योग विभाग
निर्वाण यूनिवर्सिटी, जयपुर राजस्थान

डॉ. मलिक राजेंद्र प्रताप
प्रवक्ता, योग विभाग
एम.बी.पी.जी. कॉलेज, हल्द्वानी (नैनीताल)

पर्यावरण का सीधा सरल अर्थ है- प्रकृति का आवरण।[1] '*परितः आवरणं पर्यावरणम्*' अर्थात् - वह आवरण जो प्राणी जगत को चारों ओर से ढकने वाला प्रकृति तत्व हैं, जो हम प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में दैनिक जीवन में उपयोग करते हैं। जो हमारी भौतिक जैविक और आर्थिक एवं सामाजिक जीवन यापन करने सहायक होती है। पर्यावरण प्रदूषित होने से इन सभी क्रियाकलापों में प्रभाव पड़ता है। वेदों से पर्यावरण से सम्बन्धित अनेक रचाएँ ऋग्वेद तथा अथर्ववेद से प्राप्त होती है। हमारे पर्यावरण से सम्बन्धित सूक्त की व्याख्या उपलब्ध है। अथर्ववेद में सभी पंचमहाभूतों की प्राकृतिक विशेषताओं और उनकी क्रियाशीलता का वर्णन है। वेदों में इन पंचमहाभूतों को दैवीय शक्ति कहा गया है। प्रकृति के पंचमहाभूत- पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश।

भौतिक एवं जैविक पर्यावरण का निर्माण मानवकृत संस्कृति का निर्माण मानव मन, बुद्धि एवं अहं से होती है। इसीलिए श्रीमद् भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण ने प्रकृति के आठ तत्त्वों वर्णन किया है-

भूमिरापोनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।।[2]

प्रदूषण की समस्या आज के युग की एक जटिल समस्या है और यह समस्या देश की नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व की एक महत्वपूर्ण समस्या है। सम्पूर्ण विश्व से पेड़ों की अधाधुंध कटाई के कारण प्रदूषण की समस्या दिन व दिन बढ़ती चली जा रही है और वनों की कटाई से वन्य प्राणी जीव जन्तु विलुप्ती की कगार पर है और बहुत से वन्य जीव विलुप्त हो चुके है। प्रत्येक जीव का खाद्य श्रृंखला में अपना एक स्थान है, इन जीव के क्षरण से प्रकृति का संतुलन बिगड़ रहा है और यही स्थिति रही तो यह पृथ्वी वन एवं वन्यजीवों से विहीन हो जायेगी और मनुष्य का जीवन संकट में जायेगा ।

अथर्ववेद में भूमि सूक्त का एक मंत्र इसी ओर इंगित करता है जिसमें वृक्ष की ओर से चेतावनी दी गई है कि हे मानव तू मुझे मत काट अन्यथा मैं तुझे काट दूंगा।[3] हमारे देश की संस्कृति ही हम भारतीयों की पहचान है और हमारी संस्कृति प्रकृति को संरक्षण देनी वाली रही है, क्योंकि हमारे पूर्वजों ने प्रकृति के प्रति अपने कर्तव्य का निर्वाहन करते हुये ही जीवन के विभिन्न क्रियाकलापों व नियमों को बनाया है। प्रकृति के प्रति अपने प्रेम व उनके संरक्षण के लिए विशेष अनुष्ठानों का पालन हमारे पूर्वजों द्वारा किया गया है। पर्यावरण की शुद्धता के लिए वेदों में यज्ञ के नियमों का पालन करने के लिए बताया गया है। यज्ञ के द्वारा वायु को शुद्ध करने की विधि का वर्णन किया गया है। पर्यावरण में स्थित सूक्ष्म कीटाणु जीवाणुओं को नष्ट करके विभिन्न रोगों से बचाव की विधियों का वर्णन किया गया है। वेदों में पर्यावरण के शोधन हेतु यज्ञ के सर्वाधिक महत्व को प्रतिपादित किया गया है। यज्ञ शब्द का अर्थ देवपूजा, दान एवं संगतिकरण (संगठन) होता है।

यज्ञ का तात्पर्य होता है त्याग, बलिदान और शुभ कर्म। अपने प्रिय खाद्य पदार्थों एवं मूल्यवान् सुगंधित पौष्टिक द्रव्य को अग्नि एवं वायु के माध्यम से समस्त संसार के कल्याण के लिए यज्ञ द्वारा वितरित किया जाता है। यज्ञ के द्वारा वायु स्वच्छ होने से सबको स्वच्छ वायु में सांस लेने का अवसर मिलता है। हवन हुए सुगंधित पौष्टिक पदार्थ वायु से मिलकर प्राणी मात्र को प्राप्त होते हैं और उनके स्वस्थ वर्धक रोगों को निवारण में सहायक होते हैं। यज्ञ काल में उच्चारित वेद मंत्रों की ध्वनि आकाश में व्याप्त होकर प्राणियों के अंत:करण को शुद्ध एवं सात्विकता प्रदान करती है। वेदों में वायु को शुद्ध करने एवं अनेक प्रकार के रोगों को दूर करने के उपाय के रूप में यज्ञ और हवन को बताया गया है। इसी प्रकार वेद की ऋचाओं में जीवेम शरद: शतम् (100 वर्ष स्वस्थ

जीवन जीने के लिए) कहा है। यहां 100 वर्ष जीवन जीने का रहस्य है अच्छा स्वस्थ जो शुद्ध पर्यावरण से मिलता है तथा शुद्ध पर्यावरण है विधिपूर्वक किए गए यज्ञ के प्रभाव से स्वस्थ आयु की प्राप्ति होती है।

ऋग्वेद का प्रारंभ अग्नि की उपासना से होता है। यज्ञ में अर्पित आहुतियां अग्नि के माध्यम से ही संपूर्ण वातावरण में फैल कर पर्यावरण को शुद्ध कर देती है। वेदों में यज्ञ में दी जाने वाली आहुतियां के माध्यम से अनेक प्रकार के रोगों से मुक्ति के उपाय बताए गए हैं। वह किन-किन सामग्रियों के उपयोग करें? किन रोगों में लाभ होता है और रोगों से मुक्ति मिलती है, उल्लेख किया गया है। देशी गाय के शुद्ध घी से यज्ञ में आहुति देने का विधान ऋषि-मुनियों द्वारा बताया गया है कि शुद्ध घी से आहुति देने से वायु में व्याप्त कीटाणुओं का नाश होता है और अग्नि द्वारा कर्मियों के नष्ट होने की अनेक प्रमाण वेदों में दी गई है।[4]

'ऐतरेय ब्राह्मण' में व्याख्या की गई है कि यज्ञ करने से जो धुआं उत्पन्न होता है, वहां धुआं वायु के साथ एकत्र होकर आकाश से अंतरिक्ष में जाती है और अंतरिक्ष में जाकर वही वायु मेघ का निर्माण करती है और वही मेघ से वृष्टि होती है और वृष्टि से ही अन्न आदि का निर्माण होता है।

अग्निवं धूमो जायते भ्रम भ्रादवृष्टि:।
विशुद्धीदं वृष्टिमत्राधं सप्रयच्छति॥[5]

यज्ञ करते समय गाय के शुद्ध घी को अग्नि में वैदिक मंत्रों के द्वारा आहुति दी जाती है तो वहां अत्यंत सूक्ष्म वाष्प बनकर समस्त वायुमंडल में फेल कर हवा में उपस्थित विष को, हानिकारक पदार्थों को, सूक्ष्म जीवाणुओं को, कीटाणुओं को, रोगों को उत्पन्न करने वाले तत्व को नष्ट करती हैं। यज्ञ में गाय के घी को सर्वोत्तम में सर्वोपरि माना गया है। गाय के घी में चार प्रकार के रासायनिक धुआं उत्पन्न होता है जो वायु शोधन में कार्य करता है और पर्यावरण को शुद्ध करता है। गाय का घी दुर्गंध को नष्ट करता है। आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती जी ने सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास में कहा है कि संध्या और अग्निहोत्र सायं-प्रात: दो ही काल में करें। दो ही रात-दिन की संधि बेला है, अन्य नहीं। न्यून से न्यून एक घंटा ध्यान अवश्य करें जैसे समाधिस्थ हो कर योगी लोग परमात्मा का ध्यान करते हैं वैसे ही संध्योपासन भी किया करें। यथा सूर्योदय के पश्चात् और सूर्यास्त के पूर्व अग्निहोत्र करने का भी समय है। यज्ञ में वायु, जल, औषधि आदि शुद्ध होते हैं तो संपूर्ण जगत के प्राणी सुखी होते हैं और इनके अशुद्ध होने पर सबको दु:ख होता है।[6] 'भारत में पर्यावरण संरक्षण संघ' नासिक के प्रोफेसर एस मुल्हे ने अग्निहोत्र के प्रदर्शन के समय बताया है कि पृथ्वी और सूर्य के बीच में जो वायुमंडल उपस्थित हैं, वहां वातावरण के कारण इसका तालमेल बिगड़ गया है और यह प्रदूषण में बहुत प्रभाव डाल रहा है। इसके लिए प्रोफेसर मूल्य जी ने बताया है कि इसको अग्निहोत्र द्वारा ही अनुकूल बनाया जा सकता है। इसे पर्यावरण प्रदूषण को रोका जा सकता है। भारतीय वायुमंडल का वैज्ञानिक अध्ययन किया गया और पाया गया है कि अन्य देशों की वायुमंडल की तुलना में भारतीय वायुमंडल उन देशों की तुलना में अभी भी शुद्ध है और इसका मुख्य कारण यज्ञ को माना गया है। बहुत से देश में धुंआ करना अपराध की श्रेणी में आता है। परंतु इस समय यज्ञ को पर्यावरण प्रदूषण को रोकने में समर्थ को देखते हुए यज्ञ का पालन विभिन्न देशों में किया जा रहा है। अमेरिका का वर्जीनिया शहर सर्वाधिक पर्यावरण प्रदूषण से प्रभावित था। 22 सितंबर 1963 से वहां एक वैदिक हवन कुंड का निर्माण किया गया है और नियमित रूप से यज्ञ के नियमों का पालन किया जा रहा है और वर्तमान में वहां 50 प्रतशित में पर्यावरण प्रदूषण में कमी बताई जा रही है। उसी प्रकार अमेरिका में चारों कोनों में यज्ञ के लिए हवन कुंड बनाए गए हैं और सूर्योदय और सूर्यास्त के समय अग्निहोत्र किया जाता है। अग्निहोत्र का अर्थ है कि ऐसा होम आहुति जिसे प्रतिदिन किया जा सकता है तथा उसकी अग्नि को बुझने नहीं दिया जाता है।

महाभारत अश्वमेधकपर्व के अंतर्गत अध्याय 92 में अग्निहोत्र की महत्वता का वर्णन किया गया है। यज्ञ में मनुष्य द्वारा आहुतियां के माध्यम से भगवान् की आराधना की जाती है। इसके बारे में वेदों में भी बताया गया है।[7]

'यज्ञनियं वर्धयता' 'अयज्ञयो हतवर्चा भवति'।

पर्यावरण शुद्धि के लिए वेदों में यज्ञ का वर्णन है। वेद इस बात का समर्थन करते हैं। यज्ञ की विज्ञप्ति में कहा गया है कि सद् अनुष्ठान वही है जिससे विश्व का कल्याण हो उसी का नाम यज्ञ है-

येन सदानुष्ठानेन सम्पूर्ण विश्वं कल्याण भजेत् तद् यज्ञपदाभिधेयम्॥

विश्व में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो यज्ञ के द्वारा प्राप्त ना की जा सके। इसके साथ ही पर्यावरण शोधन संभव है' *यो यदिच्छति तस्य तत्*' वेदों में यज्ञ को संपूर्ण कार्य सिद्धि का कारक माना गया है और सभी शुभ कार्यों में यज्ञ करने का विधान है। हमारी भारतीय संस्कृति में यज्ञ को एक विशेष दर्जा दिया गया है। किसी भी कार्य को प्रारंभ करने से पहले यज्ञ किया जाता है। हमारे

धार्मिक अनुष्ठान जैसे पूजा-पाठ पर्व का त्यौहार में यज्ञ किया जाता है। वैदिक कर्मकांड में भी यज्ञ का विशेष पालन किया जाता है। यज्ञ कर्मकांड की विधि है जो परमात्मा द्वारा ही हृदय में संपन्न होती है जिनके अपने परिचय जो परमात्मा का अभिन्न ज्ञान और अनुभव है। ज्ञान की पूर्णता है, यज्ञ की पूर्णता है। यहां शुद्ध होने की क्रिया है। इसका संबंध अग्नि से प्रतीक के रूप में किया जाता है। इस पर्यावरण के जनक उन पंचमहाभूतों से ही प्राणी मात्र की पांच ज्ञानेंद्रियां प्रभावित और चेतन होती है। इन पंचमहाभूत के ही गुण ही हमारी ज्ञानेंद्रियों के माध्यम से प्राण मन बुद्धि, कौशल अर्थात् भौतिक जैविक एवं शारीरिक पर्यावरण का निर्माण करते हैं। इसी पर्यावरण से ही हमें जीवन जीने के लिए समस्त प्रकार के पदार्थ प्राप्त होते हैं। अत: आवश्यक है कि हम पृथ्वी वासी पर्यावरण को प्रदूषित ना करें। अन्यथा हमें उनसे दूषित अवगुण ही प्राप्त होंगे। यहां वैदिक ऋषि द्वारा प्रस्तुत एक ऐसा सत्य है जिसकी वर्तमान में अवहेलना कर हम पर्यावरण संतुलन को समाप्त करते जा रहे हैं, जिसने न केवल पर्यावरण को प्रदूषित करने के लिए मानव जीवन सृष्टि पर पड़ने वाले हानिकारक विनाश की ओर संकेत दिया। अपितु पर्यावरण की रक्षा एवं हम जो कुछ प्रकृति देवों से प्राप्त कर रहे हैं उसे उन्हें पर पर्यावरण संरक्षण ही हमारा कर्तव्य है। यहां संपूर्ण प्रकृति आवरण ही है जो विलक्षण दैवी शक्तियों से व्याप्त है जिसे सृष्टि के समस्त एवं स्थानीय वनस्पति को चेतना, ऊर्जा एवं पुष्टि प्राप्त होती है।

द्योश्च म इदं पृथिवीं चान्तरिक्षं चमेव्यच:।
अग्नि: सूर्य आपो मेघां विश्वेदेवाश्च सं ददु:।।

(अथर्ववेद 12/1/53)

अर्थात् द्युलोक, पृथ्वी, अंतरिक्ष, अग्नि, सूर्य, जल एवं विश्व के समस्त देवों (ईश्वरीय प्रकृति शक्तियों) ने सृष्टि को व्याप्त किया है।[8]

सारांशिका - पर्यावरण का शाब्दिक अर्थ होता है- प्रकृति का आवरण। वेद में यज्ञ के माध्यम से पर्यावरण के विभिन्न पहलुओं के शोधन की विधियों का उल्लेख है जिससे संसार के प्रत्येक प्राणी के लिए सुखदायक जीवन प्राप्त हो सके। यज्ञ में खाद्य पदार्थों एवं मूल्यवान् सुगंधित पौष्टिक द्रव्य को अग्नि एवं वायु के माध्यम से समस्त संसार के कल्याण के लिए वितरित किया जाता है। यज्ञ के द्वारा वायु स्वच्छ होने से संसार के सभी प्राणियों को स्वच्छ वायु में सांस लेने का अवसर मिलता है। यज्ञ में प्रयोग किये हुए सुगंधित पौष्टिक पदार्थ वायु से मिलकर प्राणी मात्र को प्राप्त होते हैं और प्राणियों के शारीरिक-मानसिक रोगों का निवारण करने के साथ ही उत्तम स्वास्थ्य प्रदान करने में सहायता करते हैं, इसीलिए भारतीय संस्कृति में यज्ञ को विशेष महत्व दिया जाता है और यज्ञ के द्वारा पर्यावरण शोधन के साथ सौ वर्षों की स्वस्थ आयु प्राप्त करने का उपदेश किया गया है।

सन्दर्भ सूची-

1. वेदों में पर्यावरण शोधनी यज्ञ के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण, पृष्ठ संख्या, 24-26 डॉ राजेश कुमार बैरवा।
2. श्रीमद्भगवद्गीता अ-7/4
3. अथर्ववेद 12.1.27
4. ऋग्वेद1.1
5. ऐतरेय ब्राह्मण 2.41
6. सत्यार्थ प्रकाश, स्वामी दयानन्द सरस्वती, पृष्ठ संख्या 43
7. महाभारत अश्वमेध पर्व श्लोक संख्या 90-92
8. अथर्ववेद 12.1.53

ISSN 2278 - 0327

मानव जीवन में पुरुषार्थ और आध्यात्मिक विकास का सम्बन्ध

शक्ति सिंह
शोधार्थी, योग विभाग
हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय
पौड़ी गढ़वाल

डॉ. विकास आर्य
असिस्टेंट प्रोफेसर, योग विभाग हिमालयन
गढ़वाल विश्वविद्यालय
पौड़ी गढ़वाल

डॉ. अरुण कुमार सिंह
प्रोफेसर, योग विभाग
हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय
पौड़ी गढ़वाल

सारांशिका–

शास्त्रों में ऋषियों एवं विद्वानों द्वारा अपने–अपने दृष्टिकोण से मानव जीवन के चार पुरुषार्थों को वर्णित किया गया है। पुरुष के द्वारा किये गये अर्थपूर्ण कार्यों को पुरुषार्थ कहा जाता है। मनुष्य अपने जीवन में प्रात:काल से रात्रिकाल तक अनेक अर्थपूर्ण कार्य अथवा क्रियाएं करता रहता है जिनका उद्देश्य मनुष्य के अभीष्ट अर्थ को प्राप्त करना होता है, यह सभी कार्य या क्रियाएं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामक चार मूल उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए किये जाते हैं अत: इन्हें पुरुषार्थ चतुष्टय कहा जाता है। मानव जीवन के इन चार पुरुषार्थों का प्रारम्भ धर्म के साथ होता है। धर्म के द्वारा मनुष्य श्रेष्ठ गुणों को अपने व्यक्तित्व, आचरण एवं व्यवहार में धारण करता है। श्रेष्ठ गुणों से सुसंस्कारित होकर मनुष्य धर्मपूर्वक अर्थ का अर्जन करता है जो मानव जीवन का दूसरा पुरुषार्थ होता है। इस दूसरे पुरुषार्थ के मूल में भी धर्म का संस्कार विद्यमान रहता है। इसके उपरान्त अर्जित अर्थ के द्वारा मनुष्य तीसरे पुरुषार्थ अर्थात् काम को करने में अग्रसर होता है। मानव जीवन के तीसरे पुरुषार्थ के रूप में जब अंहकार मुक्त भावों से युक्त मनुष्य निवृत्ति मार्ग का अनुसरण करता हुआ अर्जित अर्थ को निष्काम भाव से उत्तम कार्यों में लगाता है और अपने जीवन के शुभ संकल्पों को मूर्त रूप प्रदान करता है, यह मानव जीवन का तीसरा पुरुषार्थ काम कहलाता है। मानव जीवन के प्रथम तीनों पुरुषार्थों का मूल उद्देश्य चतुर्थ पुरुषार्थ अर्थात् मोक्ष तक पहुंचना होता है। अथवा दूसरे शब्दों में मनुष्य प्रथम तीनों पुरुषार्थों को विधिपूर्वक करते हुए चतुर्थ पुरुषार्थ अर्थात् मोक्ष के द्वार पर पहुंच जाता है और आत्म तत्व के शुद्ध स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करते हुए स्वयं को परम् तत्व (ईश्वर) के साथ संयुक्त करते हुए मानव जीवन को सफल बनाने की दिशा में अग्रसर होता है। मनुष्य का जीवन जन्म के साथ ही पुरुषार्थ (कर्म) के साथ जुड़ जाता है और जीवन के प्रत्येक क्षण में मनुष्य पुरुषार्थ के साथ जुड़ा रहता है। मनुष्य के शारीरिक विकास से लेकर आध्यात्मिक विकास तक की यात्रा का आधार पुरुषार्थ होता है क्योंकि पुरुषार्थ के माध्यम से मनुष्य भौतिक संसार से लेकर स्वयं तक का आत्मज्ञान प्राप्त करने में सक्षम बनता है और पुरुषार्थ के अभाव में मानव जीवन अर्थहीन एवं उद्देश्यहीन हो जाता है। साररूप में विवेचन से स्पष्ट होता है कि पुरुषार्थ ही मनुष्य के आध्यात्मिक विकास का आधार होता है और पुरुषार्थ साधना से मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त होता है।

प्रस्तावना– मनुष्य अपने जीवन में प्रतिक्षण कुछ ना कुछ कार्य करता रहता है और किसी भी क्षण कार्य से मुक्त नहीं रहता है। वह कभी शारीरिक तो कभी मानसिक कार्यों में लगा रहता है। मनुष्य द्वारा प्रतिक्षण किये जाने वाले कार्यों को सम्मिलित रूप से '*पुरुषार्थ*' की संज्ञा दी जाती है। अर्थात् पुरुष के द्वारा किये गये अर्थपूर्ण कार्यों को पुरुषार्थ कहा जाता है। मनुष्य अपने जीवन में प्रात:काल से रात्रिकाल तक अनेक अर्थपूर्ण कार्य अथवा क्रियाएं करता रहता है जिनका उद्देश्य मनुष्य के अभीष्ट अर्थ को प्राप्त करना होता है, यह सभी कार्य अथवा क्रियाएं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामक चार मूल उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए किये जाते हैं अत: इन्हें पुरुषार्थ चतुष्टय कहा जाता है। भारतीय दर्शन साहित्य में पुरुषार्थ चतुष्टय को अत्यन्त विशिष्ट और महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है और सम्पूर्ण मानव जीवन का आधार पुरुषार्थ चतुष्टय ही माना जाता है। वैदिक वाङ्मय के अनुसार बाल्यावस्था से वृद्धावस्था तक मनुष्य का जीवन पुरुषार्थ चतुष्टय पर केन्द्रित रहता है और वह अपने समस्त कार्यों के मूल में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को ही आधार मानता है।

पुरुषार्थ शब्द की उत्पत्ति पुरुष + अर्थ के मिलने से होती है। यहाँ पर पुरुष से अभिप्राय: जीवात्मा युक्त उस शरीर से होता है जो विवेकयुक्त बुद्धि से सम्पन्न होता है और अपने समस्त कार्यों को बुद्धिमत्तापूर्वक करने की योग्यता रखता है। इसी प्रकार अर्थ

का अभिप्राय: उद्देश्य अथवा प्रयोजन से लिया जाता है। अर्थात् एक विवेकशील पुरुष अपने जीवन के मूल लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए जो अभीष्ट कार्य करता है, पुरुषार्थ कहलाता है। इसीलिए संस्कृत भाषा में उपदेश किया गया है- *पुरुषैर्थ्यते इति पुरुषार्थ* ।

अर्थात् पुरुष के लिए जो अर्थपूर्ण है, जो अभीष्ट है, उसे प्राप्त करने के लिए प्रयास करना ही पुरुषार्थ है। बिना पुरुषार्थ मानव जीवन अर्थहीन एवं उद्देश्यहीन है अथवा दूसरे शब्दों में पुरुषार्थ ही मानव जीवन को अर्थवान् एवं उद्देश्यपूर्ण बनाता है जिसके प्रभाव से मनुष्य अपने जीवन को सार्थक बनाने में सक्षम बन पाता है। इस प्रकार पुरुष के द्वारा किये जाने वाले अर्थपूर्ण कार्यों को पुरुषार्थ की संज्ञा दी जाती है। मानव जीवन के निम्न चार पुरुषार्थों का वर्णन शास्त्रों में किया जाता है

(1) **प्रथम पुरुषार्थ धर्म का स्वरूप** :- दर्शन साहित्य में धर्म के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। महर्षि जैमिनी मीमांसा दर्शन के प्रथम सूत्र में उपदेश करते हैं- *अथातो धर्मजिज्ञासा*। अर्थात् धर्म के सम्बन्ध में जिज्ञासा इस दर्शन का हेतु है। वैशेषिक दर्शन के रचनाकार महर्षि कणाद मुनि धर्म के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए उपदेश करते हैं -

यतोऽभ्युदयनि:श्रेयससिद्धि: स धर्म:।।

(वैशेषिक 1/1/2)

जिसके आचरण से मनुष्य की त्रिविध (आत्मिक, मानसिक व शारीरिक) उन्नति और व्यवहारिक उत्तम सुख की प्राप्ति एवं वृद्धि हो तथा मोक्ष सुख की सिद्धि करे, वह आचरण या कर्तव्य धर्म है।[1] धर्म के स्वरूप का विस्तृत वर्णन करते हुए महर्षि मनु उपदेश करते हुए कहते हैं-

धृति: क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रह:।
धीर्विधा सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।

(मनुस्मृति 6/92)

धृति (धैर्य), क्षमा (अपना अपकार करने वाले का भी उपकार करना), दम (हमेशा संयम से धर्म में लगे रहना), अस्तेय (चोरी न करना), शौच (भीतर और बाहर की पवित्रता), इन्द्रिय निग्रह (इन्द्रियों को हमेशा धर्माचरण में लगाना), धी (सत्कर्मों से बुद्धि को बढ़ाना), विद्या (यथार्थ ज्ञान लेना), सत्यम (हमेशा सत्य का आचरण करना) और अक्रोध (क्रोध को छोड़कर हमेशा शान्त रहना) यही धर्म के दस लक्षण हैं।[2]

(2) **द्वितीय पुरुषार्थ अर्थ का स्वरूप** :- धन और सांसारिक ऐश्वर्य की प्राप्ति[3] के लिए किये गये कार्य को अर्थ पुरुषार्थ कहा जाता है। आचार्य चाणक्य उपदेश करते हैं-

सुखस्य मूलं धर्म:, धर्मस्य मूलं अर्थ:
अर्थस्य मूलं राज्य, राजस्य मूलं इन्द्रिय जय:।।

अर्थात् सुख का मूल धर्म है, धर्म का मूल अर्थ है, अर्थ का मूल राज्य है और राज्य का मूल इन्द्रिय जय है। इस प्रकार आचार्य चाणक्य मानव जीवन के सुख के मूल के रूप में धर्म का उपदेश करते है और धर्म का मूल अर्थ कहते है। यहां पर अर्थ का मूल राज्य को और राज्य का मूल इन्द्रिय जय को कहा गया है। अर्थ से अभिप्राय: लौकिक धन-सम्पदा से लिया जाता है। सांसारिक कार्यों को पूर्ण करने के लिए मनुष्य को जिस धन-सम्पदा की आवश्यकता होती है उसे अर्थ की संज्ञा दी जाती है। किन्तु यह अर्थ का एक संकुचित स्वरूप होता है। वास्तव में अर्थ मानव जीवन को सुचारू रूप से चलाने के लिए आवश्यक भौतिक साधन होते हैं जिनका प्रयोग करते हुए मनुष्य अपने जीवन को सुखपूर्वक व्यतीत करने में सक्षम बनता है। इस संसार में दो प्रकार के मनुष्य होते हैं। एक वे जिनकी गति धर्म की ओर होती है दूसरे जिनकी गति अधर्म की ओर होती है। एक ऊर्ध्व गति वाले होते हैं, दूसरे अधोगति वाले। इन्हें ही दैवीय और आसुरी सम्पदा युक्त पुरुष भी कहा जाता है। इसे ही श्रेय मार्ग और प्रेय मार्ग भी कह देते हैं और इन्हें ही प्रवृत्ति मार्ग और निवृत्ति मार्ग से भी सम्बोधित कर देते हैं। मनुष्य के मन की स्वाभाविक गति जल के समान नीचे की ओर बहने की होती है। मन की स्वभावजन्य प्रवृत्ति सांसारिक पदार्थों की ओर होती है। मन को अर्थ सदैव आकर्षित करता है किन्तु इन्द्रिय जय के द्वारा मन को इस आकर्षण से मुक्त करते हुए धर्माचरण करने से मनुष्य ऊर्ध्वगामी बनता है।

इस संसार में कोई धर्म और अर्थ को 'श्रेय' कल्याणकारी समझता है, कोई काम और अर्थ को श्रेय समझता है, तो कोई केवल धर्म को 'श्रेय' कल्याणकारी समझता है, कोई अर्थ को ही श्रेष्ठ समझता है परन्तु अन्त में कहते हैं कि वास्तविकता तो यह है कि धर्म-अर्थ और काम तीनों वर्ग ही इस संसार में श्रेष्ठ है, श्रेयस्कर है। इन तीनों का एक साथ आचरण करने से मनुष्य श्रेष्ठ बनता है। ऋग्वेद का एक उद्धरण है- *इन्द्रो मायाभि: पुरुरूप इयते*। इन्द्र ने माया के प्रभाव से अपने अनेक रूप बनाये। प्रकृति को इन्होंने माया तथा महेश्वर को मायी कहा है- *मायान्तु प्रकृतिं विद्धि मायिनं तु महेश्वरम्* । यह समस्त जगत माया का स्वरूप है। यर्थात-अयर्थात का मिश्रण है। माया एक बन्धन है और इस माया से व्याप्त यह जगत एक कारागार। माया के बन्धन को तोड़कर ही कोई व्यक्ति आगे बढ़ सकता है।[4]

धर्मानुसार आचारण करते हुए मनुष्य को अर्थ का अर्जन करना चाहिए। अर्थ के साथ मनुष्य को ठीक उसी प्रकार व्यवहार करना चाहिए जिस प्रकार एक ओस की बूंद कमल पत्र के साथ रहती हुई भी उसे गीला नहीं करती है। ठीक उसी प्रकार मनुष्य को संसार में रहकर निवृत्ति मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। धर्मानुसार आचरण करते हुए अर्थ का अर्जन करना है और अर्जित अर्थ को भी धर्म के लिये प्रयोग में लाना ही मानव जीवन का उद्देश्य है। अर्थरूपी धन-ऐश्वर्य पर घमण्ड व अभिमान मनुष्य को पतन के मार्ग पर ले जाता है और मनुष्य दु:ख-क्लेशों से घिर जाता है। इसके स्थान संसार के समस्त भोगों व ऐश्वर्य को ईश्वर का प्रसाद मानकर उनका धर्मानुसार उपभोग करना चाहिए एवं सदैव ईश्वर की आज्ञानुसार धर्माचरण करना चाहिए ।

(3) **तृतीय पुरुषार्थ काम का स्वरूप** :- मानव जीवन के तीसरे पुरुषार्थ के रूप में काम का वर्णन आता है। यहाँ काम से अभिप्राय: मनुष्य की कामनाओं अथवा इच्छाओं से लिया जाता है। मनुष्य जैसे-जैसे आयु में बड़ा होने लगता है, उसकी कामनाएं एवं इच्छाएं भी विकसित होने लगती हैं और मनुष्य इन कामनाओं की इच्छापूर्ति के लिये प्रयत्नशील होने लगता है। मनुष्य का यही प्रयत्न काम पुरुषार्थ कहलाता है। यह मानव जीवन का तीसरा महत्पूर्ण पुरुषार्थ होता है जो मनुष्य को कर्म करने के लिए प्रेरित करता है। धर्मानुसार अर्थ का अर्जन करने के उपरान्त उस अर्थ को ऐसे परोपकार कार्यों में लगाना, जो मोह ही काम पुरुषार्थ का मूल स्वरूप है। अर्थात् प्रथम पुरुषार्थ में मनुष्य धर्म का अनुकरण करता है और धर्म के मार्ग पर चलते हुए अर्थ का अर्जन करता है। अब प्राप्त अर्थ से मनुष्य अपने समस्त शुभ संकल्पों एवं इच्छाओं की पूर्ति करता है। जीवन के इस पुरुषार्थ को काम की संज्ञा से सुशोभित किया जाता है।

काम को विषय वासना के अर्थ में भी लिया जाता है। इन्द्रियों के मुख बाहर की ओर होते हैं अर्थात् इन्द्रियां बर्हिमुखीं होती हैं तथा सदैव अपने-अपने विषयों की ओर आकृष्ट रहती हैं। इन्द्रियों के द्वारा उनके विषयों का भोग करना ही काम कहलाता है। अर्थात् इन्द्रियों के द्वारा अपने विषयों को ग्रहण करते हुए सांसारिक भौतिक सुख की प्राप्ति करने को काम अथवा विषय भोग की संज्ञा दी जाती है। किन्तु विषयों का भोग करने से इन्द्रियों की कार्यक्षमता कम होती चली जाती है और संस्कार रूप में इन्द्रियों की विषयों के प्रति आसक्ति बढ़ती ही चली जाती है। इस विषयाक्ति के प्रबल होने पर मनुष्य को कहीं पर भी सुख-चैन और शान्ति प्राप्त नहीं होती है और मनुष्य के स्वभाव में उग्रता, बैचेनी व चंचलता उत्पन्न हो जाती है।

'विषय-वासना से मुक्ति सहज ही मिलेगी'- ऐसे भ्रम में जो रहता है वह स्वयं अपनी कब्र खोदता है। ऐसा महाराज ययाति ने कहा है। वे बूढ़े हो गये थे, परन्तु उन्हें वासना तृप्ति नहीं हुई थी, इसीलिए उन्होंने अपने बच्चों से जवानी माँगी, बच्चों ने दे दी। जवान होकर दोबारा भोग किया परन्तु फिर भी उनकी तृप्ति नहीं हुई। फिर महाराज ययाति ने अपना अनुभव श्रीमद्भागवत में बता दिया-

न जातु काम: कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते।।

(श्रीमद्भागवत 9/19/14)

काम के उपभोग से काम-पिपासा कम नहीं होती है। घी से जैसे अग्नि बढ़ती है, वैसे ही वह बढ़ती चली जाती है। चाहे शक्ति घट जाये, इच्छा तो बढ़ती चली जाती है। इसीलिए उसको तोड़ना ही होता है।[5] इस प्रकार शास्त्रों में इन्द्रियों एवं विषय-वासना पर संयम करने का उपदेश किया गया है। ठीक इसी प्रकार महाकवि भतृहरि जी वैराग्यशतकम् नामक ग्रन्थ में उपदेश करते हैं कि पानी की तरंग और बुलबुले के समान इस चंचल एवं नश्वर जीवन में प्राणी को भला सुख कहां मिल सकता है। वृद्धावस्था में जीर्ण तथा झुर्रियों वाले अंगों से युक्त होकर मनुष्य को सबकुछ छोड़कर काल के गर्त में जाना पड़ता है। भोगों को भोगना समाप्त नहीं होता अपितु व्यक्ति ही समाप्त हो जाता है।

भोगा व भुक्ता वयमेव भुक्ता: तपो न तप्तं वयमेय तप्ता:।
कालो न यातो वयमेव याता तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा ।।[6]

(वैराग्यशतकम्)

भोगों को हमने नहीं भोगा, बल्कि भोगों ने हमें ही भोग लिया। तपस्या हमने नहीं की, बल्कि हम खुद तप गये। काल (समय) कहीं नहीं गया बल्कि हम स्वयं चले गए। इस सभी के बाद भी मेरी कुछ पाने की तृष्णा नहीं गयी बल्कि हम स्वयं जीर्ण हो गये।

मनुष्य की वासनाएं अनन्त होती है और इन्द्रियां सदैव विषयों की ओर आकृष्ट बनी रहती है। किन्तु भोगों का भोग करने से विषय वासना समाप्त वहीं होती है अपितु जिस प्रकार अग्नि में घृत डालने से अग्नि और प्रचण्ड रूप धारण कर लेती है, ठीक उसी प्रकार विषयों का भोग करने से कामनाएं और अधिक प्रबल हो जाती हैं। इन विषय वासनाओं का भोग करने से शरीर और इन्द्रियों की क्षमता भी क्षीण हो जाती है किन्तु इनसे तृप्ति प्राप्त नहीं होती है। इन विषय भोगों और कामनाओं से स्वयं को ऊपर उठा

लेने पर मनुष्य इन्द्रिय जय करते हुए जीवन के चतुर्थ पुरुषार्थ अर्थात् मोक्ष की ओर अग्रसर हो जाता है।

(4) **चतुर्थ पुरुषार्थ मोक्ष का स्वरूप** :- मानव जीवन के चार पुरुषार्थों में शीर्ष स्थान मोक्ष का है अथवा दूसरे शब्दों में पुरुषार्थ चतुष्टय का अंतिम सोपान मोक्ष या मुक्ति को माना गया है। शास्त्रों में माना गया है कि प्रतिजन्य त्रिगुणयुक्त यह भौतिक शरीर त्रितापों अर्थात् आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक दु:खों का घर है। जीवात्मा का उनसे छूटकर अखण्ड ब्रह्मानन्द का भोग करना ही मोक्ष कहलाता है। किन्तु मनुष्य अविद्या आदि क्लेशों से ग्रस्त होकर संसार के पदार्थों व सम्बन्धों में सुख को खोजने का प्रयास करता है और दु:ख के भवसागर में डूब जाता है क्योंकि संसार के आनन्द भोग एक शाश्वत सुख के दाता नहीं है। यह सुख शाश्वत न होकर क्षणिक कहलाता है। किन्तु जिस शाश्वत सुख की अभिलाषा में मानव संसार में भटकता रहता है, उसकी उपलब्धि आत्यन्तिक दु:ख निवृत्ति से ही सम्भव है। उपनिषदों में कहा कि जो मृत्यु के फैलाए हुए पाशों में आबद्ध है, वह आसक्त है और दु:खों तथा भवबन्धनों में बंधा है, वह पशु तुल्य है। जो इन पाशों को काट डालता है, वही धीर पुरुष बंधनों से मुक्त हो जाता है। ये इन्द्रियाँ ही मृत्यु के पाश हैं, इनका मुख बाहर की ओर खुला है जो अमृतत्व की इच्छा करता है वह इनको अन्तर्मुखी कर आत्मा का प्रत्यक्ष करता है।[7] यही मोक्ष का स्वरूप है।

वस्तुत: मोक्ष शब्द 'मुच' धातु से बनता है, यह धातु छूटने के अर्थ में आती है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि मोक्ष का अर्थ छुटकारा प्राप्त करने से होता है। अब छुटकारा किसको पाना है तो उत्तर होता है जीवात्मा को। पुन: प्रश्न उत्पन्न होता है कि जीवात्मा को किससे छुटकारा प्राप्त करना है तो उत्तर होता है दु:खों से, क्लेशों से, सांसारिक बन्धनों से। वैदिक सनातन धर्म समस्त बन्धनों से निवृत्ति ही मानव जीवन का उद्देश्य मानता है और इसीलिए कहा गया है- *सर्व बन्ध निवृत्ति रूपो मोक्ष:।* अर्थात् समस्त बन्धनों से निवृत्ति ही मोक्ष का स्वरूप है। वेद के मंत्र में ईश्वर से प्रार्थना की गयी है कि जैसे पका हुआ फल टूटकर पृथ्वी पर गिर पड़ता है, वैसे ही रुद्र रूप प्रशु की कृपा से जन्म-मरण के पाश से मुक्त हो जाऊं, अमृतमय सुख से विमुख न होऊ। इस मंत्र में स्पष्ट रूप से मोक्ष का उल्लेख हुआ है। हम जन्म-मरण के पाश से मुक्त हो जाए। कैसे होंगे ? यह भी बता दिया कि प्रभु कृपा से ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है। जब हम उस प्रभु का सामीप्य करेंगे तो उसकी कृपा प्राप्त हो पायेगी। अहर्निश उसका ध्यान व चिन्तन करेंगे क्योंकि परमात्म देव को जानकर सर्वबन्धनों से मुक्ति मिलती है। गीता में भी आत्मा को देहन्द्रियों से श्रेष्ठ माना है, इसलिए अर्जुन को अन्तिम उपदेश करते हुए कहा कि सब कर्मों को, सब धर्मों को, सब मार्गों को छोड़कर मेरी (भगवान् की) शरण में आ, मेरी (प्रभु की) भक्ति कर। यही मोक्ष का द्वार है।[9]

योगदर्शनकार महर्षि पतंजलि के अनुसार मोक्ष की शास्त्रीय संज्ञा 'कैवल्य' है। पातंजल योग दर्शन के चार पादों में अन्तिम कैवल्य पाद ही है। इस अध्याय में कैवल्य (मोक्ष) के स्वरूप को विस्तार से वर्णित किया गया है। '*कैवलस्य भाव: कैवल्यम्*' के अनुसार मोक्षावस्था में जीवात्मा निज स्वरूप में स्थित हो जाता है, यह स्वरूपावस्थान ही कैवल्य है।[10] इसमें चित्तवृत्तियों का निरोध होकर अपने स्वरूप में स्थिति होती है। इसी प्रकार अन्यत्र महर्षि पतंजलि कहते हैं कि वैराग्य से दोष बीज क्षय होने पर भी कैवल्य होता है[11] और सत्वगुण प्रधान चित्त की बुद्धि वृत्ति और पुरुष (जीवात्म तत्व) की शुद्धि साम्ये (शुद्धि की समानता होने पर) कैवल्य अर्थात् मोक्ष होता है।[12] कैवल्य का स्वरूप बताते हुए द्वितीय पाद में महर्षि पतंजलि द्वारा उपदेश किया गया है कि मिथ्याज्ञान की वासना के निवृत्त होने से, चित्तवृत्ति और पुरुष के संयोग का अभाव हो जाता है, अर्थात् पुरुष के बन्धन की सर्वथा निवृत्ति हो जाती है। यही हान (दु:ख का नाश) है और यही द्रष्टा (पुरुष) का सत्वादि गुणों से पृथक् रहना, फिर संयोग न होना कैवल्य या मोक्ष है। मोक्ष (कैवल्य) के स्वरूप को योग दर्शन ग्रन्थ के अन्तिम सूत्र में समझाते हुए उपदेश किया गया है कि त्रिगुणात्मक प्रकृति के दो ही प्रयोजन है- प्रथम पुरुष के लिए भोग और द्वितीय पुरुष को अपवर्ग प्रदान कराना। जब दोनों प्रयोजन पूर्ण हो जाते हैं, तब उसका पुन: प्रति प्रसव नहीं होता है, तब पुरुष अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है, यही कैवल्य है।[13]

पुरुषार्थ और आध्यात्मिक विकास का सम्बन्ध -

मानव जीवन पुरुषार्थ की अनिवार्यता पर प्रकाश डालते हुए योगीराज श्रीकृष्ण उपदेश करते हैं-

न हि कश्चित् क्षणमपि, जातु तिष्ठ-त्यकर्म-कृत् ।
कार्यते ह्यवश: कर्म, सर्व: प्रकृतिर्जैगुणै:।।

(श्रीमद्भगवद् गीता 3/5)

अर्थात् निसन्देह कोई भी मनुष्य किसी भी काल में क्षण मात्र भी बिना कर्म किये नहीं रहता, क्योंकि सारा मनुष्य समुदाय प्रकृति जनित गुणों द्वारा परवश हुआ कर्म करने के लिए बाध्य किया जाता है।[14] अर्थात् यह स्पष्ट है कि मनुष्य का जीवन जन्म के साथ ही पुरुषार्थ (कर्म) के साथ जुड़ जाता है और जीवन के प्रत्येक क्षण में मनुष्य पुरुषार्थ के साथ जुड़ा रहता है। पुरुषार्थ के

साथ जुड़कर ही मनुष्य क्रियावान् बनता है और क्रियाएं मनुष्य को उन्नति की ओर लेकर जाती हैं। मनुष्य अपने जीवन में जितनी भी क्रियाएं करता है, वह उतना ही अधिक सीखने में सक्षम बनता है। प्रसिद्ध लोकोक्ति में भी कहा गया है कि करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान। इस प्रकार पुरुषार्थ से ही मनुष्य का भौतिक अथवा शारीरिक विकास होता है और यही पुरुषार्थ मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त करता है।

आध्यात्मिक विकास का अर्थ होता है- आत्मा के स्तर पर उन्नति प्राप्त करना। इस अवस्था को मानव जीवन की परिपक्वता के रूप में समझना चाहिए। शरीर, मन और आत्मा का समन्वय ही मनुष्य को उत्तम स्वास्थ्य प्रदान करता है। शरीर और मन को ऊर्जावान् बनाने वाला तत्व चेतन तत्व आत्मा कहलाता है। आत्मा को शास्त्रों में शरीर और मन की चेतना का आधार माना गया है जो शरीर और मन को चेतना प्रदान करने का कार्य करता है। इसके प्रभाव से शरीर, मन, वाणी और इन्द्रियां आदि सभी तत्व चेतना के प्रकाश से प्रकाशित बने रहते हैं। मानव जीवन के पुरुषार्थों का मनुष्य के आध्यात्मिक विकास के साथ बहुत घनिष्ट सम्बन्ध होता है। जीवन में पुरुषार्थ के द्वारा ही मनुष्य आध्यात्मिक उन्नति के शिखर को प्राप्त करने में सक्षम बनता है जबकि पुरुषार्थ हीन मनुष्य का आध्यात्मिक विकास बाधित हो जाता है। पुरुषार्थ के द्वारा आत्मा के आवरण के रूप में स्थित अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोशों के पुष्ट होने पर शारीरिक और आध्यामिक विकास होने लगता है।

पचंकोशों के रूप में आत्मा के पांच आवरण आध्यात्मिक विकास को बहुत गहाराई से प्रभावित करते हैं। सर्वप्रथम अन्नमय कोश के जागरण से मनुष्य को निरोगिता, आरोग्यता और दीर्घायु की प्राप्ति होती है। अन्नमय कोश के उपरान्त द्वितीय प्राणमय कोश के जागरण से मनुष्य में साहस, शौर्य पराक्रम और प्रतिभा का उदय होता है। पंचप्राण सुव्यस्थित रूप में होकर समस्त स्थूल-सुक्ष्म क्रियाएं सुचारु रूप में होने लगती है और मनुष्य में ऊर्जा का स्तर उन्नत बनता है।

मनोमय कोश के जागरण से निरोगिता, विवेकशीलता, दूरदर्शिता और बुद्धिमत्तता का विकास होता है। मनोमय कोश के जागरण होने से मनुष्य में संकल्प शक्ति उन्नत बनती है और इच्छा शक्ति को दृढ़ता प्राप्त होती है। ठीक इसी प्रकार विज्ञानमय कोश के जागरण से मनुष्य में बुद्धि का विकास होता है और सज्जनता, सहृदयता और उदारता आदि श्रेष्ठ गुणों का विकास होता है। आत्मा के ऊपर स्थित पांचवे आनन्द कोश के जागरण से आत्मसाक्षात्कार, ईश्वरदर्शन और मुक्ति की उच्चतम अवस्थाओं की अनुभूति होती है। इस प्रकार पचंकोश साधना का मनुष्य के आध्यात्मिक विकास में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान होता है और पंचकोशों के जागरण से मनुष्य का आध्यात्मिक स्तर सकारात्मक ऊर्जा से परिपूर्ण बनता है, मनुष्य में आध्यात्मिक ऊर्जा एवं आत्मबल का स्तर उन्नत बनता है। मनुष्य सांसारिक राग-द्वेष आदि क्लेशों से मुक्त रहते हुए ईश्वर प्राणिधान एवं ईश्वर उपासना करने में सक्षम बनता है। आध्यात्मिक विकास के फलस्वरूप आध्यात्मिक चेतना का स्तर बढ़ता चला जाता है और मनुष्य के चारों ओर सकारात्मक ऊर्जा का घेरा बनने लगता है। इससे मनुष्य की वाणी में प्रभाव एवं आचरण में दिव्यता आने लगती है और उसकी समस्त क्रियाएं फलदायी होने लगती हैं और ऐसे मनुष्य का व्यक्तित्व कमल के पुष्प की पंखुड़ियों के समान खिल जाता है।

संदर्भ सूची : -

1. विशुद्ध मनुस्मति, प्रो. सुरेन्द्र कुमार, प्रथम अध्याय पृष्ठ संख्या 03
2. विशुद्ध मनुस्मति, प्रो. सुरेन्द्र कुमार, षष्ठ अध्याय पृष्ठ संख्या 285
3. विशुद्ध मनुस्मति, प्रो. सुरेन्द्र कुमार, षष्ठ अध्याय पृष्ठ संख्या 295
4. भारतीय दर्शन, जगदीश चन्द्र मिश्र पृष्ठ संख्या 726
5. आरोग्य अंक, संत विनोवा भावे, पृष्ठ संख्या 93
6. वैराग्यशतकम्, ऋषि भृतहरि, श्लोक संख्या 07
7. पचिखानि व्यतृणत्स्वयम्भूस्तस्मात् पराघ् पश्यति नान्तरात्मन्। कश्चित् धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्।। कठोपनिषद् 2/1/1
8. त्रयम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात् ।। यजुर्वेद 3/60
9. सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज । अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।। गीता 18/66
10. तदा द्रष्टु स्वरूपेऽवस्थानम् ।। पा. यो. सू. 1/3
11. तवैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम्।। पा. यो. सू. 3/50
12. सत्वपुरुषयो. शुद्धि साम्ये कैवल्यमिति।। पा.यो. सू. 3/55
13. पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति।। पा. यो. सू. 4/34
14. सरल गीता गीता प्रेस गोरखपुर, पृष्ठ संख्या 53

ISSN 2278 - 0327

स्वास्थ्य रक्षण में योग का महत्व

सूरज सिंह
शोधार्थी
निर्वाण विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

डॉ. मलिक राजेन्द्र प्रताप
विभागाध्यक्ष योग विभाग
एम० बी० राज० स्ना० महाविद्यालय, हल्द्वानी (नैनीताल)

सारांशिका :

उपरोक्त विवेचनाओं के आधार पर स्पष्ट होता है कि योग की विभिन्न क्रियाएँ जैसे आसन, प्राणायाम और ध्यान आदि शरीर के लिए तो स्वास्थ्यकर हैं ही साथ ही साथ मानस स्वास्थ्य पर भी इनका सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। योगासनों के अभ्यास से अस्थियां लचीली और शरीर स्वस्थ्य बनता है जबकि प्राणायाम का अभ्यास मनुष्य के मन की चंचलता को दूर करता है जिससे मन में स्थिरता और एकाग्रता का विकास होता है और मानसिक रोग दूर होते हैं। इसके साथ-साथ योग की महत्वपूर्ण क्रिया ध्यान के अभ्यास का भी मनुष्य के स्वास्थ्य पर बहुत सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। ध्यान के अभ्यास से मनुष्य में स्थिरता उत्पन्न होती है और मनुष्य स्वयं को समझने के सक्षम बनता है।

प्रस्तावना :

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार 'स्वास्थ्य सिर्फ रोग या दुर्बलता की अनुपस्थिति ही नहीं बल्कि एक पूर्ण शारीरिक, मानसिक और सामाजिक खुशहाली की स्थिति है।' स्वस्थ लोग रोजमर्रा की गतिविधियों से निपटने के लिए और किसी भी परिवेश के अनुसार अपना अनुकूलन करने में सक्षम होते हैं। रोग की अनुपस्थिति एक वांछनीय स्थिति है लेकिन यह स्वास्थ्य को पूर्णतया परिभाषित नहीं करता है। यह स्वास्थ्य के लिए एक कसौटी नहीं है और इसे अकेले स्वास्थ्य निर्माण के लिए पर्याप्त भी नहीं माना जा सकता है। लेकिन स्वस्थ होने का वास्तविक अर्थ अपने आप पर ध्यान केन्द्रित करते हुए जीवन जीने के स्वस्थ तरीकों को अपनाया जाना है। यदि हम एक अभिन्न व्यक्तित्व की इच्छा रखते हैं तो हमें हमेशा खुश रहना चाहिए और मन में इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि स्वास्थ्य के आयाम अलग-अलग टुकडों की तरह हैं। अत: अगर हम अपने जीवन को कोई अर्थ प्रदान करना चाहते हैं तो हमें स्वास्थ्य के इन विभिन्न आयामों को एक साथ फिट करना पड़ेगा। वास्तव में अच्छे स्वास्थ्य की कल्पना 'समग्र स्वास्थ' का नाम है जिसमें शारीरिक, मानसिक स्वास्थ, बौद्धिक स्वास्थ्य, आध्यात्मिक स्वास्थ्य और सामाजिक स्वास्थ्य भी शामिल हैं।[1]

आयुर्वेद के अनुसार स्वस्थ पुरुष के लक्षणों की व्याख्या करते हुए स्पष्ट किया गया है -

समदोष: समाग्निश्च समधातु मल:क्रिय।
प्रसन्नात्मेन्द्रिय मन: स्वस्थ इत्यभिधीयते।।

(सुश्रुत)

अर्थात् जिसके वात-पित्त, कफ ये तीनों दोष सम हो, जिसकी जठाराग्नि सम हो, जिसकी धातुएं, रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र की क्रिया सम हो, जिसकी आत्मा, दस इंद्रियाँ तथा मन प्रसन्न हो, वह स्वस्थ कहलाता है।[2] आज का बहुचर्चित योग अपने प्राचीन औपनिषदिक स्वरूप से भिन्न है। आजकल जो कुछ योग के बारे में देखा व सुना जाता है, वह योग का एक पक्ष मात्र है। योग की मूल धारा आध्यात्मिक है। परन्तु मौलिक अवधारणा के विपरीत आज योग में निम्न दृष्टिकोण से रूचि दी जा रही है

- योग द्वारा मानसिक रोगों का उपचार करना।
- मनोदैहिक रोगों के चिकित्सार्थ योग का अभ्यास करना।
- योग का शारीरिक व्यायाम के रूप में अभ्यास करना।
- योगाभ्यास के द्वारा आध्यात्मिक विकास करना।

योग मनुष्य को सकारात्मक चिन्तन-मनन एवं दृष्टिकोण प्रदान करता है, जीवन में सकारात्मक दृष्टिकोण का सीधा प्रभाव कोशिकाओं की आयु पर पड़ता है। योगमय जीवनशैली के अनुसार सुव्यवस्थित एवं अनुशासित जीवनयापन करने से शरीर की समस्त कोशिकाओं की आयु में वृद्धि होती है तथा इनके नष्ट होने की दर कम हो जाती है। जिसके फलस्वरूप शरीर लम्बे समय तक स्वस्थ्य और सक्रिय बना रहता है एवं शरीर में वृद्धावस्था नहीं आती है। उपनिषद् में स्पष्ट किया गया है-

न तस्य रोगो न जरा न मृत्यु, प्राप्तस्य योगाग्निमय शरीरम् ।।

(श्वेताश्तवरोपनिषद् 2/12)

अर्थात्- योगाग्नि में तपा हुआ शरीर न रोगी होता है न बुढ़ापे को प्राप्त होता है और मृत्यु के भय से भी मुक्त होकर इच्छा मृत्यु को प्राप्त होता है।[3] इस प्रकार योगाभ्यास का मनुष्य के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक स्तर पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। मनुष्य के स्वास्थ्य संरक्षण में शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक पक्षों का समावेश होता है और मनुष्य के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक पक्षों के स्तर पर योग की क्रियाओं के प्रभाव को समझने के लिए शास्त्रोक्त अध्ययन इस प्रकार है-

हठयोग शरीर की शुद्धि एवं राजयोग में प्रवेश का एक मार्ग है। हठयोग में योग के सात अंगों का वर्णन किया गया है। जिसे हठयोग के सप्तांग की संज्ञा दी जाती है। इन सात अंगों का प्रथम अंग षट्कर्म है जिसमें शरीर शोधन की छह प्रमुख क्रियाओं का वर्णन किया गया है। इन क्रियाओं का अभ्यास करने से शरीर का शोधन होता है। शरीर से मेद एवं श्लेष्मा की अधिकता दूर होती है। परिणामस्वरूप शरीर स्वस्थ बनता है। शरीर की शुद्धि एवं राजयोग में प्रवेशार्थ अपने शिष्यों को ऋषियों ने षटकर्म की शिक्षा का उपदेश किया। ये क्रियाएं मानव शरीर का कायाकल्प करके उसे रोगमुक्त, दीर्घायु, स्वस्थ, पुष्ट एवं कान्तिमय बनाती हैं।[4]

आधुनिक काल में जहाँ चारों ओर प्रदूषण की अधिकता बढ़ती जा रही है तथा जिसके कारण पाचन और श्वसन से सम्बन्धित अनेक रोग जैसे सर्दी, जुकाम, सायनस, सिरदर्द, एलर्जी, दमा, त्वचा रोग, कब्ज, अपच, मोटापा जैसे रोग फैलते जा रहे हैं तथा विभिन्न दवाईयों का प्रयोग इन रोगों पर निष्प्रभावी सिद्ध हो रहा है, ऐसे रोगों में षट्कर्मों का अभ्यास अत्यन्त लाभकारी सिद्ध होता है तथा इन षट्कर्मों का नियमित अभ्यास करने से ये रोग जीवन में आते ही नहीं है। इसी प्रकार योगासनों के अभ्यास का मनुष्य के शारीरिक स्वास्थ्य पर बहुत सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

नियमित रूप से भोजन करने के उपरान्त वज्रासन में बैठने से भोजन का पाचन अच्छी प्रकार होता है और शारीरिक स्वास्थ्य उन्नत बनता है। यदि आप भोजन के तुरन्त बाद आधे घंटे तक इस आसन में बैठ जाये तो भोजन अच्छी तरह से पच जायेगा। मन्दाग्नि-ग्रस्त लोगों को इससे बहुत अच्छा लाभ होताहै। टांगों और जंघाओं की स्नायुओं और मांसपशियों की शक्ति बढ़ती है। घुटनों-टांगों, पैरों की अंगुलियां तथा जंघाओं का पेशी-शूल दूर हो जाता है। गृधंसी निर्मूल हो जाती है। उदर वायु दूर हो जाती है। उदर प्रभावशाली ढंग से कार्य करता है। वज्रासन का अभ्यास कन्द पर उद्दीपक तथा लाभकारी प्रभाव डालता है।[5] इसी प्रकार सर्वाङ्गासन का अभ्यास शारीरिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका वहन करता है। सर्वांगासन करने के लिए भूमि पर शवासन में पीठ के बल लेटकर हाथों और कोहनियों की सहायता से शरीर के निचले भाग को इतना उठाऐं कि कंधों से लेकर पैर तक का भाग एक सीध (सर्वांग स्थिति) में आ जाए। पीठ को हाथों का सहारा दें, अंतिम अवस्था में ठुड्डी कंठ से मिल जाता है। दोनों बाहुओं को समान्तर रखें। यह चुल्लिका (थायराइड) ग्रंथि को क्रियाशील बनाता है फलतः रक्त परिवहन, पाचन, जनेन्द्रिय, स्नायुओं तथा ग्रन्थि संस्थानों में सन्तुलन लाता है। शरीर का उचित विकास करता है। मस्तिष्क को उचित मात्रा में रक्त पहुंचाकर मनोवैज्ञानिक बिमारियों को दूर करता है।[6]

मनुष्य के शारीरिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाने में ताड़ासन का नियमित अभ्यास लाभकारी प्रभाव रखता है। ताड़ासन का अभ्यास करने के लिए सीधे खड़े होकर दोनों हाथ बगल में एवं पैर आपस में मिले हुए हों तथा धीरे से दोनों हाथों को और एड़ियों को ऊपर उठायें। हाथों को कानों के बगल से ऊपर ले जाएं तथा पंजों पर शरीर का संतुलन बनाने की कोशिश करें। शरीर को तान के रखें तथा कुछ समय बाद वापस जाते हैं। ताड़ासन का अभ्यास बच्चों की लंबाई बढ़ाने में सहायक है। मेरुदंड को लचीला तथा पृष्ठवंश के कड़ेपन को दूर भगाता है तथा एकाग्रता को बढ़ाता है। ताड़सन मलाशय और आमाशय की मांसपेशियों को विकसित करता है और आंतों को फैलाता है। यह मेरूदण्ड के सही विकास में सहायता करता है और जिन बिन्दुओं से स्नायु निकलते हैं उनके अवरोधों को दूर करता है।[7]

इस प्रकार योग संबंधित षट्कर्म की शोधन क्रियाएं तथा वज्रासन, सर्वांगासन और ताड़ासन का नियमित अभ्यास शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों (आमाशय, आँत, यकृत, अग्नाशय, वृक्क आदि) की आंतरिक मालिश करते हैं तथा रक्त प्रवाह में वृद्धि कर इन्हें क्रियाशील और रोगमुक्त बनाकर शारीरिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका वहन करते हैं।

जिस प्रकार योग की क्रियाएं मनुष्य के शारीरिक स्वास्थ्य के पक्ष पर सकारात्मक प्रभाव डालती हैं, ठीक उसी प्रकार योगाभ्यास का मनुष्य के मानसिक स्वास्थ्य पर भी अनुकूल प्रभाव पड़ता है। हठयोग के प्रमुख ग्रन्थ हठप्रदीपिका में योगी स्वात्माराम जी प्राणायाम के महत्व पर प्रकाश डालते हुए उपदेश

करते हैं –

चले वात चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत्।

(हठप्रदीपिका 2/2)

अर्थात् वायु के चलायमान होने पर चित्त भी चंचल होता है और वायु के निश्चल हो जाने पर चित्त भी स्थिर हो जाता है।[8] इस प्रकार चित्त को स्थिर करने में प्राणायाम का अभ्यास बहुत लाभकारी प्रभाव रखता है। प्राणायाम के निरन्तर अभ्यास से आन्तरिक आध्यात्मिक शक्ति जाग्रत होती है और इससे परम आनन्द, दिव्य प्रकाश और मानसिक शान्ति प्राप्त होती है। साधक ब्रह्मचर्य में इतना दृढ़ हो जाता है कि अप्सराओं के प्रलोभन देने पर भी वह अडिग बना रहता है। यह उसे उर्ध्वरेता योगी बना देता है। साधना में आगे बढ़ने पर योगी अणिमा, महिमा, गरिमा आदि अष्ट सिद्धिया एवं 36 ऋद्धियां प्राप्त कर लेता है।[9]

प्राणायाम के अन्तर्गत नाड़ी शोधन, उज्जायी और भ्रामरी आदि प्राणायामों का नियमित अभ्यास करने से मनुष्य का शरीर एवं मन दोनों स्वस्थ बनते हैं। नाड़ी शोधन के लाभों पर प्रकाश डालते हुए घेरण्ड संहिता ग्रन्थ में कहा गया है कि प्राणायाम के पूर्व नाड़ी शुद्धि को उन्होंने आवश्यक माना है। प्राणायाम के बारे में पहले यह समझ लेना चाहिए कि प्राणायाम का अभ्यास अपने शरीर के भीतर प्राण को चलाने की क्रिया है, प्राण को जाग्रत करने की क्रिया है लेकिन प्राण की जाग्रति और प्राणों का स्वतंत्र प्रवाह तभी संभव है जब हमारे भीतर की सभी नाड़ियाँ अवरोध रहित बन जाये और इसके लिए नाड़ी शुद्धि प्राणायाम का अभ्यास बतलाते हैं। नाड़ी शुद्धि से नाड़ियों के अवरोध दूर होते हैं तथा रक्त प्रवाह सुचारु रूप से होने से मस्तिष्क को उचित मात्रा में रक्त पहुंचता है जिससे मानसिक तनाव दूर होते हैं।[10] इस प्रकार प्राणायाम के अभ्यास से नाडियां शुद्ध होती हैं। मानसिक स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। मस्तिष्क केंद्र उत्तेजित होकर अपनी अधिकतम क्षमता से कार्य करने लग जाते हैं। यह प्राणों में सामंजस्य लाकर प्राण शक्ति को बढ़ाता और तनाव एवं चिंता में कमी लाता है।

योग के महत्वपूर्ण अंग के रूप में ध्यान की क्रिया का वर्णन आता है। ध्यान का मनुष्य के स्वास्थ्य पर बहुत सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। जिस ध्यान की चर्चा कर रहें हैं उनका सम्बन्ध मन और उनकी विभिन्न अवस्थाओं से है। ध्यान का अभ्यास आन्तरिक शान्ति और उच्च अनुभवों को प्राप्त करने के लिए नहीं किया जाता। यह तो परिणाम है। ध्यान का अभ्यास किया जाता है स्वयं को देखने और समझने के लिए। स्वयं को समझने की जो कला है, यह अपने आप में एक विज्ञान है, मनोविज्ञान या आत्मविज्ञान है। यह आत्मविज्ञान ध्यान की विभिन्न विधियों का प्रयोग करता है।[11] इस प्रकार ध्यान का अभ्यास मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा को सकारात्मक ऊर्जा प्रदान करता है।

सन्दर्भ सूची –

1. https://hi.wikipedia.org/wiki/Fai FEZ
2. आरोग्य अंक, गीता प्रेस गोरखपुर, पृष्ठ, संख्या 365
3. मानव शरीर संरचना एवं योगाभ्यास का प्रभाव, डॉ. मलिक राजेन्द्र प्रताप पृष्ठ, संख्या 13
4. स्वामी रामदेव– योग साधना एवं योग चिकित्सा रहस्य, पृष्ठ संख्या 115
5. योगासन, स्वामी शिवानन्द, पृष्ठ संख्या 35
6. आसन प्राणायाम मुद्रा बंध, स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, पृष्ठ संख्या 199
7. आसन प्राणायाम मुद्रा बंध, स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, पृष्ठ संख्या 102
8. हठप्रदीपिका, स्वात्माराम कृत, पृष्ठ संख्या 35
9. योगासन, स्वामी शिवानन्द पृष्ठ संख्या 89
10. घेरण्ड संहिता, स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती, पृष्ठ संख्या 299
11. घेरण्ड संहिता, स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती, पृष्ठ संख्या 352

ISSN 2278 - 0327

उच्चतर माध्यमिक स्तर के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन

राकेश कुमार
शोधार्थी, शिक्षा संकाय
आर.के.डी.एफ. विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

प्रो., (डॉ.) मोहन सिंह पंवार
विभागाध्यक्ष, शिक्षा संकाय
आर.के.डी.एफ. विश्वविद्यालय, भोपाल

इस शोध पत्र में उच्चतर माध्यमिक स्तर के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र में स्थित विद्यालयों के विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि की तुलना की गयी है। शोधकार्य हेतु प्रतिदर्श के रूप में विज्ञान संकाय के 300 विद्यार्थियों (150 शहरी एवं 150 ग्रामीण क्षेत्र के) का चयन दैव निदर्शन विधि द्वारा करके इन विद्यार्थियों के द्वारा मा. शिक्षा मण्डल म.प्र., भोपाल द्वारा आयोजित कक्षा बारहवीं की परीक्षा में प्राप्त समग्र प्राप्तांकों का उपयोग इनकी शैक्षिक उपलब्धि के मापन हेतु किया गया। प्राप्त परिणामों के अनुसार उच्चतर माध्यमिक स्तर के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया गया जबकि छात्रा/विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया गया। शहरी क्षेत्र के छात्र एवं छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया गया जबकि ग्रामीण क्षेत्र के छात्र एवं छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

मुख्य शब्दः उच्चतर माध्यमिक स्तर, शैक्षणिक उपलब्धि, शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र

किसी भी राष्ट्र के विकास में शिक्षा वह बिन्दु है, जिसके चारों ओर राष्ट्र के विकास का चक्र चलता है। राष्ट्र के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, अध्यात्मिक तथा मानसिक विकास के लिये शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान है। शिक्षा के बिना ये सब अधूरे हैं। शिक्षा एक अनवरत चलने वाली प्रक्रिया है जो जन्म से लेकर मृत्यु तक अनवरत चलती रहती है। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बालक की सभी प्रकार की क्षमताओं, रूचियों, योग्यताओं का विकास कर उसे राष्ट्र के विकास क्रम में जोड़ना है। **शिक्षा आयोग** (1964-66) ने कहा है कि वर्तमान समय में भारत के भाग्य का निर्माण इसकी कक्षाओं में हो रहा है, इसलिये छात्र-छात्राओं को इस प्रकार शिक्षा दी जाये जो आगे चलकर अपने समाज एवं राष्ट्र के लिये हितकर सिद्ध हो। आज की सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों के संदर्भ में शैक्षणिक उपलब्धि सबसे अधिक महत्व रखती है। वास्तव में स्कूलों में औपचारिक शिक्षा के दौरान ही शैक्षणिक उपलब्धि पर विशेष जोर दिया जाता रहा है। स्कूलों में अपने मार्गदर्शन के दौरान उपलब्धि और निष्पादन पर और अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। व्यक्ति तथा वातावरण के बीच अंत:क्रिया के फलस्वरूप व्यक्ति नए व्यवहार सीखता है। अनुभव के आधार पर इन व्यवहारों में स्थाई परिवर्तक होते हैं, यही स्थाई परिवर्तक सीखना या अधिगम कहलाता है। किसी विद्यार्थी ने एक निष्चित समय में किसी विषय में कितना सीखा या कितना अधिगम हुआ यही उसकी शैक्षिक उपलब्धि कहलाती है। देश की प्रतिष्ठा एवं विकास का दायित्व इन्हीं विद्यार्थी रूपी भावी कर्णधारों के कंधों पर निर्भर है, परन्तु इसके लिए हमें इन भावी कर्णधारों का सर्वांगीण विकास करना है, जिसमें शिक्षा की सर्वप्रमुख भूमिका है। अत: इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु शोधार्थी ने उच्चतर माध्यमिक स्तर के शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन करने का प्रयास इस अध्ययन द्वारा किया है।

प्रस्तुत शोध से संबंधित पूर्व में भी कुछ शोध कार्य किये गये हैं जैसे - **जोगिन्द्र** (1979) ने अपने अध्ययन के निष्कर्षत: पाया कि छात्रों की अपेक्षा छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि अधिक पाई गई। **सारस्वत, अनिल** (1980) ने अपने अध्ययन में पाया कि छात्र-छात्राओं तथा शहरी व ग्रामीण विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि सार्थक रूप से भिन्न पाई गई। **कुमार, राजीव** (1989) ने पाया कि ग्रामीण तथा शहरी विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के मध्य कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया। **गर्ग, वी.पी. तथा चतुर्वेदी, सीमा** (1992) ने अपने अध्ययन के निष्कर्षत: पाया ग्रामीण विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि, शहरी विद्यार्थियों की तुलना में निम्न पायी गयी। **त्रिपाठी, कुमुद** (2003) ने अपने

अध्ययन के निष्कर्षत: पाया कि शैक्षणिक उपलब्धि पर अभिप्रेरणा का प्रभाव अधिक पड़ता है एवं शैक्षणिक उपलब्धि पर लिंग एवं परिवेष का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। **पाण्डेय एवं राय** (2008) ने अपने अध्ययन के निष्कर्षत: पाया कि नरचरिंग (मानसिक पृष्ठ-पोषण) के द्वारा विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि बढ़ती है। **कुमार, मनीष** (2008) ने अपने अध्ययन के निष्कर्ष स्वरूप पाया कि शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि एवं पारिवारिक अनुषासन, ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों की तुलना में अधिक पाई गई। **पाठक, माया** (2010) ने अपने अध्ययन के निष्कर्षत: पाया कि बालक अभिभावक मैत्री सम्बंध बालकों की शैक्षिक उपलब्धि, समायोजन तथा संवेगात्मक समायोजन को प्रगाढ़ बनाता है। **साठे, वी.यू. एवं अंसारी, एफ.** (2012) ने अपने अध्ययन के निष्कर्षत: पाया कि शहरी विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि एवं समायोजन के विभिन्न घटकों-गृह तथा परिवार, सामाजिक, व्यक्तिगत तथा संवेगात्मक, शैक्षणिक, स्वास्थ्य के मध्य सार्थक सह संबंध पाया गया। ग्रामीण विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धी एवं समायोजन के गृह तथा परिवार, व्यक्तिगत तथा संवेगात्मक, शैक्षिक के मध्य सार्थक सहसंबंध पाया गया जबकि ग्रामीण विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धी तथा समायोजन के सामाजिक एवं स्वास्थ्य घटकों के बीच सार्थक सह संबंध नहीं पाया गया। **बामने, अल्पना** (2014) ने अपने अध्ययन के निष्कर्षत: पाया कि विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि तथा सामाजिक समायोजन के बीच कोई सार्थक सम्बंध नहीं था।

उद्देश्य:-

1. उच्चतर माध्यमिक स्तर के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. उच्चतर माध्यमिक स्तर के शहरी/ग्रामीण क्षेत्र के छात्र व छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पना:-

1. उच्चतर माध्यमिक स्तर के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।
2. उच्चतर माध्यमिक स्तर के शहरी/ग्रामीण क्षेत्र के छात्र व छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।

उपकरण:-

इस शोधकार्य में शैक्षणिक उपलब्धि के मापन के लिए विज्ञान संकाय के विद्यार्थियों की म.प्र. माध्यमिक शिक्षा मण्डल द्वारा आयोजित कक्षा 12वीं की वार्षिक परीक्षा के प्राप्तांक लिए गये हैं।

विधि:-

इस शोधकार्य हेतु भोपाल जिले के उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों की कक्षा बारहवीं में अध्ययनरत विज्ञान संकाय के 300 विद्यार्थियों (150 शहरी एवं 150 ग्रामीण क्षेत्र के), जिनमें से प्रत्येक समूह में 75 छात्र व 75 छात्राएं थे, का चयन दैव निदर्शन विधि द्वारा करके इन विद्यार्थियों के द्वारा माध्यमिक शिक्षा मण्डल म.प्र., भोपाल द्वारा आयोजित कक्षा बारहवीं की परीक्षा में प्राप्त समग्र प्राप्तांकों का उपयोग इनकी शैक्षिक उपलब्धि के मापन हेतु किया गया। मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रांतिक अनुपात परीक्षण के द्वारा आंकड़ों का विश्लेषण किया गया एवं प्राप्त परिणामों के आधार पर निष्कर्ष प्राप्त किये गये।

परिणामों का विश्लेषण:-

परिकल्पना क्रमांक 1. उच्चतर माध्यमिक स्तर के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के छात्र/छात्रा/ विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।

सारणी क्रमांक 01

उच्चतर माध्यमिक स्तर के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि संबंधी तुलनात्मक परिणाम

समूह	अध्ययन क्षेत्र	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात मान	'पी' मान
छात्र	शहरी	75	360.15	99.97	1.93	> 0.05
	ग्रामीण	75	329.15	96.95		
छात्रा	शहरी	75	402.39	84.91	3.89	< 0.01
	ग्रामीण	75	343.67	99.44		
विद्यार्थी	शहरी	150	381.27	95.12	4.01	< 0.01
	ग्रामीण	150	336.41	98.47		

स्वतंत्रता के अंश - 148, 298

0.05 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान - 1.98, 1.97

0.01 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान - 2.61, 2.59

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट है कि उच्चतर माध्यमिक स्तर के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि के लिये प्राप्त क्रांतिक अनुपात का मान 1.93 स्वतंत्रता

के अंश 148 पर सार्थकता के 0.05 स्तर के लिए न्यूनतम निर्धारित मान 1.98 से कम है जबकि छात्रा/विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि के लिये प्राप्त क्रांतिक अनुपात के मान क्रमश: 3.89, 4.01 स्वतंत्रता के अंश 148, 298 पर सार्थकता के 0.01 स्तर के लिए न्यूनतम निर्धारित मान क्रमश: 2.61, 2.59 से अधिक हैं। अत: उपरोक्त परिणामों के आधार पर निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि उच्चतर माध्यमिक स्तर के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया गया जबकि छात्रा/विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया गया तथा शहरी क्षेत्र की छात्रा/विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि, ग्रामीण क्षेत्र की छात्रा/विद्यार्थियों से उच्च पाई गई।

अत: इन परिणामों के आधार पर पूर्व में ली गयी परिकल्पना ''उच्चतर माध्यमिक स्तर के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा'', आंशिकत: अस्वीकृत की जाती है।

परिकल्पना क्रमांक 2. उच्चतर माध्यमिक स्तर के शहरी/ग्रामीण क्षेत्र के छात्र व छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

तालिका 02

उच्चतर माध्यमिक स्तर के शहरी/ग्रामीण क्षेत्र के छात्र व छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि संबंधी तुलनात्मक परिणाम

अध्ययन क्षेत्र	समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात मान	सार्थकता
शहरी	छात्र	75	360.15	99.97	2.79	< 0.01
	छात्रा	75	402.39	84.91		
ग्रामीण	छात्र	75	329.15	96.95	0.91	> 0.05
	छात्रा	75	343.67	99.44		

स्वतंत्रता के अंश – 148

0.05, 0.01 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान – 1.98, 2.61

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट है कि उच्चतर माध्यमिक स्तर के शहरी क्षेत्र के छात्र व छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि के लिये प्राप्त क्रांतिक अनुपात का मान 2.79 स्वतंत्रता के अंश 148 पर सार्थकता के 0.01 स्तर के लिए न्यूनतम निर्धारित मान 2.61 से अधिक है जबकि ग्रामीण क्षेत्र के छात्र व छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि के लिये प्राप्त क्रांतिक अनुपात का मान 0.91 स्वतंत्रता के अंश 148 पर सार्थकता के 0.05 स्तर के लिए न्यूनतम निर्धारित मान क्रमश: 1.98 से कम है।

अत: उपरोक्त परिणामों के आधार पर निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि उच्चतर माध्यमिक स्तर के शहरी क्षेत्र के छात्र व छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया गया तथा शहरी छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि, शहरी छात्रों से बेहतर पाई गयी। ग्रामीण क्षेत्र के छात्र व छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया।

अत: इन परिणामों के आधार पर पूर्व में ली गयी परिकल्पना ''उच्चतर माध्यमिक स्तर के शहरी/ग्रामीण क्षेत्र के छात्र व छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा'', आंशिकत: अस्वीकृत की जाती है।

निष्कर्ष–

1. उच्चतर माध्यमिक स्तर के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया गया जबकि छात्रा/विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया गया तथा शहरी क्षेत्र की छात्रा/विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि, ग्रामीण क्षेत्र की छात्रा/विद्यार्थियों से उच्च पाई गई।
2. उच्चतर माध्यमिक स्तर के शहरी क्षेत्र के छात्र व छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया गया तथा शहरी छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि, शहरी छात्रों से बेहतर पाई गयी। ग्रामीण क्षेत्र के छात्र व छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. भटनागर, आर.पी. (1995): शिक्षा अनुसंधान – विधि एवं विश्लेषण, ईगल बुक्स इंटरनेशनल, मेरठ
2. दुबे, एल.एन. एवं बरोदे, बी.आर. (2009): शिक्षा मनोविज्ञान, आरोही प्रकाशन जबलपुर
3. गैरैट, ई. हेनरी (1995): शिक्षा और मनोविज्ञान में सांख्यिकीय प्रयोग, कल्याणी पब्लिकेशन, नई दिल्ली
4. गुप्ता, मधु (2000): शिक्षा संस्कार एवं उपलब्धि, क्लासिक पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली
5. गुप्ता, एस.पी. (2007): आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
6. बामने, अल्पना (2014) ''विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं सामाजिक समायोजन के मध्य संबंध: एक अध्ययन'', एम.एड. लघु शोध प्रबन्ध, क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, भोपाल
7. कुमार, मनीष, (2008) ''ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में स्थित उच्च माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के पारिवारिक

अनुशासन एवं उनकी शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन'', जर्नल ऑफरिसर्च एण्ड एक्सप्लोरेशन इन टीचर एजूकेशन (एजूक्वेस्ट), वाल्यूम (1), अप्रैल 2008, पृष्ठ क्रमांक 59-65

8. पाठक, माया, (2010) ''बालक-अभिभावक सम्बंधो का बालकों की शैक्षिक उपलब्धि एवं समायोजन पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन'', अप्रकाशित शोध प्रबन्ध काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
9. पटेल, सोनल (2012) ''नरसिंहपुर जिले के शासकीय कन्या उच्चतर माध्यमिक विद्यालय तथा शासकीय सह शिक्षा विद्यालय में अध्ययनरत् छात्राओं के सामाजिक समायोजन एवं शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन'', एम.एड. लघु शोध प्रबन्ध, क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान भोपाल
10. पाण्डेय एवं राय (2008) ''शैक्षणिक उपलब्धि में नरचरिंग के प्रभाव का अध्ययन'', रिसर्च लिंक, दिसंबर 2008, इंदौर
11. सारस्वत अनिल (1980) ''विभिन्न विद्यालयीन परिवेश के किशोरों की शैक्षिक उपलब्धि, उपलब्धि अभिप्रेरणा तथा व्यवसायिक आकांक्षा पर एक अध्ययन'', फिफ्थ सर्वे ऑफएजुकेशन रिसर्च, वाल्यूम (2), पेज नं. 1911
12. Buch, M.B. (1988-92) : **Fifth Survey of Research in Education,** National Council of Education Research and Training, New Delhi, Vol. II
13. **Garg V.P. and Chaturvedi, Seema (1992)** ''Intelligence and socio-economic status as correlates of academic performance: Some field evidences'', *Indian Educational Review, Vol. 27(3): 107-10, In Fifth Survey of Research in Education. (1988-92), Vol II, Pg. No. 1875*
14. **Kumar, Rajeev (1989)** ''Children's cuviosity, intelligence and scholastic achievement'', *Ph.D., Edu. Agra Univ. Forth Survey of Edu. Research, Vol. II, Page No. 1884*
15. **Sathe, V.U. and Anjsari, F. (2012)** ''Study of academic achievement and selected adjustment factors of rural adolescent students in pune district'', *Asian journal of psychology and education, vol45, No. 7-8 , year 2012, Page no. 23-32.*

ISSN 2278 - 0327

भारत-श्रीलंका संबंध एवं चीन हित

नवीन कुमार

शोधार्थी, रक्षा एवं स्त्रातेजिक विभाग

महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की अवधारणा वर्तमान विश्व में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखती है। कोई भी राष्ट्र केवल अपने क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र में ही सीमित नहीं है। यह न तो संभव है और न हीं वांछनीय है। यह एक आवश्यकता बन गई है कि सभी देशों को राष्ट्रीय सीमाओं के पार अपने पंख फैलाने होंगे। ऐसा इसलिए है क्योंकि वर्तमान विश्व समाज एक वैश्विक गाँव है और उसके अनुसार एक अलग तरीके से जीना असंभव है। यह इस तथ्य के कारण फिर से है कि कोई भी देश या देश अलगाव में रहना पसंद नहीं करता है। यदि ऐसा होता है, तो इस दुनिया के अन्य देशों में होने वाली प्रगति और विकास के विचारों से वंचित हो जाएगा और इसलिए वे दुनिया के अन्य देशों से पिछड़ सकते हैं। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि अंतर्राष्ट्रीय संबंध तब और अधिक महत्वपूर्ण हो जाते हैं जब यह पड़ोसी देशों का रिश्ता होता है।[1]

श्रीलंका एक द्वीप राष्ट्र जो मन्नार की खाड़ी के पार भारत के दक्षिण में स्थित है और हिंद महासागर में जलडमरूमध्य, ब्रिटिशों का एक उपनिवेश था। लेकिन ब्रिटिश भारत का साम्राज्य का हिस्सा नहीं था। 1830 के बाद से, ब्रिटिश ने भारत से विशेष रूप से तमिलनाडु से सीलोन में, गिरमिटिया श्रम प्राप्त किया।

अंग्रेजों ने मिशनरियों को उत्तरी हिस्से में भेजने की एक सुनियोजित नीति का इस्तेमाल किया। जहाँ तमिल लोग निवास करते थे। तमिल लोग बौद्ध, मुस्लिम, हिंदू और ईसाई का मिश्रण थे जो अंग्रेजों द्वारा प्रदान की जाने वाली मिशनरी शिक्षा का लाभ उठाते थे। सीलोन 1948 में स्वतंत्र हो गया और 1972 में इसका नाम बदलकर श्रीलंका कर दिया गया और बाद में 1978 में आधिकारिक रूप से डेमोक्रेटिक सोशलिस्ट रिपब्लिक ऑफ़ श्रीलंका का नाम दिया गया।[2]

श्रीलंका में जातीय संघर्ष का सामना करते हुए भारत ने समग्र रूप से श्रीलंका के साथ बहुत सौहार्दपूर्ण संबंध बनाए रखे हैं। द्विपक्षीय संबंधों में प्रारंभिक चरण, विशेष रूप से 1948–52 के दौरान, नीतियों और हितों में विचलन बहुत स्पष्ट नहीं थे। क्योंकि दोनों राष्ट्र चाहते थे अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में पश्चिमी रणनीतिक हितों के अनुसार अपने विदेशी संबंधों को विकसित करना। संबंध तब और बढ़ गया जब बड़ा नाईक और सिरीमावबोदरनैके ने भारत को एक दोस्ताना पड़ोसी माना और नेहरू के साथ मधुर संबंधों को एक दोस्ताना पड़ोसी माना संबंधों का पोषण किया। सिरिमावोंने चीन और भारत के बीच सीमा संघर्ष के प्रस्तावों के लिए प्रस्ताव स्थापित करके एक महत्वपूर्ण मध्यस्था की भूमिका निभाई थी। जिसे नेहरू ने सराहा था। 1964 में शास्त्री–सिरीमाव समझौते पर हस्ताक्षर करने के बाद भारत–श्रीलंका संबंध में और सुधार हुआ जिसके बाद श्रीलंका ने श्रीलंका नागरिकता में तीन लाख भारतीय तमिलों को देने पर सहमति जताई और भारत के लिए एक बड़ी संख्या को वापस करने पर सहमत हो गया।[3]

29 जुलाई, 1987 को शांति समझौते जो त्रिपक्षीय संबंधों में तनाव रोकने के लिए और श्रीलंका के राष्ट्रपति जे.आर. जयवर्धने और भारत के प्रधानमंत्री राजीव गांधी के बीच तमिल समस्याओं का समाधान खोजने का प्रयास करता है। इसके अलावा, लिबरेशन ऑफ तमिल टाइगर्सईलम के श्रीलंका में संघर्ष के समाप्त होने के बाद संबंधों का एक अच्छा संकेत देखा गया है, जिससे शांति और स्थिरता की अधिक संभावना पैदा हुई है और भारत और श्रीलंका के लिए द्विपक्षीय रूप में सहयोग करने के लिए अधिक विकल्प खुले हैं। भारत ने श्रीलंका सरकार को राहत, पुनर्वास और सुलह के मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करने के महत्व पर बल दिया है। विस्थापितों के लिए माननीय राहत प्रदान करने में भारत को कोई झिझक नहीं है। भारत ने आंतरिक विस्थापित लोगों (आई.डी.पी.) के लिए अस्थायी आवासों के लिए आश्रय सहायता प्रदान की है और पुनर्जीवन के लिए परिवारों को आजीविका प्रदान करने वाली गतिविधियों को शुरू करने में मदद करने के लिए कृषि उपकरणों के लिए स्टार्टर पैक की आपूर्ति की है।[4]

भारत में 2014 में और श्रीलंका में 2015 में नई सरकारों की स्थापना के साथ दोनों पड़ोसियों के बीच बड़ी राजनीतिक संबंधों में थोड़ा सुधार हुआ। राष्ट्रपति राजपक्षे की नई दिल्ली में भारत के नए प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की शपथ ग्रहण समारोह में भाग लेने के लिए नई भारत सरकार के साथ संपर्क को नवीनीकृत करने के लिए सकारात्मक इशारा करता है। यहाँ तक कि 8 जनवरी, 2015 में चुने गए श्रीलंका के राष्ट्रपति ने 15 फरवरी, 2015 से शुरू होने वाली चार दिवसीय यात्रा को भारत आने पर अपनी प्राथमिकता सूची में भारत को रखने की इच्छा जाहिर की थी। भारत ने श्रीलंका के साथ असैन्य परमाणु सहयोग समझौता पर हस्ताक्षर किए जो श्रीलंका का पहला किसी भी देश के साथ परमाणु समझौता था। 13 और 14 मार्च 2015 को प्रधानमंत्री मोदी की श्रीलंका यात्रा ने हिंद महासागर क्षेत्र (आई.ओ.आर) में एक सहकारी समुद्री सुरक्षा दृष्टिकोण के लिए भारत की खोज को रेखांकित किया और आई.ओ.आर. देशों में शांति और समृद्धि सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने कि उसकी इच्छा श्रीलंका में बुनियादी ढांचे के विकास में भारत की भागीदारी के लिए यह यात्रा महत्वपूर्ण है।[5]

हिंद महासागर में बढ़ती भारत-चीनी प्रतियोगिता के साथ, श्रीलंका के साथ उनके संबंधित सैन्य संबंध इस समुद्री महान खेल में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। चीन 1950 के दशक के बाद श्रीलंका को हथियारों का सबसे बड़ा आपूर्ति कर्ता है। इन लेनदेन में छोटे हथियार, गोला-बारूद, बारूदी सुरंगे, नौसेना के जहाज और विमान शामिल है। श्रीलंका के गृहयुद्ध के दौरान चीन और श्रीलंका का रक्षा और सुरक्षा सहयोग तेज हो गया। जहाँ चीन का समर्थन कई रूपों में हुआ। 2007 में तत्कालीन राष्ट्रपति महिंद्रा राजपक्षे की चीन यात्रा में चीनी जियान-7, फाइटर जेट, एंटी-एयरक्राफ्ट गन, जेवाई-11, 3 डी एयर सर्विलांस रडार, बख्तरबंद कर्मियों के वाहक और अन्य हथियार खरीदने के लिए 37.6 मिलियन डॉलर का सौदा हुआ। हाल के दिनों में चीनी और श्रीलंकाई सैन्य अधिकारियों के बीच उच्च स्तरीय यात्राओं ने भी संबंधों को आगे बढ़ाया है। 2012 में चीनी रक्षा मंत्री की श्रीलंका यात्रा के दौरान, सेना के शिविरों के निर्माण के लिए 100 मिलियन डॉलर का अनुदान दिया गया था। चीन ने श्रीलंकाई अधिकारियों को सैन्य प्रशिक्षण भी दिया है। एक भारतीय दृष्टिकोण से, चीन और श्रीलंका के बीच सहयोग का बढ़ता हस्तांतरण चिंता का कारण है। 2014 में ऐसी चिंताएँ एक वास्तविकता बन गई हैं जब श्रीलंका ने दो चीनी पनडुब्बियों और एक युद्धपोत को कोलम्बों में अपने बंदरगाह पर डॉक करने की अनुमति दी थी। यह भारत के लिए खतरे की घंटी है। चीन के काउंटर पाइरेसीकंटेस्टेंट एक दशक से अधिक समय से हिंद महासागर क्षेत्र में एक नियमित उपस्थिति रहे हैं। इस क्षेत्र में चीनी पनडुब्बियों की दृष्टि हाल ही में एक असामान्य घटना थी। हालांकि भारत ने आक्रामक रूप से विरोध नहीं किया लेकिन इसे नई दिल्ली और कोलंबो के बीच विश्वास में एक बड़े उल्लंघन के रूप में देखा गया और बीजिंग के साथ तनाव भी बढ़ा। हालांकि इसका यह अर्थ नहीं है कि चीनी पनडुब्बी की तैनाती प्रकृति की उत्तेजक है वे चिंता के कारण बनते हैं और इस क्षेत्र में भारत की नौसैनिक श्रेष्ठता के रूप में देखा जा सकता है।[6]

चीनी यात्रियों की आवर्ती एक चिंता का विषय बन गई है साथ ही अटकलें लगाई जा रही हैं कि चीन के पूर्वी बंदरगाह को माली में एक विमान रखरखाव सुविधा का निर्माण किया जा सकता है। जिसे भारत राष्ट्रीय सुरक्षा के संदर्भ में एक रणनीतिक स्थान मानता है। इसने दोनों देशों के बीच एक बड़ी सुरक्षा दुविधा पैदा कर दी है। भारत को हिंद महासागर में अपनी स्थिति को मजबूत करने के लिए धक्का दे रहा है। भारत के खिलाफ चीनी हथियारों के इस्तेमाल की संभावना एक अन्य कारक है जो न केवल श्रीलंका के साथ, बल्कि हिंद महासागर में चीन के साथ भारत के संबंधों का परीक्षण करता है। जहाँ एशिया के दो सबसे शक्तिशाली देशों के बीच प्रभाव के लिए लड़ाई हो रही है। स्वतंत्रता के बाद पहले दो दशकों के लिए, श्रीलंकाई सैन्य अधिकारियों ने भारतीय सैन्य अकादमियों में प्रशिक्षित किया और 1971 में भारत ने श्रीलंका को एक देशव्यापी विद्रोह में मदद की जब सरकार ने बाहरी सहायता मांगी। यद्यपि भारत राजनीतिक रूप से श्रीलंका को आक्रामक हथियार बेचने से विवश था। इसने हथियारों के सौदे की सुविधा दी, रक्षात्मक हथियार बेचे और श्रीलंका को लिबरेशन टाइगर्स ऑफ तमिल को निशाना बनाने में मदद करने के लिए महत्वपूर्ण नौसेना और खुफिया सहायता प्रदान की। हाल ही में भारत ने विशेष रूप से समुद्री क्षेत्र में सहायता प्रदान की है। भारतीय तटरक्षक में प्रशिक्षण और निगरानी के लिए श्रीलंकाई तटरक्षक बल को एक अपतटीयगश्ती पोत (ओ.पी.वी.) उपहार में दिया था। भारतीय तटरक्षक बल ने 2006 और 2008 में श्रीलंका को दो ओपीवी भी सौंपे थे। श्रीलंका को ओपीवी सौंपने से पहले, भारतीय तटरक्षक बल द्वारा जहाज संचालन, पुल नेविगेशन और इंजन कक्ष नियंत्रण पर प्रशिक्षण दिया गया था। श्रीलंका को इन जहाजों को प्रदान करने

वाले भारत को श्रीलंका की समुद्री सुरक्षा को मजबूत करने के रूप में माना जा सकता है, जो भारत के अपने राष्ट्रीय सुरक्षा हित में है। भारत ने तीन अलग-अलग प्रकारों के तहत श्रीलंका के साथ कई संयुक्त सैन्य अभ्यास किए हैं। दोनों सेनाओं के बीच आयोजित 'मित्रशक्ति' द्विपक्षीय अभ्यास 2013 में शुरू हुआ था। 2017 का अभ्यास आधुनिक संचार, टोही और हथियार प्रौद्योगिकियों के उपयोग को बढ़ाने के लिए जोर देने के साथ काउंटर सिर्गेस और आतंकवाद विरोधी कार्यो पर केंद्रित है।[7]

"SLINEX" दो नौ सेनाओं के बीच नौसेना अभ्यास की एक श्रृंखला है। पहली बार 2005 में किए गए अभ्यास दोनों नौसेनाओं को एक-दूसरे की प्रतिक्रियाओं को समझने में मदद करते हैं। लक्ष्य दोनों देशों की नौसेनाओं को अपनी क्षमताओं का पूर्वाभ्यास और सुधार करने और परिचालक प्रभावशीलता बढ़ाने के लिए सक्षम करना है जो क्षेत्र में समुद्री सुरक्षा बनाए रखने के लिए आवश्यक है। विशाखापट्टनम के पास आयोजित SLINEX का 2017 संस्करण,एंटी-पायरेसी, बेड़े के काम, सीमासंशिप, संचार और हेलीकॉप्टर संचालन पर केंद्रित है। SLINEX 2018 श्रीलंका के त्रिकोमाली में हुआ और इसके दायरे में उल्लेखनीय वृद्धि हुई, जिसमें पहली बार श्रीलंकाई वायुसेना ने भाग लिया। तीसरा संयुक्त अभ्यास से 'दोस्ती' कहा जाता है। एक त्रिपक्षीय तटरक्षक अभ्यास है जिसमें मालदीव शामिल है। मूल रूप से 1991 में भारत और मालदीव के बीच शुरू हुआ। 2012 में इसका विस्तार श्रीलंका को शामिल करने के लिए किया गया था। क्षेत्र के भू-स्थानिक महत्व के कारण हिंद महासागर क्षेत्र की सुरक्षा और सुरक्षा स्थापित करने के लिए तीन देशों के तटरक्षकों के लिए महत्वपूर्ण है। इनके अलावा भारत और श्रीलंका ने अन्य देशों के साथ संयुक्त सैन्य अभ्यास में भाग लिया है। भारत ने वर्षों तक सशस्त्र बलों की तीनों शाखाओं में श्रीलंकाई सेना को सफलतापूर्वक प्रशिक्षण दिया है। श्रीलंका ने दावा किया है कि वह अपने रक्षाकर्मियों को प्रशिक्षित करने और अधिकारियों को भेजने के लिए भारत को प्राथमिकता देने के लिए प्रतिबद्ध है। 2011 और 2013 के बीच लगभग 1700 श्रीलंकाई अधिकारियों ने भारत में प्रशिक्षण लिया और श्रीलंकाई नौसेना में लगभग 80 प्रतिशत अधिकारियों ने भारत से प्रशिक्षण प्राप्त किया है।[8]

चीन श्रीलंका के लिए सैन्य उपकरणों का एक निरंतर स्रोत रहा है और श्रीलंका सशस्त्र बलों के आधुनिकीकरण और विस्तार में मदद कर रहा है। चीन श्रीलंका की सेना को सैन्य उपकरण निर्यात करता है। गोला-बारूद, एंटी-टैंक गाइडेड, मिसाइल, रॉकेट लॉन्चर और हवा में मार करने वाली मिसाइल, गहरे पैठ बम और रॉकेट, मोटाई गोला बारूद, नाइट विजन डिवाइस, आर्टिलरी, कवच, मोर्टार सुरक्षा उपकरण, टैंक, जेट, नौसेना पोत, रडार और संचार उपकरण आदि। चीन श्रीलंका के सैन्य कर्मियों के प्रशिक्षण में सहायता करता है।[9] चीन नेशनल एयरो टेक्नोलॉजी इम्पोर्ट-एक्सपोर्ट कॉरपोरेशन श्रीलंका सरकार को एयरक्राफ्ट मेंटेनेंस सेंटर बनाने में मदद की। हालांकि अभी तक स्थान को अंतिम रूप नहीं दिया गया है। लेकिन काटुनारा, मटाला और ट्रिनकोमाली संभावित स्थान है। जब अमेरिका ने 2007 में श्रीलंका के मानवाधिकारों की चिंताओं पर सहायता को समाप्त कर दिया तो चीन ने श्रीलंका को एक बिलियन प्रदान किया था। जिससे दस लाख से ज्यादा सैन्य उपकरण मिल गए। भारत सरकार के नाराजगी के बावजूद सितंबर और नवंबर 2014 में चीनी परमाणु पनडुब्बियों ने श्रीलंका की कई यात्राएं की थी। अक्टूबर 2016 में चीनी सरकार ने घोषणा की वह श्रीलंका को सैन्य सहायता प्रदान करेगी।[10] श्रीलंका में चीनी हित निम्नलिखित हैं-

1. श्रीलंका की भू-रणनीतिक स्थिति बहुत महत्वपूर्ण है यह तेल-समृद्ध मध्य पूर्वी और दक्षिण पूर्व एशिया के बीच समान है। यह रणनीतिक स्थिति चीन को अंतर्राष्ट्रीय महासागर की अंतर्राष्ट्रीय समुद्री गलियों तक सीधी पहुंच प्रदान करने के लिए प्रेरित करती है। जिससे व्यापार में वृद्धि होगी।
2. श्रीलंका अविकसित है और कोयला, लौह अयस्क, हाइड्रोकार्बन, प्राकृतिक गैस और तेल जैसे प्राकृतिक संसाधनों से भरा है। उसमें से कुछ को अभी पूरी तरह से बनाया जाना बाकी है। इस क्षेत्र की बढ़ती अर्थव्यवस्था और करोड़ों का नुकसान व्यापार के लिए बहुत बड़ी संभावनाएं और एक बहुत बड़ा बाजार माल है।
3. हिंद महासागर क्षेत्र में श्रीलंका की बुक भू-स्थनिक स्थिति के कारण चीन के लिए बहुत अवसर मिलते हैं। अवसरों से यह समुद्री डकैती, आतंकवाद ड्रग हथियार सामग्री तस्करी, सामूहिक विनाश के हथियार और इतने जैसे गंभीर सुरक्षा खतरे पैदा करता है। इस संबंध में श्रीलंका इन खतरों के खिलाफ एक बफर के रूप में कार्य कर सकता है।
4. इसके अतिरिक्त श्रीलंका चीन के ओ.बी.ओर. और मैरीटाइम सिल्करोड़ पैदल में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा। महत्वाकांक्षी योजना के तहत, चीन ने सिल्करोड़ के भूलभुलैया के निर्माण की योजना बनाई है। जिसमें चीन मध्य एशिया

और यूरोप को जोड़ने वाले प्राचीन सिल्करोड़ का पुनरुद्धार शामिल है जिसमें बांग्लादेश, चीन, म्यांमार (बी. सी. आई. एम.) आर्थिक गलियारा है। इस क्षेत्र के विभिन्न बंदरगाह व्यापार में वृद्धि करते हैं। इस प्रकार ये पहले न केवल चीन और श्रीलंका के लिए फायदेमंद होगी।

निष्कर्ष

यह समझना चाहिए कि भारत ने श्रीलंका के पड़ोसी होने का अपना अलग फायदा है। दोनों देशों की ऐतिहासिक और भौगोलिक निकटता है और इसलिए वे दोनों एक रणनीतिक और साथ ही साथ हिन्द महासागर क्षेत्र पर विशेष जोर देने के साथ दक्षिण एशिया के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण राजनीतिक स्थान पर कब्जा कर लेता है। लेकिन भारत और श्रीलंका के बीच चिंता का कारण चीन है। चीन ने अपनी आर्थिक ताकत का इस्तेमाल करके श्रीलंका को भारी कर्ज में फंसा दिया है और उसे विकास के अविरल ऋण के रूप में विस्तारित किया है। जिसके परिणामस्वरूप हबनटोटा पोर्ट चीन को 99 साल की लीज पर मिला है। इसका भारत की सुरक्षा पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है, क्योंकि चीन अपनी 'स्ट्रिंग ऑफ पर्ल्स' और 'मैरिटाइम सिल्क रूट' रणनीतियों के माध्यम से भारत को बहुत आसानी से घेरने में सक्षम है। चीन भारत के दक्षिण तक पहुंच बना रहा है और भारत को अन्य पड़ोसी देशों के साथ मजबूत संबंधों के निर्माण से रोक रहा है। यह हिंद महासागर में समुद्री गलियों तक पहुंच प्रदान कर रहा है जो अन्य देशों और भारत के लिए रणनीतिक रूप से खतरनाक है क्योंकि चीन आसानी से एक आक्रामक शक्ति की तरह व्यवहार कर रहा सकता है जैसा कि वह पूर्वी चीन सागर और दक्षिणी चीन सागर में व्यवहार कर रहा है। चीन भारत की संप्रभुता और क्षेत्रीय अखंडता और श्रीलंका मालदीव और मॉरिशस जैसे अन्य राष्ट्रों के लिए खतरा हो सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. चक्रवती, आर (1970) अन्दर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, कलकत्ता : द वर्ल्ड प्रैस प्राइवेट लि. 1970
2. किशोर कुमार 'म्यांमार, नेपाल और बाग्लादेश के प्रति चीन का सम्बन्ध : चीन स्ट्रिंग ऑफ पर्ल्स स्ट्रटेजी एक अध्ययन' वर्ल्ड फोकस अप्रैल 2019
3. अनिक चटर्जी 'भारत की प्रमुख विदेश नीति और पड़ोसी शक्तियाँ' ओरियंट बलक स्वन प्राइवेट लिमिटेड, हैदराबाद, 2017
4. नीलदेवोत्त, 'भारत की विदेश नीति: पूर्वव्यापी और सम्भावना' ओक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस नई दिल्ली, 2017
5. प्रियम चक्रवर्ती और मनोहरन, 'भारत श्रीलंका सम्बन्ध : उतार-चढ़ाव का प्रबन्धन', इंडियन फोरन अफेयर जरनल, जुलाई-सितम्बर, 2016
6. द हिन्दु, अप्रैल 30, 2017
7. द हिन्दु, नवम्बर 22, 2019
8. Jehan Perera, "Making Best Use of Shrilanka's Stratigic Location", The Citizen, Sepetember 11, 2019
9. https://en.wikipedi.org/wiki/china%E2%80%93SriLanka-relation
10. Kumar, S.Y. Surendra, China's strategic engagement with SriLanka: Implication for India, Contemporary Chinese Political Economy and Strategic Relation: An Internation Journal Dec. 2017

ISSN 2278 - 0327

व्यक्तित्व एवं मानसिक स्वास्थ्य पर कोविड-19 महामारी की प्रतीति

डॉ. योगेन्द्र बाबू
सहायक प्रोफेसर, शिक्षा विभाग
महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र

डॉ. हरीश पाण्डेय
सहायक प्रोफेसर, शिक्षा विभाग
महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र

सारांश

प्रस्तुत लेख में मुख्य रूप से व्यक्तित्व एवं मानसिक स्वास्थ्य पर कोविड-19 का व्यावहारिक प्रभाव के विषय में विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है। प्रस्तुत प्रपत्र के अंतर्गत व्यक्तित्व का अर्थ एवं परिभाषा, व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों, एक अच्छे व्यक्तित्व की विशेषताओं पर समुचित रूप से प्रकाश डाला गया है। मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ एवं परिभाषा पर प्रकाश डालते हुए एक अच्छे मानसिक स्वास्थ्य के विभिन्न पहलुओं को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है। वर्तमान समय में जब समूचा विश्वकोविड -19 जैसी महामारी से जूझ रहा है तब समय के इस कालखंड में कोविड -19 ने आम जनमानस के व्यक्तित्व एवं मानसिक स्वास्थ्य को किस प्रकार से प्रभावित किया है, उन समस्त परिस्थितियों का उल्लेख किया गया है। साथ ही कोविड -19 जैसी महामारी के दौर में हम किस प्रकार से अपने व्यक्तित्व एवं मानसिक स्वास्थ्य की रक्षा कर सकते हैं उन सभी बातों को रेखांकित किया गया है।

मुख्य शब्द : व्यक्तित्व, मानसिक स्वास्थ्य , कोविड-19

प्रस्तावना : नूतन सहस्राब्दी के आधुनिक भूमंडलीय युग में किसी भी राष्ट्र के लिए उसके भौतिक एवं मानव संसाधनों का अत्यन्त महत्व है। वस्तुत: भौतिक एवं मानव संसाधन ही किसी राष्ट्र को अग्रणी राष्ट्रों की कतार में खड़ा करने के लिए सक्षम बनाते हैं। भौतिक संसाधनों की उपलब्धता सीमित एवं प्रकृतिजन्य होने के कारण आज के युग में मानव संसाधनों के विकास पर अधिक जोर दिया जाने लगा है। नि:सन्देह किसी भी राष्ट्र अथवा समाज के विकास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन मानव है। कोई भी राष्ट्र तब ही उन्नति कर सकता है जब उस राष्ट्र के सभी नागरिकों को विकास के सर्वोत्तम अवसर मिलें तथा वे उनका लाभ उठाने के लिए समर्थ हों। यह तभी सम्भव है जब समाज के सभी नागरिकों के व्यक्तित्व का उत्तम रूप से समुचित विकास हुआ हो एवं सभी नागरिक शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वास्थ्य हों। वर्तमान समय में कोविड-19 महामारी ने मानवीय समाज के सम्मुख व्यक्तित्व एवं मानसिक स्वास्थ्य सम्बंधित कई समस्याएं उत्पन्न कर दी है जिनका यदि समय रहते निराकरण नहीं किया गया तो मानवीय सभ्यता और समाज को खतरे में डाल देगी।

व्यक्तित्व का अर्थ एवं परिभाषा : व्यक्तित्व शब्द का प्रयोग साधारण बातचीत के दौरान बहुतायत से किया जाता है। साधारण बातचीत में प्रयुक्त 'व्यक्तित्व' शब्द किसी ऐसे गुण या विशेषता को इंगित करता है, जिसे सभी व्यक्ति विभिन्न परिस्थितियों में व्यवहार करने तथा पारस्परिक संबंधों की दृष्टि से विशेष महत्व देते हैं। यद्यपि सामान्य बोलचाल में व्यक्तित्व शब्द का उपयोग तो बहुतायत: से किया जाता है, परन्तु 'व्यक्तित्व' शब्द को परिभाषित करने का कोई प्रयास नहीं किया जाता है। फिर भी सभी व्यक्ति समझते हैं कि इस प्रकार के वाक्यांशों से क्या अभिप्राय है। स्पष्ट है कि सामान्य अर्थों में व्यक्तित्व से तात्पर्य शारीरिक गठन, रंगरूप, वेशभूषा, बातचीत के ढंग तथा कार्य व्यवहार जैसे विभिन्न गुणों के संयोजन (unification) से लगाया जाता है। व्यक्तित्व शब्द के अंग्रेजी पर्याय 'पर्सनालिटी' (Personality) का शाब्दिक अर्थ भी व्यक्ति के बाह्य गुणों या बाह्य आचरण को इंगित करता है। वस्तुत: अंग्रेजी शब्द पर्सनालिटी (Personality) शब्द लैटिन भाषा के शब्द पर्साना (Persona) से बना है, जिसका अर्थ मुखौटा है। पर्साना शब्द का अभिप्राय उस पहनावे या वेशभूषा से था, जिसे पहनकर नाटक के पात्र रंगमंच पर किसी अन्य व्यक्ति का अभिनय करते थे। अत: पर्सनालिटी शब्द का शाब्दिक अर्थ व्यक्ति के बाह्य दिखावे मात्र को इंगित करता है। व्यक्तित्व शब्द का यह अर्थ निश्चय ही एक संकुचित अर्थ है। आधुनिक सन्दर्भ में व्यक्तित्व एक अत्यन्त व्यापक शब्द है तथा मनोविज्ञान की दृष्टि से इसका वास्तविक अर्थ इसके परम्परागतरूप से अभिव्यक्त होता

है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व गुणों का समग्र रूप है। व्यक्तित्व का गत्यात्मक पक्ष बताता है कि व्यक्तित्व कोई जड़ या स्थिर विशेषता नहीं है, बल्कि इसमें एक प्रकार की परिवर्तनशीलता तथा नम्यता होती है।व्यक्तित्व एक मनोशारीरिक तन्त्र है अर्थात् इसमें न केवल शारीरिक गुण बरनु मनोवैज्ञानिक गुण भी निहित रहते हैं। व्यक्ति के विभिन्न शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक गुण मिलकर उसके कुल व्यक्तित्व की रचना करते हैं। इस प्रकार से व्यक्तित्व के प्रत्यय में स्वास्थ्य, शारीरिक गठन, वेशभूषा, वाणी जैसे अनेक शारीरिक गुण तथा मैत्रीभाव, परोपकार, समाजसेवा, बुद्धि, स्वभाव, चरित्र जैसे अनेकानेक मनोवैज्ञानिक गुण समाहि रहते हैं। केवल शारीरिक गुणों या केवल मनोवैज्ञानिक गुणों के आधार पर व्यक्तित्व के संबंध में कुछ कहना, व्यक्तित्व के अधूरे पक्ष को प्रस्तुत करना होगा।(सिंह, 2019)

आलपोर्ट (Allport, 1937) के अनुसार, 'व्यक्तित्व व्यक्ति के भीतर उन मनोशारीरिक तंत्रों का गतिशील या गत्यात्मक संगठन है जो वातावरण में उसके अपूर्व समायोजन को निर्धारित करते हैं।'

वाल्टर मिसकेल (Walter Mischel, 1981) के अनुसार, 'प्राय: व्यक्तित्व से तात्पर्य व्यवहार के उस विशिष्ट पैटर्न (जिसमें चिन्तन एवं संवेग भी सम्मिलित है) से होता है जो प्रत्येक व्यक्ति के जिन्दगी की परिस्थितियों के साथ होने वाले समायोजन का निर्धारण करता है।'

व्यक्तित्व के निर्धारक कारक- व्यक्तित्व के निर्धारक से तात्पर्य कुछ वैसे कारकों (factors) से होता है जिससे व्यक्ति का विकास प्रभावित होता है। मनोवैज्ञानिकों ने इस तरह के कारको को दो भागों में बाँटा है। कुछ कारक ऐसे हैं जिनका सम्बन्ध व्यक्ति के आनुवंशिकता (heredity) या जैविक प्रक्रियाओ (biological processes) से होते है । इस तरह के कारक को जैविक कारक (biological determinant) कहा जाता है। कुछ कारक ऐसे हैं जिसका सम्बन्ध व्यक्ति के वातावरण (environment) से होता है। इन्हें पर्यावरणी कारक (environmental factor) कहा जाता है। जन्म के बाद व्यक्ति किसी समाज या संस्कृति के वातावरण में पाला-पोषा जाता है। अत: वातावरण से सम्बन्धित भी कुछ ऐसे कारक होते हैं जो व्यक्ति के विकास को प्रभावित करते हैं। (सिंह, 2019)

1. जैविक कारक या आनुवंशिक कारक-जैविक कारकों के अंतर्गत प्रमुख्य रूप से निम्न कारकों को सम्मिलित किया जाता है- शारीरिक संरचना , शारीरिकस्वास्थ्य, शरीर रसायन, अंत: स्रावी ग्रंथियां, स्नायु मंडल आदि।

2. पर्यावरणी कारक- पर्यावरणीय कारकों की भी व्यक्तित्व के विकास में महती भूमिका रहती है इसके अंतर्गत निम्न घटकों को संम्मिलित किया जा सकता है -सामाजिककारक, सांस्कृतिक कारक तथा आर्थिक कारक आदि।

मानसिक स्वास्थ्य (Mental Health) - मानसिक स्वास्थ्य (mental health) से क्या तात्पर्य होता है? सामान्यत: यह समझा जाता है कि जब व्यक्ति किसी भी तरह की मानसिक बीमारी (mental illness) से मुक्त होता है, तो उसे मानसिक रूप से स्वस्थ समझा जाता है और उसकी इस अवस्था को मानसिक स्वास्थ्य की संज्ञा दी जाती है। लेकिन कुछ चिकित्सको का मत है कि मानसिक स्वास्थ्य को मानसिक बीमारी की अनुपस्थिति कहना बहुत ही उपयुक्त नहीं दीख पड़ता है। क्योंकि मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति में भी कभी-कभी मानसिक बीमारी के लक्षण जैसे-आवेगशीलता (impulsivity), सांवेगिक अस्थिरता (emotional stability), अनिद्रा आदि के लक्षण दिखाई पड़ते है। इसलिए आधुनिक नैदानिक मनोवैज्ञानिकों ने मानसिक स्वास्थ्य (mental health) को समायोजनशीलता (adaptability) की क्षमता को मुख्य कसौटी मानकर इसे परिभाषित किया है। इसी संदर्भ में **स्ट्रेन्ज** (Strange, 1965) ने मानसिक स्वास्थ्य को परिभाषित करते हुए कहा है, 'मानसिक स्वास्थ्य से तात्पर्य वैसे सीखे गए व्यवहार से होता है जो सामाजिक रूप से अनुकूली होते हैं और जो व्यक्ति को अपनी जिन्दगी के साथ पर्याप्त रूप से मुकाबला करने की अनुमति देता है।' **हारविज तथा स्कोड** (Horwitz & Scheid, 1999) ने मानसिक स्वास्थ्य को इस प्रकार परिभाषित किया है 'मानसिक स्वास्थ्य में कई आयाम सम्मिलित होते हैं-आत्म-सम्मान, अपने अंतशक्तियों का अनुभव, सार्थक एवं उत्तम संबंध बनाये रखने की क्षमता तथा मनोवैज्ञानिक श्रेष्ठता।' **कार्ल मेनिगर** (Karl Menninger, 1945) के अनुसार, 'मानसिक स्वास्थ्य अधिकतम खुशी तथा प्रभावशीलता के साथ बातावरण एवं उसके प्रत्येक दूसरे व्यक्ति के साथ मानव समायोजन है-वह एक संतुलित मनोदशा, सतर्क बुद्धि, सामाजिक रूप से मान्य व्यवहार तथा एक खुश मिजाज बनाए रखने की क्षमता है।'

इन परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर हमें मानसिक स्वास्थ्य के स्वरूप के बारे में निम्नांकित तथ्य प्राप्त होते हैं

- मानसिक स्वास्थ्य की मूल कसौटी अर्जित व्यवहार (learnt behaviour) है। इस तरह का व्यवहार का स्वरूप कुछ ऐसा होता है जिससे व्यक्ति को सभी तरह के समायोजन (adaptation)

करने में मदद मिलती है।

■ मानसिक स्वास्थ्य एक संतुलित (balanced) मनोदशा की अवस्था होती है जिसमें व्यक्ति अपने जिन्दगी के विभिन्न हालातों में सामाजिक रूप से तथा सावैगिक रूप से एक मान्य व्यवहार बनाए रखता है।

■ मानसिक रोग या बीमारी (mental illness) वातावरण के साथ किए गए कुसमायोजी व्यवहार (maladaptive behaviour) को कहा जाता है। डेविड मैकनिक (David Mechanic, 1999) के अनुसार मानसिक बीमारी एक तरह का विचलित व्यवहार (deviant behaviour) होता है जिसमें व्यक्ति की चिंतन प्रक्रियाएँ, भाव एवं व्यवहार सामान्य प्रत्याशाओं एवं अनुभूतियों से भिन्न या अलग होता है और प्रभावित व्यक्ति या समाज इसे एक ऐसी समस्या के रूप में पहचान करता है जिसमें नैदानिक हस्तक्षेप (clinical intervention) आवश्यक हो जाता है। (सिंह, 2018)

मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति की विशेषताएँ

(Characteristics of Mentally healthy people)-

नैदानिक मनोवैज्ञानिकों ने मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों की कुछ खास-खास विशेषताओं का उल्लेख किया है जिनमें निम्नांकित प्रमुख है

(1) आत्म-ज्ञान (Self knowledge) मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति की एक प्रमुख विशेषता यह है कि उसे अपनी प्रेरणा, इच्छा, भाव, आकांक्षाओं आदि का पूर्ण ज्ञान होता है। वह यह पूर्णत: समझता है कि वह क्या कर रहा है, क्यों उसमें अमुक ढंग का भाव उत्पन्न हो रहा है, उसकी आकांक्षाएँ क्या है, आदि आदि।

(2) आत्म-मूल्यांकन (Self-evaluation) - मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति आसानी से अपने गुण-दोष की परख कर लेता है। वह अपने प्रत्येक व्यवहार को तटस्थ होकर अध्ययन करता है तथा अपने व्यवहार की परिसीमाओं (limitations) की परख करता है।

(3) आत्म श्रद्धा (Self-esteem) - मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति में आत्म-श्रद्धा काफी होती है जिसके कारणउसमें आत्म-विश्वास, आत्म-बल तथा अपने भावों को स्वीकार करते हुए कार्य करने की क्षमता होता है।

(4) सुरक्षा का भाव (Feeling of security)- मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति में यह भावना तीव्र होती है कि वह समाज का स्वीकृत सदस्य है तथा लोग उसके भाव का आदर करते हैं। वह दूसरों के साथ निडर होकर अन्त: क्रिया (interaction) करता है तथा खुलकर हँसी-मजाक में भाग लेता है। समूह का दबाव पड़ने के बावजूद भी वह अपनी इच्छाओं को दमित नहीं करने की कोशिश करता है।

(5) संतोषजनक संबंध बनाए रखने की क्षमता (Ability to form satisfying relationship)-मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति की एक विशेषता यह है कि वह दूसरों के साथ संतोषजनक संबंध बनाए रखने से प्रसन्न होते है। वह कभी भी दूसरों के सामने अवास्तविक माँग (unrealistic demand) नही पेश करता है। फलस्वरूप, उसका संबंध दूसरों के साथ हमेशा संतोषजनक बना रहता है।

(6) शारीरिक इच्छाओं की संतुष्टि (Satisfaction of bodily desires) मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति को यह भी एक विशेषता है कि अपने शारीरिक अंगों (bodily organs) के कार्यों के प्रति एक स्वच्छ एवं धनात्मक मनोवृत्ति रखता है। वह इनके कार्यों से पूर्णरूपेण अवगत रहते हुए भी उसमें किसी प्रकार की आसक्ति (indulgence) नहीं दिखलाता है।

(7) उत्पादी एवं खुश रहने की क्षमता (Ability to be productive and happy) मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति अपनी क्षमता को उत्पादी कार्य (productive work) में लगाते हैं तथा उससे वे काफी खुश रहते हैं। वह ऐसे कार्य में अच्छा उत्साह एवं मनोबल (morale) दिखलाता है और अपने को खुशमिजाज साबित करता है।

(8) **तनाव एवं अतिसंवेदनशीलता की अनुपस्थिति**

(Absence of tension and hypersensitivity)-

मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति में मानसिक तनाव उत्पन्न नहीं हो पाता है और यदि कभी हुआ भी तो वह तुरंत ही नियंत्रित कर लिया जाता है। ऐसे व्यक्ति दूसरों द्वारा किए गए प्रशंसा या आलोचना (criticisms) का प्रभाव अपने ऊपर अधिक नहीं पड़ने देते हैं। दूसरे शब्दों में, इसमें संवेदनशीलता (sensitivity) के गुण की कमी होती है।

(9) अच्छा शारीरिक स्वास्थ्य (Good mental health)-

मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति की एक विशेषता यह भी होती है कि इनका शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा एवं आकर्षक होता है। यह विशेषता उस कहावत से जुड़ी हुई है कि स्वस्थ मास्तिष्क स्वस्थ शरीर में रही रहता है (Sound mind resides in sound body)।

(10) जिन्दगी का एक स्पष्ट सिद्धान्त (Clear-cut philosophy of life) मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति अपने

जीवन में कुछ ठोस सिद्धान्त (philosophy) बनाए रखते हैं और वे हमेशा उसी सिद्धान्त के अनुकूल कार्य करते हैं। ऐसे व्यक्तियों के सिद्धान्त में मानसिक संघर्ष, विरोधाभास जैसी चीजों की सर्वथा कमी होती है।

(11) वास्तविक प्रत्यक्षण (Realistic perception) - मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति किसी वस्तु, घटना या चीज का प्रत्यक्षण वस्तुनिष्ठ ढंग से करते हैं। वे इन चीजों का प्रत्यक्षण ठीक उसी ढंग से करने की कोशिश करते हैं जो हकीकत होता है। वे अपनी ओर से प्रत्यक्षण करते समय कुछ काल्पनिक तथ्यों का सहारा नहीं लेते हैं।

(12) स्पष्ट जीवन लक्ष्य (Clear life goal) - मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति का एक स्पष्ट जीवन लक्ष्य (life goal) होता है। वह जीवन लक्ष्य को निर्धारित कर उसे प्राप्त करने का हर संभव प्रयास करता है। प्राय: वह अपने जीवन लक्ष्य निर्धारित करने में अपनी क्षमताओं, योग्यताओं एवं दुर्बलताओं को मद्देनजर रखता है।

मानसिकस्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारक (Factors influencing Mental Health) नैदानिक मनोवैज्ञानिकों ने कुछ ऐसे कारकों की पहचान किया है जिसमें व्यक्ति का मानसिक स्वास्थ्य प्रभावित होता है। इन कारकों में निम्नांकित प्रमुख हैं

1. शारीरिक स्वास्थ्य (Physical health) -कई मनोवैज्ञानिक अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि शारीरिक स्वास्थ्य तथा मानसिक स्वास्थ्य में गहरा संबंध है। जिस व्यक्ति का शारीरिक स्वास्थ्य उत्तम होता है, उनमें सामान्यत: चिन्ता, संघर्ष (conflict), विरोधाभास आदि नकारात्मक तत्त्व नहीं होते हैं। शारीरिक स्वस्थता के कारण उनमें शारीरिक ऊर्जा पर्याप्त होती है और उनमें कार्य संतोष भी अधिक रहता है। फलस्वरूप, इनका मानसिक स्वास्थ्य उत्तम रहता है।

2. प्रमुख आवश्यकताओं की संतुष्टि (Satisfaction of primary needs)-प्रत्येक व्यक्ति की कुछ आवश्यकताएँ होती हैं जिनमें से कुछ प्रमुख होती है तथा कुछ गौण होती है। जिस व्यक्ति की सभी प्रमुख आवश्यकताओं की तुष्टि हो जाती है तथा अधिकतर गौण आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है, तो उसका मानसिक स्वास्थ्य भी उत्तम हो जाता है। इसका प्रधान कारण यह है कि ऐसे व्यक्तियों में किसी प्रकार का मानसिक द्वन्द्व या संघर्ष नहीं रह जाता है तथा उनमें आत्म-संतुष्टि (self-satisfaction) की भावना बढ़ जाती है।

3. परिवार के सदस्यों का मानसिक रोग से पीड़ित नहीं होना (Lack of mental illness among members of family) कुछ नैदानिक मनोवैज्ञानिकों जैसे-शेफर (Shafer, 1975) का मत कि कुसमायोजित व्यवहार (maladaptive behaviour) अर्जित होते हैं। यदि परिवार का कोई सदस्य विशेषकर यदि माता-पिता या अन्य कोई महत्वपूर्ण व्यक्ति मानसिक रूप से बीमार होता है, तो व्यक्ति उनके व्यवहारों से प्रभावित होकर स्वयं भी वैसा ही करने लगता है। इससे उनके मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है और वह भी अपना मानसिक संतुलन (mental balance) खोने लगता है और वह धीरे-धीरे रोग का शिकार हो जाता है।

4. वास्तविक मनोवृत्ति की कमी (Lack of realistic attitude)- यदि व्यक्ति में किसी कारण से वास्तविकता से हटकर काल्पनिक दुनिया में विचरण करने की आदत बन जाती है, तो ऐसे व्यक्तियों में घटनाओं, वस्तुओं एवं व्यक्तियों के प्रति एक तरह का अवास्तविक मनोवृत्ति (unrealistic attitude) विकसित हो जाती है। अवास्तविक मनोवृत्ति के विकसित हो जाने में उनमें आवेगशीलता (impulsivity), सांवेगिक अनियंत्रण, चिड़चिड़ापन आदि के लक्षण विकसित हो जाते हैं और उनका मानसिक स्वास्थ्य धीरे-धीरे खराब हो जाता है।

5. असामाजिक वातावरण (Unsocial environment) - फेयर्स (Phares, 1980) ने कुछ ऐसे सबूत प्रदान किये हैं जिनके आधार पर यह कहा जाता है कि जब व्यक्ति को अस्वस्थ्यकर (unhealthy), अनैतिक एवं असामाजिक वातावरण में लगातार रहते हुए बहुत दिनों तक अन्त:क्रिया (interactions) करना होता है, तो इसमें उसमें दोष भाव (guilt-feeling), आत्म-निन्दा (self-condemnation) की भावना विकसित हो जाती है जो धीरे धीरे इनके मानसिक स्वास्थ्य (mental health) को कमजोर बनाते चला जाता है। फेयर्स (1980) ने 40 ऐसे केसेज का साक्षात्कार किया है जिनका मानसिक स्वास्थ्य पहले अच्छा था परन्तु बाद में काफी गिर गया था। इनके साक्षात्कार से पता चला कि इसमो से अधिकतर व्यक्तियों ने सामाजिक एवं नैतिक रूप से बुरे वातावरण में आ जाने के फलस्वरूप अपने में उत्पन्न हीनता का भाव दोष-भाव एवं आत्म-निन्दा को ही अपने बुरे मानसिक स्वास्थ्य का कारण बतलाया।

(6) मनोरंजन के साधन का अभाव (Lack of means of entertainment) - मैकोवर (Machover, 1990) ने पर्याप्त मनोरंजन एवं मानसिक स्वास्थ्य में सीधा संबंध बतलाया है। इनका मत है कि यदि किसी व्यक्ति को उसकी इच्छानुसार पर्याप्त

मनोरंजन के साधन उपलब्ध होते हैं, तो उसमें मानसिक प्रफुल्लता पायी जाती है और उनका मानसिक स्वास्थ्य ठीक रहता है। परन्तु यदि किसी कारण से किसी व्यक्ति को उसकी इच्छानुसार पर्याप्त मनोरंजन नहीं हो पाता है, तो उससे इनमें मानसिक घूटन उत्पन्न हो जाती है जो धीरे-धीरे उनके मानसिक स्वास्थ्य को कमजोर करता जाता है।

स्पष्ट हुआ कि मानसिक स्वास्थ्य कई कारकों से प्रभावित होता है। इन कारकों को नियंत्रित करके मानसिक स्वास्थ्य को काफी हद तक उन्नत बनाया जा सकता है।

मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाने के उपाय(Measures for Promoting Mental Health)

नैदानिक मनोवैज्ञानिकों ने कुछ ऐसे विशेष उपायों का भी वर्णन किया है जिनसे व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाया जा सकता है। विटेकर (Whittaker, 1970), कोलमैन (Coleman, 1956), मैकवेस्ट (MeBest, 1980) ने नैदानिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाने के लिए किए गए उपायों को निम्नांकित तीन भागों में बांटा है।

(क) निरोधात्मक उपाय (Preventive measures) - इन उपायों की मूल पूर्वकल्पना (assumption) यह होती है कि दुरुस्त शरीर में ही दुरुस्त मस्तिष्क पाया जाता है (Sound mind resides in sound body)। नैदानिक मनोवैज्ञानिकों का मत है कि यदि व्यक्ति शरीरिक रूप से स्वस्थ रहता है, तो वह अपने आप ही मानसिक रूप से भी स्वस्थ रहता है। शारीरिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति जिन्दगी के तनावपूर्ण परिस्थितियों का डट कर सामना करने में सक्षम होते हैं। सांवेगिक तनाव से सामना होने पर वे उसका उचित समाधान आसानी से निकाल सकने में समर्थ हो पाते हैं। फलत: ऐसे व्यक्तियों का मानसिक स्वास्थ्य उत्तम होता है। अत: इन उपायों के तहत उन सभी तरह के साधनों पर विचार किया जाता है जिससे व्यक्ति का शारीरिक स्वास्थ्य उन्नत बना रह सके। कुछ नैदानिक मनोवैज्ञानिकों ने इस बात पर भी बल डाला है कि विशेष शारीरिक हालातों जैसे, मस्तिष्कीय ट्यूमर (brain tumors), सिफिलिश (syphilis) एवं अन्य गंभीर आंगिक अवस्थाओं जिनसे मानसिक अक्षमताएँ उत्पन्न हो सकती हैं, का यथासंभव जल्द-से-जल्द उपचार करवाना चाहिए ताकि व्यक्ति का मानसिक स्वास्थ्य उनसे प्रभावित न हो सके।

(ख) मनोवैज्ञानिक उपाय (Psychological measures) मनोवैज्ञानिक उपायों में कई तरह के उपाय या सुझाव दिये गए हैं जिनसे मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाया जा सकता है। इन उपायों का वर्णन नैदानिक मनोवैज्ञानिकों ने दो स्तरों पर किया है । (1) शैशवावस्था (infancy) एवं प्रारंभिक बाल्यावस्था (early childhood) के उपाय तथा (2) उत्तर बाल्यावस्था (later childhood), किशोरावस्था एवं वयस्कावस्था का उपाय (measures)

(ग) सामाजिक-सांस्कृतिक उपाय (Socio-cultural measures) - बहुत सारे ऐसे सबूत मिले हैं जिनसे यह स्पष्ट हुआ है कि विशेष सामाजिक परिस्थिति जैसे निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर (lower socioeconomic level) तथा विवाह-विच्छेद (divorce), माता या पिता की मृत्यु तथा अन्य वैसी ही परिस्थिति से मानसिक रोग उत्पन्न होता है। अत: यदि इन कारकों के पड़ने वाले प्रभावों को नियंत्रित कर दिया जाए, तो इसमें व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य का स्तर काफी बढ़ सकता है। रोजेन एवं ग्रिगोरी (Rosen & Gregori, 1985) ने अपनी समीक्षा के आधार पर यह बतलाया है कि धीरे-धीरे सामाजिक आर्थिक स्तर उन्नत कर देने से एवं जीवनके अन्य प्रतिकूल परिस्थितियों (adverse: situation) के साथ पर्याप्त समझौता कर लेने से व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य का स्तर उत्तरोतर उत्तम होते चला जाता है।

व्यक्तित्व, मानसिक स्वास्थ्य और कोविड-19

BBC न्यूज की एक रिपोर्ट के अनुसार इस समय जो माहौल है दुनिया का उसे कुछ यूँ दर्शाया गया है कि अख़बार कोरोना वायरस की ख़बरों से भरे होते हैं, रेडियो-टीवी पर एक ही शब्द सुनाई पड़ता है कोविड-19 और उससे जुड़ी कहानियां। किसी को फ़ोन करो तो पहले रिकॉर्डेड मैसेज के ज़रिए कोरोना से बचने के उपाय ही बताए जाते हैं। सोशलमीडिया पर कोविड-19 की महामारी ऐसी भयावह तस्वीरें सामने आ रही है, जिन्हें देख और पढ़कर कर ख़ौफ़ आता है। बहुत से जानकार पहले ही आगाह कर चुके हैं कि कोविड-19 पर जिस तरह जानकारी और संदेशों की गोलीबारी हो रही है, उसका सीधा और तुरंत प्रभाव हमारे दिमाग़ कीसेहत पर पड़ेगा। हर वक्त डर का माहौल हमारे मनोविज्ञान और सेक्सुअल व्यवहार पर भी प्रभाव डालता है। बीमारी के प्रति हमारी सोच इतनी गहरी हो जाती है कि वो हमेंमिज़ाज से रूढ़िवादी बना देती है. हम सामाजिक दृष्टिकोण से पिछड़ जाते हैं। ये हमारे राजनीतिक झुकाव को भी प्रभावित कर सकता है। हाल ही में नस्लवाद और विदेशियों को नापसंद करने वाली रिपोर्ट में इसी बात की तरफ़ इशारा करती है। इस संबंध में वैज्ञानिकों की रिसर्च रिपोर्ट में जिसतरह की भविष्यवाणी की गई

हैं, अगर वो सही साबित होती हैं तो आने वाले समयमें दुनिया में बड़ा मनोवैज्ञानिक और सामाजिक बदलाव देखने को मिलेगा।

महामारियां पहले भी फैलती रही हैं। उस दौर में किसी का बच जाना ही करिश्मे से कम नहीं होता था। तब भी महामारियां सभी को अपना शिकार नहीं बनाती थीं। जिनकी रोगप्रतिरोधक क्षमता अच्छी होती थी, वो इससे बच जाते थे। लेकिन जो बच जाते थेउन पर महामारियों का बुरा प्रभाव पड़ता था। मतलब ये कि वो लोग आसानी सेसामान्य जीवन शुरु नहीं करते थे। कनाडा की ब्रिटिश कोलंबिया यूनिवर्सिटी रिसर्चर मार्क शालर का कहना है कि बीमारीके साथ प्रतिरोधक क्षमता बढ़ा कर काम करना वाक़ई में एक मुश्किल काम है। मार्क शालर के मुताबिक़ किसी भी बीमारी से लड़ने के लिए हर तरह की प्रतिरोधक क्षमता का मज़बूत होना बहुत ज़रुरी है। इसके लिए मनोवैज्ञानिक बीहैवियरल इम्यून सिस्टम जैसे शब्द का इस्तेमाल करते हैं। यानी अगर महामारी से लड़ना है, तो सबसे पहले अपने व्यवहार से इसके संपर्क को तोड़ना है.यानी एक दूसरे से दूरी बनानी ज़रुरी है।

बहुत से प्रयोगों से ये बात साफ़ हो गई है कि जब हम किसी बीमारी का ख़तरा महसूस करते हैं तो हम परंपराओं को सिर झुका कर मान लेते हैं और हम ज़्यादासम्मान के पात्र बन जाते हैं। एक प्रयोग के तहत बीमारी से ज़्यादा चिंतित प्रतिभागियों से पूछा गया कि वो किस प्रकार के लोगों को पसंद करते हैं। लगभग सभी का जवाब पारंपरिक रिवाजों में यक़ीन रखने वाले व्यक्तियों के पक्षमें था। यानी उन्हें रचनात्मक या कलात्मक लोगों की तुलना में परंपरा कापालन करने वाले लोग ज़्यादा पसंद थे। इससे पता चलता है कि संक्रमण के दौरान स्वतंत्र सोच, आविष्कार और नई खोज करने वाले विचार कमज़ोर पड़ जाते हैं। उनमें ये सोच ज़्यादा पनपने लगती है कि सामाजिक मानदंडों को तोड़ना नुक़सानदेह हो सकता है और उसके परिणाम भी घातक हो सकते हैं। जब भी कोई संक्रमण फैलता है तो ज़्यादातर लोग सामाजिक नियमों का पालन ज़्यादा सख़्ती से करने लगते हैं। नियमों का पालन करते-करते हम कब नैतिकताके चौकीदार बन जाते हैं, इसकी ख़बर ख़ुद हमें भी नहीं लगती। मिसाल के लिएरोज़ नहाना, खाने से पहले हाथ धोना, घर और आसपास के माहौल को साफ़ रखनाहमारी परवरिश का हिस्सा है। लेकिन संक्रमण के इस काल में हम अपने सेज़्यादा दूसरों पर नज़र रख रहे हैं। दिमाग़ में सवाल घूमता रहता है कि जो व्यक्ति हमारे साथ काम कर रहा है वो साफ़ सुधरा है कि नहीं। उसने खाने से पहले हाथ धोए कि नहीं। हद तो यहां तक है कि हम सामने वाले को टोकने से भी नहीं चूकते। इससे रिश्तों में एक अनकही दूरी बनने लगती है। अभी तक ऐसा डेटा उपलब्ध नहीं है जिसकी बुनियाद पर कहा जा सके कि कोविड-19 हमारी सोच को बदल रहा है। लेकिन ऐसा हो सकता है। संक्रमण के दिनों में नज़र आने वाला हमारा सामाजिक व्यवहार सामाजिक दृष्टिकोण में भारी बदलाव ला सकता है। इसकी मिसाल हम वर्ष 2014 में फैली इबोला महामारी के दौरान देख चुके हैं। जब से कोविड-19 महामारी शुरू हुई है, तबसे कई रिपोर्टों से यह संकेत मिला है कि अलग-अलग आयु वर्ग के व्यक्तियों के बीच मानसिक स्वास्थ्य संबंधी स्थिति बिगड़ रही है। इस पोस्ट में, मिशेलमैरी बर्नडाइन ने भारत में मानसिक स्वास्थ्य की परिस्थितियों को दर्शाया है, जैसे अर्थव्यवस्था के लिए मानसिक स्वास्थ्य संकट की लागत कितनी है और इस संकट का समाधान करने के लिए कानून और राज्य की मौजूदा क्षमता किस हद तक समर्थ हैं।

सन्दर्भ सूची :

- सिंह, ए .के. (2019). उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली
- सिंह, ए .के. (2018). उच्चतर नैदानिक मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली
- सिंह, ए .के (2017). समाजमनोविज्ञान कीरूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास , दिल्ली
- सिंह, ए .के. (2018). संज्ञानात्मक मनोविज्ञान , मोतीलाल बनारसीदास , दिल्ली
- फ्रायड (2009). मनोविश्लेषण,राजपाल एण्ड सन्ज , कश्मीरीगेटदिल्ली
- गुप्ता,एस.पी (2012). उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान
- https://www.bbc.com/hindi/vert-fut-52345453

ISSN 2278 - 0327

सामान्य एवं श्रवण बाधित छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. अनामिका श्रीवास्तव
प्राध्यापक, शिक्षा विभाग,
मानसरोवर ग्लोबल विश्वविद्यालय, सीहोर (म.प्र.)

अवनीश कुमार पांडे
शोधार्थी, शिक्षा संकाय
मानसरोवर ग्लोबल विश्वविद्यालय, सीहोर (म.प्र.)

प्रस्तुत शोध पत्र द्वारा सामान्य एवं श्रवण बाधित छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। शोधकार्य हेतु प्रतिदर्श के रूप में 70 छात्राओं (35 सामान्य व 35 श्रवण बाधित) का चयन करके उनकी शैक्षणिक उपलब्धि के मापन हेतु माध्यमिक शिक्षा मंडल, म.प्र. द्वारा आयोजित माध्यमिक विद्यालयों की कक्षा दसवीं की वार्षिक परीक्षा के प्राप्तांकों का उपयोग किया गया। शोधकार्य से प्राप्त परिणामों के अनुसार माध्यमिक स्तर में अध्ययन करने वाली सामान्य एवं श्रवण बाधित छात्राओं की हिन्दी व सामाजिक अध्ययन विषयों की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया गया तथा सामान्य छात्राओं की हिन्दी व सामाजिक अध्ययन विषयों में शैक्षणिक उपलब्धि, श्रवण बाधित छात्राओं की तुलना में उच्च पाई गयी जबकि सामान्य एवं श्रवण बाधित छात्राओं की अंग्रेजी, संस्कृत, गणित, विज्ञान विषयों तथा समग्र शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

मुख्य शब्द: सामान्य एवं श्रवण बाधित छात्राएं, शैक्षणिक उपलब्धि

सम्पूर्ण प्राणी जगत में मनुष्य ही वह एक मात्र जीव है जो स्वयं एवं अन्य लोगों के द्वारा पूर्व में अर्जित ज्ञान का उपयोग कर सकता है, तथा वह इस ज्ञान का संचय, प्रचार-प्रसार, स्थानांतरण भी कर सकता है एवं वह इस ज्ञान के माध्यम से ही वह स्वयं को इस धरा पर श्रेष्ठ बनाने में तथा अपने अस्तित्व को बचाये रखने में सफल रहा है। शोधकर्ता ने अपनी अध्ययन एवं अध्यापन अवधि के दौरान यह महसूस किया है कि उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थी किशोरावस्था में होने के कारण अनेक समस्याओं से ग्रस्त रहते हैं विशेषकर छात्राएं कुछ अधिक ही समस्याग्रस्त होती हैं, जिसके कारण वह चिंता, अवसाद, तनाव कुसमायोजन एवं कुण्ठा का शिकार हो जाती हैं क्योंकि इस अवस्था में उनमें तीव्र शारीरिक व अन्य परिवर्तन आते हैं एवं उनका मन पढ़ाई से भटकता है तथा यही समय उनके भविष्य निर्माण का होता है एवं इस समय उन पर बेहतर पढ़ाई करने के साथ ही विभिन्न लोगों विशेषकर माता-पिता, घर के अन्य सदस्यों, रिष्तेदारों व समाज के अन्य परिचितों की आकांक्षाओं एवं अपेक्षाओं के साथ ही स्वयं के भविष्य निर्माण एवं व्यक्तिगत अभिलाषाओं का भी दबाब रहता है साथ ही अन पर मित्रों, समाज एवं विद्यालय के प्राचार्य, प्रबंधकों व शिक्षकों की अपेक्षाओं का भी दबाब होता है, जिसके कारण वह इन आकांक्षाओं एवं अपेक्षाओं के बोझ तले दब जाती हैं एवं प्राय: समस्याग्रस्त हो जाती हैं, जिससे उनकी शैक्षणिक उपलब्धि भी प्रभावित होती है। अत: यदि इस अवस्था में उन्हें समय-समय पर उचित मार्गदर्शन मिलता है तो वह इन समस्याओं के मकड़जाल से सफलतापूर्वक बाहर निकल आती हैं, एवं अपनी शैक्षणिक उपलब्धि को बेहतर कर पाती हैं। शैक्षणिक उपलब्धि को किसी भी विद्यार्थी के शैक्षणिक जीवन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक माना गया है। यह उनको और अधिक सीखने तथा अधिक परिश्रम करने के लिए प्रोत्साहित करता है। किशोरियों के जीवन में शैक्षणिक उपलब्धि की अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका होने के कारण ही शोधकर्ता को इस बात की प्रेरणा मिली की वह माध्यमिक विद्यालयों की कक्षा दसवीं में अध्ययन करने वाली सामान्य एवं श्रवण बाधित छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि की तुलना करे, इसीलिए शोधकर्ता ने इस शोध समस्या का चयन इस शोधकार्य हेतु किया है।

पूर्व में भी कुछ शोधकर्ताओं द्वारा इस विषय पर शोधकार्य

किया गया है। **पंडित, ए. एवं अन्य** (2011) के शोध निष्कर्ष के अनुसार अस्थि बाधित, श्रवण बाधित एवं दृष्टि बाधित विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया। **गुल्हाने, जी.** (2014) के शोध निष्कर्ष के अनुसार दृष्टि बाधित एवं श्रवण बाधित विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया गया तथा श्रवण बाधित विद्यार्थियों की भाषा व गणित विषयों में शैक्षणिक उपलब्धि, दृष्टि बाधित विद्यार्थियों की अपेक्षा उच्च पाई गई। **राजकंवर एवं अन्य** (2014) के शोध निष्कर्ष के अनुसार दृष्टि बाधित विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि में लिंगगत आधार पर कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया। दृष्टि बाधित विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि पर उनके आत्मप्रत्यय का कोई सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया। **सैयद, सिपासीह एवं अन्य** (2015) के शोध निष्कर्ष के अनुसार सामान्य एवं विभिन्न अधिगम अयोग्यता वाले विश्वविद्यालयीन विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया तथा विश्वविद्यालय स्तर के सामान्य विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि, विभिन्न अधिगम अयोग्यता वाले विद्यार्थियों की अपेक्षा उच्च पाई गई। **नाज, सीमा** (2017) के शोध निष्कर्ष के अनुसार अस्थि बाधित एवं दृष्टि बाधित विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया गया। अस्थि बाधित एवं श्रवण बाधित विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया गया तथा श्रवण बाधित विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि, अस्थि बाधित विद्यार्थियों की अपेक्षा उच्च पाई गई। दृष्टि बाधित एवं श्रवण बाधित विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया गया तथा श्रवण बाधित विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि, दृष्टि बाधित विद्यार्थियों की अपेक्षा उच्च पाई गई। **सैयद, सिपासीह एवं अन्य** (2017) के शोध निष्कर्ष के अनुसार अधिगम अयोग्यता वाले एवं विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया तथा विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की शैक्षणिक उपलब्धि, अधिगम अयोग्यता वाले बच्चों की अपेक्षा उच्च पाई गई। **नाजिर, शैफिया** (2018) के शोध निष्कर्ष के अनुसार दृष्टि बाधित एवं श्रवण बाधित विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया गया। दृष्टि बाधित एवं अस्थि बाधित विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया गया। अस्थि बाधित एवं श्रवण बाधित विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया गया। सभी प्रकार की विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि पर उनके आत्मसम्मान स्तर का सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया।

शैक्षणिक उपलब्धि पर पूर्व में हुए अनुसंधानों की समीक्षा से प्राप्त परिणामों का विश्लेषण करके शोधकर्ता ने यह देखा कि सामान्य एवं श्रवण बाधित छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि के तुलनात्मक अध्ययन पर अधिक अनुसंधान नहीं दृष्टिगत हुआ है, अत: अनुसंधानकर्ता ने सामान्य एवं श्रवण बाधित छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन करने का निष्चय किया।

उद्देश्य:-

सामान्य एवं श्रवण बाधित छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पना:-

सामान्य एवं श्रवण बाधित छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

उपकरण:-

माध्यमिक विद्यालयों की कक्षा दसवीं की वार्षिक परीक्षा के प्राप्तांकों का उपयोग शैक्षणिक उपलब्धि के मापन हेतु किया गया।

विधि:-

इस शोधकार्य हेतु सर्वप्रथम भोपाल एवं इंदौर जिले की माध्यमिक विद्यालयों की कक्षा दसवीं में अध्ययनरत् 70 छात्राओं (35 सामान्य व 35 श्रवण बाधित) का चयन उद्देश्यपूर्ण न्यादर्श विधि से किया गया तथा उनकी शैक्षणिक उपलब्धि के मापन हेतु माध्यमिक शिक्षा मंडल, म.प्र. द्वारा आयोजित कक्षा 10वीं की वार्षिक परीक्षा के प्राप्तांकों का उपयोग किया गया। प्राप्तांकों के आधार पर मॉस्टर शीट तैयार की गई। क्रांतिक अनुपात परीक्षण के द्वारा आंकड़ों का विश्लेषण किया गया प्राप्त परिणामों के आधार पर निष्कर्ष निकाले गये।

परिणामों का विश्लेषण:-

परिकल्पना: सामान्य एवं श्रवण बाधित छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

तालिका

सामान्य एवं श्रवण बाधित छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि संबंधी

तुलनात्मक परिणाम

विषय	समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात मान	सार्थकता
हिन्दी	सामान्य छात्राएं	35	73.77	9.21	2.22	0.05 स्तर पर सार्थक
	श्रवण बाधित छात्राएं	35	67.77	13.12		
अंग्रेजी	सामान्य छात्राएं	35	43.69	11.23	0.89	0.05 स्तर पर असार्थक
	श्रवण बाधित छात्राएं	35	45.91	9.71		
संस्कृत	सामान्य छात्राएं	35	66.14	10.53	1.04	0.05 स्तर पर असार्थक
	श्रवण बाधित छात्राएं	35	63.26	12.58		
गणित	सामान्य छात्राएं	35	57.43	16.69	0.35	0.05 स्तर पर असार्थक
	श्रवण बाधित छात्राएं	35	58.94	18.94		
विज्ञान	सामान्य छात्राएं	35	60.89	13.43	0.46	0.05 स्तर पर असार्थक
	श्रवण बाधित छात्राएं	35	59.40	13.49		
सामाजिक अध्ययन	सामान्य छात्राएं	35	63.09	11.63	2.27	0.05 स्तर पर सार्थक
	श्रवण बाधित छात्राएं	35	56.26	13.44		
कुल शैक्षणिक उपलब्धि	सामान्य छात्राएं	35	365.00	58.23	0.92	0.05 स्तर पर असार्थक
	श्रवण बाधित छात्राएं	35	351.54	63.39		

स्वतंत्रता के अंश – 78

0.05 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान – 1.99

ऊपर प्रदर्शित इन परिणामों से स्पष्ट दिख रहा है कि सामान्य एवं श्रवण बाधित छात्राओं की हिन्दी व सामाजिक अध्ययन विषयों की शैक्षणिक उपलब्धि में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर है, क्योंकि इनके लिए प्राप्त क्रांतिक अनुपात के मान क्रमश: 2.22, 2.27 स्वतंत्रता के अंश 78 पर सार्थकता के 0.05 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान 1.99 की अपेक्षाकृत अधिक हैं, जबकि सामान्य एवं श्रवण बाधित छात्राओं की अंग्रेजी, संस्कृत, गणित, विज्ञान विषयों तथा समग्र शैक्षणिक उपलब्धि में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर नहीं है, क्योंकि इनके लिए प्राप्त क्रांतिक अनुपात के मान क्रमश: 0.89, 1.04, 0.35, 0.46, 0.92 स्वतंत्रता के अंश 98 पर सार्थकता के 0.05 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान 1.99 की अपेक्षाकृत कम हैं।

अत: ऊपर प्रदर्शित इन परिणामों के आधार पर निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि सामान्य एवं श्रवण बाधित छात्राओं की हिन्दी व सामाजिक अध्ययन विषयों की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया गया तथा सामान्य छात्राओं की हिन्दी व सामाजिक अध्ययन विषयों में शैक्षणिक उपलब्धि, श्रवण बाधित छात्राओं की तुलना में उच्च पाई गयी जबकि सामान्य एवं श्रवण बाधित छात्राओं की अंग्रेजी, संस्कृत, गणित, विज्ञान विषयों तथा समग्र शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

अत: इन परिणामों के आधार पर पूर्व में ली गयी परिकल्पना ''सामान्य एवं श्रवण बाधित छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है'', हिन्दी व सामाजिक अध्ययन विषयों के लिए अस्वीकृत व अंग्रेजी, संस्कृत, गणित, विज्ञान विषयों तथा समग्र शैक्षणिक उपलब्धि के लिए स्वीकृत की जाती है। समग्र रूप में यह परिकल्पना आंषिकत: अस्वीकृत की जाती है।

निष्कर्ष–

सामान्य एवं श्रवण बाधित छात्राओं की हिन्दी व सामाजिक अध्ययन विषयों की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया गया तथा सामान्य छात्राओं की हिन्दी व सामाजिक अध्ययन विषयों में शैक्षणिक उपलब्धि, श्रवण बाधित छात्राओं की तुलना में उच्च पाई गयी जबकि सामान्य एवं श्रवण बाधित छात्राओं की अंग्रेजी, संस्कृत, गणित, विज्ञान विषयों तथा समग्र शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अस्थाना, डॉ. मधु एवं वर्मा, किरणबाला (1996): व्यक्तित्व मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृष्ठ क्रमांक 86
2. अस्थाना, विपिन (1999): मनोविज्ञान एवं शिक्षा में मूल्यांकन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, नवीनतम संस्करण
3. बैरन, राबर्ट ए. एवं बार्यन, डॉन: सामाजिक मनोविज्ञान (प्रथम हिन्दी अनुवाद), नवम संस्करण, ऐलिन एंड बेकन प्रकाशन, सिंगापुर, पीयर्सन एजूकेशन, दिल्ली, पृष्ठ क्रमांक 140–179
4. भार्गव, तृप्ति एवं भार्गव, विवेक (1991): मानव व्यवहार का मनोविज्ञान, हर प्रसाद भार्गव प्रकाशन, कचहरी घाट, आगरा, प्रथम संस्करण
5. चौबे, सरयू प्रसाद (1966): असामान्य मनोविज्ञान एवं आधुनिक जीवन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
6. कपिल, एच.के. (1994–1995): अपसामान्य मनोविज्ञान, एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा
7. गुप्ता, एस.पी. (2005): सांख्यिकीय विधियां, शारदा पुस्तक

भवन, इलाहाबाद

8. शर्मा, आर.ए., (1995) : शिक्षा अनुसंधान, सूर्या पब्लिकेशंस, मेरठ
9. श्रीवास्तव, डी.एन., (नवीन संस्करण): सांख्यिकी एवं मापन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
10. स्किनर, चार्ल्स (1965): शिक्षा मनोविज्ञान, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली

Related Research -

1. **Gulhane, G. (2014)** "Visually and Hearing Impaired and Their Academic Achievement", *Sai Om Journal of Arts and Education: A Peer Reviewed International Journal , Volume –I, Issue 11 , 2014, Page No. 1-8*
2. **Naz, Seema (2017)** "A Study self-esteem and academic achievement of physically challenged secondary school students of Kashmir: Quantative analysis", *International Journal of Academic Research and Development, Volume - VI, Issue 4, July 2017, Page No. 226-235*
3. **Nazir, Shafia (2018)** "Self Esteem and Academic Achievement: A stusy of Special Childern in Rural Kashmir (J&K) India ", *International Journal of Arts, Management and Humanitirs, Volume – 7, Issue 1, April 2018, Page No. 156-160*
4. **Pandith, A; and etc. al. (2011)** "Achievement Achievement of Hearing Impaired, Visually Impaired and Crippled Secondary School Students of District Baramulla, J&K, *Researcher, Volume – 3(9), 2011, Page No. 1-4*
5. **Rajknowar, S; Soni, J.C and Jaddah, D. (2017)** "A Study of Adjustment, Level of Aspiration, Self-concept and Achievement Achievement of Visually Handicappted School Childern of Assam", *International Journal of Development Research, Volume – 4, 2014, Page No. 902-907*
6. **Seyed, Sepideh; Salmani, Masoomeh; Nezhad, Fatameh Motahari and Noruzi, Reyhaneh (2017)** "Self-efficacy, Achievement Motivation and Academic Progress of Students with Learning Disabilities: A Comprassion with Typical Students", *Middle East Journal of Rehabilitations and Health Studies, Volume – 4, Issue 2, March 2017*
7. **Siddiqui, Mohd. Abid and Rahman, Shabnam (2015)** "A Comparative study of Social maturity, Adjustment and Academic Achievement of Differently Abled and Normal Childern", *Indian Journal of Applied Research, Volume – 5, Issue 3, March 2015, Page No. 97-99*

ISSN 2278 - 0327

मनोविकारों के परिप्रेक्ष्य में योग का अध्ययन

प्रकाश चन्द्र शर्मा
शोधार्थी योगविज्ञान विभाग
श्री गुरू राम राय विश्वविद्यालय देहरादून (उत्तराखण्ड)

प्रोफेसर (डॉ.) सरस्वती काला
विभागाध्यक्ष, योग विज्ञान विभाग
श्री गुरु राम राय विश्वविद्यालय देहरादून (उत्तराखण्ड)

शोध सारांश- वर्तमान में भारत एवं सम्पूर्ण विश्व के लिए मनोविकार गंभीर चुनौती का रूप ले चुके हैं। मनोविकारों पर आधुनिक मनोवैज्ञानिकों में सिगमंड फ्रायड (Sigmund freud) का अध्ययन वैज्ञानिक दृष्टिकोण की कसौटी पर खरा उतरता है। फ्राइड ने मनोविश्लेषण सिद्धांत (Psychoanalytic theory) प्रतिपादित किया है। सिगमंड फ्रायड ने मन की दो प्रमुख अवस्थाएं तथा प्रत्येक के तीन-तीन उप विभाजन किए हैं,
(क) आकारात्मक अवस्था (Topographical Aspect),चेतन (Conscious), अर्द्धचेतन (SubConscious), अवचेतन (nConscious) (ख) गत्यात्मक अवस्था (Dynamic Aspect) इदम् (Id), अहम् (Ego), पराअहम् (Super ego)

आधुनिक मनोविज्ञान में मनोविकारों को दो प्रमुख प्रकार, मनस्ताप (Neurosis) तथा मनोविक्षिप्त (Psychotic) में विभाजित किया है। इनकी चिकित्सा हेतु दो प्रमुख चिकित्सा पद्धतियां मनोपचार (Psychotherapy) एवं मेडिकल चिकित्सा (Medical or Somato therapy) का प्रयोग किया जाता है। मनोरोगविज्ञानियों (Psychiatrist) के द्वारा कुसमायोजित व्यवहार (Maladjusted Behavior) के उपचार हेतु तीन प्रमुख जैविक विधियों का प्रयोग किया जाता है, जो निम्नलिखित है। औषधि चिकित्सा (Pharmaco therapy), आघात चिकित्सा (Shock therapy), मनोशल्यचिकित्सा (Psychosurgery)

यौगिक साहित्य में मनोविकारों का स्वरूप वैदिक साहित्य से ही मानसिक स्वास्थ्य पर विशेष उल्लेख मिलता है, ऋग्वेद में मन को 'क्रतु' एवं 'दक्ष' की संज्ञा दी गई है, यजुर्वेद का ''शिवसंकल्प सूक्त'' मन को शुभ संकल्पवान बनाने की प्रार्थना है। तैत्तिरीय उपनिषद में पंचकोश की संकल्पना के मध्य ''मनोमयकोश'' मन एवं मनोविकार की विशद विवेचना करता है। योगवासिष्ठ में ''आधि'' और ''व्याधि'' की उत्पत्ति का सिद्धांत इसी पर प्रकाश डालता है।
भारतीय षड्दर्शन के अंतर्गत सांख्य एवं योगदर्शन के मतानुसार बुद्धि, अहंकार एवं ''मन'' तीनों का समाविष्ट रूप ही ''अंत:करण'' है। महर्षि पतंजलि ने इसी अंत:करण को ''चित्त'' के रूप में परिभाषित किया है तथा इसी चित्त (मन+बुद्धि+अहंकार = अंत:करण) के भीतर विकारों के रूप में उत्पन्न होने वाली, पाँच प्रकार की चित्तवृत्तियाँ (क्लिष्ट), नौ प्रकार के चित्तविक्षेप, पाँच विक्षेपसहभू ,पंचक्लेश, का उल्लेख किया हैं।

विशेष शब्दावली (Key Word) - अवचेतन, मनस्ताप, मनोविश्लेषण, अंत:करण, चित्त, विक्षेपसहभू।

मानव सभ्यता के विकास के साथ शारीरिक आयाम की तुलना में मानसिक आयाम का महत्व बढ़ता जा रहा है इसका स्पष्ट प्रभाव हमें आधुनिक युग में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में निरंतर हो रहे नवीन अनुसंधानो एवं आविष्कारों में व्यक्ति विशेष के शारीरिक बल के स्थान पर बौद्धिक क्षमता के बढ़ते प्रयोग से साफ दिखाई देता है। व्यक्ति के बौद्धिक विकास के साथ वर्तमान जीवन शैली में शारीरिक श्रम का अभाव बढ़ा है तथा ऐसे कार्यों का महत्व निरन्तर बढ़ रहा है जिनमें मानव मस्तिष्क की ऊर्जा अधिक व्यय होती है। मानव मस्तिष्क के बौद्धिक विकास के साथ ही मन मस्तिष्क पर अतिरिक्त दबाव एवं तनाव बढा है जिससे मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है इसलिए मानव मन से जुड़े विकारों अर्थात् मनोविकारों (Mental Disorders) का जनसामान्य में व्यापक प्रसार हुआ है।

एक सर्वे के अनुसार भारत में प्रत्येक छह में से एक व्यक्ति मनोविकारों से जुड़े असंतुलन से पीड़ित है तथा इसी सर्वे के आधार पर भारत के कर्नाटक राज्य में 8 व्यक्ति मनोविकारों से पीड़ित है।[1] (National Mental Health Survey of India- 2015- 2016)

भारत की तरह मनोरोग संपूर्ण विश्व के लिए एक गंभीर चुनौती का रूप ले चुके हैं, उदाहरणार्थ विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार विश्व स्तर पर मनोरोगों से संबंधित आंकड़ों के अनुसार डिप्रेशन 26.4 करोड़, बाइपोलर डिसऑर्डर

4.5 करोड़, शिजोफ्रेनिया 2.0 करोड़, डिमेंशिया 5.0 करोड़ व्यक्ति पीड़ित है।[2] (ग्लोबल बर्डन ऑफ़ डिजीज स्टडी.2017. The Lancet)

आधुनिक मनोविज्ञान में मनोविकारों का स्वरूप

आधुनिक मनोविज्ञान में 'मन' का तात्पर्य आत्मा (Psyche) या व्यक्तित्व के रूप में लिया गया था। अध्ययन के प्रारंभिक समय में मन को जन्म से मृत्यु तक अपरिवर्तनशील तथा स्थिर(Constant) माना गया किंतु ''अरस्तु'' एवं ''अफलातून'' ने मन या व्यक्तित्व के कई पहलू अपने गंभीर अध्ययन द्वारा सामने रखें परंतु उनके विचार वैज्ञानिक धरातल की कसौटी पर खरे नहीं उतरे।

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों में सिगमंड फ्रायड (Sigmund Freud) ने ''मन'' का अध्ययन वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ किया तथा ''मनोविश्लेषण सिद्धांत'' (Psychoanalytic theory) प्रतिपादित किया था।

सिगमंड फ्रायड के अनुसार मन के दो पहलू अथवा अवस्थाएं हैं प्रथम् आकारात्मक पहलू (Topographical Aspect) तथा द्वितीय गत्यात्मक पहलू (Dynamic Aspect) के रूप में विभाजित किया है।

आकारात्मक अवस्था को तीन भागों में विभाजित किया है, चेतन मन (Conscious Mind), अर्द्धचेतन मन, (SubConscious Mind), अचेतन मन (UnConscious Mind)

इसी प्रकार गत्यात्मक अवस्था को भी तीन भागों में विभाजित किया है,इदम् (Id), अहम् (Ego), पराअहम् (Super ego) ।3 मनोविकारों से तात्पर्य है, ''मानसिक स्वास्थ्य से जुड़ी वह अवस्था जिसमें किसी व्यक्ति विशेष को अन्य सामान्य रूप से स्वस्थ व्यक्तियों की तुलना में असामान्य व्यवहार के रूप में प्रदर्शित किया जाता है इसके उत्तरदाई कारणों में व्यक्ति की व्यथा अथवा असमर्थता अंतर्निहित होती है।''[4]

आधुनिक मनोविज्ञान में मनोरोगों को दो भागों में विभाजित किया है मनस्ताप (Neurosis) एवं मनोविक्षिप्त (Psychotic) मनोरोगों की मनस्ताप (Neurosis) वाली अवस्था में मनोविचलन एवं विघटन की तीव्रता अपेक्षाकृत कम रहती है एवं अधिकांशत: उपचार हेतु अस्पताल में भर्ती करने की आवश्यकता नहीं होती जबकि मनोविक्षिप्त (Psychotic) अवस्था में मानसिक विघटन की स्थिति अधिक गंभीर एवं उपचार हेतु चिकित्सालय में भर्ती होने की संभावना अधिक रहती है। इसमें दीर्घसमयावधि तक चिकित्सकीय उपचार की आवश्यकता होती है।[5]

मनोविकारों की चिकित्सा हेतु दो प्रमुख चिकित्सा पद्धतियों, मनौपचार (Psychotherapy)एवं मेडिकल चिकित्सा (Medical or Somato Therapy)का प्रयोग होता है।[6]

मनोरोगों के उपचार हेतु मनोरोगविज्ञानियों (Psychiatrist's) द्वारा कुसमायोजित व्यवहार (Maladjusted Behavior) के उपचार में तीन प्रमुख जैविक विधियों प्रयोग किया जाता है।

औषधि चिकित्सा (Pharmaco Therapy), आघात चिकित्सा (Shock Therapy), मनोशल्यचिकित्सा (Psychosurgery)।[7]

यौगिक साहित्य में मनोविकारों का स्वरूप

मानसिक स्वास्थ्य की अवधारणा पर भारतीय चिंतन में वैदिक साहित्य से ही उल्लेख मिलता है जैसे विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद में मन को 'क्रतु' (क्रियाशील) तथा 'दक्ष' (ज्ञान से युक्त) उल्लेखित किया गया है। यजुर्वेद के 34वें अध्याय में 'शिव संकल्प सूक्त' जिसमें छ: प्रमुख मंत्रों का समावेश है। यह पूरी तरह से मनोविकारों से निवृत्ति और मन के शुभ संकल्पवान होने की कामना का ही सूक्त है , उदाहरणार्थ इसका प्रथम मंत्र निम्नलिखित है:-

''यज्जाग्रतोदूरमुदैतिदैवन्तदुसुप्तस्यतथैवैति।।
दूरंगमंज्योतिषां ज्योतिरेकन्तन्मेमन: शिवसंकल्पमस्तु।।''

(यजुर्वेद,34/1)

अर्थात् हमारा वह मन जो जागृत अवस्था में बहुत दूर तक गमन करता है, वही द्युतिमान् मन सुषुप्ति अवस्था में मनुष्य के भीतर लीन हो जाता है, जो दूर तक गमन करने वाला और जो प्रकाशमान स्रोत आदि इन्द्रियों को ज्योति देने वाला है, ऐसा मेरा मन कल्याणकारी शुभ संकल्पवान हो।[8]

मनोविकारों के निदान एवं उपचार के लिए सर्वप्रथम इनके वास्तविक स्वरूप का सूक्ष्म निरीक्षण आवश्यक है और इसके लिए भारतीय चिंतन का ''उपनिषद साहित्य'' महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है। हमारे मानसिक स्वास्थ्य से जुड़े मानसिक आयाम पर उपनिषद् साहित्य में विशद विवरण मिलता है, जैसे तैत्तरीय उपनिषद (2/3-4) में पंचकोश का वर्णन है जिनमें अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश तथा आनंदमय कोश का उल्लेख है। मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित असंतुलन के निदान एवं उपचार में विशेषत ''मनोमयकोश'' का सिद्धांत महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है।[9]

भारतीय दर्शन में मानसिक आयाम का जिस व्यापकता के

साथ उल्लेख मिलता है, वह पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक विमर्श से अपेक्षाकृत अधिक गहन एवं परिपक्व है।

योगवासिष्ठ में आधि और व्याधि की उत्पत्ति से जुड़े महत्वपूर्ण सूत्रों द्वारा मानसिक स्वास्थ्य से जुड़ी विसंगतियों के निदान एवं उपचार में विशेष सहायता प्राप्त होती है।[10]

भारतीय षड्दर्शन, जिन्हें आस्तिक दर्शन के नाम से भी जाना जाता है, इनमें सांख्यदर्शन व योगदर्शन के मध्य केवल ईश्वर संबंधी विचार को छोड़कर, दोनों में परस्पर गहरी एकरूपता है इसलिए योगदर्शन को ''सेश्वर सांख्य'' भी कहा जाता है।[11]

महर्षि पतंजलि ने ''चित्तवृत्ति निरोध'' को योग के रूप में परिभाषित किया है यहां पर जिस चित्त की वृत्तियों का निरोध बताया गया है उस चित्त का अर्थ ''अंत:करण'' के रूप में है। इसमें सांख्यसम्मत बुद्धि, अहंकार एवं मन तीनों का समावेश है। अर्थात् योग में मन, बुद्धि, अहंकार तीनों के सम्मिलित रूप को ही ''चित्त'' के रूप में परिभाषित किया गया है।[12]

यौगिक साहित्य की सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचना ''पातंजल योग-सूत्र'' में महर्षि पतंजलि ने मनोविकारों के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए निम्नलिखित चित्त (अंत:करण) के विकारों का उल्लेख किया हैं:-

''प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतय:।।'' (पातंजल योगसूत्र 1/6)

प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति यह पाँच चित्तवृत्तियां है। प्रत्येक चित्तवृत्ति के दो भेद होते हैं, प्रथम क्लिष्ट तथा द्वितीय अक्लिष्ट यहां हम अविद्यादि क्लेशों को पुष्ट करने वाली क्लिष्टचित्तवृत्ति की ही गणना विकार रूप में करेंगे। क्योंकि अक्लिष्टचित्तवृत्ति तो क्लेशों को नष्ट करने वाली तथा योग साधना में सहायक की भूमिका का निर्वहन करती है।13

''व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरति भ्रांतिदर्शनालब्ध-भूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तराया:।।

(पातंजल योगसूत्र 1/30)

व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व और अनवस्थितत्त्व ये सभी चित्तविक्षेप हैं, तथा महर्षि पतंजलि इसके साथ उत्पन्न होने वाले ''विक्षेपसहभू'' का भी उल्लेख करते है।

''दु:खदौर्मनस्यांगमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुव:।।''

(पातंजल योगसूत्र 1/31)

दु:ख, दौर्मन्स्य, अंगमेजयत्व, श्वास, प्रश्वास यह पांचों ''विक्षिप्त चित्त'' में ही होते हैं ''समाहित चित्त'' में नहीं इसलिए इनको ''विक्षेपसहभू'' कहते हैं।[14]

''अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशारूक्लेशा:।।''

(पातंजल योगसूत्र 2/3)

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश ये पाँच प्रकार के क्लेश हैं।[15]

निष्कर्षत: हमने इस प्रकार मनोविकारों के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक मनोविज्ञान एवं यौगिक साहित्य का संक्षिप्त अध्ययन इस शोधपत्र में प्रस्तुत किया है।

संदर्भ सूची:-

1. नेशनल मेंटल हेल्थ सर्वे ऑफइण्डिया, (2015-2016, दिसम्बर). Retrieved from. https://www.ncbi. nlm.nih.gov/ pmc/Articles/PMC 5419008/-
2. द ग्लोबल बर्डन ऑफ डिसीज स्टडी, (2017, नवम्बर 10) द लेनसेंट. Retrieved from:- https://www.who.int/ news-room/fact-sheets/detail/mental-disorders.
3. सूलैमान, एम. कुमार, डी. (2017). मनोरोग विज्ञान. दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 59, 72.
4. Retrieved from:- https:iihi.wikipedia.org/w/ index.phe?title मनोविकार 5227344
5. वर्णमाल, एस. (2010). योग और मानसिक स्वास्थ्य. दिल्ली: न्यू भारतीय बुक कार्पोरेशन. पृ. 203.
6. डॉ. वर्मा, पी.डॉ. श्रीवास्तव, डी.एन.(1999).आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान. आगरा: विनोद पुस्तक मन्दिर. पृ. 534.
7. सिंह, ऐ.के. (2004). आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान. दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 803.
8. आचार्य, एस.एस. (2005). यजुर्वेद संहिता. मथुरा: युग निर्माण योजना गायत्री तपोभूमि. पृ. 231.
9. गोयन्दका, एच.के.डी. (2017). ईशादि नौ उपनिषद्. गोरखपुर: गीताप्रेस. छतिसवाँ पुनर्मुद्रण. पृ. 373-385.
10. निर्वाण प्रकरण पूर्वाद्ध, (2016). संक्षिप्त योगवासिष्ठ. गोरखपुर: गीताप्रेस. पृ. 394-395.
11. चट्टोपाध्याय, एस.सी. दत्त,डी.एम. (1994). भारतीय दर्शन. पटना: पुस्तक भण्डार. पृ. 74.
12. शर्मा, सी.डी.(2004).भारतीय दर्शन आलोचना और अनुशीलन. नई दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास.पृ.159.
13. ओमानन्द, एस. (2016).पातंजलयोगप्रदीप. गोरखपुर: गीताप्रेस. पृ. 185-186.
14. सरस्वती, एस.एस. (2013). मुक्ति के चार सोपान. मुंगेर बिहार: योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट. पृ. 80-81.
15. गोयन्दका, एच.डी. (2016). पातंजलयोगदर्शन. गोरखपुर: गीताप्रेस. पृ.44.

(नोट:- ये सभी सन्दर्भ ।च। फॉर्मेट में दिये गये हैं)

ISSN 2278 - 0327

साहित्य और समाज का अंतःसंबंध

किरण चौधरी
(शोधार्थी संस्कृत विभाग)
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)

संसार की समस्त भाषाओं में संस्कृत का सर्वोच्च स्थान है। विश्व साहित्य की प्रथम पुस्तक ऋग्वेद संस्कृत में ही रची गई है। अमरभाषा या देववाणी संस्कृत को जाने बिना भारतीय संस्कृति की महत्ता को जाना नहीं जा सकता। ऋग्वेद से लेकर आज तक संस्कृत भाषा के माध्यम से सभी प्रकार के वाङ्मय (साहित्य) का निर्माण होता आ रहा है। देश-विदेश के कई बड़े विद्वान् संस्कृत के अनुपम और विपुल साहित्य को देखकर चकित रह गए हैं। संस्कृत भाषा का साहित्य अनेक अमूल्य ग्रन्थरत्नों का सागर है, इतना समृद्ध साहित्य किसी भी दूसरी प्राचीन भाषा का नहीं है, और न ही किसी अन्य भाषा की परम्परा अविच्छिन्न प्रवाह के रूप में इतने दीर्घकाल तक रही हैं। प्राचीन होते हुए भी कुण्ठित नहीं है, पूर्णतः सहज व सुगम है। संस्कृत का साहित्य जब कोई पढ़ता है, तो व्यक्ति का अन्तःकरण सक्रिय हो जाता है और भावों का वेग गतिशील हो जाता है।

संस्कृत के साहित्य से भारतीय संस्कृति के कई रहस्य प्राप्त होते है। भारत के सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन एवं विकास के सोपानों की सम्पूर्ण व्याख्या संस्कृत साहित्य के माध्यम से आज उपलब्ध है। साहित्य समाज का दर्पण है, साहित्य में समाज की वास्तविक झाँकी दिखाई देती है। साहित्य मानव मात्र में छिपा हुआ ऐसा संस्कार है जो विश्व बन्धुता एवं समानता की भावना विकसित करता है।

येषां न विद्या न तपो न दानं
नं शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मृर्त्युलोके भुवि भारभूताः
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।।

अर्थात् जो विद्या के लिए प्रयत्न नहीं करते न तप करते हैं, न दान देते है, न ज्ञान के लिए यत्न करते हैं, न शील है और न ही जिनमें और कोई गुण हैं, न धर्म है (सही आचरण है), ऐसे लोग मृत्युलोक में इस धरती पर बोझ ही हैं, मनुष्य रूप में जानवर है।

''हितेन सह इति सहितस्य भावः साहित्यम्''

यह वाक्य संस्कृत का एक प्रसिद्ध सूत्र वाक्य है जिसका अर्थ होता है- साहित्य का मूल तत्व सबका हित साधना होता है। मानव अपने मन में उठने वाले भावों को जब लेखनीबद्ध कर भाषा के माध्यम से प्रकट करने लगता है तो वह रचनात्मक, ज्ञानवर्धक अभिव्यक्ति के रूप में साहित्य कहलाता है।

साहित्य का समाज दर्शन दुर्गम परम्पराओं और व्यवस्था के शोषण रूप का समर्थन करने वाले धार्मिक नैतिक मूल्यों के बहिष्कार से भरा पड़ा है।

''जीवन और साहित्य की प्रेरणाएँ समान होती है।''

समाज और साहित्य में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होता है। साहित्य की पारदर्षिता समाज के नवनिर्माण में सहायक होती हैं। जो त्रुटियों को उजागर करने के साथ उनका समाधान भी प्रस्तुत करती है। समाज के यर्थाथवादी चित्रण, समाज सुधार का चित्रण और समाज के नवनिर्माण का कार्य करता है।

सामाजिक व्यवस्थाओं के सफल संचालन हेतु अनेक संस्थाओं का विशद वर्णन संस्कृत साहित्य में उपलब्ध है। विवाह, परिवार आदि संस्थाएँ उनके उत्तरदायित्व एवं मर्यादाओं की स्थापना संस्कृत साहित्य में जिस तरह उल्लेखित हैं वह अत्यन्त दुर्लभ है।

आज पूरा विश्व संस्कृत साहित्य के उदात्त संदेशों को ग्रहण कर रहा है। संस्कृत-साहित्य की यह एक अनोखी विशेषता हैं कि यह मानवता के कल्याण की भावना को अग्रसर करता है। वेद की शुरुआत ही समस्त मानवों के कल्याण के संकल्प के साथ होती है।

''अग्निमीले पुरोहितम्'' इसका भावार्थ यह हैं कि समस्त मानवों का कल्याण करने वाले अग्निदेव की स्तुति करता हूँ। वैदिक ऋषि विश्व समाज कल्याण के लिए सुमति और सद्भावना की प्रार्थना करता हैं, *''विदधातीति हितम्।''*

हम यह जानते हैं कि साहित्य वह सषक्त माध्यम हैं, जो समाज को व्यापक रूप से प्रभावित करता है। यह समाज में प्रबोधन की प्रक्रिया का सूत्रपात करता है। यह समाज को प्रेरित करने का कार्य करता है और जहाँ एक ओर यह सत्य है कि साहित्य सुखद परिणामों को रेखांकित करता है, वहीं दु:खद अन्त कर सीख व शिक्षा प्रदान करता है।

अच्छा साहित्य व्यक्ति और उसके चरित्र निर्माण में भी सहायक होता है, यही कारण हैं कि समाज के नवनिर्माण में साहित्य की केन्द्रीय भूमिका होती है। इससे समाज को दिषा बोध होता है, और साथ ही उसका नव-निर्माण भी होता है।

साहित्य और समाज के बीच अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब है। जनजीवन के धरातल पर ही साहित्य का निर्माण होता है। समाज की समस्त शोभा, उसकी समृद्धि, मान-मर्यादा सब साहित्य पर अवलम्बित हैं। समाज की क्षमता और सजीवता यदि कहीं प्रत्यक्ष देखने को मिल सकती है, तो निश्चित रूप से साहित्य रूपी दर्पण में ही।

कालिदास, भारवि और भवभूति पर हमें गर्व है, क्योंकि उनका साहित्य कर्म एक संस्कृति और एक जातीयता के सूत्र में बाँधता है, इसलिए साहित्य केवल हमारे समाज का दर्पण मात्र न रहकर उसका नियामक और उन्नायक भी होता है। वह सामाजिक अन्धविश्वासों और बुराइयों पर तीखा प्रहार करता है। समाज में व्याप्त रूढ़ियों और आडम्बरों को दूर करने में साहित्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

संस्कृत साहित्य आचरणात्मक एवं आदर्शपूर्ण मानव मूल्यों के लिये एक अनुपम वैश्विक धरोहर हैं, जो शताब्दियों से अजस्त्र धारावत प्लावित सामाजिक जीवन में अपनी असीम गरिमा और अनन्त प्रासंगिकता को सिद्ध करते आ रहे हैं। भारतीय धरातल पर प्रणीत वेद वाङ्मय ही धरती पर मानव मूल्यों की सुदृढ़ आधारषिला रख चुका है, जिसके आधार पर हमारी भव्य संस्कृति की अट्टालिका अपनी पूर्ण गरिमा के साथ खड़ी है। मानव को कदाचित जब अपनी अस्मिता का बोध हुआ होगा, तब ही से उसने मूल्यों की परिकल्पना और उनका आचरण आरंभ कर दिया होगा। चारों वेद और एक सौ आठ उपनिषद् मानव को अपने गंतव्य की ओर इस तत्परता के साथ अग्रसर होने की प्रेरणा देते हैं कि उससे कहीं भी कोई त्रुटि न हो जाय। कहना होगा कि मानव के लिये आचरणात्मक और अनाचरणीय जैसे सभी तत्त्वों का वेद वाङ्मय (साहित्य) ने विस्तार से वर्णन किया है, जिन्हें हम आज मूल्यों की संज्ञा से अभिहित कर रहे है।

यह संसार एक समाज है, साहित्य समाज के हित की कामना करता है। यदि समाज शरीर है तो साहित्य उसकी आत्मा। अगर देखा जाए तो साहित्य मनुष्य के मस्तिष्क से उत्पन्न होता है क्योंकि मनुष्य समाज का अभिन्न अंग है। जन्म से मृत्यु तक मनुष्य समाज जुड़ा रहता है वह चाह कर भी समाज से अलग नहीं हो सकता है। उसका पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा तथा जीवन का निर्वाह समाज द्वारा ही होता है। मनुष्य समाज में रहकर अनेक प्रकार का अनुभव ग्रहण करता है एवं जब वह प्राप्त अनुभव को शब्द द्वारा अभिव्यक्त करता है तो वह साहित्य बन जाता है। साहित्य एवं समाज का संबंध युगों-युगों से देखा गया है दूसरे अर्थ में कहे तो साहित्य एवं समाज एक ही सिक्के के दो पहलू एवं एक दूसरे के पूरक भी हैं। साहित्य का सृजन समाज के लिए एवं समाज द्वारा ही होता है। साहित्य का सृजन मानव पटल में होता है क्योंकि यह एक कला है।

यह कल्पना द्वारा पूर्ण होता है पर मानव कल्पना जीवन एवं जगत के अनुभव से प्राप्त करता है और वह अनुभव समाज से प्राप्त होता है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है और वह समाज से हर पल नए-नए अनुभव प्राप्त करता है एवं प्रत्येक अनुभवों को कल्पना के माध्यम द्वारा मनुष्य अपने कला को सृजित करता है। आधुनिक संदर्भ में भी साहित्य एवं समाज में परस्पर संबंध है। दोनों एक-दूसरे के लिए बने हैं। समाज में हो रहे विसंगति एवं विकृति, प्रगति, उपलब्धि, अभाव, विषमता, समानता, सौंदर्यता, प्रेम, स्नेह, मातृत्व, देशप्रेम, विश्व बंधुत्व जैसे विविध पक्षों को साहित्यकार अपने साहित्य में सृजित करते हैं, जो नितांत लोकहित के लिए होता है। जिस प्रकार से समाज का प्रभाव साहित्य के ऊपर पड़ता है वैसे ही साहित्य का प्रभाव समाज पर भी पड़ता है। क्योंकि कवि अथवा लेखक समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं, अत: वे लोग समाज को अपने नवीन विचार प्रदान करते रहते हैं। जब समाज में कोई समस्या आती है, समाजिक जीवन मूल्य का पतन होने लगता है तब साहित्य ही उसे दूर करने में अपनी भूमिका निर्वाह करता है। ऐसे समय में साहित्य समाज को नया रास्ता दिखाने का काम करता है। आज विश्व में धार्मिक कट्टरता, सांप्रदायिकता, अलगाववाद तथा आतंकवाद गंभीर समस्याओं के विनाश के लिए साहित्य प्रयत्नशील है। साहित्यकार साहित्य का सृजन अपने स्वार्थ के लिए नहीं बल्कि समाज के उपयोग के लिए करता है। चाहे वह ऋग्वैदिक रचनाकार हो या वह वेदव्यास का महाभारत हो या फिर वाल्मीकि का रामायण, शेक्सपियर का नाटक, एरिस्टोटल का काव्यशास्त्र हो सभी समाज के उपयोग

एवं मार्ग दर्शन के लिए सृजित किए गए थे।

साहित्य हमेशा मानव को सकारात्मक सोच के साथ-साथ समाज के लिए मनुष्य को कुछ करने की प्रेरणा प्रदान करता है। राष्ट्रप्रेम की भावना जागृत कराता है और ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' की भावना विकसित करता है। यह संसार मानव समाज का घर है और इसमे मानव समाज किस प्रकार की भूमिका निर्वाह करने पर समाज का कल्याण होगा यही प्रेरणा देती है।

संस्कृत साहित्य भारत समाज के उत्कृष्ट जीवनमूल्यों, जीवनदर्शन, आध्यात्मिकता, सांस्कृतिक व सामाजिक परम्पराओं का प्रतिबिम्ब है। संस्कृत साहित्य भारतीय संस्कृति का संवाहक भी है। लगभग 3000 वर्ष पहले वैश्विक धरातल पर जब अपने विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करने का प्रारम्भिक प्रयास चल रहा था, उस समय भारतभूमि पर वाग्देवी अपने सम्पूर्ण व उत्कृष्ट रूप में ऋग्वेद के सूत्रों के रूप में अवतरित हो चुकी थी। तब से अनवरत संस्कृतसाहित्यसरिता अविरल एवं सहज गति से प्रवाहमान है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जैसे पुरुषार्थों की परिकल्पना कर उसे व्याख्यायित करने वाली ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं सन्यास आश्रम के रूप में जीवन को एवं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के रूप में समाज को व्यवस्था एवं सन्तुलन प्रदान करने वाली सोलह संस्कारों, तीन ऋणों, पंच महायज्ञों एवं गुरुकुल शिक्षा से जीवन को परिमार्जित करने वाली तथा अपने आध्यात्मिक जीवन दर्शन से आत्मकल्याण का मार्ग प्रषस्त करने वाली भारतीय संस्कृति का सम्पूर्ण दर्शन है, संस्कृत साहित्य, जीवन के श्रेय व प्रेय दोनों पक्षों का सामंजस्य है संस्कृत साहित्य, भारतीय संस्कृति व सभ्यता के उत्तरोत्तर विकास की सम्पूर्ण झांकी है संस्कृत साहित्य।

संस्कृत भाषा में इतना विपुल साहित्य हैं कि इस दृष्टि से यह सभी प्राचीन तथा अर्वाचीन भाषाओं से आगे हैं: विचारों की शालीनता, भावनाओं की पावनता तथा अभिव्यक्ति की व्यापकता में तो इसकी तुलना किसी से की ही नहीं जा सकती। इतिहास के आरोहों और अवरोहों से प्रभावित होकर भी इस भाषा ने साहित्य ने दीपक को कभी बुझने नहीं दिया। सरल से सरल और जटिल से जटिल अभिव्यक्तियों को अपने गर्भ में रखने वाली यह भाषा भारत की प्राचीनतम और अर्वाचीनतम मेधा और प्रतिभा से अनुप्राणित होती रही है। साहित्य के रूप में तीव्र प्रवाह के समान निर्गत इस भाषा का केवल साहित्यिक प्रयोग हुआ है या यह सामान्य बोलचाल की भाषा थी - इस विषय में कुछ भाषा - शास्त्रियों ने विवाद उत्पन्न किया है। ये भाषाशास्त्री संस्कृत को बिल्कुल कृत्रिम भाषा बतलाते है जो प्राकृत को परिमार्जित करके बनी थी। उनका यह तर्क है कि भाषा का विकास वृक्ष के समान होता है जिसमें वृद्धि, पल्लवन, पुष्पोद्गम, फल आदि की अवस्थाएँ होती हैं - भाषा का रूप सदैव परिवर्तित होता है।

साहित्य और समाज दोनों ही एक-दूसरे के पूरक माने जाते हैं। साहित्य समाज के मानसिक तथा सांस्कृतिक उन्नति और सभ्यता के विकास का साक्षी है। ज्ञान राशि के संचित कोष को साहित्य कहा जाता है। साहित्य एक ओर जहां समाज को प्रभावित करता है वहीं दूसरी ओर वह समाज से प्रभावित भी होता है। साहित्य शब्द की उत्पत्ति दो शब्दों से मिलकर हुई है पहला शब्द है। 'स' जिसका मतलब होता है साथ-साथ जबकि दूसरा शब्द है 'हित' अर्थात् कल्याण। इस तरह से साहित्य का अभिप्राय ऐसी लिखित सामग्री से है जिसके प्रत्येक शब्द और प्रत्येक अर्थ में लोक हित की भावना समाई रहती है। प्रत्येक युग का साहित्य अपने युग के प्रगतिशील विचारों द्वारा किसी न किसी रूप में अवश्य प्रभावित होता है। साहित्य हमारी कौतूहल और जिज्ञासा वृत्तियों और ज्ञान की पिपासा को तृप्त करता है और क्षुधापूर्ति करता है।

साहित्य से ही किसी राष्ट्र का इतिहास, गरिमा, संस्कृति और सभ्यता, वहां के पूर्वजों के विचारों एवं अनुसंधानों, प्राचीन रीति रिवाजों, रहन-सहन तथा परंपराओं आदि की जानकारी प्राप्त होती है। साहित्य ही समाज की परछाई होता है। किस देश में कौन सी भाषा बोली जाती है, उस देश में किस प्रकार की वेशभूषा प्रचलित है, वहां के लोगों कैसा रहन सहन है तथा लोगों के सामाजिक और धार्मिक विचार कैसे हैं आदि बातों का पता साहित्य के अध्ययन से चल जाता है।

कवि वाल्मीकि की पवित्र वाणी आज भी हमारे हृदय मरुस्थल में मंजु मंदाकिनी प्रवाहित कर देती है। कालिदास का अमर काव्य भी आज के शासकों के समक्ष रघुवंशियों के लोकप्रिय शासन का आदर्श उपस्थित करता है। आज भारतवर्ष युगों युगों से अचल हिमालय की भांति अडिग खड़ा है, जबकि प्रभंजन और झँझावात आए और चले गए। यदि आज हमारे पास चिर-समृद्ध साहित्य ना होता तो ना जाने हम कहां होते और होते भी या नहीं, कुछ कहा नहीं जा सकता था।

साहित्यकार समाज का प्राण होता है। समाज में रहकर समाज की रीति-नीति, धर्म-कर्म और व्यवहार वातावरण से ही अपनी रचना के लिए प्रेरणा ग्रहण करता है और लोक भावना का प्रतिनिधित्व करता है। अत: समाज की जैसी भावनाएं और विचार होंगे वैसा ही तत्कालीन साहित्य भी होगा। इस प्रकार सामाजिक

गतिविधियों तथा समाज में चल रही परंपराओं से समाज का साहित्य अवश्य ही प्रभावित होता है। साहित्यकार समाज का एक जागरूक प्राणी होता है। वह समाज के सभी पहलूओं को बड़ी गंभीरता के साथ देता है और उन पर विचार करता है फिर उन्हें अपने साहित्य में उतारता है।

साहित्य समाज से भाव सामग्री और प्रेरणा ग्रहण करता है तो वह समाज को दिशाबोध देकर अपने दायित्व का भी पूर्णत: अनुभव करता है।

समाज तथा युग भी उसके साहित्य से प्रभावित हुए बिना कदापि नहीं रह सकते। कवि अथवा साहित्यकार युगद्रष्टा होता है। वह युग के अन्तर में प्रवेश करके उसकी आत्मा के दर्शन करता है और उसे अपने साहित्य में व्यक्त करता है।

वह अपने अनुभव और सहृदयता के कारण युग की भावनाओं को ऐसा रूप देता है जो नवीन न होते हुए भी साधारण लोगों की पहुँच से परे की वस्तु होती है।

उसके चित्र काल्पनिक होते हुए भी सत्य होते हैं। उसके साहित्य को पढ़कर ही तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक एवं सामाजिक परिस्थितियों को अनुभव किया जा सकता है। तात्पर्य यह है कि साहित्य में तत्कालीन सामाजिक भावनाओं, परिस्थितियों एवं आचार-विचारों का ही चित्रण होता है। या यों कहें कि साहित्य में समाज प्रतिबिम्बित होता है।

समर्थ साहित्यकार अपनी अतलस्पर्शिनी प्रतिभा द्वारा सबसे पहले अपने समकालीन सामाजिक जीवन का बारीकी से पर्यवेक्षण करता है। उसकी सफलताओं-असफलताओं, उपलब्धियों-अभावों, क्षमताओं-दुर्बलताओं तथा संगतिओं विसंगतियों की गहराई तक थाह लेता है। इसके पश्चात् विकृतिओं और समस्याओं के कारणों का निदान कर अपनी रचना के लिए उपयुक्त सामग्री का चयन करता है। और फिर इस समस्त बिखरी हुई, परस्पर असम्बद्ध एवं अति साधारण सी दीख पड़ने वाली सामग्री को सुसंयोजित कर उसे अपनी ''नवनवोन्मेषशालिनी'' कल्पना के सांचे में डालकर ऐसा कलात्मक रूप एवं सौष्ठव प्रदान करता है कि सहृदय अध्येता रस विभोर हो नूतन प्रेरणा से अनुप्राणित हो उठता है।

कलाकार का वैशिष्ट्य इसी में है कि उस की रचना की अनुभूति एकाकी होते ही भी सार्वदेशिक सर्वकालिक बन जाए तथा अपने युग की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करते हुए चिंरनतन मानव मूल्यों से मंडित भी हो। उसकी रचना ना केवल अपने युग, अपितु आने वाले युगों के लिए भी नवस्फूर्ति का अजस्र स्रोत बन जाए और अपने देश काल की उपेक्षा न करते हुए देश कालातीत होकर मानाव मात्र की अक्षय निधि बन जाए। यही कारण है कि महान साहित्यकार किसी विशेष देश, जाति, धर्म एवं भाषा शैली के समुदाय में जन्म लेकर भी सारे विश्व का अपना बन जाता है। इसी कारण साहित्य को विश्व मानव की सर्वोत्तम उपलब्धि माना गया है। जिसकी समकक्षता संसार की मूल्यवान से मूल्यवान वस्तु भी नहीं कर सकती। क्योंकि संसार का सारा ज्ञान-विज्ञान मानवता के शरीर का ही पोषण करता है। जबकि एक मात्र साहित्य ही उसकी आत्मा का पोषक है। कहा गया है कि यदि कभी संपूर्ण अंग्रेज जाति नष्ट भी हो जाए किंतु केवल शेक्सपियर बचा रहे तो अंग्रेजी नष्ट नहीं हुई मानी जाएगी। ऐसे युगष्टा और युगद्रष्टा कलाकारों के सम्मुख संपूर्ण मानवता कृतज्ञतापूर्वक नतमस्तक होकर उन्हें अपने हृदय सिंहासन पर प्रतिष्ठित करती है, एवं उनके यश को दिग्दिगन्तव्यापी बना देती है। अपने पार्थिव शरीर से तिरोहित हो जाने पर भी वे अपने यश रूपी शरीर से इस धराधाम पर सदा अजर अमर बने रहे हैं।

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्ध कविश्वर:।
नास्ति येषां यश: काये जरामरणजं भयम्।।

किसी भी राष्ट्र या समाज के सांस्कृतिक स्तर का अनुमान उसके साहित्य के स्तर से लगाया जा सकता हैं। साहित्य न केवल समाज का दर्पण होता हैं। बल्कि वह दीपक भी होता हैं. जो समाज का उसकी बुराइयों की ओर ध्यान दिलाता हैं। तथा एक आदर्श समाज का रूप प्रस्तुत करता हैं. विद्वानों ने किसी देश को बिना साहित्य के मृतक के समान माना हैं.

अंधकार है वहाँ जहाँ आदित्य नही है
मुर्दा है वह देश जहाँ साहित्य नही है।

यह माना जाता है कि किसी देश की सभ्यता तथा संस्कृति के इतिहास को पढ़ने के लिए उसके साहित्य को ही पढ़ना पर्याप्त होता है। इसीलिए साहित्य किसी देश, समाज तथा उसकी सभ्यता या संस्कृति का दर्पण होता है। भारतीय साहित्य की महान परम्पराओं के कारण ही इस देश का गौरव विश्व के मानचित्र पर अक्षुण्ण बना रहा हैं।

जिसमे साहित्यकारों ने अपनी लेखनी से विश्व समाज का सदैव मार्गदर्शन किया हैं. कालिदास, पाणिनी याज्ञवल्क्य, भारवि, वाल्मीकि, माघ आदि ने प्राचीन तथा मध्यकालीन कवियों द्वारा फैलाए गये प्रकाश से भारतीय समाज सदैव आलोकित होता रहा है।

साहित्य ही वह क्षेत्र हैं जो मनुष्य को परमार्थ, समाज सेवा, करुणा, मानवीयता, सदाचरण तथा विश्व बन्धुत्व जैसे उदात्त मानवीय

मूल्यों का अनुसरण करना सिखाता है। संस्कारवान् व्यक्ति वही है जो हृदय से उदार हो, निष्कपट व्यवहार करने वाला हो तथा अपने लिए किसी प्रकार के लोभ लालच की अपेक्षा ना करता हो। साहित्य सदैव ऐसे ही महान मानवीय मूल्यों की रचना करता है जो प्राणिमात्र के सुखद जीवन की कल्पना करते हों।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है वह पशु की प्रवृतियों से उपर उठकर अपनी बुद्धि श्रेष्टता के आधार पर समाज बनाता है। और अपनी सामाजिकता का परिचय देता है. समाज में रहकर वह जो कुछ देखता है और अनुभव करता है उसे अपनी रचना के माध्यम से प्रस्तुत भी करता है। उसका यही साहित्य सर्जन समाज और देश का पथ प्रदर्शन करता है।

साहित्य मानव के मस्तिष्क का भोजन है, जिसकी वैचारिक चेतना के विकास का सूचक और भावों का आदर्श है। इसी कारण मानव समाज में साहित्य का अत्यधिक महत्व है. यही एक माध्यम है जिससे मानव मस्तिष्क का विकास क्रम तथा मानवीय भावनाओं का परिचय मिलता है। परोक्ष रूप में साहित्य मानव सभ्यता के विकास का सूचक भी है।

जैसा कि पहले बताया जा चूका है साहित्य रचना का उद्देश्य मानव समाज का हित चिन्तन करना तथा उसकी चेतना का पोषण करना है। इससे यह सिद्ध होता है कि साहित्य लोक संग्रह के कारण ही उपयोगी माना जाता है। बिना उद्देश्य एवं उपयोगिता के किसी वस्तु की रचना नही की जा सकती है. बिना उपयोगिता के रचा गया साहित्य मात्र कूड़ा कचरा ही है। जो रद्दी के ढेर में विलीन हो जाता है. लेकिन उपयोगी साहित्य अमर बन जाता है. इसलिए साहित्य की कसौटी उपयोगिता ही है।

विश्व के हर एक समाज को उसके साहित्य ने गहराई से प्रभावित किया है। फ्रांस की राज्य क्रांति रूसों और वाल्टेयर की लेखनी की आभारी थी और इटली का कायाकल्प मेजिनी के साहित्य में गढ़ा था। लेनिन की विचारधारा ही साम्यवादी रूस की परिकल्पना का आधार बनी थी। इंग्लैंड की समृद्धि के सिंहद्वार पर ले जाने वालो ने रस्किन भी स्मरणीय रहेंगे।

आज का संस्कृत साहित्य अपनी हर विधा के साथ देश काल से कदम से कदम मिलाकर चल रहा हैं. साहित्य से ज्ञान के साथ ही लिखने का ढंग तथा आत्मचिंतन बढ़ता है।

साहित्य की सार्थकता

साहित्य और जीवन का अटूट-सम्बन्ध है। दोनों ही अपने स्वरूप और सन्देश के लिए एक दूसरे पर आश्रित हैं। एक बिम्ब है तो दूसरा दर्पण है। एक स्रष्टा है तो दूसरा रचना है। दोनों का एक दूसरे का प्रेरक और पूरक बन कर रहता है। साहित्य के माध्यम से ही समाज 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' भव्य साधना कर सकता है और समाज को लक्ष्य बनाकर चलने पर ही साहित्य अपनी सार्थकता प्रमाणित कर सकता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि किसी जाति अथवा समाज का साहित्य उस जाति अथवा समाज की शक्ति अथवा सभ्यता का द्योतक है। वह उसका प्रतिरूप, प्रतिच्छाया, प्रतिबिम्ब कहला सकता है। दूसरी ओर साहित्य अपने समाज को जीवन शक्ति प्रदान करता है, उसे आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता है। अत: साहित्य और समाज के पारस्परिक सम्बन्धों का विवेचन करने के उपरान्त साहित्यसर्जना में विशेष सतर्कता रखने की आवश्यकता है। जो साहित्य समाज के लिए हितकारी न हो, जिससे समाज को कोई ठोस दिशा-निर्देश न मिले, जिसमें समाज का वास्तविक स्वरूप प्रतिभासित न हो, वह साहित्य निश्चय ही साहित्य कहे जाने योग्य नहीं है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि साहित्य समाज से निरपेक्ष है यह कल्पना करना ही संभव नहीं है। क्योंकि साहित्य समाज से सापेक्ष है। स्पष्ट है कि दोनों का गहरा संबंध है और आज तो साहित्य समाज का एक अंग बन चुका है, जिसमें समाज कौ तमाम सांस्कृतिक सामाजिक तथा अन्य गतिविधियों का सही चित्रण है। जो समाज को एक नयी दिशा देता है । साहित्यकार ने अपना जीवन जिस समाज के परिवेश में बिताया है उसका ही अनुभव साहित्य में झलकता है । इस प्रकार साहित्य समाज सापेक्ष ही है।

साहित्य जीवन के लिए:

साहित्य का मूलाधार मानव जीवन है। साहित्य मनुष्य के सुख-दु:ख, आशा-आकांक्षाओं से जुड़ता है। वह मनुष्यों की आंतरिक वेदनाओं की अभिव्यक्ति भी व्यक्त करता है । इसलिए प्रख्यात आलोचक आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी लिखते हैं साहित्य का मानव जीवनसे चिरन्तन संबंध है। साहित्य का सृष्टा मनुष्य है, मनुष्य के लिए ही साहित्य की सृष्टि है। मानव-जीवन विकासशील वस्तु है इसलिए साहित्य भी विकासशील है। समाज परिवर्तन में साहित्य सहज रूप में अपनी भूमिका निभाता है। कला और समाज के परस्पर संबंध की उपेक्षा नहीं की जा सकती क्योंकि कला स्वयं ही एक सामाजिक घटना है। महान कला मानव जीवन की सार्वभौम सत्ता की प्रतिष्ठा करती है, किंतु इस सार्वभौम रूप की सिद्धी विशेष के द्वारा ही है, क्योंकि कला का सृष्टा कलाकार या एक विशेष युग एवं समाज, एक विशेष संस्कृति और वर्ण के

साथ संबंध होता है। कला का प्राणतत्त्व है सामंजस्य किंतु इस सामंजस्य के मूल में विशेष और सार्वभौम का द्वन्द्व निहित रहता है। जिसके कारण कला की मूल प्रकृति अनिश्चित एवं परिवर्तनशील बन जाती है। साहित्य के इसी चक्र से अनेकानेक सिद्धांत स्थापित हुए हैं।

साहित्य और कला:

साहित्य और कला का गहरा सम्बन्ध है। साहित्यकार उस कला का उपयोग अपने साहित्य में करता है। इसलिए यह माना जाता है कि कला कला के लिए, कला वास्तिवकता के लिए, कला जीवन के लिए। साहित्यकार अपनी कला का उपयोग मनुष्य जीवन के लिए भी करता है। साहित्य हमारे जीवन को स्वाभाविक तथा सुंदर बनाता है। दूसरे शब्दों में उसी की बदोलत मन का संस्कार होता है। यही उसका मुख्य उद्देश्य है ।

साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन की प्रासंगिकता :

आज के साहित्य में समाज जीवन में घटित घटनाओं को उजागर किया जाता है। इसलिए आज साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन आवश्यक है। समाज में लोग रहते हैं उसी के लिए साहित्य लिखा जाता है। साहित्य का संबंध बहुत अधिक मात्रा में समाज जीवन से होता है। इसलिए साहित्य का अध्ययन समाजशास्त्रीय दृष्टि से भी करना चाहिए।

समाज के बगैर साहित्य का कोई महत्त्व नहीं है। अत: आज वर्तमान साहित्य का समाजशास्त्रीय दृष्टि से अध्ययन होना आवश्यक है क्योंकि साहित्य और समाज का संबंध हमेशा से चलता आया है और रहेगा।

ऐसा कहा जाता है कि साहित्य समाज में पलायन है। किंतु यह धारणा सुसंगत नहीं है। कोई भी साहित्यकार समाज में रहते हुए अपने अनुभव एवं आसपास के परिवेश कों साहित्य में स्थान देता है।

वास्तव में साहित्य समाज में पलायन नहीं है। साहित्य जीवन जीने की सही राह दिखाता है। उदाहरण स्वरूप हम गोर्की तथा लेव तोत्सतोय को देख सकते है। जिन्होंने फ्रांस तथा रशिया में अपने साहित्य में क्रांति लाई।

साहित्य संबंधी अवधारणाएँ :

साहित्य में मानवीय जीवन के विभिन्न संदर्भों को महत्त्व दिया जाता है। प्राचीन, मध्यकालीन तथा आधुनिक साहित्य में साहित्यकारों ने मनुष्य के जीवन को नजर अंदाज नहीं किया है। उन्होंने गद्य और पद्य के माध्यम से मानवीय संवेदनाओं को अभिव्यक्त किया है। अत: प्राचीन काल से लेकर आज तक साहित्य और समाज का गहरा सम्बन्ध रहा है। साहित्य की अवधारणाएँ स्पष्ट करना कठिन काम है। फिर भी कुछ विद्वानों की साहित्य की परिभाषाओं के आधार पर साहित्य की अवधारणा को समझा जा सकता है।

उपसंहार

निष्कर्ष यह है कि समाज और साहित्य का परस्पर अन्योन्याश्रित संबंध है। साहित्य समाज से ही उद्भूत होता है। क्योंकि साहित्यकार किसी समाज विशेष का ही अंग होता है। वह इसी से प्रेरणा ग्रहणकर साहित्य रचना करता है, एवं अपने युग की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करता हुआ समकालीन समाज का मार्गदर्शन करता है, किंतु साहित्यकार की महत्ता इसमें हैं, कि वह अपने युग की उपज होने पर भी उसी से बंधकर नहीं रह जाए अपितु अपनी रचनाओं से चिरन्तन मानवीय आदर्शों एवं मूल्यों की स्थापना द्वारा देशकालातीत बनकर संपूर्ण मानवता को नई ऊर्जा एवं प्रेरणा से स्पंदित करें। अन्त में हम कह सकते हैं कि समाज और साहित्य में आत्मा और शरीर जैसा सम्बन्ध है। समाज और साहित्य एक दूसरे के पूरक हैं, इन्हें एक दूसरे से अलग करना सम्भव नहीं है; अत: आवश्यकता इस बात की है कि साहित्यकार सामाजिक कल्याण को ही अपना लक्ष्य बनाकर साहित्य का सृजन करते रहें।

संदर्भ-

- डॉ. उमाशङ्कर 'ऋषि', संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी, 2021, पृ.सं. 23
- पद्मश्री डॉ. कपिल द्विवेदी आचार्य, संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, रामनारायणलाल विजयपुमार, कटरा रोड़, इलाहाबाद, 2016, पृष्ठ सं. (भूमिका- 2,3)
- उपाध्याय, बलदेव, आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास, सप्तम खण्ड, चौखम्बा, वाराणसी, 1978, पृ.सं 70
- डॉ. संजीव कुमार झा, शोधपत्र, VOL-16, issue No-06, 06 May,2019, ISSN 2230-7540, दरभंगा (बिहार)

ISSN 2278 - 0327

शासकीय एवं अशासकीय माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन

कुसुम सिंह
शोधार्थी, गृह विज्ञान संकाय
मानसरोवर ग्लोबल विश्वविद्यालय, सीहोर (म.प्र.)

डॉ. माधवी पांडे
प्राध्यापक, गृह विज्ञान संकाय
मानसरोवर ग्लोबल विश्वविद्यालय, सीहोर (म.प्र.)

इस शोध पत्र में शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। अनुसंधान हेतु न्यादर्श के रूप में माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की 70 छात्राओं का चयन कर उन पर स्वनिर्मित किशोरावस्था समस्या मापनी का प्रशासन किया गया। क्रांतिक अनुपात परीक्षण के द्वारा आंकड़ों का विश्लेषण किया गया। शोधकार्य से प्राप्त परिणामों के अनुसार शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की संवेगात्मक, पारिवारिक, आर्थिक समस्याओं में सार्थक अंतर पाया गया जबकि सामाजिक, व्यावसायिक, व्यक्तिगत व स्वास्थ्य समस्याओं में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

मुख्य शब्दः शासकीय एवं अशासकीय विद्यालय, किशोरावस्था की समस्याएं

मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त तक अनेक अवस्थाओं एवं परिस्थितियों से गुजरना पड़ता है, इन अवस्था में होने वाले परिवर्तनों तथा परिस्थितियों का प्रभाव मानव के व्यवहार पर भी पड़ता है विकास की इस यात्रा का प्रमुख पड़ाव है 'किशोरावस्था'। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में किये गये शोधों के परिणाम स्वरूप किशोरावस्था को व्यक्ति के जीवन की मुख्य अवस्था के रूप में स्वीकार किया गया है जो बाल्यावस्था तथा वयस्कावस्था के बीच पारगमन अवधि होती है। इस अवस्था में जहां एक ओर छात्राओं का ध्यान शारीरिक एवं भावनात्मक परिवर्तनों के कारण शिक्षा से हटता है, वहीं उनका इस अवस्था में शिक्षा के प्रति लगन बनाये रखना और पथभ्रष्ट होने से बचाना बहुत आवश्यक है। माता-पिता और अध्यापक सदैव इस अवस्था के प्रति चिंतित रहते हैं। किशोरियों को बहुत सी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इसलिए शिक्षा को इस प्रकार संगठित करना चाहिए कि वह बच्चों को जीवन की समस्याओं को हल करने योग्य बनाए, यह किशोरियां ही राष्ट्र की भावी कर्णधार व देश का भविष्य हैं। यदि आज हमारी किशोरियां समस्याग्रस्त हैं तो कल हमारा भविष्य समस्याग्रस्त हो सकता है क्योंकि इन किशोरियों पर ही दो परिवारों व समाज का भविष्य निर्भर करता है, इसलिए यह जरूरी हो जाता है कि हमें किशोरियों की समस्याओं की जानकारी हो ताकि उनका उचित समाधान कर उनको समस्यामुक्त किया जा सके। इसी कारण से इस समस्या का चयन शोधकार्य हेतु किया गया है। प्रस्तुत शोध से संबंधित पूर्व में भी कुछ शोध कार्य किये गये हैं जैसे - **मैथिल एवं अन्य** (2004) ने अपने अध्ययन निष्कर्षतः ज्ञात किया कि शासकीय एवं अशासकीय माहाविद्यालयों के विद्ययार्थियों की समस्याओं में सार्थक अन्तर पाया गया तथा अशासकीय महाविद्यालय के विद्यार्थियों में, शासकीय महाविद्यालय के विद्ययार्थियों की तुलना में उच्च समस्याएं पाई गई। **कपूर, अमित कौर; कोष्ठा, संध्या एवं वर्मा, उर्मिला** (2010) के अध्ययन के निष्कर्षतः ज्ञात हुआ कि शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों की किशोरावस्था की छात्राओं के समायोजन में सार्थक अंतर नही पाया गया। **श्रीवैद्य, वी.; खाडी, पी.बी. एवं भटट्, ए.आर.एस.** (2011) के अध्ययन के निष्कर्षतः ज्ञात हुआ कि विभिन्न प्रकार के विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की विभिन्न समस्याओं में कोई अन्तर नहीं पाया गया। **ढीगंरा, नीलिमा** (2016) के अध्ययन के निष्कर्षतः ज्ञात हुआ कि किशोरावस्था के छात्र एवं छात्राओं के मध्य गृह एवं संवेगात्मक समायोजन में सार्थक अंतर पाया गया तथा छात्रों का गृह समायोजन, छात्राओं से बेहतर पाया गया जबकि छात्राओं का संवेगात्मक समायोजन, छात्रों से बेहतर पाया गया। छात्र एवं छात्राओं के मध्य स्वास्थ्य एवं सामाजिक समायोजन में सार्थक अंतर नहीं पाया गया। जोसफ, **पी.पी. एवं साहू, राकेश** (2016) के अध्ययन के निष्कर्षतः ज्ञात हुआ कि सहशिक्षा विद्यालयों एवं कन्या विद्यालयों में

अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं के गृह, स्वास्थ्य, संवेगात्मक एवं समग्र समायोजन में सार्थक अंतर नहीं पाया गया जबकि सामाजिक समायोजन में सार्थक अंतर पाया गया तथा सहशिक्षा विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं का सामाजिक समायोजन, कन्या विद्यालयों की छात्राओं से बेहतर पाया गया। **चंद्रम्मा, एम.** (2016) के अध्ययन के निष्कर्षत: ज्ञात हुआ कि छात्र एवं छात्राओं की समायोजन समस्याओं में सार्थक अंतर पाया गया तथा छात्रों में, छात्राओं की तुलना में अधिक समायोजन समस्याएँ पाई गई। **पाठक, स्वाती एवं बाकलीवाल, ममता** (2017) के अध्ययन के निष्कर्षत: ज्ञात हुआ कि शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों के मध्य संवेगात्मक, सामाजिक समस्या में सार्थक अंतर नहीं पाया गया जबकि व्यावसायिक समस्या में सार्थक अंतर पाया गया तथा अशासकीय विद्यालयों के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों में, शासकीय विद्यालयों के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक व्यावसायिक समस्याएं पाई गयीं।

उपर्युक्त अध्ययनों से शोधकर्ता ने निष्कर्ष निकाला कि किशोरावस्था की छात्राओं की समस्याओं का अध्ययन आवश्यक है, जिससे उनकी समस्याओं को जानकर उनका उचित मार्गदर्शन किया जा सके।

उद्देश्य:-

शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पनाएं:-

1. शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की संवेगात्मक समस्या में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।
2. शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की सामाजिक समस्या में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।
3. शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की व्यावसायिक समस्या में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।
4. शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की व्यक्तिगत व स्वास्थ्य समस्या में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।
5. शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की पारिवारिक समस्या में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।
6. शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की आर्थिक समस्या में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।

उपकरण:-

किशोरावस्था की छात्राओं की समस्याओं के मापन हेतु स्वनिर्मित किशोरावस्था समस्या मापनी का उपयोग किया जाएगा।

विधि:- इस शोधकार्य हेतु सर्वप्रथम भोपाल जिले के 02 शासकीय एवं 02 अशासकीय विद्यालयों का चयन किया गया तथा इन विद्यालयों की कक्षा नवमीं व दसवीं में अध्ययनरत 70 छात्राओं (35 शासकीय विद्यालय एवं 35 अशासकीय विद्यालय) का चयन दैव निदर्शन विधि द्वारा करके उन पर सामूहिक रूप से स्वनिर्मित 'किशोरावस्था समस्या मापनी' का प्रशासन किया गया एवं किशोरावस्था समस्या मापनी के सभी 6 क्षेत्रों का अलग अलग फलांकन किया गया। प्राप्तांकों के आधार पर मॉस्टर शीट तैयार की गई। मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रांतिक अनुपात परीक्षण के द्वारा आंकड़ों का विश्लेषण किया गया प्राप्त परिणामों के आधार पर निष्कर्ष प्राप्त किये गये।

परिणामों का विश्लेषण:-

परिकल्पना - 1: शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की संवेगात्मक समस्या में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।

तालिका क्रमांक - 01

शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की संवेगात्मक समस्या संबंधी तुलनात्मक परिणाम

विद्यालय का प्रकार	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात मान	'पी' मान
शासकीय	35	8.77	2.98	2.23	< 0.05
अशासकीय	35	10.34	2.93		

स्वतंत्रता के अंश - 78

0.05 स्तर के लिये निधार्रित न्यूनतम सारणीय मान - 1.99

उपरोक्त तालिका का अध्ययन करने पर पाया गया कि शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की संवेगात्मक समस्या के मध्यमान क्रमश: 8.77 व 10.34 हैं। दोनों के मध्य 1.57 का अंतर ज्ञात हुआ तथा इसके लिए प्राप्त क्रांतिक अनुपात मान 2.23 है जो कि स्वतंत्रता के अंश

78 पर सार्थकता के 0.05 स्तर पर निर्धारित न्यूनतम सारणीय मान 1.99 से अधिक है जो सार्थक है। अत: कहा जा सकता है कि शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की संवेगात्मक समस्या में सार्थक अंतर पाया गया तथा अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं में संवेगात्मक समस्याएं, शासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं से उच्च पाई गयीं। अत: इस आधार पर शून्य परिकल्पना ''शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की संवेगात्मक समस्या में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा'', अस्वीकृत होती है।

परिकल्पना - 2: शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की सामाजिक समस्या में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।

तालिका क्रमांक - 02

शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की सामाजिक समस्या संबंधी तुलनात्मक परिणाम

विद्यालय का प्रकार	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात मान	'पी' मान
शासकीय	35	7.86	2.19	1.22	> 0.05
अशासकीय	35	7.15	2.65		

स्वतंत्रता के अंश - 78

0.05 स्तर के लिये निधार्रित न्यूनतम सारणीय मान - 1.99

उपरोक्त तालिका का अध्ययन करने पर पाया गया कि शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की सामाजिक समस्या के मध्यमान क्रमश: 7.86 व 7.15 हैं। दोनों के मध्य 0.71 का अंतर ज्ञात हुआ तथा इसके लिए प्राप्त क्रांतिक अनुपात मान 1.22 है जो कि स्वतंत्रता के अंश 78 पर सार्थकता के 0.05 स्तर पर निधार्रित न्यूनतम सारणीय मान 1.99 से कम है जो असार्थक है। अत: कहा जा सकता है कि शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की सामाजिक समस्या में सार्थक अंतर नहीं पाया गया। अत: इस आधार पर शून्य परिकल्पना ''शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की सामाजिक समस्या में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा'', स्वीकृत होती है।

परिकल्पना - 3: शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की व्यावसायिक समस्या में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।

तालिका क्रमांक - 03

शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की व्यावसायिक समस्या संबंधी तुलनात्मक परिणाम

विद्यालय का प्रकार	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात मान	'पी' मान
शासकीय	35	8.06	1.79	1.39	> 0.05
अशासकीय	35	7.34	2.46		

स्वतंत्रता के अंश - 78

0.05 स्तर के लिये निधार्रित न्यूनतम सारणीय मान - 1.99

उपरोक्त तालिका का अध्ययन करने पर पाया गया कि शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की व्यावसायिक समस्या के मध्यमान क्रमश: 8.06 व 7.34 हैं। दोनों के मध्य 0.72 का अंतर ज्ञात हुआ तथा इसके लिए प्राप्त क्रांतिक अनुपात मान 1.39 है जो कि स्वतंत्रता के अंश 78 पर सार्थकता के 0.05 स्तर पर निधार्रित न्यूनतम सारणीय मान 1.99 से कम है जो असार्थक है। अत: कहा जा सकता है कि शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की व्यावसायिक समस्या में सार्थक अंतर नहीं पाया गया। अत: इस आधार पर शून्य परिकल्पना ''शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की व्यावसायिक समस्या में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा'', स्वीकृत होती है।

परिकल्पना - 4: शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की व्यक्तिगत व स्वास्थ्य समस्या में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।

तालिका क्रमांक - 04

शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की व्यक्तिगत व स्वास्थ्य समस्या संबंधी तुलनात्मक

परिणाम

विद्यालय का प्रकार	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात मान	'पी' मान
शासकीय	35	10.57	2.87	1.42	> 0.05
अशासकीय	35	9.60	2.87		

स्वतंत्रता के अंश – 78

0.05 स्तर के लिये निधार्रित न्यूनतम सारणीय मान – 1.99

उपरोक्त तालिका का अध्ययन करने पर पाया गया कि शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की व्यक्तिगत व स्वास्थ्य समस्या के मध्यमान क्रमश: 10.57 व 9.60 हैं। दोनों के मध्य 0.97 का अंतर ज्ञात हुआ तथा इसके लिए प्राप्त क्रांतिक अनुपात मान 1.42 है जो कि स्वतंत्रता के अंश 78 पर सार्थकता के 0.05 स्तर पर निधार्रित न्यूनतम सारणीय मान 1.99 से कम है जो असार्थक है। अत: कहा जा सकता है कि शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की व्यक्तिगत व स्वास्थ्य समस्या में सार्थक अंतर नहीं पाया गया। अत: इस आधार पर शून्य परिकल्पना ''शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की व्यक्तिगत व स्वास्थ्य समस्या में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा'', स्वीकृत होती है।

परिकल्पना – 5: शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की पारिवारिक समस्या में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।

तालिका क्रमांक – 05

शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की पारिवारिक समस्या संबंधी तुलनात्मक परिणाम

विद्यालय का प्रकार	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात मान	'पी' मान
शासकीय	35	9.29	2.66	3.34	< 0.01
अशासकीय	35	7.17	2.63		

स्वतंत्रता के अंश – 78

0.01 स्तर के लिये निधार्रित न्यूनतम सारणीय मान – 2.64

उपरोक्त तालिका का अध्ययन करने पर पाया गया कि शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की पारिवारिक समस्या के मध्यमान क्रमश: 9.29 व 7.17 हैं। दोनों के मध्य 2.11 का अंतर ज्ञात हुआ तथा इसके लिए प्राप्त क्रांतिक अनुपात मान 3.34 है जो कि स्वतंत्रता के अंश 78 पर सार्थकता के 0.01 स्तर पर निधार्रित न्यूनतम सारणीय मान 2.64 से अधिक है जो सार्थक है। अत: कहा जा सकता है कि शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की पारिवारिक समस्या में सार्थक अंतर पाया गया तथा शासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं में पारिवारिक समस्याएं, अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं से उच्च पाई गयीं। अत: इस आधार पर शून्य परिकल्पना ''शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की पारिवारिक समस्या में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा'', अस्वीकृत होती है।

परिकल्पना – 6: शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की आर्थिक समस्या में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।

तालिका क्रमांक – 06

शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की आर्थिक समस्या संबंधी तुलनात्मक परिणाम

विद्यालय का प्रकार	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात मान	'पी' मान
शासकीय	35	9.71	2.70	3.91	< 0.01
अशासकीय	35	7.29	2.49		

स्वतंत्रता के अंश – 78

0.01 स्तर के लिये निधार्रित न्यूनतम सारणीय मान – 2.64

उपरोक्त तालिका का अध्ययन करने पर पाया गया कि शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की आर्थिक समस्या के मध्यमान क्रमश: 9.71 व 7.29 हैं। दोनों के मध्य 2.42 का अंतर ज्ञात हुआ तथा इसके लिए प्राप्त क्रांतिक अनुपात मान 3.91 है जो कि स्वतंत्रता के अंश 78 पर सार्थकता के 0.01 स्तर पर निधार्रित न्यूनतम सारणीय मान 2.64 से अधिक है जो सार्थक है। अत: कहा जा सकता है कि शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की आर्थिक समस्या में सार्थक अंतर

पाया गया तथा शासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं में आर्थिक समस्याएं, अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं से उच्च पाई गयीं। अत: इस आधार पर शून्य परिकल्पना ''शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की आर्थिक समस्या में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा'', अस्वीकृत होती है।

निष्कर्ष-

1. शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की संवेगात्मक समस्या में सार्थक अंतर पाया गया तथा अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं में संवेगात्मक समस्याएं, शासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं से उच्च पाई गयीं।
2. शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की सामाजिक समस्या में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।
3. शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की व्यावसायिक समस्या में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।
4. शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की व्यक्तिगत एवं स्वास्थ्य समस्या में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।
5. शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की पारिवारिक समस्या में सार्थक अंतर पाया गया तथा शासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं में पारिवारिक समस्याएं, अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं से उच्च पाई गयीं।
6. शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं की आर्थिक समस्या में सार्थक अंतर पाया गया तथा शासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं में आर्थिक समस्याएं, अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था की छात्राओं से उच्च पाई गयीं।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. गुप्ता, एस. पी. (2005) ''सांख्किीय विधियां'' शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
2. वालिया, जे.एस. (2005) ''शिक्षा मनोविज्ञान की बुनियादें'' पाल पब्लिशर्स, जालंधर।
3. पाठक, स्वाती एवं बाकलीवाल, ममता (2017) ''शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत किशोरावस्था के विद्यार्थियों की समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन'', शोध समग्र, वॉल्युम 3 (1), इस्यु 9, मार्च 2017, पेज नम्बर 21-24
4. रावल, जी.एल. (1984) 'संवेगात्मक रूप से विचलित किशोरों के व्यक्तित्व समायोजन का पारिवारिक एवं विद्यालयीन वातावरण के संबंध का अध्ययन', फोर्थ सर्वे ऑफ एजूकेशन रिसर्च, वाल्यूम I पेज.नं. 422-423
5. **Chandramma, M. (2016)** "A study of Adjustment Problems of High school students in chittoor District", Education Times, Volume 1, Number-1, Jan.-Dec. 2016, Page No. 105-110
6. **Das, N.M (1982)** ''Some Behaviour Problems of the Secondary School Students of the District of Burdwan and Their Causes'', *Ph.D. Edu., In Third Survey of Research in Education. (1978-83), Pg. No. - 121.*
7. **Dhingra, Neelima (2016)** "A study of adjustment problems of Adolescents in relation to their self-concept", Education Times, Volume 1, Number-1, Jan.-Dec. 2016, Pg No. 69-82
8. **Joseph, P.P. and Sahu, Rakesh (2016)** "Comparative study of adjustment of adolescent girls of co-educational school girl and girls schools of urban area", Education Times, Volume 1, Number-1, Jan.-Dec. 2016, Page No. 166-172
9. **Kapoor, Amit Kaur; Kosta, Sandhya & Verma, Urmila (2010)** ''A comparative study of adjustment among the girls of abolescent age of govt. and non govt. schools'', *research hunt, vol - v, issue - vi, july-aug. 2010, pg. no. 121-123.*
10. **Srivaidhya, V., Khadi, P.B. And Bhat, A.R.S. (2011)** ''Adjustment problems of student's of navodhaya, central and state schools, A.P.R.C'', *Indian Psychological review, Vol. 76, No. 2, Year 2011, Pg. 93-98.*

ISSN 2278 - 0327

गणेश पाइन : एक रहस्यवादी चित्रकार

शोभना
शोधार्थी, पीएच.डी., दृश्य कला विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा

शोध प्रविधि :

गणेश पाइन जिनको काले अति यथार्थवाद के चित्रकार के नाम से भी जाना जाता है। इनका जन्म 1937 ईस्वी में पश्चिम बंगाल में हुआ। गणेश पाइन का जब जन्म हुआ था उस समय भारत अंग्रेजों का गुलाम था इसलिए गणेश पाइन ने स्वतंत्रता से पहले का विभाजन और सामाजिक उथल-पुथल को नजदीक से देख रखा था। जब गणेश पाइन नौसाल के थे (1946 ईस्वी) में तब 'डायरेक्ट डे' के दंगों से भी वह काफी प्रभावित हुए और उनका बाल मस्तिष्क विचलित भी हुआ। एक समय ऐसा भी आया जब उनको अपने परिवार के साथ एक अस्पताल में शरण लेकर अपनी जान बचानी पड़ी। जब वह कुछ समय तक शव-गृह में रहे तो वहाँ रखे शव भी उन्हें हमेशा याद रहे। बाल अवस्था में ही उनके मानस पटल पर जो छवि बनी वह छवि जीवनपर्यंत उनके बनाए चित्रों में दिखाई देती है। गणेश पाइन अपनी दादी द्वारा सुनाई गई कहानियों से भी काफी प्रभावित हुए और उन्हीं कथा पात्रों को उन्होंने अपने मन में रचा बसा लिया था, जिससे उनको अपने चित्रों के पात्र गढ़ने में सहायता मिली। उनकी दादी ही उनकी रचनात्मकप्रेरणा बनी।

मूल शब्द : रहस्यवाद, कल्पना, मृत्यु, दुख-दर्द, पीड़ा।

गणेश पाइन ने इन कहानियों में से ही अपने चित्रों के किरदार ढूंढ निकाले। उन्होंने बंदरों के राजकुमार, बात करने वाले टिड्डे और लड़कों का जादूगर जैसे अन्य किरदारों को भी कहानियों के काल्पनिक पात्रों से ही मूल रूप में प्रस्तुत किया है। वीर बहादुर नाम का बंदर (जिसका बंगाली भाषा में अर्थ है - सभी चीजों का स्वामी) राजा को एक बंदर के रूप में दिखाया गया है, जिसके गले में रस्सी बंधी है उसकी मुस्कुराहट और आंखों में शरारत की प्रवृत्ति दिखाई देती है।

इसी प्रेरणा से उन्होंने अपनी कल्पना शक्ति का विकास किया और अपने चित्रों में रहस्यात्मता का भाव पैदा किया। गणेश पाइन हॉलीवुड फिल्मों से भी काफी प्रभावित हुए उनके अनेक किरदारों में उन छवियों का स्वरूप प्रकट होता है जो फिल्मों के मुख्य पात्र रहे। उन्होंने ''फेडेरिको फेलिनी'' के ला डोल्से वीटा से फवारा लिया है जबकि प्रेत की आकृति इगमार बगमैन की 'द सेवंथ सील' की याद दिलाती है।

गणेश पाइन अपने अतीत से पात्रों को उठाते थे, उनको विकृत करते और उनमें रहस्यात्मकता का रंग भर देते। उनके अनेक चित्र और चित्र-श्रृंखला इसी कारण से उन्हें अन्य समकालीन कलाकारों से अलग बनाती है। 1970 के दशक के दौरान 'इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इंडिया' ने एक लेख प्रकाशित किया जिसमें तत्कालीन प्रमुख कलाकार एम० एफ० हुसैन ने गणेश पाइन के बारे में अपना वक्तव्य दिया।

इस लेख में मकबूल फिदा हुसैन ने गणेश पाइन को प्रमुख समकालीन कलाकारों की श्रेणी में रखा तो लोगों ने गणेश पाइन के बारे में पहली बार जाना।

गणेश पाइन काले एवं नीले रंग (गहरे रंगों) का अधिक प्रयोग करते हैं इसलिए उन्हें 'अंधेरे का चित्रकार' भी कहा गया है। गणेश पाइन के चित्रों में अंधकार भरा हुआ है। इनके विषयों को प्रकट करने के लिए इस प्रकार के रंगों का इस्तेमाल करना वैसे भी आवश्यक हो जाता है क्योंकि मौत, दु:ख, भय, अंधकार आदि भावों को दिखाने के लिए गहरे रंगों की ही आवश्यकता होती है। गणेश पाइन के चित्रों के विषय दु:ख, मृत्यु, दर्द, एकांत प्रमुख रहे हैं।

गणेश पाइन ने जब बचपन में अपने परिवार के साथ अस्पताल में शरण ली तो वहाँ पर रखे मृत शरीरों का भय इसके अलावा उन्होंने अपने स्वजनों को खोया उसका दु:ख व पीड़ा का असर भी बचपन से ही उनके मस्तिष्क पर पड़ा और इसीलिए उनके चित्रों का विषय दु:ख, पीड़ा, दर्द, मृत्यु, एकांत के इर्द-गिर्द घुमता है। उनके चित्रों के विषयों में मृत्यु को प्रमुखता से चित्रित

किया गया है। किंतु इसके अलावा भी इन्होंने अनेक विषयों को अपनी तूलिका द्वारा प्रकट किया है।

इनके चित्रों में भाव प्रबलता भी प्रकट होती है। मोची और भिखारी के चित्रों में एक के चेहरे से किसी दार्शनिक जैसा भाव एवं दूसरे के चेहरे से किसी महान कवि जैसा भाव प्रकट होता है। इन्हीं विशेषताओं के कारण इन्हें 'कलाकारों का कलाकार' और 'दार्शनिकों का दार्शनिक' भी कहा जाता है।

गणेश पाइन ने अपने चित्रों को जल, रंग, स्याही से बनाना आरंभ किया था किंतु बाद में इन्होंने टैम्परा रंगों को विशेष महत्व दिया। गणेश पाइन द्वारा बनाए गए प्रमुख रहस्यमयी चित्र इस प्रकार है –महाभारत (चित्र श्रृंखला), रात के सौदागर, हत्यारा, एक स्वप्न की मृत्यु, एक प्राचीन पुरुष की मृत्यु, विंटर मॉर्निंग, नाइट ऑफ द राइडर। इनमें से अधिकतर चित्र टैम्परा विधि में बनाए गए हैं। गणेश पाइन ने अपने चित्रों की श्रृंखलाएँ भी बनाई हैं और एकल चित्र के रूप में भी अपनी भावाभिव्यक्ति की है। महाभारत श्रृंखला इनकी प्रसिद्ध श्रृंखलाओं में से एक है।
गणेश पाइन ने एक बार कहा भी था – ''पहले मेरे दिमाग में विचार आता था फिर मैं रूपों की स्केचिंग से खोज करता था।''

गणेश पाइन के चित्रों की दुनिया अंधकारमय एवं रहस्यों से भरी हुई है। उनके चित्रों के पात्र काल्पनिक है। यह कल्पना और रहस्यात्मकता ही उन्हें अन्य चित्रकारों से अलग बनाती है। इसी विभिन्नता के कारण मकबूल फिदा हुसैन ने उन्हें समकालीन कलाकारों में शीर्ष स्थान पर रखा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. 'कलाकार वक्तव्य गणेश पाइन छाया के डोमिनियन में एक तीर्थ यात्री', संग्रहालय मुंबई, 2005,पृष्ठ संख्या 14
2. The Hindu, 27 Feb 2019
3. The Indian Express, 'गणेश पाइन एक अंतर्मुखी जिसकी कालीकला अपने समय से आगे थी', 13 मार्च 2013
4. दत्त अजीत कुमार,साहचर्य, प्रकाशन ललित कला अकादमी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2009
5. पाइनगणेश, गणेश पाइन के पत्र, प्रकाशन ललित कला अकादमी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2010

ISSN 2278 - 0327

उच्चतर माध्यमिक स्तर की बालिकाओं की शिक्षा पर प्रभाव डालने वाले आर्थिक कारकों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. एन.के. कौशिक
प्राचार्य
महाराणा प्रताप कॉलेज ऑफ एजुकेशन, रातीबड़ भोपाल

उमा चौरसिया
शोधार्थी, शिक्षा संकाय
बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल

प्रस्तुत शोध में उच्चतर माध्यमिक स्तर की बालिकाओं की शिक्षा पर प्रभाव डालने वाले आर्थिक कारकों का अध्ययन किया गया है। इस शोध हेतु प्रतिदर्श के रूप में भोपाल जिले के उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों की 50 बालिकाओं, उनके 100 अभिभावकों (50 माता व 50 पिता) एवं 50 शिक्षकों का चयन दैव निदर्शन विधि द्वारा किया गया तथा चयनित बालिकाओं, अभिभावकों व शिक्षकों का साक्षात्कार किया गया एवं चयनित प्रतिदर्श पर स्वनिर्मित 'बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले आर्थिक कारकों पर आधारित प्रश्नावली' का प्रशासन किया गया। इस अध्ययन से प्राप्त परिणामों के अनुसार उच्चतर माध्यमिक स्तर की बालिकाओं की शिक्षा पर प्रभाव डालने वाले प्रमुख आर्थिक कारक अभिभावकों की निर्धनता, विद्यालय आने-जाने में होने वाला व्यय, परिवार का बड़ा आकार, सीमित आय के स्त्रोत, पर्याप्त छात्रवृत्ति न मिलना, आय की अनिष्चितता, छात्रावासों का बढ़ता शुल्क, रोजगार के अवसरों की कमी, महाविद्यालय में आवश्यक संसाधनों का अभाव, बाल मजदूरी आदि पाए गये। साथ ही उच्चतर माध्यमिक स्तर की बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले विभिन्न आर्थिक कारकों अभिभावकों की निर्धनता, विद्यालय आने-जाने में होने वाला व्यय, महंगी शिक्षण व्यवस्था, सरकार के विभिन्न अभियान व योजनाएं आदि के प्रति बालिकाओं, अभिभावकों एवं शिक्षकों के विचारों में मत भिन्नता नहीं पाई गयी जबकि आर्थिक कारक परिवार की सीमित व अनिष्चित आय के प्रति बालिकाओं, अभिभावकों एवं शिक्षकों के विचारों में मत भिन्नता पाई गयी।

मुख्य बिन्दू - उच्चतर माध्यमिक स्तर, बालिकाओं की शिक्षा, आर्थिक कारक

शिक्षा जीवन जीने का एक अनिवार्य हिस्सा है। चाहे वह लड़का हो या लड़की हो, शिक्षा सभी के लिए आवश्यक है। महिला के अधिकारों की रक्षा में शिक्षा सबसे महात्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वह लिंग के आधार पर भेदभाव को रोकने में भी मदद करती है। शिक्षा महिलाओं को जीवन के मार्ग को चुनने का अधिकार देने का पहला कदम है, जिस पर वह आगे बढ़ती है। एक शिक्षित महिला में कौशल, सूचना, प्रतिभा और आत्मविश्वास होता है जो उसे एक बेहतर मां, कर्मचारी और देश का निवासी बनाती है। महिलाएं हमारे देश की आबादी का लगभग आधा हिस्सा हैं। पुरुष और महिलाए सिक्के के दो पहलुओं की तरह हैं और उन्हें देश के विकास में योगदान करने के समान अवसर की आवश्यकता होती है। पहले समय था जब लड़कियों की शिक्षा को कभी भी आवश्यक नहीं माना गया था। लेकिन समय गुजरने के साथ लोगों ने लड़कियों की शिक्षा का महत्व महसूस किया है। यह अब आधुनिक युग में लड़कियों के प्रोत्साहन के रूप में माना जाता है। अब महिलाएं जीवन के सभी क्षेत्रों में पुरुषों के साथ प्रतिस्पर्धा कर रही हैं, लड़कियों की शिक्षा समाज में बदलाव ला सकती हैं। यह भी देखा गया है कि महिलाओं ने जब-जब शिक्षा जगत के क्षेत्र में कदम रखा है तब-तब उन्होनें राष्ट्र को उठाने व उसके विकास में भरपूर योगदान देकर अनेक कीर्तिमान स्थापित किये हैं। जहां हमारे देश में एक ओर कल्पना चावला, अरून्धती राय, किरण बेदी, चंदा कोचर, सुनीता नारायण जैसी महिलाएँ हुयी हैं जो कि विभिन्न क्षेत्रों में अपना परचम लहरा रही हैं वहीं हमारे देश में यह दुर्भाग्य है कि हमारी कई बेटियां आज भी विद्यालय की सीढ़ी चढ़ने से वंचित रह गई हैं। हमारे देश में जहां एक ओर बालिकाएं डॉक्टर, इंजीनियर, वकील, पत्रकार, लेखिका एवं शिक्षिका इत्यादि पदों पर कार्यरत हैं वहीं दूसरी ओर कई क्षेत्रों में (प्रांतों में) बालिकाओं की शिक्षा को महत्वपूर्ण नहीं समझा जाता है, उन्हें सिर्फ घरेलू कार्यों को सीखने पर ही जोर दिया जाता है। आज बालिकाओं (महिलाओं) के साक्षरता स्तर

को बढ़ाने की आवश्यकता है। जिससें उन्हें भी विकास के समान अवसर प्राप्त हो और वे भी लड़कों (पुरुषों) के कंधे से कंधा मिलाकर देश की प्रगति में योगदान दे सकें। उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि देष के विकास के लिए समस्त बालिकाओं को भी शिक्षित करना आवश्यक है, अत: हमें उन सभी कारणों को जानना आवश्यक है जो कि बालिकाओं की शिक्षा को सकारात्मक या नकारात्मक रूप से प्रभावित कर रहें है। इसी कारण से शोधकर्ता ने उच्चतर माध्यमिक स्तर की बालिकाओं की शिक्षा पर प्रभाव डालने वाले आर्थिक कारकों का अध्ययन करने का प्रयास इस शोध द्वारा किया है।

बालिकाओं की शिक्षा एवं उसको प्रभावित करने वाले कारकों पर पूर्व में कुछ शोध कार्य हुये हैं जैसे कुमार, विनय एवं गार्डिया, आलोक (2009) ने 'नि:शुल्क एवं अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के तहत विद्यालयी सुरक्षा के प्रबंध, प्रावधान एवं उपदेयता' विषय पर शोध लेख लिखा। अपने इस शोध पत्र में उन्होनें बताया कि विद्यालय आवासीय क्षेत्रों के निकट स्थापित किये जाये जिससे विद्यालय आने-जाने में होने वाला व्यय न्यूनतम हो सके एवं विद्यार्थी, अभिभवक एवं शिक्षक आसानी से विद्यालय पहुँच सकें। विद्यालयों में कम से कम एक महिला शिक्षक की नियुक्ति अवश्य की जाये। विद्यालय परिसर में शुद्ध पेयजल, बालक व बालिकाओं के लिये पृथक शैचालय की उचित व्यवस्था की जाए और समय-समय पर विद्यार्थियों का स्वास्थ्य परीक्षण किया जाये। **कैसर, सुलेमान एवं अन्य** (2015) ने 'उच्चतर माध्यमिक स्तर पर बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले कारकों का अध्ययन: पाकिस्तान के कारक जिले के संदर्भ में' विषय पर किये अनुसंधान के निष्कर्ष में बताया कि शिक्षकों की लापरवाही व अनियमितता, अभिभावकों की निर्धनता, विद्यालय में मूलभूत सुविधाओं का अभाव, कम आयु में विवाह, अभिभावकों का बालिकाओं की शिक्षा के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण, अभिभावकों की निरक्षरता, निपुण शिक्षकों का अभाव, विद्यालय की अधिक दूरी व उनमें जाने में होने वाला व्यय, महंगी शिक्षण व्यवस्था आदि छात्राओं की शिक्षा में मुख्य बाधक कारक हैं। **रेणु** (2017) ने 'सर्वशिक्षा अभियान का गुणात्मक अध्ययन: हरियाणा प्रदेश के माध्यमिक स्कूलों के संदर्भ में' अध्ययन किया। अपने इस शोध पत्र में उन्होनें बताया कि हरियाणा के पंचकुला, यमुनानगर तथा कुरूक्षेत्र जिले के अधिकतर स्कूलों में कक्षा-कक्ष, खेल का मैदान तथा कम्प्यूटर कक्ष उपलब्ध हैं। शौचालय, पीने का पानी आदि सुविधाएं स्कूलों में उपलब्ध हैं। अध्ययन से पता चला कि पुस्तकालय, प्रयोगशाला, आर्ट एण्ड क्रॉफ्ट शिक्षा की सुविधा पूरी तरह से नहीं दी जाती है। छात्रों को स्कूल में वर्दी, किताबें, छात्रवृतियों की सुविधा उपलब्ध हैं, लेकिन देरी से मिलने की समस्या है। इन विद्यालयों के लिये यातायात व आवासीय सुविधा उपलब्ध नहीं है। **शर्मा, तनु एवं गौर, रीति** (2018) ने 'भारत में महिला शिक्षा पर विद्यालय संबंधित कारकों के प्रभाव का अध्ययन' विषय पर किये अनुसंधान के निष्कर्ष में बताया कि भारत में 2011 की जनगणना के अनुसार साक्षरता दर 1971 की तुलना में दोगुनी हो गयी है फिर भी पुरुष एवं महिला साक्षरता में अभी भी 15 प्रतिषत का अंतर है। प्रदत्त विश्लेषण से प्राप्त परिणामों से यह भी ज्ञात हुआ कि विद्यालयों में महिला शिक्षकों का अभाव तथा बालक व बालिकाओं के लिए एक ही शौचालय का होना शिक्षादर को नकारात्मक रूप से प्रभावित करते हैं वहीं विद्यालयों में पीने के साफपानी की उपलब्धता व अधिक महिला शिक्षकों का होना साक्षरता दर को सकारात्मक रूप से प्रभावित करते हैं। **सिंह, रश्मि** (2019) ने 'प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर छात्राओं की समस्याएं: उत्तर प्रदेश के हरदोई जिले के विशेष संदर्भ में' विषय पर किये अनुसंधान के निष्कर्ष में बताया कि अभिभावकों की निरक्षरता व निर्धनता, विद्यालय जाने में होने वाला व्यय, महंगी शिक्षण व्यवस्था आदि छात्राओं की शिक्षा में मुख्य बाधक आर्थिक कारक हैं। **मिश्रा, लक्ष्मी एवं आर्य, मोहन लाल** (2020) ने 'बालिका शिक्षा को प्रभावित करने वाले कारकों का विष्लेषणात्मक अध्ययन' विषय पर किये अनुसंधान के निष्कर्ष में बताया कि बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले प्रमुख आर्थिक कारक महाविद्यालय की घर से अधिक दूरी, सहशिक्षा की समस्या, महाविद्यालय में आवश्यक संसाधनों की कमी, सीमित आय के स्रोत, छात्रावासों का बढ़ता शुल्क, यातायात पर होने वाला व्यय, पर्याप्त छात्रवृत्ति न मिलना, परिवार का बड़ा आकार आदि पाए गये।

अध्ययन के उद्देश्य:-

1. उच्चतर माध्यमिक स्तर की बालिकाओं की शिक्षा पर प्रभाव डालने वाले आर्थिक कारकों की पहचान करना।
2. उच्चतर माध्यमिक स्तर की बालिकाओं की शिक्षा पर प्रभाव डालने वाले आर्थिक कारकों के प्रति बालिकाओं, अभिभावकों एवं शिक्षकों के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन

करना।

परिकल्पना:-

1. उच्चतर माध्यमिक स्तर की बालिकाओं की शिक्षा को अनेक आर्थिक कारक प्रभावित करते हैं।
2. उच्चतर माध्यमिक स्तर की बालिकाओं की शिक्षा पर प्रभाव डालने वाले आर्थिक कारकों के प्रति बालिकाओं, अभिभावकों एवं शिक्षकों के विचारों में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

न्यादर्श-

इस शोध हेतु प्रतिदर्श के चयन हेतु भोपाल जिले में स्थित उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में पढ़ने वाली 50 बालिकाओं, उनके 100 अभिभावकों (50 माता व 50 पिता) एवं 50 शिक्षकों (पुरुष व महिला दोनों) का चयन दैव निदर्शन विधि द्वारा किया गया।

उपकरण:-

उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में पढ़ने वाली बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले आर्थिक कारकों को जानने के लिए साक्षात्कार एवं स्वनिर्मित प्रष्नावली का उपयोग किया गया।

शोध विधि:-

इस शोध हेतु सर्वप्रथम भोपाल जिले के उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में पढ़ने वाली बालिकाओं, उनके अभिभावकों तथा इनको शिक्षा देने वाले शिक्षकों का चयन दैव निदर्शन विधि द्वारा किया गया तथा इन सभी चयनित लोगों का साक्षात्कार करके उन आर्थिक कारकों की पहचान की गयी जो बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करते हैं। शोधकर्ता द्वारा पूर्व अनुसंधानों, साक्षात्कार एवं व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले आर्थिक कारकों पर आधारित प्रश्नावली को तैयार करके इस प्रश्नावली का अनुसंधान हेतु चयनित समूहों पर प्रशासन किया गया। प्राप्तांकों के आधार पर मॉस्टर शीट तैयार की गई। प्रतिशत, औसत एवं काई वर्ग परीक्षण के द्वारा आंकड़ों का विश्लेषण किया गया।

परिणामों का विश्लेषण:-

परिकल्पना 01:- उच्चतर माध्यमिक स्तर की बालिकाओं की शिक्षा को अनेक आर्थिक कारक प्रभावित करते हैं।

उपरोक्त परिकल्पना के परीक्षण के लिए पूर्व अनुसंधानों एवं साक्षात्कार के आाधार पर प्राप्त हुए निष्कर्षों को लिया गया है, जिसमें बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले प्रमुख आर्थिक कारक निम्न प्राप्त हुए हैं -

1. अभिभावकों की निर्धनता
2. विद्यालय जाने में होने वाला व्यय
3. पर्याप्त छात्रवृत्ति न मिलना,
4. परिवार का बड़ा आकार
5. छात्रावासों का बढ़ता शुल्क
6. सीमित आय के स्रोत
7. आय की अनिश्चितता
8. बाल मजदूरी
9. रोजगार के अवसरों की कमी
11. सरकार के विभिन्न अभियान, योजनाएं, छात्रवृत्ति आदि
10. महाविद्यालय में आवश्यक संसाधनों का अभाव

इसके अतिरिक्त भी अनेक कारक जैसे लड़कियों की शिक्षा के लिए परिवार में धनाभाव, व्यावसायिक शिक्षा की कमी, माता-पिता दोनों का कामकाजी होना एवं छोटे भाई-बहनों की देखभाल, शिक्षा के लिए सहायक संसाधनों जैसे कोचिंग, ट्यूशन, कम्प्यूटर, मोबाईल, पढ़ाई के लिए पृथक रूम की कमी आदि आर्थिक कारक भी बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करते पाए गये। अत: उपरोक्त विवरण के आधार पर पूर्व में ली गयी परिकल्पना ''उच्चतर माध्यमिक स्तर की बालिकाओं की शिक्षा को अनेक आर्थिक कारक प्रभावित करते हैं'', स्वीकृत की जाती है।

परिकल्पना 02:- उच्चतर माध्यमिक स्तर की बालिकाओं की शिक्षा पर प्रभाव डालने वाले आर्थिक कारकों के प्रति बालिकाओं, अभिभावकों एवं शिक्षकों के विचारों में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

तालिका 01

उच्चतर माध्यमिक स्तर की बालिकाओं की शिक्षा पर प्रभाव डालने वाले नकारात्मक आर्थिक कारक बालिकाओं के अभिभावकों की निर्धनता संबंधी तुलनात्मक परिणाम

समूह	प्रतिक्रियाएं						काई वर्ग मान	सार्थकता
	सहमत	सहमत (प्रतिशत में)	अनिश्चत	अनिश्चत (प्रतिशत में)	असहमत	असहमत (प्रतिशत में)		
बालिका	33	66.00	04	8.00	13	26.00	8.19	0.05 स्तर पर असार्थक
माता	38	76.00	05	10.00	07	14.00		
पिता	31	62.00	04	8.00	15	30.00		
शिक्षक	29	58.00	02	4.00	19	38.00		
कुल	131	औसत 65.50	15	औसत 7.50	54	औसत 27.00		

स्वतंत्रता के अंश - 06

0.05 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान - 12.592

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट है कि उच्चतर माध्यमिक स्तर की बालिकाओं की शिक्षा पर प्रभाव डालने वाले आर्थिक कारकों में से एक प्रमुख नकारात्मक आर्थिक कारक अभिभावकों की निर्धनता के लिए प्राप्त प्रतिक्रियाओं से पता चलता है कि अधिकांशत: लोग (65.50 प्रतिशत) इस बात से सहमत हैं कि बालिकाओं के अभिभावकों की निर्धनता का बालिकाओं की शिक्षा पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है जबकि अपेक्षाकृत कम लोग (27.00 प्रतिशत) इस बात से असहमत हैं तथा कुछ लोगों (7.50 प्रतिशत) ने इस बात के प्रति कोई स्पष्ट प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। प्रस्तुत सारणी में प्रदर्शित परिणामों से यह भी स्पष्ट है कि प्राप्त 'काई वर्ग' का मान 8.19 स्वतंत्रता के अंश 06 पर सार्थकता के 0.05 स्तर के लिए निर्धारित मान 12.592 की अपेक्षा कम है, जो सार्थक नहीं है।

अत: उपरोक्त परिणामों के आधार पर निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि अभिभावकों की निर्धनता बालिकाओं की शिक्षा पर नकारात्मक रूप से प्रभाव डालने वाला एक प्रमुख आर्थिक कारक है। प्राप्त 'काई वर्ग' परीक्षण मान से यह स्पष्ट है कि 'बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले आर्थिक कारक- बालिकाओं के अभिभावकों की निर्धनता' के प्रति विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रिया देने वाली बालिकाओं, अभिभावकों (माता व पिता) एवं शिक्षकों के विचारों में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

तालिका 02

उच्चतर माध्यमिक स्तर की बालिकाओं की शिक्षा पर प्रभाव डालने वाले नकारात्मक आर्थिक कारक विद्यालय आने-जाने में होने वाला व्यय संबंधी तुलनात्मक परिणाम

समूह	प्रतिक्रियाएं						काई वर्ग मान	सार्थकता
	सहमत	सहमत (प्रतिशत में)	अनिश्चत	अनिश्चत (प्रतिशत में)	असहमत	असहमत (प्रतिशत में)		
बालिका	29	58.00	05	10.00	16	32.00	9.85	0.05 स्तर पर असार्थक
माता	35	70.00	04	8.00	11	22.00		
पिता	41	82.00	02	4.00	07	14.00		
शिक्षक	28	56.00	05	10.00	17	34.00		
कुल	133	औसत 66.50	16	औसत 8.00	51	औसत 25.50		

स्वतंत्रता के अंश - 06

0.05 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान - 12.592

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट है कि उच्चतर माध्यमिक स्तर की बालिकाओं की शिक्षा पर प्रभाव डालने वाले आर्थिक कारकों में से एक प्रमुख नकारात्मक आर्थिक कारक विद्यालय आने-जाने में होने वाले व्यय के लिए प्राप्त प्रतिक्रियाओं से पता चलता है कि अधिकांशत: लोग (66.50 प्रतिशत) इस बात से सहमत हैं कि विद्यालय आने-जाने में होने वाले व्यय का बालिकाओं की शिक्षा पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है जबकि अपेक्षाकृत कम लोग (25.50 प्रतिशत) इस बात से असहमत हैं तथा कुछ लोगों (8.00 प्रतिशत) ने इस बात के प्रति कोई स्पष्ट प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। प्रस्तुत सारणी में प्रदर्शित परिणामों से यह भी स्पष्ट है कि प्राप्त 'काई वर्ग' का मान 9.85 स्वतंत्रता के अंश 06 पर सार्थकता के 0.05 स्तर के लिए निर्धारित मान 12.592 की अपेक्षा कम है, जो सार्थक नहीं है।

अत: उपरोक्त परिणामों के आधार पर निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि विद्यालय आने-जाने में होने वाले व्यय बालिकाओं की शिक्षा पर नकारात्मक रूप से प्रभाव डालने वाला एक प्रमुख आर्थिक कारक है। प्राप्त 'काई वर्ग' परीक्षण मान से यह स्पष्ट है कि 'बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले आर्थिक कारक- विद्यालय आने-जाने में होने वाले व्यय' के प्रति विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रिया देने वाली बालिकाओं, अभिभावकों (माता व पिता) एवं शिक्षकों के विचारों में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

तालिका 03

उच्चतर माध्यमिक स्तर की बालिकाओं की शिक्षा पर प्रभाव डालने वाले नकारात्मक आर्थिक कारक बालिकाओं के परिवार की सीमित व अनिष्चित आय संबंधी तुलनात्मक परिणाम

समूह	प्रतिक्रियाएं						काई वर्ग मान	सार्थकता
	सहमत	सहमत (प्रतिशत में)	अनिश्चत	अनिश्चत (प्रतिशत में)	असहमत	असहमत (प्रतिशत में)		
बालिका	26	52.00	05	10.00	19	38.00	20.76	0.01 स्तर पर सार्थक
माता	36	72.00	06	12.00	08	16.00		
पिता	37	74.00	07	14.00	06	12.00		
शिक्षक	24	48.00	03	6.00	23	46.00		
कुल	123	औसत 61.50	21	औसत 10.50	56	औसत 28.00		

स्वतंत्रता के अंश - 06

0.01 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान - 16.812

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट है कि उच्चतर माध्यमिक स्तर की बालिकाओं की शिक्षा पर प्रभाव डालने वाले आर्थिक कारकों में से एक प्रमुख नकारात्मक आर्थिक कारक बालिकाओं के परिवार की सीमित व अनिश्चित आय के लिए प्राप्त प्रतिक्रियाओं से पता चलता है कि अधिकांशत: लोग (61.50 प्रतिशत) इस बात से सहमत हैं कि बालिकाओं के परिवार की सीमित व अनिष्चित आय का बालिकाओं की शिक्षा पर नकारात्मक

प्रभाव पड़ता है जबकि अपेक्षाकृत कम लोग (28.00 प्रतिशत) इस बात से असहमत हैं तथा कुछ लोगों (10.50 प्रतिशत) ने इस बात के प्रति कोई स्पष्ट प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। प्रस्तुत सारणी में प्रदर्शित परिणामों से यह भी स्पष्ट है कि प्राप्त 'काई वर्ग' का मान 20.76 स्वतंत्रता के अंश 06 पर सार्थकता के 0.01 स्तर के लिए निर्धारित मान 16.812 की अपेक्षा अधिक है, जो सार्थक है।

अत: उपरोक्त परिणामों के आधार पर निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि बालिकाओं के परिवार की सीमित व अनिष्चित आय बालिकाओं की शिक्षा पर नकारात्मक रूप से प्रभाव डालने वाला एक प्रमुख आर्थिक कारक है। प्राप्त 'काई वर्ग' परीक्षण मान से यह स्पष्ट है कि 'बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले आर्थिक कारक- बालिकाओं के परिवार की सीमित व अनिष्चित आय' के प्रति विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रिया देने वाली बालिकाओं, अभिभावकों (माता व पिता) एवं शिक्षकों के विचारों में सार्थक अंतर पाया गया तथा इस कारक के प्रति सहमती रखने वालों में बालिकाओं के पिताओं की संख्या सर्वाधिक (74.00 प्रतिषत) जबकि शिक्षकों की संख्या सबसे कम (48.00 प्रतिशत) पाई गयी।

तालिका 04

उच्चतर माध्यमिक स्तर की बालिकाओं की शिक्षा पर प्रभाव डालने वाले नकारात्मक आर्थिक कारक महंगी शिक्षण व्यवस्था संबंधी तुलनात्मक परिणाम

समूह	प्रतिक्रियाएं						काई वर्ग मान	सार्थकता
	सहमत	सहमत (प्रतिशत में)	अनिश्चत	अनिश्चत (प्रतिशत में)	असहमत	असहमत (प्रतिशत में)		
बालिका	38	76.00	03	6.00	09	18.00	10.27	0.05 स्तर पर असार्थक
माता	41	82.00	04	8.00	05	10.00		
पिता	39	78.00	03	6.00	08	16.00		
शिक्षक	31	62.00	02	4.00	17	34.00		
कुल	149	औसत 74.50	12	औसत 6.00	39	औसत 19.50		

स्वतंत्रता के अंश - 06

0.05 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान - 12.592

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट है कि उच्चतर माध्यमिक स्तर की बालिकाओं की शिक्षा पर प्रभाव डालने वाले आर्थिक कारकों में से एक प्रमुख नकारात्मक आर्थिक कारक विद्यालय जाने में होने वाले व्यय के लिए प्राप्त प्रतिक्रियाओं से पता चलता है कि अधिकांशत: लोग (74.50 प्रतिशत) इस बात से सहमत हैं कि महंगी शिक्षण व्यवस्था (जैसे पुस्तकें, गणवेश, स्कूल बैग, विद्यालयों की फीस आदि) का बालिकाओं की शिक्षा पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है जबकि अपेक्षाकृत कम लोग (19.50 प्रतिशत) इस बात से असहमत हैं तथा कुछ लोगों (6.00 प्रतिशत) ने इस बात के प्रति कोई स्पष्ट प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। प्रस्तुत सारणी में प्रदर्शित परिणामों से यह भी स्पष्ट है कि प्राप्त 'काई वर्ग' का मान 10.27 स्वतंत्रता के अंश 06 पर सार्थकता के 0.05 स्तर के लिए निर्धारित मान 12.592 की अपेक्षा कम है, जो सार्थक नहीं है।

अत: उपरोक्त परिणामों के आधार पर निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि महंगी शिक्षण व्यवस्था बालिकाओं की शिक्षा पर नकारात्मक रूप से प्रभाव डालने वाला एक प्रमुख आर्थिक कारक है। प्राप्त 'काई वर्ग' परीक्षण मान से यह स्पष्ट है कि 'बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले आर्थिक कारक- महंगी शिक्षण व्यवस्था' के प्रति विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रिया देने वाली बालिकाओं, अभिभावकों (माता व पिता) एवं शिक्षकों के विचारों में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

तालिका 05

उच्चतर माध्यमिक स्तर की बालिकाओं की शिक्षा पर प्रभाव डालने वाले सकारात्मक आर्थिक कारक सरकार के विभिन्न अभियान, योजनाओं संबंधी तुलनात्मक परिणाम

समूह	प्रतिक्रियाएं						काई वर्ग मान	सार्थकता
	सहमत	सहमत (प्रतिशत में)	अनिश्चत	अनिश्चत (प्रतिशत में)	असहमत	असहमत (प्रतिशत में)		
बालिका	39	78.00	04	8.00	07	14.00	8.79	0.05 स्तर पर असार्थक
माता	31	62.00	08	16.00	11	22.00		
पिता	35	70.00	06	12.00	09	18.00		
शिक्षक	42	84.00	01	2.00	07	14.00		
कुल	147	औसत 73.50	19	औसत 9.50	34	औसत 17.00		

स्वतंत्रता के अंश - 06

0.05 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान - 12.592

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट है कि उच्चतर माध्यमिक स्तर की बालिकाओं की शिक्षा पर प्रभाव डालने वाले आर्थिक कारकों में से एक प्रमुख सकारात्मक आर्थिक कारक राज्य व केन्द्र सरकार के विभिन्न अभियान व योजनाओं के लिए प्राप्त प्रतिक्रियाओं से पता चलता है कि अधिकांशत: लोग (73.50 प्रतिशत) इस बात से सहमत हैं कि राज्य व केन्द्र सरकार के विभिन्न अभियानों (सर्व शिक्षा अभियान, बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओं,

स्कूल चलें हम आदि) व योजनाओं (शिक्षा अधिकार अधिनियम 2009, छात्रवृत्ति, नि:शुल्क पाठयपुस्तक, गणवेश, साईकिल आदि) का बालिकाओं की शिक्षा पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है जबकि अपेक्षाकृत कम लोग (17.00 प्रतिशत) इस बात से असहमत हैं तथा कुछ लोगों (9.50 प्रतिशत) ने इस बात के प्रति कोई स्पष्ट प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। प्रस्तुत सारणी में प्रदर्शित परिणामों से यह भी स्पष्ट है कि प्राप्त 'काई वर्ग' का मान 8.79 स्वतंत्रता के अंश 06 पर सार्थकता के 0.05 स्तर के लिए निर्धारित मान 12.592 की अपेक्षा कम है, जो सार्थक नहीं है।

अत: उपरोक्त परिणामों के आधार पर निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि राज्य व केन्द्र सरकार के विभिन्न अभियान व योजनाएं बालिकाओं की शिक्षा पर सकारात्मक रूप से प्रभाव डालने वाला एक प्रमुख आर्थिक कारक है। प्राप्त 'काई वर्ग' परीक्षण मान से यह स्पष्ट है कि 'बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले आर्थिक कारक- राज्य व केन्द्र सरकार के विभिन्न अभियान व योजनाओं' के प्रति विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रिया देने वाली बालिकाओं, अभिभावकों (माता व पिता) एवं शिक्षकों के विचारों में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

तालिका 06

उच्चतर माध्यमिक स्तर की बालिकाओं की शिक्षा पर प्रभाव डालने वाले नकारात्मक व सकारात्मक रूप से प्रभावित करने वाले समस्त आर्थिक कारकों संबंधी तुलनात्मक परिणाम

आर्थिक कारक	सहमत लोगों की संख्या	सहमत लोगों की संख्या (प्रतिशत में)
अभिभावकों की निर्धनता	131	औसत 65.50
विद्यालय आने–जाने में होने वाला व्यय	133	औसत 66.50
परिवार की सीमित व अनिश्चित आय	123	औसत 61.50
महंगी शिक्षण व्यवस्था	149	औसत 74.50
सरकार के विभिन्न अभियान व योजनाएं	147	औसत 73.50

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट है कि उच्चतर माध्यमिक स्तर की बालिकाओं की शिक्षा पर प्रभाव डालने वाले आर्थिक कारकों में से महंगी शिक्षण व्यवस्था उनकी शिक्षा को प्रभावित करने वाला सर्वप्रमुख कारक (74.50 प्रतिशत) पाया गया जबकि परिवार की सीमित व अनिश्चित आय बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले नकारात्मक कारकों में सबसे कम (61.50 प्रतिशत) प्रभावी पाया गया। साथ ही सरकार के विभिन्न अभियान व योजनाएं बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाला प्रभावी सकारात्मक कारक (73.50 प्रतिशत) पाया गया।

अत: उपरोक्त सभी सारणियों में प्रदर्शित परिणामों के आधार पर निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि उच्चतर माध्यमिक स्तर की बालिकाओं की शिक्षा पर नकारात्मक प्रभाव डालने वाले प्रमुख आर्थिक कारक क्रमश: महंगी शिक्षण व्यवस्था, विद्यालय आने-जाने में होने वाला व्यय, अभिभावकों की निर्धनता, परिवार की सीमित व अनिश्चित आय पाए गये जबकि सरकार के विभिन्न अभियान व योजनाएं बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाला प्रभावी सकारात्मक कारक पाया गया। साथ ही उच्चतर माध्यमिक स्तर की बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले विभिन्न आर्थिक कारकों अभिभावकों की निर्धनता, विद्यालय आने-जाने में होने वाला व्यय, महंगी शिक्षण व्यवस्था, सरकार के विभिन्न अभियान व योजनाएं आदि के प्रति बालिकाओं, अभिभावकों एवं शिक्षकों के विचारों में मत भिन्नता नहीं पाई गयी जबकि आर्थिक कारक परिवार की सीमित व अनिश्चित आय के प्रति बालिकाओं, अभिभावकों एवं शिक्षकों के विचारों में मत भिन्नता पाई गयी।

अत: उपरोक्त सारणियों में दिये गये परिणामों के परिप्रेक्ष्य में पूर्वनिर्धारित परिकल्पना ''उच्चतर माध्यमिक स्तर की बालिकाओं की शिक्षा पर प्रभाव डालने वाले आर्थिक कारकों के प्रति बालिकाओं, अभिभावकों एवं शिक्षकों के विचारों में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है'', आंशिकत: अस्वीकृत की जाती है।

निष्कर्ष-

उच्चतर माध्यमिक स्तर की बालिकाओं की शिक्षा पर नकारात्मक प्रभाव डालने वाले प्रमुख आर्थिक कारक क्रमश: महंगी शिक्षण व्यवस्था, विद्यालय आने-जाने में होने वाला व्यय, अभिभावकों की निर्धनता, परिवार की सीमित व अनिश्चित आय पाए गये जबकि सरकार के विभिन्न अभियान व योजनाएं बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाला प्रभावी सकारात्मक कारक पाया गया। साथ ही उच्चतर माध्यमिक स्तर की बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले विभिन्न आर्थिक कारकों अभिभावकों की निर्धनता, विद्यालय आने-जाने में होने वाला व्यय, महंगी शिक्षण व्यवस्था, सरकार के विभिन्न अभियान व

योजनाएं आदि के प्रति बालिकाओं, अभिभावकों एवं शिक्षकों के विचारों में मत भिन्नता नहीं पाई गयी जबकि आर्थिक कारक परिवार की सीमित व अनिश्चित आय के प्रति बालिकाओं, अभिभावकों एवं शिक्षकों के विचारों में मत भिन्नता पाई गयी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. अग्रवाल, जे.सी. (2012) ''उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा'', अग्रवाल पॅब्लिकेशन्स, आगरा
2. आप्टे, प्रभा (1996) ''भारतीय समाज में नारी'', क्लासिक पब्लिकेशंस, जयपुर
3. गुप्ता, मधु (2000) ''शिक्षा संस्कार एवं उपलब्धि'', क्लासिक पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली
4. जैन, बसन्तलाल एवं सिंह, विजय (2004) ''भारत का विकास'', भारत भारती प्रकाशन मेरठ
5. कपिल, एच.के. (1995) ''अनुसंधान विधियां'', एच.पी. भार्गव पुस्तक प्रकाशक कचहरी घाट, आगरा
6. कपूर, उर्मिला (2004) ''भारतीय शिक्षा का इतिहास एवं समस्याएं'', साहित्य प्रकाशन, आगरा
7. लाल, रमन बिहारी (1994) ''शिक्षा की दार्षनिक एवं समाजशास्त्रीय पद्धति'', रस्तोगी पब्लिकेषन्स, षिवाजी रोड, मेरठ
8. माहेश्वरी, सरला (1998) ''नारी प्रश्न'', राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
9. शर्मा, पी.डी. (2016) ''भारत में शिक्षा स्तर, समस्याएँ एवं मुद्दे'', विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

Related Research :

1. कुमार, विनय एवं गार्डिया, आलोक (2009) ''नि:शुल्क एवं अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के तहत विद्यालयी सुरक्षा के प्रबंध, प्रावधान एवं उपदेयता'', भारतीय आधुनिक शिक्षा, वर्ष 37, अंक 3, जनवरी 2017, पे.नं. 91-98
2. रेणु (2017) ''सर्वशिक्षा अभियान का गुणात्मक अध्ययन: हरियाणा प्रदेश के माध्यमिक स्कूलों के संदर्भ में'', इंटरनेशनल जर्नल ऑफ ह्यूमिनिटी एण्ड सोशल साइंस रिसर्च, वाल्यूम 3, इश्यू 5, मई 2017, पेज नं. 100-102
3. मिश्रा, लक्ष्मी एवं आर्य, मोहन लाल (2020) ''बालिका शिक्षा को प्रभावित करने वाले कारकों का विश्लेषणात्मक अध्ययन'', *Shikshan Sanshodhan: Journal of Arts, Humanities, and Social Science, Vol 3, Issue 1, Jan-Feb 2020, Page No.121-127*
4. सिंह, रश्मि (2019) ''प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर छात्राओं की समस्याएं: उत्तर प्रदेश के हरदोई जिले के विशेष संदर्भ में'' *Shrinkhla Ek Sodhparak Vaicharik Patrika, Vol 6, Issue 10, June 2019, Page No.49-53*
5. **Qaiser, Sulemaan and etc. al. (2015)** "Exploring Factors Affecting Girls' Education at Secondary Level: A Case of Karak District, Pakistan, *Journal of Education and Practice, Vol 6, No. 19, 2015, Page No. 95-109*
6. **Sharma, Tanu and Gaur, Reeti (2018)** "Impact of School Related Factors on Female Education in India, *Research Guru, Vol 12, Issue 2, September 2018, Page No. 786-802*

ISSN 2278 - 0327

ग्रामीण किशोरियों के व्यक्तित्व विकास पर अध्ययन

प्रेरणा
शोधार्थी योग विज्ञान विभाग
श्री गुरु राम राय विश्वविद्यालय देहरादून (उत्तराखंड)

प्रोफेसर (डॉ.) सरस्वती काला
विभागाध्यक्ष योग विज्ञान विभाग
श्री गुरु राम राय विश्वविद्यालय देहरादून (उत्तराखंड)

शोध सारांश

ग्रामीण किशोरियों के व्यक्तित्व विकास के लिए उनके व्यक्तित्व में कुछ परिस्थितियों के कारण कुछ विसंगतियों का समावेश हो जाता है जैसे उदाहरणार्थ किशोरियों में असुरक्षा की भावना, आत्मविश्वास की कमी एवं आत्महीनता की भावना पैदा होना, इन सब के पीछे उनके ग्रामीण परिवेश और वहां चिकित्सालय सड़क परिवहन उच्च शिक्षा और व्यवसायिक गतिविधियों का अभाव जैसी समस्याओं के साथ साथ किशोरियों को अवस्था परिवर्तन से जुड़े अनेक शारीरिक मानसिक परिवर्तनों के कारण भी इन समस्याओं का सामना करना पड़ता है इसके अतिरिक्त भोजन पोषण एवं पारिवारिक स्थिति जैसे अनेक कारण इन सभी व्यक्तित्व संबंधी चुनौतियों को उत्पन्न करते हैं।

ग्रामीण परिवेश का वर्ग विभाजन, शिक्षा का अभाव तथा अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता का अभाव, किशोरावस्था से जुड़े परिवर्तनों की उपयुक्त जानकारी का अभाव, किशोरियों के व्यक्तित्व निर्माण में ये सभी कारक बाधक बनते हैं।

विशेष शब्दावली (Key Word) - आत्मविश्वास,आत्म हीनता, असुरक्षा की भावना, किशोरावस्था।

भारत गांवों का देश है 2001 की जनगणना के अनुसार यहां गांवों की कुल जनसंख्या 5,93,643 है। भारत की कुल जनसंख्या 102.87 करोड़ (2001 की जनगणना के अनुसार) का 72.2 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों में तथा 27.8 प्रतिशत भाग नगरीय क्षेत्रों में निवास करता है।

ग्रामीण प्रमुखत: प्रकृति पर निर्भर रहते हैं और कृषि ही इनकी आजीविका का प्रमुख माध्यम है इसलिए यहां प्रकृति तथा भूमि वर्गों की प्रकृति को भी निश्चित करती है। इस परिप्रेक्ष्य में विचार करने पर ग्रामीण जनसंख्या में तीन प्रमुख वर्ग पाए जाते हैं प्रथम जमीदार एवं साहूकार, द्वितीय किसान तथा तीसरा वर्ग श्रमिक-मजदूर वर्ग से आता है गांव का सबसे प्रभावशाली किंतु संख्या के अनुसार सबसे छोटा वर्ग जमीदार साहूकार वाला होता है अधिकतर सामाजिक रूप से प्रतिष्ठित और दबंग जातियां इस वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है।

दूसरा किसानों का वर्ग जिनके पास भूमि का स्वामित्व होता है जमीदार वर्ग की अपेक्षा यह भूमि की जोत अपेक्षाकृत कम रहती है इनका जीवन स्तर जमीदार वर्ग से निम्न और मजदूर वर्ग से उच्च अवस्था में होता है।

तीसरा वर्ग मजदूर भूमिहीन श्रमिक वर्ग का है जो संख्या में सर्वाधिक होता है लेकिन संपन्नता की दृष्टि से निम्नतम स्तर पर आता है इनका जीवन यापन दोनों दूसरे वर्गों भूमि भवन परिश्रम कार्य करके निर्वहन होता है।

ग्रामीण अंचल में उपयुक्त तीनों वर्गों के अतिरिक्त एक अन्य वर्ग भी होता है जो अपना जीवन यापन वंशानुगत व्यवसाय द्वारा करता है जिसमें लोहार, कुम्हार, नाई, बढ़ई, मोची, सुनार आदि प्रमुख है इनका जीवन यापन तीनों वर्गों पर निर्भर है।[1]

ग्रामीण अंचल में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को चिकित्सा स्वास्थ्य उच्च शिक्षा एवं बेहतर व्यावसायिक जीवन के विकल्पों का अभाव तो रहता ही है अन्य भी सड़क संचार परिवहन से जुड़ी समस्याएं भी रहती है यह परिस्थितियां सभी को समान रूप से प्रभावित करती है किंतु आज हमारे अध्ययन का विषय आधी आबादी अर्थात् ग्रामीण अंचल में निवास करने वाली महिलाओं और उनमें भी विशेष रूप से किशोरियों से जुड़ी विभिन्न समस्याओं पर है।

किशोरावस्था 11 वर्ष से 18 वर्ष के मध्य की अवस्था हैं इस आयु वर्ग की शुरुआत प्यूबर्टी (Puberty) के साथ प्रारंभ होती है इसमें लैंगिक अंग कार्य करना शुरू कर देते हैं। यह अवस्था बाल्यावस्था और युवावस्था के मध्य एक परिवर्तन का काल है किशोरावस्था से जुड़े परिवर्तनों की उपयुक्त जानकारी नहीं होने पर इसके दुष्परिणाम किशोरियों की मनोवैज्ञानिक स्थिति

पर पड़ते हैं। किशोरावस्था से जुड़े बदलाव निम्नलिखित है शरीर के कद एवं भार में वृद्धि, हड्डियों का विकास, स्थाई दातों का विकास, विशेष अंगों पर बालों का उगना, आवाज में परिवर्तन आना, वक्ष का विकास, विभिन्न ग्रंथियों(Glands) का विकास, किशोरावस्था से जुड़े रोगों का प्रारंभ जैसे किशोरियों में महावारी की वजह से रक्ताल्पता(Anemic) की समस्या अधिकांश रूप से देखी जाती है।[2]

मासिक धर्म में विकृति का संबंध तात्कालिक संवेगात्मक प्रतिबल(Emotional stress) से जुड़ा रहता है इसलिए ऋतुस्त्राव से दो-तीन दिन पहले किशोरियों में एक प्रकार की संवेगात्मक प्रतिक्रिया देखी जाती है। और मासिक धर्म की अवधि के दौरान किशोरियों को तनाव चिड़चिड़ापन बात बात में क्रोधित होना आदि स्वभाव गत समस्याओं से जूझना पड़ता है।

मॉर्टन (Morton,1997) ने अमेरिका के कारागार में स्त्री कैदियों पर अध्ययन करके यह पाया कि 65 प्रतिशत अपराध जिसके लिए स्त्रियां जेल में बंद थी उन्होंने अपने मासिक धर्म के समय के दौरान यह अपराध किए थे इस प्रकार स्पष्ट है कि किशोरावस्था मासिक धर्म के प्रारंभ होने का समय है और यह मन मस्तिष्क में बड़े बदलाव का कारण बनता है।[3]

बदलते सामाजिक परिवेश में एक परिवार और व्यक्ति विशेष के रूप में सभी की जीवन शैली बदली है समाज का हर वर्ग आज अपनी नई भूमिका में नजर आ रहा है। इस बदलाव का बहुत बड़ा असर किशोरियों के जीवन पर देखने को मिलता है क्योंकि वक्त के साथ समाज में उनकी नई भूमिका जिसमें उनके लिए नए अवसर और नई चुनौतियों दोनों का समावेश है।

ग्रामीण किशोरियों के व्यक्तित्व पर विचार करने से पूर्व हमें व्यक्तित्व शब्द का तात्पर्य है समझना होगा।

आज से लगभग 2000 वर्ष पूर्व व्यक्तित्व के लिए Persona शब्द का उपयोग किया जाता था जिसका अर्थ है मुखौटा(Mask) अथवा वेशभूषा, Persona शब्द के अनुसार व्यक्तित्व का अर्थ चाहिए गुणों से लगाया जाता है व्यक्तित्व से संबंधित सैकड़ों परिभाषाएं है जिनका वर्णन ऑलपोर्ट(1937) ने छह प्रमुख समूहों में विभाजित करके किया है।

ऑलपोर्ट(1937) के अनुसार 'व्यक्तित्व एक व्यक्ति की उसकी विशेषताओं के अनुसार सामाजिक उद्देश्यों के प्रति की गई प्रतिक्रिया है और वह गुण है जो वह अपने वातावरण के सामाजिक लक्षणों से समायोजित होकर प्राप्त करता है।'

गुथरी(Guthrie,1944) के अनुसार 'व्यक्तित्व की परिभाषा सामाजिक महत्व की उन आदतों तथा आदत संस्थानों के रूप में की जा सकती है जो स्थिर तथा परिवर्तन के अवरोध वाली होती है।'[4]

प्रमुख व्यवहारवादी विद्वान् 'Kemph' के अनुसार 'व्यक्तित्व आदतों की उन व्यवस्थाओं का समन्वय है जो वातावरण के साथ व्यक्ति के विशिष्ट अभियोजन का प्रतिनिधित्व करती है।'

'वारेन' (Warren) एवं कारमाइकेल (Karmichael) के अनुसार 'मनुष्य की विकास व्यवस्था के किसी भी स्तर पर मनुष्य के समस्त व्यवस्था ही व्यक्तित्व है।'[5]

पहले के रूढ़िवादी समाज में कुछ संभ्रांत वर्गों को छोड़कर बाकी जनसामान्य में किशोरियों के लिए एक तय ढांचे के साथ सभी के जीवन की एक जैसी दिशा तय होती थी जिसमें एक उम्र के बाद विवाह और बच्चों की जिम्मेदारी तथा नए परिवार के साथ अपने जीवन का संतुलन बनाए रखने में ही पूरा जीवन गुजर जाता था।

लेकिन वर्तमान समय में आज जितना हक युवाओं के लिए है उतना ही हक समाज किशोरियों को भी देता है इसीलिए विवाह एवं आर्थिक क्षेत्र में आत्मनिर्भरता के साथ अपनी योग्यता के अनुसार उन्नति करने के अवसर भी किशोरियों को मिलते हैं किंतु इसी के साथ दोहरी चुनौतियों से सामना भी उनको करना पड़ता है।

इसलिए वर्तमान समय में परिवार एवं कैरियर की दौड़ के बीच संतुलन बनाए रखने के लिए अतिरिक्त मानसिक तनाव और दबाव की वजह से किशोरियों में कई मानसिक समस्याएं उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है।

महानगरीय और शहरी जीवन में शिक्षा स्वास्थ्य भोजन आवास आदि मूलभूत सुविधाओं का स्तर लगभग हर सामाजिक वर्ग के लिए परस्पर समान स्तर पर रहता है उच्चआय वर्ग, मध्यमवर्ग और आर्थिक रूप से निम्न वर्ग से जुड़े लोगों को अपने वर्ग के अन्य सभी लोगों के समान चिकित्सा स्वास्थ्य शिक्षा जैसी सुविधाओं का लाभ मिलता है।

ग्रामीण परिवेश में व्यक्ति की मूलभूत सुविधाएं जैसे चिकित्सा स्वास्थ्य शिक्षा तथा शोषण के विरुद्ध कानून का संरक्षण और अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता का अभाव, एक ही वर्ग में होने के बाद भी व्यक्ति विशेष के लिए अलग-अलग होता है क्योंकि ग्रामीण परिवेश में जातीय विभाजन और आर्थिक असंतुलन अधिक देखा जाता है जिन जातियों का प्रभुत्व सामाजिक रूप से अधिक है उन परिवारों की लड़कियों को शिक्षा स्वास्थ्य और

सामाजिक शोषण से सुरक्षा का लाभ अधिक मिलता है जबकि अपेक्षाकृत सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़ी हुई जातियों एवं वर्गों की लड़कियों को यही सब सुविधाएं शिक्षा स्वास्थ्य चिकित्सा एवं शोषण मुक्त जीवन प्राप्त करने में चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।

ग्रामीण परिवेश में आज भी बाल विवाह बालिकाओं के लिए बहुत बड़ी समस्या है एक सर्वे के अनुसार विश्व में होने वाले बाल विवाहों में से औसतन तीन में से एक भारत में होता है और देश के कुल बाल विवाह का लगभग आधा हिस्सा भारत के 5 राज्यों में घटित होता है जिनमें उत्तर प्रदेश बिहार पश्चिम बंगाल महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश है इनमें से भी उत्तर प्रदेश सर्वाधिक बाल विवाह वाला प्रदेश है जो लगभग 36 मिलियन के करीब है।

भारत में औसतन हर चौथी महिला 18 वर्ष से पूर्व विवाहित होती है विशेषकर ग्रामीण परिवेश में रहने वाली गरीब घरों की बालिकाएं बाल विवाह की समस्या से सर्वाधिक पीड़ित होती है।[6]

ग्रामीण जीवन में एक ही गांव के बीच निवास करने वाले विभिन्न जातीय समूह एवं सामाजिक आर्थिक प्रभुत्व के हिसाब से भिन्नता रखने वाले दो परिवारों के सदस्यों के मध्य शिक्षा स्वास्थ्य और उनके व्यक्तित्व की मनोदशा में गहरा अंतर पाया जाता है और यही अंतर ग्रामीण क्षेत्र की किशोरावस्था की लड़कियों के व्यक्तित्व विकास में सबसे बड़े बाधक तत्व की भूमिका का निर्वहन करता है।

संदर्भ सूची-

(1) गुप्ता, एम. (2013). भारत में समाज. जयपुर: राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी. पृष्ठ 176 -177,186.

(2) ओबरॉय, एस.पी. (2010). अधिगमकर्ता अधिगम एवं ज्ञान का मनोविज्ञान. भिवानी हरियाणा: लक्ष्मी बुक डिपो. पृष्ठ 75 -76.

(3) सुलेमान, एम. कुमार, डी. (2017). मनोरोग विज्ञान. दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास.पृष्ठ 264.

(4) डॉ वर्मा, पी. डॉ श्रीवास्तव, डी.एन.(1999). आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान. आगरा: विनोद पुस्तक मंदिर.पृष्ठ 440.

(5) वर्णवाल, एस.(2010). योग और मानसिक स्वास्थ्य. दिल्ली: न्यू भारतीय बुक कॉरपोरेशन.पृष्ठ 57

(6) Ending child marriage : A profile of progress in India.(2018). UNICEF.
Retrived from http://www.unicef.org/india/hi/research-reports/publications. pp 4

ISSN 2278 - 0327

मानव जीवन में प्राकृतिक चिकित्सा का महत्व

सुनीता रावल
शोधार्थी, योग विभाग
निर्वाण यूनिवर्सिटी, जयपुर राजस्थान

डॉ. मलिक राजेंद्र प्रताप
प्रवक्ता, योग विभाग
एम.बी.पी.जी. कॉलेज, हल्द्वानी (नैनीताल)

आयुर्वेद शास्त्र कहता है- '*धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तम्।*' अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्ति में श्रेष्ठ मूल कारण शरीर का निरोग होना ही होता है। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन रहता है तभी ब्रह्म का चिंतन संभव है।[1] आरोग्यता एक ऐसा शब्द है जिसमें मानव जीवन का संपूर्ण सुख विद्यमान है। सुख-संपन्नता, मान-सम्मान तभी मानव जीवन में लाभदायक है जब व्यक्ति निरोगी है अन्यथा इन सभी वस्तुओं का कोई मोल नहीं है।

आधुनिकता से भरे इस समाज में मनुष्य अपने आप को प्रकृति से दूर करता जा रहा है जिसका परिणाम साफ दिखाई दे रहा है जैसे जटिल बीमारियों के रूप में, अवसाद के रूप में या फिर कृतिम वस्तुओं को अपनाने के रूप में वर्तमान में व्यक्ति स्वास्थ्य संवर्धन व आरोग्यता प्राप्ति के लिए कितनी वस्तुओं को जीवन में इस तरह सम्मिलित कर चुका है कि उससे छूटना संभव नहीं जान पड़ता। इसका मुख्य कारण यह है कि हर किसी के पास समय का अभाव है जिसका कारण व्यक्ति बीमार होने पर अंग्रेजी एलोपैथिक दवाइयों का सेवन कर जल्दी ठीक होना ज्यादा बेहतर समझता है जिससे समय की बचत हो। आधुनिक समाज में अंग्रेजी दवाइयों के सेवन का प्रयोग बहुत तेजी से बढ़ा है परंतु इन अंग्रेजी दवाइयों का दुष्प्रभाव मनुष्य की आरोग्यता पर नकारात्मक प्रभाव डालता है और अधिक समय तक अंग्रेजी दवाइयों का सेवन करने से अनेक प्रकार के गंभीर रोग मनुष्य के जीवन में आने लगते हैं। यहां पर रोग की अवस्था से मुक्ति प्राप्त करने के श्रेष्ठ विकल्प के रूप में प्राकृतिक चिकित्सा एक पारंपरिक चिकित्सा पद्धति के रूप में प्रयोग में लाई जा सकती है

प्राचीन काल से ही प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा स्वास्थ्य लाभ लिया जा रहा है यदि तुलनात्मक रूप में देखा जाए तो आज के व्यक्ति में और पुराने समय के व्यक्तियों में बहुत ज्यादा अंतर देखने में आता है जैसे आयु का कम होना, कम उम्र में ही जटिल व गंभीर बीमारियां से ग्रसित होना, समय से पहले बुढ़ापा, मानसिक अवसाद आदि यह सभी चीजें हैं आज हर एक समाज के व्यक्ति में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। परंतु पुराने समय में इन सब चीजों का अभाव था व्यक्ति चिरायु थे इन्हें आरोग्यता, ओजस्विता तथा तेजस्विता प्राप्त थी इसका मुख्य कारण था प्राकृतिक चीजों का उपयोग में लाना तथा प्रकृति के सानिध्य में रहना।

प्राकृतिक चिकित्सा का अर्थ, परिभाषाऐं

प्राकृतिक चिकित्सा जीवन यापन करने की कला का ही दूसरा नाम है। प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत जो सिद्धान्त और नियम का पालन रोग की अवस्था में किया जाता है ठीक उन्ही सिद्धान्तों व नियमों का पालन स्वस्थ दीर्घायु बिताने के लिए भी किया जाता है। दोनों के लिए समान नियमों और सिद्धान्तों का पालन किया जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा को इस प्रकार परिभाषित किया जाता है

- पंच तत्वों की चिकित्सा ही प्राकृतिक चिकित्सा कहलाती है।
- प्राकृतिक नियमों का पालन करते हुए जीवन यापन करनी ही प्राकृतिक चिकित्सा है।
- आकाश तत्व, वायु तत्व, अग्नि तत्व, जल तत्व तथा पृथ्वी तत्व का प्रयोग कर रोग को ठीक रकने की पद्धति को प्राकृतिक चिकित्सा कहते है।
- प्राकृतिक नियमों व सिद्धान्तों का पालन कर रोग को दूर करना ही प्राकृतिक चिकित्सा है। आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी तथा राम नाम इन तत्वों की चिकित्सा प्राकृतिक चिकित्सा है।
- प्रकृति की गोद में रहकर जीवन यापन करना ही प्राकृतिक चिकित्सा है।
- शरीर में पंचतत्वों के असन्तुलन को जिस चिकित्सा पद्धति द्वारा पुन: संतुलित किया जाता है उसे प्राकृतिक चिकित्सा

कहते है।

- विजातीय द्रव्यों को शरीर से बाहर निकालकर जीवन शक्ति में वृद्धि करने वाली चिकित्सा को प्राकृतिक चिकित्सा कहते है।

प्राकृतिक चिकित्सा का इतिहास

प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान या प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली उतनी ही पुरानी है जितनी कि स्वयं प्रकृति एवं इसके आधार षट्तत्त्व - महतत्व, आकाश तत्व, वायु तत्व, अग्नि तत्व, जल तत्व तथा पृथ्वी तत्व। इस तरह प्रणाली संसार में प्रचलित सभी चिकित्सा प्रणालियों से पुरानी या उनकी जननी है।[2] वेदों में तथा अनेक प्राचीन ग्रंथों में इसका वर्णन आता है। प्राचीन समय से ही हमारे पूर्वज प्रकृति के साथ अपने जीवन को सुखमय आनंदमय बनाते आ रहे हैं। प्राचीन समय में राजा दिलीप का वर्णन आता है जिन्होंने दुग्ध कल्प द्वारा जंगल सेवन किया तथा इसी तरह फल कल्प द्वारा राजा दशरथ की रानियों ने भी एक ही फल द्वारा समान पुत्रों को जन्म दिया। लंघन (उपवास) चिकित्सा को प्राचीन प्राकृतिक चिकित्सा में एक अचूक चिकित्सा माना जाता है जिससे सभी रोगों का समूल नाश संभव है तथा जब भी लोगों को स्वास्थ संबंधी कोई परेशानी होती तो उपवास कर लेने से ही तुरंत ठीक हो जाते थे।

रावण काल से औषधि सेवन आरंभ होने का इतिहास मिलता है। रावण भोग विलासी था जिसे उपवास करने या कोई भी प्राकृतिक उपचार करने में कष्ट होता तथा रावण के आदेश पर वेदों ने जड़ी बूटी द्वारा गोली और काढ़े का निर्माण कर प्राकृतिक चिकित्साक के महत्व को कम कर दिया। तभी से धीरे-धीरे औषधि चिकित्सा फैलती गई और प्राकृतिक चिकित्सा लुप्त होती चली गई। इसी तरह एलोपैथिक का अविष्कार दिनों दिन बढ़ता चला। गया जिनमें कुछ प्राकृतिक थी, कुछ एलोपैथिक थी, जिसका परिणाम आज व्यक्ति के स्वास्थ्य का जो हाल देखने में आ रहा है वह सर्वज्ञात है। प्राकृतिक चिकित्सा के संबंध में बौद्ध ग्रंथ में एक जगह वर्णन आता है कि एक बार भगवान बुद्ध श्रावस्ती नगरी से जनगृह जा रहे थे। जाते समय कलंद निवास नामक संघ में ठहरे हुए थे तो वहां एक बौद्ध भिक्षु को सांप ने काट डाला तो भगवान बुद्ध ने विश नास के लिए चिकनी मिट्टी ,गोबर व राख का प्रयोग कर उस भिक्षुक को विष मुक्त किया ऐसे ही कई घटनाओ के प्रमाण हमें प्राकृतिक चिकित्सा के संबंध में सुनने को व देखने को मिलती है इससे पता चलता है कि प्राकृतिक चिकित्सा जितनी प्राचीन है उतनी ही लाभदायक भी है।

ईसा से कई 100 वर्ष पूर्व हिप्पोक्रेट्स जिन्हे प्राकृतिक चिकित्सा का जनक कहते हैं। नियमित रूप से सूर्य स्नान द्वारा रोगियों को ठीक करते थे। 18 वीं शताब्दी के मध्य से प्राकृतिक चिकित्सा का पुनरुत्थान होने लगा और तभी से लुप्त प्राकृत चिकित्सा की उपयोगिता के संबंध में पुन: जानने लगे और हमारा ज्ञान प्रति नित्य प्रति बढ़ता गया।[3] प्रकृति चिकित्सा भारत की प्राचीन चिकित्सा पद्धति है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी प्राकृतिक चिकित्सा के भक्त थे। एडाल्फ जुस्ट की पुस्तक रिटर्न टू नेचर पढ़कर वे प्राकृतिक चिकित्सा में आए। गांधीजी मलावरोध (Constipation) बीमारी से पीड़ित थे इस पद्धति द्वारा ही यह ठीक हुए तथा उन्होंने पुणे के पास प्राकृतिक चिकित्सालय की स्थापना की गांधीजी ने प्राकृतिक चिकित्सा पर अनेक पुस्तकें लिखी। जिसमें आरोग्य की कुंजी, राम नाम, कुदरती उपचार आदि प्रमुख हैं। प्राकृतिक चिकित्सा भारत की प्राचीन चिकित्सा प्रणाली है इसको अपनाने में व प्रचार प्रसार करने में भारतीय चिकित्सकों ने ही नहीं बल्कि विदेशी डॉक्टरों ने भी अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। विनसेज प्रिस्निज, फादर नीप, हेनरी लिण्डल्हार, लुई कूने आदि ऐसे अनेक डॉक्टर थे जिन्होंने एलोपैथिक छोड़कर प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किए।

प्राकृतिक चिकित्सा का मूलभूत सिद्धांत

प्राकृतिक चिकित्सा को तत्व चिकित्सा के नाम से भी जाना जाता है। जिसके अन्तर्गत पंच तत्वों- आकाश तत्व, वायु तत्व, अग्नि तत्व, जल तत्व एवं पृथ्वी तत्व के द्वारा सभी रोगों की चिकित्सा की जाती है। इन पंच तत्वों के अतिरिक्त एक छठा तत्व राम नाम भी इसमें शामिल किया जाता है। इन्हीं छ: तत्वों के द्वारा शारीरिक, मानसिक व भावनात्मक स्तरों पर होने वाले रोगों का चार किया जाता है। सिद्धान्तों व नियमों का पालन स्वस्थ दीर्घायु बिताने के लिए भी किया जाता है। दोनों के लिए समान नियमों और सिद्धान्तों का पालन किया जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा के कुछ मूलभूत सिद्धांत हैं जिनके आधार पर प्राकृतिक चिकित्सा की जाती है।

पहली आवश्यकता है कि हम अपने शरीर के मूल आधार प्रकृति को पहचाने। प्रकृति के साथ अपने अटूट और घनिष्ठ संबंध को खुली आंखों से देखे और उसके अनुकूल आचरण करके अपने सुखी और स्वस्थ जीवन की नींव को सुदृढ़ करें। प्रकृति मां है। हमारे शरीर की एक-एक कोशिका और उसमें चल रही क्रिया प्रकृति की देन है। हमारा एक-एक श्वास प्रकृति से प्राप्त वायु से चल रहा है। हमारा समूचा अस्तित्व प्रकृति की

कृपा पर टिका है अत: हमें इस शाश्वत संबंध को पहचानना चाहिए और उसके अनुकूल आचरण करना चाहिए। हमारे शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक शांति तथा बौद्धिक विकास की दिशा में यह पहला ठोस कदम है। प्राकृतिक चिकित्सा का यह पहला आधारभूत सिद्धांत है।[4]

प्राकृतिक चिकित्सा में पंचमहाभूतों द्वारा स्वास्थ्य संवर्धन :

जिस प्रकार सृष्टि की रचना पांच महाभूतों से हुई है उसी प्रकार हमारे शरीर में भी पांचों तत्वों के गुण विद्यमान रहते हैं जितनी भी भारतीय चिकित्सा पद्धति है। सभी में स्वास्थ्य का प्रकृति के साथ सीधा संबंध है, जहां प्रकृति है वहां स्वास्थ्य है। तात्पर्य है कि मानव जितना प्रकृति के समीप रहता है उतना ही स्वस्थ रहता है। प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार स्वास्थ्य संवर्धन में पंचमहाभूतों के महत्व को इस प्रकार समझा जा सकता है–

(1) आकाश तत्व का महत्व

मानव शरीर में कंठ से लेकर शीर्ष प्रदेश तक का भाग आकाश तत्व का स्थान माना जाता है इन स्थानों में जो भी रोग व विकार उत्पन्न होते हैं वे सभी आकाश तत्व की कमी से होते हैं। आकाश तत्व को मूल तत्व माना जाता है। वह एक रिक्त स्थान है जिसे आध्यात्मिक, बौद्धिकता, संपूर्ण मानसिक स्वास्थ्य का केंद्र बिंदु माना जाता है। महात्मा गांधी जी ने इसे आरोग्य की कुंजी, आरोग्य सम्राट कहां है। आकाश में देवताओं का वास माना जाता है यह एक कटु सत्य है कि यदि आकाश का सर्जन ना हुआ होता तो ना हमारी स्थिति न अस्तित्व ही होता क्योंकि शेष चारों तत्वों का आधार बिंदु भी आकाश रही है। आकाश तत्व को प्रबल करने मात्र से ही हम संपूर्ण स्वास्थ्य को प्रबल कर सकते हैं। शोक, काम, क्रोध, भय इन सभी आवेगो में सामंजस्य स्थापित करना आकाश तत्व के ही कार्य हैं। आकाश तत्व की प्राप्ति ब्रह्मचर्य ,संयम ,सदाचार, मानसिक अनुशासन एवं संतुलन , विश्राम, शिथिली करण, ध्यान, प्रसन्नता, मनोरंजन तथा अच्छी गहरी नींद से भी होती है जिसे हमारी जीवनी शक्ति प्रबल होती है।

(2) वायु तत्व का महत्व

पंचतत्वों में वायु का स्थान दूसरे महत्वपूर्ण स्थान के रूप में माना गया है हमारा जीवन आहार, जल, वायु पर निर्भर करता है इसमें से वायु जीवन जीने के लिए अत्यंत आवश्यक है जल जीवन है यह प्राणियों का प्राण है जीवनी शक्ति के रूप में इसकी आवश्यकता महत्वपूर्ण है चयापचय मे महत्वपूर्ण भूमिका निर्धारित कर जीवनी शक्ति को बढ़ाती है जिससे जीवन का क्रम चलता है शरीर में इसका स्थान कंठ से हृदय तक माना है इसमे दोष उत्पन्न होने पर वायु संबंधी रोग उत्पन्न होते हैं हम जितना जल और अन्न ग्रहण करते हैं उस से 7 गुना ज्यादा वायु को ग्रहण करते हैं वायु की शुद्धि के लिए हमारे पूर्वज यज्ञ किया करते थे इससे वातावरण शुद्ध व पवित्र हो जाता है इसी कारण पूर्व समय में वायु संबंधी रोग न के बराबर होते थे और ना ही इनके फैलने का कोई भय होता था। वायु तत्व की प्राप्ति हम प्राणायाम, आसन, ध्यान, टहलना, दौड़ना,खेलना कार्य करना, नाचना आदि से प्राप्त करते हैं।

(3) अग्नि तत्व का महत्व

आकाश और वायु इन दोनों के गुण अग्नि तत्व में समाहित हैं अग्नि की उत्पत्ति तीसरे चरण में होती है हमारे वेदों में अग्नि को देवता माना उसे पूजने का विधान बताया है ऋग्वेद में प्रथम मंडल में ही अग्नि देव की पूजा अर्चना निम्न मंत्रों द्वारा की गई है– ओम् अग्नि मिडे पुरोहितम्, गायत्री मंत्र में भी जो भगवत रूप महामंत्र(मूल मंत्र) है इस तत्व के अधिष्ठाता सूर्य की ही उपासना है धार्मिक रूप में आज भी पारसी व हिंदू सूर्य को देवता मानते हैं। सूर्य देव हमें केवल प्रकाश एवं उष्णता ही प्रदान नहीं करते बल्कि हमें दीर्घायु बुद्धि आरोग्यता व तेजस्विता ओजस्विता भी प्रदान करते हैं भारतीय वेद शास्त्रों में सूर्य नमस्कार का वर्णन स्पष्ट रूप से देखा जा सकता हैआज समस्त विश्व सूर्य मंत्रों व आसनों का लाभ उठा रहा है। हमारे शरीर में अग्नि तत्व का स्थान हृदय से नाभि प्रदेश तक होता है भोजन को पचाना, शारीर को शक्ति व स्फूर्ति प्रदान करना, शरीर को ऊर्जावान बनाए रखना, संसार को संसाधनों से परिपूर्ण करना यह सभी कार्य सूर्य या अग्नि तत्व से संभव है। सूर्य तत्वों में विकार उत्पन्न होने पर पाचन संबंधी रोग, रक्त संबंधी रोग उत्पन्न हो जाते हैं सूर्य तत्व की पूर्ति हेतु सुबह –सुबह की सूर्य की किरणों को ग्रहण करना, पीले व ताजे फलों का सेवन, सूर्य नमस्कार, सूर्य भेदी प्राणायाम, मालिश आदि द्वारा प्राप्त कर सकते हैं।

(4) जल तत्व का महत्व

आकाश, वायु, अग्नि के पश्चात् चौथा तत्व जल है। इसमें तीनों तत्व के गुण (शब्द, स्पर्श, रूप, रस) समाहित हैं। अग्नि तत्व में विकृति उत्पन्न होने पर जल तत्व की उत्पत्ति होती है। मानव शरीर में 70 प्रतिशत जल का होता है। शरीर में नाभि से लेकर गुदा तक का स्थान जल का होता है वेदों में जल के संदर्भ में बताया गया है जल औषधि है, जल रोगों का दुश्मन है। यह सभी रोगों का नाश करता है इसलिए यह तुम्हारा भी रोग दूर करेगा। जल जीवन है। रस और जल का शुद्ध स्वरूप एक ही है प्राणियों को जीवित रखना, प्यास बुझाना, शरीर के ताप को सम

बनाए रखना, पदार्थों को मृदु कर देना, सभी प्रकार की स्वच्छता प्रदान करना यह सभी जल के गुण हैं। जल तत्व में विपरीत होने पर शरीर के उस स्थान में भी विकार उत्पन्न हो जाते हैं। जहां पर जल तत्व की प्रधानता होती है जैसे गुर्दा के रोग, रक्त संबंधी आदि प्राकृतिक चिकित्सा में जल के उचित सेवन की विधि बताई गई है। जल में अग्नि को ग्रह कर लेने की शक्ति है जिससे रोग उपचार में अति शीघ्र लाभ मिलता है और मिट्टी के संयुक्त प्रयोग मिट्टी की पट्टी द्वारा जटिल से जटिल रोग भी जड़ से नष्ट हो जाते हैं। विभिन्न ग्रंथों में स्वस्थ रहने के लिए प्रात: काल उषापान की बात कही गई है। प्रात: काल उषापान करने से शरीर अनेक रोगों से मुक्त रहता है।

(1) पृथ्वी तत्व का महत्व

पांचवां तत्व पृथ्वी महाभूत है जिसमें चारों तत्वों के गुणों का समावेश है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध पृथ्वी का अपना गुण है। सभी पंच तत्वों के सबसे स्थूल पृथ्वी है। शरीर में इसका स्थान गुदा प्रदेश से लेकर पैरों तक है। पृथ्वी तत्व में विकार उत्पन्न होने पर इन स्थानों में भी विकार उत्पन्न होता है। सभी प्रकार की दुर्गंध को मिटाना, सर्दी गर्मी को रोकने की शक्ति, जल को उत्पन्न करने की शक्ति, मिट्टी में जल धातु खनिज लवण को धारण करने की शक्ति ,प्राणियों के जीवन निर्वाह की क्षमता आदि गुण पृथ्वी तत्व में पाए जाते हैं। पृथ्वी तत्व की प्राप्ति आसनों का अभ्यास, पौष्टिक खाद्य पदार्थों का सेवन, प्राकृतिक जीवन शैली को अपनाकर, मिट्टी की पट्टी का प्रयोग कर, नंगे पैर पृथ्वी पर चलना, बैठना तथा सोने से पृथ्वी तत्व की प्राप्ति होती है।[5]

सारांशिका :

वर्तमान समय में मनुष्य को अपने जीवन में अनेक प्रकार के शारीरिक और मानसिक रोगों का सामना करना पड़ रहा है इन लोगों से मुक्ति प्राप्त करने के लिए एलोपैथिक चिकित्सा का प्रयोग व्यापक स्तर पर हो रहा है किंतु एलोपैथिक दवाइयों के दुष्प्रभाव से भविष्य में अनेक प्रकार के जटिल रोग मानव जीवन में आ जाते हैं, रोगों से मुक्ति एवं आरोग्यता को प्राप्त करने हेतु प्राकृतिक चिकित्सा को एक श्रेष्ठ विकल्प के रूप में अपनाया जा सकता है।

आरोग्यता व स्वास्थ्य संवर्धन को बनाए रखने में हम जितना प्राकृतिक प्राकृतिक जीवन शैली का प्रयोग करते हैं उतने ही स्वस्थ रहते हैं। यह जीवन जीने का सबसे उत्तम उपाय या साधन है क्योंकि पंचतत्व द्वारा ही शरीर का निर्माण हुआ है और यदि हम प्रकृति के नियमों का पालन करते हैं तो हम नि:संदेह स्वस्थ व सुखी रहते हैं। शरीर तंत्र में तत्वों की समग्रता को मजबूत बनाना बहुत आवश्यक है उसके लिए प्राकृतिक जीवन शैली सबसे आसान व सहज उपाय है।

संदर्भ सूची :

1. आरोग्य अंक, गीता प्रेस गोरखपुर, संख्या 66
2. प्राकृतिक आयुर्विज्ञान, डॉ. राकेश जिंदल पृष्ठ संख्या 19
3. प्राकृतिकायुर्विज्ञान, डॉ. राकेश जिंदल पृष्ठ संख्या 21
4. प्राकृतिक चिकित्सा, राम गोपाल शर्मा पृष्ठ संख्या 12
5. प्राकृतिक चिकित्सा सिद्धांत एवं व्यवहार– डॉ.पी डी मिश्रा, डॉ.श्रीमती बीना मिश्रा पृष्ठ संख्या–7

ISSN 2278 - 0327

महिलाओं में पी.सी.ओ.डी. पर एक्यूप्रेशर के प्रभाव का अध्ययन

अर्चना दुबे
शोधार्थी, योगविज्ञान विभाग
श्री गुरू राम राय विश्वविद्यालय, देहरादून (उत्तराखण्ड)

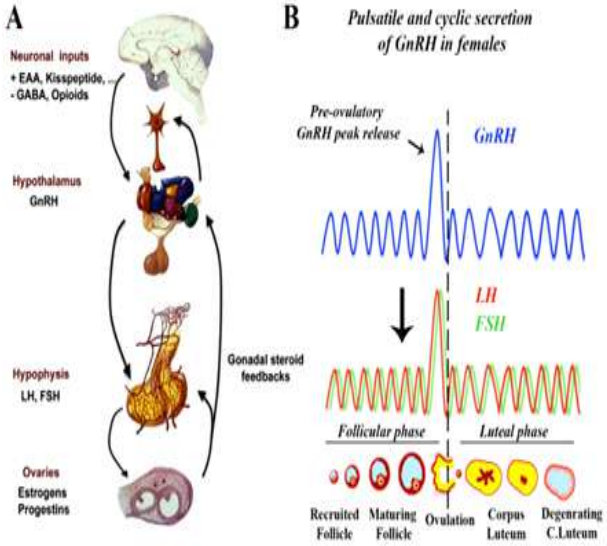
प्रोफेसर (डॉ) सरस्वती काला
विभागाध्यक्ष, योग विज्ञान विभाग
श्री गुरु राम राय विश्वविद्यालय, देहरादून (उत्तराखण्ड)

पॉलीसिस्टिक ओवेरियन डिज़ीज में यदि 'पॉलीसिस्टिक ओवरी' शब्द की बात करें तो 'पॉलीसिस्टिक' दो शब्दों से मिलकर बना है जिसमें 'पॉली' का मतलब होता है- एक से अधिक तथा 'सिस्टिक' का मतलब होता है - पाउच अर्थात् पॉलीसिस्टिक ओवेरियन डिज़ीज वह समस्या है जिसमें ओवरी में एक से अधिक पाउच जैसी संरचनायें बन जाती हैं।

पॉलीसिस्टिक ओवरी की यह समस्या प्राय: तब प्रकाश में आती है, जब अविवाहित महिला मासिक धर्म से संबंधित तकलीफों के लिये या विवाहित महिला अपने गर्भधारण न हो पाने की समस्या या बार-बार होने वाले गर्भपात के कारण जानने के लिये अल्ट्रासोनोग्राफी कराती है (अल्ट्रासोनोग्राफी रोग का पता लगाने की एक तकनीक है जिसमें अल्ट्रासाउण्ड का प्रयोग करके किसी अंग अथवा ऊतक का प्रतिबिम्ब या चित्र प्राप्त करते हैं। इस विधि में अल्ट्रासाउण्ड तरंगें शरीर के विभिन्न घनत्व वाले ऊतकों से टकराती हैं, जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न तीव्रता वाली प्रति ध्वनियों को उत्पन्न करती हैं जिनको रिकॉर्ड कर लिया जाता है जिससे ऊतकों का प्रतिबिम्ब बन जाता है।) पॉलीसिस्टिक ओवेरियन डिज़ीज अनेक समस्याओं को जन्म देती है जिनमें से मुख्य हैं- अत्यधिक समय तक चलने वाला मासिक स्राव या बिना किसी कारण के मासिक स्राव का रुक जाना आदि। यह एक ऐसी बीमारी है जो सेक्स हार्मोन में आए असंतुलन का परिणाम होती है। इसमें कुछ लक्षण मुख्य रूप से दिखते हैं; जैसे मासिक चक्र का अनियमित होना या रुक जाना, गर्भधारण करने में परेशानी, गर्भपात हो जाना, वजन बढ़ना, हिर्सुटिज्म (शरीर के अनचाहे स्थानों पर बालों की अधिकता) तथा विरिलिस्म (महिलाओं में पुरुषों जैसे लक्षण)। इसमें हॉर्मोन में आये परिवर्तनों के कारण अंडे का विकास भी अवरुद्ध हो जाता है, अंडे संख्या में कम बन सकते हैं तथा परिपक्व अंडों की कमी हो सकती है, यहां तक कि अंडे बाहर निकलने में सक्षम नहीं हो पाते।

पी०सी०ओ०डी० के कारण

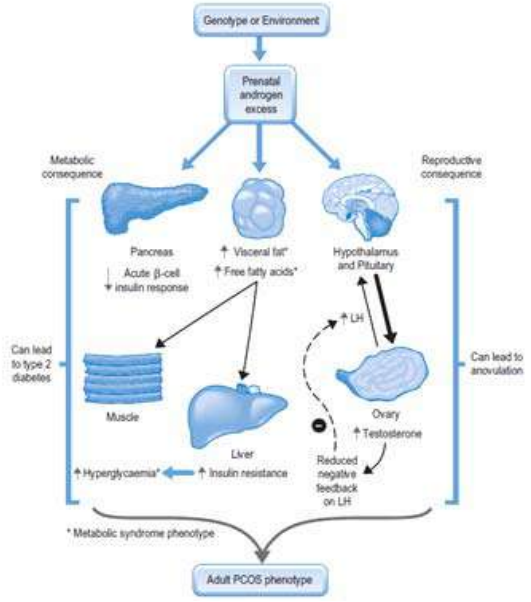
महिला के शरीर में हाइपोथैलेमस, पिट्यूटरी तथा ओवरी का एक महत्वपूर्ण त्रिकोण बनता है। किसी महिला के एक सामान्य मासिक चक्र में हाइपोथैलेमस ग्रंथि से एक गोनेडोट्रॉपिन हार्मोन निकलता है जिसके प्रभाव से पिट्यूटरी द्वारा फॉलिकिल स्टिमुलेटिंग हार्मोन (एफ०एस०एच०) तथा ल्यूटिनाइजिंग हॉर्मोन (एल०एच०) स्रावित किए जाते हैं। फॉलिकिल स्टिमुलेटिंग हार्मोन तथा ल्यूटिनाइजिंग हॉर्मोन, ये दोनों ही हॉर्मोन मासिक चक्र के दौरान ओवरी पर अपना प्रत्यक्ष प्रभाव डालते हैं।



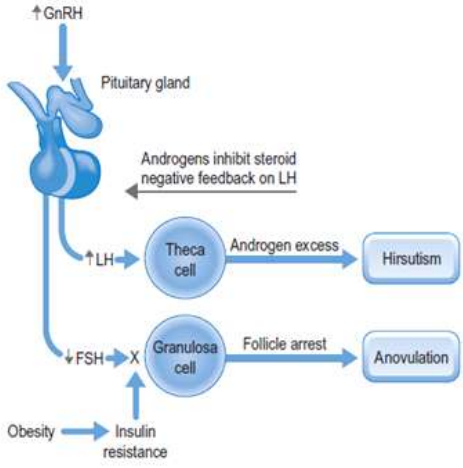
ये हॉर्मोन ओवरी में बनने वाले अंडे की वृद्धि तथा उसके परिपक्व होने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसके साथ ही एक अतिरिक्त हार्मोन का भी स्राव होता है जो इन अंडों की वृद्धि में सहायक होता है जिससे अंडा फूटकर बाहर आता है और फर्टिलाइजेशन के दौरान शुक्राणु द्वारा फर्टिलाइजेशन की क्रिया में भाग लेता है।

पी०सी०ओ०डी० का अंत:स्त्रावीय ग्रन्थियों के साथ संबंध

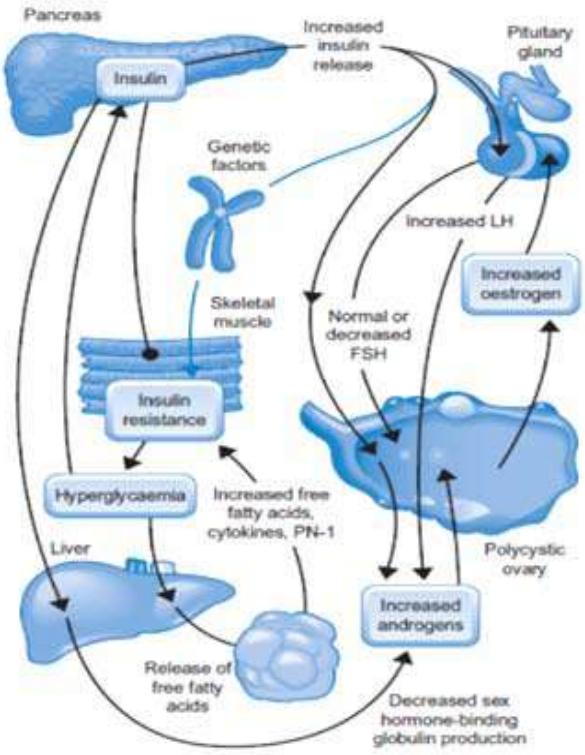
पी०सी०ओ०डी० हाइपरएंड्रोजेनिज्म, पिट्यूटरी का उचित रूप से कार्य न कर पाने, गोनाडोट्रोपिन स्त्राव [जो फॉलिकिल-उत्तेजक हार्मोन (एफ०एस०एच०) के अनुपात में बढ़े हुये ल्यटिनाइजिंग हार्मोन (एल०एच०) का कारण बनता है] और



पी०सी०ओ०डी० से जुड़े हिर्सुटिज़्म (अनचाहे बालों की अधिकता) का परिमाण हमेशा एण्ड्रोजन की अधिकता के परिमाण के साथ सीधे संबंधित नहीं होती है। अत्यधिक हिर्सुटिज़्म एण्ड्रोजन के थोड़ा सा बढ़ने पर भी हो सकता है, तथा कुछ प्रकरणों में एण्ड्रोजन का पर्याप्त स्तर नहीं होने पर भी पी०सी०ओ०डी० की एक प्रमुख विशेषता क्रोनिक एनोव्यूलेशन के साथ एल०एच० के बढ़े हुए स्तर के साथ-साथ एफ०एस०एच० के निम्न स्तर के साथ भी अधिकतर देखने को मिलता है।



एल०एच० और एफ०एस०एच० में यह असामान्यता हाइपोथैलेमिक-पिट्यूटरी-ओवरी के अक्ष की प्रतिक्रिया तंत्र में व्यवधान की वजह से होता है। ओवरी एस्ट्रोजन में चक्रीय परिवर्तन सामान्य रूप से चक्रीय गोनाडोट्रोपिन के उचित प्रतिक्रिया विनियमन के लिए जिम्मेदार होते हैं जो अतिरिक्त ग्रंथियों के स्रोतों से एस्ट्रोजन के लगातार बाहर निकलने से रोक दिया जाता है। इस प्रकार, अत्यधिक मात्रा में एण्ड्रोजन का स्त्राव और बाद में एस्ट्रोजेन में इनका रूपांतरण पी०सी०ओ०एस० में क्रोनिक एनोव्यूलेशन के विकास के लिए आधार बनता है।



एक्यूप्रेशर-

पी०सी०ओ०डी० यानि पॉलीसिस्टिक ओवेरियन डिज़ीज की समस्या को इस पर पर्याप्त जानकारी जुटाकर तथा सूझबूझ के साथ एक्यूप्रेशर द्वारा बहुत ही आसानी से ठीक किया जा सकता है।

एक्यूप्रेशर पद्धति में पॉलीसिस्टिक ओवरी की समस्या का एक कारण लीवर की उर्जा और उसके रक्त में ठहराव या रुकावट की स्थिति पायी गयी है। लीवर की उर्जा और उसके रक्त में ठहराव या रुकावट की स्थिति का कारण आज की तनाव भरी जीवन शैली है जिसके फलस्वरूप महिलाओं में प्राय: तनाव, घबराहट, अवसाद, बेचैनी, सिरदर्द, गालों पर मुंहासे, हमेशा

दूसरों से शिकायत या दूसरों की शिकायत करने की आदत होना, रोने की प्रवृत्ति, शरीर एवं स्तन में सूजन, लंबे समय तक मासिक चक्र का रुक जाना, मासिक के दौरान अत्यधिक दर्द होना या फिर बांझपन की शिकायत होती है।

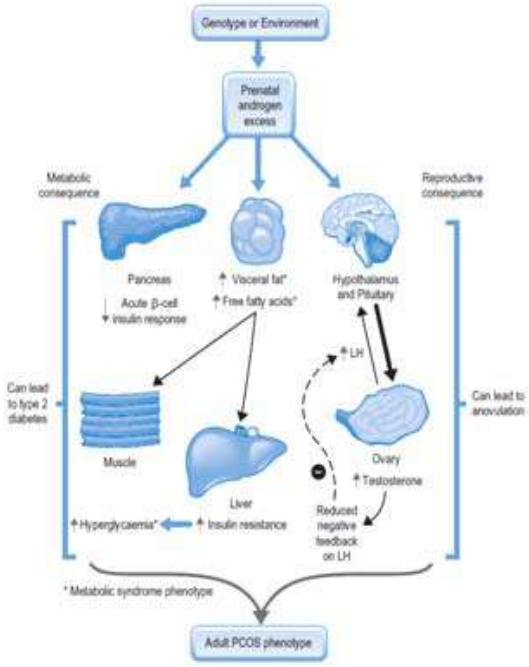
विश्लेषण

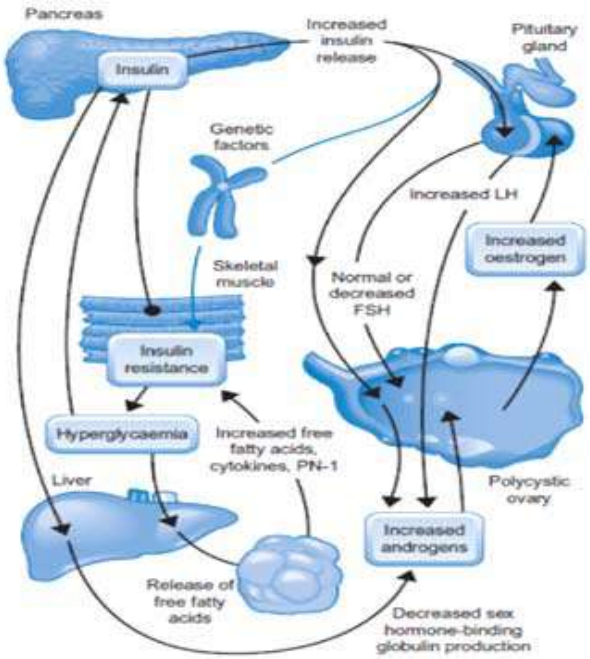
इसका उपचार प्रयागराज में 150 रोगियों पर किया गया जिसमें 50 रोगियों पर योग द्वारा, 50 रोगियों पर एक्यूप्रेशर द्वारा, तथा 50 रोगियों पर योग एवं एक्यूप्रेशर द्वारा उपचार दिया गया जिसमें से अभी यहाँ पर एक्यूप्रेशर द्वारा दिये गये उपचार के बारे मे बताया जा रहा है।

एक्यूप्रेशर पद्धति में पी०सी०ओ०डी० की समस्या को दो प्रकार से वर्गीकृत किया जाता है। पहला जिसमें उर्जा की कमी होने से शरीर में बहने वाले द्रवों की गति धीमी हो जाती है तथा परिणामस्वरूप हॉर्मोन आदि के स्त्रावों में कमी आ जाती है तथा दूसरा जिसमें उर्जा की अधिकता होने के कारण उर्जा सघन होकर अवरुद्ध हो जाती है जिससे हॉर्मोनल स्त्राव अनियमित हो जाते हैं। यहाँ पर उर्जा की अधिकता होने के कारण उर्जा सघन होने से हुये अवरुद्ध उर्जा का उपचार दिया गया है, क्योंकि उर्जा की अधिकता के लक्षण प्राय: उन महिलाओं में अधिक देखे गये हैं जो प्राय: तनाव में काम करती हैं, दु:खी जीवन जीती हैं, आईवीएफ से पहले हार्मोनल उपचार से गुजरती हैं, आईवीएफ के असफल उपचार के बाद निराश या अवसादित महसूस करती हैं, जिसे पहले मासिक धर्म की समस्या के चलते हार्मोनल सिस्टम प्रभावित हुआ हो, या फिर गर्भपात के बाद (जो सामान्य गर्भावस्था प्रक्रिया को अचानक कृत्रिम रूप से तोड़ देता है।), इस प्रकार के उर्जा अवरुद्ध होने की स्थिति देखी जाती है। यहाँ लीवर में समस्या होने के साथ ही गर्भाशय तथा ओवरी को मिलने वाली उर्जा भी धीमी और स्थिर होकर बाधित हो जाती है।

उपरोक्त सभी कारणों से लीवर की उर्जा और रक्त में ठहराव हो सकता है जिससे गर्भाशय को उचित पोषण प्राप्त नहीं हो पाता और मासिक धर्म कम होते- होते, कभी-कभी रुक भी सकता है। लीवर की उर्जा को शरीर के कोने-कोने तक भेजने की पर्याप्त ताकत न होने की वजह से हमेशा कई भावनात्मक लक्षण प्रकट होते रहते हैं।

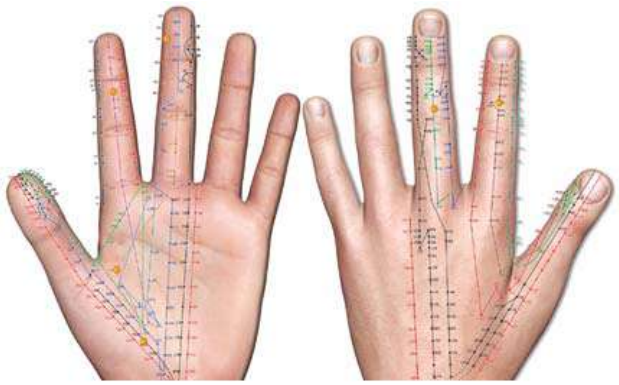
इसी कारण से पी०सी०ओ०डी० के उपचार में प्रयुक्त एक्यूप्रेशर बिन्दुओं में लीवर से संबंधित बिन्दुओं का अधिकतम प्रयोग किया गया है क्योंकि पी०सी०ओ०डी० का लीवर के साथ आन्तरिक संबंध है।





एक्यूप्रेशर उपचार

यहाँ पर एक्यूप्रेशर के निम्नलिखित बिन्दुओं पर दो माह तक प्रतिदिन 12 घण्टे तक साउथ पोल के मैगनेट लगाकर उपचार दिया गया।



पेरीकार्डियम की बिन्दु संख्या 6, ट्रिपल वॉर्मर की बिन्दु संख्या 6, लीवर की बिन्दु संख्या 3, लीवर की बिन्दु संख्या 13, लीवर की बिन्दु संख्या 14, गॉल ब्लैडर की बिन्दु संख्या 34

एक्यूप्रेशर के उपचार बिन्दुओं की व्याख्या

इसमें पेरीकार्डियम को जिसे एक्यूप्रेशर में मस्तिष्क कहा गया है, के बिन्दु को लिया गया है क्योंकि पी०सी०ओ०डी० का एक बहुत बड़ा कारण मानसिक तनाव होता है, इसके साथ ही यह ओवरी से निकलने वाले एल०एच० तथा एफ०एस०एच० को यहाँ से नियमित करता है, ट्रिपल वॉर्मर जिसे एक्यूप्रेशर में एण्डोक्राइन कहा गया है, इसे लेने का कारण यह है कि इस रोग का संबंध एण्डोक्राइन ग्रन्थि से होता है। लीवर जिसे नॉन एल्कोहोलिक फैटी लीवर एवं मोटापा के लिये तथा गॉल ब्लैडर के बिन्दुओं को लिया गया है जो माँसपेशियों से संबंधित आये परेशानियों में काम करता है।

पेरीकार्डियम की बिन्दु संख्या 6 (Pericardium/P6)

यह रक्त एवं उर्जा के संचार से संबंधित होने के कारण मन को शांत करता है, यकृत की उर्जा को गतिमान करता है और स्तन और पेट में खिंचाव और भारीपन से राहत देता है। यह जलन, अवसाद और मूड में हो रहे परिवर्तन को ठीक करने में भी मदद करता है।

ट्रिपल वॉर्मर की बिन्दु संख्या 6 (Triple warmer/Tw6)

इसका संबंध एण्डोक्राइन ग्रन्थि से होता है। यह एण्डोक्राइन ग्रन्थि को नियमित करने के साथ ही शरीर में आये अवरोधों आदि को हटाकर शारीरिक द्रवों के संचार को सुधारता है, मासिक के दौरान होने वाले अत्यधिक रक्तस्राव को रोता है, लीवर की रुकी उर्जा को चलायमान करता है और पसलियों के बाहरी हिस्से में खिंचाव और दर्द से राहत देता है।

लीवर की बिन्दु संख्या 3 (Liver/Liv3)

यह लीवर को शक्ति प्रदान करता है, शारीरिक द्रवों की अतिरिक्त गर्मी निकालकर उन्हें ठंडा करता है, उर्जा एवं रक्त में आये ठहराव को समाप्त करता है। इसके साथ ही यह हॉर्मोनल परिवर्तन तथा पासिक के दौरान होने वाले दर्द में विशेष रूप से सहायक पाया गया है।

लीवर की बिन्दु संख्या 13 (Liver/Liv13)

यह लीवर की उर्जा को संतुलित करता है जिससे अवसाद, और स्तन में आये सूजन, तनाव तथा भारीपन से राहत देता है।

लीवर की बिन्दु संख्या 14 (Liver/Liv14)

यह लीवर मेरिडियन में उर्जा को संतुलित करता है, शारीरिक द्रवों की अतिरिक्त गर्मी निकालता है और जलन, क्रोध और अवसाद को ठीक करने में मदद करता है। यह पसलियों के दर्द में भी कारगर है।

गॉल ब्लैडर की बिन्दु संख्या 34 (Gall Bladder/GB34)

यह माँसपेशियों के उपचार का सर्वोत्तम बिन्दु है। यह हाइपोकॉन्ड्रिअक क्षेत्र अर्थात् पसलियों के पास आये तनाव और दर्द का इलाज करने के लिए एक विशिष्ट बिंदु है। यह इस क्षेत्र में उर्जा की रुकावट को दूर करता है।

उपरोक्त सभी बिन्दुओं पर उपचार देने से ओवरी, गर्भाषय तथा पिट्यूटरी ग्रन्थि पर सकारात्मक प्रभाव होने से पी०सी० ओ०डी० की समस्या ठीक होती है।

निष्कर्ष

पूरक और वैकल्पिक चिकित्सा उपचार मानव स्वास्थ्य में सर्वोपरि भूमिका निभाता है। एक्यूप्रेशर, रोग प्रतिरोधक क्षमता से लेकर भावनात्मक विकारों तक कई तरह की बीमारियों को दूर करता है। यह एक पूरक उपचार है जो विभिन्न प्रकार के रोगों के लक्षणों का प्रबंधन करते हुए प्रभावी राहत देता है। एक्यूपंक्चर और एक्यूप्रेशर दोनों ही प्रभावी, सुरक्षित, सरल और किफायती उपचार हैं लेकिन एक्यूप्रेशर अपने गैर-आक्रामक और सुई रहित होने के कारण अधिक लोगों के अनुकूल (पसंदीदा) है। एक्यूप्रेशर कई तरह की बीमारियों को दूर करता है। स्व उपचार की विधा होने से यह एक्यूप्रेशर फार्माकोथेरेपी के लिए अधिक अनुकूल है। यह दर्द को कम करने, मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के साथ-साथ रोगियों के जीवन की गुणवत्ता बढ़ाने में महत्वपूर्ण

भूमिका निभाता है। वे लोग जो सुइयों (एक्यूपंक्चर पद्धति) के साथ सहज नहीं हो पाते थे, वे एक्यूपॉइंट को उत्तेजित करने के लिये एक्यूप्रेशर चिकित्सा को अधिक पसंद करते हैं। एक्यूप्रेशर पद्धति की मुख्य विशेषता यह है कि यह सुरक्षित है और मानव में रोगों को ठीक करने के साथ ही विचारों में सकारात्मकता (Positivity) लाता है।

पॉलीसिस्टिक ओवेरियन डिजीज से पहले पॉलीसिस्टिक ओवरी एक साधारण स्थिति है, जिसका निदान लक्षणों के आधार पर आसानी से किया जा सकता है, जो एक पूर्व-नैदानिक स्थिति से संबंधित है। एक्यूप्रेशर के प्रैक्टिशनर को ऐसी महिलाओं पर ध्यान देना चाहिए जो अनियमित या विलंबित मासिक या मासिक धर्म के रुकने की शिकायत करती हैं क्योंकि ये लक्षण पॉलीसिस्टिक ओवरी के विशिष्ट और सटीक निदान में सहायक हो सकते हैं। यदि इन पी०सी०ओ०डी० लक्षणों की स्थिति में भी उपचार देना प्रारम्भ कर दिया जायें तो पहला तो उन लक्षणों के साथ ही पॉलीसिस्टिक ओवरी का उपचार हो जायेगा और दूसरे पॉलीसिस्टिक ओवेरियन डिजीज जैसे रोग का प्रारम्भ ही नहीं होगा।

एक्यूप्रेशर पद्धति में पॉलीसिस्टिक ओवेरियन डिजीज का उपचार करने के लिये उर्जा को सही मात्रा में रखने, उसको गर्म रखने, वहाँ पर एकत्रित तरल को हटाने तथा रक्त की रुकावट को दूर करने के सिद्धान्त पर कार्य करना चाहिये और इसके साथ ही पूरी कोशिष मासिक धर्म के समय को नियमित करने की होनी चाहिये।

साधारण तौर पर यह आवश्यक नहीं है कि जिस महिला को पॉलीसिस्टिक ओवरी की शिकायत हो, उसे बाँझपन की समस्या भी हो। इसके लिये हमें महिला के पति के शुक्राणुओं की भी जाँच करनी चाहिये। इसलिये यदि महिला को पॉलीसिस्टिक ओवरी की शिकायत हो और वह बांझपन के उपचार के लिये आयी हो तो भी हमारा पूरा ध्यान केवल पॉलीसिस्टिक ओवरी पर न होकर पुरुष के शुक्राणुओं की जाँच पर भी होना चाहिये। हालाँकि चिकित्सक पॉलीसिस्टिक ओवरी या पॉलीसिस्टिक ओवेरियन डिजीज की दशा में टेस्ट ट्यूब बेबी करने की सलाह नहीं देते हैं किन्तु इस स्थिति में एक्यूप्रेशर उपचार द्वारा हॉर्मोनल असंतुलन को सुधारकर ओवरी की स्थिति को ठीक किया जा सकता है जिससे टेस्ट ट्यूब बेबी की क्रिया आसानी से सम्पन्न हो सके। यह एक सुरक्षित और सरल तरीका हो सकता है।

यदि किसी महिला को गर्भधारण हेतु सुदृढ़ तथा काफी मजबूत होने से पहले या कम उम्र में गर्भधारण करना पड़ता है तो उसमें गर्भस्राव या गर्भपात की संभावना काफी बढ़ जाती है, इसलिये पेट में पल रहे बच्चे की रक्षा के लिये भी एक्यूप्रेशर एक बेहतर विकल्प हो सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. Khemka, M. P. (2000). A treatise on Advance Acupressure/Acupuncture. India:Acupressure Shodh Prashikshan & Upchar Sansthan. Part 2
2. Khemka, M. P. (2002). A treatise on Advance Acupressure/Acupuncture. India:Acupressure Shodh Prashikshan & Upchar Sansthan. Part 7
3. Khemka, M. P. (2012). A treatise on Advance Acupressure/Acupuncture. India:Acupressure Shodh Prashikshan & Upchar Sansthan. Part 20
4. Mehta, P., Dhapte, V., Kadam, S., & Dhapte, V. (2017). Contemporary acupressure therapy: Adroit cure for painless recovery of therapeutic ailments. Journal of traditional and complementary medicine, 7(2), 251-263.
5. Maciocia, Giovanni (2011). Obstetrics & Gynecology in Chinese Medicine. China: Elsevier publication. Ch. 66. Pg. 889 to 916
6. Irina., Szmelskyj., & Aquilina. (2015). Acupuncture For IVF and Assisted Reproduction. China: Elsevier publication.
7. Guyton., & Hall. (2000). A Text Book of Medical Physiology. India: Harcourt. New Delhi. 929 – 938
8. https://myartofwellness.com/how-to-treat-polycystic-ovarian-syndrome-pcos-with-acupuncture-and-tcm/https://juniperpublishers.com/jcmah/pdf/JCMAH.MS.ID.555578.pdf
9. https://trialsjournal.biomedcentral.com/articles/10.1186/s13063-019-3667-y
10. https://www.ncbi.nlm.nih.gov/pmc/articles/PMC5466220/
11. https://journals.lww.com/md-journal/Fulltext/2020/05290/Effectiveness_of_acupuncture_in_polycystic_ovary.93.aspx
12. https://www.researchgate.net/figure/A-The-Hypothalamic-pituitary-gonadal-axis-The-hypothalamic-GnRH-neurons-are-the-final_fig3_278642910

ISSN 2278 - 0327

व्याकरणिक प्रकृति एवं प्रत्यय का दार्शनिक विमर्श

डॉ. लेखराम दन्नाना
सहायक प्रोफेसर
संस्कृत भाषा, भाषा एवं भाषा प्रौद्योगिकी विभाग
भाषा विद्यापीठ, म.गां.अं.हिं.वि.वर्धा

शब्दों के साधुत्व एवं असाधुत्व बोध के लिये व्याकरणशास्त्र की महती आवश्यकता है। लोक में प्रयुक्त शब्दों का और वेदों में प्रयुक्त शब्दों का व्युत्पत्तिपरक ज्ञान भी व्याकरणशास्त्र के अध्ययन से ही संभव है। अत: महाभाष्यकार व्याकरण के प्रयोजनों को निरूपित करते हुए लिखते हैं – 'लोपागमवर्णविकारज्ञो हि सम्यक् वेदान् परिपालयिष्यति।'[1] अर्थात् जिसे वर्णलोप, वर्णागम, वर्णविकार आदि विषयों का ज्ञान है, वह वेदों की की रक्षा कर सकता है। महाभाष्यकार का आशय यह है कि व्याकरणज्ञ लौकिक और वैदिक शब्दों के साधुत्व को सम्यक् जानता है, उनका प्रयोग भी शुद्ध रूप से करता है, जिससे लौकिक और वैदिक भाषा की रक्षा हो सकती है। अस्तु! क्या व्याकरण केवल शब्दसाधुत्व ज्ञान के लिये है? क्या व्याकरण में निहित प्रकृति एवं प्रत्यय आदि पदसाधुत्व बोधन के लिये हैं? क्या व्याकरण से प्रकृति,प्रत्यय,धातु,शब्द,अर्थ, इत्यादि का ही ज्ञान होता है? क्या प्रकृति एवं प्रत्यय आदि का पदसाधुत्व से अपर प्रयोजन है ? क्या इन प्रकृति एवं प्रत्यय आदि व्याकरणिक कोटियों का दार्शनिक स्वरूप भी हो सकता है? इन सभी जिज्ञासाओं का समाधान व्याकरणशास्त्र के दार्शनिक पक्ष को सम्यक् अवगमन करके किया जा सकता है।

व्याकरणशास्त्र न केवल शब्दसाधुत्व का ही बोधन कराता है, अपितु दार्शनिक दृष्टिकोण से अवलोकन करने पर ब्रह्मतत्व की प्राप्ति भी कराता है। यद्यपि व्याकरण में निहित तत्वों का शब्दसाधुत्वबोध वाले पक्ष के साथ-साथ अपना एक दार्शनिक पक्ष भी दृष्टिगोचर होता है, तथापि यहां विशिष्ट रूप से व्याकरणिक कोटि प्रकृति एवं प्रत्यय का ही दार्शनिक स्वरूप प्रतिपादित है।

व्याकरणशास्त्र वाक्यजातिस्फोट को सिद्धांत रूप में स्वीकार करता है। स्फोट अर्थात् अर्थावबोधक शब्द। यह अर्थावबोधक शब्द वर्ण, पद तथा वाक्य के भेद से तीन प्रकार का है। यही शब्द पुन: जाति एवं व्यक्ति भेद से छह प्रकार से विभक्त होता है । स्फोट के अन्य भी दो भेद हैं- अखंडपदस्फोट तथा अखंडवाक्यस्फोट। कुल मिलाकर यह अष्टविध स्फोट होता है।[2] मीमांसक 'जातिरर्थ:' अर्थात् शब्द का अर्थ जाति है यह मानते हैं। नैयायिक 'व्यक्तिरर्थ:' अर्थात् शब्द का अर्थ व्यक्ति को स्वीकार करते हैं। जाति को अर्थ मानने के पक्ष में शब्द के द्वारा पूर्व जाति का बोध होता है, तत्पश्चात् तदाश्रयरूप व्यक्ति का भी बोध होता है। व्यक्ति को अर्थ मानने के पक्ष में व्यक्ति ही शब्द का अर्थ होता है तथा व्यक्ति में जाति स्थित होने के कारण जाति का भी बोध होता है।[3] महाभाष्यकार ने पश्पशाह्निक में शब्द का वाच्य व्यक्ति है, शब्द का वाच्य जाति है, इन दोनों पक्षों का सम्यग् विवेचन कर दोनों ही पक्षों में शब्दानुशासन की आवश्यकता है , इस विषय को स्वीकार किया है।[4] अत: जाति और व्यक्ति भेद से अर्थावबोधक स्फोट का तीन-तीन भेद स्वीकृत हैं- यथा वर्णजातिस्फोट, पदजातिस्फोट, वाक्यजातिस्फोट। वर्णव्यक्तिस्फोट, पदव्यक्तिस्फोट, वाक्यव्यक्तिस्फोट। जाति अखंड है, वह खंडित नहीं होती, विभक्त नहीं होती। परन्तु व्यक्ति खंडित या विभक्त हो सकता है। अत: व्यक्तिस्फोट पञ्चविध माना गया है। वर्णव्यक्तिस्फोट, सखंडपद-व्यक्तिस्फोट, अखंडपदव्यक्तिस्फोट, सखंडवाक्यव्यक्ति-स्फोट एवं अखंडवाक्यजातिस्फोट। इन उपर्युक्त अष्टविध स्फोटों में वाक्यस्फोट ही मुख्य है, यत: लोकव्यवहार में अर्थ का बोध वाक्य से ही होता है। न्यायभाष्यकार वात्स्यायन 'साकांक्ष पदों का निराकांक्ष ज्ञान कराने में समर्थ समूह वाक्य होता है' ऐसा मानते हैं । वाक्य तो अखंड है, एक है तथा निरवयव है। प्रत्येक वाक्य में वाच्यवाचक भाव का ज्ञान समस्त वाक्य की दृष्टि से संभव नहीं हो पाता है। अत: वाक्यों में पदों का, पदों में प्रकृति आदि का कल्पनात्मक विभाजन कर, कल्पित ही अन्वयव्यतिरेक सम्बन्ध से पदों का, प्रकृति तथा प्रत्ययों का अर्थ बताया जाता है। वस्तुत: यह विभाग

कल्पनामात्र है और शास्त्रीय प्रक्रिया के निर्वाहनार्थ स्वीकृत है।[5] वर्णस्फोट अखंड है। वस्तुत: यह वर्णस्फोट भी शास्त्र प्रक्रिया का निर्वाहक ही है। वर्णस्फोट = प्रकृति और प्रत्यय, उन उन अर्थों के वाचक या बोधक होते हैं। वर्णस्फोट का आशय पदावयव स्फोट से है, अर्थात् अखंड पद को अवगमन करने के लिए प्रकृति एवं प्रत्यय की कल्पना की जाती है। पदावयव स्फोट में अवयव रूप प्रकृति एवं प्रत्यय होते हैं, पदों की रक्षा एवं पदार्थ की सहजता से बोध के लिए यह प्रकृति रूप एवं प्रत्यय रूप कल्पना होती है।[6]

व्याकरणशास्त्र की दृष्टि से जिससे प्रत्ययविधि की जाती है, वह प्रकृति होती है। प्रकृति के साथ संयोग के लिए निर्दिष्ट वर्ण या वर्ण समुदाय प्रत्यय होता है। जैसे –'राम' प्रकृति, 'सु' प्रत्यय। 'भू' प्रकृति,और 'ति' प्रत्यय। जब प्रकृति एवं प्रत्यय का दार्शनिक दृष्टिकोण से विचार किया जाता है तो इनका पृथक् ही स्वरूप दिखाई पड़ता है। प्रकृति = स्त्री, प्रत्यय: = पुरुष:। प्रकृति–'प्र' उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु से स्त्री अर्थ में 'क्तिन्' प्रत्यय से बना है तथा प्रत्यय – 'प्रति' उपसर्ग पूर्वक 'इण्' धातु से भावकरणादि अर्थ में अच् प्रत्यय लगकर सिद्ध हुआ है। प्रकृति पद से स्त्री अर्थात् माता का बोध होता है। प्रत्यय पद से पुंस् अर्थात् पिता का बोध होता है। यथा माता–पिता के संसर्ग से संतान की उत्पत्ति होती है तथैव मातृरूपी प्रकृति एवं पितृस्थानीय प्रत्यय के संसर्ग से पद की उत्पत्ति होती है। जैसे केवल माता से या केवल पिता से संतानोत्पत्ति नही हो सकती वैसे ही केवल प्रकृति से या केवल प्रत्यय से पदोत्पत्ति नही हो सकती, दोनों का संसर्ग या सम्बन्ध अनिवार्य है। अत: महाभाष्यकार 'न केवला प्रकृति: प्रयोक्तव्या न केवल: प्रत्यय:' इस सिद्धांत को स्थापित करते हैं।[7]

सांख्यशास्त्रीय दृष्टि से प्रकृति शब्द = प्रधान अर्थात् सत्वरजस्तमरूप है। प्रत्यय शब्द अर्थात् ज्ञान अथवा पुरुष है। व्याकरणिक प्रकृति और प्रत्यय दार्शनिक दृष्टि से सांख्यदर्शन के प्रकृति एवं पुरुष के अनुरूप दृष्टिगोचर होते हैं। सांख्यदर्शन में प्रकृति और पुरुष का पंगु–अंध न्याय से अन्योन्याश्रय सम्बन्ध सिद्ध किया गया है। पुरुष का प्रकृति के साथ अर्थात् प्रधान के साथ संयोग प्रकृति, बुद्धि आदि भूत पर्यंत सकल जड़ पदार्थों के दर्शनार्थ होता है। प्रधान का पुरुष के साथ संयोग कैवल्यार्थ होता है। प्रकृति की भोग्यता पुरुषकर्तृक है तथा पुरुष का केवलत्व प्रकृतिकर्तृक होता है। पुरुष में दर्शनशक्ति है, परन्तु क्रिया शक्ति नहीं। प्रकृति में क्रियाशक्ति है, परन्तु दर्शनशक्ति नहीं। अत: दोनों का मैत्री (अन्योन्याश्रय सम्बन्ध) है। प्रकृति पुरुष को मोक्ष दिलाकर चरितार्थ होती है और पुरुष कैवल्य पाकर कृतार्थ हो जाता है। दोनों के सम्बन्ध से ही जगत् की उत्पत्ति होती है। पुरुष द्रष्टा=साक्षी है, पंगु है पर चेतन हैं। प्रकृति अंधी है, परन्तु प्रकाश स्वरूप एवं चेतन स्वरूप पुरुष के संयोग से प्रकृति भी चेतनवती हो जाती है। व्याकरण का पद भी प्रकृति और प्रत्यय के योग से ही निष्पन्न होता है। प्रकृति और प्रत्यय में यदि एक का भी अभाव है तो पदसृष्टि नहीं हो सकती। इसलिए पाणिनि ने 'सुप्तिङन्तं पदम्'[8] इति पद संज्ञा को स्वीकार किया है। राम एवं भू रूप प्रकृति क्रमश: सुप् एवं तिङ्रूप प्रत्यय से युक्त होकर राम:, भवति इति पद रूप में परिणत होती है। आशय यह है की सांख्यदर्शन के प्रकृति और पुरुष के सम्बन्ध के समान ही व्याकरणिक प्रकृति और प्रत्यय का सम्बन्ध भी नित्य ही है। अत: जहां भी केवल वस्तु, वारि इत्यादि पदों में प्रकृति श्रवण होता है तथा अधुना, इयान् इत्यादि पदों में प्रकृति श्रवण होता है तो वहां अवश्य प्रकृति और प्रत्यय के सम्बन्ध का अनुमान हो जाता है। प्रकृति और प्रत्यय के अनुमान में साहचर्य व्याप्ति कारण है। जहां व्याकरणशास्त्र में प्रकृति का लोप होता है, वहां केवल अदर्शन मात्र है, न की प्रकृति का सर्वथा न होना। अत एव 'अदर्शनं लोप:'[9] इस सूत्र का अर्थ 'प्रसक्तस्यादर्शनं लोपसंज्ञं स्यात्' किया है। प्रसक्तस्य = विद्यमानस्य अर्थात् विद्यमान का अदर्शन ही लोप संज्ञा है।[10] उपसर्ग और अव्यय का भी सुप् प्रत्यय के योग से ही पदत्त्व सिद्ध होता है। यद्यपि उपसर्ग और अव्ययों में सुप् प्रत्यय 'अव्ययादाप्सुप:'[11] इस सूत्र से लोप हो जाने पर दृग्गोचर नहीं होते तथापि सुप् प्रत्यय के संसर्ग से ही वे पद कहलाते हैं। इस प्रकृति एवं प्रत्यय के सम्बन्ध को आचार्य कात्यायन ने भी नित्य माना है। वे कहते हैं 'प्रत्ययेन नित्यसम्बन्धात् केवलस्याप्रयोग:'। इसी को भाष्यकार ने व्याख्यायित किया है– '*नित्यसम्बन्धावेतावर्थौ प्रकृति: प्रत्यय इति, प्रत्ययेन नित्यसम्बन्धात् केवलस्य प्रयोगो न भविष्यति*'। इस 'नित्यसम्बन्धौ' पद की व्याख्या करते हुए आचार्य नागेशभट्ट ने 'मायेश्वरवत्' कहा है।[12] माया और ईश्वर का सम्बन्ध यथा वेदान्त, शैवादि दर्शनों में नित्य माना गया है तथैव व्याकरण शास्त्र में प्रकृति एवं प्रत्यय का भी नित्य सम्बन्ध माना गया है। अत: सांख्यदर्शन के प्रकृति– पुरुष सम्बन्ध एवं वेदान्त शैवदर्शनादि के माया– ईश्वर सम्बन्ध के समान ही व्याकरणिक प्रकृति और प्रत्यय का सम्बन्ध जानना चाहिए।

सांख्यदर्शन के अनुसार उपादान कारण में विद्यमान वस्तु निमित्त कारण के संयोग से कार्य रूप को प्राप्त होता है। यह सत्कार्यवाद कहलाता है। जैसे – वीज में स्थित वृक्ष का उर्वर भूमि जलादि निमित्त कारण के संयोग से प्रकट होना, यहाँ बीज उपादान

कारण तथा उर्वरभूमि जलादि निमित्त कारण। ऐसे ही व्याकरणिक प्रकृति उपादान कारण है तथा प्रत्यय निमित्त कारण। 'जनिकर्तु: प्रकृति:' इस सूत्र के भाष्य की व्याख्या में भाष्यकार ने प्रकृति को उपादान कारण माना है। 'अभावप्रत्ययालम्बनावृत्तिर्निद्रा' इस योगसूत्र की व्याख्या करते हुए वाचस्पति मिश्र ने प्रत्यय शब्द को निमित्त कारण माना है।[13] इस प्रकार प्रकृति उपादान कारण है तथा प्रत्यय निमित्त कारण है। प्रकृति में प्रत्यय के संयोग से विद्यमान पद का आविर्भाव होता है। उक्त सत्कार्यवाद सिद्धांत व्याकरणिक पद की प्रक्रिया में भी प्रवर्तित होता है अर्थात् विद्यमान पद का प्रकृति रूप उपादान कारण में प्रत्यय रूप निमित्त कारण को प्राप्त कर पद का प्रकट होना। पद में विद्यमान प्रकृति एवं प्रत्यय के व्याकृति ही पद शास्त्र के द्वारा होती है, न कि नूतन पदों का निर्माण। व्याकरणशास्त्र अखंड वाक्य एवं अखंड पद में क्रमश: विद्यमान पदों एवं प्रकृति प्रत्ययों की कल्पना कर उनका अन्वाख्यान करता है।[14] यथा सांख्यदर्शन के अनुसार प्रकृति एवं पुरुष के विवेक से कैवल्य (मोक्ष) को प्राप्त किया जा सकता है तथा व्याकरणदर्शन के प्रकृति एवं प्रत्यय के सम्यक् ज्ञान से स्फोटब्रह्म को संप्राप्त किया जा सकता है।

व्याकरणशास्त्र का सामान्यत:प्रयोजन शब्द साधुत्व प्रतिपादन है। पदों का सम्यग् ज्ञान, प्रकृति प्रत्ययों का सम्यग् ज्ञान आदि लौकिक प्रयोजन के रूप में देखे जा सकते हैं। वैसे तो व्याकरण के प्रत्येक तत्त्व का अपना एक दार्शनिक दृष्टिकोण है। अक्षर का अपना एक दार्शनिक विवेचन है। संपूर्ण मातृका की अपना एक दार्शनिक दृष्टिकोण है। शब्द और अर्थ का भी एक विशिष्ट दार्शनिक पक्ष है। ऐसे ही अखंड पद के ज्ञान के लिए तथा पदार्थ की सुगमता के लिए कल्पित प्रकृति- प्रत्यय का भी एक विशेष दार्शनिक दृष्टिकोण दृग्गोचर होता है। दार्शनिक दृष्टिकोण से व्याकरणिक प्रकृति और प्रत्यय मातृ-पितृरूप सृष्टि कारक तथा सांख्यदर्शन के प्रकृति पुरुष के सामान दृग्गोचर होते हैं। प्रकृति और प्रत्यय युक्त पद की प्रक्रिया भी सांख्यदर्शन के सत्कार्यवाद सिद्धांत के अनुसार घटित होती हुई दिखाई देती है। जैसे सांख्यदर्शन के प्रकृति- पुरुष के ज्ञान से मोक्ष अवाप्ति हो सकती है वैसे ही व्याकरणिक प्रकृति प्रत्यय के ज्ञान से व्याकरण दर्शन में अनादिनिधनरूप जो शब्द ब्रह्म है उसकी अवाप्ति की जा सकती है। अत: व्याकरण के विभिन्न कोटियों का दार्शनिक दृष्टिकोण से विचार करते हुए उनके दार्शनिक पक्ष को भी सम्यक् जानकर व्याकरण शास्त्र के अलौकिक प्रयोजन शब्दब्रह्म प्राप्ति की ओर अग्रेसर होना चाहिए।

सन्दर्भ सूची-

1. व्याकरण महाभाष्य, पृ.सं.20
2. परमलघुमञ्जूषा, पृ.सं.04
3. तत्रैव पृ.सं.05-06
4. व्याकरण महाभाष्य, पृ.सं.64
5. परमलघुमञ्जूषा, पृ.सं.06-07
6. तत्रैव पृ.सं.10
7. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास , व्याकरण खण्ड, पृ.सं.302
8. अष्टाध्यायी सूत्र संख्या,1.4.14
9. अष्टाध्यायी सूत्र संख्या,1.1.60
10. लघुसिद्धांतकौमुदी , पृ.सं.02-03
11. अष्टाध्यायी सूत्र संख्या,2.4.82
12. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, व्याकरण खण्ड, पृ.सं.303
13. व्याकरणदर्शनभूमिका, पृ.सं.05
14. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास , व्याकरण खण्ड, पृ.सं.303-304

परिशीलित ग्रन्थ सूची :

1. जोशी भार्गव शास्त्री, पतंजलिनिर्मितव्याकरणमहाभाष्यम् ,चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान ,2014
2. शुक्ल, सूर्यनारायण एवं रामगोविंद भर्तृहरि-विरचित-वाक्यपदीयम् (ब्रह्मकाण्डम्),चौखम्बा संस्कृत संसथान ,वाराणसी, 2016
3. दहाल, लोकमणि, नागेश भट्ट प्रणीत परमलघुमञ्जूषा, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, 1991
4. पाण्डेय, रामाज्ञा, सं.शास्त्री, गौरीनाथ, व्याकरणदर्शनभूमिका, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय,1982
5. उपाध्याय, आचार्य बलदेव एवं पाण्डेय, गोपाल दत्त, संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, उत्तरप्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, 2001
6. आचार्य पाणिनि, अष्टाध्यायी, रामलाल कपूर ट्रस्ट, सोनीपत, हरियाणा ,1985

ISSN 2278 - 0327

पंचसन्ध्यः

डॉ. सुमन कुमारी
असिस्टेंट प्रोफेसर, साहित्य (संस्कृत विभाग)
(केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, अधीनस्थ)
डॉ० रामजी मेहता आदर्श संस्कृत महाविद्यालय, मालीघाट, मुजफ्फरपुर, बिहार

उद्देश्यः

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य है, नाट्य-प्रयोग की दृष्टि से पंचसन्धियों की असाधारण महत्ता प्रकट करना।

शोध सारांश

सारांशतः शोध आलेख में नाट्य-सन्धियों का निरूपण किया गया है। नाटक में वर्णित कथावस्तु का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। यह मानव प्रकृति का दर्पण है। मानव की अन्तः यात्रा और बाह्य संघर्ष जिस परिवेश में घटित होते है, उसी से मानव की अनुभूति, कल्पना और चिन्तन को निरन्तर गति प्राप्त होती है। परिवेश और मानवीय जीवन संघर्ष के समानान्तर क्रम की रंगमंच पर अभिनय ही नाट्य है। नाट्य स्त्रष्टा जहां एक ओर समाज के परम्परित मूल्यों का अन्वेषण करता है, वही दूसरी ओर परिवर्तित युग बोध के अनुसार उन्हें नवीन संस्कार भी देना होता है।

इसका प्रमुख लक्ष्य अभिनय के द्वारा सामाजिकों का मनोरंजन, उनमें रसोंबोध उत्पन्न करना होता है। यही दृश्य काव्य रूपक या नाटक कहलाता है। नाट्यशास्त्रकारों ने रूपक के सफल प्रयोग हेतु इतिवृत्त की कल्पना की है, जिसके अन्तर्गत नाट्य-सन्धियों का भी महत्वपूर्ण स्थान है।

अतः इस नवीन शोध आलेख में नाट्य-सन्धियों के समग्र स्वरूप की विस्तृत विवेचना की गयी है तथा ऐतिहासिक दृष्टि से अपेक्षित अभीष्ट प्रसंगो को प्रस्तुत करने का लघु प्रयास किया गया है।

कुटशब्दाः- (संकेताक्षर) Keyword

अर्थप्रकृतियां, अवस्थाएं, सन्धियां, इतिवृत्त, नाट्यवृत्त, प्राप्तयाशा, नियताप्ति, अवमर्श आदि।

प्रस्तावनाः

नाट्यशास्त्रीय चिन्तन में पञ्चसन्धियों का विशेष महत्व है, जिसमें नाट्यशास्त्रीय वैदूष्य का तेज्ज्वल रूप प्रोदभासित होते रहा है। नाट्यशास्त्रवेताओं ने पञ्चसन्धियों के स्वरूप पर गम्भीर चिन्तन कर अपने-अपने अनुसार लक्षण, भेद, प्रभेद, निर्धारित किये है। 'सन्धि' नाम से ही स्पष्ट है कि कथावस्तु के इस इतिवृत्त में नाट्यचिन्तन का अत्यन्त व्यापक चित्रण किया गया है। कथावस्तु नाटक का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। इस तत्त्व का चयन इतिहास, पुराण, दैनिक जीवन, पत्र-पत्रिका, साहित्य आदि से ग्रहण किया जाता है। नाट्य प्रयोगकर्ता नाट्यरंगमंच पर इसे प्रयोगकर नाट्यदर्शक आत्मा को प्रसादित-आनन्दित करने का प्रयास करता है।

ध्यातव्य है कि इन नाट्य कथावस्तु में विच्छेद न हो इसके लिए सन्धियों की आवश्यकता होती है। जैसा कि सन्धियों के सम्बन्ध में धनंजय ने कहा है कि 'अन्तरैकार्थसम्बन्धः सन्मिरेकान्वये सति' तात्पयार्थ है कि कथावस्तु के अंगों को अन्वित करने वाली अवस्था को सन्धि कहते है। इन सन्धियों का कार्य है अवान्तर कथावस्तु को जोड़ना। अतः स्पष्ट है कि नाट्यवृत्त में पञ्चसन्धियों का विशेष महत्त्व है। इनकी महत्ता को देखते हुए ही उक्त आलेख के विषये में अनुसन्धान कार्य करने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई। इस प्रारम्भिक शोध आलेख के विषय में सीमा, प्रयोजन, मौलिकता महत्ता के प्रदर्शन हेतु प्रस्तावना है, जिससे शोध का ध्येय लक्षित होता है।

इस प्रकार प्रस्तुत शोध पत्र में रूपक की प्रकृति तथा अवस्था के मिलन से सन्धियों का आविर्भाव होता है। इसी विन्दूओं पर पूर्णरूपेण सन्धान किया गया है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :

वस्तु-योजना दृष्टि से काव्यशास्त्रीय नाट्य चिन्तन के क्षेत्र में पंचसन्धियों का महत्त्व विद्वत्समाज में सुविदित है। इन्हें सन्धियां इसलिए कहते है कि ये पांच अर्थप्रकृतियों व पांच अवस्थाओं के संयोग से इनकी उत्पत्ति होती है। दशरूपकार धनंजय और धनिक भारतीय नाट्यशास्त्र के इतिहास में एक प्रखर नाट्यशास्त्रकार के रूप में प्रतिष्ठित है। इन्होंने नाटक में सन्धियों की उपयोगिता

लक्षण एवं महत्त्व को प्रदर्शित किया है। सन्धि-प्रक्रिया तथा उसके स्वरूप का निरूपण करते हुए दशरूपकार ने कहा है कि अर्थकृति तथा अवस्था के अतिरिक्त नाटक की कथावस्तु में पांच सन्धियां भी होती है। यह पांचों सन्धियां कथावस्तु के आवश्यक अंग है। अत: अनिवार्य रूप से नाटक की कथावस्तु में इनकी उपस्थिति होनी ही चाहिए। सन्धियों की विवेचना करते हुए आचार्य धनंजय ने स्पष्ट करते हुए लिखा है

अर्थप्रकृतय: पञ्च पञ्चावस्थासमन्विता:।।[1]
यथासंख्येन जायन्ते मुखाद्या: पञ्च सन्धय:।।
मुखप्रतिमुखे गर्भ: सावमशीर्पसंहति[2]

अर्थात् उक्त कारिका में कहा गया है कि बीज, विन्दु, पताका, प्रकरी तथा कार्य ये पांच अर्थ-प्रकृतियां क्रमश: आरम्भ, यत्न, प्रत्याशा, नियताप्ति और फलागम इन पांचों अवस्थाओं से मिलती है, तब मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण सन्धिओं का आविर्भाव होता है।

आचार्य भरत मुनि ने भी अपने ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में इन सन्धियों के विषय में वर्णन करते हुए लिखा है

मुखं प्रतिमुखं गर्भोऽविमर्शस्तथा हि।
तथा निर्वहणचवसन्ध्यो नाटके मृता:।।[3]

नाटकाचार्य प्रर्वतक भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र विषयक पुस्तक में सन्धियों का जो निर्देश किया है उसे 'अभिनवभारतीकार' ने इस प्रकार व्याख्या की है-' *मुखं*[4] *प्रतिमुखं चैवेति। समुचयपदै: पंचानां सर्वत्रावश्यंभावत्वं द्योतितम्। नियम वाचिभि: क्रमनियम:। नाटक इत्यभिनेयरूपके इत्यर्थ: महावाक्यार्थरूपस्य रूपकार्थस्य पंचांशा अवस्थाभेदेन कल्प्यन्ते। तेनार्थावयवा: सन्धीयमाना: परस्परमश्च सन्धय इति समाख्या निरूक्ता।*

(अभिनवभारती नाट्यशास्त्र, 19-37 1)

आचार्य विश्वनाथ ने भी पञ्चसन्धय: का निरूपण करते हुए कहा है-

यथा संख्यमवस्थाभिराभिर्योगात्तु पञ्चभि:।
पञ्चधैवेतिवृत्तस्य भागा: स्यु: पञ्च सन्धय:।।[5]

आर्थात् 'अर्थप्रकृति -पञ्चक' रूप वृत्त भेद सह अवस्थापंचक की क्रमिक समबद्ध योजना के फलस्वरूप नाटकीय इतिवृत्त पांच भागों में विभक्त हो जाते हैं उसे ही पंचसन्धियां कहते है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रस्तुत शोध सन्धान पत्र का मुख्य प्रतिपाद्य-विषय नाट्य रचना में सन्धियों की अपरिहार्यता एवं महत्त्व और इसके लक्षण (स्वरूप) पर प्रकाश डालना है। क्रमश: 'पञ्चसन्धय:' के स्वरूप का निरूपण इस प्रकार किया जा रहा है- दशरूपककार धनंजय के अनुसार इनका स्वरूप निम्न प्रकार होता है -

1. बीज + आरम्भ - मुख्यसन्धि
2. बिन्दु + प्रयत्न - प्रतिमुखसन्धि
3. पताका+ प्राप्तयाशा- गर्भसन्धि
4. प्रकरी- नियताप्ति- अवमर्शसन्धि
5. कार्य+ फलागम - उपसंहृति (निर्वहन सन्धि)

(क) मुख्यसन्धि- यह नाटक (रूपक) की सर्वप्रथम सन्धि है। लक्षणमाह -

मुखं बीजसमुत्पत्ति नार्थरस सम्भवा
तस्य बीजारम्भसमन्वयात्।[6]

अर्थात् मुख सन्धि नाटक की कथा का केन्द्र स्थल है जहां से अनेक उपकथाओं, रसों की उद्भावना होती है। यह बीज अर्थप्रकृति और आरम्भ नामक कार्यावस्था के संयोग से बनती है।

यह स्थान रूपक की कथावस्तु विभाग होता है। फल की प्रथम अर्थप्रकृति बीज की उत्पत्ति इसी जगह होती है। इसमें नानाप्रकार के रसों और अर्थो की सम्भावना समाविष्ट रहती है। तात्पयार्थ है कि नानाविध अर्थ प्रयोजन एवं रस का हेतु मुख्य सन्धि है। 'मुख्य सन्धि' के अंग के विषय में आचार्य धनंजय का कथन है कि

अङ्गानि द्वादशैतस्य बीजारम्भसमन्वयात्।

बीज और आरम्भ के साथ होने से इस मुख्यसन्धि के 12 (बारह) अंग होते है। यथा-

उपक्षेप: परिकर: परिन्यासो विलोभनम्।[7]
युक्ति: प्राप्ति: समाधानं विधानं परिभावना।
उभेद भेदकरणान्यन्वर्थान्यथ लक्षणम्।

अर्थात् (1) उपक्षेप (2) परिकर (3) परिन्यास (4) विलोभन (5) युक्ति (6) प्राप्ति (7) समाधान (8) विधान (9) परिभावना (10) उद्भेद (11) भेद (12) करण।

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार 'मुख सन्धि' का लक्षण-

यत्र बीजसमुत्पत्तिनार्थरस सम्भवा।
प्रारम्भेण समायुक्तान्मुखं परिकीर्तितम्।।[8]

अर्थात् 'मुखसन्धि' का अर्थ है रूपक की अर्थराशि का वह अंश है जिसके साथ नायक की प्रारम्भिकवस्था सम्बद्ध रहती है और बीज रूप अर्थप्रकृति की योजना होती है, इसे ही मुख्य सन्धि कहते है। तात्पयार्थ नाना प्रकार के रसभावों की अभिव्यञ्जना व्याप्त रहती हैं। उदाहरणार्थ 'रत्नावली' नाटिका के प्रथम अंक की

जो अर्थराशि है वह 'मुखसन्धि' रूप अर्थराशि है।

नाट्याचार्य भरतमुनि के मत में मुख्यसन्धि का लक्षण –

यत्र बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससंभवा।
काव्येशरीरानुगता तन्मुखं परिकीर्तितम्।।[9]

अभिनवभारतीकार के अनुसार–'मुख–सन्धि' का लक्षण– *'प्रागारम्भभावित्वान्मुखमिव मुखम्, यावत् क्रियावत्यर्थभागराशौ बीजस्य मुखोपायस्य सम्यगुत्पत्तिः शरीरेण प्रारम्भात्मना अनुगता भवति, नानाभूतोऽर्थवशात् प्रसङ्गायातो रससंभवो यः स्यात् । एतदुक्तं भवति–प्रारम्भोपयोगी यावानर्थ राशिः प्रसक्तानुप्रसक्त्वा विचित्रास्वाद आपतित तावान् मुख्य–सन्धिः, तदभिधायी च रूपकैकदेशः उदाहरणार्थ– रत्नावल्यां प्रथमोऽकः । तथा हि, अमात्यस्य वीरो, वत्सराजस्य शृङ्गाराद्भूतौ, ततः शृङ्गार इति इयानयं सागरिकाया राजदर्शनेऽमात्यप्रारम्भविषयी कृतेऽर्थराशिरूपयोगीति मुख्यसन्धिः।*[10]

अभिप्राय है कि 'मुख' सन्धि वह नाटकीय अर्थराशि है जिसके दर्शन में मुख का दर्शन होता है। अर्थात् मुखसंधि रस और भाव प्रधान रस–अर्थ राशि से है जिससे किसी नाटक का उपक्रम किया जाता है। रूपक के प्रधानमुख होने के लिए, रूपक की प्रारम्भोपयोगी अर्थराशि को कहते ही है, साथ ही साथ इसके विधायक नाटक प्रबन्ध के एकदेश को भी 'मुख' ही कहते है। अतः 'रत्नावली' के प्रथम अंक में 'मुख' संधि का दर्शन और 'रत्नावली' के प्रथम अंक का 'मुख' संधि के रूप में दर्शन– दोनों का भाव एक ही है।

प्रतिमुखसन्धि –

नाटक की यह दूसरी प्रकार की सन्धि है। 'प्रतिमुख' रूपक की वह सन्धि है जिसमें बिन्दु नामक अर्थप्रकृति का तथा प्रयत्न नामक अवस्था का मिश्रण होता है। अर्थात् इस सन्धि में मुखसन्धि–निविष्ट बीज का ऐसा उद्भेद हुआ करता है जो लक्ष्य और लक्ष्य–दोनों रूप में रहता है। इसे हम यों कह सकते है कि कथा का वह अंक जहां पर बीज कहीं स्पष्ट होता है तथा कहीं अस्पष्ट दोनों रूपो रहता है। यथा–

लक्ष्यालक्ष्यतयोद् भेदस्तस्य प्रतिमुखं भवेत्।[11]
बिन्दुप्रयत्नानुगमादङ्गान्यस्य त्रयोदश।।

साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने 'प्रतिमुख' सन्धि का लक्षण निम्नशब्दों में दिया है–

फलप्रधानोपायस्य मुखसन्धिनिवेशिनः।
लक्ष्यालक्ष्यइवो दो यत्र प्रतिमुखं च तत् ।।

यथा– रत्नावल्यां द्वितीयेऽके रत्नावली नाटिका के द्वितीय अंक में वत्सराज और सागरिका के समागम का हेतु, इन दोनों का परस्पर प्रेम, जो प्रथम अंक में ज्ञात करा दिया गया था उसे सुसंगता और विदूषक को ज्ञात हो गया, अर्थात् कुछ स्पष्ट (लक्ष्य) है तथा वासवदत्ता ने चित्र के वृत्तान्त से किञ्चित अनुमान द्वारा ही है प्रत्यक्ष रूप में कुछ भी जानकारी नहीं होना (अलक्ष्य) अस्पष्ट है।

अतः 'रत्नावली' के द्वितीय अंक की जो अर्थराशि है वह 'प्रतिमुख सन्धि' के रूप में अर्थराशि ही है क्योंकि इसमें नायक वत्सराज और नायिका रत्नावली के उस अनुशागबीज का उद्भेद लक्षित होता है जो कि उसके परस्पर संयोग के कारण स्वरूप प्रथम अंक में ही निक्षिप्त हो गया था। दशरूपककार धनंजय के शब्दों में प्रतिमुख सन्धि का लक्षणमाह–

लक्ष्यालक्ष्यतयो दस्तस्य प्रतिमुखं भवेत्।
बिन्दुप्रयत्नानुगमादङ्गन्यस्य त्रयोदश।।

अर्थात् दशरूपकार 'प्रतिमुख' संधि के अंगो सहित निरूपण करते हुए कहते है कि– प्रतिमुख सन्धि वह होता है जहां बीज का लक्ष्यरूप में स्पष्ट प्रत्यक्षीकरण होता है तथा अलक्ष्य रूप में अस्पष्ट प्रत्यक्षीकरण होता है। अर्थात् बिन्दु नामक अर्थप्रकृति और प्रयत्न नामक कार्यावस्था के मेल से प्रतिमुख सन्धि के 13 (तेरह) भेद होते है। इनके अंगों के नाम का उल्लेख इस कारिका में निर्दिष्ट है। त्रयोदशाङ्गानि

विलासः परिसर्पश्च विधूतंशमनर्मणी।
नर्मद्युतिः प्रगमनं निरोधः पर्युपासनम्।[13]
वज्रं पुष्पमुपन्यासो वर्णसंहार इत्यपि।।

अर्थात् 1. विलास, 2. परिसर्प, 3. विद्यूत, 4. शम, 5. नर्म, 6. नर्मद्युति 7. प्रगमन, 8. निरोध, 9. पर्युपासन, 10. वज्र, 11. पुष्प, 12. उपन्यास और 13. वर्णसंहार

आशय है कि बिन्दु नामक अर्थप्रकृति के संयोग से प्रयन्त रूप में कार्यवस्था के मेल से 'प्रतिमुख सन्धि' की उत्पत्ति होती है, जिनके उक्त तेरह भेद होते है।

3. गर्भसन्धि

नाटक (रूपक) की सन्धियों में तृतीय सन्धि %गर्भसन्धि% है। 'गर्मसन्धि' के विषय में भी लक्षणकार काव्यशास्त्रियों ने अपने–अपने अनुसार लक्षण प्रस्तुत किये हैं, जो इस प्रकार है आचार्य विश्वनाथ प्रणीत 'साहित्यदर्पण' के अनुसार 'गर्भसन्धि' का लक्षण– *फलप्रधानोपायस्य प्रागुन्निस्य किञ्चन।*
गर्भो यत्र समुद्भेदो हासान्वेषणवान्मुहुः।।[14]

विश्वनाथ का कहना है कि 'गर्भ' वह सन्धि जिसे मुख और 'प्रतिमुख' सन्धि में क्रमशः किञ्चित मात्र प्रधानोपाय बीज का ऐसा समुद्भेदन होता है कि बीज का ह्रास और विकास की चिन्ता

साथ-साथ होती रहती है। अत: बीज का अन्वेषण बारम्बार होता रहता है।

दशरूपककार धनंजय के अनुसार 'गर्भसन्धि' का लक्षण-

गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य बीजस्यान्वेषणं मुहु:।।

द्वादशाङ्ग: पताका स्यात्र वा स्यात्प्राप्ति सम्भव:।।[15]

अर्थात् बीज का प्रत्यक्षीकरण जब हो जाता है उसके अनन्तर पुन: अप्रत्यक्षीयकरण हो जाये तबभि उसका अन्वेषण (सन्धान) बार-बार किया जाय, तो गर्भ सन्धि होती है। इस सन्धि में बीज पूर्णत: नष्ट नहीं होता अपितु वह धूमिल हो जाता है। अत: उसके अनुसन्धान (अन्वेषण) में बीज का और भी ज्यादा विकास करना पड़ता है।

ध्यातव्य- फल के गर्भस्थ होने के कारण इसे गर्भ सन्धि कहते है। गर्भसन्धि के उदाहरण स्वरूप 'रत्नावली' नाटिका के द्वितीय और तृतीय अंक की कथा ली जा सकती है। इस 'सन्धि' में पताका नामक अर्थप्रकृति तथा प्रात्याशा नामक कार्य की अवस्था का समिश्रण होता है, किन्तु पताका का होना आवश्यक नहीं है। उसके अभाव में भी कार्य होते रहता है। इस सन्धि में फल की प्राप्ति का निश्चय सन्दिग्ध 10 हो जाता है, इसका कारण व्यवधान का होना होता है। इस तरह पुन: पुन: बीज की खोज की जाती है। गर्भसन्धि के 12 (बारह) अंग होते है - अभूताहरण, मार्ग, रूप , उदाहरण, क्रम, संग्रह, अनुमान, तोटक, अधिबल, उद्वेग, संभ्रम, आक्षेप।

अवमर्श सन्धि (विमर्श सन्धि)

नाटक की चतुर्थ शक्ति अवमर्श या विमर्श नामक सन्धि है। दशरूपककार धनंजय के मत में विमर्श का लक्षण -

क्रोधेनावमृशेद्यत्रव्यसनाद्वा विलोभनात्।[16]

गर्भनिर्भिन्न बीजार्थ:सोऽवमर्श इति स्मृत:।।

अर्थात् रूपक में जब क्रोध, व्यसन, या लोभ से फल प्राप्ति के सम्बन्ध में विचार किया जाय तथा 'गर्भसन्धि' के माध्यम से बीज को प्रकाशित कर दिया जाय, वहां अवमर्श- (विमर्श-सन्धि) होता है। 'विमर्श' सन्धि के विषय में साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ कहते है कि -

यत्र मुख्योफलोपाय उद्भिन्नो गर्भतोऽधिक:।

शापाद्यै: सान्तरायश्च स विमर्श इति स्मृत:।।[17]

तात्पर्यार्थ- 'विमर्शसन्धि' रूपक प्रबन्धों की वह सन्धि है, जिसमें गर्भसन्धि के अपेक्षा और तीव्र उभिन्न हो, परन्तु शापादि के फलस्वरूप विघ्न-बाधायें युक्त हो और उसे संघर्ष करता हुआ दिखायी दिया करता है वहां विमर्श-सन्धि होता है।

उदाहरणार्थ 'अभिज्ञानशाकुन्तल' नाटक के चतुर्थ अंक के प्रारम्भ के सन्दर्भ को देखा जा सकता है, जिसमें अनुसूया के इस कथन से है कि 'प्रियवदे'! यद्यपि सखी शकुन्तला का गान्धर्व विधि से मांगलिक विवाह कार्य हो चूका है और अपने अनुकूल योग्यवर को भी प्राप्त कर चुकि है, परन्तु हम सबों को चिन्ता है यथावत है- अनुसूया- *' प्रियंवदे' यद्यपि गान्धर्वेण विवहिन निवृत्त कल्याणा प्रियसखी शकुन्तला, अनुरूपभर्तृभागिनी सवृत्तेति निवृत्तम्, में हृदय में तथापि 'एतावच्चिन्तनीयम्'* से लेकर सप्तम अंक के प्रत्यभिज्ञान पर्यन्त सम्पूर्ण कथा विस्मरण रूप विघ्न से युक्त है। अत: यहां विमर्श सन्धि परिलक्षित होता है। इसमें नियताप्ति और प्रकरी का समिश्रण रहता है, परन्तु प्रकरी की योजना वैकल्पिक होती है। एक अन्य उदाहरण को भी देखा जा सकता है। यथा - *रत्नावल्यां चतुर्थेऽडके अग्निविद्रवपर्यन्तो वासवदत्ताप्रसक्त्या निरपायरत्नावली-प्राप्त्यवसायात्मा विमर्शो दर्शित:।* अर्थात् 'रत्नावली' नाटिका के चतुर्थ अंक में वासवदत्ता की प्रसक्ति से विघ्न रहित रत्नावली की प्राप्ति का अवधारणरूप विमर्श अग्नि के उपद्रव पर्यन्त दिखलाया गया है।

ध्यातव्य 'विमर्श सन्धि' को कतिपय नाट्यचार्य 'अवमर्श' शब्द से भी सम्बोधित करते है। अभिनव भारतीकार ने इसका मनोरम चित्रण किया है- *गर्भनिभिन्न बीजार्थो विलोभनकृतोऽपि वा क्रोधव्यसनजो वापि स विमर्श इति स्मृत: ।। गर्भनिर्भिन्न बीजार्थ इति। केचिद् विमर्श इति पठन्ति, अन्ये अवमर्श इति पठन्ति।*

अवमर्श (विमर्श) सन्धि के अंगों का नाम इस प्रकार है

तत्रापवादसंफेटौविद्रवशक्तय:।[18]

द्युति: प्रसङ्गश्छलनं व्यवसायो विरोधनम् ।।

प्ररोचनाविचलनमादनं च त्रयोदश।

1. अपवाद 2. संफेट 3.विद्रव 4. द्रव 5. शक्ति 6. द्युति 7. प्रसंग 8. छलन 9. व्यवसाय 10. विरोधन 11. प्ररोचना 12. विचलन 13. आदान.

5. निर्वहण सन्धि-

नाटक (रूपक) के 'पञ्चम संधि' निर्वहण है। दशरूपककार का मानना है कि जहां एक ही प्रमुख प्रयोजन की सिद्धि के लिए कार्य और फलागम के साथ ही अन्यान्य अर्थो का पर्यवसान हो जाता है, वहां 'निर्वहन सन्धि' होती है। यथा-

बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम्।

ऐकार्थ्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत्।।[19]

उदाहरणार्थ *वेणीसंहारे कञ्चुकी महाराज! वर्धसे, वर्धसे । अयं खलु कुमारभीमसेन: सुयोधनक्षतजारूणीकृतसकलशरीरो*

दुर्लक्षव्यक्ति:, इत्यादिना द्रौपदीकेशसंयमनादिमुखसंध्यादिवीजानां निजनिजस्थानो पक्षिप्तानामेकार्थतयायोजनम् ।

अर्थ है कि 'वेणीसंहार' नाटक में कञ्चुकी युधिष्ठिर के पास जाकर हर्षपूर्वक कहता है महाराज! अभ्युदयकाल है। यह भीमसेन है। दुर्योधन के द्वारा दिये गये घावों से निकलते हुए रक्त जाने के कारण इसका शरीरलाल हो रहा है। अत: पहचाने नहीं जा रहे थे। अब संदेह नहीं कीजिए इत्यादि कथन से मुख आदि संधियों में द्रौपदी के केशसंयमन आदि राज्यलाभ रूप जो बीज यत्र-तत्र बिखरा हुआ है उसका प्रयोजन के लिए इकट्ठा हो जाना निर्वहण संधि है, क्योंकि रूपक के समस्त प्रयोजन का यहां संयोग हो जाता है।

आचार्य विश्वनाथ ने भी 'साहित्यदर्पण' नामक ग्रन्थ में धनंजय सदृश ही लिखा है-

बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम्।
एकार्थमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत्।।[20]

अर्थात् 'निर्वहण सन्धि' नाटकप्रबन्ध की वह अर्थ राशि है जिसमें उन-उन सन्धिओं में यत्र-तत्र उपन्यस्त बीजादि रूप इतिवृत्तांश प्रमुखफल के रूप में सिद्ध होते हुए दिखते है। तात्पर्य यह है कि समस्त घटना के बाद की जो वृत्त- योजना है उसमे 'निर्वहण सन्धि' के निदर्शन होते है। उदाहरणार्थ-अभिज्ञानशाकुन्तलम् के सप्ताङ्क (सप्तम-अंक) में शकुन्तला की घटना के बाद की जो वृत्तयोजना है उसमें 'निर्वहण' सन्धि विद्यमान् है।

ध्यातव्य नाट्यशास्त्रियों के अनुसार निर्वहन संधि के चर्तुदश (14) चौदह अंग होते है। दशरूपकार के मत में - ये चौदह अंग इस प्रकार है-

संधिर्विबोधो प्रथनं निर्णय: परिभाषणम्।[21]
प्रसादानन्दसमया: कृत भाषोपगूहना।।
पूर्वभावोपसंहारौ प्रशस्तिश्च चर्तुदश।।

अर्थात् ये चौदह अंग -(1) संधि (2)विबोध (3)ग्रन्थन (4)निर्णय (5)परिभाषण (6)प्रसाद (7) आनन्द (8)समय, (7)कृति (10) भाषा (11) उपगूहन (12)पूर्वभाव, (13) उपसंहार (14) प्रशस्ति।

उपसंहार

उपसंहार में प्रस्तुत शोध कार्य की उपलब्धियों को प्रकाशित किया गया है और साथ ही इस शोधकार्य की उपयोगिता एवं महत्त्व को अनुसन्धान के क्षेत्र में विकसित होनेवाले नए आयामों को सुनिश्चित कर नाट्यसाहित्य में 'पंचसन्धियों' के प्रयोग करने से निम्नांकित दिशाओं में नवीन शोध करने की प्रेरणा अनुसन्धाताओं को मिलेगी।

(क) शोधकर्ताओं में नाट्यसाहित्य कालीन ग्रन्थों के अन्वेषण एव अध्ययन की अभिरूचि उत्पन्न होगी।

(ख) नाट्य ग्रन्थों में सन्धि-प्रयोग विषयक महत्त्व को प्रकाश में लाने की प्रवृत्ति उत्पन्न होगी।

(ग) प्रस्तुत शोध आलेख से नाट्यसाहित्य में पंचसन्धियों की उपयोगिता सिद्ध होगी और उसकी प्रतिष्ठा की प्रमाणिकता भी स्थापित होगी।

(घ) भारतीय नाट्य मनीषियों के चिन्तन नाट्यसाहित्य में जो प्राप्त होते है वह भली-भांति प्रकाश में आयेगा।

अत: उक्त आशा से शोध किया गया यह आलेख नाट्य पंचसन्धियों के चिन्तन के रूप में अनुसन्धान के क्षेत्र को गति एवं अभिवृद्धि प्रदान करता है, तो शोधश्रम सार्थक होगा।

सन्दर्भग्रन्थ सूची -

1. धनजय, दशरूपक, प्र.प्रकाश, कारिका सं. 22
2. धनजय, दशरूपक, प्र.प्रकाश, कारिका सं. 24
3. आचार्य भरतमुनि, नाट्यशास्त्र
4. अभिनवभारती, 19-37
5. आचार्य विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, कारिका सं. 6-74
6. अभिनवभारती, नाट्यदर्पण वृत्तिभाग
7. धनंजय, दशरूपक, प्र.प्रकाश, कारिका सं. 1-24
8. धनजय, दशरूपक, प्र.प्रकाश, कारिका सं. 1-25, 26
9. आचार्य विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, षष्ठपरिच्छेद, कारिका सं. 76
10. अभिनवभारती, नाट्यदर्पण 19-39
11. धनंजय, दशरूपक, प्र.प्रकाश, कारिका सं. 30
12. आचार्य विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, षष्ठपरिच्छेद, कारिका सं. 77
13. धनंजय, दशरूपक, प्र.प्रकाश, कारिका सं. 6-78
14. धनंजय, दशरूपक, प्र.प्रकाश, कारिका सं. 36
15. धनंजय, दशरूपक, प्र.प्रकाश, कारिका सं. 36
16. धनंजय, दशरूपक, प्र.प्रकाश, कारिका सं. 43
17. आचार्य विश्वनाथ, साहित्यदर्पण षष्ठपरिच्छेद, कारिका सं. 79
18. धनंजय, दशरूपक, प्र.प्रकाश, कारिका सं. 44
19. धनंजय, दशरूपक, प्र.प्रकाश, कारिका सं. 48
20. आचार्य विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, षष्ठपरिच्छेद, कारिका सं. 80
21. धनंजय, दशरूपक, प्र.प्रकाश, कारिका सं. 49-50

इति शुभम्

ISSN 2278 - 0327

दलितोत्थान में लोहिया समग्र ग्राम विकास योजना का प्रभाव

डॉ. वरुण कुमार उपाध्याय
सहायक प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय

सारांश

समेकित ग्राम विकास-कार्यक्रम के अंतर्गत अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिये कृषि, पशु पालन, लघु सिंचाई, बुनाई, रेशम-उद्योग, बागवानी, मत्स्यपालन, लघु और कुटीर उद्योगों के कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं। न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अन्तर्गत इन दुर्बल समूहों के लिये कई प्रकार की नि:शुल्क सहायता प्राप्त सेवाएँ उपलब्ध करायी जाती हैं। प्राथमिक शिक्षा, ग्रामीण स्वास्थ्य, ग्रामीण जलापूर्ति, ग्रामीण सड़कें, ग्रामीण विद्युतीकरण, ग्रामीण भूमिहीन श्रमिकों के लिये आवास-निर्माण में सहायता, शहरों में बस्तियों के पर्यावरण में सुधार तथा पोषाहार आदि सेवाएँ इनमें सम्मिलित हैं। प्रस्तुत अध्ययन में शोध कर्ता ने दलितोत्थान में लोहिया समग्र ग्राम विकास योजना का प्रभाव उनकी सामाजिक, आर्थिक पृष्ठभूमि जैसे- उनकी उम्र, जाति, धर्म, शिक्षा, व्यवसाय, मासिक आय, वैवाहिक स्थिति, पारिवारिक स्वरूप पर विस्तृत रूप में किया है। इसके अंतर्गत 285 व्यक्ति विशेष पर साक्षात्कार एवं अवलोकन के माध्यम से किया गया है एवमा उचित मूल्यांकन पद्धति का प्रयोग किया गया है।

मुख्य बिन्दु:- दलितोत्थान, लोहिया समग्र ग्राम विकास योजना, सामाजिक, आर्थिक पृष्ठभूमि

अध्ययन की पृष्ठभूमि -

वैदिक काल से ही समाज में वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत जातीय व्यवस्था के संस्तरण में सबसे निम्न रखे जाने वाली जाति को शूद्र कहा जाता था। सामाजिक व्यवस्था वितरण में अन्य जातियों की अपेक्षा इनका प्रमुख कार्य लोगों की 'सेवा' एवं सफाई करना था। तब से लेकर अज तक इनके वंशज समाज में उसी उत्तरदायित्व का निर्वहन करते चले आ रहे हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् इनके सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक धार्मिक एवं शैक्षणिक उत्थान हेतु सरकार ने हर सम्भव प्रयास किये हैं, किन्तु दुर्भाग्य है कि आज भी ये विरासत में मिले भारतीय संस्कृति के अभिशाप को झेलने को बाध्य हैं और ऊँच-नीच, छुआछूत, जातीय संस्तरण के तहत अपने मौलिक अधिकारों को प्राप्त करने में सदैव असफल रहें हैं।

इनकी दयनीय स्थिति को देखते हुए भारतीय संविधान में अनुसूचित जातियों और जन-जातियों के संरक्षण की व्यवस्था की गयी है। संविधान के अनुच्छेद 46 में कहा गया है, ''राज्य जनता के दुर्बलतम अंगों के, विशेषतया अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के शिक्षा तथा अर्थ सम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से प्रोन्नत करेगा तथा सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से उनकी रक्षा करेगा''। समाज के इन दुर्बल समूहों के हितों की रक्षा के लिये संविधान के अनेक अनुच्छेदों में इनकी उन्नति सम्बन्धी विभिन्न प्रावधान किये गये हैं। कुछ संवैधानिक उपबंधों को लागू करने के लिये केन्द्रीय एवं राज्य स्तरों पर भी कानून बनाये गये हैं। देश की पंचवर्षीय योजनाओं और विकास कार्यक्रमों में इनके हितों के विकास पर विशेष जोर दिया गया हैं। सिविल अधिकार, विधान मण्डलों में आरक्षण, सरकारी नौकरियों में आरक्षण के साथ ही विकास-कार्यक्रमों, निर्धनता उन्मूलन, विशेष रोजगार कार्यक्रम तथा न्यूनतम आवश्यकता- कार्यक्रम आदि में ग्रामीण क्षेर्तों की अनुसूचित जातियों और जनजातियों को प्राथमिकता दी गई है। साथ ही भूमि सुधार और सामाजिक उन्नयन के लिये बैंकों से ऋण-सहायता, लघु उद्योगों की स्थापना, वितरक एजेन्सियों के आवंटन और मजदूरी की न्यूनतम दरों के निर्धारण तथा बधुआ-श्रमप्रथा के उन्मूलन में अनुसूचित जातियों और जनजातियों को प्राथमिकता दी गई है।

इसके अतिरिक्त अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिये वितरक एजेन्सियों-जैसे सड़क परिवहन के परमिट, रेलवे में कैटरिंग के ठेके, खाद, गैस और मिट्टी के तेल के डीलरशिप की विशेष व्यवस्था की गई है। लेकिन उपर्युक्त योजनाओं, विकास

के विभिन्न कार्यक्रमों, सुधारों आदि के बावजूद अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों की स्थिति में जो अपेक्षित सुधार होना चाहिए वह नहीं हो रहा है। गाँव के नतीजे तो और भी अच्छे नहीं आ रहे हैं। कागज पर मनरेगा के धन से बना तालाब लिखा है लेकिन गाँव में रोजगार नहीं। पीने को शुद्ध पानी नहीं। तन्त्र-मन्त्र से भूत भगाने वाले ओझा हैं लेकिन बीमार को दवा और अस्पताल नहीं। सरकारी अभिलेखों में सड़कें हैं लेकिन नाली और खड़ंजा तक नहीं। शिक्षा की ठीक व्यवस्था नहीं, बिजली नहीं, खम्भे हैं तो तार नहीं, तार हैं तो खम्भा नहीं। जहाँ दोनों हैं वहाँ ट्रांसफार्मर नहीं, कृषि से आय नहीं, शौचालय और पक्के आवास नहीं, सब तरफ अव्यवस्था और अनियोजित विकास है।

सामाजिक-आर्थिक विकास के अन्तिम सोपान पर खड़े इन वर्गों या समूहों को विकास की मुख्यधारा से जोड़ने और उन तक विकास का लाभ पहुँचाकर उनका जीवन स्तर उठाने के लिये उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में संतुलन स्थापित करने के उद्देश्य से समेकित विकास की ऐसी योजनाएँ तैयार की जा रही हैं, जिससे गाँव एवं शहर दोनों विकास के रास्ते पर समान रूप से आगे बढ़ सकें। राज्य सरकार जहाँ देश में सबसे तेज गति से बनने वाली मैट्रो रेल तथा विभिन्न सड़क परियोजनाओं पर काम कर रही है, वहीं दूसरी ओर गाँव में भी सड़कों को दुरूस्त कर लोहिया ग्रामीण बस सेवा के माध्यम से दूरियों को कम करने, गाँव को स्मार्ट विलेज में तब्दील करने व गरीब किसानों की खुशहाली के लिये कई प्रयास सरकार द्वारा किये जा रहे हैं। साथ ही कृषि अर्थ-व्यवस्था को और अधिक मजबूती प्रदान करने के लिए वर्ष 2016-17 को किसान वर्ष घोषित किया गया। किसानों, लक्षित समूहों, अनुसूचित जातियों-जनजातियों के लिये 'मुख्यमंर्ती किसान एवं सर्वहित बीमा योजना' के साथ-साथ 'डॉ0 राम मनोहर लोहिया समग्र ग्राम विकास योजना एवं 'जनेश्वर मिश्र ग्राम योजना'' तथा 'लोहिया ग्रामीण आवास योजना' लागू की गई। वर्तमान अध्ययन की समस्या यह ज्ञात करना है कि लोहिया ग्राम घोाित किये जाने पर उन गाँवों में जहाँ यह योजना चल रही है या चल रही थी, विकास के विभिन्न कार्यक्रमों से दलितों की स्थिति में कितना सुधार और परिवर्तन हुआ है।

पूर्व अध्ययनों का सर्वेक्षण -

भारत में ग्राम विकास को दृष्टिगत रखकर अनेक अध्ययन हुए हैं जिन्हें मुख्यत: दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम वे अध्ययन जो वामपंथी आदर्शों या मार्क्सवादी दर्शन से सम्बन्धित हैं। द्वितीय वे अध्ययन जो परम्परागत सिद्धान्तों से सम्बद्ध हैं। वामपन्थी आदर्शों के अन्तर्गत ग्रामीण विकास का विश्लेषण मौलिक, व्यवस्थात्मक, परिवर्तन की मार्क्सवाद व्याख्या पर आधारित है जिसमें क्रान्तिकारी पद्धति के माध्यम से मौलिक परिवर्तन को ग्रामीण विकास एवं प्रगति का आधार मानकर विविध अध्ययन किये गये हैं, जैसे- देसाई, कैथलिनगफ, फ्रैंकल, हमजा, आलवी, अधिकारी, मिलीबैंड, आदि के अध्ययन। दूसरी ओर परम्परावादी विचारक ग्रामीण विकास की व्याख्या बगैर क्रान्तिकारी, क्रियाओं एवं मौलिक परिवर्तन के संरचनात्मक संसाधनों के आधार पर किये हैं, जैसे, गांधी, पटेल, मांडेलबाम, श्यामाचरण दूबे, घनश्याम शाह, जैन आदि के अध्ययन।

ग्राम विकास को दृष्टिगत रखकर जहाँ तक दलितों के अध्ययन का प्रश्न है पिछले कुछ वर्षों में दलित आन्दोलन, महिलाओं, दलितों की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि, उनकी राजनीतिक सहभागिता, संचेतना आदि से सम्बन्धित महत्वपूर्ण अध्ययन हुए हैं।

इन अध्ययनों में एक महत्वपूर्ण अध्ययन उषा राव (1981) का है, इन्होंने ग्रामीण विकास के सन्दर्भ में कर्णाटक राज्य की अनु0 जातियों, जनजातियों का अध्ययन किया। यह अध्ययन उनकी शैक्षणिक प्रस्थिति, व्यवसायिक प्रतिमान और अन्तर्जातीय सम्बन्धों को लेकर था। सविता मेहरा (1982) द्वारा हरियाणा की ग्रामीण इलाकों की अनु0 जातियों में सामाजिक गतिशीललता का अध्ययन किया गया। अध्ययन में मेहरा ने पाया कि विभिन्न सरकारी कल्याण कार्यक्रमों तथा नौकरियों में विशेष सुविधाओं के कारण अस्पृश्यों में उच्च व्यवसायिक गतिशीलता है। आर0एस0 खरे (1982) ने अपने अध्ययन में यह निष्कर्ष दिया कि लखनऊ के हरिजनों ने बौद्धिक और वैचारिकी के माध्यमों से अपनी सामाजिक- सांस्कृतिक निर्योग्यताओं को कुछ संदर्भों में एक विशिष्ट तरीके से दूर किया है। साथ ही उनकी सामाजिक सुदृढ़ता ने उच्च जातियों को उनके प्रति दृष्टिकोण को परिवर्तित करने के लिए बाध्य किया। लेकिन अधिकांशत: ने अपनी सांस्कृतिक विरासत को बनाये रखने के लिए कुछ परम्परागत प्रतीकों का साथ नहीं छोड़ा।

एम0 शोएब (1986) द्वारा वाराणसी नगर के चमार समुदाय में सामाजिक-आर्थिक गतिशीलता का अध्ययन किया गया। उन्होंने निष्कर्ष दिया कि शिक्षा, आधुनिक व्यवसाय तथा सरकारी कल्याणकारी कार्यक्रमों का इनके जीवनयापन के तरीके एवं सामाजिक-सांस्कृतिक मनोवृत्तियों को परिवर्तित करने में महत्वपूर्ण योगदान है। सोरेन सिंह (1987) ने उत्तर प्रदेश के पूर्वोत्तर में

स्थित जौनपुर के ग्रामीणों के सामाजिक-आर्थिक स्थिति में हो रहे परिवर्तनों पर प्रकाश डाला तथा स्पष्ट किया कि अनुसूचित जातियों की सामाजिक स्थिति पहले से बेहतर हुई है और अपने बच्चों को आगे ले जाने की उनमें एक ललक है। कुसुम के0 प्रेमी (1989) ने औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों में अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों को दिये जाने वाले व्यवसायिक प्रशिक्षण के स्वरूप, कार्य की अवधि एवं सुविधाओं का अध्ययन किया।

अध्ययन का उद्देश्य -

किसी भी अध्ययन की सरलता एवं स्पष्टता हेतु अध्ययन के उद्देश्य को निर्धारित करना आवश्यक है जिसको केन्द्र बिन्दु मानकर अध्ययन कार्य किया जाता है। वर्तमान अध्ययन विवरणात्मक और प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक है इसका उद्देश्य वाराणसी जनपद के चिरईगांव विकासखण्ड के कुछ लोहिया गांवों में निवास करने वाले दलितों के उत्थान के सन्दर्भ में लोहिया समग्र ग्राम विकास योजना के योगदान व प्रभाव का समाजवैज्ञानिक अध्ययन करना है। तथ्यों का पता लगाकर उनका विश्लेषण करना ही हमारा उद्देश्य है।''तथ्यों का पता लगाना बहुत आवश्यक होता है क्योंकि इसके बिना जनसाधारण के मन में अनेकों प्रकार की निराधार धारणाएं पनपती हैं। और हमारे सामने जो कुछ आता है उसमें आग्रहपूर्वक मत तो होते हैं पर विश्वसनीय आधार सामग्री बहुत थोड़ी होती है।' वर्तमान अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार हैं-

लोहिया समग्र ग्राम के दलितों की सामाजिक, आर्थिक पृष्ठभूमि जैसे- उनकी उम्र, जाति, धर्म, शिक्षा, व्यवसाय, मासिक आय, वैवाहिक स्थिति, पारिवारिक स्वरूप की जानकारी प्राप्त करना।

उत्तरदाताओं की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि -

व्यक्ति अथवा समूह की सामाजिक स्थिति तथा पद कतिपय समाजों में वर्ग एवं जाति पर अवलम्बित होते हैं। परन्तु एक ही समूह में इसका आधार उस समूह में निवास करने वाले लोगों की शिक्षा, आयु, निवास आदि पर निर्भर करता है। बन्द प्रकार के समाजों की व्यवस्था में भूमिका एवं प्रस्थिति पूर्व निर्धारित होती हैं जबकि मुक्त समाजों में व्यक्ति की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन होने से उसकी भूमिका में परिवर्तन की सम्भावना बढ़ जाती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सामाजिक-आर्थिक स्थिति और सामाजिक गतिशीलता, परिवर्तन एवं मानवीय व्यवहार में घनिष्ठ सम्बन्ध है। पारसन्स भी सामाजिक व्यवस्था का विश्लेषण सामाजिक व्यवस्था, सांस्कृतिक व्यवस्था और व्यक्तित्व व्यवस्था को लेकर करते हैं।

रिचर्ड पायस की दृष्टि में रोजगार की संरक्षणात्मक कार्यवाहियां एवं दलितों में सामाजिक गतिशीलता के मध्य सकारात्मक सम्बन्ध भी देखने को मिल रहा है। लेकिन जैसा कि जोगदण्ड ने तर्क दिया है सरकारी नौकरी एवं सार्वजनिक उपक्रमों में दलितों को आरक्षण एवं कोटा देने से उन्हें सहायता तो मिल रहा है परन्तु यह सोचनीय है कि नौकरी आरक्षण के मुद्दे पर सरकार एवं इसे लागू करने वाली संस्थाएं राजनीति कर रही हैं। आज भले ही मनोवैज्ञानिक एवं नैतिक रूप से वे काफी आत्मविश्वासी एवं मजबूत हुए हों तथा किसी भी स्तर पर किसी भी प्रकार के शोषण एवं दमन के विरूद्ध आवाज उठाने योग्य हुए हों, सामाजिक एवं आर्थिक रूप से वे अब भी गरीब एवं कमजोर बने हुए हैं।

अत: अध्ययन में उत्तरदाताओं की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण आवश्यक समझा गया। इस दृष्टि से अध्याय के अन्तर्गत लोहिया ग्राम के अनुसूचित जाति/जनजाति के उत्तरदाताओं की आयु, धर्म, जाति, वैवाहिक स्थिति, मासिक आय, व्यवसाय, परिवार का स्वरूप, शिक्षा, कृषि योग्य भूमि, आदि से सम्बन्धित संकलित तथ्यों का विवेचन किया गया है।

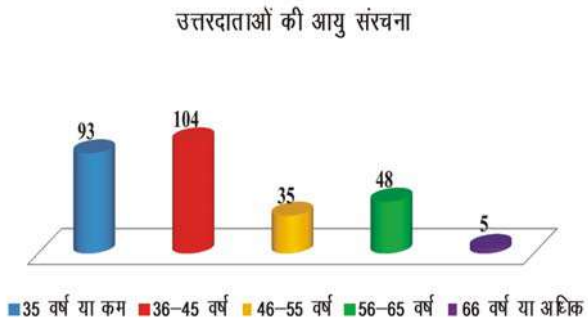
उत्तरदाताओं की आयु -

मानव जीवन में आयु का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि आयु बढ़ने के साथ-साथ व्यक्ति की मनोवृत्तियों एवं जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन आता है। अनुभव आयु के साथ जुड़ा है। व्यक्ति के प्रदत्त प्रस्थिति के निर्धारण में भी इसका महत्वपूर्ण स्थान है। सामाजिक एवं व्यावसायिक क्षेत्र में निरन्तर अन्त:क्रियारत व्यक्ति की आयु उसके क्रियात्मक सम्बन्धों की सुदृढ़ता को स्पष्ट करता है। समाज में व्यक्ति को अपनी विशेष आयु के साथ कुछ सुनिश्चित भूमिकाओं का सम्पादन करना पड़ता है और समाज की उससे कुछ अपेक्षायें जुड़ी होती हैं। एक निश्चित आयु के बाद ही व्यक्ति को कुछ निश्चित कार्यों के सम्पादन का अवसर पर अधिकार दिया जाता है और उससे यह आशा की जाती है कि वह अपनी आयु के अनुरूप कार्य करे। इसी दृष्टि से जेम्स विसर्ड (1953) ने आयु को ''सांस्कृतिक तथा अनुभवों के आधार पर सामाजिक अवस्था को निश्चित करने वाला कारक बताया है।''दलितों की प्रस्थिति के निर्धारण में आयु का विशेष महत्व है क्योंकि यह उनकी मानसिक प्रौढ़ता, परिपक्वता तथा परिवर्तनों से सम्बंधित है। वर्तमान अध्ययन में उत्तरदाताओं की आयु संरचना इस प्रकार है-

सारणी संख्या–1.1

उत्तरदाताओं की आयु संरचना

क्र0सं0	आयु	आवृत्ति	प्रतिशत
1.	35 वर्ष या कम	93	32.6
2.	36–45 वर्ष	104	36.5
3.	46–55 वर्ष	35	12.3
4.	56–65 वर्ष	48	16.8
5.	66 वर्ष या अधिक	5	1.8
	योग	**285**	**100.0**



अध्ययन में उत्तरदाताओं से उनके आयु की स्थिति की जानकारी ली गई। प्राप्त तथ्यों से हुआ कि 32.6 प्रतिशत उत्तरदाता 35 वर्ष या इससे कम आयु के हैं। 36.5 प्रतिशत प्रतिशत 46 वर्ष से 55 वर्ष के बीच हैं। 16.8 प्रतिशत उत्तरदाता 56 से 65 वर्ष के मध्य 66 वर्ष या इससे से अधिक है।

अत: उपरोक्त सारणी संख्या 1.1 से यह निष्कर्ष निकलता है कि सबसे अधिक 36.5 प्रतिशत उत्तरदाता 36 से 45 वर्ष की आयु के तथा 32.6 प्रतिशत 35 वर्ष या इससे कम आयु के है।

धार्मिक विभाजन –

धर्म एक सामाजिक संस्था तथा नैतिक मूल्यों की व्यवस्था है। यह भारतीय परम्परागत सामाजिक संरचना में व्यक्ति के जीवन का आधार है। यह अतिप्राकृतिक तथा रहस्यमयी शक्तियों में विश्वास है जिसकी अभिवृत्ति विभिन्न क्रियाओं में होती है। कुछ विचारकों के अनुसार धर्म आत्मा का अनश्वरता में विश्वास हैं। कुछ लोग धर्म को पूर्णतया लैंगिक एवं भौतिक समझते हैं जिसका उद्देश्य व्यावहारिक लक्ष्यों की प्राप्ति है। ई0वी0 टायलर के अनुसार ''धर्म आध्यात्मिक शक्ति में विश्वास है।'' मैलीनोवस्की के अनुसार, ''धर्म क्रिया का एक तरीका है और साथ ही विश्वासों की एक व्यवस्था भी। धर्म एक समाजशास्त्रीय घटना के साथ-साथ व्यक्तिगत अनुभव भी है। मैक्स वेबर ने धर्म को पवित्र वस्तुओं से सम्बन्धित विश्वासों एवं क्रियाओं की एक संकलित व्यवस्था माना है।

धर्म का व्यवहार पक्ष व्यक्ति की जीवन शैली में दिखलायी पड़ता है। यह व्यक्ति के सामाजिक जीवन के साथ-साथ उसके आर्थिक-क्रिया- कलापों का भी नियमन करता है। भारतीय समाज में हिन्दू धर्म बहुसंख्यक लोगों का धर्म हैं। हिन्दू धर्मावलम्बी का सम्पूर्ण जीवन धार्मिक क्रिया-कलापों, कर्मकाण्डों एवं संस्कारगत क्रियाओं पर अवस्थिति है लेकिन विकासशील भारतीय समाज में औद्योगिक एवं नगरीय क्षेत्रों के प्रचार के कारण परम्परागत धार्मिक विलगता सीमित हो रही है। औपचारिक एवं अनौपचारिक श्रम क्षेत्रों में सभी धर्मों के लोग सेवारत है। रोजगार के अवसरों की खोज में गाँव से नगरों की ओर आने वाले विभिन्न धर्मावलम्बी बहुतायत में अनौपचारिक क्षेर्तों में सरलता से आजीविका प्राप्त कर लेते हैं। वर्तमान अध्ययन के निदर्श में शामिल सभी अनुसूचित जाति/जनजाति के ग्रामीण दलित उत्तरदाता हिन्दू धर्म के अनुयायी हैं।

जाति संरचना –

बोंगल के अनुसार, ''भारतीय समाज में जाति, वर्ग, वंशानुकूल समूह, विवाह, सामाजिक अलगाव और श्रम विभाजन आदि की विशेषताएं समाहित हैं।'' जाति व्यवस्था ने भारतीय समाज का श्रृंखलाबद्ध विभाजन किया है। खान-पान और सामाजिक व्यवहार की पद्धतियों को नियमित करने में इस व्यवस्था की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका रही है। विवाह तथा व्यवसाय के स्वरूप का निर्धारण भी जाति व्यवस्था का प्रमुख पक्ष रहा है। घुरिये (1969) का कथन है कि भारतीय जाति का मुख्य लक्षण विभिन्न समूहों की श्रेणीबद्धता है। श्रीनिवास (1960) के अनुसार भारत में ऐसे आनुवंशिक अन्तरगामी समूह पाये जात हैं जिनका सोपान बना हआ है और इनमें से प्रत्येक समूह का एक या दो व्यवसायों के कारण पारम्परिक सम्बन्ध होता है। जातियों के बीच के सम्बन्ध अन्य बातों के साथ-साथ पवित्र-अपवित्र की धारणा से परिचालित है।

हिन्दू जाति व्यवस्था ऐतिहासिक विकास क्रम में पूर्णत: जन्म पर आधारित व्यवस्था के रूप में प्रस्थावित हैं, जो जन्म से ही व्यक्ति के व्यवसाय का निर्धारण करती रही है। आधुनिक भारतीय सामाजिक संरचना में हुए रूपान्तरण और संवैधानिक व्यवस्था के प्रतिफल में जाति पर आधारित श्रम अवसरों की बाध्यता को समाप्त कर दिया गया है, परन्तु व्यावहारिक संदर्भ में

आज भी जाति व्यक्ति के सामाजिक प्रस्थिति का निर्धारण करती है और उसे आर्थिक संरचना के विशिष्ट प्रकोष्ठ में रखती है। जाति के आधार पर भारतीय संविधान एक ओर कार्य एवं जीवनयापन के अवसरों की असमानता को समाप्त करने की उद्घोषणा करता है तो दूसरी ओर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़ी जाति एवं अन्य पिछड़ी जाति की अवधारणाओं को निर्मित कर, जातीय अन्तर को स्थायी बनाने का अपरोक्ष प्रयास करता है।

वर्तमान भारतीय समाज व्यवस्था के प्रभावशील समुदाय अपनी जातीय संरचना के अनुरूप अलग-अलग कोटियों में बंटे हुए हैं। वर्तमान अध्ययन हेतु चयनित दलित उत्तरदाता अनुसूचित जाति/जनजाति के हैं। इनकी जातीय स्थिति से सम्बन्धित तथ्यों का विवरण सारणी संख्या 3.3 में प्रस्तुत किया गया है।

सारणी संख्या.-1.2

उत्तरदाताओं की जाति/उपजाति की स्थिति

जाति	उपजाति	आवृत्ति	प्रतिशत
अनु0 जाति	चमार	230	80.7
	खटिक	16	5.6
	कन्नौजिया	13	4.5
	पासी	8	2.8
	डोम	2	0.8
अनु0 जनजाति	गोंड	3	1.0
	मुसहर	13	4.6
योग		285	100.0

सारणी संख्या-1.2 के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि हमारे अध्ययन के निदर्श में 80.7 प्रतिशत उत्तरदाता चमार हैं तथा 4.5 प्रतिशत खटिक हैं। कन्नौजिया का प्रतिशत 4.5 है। पासी 2.8 प्रतिशत तथा डोम 8 प्रतिशत है। अनु0 जनजातियों में 1.0 प्रतिशत गोंड तथा 4.6 प्रतिशत मुसहर हैं।

अत: उपरोक्त सारणी के आलोक में कहा जा सकता है कि जातीय दृष्टिकोण से लोहिया ग्राम में चमार/चर्मकार बहुसंख्यक हैं।

वैवाहिक स्थिति -

पुरुष को स्त्री चाहिए और स्त्री को सुरक्षा, इसका सर्वोत्तम उपाय विवाह है। विवाह मानव समाज में सार्वभौमिक रूप से पायी जाने वाली एक मूलभूत संस्था है जिसमें दो विषम-लिंगी व्यक्ति सामाजिक स्वीकृति द्वारा वैधानिक तथा धार्मिक व सामाजिक प्रथा के रूप में एक दूसरे के साथ लैंगिक, सन्तति एवं व्यक्तित्व के विकास की आवश्यकताओं की नियमित रूप से पूर्ति करते हैं तथा सामाजिक-आर्थिक सहानुभूति के बन्धनों से आपस में स्थायी रूप से बंधे होते हैं। हार्टन एवं हंट के अनुसार विवाह एक स्वीकृत सामाजिक प्रणाली है। यह दो या अधिक व्यक्ति की सामाजिक स्थिति का महत्वपूर्ण निर्धारक है। कपाड़िया की दृष्टि में विवाह द्वारा व्यक्ति न केवल दाम्पत्य सम्बन्ध की स्थापना करता है, बल्कि इसके द्वारा उसके पारिवारिक उत्तरदायित्व एवं सामाजिक भूमिका के क्षेत्र का भी विस्तार होता हैं। विवाह प्रस्थिति निर्धारण का महत्वपूर्ण तत्व है। जानसन के अनुसार विवाह का महत्वपूर्ण तत्व स्त्री और पुरुष के सम्बन्धों की व्यवस्था है जिनसे उत्पन्न बच्चों को समुदाय सामाजिक मान्यता प्रदान करता है।

भारतीय हिन्दू समाज में विवाह एक धार्मिक संस्कार है। परम्परागत भारतीय ग्रामीण समाज में इसे सामाजिक स्थिति का महत्वपूर्ण निर्धारक कारक माना गया है। विवाह द्वारा व्यक्ति न केवल गृहस्थ जीवन में प्रवेश करता है, बल्कि पारिवारिक उत्तरदायित्व में वृद्धि के साथ आर्थिक क्रियाओं में भी सहभागी होता है। साथ ही नवीन भूमिकाओं का निर्वहन करता है। वर्तमान अध्ययन में उत्तरदाताओं से उनकी वर्तमान वैवाहिक स्थिति के संदर्भ में सूचनाएं संकलित की गई है। इसका मुख्य उद्देश्य यह ज्ञात करना है कि वैवाहिक स्थिति से विभिन्न प्रकार के भूमिका तथा प्रस्थिति का निर्धारण कैसे होता है। प्राप्त किये गये तथ्यों का विवरण इस प्रकार है-

सारणी संख्या- 1.3

उत्तरदाताओं की वैवाहिक स्थिति

वैवाहिक स्थिति	आवृत्ति	प्रतिशत
विवाहित	270	94.7
अविवाहित	12	4.2
विधवा/विधुर	03	1.1
योग	285	100.0

उपर्युक्त तथ्यों के विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि 94.7 प्रतिशत उत्तरदाता विवाहित हैं, और 4.2 प्रतिशत उत्तरदाता अविवाहित हैं। 1.1 प्रतिशत उत्तरदाता विधवा/विधुर हैं। अत: स्पष्ट है कि प्रस्तुत शोध प्रतिदर्श का 94.7 प्रतिशत उत्तरदाता विवाहित हैं जो कि सर्वाधिक हैं।

परिवार का स्वरूप -

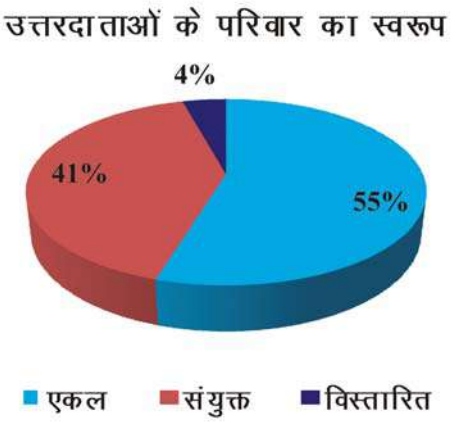
परिवार सभी सामाजिक समूहों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण और व्यापक समूह है। इसके अभाव में मानव समाज की कल्पना नहीं

की जा सकती। बड़े या छोटे, आदिम या भारतीय ग्रामीण सामाजिक संरचना में परिवार एक केन्द्रीय और मौलिक इकाई है जो ग्रामीण समुदाय में व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा का निर्धारण करती है। भारतीय परिवार प्रणाली पश्चिमी परिवार प्रणाली से अनेक सारगर्भित बातों में भिन्न हैं। साधारणतया परिवार को दो आधार पर विभाजित किया गया है। एकाकी परिवार एवं संयुक्त परिवार। भारत की परम्परागत संयुक्त परिवार प्रणाली का वास्तविक स्वरूप ग्रामीण समुदाय में ही दिखायी पड़ता है। यह परिवार ऐसे लोगों का समूह है जो एक ही छत के नीचे रहता है, रक्त सम्बंधों से बंधा होता है। इरावती कर्वे ने कहा है, ''संयुक्त परिवार ऐसे लोगों के समूह को कहते हैं जो प्राय: एक ही छत के नीचे रहते हैं, एक ही रसोई में बना भोजन करते हैं तथा जिनकी सम्पत्ति संयुक्त होती है और जो सामान्य पूजा में भाग लेते हैं तथा जो किसी न किसी प्रकार से एक-दूसरे से रक्त सम्बन्धी होते है। सारणी संख्या 3.5 में उत्तरदाताओं के परिवार के स्वरूप का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

सारणी संख्या- 1.4

उत्तरदाताओं के परिवार का स्वरूप

स्वरूप	आवृत्ति	प्रतिशत
एकल	156	54.7
संयुक्त	117	41.1
विस्तारित	12	4.2
योग	285	100.0



तथ्यों के विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि हमारे अध्ययन क्षेत्र लोहिया समग्र ग्राम के उत्तरदाताओं में 54.7 प्रतिशत का परिवार एकल है और 41.1 प्रतिशत उत्तरदाता का परिवार संयुक्त है तथा 4.2 प्रतिशत उत्तरदाता का परिवार विस्तारित है।

अत: आंकड़ों से स्पष्ट कि हमारे अध्ययन निदर्श में सम्मिलित उत्तरदाताओं में ज्यादातर के परिवार एकल हैं लेकिन संयुक्त परिवारों का प्रतिनिधित्व भी 41.1 प्रतिशत है। विस्तारित परिवारों की संख्या काफी संकुचित है।

शिक्षा का स्तर -

शिक्षा अज्ञानता की विनाशक है। यह व्यक्ति के जीवन के अज्ञानता रूपी अन्धकार को दूर कर उसके विकास व उन्नति के सारे रास्ते खोल देती है। यह गतिशीलता के रास्ते को चौड़ा करती है। आधुनिकता के बन्द दरवाजे को खोलती है और समाज के आर्थिक नींव को वृहद् करती है। शिक्षा के द्वारा व्यक्ति समाजीकृत होकर अपने व्यक्तित्व का विकास करता है तथा संस्कृति की निरन्तरता को बनाये रखने में भी सक्षम है। बोटोमोर का कथन है कि शिक्षा बच्चे के प्रारम्भिक समाजीकरण का सबसे दृढ़ आधार है। शैक्षणिक व्यवस्था अंशत; नैतिक विचारों में योगदान देती है। शिक्षा के द्वारा बीते समय के विभिन्न अनुभव, आधुनिक समाज की समस्याओं का ज्ञान तथा भविष्य की गतिविधियों का अन्दाजा लगाया जा सकता है। शिक्षा के द्वारा विभिन्न सामाजिक व्यवहार तथा अनुभवों को अन्य व्यक्तियों को सिखाया जाता है।

भारतीय समाज में, जो अनिवार्य और ऐतिहासिक रूप से जातीय आधार पर संरचित है, जहां सामाजिक असमानताएं प्राथमिक तौर पर जातीय आधार पर बनती और नए सिरे से पनपती रहती हैं वहां आर्थिक साधनों, सामाजिक हैसियत, राजनीतिक भागीदारी और शैक्षिक अवसरों के संदर्भ में कुछ जातियां विशेषाधिकार प्राप्त हैं और कुछ नहीं हैं। अनुसूचित जातियों जैसी जातियां, जो विशेषाधिकारों से वंचित हैं, वे परंपरागत पेशेवर वर्गीकरण के सबसे निचले पायदान पर हैं और उन्हें विशेषकर ग्रामीण समाज में आमतौर पर समाज की स्थानिक एवं सामाजिक सीमाओं से भी दूर रखा जाता है। समाज के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं शैक्षिक क्षेर्तों में इन वर्गों की भागीदारी भी असमान रही है।

थोराट के सर्वेक्षण से पता चलता है कि अनु0 जाति के पुरुष और महिलाओं में सर्वाधिक साक्षरता दर 70 प्रतिशत केरल के बाद त्रिपुरा, महाराष्ट्र, गुजरात और हिमांचल प्रदेश में है, जबकि उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान में साक्षरता पिरामिड के यह

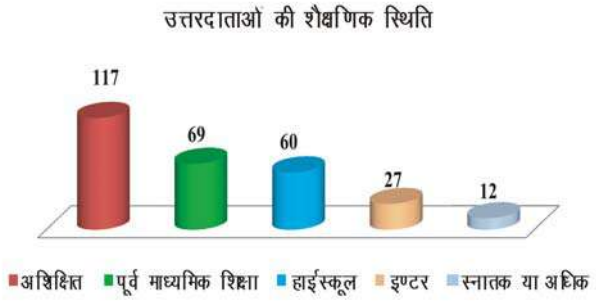
नीचले स्तर पर है। अनु0 जाति के छात्रों का बहुमत प्राथमिक कक्षाओं के बाद शिक्षा समाप्त कर देता है।

वर्तमान अध्ययन में उत्तरदाताओं के शैक्षणिक स्तर को सारणी संख्या 3.6 में ज्ञात किया गया है।

सारणी संख्या- 1.5

उत्तरदाताओं की शैक्षणिक स्थिति

शिक्षा का स्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
अशिक्षित	117	41.0
पूर्व माध्यमिक शिक्षा	69	24.2
हाईस्कूल	60	21.1
इण्टर	27	9.5
स्नातक या अधिक	12	4.2
योग	285	100.0



अध्ययन में उत्तरदाताओं से उनके शैक्षणिक स्थिति का विवरण लिया गया। प्राप्त आंकड़ों से ज्ञात हुआ कि 41.0 प्रतिशत उत्तरदाता अशिक्षित हैं। 24.2 प्रतिशत की शिक्षा पूर्व माध्यमिक स्तर तक है अर्थात् ये हाईस्कूल से नीचे स्तर तक शिक्षा प्राप्त किये हैं। 21.1 प्रतिशत हाईस्कूल पास हैं। 9.5 प्रतिशत इण्टर तथा 4.2 प्रतिशत स्नातक या इससे अधिक शिक्षा प्राप्त किये हैं।

अत: आंकड़ों से स्पष्ट है कि 41.0 प्रतिशत उत्तरदाता अशिक्षित हैं। शेष सभी 59 प्रतिशत साक्षर हैं। स्नातक या इससे अधिक शिक्षा प्राप्त न्यूनतम 4.2 प्रतिशत उत्तरदाता है। अत: यह कहा जा सकता है कि लोहिया ग्रामों के 59 प्रतिशत दलित शिक्षित तो हैं लेकिन अभी भी 41 प्रतिशत दलित अशिक्षित हैं।

व्यवसाय-

व्यक्ति की आर्थिक स्थिति का निर्धारक व्यवसाय है। व्यवसाय द्वारा व्यक्ति न केवल अपने और अपने परिवार का भरण-पोषण करता हैं, अपितु व्यावसायिक स्थिति से उसके जीवन स्तर, जीवन मूल्य और जीवन शैली का भी निर्धारण होता है। व्यक्ति की आर्थिक स्थिति उसे उन वस्तुओं, सेवाओं को प्राप्त करने के योग्य बनाती हैं जो उच्च सामाजिक मूल्य की प्रतीक मानी जाती है। क्रय शक्ति का निर्धारण व्यक्ति की व्यावसायिक और आर्थिक स्थिति के माध्यम से होता है। ग्रामीण विकास की स्थिति के विश्लेषण में व्यवसाय ज्यादा महत्वपूर्ण हैं। अध्ययन में उत्तरदाताओं से उनकी व्यावसायिक स्थिति को जानने का प्रयास किया गया है।

सारणी संख्या-1.6

उत्तरदाताओं के व्यवसाय की स्थिति

व्यवसाय	आवृत्ति	प्रतिशत
कृषि	96	33.7
नौकरी	39	13.6
व्यवसाय	09	3.2
मजदूरी	132	46.3
पशुपालन	6	2.1
अन्य	3	1.1
योग	285	100.0

उत्तरदाता जिन व्यवसायों में संलग्न हैं ? इस सम्बन्ध में प्राप्त आंकड़ों से ज्ञात होता है कि 33.7 प्रतिशत उत्तरदाता कृषि कार्य करते हैं, 13.6 प्रतिशत नौकरी करते हैं, 3.2 प्रतिशत कोई न कोई व्यवसाय करते हैं, 46.3 प्रतिशत मजदूरी करते हैं, 2.1 प्रतिशत पशुपालन करते है तथा 1.1 प्रतिशत उत्तरदाता अन्य कार्यों में लगे हुए हैं।

अत: संकलित आँकड़ों के आधार पर कहा जा सकता है कि लोहिया ग्राम की अधिकतम आबादी 46.3 का मुख्य पेशा मजदूरी है तथा 33.7 प्रतिशत का कृषि कार्य है। न्यूनतम आबादी पशुपालन (2.1 प्रतिशत) तथा अन्य कार्यों (1.1 प्रतिशत) में संलग्न हैं।

मासिक आय-

आय व्यक्ति के सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति का एक महत्वपूर्ण निर्धारक तत्व है। इसके आधार पर परिवार की सामाजिक-आर्थिक प्रस्थिति तथा आवश्यकता पूर्ति की प्रवृत्ति का विवरण ज्ञात किया जा सकता है। आय के माध्यम से ही व्यक्ति सेवाओं का उपभोग कर सकता है। आय के उच्चता एवं निम्नता के द्वारा ही व्यक्ति के सामर्थ का ही ज्ञान नहीं होता बल्कि

इसके माध्यम से यह भी ज्ञात होता है कि व्यक्ति किस प्रकार का जीवन स्तर व्यतीत कर रहा है। वर्तमान अध्ययन में उत्तरदाताओं से उनकी मासिक आय को जानने का प्रयास किया गया है, जो इस प्रकार है-

सारणी संख्या- 1.7

उत्तरदाताओं की मासिक आय

आय (रूपयों में)	आवृत्ति	प्रतिशत
5000 या कम	62	21.7
5001 से 10,000	113	31.939.6
10,001 से 15000	84	29.5
15,001 या इससे ऊपर	26	9.2
योग	285	100.0

सारणी संख्या-1.7 के आँकड़े स्पष्ट करते हैं कि 21.7 प्रतिशत उत्तरदाताओं की मासिक आय 5000 रूपये या इससे कम है, जबकि 39.6 प्रतिशत उत्तरदाताओं की मासिक आय 5001 से 10000 है तथा 29.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं की मासिक आय 10001 से 15000 है, और 9.2 प्रतिशत उत्तरदाताओं की मासिक आय 15001 से ऊपर है।

अत: प्राप्त आँकड़ों के आधार पर कहा जा सकता है कि लोहिया ग्राम की अधिकतम आबादी 53.5 प्रतिशत की मासिक आय 10000 या 10000 से कम है। कुल प्रतिदर्श का मात्र 8 प्रतिशत उत्तरदाता की मासिक आय 20001 या उससे अधिक है जो कि समष्टि की अधिकतम आय को दर्शाता है।

निष्कर्ष

आंकड़ों के अवलोकन से पता चलता है कि सबसे अधिक 36.5 प्रतिशत उत्तरदाता 36 वर्ष से 45 वर्ष की आयु के हैं तथा 32.6 प्रतिशत 35 वर्ष या उससे कम आयु के तथा 1.8 प्रतिशत 66 वर्ष या उससे अधिक आयु के हैं। लगभग सभी उत्तरदाता हिन्दू धर्मावलम्बी हैं। लैंगिक विभाजन के आंकड़ों से निष्कर्ष निकलता है कि 84.4 प्रतिशत उत्तरदाता पुरुष हैं और 11.6 प्रतिशत महिला हैं। जातीय स्थित से सम्बन्धित तथ्य स्पष्ट करते हैं कि निदर्श में 80.7 प्रतिशत उत्तरदाता चमार हैं तथा 4.5 प्रतिशत खटीक एवं कन्नौजिया, पासी, डोम, क्रमश: 4.5 प्रतिशत 2.8 प्रतिशत हैं। अनुसूचित, जनजाति में 1 प्रतिशत गोंड़ 4.6 प्रतिशत मुसहर हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि ज्यादातर उत्तरदाता 80.7 प्रतिशत चमार हैं। उत्तरदाताओं के वैवाहिक स्थित के आंकड़ो से ज्ञात होता है कि 94.7 प्रतिशत उत्तरदाता विवाहित और 4.2 प्रतिशत अविवाहित हैं। 1.1 प्रतिशत विधवा/विधुर हैं। उत्तरदाताओं में 54.7 प्रतिशत का परिवार एकल है और 41 प्रतिशत उत्तरदाता का परिवार संयुक्त है तथा 4.2 प्रतिशत का परिवार विस्तारित है। अत: अध्ययन निदर्श में सम्मिलित उत्तरदाताओं में ज्यादातर के परिवार एकल हैं। अध्ययन में 41.0 प्रतिशत उत्तरदाता अशिक्षित हैं। शेष सभी साक्षर हैं। 21.1 प्रतिशत हाईस्कूल तथा 24.2 पूर्व माध्यमिक शिक्षा प्राप्त है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि लोहिया ग्राम के 59 प्रतिशत दलित शिक्षित तो हैं लेकिन अभी भी 41 प्रतिशत दलित अशिक्षित हैं। स्नातक या इससे अधिक शिक्षित 4.2 प्रतिशत हैं।

संकलित आंकडों से स्पष्ट होता है कि लोहिया ग्राम की अधिकतम आबादी 46.3 प्रतिशत का मुख्य पेशा मजदूरी है तथा 28.4 प्रतिशत का कृषि कार्य है और न्यूनतम आबादी पशु-पालन 2.1 प्रतिशत तथा अन्य कार्यों में 1.1 प्रतिशत उत्तरदाता संलग्न हैं। पिता के व्यवसाय के बारे में आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि लोहिया ग्राम क अधिकतम आबादी 50.5 प्रतिशत के पिता अथवा संरक्षकों का मुख्य व्यवसाय मजदूरी और 36.5 प्रतिशत का कृषि कार्य है। उत्तरदाताओं के मासिक आय सम्बन्धी आंकडों से पता चलता है कि अधिकांश 39.6 प्रतिशत उत्तरदाताओं की मासिक आय 5001 से 10001 रूपयें के बीच है और 29.5 प्रतिषत की 10001 से 15000 के बीच, 21.7 प्रतिशत की 5000 या इससे कम है। 15000 रूपयें से उपर मासिक आय वालें 9.2 प्रतिशत उत्तरदाता हैं। परिवार की मासिक आय के सम्बध मे ज्ञात हुआ कि सर्वाधित 64.2 प्रतिशत उत्तरदाताओं की पारिवारिक मासिक आय 10001 से 20000 तक है जबकि 28.4 प्रतिशत की 10000 रूपये से कम है। आंकड़ों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि लोहिया ग्राम घोषित होने और अनेक विकास कार्यक्रमों के बावजूद 67.4 प्रतिशत उत्तरदाता अपनी आमदनी को परिवार के निर्वहन हेतु पर्याप्त नहीं समझते हैं जबकि 32.6 प्रतिशत आमदनी को पर्याप्त मानते हैं।

उत्तरदाताओं से यह भी जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया गया कि जब परिवारिक आमदनी पर्याप्त नहीं रहती है तब आवश्यकता पूर्ति के लिए वे क्या करते हैं? इस सम्बन्ध में प्राप्त तथ्यों से निष्कर्ष निकलता है कि आवश्यकता पूर्ति के लिए 18.6 प्रतिशत उत्तरदाता अतिरिक्त मजदूरी करते हैं। 19.6 प्रतिशत घर के बच्चों को काम पर लगाते हैं तथा 25.7 प्रतिशत छोटे-मोटे उद्योग धन्धों पर कार्य करते हैं जबकि 32.6 प्रतिशत उत्तरदाता आवश्यकता पूर्ति के लिए अपनी आमदनी किसी अन्य कार्य को

करके करते हैं। अध्ययन में सम्मिलित 34.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं के पास कृषि योग्य भूमि है जबकि 65.7 उत्तरदाताओं के पास कृषि योग्य भूमि नहीं है। अत: आंकड़ों से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि ज्यादातर उत्तरदाताओं के पास कृषि योग्य भूमि नहीं है।

संदर्भ-सूची

- A.R. Desai and S.D. Pillai. (1970). *Slums and Urbanization,* Bombay : Popular Prakashan, p. 48.
- Andre Beteille : *"Caste Class and Power",* California University Press, Mumbai, 1959, p. 30-31.
- B. Malinowski : *"Magic Science and Religion and Other Essays",* Oxford University Press, New York, 1960, p. 24.
- के0पी0 सिंह: तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में दलित आन्दोलन, सम्पादित द्वारा एस0एम0 माइकेल-आधुनिक भारत में दलित, सेज, 2015, पृ0 152.
- E.B. Tylor : *"Primitive Culture",* John Mirray, London, 1913.
- रिचर्ड पायस: अनुसूचित जातियां, रोजगार एवं सामाजिक गतिशीलता, सम्पादित द्वारा एस0एम0 माइकेल, आधुनिक भारत में दलित, सेज प्रकाशन, 2015.
- पी0जी0 जोगदण्ड: आरक्षण नीति एवं दलित सशक्तिकरण, सम्पादित द्वारा एस0एम0 माइकेल, आधुनिक भारत में दलित, सेज, 2015.
- Iravati Karue : *"Kinship Organization in India"*, Asia Publishing House Pune, 1935, p. 10.
- K.M. Kapadia : *Marriage and Family in India,* Oxford University Press, Bombey, 1966, p. 104.
- Karl Marx : *A Contributio to the Gitic of Political Economy,* Translated No. -1, Street Chicago, Chai's kher, 1904.
- सुखदेव घोराट: भारत में दलित, सेज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, पृ0 96.
- M. Tumine and S. Arnolds : *States Perspective and Class Structure In Puertorico*, American Sociological Review, August, 1958, p. 470.
- M.N. Srinivas : *Cost in Modern India and Other Essayes,* Asia Publishing House, Bombey, 1960.
- R.M. MacIver and Charles H. Page : *Society : An Introductory Analysis,* MacMillan India Ltd., New Delhi, 1985, p. 23.
- Ralf lipton : *Cuttaral Background of Personality,* NewYork, Applentan Century Crafts, London, 1945.
- S.K. Goel : *The Study of Scheduled Caste of College in Eastern U.P. Research Project,* Sponsored by India Council of Social Science Research, New Delhi, 1973-74 Deptt. of Sociology, B.H.U., Varanasi.
- S.N. Agrawala : *Socio Economic and Demographic Characteristics of the Rural Migrants and Nomigrants,* Journal of Institution of Economic Research, Vol. III, No. 2, p.1, 1968.
- T.B. Bottomore : *Sociology*, Unitage Book, New York, 1972, p. 283.
- Talcott Parsons : *The Structure of Social Action,* Macgraw. Hill, New York, 1952.
- V.R. Clork : *Educating the Expert Society,* Chandler, Sen Franciso, 1962, p. 48.

ISSN 2278 - 0327

वामनावतार की यथार्थता

डॉ. सुनीति आर्या
असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
कन्या गुरुकुल परिसर, देहरादून

इस वामनावतार की चर्चा श्रीमद्भागवत महापुराण[1] रामायण के बालकाण्ड[2] मत्स्यपुराण[3] वामनपुराण[4] हरिवंशपुराण[5] विष्णुपुराण[6] महाभारत के नलोपाख्यान[7] तथा परवर्ती काल में लिखित उपनिदों यथा गर्भोपनिषद[8] वरदपूर्वतापिनी उपनिषद्[9] शरभोपनिद्[10] गायत्रीरहस्योपनिद्[11] आदि में थोड़े परिवर्तन के साथ आई है। यथा श्रीमद्भागवत् महापुराण में–

एक बार देवराज इन्द्र के साथ दैत्यराज बलि ने समुद्रमन्थन किया। उस मन्थन से जो अमृत निकला उसे देवों ने पी लिया फलत: असुर क्रुद्ध हो गये और देवों के साथ युद्ध करने लगे। इस युद्ध में असुरों की तरफ से दैत्यराज विरोचन का पुत्र बलि सेनापति नियुक्त हुआ तथा देवों की तरफ से इन्द्र प्रधानयोद्धा नियुक्त हुये। इस युद्ध में देवों की जय तथा असुरों की पराजय हुई। फलत: युद्ध में असुरों के सेनापति बलि की मृत्यु हो गई। दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य ने इस बलि को संजीवनी विद्या से पुन: जीवित कर दिया। एक दिन बलि ने भृगुपुत्र शुक्राचार्य की कृपा से देवपुरी अमरावती को अपने पराक्रम से जीत लिया। दु:खी होकर इन्द्र ने अपने सहयोगियों के साथ स्वर्ग का त्याग कर दिया। तब देवमाता अदिति ने समाधि से उठे अपने पति कश्यप मुनि को सारा वृत्तान्त बताया। सारे वृत्तान्त को ठीक–ठीक समझ कर कश्यप मुनि ने सर्वयज्ञ–सर्वव्रत नामक पयोव्रत के अनुष्ठान के लिये देवमाता अदिति को निर्देश दिया। अदिति के अनुष्ठान से प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु ने वर दिया कि मैं तेरे गर्भ से वामन रूप में उत्पन्न होकर तेरे पुत्रों की रक्षा करूंगा। फिर एक बार जब बलि अश्वमेध यज्ञ कर रहा था तब वामन रूप में विष्णु भी वहां पहुचे। वामनरूपी विष्णु का बलि ने अर्घ्यादिक से सम्मान कर गो, गृह, सुवर्ण, आदि रूप में कोई एक वर मांगने को कहा। लेकिन वामन ने बलि से 3 पग धरती वर रूप में मांग ली। यद्यपि शुक्राचार्य ने बलि को वामन का रहस्य भी बताया कि यह विष्णु हैं इसे 3 पग धरती मत दो। लेकिन प्रह्लादपौत्र बलि ने चूंकि वचन दे चुका था अत: वामन को 3 पग भूमि वर रूप में दे दी। भूमि लेकर वामन ने अपने शरीर को बढ़ाना शुरु कर दिया और एक पग से पृथ्वी तथा दूसरे पग से आकाशादि को माप लिया तीसरे पग के लिये कुछ भी शेष न होने पर बलि ने अपना सिर प्रदान किया। इस तरह बलि के पास कुछ भी शेष न रहने पर वामन विष्णु ने बलि को सुतललोक भेज दिया।

ऐसी ही कथा कुछ भिन्नता के साथ अन्यत्र भी उपलब्ध होती है। कठोपनिषद् में पठित 'वामन'[12] शब्द को कालूराम शास्त्री प्रभृति पौराणिक पण्डितों ने वामनावतार का उपलक्षक माना है । जबकि वहां 'वामन' शब्द का अर्थ जीवात्मा है।[13]

ब्राह्मणादि ग्रन्थों में वामनावतार की चर्चा तो नहीं है परन्तु वहां वामन आख्यान प्राप्त होता है क्योंकि '*ऋषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवति आख्यानसंयुक्ता*'[14] अर्थात् ऋषि जन मन्त्रार्थ को सर्वसाधारण को समझाने के लिए आख्यान का आश्रय लेते हैं। क्योंकि कथा के माध्यम से गम्भीर विषय को भी सरल बनाया जा सकता है। अत: इन सभी स्थानों पर कहीं अध्यात्मपरक तो कहीं अधिदेवपरक व्याख्यान समझना चाहिए यथा ऐतरेय ब्राह्मण में इन्द्र अर्थात् परमात्मा लोक रूपात्मकजगत्, चेद नामात्मक जगत् वाक् समस्त जीवों की समस्त इन्द्रियों से ऊपर है यह बताया है। इसे सायण इतिहासपरक ही मानते हैं। इस विषय में ऋषि दयानन्द कहते हैं जो वह रूपकालंकार की कथा अच्छी प्रकार वेद ब्राह्मण और निरुक्त आदि सत्य ग्रन्थों में प्रसिद्ध है। इसको ब्रह्मवैवर्त श्रीमद्भागवतादि मिथ्या ग्रन्थों में भ्रान्ति से बिगाड़ के लिख दिया है तथा ऐसी अन्य कथा भी लिखी है। इन सबको विद्वान् लोग मन से त्याग सत्य कथाओं को कभी न भूलें।[15] वामनावतार की कथा जिस मन्त्र को आधार की गई है, वह है –

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।
समूढमस्य पांसुरे।।

इसका आचार्य यास्क, शाकपूणि, और्णवाभ आदि ने सूर्यपरक

व्याख्यान किया है। यथा –

यास्क– मध्याह्न कालिक सूर्य अपने प्रकाश से पृथ्वी अन्तरिक्ष व द्युलोक तीनों को प्रकाशित करता है।[16]

दुर्ग– सूर्य पृथ्वी में पार्थिव अग्नि रूप में अन्तरिक्ष में विद्युत् रूप में घुलोक में आदित्य रूप में फैला है।[17]

स्कन्दस्वामी– विष्णु = आदित्य उदित रूप में, पूर्ण रूप में, अस्तरूप में नभ के बीच त्रिधा पग रखता है अथवा अग्निरूप में पृथ्वी पर विद्युत् रूप में अन्तरिक्ष में तथा सूर्य रूप में द्युलोक में पग रखता है। [18]

लेकिन वेंकटमाधव महीधर सायणादि ने इसका विपरीतार्थ वामनावतार परक अर्थ किया है जो सर्वथा निरादर के योग्य है। ऋषि दयानन्द कहते हैं– इससे वामनावतार सिद्ध नहीं होता। इसका अर्थ यह है कि परमेश्वर अपने सामर्थ्य से सब जगत् को तीन स्थानों में स्थापन करके धारण करता है न कि यह कि परमेश्वर ने तीन प्रकार से वरण रखा।[19]

ऋषि दयानन्द के आध्यात्मिक व्याख्यान को देख पं. जयदेव विघालंकार लिखते हैं –

विष्णु व्यापक परमेश्वर विचक्रमे = विविध रूप से रचता है और सबको त्रेधा तीन प्रकार से स्थिर करता है।

तीन प्रकार = एक प्रत्यक्ष प्रकाशरहित पृथ्वीमय, दूसरा अदृश्य कारणमय रेणुरूप तीसरा प्रकाशमय सूर्यादि।20 इसी तरह ब्रह्ममुनि परिव्राजक, जगदीश्वरानन्द सरस्वती आदि ने भी इसका आध्यात्मिक व्याख्यान किया है।

निष्कर्ष यह है कि विष्णु वामन से कोई इतिहासादि न लेकर परमात्मा व सूर्य ही समझने चाहिये।

सन्दर्भसूची –

1. श्रीमद्भागवत् स्क.8, अ.6.....23 तक
2. 29 सर्ग
3. म. पु. अ. 53
4. वा. पु.
5. ह. वं. पु. 1,41
6. वि.पु.3, 1,42
7. महाभारत
8. गर्भो. 3
9. वरद. 2,4
10. शरभो. 13
11. गायत्री 407,9
12. कठ. 5,3
13. पौराणिक पोल प्रकाश पृ.26 /एकादशोपनिषद् पृ. 95
14. नि. 10, 10/42
15. ऋ.भा.भू.पृ. 299
16. नि.12अ.2,19ख.
17. दुर्गभाष्य 12अ. 2पा.
18. स्कन्दभाष्य 12अ. 2पा.
19. लेखरामकृत जीवनचरित्र पृ.447
20. ऋग्वेद सं भाषा भाष्य पृ.78

ISSN 2278 - 0327

शासकीय एवं अशासकीय माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन

श्यामल कुमार यादव
शोधार्थी, शिक्षा संकाय
आर.के.डी.एफ. विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

प्रो., (डॉ.) मोहन सिंह पंवार
विभागाध्यक्ष, शिक्षा संकाय
आर.के.डी.एफ. विश्वविद्यालय, भोपाल

प्रस्तुत शोध पत्र में शासकीय एवं अशासकीय माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। न्यादर्श के रूप में 140 विद्यार्थियों (70 शासकीय एवं 70 अशासकीय विद्यालयों के) का चयन साधारण यादृच्छिक न्यादर्श विधि द्वारा करके उन पर डॉ. (श्रीमती) अविनाश ग्रेवाल द्वारा निर्मित 'विज्ञान अभिवृति मापनी' का प्रशासन किया गया। प्राप्त परिणामों के अनुसार शासकीय एवं अशासकीय माध्यमिक विद्यालयों के छात्र/विद्यार्थियों की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर पाया गया जबकि छात्राओं की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं पाया गया। शासकीय/अशासकीय माध्यमिक विद्यालयों के छात्र एवं छात्राओं की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति में लिंग भिन्नता नहीं पाई गयी।

मुख्य शब्द: शासकीय एवं अशासकीय माध्यमिक विद्यालय, विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति

वर्तमान युग विज्ञान का युग कहलाता है क्योंकि विज्ञान ने मानव के जीवन में अनगिनत परिवर्तन कर दिये है। वैज्ञानिक अविष्कारों एवं खोजों ने मानव जीवन को सुगम एवं सरल बना दिया हैं। प्राचीन काल में जिन कार्यो को पूर्ण करने में महीनों लग जाते थे, आज वही कार्य कुछ घंटे में सम्पन्न हो जाते हैं। विज्ञान ने मानव जीवन के सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया है। फिर चाहे वह रहन-सहन हों या दृष्टिकोण सभी में विज्ञान के कारण बहुत अधिक परिवर्तन आये हैं। विज्ञान का प्रभाव कृषि, शिक्षा, यातायात, स्वास्थ्य सेवाएं, आवास जैसे सभी क्षेत्रों पर दृष्टिगोचर होता है। वर्तमान समय में यह आवश्यक है कि सभी व्यक्तियों मे वैज्ञानिक अभिवृत्ति विकसित की जाये, विशेष कर विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करना आवश्यक है, ताकि वह विज्ञान का प्रयोग मानव विकास के लिये कर सकें क्योंकि अगर विज्ञान ने हमें अनेक लाभदायक मशीनें एवं उपकरण दियें हैं तो दूसरी तरफ अनेक विनाशकारी हथियार, परमाणु बम एवं रसायनिक हथियार भी दिये हैं जिनके प्रयोग से मानव जाति का पूर्ण रूप से विनाश किया जा सकता है। विश्व में हो रही वैज्ञानिक प्रगति मानव जाति के लिये जहां एक ओर वरदान साबित हुई है वहीं दूसरी ओर अभिशाप भी हो गई। विज्ञान ने एक तरफ मानवीय सुविधा, आनंद तथा मनोरंजन के लिए सैकड़ों उत्पादन प्रस्तुत किए वहीं पर विज्ञान ने मानव संहार के लिए अणुबम तथा अन्य घातक वस्तुएं तैयार की हैं। ये अणुबम आदि इतने शक्तिशाली हैं कि इनसे समस्त प्राणीजाति कुछ ही क्षणों में काल के मुंह में प्रवेश कर सकती है। मनुष्य ने सुख, समृद्धि तथा शांति पाने के लिये अनेक नये-नये उपकरणों का विकास किया है। यह मानव जाति पर निर्भर करता है कि वह विज्ञान का उपयोग समाज की भलाई के लिये करे या विनाश के लिये। अत: आवश्यक है कि विज्ञान के सदुपयोग पर जोर दिया जाए ताकि मानव जीवन ओर अधिक समृे एवं खुशहाल बन सके। आज के विद्यार्थी ही देश का भविष्य है अत: यदि उनमें विज्ञान के सही उपयोग का विचार विकसित किया जाए तो विश्व में शांति कायम कि जा सकती है। यदि विद्यार्थियों में विज्ञान के प्रति दृष्टिकोण को सही दिशा दी जायेगी तो वह विज्ञान का प्रयोग मानव की भलाई के लिये करेगा एवं समाज को सुखमय बनाने में अपना योगदान दे सकेंगे। अत: इसी कारण से शोधकर्ता ने शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करने का निश्चय इस अनुसंधान कार्य में किया है।

इस संदर्भ में अनेक शोध कार्य किए गये हैं जैसे **शर्मा, मुनीश्वर कुमार** (1990) ने अपने अध्ययन में पाया कि विद्यालय के प्रकार तथा लिंग का विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति पर प्रभाव पाया जाता है। **कर, डी.के.** (1990) ने अपने अध्ययन में पाया कि विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति तथा विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि

के मध्य धनात्मक संबंध पाया गया। **राव** (1990) ने अपने अध्ययन में पाया कि जीवविज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि तथा वैज्ञानिक अभिवृत्ति के मध्य धनात्मक सहसंबंध पाया गया। **शुक्ला, सुचिजा** (1991) ने अपने अध्ययन में पाया कि शासकीय विद्यालय के उच्च एवं निम्न शैक्षणिक उपलब्धि वाले विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं पाया गया। अशासकीय विद्यालय के उच्च एवं निम्न शैक्षणिक उपलब्धि वाले विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति में सार्थक अंतर पाया गया। **सुहाने, रमाशंकर** (2007) ने अपने अध्ययन में पाया कि छात्रों में वैज्ञानिक अभिवृत्ति औसत से अधिक स्तर तथा छात्राओं में औसत स्तर की है तथा छात्र-छात्राओं की वैज्ञानिक अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं पाया गया। **कोण्टा, संध्या एवं सोने जी, भावना** (2008) ने अपने अध्ययन में पाया कि विज्ञान मेले में भाग लेने वाले व भाग न लेने वाले छात्रों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति में सार्थक अंतर पाया गया, विज्ञान मेले में भाग लेने वाले छात्रों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति विज्ञान मेले में भाग न लेने वाले छात्रों से उच्च पाई गयी। **शर्मा, राजकुमारी एवं निगम, भूपेन्द्र** (2009) ने अपने अध्ययन में पाया कि अनुसूचित जनजाति के ग्रामीण छात्र व छात्राओं की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं है।

उद्देश्य:-

1. शासकीय एवं अशासकीय माध्यमिक विद्यालयों के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. शासकीय/अशासकीय माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति में लिंग भिन्नता का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पना:-

1. शासकीय एवं अशासकीय माध्यमिक विद्यालयों के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।
2. शासकीय/अशासकीय माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति में लिंग भिन्नता नहीं पाई जाती है।

न्यादर्श-

इस शोधकार्य में न्यादर्श के चयन के लिए भोपाल जिले में स्थित माध्यमिक विद्यालयों में से 04 विद्यालयों (02 शासकीय एवं 02 अशासकीय) का चयन कर इन विद्यालयों की कक्षा 10वीं में अध्ययनरत 140 विद्यार्थियों (70 शासकीय एवं 70 अशासकीय विद्यालयों के) का चयन साधारण यादृच्छिक विधि द्वारा किया गया।

उपकरण:-

शासकीय एवं अशासकीय माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति का मापन करने के लिए डॉ. (श्रीमती) अविनाश ग्रेवाल द्वारा निर्मित 'विज्ञान अभिवृति मापनी' का उपयोग किया गया है।

शोध विधि:-

इस शोधकार्य में भोपाल जिले में स्थित समस्त माध्यमिक विद्यालयों की सूची प्राप्त की गई तथा इस सूची में से 04 माध्यमिक विद्यालयों (02 शासकीय एवं 02 अशासकीय) का चयन करके, इन विद्यालयों की कक्षा 10वीं में अध्ययनरत 140 विद्यार्थियों 6श ाासकीय विद्यालयों के 70 (35 छात्र एवं 35 छात्राएँ) तथा अशासकीय विद्यालयों के 70 (35 छात्र एवं 35 छात्राएँ)8 का चयन साधारण यादृच्छिक विधि द्वारा किया गया। इन विद्यार्थियों की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति का मापन करने के लिए डॉ. (श्रीमती) अविनाश ग्रेवाल द्वारा निर्मित 'विज्ञान अभिवृति मापनी' का उपयोग किया गया। क्रांतिक अनुपात परीक्षण के द्वारा आंकड़ों का विश्लेषण कर परिणाम प्राप्त किये गये तथा प्राप्त परिणामों के आधार पर निष्कर्ष निकाले गये।

परिणामों का विश्लेषण:-

परिकल्पना क्रमांक 1. शासकीय एवं अशासकीय माध्यमिक विद्यालयों के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

तालिका 01

शासकीय एवं अशासकीय माध्यमिक विद्यालयों के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति संबंधी तुलनात्मक परिणाम

समूह	विद्यालय का प्रकार	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात मान	सार्थकता
छात्र	शासकीय	35	53.26	9.94	2.23	0.05 स्तर पर सार्थक
	अशासकीय	35	47.83	10.36		
छात्रा	शासकीय	35	50.80	9.87	1.95	0.05 स्तर पर असार्थक
	अशासकीय	35	45.89	11.18		
विद्यार्थी	शासकीय	70	52.03	9.98	2.94	0.01 स्तर पर सार्थक
	अशासकीय	70	46.86	10.81		

स्वतंत्रता के अंश - 68, 138

0.05, 0.01 स्तर पर सारणीय मान - 2.00, 1.98, 2.65, 2.61

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट है कि शासकीय एवं अशासकीय माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति के मध्यमान क्रमश: 53.26 एवं 47.83 प्राप्त हुये जिनमें 5.43 का अंतर है, यह अंतर सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक है क्योंकि इसके लिये प्राप्त क्रांतिक अनुपात का मान 2.23 स्वतंत्रता के अंश 68 पर सार्थकता के 0.05 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम सारणीय मान 2.00 की अपेक्षाकृत अधिक है, अर्थात् शासकीय माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति, अशासकीय माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों की अपेक्षा अधिक है। अत: शासकीय एवं अशासकीय माध्यमिक विद्यालयों कें छात्रों की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति पर विद्यालय के प्रकार (शासकीय एवं अशासकीय) का प्रभाव पाया जाता है।

शासकीय एवं अशासकीय माध्यमिक विद्यालयों की छात्राओं की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति के मध्यमान क्रमश: 50.80 एवं 45.89 प्राप्त हुये जिनमें 4.91 का अंतर है, यह अंतर सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक नहीं है क्योंकि इसके लिये प्राप्त क्रांतिक अनुपात का मान 1.95 स्वतंत्रता के अंश 68 पर सार्थकता के 0.05 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम सारणीय मान 2.00 की अपेक्षाकृत कम है, अर्थात् शासकीय माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति, अशासकीय माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों के समान ही है। अत: शासकीय एवं अशासकीय माध्यमिक विद्यालयों की छात्राओं की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति पर विद्यालय के प्रकार (शासकीय एवं अशासकीय) का प्रभाव नहीं पाया जाता है।

शासकीय एवं अशासकीय माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति के मध्यमान क्रमश: 52.03 एवं 46.86 प्राप्त हुये जिनमें 5.17 का अंतर है, यह अंतर सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक है क्योंकि इसके लिये प्राप्त क्रांतिक अनुपात का मान 2.94 स्वतंत्रता के अंश 138 पर सार्थकता के 0.01 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम सारणीय मान 2.61 की अपेक्षाकृत अधिक है, अर्थात् शासकीय माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति, अशासकीय माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक है। अत: शासकीय एवं अशासकीय माध्यमिक विद्यालयों कें विद्यार्थियों की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति पर विद्यालय के प्रकार (शासकीय एवं अशासकीय) का प्रभाव पाया जाता है।

अत: इन परिणामों के आधार पर पूर्व में ली गयी उपरोक्त परिकल्पना 'शासकीय एवं अशासकीय माध्यमिक विद्यालयों के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है', आंशिकत: अस्वीकृत की जाती है।

परिकल्पना क्रमांक 2. शासकीय/अशासकीय माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति में लिंग भिन्नता नहीं पाई जाती है।

तालिका 02

शासकीय/अशासकीय माध्यमिक विद्यालयों विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में शैक्षणिक उपलब्धि में लिंग भिन्नता संबंधी तुलनात्मक परिणाम

विद्यालय का प्रकार	समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात मान	सार्थकता
शासकोय	छात्र	35	53.26	9.94	1.04	0.05 स्तर पर असार्थक
	छात्रा	35	50.80	9.87		
अशासकोय	छात्र	35	47.83	10.36	0.75	0.05 स्तर पर असार्थक
	छात्रा	35	45.89	11.18		

स्वतंत्रता के अंश – 68

0.05 स्तर पर सारणीय मान – 2.00

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट है कि शासकीय माध्यमिक विद्यालयों के छात्र व छात्राओं की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति के मध्यमान क्रमश: 53.26 एवं 50.80 प्राप्त हुये जिनमें 2.46 का अंतर है, यह अंतर सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक नही है क्योंकि इनके लिये प्राप्त क्रांतिक अनुपात का मान 1.04 स्वतंत्रता के अंश 68 पर सार्थकता के 0.05 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम सारणीय मान 2.00 की अपेक्षाकृत कम है, अर्थात् शासकीय माध्यमिक विद्यालयों के छात्र व छात्राओं की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति समान है। अत: शासकीय माध्यमिक विद्यालयों के छात्र व छात्राओं की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति में लिंग भिन्नता नहीं पाई गयी।

अशासकीय माध्यमिक विद्यालयों के छात्र व छात्राओं की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति के मध्यमान क्रमश: 47.83 एवं 45.89 प्राप्त हुये जिनमें 1.94 का अंतर है, यह अंतर सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक नही है क्योंकि इनके लिये प्राप्त क्रांतिक अनुपात का मान 0.75 स्वतंत्रता के अंश 68 पर सार्थकता के 0.05 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम सारणीय मान 2.00 की अपेक्षाकृत कम है, अर्थात् अशासकीय माध्यमिक विद्यालयों के छात्र व छात्राओं की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति समान है। अत: अशासकीय माध्यमिक विद्यालयों के छात्र व छात्राओं की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति में लिंग भिन्नता नहीं पाई गयी।

अत: इन परिणामों के आधार पर पूर्व में ली गयी उपरोक्त परिकल्पना ''शासकीय/अशासकीय माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति में लिंग भिन्नता नहीं पाई जाती है'', स्वीकृत की जाती है।

निष्कर्ष-

1. शासकीय एवं अशासकीय माध्यमिक विद्यालयों के छात्र/विद्यार्थियों की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर पाया गया तथा शासकीय माध्यमिक विद्यालयों के छात्र/विद्यार्थियों की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति, अशासकीय माध्यमिक विद्यालयों के छात्र/विद्यार्थियों की तुलना में उच्च पाई गयी। शासकीय एवं अशासकीय माध्यमिक विद्यालयों की छात्राओं की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।
2. शासकीय/अशासकीय माध्यमिक विद्यालयों के छात्र एवं छात्राओं की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति में लिंग भिन्नता नहीं पाई गयी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

- भटनागर, सुरेश (1995): शिक्षा मनोविज्ञान, सूर्या पब्लिकेशन, मैरठ
- भटनागर, आर.पी. (1995): शिक्षा अनुसंधान - विधि एवं विश्लेषण, ईगल बुक्स इंटरनेशनल, मेरठ
- दुबे, एल.एन. एवं बरोदे, बी.आर. (2009): शिक्षा मनोविज्ञान, आरोही प्रकाशन जबलपुर
- गैरेट, हेनरी ई. (1944): शिक्षा एवं मनोविज्ञान में सांख्यिकी, कल्याणी पब्लिशर, दिल्ली
- लाल, रमन बिहारी (1994): शिक्षा की दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय पद्धति, रस्तोगी पब्लिकेशंस, मेरठ
- माथुर, एस.एस. (1981): शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
- श्रीवास्तव, डी. एन. (नवीन संस्करण) 'सांख्यिकीय एवं मापन', विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
- कोण्टा, संध्या व सोने जी, भावना (2008), विज्ञान मेले में भाग लेने व भाग न लेने वाले छात्रों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति का अध्ययन, Research Hunt, Vol. III, Issue II March - June 2008, Pg. No. 205-209.
- **Kar, D.K. (1990)** *A study of relationship between attitude towards and achievement in general science of class IX students of cuttack city.,* Ph.D. Edu. Utkal Univ., Fifth survey of Education Research (1988-92) Vol. II, Page No. 1245-1246.
- **Rao, Digumarti Bhaskara (1990)** 'A comparative study of scientific attitute. scientific aptitude and achievement in biology at secondary level', *Ph.D. Edu. osmania Univ., Fifth survey of Education Research (1988-92) Vol. II, Page No. 1258-1259*
- **Sharma, Priyanka (2008)** 'A correlation study of scientific attitude and academic achievement of secondary level students, *Eduquest - jounral of research and exploration in teacher education', Vol. 1 April 2008, Page no. 14 - 17*
- **Sharma, Rajkumari and Nigam, Bhupendra (2009)** *A study of Tribal Rural Students attitude in science studying in High Schools of Mandla District (M.P.),* Research Hunt, Vol. IV, Issue II, March - April 2009, Pg. No. 23-25.
- **Sharma, Munishwar Kumar (1990)** *A study of Scientific literacy, attitude towards science and personality traits of students and teachers.*, Ph.D. Edu. Univ. of Rajsthan, Fifth survey of Education Research (1988-92) Vol. II, Page No. 1263.

ISSN 2278 - 0327

मनुष्य जीवन में कर्मयोग का महत्व

डॉ.भावना श्रीवास्तव
योग विज्ञान विभाग
निर्वाण युनिवर्सिटी,जयपुर, राजस्थान

विजयलक्ष्मी
शोध छात्रा, योगविभाग
निर्वाण यूनिवर्सिटी, जयपुर, राजस्थान

शोध सार:- कर्मों का कुशलता से संपादन करना कर्म योग है। कर्म योग मनुष्य को उत्साही, मननशील, चिंतनशील और कर्मठ बनाता है। जो कर्म मनुष्य के जीवन में बंधन और आसक्ति उत्पन्न नहीं करते वह कर्म, कर्म योग कहलाते हैं। संपूर्ण सृष्टि में मनुष्य सभी प्राणियों में सबसे अधिक विवेकशील प्राणी है। उसे अपने जीवन में ऐसे कार्य करने चाहिए जिनसे हर मानव मात्र का भला हो सके। कर्म योग के पालन से मनुष्य में ईश्वर के प्रति समर्पण और भक्ति का प्रादुर्भाव होता है। जिस मनुष्य में ईश्वर के प्रति समर्पण और भक्ति का प्रादुर्भाव होता है उनको वसुंधरा के सभी प्राणियों में ईश्वर के दर्शन होते हैं तो वे अपने सारे कार्य ईश्वर के कार्य समझकर परोपकार के कार्य करने में तत्पर रहते हैं। जो मनुष्य परमार्थ के लिए अन्न, धन व वस्त्र आदि दीन-हीन जनों में बांटता है, तो वह कर्म योग का पालन करता है व्यक्ति अपने जीवन की संपदा को अच्छे कार्यों में वितरित करता है और उसके बदले में वह अपने लिए कुछ भी नहीं चाहता अर्थात् निष्काम कर्म का पालन करता है। निष्काम या निस्वार्थ कर्म प्रवृत्ति के द्वारा किया गया कार्य कर्म योग है। मनुष्य जीवन का उद्देश्य और उसके कर्म की सिद्धि निष्काम कर्म योग में ही फलित होती है। निरंतर *परहित सुखाय सर्वहित सुखाय* की भावना समाज तथा देश में व्याप्त धर्म, संप्रदाय, जातिवाद की गहरी खाई को पाटने के लिए रामबाण उपाय है। संतों मनीषियों, दार्शनिक विद्वानों के विचार और कर्म, संपूर्ण वसुंधरा के प्राणियों के लिए कल्याणकारी होते हैं। जो व्यक्ति अपने विचार और अपने कार्य से किसी भी प्राणी या समाज के टुकड़े को सहारा देता है। तब उसके इस सहयोग या निष्काम कर्म योग से उन लोगों को आत्मिक सुख प्राप्त होता है तो यह कर्म योग है। कर्म योग का पालन करने वाले व्यक्ति को आत्मिक सुख और संतुष्टि प्राप्त होती है। उसके अंत:करण में शांति और आनंद का सागर हिलोरें मारता है। वास्तव में मनुष्य का जीवन श्रेष्ठ कर्म करने के लिए और दूसरों को सहारा देने के लिए ही हुआ है। सभी मनुष्यों को अपने जीवन में कर्म योग का पालन करना चाहिए क्योंकि कर्म योग ही मनुष्य के जीवन का आधार है और तभी मनुष्य जीवन सफल होता है, हर जीवन में शांति आए हर जीवन में खुशहाली आए हर एक मनुष्य का कर्म करने का यही उद्देश्य होना चाहिए। कर्म योगी व्यक्ति का स्वभाव जल की तरह शीतल और निर्मल है वह एक समान तत्पर रह उसका व्यवहार होता है। वह वायु के समान सबके लिए एक समान तत्पर रहता है। उसका व्यवहार बादलों की समान होता है, जिस प्रकार बादल संपूर्ण वसुंधरा के प्राणियों के लिए एक समान वारिस करते हैं उसी प्रकार कर्म योगी का व्यवहार होता है। क्षमा शीलता और विनय शीलता और विनमता कर्म योगी के प्रमुख आभूषण होते हैं। कर्मयोग के पालन से मनुष्य में निहित मानवीय गुण जैसे दया, करुणा, प्रेम, ममता, वात्सल्य, सौहार्द, समानता भाईचारा बढ़ता है। जब हर व्यक्ति कर्म योग का पालन करने लगता है, तो वसुंधरा के हर चप्पे-चप्पे और हर कोने-कोने में अखंड शांति और अखंड एकता का ध्वज लहराने लगेगा। ऐसा होता है कर्म योग का यही कर्म योग का वास्तविक सार है।

परिचय:-सामान्यत: सृष्टि का प्रत्येक प्राणी हर पल कर्म में संलग्न है। कर्म किए बिना वह एक क्षण भी नहीं रह सकता। कर्म एक क्रिया है जो हर क्षण चलती रहती है। हमारा बोलना, सुनना, देखना, खाना, पीना, सोना, सांस लेना, पढ़ना, उठना बैठना, सोचना, सब हर पल कर्म होते रहते हैं। सामान्यतया जो कुछ भी किया जाता है वही कर्म है। जो भी हम करते हैं, चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक सब कर्म की श्रेणी में ही आते हैं। इसके साथ-साथ जब हमारा शरीर बैठा होता है हम बाहरी रूप से शांत होते हैं उसके बाद भी हमारी मौन अवस्था में कर्म की प्रक्रिया चलती होती है, जैसे हमारे हृदय की धड़कन, रक्त का संचरण, नाड़ी का चलना इत्यादि सब कर्म की श्रेणी में आते हैं। हम कर्म का अर्थ इस प्रकार समझ सकते हैं। श्रीमद भगवत गीता में भगवान श्रीकृष्ण

कहते हैं कि–

न हि कश्चिदमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत।

कार्यते यवश: कर्म सर्व: प्रकृतिजैर्गुणै:।। श्रीमद्भागवत.गी.3/3

अर्थात् नि:संदेह कोई भी मनुष्य किसी भी काल में क्षण मात्र भी बिना कर्म किए नहीं रहता क्योंकि सारा मनुष्य समुदाय प्रकृति जनित गुणों द्वारा पर वश हुआ कर्म करने के लिए बाध्य किया जाता है।

कर्म का अर्थ और परिभाषा:-

कर्म शब्द संस्कृत भाषा की 'कृ' धातु से बना है। जिसका अर्थ है क्रिया या व्यापार या व्यवहार करना। जिस कर्म में कर्ता की क्रिया का फल समाहित होता है वह कर्म कहलाता है। ईश्वर में निष्ठा रखते हुए अनासक्त भाव से कर्म करना ही 'कर्म योग' कहलाता है।

■ कर्म योग की परिभाषा:-श्रीमद्भगवत गीता के अनुसार: 'कामना रहित भाव से किए गए सभी कर्म, कर्म योग की श्रेणी में आते हैं।'

■ *योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रिय: सर्व* भूतात्म-*भूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते।।* श्री.गी.5/6।।

■ अर्थात् जिसका मन अपने वश में है, जो जितेंद्रिय एवं विशुद्ध अंत: करण वाला है और संपूर्ण प्राणियों का आत्मा रूप परमात्मा ही जिसका आत्मा है ऐसा कर्म योगी कर्म करता हुआ भी कर्म में लिप्त नहीं होता।

■ गुरु ग्रंथ साहिब के अनुसार:- नि:स्वार्थ भावना से कर्म करना ही सच्चे धर्म का पालन है यही वास्तव में कर्म योग है।

■ इस प्रकार उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है कि नि:स्वार्थ भाव से कर्म अर्थात् अपने कर्मों के साथ कामना रहित भाव को जोड़ देने के उपरांत की अवस्था कर्म योग है। अत: हम अपने कर्मों का संपादन निष्काम भाव से ही करें। जब हम अपने कर्मों का और कर्तव्यों का निर्वहन निरपेक्ष भाव से करते हैं और इस भावना को व्यवहार में लाते हैं तो यह कर्म योग कहलाता।

कर्म योग की व्याख्या:

निस्वार्थ भाव से कर्म को करना कर्मयोग के अन्तर्गत आता

जितात्मन: प्रशांन्तस्य परमात्मा समाहित:।

शीतोष्ण सुख दु:खेषु तथा मानापमानयो:।। श्रीमद्भागवत गीता 7/677

महर्षि अरविंद के अनुसार- 'कर्म योग का पालन करने से ही मनुष्य के आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है।' योग द्वारा मानसिक शांति एवं संतोष प्राप्त होता है। अरविंद की दृष्टि में योग का अर्थ जीवन को त्यागना नहीं है बल्कि दैवी शक्ति पर विश्वास रखते हुए जीवन की समस्याओं एवं चुनौतियों का सरलता से सामना करना है।

उदाहरणार्थ- ओशो का दृष्टिकोण:- इसे गणित सूत्र में समझाते हैं- अगर इसे गणित की भाषा में कहें तो -

■ यह सूत्र सामने आता है- कर्म-कामना = कर्मयोग। जहां कर्म में से कामना को घटा दिया जाता है फिर जो शेष बचता है वही कर्मयोग है।

1- अगर हमें कहीं बुरा दिख रहा है और आप इसको सुधार सकते हैं तो सुधार कर भी यह न सोचें कि यह काम आपका न होकर किसी अन्य का है या यदि यह काम मैं कर दूंगा तो मुझे यश की प्राप्ति होगी।

2- यदि कोई भूखा आकर बैठा है तो चुपचाप उसे आप भोजन करा दे और अपना रास्ता नापे न उससे कोई आशीर्वाद पाने का इंतजार करें।

3- किसी गरीब की यदि कुछ सहायता करने से उसका कुछ भला होता है, तो चुपचाप कर दें।

4- कहीं गंदगी दिखाई दे तो बिना किसी के कहे साफ कर दे और चुपचाप वहां से निकल लें।

■ **दार्शनिक दृष्टि कोण** -विगत समय में अनेक मनीषियों ने अपने दृष्टिकोण से इस को जाना है और अपने अनुभव व विचारों को प्रकट किया है। इन विभूतियों में से स्वामी विवेकानंद हैं। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'कर्मयोग' है। इस पुस्तक में उनके द्वारा किए गए व्याख्यानों का संकलन है। स्वामी विवेकानंद के अनुसार मनुष्य का अंतिम लक्ष्य सुख नहीं ज्ञान है क्योंकि सुख अस्थाई है और ज्ञान मनुष्य को आनन्द देता है। जो उसके जीवन में स्थाई रहता है मनुष्य अज्ञानता वश यह समझ बैठता है कि यही उसका परम लक्ष्य है। हमारा हंसना-रोना, सुख-दुख- हर्ष- विषाद स्तुति-निंदा यह सब हमारे मन के बाहरी तल के अनेक घात- प्रतिघात का परिणाम है हमारा चरित्र इसी का फल है। आगे स्वामी विवेकानंद जीवन कहते हैं,कि 'मन को संयमित करने के रहस्य को जानना योग है' उनके अनुसार कर्म योगी वह है जिसने संयम के रहस्य को जान लिया है उनके अनुसार कर्म योगी वह है जो परम शांति एवं निस्तब्धता के बीच भी तीव्र कर्म का तथा प्रबल कार्य शीलता के मरुस्थल की शांति का अनुभव करते हैं।

श्रीमद्भागवत गीता में कृष्ण ने अर्जुन को कर्मयोग की ही शिक्षा दी है। भगवत गीता में कर्मयोग को श्रेष्ठ माना गया है-

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मां कर्म फल हेतुर्भूमा ते संगोस्तवकर्मणि। श्रीमद्भागवत गीता2/47।।

अर्थात् कर्म करने मात्र में तुम्हारा अधिकार। फल में कभी नहीं। तुम कर्म के परिणाम के प्रति आसक्त मत होना और कर्म को न करने में भी तुम्हारी आसक्ति नहीं होनी चाहिए। भगवान श्री कृष्ण कहते हैं कि-

योगस्थ कुरु कर्माणि संगत्यक्तवा धन्नजय:।
सिद्धयासिद्धयो समो भत्वा समत्व योग उच्चते।। गीता48/211

अर्थात् हे अर्जुन! तू आसक्ति को त्याग कर तथा सिद्धि और असिद्धिमें समान बुद्धि वाला होकर योग में निश्चित हुआ कर्तव्य कर्म को कर समत्व ही योग कहलाता है।

इस प्रकार मनुष्य जीवन का अभिप्राय कर्म करने में है। परंतु कर्मों के परिणाम पर उसका अधिकार नहीं होता। परिणाम की चिंता किए बिना कर्म में लगे रहने वाला व्यक्ति ही कर्म योगी कहलाता है। कर्म योग सिखाता है कि आसक्ति रहित कर्म करो। कर्म के लिए ही कर्म करो। कर्म योगी कर्म का त्याग नहीं करता, वह कर्म फल का त्याग करता है और कर्म जनित दुखों से मुक्त हो जाता है। भगवान् श्री कृष्ण अर्जुन को सीख देते हैं।

2- मन का समत्व भाव ही कर्म योग है- पवित्र गीता में कहा गया है कि मन का समत्व भाव ही योग है। जिसमें मनुष्य का मिलना-बिछुड़ना, लाभ-हानि, सुख-दुख, सफलता, विक्रेता, जय और पराजय को समान रूप से स्वीकार करता है।

सुख-दु:खे समेकृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवपापमवाओप्स्यसि।। श्रीमद्.गीता 2/38।।

अर्थात् श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि सुख-दु:ख, लाभ हानि, और जय-पराजय को समान मानकर तुम युद्ध करने के लिए चेष्टा करो। इस प्रकार युद्ध करने से तुम पाप को प्राप्त नहीं होंगे।

3-कर्म योग से चरित्र का गठन होता है:- (character building is important) अज्ञानी मनुष्य का सारा कार्यकलाप अपने जीवन की भौतिक इच्छाओं की पूर्ति के लिए ही होता है। इसलिए उसको उसी में सुख प्राप्त होता है परंतु यह क्षणिक होता है।

स्वामी विवेकानंद के शब्दों में हमसे जो कर्म होते हैं, वह हमारे ऊपर अपना चिन्ह अंकित करते जाते हैं। अंकित हुए इन्हीं चिन्ह से हमारे संस्कार बनते हैं, और हमारा चरित्र इन्हीं संस्कारों का समुच्चय होता है। हमारे अंदर इच्छा शक्ति का विकास हमारे चरित्र से ही होता है और चरित्र का गठन हमारे कर्मों से होता है। इस प्रकार देखा जाए तो सब कुछ हमारे कर्म पर ही निर्भर करता है। ब्रह्मांड की सारी शक्तियां पहले से ही हमारी हैं, वह हम ही हैं जो अपनी आंखों पर हाथ रख लेते हैं और फिर रोते हैं कि कितना अंधकार हैं। स्वामी विवेकानंद के शब्दों में-'कर्म से ही मनुष्य के विकास का मार्ग प्रशस्त होता है।' सभी तरह के ज्ञान प्रत्येक मनुष्य में अंतर्निहित है। कोई भी ज्ञान बाहर से नहीं आता। जिस प्रकार एक पत्थर के टुकड़े में अग्नि निहित है, उसी प्रकार मनुष्य के मन में ध्यान रहता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मनुष्य जो जानता है जो उसके मन के भीतर है, वह उसी को खोजता है। साधारण मनुष्य के मन में यह प्रकाशित ना होकर ढका रहता है । जिस मनुष्य पर यह आवरण तह दर तह पड़ा है, वह अज्ञानी है। और जिस मनुष्य पर से यह आवरण बिल्कुल हट जाता है वह ज्ञानी हो जाता है। इस विचार के साथ जो व्यक्ति अपने कार्यों का निर्वहन करता है। वह आत्मज्ञान प्राप्त कर लेता है मनुष्य में उसके इन्हीं विचारों के द्वारा आत्मज्ञान जागत हो जाता है।

4-भौतिक सुखों को पाना जीवन का उद्देश्य नहीं है-जीवन क्या है? (meaning of life):-स्वामी विवेकानंद लिखते हैं कि हम अपने भौतिक सखों के लिए विभिन्न तरह की चीजों को भले ही इकट्ठा करते चले जाएं, परंतु इन चीजों से हमें स्थाई सुख प्राप्त नहीं होता है। अगर एक इच्छा पूरी होती है तो हम दूसरी के लिए सोचना शुरु कर देते हैं। हमारा कर्तव्य क्या है, अपने, सगे संबंधियों के लिए, समाज के लिए, अगर इस बात को हम नहीं समझते और अपने कर्तव्यों का निर्वहन निष्ठा पूर्वक नहीं करते और फिर हम वास्तव में कर्म नहीं करते हैं। वास्तविकता तो यह है कि जिन चीजों का उपार्जन हम अपने कर्मों द्वारा करते हैं तो वह हमारा कर्म होता है कर्तव्य का निर्वहन करने के लिए जो कर्म होते हैं उसे पूरा कर लेने पर आत्म संतुष्टि का भाव उत्पन्न होता है। ऐसे कर्म फल लाभ- हानि, यश-अपयश यह सोच से परे होते हैं केवल कर्म के लिए कर्म करने से समस्त कर्तव्यों का निर्वहन करना संभव हो जाता है कर्मयोग हमें यही सिखाता है ऐसा करने वाले कर्म जनित दुखों से मक्त हो जाते हैं।

5-कर्मयोग से मनुष्य को मुक्ति प्राप्त होती है-ज्ञानी जन कहते हैं कि- मनुष्य के बंधन का कारण कर्म है और मुक्ति का कारण है कर्म है। जीवन को सफल बनाने के लिए सही समझ का होना जरूरी है और साथ ही ज्ञान का होना भी अति आवश्यक है। यदि मनुष्य के अंदर उत्तम विचार और ज्ञान का प्रादुर्भाव होता है तो इन्द्रिय संयम दृढ़ होता है। तब मनुष्य में उत्तम चरित्र निर्माण की कल्पना की जाती है। भगवान् श्री कृष्ण गीता में इसी ओर इशारा करते हुए कहते हैं-जिसका मन हर क्षण मुझमें लगा हुआ है अर्थात् जिनकी प्रीति मुझ में होती है। उनका इंद्रिय संयम कभी

टूटता नहीं क्योंकि मन में विकार उत्पन्न ही नहीं होते हैं जब मन अपने ध्येय अर्थात् भक्ति में लगा रहता है, तो उसका इंद्रिय संयम रहता है और ईश्वर की प्रेरणा में रहकर वह सदैव श्रेष्ठ और उत्तम कर्म ही करता है उसके कर्म, कर्म योग की श्रेणी में ही आते हैं।

इस प्रकार कोई भी व्यक्ति अपने आराध्य अथवा अपने इष्ट या भगवान् के भाव में रहकर कोई भी कर्म करता है। तो वह कर्म उत्तम ही होता है। क्योंकि बिना कर्म किए जीवन का अस्तित्व नहीं है। परंतु जो कर्म भगवान् के ध्यान में या आराध्य को साक्षी मानकर किए जाते हैं वह सभी कर्म उत्तम होते हैं। वैसे भी प्रत्येक मनुष्य का धर्म एवं कर्तव्य होता है कि वह कर्म अवश्य करें। मनुष्य के सामान्य से कर्म यदि प्रभु के ध्यान में होकर किए जाते हैं। तो वहीं कर्म योग बन जाता है। परंतु जो कर्म मनुष्य नास्तिक होकर करता है तब उसके श्रेष्ठ कर्म भी उसके अंदर अहंकार को प्रेरित करते हैं। तभी तो भगवान् श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि– '*मन्मना भव मद्भक्तो मयाजी मां नमस्कुरुममेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायण:।*'

अर्थात् तू मुझ में मन वाला हो, मीरा भक्त बन, मेरा पूजन करने वाला हो, मुझको प्रणाम कर। इस प्रकार आत्मा को मुझमें नियुक्त करके मेरे परायण होकर तू मुझको ही प्राप्त होगा।

ईश्वर परायण हो कर जो भी कर्म किए जाते हैं, वे कर्म पूजा बन जाते हैं। उदाहरण के लिए–संत कबीरदास जी का अपने जुलाहे का कार्य निष्ठा पूर्वक करते हुए ईश्वर की प्राप्ति हो जाना कर्म योग है।

गुरु नानक देव का सच्चा सौदा, धन्ना भक्त का खेत, नामदेव का छप्पर छवाने भगवान् किस प्रकार से स्वयं चले आते हैं। संत रैदास के चमड़ा भिगोने वाले कठौती में गंगा जी का प्रकट होना। गुरु गोविंद सिंह का पंच प्यारों के लिए अमृत पिलाना। भक्त नामदेव की निष्काम भक्ति, जनाबाई के साथ भगवान् कृष्ण रोजाना चक्की पिसवाते थे आदि इनका हर कार्य उस परम शक्तिमान परमात्मा के समर्पण रहकर उसकी इच्छा में, देखरेख में संपन्न होने से इनके सारे कार्य कर्मयोग की श्रेणी में आते हैं। परमेश्वर की शरणागति हो जाना उसकी शरणागति रहकर कर्म करना कर्म योग है।

5–देश के बॉर्डर पर लड़ने वाले जवान भी कर्म योगी हैं क्योंकि उनके हृदय में, उनके मन में पूरे राष्ट्र की स्मृति रहती है। उनका कार्य राष्ट्रभक्ति है। उनका उद्देश्य राष्ट्र की सेवा है। राष्ट्र की सुरक्षा है। क्योंकि देश है तो हम सब हैं। इसलिए अपने प्राणों की चिंता किए बिना देश के बॉर्डर पर हिम से भरी घाटियों में तैनात रहने वाले वीर सैनिक सच्चे कर्म योगियों की श्रंखला में अग्रगण्य हैं।

अब थोड़ा सा यहां पर कर्म के विषय में जान लेते हैं अलग अलग शास्त्रों और वेद पुराणों में कर्मों के प्रकार बताए गए हैं जो इस प्रकार हैं, वेद पुराण और शास्त्रों के अनुसार कर्मों के प्रकार इस प्रकार हैं। शास्त्रों के अनुसार कर्म तीन प्रकार के हैं –

1–संचित कर्म–मनुष्य द्वारा अनेक पूर्व जन्म में किए गए कर्म संचित कर्म कहे जाते हैं।

2–प्रारब्ध कर्म–पूर्व जन्म के कर्मों का कुछ अंश जो वर्तमान में भोगना पड़ता है वह प्रारब्ध कर्म कहलाते हैं।

3–क्रियमाण कर्म–जो कर्म वर्तमान में किया जा रहा है क्रियमाण कर्म कहलाता है।

श्रीमद्भगवत गीता के अनुसार कर्मों के प्रकार–

1–कर्म– मनुष्य द्वारा जो कर्म फल की इच्छा सहित आसक्त भाव से किए जाते हैं वे कर्म कहलाते हैं।

2–अकर्म–जो कर्म दूसरों के लिए परोपकार की भावना से किए जाते हैं। जिनके प्रति कोई कामना या आसक्ति नहीं होती है वे अकर्म कहलाते हैं।

3–विकर्म–शास्त्रानुसार जो कर्म निषिद्ध हैं अर्थात् जिनकी की प्रवृत्ति निम्न कोटि के कर्म होते हैं, वे विकर्म कहलाते हैं। इस श्रेणी में किसी दूसरे को दुख या नुकसान पहुंचाने की भावना से किए जाते हैं। उदाहरणार्थ परिवार में रहकर जो व्यक्ति परिवार की सेवा, सुरक्षा और पालन–पोषण करता है यह सब कर्म के अंतर्गत आते हैं और उनके लिए धन उपार्जन या कोई व्यवसाय करता है यह सब उसके रजोगुण युक्त राजस कर्म कहलाते हैं।

यदि कोई व्यक्ति किसी की मदद के लिए दीन दुखियों की सेवा के लिए या गरीबों की सेवा के लिए दान करता है या उनकी मदद करता है और उनसे अपने लिए किसी भी प्रकार की कामना नहीं करता तो यह उसके सारे कर्म निष्काम भाव से युक्त सतोगुणी अथवा सत्कर्म कहलाते हैं। अर्थात् सत्कर्म ही अकर्म कहे जाते हैं तीसरा विकर्म को हम इस प्रकार स्पष्ट कर सकते हैं–चोरी, चुगली झूठ बोलकर, किसी को धोखा देकर, कमाया हुआ धन विकर्म की श्रेणी में आता है। इसके अलावा मानवीय तथा अनैतिक अभद्र कर्म करके जो धनसंपदा एकत्रित की जाती है वह विकर्म की श्रेणी में आते हैं। यह कर्म तमोगण में युक्त होकर किए जाते हैं इसलिए यह तामस कर्म कहलाते हैं।

कर्मयोग की आवश्यकता:–मनुष्य को जीवन में कर्मयोग की महती आवश्यकता है। मनुष्य को अपने जीवन में कर्म योग का

ज्ञान होना ही चाहिए। कर्मयोग के ज्ञान से मनुष्य में निष्काम कर्म योग का प्रादुर्भाव होता है। मनुष्य को निष्काम कर्म करने से मनुष्य के मन से संसार की आसक्ति का बंधन टूटता है। तो मनुष्य को निष्काम कर्म योग का पालन करते हुए। आत्म ज्ञान और मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसलिए कर्म योग का अध्ययन व कर्मयोग का ज्ञान होना अति आवश्यक है।

कर्म में योग का महत्व : कर्म में योग का मिश्रण कर्म योग है। जिस प्रकार से शरीर के अंग अपनी अपनी पुष्टि के लिए कार्य नहीं करते बल्कि पूरे शरीर की पुष्टि अथवा पोषण के लिए कार्य करते हैं उसी तरह इंसान को भी निजी स्वार्थ पूर्ति के लिए कार्य ना करके पूर्ण परमात्मा सब शक्तिमान एवं समस्त सृष्टि के लिए कार्य अथवा कर्म करना ही श्रेष्ठ कर होता है। इस तरह से कर्म योग करने वाला व्यक्ति ही पूर्ण रूप से चरित्रवान् अथवा सिद्ध योगी बन जाता है तथा उसको श्रेष्ठ मानव माना जाता कर्म योगी पुरुष अत्यंत दुर्लभ होते हैं, किंतु वे मानव समाज में विद्यमान अवश्य रहते हैं। यह पुरुष अपनी भक्ति योग और ध्यान योग निस्वार्थ भाव से पूर्ण समाज की पुष्टि के लिए प्रयोग करते हैं। व्यक्ति के कर्म में योग का समावेश हो जाने पर उसके अंदर दिव्य गुणों का विकास होता है जो इस प्रकार है–

अहंकार का त्याग:–सामान्यतया व्यक्ति यह सोचता है कि हर कार्य को वह स्वयं कर रहा है इस कार्य को करने वाला वह स्वयं है उसी के बदौलत सब कुछ हो रहा है उसी के माध्यम से किसी का काम सफल हो रहा है। परंतु जिन व्यक्तियों के कर्म में योग समाहित होता है वह लोग इस अहंकार का पूर्णतया याद कर देते हैं बिहार श्रेष्ठ कर्म को परमात्मा का कर्म समझकर करते हैं उनमें कभी भी अपनी शक्ति और अपनी सामर्थ्य का अहंकार नहीं होता वह सब कुछ करते हुए भी स्वयं को निमित्त मात्र मानते हैं यही सच्चे कर्म योगी का गुण होता है।

समानता, प्रेम औरविनमता:–जिनके कर्मों में योग समाहित होता है वह संपूर्ण सृष्टि को अपना परिवार समझते है। श्लोक :–

अयं निज: परोवेति गणना लघुचेतषाम्।

उदार चरिता नां तु वसुधैव कुटुंबकम्।। यजुर्वेद

अर्थात् यह मेरा है, यह दूसरों का है, ऐसा विचार छोटी बुद्धि वालों के अंदर होता है। उदार और महान् चरित्र वालों के लिए तो पूरी पृथ्वी ही परिवार है। दूसरी ओर भगवान् श्री कृष्ण भयभीत और विषाद से भरे हुए, युद्ध से भागते हुए श्रेष्ठ धनुर्धर अर्जुन को गीता ज्ञान सुना कर कर्म योग की ओर ही प्रेरित करते हैं।

मनुष्य को उन कर्मों से दूर रहना चाहिए, जो हमारी चेतना, हमारे ज्ञान एवं ध्यान में बाधक हैं इसके साथ–साथ जो हमारे उत्तम विचार का प्रादुर्भाव नहीं होने देते ऐसे कर्मों से जहां तक हो बचना ही चाहिए। योग का सही ज्ञान एवं पालन व्यर्थ के कर्म में उलझे रहने से दूर हटाता है। ऐसा ज्ञान मनुष्य को कर्म और योग के मिश्रण से परम आनंद प्रदान करता है। आनन्द तो सागर के समान होता है सागर के समान अपने हृदय और विचारों को बनाता है उतना ही अधिक वह कर्म और योग के मंथन में आनन्द रूपी मक्खन की प्राप्ति होती हैं।

कर्म में योग के महत्व को इस कहानी के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है–एक बार की बात है तीन यात्री एक पेड़ के नीचे विश्राम कर रहे थे। उनके कंधों पर दो झोले थे। एक आगे और एक पीछे तीनों में एक काफी उत्साहित दिखाई दे रहा था। दूसरा थका हुआ था लेकिन तीसरे के चेहरे पर आशा दिखती थी जबकि तीसरे का चेहरा छाया हुआ था तीनों एक दूसरे को बताने लगे कि कौन है ? क्या करते हैं ? कहां जा रहे हैं ? उनके झोलों में क्या है एक ने बताया कि उसने पीछे के झोले में दोस्तों संबंधियों की अच्छाइयां भरी हैं और आगे के झोले में उनकी बुराइयां हैं। दूसरे ने आगे बुराइयां भरी थी और पीछे अच्छाइयां, आगे देख कर मैं बहुत खुश था। तीसरे यात्री का आगे का झूला काफी भरा था और पीछे का हल्का। पूछने पर उसने मुस्कुराते हुए कहा उसने भी अच्छाइयों की थैली आगे और बुराइयों की थैली पीछे लटका रखी है, लेकिन पीछे की थाली में छेद है जिससे बुराइयां टिकती नहीं और गिरती जाती हैं, इससे झूले का वजन हल्का रहता है। यह यात्री सदा उत्साहित दिखता था। जिस यात्री के आगे के झूले में अच्छाइयां और पीछे बुराइयां थी, वह प्रसन्न रहता था, क्योंकि चलते समय उसकी नजर अच्छाइयों पर रहती थी और वह बुराइयों को भूला रहता था। जिसने बुराइयों को आगे रखा था वह दुखी रहता था। कहने का अर्थ यह है कि हमेशा दूसरों की बुराइयां देखेंगे तो खुश नहीं रह सकेंगे हर इंसान में कोई ना कोई अच्छाई होती है उसकी सराहना करें और बुराइयों को भूल जाएं यही बेहतर रिश्तो का सार है। यही एक कर्म योगी करता भी है। यही एक कर्म योगी की पहचान है।

योग का हमारे जीवन में अत्यधिक महत्व है। योग के द्वारा मनुष्य अपने कर्मों को वश में करके प्रभु के बताए रास्ते पर चलकर अपने भविष्य को सुंदर और प्रकाशित बना सकता है। ऐसा कोई अंग नहीं है जहां से योग एवं कर्म को नियंत्रित ना किया जा सके यह एक मनोवैज्ञानिक प्रश्न है। यह सभी जानते हैं

और सभी के मुंह से सुनाना भी जाता है कि- भगवान् सब जगह उपस्थित रहते हैं।

श्रीमद्भगवतगीता छठे अध्याय में कर्म योग पद्धति विशेष रूप से संस्तुति की गई, इसमें भगवान् इस बात पर बल देते हैं कि कर्म योग की प्रक्रिया भक्ति भाव अर्थात् भगवान् के भाव में किया गया कर्म सर्वश्रेष्ठ कर्म होता है। हम संसार में प्रत्येक मनुष्य अपने एवं अपने परिवार के पालन और देखभाल के लिए हो अपने स्वार्थ पूर्ति के लिए हो या समाज के के लिए उपयुक्त कारण हो तो वह कर्म योग होता है क्योंकि वह कर्म ईश्वर में भाव रखकर किया गया है। भगवान् में भाव रखकर कार्य करना प्रत्येक मनुष्य का धर्म एवं कर्तव्य होता है। यही सृष्टि का नियम होता है। खाली बैठकर भगवान् का सिर्फ ध्यान करना क्रियाशीलता या कर्म शीलता नहीं होती है। हमारे पास जो भी ऊर्जा और संसाधन है उन्हें प्रभु का ध्यान करते हुए कर्म में भाग लेना ही उचित कर्म योग होता है। योग और कर्म एक दूसरे के परक हैं दोनों एक दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं। योग में कर्म के माध्यम से ही सर्वोपरि से जड़कर परम आनंद की प्राप्ति हो सकती है। अपने श्रेष्ठ कर्मों के द्वारा जब इंसान सबसे ऊपर के सोपान पर पहुंच जाता है तो उसे परम आनंद की प्राप्ति होती है इस प्रक्रिया में सीढ़ी एक योग का कार्य करता है और सीडी पर चढ़ना कर्म का कार्य होता है। रामचरितमानस में भी कर्म का प्रसंग आया है-गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि-*कर से कर्म करो विधि नाना। मन राखो जहां कृपा निधाना।।* अर्थात् हाथों से अनेक कर्म करते हुए अपने मन को कृपा निधान भगवान् श्री राम के चरणों में रखना चाहिए।

कर्म प्रधान विश्व करि राखा जो जस करहिं सो तस कौन सा है। रामचरितमानस बालकांड।।

सुंदरकांड के प्रसंग में एक ही स्थान पर भगवान् श्री राम कहते हैं कि-*'सन्मुख होड़ जीव मोहि जब हि। जन्म कोटि अघ नासहिं तब हि।।'*

अर्थात् जो व्यक्ति मेरे परायण हो जाता है अर्थात् मुझे समर्पित होकर रहता है मैं तुरंत उसके जन्म जन्मांतर के पाप कर्म नष्ट कर देता हूं। (रामचरितमानस सुंदरकांड प्रसंग) और भी आगे भगवान् श्री राम अपने श्री मुख से कहते हैं कि- *चौपाई -निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।* (रामचरितमानस सुंदरकांड)

अर्थात् प्रभु श्री राम श्री मुख से कहते हैं कि जिस मनुष्य का मन निर्मल और पावन है वही मुझे प्राप्त कर सकता है अर्थात् उसे ही मेरा सानिध्य प्राप्त हो सकता है। मुझे चालाकी छल कपट बिल्कुल भी पसंद नहीं ह कहने का तात्पर्य यह है कि प्रत्येक प्राणी को हर समय अपना मन ईश्वर में लगाए रखना चाहिए और अपने काम करने चाहिए तब यह कर्म में योग जुड़ जाता है और वह कर्म योग में बन जाता है।

क्योंकि परमेश्वर हर क्षण हर कांड में उसी प्रकार से समाया हुआ है जिस प्रकार से उसको में सुगंध और दूध में मक्खन समाया हुआ है इसी को प्रमाणित करते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि, चौपाई-*'सिया राम मय सब जग जानी। करहुं प्रणाम जोरि जुग पानी।।'* अर्थात् संपूर्ण संसार को मैं सिया राम मय जान कर प्रणाम करता हूं।

कर्म योग से ज्ञान की प्राप्ति होती है:-जब मनुष्य के कर्म में योग का मिश्रण होता है, तो उसे ज्ञान की प्राप्त होती है, तो उसमें इतनी चैतन्यता आ जाती है कि उसे हर पल स्मरण रहता है कि मेरे सारे कार्य भगवान् के मार्गदर्शन में हो रहे हैं।

मेरे मन में जितने भी शुभ संकल्प हैं वह सब भगवान की प्रेरणा से ही उत्पन्न हो रहे हैं इस प्रकार मनुष्य को कर्म योग के द्वारा ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। इसी ज्ञान की प्राप्ति के द्वारा उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है। वैसे भी जिस प्रकार से यह संपूर्ण सृष्टि पंच तत्वों से निर्मित है। और उसमें जो चैतन्य तत्व है वह परमात्मा है जिस प्रकार से समूह संपूर्ण ब्रह्मांड समस्त लोक इस दृष्टि में व्याप्त हैं, ठीक उसी प्रकार से मनुष्य का शरीर भी ईश्वर का अंश है इसलिए मनुष्य ईश्वर से एक क्षण भी दूर नहीं है। आवश्यकता यदि है तो उसे चैतन्य रहने की है उसे हर पल इतना आभास रहना चाहिए कि वह ईश्वर का अंश है, इसका आभास उसे तभी रह सकता है, जब वह स्वयं को परमात्मा के समर्पण करके जिए क्योंकि योग समर्पण का ही नाम है। जब मनुष्य परमात्मा के समर्पण होता है तो उसकी सारी क्रियाएं दिव्य बन जाती हैं उसकी वाणी, उसके कर्म, उसके विचार और उसकी भावनाएं तथा उसका व्यापक प्रेम संसार के समस्त प्राणियों के लिए समान रूप से बरसता है। तो वास्तविक कर्म में योग और योगमय कर्म इसी का नाम है।

कर्म योग का उद्देश्य:-कर्म योग के उद्देश्य को हम निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट कर सकते हैं-

1-कर्म करना मनुष्य का स्वभाव है इसलिए उसे कर्म चेतन और विवेकशील होकर करने की ओर प्रेरित करना है।

2-अपने कर्मों को करने की प्रेरणा दी जाती है जो जनहित और मानवता के उत्थान में सहायक हैं।

3-सब के अंत: करण में सद् प्रेरणा और सद्भाव जागृत हो /यह

कर्म योग का प्रमुख उद्देश्य है।

4-'work is worship' अर्थात्- कर्म ही पूजा है। का सिद्धांत कर्म योग के द्वारा ही पूर्ण होता है।

5-शारीरिक ,मानसिक, आध्यात्मिक और सामाजिक संतुलन कर्म योग के द्वारा ही बनता है।

6-आध्यात्मिक रूप से यदि देखा जाए तो 'धर्म क्षेत्रे, कुरुक्षेत्रे' तो वह कुरुक्षेत्र रूपी शरीर ही धर्म क्षेत्र है। इसकी रणभूमि यही है हम हर रोज दैविक और देहिक संग्राम हमारे विचारों के बीच संग्राम होता है, छोटी मानसिकता से ऊपर उठकर समष्टि रूप में विचार को बढ़ाकर कर्म की ओर प्रेरित करना है।

7-प्रत्येक मनुष्य यह जान जाए की उसका जन्म संसार में सुंदर और श्रेष्ठ कर्म करने के लिए हुआ है।

निष्कर्ष :-इस सृष्टि में हर प्राणी का जन्म कर्म करने के लिए ही हुआ है। यह संपूर्ण वसुंधरा कर्मभूमि है। यहां जो भी जन्म लेता है, वह अपनी जाति, धर्म और वर्ण के अनुसार जीवन पर्यन्त कर्म ही करता रहता है। मनुष्य को अपने कर्म करते हुए अपने बुद्धि विवेक के अनुसार वही कर्म करने चाहिए जो समाज और संसार के सभी प्राणियों के लिए लाभकारी हों और कल्याणकारी हों।

संदर्भ सूची -

1- श्रीमद्भागवत गीता-महर्षि वेदव्यास जी कृत
2- श्रीरामचरितमानस-गोस्वामी तुलसीदास जी कृत
3- कर्म योग शोध पत्र-डॉ योगेश कुमार शर्मा, (2015)
4- भक्तमाल-संकलनकर्ता श्री गंगा दास जी
5- योग दर्शन-महर्षि पतंजलि कृत
6- यजुर्वेद-महर्षि वेदव्यास कृत

ISSN 2278 - 0327

अष्टांग योग क्या जीवन की हर समस्या का समाधान है?

सुनील कुमार
सहायक प्राध्यापक
चौधरी बंसी लाल विश्वविद्यालय, भिवानी

डॉ. मनोज टाक
सह - आचार्य
श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़

सारांश: -

महर्षि पतंजलि द्वारा प्रतिपादित अष्टांगयोग योग का पथ है यह कोई संप्रदाय नहीं है। यह जीवन जीने की एक पद्धति है। आज के समय को देखें तो माना जीवन जीने की पद्धति को भूल गया है। जिसे बहुत सारी समस्याएं मानव के सामने आके खड़ी हो गई हैं। कोई व्यक्ति स्वस्थ नहीं है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन स्वास्थ्य की परिभाषा देता है -

''हम उसे स्वस्थ व्यक्ति कहते हैं जो शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और अध्यात्मिक रूप से स्वस्थ होता है।'

क्या इन बताए गए सभी आयामों पर आज का मानव खरा उतरता है? नहीं उतरता तो जीवन की हर समस्या का समाधान कैसे है? ये जो समस्याएं हम देख रहे हैं। ये पहले भी थी तो इन समस्याओं के समाधान के लिए महर्षि पतंजलि ने योग सूत्र लिखा जिसमें अष्टांग योग का मार्ग बताया। जिसके आठ अंग हैं:- (1) यम, (2) नियम, (3) आसन, (4) प्राणायाम, (5) प्रत्याहार, (6) धारणा, (7) ध्यान, (8) समाधि। पहले पांच अंग बहिरंग कहलाते हैं और अंतिम तीन अन्तरंग कहलाते है। क्या ये आठों अंग मिलकर वर्तमान समस्याओं का समाधान निकालने में सक्षम है? आइए देखते हैं -

मुख्य शब्द:- अष्टांग योग, ध्यान, समाधि, महर्षि पतंजलि।

1. यम:- 'यम' अष्टांग योग का पहला अंग है। यम के साधने से व्यवहारिक आचरण की शुद्धि होती है। उसके पांच यम है -

'अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमा:'[1]

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।

(1) अहिंसा:- अहिंसा का अर्थ है मन, वचन, कर्म से किसी भी प्राणी को, कभी भी किसी भी प्रकार से दु:ख ना देना।

अब आप सोचकर देखे जब इस प्रकार की भावना हर व्यक्ति के अन्दर आ जाए तो क्रोध उत्पन्न होने से जो विकार पैदा होते हैं वो ना हो और बहुत सारी मानसिक समस्याओं से छुटकारा मिल जाए। किसी का किसी के प्रति द्वेष ना हो और समाज में सौहार्द्र की भावना बढ़े।

(2) सत्य:-मन, वचन, कर्म में एकरूपता ही सत्य है अर्थात् इन्द्रियों और मन ने जैसा देखा वैसा ही दूसरों के समक्ष प्रकट करना सत्य है।

सत्य का अनुसरण करने से व्यक्ति तनाव मुक्त हो जाता है। उसका डर खत्म हो जाता है, उसे याद नहीं रखना पड़ता कि पहले क्या कहा था। मानसिक तनाव की स्थिति पैदा नहीं होती। इससे समाज में एक दूसरे के प्रति विश्वास बढ़ता है। 'जैसे कथनी वैसी करनी' का अनुसरण होने से आज के समय पैदा हुए बहुत सी समस्याओं का अन्त होता है।

(3) अस्तेय:- मन, वचन और कर्म से दूसरे के द्रव्य की इच्छा न करना अस्तेय है। अर्थात् चोरी न करना।

किसी कार्य को करने का विचार पहले मन में पैदा होता है फिर क्रियान्वित होता है। मन में ही अस्तेय का विचार नहीं आयेगा तो क्रियान्वित भी नहीं होगा। इससे आत्मा अपने यथार्थ रूप में रहेगी अर्थात् पवित्र रहेगी। इससे हमारा आध्यात्मिक मार्ग प्रशस्त होगा जिससे हम परमात्मा से, प्रकृति से जुड़ेगें और हमें अकेलापन महसूस नहीं है। व्यक्ति आत्महत्या तभी करता है जब उसें संसार में कोई अपना नहीं लगता।

(4) ब्रह्मचर्य:- ब्रह्मचर्य का अर्थ है ब्रह्म जैसा आचरण अर्थात् मन, वचन और कर्म से अपनी इन्द्रियों पर नियंत्रण रखना।

आज के युवा का शारीरिक व मानसिक पतन का कारण है अपनी इन्द्रियों पर नियंत्रण न रखना।

ब्रह्मचर्य का पालन करने से युवा शारीरिक रूप से सुदृढ़ और आत्मसंयमी बनता है। जिससे वह अपनी पूरी ताकत अपने लक्ष्य पर केन्द्रित कर अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है। वर्तमान समय में लक्ष्य न प्राप्त करने के कारण जो मानसिक परेशानी आती है उससे वह बच जाता है।

(5) अपरिग्रह:- आवश्यकता से अधिक धन का संग्रह न करना अपरिग्रह कहलाता है।

आज के समय समाज में जो धन को लेकर विषमताएं देखते हैं उसके पिछे परिग्रह ही कारण है। परिग्रह के कारण व्यक्ति ज्यादा से ज्यादा धन इकट्ठा करता चला जाता है। जिससे उसकी मानसिक परेशानियां भी उतनी ही बढ़ती चली जाती है। व्यक्ति भारी होता चला जाता है और उसका आत्मोत्थान भी रूक जाता है। अपरिग्रह से व्यक्ति तनाव मुक्त, हल्का व शांत रहता है। धन के सही बटवारे से समाज की बहुत सारी समस्याओं का अंत हो जाता है।

2. नियमः- नियम से व्यक्ति के आन्तरिक अनुशासन व व्यवहार की शुद्धि होती है।

'*शौच सन्तोष तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।*' [2]

शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान ये पाँच नियम हैं।

(1) शौचः- शौच का अर्थ है- शुद्धि, पवित्रता, सफाई। यह दो प्रकार की होती है।

(क) बाह्य शुद्धि - शरीर और वाणी की शुद्धि।

(ख) आन्तरिक शुद्धि - मानसिक शुद्धि।

शौच से शारीरिक एवं मानसिक दोनों ही प्रकार के रोग दूर होते हैं। जहां जल से शरीर की शुद्धि होती है अच्छे वचन कहने से, मंत्रोच्चारण से वाणी की शुद्धि होती है जो स्वयं और सुनने वाले को हर्षित करती है। मन में जब राग-द्वेष, ईर्ष्या, मद-मान आदि नहीं रहने से मानसिक शुद्धि होगी और व्यक्ति बहुत सी मानसिक परेशानियों से दूर रहेगा।

(2) सन्तोष :-

अपनी तरफ से पूरा प्रयास करने के पश्चात् जो फल हमें प्राप्त हो उसी में संतुष्ट बने रहना सन्तोष है।

सन्तुष्ट व्यक्ति सबसे समृद्ध और सुखी होता है। असन्तुष्ट व्यक्ति से बड़ा कोई दरिद्र नहीं होता। संतोष से उत्तम सुख की प्राप्ति होती है। व्यक्ति कर्महीनता में सन्तोषी ना बने कर्मफल के प्रति सन्तोषी है। ऐसा करने से दोबारा कर्म करने की प्रेरणा मिलती है और व्यर्थ की चिंता दूर होती है। व्यक्ति सुखी बनता है।

(3) तपः- *'तपो द्वन्दो सहनम्'*

सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, हर्ष-शोक, मान-अपमान आदि द्वन्दों को सहना तप है।

तप से व्यक्ति में स्थिरता आती है। वह जीवन की हर परिस्थिति चाहे सुख हो दुःख हो, मान मिलें अपमान मिले, जय हो - पराजय हो लाभ हो- हानि हो आदि को सहन कर लेता है। सहन करने से उसका शरीर और मन इतना दृढ़ हो जाता है वह जीवन के कठिन समय में चट्टान की तरह खड़ा रहकर उसका सामना करता है। समस्याएं उससे टकराकर चली जाती है।

(4) स्वाध्यायः- वेद, उपनिषद, गीता, ब्रह्मसूत्र आदि मोक्षदायी शास्त्रों का अध्ययन तथा ओकार का जप स्वाध्याय कहलाता है।

स्वयं का अध्ययन करना, स्वयं का जानना, आप कौन हो ? कहाँ से आए हो ? कहाँ जाना है ? जीवन का लक्ष्य क्या है ? इन सब पर चिंतन करना, आत्मा को जानना स्वाध्याय है। स्वाध्याय से व्यक्ति व्यर्थ के कार्य करने से बच जाता है व्यर्थ के कार्य नहीं करेगा तो व्यर्थ की समस्याएं भी नहीं आएगा और जीवन आनंदमय हो जाएगा।

(अ) ईश्वर प्रणिधानः- अपने सभी कर्मों को ईश्वर को समर्पित कर देना ईश्वर प्राणिधान है। अर्थात् मन, वचन और कर्म से ईश्वर के प्रति समर्पण।

भगवान् श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि हे अर्जुन! तू जो भी होम करता है, जो खाता है, जो दान करता है, तप करता है वह सब तू मुझे अर्पित कर दे। इस प्रकार जब भगवान् को अर्पित कर देते है तो हमारे अहंकार का नाश हो जाता है, हमारे सारे दुःख दूर हो जाते है। और योग के परम लक्ष्य समाधि तक पहुँचते है।

3. आसनः- *'स्थिर सुखमासनम्'* [3]

अर्थात् स्थिर और सुखपूर्वक बैठना आसन कहलाता है।

'ततो द्वन्द्वानभिधातः' 2/48

अर्थात् आसन के सिद्ध होने पर किसी भी प्रकार के द्वन्द्व (सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, लाभ-हानि, जय-पराजय आदि) का आघात नहीं लगता। द्वन्दों का आघात नहीं लगने से व्यक्ति में स्थिरता आती है उसके मन की चंचलता रूक जाती है। योग का लक्ष्य भी यही है मन को शांत करना मन के शांत होने से अनावश्यक समस्याएं भी शांत हो जाती है।

4. प्राणायामः- *'तस्मिन् सति श्वास प्रश्वासयोर्गति विच्छेदः प्राणायामः।'* [4]

आसन के सिद्ध हो जाने पर श्वास-प्रश्वास की स्वाभाविक गति को रोकना प्राणायाम है।

शरीर के अन्दर नाड़ियों की शुद्धि प्राणायाम द्वारा ही संभव है। श्वास को एक निश्चित अनुपात में लेने, रोकने व छोड़ने से हमारी नाड़िया शुद्ध होती है। एक तरह से प्राणायाम शरीर में झाड़ू लगाने का कार्य करता है। जिससे विवेक ज्ञान के ऊपर अज्ञान रूपी पड़ा हुआ आवरण क्षीण हो जाता है। आत्मा के ऊपर अज्ञान रूपी पड़ी हुई धूल साफ हो जाती है और ऐसा होने से व्यक्ति सत्य बोलना, चोरी न करना, हिंसा न करना, सही व गलत में भेद करना आदि को जान पाता है। ऐसा ज्ञान होने पर जीवन सरल हो जाता है और समस्याएं खत्म हो जाती है।

5. प्रत्याहार:- *स्वविषया सम्प्रयोगे चितस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहार:।* [5]

इन्द्रियों का अपने विषयों के साथ संबंध न होने पर चित्त के स्वरूप का अनुकरण करना प्रत्याहार है।

इन्द्रियों जब बाहरी विषयों को छोड़कर अन्तर्मुखी होती है तो मन की चंचलता रूक जाती है। जिससे व्यक्ति बाहरी विषय वासनों से दूर हो जाता है उसकी इच्छाएं सीमित हो जाती है, इच्छाएं सीमित होने से मानसिक तनाव हटता है और बहुत सारी मनोकायिक बीमारियां दूर होती है।

6. धारणा:- *' देश बन्ध चित्तस्य धारणा'*। [6]

अर्थात् चित्त को किसी स्थान विशेष में बाँधना ' धारणा ' है।

इन्द्रियां जब अन्तर्मुखी हो जाती है तो उन्हें किसी स्थान पर रोकना धारणा है । ऐसा करने से एकाग्रता बढ़ती है। मानसिक तनाव कम होता है।

7. ध्यान:- *'' तत्र प्रत्ययेकतानता ध्यानम् "*। [7]

अर्थात् धारणा में चित् को जिस स्थान पर ठहराया था वही पर निर्बाध गति से बहना ध्यान है।

निर्बाध गति से जहां एक स्थान पर चित्त रूका रहे वह ध्यान है। ध्यान एक श्रेष्ठ विधि है जहां मन शांत होकर अपने स्वरूप में ठहर जाता है। ध्यान जब होना शुरू हो जाता है तो सुख की प्राप्ति होती है शारीरिक एवं मानसिक व्याधियां दूर हो जाती है और आध्यात्मिक उन्नति का रास्ता मिल जाता है।

8. समाधि- *' तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूप शून्यमिव समाधि:'* [8]

अर्थात् चित जिसका ध्यान कर रहा हो, उसका स्वरूप शून्य होकर जब केवल ध्येय मात्र की प्रतीति होती है वह स्थिति समाधी है।

समाधि की स्थिति में ध्याता, ध्येय और ध्यान एक हो जाते हैं। ध्याता को खुद का भान नहीं होता और वह ध्येय में विलीन हो जाता है। जैसे पानी में डाला हुआ नमक, पानी का ही रूप ले लेता है दोनों में कोई भेद नहीं होता। यही स्थिति समाधि की होती है। जो योगी का परम लक्ष्य है। जो अन्नत आनंद की स्थिति है।

निष्कर्ष-

अष्टांग योग के ये आठ अंग:-यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि जीवन की हर प्रकार की समस्या का समाधान निकालने में सक्षम है। समस्या चाहे शारीरिक हो, मानसिक हो, सामाजिक हो, आध्यात्मिक हो या फिर बौद्धिक हो। यम, नियम का पालन करने से समाज का परिदृश्य अच्छा होता है। सौहार्द की भावना बढ़ती है, नियम समाज के साथ-साथ शरीर और मन पर कार्य करके इसको पवित्र बनता है। आसन के अभ्यास से शरीर दृढ़ बनता है और द्वन्द्वों को सहन करने की शक्ति मिलती है। प्राणायाम मन में आए विकारों को दूर करता है। शरीर की अन्दर से शुद्धि करता है और आध्यात्म का रास्ता खोलता है। प्रत्याहार से इन्द्रियों पर नियंत्रण होता है जिससे मन की चंचलता रूकती है। धारणा और ध्यान मन को एकाग्र करते हैं। जहाँ मन शांत होने से आत्मा के यथार्थ रूप के दर्शन होते हैं। समाधि योग का अन्तिम लक्ष्य जहाँ हर योगी पहुंचना चाहता है। अष्टांग योग जीवन के हर पहलु पर काम करता है और जीवन की हर समस्या का समाधान निकालने में सक्षम है।

अष्टांग योग का पालन किए बिना कोई योगी नहीं हो सकता। अष्टांग योग योगियों के लिए ही नहीं है, संसार के संपूर्ण व्यक्तियों को व संपूर्ण मानव जाति को इसका पालन करना चाहिए। अष्टांग योग धर्म, अध्यात्म, मानवता एवं विज्ञान की प्रत्येक कसौटी पर खरा उतरता है। इस संसार के समस्त विवादों को यदि किसी उपाय से रोका जा सकता है, सुख और शांति लाई जा सकती है। तो वह अष्टांग योग के द्वारा ही संभव है। अष्टांग योग जीवन के सामान्य व्यवहार से लेकर ध्यान और समाधि अथवा अध्यात्म की अनंत ऊंचाइयों तक पहुंचा जा सकता है। इससे जीवन की हर समस्या का समाधान निकाला जा सकता है।

सदर्भ-

1. योग दर्शन - 2/30
2. योग दर्शन - 2/32
3. योग दर्शन - 2/46
4. योग दर्शन - 2/49
5. योग दर्शन - 2/54
6. योग दर्शन - 3/1
7. योग दर्शन - 3/2
8. योग दर्शन - 3/3

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. पातंजल योग प्रदीप, गीता प्रेस गोरखपुर।
2. योग परिचय, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय।
3. पांतजल योग दर्शन, लेखक - डॉ0 विजयपाल शास्त्री।
4. ज्ञानामृत, आचार्य बालकृष्ण।
5. योग परिचय एवं परंपरा, डॉ प्रवीण कुमार , डॉ अमृता प्रीतम।
6. आसन प्राणायाम मुद्रा बंद, स्वामी सत्यानंद सरस्वती।
7. योग साधना एवं योग चिकित्सा रहस्य, स्वामी रामदेव।
8. संपूर्ण योग विद्या, राजीव जैन।
9. प्राणायाम रहस्य, स्वामी रामदेव।
10. योग शिक्षा, डॉक्टर तारक नाथ प्रमाणिक।

ISSN 2278 - 0327

महिलाओं के मानसिक स्वास्थ्य पर योगासन, प्राणायाम और ध्यान का परिणाम

डॉ. जिज्ञेश बी. पटेल
एसोसिएट प्रोफेसर
चिल्ड्रन्स युनिवर्सिटी, गांधीनगर

सारांश

अच्छा स्वास्थ्य शारीरिक, मानसिक और सामाजिक स्वास्थ्य का संतुलन है, जिसे उपयुक्त जीवन-शैली द्वारा साधा जा सकता है। स्वस्थ जीवन का मूल है, स्वस्थ मन और स्वस्थ शरीर। इसलिए, शारीरिक, मानसिक और सामाजिक स्वास्थ्य समान रूप से महत्वपूर्ण हैं। आजकल महिलाओं को विभिन्न सामाजिक भूमिकाएँ निभानी पड़ती है। वे अक्सर काम और परिवार की वजह से तनावग्रस्त रहती हैं। प्रत्येक भूमिका की आवश्यकताओं को पूरा करना और उसके साथ-साथ स्वस्थ जीवन-निर्वाह करना आसान नहीं है। महिलाओं को अपने मानसिक स्वास्थ्य के साथ-साथ शारीरिक स्वास्थ्य पर भी ध्यान देना चाहिए ताकि वे अच्छे स्वास्थ्य और खुशहाल जीवन का आनंद ले सकें। शोधकार्य के लिये 30 प्रौढ महिलाओं का चयन किया गया जिनकी आयु 50 वर्ष से अधिक थी। प्रशिक्षण कार्यक्रम शोधकर्ता द्वारा महिलाओं के लिये तैयार किया एवं इसे 30 दिन तक इसी क्रम से कराया गया। प्रशिक्षण कार्यक्रम की समाप्ती के पश्चात तनाव के मापन हेतू एवं चिंता के स्तर के मापन हेतू फिर परीक्षण का उपयोग किया गया।

सूचि शब्दः मानसिक स्वास्थ्य, योगासन, प्राणायाम, ध्यान, महिलाओं

प्रस्तावना

भारत प्राचीन देश है और भारतीय संस्कृति तथा परंपरा प्राचीनतम है। भारतीय संस्कृति में सभी के स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता दिखाई देती है। भारतीय प्राचीन ग्रंथों में स्वास्थ्य को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। रामायण काल में महाभारत काल में बच्चे गुरु-कुल में पढ़ने जाते थे जहाँ गुरु शिष्य को स्वास्थ्य का महत्व बताकर उनके स्वास्थ्य को बनाये रखने की अनेक विधियां उन्हें बताते तथा वे सभी क्रियाओं को उन शिष्यों से करवाते थे। इन क्रियाओं में यौगिक क्रिया भी होती थी।

योग की उत्पत्ति कब हुई है यह निश्चित रूप से कह पाना मुश्किल है। पर सभी मानते है की पतञ्जलि ऋषि द्वारा योग की रचना की गयी है। परंतु श्री याज्ञवल्क्य ने योग के बारे में कहा है कि '*हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः*' योग के वक्ता हिरण्यगर्भ ही है इनसे पुरातन वक्ता और कोई नहीं है। श्री याज्ञवल्क्य ने हिरण्यगर्भ को योग का आदि-वक्ता माना है। इसी प्रकार महाभारत में 12 वे अध्याय में 65 वे श्लोक में भी कहा है

सांख्यस्य वक्ता कपिलः परमर्षिः स उच्यते।
हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः।।

(महाभारत 12, 349, 65)

सांख्य शास्त्री कपिल महर्षि कहते है हिरण्यगर्भः परमपिता परमात्म से ही योग का ज्ञान प्राप्त हुआ है। महर्षि पतञ्जलि के अनुसार पृथ्वी को अपने मस्तक पर आधार देने वाले को शेष नाग कहा जाता है और शेषनाग को ही योग का प्रारम्भ कर्ता माना गया है। प्राचीन काल की ओर देखने से यह पता चलता है कि योग भारतीय जीवन शैली का ही अंग था।

सुखी जीवन का अर्थ हम गलती से यह समझ बैठे है कि भौतिक व यांत्रिक चीजों से मिलने वाला सुख ही जीवन है, विदेशों में सर्व सुख भोग विलास के साधन भरपूर मात्रा में मिल जाते है इसके बावजूद भी विदेशी लोगों को स्वास्थ्य के लिये योग में आत्यंतिक रुची लेते हुए देखा जा सकता है। विदेशी लोग तनाव दूर करने के लिये योग में रुची ले रहे हैं। यह भी देखा गया है कि भारतीय जीवन शैली का एक अंग होने के बावजूद विदेशी लोग ही योग का अत्यधिक लाभ ले रहे है। भला हो उन योग गुरुओं का जिन्होंने पूरे भारत वर्ष में लोगों में योग का प्रचार एवं प्रसार कर योग को पुनर्जीवित किया और आज यह स्थिति उत्पन्न हो गयी है की अनेकों अनेक सामान्य पुरुष और नारी प्रातःकाल

के समय योग करते हुए नजर आते है।

योग का विषय बड़ा ही गहन है। इसे अनुभवी लोग ही जानते है और वे ही भली भांति समझा सकते हैं। अतएव इस विषय में जो कुछ निवेदन किया जाता है वह शास्त्र दृष्टि से युक्तियों द्वारा समझी हुई बात ही लिखी जाती है।

योग की व्याख्या और परिभाषा अलग-अलग योगियों ने अलग-अलग की है। परंतु योग के विषय में पतञ्जलि ऋषि को प्रणाम करते हुये यह श्लोक कहा गया है।

योगेन चित्तस्य पदेन वाचा मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
योऽपाकरोत्तमं प्रवरं मुनिनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि।।

योग से चित की, व्याकरण से वाणी की, आयुर्वेद से शरीर की शुद्धि होती है। इस विद्या को जो महर्षि पतञ्जलि ने हम लोगों तक पहुँचाकर उपकार किया है उसके लिये हम उन्हें प्रणाम करते है। महर्षि पतञ्जलि ने हमारे स्वास्थ्य के लिये योग को सरल भाषा में हम तक पहुंचाया है। योग भारतीय परंपरागत दर्शन शास्त्र है। आज सारे संसार में योग प्रणाली को अलग-अलग उद्देश्यों से अपनाया जा रहा है। पिछले 40-50 वर्षों में योग शास्त्र का काफी प्रचार एवं प्रसार हुआ है। प्राचीन समय में योग को सामान्य आदमी की पहुंच से या समझ से बाहर माना जाता था। गुरुकुल में गुरुओं द्वारा अपने शिष्यों को ही योग ही शिक्षा दी जाती थी। जिसमें उच्च कुल के युवक तथा राजकुमार ही रहते थे। पहले यह सामान्य व्यक्ति की पहुँच से दूर था पर कुछ समय बाद यह सामान्य व्यक्तियों द्वारा सामान्य व्यक्ति के लिये प्रसारित किया गया और सभी लोग इस स्वास्थ्य वर्धक प्रणाली को अपनाने लगे। आज के गतिशील तनावपूर्ण और स्पर्धात्मक जीवन में स्वस्थ और तनाव मुक्त रहने के लिये योग का महत्वपूर्ण योगदान है। अनेकों संशोधनों द्वारा यह भी प्रस्थापित हो चुका है कि योग द्वारा अनेको व्याधियों पर विजय प्राप्त की जाती है। अनेको व्याधियों को कम करने की क्षमता योग और प्राणायाम में है। एक बार प्राणायाम हमें पूर्णरूप से आता जाता है तो हमारा स्वास्थ्य भी प्राणायाम द्वारा अच्छा रहता है परंतु इसके लिये सभी योगासन और प्राणायाम सही ढंग से करने की आवश्यकता होती है। इसके लिये भी हठयोग में कहा जाता है-

प्राणायामेन युक्तेन सर्वरोगक्षयो भवेत् ।
अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वयोग समुद्गमः।।

(ह.यो. प्र उ. 2 श्लोक 16)

इसका अर्थ है अगर हम योग्य और सही ढंग से प्राणायाम करते है तो हमारी सभी व्याधियों का नाश हो सकता है। परंतु वहीं अगर गलत ढंग से प्राणायाम करते है तो वायू के प्रकोप से हमें हानि भी हो सकती है। जागतिक स्वास्थ्य संघटन ने स्वास्थ्य को स्वास्थ्य शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक तंदुरुस्ती बताया गया है।

आयु में वृद्धि के साथ साथ शक्ती में बदलाव आते है और आप अनुभवों द्वारा यह सिखते है की तनाव और अन्य नकारात्मक भावनाओं से कैसे निपटते है। प्रस्तुत अनुसंधान प्रौढ महिलाओं के मानसिक स्वास्थ्य पर योगासन, प्राणायाम और ध्यान का क्या परिणाम होता है, यह देखने के लिये किया गया है।

अनुसंधान विधि

शोधकार्य के लिये 30 प्रौढ महिलाओं का चयन किया गया जिनकी आयु 50 वर्ष से अधिक थी। इन महिलाओं से उनके चिकित्सकों द्वारा प्रमाणपत्र लिया गया था कि वे शारीरिक रूप से तन्दुरुस्त है। इन 30 महिलाओं को कौन-कौनसे आसन प्राणायाम तथा ध्यान करना है यह शोधकर्ता के सहयोगी द्वारा प्रात्यक्षिक करके समझाया गया। प्रदत्त के संकलन के लिये तनाव के परीक्षण तथा चिंता के परीक्षण का उपयोग किया गया। यह परीक्षण महिलाओं का 1 माह का यौगिक प्रशिक्षण शुरू करने से पहले लिया गया था। 1 माह तक सप्ताह में 5 दिनों तक प्रात:काल 7 से 8 बजे तक 1 घंटा प्रशिक्षण दिया जाता था। प्रशिक्षण से पहले महिलाओं को 10 मिनिट तक वार्मिंग अप व्यायाम करने के लिये कहा जाता था। बाद में 5 आसन खडे स्थिति में, 5 बैठकर करने वाले आसन, 5 पीठ के बल लेटकर किए जाने वाले आसन, 5 पेट के बल लेटकर किये जाने वाले आसन दिये जाते थे। योगासनों के बाद शोधन, भनिका, अनुलोप विलोम, बाह्य कुम्भक, उज्जयी, सूर्य भेदी, तथा कपालभाती प्राणायाम के 5-5 चक्र कराये जाते थे। बाद में 10 मिनिट तक ध्यान करने के लिये कहा जाता था।

इस प्रकार प्रशिक्षण कार्यक्रम शोधकर्ता द्वारा महिलाओं के लिये तैयार किया एवं इसे 30 दिन तक इसी क्रम से कराया गया। प्रशिक्षण कार्यक्रम की समाप्ति के पश्चात् तनाव के मापन हेतू एवं चिंता के स्तर के मापन हेतू फिर परीक्षण का उपयोग किया गया।

सांख्यिकीय विश्लेषण तथा निष्कर्ष

तनाव तथा चिंता के स्तर के आकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण किया गया तथा उनकी तालिकायें बनायी गयी। जो निम्न प्रकार से है-

शोधकर्ता ने प्रशिक्षण शुरू करने पूर्व तनाव एवं चिंता के स्तर का परीक्षण किया था और एक माह यौगिक प्रशिक्षण के पश्चात् तनाव और चिंता स्तर का परीक्षण किया और प्राप्त आकडों

से टी टेस्ट द्वारा उनके प्रभाव का विश्लेषण किया जो निम्न तालिका में दर्शाया गया है।

तालिका

यौगिक व्यायाम शुरू करने पूर्व तनाव और चिंता मध्यमान 1 माह के प्रशिक्षण के पश्चात् तनाव एवं चिंता के स्तर का मध्यमान तथा टी टेस्ट

अनु.	चर	प्रशिक्षण पूर्वमध्यमान	मानक विचलन	प्रशिक्षण पश्चात् मध्यमान	मानक विचलन	t-मूल्य	सार्थकता
1	तनाव	27.6	6.23	22.6	2.18	4.27	.01 स्तर पर सार्थक
2	चिंता	31.24	5.23	24.4	2.18	7.59	.01 स्तर पर सार्थक

स्त्रोत

तालिका से यह पता चलता है कि तनाव के लिये t-मूल्य 4.27 है जो तालिका मूल्य से अधिक है। चिंता के t- मूल्य 7.59 है जो सारिणी मूल्य से अधिक है।

निष्कर्ष

इस शोधकार्य से शोधकर्ता ने निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले है।

1. यौगिक क्रियाओं द्वारा प्रौढ महिलाओं के तनाव का स्तर कम किया जा सकता है ($df=28$ $p> 0.01$) इसी प्रकार चिंता का स्तर भी कम किया जा सकता है। ($df=28$ $p> 0.01$)
2. यौगिक क्रियाओं का महिलाओं के मानसिक स्वास्थ्य पर सकारात्मक परिणाम होता है।
3. मानसिक तनाव को यौगिक क्रियाओं द्वारा कम किया जा सकता है।
4. यौगिक क्रियाओं का व्यायाम प्रौढ महिलाओं के लिये लाभदायक है।
5. विद्यार्थीयों में भी पढाई का तनाव रहता है। वह तनाव व चिंता यौंगिक क्रियाओं द्वारा कम की जा सकती है।

संदर्भ-

1. स्वामी दिगंबर जी, हट प्रदीपिका, नई दिल्ली, मॉडेल प्रेस
2. स्वामी कैवल्यानंद, प्राणायाम, लोणावला, कैवल्यधाम
3. स्वामी रामदेव, प्राणायाम रहस्य, हरिद्वार, ऋषि ऑफसेट प्रिंटर्स
4. सिंग, आर.एच., फाऊंडेशन ऑफ कॉन्टेम्पररी योगा, दिल्ली, चौखंबा संस्कृत प्रतिष्ठान
5. आचार्य श्री आदित्ययोगी, योग विज्ञान, मुंबई, मुसले रिप्रो ग्राफिक्स प्रभादेवी

ISSN 2278 - 0327

विदिशा जिले के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र में स्थित पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों व शिक्षिकाओं की नि:शुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरुकता का तुलनात्मक अध्ययन

सत्यम शर्मा
शोधार्थी, शिक्षा संकाय
बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल

डॉ. एन.के. कौशिक
प्राचार्य
महाराणा प्रताप कॉलेज ऑफ एजुकेशन, रातीबड़ भोपाल

प्रस्तुत शोध में विदिशा जिले के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों व शिक्षिकाओं की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जगरूकता का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन हेतु न्यादर्श के रूप में विदिशा जिले के पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत कुल 140 शिक्षकों 6 शहरी क्षेत्र के 70 (35 शिक्षक व 35 शिक्षिकाएं) तथा ग्रामीण क्षेत्र के 70 (35 शिक्षक व 35 शिक्षिकाएं) 8 का चयन साधारण यादृच्छिक विधि से किया गया तथा इन चयनित शिक्षकों व शिक्षिकाओं पर स्वनिर्मित 'निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता मापनी' का प्रशासन किया गया। इस अध्ययन से प्राप्त परिणामों के अनुसार विदिशा जिले के शिक्षकों/शिक्षिकाओं/समग्र शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता पर कार्यक्षेत्र (शहरी एवं ग्रामीण) का सार्थक प्रभाव पाया गया तथा शहरी क्षेत्र के शिक्षकों/शिक्षिकाओं/समग्र शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता, ग्रामीण क्षेत्र के शिक्षकों/शिक्षिकाओं/समग्र शिक्षकों से बेहतर पाई गयी। विदिशा जिले के शहरी क्षेत्र में स्थित पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों व शिक्षिकाओं की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता में सार्थक अंतर नहीं पाया गया जबकि ग्रामीण क्षेत्र में स्थित पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों व शिक्षिकाओं की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता में सार्थक अंतर पाया गया तथा ग्रामीण क्षेत्र के शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता, शिक्षिकाओं से बेहतर पाई गयी।

मुख्य बिन्दु – विदिशा जिला, पूर्व माध्यमिक विद्यालय, शहरी व ग्रामीण क्षेत्र, निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009), जागरूकता

आज के आधुनिक तकनीकी संसार में शिक्षा काफी महत्व रखती है, शिक्षा को किसी भी राष्ट्र के विकास में मील के पत्थर के रूप में देखा जा रहा है। जिस तरह शरीर को स्वस्थ्य रखने के लिये खेल, योग एवं व्यायाम आवश्यक है उसी प्रकार मस्तिष्क को स्वस्थ्य रखने एवं उसके विकास के लिये शिक्षा आवश्यक है क्योंकि शिक्षा न सिर्फ किताबी ज्ञान है बल्कि यह व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करती है। इससे विद्यार्थी में जीवन की विभिन्न परेशानियों को समझने एवं उन्हें सुलझाने की समझ विकसित होती है। किसी भी राष्ट्र के विकास में प्रारंभिक शिक्षा मील के पत्थर के समान है। राष्ट्र के विकास में प्रारंभिक शिक्षा के महत्व को ध्यान में रखते हुये शिक्षा के सार्वभौमिकरण के प्रयास किये जा रहे हैं।

मानवाधिकारों के सार्वभौमिक घोषणा पत्र के अनुच्छेद-26 में शिक्षा को एक मौलिक अधिकार के रूप में मानते हुये लिखा गया है। 'सभी को शिक्षा का अधिकार है। शिक्षा कम से कम प्रारंभिक स्तर पर नि:शुल्क होनी चाहिए तथा प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिए।'

भारत में सर्वप्रथम दादा भाई नौरोजी ने 1882 में हंटर आयोग के सामने अनिवार्य एवं नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा का प्रस्ताव रखा। इसके बाद इब्राहिम रहमतुल्ला, सर चिमनलाल, बडौदा नरेश सयाजीराव गायकवाड़ एवं गोपालकृष्ण गोखले द्वारा

प्राथमिक शिक्षा को नि:शुल्क एवं अनिवार्य करने के लिये कई प्रयास किये गये। वर्ष 1918 में विट्ठल भाई पटेल के प्रयासों से बम्बई सरकार ने एक प्रस्ताव पारित करके बम्बई म्युनिसिपल कारपोरेशन के अंतर्गत संचालित सभी विद्यालयों में प्रारंभिक शिक्षा अनिवार्य कर दी, यह भारत में अनिवार्य एवं नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा की दिशा में किया गया सर्वप्रथम प्रयास था। स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय संविधान निर्माता डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने भविष्य हेतु भारतीय संविधान के अनुच्छेद-45 अंतर्गत यह प्रावधान किया कि 'संविधान के लागू होने के 10 वर्षो के भीतर राज्य सभी बच्चों को नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराने की दशा में प्रयास करेगा जब तक कि वे 14 वर्ष के न हो जाये' यह नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के लिये स्वतंत्रता के पश्चात् किया गया प्रथम संवैधानिक प्रयास था। शिक्षा के महत्व को देखते हुये इसे भारतीय संविधान की सातवी सूची में रखा गया।

वर्ष 2002 में अनुच्छेद-21 में किए गये 86 वें संशोधन द्वारा भारत में नि:शुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा को मौलिक अधिकार बना दिया गया। इसी क्रम में वर्ष 2006 में शिक्षा का अधिकार अधिनियम का मॉडल विधेयक प्रस्तुत किया गया जो अगस्त 2009 में संशोधन के अनेक चरणों द्वारा अस्तित्व में आकर 1 अप्रैल 2010 से लागू हो गया है। जिसमें बच्चों की अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा हेतु संवैधानिक उपबंध किये गये हैं।

हमारे भावी कर्णधारों को बेहतर एवं अनिवार्य शिक्षा देने की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुये ही निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) पारित किया गया है। इस अधिनियम के क्रियान्वयन का मुख्य दायित्व विद्यालय के शिक्षकों पर ही है। अत: शिक्षकों की इस अधिनियम के क्रियांवयन में सर्वाधिक भूमिका होने के कारण ही इस अधिनियम के के प्रति उनकी जागरूकता का अध्ययन करना आवश्यक है, इसी कारण से इस शोध समस्या का चुनाव किया गया है।

निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) को लागू हुये अभी लगभग 10 वर्ष ही हुये हैं फिर भी इस पर पूर्व में कुछ शोध कार्य हुये हैं जैसे **घुमान, गौरवजीत सिंह** (2011) ने स्नातक स्तर के विद्यार्थियों की बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरुकता पर किये अपने अध्ययन के निष्कर्षस्वरूप देखा कि स्नातक स्तर के लगभग 37 प्रतिशत विद्यार्थियों में इसके प्रति औसत स्तर की जागरूकता पाई गयी एवं अधिकतर विद्यार्थियों (63 प्रतिशत) में इसके प्रति निम्न स्तर की जागरूकता पाई गयी। **नित्या, एस.** (2013) ने कोयंबटूर जिले के बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों में शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता पर किये गये अपने शोध के निष्कर्ष उपरांत देखा कि कोयंबटूर जिले के बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों में इस अधिनियम के प्रति औसत स्तर की जागरूकता पाई गयी। **हुरमाडे, राघवेन्द्र कुमार एवं सिंह, नवनीत** (2014) ने 'शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति पालकों की जागरूकता का अध्ययन', विषय पर किये गये अपने अध्ययन के उपरांत निष्कर्षस्वरूप यह देखा कि निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर वाले अभिभावकों को इस अधिनियम की बिलकुल भी जानकारी नहीं थी परंतु मध्यम सामाजिक-आर्थिक स्तर वाले अभिभावकों को इस अधिनियम के विषय में थोड़ी-बहुत जानकारी थी। **आर., विनोद कुमार** (2015) ने माध्यमिक स्तर के भावी शिक्षकों की शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता पर किये गये अपने अध्ययन के उपरांत निष्कर्षस्वरूप यह देखा कि भावी शिक्षकों की इस अधिनियम के प्रति जागरूकता में महाविद्यालय के स्वरूप के आधार पर अंतर पाया गया तथा अशासकीय महाविद्यालयों के विद्यार्थियों में इसके प्रति सर्वाधिक, शासकीय अनुदान प्राप्त महाविद्यालयों के विद्यार्थियों में इसके प्रति सबसे कम तथा शासकीय महाविद्यालयों के विद्यार्थियों में इसके प्रति मध्यम स्तर की जागरूकता पाई गयी। **गंगवार, सुमित** (2017) द्वारा ''बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों में शिक्षा का अधिकार अधिनियम - 2009 के प्रति जागरूकता का अध्ययन'', विषय पर किये गये अपने अध्ययन के उपरांत निष्कर्षस्वरूप यह देखा कि ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र के बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों की इस अधिनियम के प्रति जागरूकता में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया। बी.एड. प्रशिक्षणार्थी छात्राध्यापिकाओं एवं छात्राध्यापकों की इस अधिनियम के प्रति जागरूकता में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया। **शर्मा, आलोक एवं बाजपेयी, आशीष कुमार** (2021) द्वारा ''पूर्व माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन'', विषय पर किये गये अपने अध्ययन के उपरांत निष्कर्षस्वरूप यह देखा कि पूर्व माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के पुरुष/समग्र शिक्षकों की शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता में सार्थक अंतर पाया गया तथा शासकीय विद्यालयों के पुरुष/समग्र शिक्षकों की शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता, अशासकीय विद्यालयों के पुरुष/समग्र शिक्षकों

की तुलना में अधिक पाई गयी महिला शिक्षकों की शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

अध्ययन के उद्देश्य:-

1. विदिशा जिले के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र में स्थित पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों/ शिक्षिकाओं/समग्र शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता की तुलना करना।
2. विदिशा जिले के शहरी/ग्रामीण क्षेत्र में स्थित पूर्व विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों व शिक्षिकाओं की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता की तुलना करना।

परिकल्पना:-

1. विदिशा जिले के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र में स्थित पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों/ शिक्षिकाओं/समग्र शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।
2. विदिशा जिले के शहरी/ग्रामीण क्षेत्र में स्थित पूर्व विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों व शिक्षिकाओं की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

न्यादर्श-

इस अनुसंधान हेतु न्यादर्श के चयन के लिए विदिशा जिले में स्थित शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के पूर्व माध्यमिक विद्यालयों (मिडिल स्कूल) का चयन करके इन विद्यालयों में कार्यरत 140 शिक्षकों 6 शहरी क्षेत्र के 70 (35 शिक्षक व 35 शिक्षिकाएं) तथा ग्रामीण क्षेत्र के 70 (35 शिक्षक व 35 शिक्षिकाएं)8 का चयन साधारण यादृच्छिक विधि द्वारा किया गया।

उपकरण:-

पूर्व माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता का अध्ययन करने के स्वनिर्मित 'निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता मापनी' का उपयोग किया गया है।

शोध विधि:-

अनुसंधान कार्य हेतु सर्वप्रथम विदिशा जिले के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र में स्थित पूर्व माध्यमिक विद्यालयों (मिडिल स्कूल) का चयन करके इन विद्यालयों में कार्यरत 140 शिक्षकों का चयन साधारण यादृच्छिक विधि द्वारा कर इन चयनित शिक्षकों पर 'निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता मापनी' का प्रशासन किया गया। प्राप्तांकों के आधार पर मॉस्टर शीट तैयार की गई। क्रांतिक अनुपात परीक्षण के द्वारा आंकड़ों का विश्लेषण किया गया।

परिणामों का विश्लेषण:-

परिकल्पना 01:- विदिशा जिले के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र में स्थित पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों/शिक्षिकाओं/ समग्र शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

तालिका 01

विदिशा जिले के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र में स्थित पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता संबंधी तुलनात्मक परिणाम

समूह	कार्यक्षेत्र	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात मान	'पी' मान
शिक्षक	शहरी	35	33.06	2.45	2.31	0.05 स्तर पर सार्थक
	ग्रामीण	35	31.17	4.16		
शिक्षिकाएं	शहरी	35	32.69	3.34	5.14	0.01 स्तर पर सार्थक
	ग्रामीण	35	27.94	4.32		
समग्र शिक्षक	शहरी	70	32.87	2.94	5.13	0.01 स्तर पर सार्थक
	ग्रामीण	70	29.56	4.54		

स्वतंत्रता के अंश 78

0.05, 0.01 स्तर के लिए निर्धारित न्यूनतम मान 1.99, 2.64

स्वतंत्रता के अंश 78

0.05, 0.01 स्तर के लिए निर्धारित न्यूनतम मान 1.97, 2.60

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट है कि विदिशा जिले के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र में स्थित पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों/शिक्षिकाओं/समग्र शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता के लिए प्राप्त क्रांतिक अनुपात के मान क्रमश: 2.31, 5.14, 5.13 स्वतंत्रता के अंश 78, 78, 178 पर सार्थकता के 0.05, 0.01, 0.01 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान 1.99,

2.64, 2.60 की अपेक्षा अधिक हैं।

अत: उपरोक्त परिणामों के आधार पर निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि विदिशा जिले के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र में स्थित पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों/शिक्षिकाओं/समग्र शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता में सार्थक अंतर पाया गया तथा शहरी क्षेत्र के शिक्षकों/शिक्षिकाओं/समग्र शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता, ग्रामीण क्षेत्र के शिक्षकों/शिक्षिकाओं/समग्र शिक्षकों से बेहतर पाई गयी, अर्थात् शिक्षकों/शिक्षिकाओं/समग्र शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता पर कार्यक्षेत्र (शहरी एवं ग्रामीण) का सार्थक प्रभाव पाया गया।

अत: उपरोक्त परिणामों के परिप्रेक्ष्य में पूर्वनिर्धारित परिकल्पना ''विदिशा जिले के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र में स्थित पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों/शिक्षिकाओं/समग्र शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है'' अस्वीकृत की जाती है।

परिकल्पना 02:- विदिशा जिले के शहरी/ग्रामीण क्षेत्र में स्थित पूर्व विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों व शिक्षिकाओं की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

तालिका 02

विदिशा जिले के शहरी/ग्रामीण क्षेत्र में स्थित पूर्व विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों व शिक्षिकाओं की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता संबंधी तुलनात्मक परिणाम

समूह	कार्यक्षेत्र	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात मान	'पी' मान
शहरी	शिक्षक	35	33.06	2.45	0.53	0.05 स्तर पर असार्थक
	शिक्षिकाएं	35	32.69	3.34		
ग्रामीण	शिक्षक	35	31.17	4.16	3.18	0.01 स्तर पर सार्थक
	शिक्षिकाएं	35	27.94	4.32		

स्वतंत्रता के अंश - 78

0.05, 0.01 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान - 1.99, 2.64

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट है कि विदिशा जिले के शहरी क्षेत्र में स्थित पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों व शिक्षिकाओं की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता के लिए प्राप्त क्रांतिक अनुपात का मान 0.53 स्वतंत्रता के अंश 78 पर सार्थकता के 0.05 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान 1.99 की अपेक्षा कम है जबकि ग्रामीण क्षेत्र में स्थित पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों व शिक्षिकाओं की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता के लिए प्राप्त क्रांतिक अनुपात का मान 3.18 स्वतंत्रता के अंश 78 पर सार्थकता के 0.01 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान 2.64 की अपेक्षा अधिक है।

अत: उपरोक्त परिणामों के आधार पर निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि विदिशा जिले के शहरी क्षेत्र में स्थित पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों व शिक्षिकाओं की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता में सार्थक अंतर नहीं पाया गया जबकि ग्रामीण क्षेत्र में स्थित पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों व शिक्षिकाओं की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता में सार्थक अंतर पाया गया तथा ग्रामीण क्षेत्र के शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता, शिक्षिकाओं से बेहतर पाई गयी, अर्थात् विदिशा जिले के शहरी क्षेत्र के शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता पर लिंग का सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया परंतु ग्रामीण क्षेत्र के शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता पर लिंग का सार्थक प्रभाव पाया गया।

अत: उपरोक्त परिणामों के परिप्रेक्ष्य में पूर्वनिर्धारित परिकल्पना ''विदिशा जिले के शहरी/ग्रामीण क्षेत्र में स्थित पूर्व विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों व शिक्षिकाओं की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है'', आंशिकत: अस्वीकृत की जाती है।

निष्कर्ष-

1. विदिशा जिले के शिक्षकों/शिक्षिकाओं/समग्र शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता पर कार्यक्षेत्र (शहरी एवं ग्रामीण) का सार्थक

प्रभाव पाया गया तथा शहरी क्षेत्र के शिक्षकों/शिक्षिकाओं/समग्र शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता, ग्रामीण क्षेत्र के शिक्षकों/शिक्षिकाओं/ समग्र शिक्षकों से बेहतर पाई गयी।

2. विदिशा जिले के शहरी क्षेत्र के शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता पर लिंग का सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया अर्थात् शहरी क्षेत्र में स्थित पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों व शिक्षिकाओं की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता में सार्थक अंतर नहीं पाया गया परंतु ग्रामीण क्षेत्र के शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता पर लिंग का सार्थक प्रभाव पाया गया अर्थात् ग्रामीण क्षेत्र में स्थित पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों व शिक्षिकाओं की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता में सार्थक अंतर पाया गया तथा ग्रामीण क्षेत्र के शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता, शिक्षिकाओं से बेहतर पाई गयी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. भाई, योगेन्द्रजीत (1974): शैक्षिक एवं विद्यालय प्रशासन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
2. भटनागर, सुरेश (1997): आधुनिक भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ
3. चौबे, डॉ. सरयू प्रसाद (1958): जनतन्त्रात्मक विद्यालय संगठन, भारत पब्लिकेशन आगरा
4. गुप्ता, मधु (2000): शिक्षा संस्कार एवं उपलब्धि, क्लासिक पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली
5. जैन, बसन्तलाल, विजय सिंह (2004): भारत का विकास, भारत भारती प्रकाशन मेरठ
6. कपिल, डॉ. एच.के. (1995): अनुसंधान विधियां, हरप्रसाद भार्गव पुस्तक प्रकाशक कचहरी घाट, आगरा, अष्टम संस्करण
7. माथुर, एस.एस.: शिक्षक तथा माध्यमिक शिक्षा , विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, नवीनतम संस्करण
8. प्रसाद, केशव: विद्यालय व्यवस्था, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, द्वितीय संस्करण
9. सुखिया, पी.एस. (1997): विद्यालय प्रशासन संगठन एवं स्वास्थ्य शिक्षा, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा - 2 (पेज 243 से 244)
10. शर्मा, आर.ए. (2001): विद्यालय संगठन तथा शिक्षा प्रशासन, आर. लाल बुक डिपो मेरठ, पृष्ठ 350
11. Asthana, Bipin (2007) : **Measurement and Evaluation in Psychology and Education,** Vinod Pushtak Mandir, Agra, First Edition
12. Chandra Soti Shivendra and Sharma Rajendra K. (2004) : **Research in Education,** Atlantic Publishers and Distributors , New Delhi, First Edition.

Related Research :

1. गंगवार, सुमित (2017) ''बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों में शिक्षा का अधिकार अधिनियम - 2009 के प्रति जागरूकता का अध्ययन'',*Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies, Vol 4/35, July-August 2017, Page No. 6275-6281*
2. हुरमाडे, राघवेन्द्र कुमार एवं सिंह, नवनीत (2014) ''शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति पालकों की जागरूकता का अध्ययन'', शब्द-ब्रह्म (भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका), वॉल्यूम 2, इश्यु 9, जुलाई 2014, पेज नम्बर 50-53
3. शर्मा, आलोक एवं बाजपेयी, आशीष कुमार (2021) ''पूर्व माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन'', ज्योतिर्वेद प्रस्थानम्, वॉल्युम 10(2), मई-जून 2021, पेज नम्बर 93-98
4. **Ghumaan, Gouravjeet Singh (2011)** "Awareness as a Challenge in Implementing RTE : A Study on Graduate Adults", *htpps:// www.research gate.net/publication/ 215720462*
5. **R., Vinod Kumar (2015)** "Awareness of RTE Act, 2009 among the Prospective Teachers at Secondary Level", *Paripex - Indian Journal of Research, Vol 4, Issue 8, August 2015, Page No. 296-298*
6. **Nithya, S. (2013)** "A Study on the Awareness of Right To Education Act (2009) among the B. Ed. Student Teachers in Coimbatore District", *Shanlax International Journal of Education, Vol 2, No. 1, December 2013, Page No. 47-57*

ISSN 2278 - 0327

प्रतापविजय नाटक एवं खण्डकाव्य की राष्ट्रभावनापरक सूक्तियों की समीक्षा

डॉ. मुरली धर पालीवाल
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग,
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय,उदयपुर, राजस्थान

भारतीय काव्यपरम्परा सर्वदा यह गुणगान करती है कि कविवाणी सर्वोत्कृष्ट होती है। काव्यप्रकाश का मंगलाचरण, '*कवय: क्रान्तदर्शिन:*' एवं '*कविर्मनीषी परिभू: स्वयम्भू:*' जैसी सूक्तियाँ इस तथ्य की पोषिका हैं। काव्यशास्त्रीय परम्परा में तो कवि को काव्यसंसार का प्रजापति कहा गया है।[1] कवि को उत्कृष्ट काव्यरचना करने के लिए एक श्रेष्ठ कथा एवं नायक आदि की आवश्यकता होती है। यह बात अनेक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में प्रतिपादित की गई है। रामायण और महाभारत उपजीव्य ग्रन्थों के रूप में विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं लेकिन कवि कल्पना रचित या इतिहास प्रसिद्ध कथानक को आधार बनाकर भी काव्यप्रणयन में प्रवृत्त हो सकता है। कवियों की यह काव्यप्रणयन वृत्ति वीरता के सर्वोच्च प्रतिमान मेदपाटाधीश्वर महाराणा प्रताप की ओर भी सहज आकृष्ट होती है। वीररस में सिद्धहस्त कवियों के लिए महाराणा प्रताप एक उत्कृष्ट नायक है। संस्कृतसाहित्य में महाराणाप्रतापाश्रित काव्यों की एक दीर्घ शृंखला है। महाकाव्य, खण्डकाव्य एवं नाटक आदि अनेक विधाओं में उपनिबद्ध महाराणा प्रताप का जीवनचरित्र अद्यावधि प्रासंगिक एवं प्रेरणादायी है। उनका यह चरित्र शूरता, वीरता एवं स्वतन्त्रता की भावना का आदर्शरूप है।

प्रस्तुत शोधपत्र में महाराणाप्रतापाश्रित 'प्रतापविजय' नाम की दो काव्यरचनाओं को आधार बनाया गया है। इनमें से एक 'प्रतापविजयम्' नामक नाटक की रचना मूलशंकर माणेकलाल याज्ञिक ने 1931 ई. में की।[2] यह नौ अंकों में विभक्त है। दूसरी काव्यरचना 'प्रतापविजय:' नाम का एक खण्डकाव्य है। इसके रचयिता ईशदत्त है तथा इसमें 170 पद्य हैं। कवि ईशदत्त का जीवनकाल अल्पल्प (1915 ई. से 1945 ई.) रहा है।[3]

ये दोनों काव्यरचनाएँ आङ्ग्ल शासन के परतन्त्रता काल में लिखी गई थी अत: तत्कालीन चुनौतियों एवं आवश्यकताओं के अनुरूप इन रचनाओं में स्वतन्त्रता एवं राष्ट्रप्रेम जैसे मूल्य विशेषरूप से मुखरित हुए हैं। उस समय का एक बड़ा कविसमुदाय जनमानस को राष्ट्रभावना से ओतप्रोत कर रहा था। महाराणा प्रताप जैसे राष्ट्रनायक पर आधारित इन रचनाओं ने भी इस भावना को जगाने में विशेष योगदान दिया हैं। इन रचनाओं में प्रसङ्गवश अनेक राष्ट्रभावनापरक सूक्तियों का चित्रण हुआ है। इन सूक्तियों के माध्यम से '*रामादिवत् प्रवर्तितव्यं न रावणादिवत्*'[4] इत्यादि प्रकार का व्यवहारज्ञान सरलतया एवं सरसतया हो जाता है। ये सूक्तियाँ मानवीय व्यवहार को प्रभावित करने में विशेष स्थान रखती हैं –

अपूर्वाह्लाददायिन्य उच्चैस्तरपदाश्रया:।
अतिमोहापहारिण्य: सूक्तयो हि महीयसाम्॥[5]

वैसे संस्कृतसाहित्य को राष्ट्रभावना का जन्मदाता कहा जा सकता है। विश्व के आदिग्रन्थ ऋग्वेद से लेकर अद्यतन संस्कृत साहित्य में बहुधा राष्ट्रभावना का वर्णन हुआ है। राष्ट्र शब्द का व्युत्पत्तिजन्य अर्थ है जो सुशोभित होता है– राजते इति। (राज् + ष्ट्रन्)[6] किसी राष्ट्र की यह शोभनीयता वहाँ रहने वाले लोगों के सद्विचार, सद्भाव, उच्च नैतिक आदर्श एवं समुचित जीवनमूल्यों आदि से सुरक्षित एवं वर्द्धमान रहती है।

शोधपत्र के विषयानुसार अब यहाँ राष्ट्र की उन्नति, सुरक्षा, स्वतन्त्रता आदि विषयों से सम्बधित प्रतापविजय नाटक एवं खण्डकाव्य की राष्ट्रभावनापरक सूक्तियाँ प्रस्तुत की जाती हैं। कवि ईशदत्त ने प्रतापविजय खण्डकाव्य के प्रारम्भ में सरस्वती देवी को सदा भारत में सदा निवास करने वाली बताते हुए[7] गंगा, यमुना एवं सरस्वती नदियों से तरङ्गित इस देश को सर्वप्रिय कहा है।[8] नदियों से सुशोभित भारतदेश का ऐसा ही सुन्दर वर्णन कविवर रमाकान्त शुक्ल ने भी किया है–

जाह्नवीचन्द्रभागाजलै: पावितं भानुजानर्मदा वीचिभिर्लालितम्।
तुङ्गभद्राविपाशादिभिर्भावितं भूतले भाति मेऽनारतं भारतम्॥[9]

कवि ईशदत्त ने हिमालय पर्वत को इस राष्ट्र की शोभा बढ़ाने वाला चित्रित किया है–

व्यनक्ति लोके महिमाऽऽलय: सदा, यदीयलोकोत्तरतां हिमालय:।
स राजते भारत-भूतलाञ्चले, विराजते भारतवर्षनामभाक्॥[10]

महाकवि कालिदास ने भी कुमारसंभव महाकाव्य के मंगलाचरण में हिमालय पर्वत का ऐसा ही चारु वर्णन किया है।[11]

प्रतापविजय नाटक में कवि मूलशंकर याज्ञिक ने प्रसङ्गवश अनेक स्वतन्त्रतासम्बन्धी सूक्तियों को चित्रित किया है। सोने के पिंजरे में बन्द होने वाले पक्षी के उदाहरण से स्वतन्त्रता का महत्त्व विशेष रूप से बताया गया है–

महिषी – आर्यपुत्र स्वातन्त्र्यमेव राजन्यस्य वीर्यम्। अपि च
नानारसै: स्वादुफलै: सुपोशित: स्नेहेन राजन्यकुलोपलालित:।
शुकोऽपि चामीकरपञ्जरश्रितो न पारतन्त्र्यं बहु मन्यते खग:॥[12]

प्रतापविजय नाटक के प्रथम अंक में जब मानसिंह महाराणा प्रताप को अकबर की अधीनता स्वीकार करने का सन्देश कहता है तब स्वतन्त्रता के परम पुजारी महाराणा प्रताप के मुख से स्वतन्त्रता सम्बधी उनके हृदयोद्गार इस प्रकार निकलते हैं–

- *स्वातन्त्र्यैकरस: परस्य वशतां यायात्प्रताप: कथम्।*[13]
- *तेजस्विन: क्षत्रगुणे प्रतिष्ठिता न चार्थकामापहतात्मविक्रमा:।*
  प्राणान्तकष्टेऽप्यचला दृढव्रता नैवाद्रियन्तेऽन्यनरेन्द्रशासनम्॥[14]
- *प्राप्नोतु राष्ट्रं त्वचिराद्विनाशं कुलं समग्रं लयमेतु सद्य: ।*
  सहस्रधाशु प्रविदीर्यतां वपु: स्वातन्त्र्यमेकं शरणं परं मे॥[15]
- *स्वातन्त्र्येऽपहृते त्रिविष्टपसुखं क्लेशाय मे केवलं*
  तस्मिन्नेव सुरक्षिते वनचरैर्वासोऽपि तोषावह: ।
  यामासाद्य कृतार्थतामुपगता धर्मच्युतास्त्वादृशा
  नैनां क्षत्रवर: श्रवृत्तिमधमां प्राणात्ययेऽप्याश्रयेत्॥[16]

इसी प्रसङ्ग में महाराणा प्रताप का मन्त्री भी मानसिंह को ऐसा ही प्रत्युत्तर देता है –

- *तृणाय मत्वा सुतबन्धुवर्गान् राष्ट्रं समग्रं निजजीवितस्पृहाम्।*
  प्रत्यर्थिविध्वंसविधौ विनिश्चिता: स्वातन्त्र्यरक्षैकपराश्चरन्ति॥[17]
- *आ बाल्याद्यावनेशप्रगतिपरिहतक्षात्रतेज:प्रभावो*
  नानाभोगाधिकारैरनुगुणकवलै: पुष्टदेहान्तरङ्ग: ।
  साशङ्कं तत्सपर्याऽवहितमतिरसौ मोदमान: श्रवृत्तौ
  *राजन् स्वातन्त्र्यभावं कलयति हि कथं य: पराधीनवृत्ति:॥*18

स्वतन्त्रताविषयक उपर्युक्त भावों को निम्नलिखित सूक्तियाँ भी समर्थन करती हैं–

- *कार्यं वा साधयेयं देहं वा पातयेयम्।*[19]
- *स्वस्वजीवनदानेन रक्षणीयैव जन्मभू:।*
  आदत्ते हि महद् वस्तु स्तोकत्यागेन बुद्धिमान्॥[20]

उपर्युक्त स्वातन्त्र्य भाव को हृदय में संजोते हुए देशरक्षा के लिए लड़ना साहस का काम होता है। इस कार्य को वीरपुरुष ही कर सकते हैं। यह कायर लोगों के सामर्थ्य की बात नहीं होती है। अकबर के साथ युद्ध की निश्चितता को देखते हुए महाराणा प्रताप इसी प्रकार वीरों से युद्धाह्वान करते हैं–

– आयातु स प्रकटयन् बलमत्युदारं कर्तुं समर्थ इह यो व्रतमासिधारम्।
क्रीडास्थलीव किल य: समरस्थली स्यात्, किं वा विषाद इह यस्य कृते प्रसाद:॥[21]

– आयातु स प्रबलवानिह साऽभिमानं, कृत्वा स्वदेश-चरणे मृदु-मौलि-दानम्।
वक्ष: क्षताज्जनितशोणित-बिन्दुभिर्य:, निश्शङ्कमङ्कयतु गौरवगर्वगानम्॥[22]

जो देश की स्वतन्त्रता के लिए लड़ते हैं, प्राणार्पण करते हैं वे लोक में स्वत: वन्दनीय हो जाते हैं। इसी भाव को महाराणा प्रताप के सन्दर्भ में कवि ईशदत्त ने इस प्रकार कहा है –

क्षणे क्षणे यस्य रणे रतिर्भवेत् पदे पदे यो विनिपातयेदरीन्।
तदद्य किं विस्मयकारणं बुधा:! गृहे गृहे सम्प्रति चेत्स पूज्यते॥[23]

कवि मूलशंकर याज्ञिक ने भी महाराणा प्रताप के मुँह से स्वतन्त्रता सेनानियों की सम्माननीयता बताई है–

हुत्वा देहं निजं ये समरहुतवहे प्रस्थिता: पुण्यलोकां-
स्तेषां वीरोत्तमानां समुदितयशसामन्वये ये प्रसूता:।
मत्युत्कर्षप्रतापप्रमथितरिपवो ये पुनर्नीतिदक्षा:
सर्वे ते राष्ट्रभक्ता नृपकुलविभवैर्माननीया यथार्हम्॥[24]

उपर्युक्त भावप्रसङ्ग में महात्मा गांधी के वचन भी उल्लेखनीय हैं– 'जिन्होंने अपनी देह को देशसेवा में ही जीर्ण कर दिया वे देहपात होने पर जन-मन से विस्मृत नहीं हो सकते, कभी नहीं मर सकते।'[25] देशरक्षा जैसे महनीय कार्य से विमुख रहने वाले लोगों के निन्दा भी प्रतापविजय खण्डकाव्य में प्रसङ्गप्राप्त रीति से की गई है –

तिष्ठन्तु ते निज-गृहे ललना-विलासा:, ये वारुणी-विषय-वञ्चकतैकदासा:।
ये जन्मनैव खल-कर्म समर्थयन्ति, प्रोच्चैर्बलं शुचि-कुलं च कदर्थयन्ति॥[26]

अपने स्वार्थवश राष्ट्र से द्रोह करने वाले नराधमों की निन्दा भी मानसिंह के व्याज से नाटक में प्राप्त होती है–

निष्कारणं हतधिय: स्वजनैर्विरोधं कृत्वाऽधमानपि परान् समुपासते ये।

कल्पद्रुमं सकलकामदुघं विमोहादुन्मूल्य ते विशतरुं स्वकुले वपन्ति॥ [27]

अकारणद्वेषपरो नराधमः परोदयाप्लुष्टनिजान्तरङ्गः।
नीत्वा स्वपक्षे च्छलतो बलीयसः पैशुन्यशस्त्रेण हिनस्ति सुव्रतान्॥[28]

ऐसे देशद्रोहियों के विषय में अमर शहीद अशफ़ाक उल्ला खां के वचन भी स्मरणीय है –

न कोई इंगलिश न कोई जर्मन न कोई रशियन न कोई टर्की,
मिटाने वाले हैं अपने हिंदी जो आज हमको मिटा रहे हैं।[29]

इसी विषय में यह अग्रेंजी लोकोक्ति भी प्रसिद्ध है–

"Breakers of home can not be the makers of Nations." [30]

प्रतापविजय नाटक में प्रशासक वर्ग एवं जनता के अन्तर्सम्बन्धों पर भी सूक्तियाँ प्राप्त होती हैं। यह मजबूत अन्तर्सम्बन्ध राष्ट्र की सुदृढता हेतु आवश्यक होता है। न्यायी एवं गुणी राजा की वाञ्छा प्रजा को भी सर्वदा रहती है –

कृताभिषेकं गुणिनं महौजसं न्यायप्रवृत्तं व्यसनेष्वसक्तम्।
स्वयंवरेव प्रकृतिः प्रतारिताप्यर्थोपजापैर्न जहात्यधीश्वरम्॥ [31]

राजोचित गुणों से सम्पन्न राजा के उपकारों की निष्कृति भी प्रजा के लिए असम्भव होती है –

ईद्धः क्षात्रबलौजसा निजसुखे वीतस्पृहो योऽनिशं
धर्मस्थः परिपालयत्यभिनवस्नेहेन सर्वाः प्रजाः।
लोकोपद्रवकारिणां प्रमथने जागर्ति यो दुष्कृतां
राज्ञस्तस्य विधीयते जनिशतैर्नैव क्वचिन्निष्कृतिः॥[32]

किसी राष्ट्र के निर्माण में राजा के उत्तरदायित्वों के साथ प्रजा के भी उत्तरदायित्व होते हैं। इसी बात के समर्थन में प्रतापविजय नाटक में महाराणा प्रताप के मुख से दो सूक्तियाँ प्रस्फुटित होती हैं–

– *पौरजनानुरागायत्ता हि राष्ट्रसम्पदः।*[33]
– *यत्सत्यं प्रकृत्यनुरागायत्ता हि राष्ट्रसम्पदः।*[34]

इसी प्रसंग में यह पंक्ति भी अवलोकनीय है –'देश की रक्षा राजा की सेना नहीं करती। देश की प्रजा करती है।' – लक्ष्मी नारायण मिश्र [35]

प्राचीन राजनीतिशास्त्रों में प्रतिपादित साम–दान–भेद–दण्ड नीति भी यहाँ दृष्टिगोचर होती है–

सामोपचारैर्नृपतिं समप्रभं दानेन हीनं कुलधर्मनिष्ठम्।
सत्त्वाधिकं भेदनयेन चोद्धतं दण्डेन भिन्नप्रकृतिं वशं नयेत्॥[36]

राष्ट्र सुरक्षा हेतु शत्रुओं से प्रतीकार करते समय क्या सावधानी रखी जाए जाए इस सम्बन्ध में '*आर्जवं हि कुटिलेषु न नीतिः।*'[37] जैसी नीतिपूर्ण सूक्ती भी प्राप्त होती है –

असत्यसन्धेषु जनेषु साधुता हिंस्रेष्वहिंसा पिशुनेषु तथ्यम्।
दया कृतघ्नेषु खलेषु चार्जवं सद्यो विनाशाय भवन्ति भूभृताम्॥[38]

महाराणा प्रताप जैसे नायक शत्रु को भी छलपूर्वक जीतना नहीं चाहते हैं –

स्ववीर्यविश्रम्भहतारिदुर्नया धर्मार्थमात्मन्यपि निर्गतस्पृहाः।
नैवोत्सहन्ते विषमं स्थिता अपि कूटाभियोगानभिमन्तुमीश्वराः॥[39]

राष्ट्र के समुचित संचालन के लिए सभी को अपने निर्धरित कर्त्तव्यों एवं वर्णाश्रमधर्म का पालन भी करना चाहिए। इसी सम्बन्ध में दो सूक्तियाँ प्रतापविजय नाटक एवं खण्डकाव्य में आती हैं–

– *आम्नायार्थप्रसितमतयो ब्राह्मणाः सिद्धमन्त्राः*
संपद्यन्तां नरपतिगणाः क्षात्रतेजः समिद्धाः।
वैश्याः सर्वे नवनिधियुताः कारवः कारुदीक्षाः
स्वातन्त्र्यश्रीर्विलसतुतरां विश्वतो भारतेऽस्मिन्॥ [40]
– *धिग्ब्राह्मणं तमथ यः श्रुति–मन्त्रहीनः, धिक् क्षत्रियं तमथ*
यः समरेऽतिदीनः।
धिग् वैश्यमर्थिजनशोषणमात्र–पीनं, शूद्रं च धिक्
सुजनसेवकताविहीनम्॥ [41]

राष्ट्रसेवा के कार्य में सभी की अपनी महत्ता एवं उपयोगिता होती है। सभी अपने योग्य कार्य को करते हुए राष्ट्र की उन्नति में सहयोग दे सकते हैं –

अल्पः कदाचिन्महता सुदुष्करं कार्ये महत्साधयितुं भवत्यलम्।
काष्ठैकपोतेन सुखोत्तरः प्रभो हिरण्यनावा जलधिर्न तीर्यते॥[42]

धैर्य को भी राष्ट्र निर्माण में उपयोगी गुण बताया गया है– 'धैर्यमूला हि सर्वाः सम्पदः।' [43] इसी बात का समर्थन हरिकृष्ण प्रेमी भी करते हैं– 'राष्ट्र को जोश, उत्तेजना और भावनाशीलता की जितनी आवश्यकता है, उतनी विवेक, धैर्य और दूरदर्शिता की भी।'[44] नारियों के प्रति समुचित सम्मान की चर्चा भी प्रतापविजय नाटक में प्रसंगतया प्राप्त होती है –'*न कदाचित् परदारापहरणमनुमन्वते तपनकुलसंभवा इति।*' [45]

इस प्रकार भारत की स्वतन्त्रता के पूर्व बीसवीं शताब्दी में लिखी गई प्रतापविजय नाम की इन दो रचनाओं में राष्ट्रसमर्चक महाराणा प्रताप के उदात्त जीवनचरित्र को प्रस्तुत करते हुए कवियों के द्वारा तत्कालीन जनमानस को राष्ट्रभावना से आन्दोलित किया गया। महाराणा प्रताप का व्यक्तित्व ही ऐसा है कि उनके बारे में पढ़कर और जानकर कोई भी व्यक्ति आश्चर्यचकित एवं राष्ट्र के

प्रति समर्पित हो सकता है। उनका यह आदर्श चरित्र सदियों-सदियों तक प्रासंगिक एवं प्रेरणादायी है। उनके जीवनमूल्यों की उपादेयता वर्तमान समय में भी बहुत अधिक महत्त्व रखती है। उपर्युक्त रचनाद्वय के माध्यम से वर्णित की गई राष्ट्रभावनापरक सूक्तियाँ अनमोल मौक्तिक हैं। इन सूक्तियों के माध्यम से राष्ट्रोन्नति का मार्ग प्रशस्त होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

1. लुडविक स्टर्नबाख : महासुभाशितसंग्रहः, विशवेश्वरानन्द वैदिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट, होशियारपुर, 1976 ई.
2. सं. राजेन्द्र नाणावटी : मूलशङ्कर-नाट्यत्रयी (संयोगिता-स्वयंवरम्, छत्रपतिसाम्राज्यम्, प्रतापविजयम्), राष्ट्रियसंस्कृत-संस्थानम्, नई दिल्ली, 2010 ई.
3. सं. शिवकुमार त्रिपाठी; विशुद्धानन्द त्रिवेदी : प्रतापविजयः (ईशदत्त), शारदा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
4. शेषराजशर्मा : साहित्यदर्पणः, चौखंबा कृष्णदास अकादमी, वारणसी, 2010 ई.
5. श्याम बहादुर वर्मा : बृहत् विश्व सूक्ति कोश, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006 ई.
6. सृजन झा; प्रो. मदनमोहन झा : शब्दकल्पद्रुमः, एप, गूगल प्ले स्टोर
7. रमाकान्त शुक्ल : भाति मे भारतम्, देववाणीपरिषद्, दिल्ली, 1980 ई.
8. प्रद्युम्नपाण्डेय : कुमारसम्भवम् (कालिदास), चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2012 ई.
9. अम्बिकादत्त व्यास : शिवराजविजयः, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2010 ई.
10. हरिदास सिद्धान्तवागीश : मिवारप्रतापम्, सिद्धान्तयन्त्र, कलकत्ता, 1354 बंगाब्द
11. देवर्षि सनाढ्य : नैषधीयचरितम् (श्रीहर्ष), चौखम्बा कृष्णदास अकेडमी, वाराणसी, 2013 ई.

सन्दर्भ सूची -

1. महासुभाशितसंग्रह, 2000
2. प्रतापविजयम्, पृ. प्रस्तावना, xxvi
3. प्रतापविजयः, पृ. प्रस्तावना, द्व
4. साहित्यदर्पण, पृ.19
5. बृहत् विश्व सूक्ति कोश, पृ.1263
6. शब्दकल्पद्रुमः, राष्ट्रम्
7. प्रतापविजयः, 20
8. तत्रैव, 27
9. भाति मे भारतम् , 9
10. प्रतापविजयः, 26
11. कुमारसंभवम् , 1.1
12. प्रतापविजयम्, 4.14
13. तत्रैव, 1.11
14. तत्रैव, 1.10
15. तत्रैव, 1.21
16. तत्रैव, 1.22
17. तत्रैव, 1.17
18. तत्रैव, 1.26
19. शिवराजविजयम्, प्रथम विराम, चतुर्थ निःश्वास
20. मिवारप्रतापम्, 1.24
21. प्रतापविजयः, 100
22. तत्रैव, 101
23. तत्रैव, 41
24. प्रतापविजयम्, 9.6
25. बृहत् विश्व सूक्ति कोश, पृ. 463
26. प्रतापविजयः, 99
27. प्रतापविजयम्, 1.4
28. तत्रैव, 1.28
29. बृहत् विश्व सूक्ति कोश, पृ. 462
30. तत्रैव, पृ. 940
31. प्रतापविजयम्, 3.7
32. तत्रैव, 8.8
33. तत्रैव, 4.18 से पूर्व
34. तत्रैव, 9.5 के बाद
35. बृहत् विश्व सूक्ति कोश, पृ. 470
36. प्रतापविजयम्, 4.3
37. नैषधीयचरितम्, 5.103
38. प्रतापविजयम्, 2.2
39. तत्रैव, 2.13
40. तत्रैव, 9.8
41. प्रतापविजयः, 98
42. प्रतापविजयम्, 4.13
43. तत्रैव, 8.4 के बाद
44. बृहत् विश्व सूक्ति कोश, पृ. 938
45. प्रतापविजयम्, 4.2 के बाद

ISSN 2278 - 0327

कक्षा 11वीं में अध्ययनरत वाणिज्य एवं कला संकाय के विद्यार्थियों की पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन

प्रो., (डॉ.) मोहन सिंह पंवार
विभागाध्यक्ष, शिक्षा संकाय
आर.के.डी.एफ. विश्वविद्यालय, भोपाल

कुमार गौरव
शोधार्थी, शिक्षा संकाय
आर.के.डी.एफ. विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

प्रस्तुत शोधपत्र में कक्षा 11वीं में अध्ययनरत वाणिज्य एवं कला संकाय के विद्यार्थियों की पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। न्यादर्श के रूप में कक्षा 11वीं में अध्ययनरत 200 विद्यार्थियों (100 वाणिज्य एवं 100 कला संकाय) का चयन साधारण यादृच्छिक न्यादर्श विधि द्वारा कर उन पर डॉ. एन.एन. श्रीवास्तव एवं शशिप्रभा दुबे की 'पर्यावरण अभिवृत्ति मापनी' का प्रशासन किया गया। प्राप्त परिणामों के अनुसार कक्षा 11वीं में अध्ययनरत वाणिज्य एवं कला संकाय के छात्र/विद्यार्थियों की पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर पाया गया जबकि छात्राओं की पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं पाया गया। कक्षा 11वीं में अध्ययनरत वाणिज्य संकाय के छात्र एवं छात्राओं की पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं पाया गया जबकि कला संकाय के छात्र एवं छात्राओं की पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर पाया गया।

मुख्य शब्द: वाणिज्य एवं कला संकाय, पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति

पर्यावरण सभी जीवों व वनस्पतियों को ईश्वर द्वारा प्रदत्त बहुमूल्य उपहार है जो सम्पूर्ण मानव समाज का एकमात्र महत्वपूर्ण और अभिन्न अंग है। प्रकृति द्वारा प्रदत्त अमूल्य भौतिक तत्वों- पृथ्वी, जल, आकाश, वायु एवं अग्नि से मिलकर पर्यावरण का निर्माण हुआ है। ऐसा वैज्ञानिक भी मानते हैं कि स्वस्थ पर्यावरण से स्वस्थ सृष्टि का सृजन होता है। पर्यावरण स्वस्थ सृष्टि की क्रियाशीलता एवं विकासशीलता को गति प्रदान करता है। इसलिये आवश्यक है कि पर्यावरण के प्रत्यक्ष एवं परोक्ष सभी घटकों को परिशुद्ध रखा जाये। एलन चर्चिल सैमुअल के अनुसार - 'मानव पृथ्वी के धरातल की उपज है', वह प्रकृति की अनुकूलता में पोषित हुआ एवं प्राकृतिक प्रतिकूल परिवेश से निरंतर संघर्ष करता रहा। मानव का क्रमिक विकास जीवों के विकास एवं परिवेश समायोजन की कड़ी का अंग रहा है। अत: प्राकृतिक परिवेश का प्रभाव उसके विकास से निकट से सम्बंधित माना गया है। जब से मानव ने अभिव्यक्ति विधियों एवं भाषा का विकास किया तभी से वह प्रकृति के प्रभाव को विशेष रूप से अभिव्यक्त करता रहा है। उसका विकास व विकास की पृष्ठभूमि उसके दैहिक-दैविक एवं भौतिक कर्म एवं धर्म सभी पूर्ण तथा प्रकृति रचित परिवेश के ताने-बाने से बुने गये हैं। इसी कारण प्राकृतिक परिवेश का अध्ययन सभी विज्ञान तथा शास्त्रों में अभिन्न अंग बन गया है।

अन्त में कहा जा सकता है कि वस्तुत: मानव का कल्याण प्रकृति से युद्ध करने में नहीं उससे सहयोग एवं सामंजस्य में निहित है। वह अपनी बौद्धिक एवं आनुभाविक ज्ञान और प्रज्ञा चक्षु का सार्थक उपयोग एवं भूतल विकास का सार्थक कारक तत्व एवं विकसित व अनुकूल सांस्कृति दृश्यभूमि का निर्माण, प्रकृति के साथ बुद्धिमतापूर्ण विधि से सहयोग करके ही कर सकता है। हमारा यह शोध पर्यावरण ह्रास के कारणों को खोजकर, पर्यावरणीय समस्याओं को हल करने में सहायक सिद्ध हो सकता है। जिसके द्वारा विद्यार्थियों को पर्यावरण संरक्षण एवं संवर्धन के लिए विकसित किया जा सकता है, जिससे भविष्य में हमें सुखद पर्यावरण मिले। इसलिए शोधकर्ता ने कक्षा 11वीं में अध्ययनरत वाणिज्य एवं कला संकाय के विद्यार्थियों में पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करने का निर्णय किया।

इस विषय पर पूर्व में भी कुछ शोध कार्य किए गये हैं जैसे **शाहनबाज** (1990) ने अपने अध्ययन के निष्कर्षत: पाया कि पर्यावरणीय अभिवृत्ति ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों की अपेक्षा शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों में अधिक है। **पांडेय, अमरेश चन्द्र** (1994) ने अपने अध्ययन के निष्कर्षत: पाया कि शहरी छात्र एवं छात्राओं की पर्यावरणीय अभिवृत्ति में सार्थक अंतर पाया

गया। शहरी छात्रों एवं ग्रामीण छात्रों की पर्यावरणीय अभिवृत्ति में सार्थक अंतर पाया गया। **घोष, कुमुद** (2014) ने अपने अध्ययन में पाया कि माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की पर्यावरण के प्रति जागरूकता तथा पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक धनात्मक सहसंबंध पाया गया। **अरल, नेस; बैरम, नुरान एवं कैलिक, चिगुर** (2017) ने अपने अध्ययन में पाया कि पर्यावरण जागरूकता का पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति पर सार्थक प्रभाव पाया गया तथा उच्च स्तर की पर्यावरण जागरूकता वाले विद्यार्थियों की पर्यावरण के प्रति उच्च अभिवृत्ति पाई गई। **शर्मा, शम्भु कुमार** (2018) ने अपने अध्ययन में पाया कि माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं पाया गया। **खान, अशरफ उन नबी एवं कौषिक, एन. के.** (2018) ने अपने अध्ययन में पाया कि माध्यमिक स्तर के दिल्ली एवं भोपाल क्षेत्र के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की विद्यार्थियों की पर्यावरण शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं पाया गया। भोपाल क्षेत्र के छात्र एवं छात्राओं की पर्यावरण शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर पाया गया तथा छात्रों में पर्यावरण शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति, छात्राओं की तुलना में उच्च पाई गयी।

उद्देश्यः-

1. वाणिज्य एवं कला संकाय के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. वाणिज्य/कला संकाय के छात्र एवं छात्राओं की पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पनाः-

1. वाणिज्य एवं कला संकाय के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं है।
2. वाणिज्य/कला संकाय के छात्र एवं छात्राओं की पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं है।

न्यादर्श-

इस शोध कार्य में न्यादर्श के चयन के लिए भोपाल जिले में स्थित 04 उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों की कक्षा 11वीं में अध्ययनरत 200 विद्यार्थियों (100 वाणिज्य एवं 100 कला संकाय) का चयन साधारण यादृच्छिक विधि द्वारा किया गया।

उपकरणः-

कक्षा 11वीं में अध्ययनरत विद्यार्थियों की पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन करने के लिए डॉ. एन.एन. श्रीवास्तव एवं शशिप्रभा दुबे की 'पर्यावरण अभिवृत्ति मापनी' का उपयोग किया गया है।

शोध विधिः-

इस शोध हेतु भोपाल जिले में स्थित 04 उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों का चयन करके, इन विद्यालयों की कक्षा 11वीं में अध्ययनरत 200 विद्यार्थियों 6 वाणिज्य संकाय के 100 (50 छात्र एवं 50 छात्राएँ) तथा कला संकाय के 100 (50 छात्र एवं 50 छात्राएँ) 8 का चयन साधारण यादृच्छिक विधि द्वारा कर उन पर डॉ. एन.एन. श्रीवास्तव एवं शशिप्रभा दुबे की 'पर्यावरण अभिवृत्ति मापनी' का प्रशासन किया गया। प्राप्तांकों के आधार पर मॉस्टर शीट तैयार की गई। क्रांतिक अनुपात परीक्षण के द्वारा आंकड़ों का विश्लेषण कर परिणाम प्राप्त किये गये तथा प्राप्त परिणामों के आधार पर निष्कर्ष निकाले गये।

परिणामों का विश्लेषणः-

परिकल्पना क्रमांक 1. वाणिज्य एवं कला संकाय के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका 01

वाणिज्य एवं कला संकाय के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति संबंधी तुलनात्मक परिणाम

समूह	संकाय	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात मान	'पी' मान
छात्र	वाणिज्य	50	49.44	12.28	2.07	<0.05
	कला	50	54.38	11.55		
छात्रा	वाणिज्य	50	44.58	14.31	0.99	>0.05
	कला	50	47.06	10.52		
विद्यार्थी	वाणिज्य	100	47.01	13.56	2.08	<0.05
	कला	100	50.72	11.64		

स्वतंत्रता के अंश 98, 198

0.05 स्तर पर सार्थकता का मान - 1.98, 1.97

उपरोक्त सारणी के परिणामों से स्पष्ट है कि कक्षा 11वीं में अध्ययनरत वाणिज्य एवं कला संकाय के छात्र/विद्यार्थियों की पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर है, क्योंकि इनके लिए प्राप्त क्रांतिक अनुपात के मान क्रमशः 2.07, 2.08 स्वतंत्रता के अंश क्रमशः 98, 198 पर सार्थकता के 0.05 स्तर के लिए निर्धारित न्यूनतम मान क्रमशः 1.98, 1.97 की अपेक्षा अधिक हैं जबकि कक्षा 11वीं में अध्ययनरत वाणिज्य एवं कला संकाय की छात्राओं की पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति में

सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर नहीं है, क्योंकि इसके लिए प्राप्त क्रांतिक अनुपात का मान 0.99 स्वतंत्रता के अंश क्रमश: 98 पर सार्थकता के 0.05 स्तर के लिए निर्धारित न्यूनतम मान 1.98 की अपेक्षा कम है।

अत: उपरोक्त परिणामों के आधार पर कहा जा सकता हैं कि कक्षा 11वीं में अध्ययनरत वाणिज्य एवं कला संकाय के छात्र/विद्यार्थियों की पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर पाया गया तथा कला संकाय के छात्र/विद्यार्थियों में पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति, वाणिज्य संकाय के छात्र/विद्यार्थियों की तुलना में बेहतर पाई गयी। कक्षा 11वीं में अध्ययनरत वाणिज्य एवं कला संकाय की छात्राओं की पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

अत: इन परिणामों के आधार पर पूर्व में ली गयी उपरोक्त परिकल्पना ''वाणिज्य एवं कला संकाय के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं है'', आंशिकत: अस्वीकृत की जाती है।

परिकल्पना क्रमांक 2. वाणिज्य/कला संकाय के छात्र एवं छात्राओं की पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका 02

वाणिज्य /कला संकाय के छात्र एवं छात्राओं की पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति संबंधी तुलनात्मक परिणाम

संकाय	समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात मान	'पी' मान
वाणिज्य	छात्र	50	49.44	12.28	1.82	> 0.05
	छात्राएँ	50	44.58	14.31		
कला	छात्र	50	54.38	11.55	3.31	< 0.01
	छात्राएँ	50	47.06	10.52		

स्वतंत्रता के अंश 98

0.05, 0.01 स्तर पर सार्थकता का मान – 1.98, 2.63

उपरोक्त सारणी के परिणामों से स्पष्ट है कि कक्षा 11वीं में अध्ययनरत वाणिज्य संकाय के छात्र एवं छात्राओं की पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर नहीं है, क्योंकि इसके लिए प्राप्त क्रांतिक अनुपात का मान 1.82 स्वतंत्रता के अंश 98 पर सार्थकता के 0.05 स्तर के लिए निर्धारित न्यूनतम मान 1.98 की अपेक्षा कम है जबकि कक्षा 11वीं में अध्ययनरत कला संकाय के छात्र एवं छात्राओं की पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर है, क्योंकि इसके लिए प्राप्त क्रांतिक अनुपात का मान 3.31 स्वतंत्रता के अंश 98 पर सार्थकता के 0.01 स्तर के लिए निर्धारित न्यूनतम मान 2.63 की अपेक्षा अधिक है।

अत: उपरोक्त परिणामों के आधार पर कहा जा सकता हैं कि 11वीं में अध्ययनरत वाणिज्य संकाय के छात्र एवं छात्राओं की पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं पाया गया जबकि कक्षा 11वीं में अध्ययनरत कला संकाय के छात्र एवं छात्राओं की पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर पाया गया तथा कला संकाय के छात्रों में पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति, कला संकाय की छात्राओं की तुलना में बेहतर पाई गयी।

अत: इन परिणामों के आधार पर पूर्व में ली गयी उपरोक्त परिकल्पना ''वाणिज्य/कला संकाय के छात्र एवं छात्राओं की पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं है'', आंशिकत: अस्वीकृत की जाती है।

निष्कर्ष–

1. कक्षा 11वीं में अध्ययनरत वाणिज्य एवं कला संकाय के छात्र/विद्यार्थियों की पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर पाया गया तथा कला संकाय के छात्र/विद्यार्थियों में पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति, वाणिज्य संकाय के छात्र/विद्यार्थियों की तुलना में बेहतर पाई गयी। कक्षा 11वीं में अध्ययनरत वाणिज्य एवं कला संकाय की छात्राओं की पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।
2. 11वीं में अध्ययनरत वाणिज्य संकाय के छात्र एवं छात्राओं की पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं पाया गया जबकि कक्षा 11वीं में अध्ययनरत कला संकाय के छात्र एवं छात्राओं की पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर पाया गया तथा कला संकाय के छात्रों में पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति, कला संकाय की छात्राओं की तुलना में बेहतर पाई गयी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची –

- अवस्थी, नरेन्द व तिवारी, आर.पी. (नवीन संस्करण): पर्यावरण भूगोल, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल
- चक्रवर्त्ती, पुरुषोत्तम भट्ट (2006) 'पर्यावरण चेतना', म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल
- गोयल, एम. के. (2007–08) 'पर्यावरण शिक्षा', अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा
- जैन, एस.के. (2004) 'पर्यावरण शिक्षा', अग्रसेन शिक्षा

प्रकाशन, जयपुर

- श्रीवास्तव, पंकज (2008) 'पर्यावरण शिक्षा', म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल
- उपाध्याय, राधावल्लभ (2007-08) 'पर्यावरण शिक्षा', अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा
- शर्मा, आर.ए. (2008) 'पर्यावरण शिक्षा', आर.लाल बुक डिपो, मेरठ
- श्रीवास्तव, डी. एन. (नवीन संस्करण) 'सांख्यिकीय एवं मापन', विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
- खान, अशरफ उन नबी एवं कौशिक, एन. के. (2018) ''माध्यमिक स्तर के दिल्ली एवं भोपाल क्षेत्र के विद्यार्थियों की पर्यावरण शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन'', इन्टरनेशनल रिसर्च जर्नल ऑफ ह्यूमन रिसोर्स एण्ड सोशल साइंस, वॉल्युम 5, इश्यु 2, फरवरी 2018, पेज नम्बर 555-559
- शर्मा, शम्भु कुमार (2018) ''माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन'', इन्टरनेशनल रिसर्च जर्नल ऑफ ह्यूमन रिसोर्स एण्ड सोशल साइंस, वॉल्युम 5, इश्यु 4, अप्रैल 2018, पेज नम्बर 587-591
- **Aral, Nese; Bayram, Nuran and Celir, Cigur (2017)** "A study of Relationship between Environmental Awareness and Environmental Attitudes among High school students", *International Journal of Recent Advances in organizational Behaviors and Decision Sciences (IJRAOB), Volume 3, Issue 1, 2017, Page No. 948-955*
- **Ghosh, Kumud (2014)** "Environmental Awareness among secondary school students of Galaghat District in the State of Assam and their Attitude towards Environment Education", *IOSR Journal of Humanities and Social Science (IOSR-JHSS), Volume 19, Issue 3, Ver. II, March 2014, Page No. 30-34*
- **Shahnawaj (1990)** "Environmental awareness and environmental attitude of secondary and higher secondary schools teachers and students", *Ph. D. Education, University of Rajasthan, in Fifth Survey of Educational Research (1988-1992), Volume 2, NCERT New Delhi, Page No. 1759*

ISSN 2278 - 0327

भास के प्रतिमा नाटक में परिलक्षित हुआ पर्यावरण का विचार

डॉ. अर्णव पात्र
सहकारी आचार्य
आशुतोष कलेज, कलिकाता -700026 (प.व)

कालिदास के पूर्व काल के नाटककारों में भास का नाम विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। कालिदास ने अपने मालविकाग्निमित्रम् में और बाणभट्ट ने अपने हर्षचरितम् गद्य में भास के नाटक की विशेशताओं का उल्लेख किया है। महामहिम टी. गणपति शास्त्री ने जिस तेरहवें नाटक का आविष्कार किया, जिसके रचयिता भास या कोई अन्य हैं - लंबे समय से विवाद का विषय रहा है। हालाँकि, बहुत चर्चा, तर्क और शोध के बाद, गणपति ने शास्त्री भास को इन नाटकों के लेखक के रूप में घोशित किया है।

विषयवस्तु की दृष्टि से तेरह नाटकों को चार वर्गों में बाँटा जा सकता है-

रामायण की कहानी पर आधारित - प्रतिमा और अभिषेक **नाटक महाभारत की कहानी पर आधारित** - दूतवाक्य, कर्णभार, दूतघटोत्कच, मध्यमव्यायोग, पञ्चरात्र,उरुभङ्ग और वालचतरित नाटक

ऐतिहासिक या प्राचीन कहानी - स्वप्नवासवदत्ता और प्रतिज्ञायौगन्धरायन नाटक

एक परी कथा पर आधारित - अविमारक और चारुदत्त नाटक

प्रकृति प्रेमी भास ने पर्यावरण के प्राकृतिक दृश्यों का नजदीक से आनंद लिया है। प्राकृतिक दृश्य का वर्णन करने में वे कुशल थे। नाटक की आवश्यकता में उन्होंने पर्यावरण प्रकृति के रूप का वर्णन किया है। उनके नाटकों में पर्यावरण चिंतन के विषय को अलग-अलग जगहों पर उकेरा गया है।

रामायण की कहानी पर आधारित भास ने जो दो नाटक लिखे उनमें से सबसे महान नाटक है प्रतिमा नाटक। यह नाटक राम के निर्वासन से लेकर रावण को मारने के बाद पुष्पक नामक विमान पर सीता के साथ अयोध्या लौटने तक की घटनाओं से संबंधित है। यह सात अङ्क से बना है। इस नाटक का दूसरा कार्य प्रकृति और पर्यावरण के साथ मनुष्य के अद्भुत संबंध को दर्शाता है। रामचंद्र के वन में भटकने के कारण प्रकृति ने अपनी स्वाभाविकता खो दी है। बड़े-बड़े हाथी घास खाने से विमुख होते हैं, घोड़ों की आंखें आँसुओं से भरी होती हैं, उनमें ईर्ष्या की पुकार नहीं होती। (प्रतिमा - 2।12) मनुष्य के अभाव में प्रकृति खाली है। पेड़ों से घिरी अयोध्या जंगल में तब्दील हो गई है। (प्रतिमा - 3।10)

प्रतिमा नाटक में कहा गया है कि पेड़ और जानवर दोनों रिश्तेदार हैं।

रामचंद्र ने हिमालय के वनाच्छादित क्षेत्रों में रहने का निश्चय किया और हिरण, वृक्ष, विंध्यपर्वत और प्रिय लताओं को अलविदा कहा -

आपृच्छ पुत्रकृतवान् हरिणान् द्रुमांश्च
विन्ध्यं वनं तव सखीर्दयिता लताश्च।
वत्स्यामि तेषु हिमाद् गिरिकाणनेषु
दीप्तैरिवौषधिवनैरुपरञ्जितेषु ॥ (प्रतिमा - 5।11)

विभिन्न पर्यावरणीय घटनाओं को प्रतिमा नाटक में स्थान मिला है। जब सीता रामचंद्र का अनुसरण करना चाहती थीं, जो पितृसत्ता का पालन करने के लिए वन जाने के लिए तैयार थे, राम ने लक्ष्मण से सीता को मना करने का अनुरोध किया। लेकिन लक्ष्मण ने प्रकृति की मिसाल पर चलकर सीता को मना नहीं किया। उन्होंने कहा- जब चंद्र पर राहु द्वारा हमला किया जाता है और

तारा उसका पीछा करता है। जब जंगल के पेड़ जमीन पर गिरते हैं तो बेलें भी गिरती हैं। यदि हाथी पंकज पर केंद्रित है, तो हाथी उसे नहीं छोड़ता है। यह और (सीता) आपका अनुसरण करते हैं और धर्म का पालन करते हैं क्योंकि पति ही पत्नी का एकमात्र आश्रय है –

अनुचरति शशाङ्कं राहुदोषेऽपि तारा
पतति च वनवृक्षे याति भूमिं लता च।
त्यजति न च करेनुः पङ्कलग्नं गजेन्द्रं
व्रजतु चरतु धर्मं भर्तृनाथा हि नार्यः ॥ (प्रतिमा 1 ।25)

रामचंद्र के अयोध्या से चले जाने के वर्णन से एक पर्यावरणीय घटना का पता चलता है – राम सूर्य की तरह चले गए। जैसे–जैसे सूर्य, लक्ष्मण आदि के साथ दिन बीतता जाता है, दिन के अंत में सीता छाया की तरह गायब हो जाती है–

सूर्य इव गतो रामः सूर्यं दिवस इव लक्षनोऽनुगतः ।
सूर्यदिवसावसाने छायेव न दृश्यते सीता ॥ (प्रतिमा 2 ।5)

इस प्रकार, प्रकृति और पर्यावरण के अवलोकन के माध्यम से नाटककार भास की पर्यावरणीय सोच की पहचान की जा सकती है।

सन्दर्भ सूची :

1. Tarkyatirtha, shri jagadish Chandra , pratimanatakam,Kolkata .1978
2. Bandyopadhyay, Dhirendranath, Sanskrit sahityer itihas , Kolkata. 2000
3. Dr. shastri, gourinath, Sanskrit sahityer itihas ,Kolkata.1400 (bangabdo)
4. Dr. bhattacarya, biman chandra , Sanskrit sahityer ruprekha, Kolkata 1980
5. Ghosh , bidyut baran, Sanskrit racanay pratifalito paribesh sacetanota,Kolkata 2006.
6. Keith ,A.B, A History of Sanskrit literature,London 2007
7. Chakravorty, madhavadasa , A short History of Sanskrit Literature, Kolkata- 2003.

ISSN 2278 - 0327

विश्वग्राम की परिकल्पना में अनुवाद की प्रासंगिकता

डॉ. एच.ए. हुनगुंद
एसोसिएट प्रोफेसर
भाषाविज्ञान एवं भाषा प्रौद्योगिकी विभाग
महात्मा् गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)

सारांश-

भाषाविज्ञान से भाषा की रचनाओं का और उनके विश्लेषण का परिचय मिल जाता है। भाषाविज्ञान के कुछ आधारभूत सिद्धांतों को किसी भी अन्य क्षेत्रों में उसका अनुप्रयोग करते हैं, तो उसे भाषाविज्ञान का अनुप्रयोग पक्ष कहते हैं। अनुवाद भी अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के एक महत्वपूर्ण शाखा के रूप में विकसित हुआ है। अनुप्रयुक्ता भाषाविज्ञान के अंतर्गत, मुख्यत: भाषाशिक्षण, अनुवाद, कोशविज्ञान, शैलीविज्ञान, मनोभाषाविज्ञान, समाज भाषाविज्ञान, नृभाषाविज्ञान, और साहित्य आदि आते हैं। अनुवाद एक भाषिक प्रक्रिया होने के कारण एक भाषा में लिखी हुई, पाठ्यसामग्री को दूसरी भाषा की पाठ्यसामग्री में उस भाषा की प्रकृति के अनुरूप उस भाषिक सामग्री को रूपांतरित करना ही अनुवाद है। डॉ. जी. गोपीनाथन जी का कहना है, कि ''पहले किसी भाषा में लिखी या कही गई बात को पीछे किसी अन्य भाषा में कहना या लिखना ही अनुवाद है'' है। अनुवाद भाषा, संस्कृति, साहित्य, ज्ञान, विज्ञान, संस्कृति की एक संवाहिका है। अनुवाद एक संस्कृति सेतु के रूप कार्य कर रही है। आज के इस वैश्विक परिदृश्य में अनुवाद की एक अहम भूमिका है, इसकी प्रासंगिकता पर विस्तार से चर्चा करना इस शोध आलेख का मुख्य उद्देश्य है।

''विश्वग्राम की परिकल्पना में अनुवाद की प्रासंगिकता''

आज विश्ववग्राम की परिकल्पकना में अनुवाद की प्रासंगिकता है। प्रत्येक देश अपनी भाषा, संस्कृति, आचार-विचार, साहित्य ज्ञान-विज्ञान के तमाम क्षेत्रों में समृद्ध है। आज विश्व के प्रत्येक देश के जन-समुदाय बहु-भाषिक होते जा रहे हैं। इन बहु-भाषिक समाज में अनुवाद एक संस्कृति सेतु के रूप में कार्य करती है। उस देश की साहित्य, ज्ञान, विज्ञान, संस्कृति, सामाजिक नीति से संबद्ध सामग्री को एक भाषा से दूसरी भाषा तक पहुँचाने में अनुवाद एक अहं भूमिका निभाता है, जिस प्रकार साहित्य ज्ञान-विज्ञान, संस्कृति, इतिहास आदि का क्षेत्र असीम है, उसी प्रकार अनुवाद का क्षेत्र भी सीमाओं में नहीं बांधा जा सकता है। अनुवाद एक भाषिक भी हो सकता है और द्विभाषिक भी। अनुवाद के साथ-साथ निर्वचन भी एक उपशाखा के रूप में प्रचलित है, निर्वचन में अनुवाद के लिए काफी समय नहीं निलता है, एक व्यक्ति के भाषण या विचार या अनुभव को तत्काल उस भाषाभिव्यक्ति को अनुदित कर अन्य भाषा के श्रोतागण तक पहुँचाया जाता है। वक्ता के बीच अनुवादक निर्वचन कार्य करता है, निर्वचन कार्य करने वाले व्यक्ति को दोनों भाषा, संस्कृति, सामाजिक परंपरा, साहित्य और भाषाई भूगोल के बारे में संपूर्ण ज्ञान होना अनिवार्य है, तभी वह निर्वचन का कार्य सार्थक रूप में कर सकता है, अन्यथा वह सार्थक अनुवाद नहीं कर सकता, आज के समय में अनुवाद एक संस्कृति सेतु के रूप में कार्य कर रहा है। प्रत्येदक देश, प्रदेश या भाषाई भूगोल अलग-अलग है मगर अनुवादक को, उस भाषाई भूगोल और उस प्रदेश की भाषा, उपभाषा, बोली, और भाषा परिवार की जानकारी के साथ-साथ, प्रत्येक प्रदेश की भाषा, भाषाविज्ञान की सामान्य जानकारी आवश्यक है।

भारत एक बहु-भाषिक देश है, यहाँ बहु संस्कृति भी है। अलग-अलग राज्य और प्रदेश में वहाँ की सामाजिक - संस्कृति, आचार-विचार उस प्रदेश की भाषा में संरक्षित है। इन तमाम संस्कृति या आचार- विचार और ज्ञान संपदा से परिचित होने के लिए या उस ज्ञान प्राप्ति के लिए एक मात्र माध्यम है, अनुवाद वैश्विक परिदृश्य में या विश्वग्राम की जो संकल्पना या परिकल्पना हो रही है इस परिकल्पना या संकल्पना में अनुवाद की प्रासंगिकता अवश्य है। अनुवाद एक भाषिक प्रक्रिया होने के कारण अनुवाद का भाषा ही नहीं भाषाविज्ञान से भी गहरा संबंध है। भाषा के ध्वनि, शब्दि, रूप वाक्य आदि अनेक स्तर होते हैं, जो मिलकर उसे एक सुगठित इकाई के रूप में गठित करते हैं। अनुवादक को भाषा की इन सभी स्तरों का ज्ञान होना भी आवश्यक है, तभी

अनुवादक सार्थक रूप में एक भाषा में रचित सामग्री को दूसरी भाषा की भाषिक प्रकृति के अनुरूप उसे अनुदित कर सकता है। अनुवाद करते समय अनुवादक को यह जानकारी होनी चाहिए कि अनुवाद करते समय भाषिक तत्वों में परिवर्तन हो सकता है। मगर अर्थ में परिवर्तन नहीं। प्रत्येवक भाषा की अपनी भाषिक प्रकृति होती है। उस भाषा के शब्द, ध्वानि, रूप, रूपिम, वाक्यं, अर्थ, शब्दकोश उस भाषा की भाषिक संरचना उस भाषा की प्रकृति के अनुरूप निर्धारित होते हैं। प्रत्येक भाषा की भाषिक संरचना से संबंधित ज्ञान अनुवादक को अगर अच्छा ज्ञान है, तो वह सही रूप में सार्थक अनुवाद कर सकता है और सार्थक अनुवाद के रूप में भी जाने जाते हैं।

अनुवाद करते समय अनुवादक को कई समस्याओं को झेलना पड़ता है। अनुवादक इन सारी समस्याओं से अज्ञात है, तो वह अनुवाद नहीं कर पाता है। अनुवाद करते समय अनुवादक के समक्ष भाषावैज्ञानिक अध्ययन की समस्या, संरचना के अर्थ पक्ष की समस्या, भाषेतर संदर्भ की समस्या, विशिष्ट प्रयोग क्षेत्र की समस्या, क्षेत्र रूपांतरण की समस्या, सांस्कृतिक रूपांतरण की समस्या, भाषा प्रकार संबंधित समस्याएं आती हैं। आज इस बात पर भी बल दिया जा रहा है कि हिंदीतर, प्रदेशों में हिंदी का शिक्षण करते समय उस प्रदेश की भाषा में सृजित साहित्य के हिंदी अनुवादकों को भी पाठ्यक्रम में स्थान मिलना चाहिए। दक्षिण भारत में मुख्य रूप से चार भाषाएँ प्रचलित हैं। इन चारों भाषाओं की अपनी भाषिक प्रकृति अलग है, भले ही इन चारों भाषाएं द्रविड़ भाषा परिवार की भाषा है और इन चारों भाषाओं की लिपि भी अलग-अलग है। आज प्रत्येक भाषा में निरंतर अनुवाद हो रहे हैं और अनुवादक परिश्रम से कन्नड़ से हिंदी में, और हिंदी से कन्नड़ में सार्थक रूप से अनुवाद कर रहे हैं। कन्नड़ और हिंदी दोनों की भाषा भूगोल अलग है और दोनों भाषाओं पर संस्कृत भाषा का प्रभाव है, इसलिए कन्नड़ से हिंदी में अनुवाद करते समय उतनी समस्याएँ नहीं होती जितनी अन्य भारतीय भाषाओं में होती है। कन्नड़ और हिंदी दोनों समृद्ध भाषा है, दोनों के शब्द भण्डार भी समृद्ध है, फिर अनुवाद करते समय कुछ सांस्कृतिक, एवं क्षेत्र रूपांतरण की समस्याएँ आती हैं, पूरे भारत में सभी भाषाओं की साहित्यिक रचनाओं का हिंदी और अंग्रेजी में अनुवाद हो रहे हैं, इससे बहु-भाषिक समाज को ज्ञान के विविध क्षेत्र से संबंधित सभी सूचनाएँ सभी भाषा के पाठक वर्ग को आसानी मिल रही है।

अनुवाद के माध्यम से विश्व के तमाम साहित्य संस्कृति, ज्ञान-विज्ञान, भाषा संबंधित सभी प्रकार के ज्ञान से पाठक और समाज के सामान्य व्यक्ति परिचित हो रहे हैं। अनुवाद विविध देशों की संस्कृति और आचार-विचार से परिचय कराने का एक सशक्तय माध्यम के रूप में उभरकर आ रहा है। ज्ञान-विज्ञान, सूचना प्रौद्योगिकी, फिल्म, मिडिया, टी.वी. चैनलों के बीच अनुवाद एक सेतु के रूप में कार्य कर रहा है। विश्व ग्राम की जो संकल्पना है, उसे साकार करने में अनुवाद की अहम भूमिका है।

अनुवाद केवल भारत में ही नहीं विश्व के तमाम देशों की संस्कृति, साहित्य, ज्ञान, विज्ञान, सामाजिक नीति, रीति, रिवाज से परिचय कराते हुए, अनेकता में एकता का भाव जगाते हुए विश्व बंधुत्व की ओर अग्रसर है। अनुवाद में विश्वग्राम की परिकल्पाना को साकार करने की क्षमता है।

स्रोत भाषा में निहित बौद्धिक संपदा को लक्ष्य भाषा की भाषिक प्रकृति के अनुरूप उस बौद्धिक संपदा को लक्ष्य भाषा के पाठक वर्ग को परिचित कराना अनुवाद की अहम भूमिका है। विश्व के तमाम देशों के साहित्य, संस्कृति, ज्ञान, भाषा, बोली, उन समुदायों की कला कृति, आचार-विचार से संबंधित ज्ञान से परिचित होने के लिए अनुवाद एक माध्यम के रूप उपस्थित होकर सभी पाठक वर्ग को ज्ञान का अनुभव कराता है। इसलिए अनुवाद एक कला भी है, और विज्ञान भी। प्रत्येक भाषा के अनुवादक अपने भाषा भूगोल, साहित्य, संस्कृति चिंतन-मनन, उस भौगोलिक विशिष्टता, प्राकृतिक संपदा, से संबंधित सभी विचारों को उस प्रदेश के साहित्यककार अपनी मातृभाषा, या प्रादेशिक भाषा में रचना करते या लिखकर सुरक्षित रखते हैं, और उन तमाम रचनाओं का अनुवाद वहाँ के साहित्यकार या अनुवादक जो दोनों भाषाओं के भाषिक संरचना और भाषा विज्ञान के ज्ञाता है, उसे अनुवाद कर देश के और विदेश के तमाम पाठकों को उस ज्ञान से परिचय कराता है। इसलिए आज विश्वँग्राम की जो संकल्पना है, इस संकल्पना को साकार करने में अनुवाद की एक महत्वपूर्ण भूमिका बनती है। इसलिए आज के वैश्विक परिदश्य में अनुवाद की प्रासंगिकता है।

संदर्भ -

1. कृष्ण कुमार गोस्वामी-1985, अनुवाद : सिद्धांत और समस्याएँ, दिल्ली
2. प्रो. दिलीप सिंह-अनुवाद समस्या की व्यापक समीक्षा (लेखन)
3. अय्यर, विश्व नाथ- 1958 अनुवाद- भाषाएँ-समस्याएँ, तिरूअनंतपुरम : स्वति प्रकाशन

ISSN 2278 - 0327

नव्यनैयायिक परम्परा में आचार्य जगदीशतर्कालंकार एवं उनका योगदान

डॉ. संजय कुमार दुबे
एसोसिएट प्रोफेसर
रविन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय, भोपाल

आचार्य जगदीशतर्कालंकार का जीवनपरिचय-

भारतीयदर्शनशास्त्र में न्याय-वैशेषिक-संयुक्त-परम्परा के आचार्यों की एक लम्बी शृंखला है उसी शृंखला में एक उज्ज्वल नक्षत्र की तरह देदीप्यमान होने वाले आचार्य जगदीशतर्कालंकार है। वह नवद्वीप की परम्परा में महामहिम नव्यनैयायिक है। इनका वैदुष्य बहुमुखी था। इन्होंने बहुत बड़े-बड़े ग्रन्थों की रचना की है, परन्तु बहुज्ञ अध्येताओं के लिये अध्ययन सामग्री प्रस्तुत करते समय अल्पज्ञ अध्येताओं को विस्मत नहीं किया। उनके योग्य अध्ययन सामग्री सुलभ करने के उद्देश्य से स्वल्पकाय ग्रन्थों की भी रचना की। ऐसे महान् नव्यनैयायिक जिन्होंने अपना पूरा जीवन शास्त्रीय परम्परा के लिये समर्पित कर दिया, किन्तु स्वयं के बारे में कोई उल्लेख तक नहीं किया। इस महान् नव्यनैयायिक के विषय में जो भी जानकारी समकालीन साहित्य एवं इनके वंशजों के माध्यम से प्राप्त होती है वह निम्न प्रकार है -

आचार्य जगदीश का कुलपरिचय एवं वंशधारा -

नवद्वीप के प्रसिद्ध महामहिम नव्यनैयायिक आचार्य जगदीश के विषय में नवद्वीप में रहने वाले उनके वंशधरों से उनके श्रेष्ठ कुल और उसकी परम्परा के विषय में जानकारी मिलती है कि वह काश्यप गोत्रीय यजुर्वेदी ब्राह्मण थे। इनके समस्त धार्मिक क्रिया-कलाप मैथिल जैसे सम्पादित होते थे। वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्य सनातनमिश्र के प्रपौत्र ही आचार्य जगदीश थे। आचार्य जगदीश के वंशधरों द्वारा प्रदत्त वंशनामावली को प्रमाणिक रूप से स्वीकार करते हुये यह कह सकते हैं कि श्री बट्टेश्वरमिश्र के पुत्र सनातनमिश्र, इनके पुत्र माधवमिश्र, इनके पुत्र यादवविद्यावागीश (नैयायिक) थे। विद्यावागीश के पाँच पुत्र हुये - रामचन्द्र भट्टाचार्य, षष्ठीदाश न्यायवागीश, जगदीश तर्कालंकार, लक्ष्मण और वाणीनाथ। आचार्य जगदीश का जन्म नवद्वीप में हुआ वे अपने पिता यादवचन्द्रविद्यावागीश की तृतीय सन्तान थे। जब आचार्य जगदीश पाँच वर्ष के थे तभी आपके पिता का स्वर्गवास हो गया था। आपका लालन-पालन ज्येष्ठ भ्राता षष्ठीदाशन्यायविद्यावागीश ने किया था। आचार्य जगदीश बाल्यकाल में ही मल्लविद्या में प्रवीण हो गये थे। लेकिन गलत संगति के कारण वह काफी समय अध्ययन से दूर रहकर देशभ्रमण करते रहे। एक बार जब वह अठारह वर्ष के आसपास रहे होगें तो शिकार खेलने के लिये तालाब के किनारे एक वटवक्ष के ऊपर चढ़े तो वहाँ एक विषैला सर्प बैठा था वह पूरे वेग से आचार्य जगदीश पर वार करता है। जैसे ही आचार्य जगदीश की नजर इस सर्प पर पड़ी तो वह उसे मारने के लिये निर्भीक होकर उस पर मुष्ठी से वार करने लगे और उसे पकड़ कर दूर फेंक देते हैं। उनकी इस निर्भीकता को देखकर एक सन्यासी उनके पास आकर उन्हें उपदेश देता है, जिसके फलस्वरूप आचार्य जगदीश शीघ्र ही अपने दुर्गुणों से सन्यास ग्रहण लिया और सतत अध्ययन प्रारम्भ कर दिया। इस अध्ययन के दौरान रात्रि में निद्रा के कारण अध्ययन बाधित न हो इसके लिये वह अपनी कुटीर के स्तम्भ में अपनी शिखा को रस्सी से बांध देते थे। ताकि यदि निद्रा आये तो शिखा के खींचने से निद्रा बाधित होने पर पुन: विद्या अभ्यास शुरू कर देते थे। निर्धनता के कारण तैल खरीदने में असमर्थ होने पर वह दिन में बांस के पत्तों को इकट्ठा कर रात्रि काल में एक-एक पत्ते को प्रज्वलित कर उसके प्रकाश में पुस्तकवाचन किया करते थे।

इस तरह के गहन विद्याभ्यास से दो तीन वर्ष के अंदर ही उन्होंने व्याकरण, काव्य, और कोश का ज्ञान अर्जित कर लिया। ऐसा नवद्वीप में कहा जाता है कि जो प्रारम्भ में नवद्वीप में जगा-जगा नाम से प्रसिद्ध थे, वह अब जगु फिर जगदीश भट्टाचार्य के नाम से प्रसिद्ध हो गये। आचार्य जगदीश न्यायशास्त्र के अध्ययन के लिये उस समय विद्वानों के तिलकशिरोमणि कहे जाने वाले

भावानंदसिद्धान्तवागीश के यहाँ चतुष्पाठी में प्रवेश लेकर अध्ययन प्रारम्भ करते हुये अपनी तर्कबुद्धि के बल पर कुछ ही समय में छात्रों के बीच एक विशेष स्थान प्राप्त कर लिया हैं। एक बार सांध्योपासना के समय आचार्य भावानंद ऐसे ही शास्त्रार्थ शुरू जिसमें पूर्वपक्ष वादी के रूप में आचार्य जगदीश के कलगम्भीर स्वर को सुनकर आचार्य भावानंद अपनी भार्या से पूछते है कि यह गम्भीर स्वर किसका है तो भार्या ने कहा कि नवद्वीप में पहले जगा-जगा के नाम से प्रसिद्ध आज जगु-जगु नाम से जाना जाने वाला जगदीश है। इतना सुनकर आचार्य भावानंद आनंदविभोर होकर बोले -

आदौ जगा जगु: पश्चात् जगाजगुरत: परम्।
अधुना ज्ञानसम्पत्त्या जगदीशायते जगा:।।

आचार्य जगदीश ने अपनी कुशाग्र बुद्धि के कारण अल्पकाल में ही अध्ययन समाप्त कर अपने गुरु द्वारा प्रदत्त 'तर्कालंकार' की उपाधि को प्राप्त कर अध्ययन अध्यापन शुरू कर दिया।[1]

आचार्य जगदीश के दो पुत्र हुये- रुद्रेश्वर और रघुनाथ। रुद्रेश्वर आचार्य जगदीशकत 'शब्दशक्तिप्रकाशिका' के टीकाकार है। आचार्य जगदीश के पुत्र रघुनाथ ने मूलतत्त्वचिन्तामणि ग्रन्थ की संक्षिप्त टीका की थी, जिसके कुछ विछिन्न अंश हमें आज तर्कतीर्थ के घर में सुरक्षित मिलते हैं। इस ग्रन्थ की उपलभ्यमान पुष्पिकायें निम्नप्रकार हैं

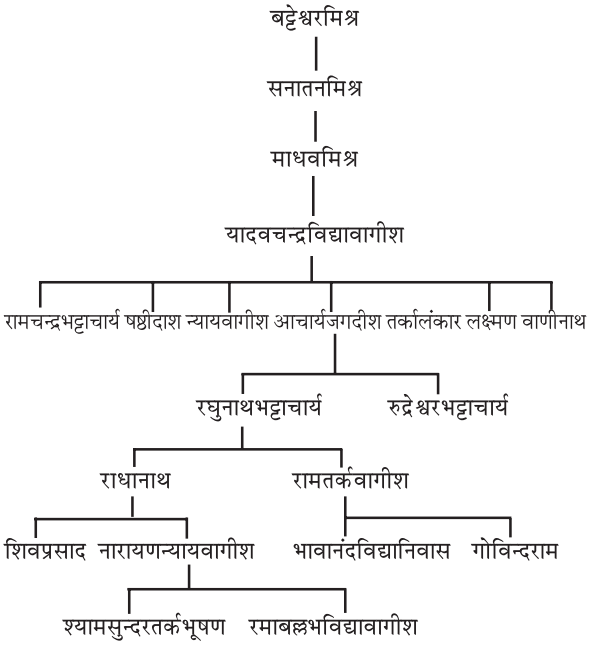
श्रीमतारघुनाथेन तर्कालंकारसूनुना।
पक्षतापरमूलस्य निगूढार्थ: प्रकाश्यते।।[2]

इति परामर्शमूलटिप्पणी समाप्ता। श्रीरामशर्मण: साक्षरमिदं पुस्तकं च । 30 ज्येष्ठो शक 1588 ।[3]

इति श्रीरघुनाथभट्टाचार्यविरचिता केवलान्वयिमूलटिप्पणी समाप्ता। श्री रामशर्मण: साक्षरमिदम्।[4]

उक्त विवेचन से यह प्रमाणित होता है कि रघुनाथ भट्टाचार्य और कोई भिन्न उपाधि नहीं थी। इनके दो पुत्र हुये- राधानाथतर्कवाचस्पति और रामतर्कवागीश। राधानाथ के दो पुत्र हुये - शिवप्रसाद और नारायणन्यायवागीश। नारायणन्यायवागीश के दो पुत्र हुये श्यामसुन्दरतर्कभूषण और रमाबल्लभविद्यावागीश। रमाबल्लभ एक प्रसिद्ध नव्यनैयायिक थे। रघुनाथ के कनिष्ठ पुत्र रामतर्कवागीश के दो पुत्र हुये भावानंद विद्यानिवास और गोविन्दरामविद्यालंकार। वर्तमान में यह कनिष्ठ वंशधारा विद्यमान नहीं है। इस गौरवशाली वंशपरम्परा को वंशवक्ष के माध्यम से निम्न प्रकार समझा जा सकता है

आचार्य जगदीश तर्कालंकार की वंशपरम्परा का वंशवक्ष



इस तरह यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि आचार्य जगदीश की वंशधारा ने अपने वंश की कीर्ति को उज्ज्वल किया है। वर्तमान में यह धारा भले ही प्राप्त नहीं होती लेकिन अपनी ज्ञानराशि के कारण यह आज भी जीवंत है। आचार्य जगदीश का

अभ्युदयकाल -

आचार्य जगदीश अपने समय के विषय में स्वयं कोई जानकारी नहीं दी है। लेकिन अन्य स्रोतों से प्राप्त प्रमाणों के आधार पर आचार्य का कालनिर्धारण किया जा सकता है, जो इस प्रकार है

(1) आचार्य गंगेशकत तत्त्वचिन्तामणि के किसी अंश पर आचार्य जगदीश के पुत्र रघुनाथ ने व्याख्या की थी। इस व्याख्या के लेखक श्री रामशर्मा नि:सन्देह रघुनाथ के द्वितीय पुत्र रामतर्कवागीश है। इसकी पुष्पिका में लिखा है

इति श्रीरघुनाथशर्मणा विरचिता पाठ्यकेवलव्यतिरेकिमूल-टीकासमाप्ता। श्रीरामशर्मण: स्वाक्षरमिदं पुस्तक च 30 ज्येष्ठ 1588 शकाब्द । (1656-66 ए. डी.)

उक्त पुष्पिका के लिपिकाल में रघुनाथशर्मा जीवित थे। ऐसा लगता है कि प्राय: उस समय उनके पिता आचार्य जगदीश जीवित नहीं थे। इस आधार पर पितामह जगदीश का समय 1600 ए. डी. के आसपास निर्धारित होता है।

(2) नवद्वीप के आचार्य नाथ चूडामणि कत 'विवाहतत्तार्णव' नामक ग्रन्थ की एक मूल्यवान प्रतिलिपि जो 1461 शकाब्द में

सत्यव्रत सामश्रमी महोदय ने संग्रह की थी। जिसके एक प्रक्षिप्त पत्र में श्री जगदीशशर्मा सुतकुमार का जन्मपत्र है जिसका काल 1466 शकाब्द (1574 ए. डी.) है। यह आचार्य जगदीश के ज्येष्ठ पुत्र का जन्मपत्र हो सकता है। इसके आधार पर आचार्य जगदीश का समय 1540–50 ए. डी. के मध्य माना जा सकता है।

(3) आचार्य रघुनाथशिरोमणि कत अनुमानदीधितिटीका पर आचार्य जगदीशकत अनुमानजागदीशीटीका की एक पाण्डुलिपि कलकत्ता में श्री हरप्रसाद शास्त्री जी के पैतक पाण्डुलिपि संग्रह से प्राप्त होती है, जिसके अन्त में एक पुष्पिका है –

इति सकलनवद्वीपाध्यापकाग्रगण्य–महामहोपाध्याय श्रीयुतजगदीशतर्कालंकार विरचिता द्वितीयमणिदीधिति पूर्वखण्डसमाप्ता।

इस पुष्पिका के अन्त में प्राप्त एक श्लोक का प्रथम चरण है –'शय–त्रिपुरवैरिदक्–शर–परिन्दुसंख्ये शके।' अर्थात् शय का अर्थ– दो हाथ, त्रिपुरवैरिदक् –तीन शिवनेत्र, शर–पाँच, इन्दु–एक अत: 1532 शकाब्द। (1610 ए.डी.) यह प्रतिलिपि आचार्य जगदीश के जीवनकाल में ही उनके परम भक्त शिष्य श्री विष्णुशर्मा ने की थी।[5]

उक्त तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आचार्य जगदीश का कार्यकाल 1550–1600 ए. डी. के मध्य रहा होगा जो आचार्य के गुरु श्री रामचन्द्रसार्वभौम और ज्येष्ठ सतीर्थमथुरानाथतर्कवागीश के कालनिर्णय के साथ पूर्णरूप से मेल खाता है।

आचार्य जगदीश का कृतित्त्व–

आचार्य जगदीश नवद्वीप के प्रतिष्ठित नव्यनैयायिक थे। इन्होंने बड़े–बड़े शास्त्रीय ग्रन्थों की रचना के साथ ही साथ प्राथमिक स्तर के न्यायशास्त्रीय ग्रन्थों की भी रचना की जो न्यायशास्त्र में प्रवेश पाने वाले अभ्यार्थियों के एक सुबोध साधन साबित हुये। आचार्य जगदीश द्वारा विरचित ग्रन्थ निम्नानुसार है –

(1) मयूखटीका। (आचार्य गंगेश कत तत्त्वचिन्तामणि मूल ग्रन्थ पर टीका) (2) जागदीशीटीका। (आचार्य रघुनाथ की तत्त्वचिन्तामणि दीधितिटीका पर टीका ग्रन्थ) (3) सूक्तिटीका। (प्रशस्तपादाचार्य के पदार्थधर्मसंग्रह पर टीका) (4) दीधितिटीका। (बल्लभाचार्य कत न्यायलीलावती पर टीका)

(5) शब्दशक्तिप्रकाशिका। (न्याय की दृष्टि से शब्दशक्ति पर विचार)

(6) तर्कामत। (न्यायशास्त्र में प्रवेश पाने वाले प्रारम्भिक छात्रों के लिये प्रकरण ग्रन्थ) (7) न्यायादर्श।

(1) मयूखटीका –

आचार्य जगदीश ने नव्यन्याय जैसे गूढ विषय को अध्येताओं के लिये सरल और सुबोध बनाने के उद्देश्य से नव्यन्याय के प्रवर्तक आचार्य गंगेशोपाध्यायकत तत्त्वचिन्तामणि मूलग्रन्थ के चारों खण्डों (प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द) पर मयूख टीका की रचना की। जो निम्नप्रकार है –

प्रत्यक्षमयूखटीका – इस खण्ड का मंगलवाद मात्र कलकत्ता संस्कत कॉलेज में प्रतिलिपि के रूप में प्राप्त होता है जिसमें ग्रन्थारम्भिक श्लोक है –

श्रीसार्वभौमस्य गुरो: पदाब्जं विद्यार्थिनां कल्पतरो: प्रणम्य ।
विनिर्मित: श्री जगदीश–विज्ञैर्विद्योततामाद्यमणेर्मयूख: ।।

अनुमानमयूखटीका – इस खण्ड की एक सम्पूर्ण पाण्डुलिपि मद्रास के विख्यात पाण्डुलिपि संग्रह में सुरक्षित है।[6] तन्जौर के सरस्वती महल पुस्तकालय में एक खण्डित पाण्डुलिपि मिलती है।[7] इसके आरम्भ में इतर श्लोक दष्टिगोचर होते हैं –

द्वितीयचिन्तामणिसूक्तिरर्णप्रकाशिता श्रीजगदीशशर्मणा।
तथैव धीरा: परिशीलयन्तु चिन्तामणे ज्ञानमभीप्सवो यदि।।

इत्यानुमानमयूखे हेत्वाभासप्रसर: । यही 'मूलजाटी' अवयव का कुछ अंश माथुरी साथ मुद्रित हुआ है।[8] उपमानमयूखटीका– तत्त्वचिन्तामणि के ततीय खण्ड की अतिदुर्लभ टीका का एक पत्र मात्र तर्कतीर्थ के घर में मिलता है जिसका आरम्भिक श्लोक – 'सखितानन' उसके बाद इतर श्लोक 'उपमानं निरूप्यते'।

शब्दमयूखटीका – इसकी पाण्डुलिपि तर्कतीर्थ महाशय के घर पर मिलती है जिसका आरम्भिक श्लोक है –

प्राच्यैरनुचितविविधक्षोदै: कलुषीकतो ष्यधुना।
दीधितियुतमणिरेष श्रीजगदीशकत: स्फुरतु ।।

(2) जागदीशीटीका –

आचार्य जगदीश कृत जागदीशीटीका या दीधितिटीका आचार्य गंगेशोपाध्यायकृत तत्त्वचिन्तामणि पर आचार्य रघुनाथशिरोमणिकृत दीधितिटीका के ऊपर टीका है। यह टीका न्यायशास्त्र के आचार्यों में अतिप्रतिष्ठ है। जागदीशीटीका दो प्रकरणों में प्राप्त होती है – प्रत्यक्षदीधिति या प्रत्यक्षजागदीशी और अनुमानदीधिति या अनुमानजागदीशी।

प्रत्यक्षदीधितिटीका – इसकी एक मात्र खण्डित प्रतिलिपि मिलती है।[9] जिसका आरम्भिक श्लोक है

अनुचिताविविधक्षोदैरतिशय – कलूषीकतमपरै: ।
मणिदीधितिमुज्वलयति श्रीजगदीशो गुरुपदेशेन।।

अनुमानदीधितिटीका – यह ग्रंथ आचार्य जगदीश का सर्वश्रेष्ठ

ग्रन्थ है जिसका आज भी भारतवर्ष में सर्वत्र अंशत: पठन-पाठन में उपयोग होता है। यह चौखम्बा ग्रथांलय बनारस से मुद्रित भी है। भारत में समस्त दीधिति टीकाओं में से अनुमानदीधितिटीका या जागदीशीटीका सर्वाधिक प्रचार-प्रसार हुआ। यह न्यायदर्शन परम्परा में एक प्रतिष्ठित ग्रन्थ है।

(3) न्यायलीलावती दीधिति टीका -

यह बल्लभाचार्य कत न्यायलीलावती पर न्यायलीलावती-दीधितिटीका एक टीका ग्रन्थ है जो वैशेषिकदर्शन से संबंधित एक अतिदुर्लभ ग्रन्थ हैं। इसकी एक अपूर्ण पाण्डुलिपि राजेन्द्रलाल मिश्र के यहाँ मिलती है । इस ग्रन्थ का आरम्भिक श्लोक है -

कर्पूरकुन्दकुमूद- कैलासोदर-सोदरम् ।
विघ्नविंध्वंसकं धाम नमाम: शैवदैवतम्।।
कणभक्षमुनि: पक्षरक्षाविन्स्तवासना।
वचांसि जगदीशस्य चिन्तयन्तु विलक्षणा:।।

(4) सूक्तिटीका -

यह टीका ग्रन्थ प्रशस्तपाद कत पदार्थधर्मसंग्रह पर लिखा गया है। यह दो प्रकरणों में प्राप्त होता है- द्रव्यसूक्ति और गुणसूक्ति। द्रव्यसूक्ति - यह ग्रन्थ मूलत: वैशेषिक भाष्य की टीका है जिसका प्रकाशन कोलकाता संस्कत साहित्य परिषद् से हुआ है।

गुणसूक्ति - इस ग्रन्थ का उल्लेख नवद्वीप गौरव संकर तर्कवागीश के घर से मिली एक पुस्तक सूची में मिलता है।

(5) शब्दशक्तिप्रकाशिका -

यह मौलिक ग्रन्थ लम्बे समय तक नवद्वीव के प्रत्येक चतुष्पाठी विद्यार्थी को बडे आदर से पढ़ाया जाता रहा है। रामभद्र सिद्धान्तवागीश और कृष्णकान्त विद्यावागीश की टीका के साथ यह चौखम्भा ग्रन्थालय काशी से प्रकाशित (1673) हुआ। इस ग्रन्थ में अनेक ग्रंथों तथा ग्रन्थकारों के वचन एवं व्याकरण की अनेक कारिकायें उद्धत की गयी हैं। इसमें दो महत्त्वपूर्ण निर्देश मिलते हैं।

कर्मप्रकरण - इस प्रकरण में दिवाकरवर्द्धमान और मीमांसा राजशेखर का संदर्भ उद्धत और अलोचित हुआ है कि दिवाकर और राजशेखर आचार्य गंगेश के पूर्ववर्ती है।

कारकप्रकरण - इस प्रकरण में एक कारिका भर्तहरि के नाम से उद्धत हुयी है जो निश्चित रूप से भर्तहरि की नहीं है। यह है -

हन्ते: कर्मण्युपष्टम्भात् प्रातुमर्थे तु सप्तमीम् ।
चतुर्थी बाधिकामाहुश्चर्णि-भागुरि-वाग्भटा: ।।[10]

यह अद्भुत कारिका आचार्य जगदीश के ग्रन्थ से भिन्न अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलती है। इस कारिका में उक्त वाग्भट भर्तहरि के परवर्ती शब्दशक्तिप्रकाशिका नामक ग्रन्थ में न्यायमत में व्याकरण के समस्त विषय का अतिसूक्ष्म विचार पूर्वक विश्लेषण हुआ है। किन्तु वैयाकरणों के मत में अनेक स्थानों पर घोर विरोध देखने को मिलता है। इसमें सन्देह नहीं की जब यह ग्रन्थ लिखा गया होगा तब बंगदेश में पाणिनि की चर्चा प्राय: लुप्त हो चुकी होगी।

(6) तर्कामत -

आचार्य जगदीशकत तर्कामत नामक ग्रन्थ न्याय-वैशेषिक-संयुक्त-परम्परा में प्रवेश पाने वाले अध्येताओं के लिये उद्दिष्ट है। इस परम्परा की मोक्षोपयोगी विचारधारा के अंतर्गत सरल एवं सुबोध रीति से पदार्थनिरूपण एवं प्रमाणज्ञान कराने वाला स्वल्पकाय एक प्रकरण ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ दो प्रकरणों में है-

(1) प्रमेय प्रकरण (2) प्रमाण प्रकरण ।

प्रमेय प्रकरण - इस प्रकरण के अंतर्गत भाव और अभाव के रूप में पदार्थों का द्विविध वर्गीकरण कर न्याय-वैशेषिक-दर्शन-परम्परा के अंतर्गत सप्तपदार्थों (द्रव्य, गुणादि) का उनकी विशेषताओं के आधार पर अत्यन्त सरल और सुबोध रीति से वर्णन किया गया है।

प्रमाण प्रकरण - इस प्रकरण के अंतर्गत न्यायदर्शनपरम्परा में मान्य चार प्रमाणों (प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द) का वर्णन किया गया है। इन प्रमाणों के ज्ञान को सरल और सुबोध बनाने के लिये शास्त्रार्थ आदि का उल्लेख न करते हुए उनका सरल रूप वर्णन किया गया है। शब्दादि प्रमाण के बाद नव्यन्याय की शाब्दबोधप्रकिया का वर्णन संक्षिप्त एवं सरल रूप से नव्यन्याय के विद्यार्थियों के ज्ञान के लिये किया गया है।

इस ग्रन्थ में वैशेषिकदर्शन के विशेष पदार्थ तथा वैशेषिक दर्शन में अस्वीकत उपमान और शब्द प्रमाण का प्रतिपादन करने के कारण न्याय और वैशेषिक का मिलित प्रकरण ग्रन्थ माना जाता है। यह ग्रन्थ न्यायशास्त्र में प्रवेश पाने वाले छात्रों को प्राथमिक स्तर पर आज भी भारतवर्ष में पढाया जाता है। इस ग्रन्थ पर परवर्ती काल में कई टीकायें लिखी गयी जिनमें प्रमुख है

तर्कामततरङ्गिणी - श्रीमुकुन्द भट्ट।

चषकतात्पर्यटीका - श्री गंगारामजाटी।

तर्कामत नामक ग्रन्थ भारतवर्ष के कई स्थानों से प्रकाशित है। जैसे -चौखम्भा प्रकाशन बनारस, परिमलप्रकाशन, नई दिल्ली, राष्ट्रीयसंस्कृतसंस्थान, नई दिल्ली और नागपब्लिर्स, नई दिल्ली आदि। इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में विस्तत अध्ययन अगले अध्यायों में करेगें।

(7) न्यायादर्श –

नवद्वीप से प्राप्त इस ग्रन्थ की दो प्रतिलिपियों [11] का परीक्षण किया जाये तो वे केवल कारणविचार तक ही हैं। इनका आरम्भिक पंक्ति हैं –

कर्पूरकुन्दप्रवत्ति विध्वंसकं शिवः। (पाठान्तर कैलासोदरसोदरम् ।)
अन्यैरनुचितविविधक्षोदैः कलुषीकतः कविभिः ।
न्यायादर्श इदानीं जगदीशप्रकाशितः स्फुरतु ।।
यन्मादशे समुपदिष्टमजुष्टमन्यैः।
श्रीसार्वभौमगुरुणा करुणामयेन।
सिद्धान्तसारमिदमादरतः तदद्य,
विद्यार्थिनां गुणकते प्रकते वदामः।।

कारणताविचार –

इस ग्रन्थ को न्यायादर्श का ही एक परिच्छेद माना जाता है। इसका प्रथमांश 'वादवादिधि' (31 वीचि) चौखम्भा ग्रंथालय से प्रकाशित है। विद्वानों के द्वारा ऐसा अनुमान किया जाता है कि आचार्य जगदीश के जितने भी क्षुद्र ग्रन्थ मिलते हैं वह न्यायादर्श नामक ग्रन्थ के ही परिच्छेद है। जैसे उपदेशविचार और जातिवासकव्यवस्था आदि।

आचार्य जगदीश की उपर्युक्त कतियों के वैविध्य गाम्भीर्य और मौलिकता को देखते हुये आचार्य जगदीश का वैदुष्य स्वतः ही दर्पण की तरह स्पष्टतः प्रतिभासित हो जाता है। आचार्य जगदीश ने न केवल न्याय और वैशेषिक दर्शन पर ही ग्रन्थों का प्रणयन किया बल्कि अन्य विषयों पर भी गम्भीर ग्रन्थों का प्रणयन किया है। आचार्य जगदीश के ग्रन्थों का सूक्ष्मावलोकन करने से जगदीश का न केवल न्यायशास्त्राभिज्ञत्व स्पष्ट होता है बल्कि तन्त्र, ज्योतिष, कर्मकाण्ड, मीमांसा और पुराणादि वैदुष्य भी ज्ञात होता है। मूलतः न्यायविद्या से सम्बद्ध ग्रन्थों में भी प्रसङ्गानुसार तत्तत् विषयों का जैसा गहन विवेचन है, वह इसी ओर संकेत करता है।

न्यायवैशेषिकदर्शनपरम्परा में आचार्य जगदीश की प्रतिष्ठा –

नवद्वीप में नव्य नैयायिकों की एक प्राचीन परम्परा है, जिसके सूत्रधार आचार्य रघुनाथ शिरोमणि को कहा जाता है। इस परम्परा में श्रीधराचार्य, श्रीहर्ष, भवानंदतर्कवागीश और गदाधर भट्टाचार्य जैसे महान् आचार्य हुये हैं। आचार्य जगदीश भी इसी परम्परा के प्रतिष्ठित आचार्य हैं, जिसकी पुष्टि उनको प्राप्त 'जगत्गुरु' की उपाधि से होती है। जिसका उल्लेख तर्कतीर्थ महाशय के यहाँ से प्राप्त जागदीशीटीका की एक विलक्षण पुष्पिका में किया गया है – *इति गौडदेशान्तर्गतनवद्वीपनिवासोत्तर-वादिकतार्किकचूडामणि-जगद्गुरु-महामहोध्याय श्रीजगदीशतर्कालंकारभट्टाचार्यविरचितः पूर्वग्रन्थसमाप्तः।* विश्वेश्वर शर्मा द्वारा हस्ताक्षरित जागदीशी पोथी की पुष्पिका में कहा गया है कि – *इति महामहोपाध्यायजगद्गुरु – श्रीयुतजगदीशतर्कालंकारभट्टाचार्यविरचिता सामान्यलक्षणासु दीधिति टिप्पणी समाप्ता ।*

इससे यह सिद्ध होता है कि उस समय आचार्य जगदीश समकालीन नैयायिकों में सबसे प्रतिष्ठित पद पर आरूढ थे।

संदर्भ-सूची –

1. टीकाकार ढुण्डिराज शास्त्री, शब्दशक्तिप्रकाशिका भूमिका प. 3, चौखम्बा संस्कत सीरिज, बनारस, 1673।
2. मूलतत्त्वचिन्तामणि के पत्र 601 से उद्धृत है यह प्रतिलिपि तर्कतीर्थ के घर में सुरक्षित है। यह विवरण श्री दिनेशचंद्र भट्टाचार्य, बंगीय सारस्वत अवदान (बंगनव्यन्यायचर्चा), प.166, बंगीय साहित्यपरिषद्, कलकत्ता, 1785 ।
3. मूलतत्त्वचिन्तामणि के पत्र 150।1 पूर्ववत् ।
4. मूलतत्त्वचिन्तामणि के पत्र 123।2 पूर्ववत् ।
5. श्री किशोरनाथ झा, न्याय परिचय प.34 (हिन्दी रूपान्तर) चौखम्बा संस्कत सीरिज, बनारस, 1668
6. अनुमानमयूखटीका की पाण्डुलिपि, आर. 4026 पत्रसं. 136 मद्रास के पाण्डुलिपि संग्रहालय में है। उक्त विवरण अवतरित है- श्री दिनेशचंद्र भट्टाचार्य, बंगीय सारस्वत अवदान (बंगनव्यन्यायचर्चा) प. 166, बंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता, 1785।
7. अनुमानमयूखटीका की पाण्डुलिपि तन्जौर/p.p.4607/8 पत्रसं. 61, सरस्वतीमहल पुस्तकालय, तन्जौर, कर्नाटक।
8. प्रत्यक्षदीधितिटीका तर्कतीर्थमहाशय के घर में मिलती है जिसकी पत्र सं. 27। उक्त विवरण अवतरित है- श्री दिनेशचंद्र भट्टाचार्य, बंगीय सारस्वत अवदान, (बंगनव्यन्यायचर्चा) प.166, बंगीयसाहित्यपरिषद्, कलकत्ता, 1785 ।
9. न्यायलीलावतीदीधितिटीका की पाण्डुलिपि L. 1203 पत्रसं. 27, श्री राजेन्द्रमिश्र के पाण्डुलिपि संग्रहालय में सुरक्षित है। पूर्ववत् प. 167।
10. टीकाकार ढुण्डिराज शास्त्री, शब्दशक्तिप्रकाशिका, प. 386, चौखम्बा संस्कत सीरिज, बनारस, 1673।
11. न्यायादर्श की दो पाण्डुलिपि तर्कतीर्थ के घर में मिलती है। (पत्र सं.47 लिपिकाल 1627 शक)। श्री दिनेशचंद्र भट्टाचार्य, बंगीय सारस्वत अवदान (बंगनव्यन्यायचर्चा) प.166, बंगीयसाहित्यपरिषद्, कलकत्ता, 1785 7

ISSN 2278 - 0327

श्रव्यकाव्य में स्तोत्रकाव्य : एक अध्ययन

रंजेश्वर झा
संस्कृत विभाग
ललितनरायण मिथिला विश्वविद्यालय दरभंगा बिहार।

संस्कृत साहित्य भारतीय संस्कृति का साहित्य है। उसने भारतीय संस्कृति के विशुद्ध मूल स्वरूप को अपनी नानाविद्याओं के द्वारा प्रस्तुत किया है। समाज के मूल समस्याओं का चिन्तन तथा उसका समाधान संस्कृत काव्य के स्तोत्र एवं अन्य माध्यमों द्वारा व्याख्या किया गया; स्तोत्रकाव्य के मूलग्रन्थों एवं सन्दर्भित साहित्य का अध्ययन किया गया है।

संस्कृत का कवि अपनी कविता को कलात्मक वस्तु के समान सजाने तथा भूषित करने का अश्रान्त प्रयास करता है। संस्कृत काव्य शब्द की व्युत्पन्नता सम् उपसर्गपूर्वक कृ धातु से क्त प्रत्यय करने से 'सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे'[1] इस सूत्र से आभूषणार्थ में तथा 'संस्कृतं भक्षा:'[2] सूत्र से भाषार्थ में सिद्ध हुई एवं काव्य '*लोकोत्तर वर्णनानिपुण- कविकर्म काव्यम् वस्तुत:*'[3] काव्य तो कवि कर्म ही है- '*कवे: कर्म काव्यम्*'[4] कवि का कवित्व ही तो काव्य है। इस प्रकार संस्कृत भाषा में कवि के द्वारा लिखा गया ही संस्कृत-काव्य है। यद्यपि संस्कृत काव्य के विविध लाक्षणिक आचार्यों ने काव्य के लक्षण अपने- अपने लक्षणग्रन्थ में प्रतिपादित किये हैं। फिर भी आचार्य मम्मट दोष रहित शब्दार्थयुक्त गुणसहित तथा कहीं-कहीं अलंकार न रहने पर भी काव्य लक्षण स्वीकारे हैं।[5]

काव्यशास्त्रीय परम्परा में तीन दृष्टियों से काव्यभेद हैं-

(क) उपजीव्यकाव्य तथा उपजीवक/उपजीवितकाव्य। वाल्मीकि आदि प्रणीत उपजीव्यकाव्य एवं उपजीव्यकाव्य के अन्वेषण करने वाले भास कालिदास आदि का रचित काव्य उमजीवक/उपजीवितकाव्य है।[6]

(ख) ध्वनि (व्यंग्य) की दृष्टि से काव्य के तीन भेद होते हैं[7]- उत्तमकाव्य (ध्वनिकाव्य)[8], मध्यमकाव्य (गुणीभूतव्यंग्य काव्य)[9], अधमकाव्य (अव्यग्यकाव्य)[10]

(ग) बन्ध (रचना) की दृष्टि से काव्य के दो भेद है- प्रबन्धकाव्य एवं निर्बन्धकाव्य। जिस रचना में कथा की कम बद्धता हो। जैसे - नाटक, महाकाव्यादि वह प्रबन्ध काव्य है तथा जिस रचना में स्वच्छन्दरूप से किसी का कमहीन वर्णन हैं। जैसे मुक्तक आदि निर्बन्ध काव्य है। उपर्युक्त प्रबन्ध काव्य के दो भेद होते हैं-(1) दृश्यकाव्य तथा (2) श्रव्यकाव्य।[11] जिसका अभिनय किया जा सके, उसे दृश्यकाव्य कहते हैं, इसी को नटों द्वारा रूप के आरोप से रूपक भी कहा जाता है[12] जो केवल सुना जाय, जिसका अभिनय न हो सके, उसे श्रव्यकाव्य कहते हैं।[13] श्रव्यकाव्य के तीन भेद है-पद्य गद्य एवं मिश्र (चम्पूकाव्य)। श्रव्यकाव्य के भेदों मे पद्यकाव्य में ही खण्डकाव्य के प्रभेद स्तोत्रकाव्य है।[14] छन्दोबद्ध काव्य को पद्यकाव्य कहते हैं। इसके मुख्य दो भेद होते हैं- (क) महाकाव्य। यथा- रघुवंशादि एवं (ख) खण्डकाव्य। यथा- मेघदूतादि। गीतिकाव्य या स्तोत्रकाव्य- गेयात्मक छन्दों मे निबद्ध मेघदूत प्रभृति खण्डकाव्य की प्रसिद्धि गीतिकाव्य के रूप में है तथा शिवमहिम्न प्रभृति खण्डकाव्य की प्रसिद्धि स्तोत्रकाव्य के रूप मे है। गीतिकाव्य की विवेचन संस्कृत के काव्य लक्षणग्रन्थों मे अनुपलब्ध है। पाश्चात्य विद्वानों द्वारा लिखे गए संस्कृत साहित्य के अधिकतर इतिहास में गीतिकाव्य की चर्चा हुई, क्योंकि पाश्चात्य काव्यशास्त्र मे गीतिकाव्य का प्रमुख स्थान है।[15] 'ष्टुञ्' धातु से ष्टुन् प्रत्यय करने से व्युत्पन्न है- '*स्तूयते अनेन इति स्तोत्रम्*'[16] जिसका विषय प्रसन्नता शृंगार, नीति, भक्ति, श्रद्धा वैराग्य आदि है और जिनमें आत्माभिव्यंजन की प्रधानता है विषय वर्णन का नहीं। इन काव्यों को पाश्चात्य मनीषियों ने गीतिकाव्य /स्तोत्रकाव्य (Lyricalpoetry) कहा है।[17] निष्कर्षत: छन्दोबद्ध होने के कारण गेयात्मक होने पर किसी भी काव्य को स्तोत्र काव्य कह सकते हैं। जैसे- आलवन्दार स्तोत्रम् शिवहिम्न स्तोत्रम् आदि।

महाकवि कालिदास के अनुसार '*स्तोत्र कस्य न तुष्टये*'[18] अर्थात्- विश्व में ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है जो स्तुति से प्रसन्न न हो जाता हो। इसलिये विभिन्न देवताओं को प्रसन्न करने हेतु वेदों पुराणों तथा काव्यों में सर्वत्र सूक्त तथा स्तोत्र भरे पड़े हैं। संस्कृत

का स्तोत्र-साहित्य बड़ा ही विशाल, सरस तथा हृदयस्पर्शी है।

प्रत्येक धर्म में भक्त अपने हृदय की बाते भगवान् के सामने प्रकट करने तथा उनकी महिमा के वर्णन में अपने कोमल तथा भक्तिपूरित हृदय को अभिव्यक्त करता है, परन्तु हमारे भक्तों ने अपने हृदय की जितनी दीनता तथा, कोमलता का और भगवान् की उदारता का परिचय दिया, वह सचमुच उपमा हीन है। हमारा भक्त कवि कभी भगवान् की दिव्य विभूतियों के दर्शन से चकित हो उठता है तो कभी भगवान् के विशाल हृदय असीम, अनुकम्पा और दीनताओं पर अकारण स्नेह की गाथा गाता हुआ आत्मविस्मृत हो उठता है। अपने पूर्व कर्मों की ओर जब वह दृष्टि डालता है तब उसकी क्षुदता उसे बैचेन बना डालती है। शिशु जैसे अपनी जननी के समीप मनचाही-प्यारी वस्तु के न मिलने पर कभी रोता है, कभी हँसता है और आत्म-विश्वास की मस्ती में वह कभी नाच उठता है। ठीक यही दशा हमारे भक्त कवियों की है। वे अपने ईष्ट देवता के सामने अपने हृदय को खोलने में किसी प्रकार की संकोच नहीं करते । वे अपने हृदय की दीनता तथा दयनीयता को कोमल शब्दों में प्रकट कर सच्ची भावुकता का परिचय देते हैं। इन्हीं गुणों के कारण इन भक्तों के द्वारा विरचित स्तोत्रों में बड़ी मोहकता है, चित्त को पिघला देने की भारी शक्ति है। संगीत का पुट मिल जाने पर इनका प्रभाव बहुत ही अधिक बढ़ जाता है।

स्तोत्र-सहित्य की परम्परा अत्यन्त ही प्राचीन है। वेदों में जहाँ विभिन्न देवी-देवताओं की स्तुतियाँ मिलती है वहीं परवर्ती साहित्य रामायण, महाभारत तथा पुराणों मे भी स्तोत्र साहित्य विखरे हैं। इन ग्रन्थों में विभिन्न सम्प्रदायों के आराध्य देवताओं की स्तुतियाँ मिलती है। जैसे शैव सम्प्रदाय के लिए शिव की उपासना परक स्तोत्र साहित्य, विष्णु के लिए वैष्णव स्तोत्र, शक्ति से जुडे देवियों के लिए शाक्तस्तोत्र साहित्य आदि विपुल सम्पदा में स्तोत्र साहित्य विखरे पड़े हैं। देवताओं के नाम गुण कर्म और रूप सौन्दर्य का वर्णन करके अपना अभीष्ट प्राप्त करना स्तुति-साहित्य का मुख्य लक्ष्य रहा है। अधिकांश स्तोत्र साहित्य अलौकिक सुख के साथ पारलौकिक मोक्ष तथा लोक-कल्याण कार्य के लिए लिखी गई है। परवर्ती काव्यों में दार्शनिक और आलंकारिक सौन्दर्य से भरपूर स्तोत्र साहित्य भी प्राप्त होते हैं। अध्यात्म प्रधान भारतीय इन देवताओं से इतने प्रभावित हुए कि बाद में स्तोत्र साहित्य एक स्वतन्त्र काव्य शतक साहित्य के रूप में रचना होने लगी। स्तोत्र साहित्य के प्रभाव से बौद्ध भी अछूते नही रह सके। उस परम्परा में भी स्तोत्र काव्य प्राप्त होते हैं। इन स्तोत्रों को पाँच वर्गों में विभाजित किया जा सकता है -

1 वैदिक स्तोत्र, 2 पौराणिक स्तोत्र, 3 रामायण तथा महाभारत के स्तोत्र, 4 स्वतन्त्र लेखकों के द्वारा लिखे गये स्तोत्र एवं 5 काव्य में प्रयुक्त स्तोत्र।

1 वैदिक स्तोत्र-

वैदिक स्तोत्र प्रधानतया ऋग्वेद में इन्द्र, विष्णु रूद्रादि देवों के अनेक मन्त्र उनकी अलौकिक महिमा को हमारे समक्ष प्रस्तुति है। अथर्ववेद में विभिन्न देवताओं के लिए सूक्त स्तोत्र प्राप्त होते हैं। यजुर्वेद के रूद्राध्याय में रूद्र का स्तवन है। सामवेद में तो सहज ही स्तुतियाँ प्राप्त होती है। इसी तरह ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषदादि में भी स्तोत्र प्राप्त होता है।

2 पौराणिक स्तोत्र-

अठारह पुराणों तथा उपपुराणों में ऋषि-मुनियों के द्वारा उत्तम धार्मिक तथा आध्यात्मिक चिन्तन साधना के द्वारा विभिन्न असंख्य स्तवन स्तोत्र प्राप्त होते हैं।

3 क रामायण में स्तोत्र-

वाल्मीकीय रामायण महर्षि वाल्मीकि प्रणीत लौकिक संस्कृत का प्रथमग्रन्थ माना जाता है। इसे आदि काव्य भी कहा जाता है। इसमें भगवान् श्रीराम के चरित्र के साथ अनेक स्तोत्रों का निबन्धन भी है। यथा-आदित्य हृदय, गंगा, देवीसीता, सूर्य एवं ब्रह्मा आदि की मनोहारी स्तुति की

ख महाभारत के स्तोत्र-

गीता सहस्त्रनाम, स्तवराज, अनुस्मति एवं गजेन्द्र मोक्ष ये सभी स्तुतियों की प्रधानतया महाभारत में स्तुतियाँ दर्शन होते हैं। विशेष रूप से यहाँ शतनाम में या सहस्त्रनाम का एक विकसित रूप देखा जाता है।

4 स्वतन्त्र लेखकों के द्वारा लिखे गये स्तोत्र-

काव्यगत स्तोत्रोपरान्त बहुत सारे परम मनीषियों के द्वारा भी स्वतन्त्र रूप से स्तवन लिखने की परम्परा प्रचलित है। जैसे- बिहार के मधुबनी जिला के झंझारपुर प्रखण्ड अन्तर्गत जमुथरि ग्राम वास्तव्य परममनीषी पं० श्री यन्त्रनाथ मिश्र कृत शतमुखी नामक पुस्तक में गणपतिवन्दना, भारतीस्तुति गंगास्तुति शिवस्तुति तथा भारतवन्दनम् आदि इसी प्रकार अन्य कतिपय विद्वानों के द्वारा लिखा स्तोत्र भी प्राप्त होता है।[19]

5 लौकिक स्तोत्र-

सामान्यतया काव्यगत स्तोत्र जो कवियों या आचार्यों द्वारा संस्कृत में छन्दोबद्ध पद्यमय होता है, वही लौकिक स्तोत्र है। यह लौकिक स्तोत्र वर्तमान में पाँच प्रकार के पाये जाते हैं- वैष्णवस्तोत्र, शैवस्तोत्र, शाक्तस्तोत्र जैनस्तोत्र एवं बौद्धस्तोत्र इन प्रत्येक स्तोत्रों

की चर्चा संक्षेप में नीचे इस प्रकार समुल्लेखनीय है-

1. वैष्णव स्तोत्रकाव्य-

भगवान् विष्णु की स्तुतियों के विषय में एक महत्त्वपूर्ण साहित्य है। इन स्तोत्रों से सौन्दर्य तथा माधुर्य की अनुपम धारा प्रवाहित होती है। इनमें प्रधानतया स्तोत्र यहाँ निर्दिष्ट हैं- आलबन्दारस्तोत्र[20] मुकुन्दमालास्तोत्रम्[21] कृष्णकर्णामृतस्तोत्र[22] वेदान्तदेशिकस्तोत्र, लक्ष्मीसहस्र, वरदराजस्तव हयग्रीव, अष्टभुजाष्टक, अच्युतशतक, गरूड पञ्चाशत, यतिराज सप्तति, गोदास्तुति तथा पादुकासहस्र[23] रामशतक स्तोत्रकाव्य श्रीसोमेश्वर प्रणीत[24], मयूरकवि का सूर्यशतक आदि कतिपय वैष्णस्त्रोत्र पाये जाते हैं।

2. शैवस्तोत्रकाव्य-

वर्तमान जगत में सर्वाधिक लोक शैव उपासक ही है, शैवस्तोत्रों में प्रमुख स्तोत्र है- वर्तमान भारत में सर्वमान्य शैवस्तोत्र- शिवमहिम्नः स्तोत्र[25], परशम्भु महिम्नः स्तव[26], शिवस्तुति लंकेश्वरप्रणीत,[27] शंकराचार्यकृत- शिवपादादिकेशान्तवर्णनस्तोत्र, आचार्यउत्पलदेव का, शिवस्तोत्रावली, अभिनवाचार्यकृत-ईश्वरस्तोत्र या भैरवस्तोत्र, कल्हण कवि का राजतरङ्गिणी, आचार्य लोष्टक का दीनाक्रन्दन स्तोत्र[28], आचार्यरम्यदेव का श्रीकण्ठचरितम[29] अवतार नामक आचार्य विरचित- ईश्वरशतक आदि।

3 शाक्तस्तोत्र -

शाक्तमहाकवियों ने अलौकिक अपनी काव्यप्रतिभा से चमत्कार प्रदर्शित किया। शाक्त आचार्यों तथा कवियों की रम्य स्तुतियों का संक्षिप्तोल्लेख इस प्रकार है-

महर्षि दुर्वासाकृत ललितास्तव त्रिपुरसुन्दरी महिम्नः[30], महाकविकालिदास रचित श्यामलादण्डक, गौडपादाचार्य की सुभगोदयस्तुतिः, आचार्यशंकरप्रणीत त्रिपुरसुन्दरी मानसिकोपचारपूजा तथा चतुःषष्टि उपचार मानसपूजा सौन्दर्यलहरी कनकधारास्तव एवं अम्बाष्टक[31], मूककवि का मूकपञ्चशती, ध्वन्यालोक के प्रणेता आचार्य आनन्दवर्धन का देवीशतक[32], सामराज दीक्षित कृत त्रिपुरसुन्दरी मानसपूजास्तोत्र, सुन्दराचार्य रचित गीतिशतक श्रीनीलकण्ठदीक्षित का आनन्दसागरस्तव लक्ष्मणकवि की चण्डीकुचपञ्चाशिका, श्रीकृष्णपण्डित का महाराज्ञीस्तोत्र[33], एवं कवीन्द्र बहादुर लल्ला दीक्षित की कृति आनन्द मंदिर स्तोत्र[34] गद्यमहाकवि बाणभट्ट का चण्डीशतक इत्यादि कतिपय शाक्त स्तोत्र समुपलब्ध है।

4. जैन स्तोत्र-

वैष्णव, शैव तथा शाक्त स्तोत्रों की भाँति जैन कवियों ने तीर्थंकरों की स्तुति में भक्तिरस से स्निग्धता आत्म-निवेदन से परिपूर्ण सुन्दर जैन स्तोत्रों का प्रणयन किया है। जिनकी शताधिक संख्या हैं, प्रमुख स्तोत्र इस प्रकार दर्शनीय है- आचार्य समन्तभद्र के स्वयंभू स्तोत्र देवागम स्तोत्र युक्त्यनुशासन तथा जिनशतक स्तोत्र[35] सिद्धसेन दिवाकर की कृति द्वात्रिंशिका, देवनन्दिपूज्यपाद प्रणीत सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति,चरित्रभक्ति एवं योगभक्ति[36] पात्रकेसरी नामाचार्येण जितेन्द्रगुण संस्तुति मानतंग आचार्य भक्तातर स्तोत्र, कुमुदचन्द्रकविकत कल्याणमन्दिर स्तोत्र, धनञ्जय कवि का विषापहार स्तोत्र, वादिराज का एकीभाव स्तोत्र[37], जम्बूकवि का जिनशतक श्री हेमचन्द्राचार्य का अन्ययोग-व्यवच्छेदिका द्वात्रिंशिका एवं अयोगव्यवच्छेदिका द्वात्रिंशिका आदि।

5 बौद्ध स्तोत्र-

स्तोत्रों की संख्या पर्याप्त मात्रा में बौद्धों के महायान सम्प्रदाय में समुपस्थित हैं। महायानी भिक्षुकों प्रणीत बौद्ध स्तोत्र इस प्कार संक्षेप में दर्शाया जाता है-

आचार्य नागार्जुन का चतुःस्तव इसके तो स्तोत्र उपलब्ध हैं। निरीपम्यस्तवः और अचिन्त्यस्तवः। साहित्यकारों के माध्यम से श्रीहर्षवर्धन प्रणीत अष्टमहाश्री चैत्यस्तोत्र थथा सुप्रभात स्तोत्र है। सर्वज्ञमित्र का स्नग्धरास्तोत्र अवान्तरकालीन रचना है। महायान सम्प्रदाय में स्तुतिकाव्य एक रमणीय स्तोत्रकाव्य है।

इस प्रकार श्रव्यकाव्य में स्तोत्रखण्डकाव्य की रूपरेखा संक्षेपतया दर्शाने का प्रयास हमारे आर्यावर्त्तीय विद्वद्वृन्द ने किया है जिससे सामाजिक परिप्रेक्ष्य सुदृढ़ सुसंस्कारित व ज्ञान विज्ञान की अनुपम धारा में रम जाये।

अतः स्तोत्र काव्य सामाजिक जीवन में महत्त्वपूर्ण सिद्ध होता है। कवि कालिदास का कहा गया स्तोत्र कस्य न तुष्टये अभी भी उतना ही उपयुक्त है, जितना वह कालिदास के समय में था। अगर किसी राजनेता से काम करवाना है तो पहले तारीफ करना जरुरी है। जो कोई अपने काम के लिए आलोचनात्मक रुख अपनाएंगे तो उसका परिणाम क्या होगा यह हम सब जानते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि स्तोत्रकाव्य का अध्ययन सामाजिक क्षेत्र में तथा विकासोन्मुख होने के लिए आवश्यक ज्ञान है।

सन्दर्भ सूची -

1 पाणिनिसूत्र- 'सम्परिभ्यां करोती भूषणे'-6/1/137- तिङ्न्त तनादि प्रकरण।

2 पाणिनिसूत्र- 'संस्कृतं भक्षा'.-4/2/16 तद्धित रक्ताद्यर्थप्रकरण। इस सूत्र निर्देश के कारण संस्कृत शब्दको भाषार्थ में माना गया है।

3 लोकोत्तरा चमत्कारि बोधजनिका या वर्णना: मुखादे: कमलत्वादिरूपेण कथनादि, तत्र निपुणत्वम् असाधारण तादृग्वर्णनकौशलमिति भाव:।

4 पाणिनिसूत्र- 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्य: कर्मणि च' 5-1-124 इति ब्राह्मणादित्वात् कविशब्दात् ष्यञ् प्रत्यय: । कर्म शब्दोऽत्र क्रियापर: तथाहि:- काशिकाकार: कर्मन् शब्द: कियावचन: ।

5 काव्यप्रकाश प्रथमोल्लास वा0 चौ0 प्रकाशन 2013 काव्यलक्षण- तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुन: क्वापि 1-4 7

6 उपजीव्य व्याख्या- तरूकथा प्रभाव्यख्या: डॉ0 कृष्णकान्त झा (लघुकाव्य) पृ0 गपप में प्रकाशन-2020 1

7 काव्यदीपिका 1-3- (काव्यं ध्वनिर्गुणीभूतव्यंग्यचित्रमिति त्रिधा)

8 काव्यप्रकाश 1-4 (इदमुत्तमतिशयिनि व्यंग्ये वाच्याद् ध्वनिर्बुधै: कथित:)

9 काव्यप्रकाश -1-5 (असापृशि गुणीभूराव्यंग्यं व्यंग्ये तु मध्यमम्)

10 काव्यप्रकाश 1-5 (शब्दचित्रं वाच्यचित्रमव्यग्यं त्ववरं स्मृतम्)

11 साहित्य दर्पण 6-1 दृश्य श्रव्यत्वभेदेन पुन: काव्यं दिधामतम्

12 साहित्य दर्पण 6-1 दृश्यं तत्राभिनेयं तद्रूपाऽरोपात्तु रूपकम्।

13 साहित्य दर्पण 6-1 श्रव्यं श्रोतव्यमानं तत् त्रिविध परिकीर्तितम्। गद्यं पद्यं च मिश्रञ्च पद्यं चतुष्पदीमतम्

14 तरूकथा प्रभाव्याख्या पृ0 ङ्ग1 (पद्यं छन्दोमयं काव्यम्)

15 संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ0 326 लेखक उमाशंकर शर्मा ऋषि संस्करण 2,2008 ई0

16 पाणिनिसूत्र:- दाम्नीशसयुयुजस्तुदसिसिचमिहपतदशनह: करणे -3-2-182 (ष्टुञ् स्तुतौ अदा0 उभय अनिट् से करणार्थ में ष्टन् (त्र) प्रत्यय से आर्धधातुक गुण करने से स्तोत्र-स्तुवन्त्यनेनेति स्तोत्रम्।

17 बलदेवोपाध्याय का संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ0 323 मैं गीति काव्य/स्तोत्रकाव्य के विषय में विशद चर्चा।

18 स्तोत्ररत्नावली- गीताप्रेस गोरखपुर प्रकाशन संवत-2069,पृ0 3, निवेदन मे।

19 श्रीयन्त्रनाथ मिश्र कृत शतमुखी मिश्रबन्धु प्रकाशन-2012 प्रिंटवेल दरभंगा पृ07- से 33 पृ0 यावत्।

20 आलवन्दार स्तोत्र का प्रसिद्ध पद्य:- तवामृतस्यन्दिनि पादपंकजे निवेशितात्मा कथमन्यरिच्छति। स्थितेऽ रविन्दे मकरन्दनिभरे मधुव्रतो नैक्षुरकं समीक्षते।

21 मुकुन्दमाला स्तोत्र मे अद्भुत श्लोक:- दिवि वा भुवि वा ममास्तु..

22 श्री कृष्णकर्णामृत स्तोत्र का विशद विवेचन संस्कृत शास्त्रों का इतिहास पृ0 541-42 बलदेवोपाध्याय।
इसके दो पाठ उपलब्ध होते हैं। दक्षिणी पाठ मे तीन आश्वास तथा तीन सौ पद्य हैं। वंगीयपाठ में केवल प्रथम आश्वास तथा 12 पद्य है। प्रथम पाठ वाणीविलास से पापयल्लय सूरि रचित व्याख्या तथा दूसरा वंगीय पाठ तीन टीकाओं के साथ डॉ0 सुशील कुमार डे, के सम्पादक में हुआ है।

23 पादुकासहस्र मूलमात्र, पार्थसारथि एड्वोकेट देवकोट्टै द्वारा प्रकाशित ।

24 गा0 ओ0 सी0 (बडोदा) से सोमेश्वर के उल्लाव-राघव नामक नाटक के परिशिष्ट रूप में प्रकाशित ।

25 इसका प्रसिद्ध पद्य परमदर्शनीय है- असितगिरिसमं स्यात्.....।

26 चौखम्भा वाराणसी-1966 से प्रकाशित मन्त्र और मातृकाओं का रहस्य ग्रन्थ के परिशिष्ट में पृ0 220- 240 ।

27 काव्यमाला प्रथम गुच्छक से प्रकाशित ।

28 षष्ठ गुच्छक काव्यमाला में प्रकाशित।

29 श्री कण्ठचरितम् 28-31-36 1

30 काव्यमाला दशमगुच्छक से प्रकाशित-त्रिपुरसुन्दरी महिम्न स्तोत्र श्लोक- 58 (सदसदनुग्रह-निग्रह गृहीतमुनि-विग्रहो भगवान्। सर्वासामुपनिष्दां दुर्वासा: जयति देशिक प्रथम:। ललितास्वरत्न श्लोक-18 में विशेष वर्णन भगवती की आया है- शम्पा रूचि भरगर्हा संपादक कान्ति .....

31 मैसूर ओरियन्टल सीरीज में प्रकाशित।

32 काव्यमाला गुच्छक नवम में प्रकाशित-1916 ।

33 केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ तिरूपति से मलयमारूत 1966 में प्रकाशित ।

34 गुच्छक 14 काव्यमाला में प्रकाशित 1906 ई0 में।

35 श्री जुगल किशोर मुख्तार, प्रकाशक वीर सेवा मन्दिर दिल्ली 1950

36 नित्यपाठ संग्रह में कारंजा से प्रकाशित-1956 ई में 7

37 भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन काशी 1967 ई0 में।

ISSN 2278 - 0327

स्कन्दपुराणान्तर्गत अवन्ती-खण्ड में प्रयुक्त संयुक्त क्रिया-रूप

डॉ. आशा
सेवा निवृत प्रोफेसर, संस्कृत, पालि एवं प्राकृत-विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

विकास कुमार
शोधार्थी, संस्कृत, पालि एवं प्राकृत-विभाग,
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

संयुक्त क्रियापद

जो क्रियापद एक से अधिक पदों से बनते हैं उन्हें संयुक्त क्रियापद कहते हैं। अवन्ति-खण्ड में कुछ क्रियापदों को संयुक्त क्रिया के रूप में प्रयुक्त किया गया है। इन संयुक्त क्रिया रूपों को निम्न वर्गों में विभक्त किया गया है –

'त' प्रत्यय के साथ भू धातु के संयुक्त क्रियापद

परिपूर्णाऽभवत् (1)	अ०ख० 1.17.3	प्रसुप्तम् भवति (1)	अ०ख० 1.43.62
दु:खिताऽभवत् (1)	अ०ख० 1.45.32	लज्जिताभूत् (1)	अ०ख० 1.45.48
ख्याता: भविष्यथ (1)	अ०ख० 1.49.35	ख्याता भविष्यति (1)	अ०ख० 1.51.31
ख्याता भवन्ति (1)	अ०ख० 1.57.8	ख्यात: भविष्यति (5	अ०ख०[1]
अलङ्कृता: भविष्यन्ति (2)	अ०ख० 1.2.1.49, 50	विनिर्मुक्ता: भवन्तु (1)	अ०ख० 1.2.3.23
निर्मुक्ता: भविष्यन्ति (1)	अ०ख० 1.2.4.37	समन्वित: भवेत् (1)	अ०ख० 1.2.11.28
सुसंपन्नाभवेयु: (1)	अ०ख० 1.2.12.27	दु:खितोऽभवम् (1)	अ०ख० 1.2.14.10
विख्यात: भविष्यति (6)	अ०ख०[2]	मुक्तो भविष्यति (1)	अ०ख० 1.2.25.44
अन्तर्हितोभव (1)	अ०ख० 1.2.26.6	अन्तर्हितोऽभवत् (1)	अ०ख० 1.2.26.7
मुक्तोभवति (4)	अ०ख०[3]	विनिर्मुक्ता: भविष्यन्ति (1)	अ०ख० 1.2.28.76
ख्यातोभवत् (2)	अ०ख०[4]	युक्त: भविष्यसि (1)	अ०ख०1.2.41.27
विख्यात: अभवत् (1)	अ०ख० 1.2.47.23	ख्यातो भविष्यसि (1)	अ०ख० 1.2.48.34
पुजित: भविष्यति (1)	अ०ख० 1.2.49.27	आविष्टो बभूव (1)	अ०ख० 1.2.54.20
सुपूजित: भविष्यसि (1)	अ०ख० 1.2.56.26	अर्जितं भविष्यन्ति (1)	अ०ख० 1.2.56.32
विस्मितोऽभवम् (1)	अ०ख० 1.2.58.18	रक्षिता भवति (1)	अ०ख० 1.2.61.43
विख्यात: बभूव (1)	अ०ख० 1.2.69.2	प्रनष्टोऽभूत् (1)	अ०ख० 1.2.74.29
स्थित: अभूत् (1)	अ०ख० 1.2.74.30	संयुक्त: अभवत् (2)	अ०ख०[5]
तुष्टाभवत् (1)	अ०ख० 1.2.76.8	अभिष्ट: भविष्यसि (1)	अ०ख० 1.2.77.50
समारुढ: भविष्यसि (1)	अ०ख० 1.2.77.51	ख्यात: बभूव (1)	अ०ख० 1.2.80.56
संहृष्टा: अभवन् (1)	अ०ख० 2.12.1	प्रीता: भवन्ति (1)	अ०ख० 2.21.30
तर्पिता: भवन्ति (1)	अ०ख० 2.21.54	तुष्टोऽभवत् (1)	अ०ख० 2.26.28
प्रमुदितोऽभवत् (1)	अ०ख० 2.28.115	सन्निहितो भव (3)	अ०ख०[6]
रतोऽभवत् (1)	अ०ख० 2.45.11	संहर्षित: अभवत् (2)	अ०ख०[7]
निर्मुक्त: अभवत् (1)	अ०ख० 2.86.11	प्रीत: भवति (1)	अ०ख० 2.92.19
प्रीत: भवेत् (2)	अ०ख०[8]	बद्ध: अभूत् (1)	अ०ख० 2.170.9
निवृत्तो भव (1)	अ०ख० 2.192.92	संस्थिता अभूत् (1)	अ०ख०2.194.10

विनिर्म्मितम् भविष्यति (1)	अ०ख० 2.194.77	स्नातः भवति (1)	अ०ख०2.156.6
प्रीतोभवतु (1)	अ०ख० 2.209.131	विहितं भवेत् (1)	अ०ख० 2.228.2
अन्वितोऽभवत् (1)	अ०ख० 2.234.13	संतुष्टोऽभूत् (1)	अ०ख० 2.235.89

'त्वा' प्रत्यय के साथ भू धातु के संयुक्त क्रियापद

पीत्वा निवृतो भव (1)	अ०ख० 2.19.10	तप्त्वा भविष्यसि (1)	अ०ख० 2.38.55

80 स्थलों पर भू धातु का प्रयोग संयुक्त क्रियापद के रूप में हुआ है।

'त' प्रत्यय के साथ अस् धातु के संयुक्त क्रियापद

विख्यातास्ति (1)	अ०ख० 1.1.3	संस्थितः आसीत् (1)	अ०ख० 1.32.65
नाशिता अस्ति (1)	अ०ख० 1.42.12	तुष्टोऽसि (27)	अ०ख०[9]
तुष्टोऽस्मि (8)	अ०ख०[10]	शक्तोऽसि (1)	अ०ख० 2.2.2
व्यवस्थितः आसीत् (1)	अ०ख० 1.48.9	प्रपन्नोऽस्मि (3)	अ०ख०[11]
विवर्जितः अस्ति (1)	अ०ख० 1.54.16	परितुष्टासि (2)	अ०ख०[12]
समाकीर्णा आसीत् (1)	अ०ख० 1.56.29	परितुष्टोऽस्मि (4)	अ०ख०[13]
प्रस्थितास्मि (1)	अ०ख० 1.2.14.18	विदितमस्ति (2)	अ०ख०[14]
समुपविष्टास्ति (1)	अ०ख० 1.2.18.6	उक्तासि (2)	अ०ख० 1.2.18.9, 27
शप्तोऽसि (1)	अ०ख० 1.2.21.33	विमुक्तोऽसि (1)	अ०ख० 1.2.21.53
मृतोऽसि (1)	अ०ख० 1.2.22.20	संजातोऽस्मि (1)	अ०ख० 1.2.25.26
भीताऽस्मि (1)	अ०ख० 1.2.33.8	पूजिताः स्युः (1)	अ०ख० 1.2.35.37
आश्रितः अस्तु (1)	अ०ख० 1.2.37.13	अधिनोऽसि (1)	अ०ख० 1.2.39.7
श्रान्तास्मि (1)	अ०ख० 1.2.40.11	गतोऽसि (4)	अ०ख०[15]
संगताः सन्ति (1)	अ०ख० 1.2.42.38	गताऽस्मि (1)	अ०ख० 1.2.45.63
प्राप्तोऽसि (2)	अ०ख०[16]	अन्वितः अस्ति (1)	अ०ख० 1.2.54.26
दग्धोऽस्मि (1)	अ०ख० 1.2.55.17	दृष्टोऽसि (1)	अ०ख० 1.2.56.30
धन्योसि (1)	अ०ख० 1.2.58.25	तोषितोस्मि (1)	अ०ख० 1.2.60.42
स्थितोऽस्मि (1)	अ०ख० 1.2.67.26	जातोऽसि (1)	अ०ख० 1.2.68.30
विद्धोऽस्मि (1)	अ०ख० 1.2.69.33	शप्तोऽस्मि (1)	अ०ख० 1.2.75.31
प्रणतोऽस्मि (3)	अ०ख०[17]	तुष्टाः स्युः (1)	अ०ख० 1.2.78.36
परिवर्धितास्मि (1)	अ०ख० 1.2.81.50	जितोऽस्मि (1)	अ०ख० 1.2.83.69
शक्तोऽस्ति (1)	अ०ख० 2.2.2	विनष्टोऽसि (1)	अ०ख० 2.2.44
समुद्भूता आसीत् (1)	अ०ख० 2.4.17	पूजिताऽसि (2)	अ०ख०[18]
प्रविष्टः असि (1)	अ०ख० 2.16.18	वियुक्तासि (1)	अ०ख० 2.26.161
जातोऽस्मि (1)	अ०ख० 2.34.2	उपनीतोऽसि (1)	अ०ख० 2.48.10
गन्ताऽस्मि (1)	अ०ख० 2.48.26	हताऽस्मि (1)	अ०ख० 2.54.9
पृष्टोऽस्मि (1)	अ०ख० 2.85.4	प्रपन्नोऽस्मि (1)	अ०ख० 2.85.11
प्रीताः स्यात् (1)	अ०ख० 2.97.109	तुष्टासि (2)	अ०ख०[19]
आहुतोऽस्मि (1)	अ०ख० 2.98.11	प्राप्ताऽसि (1)	अ०ख० 2.103.165
प्राप्ताऽस्मि (1)	अ०ख० 2.103.88	मृताः स्युः (1)	अ०ख० 2.146.71
विमुक्तः स्यात् (2)	अ०ख०[20]	प्रीतोऽसि (1)	अ०ख० 2.180.39
विषण्णोऽसि (1)	अ०ख० 2.1182.32	अवतीर्णोऽस्मि (1)	अ०ख० 2.192.94
विज्ञप्तोऽस्मि (1)	अ०ख० 2.194.33	तर्पिताः स्युः (1)	अ०ख० 2.195.13

आगतोऽस्मि (1)	अ०ख० 2.198.43	चिन्तितोऽस्मि (1)	अ०ख० 2.198.46
उद्धृताऽसि (1)	अ०ख० 2.209.120	प्रीताः स्युः (1)	अ०ख० 2.209.131
प्रविष्टाऽस्ति (1)	अ०ख० 2.220.14		

121 स्थलों पर अस् धातु का प्रयोग संयुक्त क्रियापद के रूप में हुआ है।

अन्य धातुओं के साथ 'त' प्रत्ययान्त संयुक्त क्रियापद

संहृष्टः अर्चयामास (1)	अ०ख० 2.7.24	स्थिताः अर्चयन्तः (1)	अ०ख० 2.11.77
हृष्टाः सम्प्राप्स्यन्ति (1)	अ०ख० 1.2.40.42	निर्दग्धः ऐच्छत् (1)	अ०ख० 1.2.49.11
विनिर्मुक्तः क्रीडते (1)	अ०ख० 2.72.58	पुष्टः कृतः (1)	अ०ख० 1.2.38.34
भ्रष्टः कृतः (1)	अ०ख० 1.2.44.33	स्माहितः करोति (1)	अ०ख० 2.36.17
स्मृता कुर्यात् (1)	अ०ख० 2.51.62	ध्यायन्तः चक्रतुः (1)	अ०ख० 2.56.108
समाहितः समकारयत् (1)	अ०ख० 2.194.40	विस्मिताः चक्रुः (1)	अ०ख० 2.194.74
तुष्टा जगाद (1)	अ०ख० 2.235.88	अभिनन्दितः गच्छति (1)	अ०ख० 1.10.26
समन्वितः गच्छेत् (1)	अ०ख० 1.16.10	नष्टागता (1)	अ०ख० 1.27.8
अन्तर्हितः गतः (1)	अ०ख० 1.2.26.9	अन्वितः जगाम (1)	अ०ख० 1.2.41.28
परिवारितः आजगाम (1)	अ०ख० 1.2.63.64	त्वरिताः जग्मुः (1)	अ०ख० 2.5.40
आरूढः गच्छेत् (1)	अ०ख० 2.50.21	आरूढः गतः (1)	अ०ख० 2.57.31
आरूढः विनिर्गतः (1)	अ०ख० 2.90.52	विनिर्मुक्तः गच्छति (1)	अ०ख० 2.103.206
विश्रान्ता जगाम (1)	अ०ख० 2.118.5	सम्भ्रान्ताः आगताः (1)	अ०ख० 2.171.5
पराजिताः विचरन्ति (2)	अ०ख०[21]	आश्रितः तपश्चचार (1)	अ०ख० 2.150.32
विस्मिताऽचिन्तयत् (1)	अ०ख० 2.194.4	उच्छिन्ना जाता (1)	अ०ख० 1.63.36
ख्यातोजातः (1)	अ०ख० 1.78.6	तुष्टा जाता (1)	अ०ख० 1.2.47.12
विस्मिता जाता (1)	अ०ख० 1.2.81.23	दुःखिता जाता (1)	अ०ख० 1.2.81.81
पुतः जातः (1)	अ०ख० 2.82.2	पूजितः जायते (1)	अ०ख० 2.129.13
परिभ्रष्टः जायते (1)	अ०ख० 2.161.11	उदीर्णः समजायत (1)	अ०ख० 2.189.13
विनिर्मुक्तः जायते (1)	अ०ख० 2.232.36	विनिर्मुक्तः जीवेत् (4)	अ०ख०[22]
विवर्जितः जीवेत् (1)	अ०ख० 2.129.14	भीतः तोषयामास (1)	अ०ख० 1.2.74.45
समायुक्तः तर्पयेत् (1)	अ०ख० 2.51.28	समन्विताः त्यजध्वम् (1)	अ०ख० 2.10.28
समाहितः ददाति (1)	अ०ख० 1.83.58	समाहितः दद्यात् (1)	अ०ख० 1.83.71
वांछितम् दास्यति (1)	अ०ख० 1.2.44.41	समाहितः पश्येत् (1)	अ०ख० 1.77.27
समाहितः पश्यति (1)	अ०ख० 1.2.38.32	अवतीर्णा दृश्यते (1)	अ०ख० 2.56.77
संस्थितं ददृशुः (1)	अ०ख० 2.57.15	वेष्टितः ददृशे (1)	अ०ख० 2.170.16
मोहितः दृष्टः (1)	अ०ख० 2.218.26	समन्विताः दृष्टाः (1)	अ०ख० 2.233.4
परिभूताः ध्यायन्ते (1)	अ०ख० 2.121.9	हृष्टास्तुष्टाः प्रणेयुः (1)	अ०ख० 2.49.2
अन्विताः नृत्यन्ति (1)	अ०ख० 2.5.45	सम्प्रनृत्यति (1)	अ०ख० 2.15.20
प्रहर्षिताः नृत्यन्ते (1)	अ०ख० 2.116.3	मूर्च्छिताः पतिताः (1)	अ०ख० 1.48.18
मूर्च्छिताः पतन्ति (1)	अ०ख० 2.209.75	मुर्च्छितः न्यपतत् (1)	अ०ख० 2.235.54
समाहितः पूजयेत् (1)	अ०ख० 1.77.26	समन्वितं पृच्छति (1)	अ०ख० 2.2.42
विमुक्तः महीयते (1)	अ०ख० 1.44.17	विनिर्मक्तः महीयते (2)	अ०ख०[23]
व्याधितः मुच्यते (1)	अ०ख० 2.85.91	युक्तः मुच्यते (1)	अ०ख० 2.59.100
तर्पिताः मोदन्ते (1)	अ०ख० 2.42.71	मृतोयाति (1)	अ०ख० 1.7.49

अर्चितं याति (1)	अ०ख० 1.49.41	समाहितः आयाति (1)	अ०ख० 1.67.2
सन्तुष्टाः यान्ति (1)	अ०ख० 1.83.74	मृताः यान्ति (1)	अ०ख० 1.2.12.35
मुदितोऽयाति (1)	अ०ख० 1.2.22.23	विनिर्मुक्ताः प्रयान्ति (1)	अ०ख० 1.2.27.88
विख्याता ययौ (1)	अ०ख० 1.2.42.5	वांछितम् यातः (1)	अ०ख० 1.2.45.9
संयुक्तः याति (1)	अ०ख० 1.2.84.51	निर्मुक्तः याति (1)	अ०ख० 2.6.45
समन्विताः यान्ति (1)	अ०ख० 2.11.39	विनिर्मक्तः याति (1)	अ०ख० 2.23.13
समाविष्टः निर्ययौ (1)	अ०ख० 2.48.66	समावृतः ययौ (1)	अ०ख० 2.83.88
तर्पिताः यान्ति (1)	अ०ख० 2.156.27	तृप्ताः यान्ति (1)	अ०ख० 2.175.17
दुःखिताः ब्रवन्ति (1)	अ०ख० 1.40.21	प्रीतः प्रोवाच (1)	अ०ख० 1.51.12
विस्मिताः ऊचुः (1)	अ०ख० 1.2.2.11	हृष्टोऽब्रवीत् (1)	अ०ख० 1.2.30.36
हर्षितः प्राह (1)	अ०ख० 1.2.31.7	गर्वितः आह (1)	अ०ख० 1.2.39.8
प्रणताः ऊचुः (1)	अ०ख० 1.2.44.28	प्रणतः प्रोवाच (1)	अ०ख० 1.2.83.26
मुदान्विताः ऊचुः (1)	अ०ख० 2.13.7	पूजितः अब्रवीत् (1)	अ०ख० 2.35.6
प्रसन्नः प्रत्युवाच (1)	अ०ख० 2.45.21	प्रणतः उवाच (1)	अ०ख० 2.118.22
भीताऽवदत् (1)	अ०ख० 2.42.15	पुजितो वसेत् (1)	अ०ख० 1.2.70.58
मुदिताः वसन्ति (1)	अ०ख० 1.2.83.44	तुष्टः अवसत् (1)	अ०ख० 2.46.11
हृष्टाः वसन्ति (1)	अ०ख० 2.171.21	अनुप्राप्तं विद्धि (2)	अ०ख० 2.42.47, 2.209.15
पीडितः प्रविष्टः (1)	अ०ख० 2.85.35	मृतः व्रजेत् (1)	अ०ख० 1.46.3
स्थितः आराधय (1)	अ०ख० 1.2.66.37	प्रपीडितः रौति (1)	अ०ख० 1.64.44
तृप्ताः रोहन्ति (1)	अ०ख० 2.39.36	पीडिता विललाप (1)	अ०ख० 2.54.9
मोहितः शेते (1)	अ०ख० 2.189.4	समाहितः श्रूयताम् (1)	अ०ख० 1.54.1
अवहितः शुणुष्व (1)	अ०ख० 1.56.1,	समाहिताः शुण्वन्तु (1)	अ०ख० 1.63.13
समाहितः शुणु (1)	अ०ख० 1.2.1.42	अवहितः भूत्वा शुणुष्व (4)	अ०ख०[24]
समाहितः शुणुध्वम् (1)	अ०ख० 2.233.2	निर्विण्णः निषषाद (1)	अ०ख० 2.49.9
तृप्तास्तिष्ठन्ति (1)	अ०ख० 1.47.39	स्थितः अस्ति (1)	अ०ख० 1.52.20
वारितस्तस्थौ (1)	अ०ख० 1.2.26.6	प्रणतः स्थितः (1)	अ०ख० 1.2.26.39
विस्मिता स्थिता (1)	अ०ख० 1.2.69.14	समन्विताः तिष्ठन्ति (1)	अ०ख० 2.10.12
प्रणतौ स्थितौ (1)	अ०ख० 2.22.23	समाकीर्णः स्थितः (1)	अ०ख० 2.53.15
विस्मिताः स्थिताः (1)	अ०ख० 2.212.8	स्थिताः स्मरन्ति (1)	अ०ख० 2.97.176

त प्रत्यय के साथ भिन्न-भिन्न धातुओं के 136 प्रयोग संयुक्त क्रियारूप में उपलब्ध हुए हैं।

अन्य धातुओं के साथ अत/आन/मान प्रत्ययान्त संयुक्त क्रियापद

पर्यटन् उपागतः (1)	अ०ख० 2.233.4	अर्चयन् नमश्चक्रे (1)	अ०ख० 1.52.10
इच्छन् मुच्यते (1)	अ०ख० 2.189.43	अन्विच्छन्समायातः (1)	अ०ख० 1.70.21
निरीक्षन्तः वदन्ति (1)	अ०ख० 2.60.51	उदीरयन् प्रीयताम् (1)	अ०ख० 2.92.24
उदीरयन् कुर्यात् (1)	अ०ख० 2.209.136	कम्पमानोऽब्रवीत् (1)	अ०ख० 2.42.50
क्रीडन्समसृजत् (1)	अ०ख० 2.5.25	क्रीडन्सृजत् (1)	अ०ख० 2.5.26
कुर्वन् स्थितौ (1)	अ०ख० 1.3.8	कुर्वन् आप्नुयात् (1)	अ०ख० 2.228.7
कुर्वाणः गच्छेत् (1)	अ०ख० 2.43.11	कर्षयन् स्थितः (1)	अ०ख० 2.29.14
घृष्यन्तोऽनुजग्मुः (1)	अ०ख० 2.53.9	चरन् पतितः (1)	अ०ख० 2.42.32
आचरण् लभते (1)	अ०ख० 2.29.39	विचरन्क्षुधितः (1)	अ०ख० 1.62.44

तपश्चरन् विख्यातः (1)	अ०ख० 2.35.5	चिन्तयन् अतिष्ठत् (1)	अ०ख० 2.31.3
चिन्तयन् दह्यताम् (1)	अ०ख० 2.48.3	चिन्तयन् उपविष्टः (1)	अ०ख० 2.53.22
चिन्तयन् गच्छ (1)	अ०ख० 2.193.64	विचिन्तयन् कलुषीकृतः (1)	अ०ख० 2.42.37
जृम्भमाणः स्थितः (1)	अ०ख० 1.60.31	प्रज्वलत् दृश्यते (1)	अ०ख० 2.28.37
प्रज्वलत्पतितम् (1)	अ०ख० 2.28.109	ताडयन्ती उवाच (1)	अ०ख० 2.218.29
तोषयन् यातः (1)	अ०ख० 2.36.13	त्यजयन् एति (1)	अ०ख० 2.19.39
त्यजंल्लभति (1)	अ०ख० 2.43.13	त्यजन् भवेत् (1)	अ०ख० 2.43.16
त्वरन् गच्छेत् (1)	अ०ख० 2.189.23	प्रदहन् बभ्रमुः (1)	अ०ख० 2.191.16
दर्शयन् उवाच (1)	अ०ख० 1.3.3	दशर्यन् पवर्तिता (1)	अ०ख० 2.97.126
पश्यन् मुच्यते (1)	अ०ख०1.2.41.39	पश्यन् याति (1)	अ०ख० 1.2.68.8
पश्यन् मुच्यते (1)	अ०ख० 2.83.118	पश्यन् प्रमुच्यते (1)	अ०ख० 2.214.15
पश्यन्नस्मि (1)	अ०ख० 2.221.9	सम्पश्यन् कथयस्व (1)	अ०ख० 2.83.45
पश्यमानः उत्पपात(1)	अ०ख० 2.20.14	ध्यायत् तस्थौ (1)	अ०ख० 1.2.25.7
ध्यायन् आचर (1)	अ०ख० 2.57.23	ध्यायन् जपेत् (1)	अ०ख० 2.59.13
ध्यायन्तौ तस्थतुः (1)	अ०ख० 2.83.82	ध्यायमानः अपश्यम् (1)	अ०ख० 2.8.3
द्योतयन् गच्छति (1)	अ०ख० 2.34.19	धावमानाः ऊचुः (1)	अ०ख० 2.235.26
नृत्यन् अभिधावति (1)	अ०ख० 2.28.40	विपाटयन् व्रजति (1)	अ०ख०1.43.76
पठन् याति (1)	अ०ख० 2.189.43	पठन् प्रीणयेत् (1)	अ०ख० 2.230.112
पतन्तः पश्यन्ति (1)	अ०ख० 2.28.28	उत्पाद्यमानम् प्रलीयत् (1)	अ०ख० 1.2.24.4
पालयन् रतः (1)	अ०ख० 2.53.4	पूजयन् स्थितः (1)	अ०ख० 2.13.36
पूजयन् चिन्तयामास (1)	अ०ख० 2.28.5	पूजयन् आपन्नः (1)	अ०ख० 2.175.11
पुज्यमानः तिष्ठति (2)	अ०ख०[25]	पूज्यमानः सन्निहितः (1)	अ०ख० 2.164.1
पूज्यमानः तिष्ठते (1)	अ०ख० 2.175.5	पूज्यमानः वसेत् (1)	अ०ख० 2.207.7
बोधयन्समुपस्थितः (1)	अ०ख० 2.9.15	युध्यन्तौ युयुधाते (1)	अ०ख० 2.48.58
अवलोकयन् तस्थौ (1)	अ०ख० 1.2.4	अवलोकयन् जगाम (1)	अ०ख० 2.218.37
वादयन्तः समुत्तस्थुः (1)	अ०ख० 1.2.23.31	उद्वमन् ताडिः (1)	अ०ख० 2.48.69
न्यवसन् तर्पयन्तः (1)	अ०ख० 2.13.21	वेपमानः उवाच (1)	अ०ख० 2.32.8
आश्वासयन्ती प्रोवाच (1)	अ०ख० 2.42.17	स्तुवन् ययौ (1)	अ०ख० 2.28.79
स्तुवन् मुच्यते (1)	अ०ख० 2.41.29	स्तूयमाना अन्तरधीयत (1)	अ०ख० 2.108.19
स्मरन् पूजयेत् (1)	अ०ख० 1.71.46	संस्मरन्तः गताः (1)	अ०ख० 1.2.67.42
स्मरन् गच्छेत् (1)	अ०ख० 2.233.28	तिष्ठनदध्यौ (1)	अ०ख० 2.97.81
हसन् उवाच (1)	अ०ख० 2.29.15	हसन् प्रोवाच (1)	अ०ख० 2.92.5
प्रहसन् उवाच (3)	अ०ख०[26]	प्रहसन् प्रत्युवाच (1)	अ०ख० 2.180.45
अनुपहारयन् वर्त्तते (1)	अ०ख० 2.209.19	संहरन्तः विनेशुः (1)	अ०ख० 1.2.23.34
हर्षयन् उवाच (1)	अ०ख० 2.182.31		

90 स्थलों पर भिन्न-भिन्न धातुओं के साथ अत्/आन/मान प्रत्ययान्त संयुक्त क्रियापद उपलब्ध हुए हैं।

अन्य धातुओं के साथ तुम् प्रत्ययान्त संयुक्त क्रियापद

वोढुं समर्था (1)	अ०ख० 1.2.20.7	अवस्थातुमर्हति (1)	अ०ख० 1.52.12
वक्तुमर्हसि (11)	अ०ख०[27]	क्षन्तुमर्हसि (6)	अ०ख०[28]
कर्तुमर्हसि (18)	अ०ख०[29]	क्षन्तुमर्हथ (3)	अ०ख०[30]

आख्यातुमर्हसि (1)	अ०ख० 1.2.41.22	हन्तुमर्हसि (1)	अ०ख० 1.2.48.14
गन्तुमर्हसि (1)	अ०ख० 1.2.58.42	दातुमर्हसि (5)	अ०ख०[31]
भवितुमर्हति (1)	अ०ख० 1.2.77.27	प्रसादयितुमर्हयत् (1)	अ०ख० 1.2.80.7
श्रोतुमर्हसि (1)	अ०ख० 1.2.81.58	अपरोद्धुमर्हसि (1)	अ०ख० 1.2.84.34
पातुमर्हसि (1)	अ०ख० 2.20.60	ख्यातुमर्हसि (3)	अ०ख०[32]
हन्तुमर्हति (1)	अ०ख० 2.67.56	ज्ञातुमर्हसि (1)	अ०ख० 2.97.
भवितुमर्हसि (1)	अ०ख० 2.168.25	क्रोद्धुमर्हसि (1)	अ०ख० 2.198.25
ज्ञातुमर्हसि (1)	अ०ख० 2.198.61	संकर्तुमर्हसि (1)	अ०ख० 2.211.19
शातुमर्हसि (1)	अ०ख० 2.221.7	द्रष्टुं समापेतुः (1)	अ०ख० 1.51.20
श्रोतुमिच्छामि (47)	अ०ख०[33]	ज्ञातुमिच्छामि (3)	अ०ख०[34]
प्राप्तुमिच्छामि (1)	अ०ख० 1.4.81	पूजितुमिच्छामि (1)	अ०ख० 1.43.24
दातुमिच्छसि (1)	अ०ख० 1.54.8	वेदितुमिच्छामि (6)	अ०ख०[35]
श्रोतुमिच्छामः (3)	अ०ख०[36]	स्तोतुमिच्छति (1)	अ०ख० 1.74.231
प्रष्टुमिच्छामि (1)	अ०ख० 1.2.19.9	तप्तुमिच्छामि (1)	अ०ख० 1.2.25.11
कर्तुमिच्छामि (4)	अ०ख०[37]	नेतुमिच्छति (1)	अ०ख० 1.2.33.9
द्रष्टुमिच्छति (1)	अ०ख० 1.2.37.23	द्रष्टुमिच्छामि (1)	अ०ख० 1.2.40.2
विश्रमितुमिच्छामि (1)	अ०ख० 1.2.40.11	दोगधुमैच्छत् (1)	अ०ख० 1.2.49.8
जीवितुमिच्छामि (1)	अ०ख० 1.2.68.17	व्याख्यातुमर्हसि (1)	अ०ख० 1.2.68.22
श्रोतुमिच्छामहे (1)	अ०ख० 1.2.73.20	श्रोतुमिच्छसि (1)	अ०ख० 1.2.84.60
द्रष्टुमिच्छेत् (1)	अ०ख० 2.10.72	संहर्तुमिच्छेत् (1)	अ०ख० 2.16.9
जीवितुमिच्छसि (1)	अ०ख० 2.20.48	दातुमिच्छति (2)	अ०ख०2.33.10,32
स्थातुमिच्छति (1)	अ०ख० 2.49.22	परिष्वजितुमिच्छामि (1)	अ०ख० 2.54.15
मोक्तुमिच्छामि (1)	अ०ख० 2.56.128	पतितुमिच्छामि (1)	अ०ख० 2.57.21
हन्तुमिच्छति (1)	अ०ख० 2.67.63	पातयितुमिच्छति (1)	अ०ख० 2.67.84
विज्ञप्तुमिच्छामि (1)	अ०ख० 2.181.44	द्रष्टुमिच्छथ (1)	अ०ख० 2.193.6
निवेशयितुमिच्छामि (1)	अ०ख० 2.194.60	ज्ञातुमिच्छति (1)	अ०ख० 2.220.38
वीक्षितुं गच्छन्ति (1)	अ०ख० 2.224.2	लब्धुमिच्छसि (1)	अ०ख० 2.235.51
पाययितु प्रेषयामासुः (1)	अ०ख० 2.111.20	प्रवक्तुमुपचक्रमे (1)	अ०ख० 1.2.46.126
वक्तुं समुपचक्रमे (2)	अ०ख०[38]	विज्ञप्तुमुपचक्रमे (1)	अ०ख० 2.26.69
दातुं समुपचक्रमे (1)	अ०ख० 2.27.5	गन्तुं प्रचक्रमे (1)	अ०ख० 2.153.26
चर्तुं गताः (1)	अ०ख० 1.2.10.7	सङ्क्रीडितुं गतः (1)	अ०ख० 1.2.22.17
कर्तुं गताः (1)	अ०ख० 1.2.56.2	हन्तुमागतः (1)	अ०ख० 2.54.26
कर्तुं जगाम (1)	अ०ख० 2.56.81	द्रष्टुमगमत् (1)	अ०ख० 2.84.20
विलोभयितुमागताः (1)	अ०ख० 2.192.52	क्षेप्तुं गताः (1)	अ०ख० 2.209.96
स्नातुं दातुं गच्छामः (1)	अ०ख० 2.209.114	हन्तुं निर्जगाम (1)	अ०ख० 2.218.6
हन्तुं धावितौ (1)	अ०ख० 1.2.48.16	अन्वेष्टुं धाविताः (1)	अ०ख० 2.211.16
कर्तुं मन्यसे (1)	अ०ख० 2.53.38	पातुमुद्यतम् (1)	अ०ख० 1.52.9
कर्तुमुद्यतः (1)	अ०ख० 1.2.16.4	विहन्तुं समुद्यतः (1)	अ०ख० 1.2.25.18
गन्तुमुद्यतः (1)	अ०ख० 1.2.27.56	भक्षयितुमुद्यतः (1)	अ०ख० 1.2.55.13
स्तोतुमभ्युद्यतः (1)	अ०ख० 2.7.23	स्तोतुमुद्यतः (1)	अ०ख० 2.9.16

पातुं समुद्यतः (1)	अ०ख० 2.20.71	निवेशयितुमुद्यताः (1)	अ०ख० 2.194.58
कर्तुं समुद्यतः (2)	अ०ख०[39]	कर्तुं समुद्यता (1)	अ०ख० 2.235.35
स्नातुं ययौ (1)	अ०ख० 1.2.32.14	प्रक्षालयितुमायाति (1)	अ०ख० 2.180.54
स्नातुमायाति (1)	अ०ख० 2.180.56	प्रष्टुं आयास्यामि (1)	अ०ख० 1.2.57.12
कर्तुम् आरेभिरे (1)	अ०ख० 1.53.11	अतिमथितुमारब्धे (1)	अ०ख० 1.2.14.6
मथितुमारब्धाः (1)	अ०ख० 1.2.26.23	कर्तुं समारेभे (1)	अ०ख० 1.2.41.20
तसुं समारेभे (1)	अ०ख० 2.99.9	विलोभयितुमारब्धाः (1)	अ०ख० 2.192.28
पतितुं आरूढः (1)	अ०ख० 2.57.16	दातुं लभन्ते (1)	अ०ख० 2.55.21
हातुं प्रोक्तम् (1)	अ०ख० 2.11.45	कर्तुं शशाक (1)	अ०ख० 1.2.11
धर्तुमशक्नुवन् (1)	अ०ख० 1.38.7	वक्तुं शक्नुयात् (1)	अ०ख० 1.58.45
वक्तुं शक्यम् (2)	अ०ख०[40]	कर्तुं शक्तः (1)	अ०ख० 1.74.66
वर्णयितुं शक्तः (1)	अ०ख० 1.81.14	स्रष्टुं शक्ताः (1)	अ०ख० 1.2.13.6
विचेष्टितुं शशाक (1)	अ०ख० 1.2.75.29	वर्णयितुं शक्यम् (2)	अ०ख०[41]
कर्तुं शक्येत (1)	अ०ख० 1.2.80.24	निवारयितुं शक्तः (1)	अ०ख० 1.2.8043
उपलब्धुं शक्यः (1)	अ०ख० 1.2.84.14	वक्तुं शक्तः (3)	अ०ख०[42]
निहन्तुं शक्यते (1)	अ०ख० 2.26.36	भेत्तुं शक्यते (1)	अ०ख० 2.26.55
गन्तुं शक्यते (2)	अ०ख० 2.28.37,2.153.26	गन्तु शक्तः (1)	अ०ख० 2.28.45
कथितुं न शक्यः (1)	अ०ख० 2.38.5	चेष्टितमशकत् (1)	अ०ख० 2.38.35
त्रातुं शक्नोमि (2)	अ०ख० 2.42.48, 51	गन्तुं न शक्नोषि (2)	अ०ख० 2.48.7, 8
हन्तु न शक्यते (1)	अ०ख० 2.48.56	वोढुं न शक्नोति (1)	अ०ख० 2.53.46
कर्तुं शक्नोषि (1)	अ०ख० 2.54.31	गन्तु न शक्नोति (2)	अ०ख०[43]
कर्तुं न शक्नोति (1)	अ०ख० 2.54.72	रक्षयितुं न शक्या (1)	अ०ख० 2.56.21
गन्तुमशक्येत (1)	अ०ख० 2.97.29	प्रवर्तितुं शक्याम् (1)	अ०ख०2.97.115
गृहीतुं शक्यम् (1)	अ०ख० 2.111.14	हन्तुमशक्यः (1)	अ०ख० 2.142.35
कथयितुं शक्यम् (1)	अ०ख० 2.153.5	पारितुं शक्तः (1)	अ०ख० 2.153.36
हन्तु शक्ताः (1)	अ०ख० 2.189.42	वक्तुं शक्ताः (1)	अ०ख० 2.192.5
प्रवेष्टुं न शशाक (1)	अ०ख० 2.192.35	दर्शयितुं शक्ताः (1)	अ०ख० 2.194.12
निर्णेतुं शक्तः (1)	अ०ख० 2.227.10	श्रोतुं वक्तुं न शक्यः (1)	अ०ख० 2.227.13
वक्तुं शक्यन्ते (1)	अ०ख० 2.230.6	कर्तुं हर्त्तुं न शक्यते (1)	अ०ख० 2.235.55
ज्ञातुं न शक्यते (1)	अ०ख० 2.235.79	गन्तुमुत्सहे (1)	अ०ख० 1.2.25.48
सहितुं शक्नुवन्तः (1)	अ०ख० 1.2.75.21	ज्ञातुमुत्सहे (1)	अ०ख० 2.97.111
पायितुं विस्मृता (1)	अ०ख० 2.38.36	द्रष्टुं प्रतस्थे (1)	अ०ख० 2.41.22
उपासितुं स्थिताः (1)	अ०ख० 1.73.9	द्रष्टुं प्रस्थितः (1)	अ०ख० 1.2.57.2

261 स्थलों पर अन्य धातुओं के साथ तुम् प्रत्यय का संयुक्त क्रियापद के रूप में प्रयोग हुआ है।

अन्य धातुओं के साथ त्वा प्रत्ययान्त संयुक्त क्रियापद

स्नात्वा समर्चय (1)	अ०ख० 2.8.50	स्नात्वा अर्चयन्ति (2)	अ०ख० 2.8.55, 2.34.14
स्नात्वा अर्चयेत् (9)	अ०ख०[44]	स्नात्वा अर्चयति (1)	अ०ख० 2.117.2
स्नात्वा अभ्यर्चयेत् (1)	अ०ख० 2.115.10	जपित्वा अश्नुते (1)	अ०ख० 2.41.24
स्नात्वा अश्नुते (1)	अ०ख० 2.195.8	स्पृष्ट्वा प्राप्स्यति (1)	अ०ख० 1.2.39.45
दृष्ट्वा प्राप्तः (1)	अ०ख० 2.26.80	स्नात्वा आप्नुयात् (2)	अ०ख० 2.82.8, 2.164.10

स्नात्वा अवाप्तम् (1)	अ०ख० 2.133.46	स्नात्वा समवाप्नोति (2)	अ०ख०[45]
दृष्ट्वा प्राप्ता (1)	अ०ख० 2.166.1	स्नात्वा वीक्षते (1)	अ०ख० 2.151.3
स्नात्वा व्यपोहय (1)	अ०ख० 2.178.32	मुक्त्वा न कामये (1)	अ०ख० 2.80.5
ध्यात्वा कथयामास (1)	अ०ख० 2.159.4	कृत्वा प्रकल्पयेत् (1)	अ०ख० 2.159.78
दृष्ट्वा करिष्यन्ति (1)	अ०ख० 2.53.44	स्नात्वा कुर्यात् (2)	अ०ख० 2.84.41, 2.147.3
स्नात्वा कुरुते (1)	अ०ख० 2.162.2	नत्वा कीर्त्तयेत् (1)	अ०ख० 2.129.6
दृष्ट्वा क्रन्दते (1)	अ०ख० 2.28.67	दृष्ट्वा प्राक्षिपत् (1)	अ०ख० 2.48.67
दाहयित्वा विनिक्षिप (1)	अ०ख० 2.54.32	शुचिर्भूत्वा विनिक्षिप (1)	अ०ख० 2.54.34
मत्त्वा क्षिपन्ति (1)	अ०ख० 2.198.39	मदनोभूत्वा क्षोभय (1)	अ०ख० 2.38.17
ज्ञात्वा जगाम (1)	अ०ख० 2.13.2	ज्ञात्वा गच्छ (1)	अ०ख० 2.20.80
उक्त्वा गतः (2)	अ०ख०[46]	भूत्वा गताः (1)	अ०ख० 2.33.19
स्नात्वा गताः (1)	अ०ख० 2.37.2	भ्रमित्वा आगताः (1)	अ०ख० 2.38.39
श्रुत्वा गच्छति (1)	अ०ख० 2.39.4	उक्त्वा जगाम (2)	अ०ख०[47]
उक्त्वाऽगमत् (1)	अ०ख० 2.42.44	लब्ध्वा जगाम (1)	अ०ख० 2.46.1
कृत्वा आगताः (1)	अ०ख० 2.48.40	गृहीत्वा गतः (1)	अ०ख० 2.48.64
गृहीत्वा गच्छ (1)	अ०ख० 2.53.43	श्रुत्वा गतः (1)	अ०ख० 2.54.58
श्रुत्वा गता (1)	अ०ख० 2.56.85	श्रुत्वा जगाम (1)	अ०ख० 2.67.57
उक्त्वा गच्छति (1)	अ०ख० 2.80.3	स्थापयित्वा जगाम (2)	अ०ख०[48]
क्रीडित्वा आगतः (1)	अ०ख० 2.117.3	स्थापयित्वा जग्मुः (1)	अ०ख० 2.131.34
श्रुत्वा गतौ (1)	अ०ख० 2.155.39	त्यक्त्वा निर्गच्छते (1)	अ०ख० 2.159.4
उक्त्वा गताः (1)	अ०ख० 2.176.29	मुक्त्वा आचचक्षुः (1)	अ०ख० 2.209.76
गत्वा समाचरेत् (1)	अ०ख० 2.34.18	दत्त्वा चचार (1)	अ०ख० 2.168.12
दृष्ट्वा चिन्तयामास (1)	अ०ख० 2.48.12	ज्ञात्वा चिन्तयामास (1)	अ०ख० 2.48.62
ध्यात्वा जनयामास (1)	अ०ख० 2.42.38	स्नात्वा जपन्ति (1)	अ०ख० 2.60.39
तर्प्पयित्वा जपेत् (1)	अ०ख० 2.149.7	प्रांजलिर्भूत्वा विज्ञापयति (1)	अ०ख० 2.28.54
ध्यात्वा ततार (1)	अ०ख० 2.18.13	स्नात्वा तर्पयेत् (5)	अ०ख०[49]
भूत्वा तर्पयेत् (1)	अ०ख० 2.179.8	दृष्ट्वाऽत्यजत् (1)	अ०ख० 2.42.10
भित्त्वा अदहत् (1)	अ०ख० 2.17.21	गृहीत्वा दाहयामि (1)	अ०ख० 2.53.34
स्नात्वा दत्तम् (1)	अ०ख० 2.29.24	पूजयित्वा दत्ता (1)	अ०ख० 2.35.12
स्नात्वा प्रयच्छति (1)	अ०ख० 2.39.25	ज्ञात्वा ददौ (1)	अ०ख० 2.40.6
स्नात्वा दद्यात् (4)	अ०ख०[50]	स्नात्वा ददाति (1)	अ०ख० 2.125.34
स्नात्वा प्रदास्यति (1)	अ०ख० 2.146.69	स्नात्वा ददेत् (1)	अ०ख० 2.179.10
स्नात्वा पश्येत् (1)	अ०ख० 1.2.42.33	स्नात्वा पश्यन्ति (2)	अ०ख०[51]
स्नात्वा पश्यति (3)	अ०ख०[52]	स्नात्वा अनुपश्यति (1)	अ०ख० 2.195.13
उक्त्वान्तर्दधे (6)	अ०ख०[53]	दत्त्वा समाहिताः (1)	अ०ख० 1.69.8
भूत्वा समाहितः (1)	अ०ख० 1.74.207	उक्त्वान्तर्हितः (1)	अ०ख० 1.2.46.63
उक्त्वा अन्तरधीयत (5)	अ०ख०[54]	विसर्ज्जयित्वा अन्तर्धीयत (1)	अ०ख० 2.42.61
दत्त्वा अन्तरधीयत (1)	अ०ख० 2.45.41	ज्ञात्वा अभ्यधावत (1)	अ०ख० 2.97.41
तर्पयित्वा उद्धरेत् (1)	अ०ख० 2.25.3	श्रुत्वा अवधार्य (1)	अ०ख० 2.28.97
पीत्वा धूनाति (1)	अ०ख० 2.146.86	दृष्ट्वा नश्यति (1)	अ०ख० 2.132.9

बद्ध्वा आनय (1)	अ०ख० 2.90.47	भूत्वा पठेत् (1)	अ०ख० 1.44.14
कृत्वा पठेत् (1)	अ०ख० 2.165.5	दृष्ट्वा पपात (1)	अ०ख० 2.32.15
मुक्त्वा निपपात (1)	अ०ख० 2.45.28	छित्वा पास्यामि (1)	अ०ख० 2.218.34
तर्पयित्वा पूजयेत् (1)	अ०ख० 2.42.69	स्नात्वा पूजयेत् (25)	अ०ख०[55]
स्नात्वा प्रपूजयेत् (3)	अ०ख०[56]	स्नात्वा पूजयन्ति (1)	अ०ख० 2.134.2
स्नात्वा पूजयति (1)	अ०ख० 2.141.8	स्नात्वा पूजयते (1)	अ०ख० 2.165.4
गत्वा सम्पूजयेत् (1)	अ०ख० 2.189.23	गत्वा पूजयेत् (1)	अ०ख० 2.214.16
गत्वा पृच्छामि (1)	अ०ख० 1.27.16	कृत्वा बभाषे (1)	अ०ख० 2.168.5
श्रुत्वा प्रत्यभाषत (1)	अ०ख० 2.233.8	लब्ध्वा भिक्षते (1)	अ०ख० 2.50.34
दृष्ट्वा भीतौ (1)	अ०ख० 2.155.70	श्रुत्वा प्रबुद्धः (1)	अ०ख० 2.90.30
मिलित्वा मथितः (1)	अ०ख० 1.55.3	स्नात्वा मुच्यन्ते (1)	अ०ख० 2.4.22
स्नात्वा प्रमुच्यते (2)	अ०ख० 2.24.3,2.156.10,	श्रुत्वा मुच्यते (1)	अ०ख० 2.39.38
जप्त्वा मुच्यते (2)	अ०ख० 2.43.8, 2.59.13,	ज्ञात्वा मुच्यन्ते (1)	अ०ख० 2.43.12
स्नात्वा मुच्यते (2)	अ०ख० 2.155.10,2.169.1,	दृष्ट्वा मुचन्ति (1)	अ०ख० 2.156.7
श्रुत्वा मुमुदे (1)	अ०ख० 2.56.132	भूत्वा मोदते (1)	अ०ख० 2.139.13
श्रुत्वा मोहितः (1)	अ०ख० 2.67.81	उक्त्वा ययौ (3)	अ०ख०[57]
श्रुत्वा समायातः (1)	अ०ख० 1.2.61.46	प्रीणयित्वा ययौ (1)	अ०ख० 2.41.20
भित्त्वा यान्ति (1)	अ०ख० 2.92.15	उक्त्वा प्रययौ(2)	अ०ख० 2.97.62, 69
उक्त्वा प्रययुः (1)	अ०ख० 2.97.76	स्नात्वा यातः (1)	अ०ख० 2.97.78
दत्त्वा ययुः (1)	अ०ख० 2.97.141	भोजयित्वा याति (1)	अ०ख० 2.225.21
दृष्ट्वा उवाच (1)	अ०ख० 2.28.70	श्रुत्वा अब्रवीत् (1)	अ०ख० 2.42.51
दृष्ट्वा अब्रवीत् (1)	अ०ख० 2.42.58	ध्यात्वाऽब्रवीत् (2)	अ०ख० 2.97.17, 2.171.54
नत्वोचे (1)	अ०ख० 2.97.62	पूजयित्वा वाचयेत् (1)	अ०ख० 2.148.19
दृष्ट्वा ऊचुः (1)	अ०ख० 2.150.22	नत्वा उवाच (1)	अ०ख० 2.209.39
कृत्वा वद (1)	अ०ख० 2.219.5	भूत्वा वसेत् (1)	अ०ख० 1.7.53
त्यक्त्वा वसध्वम् (1)	अ०ख० 2.13.5	स्नात्वा उपोषितः (1)	अ०ख० 2.166.7
गत्वा निवेदय (1)	अ०ख० 2.67.41	गत्वा निवेदयामास (1)	अ०ख० 2.225.21
उक्त्वा प्रविवेश (1)	अ०ख० 2.13.31	कृत्वा उपविष्टः (1)	अ०ख० 2.53.22
ध्यात्वा प्रविष्टः (1)	अ०ख० 2.85.59	गत्वा निवेशितः (1)	अ०ख० 2.142.17
नत्वा रुरोद (1)	अ०ख० 2.235.59	दृष्ट्वा विललाप (1)	अ०ख० 1.45.34
स्नात्वा लभते (2)	अ०ख० 2.4.25(2बार)	स्नात्वा लभेत् (1)	अ०ख० 2.38.69
दृष्ट्वा व्यश्राम्यत (1)	अ०ख० 2.46.32	भ्रान्त्वा भ्रान्त्वा श्रान्तः (1)	अ०ख० 2.49.9
एकमना भूत्वा शृणुष्व (1)	अ०ख० 2.56.3	दृष्ट्वा तस्थौ (1)	अ०ख० 1.45.48
पतित्वा उत्थितः (1)	अ०ख० 1.2.46.97	वर्जयित्वा तिष्ठति (1)	अ०ख० 2.35.1
ध्यात्वा तिष्ठति (1)	अ०ख० 2.39.6	मत्त्वा स्थितः (1)	अ०ख० 2.49.10
उक्त्वा स्थिताः (1)	अ०ख० 2.56.55	दृष्ट्वा स्थितः (1)	अ०ख० 2.189.31
दत्त्वा स्थितः (1)	अ०ख० 2.214.13	चिन्तयित्वा स्मरामि (1)	अ०ख० 2.18.12
ध्यात्वा संस्मृता (1)	अ०ख० 2.97.53	श्रुत्वा जहास (1)	अ०ख० 1.2.4.12
श्रुत्वा आहूता (1)	अ०ख० 2.98.14	लब्ध्वा प्रहृष्टः (1)	अ०ख० 2.9.40

136 स्थलों पर अन्य धातुओं के साथ त्वा प्रत्यय का संयुक्त क्रियापद के रूप में प्रयोग हुआ है।

अन्य धातुओं के साथ य प्रत्ययान्त संयुक्त क्रियापद

अविज्ञाय पर्यटन्ति (1)	अ०ख० 2.140.10	समासाद्य अर्थयामास (1)	अ०ख० 2.173.9
अभिज्ञाय सम्प्राप्ता (1)	अ०ख० 1.65.16	आसाद्य आप्नुयात् (1)	अ०ख० 2.11.22
आसाद्य प्राप्नुयात् (1)	अ०ख० 2.38.73	अभ्यर्च्य प्राप्नोति (1)	अ०ख० 2.62.18
समुद्धत्य समर्पयेत् (1)	अ०ख० 2.151.8	प्रविश्य कथय (1)	अ०ख० 2.26.85
विभाव्य कथ्यताम् (1)	अ०ख० 2.33.24	निवेद्याकथयत् (1)	अ०ख० 2.170.15
प्राप्य क्रीडते (1)	अ०ख० 2.28.126	आदायोड्डयांचक्रे (1)	अ०ख० 1.2.45.59
प्रविभज्य चकार (1)	अ०ख० 2.19.48	उत्थाय कुरुते (1)	अ०ख० 2.39.33
प्रणिपत्य क्षमापयेत् (1)	अ०ख० 2.161.9	समादाय गता: (1)	अ०ख० 1.55.13
परित्यज्य अगमम् (1)	अ०ख० 2.10.10	आश्रित्य गता: (1)	अ०ख० 2.11.2
समाश्रित्य गता: (1)	अ०ख० 2.11.91	आश्रित्यागमत् (1)	अ०ख० 2.15.14
परित्यज गता (1)	अ०ख० 2.20.78	प्रणम्य आगत: (1)	अ०ख० 2.36.10
आविश्य जगाम (2)	अ०ख० 2.41.17, 2.131.33,	अन्विष्य गमिष्यामि (1)	अ०ख० 2.53.27
विश्रम्य गच्छेत् (1)	अ०ख० 2.54.43	आरुह्य प्रतिगम्यताम् (1)	अ०ख० 2.58.12
आराध्य गत: (1)	अ०ख० 2.81.2	विनिक्षिप्य जगाम (1)	अ०ख० 2.111.18
आविश्य जग्मु: (1)	अ०ख० 2.118.37	नमस्कृत्य जगाम (1)	अ०ख० 2.198.111
अभिद्रुत्य परिजग्राह (1)	अ०ख० 1.2.60.24	एकमनाभूत्वा गृहाण (1)	अ०ख० 2.45.36
आक्रम्य गृह्णाति (1)	अ०ख० 2.46.37	विचित्य विचरेत् (1)	अ०ख० 2.46.36
समाश्रित्य चचार (1)	अ०ख० 2.67.4	आश्रित्य चचार (1)	अ०ख० 2.72.32
आश्रित्य आचरेत् (1)	अ०ख० 2.77.7	आस्थाय चचार (1)	अ०ख० 2.120.6
अभिनन्द्य अनुज्ञात: (1)	अ०ख० 2.38.65	सम्भाष्य अनुज्ञातम् (1)	अ०ख० 2.209.172
समुद्दिश्य तोषयामि (1)	अ०ख० 2.103.24	समागत्य तोषित: (1)	अ०ख० 2.130.1
समासाद्य त्यजति (1)	अ०ख० 2.34.20	उद्दिश्य दीयते (3)	अ०ख०[58]
उच्चार्य देयम् (1)	अ०ख० 2.76.22	अनुद्दिश्य दातव्या (1)	अ०ख० 2.78.19
उच्चार्य देया (1)	अ०ख० 2.78.21	उद्दिश्य प्रयच्छति (1)	अ०ख० 2.129.8
उद्दिश्य ददाति (1)	अ०ख० 2.140.6	अनुद्दिश्य देया (1)	अ०ख० 2.146.66
अनुद्दिश्य दापयेत् (1)	अ०ख० 2.150.44	उद्दिश्य दद्यात् (1)	अ०ख० 2.172.76
सम्तर्प्य दद्यात् (1)	अ०ख० 2.202.4	अनुद्दिश्य ददौ (1)	अ०ख० 2.209.148
प्रक्षिप्य अन्तरधीयत (1)	अ०ख० 2.11.14	सम्पूज्य सुसमाहित: (1)	अ०ख० 2.167.14
उद्यम्य धावति (1)	अ०ख० 2.38.42	प्राप्य धुनोति (1)	अ०ख० 2.48.32
अवज्ञाय विनष्ट: (1)	अ०ख० 2.28.71	प्रदक्षिणीकृत्य पतित: (1)	अ०ख० 2.26.44
आलिंग्य अपतत् (1)	अ०ख० 2.122.31	संस्थित्वाऽपिबत् (1)	अ०ख० 2.67.4
उपेत्य सम्पूजयेत् (1)	अ०ख० 2.10.72	उद्दिश्य पूजयेत् (1)	अ०ख० 2.156.40
अनुदिश्य भोजयेत् (1)	अ०ख० 2.42.71	उपेत्य भ्रमन्ति (1)	अ०ख० 2.10.69
आसाद्य विमुच्यन्ते (1)	अ०ख० 2.11.20	आश्रित्य मुच्यन्ते (1)	अ०ख० 2.11.21
आश्रित्य समुच्येत् (1)	अ०ख० 2.11.43	प्राप्य विमुच्यन्ते (1)	अ०ख० 2.178.19
समासाद्य मोदिष्यन्ति (1)	अ०ख० 1.2.13.52	विजित्य समुपयान्ति (1)	अ०ख० 1.43.64
समास्थाय यास्यामि (1)	अ०ख० 1.2.20.13	प्राप्य यान्ति (1)	अ०ख० 2.17.9
न्यस्य निर्ययौ (1)	अ०ख० 2.48.64	प्रक्षिप्य ययौ (1)	अ०ख० 2.55.15
आरुह्य प्रयाहि (1)	अ०ख० 2.90.109	उल्लङ्घ्य ययौ (1)	अ०ख० 2.97.23

समुद्दिश्य प्रयाति (1)	अ०ख० 2.227.24	उन्नम्य ऊचुः (1)	अ०ख० 1.6.76
प्रणिपत्य उवाच (1)	अ०ख० 1.43.30	प्रणम्य उवाच (2)	अ०ख० 1.2.10.8, 2.39.9
आगत्योवाच (2)	अ०ख० 1.2.55.3, 2.178.4	समाश्वास्य प्रत्युवाच (1)	अ०ख० 1.2.57.11
आलिंगय प्रत्युवाच (1)	अ०ख० 1.2.61.47	नमस्कृत्य वक्ष्यामि (1)	अ०ख० 2.1.14
समासाद्य अब्रवीत् (1)	अ०ख० 2.26.67	निरीक्ष्य अब्रवीत् (1)	अ०ख० 2.33.23
प्रहृष्य उवाच (1)	अ०ख० 2.39.15	उत्सृज्य अब्रवीत् (1)	अ०ख० 2.42.23
आलिंगय अब्रवीत् (1)	अ०ख० 2.48.35	प्रतिपूज्य अब्रवीत् (1)	अ०ख० 2.67.36
नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि (1)	अ०ख० 2.125.5	प्रणम्य प्राह (1)	अ०ख० 2.133.13
प्रहस्य प्रत्युवाच (1)	अ०ख० 2.180.19	आगत्य प्राह (1)	अ०ख० 2.180.29
प्रणिपत्याह (1)	अ०ख० 2.235.48	आश्रित्य निवसन्ति (1)	अ०ख० 2.4.36
आसाद्य वसेत् (1)	अ०ख० 2.23.2	सन्निरुध्य वसेत् (1)	अ०ख० 2.31.9
आश्रित्य निवसन्ति (1)	अ०ख० 2.142.57	उत्थाय ववन्दे (1)	अ०ख० 2.26.75
एकीकृत्य निवेदयेत् (1)	अ०ख० 2.233.20	उपाघ्राय उपवेशयत् (1)	अ०ख० 2.2.39
समुदीक्ष्य आविष्टः (1)	अ०ख० 2.8.4	आश्रित्य विशन्ति (1)	अ०ख० 2.10.68
उत्सृज्य वर्त्तते (1)	अ०ख० 2.43.21	विमुच्य प्रारेभे (1)	अ०ख० 2.141.3
समाश्रित्य आराधयामास (1)	अ०ख० 2.22.6	आश्रित्य आराधय (1)	अ०ख० 2.32.10
प्रणम्य लभते (1)	अ०ख० 2.227.62	आविष्य शेते (1)	अ०ख० 2.9.5
आदाय व्यसृजत् (1)	अ०ख० 2.48.3	प्रणिपत्य व्यसर्जयन् (1)	अ०ख० 2.133.33
अभिषिच्य समुत्सृजेत् (1)	अ०ख० 2.146.75	क्षमाप्य विसर्जयेत् (1)	अ०ख० 2.148.21
आश्रित्य तिष्ठति (3)	अ०ख०[59]	प्राप्य संस्थितः (1)	अ०ख० 1.2.47.3
निशम्य उत्थितः (1)	अ०ख० 2.7.8	आसाद्य स्थिताः (1)	अ०ख० 2.10.34
व्याप्य स्थिता (1)	अ०ख० 2.14.49	व्याप्य स्थितम् (1)	अ०ख० 2.34.7
आगत्य स्थिता (1)	अ०ख० 2.39.21	समाश्रित्य स्थिता (1)	अ०ख० 2.39.27
आश्रित्य उत्थापय (1)	अ०ख० 2.45.33	अवष्टभ्य संस्थितः (1)	अ०ख० 2.100.5
समुद्धृत्य स्थापितम् (1)	अ०ख० 2.119.2	आध्याय संस्थितः (1)	अ०ख० 2.198.18
आस्थाय स्थितः (1)	अ०ख० 2.216.1	आचम्य स्नायात् (1)	अ०ख० 2.139.2
उत्थाय स्मरते (1)	अ०ख० 2.34.24	अभ्युत्थाय सुविस्मिता (1)	अ०ख० 2.22.31
अवलोक्य विस्मितः (1)	अ०ख० 2.141.2	सम्भूय श्रूयताम् (1)	अ०ख० 1.53.15
एकमनाभूत्वा शुणुष्व (1)	अ०ख० 2.29.6	आधाय सुष्वाप (1)	अ०ख० 1.2.46.87
आघ्राय हर्षितः (1)	अ०ख० 1.2.78.7		

144 स्थलों पर अन्य धातुओं के साथ य प्रत्यय का संयुक्त क्रियापद के रूप में प्रयोग हुआ है।

अवन्ती खण्ड में जो संयुक्त क्रियापद उपलब्ध हुए हैं वे अत, आन, त, तुम्, त्वा, य प्रत्यय के साथ संयुक्त क्रियापद हैं। इस खण्ड में अस् धातु के साथ 'त' प्रत्ययान्त के सर्वाधिक 121 संयुक्त क्रियापद उपलब्ध हुए हैं इसके बाद भू धातु के 'त' प्रत्ययान्त 78तथा 'त्वा' प्रत्ययान्त के 2 संयुक्त क्रियापदों का प्रयोग हुआ है।अन्य धातुओं के साथ 'त' प्रत्ययान्त 136 संयुक्त क्रियापद, अत्/आन/मान प्रत्ययान्त के साथ 90 संयुक्त क्रियापद, तुम् प्रत्ययान्त के साथ 261 संयुक्त क्रियापद, 'त्वा' प्रत्ययान्त के साथ 136 संयुक्त क्रियापद और 'य' प्रत्ययान्त के साथ 144 संयुक्त क्रियापदों का प्रयोग किया है। स्कन्दपुराण अन्तर्गत अवन्ती खण्ड में कुल 968 स्थलों पर संयुक्त क्रियापद उपलब्ध हुए हैं।

सन्दर्भ सूची-

1. अ०ख० 1.2.1.47, 1.2.40.38, 1.2.41.34, 1.2.82.55, 1.2.84.48
2. अ०ख० 1.2.16.28, 1.2.40.31, 1.2.55.27, 1.2.68.49, 1.2.75.47, 1.2.79.30

3. अ०ख० 1.2.28.1, 2.209.148, 2.233.28, 2.236.13
4. अ०ख० 1.2.38.25, 1.2.39.37
5. अ०ख० 1.2.75.45, 2.194.56
6. अ०ख० 2.34.10, 2.118.36, 2.150.37
7. अ०ख० 2.54.69, 2.56.26
8. अ०ख० 2.92.20, 2.97.109
9. अ०ख० 1.45.7, 1.49.24, 1.2.3.23, 1.2.34.30, 1.2.39.36, 1.2.44.60, 62, 1.2.53.32, 1.2.66.42, 2.29.17
10. अ०ख० 1.49.27, 1.2.3.22, 1.2.26.53, 54, 1.2.10.15, 1.2.34.29, 1.2.44.61, 2.198.30
11. अ०ख० 1.48.53, 54, 1.2.46.108
12. अ०ख० 1.54.44, 2.76.5
13. अ०ख० 1.2.6.41, 1.2.56.22, 2.29.16, 2.42.65
14. अ०ख० 1.2.15.16, 1.2.41.22
15. अ०ख० 1.2.40.25, 1.2.67.11, 2.103.167, 2.233.9
16. अ०ख० 1.2.54.14, 1.2.73.20
17. अ०ख० 1.2.77.44, 2.28.92, 2.209.171
18. अ०ख० 2.12.9, 2.60.31
19. अ०ख० 2.97.114, 2.169.16
20. अ०ख० 2.159.88, 2.227.38
21. अ०ख० 1.54.20, 1.63.8
22. अ०ख० 2.28.128, 2.29.33, 2.119.12, 2.159.99
23. अ०ख० 1.83.63, 2.72.64
24. अ०ख० 2.153.13, 2.188.10, 2.227.15, 2.194.40
25. अ०ख० 1.2.63.36, 1.2.65.2
26. अ०ख० 2.180.25, 2.183.8, 2.209.168
27. अ०ख० 1.60.11, 1.2.1.21, 1.2.8.19, 1.2.21.23, 1.2.24.6, 1.2.27.46, 2.20.2, 2.30.2, 2.86.2, 2.108.2, 2.133.3
28. अ०ख० 1.2.18.21, 1.2.21.36, 1.2.62.32, 2.142.49, 2.235.37, 58
29. अ०ख० 1.2.25.12, 1.2.28.53, 1.2.54.7, 39, 1.2.83.28, 1.2.60.36, 1.2.62.22, 33, 36,
30. अ०ख० 1.2.25.41, 2.171.48, 51
31. अ०ख० 1.2.60.34, 1.2.83.31, 2.9.19, 2.33.37, 2.35.11, 2.97.114
32. अ०ख० 2.48.36, 2.51.16, 2.67.54
33. अ०ख० 1.1.10, 1.60.2, 1.65.1, 1.69.2, 1.71.1, 1.74.9, 69, 1.76.2, 1.80.9, 1.81.25, 37
34. अ०ख० 1.4.68, 2.8.38, 2.122.4
35. अ०ख० 1.45.3, 1.60.6, 1.64.28, 1.2.27.35, 1.2.81.84, 2.32.2
36. अ०ख० 1.74.61, 2.198.21, 2.234.1
37. अ०ख० 1.2.26.55, 2.33.38, 2.49.5, 2.210.5
38. अ०ख० 1.2.64.25, 2.233.6
39. अ०ख० 2.234.3, 2.235.61
40. अ०ख० 1.59.33, 1.62.48
41. अ०ख० 1.2.79.23, 2.137.3
42. अ०ख० 2.21.15, 2.227.1, 2.231.52
43. अ०ख० 2.54.42, 2.153.27
44. अ०ख० 2.30.6, 2.36.16, 2.43.6, 2.106.2, 2.111.37, 2.179.7, 2.180.59, 2.184.4, 2.195.20
45. अ०ख० 2.140.11, 2.164.9
46. अ०ख० 2.26.57, 2.172.16
47. अ०ख० 2.42.36, 2.168.14
48. अ०ख० 2.11.35, 2.118.38
49. अ०ख० 2.31.4, 2.56.37, 2.82.4, 2.118.39, 2.137.8
50. अ०ख० 2.59.6, 2.82.7, 2.128.5, 2.156.19
51. अ०ख० 2.121.20, 2.125.21
52. अ०ख० 2.146.114, 2.156.5, 6
53. अ०ख० 1.45.20, 49, 2.78.15, 2.83.32, 2.91.6, 2.99.14
54. अ०ख० 2.33.16, 2.69.6, 2.141.6, 2.167.13, 2.178.32
55. अ०ख० 2.43.2, 9, 2.81.3, 2.112.10, 2.13.3, 2.114.2, 2.115.9, 2.121.17, 2.122.35,
56. अ०ख० 2.84.18, 2.135.2, 2.140.9
57. अ०ख० 1.41.47, 2.32.18, 2.168.27
58. अ०ख० 2.69.10, 2.153.6, 2.168.38
59. अ०ख० 1.80.36, 2.11.32, 2.54.42

सन्दर्भ ग्रन्थ-

1. कालिदास क्रियापद कोश -डॉ० आशा, प्रकाशक-परिमल पब्लिकेशन, शशि नगर, दिल्ली
2. धातु में अर्थ-निर्देश-चैनानी माया, प्रकाशक-विद्यानीधि प्रकाशन, दिल्ली
3. पाणिनीय अष्टाध्यायी प्रवचनम्-डॉ० सुदर्शनदेव, धमार्थन्यास, गुरुकुल झज्जर (हर०)
4. पाणिनि धात्वनुक्रमकोश- अवनीन्द्र कुमार, प्रकाशक परिमल पब्लिकेशन, शक्तिनगर, दिल्ली
5. बृहद् धातु शब्द रूप संग्रह -डॉ० रामकिशोर, प्रकाशक चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी